

॥ भाविष्य ॥ महापुराणम् ॥

(प्रथम खण्ड)

अनुवादक
पण्डित वाबूराम उपाध्याय





COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]

भविष्य महापुराणम्

(प्रथम खण्ड)

ब्राह्मपर्व

(हिन्दी-अनुवाद सहित)



अनुवादक

पण्डित बाबूराम उपाध्याय



शक १९३४ : सन् २०१२

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रकाशक
विभूति मिश्र
प्रधानमंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-३



प्रकाशन वर्ष : शक १९३४ : सन् २०१२
संस्करण : द्वितीय
प्रतियाँ : ११००
स्वत्वाधिकार : हिन्दी साहित्य सम्मेलन
मूल्य : ५००/- रुपये



मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रवर्तित पुराण प्रकाशन योजना के अन्तर्गत पुराण साहित्य के संवर्द्धन हेतु राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन जी के आकाक्षानुरूप अब तक ब्रह्मपुराण, ब्रत्यदैवर्तपुराण, अग्निपुराण, बृहत्रार्दयपुराण, वायुपुराण, मत्स्यपुराण, कूमपुराण तथा स्तकन्द पुराणान्तर्गत केदार खण्ड का मूलपाठ सहित हिन्दौ-अनुवाद प्रकाशित किया जा चुका है। जिसका समादर सुधीजनों द्वारा व्यापक स्तर पर हुआ है। फलस्वरूप सम्मेलन को अनेक पुराणों का द्वितीय संस्करण प्रकाशित कराना पड़ा।

सुधी पाठकों की पिपासा को शान्त करने तथा अपनी गौरवशाली पुराण प्रकाशन योजना को अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु सम्मेलन ने २६,३०७ श्लोक वाले भविष्यमहापुराण के प्रकाशन का गुरुतर कार्य अपने हाथ में लिया, जिसका प्रथम खण्ड 'ब्राह्मपर्व' आपके सम्मुख प्रस्तुत है। सम्पूर्ण भविष्य महापुराण का अनुवाद राजर्षि टण्डन जी ने श्री बाबूराम उपाध्याय से स्वयं कराया था। परन्तु दुःख है कि उन दोनों के जीवनकाल में इसका प्रकाशन न हो सका। आज इसे प्रकाशित हो जाने से उन दोनों की आत्मा को शान्ति मिलेगी, ऐसा विश्वास है।

'भविष्यमहापुराण' को प्रकाशन की दृष्टि से कुल तीन खण्डों में विभक्त किया गया है। जबकि यह पुराण चार पर्वों में निबद्ध है। (१) ब्राह्मपर्व, (२) मध्यमपर्व, (३) प्रतिसर्पणपर्व, (४) उत्तरपर्व।

भविष्यपुराण के ब्राह्मपर्व में ८९७ श्लोक हैं, जिनमें सर्वांशतः भगवान् सूर्य की ही महिमा-गरिमा वर्णित है।

इस पुराण की पाण्डुलिपि एवं विस्तृत भूमिका उपलब्ध कराने के लिए गोरखपुर विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्राध्यापक डॉ० रामजी तिवारी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

ग्रन्थ के प्रथम संस्करण के सुष्टु सम्पादन हेतु पण्डित रुद्रप्रसाद मिश्र, डॉ० जनार्दनप्रसाद पाण्डेय 'मणि' तथा श्री शेषमणि पाण्डेय के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

मुझे आशा ही नहीं, प्रत्युत पूर्ण विश्वास है कि भविष्यमहापुराण 'ब्राह्मपर्व' का द्वितीय संस्करण सुधीजनों द्वारा समादृत होगा तथा जनकल्यानकारी एवं उपयोगी सिद्ध होगा।

कृष्ण जन्माष्टमी
संवत् २०६९

विभूति मिश्र
प्रधान मंत्री
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-३

आमुख

प्राचीन भारतीय संस्कृति और इतिहास के मर्मज भलीभाँति जानते हैं कि अष्टादश पुराणों में 'भविष्यमहापुराण' का कितना उच्च स्थान है और उसमें कितनी महत्वपूर्ण सामग्रियों का समादेश हुआ है। 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' ने इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद जिस वर्तमान वैज्ञानिक पढ़ाते को अपनाकर और जिस रीति से उसे प्रस्तुत करने का प्रथल किया है, वह सभी जिज्ञासुओं एवं पुराणज्ञों के लिए बहुत ही उपयोगी है। 'इतिहासपुराणाम्या वेदं समुपबृहयेत् । विभेत्यल्पश्रुता द्वेदो मामयं प्रहरिष्यति' ॥ अर्थात् देवों के उपबृहण रूप होने के कारण पुराणों का महत्त्व स्वतः प्रमाणित है; यह नितान्त सत्य है कि पुराण संरक्खारकों ने वेदों के रहस्यात्मक मंत्रों को सरल प्रयोग द्वारा जन-साधान्य के लिए उपयोगी एवं सम्प्रेषणीय बना दिया है।

भविष्यमहापुराण भारतीय धर्म कर्मकाण्ड, इतिहास और राजनीति का एक विशाल कोश है। इसमें अनेक प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का सार संगृहीत है। कुछ प्राचीन विशिष्ट ग्रन्थ भी इसमें समाहित हो गये हैं। इसकी रमणीयता भी अवर्णनीय है। सूर्योराधन की विशेषताओं, ब्रतों एवं नियमों की प्रामाणिकता के लिए हेमाद्रि, अपरार्क, स्मुतिचन्द्रिकाकार देवण्णभट्ट (११२५-१२२५) आदि निबन्धकारों ने भी इसी का आश्रय लिया है। वास्तव में क्रान्तद्रष्टा ऋषियों की मौलिक सूक्ष्म-बृक्ष भविष्यमहापुराण में ही मिलती है। वैदिक सामग्रियों का सरलतम भाषा में सम्प्रकृत विश्लेषण भविष्यपुराण का वर्ण-विषय है। आदि से लेकर अन्त तक भविष्य-महापुराण ने एकतारूपता बनाये रखने का सफल प्रयत्न किया है।

भविष्यमहापुराण का नाम भारतीय साहित्य—विशेषकर पुराणों में अत्यन्त प्रसिद्ध है और यह अनेक कारणों से लोगों में लोकप्रिय है। इतिहास के जिज्ञासुओं के ऐतिहासिक दृष्टिकोण के लिए तो यह बहुत ही आवश्यक ग्रन्थ है। इसलिए अनेक लोगों ने उर्दू, अंग्रेजी, अरबी, फारसी आदि भाषाओं में लिखे गये इतिहासों के साथ इसकी तुलना की है। पार्जीटर, स्मिथ और प० भगवद्दत्त ने भी बड़ी छानबीन के बाद भविष्यमहापुराण को ही इतिहास के लिए सर्वाधिक प्राचीन आधार माना है। भविष्यमहापुराण को देखकर एक स्वाभाविक उत्कण्ठा होती है कि आखिर यह कौन-सी विचित्र रचना है, जो प्राचीन काल में लिखी गयी है और भविष्य की बातों को भी अपने में संजोये हुए है। 'पुराणमास्यानप्' के द्वारा तो प्राचीन आस्थानों को ही पुराण की संज्ञा दी गयी। चूँकि सभी भारतीय आदर्शवादी दृष्टिकोण रखते हैं, इसलिए भविष्य की ओर अधिक दृष्टि लगाये रहते हैं। अपने भविष्य को जानने और दूसरे के भविष्य की इच्छा प्रबलवती होती है।

पुराणों की अनेकधा व्युत्पत्ति सर्वत्र मिलती है, इसलिए यहाँ पृथक् से उस पर कोई व्याख्या देने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। ऐतरेयब्राह्मणोपक्रम में सायणाचार्य ने अपने भाष्य में लिखा कि 'वेद के अन्तर्गत देवासुर युद्ध इत्यादि का वर्णन इतिहास कहलाता है और आगे यह असत् था, अन्यथा कुछ नहीं था इत्यादि जगत् की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर सृष्टि-प्रक्रिया का

वर्णन पुराण कहलाता है।” बृहदारण्यकभाष्य में शंकराचार्य का स्पष्ट मत है कि ‘उर्वशी पुरुरवा आदि संवाद स्वरूप ब्राह्मणभाग को इतिहास कहते हैं और पहले असत् ही था इत्यादि सृष्टि प्रकरण को पुराण कहते हैं’। इन व्याख्याओं से यह प्रकट है कि सर्गादि का वर्णन पुराण और ऐतिहासिक कथाएँ इतिहास हैं।

वर्तमान में प्राप्त भविष्यमहापुराण के संस्करणों के आधार पर उराकी समीक्षा समीनीन है। सम्पूर्णनिन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के हस्तलिपि संग्रहालय में क्रम सं० १६५१६ पर एक भविष्यपुराण की प्रति उपलब्ध है, जिसमें पांच पर्वों-ब्राह्म, शैव, त्वाष्ट्र, वैष्णव और प्रतिसर्गपर्व का उल्लेख है, किंतु उक्त हस्तलिपि में सभी पर्वों की विषय-शास्त्री नहीं मिलती। ‘बैंगला निश्चकोश’ के पृ० ३०५ पर सुनित है कि ‘कलीविलिंग’ (भविष्यपुराण) स्वतंत्र पुराण नहीं है, बल्कि यह पुराण का एक भेद है। शशिभूषण विद्यालयकार द्वारा रचित ‘भारतीय पौराणिक जीवनी कोश’ जो रंगून (बर्मा) से प्रकाशित है, के पृ० १२२० पर भविष्यपुराण का उल्लेख है। तदनुसार भविष्यमन्वन्तर के प्रारम्भ में प्रसूत, भव्य, पृथुग, लेख और आद्य—ये पांच देवता थे। इन्हीं में से भव्य के नाम पर भविष्यपुराण की रचना हुई। आफेक्ट के ‘कैटलाग्स कैटलागारम’ के अनुसार लन्दन के इण्डिया ऑफिस की क्रमसंख्या ३४४७ पर भविष्यपुराण की एक लिखित प्रति की चर्चा है, किंतु यह प्रति सप्तमी कल्प तक होने के कारण अपूर्ण है। विल्सन ने भी भविष्यपुराण की एक प्रति का उल्लेख किया है, जिसमें १४,००० इलोक और १२६ अध्याय हैं। डॉ हरप्रसाद शास्त्री ने बिहार के गोपालगंज जिलान्तर्गत हथुआराज के पुस्तकालय में स्थित एक प्रति का हवाला दिया है, जो उनके १९२८ ई० में प्रकाशित ‘डिस्ट्रिप्टिव कैटलाग’ के पृ० ४२८ पर अंकित है।

वेङ्कटेश्वर प्रेस दम्दई से प्रकाशित भविष्यमहापुराण ही समग्र रूप में हमारे समक्ष वर्तमान में उपलब्ध है, उसके अनुसार उसमें कुल चार पर्व हैं-ब्राह्म, मध्यम, प्रतिसर्ग तथा उत्तरपर्व। उक्त प्रकाशित प्रति में जिस क्रम से और जितने अध्यायों में उनका वर्णन है, उसका सम्पूर्ण विवरण अधोलिखित है:—

पर्व	खण्ड	कुल अध्याय	इलोक संख्या
१. ब्राह्मपर्व		२१६	८९१
२. मध्यमपर्व	प्रथम भाग	२१	८९८
	द्वितीय भाग	२१	१४७२
	तृतीय भाग	२०	५७१
३. प्रतिसर्गपर्व	प्रथम खण्ड	७०	४०६
	द्वितीय खण्ड	३५	१११८
	तृतीय खण्ड	३२	२३९०
	चतुर्थ खण्ड	२६	२१०२
४. उत्तरपर्व		२०८	८४३९

भविष्यमहापुराण के इस संस्करण में प्रतिसर्ग पर्व के सम्बन्ध में कहा गया है कि इसमें यह प्रकाशन के समय जोड़ा गया। मूल रूप में प्राप्त भविष्यमहापुराण में यह पर्व प्रकाशक को नहीं प्राप्त हुआ था। आगे कहा गया है कि अमृतसर के ठाकुर महान् चन्द्र के यहाँ इस पर्व की प्रति मिली, जिसका परिष्कार करके प्रकाशक ने प्रकाशित किया। इस पर्व के भविष्यपुराण में जुड़ जाने पर भी इसकी अति प्राचीनता अन्य पर्वों से ही सिद्ध हो जाती।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।

वंशानुचरितं चैह पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥१

सर्ग (सृष्टि), प्रतिसर्ग (प्रलय और उसके बाद की सृष्टि), वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित (सूर्य, चन्द्र, कश्यप, दक्ष आदि के वंशों का सम्पूर्ण निरूपण) पञ्चलक्षण कहलाता है।

किसी भी पुराण को महापुराण की श्रेणी में तभी रखा जा सकता है, जब वह इन उपर्युक्त पञ्चलक्षणों से सम्पन्न हों। किंतु श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध में पुराणों के दशलक्षणों का विवेचन है। पञ्चलक्षणात्मक इलोक भविष्यपुराण में दो बार मिलता है। इससे स्पष्ट है कि भविष्यपुराणकार पञ्चलक्षणों को आधित कर इस पुराण को रचने के प्रति सचेष्ट थे। सर्वत्र उनका यही प्रयास देखने को मिलता है कि अष्टादश पुराणों की श्रृंखला में भविष्यमहापुराण अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखने में समर्थ हो। इसी कारण पुराणों की सूची जहाँ भी प्राप्त होती है, उसमें भविष्यमहापुराण ९ वें स्थान पर है। उसका तात्पर्य है कि भविष्यपुराण की रचना के समय तक ८ पुराण रचे जा चुके थे। भविष्यमहापुराण में आद्योपान्त नैरन्तर्य मिलता है। इसकी जो अनुक्रमणिका अन्य पुराणों में उपलब्ध है, उसके अनुसार वेंकटेश्वर प्रेस-से प्रकाशित भविष्यमहापुराण नहीं मिलता। इस संस्करण के ब्राह्मपर्व में भविष्यमहापुराण के इलोकों की संख्या ५०,००० (पचास हजार) बतायी गयी है^१, किंतु गिनने पर इलोकों की कुल संख्या २६३०७ ही है। यह विचारणीय है कि पचास हजार इलोकों वाला भविष्यमहापुराण कहाँ गया।

भविष्यमहापुराण की विषय-सामग्री इतनी मनोहर एवं आकर्षक है कि विद्वत्समाज सहज ही इसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। आपस्तम्बधर्मसूत्र में इसका उल्लेख मिलने के कारण इसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की आशंका निर्मूल है। यह बात अलग है कि नामक, कबीर, सूर, तुलसी, जयचन्द्र, पृथ्वीराज इत्यादि से सम्बन्धित विवरण प्राप्त होने के कारण कुछ विद्वानों ने इसे अर्वाचीन पुराणों की श्रेणी में रखने का प्रयत्न किया है। परन्तु

१. भविष्यमहापुराण—१/२/४-५, ४/२/११; विष्णुपु० ३/६/२४; मत्स्यपु० ५३/६४; मार्क० १३४/१३; वेदीभा० १/२/१८; शिवपु० वा० सं० १/४१; अग्निपु० १/१४; ब्रह्मवैरतपु० १३३/६; स्कन्दपु० श० ख० २/८४; कूर्मपु० पू० १/१२; ब्रह्मण्डपु० प्रक्रियावाद १/३८; वराहपु० २/४।

२. नारदपु० (१/१००), मत्स्यपु० (५३/३१), अग्निपु० (२७२/१२)।

३. भविष्यमेतद्विषिणा लक्षाद्वै संख्या कृतम् ॥ भविष्यमहापु० १/१०५।

यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि यदि प्रतिसर्गपर्व को इस पुराण से अलग कर दिया जाय, तो इसकी अति प्राचीनता स्वयमेव सिद्ध हो जायेगी। कुछ इतिहासकारों ने तो मध्यकालीन इतिहास का प्रमुख आधार इसी पुराण को माना है तथा इसमें उल्लिखित विषयों की भूरि-भूरि सराहना की है। भविष्यमहापुराण में निर्दिष्ट कर्मकाण्ड-सम्बन्धी प्रकरण इतना ओज और प्रवाह लिये हुए हैं कि यह समग्र रूप में कर्मकाण्ड शास्त्र ही है।

इसके ब्राह्मपर्व में पुराणों को पापहरण का प्रधान साधन बताते हुए भविष्यमहापुराण की विशेष रूप से प्रशंसा की गयी है और उसके बाद सृष्टि को निरूपित किया गया है। इसी प्रकार क्रामशः सम्पूर्ण ज्ञागतिक प्रक्रिया का सुन्दर ज्ञाना इस पुराण में देखने को मिलता है। गर्भाधान-संस्कार से लेकर अन्य संस्कारों का क्रमशः वर्णन करते हुए स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों पर अत्यन्त गवेषणा पूर्वक विचार वर्णित है। प्रारम्भ में ही यह विवेचत है कि जनयनेजय के पुत्र शतानीक के यहाँ समरत कृषिगण जाकर प्रार्थना करने लगे तथा उनसे निवेदन किया कि हे ब्रह्मन् ! त्रिभुवनम् जो ज्ञान है, वह तो 'श्रुत' है, परन्तु शूद्रों की स्थिति अलग है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिए तीन वेद तथा मनुस्मृति इत्यादि अनेक शास्त्र भी उन्हीं के कल्याणार्थ बनाये गये हैं। इनमें शूद्रों की अत्यन्त हीन स्थिति है। अतः हे ब्रह्मन् ! आप यह बतायें कि शूद्रगण धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करने में कैसे नमर्थ हों ? इससे स्पष्ट है कि भविष्यपुराण की रचना के समय शूद्रों की स्थिति अल्पन्त दयनीय थी। इसलिए जगत् के कल्याण के प्रति सचेष्ट कृषियों के हृदय में उनके प्रसंस्कार की बात आयी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही वेद-शास्त्रों पर अपना अधिकार समझते थे तथा शूद्रों को सदैव उनका स्पर्श भी नहीं करने देते थे। एक ऐसा भी समय था, जब पढ़ने-लिखने का कोई साधन नहीं था, केवल भोजपत्र ही लिखने के साधन थे। उन लिखित भोजपत्रों को अमूल्य निधि की भाँति सुरक्षित करके रखा जाता था। शूद्र कृषि इत्यादि कार्यों में इतने संसकृत रहते थे कि ज्ञान-विज्ञान में उनकी कोई रुचि ही नहीं रहती थी। कालान्तर में समय परिवर्तित हुआ तथा वेदों के उपबृंहण रूप में बोधगम्य भाषा में पुराणों की रचना का प्रारम्भ हुआ। उसी कड़ी में भविष्यमहापुराण की भी रचना हुई।

भविष्यमहापुराण के रचना-काल के सम्बन्ध में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। किंतु जो साक्ष्य मिले हैं, उनके अनुसार इसकी रचना ईसा पूर्व पाँचवीं-छठी शताब्दी में हुई लगती है।

भविष्यमहापुराण की विषय-सामग्री को देखने से यह स्पष्ट झलक मिलती है कि 'कर्म ही प्रधान है'। चाहे व्यक्ति किसी भी वर्ण का हो, यदि वह उत्तम कार्य में प्रवृत्त होता है, तो जाति

४. भवन्ति द्विजशार्दूलं श्रुतानि भुवनत्रये ।
विशेषतश्चतर्थस्य वर्णस्य द्विजसत्तम ॥
- ब्राह्मणादिषु वर्णेषु त्रिषु वेदा प्रकल्पिताः ।
मन्त्रादीनि च शास्त्राणि तथांगानि समन्ततः ॥
- शूद्राश्चैव भृशं दीनाः प्रतिभान्ति द्विजप्रभो ।
धर्मर्थकाममोक्षस्य शक्ताः स्फुरवने कथम् ॥

उसमें बाधक नहीं हो सकती। पुराणकार ने नारद, मन्दपाल इत्यादि कृषियों का उदाहरण देते हुए कहा कि ये सभी जाति से हीन होते हुए भी अपने उत्तम कार्यों से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए। इससे प्रकट है कि यह पुराण कर्म को प्राथमिकता देनेवाला महापुराण है तथा इसमें विवेचित विषय भी तदनुरूप ही है। इस पुराण में सृष्टि-रचना, दैव-शक्ति तथा आध्यात्मिक ज्ञान अत्यन्त व्यवस्थित रूप में निर्दिष्ट है।

भविष्यमहापुराण के आदि में ही समाज के दीन-हीन लोगों के प्रति जो सहानुभूति प्रदर्शित की गयी है, उससे लगता है कि या तो भविष्यमहापुराणकार उससे किसी रूप में प्रभावित था या तत्कालीन दीन-हीन लोगों के प्रति उसमें आस्तिकी बुद्धि आयी, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने उनके सम्मान में इस पुराण की रचना की। वर्ण विषय को देखकर सहज ही उस समय के ऐतिहासिक, राजनीतिक, भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक परिदृश्य की जलक मिल जाती है। 'षष्ठीकृत्य' के विवेचनप्रसंग में इस पुराणकार ने घोषणा की है कि वर्ण और जाति का अन्तर जन्म रो न करके कर्म से करना चाहिए। शूद्र कुल में उत्पन्न होकर भी यदि कोई व्यक्ति अत्यन्त शुद्ध आचार-विचार वाला है तथा त्याग एवं दया-भावना से पूर्णतः आदेष्टित है, तो निःसन्देह वह ब्राह्मण कहलाने योग्य है तथा वह वेद का अधिकारी है। ब्राह्मण शब्द से तात्पर्य ब्रह्मज्ञानी से है। चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र-कोई भी हो, दद्मज्ञान में प्रवृत्त हो सकता है और वेदों का सम्यक् अध्ययन कर क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र व्यक्ति भी ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कर सकता है। उदाहरण के रूप में रावण, श्वाद, चाण्डाल, दास, लुब्धक, आभीर, धीवर को देते हुए पुराणकार का कहना है कि वे लोग भी उत्तम कार्यों में लगकर वेदों के अध्ययन पूर्वक अपना विकास कर सकते हैं। साथ ही वृषल जाति के लोग भी उन्हीं की भाँति वेदों का अध्ययन कर सकते हैं।^१ वेदों का अध्ययन कर शूद्र भी दूसरे देश में जाकर अपने को ब्राह्मण घोषित कर सकता है। क्योंकि कोई भी मनसा, वाचा, कर्मणा उसको शूद्र नहीं कह सकता। इसका मूल अर्थ यहीं निकला कि केवल वेदाध्ययन से ब्राह्मणत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती, प्रत्युत उसके लिए तदनुसार कर्म की आवश्यकता होती है। किसी भी जाति का प्रतिभावान् व्यक्ति समस्त वेदों, दो वेद या एक ही वेद का यथाक्रम अध्ययन करके शुद्ध ब्राह्मण से उत्पन्न होनेवाली कन्या से विवाह कर सकता है। इसी प्रकार दाक्षिणात्य और गौडपूर्व जातियाँ बन गयीं। इस कारण वेदों के अध्ययन के आधार पर जाति का निर्धारण भविष्यपुराण को मान्य नहीं है।^२

१. वेदाध्ययनमप्येतद् ब्राह्मणं प्रतिपद्यते । विप्रवद्वैश्यराजन्यौ राक्षसा रावणादयः ॥

इवादचाण्डालदासाद्वच लुब्धकाभीरधीवराः । येऽन्येष्टि वृषताः केचित्तेष्टि वेदानधीयते ॥

शूद्रा वेशान्तरं गत्वा ब्राह्मणं क्षत्रियं श्रिताः । व्यापादाकारभाषाद्यैर्विप्रतुल्यैः प्रकल्पितैः ॥

भविष्यपुराण १/४१/१-३

२. वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् । श्रोद्धर्हति शुभां कन्यां शुद्धब्राह्मणज्ञां नराः ॥

अथवादीत्य वेदांस्तु क्षत्रवैश्येष्टु वा नराः । गौडपूर्वा कृतामेयुर्जातिं वा दाक्षिणात्यजाम् ॥

भविष्यपुराण १/४१/४-५

अब भविष्यपुराण के पर्वों के अनुसार पृथक्-पृथक् विषयवस्तु जान लेना उचित होगा ।

ब्राह्मपर्व के अन्तर्गत जीवनोपयोगी उन सभी विषयों का समावेश है, जिनका सम्बद्ध अनुसरण करते हुए विवेकी मनुष्य परम पद को प्राप्त कर सके । गृहस्थी को चलाने के लिए जिन-जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उन साधनों का सांगोपांग विवेचन इसमें है । स्त्रियों के कर्तव्यकर्तव्यों की भी चर्चा करने में पुराणकार ने अपनी विशेष रुचि दिखायी है । प्रतिपदा से लेकर सभी कल्पों, सूर्य देवता के विविध रूपों, अनेक प्रकार के द्रतों का तिरूपण करते समय भविष्यपुराण ने कर्मकाण्ड की पद्धतियों का समुचित विश्लेषण किया है । इसी में सम्पूर्ण साम्बपुराण किञ्चिदन्तर से संकलित है । यदि वेवल ब्राह्मपर्व पर ही स्वतंत्र रूप से अनुसन्धान किया जाय, तो संस्कृत साहित्य का बड़ा उपकार होगा । सम्मेलन ने इस ग्रन्थ के उद्धार का जो संकल्प लिया है, वह केवल स्तुत्य ही नहीं, सराहनीय एवं सामयिक भी है । क्योंकि आज के समाज को ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता है, जो समाज एवं व्यक्ति को प्रगति के मार्ग पर ले जाने में सर्वय हों ।

भविष्यमहापुराण का द्वितीय पर्व मध्यमपर्व के नाम से स्वात है, जिसमें तीन स्पष्ट हैं । सम्पूर्ण मध्यमपर्व में इष्टापूर्त से सम्बन्धित विषयों का संकलन है । इष्टापूर्त वेद, श्रीसूत्रों तथा ब्राह्मणग्रन्थों में विस्तार के साथ प्रतिपादित है अथवा यों कहा जाय कि वेदों से लेकर उनके कर्मकाण्ड प्रतिपादक अङ्ग, उपाङ्ग एवं पद्धति निरूपक ग्रन्थों में भी इसी का वर्णन है, तो अत्युक्ति न होगी । इष्टापूर्त एक पारिभाषिक शब्द है । इसमें दो पद हैं-इष्ट और पूर्त । दोनों का समाप्त होने पर मित्रावरुण, अष्टावक्र, तथा विश्वामित्र इत्यादि शब्दों की भाँति 'अन्येषामपि दृष्ट्यते' (पाणिनि ६/३/१३७) सूत्र से बीच में 'अकार' का दीर्घ होता है । पाणिनि ने (५/२/८८) के गणपाठ में यद्यपि 'इष्ट-पूर्त' शब्दों का पाठ किया है, पर समाप्त में अकार बुद्धि की चर्चा नहीं की है । दीर्घत्व का प्रसंग ६/३/१२८-१३९ सूत्रों के प्रकरण में मिलता है । काशिका के अनुसार इष्ट का अर्थ यंज और पूर्त का अर्थ श्राद्ध आदि है । वेदों से लेकर पुराण एवं स्मृतियों तक के प्रयोगों में इष्टापूर्तम्, इष्टापूर्ती और इष्टापूर्त—ये तीनों ही समस्त या असमस्त प्रयोग मिलते हैं । रघुनन्दनभट्ट ने अपने 'मलमासतत्त्व' में जातुकर्ष के वचन से अग्निहोत्र, दैश्वदेव, सत्य, तप, वेदाध्ययन एवं उनके अनुकरण को इष्ट तथा वापी, कूप, तड़ाग, देवमन्दिर, पौसला, बगीचा तथा सदाचार आदि चलाने को पूर्त कहा है । चारों

७. अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम् । आस्तिक्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यमिधीयते ॥

वापीकूपतडागादि वेदाध्ययतनानि च । अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यमिधीयते ॥

—मलमासतत्त्व- उद्घृत जातुकर्षवचन ।

उपर्युक्त वचन किञ्चिदन्तर से मनुस्मृति (४/२२७) की भेदातिथि, कुलसूक आदि की व्याख्याओं तथा अग्निस्मृति (४३-४४), सप्तशंखस्मृति (४-५), लिखितस्मृति (५-६), मार्क० पु० (१८/६-७), अग्निपु० (१०९/२-३) आदि में भी प्राप्त होता है । ऋग्वेद (१०/१४/८, १०/११/१२), छान्दोग्योप० (५/१०/३), वसिष्ठध० (३०), विष्णुध० (९१-९२) तथा याजवल्क्यस्मृति आदि में भी इष्टापूर्ति की व्याख्या इन्हीं श्लोकों में की गयी है ।

वेदों में यह पद बार-बार आया है ।

संहिताभाग में इष्टापूर्त का व्यापक वर्णन है^१ । सर्वत्र 'उद्बुधस्वाग्ने' इत्यादि मंत्र में ही यह पद प्रयुक्त है ; अधिकांश स्थलों पर इतरेतर द्वन्द्व के रूप में भी पुणिग एवं नपुंसकलिङ्ग में यह पद मिलता । दद्वृच्चपरिशिष्ट में इष्टापूर्त के सभी अंगों प्रतिमा, कूप, आराम, तड़ाग, वापी, आदि की प्रतिष्ठा, यज्ञ, हवन एवं शान्तियों का उल्लेख है ।^२ यह जितना शुद्ध, आनुकूलिक एवं प्रासांगिक है, उतना दिसी भी कर्मकाण्ड ग्रन्थ में नहीं मिला । यज्ञिविशब्राह्मण में भी ठीक यही ज्ञाते मिलती हैं ।^३ अर्थवर्परिशिष्ट में प्रायः इन्हीं शब्दों में देव प्रतिमाद्भूत् ज्ञा निर्देश है ।^४ भविष्यपुराण का यह पर्व सर्वथा बहुवृच्चपरिशिष्ट से मिलता है ।

मुइर्स (MUIR'S LECTURES) लेक्चर्स छप्पण ५, धारा २९३ पर इन चारों वचनों और उनकी व्याख्याओं का उल्लेख है । बनर्जी तथा थीबूट के ब्रह्मसूत्र के हिन्दी अनुवाद में पृष्ठ १९ तथा ३० पर इष्ट का अर्थ स्वार्थ के लिए तप और पूर्त का अर्थ परोपकार के लिए किया गया धर्म निर्दिष्ट है । शास्त्र तथा लिखित आदि स्मृतियों के अनुसार ये धर्म द्विजातियों के होते हैं । शूद्रों को केवल पूर्त का अधिकारी कहा गया है । किंतु इस तथ्य की व्याख्या में भविष्यपुराण का प्रतिपादन अत्यन्त प्रोढ़ है । ऐसा प्रतीत होता है कि इस पुराण के निर्माता को तभी प्राचीन, श्रौतसूत्रादि ग्रन्थों का भाष्य देखने को मिला था, क्योंकि श्रौतसूत्रों की ही भाँति भविष्यपुराण में भी ज्ञानसाध्य कर्म को अन्तर्वेदी तथा प्रतिमा आदि को बहिर्वेदी कहा गया है ।^५

मध्यमपर्व के प्रथम खण्ड में पुराणकार ने अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण ढंग से इस पर्व की निर्विघ्न समाप्ति हेतु मंगलाचरण करते हुए भविष्यपुराण के प्रशंसा की परम्परा में धर्म के स्वरूप को व्यक्त किया है । इसी पर्व में विराट् ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति को स्थापित करते हुए, स्वर्ग, पाताल आदि लोकों के वर्णन के साथ तीनों वर्णों की प्रशंसापूर्वक ब्राह्मण का लक्षण विवेचित है । इस पर्व का वृक्षारोपण, कूप, वापी इत्यादि की प्रतिष्ठा, देवता-प्रतिमा लक्षण, अष्टादश कुण्ड संस्कार वर्णन, नित्य-नैमित्तिक होम के अवसान पर षोडश उपचार वर्णन, होम हेतु द्रव्यों का प्रमाण, सुवा, दर्वी, पात्र निर्माण वर्णन, पूर्णाहुति होम वर्णन और विविध मण्डल निर्माण वर्णन हृदयग्राही है, जो वर्तमान में पर्यावरण को दूषित होने से बचाने की पूरी क्षमता रखता

१. बाजसनेयिसं० (१५/१४), तै० सं० (४/७/३), का० सं० (१८/१८), कपि० सं० (२९/६), काष्वसं (१६/७७, २०/३१), मै० सं० (७/१२, ४/२२), अर्थव० (२/१२/४), ३/१२८, ६/१२३/२, १८/१२/५७), श्व० (१०/१४/८), य० सं० (२/५/४) में भी इष्टापूर्त का उल्लेख है ।

२. बहुवृच्चपरिशिष्ट, अध्याय ४, खण्ड १ से २१ तक ।

३. यज्ञिविशब्राह्मण ६/१०/१-३ ।

४. अर्थवर्परिशिष्ट ७२/४-६ ।

५. ज्ञानसाध्यं तु यत्कर्म अन्तर्वेदीति कथ्यते ।

देवतास्थापनं पूजा बहिर्वेदिश्वाहृता ॥

भविष्यपु० ३/१९/१-२ ।

है। वैज्ञानिक भी अनेक प्रकार का अनुसन्धान करके इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि स्थिति, जल, पादक, गगन एवं समीक्षा को दूषित होने से बचाना है, तो पुराणों का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

द्वितीय खण्ड में याजिक कृत्यों की अत्यन्त विशद विवेचना है। इस खण्ड की रचना का मुख्य उद्देश्य यह जान पड़ता है कि यज्ञ के मंत्रों एवं छन्दों को उनकी विधि के साथ यजमान आचरण कर मोक्ष प्राप्त करे। किसी भी शास्त्र या साहित्य का प्रयोग यही है कि उसका अध्येता निजी जीवन के लिए उसको उपयोगी समझकर भली प्रकार अपनाये तथा अपने आचरण एवं व्यवहार से ऐसी परम्परा को उद्भूत करे, जिसका आश्रय कर जन-सामान्य ऊपर उठ सके। जहाँ तक मेरी धारणा है, भविष्यमहापुराणकार अपने इस उद्देश्य में सफल हैं, क्योंकि इन्हीं प्राचीन रचना होते हुए भी आज हमारे बीच यह पुराण लोकप्रिय है।

जाति-विहीन समाज के निर्माण की मान्यता में भविष्यपुराण आगे है। मुझे तो ऐसा लगता है कि वर्तमान युग में सामाजिक बराबरी की बात को जो रही है, वह निश्चयेन इस पुराण से प्रभावित है। इस बात से कथमपि इन्कार नहीं किया जा सकता है कि पुराणों में भी विशेषकर भविष्यपुराण के प्रति लोगों की अधिक आस्था है तथा इसमें पाये जानेवाले विषयों के अनुरूप आचरण को जन-सामान्य ने अपनाया है।

वेदों में यज्ञों के अनेक भेद निर्दिष्ट हैं, जिनमें सोमयाग, पुण्डरीक, अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय आदि प्रमुख हैं, इष्टापूर्त के अन्तर्गत ही यज्ञ भी आ जाता है तथा संस्कार-कर्मों में भी यज्ञ की आवश्यकता होती है। इन सभी यज्ञों में ऋत्विक ब्राह्मणादि का वरण तथा अस्त्रिकृण-संस्कार यजमान के गृह्यसूत्र के अनुसार करता है। गृह्यसूत्रों में पारस्कर, आश्वलायन, गोभिल द्राह्यायण, जैमिनि, भारद्वाज, मानव, लौगक्षि, बौद्धायन और सांख्यायन आदि मुख्य हैं। इनके अनुसार प्रणीता के बाद कुशकण्डिका, आधारहोम, महाव्याहृतिहोम और प्रायशिच्चत्तहोम करना चाहिए। इन्द्र और प्रजापति के नाम की आहुतियाँ आधारहोम कहलाती हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ-पद्धति इस खण्ड में वर्णित है।

इस खण्ड में पुराणकार ने क्रौञ्च, घाण आदि विविध मण्डलों के निर्माणपूर्वक उनके प्रकारों, दक्षिणा का प्रमाण, कलशस्थापन के भेदों, मास को आश्रित कर कर्म की उपयोगिता से चतुर्विंश मास का लक्षण, दैव-पैतृक कर्मों के लिए उपयुक्त तिथियों का निर्णय, गोत्रप्रवर-सन्तान निरूपण, बलिमण्डलपूर्वक वास्तुयाग विधियों, वास्तुदेवता पूजा, अर्घ्यदान, यज्ञ कर्म में कुशकण्डिका और स्थालीपाक विधान, अग्निजिह्वा ध्यान, यज्ञ-कर्मों के अनुसार ब्राह्मणों को भोजन, गृह-निर्माण के समय देवताओं की पूजा के प्रकार तथा उनकी प्रतिष्ठा-विधियों का अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से उल्लेख किया है। इसी के साथ इस खण्ड के समाप्ति की घोषणा की गयी है।

हम सभी को ज्ञात है कि कण-कणे में ईश्वर-जीव का अधिवास होता है। सम्पूर्ण चराचर जगत् ईश्वर को इच्छा से उत्पन्न होता है और अन्ततः प्रलय काल में उसी में विलीन हो जाता है। यह सब जानते हुए भी मनुष्य की उत्तम कार्यों में प्रवृत्ति नहीं हो पाती तथा वह बार-बार

जन्म-मृत्यु के पाश में बँधकर तड़फ़ड़ाता रहता है और चाहकर भी मुक्ति को नहीं प्राप्त कर पाता है। मुक्ति के जिन साधनों की चर्चा शास्त्रों में निर्दिष्ट है, उनमें पूर्त कर्त् भी अपनी प्रधानता रखते हैं। मनुष्य कूप, वृक्ष, तालाब का निर्माण कराकर तथा अनेक प्रकार के उपकारी कार्यों को करके जीवन से मुक्ति पाने हेतु लालायित रहता है। इस दृष्टिकोण के प्रतिपादन में यह खण्ड-श्लाघनीय है। पूर्त कर्म पद्धति का जितना सुन्दर विवेचन इस खण्ड में है, उतना अन्यत्र देखने को भी नहीं मिलता। पुराणकार ने दृक्षारोपण—जैसे पुनीत कार्यों को अत्यन्त गम्भीरता से लेते हुए इस खण्ड को मनोहर बनाने का प्रयत्न किया है। इस खण्ड में क्रमशः वृक्षारणण, गोचर भूमि की प्रतिष्ठा-विधि, सरोवर का निर्माण, पुष्करिणी-निर्माण तथा वापी-निर्माण से मिलनेवाले फलों पर विस्तार से विचार किया गया है। पुनः अश्वत्थ, आम्र, वट, पूग और तुलसी इत्यादि वृक्षों को लगाने से होनेवाले फलों पर अनेक अध्याय लिख डाले गये हैं। इन वृक्षों के रख-रखाव तथा संवर्धन में कोई बाधा न पड़े, इसके लिए महापुराणकार ने शान्ति का विधान निरूपित किया है।

पुराणों में कुछ-न-कुछ ऐतिहासिक सामग्री तो सर्वत्र ही मिलती है, किंतु भविष्यमहापुराण में जिस प्रकार की और जिन ऐतिहासिक सामग्रियों का संचयन हुआ है, वैसी अन्य पुराणों में नहीं मिलती। वैसे तो इस महापुराण का हिन्दी-अनुवाद बहुत पहले हो जाना चाहिए था, किंतु ऐसा लगता है कि इस महान् कार्य का गौरव 'सम्मेलन' को ही मिलना था, इसीलिए किसी ने इधर ध्यान नहीं दिया। इस पुराण में 'प्रतिसर्गपर्व' के जुड़ जाने के कारण कतिपय पुराण मर्ज़ों ने इसकी प्रामाणिकता पर अपनी आंशका-जातायी है, किंतु निःसन्देह इस पर्व को छोड़कर शेष पर्व अति प्राचीन हैं तथा उनमें अवश्यमेव भविष्यत्कालीन घटनाओं का संग्रह है। इसके 'भविष्यपुराण' नाम से ही दोतित होता है कि इस पुराण के निर्माता ने भविष्यत्कालीन घटनाओं का भूतकाल में निरूपित करने का सफल प्रयत्न किया। वर्तमान में जो घटनाएँ घट रही हैं, उनको पुराणकार ने पहले ही कह दिया है। दृढ़-निश्चयपूर्वक चिन्तन किया जाय, तो इसका यही भाव निकलेगा कि उस समय की जिन घटनाओं का वर्णन इस पुराण में किया गया है, किसी भी अंश में आज दृष्टिगोचर हो रही हैं।

यदि इस प्रकार कहा जाय कि भविष्यमहापुराण का प्रतिसर्गपर्व मध्यकालीन इतिहास का कोश स्रोत है, तो अधिक उचित होगा। इस पर्व को चार खण्डों में विभाजित किया गया है। अब आगे प्रतिसर्गपर्व के पृथक्-पृथक् खण्डों में वर्णित विषयों पर प्रकाश डालना समीचीन है।

इसके प्रथम खण्ड में वैवस्तव मनु से आरम्भ कर अनेक भूपतियों के राज्य-काल का अत्यन्त विस्तृत वर्णन है। सात अध्यायों में इस खण्ड की विषय-सामग्री प्रतिपादित है। म्लेच्छ यज विवेचन करते हुए पुराणकार ने विभिन्न म्लेच्छ राजाओं (आदम, श्वेत, न्यूह,) के वृत्तान्त, म्लेच्छ भाषा का विधान, आर्यवर्त में म्लेच्छों के आने के कारण-प्रसंग में काश्यप ब्राह्मण वृत्तान्तवर्णन, बौद्ध धर्म संस्कार वर्णन, चार प्रकार के क्षत्रियों की उत्पत्ति का वर्णन तथा दिक्कमादित्यावतार सहित वेताल-विक्रम संद्वाद का सविस्तार विवेचन किया गया है।

द्वितीय खण्ड में पदमावती, मधुमती, वीरवर, चन्द्रवती, हरिदास, कानांगी, दिलोकसुन्दरी, कुसुमदा, कामालसा, सुखभाविनी, जीमूतवाहन, मोहिनी इत्यादि कन्याओं का वर्णन करते हुए पुराणकार ने सत्यनारायण वतकथा विस्तृत रूप से निरूपित किया है : इसका पाणिनि, बोपदेव तथा महाभाष्यकार पतञ्जलि का व्याख्यान भी कम आकर्षक नहीं है ।

इसके तृतीय खण्ड में ऐतिहासिक वृत्तान्त वर्णन-प्रसंग में महाभारत युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुए कौरवों, यादवों, पाण्डवों तथा श्रीकृष्ण इत्यादि के पुनः अवतार का निवेदन है । भरतखण्ड के १८ राज्यों, शालिवाहन, शक, कलिदास, भोजराज, मुहम्मद साहब, ईसामसीह, भोजराज के वंश में उत्पन्न अनेक राजाओं जयचन्द्र, पृथ्वीराज, श्रीभराज, परिमलराज, लक्ष्मणराज, जम्बूकराज, देशराज, वत्सराज, चण्डिकादेवी, इन्दुल, पद्मिनी, चित्रलेखा के वर्णन के साथ पुराणकार ने इस खण्ड को ऐतिहासिक साभिग्रहों के कोश के रूप में सजाने का भरपूर प्रयत्न किया है, जो सहज ही इतिहासकारों का मन भोह लेता है ।

इसके चतुर्थ खण्ड का वर्णन न केवल इतिहासकारों, बल्कि सामान्य लोगों की उपयोगिता को दृष्टि में रखकर निर्मित किया गया है । इस खण्ड में अग्निवशीय राजाओं के चरित्र का वर्णन करते हुए पुराणकार का स्पष्ट अभिमत है कि भावी पीढ़ी तभी आगे बढ़ सकती है, जब उसको अपने पूर्वजों के किये हुए कार्यों का सम्मक्ष ज्ञान हो । इसी को आश्रित कर उन्होंने विक्रमवंशीय भूपाल, अजमेरपुर, द्वारकाराज्य, सिन्धुदेश, कच्छभुज, उदयपुर, कान्यकुत्त, देहली में स्थित म्लेच्छराजाओं का वृत्तान्त, सूर्यमाहात्म्य, मध्वाचार्य, धन्वन्तरि, कृष्ण चैतन्य, सुश्रुत, शंकराचार्य, गोरक्षनाथ, दुष्पिंडिराज, रामानुज, बामदेव, कबीर, नरश्री, पीपा, नानक, नित्यानन्द इत्यादि की उत्पत्ति को वर्णित किया है । इसी क्रम में कण्ठ ब्राह्मण की पत्नी आर्यावती से उपाध्याय, दीक्षित, पाठक, शुक्ल, मिश्र, अग्निहोत्री, द्विवेदी, त्रिवेदी, पाण्डे तथा चतुर्वेदी—इन दश पुत्रों के उत्पत्ति की कथा मिलती है । इसके आगे पुराणकार ने अकबर, शिवाजी, मोगल, कलकत्तानगरी, गुर्जरदेश, विश्वकर्मा इत्यादि का वर्णन करते हुए प्रतिसर्गपर्व का उपसंहार किया है ।

प्रतिसर्गपर्व के इन चार खण्डों की विषय-सामग्री आइने अकबरी, तारीख फिरोजशाही, तबकित अकबरी इत्यादि अनेक उद्द ग्रन्थों में तो प्रकाशित है ही, पार्जीटर, स्मिथ तथा पं० भगवद्दत्त ने भी इतिहास का प्रमुख श्रोत भविष्यमहापुराण को मानते हुए अपने-अपने ग्रन्थों की रचना की है । इन विद्वानों के ग्रन्थों के आधार पर भी स्वतंत्र रूप से अनेक ग्रन्थ लिख डाले गये हैं ।

वस्तुतः ! भविष्योत्तरपर्व नामार्थतः भविष्यपुराण से उत्तरकालीन जान पड़ता है । वेङ्कटेश्वर प्रेस, निर्णयतागर तथा काशी के कई प्रेसों से आदित्य-स्तोत्र भविष्योत्तरपुराण के नाम से प्रकाशित हो चुका है । गम्भीर विचार करने पर यहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि यदि भविष्यपुराण इतना प्राचीन है और जिसका उल्लेख आपस्तम्बधर्मसूत्र में आदर के साथ किया गया है, तो अन्य ब्राह्म आदि पुराण और भी प्राचीन होंगे । इसलिए इनका काल ईसा की सदियों में खोजना पुराणों की आत्मा के विरुद्ध है ।

भविष्यमहापुराण का चतुर्थ उत्तरपर्व भारतीयों की आस्था के अनुरूप है, कर्मेकि धर्म के स्वरूप से लेकर उसके विभिन्न पक्षों पर इसमें गवेषणात्मक ढंग से विचार किया गया है। यह खण्ड विशेषकर सभी प्रकार के व्रतों, उत्सवों, कर्मकाण्डों एवं दानों आदि का विश्वकोश है। भारतवर्ष में इसकी इतनी अधिक प्रतिष्ठा थी कि ५ वीं शताब्दी से १७ वीं शताब्दी तक इसी के आधार पर अनेक निबन्ध ग्रन्थ लिखे गये। बंगाल के निबन्धकार रघुनन्दन भट्ट के स्मृतितत्त्व, मदनसिंह के मदनपारिजात, हेमाद्रि के चतुर्वर्गचिन्तामणि, जीमृतवाहन के कालविवेक, व्यवहारमातृका और दागभाग, बल्लालरेन के दानसागर, प्रतिष्ठासागर, अद्भुतसागर और आचारसागर, देवण्णभट्ट की स्मृतिचन्द्रिका, लक्ष्मीधर के कृत्यकल्पद्रुह के दान एवं व्रतखण्ड, माधवाचार्य के पराशरमाधव, गोविन्दानन्द की द्रष्टक्रियाकौमुदी, दानक्रियाकौमुदी, वर्षक्रियाकौमुदी, शुद्धक्रियाकौमुदी, नारायणभट्ट के प्रयोगरत्नाकर, त्रिस्थलसेतु और शुद्धिचन्द्रिका, चण्डेश्वर के स्मृतिरत्नाकर, गृहस्थरत्नाकर, राजनीतिरत्नाकर, व्यवहाररत्नाकर, रणवीरसिंह के व्रतरत्नाकर, जयसिंह के व्रतकल्पद्रुप, कमलाकरभट्ट के दानकमलाकर, व्रतकमलाकर, धर्मकमलाकर, निर्णासिन्धु तथा विजानेश्वर की मिताक्षरा, अपरार्क के अधिकांश भागों का मूल आधार यही है।

इस खण्ड में कुल २०८ अध्याय हैं। नारदपुराण में भविष्यमहापुराण की जिस सूची का उल्लेख है, उसके अनुसार यह पर्व खरा उत्तरता है तथा धर्म में आस्था रखनेवाले लोगों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यह पर्व धर्माधिकारियों के लिए चुनीतीपूर्ण है। इसका सम्पूर्ण अध्ययन करनेवाला व्यक्ति न केवल सुखमय जीवन व्यतीत करता है, बल्कि अपनी भावी पीढ़ी को भी सन्मार्ग की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करता है। इस खण्ड में द्रवत-निरूपण के प्रसंग में क्रमशः तिलक, अशोक, कोकिला, वृहत्तपा, जातिस्मर, यमद्वितीय, तृतीया, गणेशचतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सारस्वत, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, अनंगत्रयोदशी, चतुर्दशी, पाली, रम्भा, आग्नेयी, श्रवणिका, फलत्याग, पूर्णिमा, वटसावित्री, पूर्णमनोरथ, अनन्त, नक्षत्रपुरुष, सम्पूर्ण, वेद्या, शनैश्चर, आरोग्यकरसौर, भद्रा, देवपूजा, सत्येश, काञ्चनपुरी और कौमुदी इत्यादि व्रतों एवं उत्सवों का उल्लेख है।

पुष्पार्जन की दृष्टि से अनेक प्रकार के दानों का विवरण भविष्यपुराण में है। इस क्रम में पुराणकार ने क्रमशः अगस्त्यार्थ, चन्द्रार्थ, वृत्तोत्तर्ग, कलात्मक, जलधेनु, सहस्रगोदान, कपिला, महिषी, अवि, भूमि, हलपंक्ति, आपाक, गृह, अन्न, स्थाली, दासी, प्रपा, अग्निष्टिका, विद्या, तुलापुरुष, हिरण्यगर्भ, ब्रह्माण्ड, अश्व, कालपुरुष, सप्तसागर, महाभूत, शश्या, आत्मप्रतिकृति, विश्वचक्र, वराह तथा पर्वत इत्यादि अनेक दानों का उनकी विधियों के साथ निरूपण किया है।

भविष्यमहापुराण एक विशाल ग्रन्थ है और इसमें असंख्य विषयों का समावेश हुआ है। पुराण तो भारतीय ज्ञान-विज्ञान के कोश हैं। वेदों के व्याख्याभ्रत हैं और विद्या के मानो मूर्तरूप हैं। भविष्यपुराण भूत, भविष्य की ऐतिहासिक घटनाओं, भाषा, संस्कृति, कला, राजनीति, खगोल, भूगोल तथा अनन्त शास्त्रों का भ्राण्डार है।

मुझे यह जानकर अतिशय प्रसन्नता है कि 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग' इस विशाल

ग्रन्थ का हिन्दी-अनुवाद लोकहिताय प्रकाशित कर रहा है। इस पुनीत कार्य में संस्कृत एवं हिन्दी के मर्मज्ञ डॉ० प्रभात शास्त्री जी, जो सम्प्रति सम्मेलन के प्रधानमंत्री हैं, का योगदान अविस्मरणीय है। इससे सभी लोगों को दिशाएँ मिलेंगी और जो विशेषज्ञ हैं, उन्हें सन्तोष। आशा ही नहीं, अपितु विश्वास है कि सम्मेलन के इस साहस्रपूर्ण प्रयास की सराहना होगी और यह ग्रन्थ विद्वज्जनों का ध्यान आकृष्ट करेगा। अब तो इतने उच्चकोटि के ग्रन्थों का दर्शन दुलभ होता जा रहा है, इसलिए जितना कुछ भी लिखा जाय अत्य होगा।

(डॉ० नामजी तिवारी)

प्राध्यापक

संस्कृत विभाग,

गोरखपुर विश्वविद्यालय,

गोरखपुर

अनुक्रमणिका

अध्याय	विषय	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१.	ब्रह्मपर्व का वर्णन	१०५	१
२.	शृणि का वर्णन तथा ब्रह्मा के पंचम मुख से पुराणोत्पत्ति का वर्णन	१७३	१२
३.	गर्भदाता से लेकर संक्षेप में समस्त संस्कारों एवं आचमन आदि की विधियों का वर्णन	२५	२६
४.	प्रणव के अर्थ, सावित्री के माहात्म्य तथा उपायन की विधि का वर्णन	२२२	३६
५.	स्त्रियों के शुभ एवं अशुभ लक्षणों का वर्णन	१११	५७
६.	स्त्रीलक्षण एवं सद्वृत्त का वर्णन	४४	६८
७.	विवाह धर्म का वर्णन	६८	७२
८.	स्त्रियों के दुष्ट एवं अदुष्ट स्वभाव की परीक्षा के साथ समुचित व्यवहार कथन तथा मानवरचित्र का वर्णन	७२	७९
९.	स्त्रीकर्तव्य निर्देशपूर्वक आगम (शास्त्र) की प्रशस्ता	१७	८५
१०.	स्त्रियों के दुराचार का वर्णन	२२	८७
११.	स्त्रियों के गृहस्थधर्म का वर्णन	२१	९०
१२.	स्त्रीधर्म का वर्णन	५७	९२
१३.	स्त्रीधर्म का वर्णन	६६	९७
१४.	पति के परदेश में रहने पर स्त्रियों का शंगारनिषेध	३२	१०४
१५.	स्त्रीधर्म का वर्णन	३२	१०७
१६.	प्रतिपदा कल्प का वर्णन	६३	११०
१७.	प्रतिपदा कल्प के विषय में ब्रह्मा की पूजा का वर्णन	११८	११७
१८.	प्रतिपदा कल्प की समाप्ति का वर्णन	२८	१२७
१९.	शर्याति के आस्थान में पृथग्द्वितीया का वर्णन	९१	१३०
२०.	अशून्यशयना नामक द्वितीया तिथि का महत्व	३३	१४०
२१.	तृतीया तिथि व्रत का माहात्म्य	३३	१४४
२२.	चतुर्थी तिथि के व्रत का माहात्म्य	५१	१४७
२३.	विघ्नविनायक की कथा का वर्णन	३१	१५३
२४.	पुरुषलक्षण-वर्णन	४२	१५६
२५.	युवराजों के लक्षण का वर्णन	३९	१६०
२६.	पुरुषलक्षण-वर्णन	८५	१६४

अध्याय	विषय	इत्तेक संख्या	पृष्ठ संख्या
२७.	पुरुषों के लक्षण का वर्णन	२९	१७१
२८.	स्त्रियों के लक्षणों का वर्णन	४४	१७४
२९.	गणपति-कल्प का वर्णन (गणपतिस्तवन)	३४	१७८
३०.	विनायक-पूजाविधि का वर्णन	९	१८१
३१.	शिवाचतुर्थी का पूजन-वर्णन	६१	१८५
३२.	नागपञ्चमी पूजन-वर्णन	५९	१९०
३३.	साँपों के भेद का कथन	५१	१९६
३४.	क़ल के काटने का लक्षण	३०	२०१
३५.	यम दूती का लक्षण	५९	२०४
३६.	नागपञ्चमी व्रत का दर्शन	६४	२०९
३७.	शादपदिक नागपञ्चमी व्रत का वर्णन	३	२१५
३८.	पञ्चशीलकल्प समाप्ति का कथन	५	२१५
३९.	षष्ठी तिथि का माहात्म्यकथन	१३	२१६
४०.	कार्तिकेय का वर्णन	४७	२१७
४१.	ब्राह्मणविवेक का वर्णन	५७	२२३
४२.	ब्राह्मण संस्कार विवेक का वर्णन	३२	२२८
४३.	वर्णव्यवस्था का वर्णन	५२	२३१
४४.	वर्णविभाग विवेक का वर्णन	३३	२३६
४५.	कार्तिकेय का वर्णन	६	२३९
४६.	ब्रह्मपर्व का वर्णन	१२	२४०
४७.	शाकसप्तमीव्रत का वर्णन	७२	२४१
४८.	आदित्यमाहात्म्य का वर्णन	४५	२४८
४९.	सूर्यमाहात्म्य का वर्णन	३७	२५३
५०.	सप्तमीमाहात्म्य का वर्णन	४२	२५६
५१.	महासप्तमी व्रत का वर्णन	१६	२६०
५२.	सूर्यपूजा का वर्णन	६१	२६१
५३.	सूर्य का वर्णन	५१	२६६
५४.	सूर्य की महिमा का वर्णन	१६	२७१
५५.	सूर्य की रथयात्रा का वर्णन	९८	२७३
५६.	सूर्य की रथयात्रा का वर्णन	५२	२८०
५७.	रथयात्रा का वर्णन	३२	२८५
५८.	रथयात्रा का वर्णन	४८	२८७
५९.	रथसप्तमीमाहात्म्य का वर्णन	२६	२९१

अध्यात्म विजय	प्रतीक संख्या	पृष्ठ संख्या
६०. रथयात्रा का वर्णन	२२	२९४
६१. सूर्य की महिमा का वर्णन	२८	२९६
६२. सूर्य-दिण्डीसंवाद का वर्णन	३९	२९८
६३. सूर्य की महिमा का वर्णन	४२	३०२
६४. फलसप्तमी का वर्णन	६३	३०६
६५. आदित्यमाहात्म्य व्रत का वर्णन	३४	३११
६६. यज्ञवल्क्य का वर्णन	८४	३१४
६७. ब्रह्म-याज्ञवल्क्य के संवाद का वर्णन	३२	३२२
६८. सिद्धार्थसप्तमी व्रत का वर्णन	४२	३२५
६९. स्वप्नदर्शन का वर्णन	२४	३२८
७०. सर्वेषसप्तमी का वर्णन	२२	३३०
७१. ब्रह्मप्रोक्त सूर्य नामों का वर्णन (सूर्यस्तुति)	१६	३३३
७२. साम्ब के लिए दुर्दासा द्वारा शापविसर्जन का वर्णन	२०	३३४
७३. साम्ब द्वारा सूर्य की आराधना का वर्णन	५०	३३६
७४. सूर्य की द्वादश मूर्तियों का वर्णन	२९	३४१
७५. नारदोपसंगमन का वर्णन	१९	३४४
७६. नारद-साम्ब संवाद में सूर्यपरिवार का वर्णन	२०	३४६
७७. साम्बोपाख्यान में सूर्य का वर्णन	२१	३४८
७८. सूर्यमहिमा का वर्णन	८३	३५०
७९. सूर्य की महिमा का वर्णन	८२	३५७
८०. सूर्य की आराधना के फल का वर्णन	३६	३६४
८१. विजय सप्तमी का वर्णन	१८	३६८
८२. नन्द विधि का वर्णन	२४	३६९
८३. भद्र विधि का वर्णन	८	३७२
८४. सौम्य विधि का वर्णन	५	३७३
८५. कामद विधि का वर्णन	८	३७४
८६. जयवार तिथि का वर्णन	१७	३७५
८७. जयन्त विधि का वर्णन	६	३७६
८८. विजयवार विधि का वर्णन	६	३७७
८९. आदित्य विधि का वर्णन	८	३७८
९०. हृदयवार विधि का वर्णन	६	३७९
९१. रोगहरण विधि का वर्णन	६	३८०
९२. महा श्वेतवार विधि का वर्णन	१८	३८१

अध्याय विषय	इलेक संख्या	पृष्ठ संख्या
१३. भानु की महिमा का वर्णन	७६	३८२
१४. पुण्यश्रवणमाहात्म्य का वर्णन	६७	३८९
१५. आदित्यालय माहात्म्य का वर्णन	१०	३९५
१६. जया नामक सप्तमी का वर्णन	३२	३९६
१७. जयत्ती कल्प का वर्णन	२८	३९९
१८. अपराजिता माहात्म्य का वर्णन	१९	४०२
१९. महाजया कल्प का वर्णन	७	४०४
२००. नन्दासप्तमी का वर्णन	१६	४०५
२०१. दद्रा कल्प का वर्णन	२५	४०६
२०२. नक्षत्रपूजा विधि का वर्णन	७८	४०९
२०३. सूर्यपूजामहिमा का वर्णन	५४	४१६
२०४. त्रिवर्गसप्तमी का निरूपण	२४	४२१
२०५. कामदा सप्तमी व्रत का निरूपण	२०	४२३
२०६. पापनाशिनी व्रत-विधि का वर्णन	१४	४२६
२०७. भानुपादद्वय व्रत विधि का वर्णन	२५	४२८
२०८. सर्वार्थावापि शातमी विधि का वर्णन	१२	४३०
२०९. मार्तण्ड सप्तमी विधि का वर्णन	१४	४३२
२१०. अनन्तर सप्तमी व्रतविधि का वर्णन	८	४३३
२११. अम्बंग सप्तमी व्रत विधि का वर्णन	८	४३४
२१२. तृतीयपद व्रत के विधि का वर्णन	१७	४३५
२१३. आदित्यालय वन्दन-मार्जन विधि का वर्णन	३२	४३७
२१४. आदित्यस्नापनयोगविधि का वर्णन	१३	४४०
२१५. सूर्य-पूजा की विधि का वर्णन	३७	४४२
२१६. रविपूजाविधि का वर्णन	१२८	४४५
२१७. उपलेपन विधि का वर्णन	८२	४५६
२१८. आदित्यायतन दीपदान का वर्णन	५४	४६३
२१९. दीपदान विधि का वर्णन	२६	४६८
२२०. आदित्यपूजा विधि का वर्णन	६७	४७०
२२१. विश्वकर्माकृततेजः शातनविधि का वर्णन	२८	४७७
२२२. आदित्यस्तव विधि का वर्णन	९	४७९
२२३. परिलेखन का वर्णन	८३	४८१
२२४. भुवनकोश का वर्णन	४०	४८९
२२५. भुवन-वर्णन	७१	४९४
२२६. व्योममाहात्म्य का वर्णन	३८	४९९

अध्याद	विषय	इत्तोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१२७.	सूर्य प्रसाद का वर्णन	३६	५०३
१२८.	साम्बस्तुति का वर्णन	१४	५०६
१२९.	साम्बृहतआदित्यमूर्तिस्थापन का वर्णन	१८	५०८
१३०.	प्रसाद लक्षण का वर्णन	६३	५१०
१३१.	दार्शनरीक्षा का वर्णन	४३	५१६
१३२.	श्रीसूर्य प्रतिमालक्षण का वर्णन	३२	५२०
१३३.	विद्वरूप का वर्णन	२३	५२३
१३४.	मण्डल-विधि का वर्णन	२७	५२५
१३५.	प्रतिष्ठास्नानविधि का वर्णन	६७	५२८
१३६.	सूर्यप्रतिष्ठा का वर्णन	८०	५३३
१३७.	प्रतिष्ठापन विधि का वर्णन	१३	५४०
१३८.	छवजारोपण विधि का वर्णन	८४	५४२
१३९.	भोजकानयन की विधि का वर्णन	९४	५४९
१४०.	भोजकोत्पत्ति का वर्णन	५०	५५७
१४१.	भोजकज्ञान का वर्णन	१७	५६१
१४२.	व्यंगोत्पत्ति विधि का वर्णन	२९	५६३
१४३.	धूपादि विविध विधियों का वर्णन	५८	५६६
१४४.	भोजक की उत्पत्ति का वर्णन	२६	५७१
१४५.	भोजकज्ञान का वर्णन	२८	५७३
१४६.	भोजक का वर्णन	२८	५७६
१४७.	भोजक ब्राह्मण का वर्णन	३८	५७९
१४८.	कालचक्र का वर्णन	३०	५८२
१४९.	सूर्यदीक्षा का वर्णन	६१	५८५
१५०.	आदित्यपूजा विधि का वर्णन	२४	५९०
१५१.	सौर धर्म का वर्णन	३२	५९२
१५२.	सूरधर्म में प्रश्न का वर्णन	१८	५९५
१५३.	सूर्यतेज का वर्णन	११०	५९७
१५४.	ऋग्यु उपाख्यान का वर्णन	४२	६०६
१५५.	सौरधर्म निरूपण वर्णन	६८	६१०
१५६.	त्रिमुरोपाख्यान का वर्णन	३०	६१६
१५७.	सूर्यावतार कथाप्रस्ताव का वर्णन	५२	६१८
१५८.	सौर धर्मों में सूर्योत्पत्ति का वर्णन	४७	६२२
१५९.	सूर्य अवतार का वर्णन	२५	६२६
१६०.	सूर्य अवतार का वर्णन	५२	६२८

अध्याय विषय	इतोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१६१. सूर्यपूजा फल प्रश्न का वर्णन	९	६३३
१६२. सौरधर्म का वर्णन	५५	६३४
१६३. सौरधर्म में पुष्पपूजा का वर्णन	८७	६३८
१६४. सूर्यपच्छी व्रत का वर्णन	१०३	६४५
१६५. उभयसप्तस्तमी का वर्णन	४५	६५४
१६६. सौरधर्म में निष्कृत्या व्रत का वर्णन	१८	६५७
१६७. निष्कृत्या व्रत का वर्णन	१७	६५८
१६८. कामदासप्तश्ची व्रत का वर्णन	४०	६६१
१६९. सूर्यचतुर्थी का वर्णन	२०	६६४
१७०. गोदान-वर्णन	८	६६५
१७१. भोजक भोजनानुष्ठान-वर्णन	५०	६६७
१७२. सौरधर्म-वर्णन	५५	६७१
१७३. सौरधर्म-वर्णन	२४	६७५
१७४. सूर्यस्तुति का वर्णन	४०	६७८
१७५. सूर्यार्पण कर्म त्रा वर्णन	५०	६८१
१७६. सौरधर्म वर्णन	८	६८५
१७७. अग्निकार्य विधि का वर्णन	२१	६८६
१७८. सौरधर्म का वर्णन	४८	६८८
१७९. सौरधर्म का वर्णन	४४	६९३
१८०. शांति का वर्णन	६२	६९६
१८१. स्मृति भेद का वर्णन	४३	७०१
१८२. विवाह विधि का वर्णन	७८	७०५
१८३. श्राद्धविधि कथा का वर्णन	३१	७१३
१८४. ब्राह्मणधर्म का वर्णन	५९	७१६
१८५. मातृश्राद्ध विधि का वर्णन	२८	७२१
१८६. शुद्धि प्रकरण का वर्णन	५३	७२४
१८७. सौरधर्म में धेनुमाहात्म्य-वर्णन	८८	७२८
१८८. भोजकों के सत्कार का वर्णन	२४	७३६
१८९. सौरधर्म में सप्ताश्व संवाद का वर्णन	६०	७३८
१९०. सौरधर्म में सूर्यनूरसंवाद वर्णन	२१	७४३
१९१. सप्ताश्वतिलक एवं अरुण का संवाद	२९	७४५
१९२. सप्ताश्वतिलकानूरु संवाद का वर्णन	३३	७४८
१९३. दन्तकाष्ठविधि का वर्णन	२१	७५१
१९४. सूर्यहृणसंवाद का वर्णन	२०	७५३

अध्याय	विषय	इलोक संख्या	पृष्ठ संख्या
१९५.	सूर्यारणसंवाद में स्वप्न-वर्णन	२५	७५५
१९६.	नामपूजा विधि का वर्णन	५७	७५८
१९७.	वराटिका का वर्णन	२५	७६३
१९८.	व्यास-भीष्म संवाद-वर्णन	३०	७६५
१९९.	भीष्म संवाद-वर्णन	३२	७६८
२००.	सौरधर्म का वर्णन	२२	७७१
२०१.	सूर्यमाडलदेवतार्चन विधि का वर्णन	२७	७७२
२०२.	आदित्यपूजा की विधि का वर्णन	१७	७७५
२०३.	सूर्यराधन विधि का वर्णन	१८	७७७
२०४.	व्योमार्चन विधि-वर्णन	२९	७७८
२०५.	महादेव की पूजा विधि का वर्णन	२१	७८१
२०६.	सूर्यपूजा माहात्म्य-वर्णन	४७	७८३
२०७.	आदित्यपूजा की विधि का वर्णन	२६	७८६
२०८.	सप्तमी व्रत-वर्णन	३३	७८९
२०९.	सप्तमी व्रत का वर्णन	१६	७९२
२१०.	सूर्यपूजा विधि-वर्णन	८४	७९३
२११.	अर्कसम्पुटिका का वर्णन	४८	८००
२१२.	सौरार्चन विधि-वर्णन	२९	८०५
२१३.	सौरार्चन विधि-वर्णन	४	८०७
२१४.	मरिचसप्तमी व्रत विधि-वर्णन	४७	८०८
२१५.	सूर्यमंत्र के उद्घार का वर्णन	६	८१२
२१६.	पुराण के श्वरणविधान का वर्णन	१७८	८१३

॥ श्री गणेशाय नमः ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

भविष्यमहापुराणम्

ब्राह्मपर्व

अथ प्रथमोऽध्यायः

नारायणं तपस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१
 जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः । यस्यास्यकमलगलितं वाइमयसमृतं जगतिप्वर्ति ॥२
 मूकङ्करोति वाचालं घड्गुं लङ्घयते गिरिम् । यत्कृपा तम्भं बन्दे परमानन्दमाध्यम् ॥३
 पाराशःर्यवचः सरोजमलं गीतार्थगन्धोत्कटं, नानाल्यानककेसरं हरिकथासम्बोधनादोधितम् ।
 लोके सज्जनषट्पदैरहरहः पेपीयमानं मुदा, भूयाद्ग्रातपङ्कजं कलिमलप्रधर्वंसि नः श्रेयसे ॥४
 यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति, विप्राय वेदविदुषे च बहुश्रुताय ।
 पुण्यां भविष्यसुकथां शृणुयात्समग्रां, पुण्यं समं भवति तस्य च तस्य चैव ॥५

अध्याय १

ब्राह्मपर्व का वर्णन

नारायण, नरोत्तम (मनुष्यों में श्रेष्ठ) तथा वाग्देवी सरस्वती को नमस्कार करके, जय (महाभारत, पुराणादि पवित्र ग्रन्थों के) आत्मानों का उच्चारण करना चाहिए । १। सत्यवती के हृदय को हर्षित करने वाले, पराशर के पुत्र व्यासदेव की जय हो, जिनके मुखारविन्द से निकले हुए अमृत (रस) रूपी वाक्यों का समस्त संसार पान करता है । २। जिसकी कृपा (दृष्टि) मात्र से ही मूक (गूँगा) पण्डित (शास्त्र-निष्णात होकर प्रवक्ता-वाचाल) हो जाता है और पंगु (लैगड़ा-विकृताङ्ग) पर्वत को लाँघने योग्य (सामर्थ्य से युक्त) हो जाता है, उस परमानन्द स्वरूप माधव (श्रीकृष्ण) की मैं वन्दना करता हूँ । ३। इस लोक (संसार) में कलियुग के पापों को विनष्ट करने वाला वह महाभारत रूप कमल हम लोगों (वक्ता-श्रोता) का कल्पाण करे जो पराशर-नन्दन व्यास के वचनरूपी सरोवर से उत्पन्न हुआ है । यह जय काव्य अति निर्मल है : गीता के गंभीर भावों की उत्कृष्ट सुगन्धि से सुवासित और विविध प्रकार के मुन्दर आत्मान-परागों से व्याप्त, भगवान् श्रीकृष्ण की (पावन) कथाओं से विकसित है । उस पर भ्रमर बने सत्पुरुष गूँज-गूँजकर उस (काव्य-पराग) का रसास्वादन करते हैं । ४। जो व्यक्ति स्वर्ण-मण्डित सींगों से सुसज्जित सौ गौओं को (किसी कर्मकाण्डी वेदज्ञ—बहुश्रुत) ब्राह्मणों को दान करता है और जो (कोई द्वासरा व्यक्ति इस दान के स्थान पर) भविष्यमहापुराण की कथा का आद्योपान्त श्रवण करता है, उन दोनों

कृत्वा पुराणानि पराशरात्मजः सर्वाण्यनेकानि सुखावहानि ।
 तत्रात्मसौख्याय भविष्यधर्मान् कलौ युगे भादि लिलेख सर्वम् ॥६
 तत्रादि सर्वर्षिवरप्रमुखैः पराशरात्मैर्मुनिभिः प्रणीतान् ।
 स्मृत्युक्तधर्मागमसंहितार्थान् व्यासः समासादवद्भूविष्यम् ॥७
 अल्पायुषो लेकजनान्तस्मीक्ष्य विद्याविहीनान्यशुवत्सुचेष्टान् ।
 तेषां सुखार्थं प्रतिबोधनाय व्यासः पुराणं प्रथितं चकार ॥८

जयति भुवनदीपो भास्करौ लोककर्ता, जयति च शितिदेहः शार्ङ्गधन्वा मुरारिः ॥
 जयति च शशिभौली रुद्रनामाभिधेयो, जयति च स तु देवो भानुमांश्चित्रभानुः ॥१
 शियावृतं तु राजानं शतानीकं महाबलम् । अभिजग्मुर्महात्मानः सर्वे द्रष्टुं महर्षयः ॥२
 भृगुरत्रिर्वसिष्ठशब्दं पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । पराशरस्तथा व्यासः सुमन्तुर्जैमिनिस्तथा ॥३
 मुनिः पैलो याज्ञवल्क्यो गौतमस्तु महातपाः । भारद्वाजो मुनिर्धीमांस्तथा नारदपर्दतौ ॥४
 वैशम्पायनो महात्म! शौनकशब्दं महातपाः । इक्षोऽङ्गिरास्तथा गग्नो गालनशब्दं महातपाः ॥५
 तानागतानुषैर्नृष्टवृद्धशब्दं शतानीको महीपतिः । विधिवत्पूजयामास अभिगम्य महामतिः ॥६
 पुरोहितं पुरस्कृत्य अर्च गां स्वागतेन च । पूजयित्वा ततः सर्वान्प्रणम्य शिरसा भृशम् ॥७

को समान पुण्य (फल) प्राप्त होता है ।५। पराशर के पुत्र व्यास ने आनन्ददायिनी (चतुर्वर्गफलदायिनी) कथाओं से युक्त अनेक पुराणों की रचना करने के बाद, स्वातः सुखार्थ कलियुग में घटित होने वाले सभी धर्मों को (इस) भविष्य पुराण में लिखा ।६। और उन सभी ऋषियों में प्रमुख पराशर आदि के द्वारा प्रणीत स्मृतियों में कहे गये धर्म (के स्वरूप), वेद एवं संहिताओं के अर्थ (को ग्रहण करके) व्यास ने भविष्य पुराण की संक्षेप में रचना की ।७। अल्पायु, विद्याहीन, पशु के समान कर्म करने वाले (कर्म में निरत रहने वाले) सांसारिक प्राणियों को (दुःखित) देखकर व्यास जी ने उनको जागरित करने के लिए इस विस्तृत भविष्य पुराण की रचना की ।८

समस्त भुवनमण्डल को प्रकाशित करने वाले सम्पूर्ण संसार के कर्त्ता सूर्य देव जयशील हों (सूर्यदेव की जय हो) । श्यामवर्ण, मनोहर शरीरवाले, सींग का धनुष धारण करने वाले, मुरारि (मुरनामक दैत्य का नाश करने वाले भगवान् श्री विष्णु) जयशील हों (विष्णु की जय हो) । रुद्र नामवाले मस्तक पर चन्द्रमा धारण करने वाले, भगवान् शिव जयशील हों (शिव की जय हो) । और देव (अग्नि देव) कांति युक्त एवं विचित्र किरणों वाले अग्नि जयशील हों । (अग्नि की जय हो) ।१। महाबलशाली, श्रीसम्पन्न राजा शतानीक को देखने के लिए सभी महर्षिगण उनके समीप गये । उनमें भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, पराशर, व्यास, मुमन्तु, जैमिनि, पैल, मुनि याज्ञवल्क्य, महातपस्वी गौतम, परम बुद्धिमान् मुनि भारद्वाज, नारद, पर्वत, महात्मा वैशम्पायन, परम तपस्वी शौनक, दक्ष, अङ्गिरा, गर्व और महान् तपस्वी गालव थे ।२-५। अपने यहाँ आये हुए इन महर्षियों को देखकर महामति राजा शतानीक ने अगवानी करके (उन सबकी) विधिवत् पूजा की ।६। अपने पुरोहित को आगे करके अर्च और गौ से स्वागतपूर्वक पूजन करने के उपरान्त राजा ने (उन) सबको नतमस्तक होकर बार-बार प्रणाम किया ।७। जब महर्षिगण

मुखासीनांस्ततो राजा निरातङ्कान् गतकलमान् । उवाच प्रणतो भूत्वा बाहुमुदधृत्य दक्षिणम् ॥८
 इदानीं सफलं जन्म मन्येऽहं भुवि सत्तमाः । आत्मनो द्विजार्द्वला ! तथा कीर्तियशो बलम् ॥९
 धन्योऽहं पुण्यकर्मा च यतो मां दृष्टुमागताः । येषां स्मरणमात्रेण युज्माकं पूर्यते नरः ॥१०
 श्रोतुमिच्छाम्यहं किञ्चिद्दर्मशास्त्रमनुत्तमम् । आनूशंस्यं समाश्रित्य कथयथवम् महाबलाः ! ॥११
 येनाहं धर्मशास्त्रं तु श्रुत्वा गच्छे परां गतिम् । यथागतो मम पिता श्रुत्वा वै भारतं पुरा ॥१२
 तथोक्तास्तेन राजा वै ब्राह्मणास्ते रामन्ततः । समालाम्य मियस्ते तु विमृश्य च 'भृशम् तदा ॥१३
 पूजयित्वा ततो व्यासमिदं वचनमद्विवरः । व्यासं प्रसादद विष्णो ! एष ते कथयिष्यति ॥१४
 तिष्ठत्यस्मिन्महाब्राहो ! वयं तद्वत्तु न शक्नुमः । तिष्ठमाने गुरौ शिष्यः कथं वक्ति महामते ! ॥१५
 ॐ गुरुः सदास्माकं साक्षान्नारायणस्तथा । कृपालुश्च तथा चायं तथा दिव्यविधानवित् ॥१६
 द्वनुर्णमिषि वर्णनां पावनाय महात्मनाम् । धर्मशास्त्रगतेनोक्तं धर्माद्यैः सुसमन्वितम् ॥१७
 बिभेति गहनाच्छास्त्राल्लोको व्याधिरिवौषधात् । भारतस्य^१ च विस्तारो युनिनः व्याहृतः स्वयम् ॥१८
 यथा स्वादु च पृथं च दद्यात्स्वं भिषणौषधम् । तथा रस्यं च शास्त्रं च भारतं कृतवान्मुनिः ॥१९
 अस्तिक्यारोहसोपानमेतद्भारतमुच्यते । तच्छ्रुत्वा स्वर्गमरकौ लोकः साक्षादवेक्षते ॥२०

निरातंक एवं मार्ग की थकावट से निवृत्त हो, सुखपूर्वक (अपने अपने) आसनों पर बैठ गये, तब राजा शतानीक ने विनम्र भाव से अपना दाहिना हाथ उठाकर कहा—।८। सज्जनों में श्रेष्ठ, महर्षिंगण ! अब इस पृथ्वी पर मैं अपने को सफलजन्मा मानता हूँ । हे ब्राह्मणवृन्दश्रेष्ठ ! हमारे यश एवं बल दोनों सफल हो गये ।९। मैं वस्तुतः धन्य एवं पुण्यकर्मा हूँ, क्योंकि मुझे देखने के लिए आप सब का यहाँ (मेरे स्थान पर) शुभागमन हुआ है, जिन आप लोगों के स्मरण मात्र से मनुष्य पवित्र हो जाता है ।१०। महात्म पराक्रमशालियों ! मैं कुछ परमोत्तम धर्मशास्त्र की चर्चा युनना चाहता हूँ । आप कृपापूर्वक मुझसे कहें ।११। जिससे उस पवित्र धर्मशास्त्र की कथाओं को सुनकर मैं भी वैसी ही परम गति प्राप्त करूँ, जैसी पहले महाभारत की (पवित्र) कथा को सुन कर मेरे पूज्य पिता जी ने प्राप्त की ।१२। राजा शतानीक के इस प्रकार निवेदन करने पर उन ब्राह्मणों ने आपस में भलीभांति विचार कर व्यास को सम्मानपूर्वक (आगे कर) राजा से यह वचन कहा ।१३। हे सर्वशक्तिमान् ! आप इन्हीं व्यास जी को प्रसन्न करें । यही आपसे धर्मशास्त्र की कथा कहेंगे ।१४। हे महाब्रह्म ! इनके विद्यमान रहते हम लोग नहीं कह सकते । हे महामते ! भला गुरु के रहते शिष्य कैसे बोल सकता है ? ।१५। ये हम सबके सर्वदा से गुरु रहे हैं । साक्षात् नारायण स्वरूप हैं और परम कृपालु हैं तथा दिव्य विधानों का इहें अच्छी तरह ज्ञान है ।१६। परम प्रभावशाली चारों वर्णों को पवित्र बनाने के उद्देश्य से धर्मादि (ब्रत-नियमादि) से समन्वित धर्मशास्त्र की कथा इन्होंने ही कही है ।१७। कटु ओषधि की तरह लोग कठिन शास्त्रों से डरते रहते हैं, (इसीलिए) मुनिवर व्यास ने स्वयंसेव विस्तृत महाभारत की रचना की ।१८। जिस प्रकार वैद्य रोगी को लाभकारी किन्तु सुस्वादु ओषधि स्वयं देता है, उसी प्रकार मुनि ने परम रमणीय एवं शास्त्रीय विषयों से समन्वित महाभारत की रचना की ।१९। यह महाभारत आस्तिक-भावना पर आरोहण करने की सीढ़ी कही जाती

१. भृगुम् । २. स्वयंगुरुः सदाध्यक्षो यथा नारायणस्तथा । ३. भारतशास्त्रसारोऽयमतः काव्यात्मना कृत ।

देवतातीर्थतपसां भारतादेव निश्चयः । न जन्मते नास्तिकता तस्य मीमांसकैरपि ॥२१
 विष्णौ^१ देवेषु वेदेषु गुरुषु ब्राह्मणेषु च । भक्तिर्भवति कल्याणी भारतादेव धीमताम् ॥२२
 धर्मार्थकाममोक्षाणां भरतात्सिद्धिरेव^२ हि । अजिह्वो भारतः पन्था निर्वाणपदगामिनाम् ॥२३
 मोक्षधर्मार्थं कामानां प्रपञ्चो भारते कृतः । अनित्यतापसन्तप्ता भवन्ति तस्य मुनये ॥२४
 विपत्तिं भारतान्छुट्ट्वा वृथिणपाण्डवसम्पदाम् । दुःखावसानाद्रजेन्द्र ! पुण्यं च संशयेऽबुधः ॥२५
 एवंविधं^३ भारतं वै प्रोक्तं येन शहात्मना । सोऽयं नारायणः साक्षात् व्यासल्पी महामुनिः^४ ॥२६
 स तेषां वचनं श्रुत्वा प्रतीपी यो महीपतिः । प्रसादयामास मुनिं व्यासं शास्त्रविशारदम् ॥२७

शतानीक उवाच

अञ्जलिः शिरसा ब्रह्मन् ! कृतोऽयं पादयोत्स्तव । ब्रूहि मे धर्मशास्त्रं^५ तु येनां पूततां व्रजे ॥२८
 समुद्वर भवादसात्कीर्तियित्वा कथां शुभाम् । यथा सम पिता पूर्वं कीर्तयित्वा तु भारतम् ॥२९

व्यास उवाच

तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा व्यासो वचनमब्बीत् । एष शिष्यः सुमन्तुर्मे कथयिष्यति ते प्रभो ! ॥३०

है। इसका श्रवण करके लोग स्वर्ग एवं नरक का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं। २०। देवताओं, तीर्थों एवं तपों का महाभारत से ही निश्चय होता है। उसके श्रवण करने वालों के मन में मीमांसक भी नास्तिकता उत्पन्न नहीं कर सकते। २१। भगवान् विष्णु अन्यान्य देवगण, गुरुजन वेद एवं ब्राह्मणों में बुद्धिमानों की कल्याणदायिनी भक्ति इसी महाभारत के श्रवण करने से होती है। २२। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति भी महाभारत से ही होती है। निर्वाण पद को प्राप्त करने के लिए यह महाभारत ही सरल एवं सीधा उपाय है क्योंकि धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों दुर्लभ पदार्थों का विवेचन इसी महाभारत में किया गया है। अनित्य संतापों से संतप्त जनों को महाभारत से मुक्ति प्राप्त होती है। महाभारत से यदुवंशियों एवं पाण्डवों की अतुलनीय समृद्धि एवं विपत्ति का वर्णन सुनकर मनुष्य अपनी धोर विपत्तियों से छुटकारा पा जात है। अतः विद्वान् इसका पुण्य ग्रहण करें। ऐसे महाभारत को जिस महात्मा ने कहा, वह महामुनि जो नारायण स्वरूप एवं व्यास रूप हैं, यहाँ साक्षात् विराजमान हैं। २३-२६। मुनियों के वचन सुन उस प्रतापी महाराज (शतानीक) ने सर्वशास्त्रविशारद, मुनि व्यास जी को प्रसन्न किया। २७

शतानीक ने कहा—ब्रह्मन् ! मैं अपनी अञ्जलि को शिर से लगाकर आपके दोनों चरणों में लगा रहा हूँ, कृपापूर्वक मुझसे धर्मशास्त्र (की कथा) कहें, जिससे मैं पवित्र हो जाऊँ। २८। परम कल्याणमयी धार्मिक कथाओं का उपदेश कर आप मुझे भी इस सासार (सागर) से पार करें जैसे पहले महाभारत का वर्णन कर मेरे पूज्य पिता जी को तारा है। २९

व्यास जी बोले—राजा की ऐसी वाणी सुनकर व्यास ने कहा, राजन ! यह हमारे शिष्य सुमन्तु तुम्हें (उन धार्मिक कथाओं को) सुनायेगे। ३०। हे महाबाहु ! भरतवंशियों में श्रेष्ठ ! यदि तुम समस्त

यदिच्छसि महाबाहो ! प्रीतिदं चाद्भुतं शुभम् । श्रव्यं भरतशार्दूल ! सर्वपापभयापहम् ॥३१
यथा वैशम्पायनेन युरा प्रोक्तं पिदुस्तव । महाभारतव्याख्यानं ब्रह्महत्याव्यपोहनम् ॥३२
अथ तमृष्यः सर्वे राजानमिदमङ्गुडन् । साधु प्रोक्तं महाबाहो ! व्यासेनामितद्विद्विनः ॥३३
सुमन्तुं पृच्छ राजर्णे ! सर्वशास्त्रविदशारदम् । अस्माकमपि राजेन्द्र ! श्रवणे जायते मर्तिः ।
अथ व्यासे महातेजा: सुमन्तुस्त्रिष्मद्वीत् ॥३४

कथयास्त्वै कथास्तात ! या: श्रुत्वा भोदते नृपः । भारतादिकथानां तु यद्रास्त्व रमते मनः ॥३५
असाधिष्ठातेजाः श्रुत्वा भावं महामतेः । व्यासस्य द्विजशार्दूल ! ऋषीणां चापि सर्वेशः ॥३६
चकार वक्तुं स मनस्तस्मै राजे महामतिः । व्यासस्य शासनाद्वित्र ! ऋषीणां चैव सर्वेशः ॥३७
अथ राजा महातेजा आजमीढो द्विजोत्तमम् । प्रणम्य शिरसात्यर्थं प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥३८

शतानीक उवाच

तुष्याल्यानं मम ब्रह्मन् ! पावनाय प्रकीर्तय । श्रुत्वा पद्माह्यानश्रेष्ठ ! मुच्येऽहं सर्वपातकात् ॥३९
सुमन्तुरुचाच

नानःविद्यानि शास्त्राणि सन्ति पुष्यानि भारत । यानि श्रुत्वा नरो राजन् ! मुच्यते सर्वकिल्विषः ॥४०
किमिच्छति महाबाहो ! श्रोतुं यत्वां ब्रवीमि वै । भारतादिकथानां तु यासु धर्मादियः स्थिताः ॥४१

पापों एवं भय को दूर करने वाले, प्रीतिदायी, अद्भुतकल्याणप्रद, महाभारत के आल्यानों को सुनना चाहते हो तो, जिस प्रकार पहले वैशम्पायन ने ब्रह्महत्या प्रभृति पापों को दूर करने के लिए तुम्हारे पिता जी को सुनाया था, उसी प्रकार सुमन्तु तुम्हें सुनायेगे । ३१-३२। व्यास जी के इस कथन के अनन्तर अन्य समस्त ऋषियों ने भी राजा से यह कहा कि—हे महाबाहु ! परम बुद्धिमान् व्यास जी ने बहुत ठीक कहा है । हे राजर्षि ! सभी शास्त्रों में निपुण सुमन्तु जी से आप (इन आल्यानों को) पूछें । हे राजन् ! हम लोगों की भी बुद्धि उसे सुनते को हो रही है । ३३-३४। तदनन्तर महान् तेजस्वी व्यास जी ने सुमन्तु ऋषि से कहा—तात ! तुम इन्हें (राजा को) कथा सुनाओ जिन्हें सुनकर इन्हें प्रसन्नता हो और महाभारतादि कथाओं में तो इनका मन विशेष रूप से लगता है । ३५। द्विजशार्दूल ! परम तेजस्वी सुमन्तु ने परम विद्वान् व्यास जी के भावों एवं ऋषियों की इच्छा को जानकर राजा शतानीक से उन पवित्र कथाओं को कहने का विचार किया । विप्र ! क्योंकि इसके लिए व्यास जी की एवम् अनेक ऋषियों की भी आज्ञा थी । तदनन्तर अजमीढ़ के पुत्र परम तेजस्वी राजा (शतानीक) ने सर्वप्रथम द्विजवर (सुमन्तु) को विशेष रूप से सिर नवाकर कहना प्रारंभ किया । ३६-३८

शतानीक बोले—हे ब्रह्मन् ! मुझे पवित्र करने के उद्देश्य से आप पुण्य कथाएँ कहें जिनको सुनकर मैं समस्त पातकों से दूर हो जाऊँ । ३९

सुमन्तु ने कहा—भरतकुलोद्भव ! हे राजन् । वैसे तो अनेक प्रकार के पवित्र शास्त्र हैं, जिनके सुनने से मनुष्य सब पापों से छुटकारा पा जाता है । ४०। हे महाबाहु ! महाभारत आदि की कथाओं में धर्म आदि कहे गये हैं । आप उनमें से कौन-सा सुनना चाहते हैं, जिसे मैं कहूँ । ४१

शतानीक उवाच

भतानि कानि विप्रेन्द॑ ! धर्मशास्त्राणि हुवत ! । यानि श्रुत्वा नरो विप्र ! मुच्यते सर्वकिल्वैः ॥४२

सुमन्तुरुवाच

शूयन्तां धर्मशास्त्राणि मनुविष्णुर्यमोऽज्ञिरः । वसिष्ठदक्षसंवर्तशातातपद्मराशरः ॥४३

आपस्तम्बोऽथ उशना कात्यायनवृहस्पति । गौतमःशङ्कुलितिहारीतोऽत्रिवरथापि दा ॥४४

एतानि धर्मशास्त्राणि श्रुत्वा ज्ञात्वा च भारत ! । वृन्दारकपुरं गत्वा मोदते नात्र संशयः ॥४५

शतानीक उवाच

यान्येतानि त्वयोक्तानि धर्मशास्त्राणि सुवत ! । नेच्छामि श्रोतुं विप्रेन्द॑ ! श्रुतान्येतानि हि द्विज ! ॥४६

ऋणाणामपि वर्णनां प्रोक्तानामपि पञ्जितैः । श्रेयसे न तु शूद्रणां तत्र मे वचनं शृणु ॥४७

चतुर्णामिह वर्णनां श्रेयसे यानि नुवत॑ ! । भद्रन्ति द्विजशार्दूल ! श्रुतानि भुवनत्रये ॥४८

विशेषतश्चतुर्थरथ वर्णस्य द्विजसत्तम ! ॥४९

ब्राह्मणादिषु वर्णेषु त्रिषु वेदाः प्रकल्पिताः । मन्वादीनि च शास्त्राणि तथाङ्गनि समन्ततः ॥५०

शतानीक बोले—विप्रवर ! उत्तमवती ! वे धर्मशास्त्र कौन से हैं, विप्र, उन्हें सुनकर मनुष्य (अपने) समस्त पापों से छुटकारा पा जाता है ॥४२

सुमन्तु बोले—राजन् ! उन धर्मशास्त्रों को सुनिये । मनु, विष्णु, यम, अज्ञिरा, वसिष्ठ, दक्ष, संवर्त, शातातप, पराशर, आपस्तम्ब, उशना, कात्यायन, वृहस्पति, गौतम, शंखलिति, हारीत, अत्रि आदि के रचे हुए धर्मशास्त्र हैं, हे भरतवंशोद्धव ! इन सब धर्मशास्त्रों को सुनकर और जानकर मनुष्य देवताओं के लोकमें जाकर आनन्द का अनुभव करता है, इसमें सन्देह नहीं ॥४३-४५

शतानीक ने कहा—सुव्रती ! विप्रेन्द॑ ! आपने जिन धर्मशास्त्रों की नामावलि अभी कही है इन सब को तो मैं पहले ही सुन चुका हूँ, इन्हें पुनः नहीं सुनना चाहता हूँ ॥४६

पण्डितों ने इन सब को तीन ही जातियों के कल्याण के लिए कहा है, शूद्रों के कल्याण की बातें इनमें नहीं हैं, इस विषय में मेरा निवेदन सुनिये ॥४७

हे द्विजश्रेष्ठ ! सुव्रती ! त्रिभुवन में जो शास्त्र इस लोक (संसार) में चारो वर्णों के लिए कल्याणदायक कहे गये हैं, विशेषतः चौथे वर्ण (शूद्र) के लिए (मैं) उन्हें सुनना चाहता हूँ । ब्राह्मणादि त्रिवर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिए वेद, वेदाङ्ग, मनु द्वारा प्रणीत धर्मशास्त्र हैं हे द्विजवर ! शूद्र (वेदादि के अनधिकारी होने के कारण) अत्यन्त दीन प्रतीत होते हैं ॥४८-५०

१. ते विप्र । २. आपस्तम्बोशना व्यासः । ३. गुह्यानि । ४. सर्वदा ।

शूद्राश्चैव भृंतं दीनाः प्रतिभान्ति द्विजप्रभो । धर्मर्थकामसोक्षस्य शक्ताः त्युरवने कथम् ॥५१
अगमेन विहीना हि अहो कल्पं मतं मम् । कश्चैषामागमः प्रोक्तः पुरा द्विजननीविभिः ॥
त्रिवर्गप्राप्तये ब्रह्मच्छ्रेयसे च तथोभयोः ॥५२

सुमन्तुरुवाच

साप्तु भाषु भाषु भाषाहो ! शृणु मे परमं दत्तः । चतुर्णामिपि वर्णनां यानि प्रोक्तानि श्रेयसे ॥५३
धर्मशास्त्राणि॑ राजेन्द्र ! शृणु तानि नृपोत्तमः । विशेषतश्च शूद्राणां पावनानि मनीलिभिः॒ ॥५४
अष्टादशपुराणानि चरितं राघवस्य च । रामस्य कुरुशार्दूल ! धर्मकामार्थसिद्धये ॥५५
तथोक्तं भारतं वीर ! पाराशर्येण धीमता । वेदार्थसकलं दोज्यै॒ धर्मशास्त्राणि च प्रभो ! ॥५६
कृपालुना कृतं शास्त्रं चतुर्णामिह श्रेयसे । वर्णनां भवमग्नानां कृतं पोतो हनुत्तमम् ॥५७
अष्टादशपुराणानि अष्टौ व्याकरणानि च । ज्ञात्वा सत्यवतीसूदुश्चक्ते भारतसंहिताम् ॥५८
यां शुत्वा पुरुषो राजन् ! मुच्यते ब्रह्मत्यया । प्रथमं प्रोक्त्यते ज्ञात्यं द्वितीयं चैन्द्रमुच्यते ॥५९
याम्यं प्रोक्तं ततो रौद्रं वायव्यं दारुणं तथा । सावित्रं च तथा प्रोक्तमष्टमं वैष्णवं तथा ॥६०
एतानि व्याकरणानि पुराणानि निबोध मे । ज्ञाहूं पाद॒मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ॥६१
तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम् । आग्नेयमष्टमं वीर भद्रिष्यं नवमं स्मृतम् ॥६२

वे अपने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की रक्षा कैसे करेंगे वे (शूद्रादि) आगम से हीन हैं, यह मेरी समझ से कष्टदायक बात है। इन लोगों के लिए ज्ञाहाण विद्वानों ने कौन सा आगम (शास्त्र) प्राचीन काल में बनाया था? जो इनके (शूद्रों के) त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) के पाने में सहायक एवं दोनों लोगों (इहलोक—परलोक) में कल्याणकारक हो । ५१-५२

सुमन्तु बोले—हे महाबाहु ! बहुत ठीक (आपने पूछा है)। आप मेरी बातों को सुनिये जो चारों वर्णों के कल्याण के लिए कही गयी हैं । ५३। हे राजेन्द्र ! नृपोत्तम ! जो धर्मशास्त्रादि विद्वानों द्वारा (चारों वर्णों के लिए) विशेषतः शूद्रों के लिए पावन बताये गये हैं, उन्हें सुनिये । ५४। हे कुरुशेष ! अठारहों पुराणों में श्रेष्ठ, रघुकुल में उत्पन्न भगवान् श्री रामचन्द्र का चरित्र-वर्णन धर्म, अर्थ एवं काम की सिद्धि के लिए किया गया है । ५५। हे वीर ! इसी प्रकार परम बुद्धिमान् भराशर के पुत्र व्यास जी द्वारा सकल वेदार्थ एवं धर्मशास्त्र के तत्त्वभूत महाभारत की रचना की गयी है । ५६। कृपालु व्यास जी द्वारा इस लोक में चारों वर्णों के कल्याण के लिए एवं (चारों वर्णों को) संसार रूपी सागर में निमग्न होने से बचाने के लिए अत्युत्तम नौका रूप महाभारतसंहिता की अठारहों पुराणों और आठों व्याकरणों को हृदयंगम करके रचना की है । ५७-५८

हे राजन् ! जिसे मुनकर मनुष्य ब्रह्मत्या जैसे गम्भीर पाप से छुटकारा पा जाता है । पहला ब्रह्मपुराण एवं द्वासरा ऐन्द्र कहा जाता है । ५९। तत्पश्चात् याम्य, रौद्र, वायव्य, वारुण, सावित्र एवं आठवाँ वैष्णव पुराण है । ६०। ये ही आठ व्याकरण कहे गये हैं । (पुराणों) का भी विवरण बतला रहा हूँ, सुनिये । ज्ञाहूं, पाद॒म, वैष्णव, शैव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, भविष्य, ब्रह्मवैर्त, लैङ्ग,

दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् । वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दं चैव अदेवशम् ॥६३
चतुर्दशं वामनं च कौर्मं पञ्चदशं स्मृतम् । मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः^१ परम् ॥६४
एतानि कुरुशार्दूलं धर्मशास्त्राणि पण्डितैः । साधारणानि प्रोक्तानि वर्णनां श्रेयसे सदा^२ ॥६५
चतुर्णामिह राजेन्द्रं श्रोतुमर्हणि सुव्रत । लिमिछसि महाबाहो श्रोतुमेचां नृपोत्तम ॥६६

शतानीक उवाच

भारतं तु श्रुतं विष्णु तात्स्याङ्गतेन^३ तु । रामस्य चरितं चाणे श्रुतं ब्रह्मन्समन्ततः ॥६७
पुराणानि च विप्रेन्द्रं भविष्यं न तु सुव्रत । पुराणं वद विप्रेन्द्र ! भविष्यं कौतुकं हि से ॥६८

सुमन्तुरुवाच

साधु साधु महाबाहो साधु पृष्ठोऽस्मि^४ मानद । शृणु मे वदतो राजन् पुराणं नवमं महत् ॥६९
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुव्यते मानवो नृप ! अश्वमेधफलं प्राप्य इच्छेदभान्तौ न संशयः ॥७०
इदं तु ब्रह्माणा प्रोक्तं धर्मशास्त्रमनुत्तमम् । विदुषा ज्ञाहृणेनेदमःयेतव्यं प्रयत्नतः^५ ॥७१
शिष्येभ्यश्चैव वक्तव्यं चातुर्वर्णेभ्य एव हि । अध्येतव्यं न ज्ञान्येन ज्ञाहृणं क्षत्रियं दिना ॥
श्रोतव्यमेव शूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन^६ ॥७२

वाराह, स्कान्द, कौर्म, मात्स्य, गारुड और ब्रह्माण्ड हैं । हे कुरुशार्दूल ! पण्डितों ने सभी वर्ण वालों के शाश्वत कल्याण के लिए साधारणतया ये विविध धर्मशास्त्र कहे हैं । हे राजेन्द्र ! ये सभी चारों (वर्णों) के सुनने योग्य हैं । नृपोत्तम ! महाबाहु ! आप इनमें से कौन-सा सुनना चाहते हैं ? । ६१-६६

शतानीक ने कहा—विष्र ! पिता जी की गोद में दैठकर मैं महाभारत की पवित्र कथा का श्रवण कर चुका हूँ, तथा रामचन्द जी के चरित को भी आदोपान्त सुन चुका हूँ । ६७ हे विप्रेन्द्र ! सुव्रत ! (इसी प्रकार) अन्यान्य पुराणों का भी (श्रवण कर चुका हूँ) किन्तु (अभी तक) भविष्य पुराण का श्रवण नहीं कर सका हूँ । हे विप्रेन्द्र ! (इसलिए) आप भविष्यपुराण की कथा कहें, उसके विषय में मुझे बड़ा कौतुकहूँ है । ६८

सुमन्तु बोले—हे मानव ! हे महाबाहु ! आप ने बहुत ही सुन्दर पूछा । हे राजन् । उस महान् भविष्य पुराण को, जो क्रम से नवम संख्या में है, मैं कह रहा हूँ, सुनिये । ६९ हे राजन् । जिसको सुनकर मनुष्य समस्त पापकर्मों से मुक्ति पा जाता है । इस भविष्य पुराण का श्रवण करने वाला अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त कर सूर्यलोक में चला जाता है, इसमें सन्देह नहीं । ७० इस परम श्रेष्ठ धर्मशास्त्र को स्वयं ब्रह्मा ने कहा था, विद्वान् ब्राह्मण को इसका प्रयत्नपूर्वक अध्ययन करना चाहिये । ७१ और उसे इसका अपने चारों वर्णों के शिष्यों को उपदेश करना चाहिये । किन्तु ब्राह्मण और क्षत्रिय को छोड़कर इसका अध्ययन अन्य वर्ण वालों को नहीं करना चाहिये । शूद्रों को केवल इसका श्रवण करना चाहिये, अध्ययन तो कभी

१. वायुरैव च । २. तदा । ३. आजागतेन मे । ४. पृज्योऽसि सुव्रत । ५. विशेषतः । ६. कथंचन ।

देवत्तर्ची युरतःः कृत्या ब्राह्मणैश्च नृपोत्तमः । श्रोतव्यमेव शूद्रैश्च तथान्तैश्च द्विजातिभिः ॥७३
 श्रौतं स्मार्तं हि दै धर्मं प्रोक्तमहिमन्लृपोत्तमः । तस्माच्छूद्रैर्विना विप्रान्न श्रोतव्यं कथञ्चन ॥७४
 इदं शास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः संशितव्रतः । मनोवाग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिम्पते ॥७५
 शृण्वन्ति चापि ये राजन् भक्त्या वै ब्राह्मणादयः । मुच्यन्ते पातके: सर्वैर्गच्छन्ति च दिवं प्रभो ॥७६
 श्रावयेच्चापि यो विषः सर्वान्विणान्लृपोत्तमः । स गुरुः प्रोच्यते तात वर्णनामिह सर्वशः ॥७७
 त पूज्यः सर्वकालेषु सर्वैर्वर्णनराधिप । पृथिवीं च तथैवेमां कृत्वा मेकोऽपि सोऽर्हति ॥७८
 इदं स्वस्त्रयनं श्रेष्ठमिदं बुद्धिदिवर्धनम् । इदं यशस्यं सततमिदं निःश्रेयसं परम् ॥७९
 अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम् । चतुर्णामिषि वर्णनामाचारस्त्रापि शाश्वतः ॥८०
 आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तश्च नरोत्तमः । तस्मादस्मिन्स्तमायुक्तो नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः ॥८१
 आचाराद्विज्युतो विष्रो न वैफलमश्नुते । आचारेण च संयुक्तः सम्पूर्णफलभास्मृतः ॥८२
 एवमाचारस्तो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनियो गतिम् । सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृहुः परम् ॥८३
 अन्ये च ज्ञानवा राजन्नाचारं संश्रिताः सदा । एवमस्मिन्मुराणे तु आचारस्य तु कीर्तनम् ॥८४

नहीं करना चाहिये ॥७२। नृपोत्तम ! सर्वप्रथम देवता की पूजा कर ब्राह्मणों से उसका श्रवण करना चाहिये । इसी प्रकार अन्य द्विजातियों से भी शूद्र इसका श्रवण ही कर सकता है ॥७३। हे नृपोत्तम ! इस भविष्य पुराण में समस्त श्रौत-स्मार्त धर्मों का उपदेश किया गया है । इसलिए शूद्रों को विप्रों के बिना अन्य किसी प्रकार इसका श्रवण नहीं करना चाहिये ॥७४। नियम-न्रत-परायण ब्राह्मण इस शास्त्र (भविष्य पुराण) का अध्ययन कर मानसिक, वाचिक एवं शारीरिक—इन तीनों पाप-कर्मों से उत्पन्न होने वाले दोषों से सर्वदा मुक्ति प्राप्त करता है ॥७५। हे राजन् ! जो ब्राह्मणादि योतियों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करते हैं, प्रभो ! वे भी अपने समस्त पापों से छूटकर स्वर्गलोक को जाते हैं ॥७६। नृपोत्तम ! जो ब्राह्मण समस्त वर्णों को इसका श्रवण करता है, हे तात ! वह सभी वर्णों का गुह कहा जाता है ॥७७। नराधिप ! वह ब्राह्मण सर्वदा सभी वर्णों का पूज्य माना जाता है । इस परम विस्तृत समस्त पृथ्वी के लिए वह अकेला ही योग्य अधिकारी है ॥७८। यह परम कल्याणप्रद, श्रेष्ठ तथा बुद्धि को बढ़ाने वाला है । यह परम यशोदायी एवं शाश्वतिक निःश्रेयस का प्रदाता है ॥७९। इसमें सभी धर्मों का उपदेश किया गया है, कर्मों के गुणों एवं दोषों को कहा गया है । चारों वर्णों के सदा से चले आने वाले आचारों का भी विवेचन किया गया है ॥८०। हे नरोत्तम ! आचार सभी धर्मों में प्रथम माना जाता है, श्रुतियों में इसका उपदेश किया गया है, यही कारण है कि इसमें सर्वदा निष्ठा रखने वाला ब्राह्मण आत्मवान् (मन को वश में करने वाला) होता है ॥८१। आचारों से गिरा हुआ विष वेदोक्त फलों का उपभोग नहीं करता और आचार से संयुक्त रहने वाला सम्पूर्ण फलों का अधिकारी कहा जाता है ॥८२। मुनियों ने आचार द्वारा धर्म की गति को देखकर सभी तपस्याओं का परम मूल आचार ही को ठहराया ॥८३। हे राजन् ! इसी कारण से अन्यान्य मानवगण भी सर्वदा आचार का ही अवलम्ब लेते हैं । इस

१. अग्रतः । २. आचारं फलमाश्रिताः ।

वृत्तान्तानि च राजेन्द्र तथा चोक्तानि पण्डितैः । त्रिलोक्यास्तु समुत्पत्तिः संस्कारविधिरुत्तमः ॥
 श्रवणं त्रेतिहासस्य विधानं कथ्यते नृप ॥८५
 तथास्मिन्कथ्यते राजन्माहात्म्यं वाचकस्य तु । ब्रतचर्याश्रमाचाराः स्नातकस्य परो विधिः ॥८६
 दारादिगमनं चैव विवाहानां च लक्षणम् । धुंसां च लक्षणं राजन्योषितां चावृ कथ्यते ॥८७
 महायज्ञविधानं च शास्त्रकल्पं च शश्वतम् । पृथिव्या लक्षणं तात देवाचार्याः सुलक्षणम् ॥८८
 वृत्तीनां लक्षणं चैव स्नातकस्य व्रतानि च । भक्ष्याभक्ष्यं च शौचं च द्रव्याणां शुद्धिरेव च ॥८९
 स्त्रीधर्मयोगस्तापस्य मोक्षः सन्यास एद च । राजस्त्वं धर्मैः हृषिकेः कार्याणां च विनिर्णयः ॥९०
 माहात्म्यं सवितुश्चात्र तीर्थानां च विशास्पते । नारायणस्य माहात्म्यं तथा रुद्रस्य कथ्यते ॥९१
 महाभाग्यं च विप्राणां माहात्म्यं पुस्तकस्य च ; दुग्धिव्यासस्तथा चोक्तं सत्यस्य च महामते ॥९२
 संक्षिप्तं 'संविधानं च धर्मं स्त्रीपुंसयोरेति । विभागं धर्मद्यूतं च कथकानां च शोधनम् ॥९३
 वैश्वशूद्रोपचारं च संकीर्णानां च संभवम् । आपद्मैः च वर्णानां प्रायशिच्चत्विधिं तथा ॥९४
 संधार्यविधिं प्रेतशुद्धिं स्नानतर्पणयोर्दिधिम् । वैश्वदेवविधिं चापि तथा भोज्यविधिं नृप ॥९५
 लक्षणं दन्तकाष्ठस्य चरणव्यूहमुत्तमम् । संसारगमनं चैव त्रिविधं कर्मसम्भवम् ॥९६
 नैःश्रेयसं कर्मणां च गुणदोषपरीक्षणम् । दाराणां लक्षणं प्रोक्तं तथा पात्रपरीक्षणम् ॥९७

पुराण में उसी आचार का कीर्तन किया गया है । ८४। हे राजेन्द्र ! इसके अतिरिक्त पण्डितों ने उसमें अनेक वृत्तान्तों का वर्णन किया है । तीनों लोकों की उत्पत्ति का वर्णन है, उत्तम संस्कार विधिविस्तार पूर्वक कही गई है । इतिहास के श्रवण का विधान कहा गया है । ८५। हे राजन् ! इसके अतिरिक्त वाचकों का माहात्म्य बतलाया गया है, विविध प्रकार से ब्रतों की विधि, आश्रमों के आचार, स्नातक की क्रियाएँ, स्त्रीगमन, विवाह के लक्षण, पुरुषों के लक्षण तथा स्त्रियों के लक्षण कहे गये हैं । ८६-८७। हे तात ! महान् यज्ञों का विधान, शाश्वतिक शास्त्र-कल्प, पृथ्वी के लक्षण, देवपूजा के लक्षण, जीविकाओं के लक्षण, स्नातकों के नियमादि, भक्ष्य, अभक्ष्य, शौचाचार, द्रव्यों की शुद्धि, स्त्री-धर्म, योग तपस्या, मोक्ष व संन्यास, राजाओं के समस्त धर्म तथा उनके कार्यों के निर्णय इसमें वर्णित हैं । ८८-९०। विशास्पते ! (हे राजन् ! इसके अतिरिक्त) सविता का माहात्म्य, तीर्थों का माहात्म्य, नारायण का माहात्म्य, विप्रों का महाभाग्य, पुस्तक का माहात्म्य तथा हे महामते ! दुर्गा देवी का माहात्म्य और सत्य का माहात्म्य बतलाया गया है । ९१-९२

स्त्री पुरुषों के धर्म, संक्षिप्त उपाय, धर्मद्यूत, उसका विभाग, कथकों का शोधन, वैश्य और शूद्र वर्णों के उपचार, संकीर्ण (संकर) वर्णों की उत्पत्ति, सभी वर्णों के आपत्तिकालिक धर्म, पाप-कर्मों के प्रायशिच्चत्तों की विधि, सन्ध्या-विधि, प्रेत-शुद्धि, स्नान और तर्पण की विधि, वैश्वदेव की विधि, भोज्य-विधि, दन्तकाष्ठ का लक्षण, उत्तम चरणव्यूह (व्यास का बनाया हुआ एक विशेष ग्रन्थ जिसमें वैदिक शास्त्राओं का विशेष रूप से वर्णन किया गया है) विविध कर्मों के कारण संसार में जन्म लेने के वृत्तान्त, कर्मों के अनुसार निःश्रेयस् की प्राप्ति, कर्मों के गुणों और लोकों की परीक्षा, स्त्रियों के लक्षण, पात्रों की परीक्षा गर्भ एवं प्रसूतिका के विषय

१. इत आरम्भ यानि कर्माण्युक्तानि तानि 'तथासौ प्रोक्तवान्विभुः' इत्तरेणानुयन्ति ।

प्रसूतिं चापि गर्भस्य तथा कर्मफलं नृप । जातिधर्मान्कुलधर्मान्वेदधर्माश्च^१ पार्थिव ॥१८
 वैतानव्रतिकानां च तथातीं प्रोक्तवान्विभुः । ब्रह्मा कुरुकुलश्रेष्ठ शंकराय महात्मने ॥१९
 शंकरेण तथा विष्णोः कथितं कुरुनन्दन । विष्णुनापि पुनः प्रोक्तं नारदाय महीपते ॥२००
 नारदात्प्राप्तवाञ्छङ्कः शकादपि दराशरः । पराशरात्तो व्यासो व्यातादपि श्या विभो ॥२०१
 एवं परम्पराप्राप्तं पुराणमिदप्रस्तुतम् । शृणु त्वमपि राजेन्द्र भत्सकाशात्परं हितम् ॥२०२
 सर्वाण्येव पुराणानि सज्जेयानि नरर्थभ । द्वादशैव सहन्वाणि प्रोक्तानीह मनीविभिः ॥२०३
 पुनर्वृद्धिं गतानीह आयानैर्विविधैर्नृप । यथा स्कार्दं तथा चेदं भविष्यं कुरुनन्दन ॥२०४
 स्कार्दं रातसहस्रं तु लोकानां ज्ञातमेव हि । भविष्यमेतदृष्टिणा लक्षाद्वं संख्या कृतम्^२ ॥२०५
 तच्छुच्चा पुरुषो भक्त्या इदं फलमदानुयात । क्रद्विद्विद्विस्तथा श्रीश्च भवन्ति^३ तस्य निश्चितम् ॥२०६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां^४ संहितायां ब्राह्मे पर्वणि

कथाप्रस्तावने प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

एवं कर्मफल का वर्णन किया गया है तथा जाति-धर्म, कुल-धर्म एवं वैदिक धर्मों की चर्चा की गई है । १३-१८

हे कुरुकुलश्रेष्ठ ! तथा वैतानिकों के बतों को भगवान् ब्रह्मा ने महात्मा शंकर को बताया था । १९।
 कुरुनन्दन ! इसके अनन्तर शंकर ने भगवान् विष्णु को इसका उपदेश किया । महीपते ! पुनः भगवान् विष्णु
 ने नारद के लिए इसका उपदेश किया । नारद से इन्द्र ने प्राप्त किया, इन्द्र से पराशर ने प्राप्त किया ।
 पराशर से व्यास ने और व्यास से मैने प्राप्त किया । इस परम्परा से मुझे इस उत्तम पुराण की प्राप्ति हुई है ।
 हे राजेन्द्र ! तुम भी मुझसे इस हितकारक उत्तम पुराण को सुनो । १००-१०२

हे नरश्रेष्ठ ! समस्त पुराण को पण्डित लोग बारह सहस्र ही बतलाते हैं, किन्तु पीछे के विविध
 आख्यानों के मिल जाने से उक्त संख्या में बहुत वृद्धि हो गई है । कुरुनन्दन ! स्कन्दपुराण में जिस प्रकार वृद्धि
 हुई है उसी प्रकार इस भविष्य (पुराण) में भी वृद्धि हुई है । १०३-१०४

स्कन्दपुराण की श्लोक संख्या एक लाख है । यह बात तो सबको ज्ञात ही है । इस भविष्य पुराण की
 संख्या क्रृषि ने पचास सहस्र निश्चित किया है । १०५

इस भविष्य पुराण को भक्तिपूर्वक सुनकर मनुष्य सब प्रकार की क्रद्वि, वृद्धि एवं लक्ष्मी को निश्चित
 रूप से प्राप्त करता है । १०६

श्री भविष्यमहापुराण के ब्राह्म-पर्व में कथा की
 प्रस्तावना में प्रथम अध्याय समाप्त । १।

१. देशधर्मान्कुलधर्माश्च वै नृप । २. गतम् । ३. तस्य देहं स्तुवन्ति वै । ४. शतसाहस्रार्थ-
 संहितायाम् ।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

**सृष्टिवर्णनं पुराणानां ब्रह्मपञ्चमास्यादुत्पत्तिवर्णनञ्च
सुमन्तुरुवाच**

भृणुर्वेदं महाबाहो पुराणं पञ्चलक्षणम् । यच्छ्रुत्वा सुच्यते राजन्पुरुषो ब्रह्महत्यया ॥१॥
पर्वाणि चात्र वै पञ्च जीर्तितानि स्वयम्भूवा । प्रथमं कथ्यते ब्राह्मं द्वितीयं वैष्णवं स्मृतम् ॥२॥
तृतीयं शैवमास्यातं चतुर्थं त्वाष्ट्रभूच्यते । पञ्चमं प्रतिसर्गात्यं सर्वज्ञोऽकैः सुपूजितम् ॥३॥
एतानि तात पर्वाणि लक्षणानि निबोध मे । सर्गञ्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ॥४॥
दंशादुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् । चतुर्दशभिर्विद्याभिर्भूषितं कुरुनन्दन ॥५॥
अङ्गानि चतुरो वेदा मीमांसा न्यायविस्तरः । पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥६॥
आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः । अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या द्वृष्टादशैव ताः ॥७॥
प्रथमं कथ्यते सर्गो भूतानामिह सर्वशः । द्वच्छ्रुत्वा पापनिर्मुक्तो याति शान्तिमनुजमाद् ॥८॥
जगदासीत्पुरा तात तमोभूतमलक्षणम् । अविज्ञेयमतंक्यं च प्रसुप्तमिव सर्वशः ॥९॥

अध्याय २

सृष्टि का वर्णन तथा ब्रह्मा के पञ्चम सुख से पुराणों की उत्पत्ति का वर्णन

सुमन्त बोले—राजन् ! महाबाहु ! पाँचों लक्षणों से समन्वित इस (भविष्य) पुराण को सुनिये, जिसे
सुनकर मनुष्य ब्रह्महत्या से छूट जाता है । १। स्वयम्भू ने इसमें पाँच पर्वों की चर्चा की है । इसका पहला पर्व
ब्राह्म है, द्वासरा वैष्णव है । २। तीसरा शैव है, चौथा त्वाष्ट्र कहा जाता है, पाँचवाँ सभी लोगों द्वारा सुपूजित
प्रतिसर्ग नामक पर्व है । ३। हे तात (भविष्य महापुराण के) ये पाँच पर्व हैं । उनके लक्षणों को सुनिये । सर्ग
(सृष्टिप्रक्रिया) प्रतिसर्ग, (स्वयम्भू की सृष्टि के अनन्तर दक्ष आदि प्रजापतियों द्वारा की गई सृष्टि) वंश,
मन्वन्तर एकहत्तर दिव्य धुगों का एक मन्वन्तर होता है एवं वंशों में उत्पन्न होने वाले राजाओं आदि के
चरित—ये पाँच पुराणों के लक्षण कहे गये हैं । हे कुरुनन्दन ! यह पुराण चौदहों विद्याओं से विभूषित
है । ४-५। चारों वेद, वेदों के छहों अंग, मीमांसा, विस्तृत न्याय शास्त्र, पुराण और धर्मशास्त्र—ये चौदह
विद्याएँ हैं । ६। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र—इन चारों को मिलाकर दे विद्याएँ कुल
अठारह होती हैं । ७। इस भविष्यपुराण में सर्वप्रथम समस्त जीवों की सृष्टि का वर्णन किया गया है, जिसे
सुनकर मनुष्य पापरहित होकर परम शान्ति प्राप्त करता है । ८। हे तात ! यह जगत् पहले अन्धकाराच्छन्न
था, इसका कोई लक्षण नहीं था, किसी प्रकार भी इसका ज्ञान नहीं हो सकता था, अतर्क्य एवं चारों ओर से

१. चतुरनडुहोः इत्यम्भाव आर्पः । २. सर्वतः ।

ततः स भगवान्नीशो ह्रव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् । महाभूतानि वृत्तौजाः प्रोत्थितस्तमनाशनः^१ ॥१०
 योऽसावतीन्द्रियोऽग्रहाः भूक्षमोऽव्यक्तः सनातनः । सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुत्थितः ॥११
 योऽसौ षड्दिंशबो लोके तथा यः पुरुषोत्तमः । भास्करश्च महाबाहो परं ब्रह्म च कथ्यते ॥१२
 सोऽभिध्याय शरीरात्स्वतिसुकुर्विधिः प्रजाः । अत एव ससर्जादै तासु वीर्यमवासृजत् ॥१३
 यस्मादुत्प्यद्यते सर्वं सदेवपुरमानुषम् । बीजं शुक्रं तथा रेत उप्रं वीर्यं च कथ्यते ॥१४
 वीर्यस्त्वैतानि नाभानि कथितानि स्वयम्भुवा । तदण्डमभवद्वैम ज्वालामालाकुल विभो ॥१५
 यस्मिन्ज्ञने स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः । मुरज्येष्ठश्चतुर्वेच्छः परमेष्ठी पितानहः ॥१६
 क्षेत्रज्ञः पुरुषो वेधाः शम्भुर्नारायणस्तथा । पर्यायवाचकैः शब्देरेवं ब्रह्मा प्रज्ञीन्यते ॥१७
 सदा मनीषिभिस्तात विरच्छिः कञ्जजस्तथा^२ । आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥१८
 ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः । अरमित्येव शीघ्राय नियतः कविभिः कृतः ॥१९
 आप^३ एवार्णवीभूत्वा सुशीघ्रास्तेन ता नराः । यत्तकारणमव्यक्तं नियं सदसदात्मकम् ॥२०
 तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मोति कीर्त्यते । एवं स भगवान्नण्डे तत्त्वमेव निरूप्य वै ॥२१

सोये हुए की तरह था ।१। तदनन्तर सर्वेश्वर्यशालौ, वे भगवान् अव्यक्त रूप से जगत् को व्यक्त करते हुए, महान् भूतों को प्रकट करते हुए तथा अन्धकार-राशि को नष्ट करते हुए उठते हैं । जो इन्द्रिय-समूहों से परे, अग्राह्य, सूक्ष्म अव्यक्त, सनातन (सर्वदा एक रूप में स्थिर रहने वाले) सर्वजीवमय एवं अचिन्त्य कहे जाते हैं, वे उस अवसर पर स्वयं उठ पड़ते हैं ।१०-१। वे लोक में छब्बीसवें पदार्थ के नाम से विस्थात हैं, उन्हीं की पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्धि है । हे महाबाहु ! वे ही भास्कर एवं परम ब्रह्म भी कहे जाते हैं ।१२। वे भगवान् उस समय अपने शरीर से विविध प्रकार की प्रजाओं की शृष्टि करने की इच्छा से चिन्तन करके सर्वप्रथम जल की सृष्टि करते हैं, और उसमें वीर्य छोड़ते हैं ।१३। उसी से समस्त देवताओं, असुरों और मनुष्यों समेत इस जगत् की उत्पत्ति होती है । बीज, शुक्र, रेत, उग्र और वीर्य भी उसी को कहते हैं ।१४। स्वयं भूते वीर्य के इन उपर्युक्त नामों का वर्णन किया है । विभु ! वह वीर्य ज्वाला-समूह से व्याप्त सुवर्ण के अण्डे के रूप में परिणत हो गया ।१५। जिसमें समस्त लोकों के पितामह भगवान् ब्रह्मा स्वयमेव उत्पन्न हुए । वे पितामह ब्रह्मा समस्त देवगणों में श्वेष, चार मुख वाले, परमेष्ठी, क्षेत्रज्ञ, पुरुष, वेधा, शम्भु एवं नारायण—इन पर्यायवाची शब्दों द्वारा पुकारे जाते हैं ।१६-१७। हे तात ! मनीषी लोग उन्हें विरच्छिं, कमलोद्घ्वद आदि नामों से सर्वदा पुकारते हैं । उनके नारायण नाम पड़ने का कारण यह है कि जल शब्द 'नार' और 'नर-पुत्र' दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है ।१८। वह जल (नार) ही सबसे पहले इनका अयन (निवास) रहा है, इसीलिए वे नारायण के नाम से स्मरण किये जाते हैं । कविगण (अरम्) शब्द का शीघ्र अर्थ में प्रयोग करते हैं ।१९। जल ही समुद्र होकर (प्रवाह के रूप में) शीघ्रता से युक्त होता है । अतः उसका नाम 'नार' कहा जाता है । जो सबके कारणभूत, अव्यक्त, नित्य, सत् एवं असत् हैं । उनसे उत्पन्न होकर वह पुरुष लोक में 'ब्रह्मा'—नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस प्रकार सृष्टि करने का विचार-निश्चित कर भगवान् ने उस सुवर्ण-अंड में समझत तत्त्वों

१. तमोनाशनः । २. कर्दमस्तथा । ३. आप एकार्णवीभूता अधिप्राप्ते न ता नराः ।

ध्यानमास्थाग राजेन्द्र तदण्डमकरोद्दिधा । शकलाभ्यां च राजेन्द्र दिवं भूमिं च निर्ममे ॥२२
 अन्तर्व्योम दिशश्चाष्टौ वारुणं स्थानमेद हि । ऊर्ध्वं महान्यातो राजन् समन्ताल्लोकभूतये ॥२३
 महतश्चाप्यहंकारस्तस्माच्च त्रिगुणा अपि । त्रिगुणा अतिसूक्ष्मास्तु बुद्धिगम्या हि भारत ॥२४
 उत्पत्तिहेतुभूता वै भूतानां महतां नृप । तेषामेव गृहीतानि शनैः पञ्चेन्द्रियःणि तु ॥२५
 तथैवावयवाः सूक्ष्मा शण्णामप्यमितौजसात् ॥२६

तंनिवेश्यात्ममात्रासु त राजनभगवान्विभुः । भूतानि निर्ममे तात सर्वाणि विधिपूर्वकम् ॥२७
 यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्तस्मेमान्याश्रयाणि पद् । तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य भूर्ति मनीषिणः ॥२८
 महान्ति ताति भूतानि आविशन्ति ततो विभुम् । कर्मणा तह राजेन्द्र सागुणाश्चापि वै गुणाः ॥२९
 तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् । सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः सम्भवत्यव्याद्यम् ॥३०
 भूतादिमहतस्तात येन व्यासमिदं जगत् । तस्मादपि महाबाहो पुरुषाः पञ्च एव हि ॥३१
 केचिदेवं परां तात सृष्टिमिछन्ति पण्डिताः । अन्येऽप्येवं महाबाहो प्रवदन्ति मनीषिणः ॥३२
 योजसादात्मा परस्तात कल्पादौ सृजते तनुभ् । प्रजनश्च महाबाहो सिसृभुर्विविधाः प्रजाः ॥३३

का विनिश्चय करके और पूर्व रचित सृष्टि के क्रम का ध्यान कर उसको दो भागों में विभक्त कर दिया । हे राजेन्द्र ! अण्ड के उन दोनों भागों से आकाश और पृथ्वी का निर्माण किया । २०-२१ फिर अन्तर्वर्ती आकाश, आठों दिशाएँ और समस्त समुद्रों का निर्माण किया । हे राजन् ! इस प्रकार लोककल्याणार्थ उस महान् ने ऊर्ध्वगत होकर इन सब का निर्माण किया । २३। महतत्त्व से अंहकार, उससे तीनों गुण (सत्त्व, रजस् और तमस् की भी उत्पत्ति हुई) । हे भारत ! वे तीनों गुण परम सूक्ष्म हैं, केवल बुद्धिद्वारा वे जाने जा सकते हैं । २४। हे नृप ! वे त्रिगुण समस्त महान् भूतों की उत्पत्ति के मूल कारण हैं । उन्हीं के द्वारा पाँचों इन्द्रियाँ शनैः शनैः शनैः उत्पन्न हुई हैं । २५। उन परम तेजोमय छहों के अवयव भी उसी प्रकार परम सूक्ष्म हैं । हे राजन् ! परमैश्वर्यशाली भगवान् ने आत्ममात्राओं में सन्निविष्ट होकर समस्त भूतों की विधिपूर्वक सृष्टि की । २६-२७। जो मूर्ति के परम सूक्ष्म अवयव हैं, वे ही छह उसके आश्रय कहे जाते हैं । उसी की मूर्ति को मनीषीण शरीर नाम से बतलाते हैं । २८। हे राजेन्द्र ! वे पूर्व जन्म के कर्मों एवं गुणों के साथ महान् भूतगण उस विभु में आविष्ट हो जाते हैं वे तीनों गुण भी उसी में आविष्ट हो जाते हैं । अविनाशी से महान् तेजस्वी उन सातों पुरुषों की सूक्ष्म मूर्ति भाद्राओं द्वारा इस विनाशी जगत् की उत्पत्ति होती है । हे तात ! भूतादि महान् से यह जगत् व्याप्त है । हे महाबाहु ! उससे भी ये पाँच पुरुष ही उत्पन्न होते हैं । हे तात ! कुछ पण्डित जन इस प्रकार परम सृष्टि की इच्छा करते हैं । हे महाबाहु ! अन्य पण्डितजन भी ऐसा ही कहते हैं । २९-३२। हे तात ! जो यह परम आत्मा के नाम से विव्यात है वे ही कल्प के प्रारम्भ में स्वयं शरीर धारण करते हैं, हे महाबाहु ! वे ही इस समस्त सृष्टि के उत्पत्तिकर्ता हैं । स्वयं शरीर धारण कर विविध प्रकार की प्रजाओं को उत्पन्न करने की इच्छा से वे ही समस्त जगत् की सृष्टि करते हैं । ३३। हे राजन् ! उन्हीं के द्वारा सिरजे गये पुद्गल

तेन सृष्टः पुद्गलस्तु प्रधानं विशते नृप । प्रधानं क्षोभितं तेन विकारान्तृजते बहन् ॥३४
 उत्पद्यते महास्तस्मात्तरो भूतादिरेव हि । उत्पद्यते विशालं च भूतादः कुरुनन्दन ॥३५
 विशालाच्च हरिस्तात हरेश्चापि वृकास्तथा । वृक्मूर्णान्ति च बुधास्तस्मात्तर्व भवेन्त्युप ॥३६
 तथैषामेव राजेन्द्रं प्रादुर्भवति वेगतः । मात्राणां कुरुशार्दूलं विबोधस्तदनन्तरम् ॥३७
 तस्मादपि हृषीकाणि विविधानि नृपोत्तम । तथेयं सृष्टिराख्याताऽरथ्यतः कुरुनन्दन ॥३८
 भूयो निबोधं राजेन्द्रं भूतानामिह विस्तरम् । गुणाधिकानि सर्वाणि भूतानि प्रुथिवीपते ॥३९
 आकाशमादितः कृत्वा उत्तरोत्तरमेव हि । एकं द्वौ च तथा त्रीणि चत्वारश्चापि पञ्च च ॥४०
 ततः स भगवान्बहुपदमासनमतः प्रभुः । सर्वेषां तु स नामानि कर्मणि च पृथक्पृथक् ॥४१
 वेदशब्दे भ्य एवादौ पृथक्तंस्थाश्च निर्ममे । कर्मेद्भूवानां देवानां सोऽसृजद्देहिनां प्रभुः ॥४२
 त्रुषितानां गणं राजन्यज्ञं चैव सनातनम् । दत्त्वा^१ वीरं समानेभ्यो गुह्यं ब्रह्मं सनातनम् ॥४३
 दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थन्त्रयजुः सामलक्षणम् । कालं कालविभक्तीश्च^२ प्रहानृतूस्तथा नृप ॥४४
 सरितः सागराऽङ्गैलानात्मानि विषमाणि च । कामं क्रोधं तथा वाचं रतिं चापि कुरुद्वाह ॥४५
 सृष्टिं त्तर्सर्ज राजेन्द्रं सिसृक्षुर्विविधः प्रजाः । धर्माधिर्माँ विवेकाय कर्मणां च तथासृजत् ॥४६

(परमाणु) प्रधान (प्रकृति) प्रवेश करते हैं, उनके द्वारा क्षुब्ध होकर प्रधान अनेक विकारों की सृष्टि करता है । ३४। जिससे महत् की उत्पत्ति होती है और उसी से (महत् से) आदि भूत की उत्पत्ति होती है । हे कुरुनन्दन ! उन भूतवर्गों से विशाल की उत्पत्ति होती है । ३५। हे तात ! विशाल से हरि और हरि से वृक्तों की उत्पत्ति होती है । उन वृक्तों द्वारा बुद्धिमान् जन छिपाये जाते हैं । हे राजन् ! उसी से समस्त जगत् की उत्पत्ति होती है । ३६। हे राजेन्द्र ! कुरुशार्दूल ! इन्हीं के वेग से मात्राओं के विबोध की उत्पत्ति होती है । उसके अनन्तर मात्राओं का विबोध होता है । ३७। नृपोत्तम ! तदनन्तर उसी से विविध इन्द्रिय समूहों की उत्पत्ति होती है । हे कुरुनन्दन ! इस प्रकार इस सृष्टि की आराधना द्वारा उत्पत्ति कही जाती है । ३८। हे राजेन्द्र ! अब भूतों का विस्तार किस प्रकार हुआ—इसे फिर से सुनिये । हे पृथ्वीपति ! उन सब भूत-समूहों में किसी न किसी गुण का प्राधान्य रहता है । ३९। सर्वप्रथम आकाश की सृष्टि करके उसके उत्तरोत्तर एक, दो, तीन, चार और पाँच भूतों का इस प्रकार निर्माण करते हैं । ४०। तदनन्तर सर्वेश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा पद्मासन पर विराजमान होकर सबके नाम एवं काम का पृथक्-पृथक् निर्णय करते हैं । ४१। वेद शब्द से ही सर्वप्रथम सब की अवस्थिति का निर्माण किया । प्रभु ने इस प्रकार पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार शरीर धारण करने वाले देवताओं की सृष्टि की । ४२। हे राजन् ! त्रुषितों के गण की उत्पत्ति इस प्रकार हुई । फिर सर्वदा प्रचलित रहने वाले यज्ञों की उत्पत्ति हुई । हे वीर ! तदनन्तर समान शक्ति सम्पन्न सबको परम गोपनीय ब्रह्मज्ञान का दान देकर उन्होंने यज्ञों की सिद्धि के लिए ऋक्, यजु, साम नामक वेदों का दोहन किया, फिर काल, काल के विविध भेदों एवं अवयवों, ग्रहों एवं ऋतुओं, नदियों, सागरों, पर्वतों, समान एवं ऊँच-नीच भूमियों, कामं, क्रोधं, वचनं, रतिं (प्रेम) आदि का निर्माण किया । ४३-४५। हे राजेन्द्र ! इसी प्रकार विविध प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा से, धर्म, अर्धम् के घिवेक के लिए कर्मों की सृष्टि की । ४६।

१. हृच्छ्यस्तदनन्तरम् । २. दत्तवान्सर्वमानेभ्यः । ३. कालविभूतिं च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।

सुखदुःखादिभिर्द्वन्द्वे: प्रजाश्चेमा न्ययोजयत् । अज्यो मात्राविनाशिन्यो दशार्थनां तु याः स्मृताः ॥४७
 ताभिः सर्वमिदं दीर सम्भवत्यनुपूर्विशः । यत्कृतं तु पुरा कर्म सन्नियुक्तेन वै नृप ॥४८
 स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानं पुनः पुनः । हिंसाहिते मृदुकूरे धर्मार्थमें ऋतानृते ॥४९
 यद्यथात्याभवत्सर्गे तत्स्य स्वयमेविशत् । यथा च लिङ्गान्यृतवः स्वयमेवानुपर्यये ॥५०
 स्वात्म स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः । लोकस्येह विवृद्यर्थं मुखबाहूरूपदतः ॥५१
 ब्रह्म क्षत्रं तथा चोभौ दैश्यशूलौ नृपोत्तमः । मुखानि शानि चत्वारि तेभ्यो वेदा त्रिनिःसृताः ॥५२
 ऋग्वेदसंहितः तत वसिष्ठेन महात्मना । पूर्वान्मुखान्महाबाहो दक्षिणाच्चापि वै शृणु ॥५३
 यजुर्वेदो महाराज याज्ञवल्क्येन दै सह । सामानि पश्चिमात्मात गौतमश्च नहानृषिः ॥५४
 अथर्ववेदो राजेन्द्र मुखाच्चाप्युत्तरान्पृष्ठ । ऋद्विश्चापि तथा राजञ्छानको लोकपूजितः ॥५५
 यत्तन्मुखं महाबाहो पञ्चमं लोकदिश्व्रुतम् । अष्टावदशपुराणानि सेतिहासानि भारत ॥५६
 निर्गतानि ततस्तस्मान्मुखात्कुरुकुलोद्धृह । तथान्याः स्मृतयश्चापि यमाद्या लोकपूजिताः ॥५७
 ततः स भगवान्देवो द्विधा देहमकारयत् । द्विधा कुत्वात्मनो देहसर्वेन पुरुषोऽभवत् ॥५८
 अर्द्धेन नारी तस्यां च विराजमसृजतप्रभुः । तपस्तप्त्वासृजयं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ॥५९
 स चकार तपो राजन्स्मृकुर्विविधाः प्रजाः । पतीन्प्रजानामसृजन्महर्षीनादितो दश ॥६०

और उसके अनन्तर सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में इन प्रजाओं को उलझा दिया, जो अणु परिमाण तथा अविनाशिनी पञ्च मात्राएँ कही गयी हैं । हे वीर ! उन सबों से इस समस्त जगत् का क्रमिक उद्भव होता है । हे राजन् ! पहले (ईश्वरेच्छा द्वारा) नियुक्त होकर जीव जो कुछ कार्य करता है, उसे ही पुनःपुनः सिरजे जाते हुए वह स्वयं प्राप्त करता है । हिंस-अहिंस, मृदु, कूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य—इनमें से जैसा जिसका प्राक्तन संचित कर्म रहा, वही इस सृष्टि में भी स्वयं आकर आविष्ट हुआ । हे राजन् ! जिस प्रकार क्रतुएँ अपने-अपने चिह्नों को स्वयमेव प्राप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार शरीरधारी जीव भी अपने-अपने प्राक्तन कर्मों को स्वयमेव प्राप्त हो जाते हैं । हे नृपोत्तम ! लोक की वृद्धि इनके लिए मुख, बाहु, उर और पैर से क्रमशः ब्राह्मण, धत्रिय, वैश्य और शूद्रों की उत्पत्ति हुई । उनके जो चार मुख थे, उनसे वेदों का प्रादुर्भाव हुआ ॥४७-५२। हे तात ! महात्मा वशिष्ठ ने पूर्व दिशा वाले मुख से क्रग्वेद संहिता को प्राप्त किया तथा दाहिने मुख से जो वेद उत्पन्न हुए, उन्हें भी सुनिये ॥५३। उस दाहिने मुख से याज्ञवल्क्य ऋषि ने यजुर्वेद को प्राप्त किया । हे तात ! इसी प्रकार पश्चिम वाले मुख से सामवेद को महर्षि गौतम ने प्राप्त किया । हे नृप ! राजेन्द्र ! उनके उत्तर वाले मुख से लोक-पूजित शौनक ऋषि ने अथर्ववेद को प्राप्त किया ॥५४-५५। हे महाबाहु ! भारत ! उनका लोक-विश्वात जो पाँचवाँ मुख था, उससे इतिहास के साथ-साथ अठारहों पुराणों का आविर्भाव हुआ । हे कुरुकुलोद्भव ! इसी प्रकार ब्रह्मा के उस पाँचवें मुख से यम आदि की लोक सम्मानित स्मृतियाँ तथा धर्मशास्त्र प्रकट हुए । तदनन्तर भगवान् ब्रह्माने अपने शरीरको दो भागों में विभक्त किया और स्वयं आधे रूप में पुरुषाकार होकर आधे में एक नारी की आकृति उत्पन्न की । हे राजेन्द्र ! उस नारी से प्रभु ने विराट् सृष्टि की । तपस्या करके जिसकी सृष्टि की, वह स्वयं विराट् पुरुष ही था ॥५६-५९। हे राजन् ! अनेक प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करने की इच्छा से उसने तपस्या की और सर्वप्रथम दम प्रजापति ऋषियों की सृष्टि की ॥६०। उनके नाम ये हैं—नारद, भृगु, वसिष्ठ, प्रचेता, पुलह, क्रतु,

नारदं च मृगं तात कं प्रदेतसमेव हि । पुलहं करुं पुलस्त्यं च अत्रिमङ्गिरसं तथा ॥६१
 मरीचिं चपि रजेन्द्र योऽसावाद्यः प्रजापतिः । इतांश्चान्यांश्च रजेन्द्र असृजदभूरितेजसः ॥६२
 अथ देवानृषीन्द्रत्यान्तोऽसृजत्कुरुनन्दन । यश्चरक्षः पिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ॥६३
 मनुष्याणां पितृणां च सर्पणां चैव भारत । नागानां च महाबाहो सर्वज्ञ दिविधानाणान् ॥६४
 क्षणहृचेऽशःनिगणान्नरोहितेन्द्रधनूणि च । धूमकेतूस्तथादोल्कानिर्वार्ताऽन्योतिषाः गणान् ॥६५
 मनुष्यात्किळन्दशन्मत्स्यान्दराहांश्च निहङ्गमान् । गजानश्वानथ पशून्मृगान्व्यालांश्च भारत ॥६६
 कृमिकीटपतञ्जांश्च यूकालिक्षकमत्कुणान् । सर्वे च दंशमशकं स्थवरं^१ च पृथग्विधम् ॥६७
 एवं म भास्करो देवः सर्वज्ञ भुवनत्रयम् । येषां तु यादृशं कर्म भूतानाग्निह कीर्तितम् ॥६८
 कथयिष्यात्मि तत्सर्वं क्रन्ययोगं च जन्मनि^२ । यजा व्याला मृगास्तात पशवश्च पृथग्विधाः ॥६९
 पिशाचा मानुषास्तात रक्षांसि च जरायुजाः । द्विजास्तु अण्डजाः सर्प नक्षा मत्स्याः सकच्छापाः ॥७०
 एवंविधाति यानीह स्थलजान्वौदकानि^३ च । स्वेदजं दंशमशकं यूकालिक्षकमत्कुणाः ॥७१
 ऊष्मणा चेष्टायान्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् । उद्दिज्ज्ञा स्थावरा सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ॥७२
 ओषध्यः फलपाकान्ता नानाविधफलोपगाः । अपुष्याः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः ॥७३

पुलस्त्य, अत्रि, अंगिरा, और मरीचि । हे राजेन्द्र ! ये मरीचि इन सबों में प्रथम प्रजापति थे । हे राजेन्द्र ! इन उपर्युक्त प्रजापति क्रृषियों को तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे क्रृषियों को, जो इन्हीं के समान परम तेजस्वी थे, ब्रह्मा ने उत्पन्न किया । ६-६२। हे कुरुनन्दन ! इसी प्रकार देवताओं, क्रृषियों तथा दैत्यों की सृष्टि की ! हे भारत ! हे महाबाहो ! फिर यज्ञ, राधम, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर तथा मनुष्य, पितर, सर्प एवं नागों के विविध गणों की सृष्टि की । ६३-६४। इसी प्रकार ध्यान भर चमककर छिप जाने वाली बिजलियों इन्द्रधनुष, धूमकेतु-उल्का एवं वातरहित ज्योतिषं चक्रों की सृष्टि की । ६५। हे कुरुनन्दन ! इस प्रकार भगवान् ने मनुष्य, किळन, मत्स्य, वराह, विंगम, गज, अश्व, पशु, मृग, व्याल, कृमि, कीट, पतंग, यूका (जूँ), लिक्षा (लीख), स्टमल, मच्छर, दंस एवं विविध स्थावरों की सृष्टि की । ६६-६७। उस भास्कर देव ने इस प्रकार तीनों भुवनों की सृष्टि की । इस लोक में जिन-जिन भूतों का जो और जैसा कर्म कहा जाता है, उन सबको उनकी उत्पत्ति के साथ-साथ क्रमानुसार मैं बतला रहा हूँ । हे तात ! हाथी, व्याल, मृग एवं विविध पशु जाति के जीव-समूह (इन सबकी उत्पत्ति एवं कर्म) को बतला रहा हूँ । हे तात ! पिशाच एवं जरायुज, मनुष्य और राक्षस, सर्प, नक्ष, मत्स्य और कच्छप सभी प्रकार के पक्षी इन अण्डओं का भी कर्म कह रहे हैं । ६८-७०। इसी प्रकार भूमि और जल में उत्पन्न होने वाले एवं दंस, मच्छर, जूँ, लीख और खटमल की कोटि के स्वेदज (पसीने) से उत्पन्न होने वाले जीव-समूह हैं । ये सब गरमी से उत्पन्न होते हैं । फिर बीज और काण्ड से उत्पन्न होने वाले जीव उद्भव जहे जाते हैं । ७१-७२। अनेक प्रकार के फलों से युक्त ओषधियाँ फलों के पक जाने तक स्थित रहने वाली होती हैं, अर्थात् फल के पक जाने पर ओषधियाँ सूख जाती हैं । जो पुष्परहित हैं, किन्तु फल लगता है, वे वनस्पति के नाम से प्रसिद्ध हैं । ७३। फलने और फूलने वाले को

१. स्थविष्ठं च नराधिप । २. कर्मणि । ३. औषधीनि च ।

पुष्पिणः फलिनश्चैद वृक्षास्त्रभयतः स्मृताः । गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः ॥७४
 बीजकाण्डरहाण्येव प्रताना^१ वल्ल्य एव च । तपसा बहुल्पेण वेष्टिताः कर्महेतुना ॥७५
 अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः । एतावत्यस्तु गतयः प्रोद्भूताः कुरुनन्दन ॥७६
 तस्मादेवादीप्तिमत्तो भास्कराच्च महात्मनः । धोरेऽस्मिस्तात् संसारे नित्यं सततयायिनि ॥७७
 एव सर्वं सृष्ट्येव राजेत्त्वोक्तुरुपं परम् । तिरोभूतः स मूर्तत्मा^२ कर्त्तव्यं कालेन पीड्यन् ॥७८
 यदा स देवो ज्ञागर्ति तदेवं चेष्टते जगत् । यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निर्मीलति ॥७९
 तस्मिन्स्वपिति राजेन्द्र जन्तवः कर्मजन्धनाः । स्वकर्मस्यो निर्वर्तन्ते मनश्च गत्वानिमृत्त्वति ॥८०
 पुण्यपत्तु प्रतीयन्ते यदा तस्मिन्महात्मनि । तदाय^३ सर्वं भूतात्मा सुखं स्वपिति भारत ॥८१
 तमो यदा समाश्रित्य चिरं तिष्ठति सेन्द्रियः । न नवं कुरुते कर्म तदोत्कामति भूर्तिः ॥८२
 यदा हंमाक्रिको भूत्वा बीजं स्थास्नु चरिष्णु च । समाविशति संसृष्टस्तदा मूर्तिं विमुच्यति ॥८३
 एव स जाग्रत्स्वप्नाभ्यामिदं सर्वं जगत्प्रभुः । संजीवयति चाजलं प्रनापयति चाव्ययः ॥८४
 कल्पादो सृजते तात अन्ते कल्पस्य संहरेत् । दिनं तस्येह यत्तात् कल्पान्तमिति कफ्यते ॥८५

वृक्ष कहते हैं । गुच्छों और गुल्मों की अनेक कोटियाँ होती हैं । उसी प्रकार तृणों की भी बहुत-सी जातियाँ होती हैं । ७४। बीजों और काण्डों से उत्पन्न होकर वृक्षों पर फैलने वाली लताएँ तथा वल्लियाँ कही जाती हैं । अपने पूर्व जन्म के कर्म-बन्धन से ये सभी प्रकार के अज्ञानात्मकार (तमोगुण) से परिवेष्टित रहते हैं । ७५। इनके अन्तःकरण में चेतना होती है एवं सुख और दुःख का इन्हें भी अनुभव होता है । हे कुरुनन्दन ! जीवों की इनी गतियाँ प्रकट हैं । ७६। हे तात उस (परम प्रकाशमान) एवं महात्मा भास्कर देव (के प्रकाश) से ये सब इस धोर संसार में प्रतिक्षण तथा निरन्तर चलने वाले हैं । ७७। हे राजन् ! काल द्वारा काल को पीड़ित करते हुए, वह भूतों का आत्मा (परमेश्वर) लोक के गुह एवं अन्य सभी की सुष्टि करने के उपरान्त तिरोहित हो जाता है । ७८। जब वह देव जागता रहता है, तब यह जगत् चेष्टावान् रहता है, जब वह शान्तात्मा शयन करते लगता है, तब यह सारा जगत् भी विलीन हो जाता है । ७९। हे राजेन्द्र ! अपने कर्मों के बन्धन में बँधे हुए जीव-समूह भी उसके सो जाने पर अपने कर्मों से निवृत्त हो जाते हैं और मन गत्वानि को प्राप्त होता है । ८०। हे भारत ! उस महात्मा (परमेश्वर) में सब एक साथ ही जब प्रलीन हो जाते हैं, उस समय सर्वभूतात्मा (भगवान्) सुखपूर्वक शयन करता है । ८१। समस्त इन्द्रियों समेत जब वह तमोगुण का आश्रय लेकर चिरकाल तक स्थित रहता है और कोई नवीन कर्म नहीं करता है उस समय वह मूर्ति से बाहर आता है । ८२। जब वह समस्त स्थावर जङ्ग मात्मक बीज में प्रवेश करता है । बीज से जब वह अहंमात्रिक होता है, तब वह उसमें संसृष्ट होकर अपनी मूर्ति को छोड़ देता है । ८३। प्रभावशाली एवं अविनाशी वह भगवान् इस प्रकार जाग्रत् और स्वप्न अवस्था द्वारा निरन्तर इस समस्त जगत्मण्डल को जीवन प्रदान और सीमित करता है । ८४

हे तात ! कल्प के आदि में वह इस जगत् की सुष्टि करता है और कल्प के अन्त में संहार करता है । हे तात ! उसका जो दिन अर्थात् जागरण का समय है, वही कल्पान्त कहा जाता है । ८५। हे भारत ! उस कल्प

१. व्रतत्यः । २. पूर्तात्मा । ३. सः ।

कालसंख्यां ततस्तस्य^१ कल्पस्य भृण मारत : निमेषा दश चाष्टौ च अक्षणः काष्ठा निगद्यते ॥८६
 त्रिशत्काष्ठाः कलामाहुः क्षणस्त्रिशत्कलाः स्मृताः । मुहूर्तमय भौहूर्ता वदन्ति द्वादशा क्षणम् ॥८७
 त्रिशत्म्भूर्तमुद्घट्महोरात्रं मनीषिभिः । मासस्त्रिशत्महोरात्रं ह्यौ द्वौ मासावृतुः स्मृतः ॥८८
 ऋतुत्रयमप्ययनमयने ह्ये तु वत्सरः । अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके ॥८९
 रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै रूपेणामहः । पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तु पक्षयोः ॥९०
 रूप्द चेष्टास्वहः कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी । दैवे रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः युद्धः ॥९१
 अद्युत्सत्रोदायगयनं रात्रिः स्यादक्षिणायतम् । ज्ञाहस्य तु क्षपाहस्य यत्प्रश्नाणं महीपते ॥९२
 एकैकशो पुगानः दु क्लमशस्तत्त्वनिबोध मे । चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षणां तत्कृतं युगम् ॥९३
 तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशशत्र तथाविधः । त्रेता त्रीणि सहस्राणि^२ वर्षाणि च विद्वुर्द्धाः ॥९४
 शतानि षट् च राजेन्द्र सन्ध्यांशशयोर्बुधः । सहस्रं कथितं तिष्ये शतद्वयसप्रन्वितम् ॥९५
 एषा चतुर्पुर्गस्यादि संख्यां प्रोक्ता नृपोत्तम । ग्रदेतत्परिसंख्या तमादावेव द्युर्पुरगम् ॥९७

की अवधि का प्रमाण सुनिये, बतला रहा हूँ । आँख के मूँदने और खोलने में जितना समय लगता है, उसे निमेष कहते हैं, ऐसे अठारह निमेषों की एक काष्ठा कही जाती है । ८६। तीस काष्ठा की एक कला बतलाते हैं, तीस कला का एक क्षण कहा जाता है । मुहूर्तों को जानने वाले पण्डित लोग बारह क्षणों का एक मुहूर्त बतलाते हैं । ८७। मनीषियों ने एक दिन-रात के बीच में तीस मुहूर्त निश्चित किये हैं । तीस दिन-रात का एक महीना होता है, दो-दो महीनों की एक ऋतु होती है । ८८। तीन-तीन ऋतुओं का एक अयन होता है । दो अयनों का एक वर्ष माना जाता है । मनुष्य और देव इन होतों के रात-दिन का विभाग सूर्य करता है । ८९। भूतों के शयनादि के लिए रात्रि और कर्म-व्यापार चालू रखने के लिए दिन हैं । पितरों के एक रात दिन मनुष्यों के एक मास में पूरे होते हैं । ९०। मनुष्यों का एक पक्ष उनकी रात्रि और एक पक्ष दिन है । कर्म-चेष्टा के लिए मानव का शुक्ल पक्ष उनका दिन और शयन के लिए मानव का कृष्ण पक्ष उनकी रात्रि है । देवताओं का एक दिन रात मानव का एक वर्ष होता है । ९१। उनमें रात्रि और दिन का विभाग होता है । उत्तरायण (देवताओं का) दिन और दक्षिणायण (उनकी) रात्रि है । ब्रह्मा के दिन और रात्रि का जो प्रमाण है, हे महीपते ! उसे भी प्रत्येक युगों के क्रम से बतला रहा हूँ, सुनिये । चार सहस्र वर्षों का सतयुग माना जाता है । ९२-९३। और उसकी संध्या (संधिकाल) तथा संध्यांश भी उत्तेही सौ अर्थात् चार सौ वर्षों का होता है । संध्या के अन्त का प्रमाण भी इतना ही कहा जाता है । पण्डित लोग त्रेता को तीन सहस्र वर्षों का बतलाते हैं । ९४। हे राजेन्द्र ! त्रेता की संध्या और संध्यांश दोनों का प्रमाण छः सौ वर्षों का है । द्वापर का प्रमाण दो सहस्र वर्ष कहा जाता है । ९५। पण्डित लोग उसकी संध्या और संध्यांश दोनों का प्रमाण चार सौ वर्ष बतलाते हैं । हे नृपोत्तम ! कलियुग का प्रमाण एक सहस्र वर्ष का तथा उसकी संध्या और संध्यांश का प्रमाण दो सौ वर्षों का कहा जाता है । ९६। हे नृपोत्तम ! चारों युगों की संख्या ऊपर बतलाई गई है । यह जो चारों युगों का प्रमाण मैंने

१. तात । २. त्रिशत्कलो मुहूर्तस्तु अहोरात्रं मनीषिभिः । ३. महाबाहो ।

एतद्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते । हैविकानां युगनां तु सहस्रपरिसंख्या ॥१८
 ब्राह्मसेकमहर्जीयं तावती रात्रिरुच्यते । एतद्युगसहस्रान्तं ब्राह्म पुण्यमहर्विदुः ॥१९
 रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदो जनाः । ततोऽसौ युगपर्यन्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ॥२००
 प्रतिबुद्धस्तु सृजति मनः सदसदात्मकम् । मनः सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं^३ सिसृक्षया ॥२०१
 विपुलं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विद्वः । विपुलात् विकुर्वाणात्सर्वगन्धवहः शुचिः ॥२०२
 बलदात्रजायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः । वायोरपि विकुर्वाणाद्विरोचिष्यु तप्तमोनुदम् ॥२०३
 उत्पद्यते विचिद्विवाङ्मुखस्त्वं रूपं गुणं विदुः । तस्माददि विकुर्वाणादापो जाताः स्मृता बुधे ॥२०४
 तासां गुणो रसो ज्ञेयः सर्वतोकस्य भावातः^३ । अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः ॥२०५
 यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुक्तं सौमनसं युगम् । तदेकसप्ततिगुणं नन्वन्तरमिहोच्यते ॥२०६
 मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च । तथाप्यहे सदा ब्राह्मे मनवस्तु चरुर्दश ॥२०७
 कथ्यन्ते कुरुशार्दूलं^१ संख्या पण्डितैः सदा । मनोः स्वायम्भुवस्येह वड्वंश्या^२ मनवोऽपरे ॥२०८

अभी आपको बतलाया है, वही बारह सहस्र वर्ष देवताओं का युग बतलाया जाता है। देवताओं के एक सहस्र युगों का ब्रह्मा का एक दिन जानना चाहिए और उतने ही की एक रात्रि भी कही जाती है। इस प्रकार (पण्डित लोग) देवताओं के सहस्र युग की समाप्ति पर ब्रह्मा का एक पुण्य दिन समाप्त होना बतलाते हैं । १७-१९। और उतने ही प्रमाण की रात्रि भी बतलाते हैं। इस रात्रि के व्यतीत होने पर जब कि देवताओं का एक सहस्र युग व्यतीत होता है, भगवान् अपने शयन से निवृत्त होकर जाग उठते हैं । १००। प्रतिबुद्ध होकर अपने सत्-असदात्मक मन की सृष्टि करते हैं, सृष्टि विस्तार करने की भावना से प्रेरित होकर वह मन ही सृष्टि करता है । १०१

उससे विपुल आकाश की उत्पत्ति होती है। उस आकाश का गुण शब्द कहा जाता है। आकाश में विकार होने से सब की मुग्धियों को वहन करने वाले, पवित्र, बलवान् और स्पर्शगुणात्मक वायु की उत्पत्ति होती है। तदनन्तर विकारयुक्त वायु से अंधकार को नष्ट करने वाले, विचित्र किरणों से समन्वित तेज की उत्पत्ति होती है, उसका गुण रूप कहा जाता है; उससे भी विकारयुक्त होने पर जल की उत्पत्ति हुई—ऐसा बुद्धिमान् लोग स्मरण करते हैं । १०२-१०४। उस जल का गुण रस है, जो समस्त लोकों को (भावन) जीवन दान करने वाला है। जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई, जो गन्ध गुण विशिष्ट है, यही सृष्टि का आदि क्रम है । १०५। अभी जिन देवताओं के बारह सहस्र वर्षों के एक युग की चर्चा की गयी है, उसके एकहत्तर गुणे का एक 'मन्वन्तर' कहा जाता है । १०६। यद्यपि ऐसे मन्वन्तरों की संख्या परिगणित नहीं की जा सकती एवं सृष्टि तथा प्रलय की भी कोई इयत्ता नहीं है, तथापि ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु का कार्य-काल समाप्त होना कहा जाता है । १०७। हे कुरुशार्दूल ! सर्वदा पण्डितगण संख्या द्वारा ऐसा ही निश्चय करते हैं। स्वायम्भुव मनु के वंश में उत्पन्न होने वाले अन्य छह मनु गण, जो महान् ऐश्वर्यशाली एवं परम तेजस्वी थे, प्राचीन काल

१. बोध्यमानम् । २. पावनः । ३. मुनिशार्दूल इत्यपि पाठः । ४. एवं स्युर्मनवः परे ।

सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वाः महात्मानो महौजसः । सावर्णेयस्तथा पञ्चभौत्यौ रौच्यस्तथापरः ॥१०९
 एते भविष्या मनवः सप्त प्रोत्ता नृपोत्तमः । स्वत्वेऽन्तरे सर्वमिदं पालयन्ति चराचरम् ॥११०
 एवंविधं दिनं तस्य विरिञ्चेस्तु महात्मनः । तस्यात्ते कुरुते सर्गं श्येदं कथितं ततः ॥१११
 क्षीडन्मिवैतत्कुरुते परमेष्ठो नराधिप । चतुष्प्रात्सकलो धर्मः सत्यं चैव कृते युगे ॥११२
 नाथमैणागमः कश्चिन्मनुष्याणां प्रवर्तते । इतरेष्वागमात्तात् धर्मेष्व कुरुनन्दन ॥११३
 यादृशाः परिहीयन्ते यथाह भगवान्मनुः^१ । चौर्याच्चाप्यनृताद्राजन्मायाभिरमितद्युते ॥११४
 ददेन हीयते धर्मस्त्रेतार्दिषु युगेषु वै । अरोगाः सर्वसिद्धार्थाचतुर्वर्धसातायुषः ॥११५
 कृतत्रेतादिषु त्रेषां वयो हसति पादशः । वेदोक्तमायुराशीशनं मत्यात्मां कुरुनन्दन ॥११६
 कर्मणां तु कलं तात फलत्यनुयुगं सदा । प्रभावश्च तथा लोके फलत्येव शरीरणाम् ॥११७
 अन्ये कृतयुगे धर्मस्त्रेतायां द्वापरे परे । अन्ये कलियुगे नृणां युगधर्मानुरूपतः ॥११८
 तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते । द्वापरे यज्ञमित्याहुर्दानिमेकं कलौ युगे ॥११९
 सर्वस्य राजन्सर्गस्य गुप्त्यर्थं च महाद्युते । मुखबाहूरुपादानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ॥१२०

में अपनी-अपनी प्रजाओं की सृष्टि कर चुके हैं । नृपोत्तम ! सावर्णेय, पञ्चभौत्य तथा रौच्य प्रभृति सात मनु गण, जो भविष्य में उत्पन्न होंगे, अपने-आगे समय में अपनी-अपनी प्रजाओं की सृष्टि करके इस चराचर जगत् का पालन करेंगे । १०८-११० महात्मा ब्रह्मा का दिन इस प्रकार का होता है । उसके अन्तिम समय में वह सृष्टि-कार्य इसी तरह सम्पन्न करता है, जैसा अभी आपसे बतला चुका हूँ । १११

नराधिप ! वह परमेष्ठी इस समस्त चराचर जगत् की सृष्टि खेलते हुए की तरह कर डालता है । सतयुग में सभी प्रकार के धर्म अपने चारों चरणों से सम्पन्न रहते हैं । ११२ उस युग में मनुष्यों की प्रवृत्ति अधर्म में तनिक भी नहीं होती । हे कुरुनन्दन ! अन्यान्य युगों में, मनुष्यों की प्रवृत्ति एवं धर्म जिस प्रकार हीन कोटि के हो जाते हैं, उसे भगवान् मनु ने इस प्रकार बतलाया है । हे राजन् ! चौरी करने से तथा असत्य भाषण करने से एवं मायावीपन से त्रेता आदि युगों में सभी धर्म एक-चरण से हीन हो जाते हैं । सतयुग में मनुष्य रोगरहित एवं सम्पूर्ण सिद्धियों तथा इच्छाओं को प्राप्त करने के कारण मुखपूर्वक चार सौ वर्ष की आयु वाले होते थे । ११३-११५ त्रेता आदि में एक-एक चरण आयु का भी हास होता जाता है । हे कुरुनन्दन ! मनुष्यों को वेदों में कही गयी आयु, आशीर्वचन एवं कर्मों के शुभाशुभ फल युगों के अनुरूप ही सर्वदा फलित होते हैं । शरीरधारियों का प्रभाव भी युगों के अनुसार ही फलित होता है । ११६-११७ सतयुग में दूसरा धर्म था, त्रेता में दूसरा, द्वापर में दूसरा और कलियुग में दूसरा । तात्पर्य यह कि मनुष्यों के ये धर्म युग-धर्मों के अनुसार बदलते रहते हैं । ११८ कृतयुग में तपस्या ही परम (धर्म) था, त्रेता में ज्ञान को ही (परम धर्म) कहा जाता है । द्वापर में यज्ञ को और कलियुग में एकमात्र दान को (परमश्वेष्ठ) धर्म बतलाया जाता है । ११९ हे परमकान्तिमान् ! राजन् ! सभी सृष्टि की रक्षा के लिए भगवान् ने अपने मुख, बाहु, उरु एवं चरणों से उत्पन्न होने वालों के कर्मों का भी विभाजन किया है । १२०

१. मुनिः । २. एव ।

अध्यापनमव्ययनं यजनं दाजनं तथा । दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥१२६
 प्रजानां पालनं राजन्दानमध्ययनं तथा । विषयेषु प्रसक्तिं च तथेज्यां क्षत्रियस्य तु ॥१२७
 पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । दणिक्यर्थं^१ कुसीदं च दैवस्य कृषिरेव च ॥१२८
 एकमेव तु शूद्रस्य कर्म लोके प्रकीर्तिम्^२ । एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनुपूर्वशः ॥१२९
 पुरुषस्य सर्व श्रेष्ठं नाभेल्लक्ष्मि नृपोत्तम । तस्मादग्नि चुचितरं मुलं तात स्वयम्भुवः ॥१३०
 तस्मान्मुखादिद्वजो जात इतायं वैदिकी श्रुतिः । सर्वरूपैदास्य धर्मस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥१३१
 स^३ सूच्छो ब्रह्मणा पूर्वं तपस्तप्त्वा कुरुद्वृह । हव्यानामिदं कव्यानां सर्वस्यापि च गुप्तये ॥१३२
 अद्वन्निति च सुखेनास्य हव्यानि त्रिदिवौकासः । कव्यानि चैव पितरः किंभूतमधिकं ततः ॥१३३
 द्वृतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां दुद्विजीविनः । दुद्विमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥१३४
 ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः । कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥१३५
 जन्म विप्रस्य राजेन्द्र धर्मार्थमिह कथ्यते । उत्पन्नः सर्वसिद्धयर्थं^४ याति ब्रह्मसदो नृप ॥१३६

अध्यापन, अध्ययन, यजाराधन, यज्ञ का अनुष्ठान कराना, दान देना और दान लेना—ये सब कर्म ब्राह्मणों के लिए निश्चित किये गये । १२१। हे राजन् ! इसी प्रकार प्रजाओं का भलीभाँति पालन, दान, अध्ययन, विषय-सेवन एवं यजाराधन—ये सब क्षत्रियों के कर्म हैं । १२२। पशुओं की रक्षा, दान, यजाराधन, अध्ययन, वाणिज्य, व्याज लेकर कर्ज देना और कृषि—ये वैश्यों के कर्म हैं । १२३। इस लोक में शूद्रों का केवल एक ही कर्म कहा जाता है—इन उपर्युक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों की क्रमानुसार शुश्रूषा करना । १२४। नृपोत्तम ! मनुष्य के शरीर में नाभि के ऊपर का भाग सर्वदा श्रेष्ठ माना जाता है, हेतात ! उस ऊपरी भाग में भी मुख पवित्रतर है । स्वयम्भू भगवान् के उसी पुनीत मुख से द्विजों की उत्पत्ति हुई है—ऐसा वेदों में भी सुना जाता है । ब्राह्मण सभी धार्मिक कार्यों में अपने धर्म से ही अधिकारी माना गया है । १२५-१२६। हे कुरुश्रेष्ठ ! ब्रह्मा ने प्रचुरतपस्या करके सर्वप्रथम इन्हीं ब्राह्मणों की उत्पत्ति हड्डों (देवता के उद्देश्य से यज्ञादि में जो कुछ दिया जाता है उसे हव्य कहते हैं) और कव्यों (पितरों के निमित्त शाद्व आदि में जो कुछ दिया जाता है उसे कव्य कहते हैं ।) की तरह सब की रक्षा के लिए की थी । १२७। देवगण इन्हीं के मुख से हड्डों का भक्षण करते हैं, इसी प्रकार पितरण भी उनके मुख से कव्य पदार्थों का भक्षण करते हैं—इससे बढ़कर और क्या हो सकता है । १२८। सभी भूतों में प्राणधारी श्रेष्ठ माने जाते हैं, प्राणियों में वे श्रेष्ठ हैं, जो बुद्धिजीवी हैं, बुद्धिजीवियों में मनुष्य श्रेष्ठ है, मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं । १२९। ब्राह्मणों में बुद्धिमान् ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, बुद्धिमान् ब्राह्मणों में वे श्रेष्ठ हैं, जो दृढ़ बुद्धि है, उनमें भी वे श्रेष्ठ हैं, जो वैसा आचरण करते हैं किन्तु वैसे आचरण करने वालों में भी वे अधिक श्रेष्ठ हैं, जो ब्रह्मवेता हैं । १३०। हे राजन् ! ब्राह्मणों का जन्म धर्म के लिए हुआ है—ऐसा कहा जाता है । नृप ! (इस भूतल पर) वह सभी सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए उत्पन्न हुआ है । अन्त में भी वह ब्रह्म-लोक को प्राप्त करता है । १३१। वह इस पृथ्वी पर जन्म धारण कर समस्त

त चापि जायमानस्तु पृथिव्यामिह जायते । भूतानां प्रभवायैव धर्मकोशस्य मुप्तये ॥१३२
 सर्वं हि ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चित्पृथिवौगतम् । नमनां चोत्तमेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽहति ॥१३३
 स्वकीयं ब्राह्मणे भुज्ञके विदधाति च सुव्रत । करुणां कुर्वतस्तस्य भुञ्जन्तीहतरे जनाः ॥१३४
 अयाणां भिन्नं वर्णानां भावाभावाद् वै द्विजः । भवेद्राजन्म सन्देहस्तुष्टो भावाय वै द्विजः ॥१३५
 अन्नादाय भवेत्कुद्धस्तस्मात्पूज्यतमो हि सः । ब्राह्मणे सति नान्यस्य प्रभुत्वं विद्यते नृप ॥१३६
 कामात्करोत्यसौ कर्म कामगश्च नृपोत्तम । तस्माद्वृद्धारकपुरी तस्मादीप्य भृः युनः ॥१३७
 महर्लोकाज्जनोलोकं ब्रह्मलोकं च गच्छति । ब्रह्मतं च महाबाहो याति विप्रो न तरश्यः ॥१३८

शतानीक उवाच

ब्रह्मत्वं नाम दुष्प्रापं ब्रह्मलोकेषु सुकृत
 ब्रह्मत्वं कोदृशं विप्रो ब्रह्मलोकं च गच्छति । नाभमात्रोऽथ किं विप्रो ब्रह्मत्वं ब्रह्मणः सदा ॥
 याति ब्रह्मनुग्रामः के स्वर्बह्यप्राप्तौ भमोच्चताम् ॥१४०

सुमन्तुरुवाच

साधुसाधु महाबाहो शृणु मे परमं वचः ॥१४१
 ये प्रोक्ता वेदशास्त्रेषु संस्कारा ब्राह्मणस्य तु । गर्भाधानादयो ये च' संस्कारा यस्य पार्थिव ॥१४२

प्राणियों के ऊपर धार्थिपत्य करने के लिए तथा धर्मकोश की रक्षा के लिए उत्पन्न होता है । १३२। इस पृथ्वी पर जो कुछ है, वह सब ब्राह्मण का ही है, क्योंकि उत्तम जन्म लेने के कारण वही सब कुछ पाने योग्य है । १३३। हे सुव्रत ! ब्राह्मण अपना ही भोजन करता है । फिर भी लोककल्याण के लिए प्रयत्न करता है जिसका अन्य लोग उपभोग करते हैं । १३४। हे राजन् ! ब्राह्मण इस पृथ्वी पर तीनों वर्णों के भाव (कल्याण) तथा अभाव (अकल्याण) को करने में समर्थ हैं, इसमें तनिक भी सद्देह नहीं है कि ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर कल्याण करता है । १३५। और (उसी प्रकार) कुद्धहोकर अकल्याण कर सकता है । अतः वह सबसे बढ़कर पूजनीय है । हे नृप ! ब्राह्मण के विद्यमान रहते हुए, दूसरे वर्ण का प्रभुत्व नहीं रह सकता । १३६। हे नृपोत्तम ! ब्राह्मण केवल अपनी इच्छा से कर्म करता है । वह इच्छानुसार गमन करने में समर्थ है । इस लोक से वह देवलोक को प्राप्त करता है, वहाँ से भी महर्लोक की उसे प्राप्ति होती है । १३७। महर्लोक से जनलोक और (जनलोक से) ब्रह्मलोक जाता है । हे महाबाहु ! इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मण ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है । १३८

शतानीक बोले—हे सुव्रत ! ब्रह्मलोक में ब्रह्मत्व की प्राप्ति करना परम दुर्लभ है । १३९। ब्राह्मण किस प्रकार ब्रह्मलोक एवं ब्रह्मत्व की प्राप्ति करता है ? नाभमात्र के लिए ही क्या ब्राह्मण सदा ब्रह्मपद की प्राप्ति करता है ? हे ब्रह्मन् ! उस ब्रह्मपद के प्राप्ति के साधन भूत गुण कौन से हैं ? यह सब मुझे बतलाइए । १४०।

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहु ! आपको अनेकशः समधुवाद है । मेरी उत्तम बात सुनिये । १४१। ब्राह्मण के लिए वेदों एवं शास्त्रों में जो संस्कार बतलाये गये हैं, हे पार्थिव ! गर्भाधान आदि जो अड़तालीस

चत्वारिंशतयाष्टौ च निर्वृत्ताः शास्त्रतो नृप । स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्राह्मणत्वं च मानद^१ ॥
संस्काराः सर्वथा हेतुब्रह्मत्वे नात्र संशयः ॥१४३

शतानीक उवाच

संस्काराः के मता ब्रह्मन्ब्रह्मत्वे ब्राह्मणस्य तु । शंस मे द्विजशार्दूलं कौदुकं हि महन्मम ॥१४४

सुमन्तुरुवाच

साधुसाधु महाबाहो शृणु मे परमं वचः । ये ग्रोक्ता देवसास्त्रेषु संस्कारा ब्राह्मणस्य तु ॥
मनीषिभिर्महाबाहो शृणु सर्वानशेषतः ॥१४५

गर्भाधानं पुंसवनं सोमन्तोन्नयनं तथा । जातकर्मज्ञाशनं च चूडोपनयनं^२ नृप ॥१४६
ब्रह्मक्षतानि चत्वारि स्नानं च तदनन्तरम् । सर्थमंचारिंगीयोगो यज्ञानां^३ कर्म मानद ॥१४७
पञ्चानां कार्येभित्याहुरात्मनः श्रेयसे नृप । देवपितृमनुष्याणां भूतानां ब्राह्मणस्तथा ॥१४८
एतेषां चाष्टकाकर्म पार्वणश्राद्धमेव हि । श्रावणी चाग्रहायणी चैत्री चाशवयुजी तथा ॥१४९
पाकयज्ञास्तथा सप्त अग्न्याधानं^४ च सत्क्रिया । अग्निहोत्रं तथा राजन्दर्शं च विधुसञ्चये ॥१५०
पौर्णमासं च राजेन्द्र चातुर्मास्यानि चापि हि । निरूपणं^५ पशुवधं तथा सौत्रामणीति च ॥१५१
हविर्यज्ञास्तथा सप्त देवां चापि हि सत्क्रिया । अग्निष्ठोमोज्यग्निष्ठोमस्तयोक्त्यः षोडशी विदुः ॥१५२

संस्कार शास्त्रों में दत्तलाये गये हैं, वे जिस ब्राह्मण के शास्त्रीय विधि के अनुसार हुए रहते हैं, हे मानद !
वही ब्राह्मण ब्रह्मा के स्थान को प्राप्त करता है और वही सच्चे ब्रह्मत्व की भी प्राप्ति करता है । ब्रह्मत्व की
प्राप्ति में सर्वथा ये संस्कार ही कारण हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है । १४२-१४३

शतानीक बोले—हे द्विजशार्दूल ! ब्रह्मन् ! ब्राह्मण की ब्रह्मत्व-प्राप्ति में साधनभूत वे संस्कार
कौन-कौन माने गये हैं ? मुझे उनके सुनने का बड़ा कुतूहल है, मुझे सुनाइये । १४४

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहु ! आपको अनेकशः साधुवाद है, मेरी उत्तम बातें तुनिये । हे महा-
बाहो ! मनीषियों द्वारा वेदों एवं शास्त्रों में ब्राह्मणों के लिए जो संस्कार बतलाये गये हैं, उन सब संस्कारों
को सुनिये । १४५ हे राजन् । गर्भाधान, पुंसवन, सोमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूडाकरण, उपनयन,
चार प्रकार के ब्रह्मचर्यवस्था के व्रत (अभिषव) स्नान, सहधर्मिणी के साथ संयोग अर्थात् विवाह (पांचों)
यज्ञों का सदनुष्ठान इनको आत्मकल्याण के लिए परम उपयोगी बतलाया जाता है । १४६-१४७। देव,
पितर, मनुष्य, भूत एवं ब्रह्म—इन सबके अष्टकाकर्म (अष्टमी के दिन किया जाने वाला धार्मिक कृत्य),
श्रावण, अग्नहन, चैत्र एवं आश्विन की पूर्णिमा को पार्वण श्राद्ध, सात पाकयज्ञ, अग्नि-स्थापना, सत्क्रिया,
हविर्यज्ञ, जो सात प्रकार के होते हैं, उनकी सत्क्रिया, अग्निष्ठोम, उक्त्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरा,

१. मानव । २. चूडाकरणमेखलाः । ३. जन्मनां कर्म मानद । ४. अग्न्याधेयम् । ५. निरूपणशुबन्धं
च । ६. ज्योतिष्ठोमो ह्यग्निष्ठोमः ।

बाजयेयोऽतिरात्रश्च आप्तोर्यमिति वै स्मृतः । संस्कारेषु स्थिताः तप्त सोमाः कुरुकुलोद्धहृ ॥१५३
 इत्येते द्विजसंस्कारारश्चत्वारिंशत्पोत्तम् । अष्टौ चात्मशुणास्तात शृणु तानपि भारत ॥१५४
 अनसूया दया क्षान्तिरनायासं च मञ्जलम् । अकार्पण्यं तथा शोचमस्यृहा च कुरुद्धहृ ॥१५५
 य एतेष्टुगुणास्तात कीर्त्यन्ते वै मनीऽप्तिभिः । एतेषां लक्षणं बीर शृणु सर्वमशेषतः ॥१५६
 त शुगान्नुगिनो हन्ति न स्तौत्यात्मगुणानपि । श्रद्धाप्त्यन्ते नान्यदेवैरनसूया प्रकीर्तिता ॥१५७
 अपरे बन्धुवर्गे वा मित्रे देव्यरि वा सदा । आत्मददृतं यत्स्यात्सा दया परिकीर्तिता ॥१५८
 बाचा भनसि काये च दुःखेनोत्पादितेन च । त कुप्यति न जाप्रीतिः सा क्षमा परिकीर्तिता ॥१५९
 अभ्यन्तरिहारश्च संतर्गश्चाप्यनिन्दितः । आचारे च व्यवस्थानं शौचमेतत्प्रकीर्तितम् ॥१६०
 शरीरं पीड्यते येन शुभेनापि च कर्मणा । अत्यन्तं तन्न कुर्वीत अनायासः स उच्यते ॥१६१
 प्रशस्ताचरणं नित्यप्रशस्तविर्बर्जनम् । एतदि मञ्जलं प्रोक्तं त्रुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥१६२
 स्तोकः दपि प्रदातव्यमदीनेनान्तरात्मना । अहन्यहनि यत्किंचिदकार्पण्यं तदुच्यते ॥१६३
 यथोत्पन्ने न सन्तुष्टः स्वल्पेनाप्यथ वस्तुना । अहिंसया परस्येषु^३ साऽस्यृहा परिज्ञीर्तिता ॥१६४
 बपुर्यस्य तु इत्येतैः संस्कारैः संस्कृतं द्विजः । ब्रह्मत्वमिह सम्प्राप्य ब्रह्मलोकं च गच्छति ॥१६५

आप्तोर्याम—ये सब संस्कार कहे जाते हैं । हे कुलश्रेष्ठ ! इन संस्कारों में सात सोमयज्ञ भी स्थित हैं ॥१४८-१५३। हे नृपोत्तम ! ये चालीस ब्राह्मणों के संस्कार कहे जाते हैं । हे भारत । आठ उनके स्वाभाविक गुण हैं, उन्हें भी सुनिये ॥१५४। अनसूया, दया, क्षान्ति, अनायास, मञ्जल, अकार्पण्य, शौच तथा अस्यृहा ॥१५५। हे तात ! मनीपियों के द्वारा जो ये आठ ब्राह्मणों के स्वाभाविक गुण कहे जाते हैं, हे बीर ! इन सद्गुणों के सम्पूर्ण लक्षणों को भी बतला रहा हूँ, सुनिये ॥१५६। जिसमें गुणवान् गुणों का हनन नहीं करता है तथा अपने गुणों की प्रशंसा नहीं करता है तथा दूसरे के दोषों से प्रसन्न नहीं होता; उसे 'अनसूया' कहते हैं ॥१५७। अन्य जनों तथा बन्धु-वर्ग (आत्मीय जनों) में, मित्र अथवा शत्रु में सर्वदा जो आत्मवत् व्यवहार हुआ करता है, उसे 'दया' कहते हैं ॥१५८। मन और शरीर में कष्ट उत्पन्न करने वाली वाणी से न क्रोध किया जाता है और न दुःखानुभव होता है, उसे 'क्षमा' कहते हैं ॥१५९। अभ्यन्त का त्याग, प्रशंसनीय का समर्प्यक और सदाचार में रहने को 'शौच' कहते हैं ॥१६०। जिस शुभ कार्य के द्वारा शरीर को क्लेश होता है, उस कर्म का सर्वथा त्याग करना चाहिए । इस त्याग को 'अनायास' कहते हैं ॥१६१। प्रशंसनीय कर्म के 'आचरण' तथा निन्दित कर्म के सर्वथा त्याग को ब्रह्मवादी मुनियों ने 'मञ्जल' कहा है ॥१६२। प्रतिदिन प्रसन्नचित होकर, थोड़े में से भी जो दान दिया जाता है, उसे अकार्पण्य कहते हैं ॥१६३। स्वल्प मात्रा में भी प्राप्त वस्तु से सन्तुष्ट होने तथा अन्य जन (के धन) में अहिंसा भाव रखने को 'स्यृहा' कहते हैं ॥१६४। हे द्विज ! इन संस्कारों से जिसका शरीर संस्कृत है, वह इस लोक में ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त कर, अन्त में ब्रह्मलोक को जाता है ॥१६५। इस लोक और परलोक को सफल बनाने

१. नृप । २. मासा: । ३. परार्थेषु ।

दैदिके: कर्मभिः पुज्यैर्निषेकाद्यैर्जन्मनाम् । कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥१६६
गर्भशुद्धिं ततः प्राप्य धर्मं चाश्रमलक्षणम् । याति मुक्तिं न सन्देहः पुराणेऽस्मिन्नुपोत्तम ॥१६७
उशन्नित कुरुशार्दूल ब्राह्मणा नात्र संशयः । 'आश्रितानं विशेषेण ये नित्यं स्वस्तिवादिनः ॥१६८
निकटस्थान्द्विजान्ति! नित्यः योऽन्यान्यजयति द्विजाद् । सिद्धं पाणं तदपमानातद्वद्वत्तु नैव शक्यते ॥१६९
तस्मात्सदा समीपस्थः सम्पूज्यो विधिवन्नृप । पूजयेदतिर्थीस्तद्वद्वलपानादिवान्तः ॥१७०
ब्राह्मणः सर्वचरणानां ज्येष्ठः श्रेष्ठस्तथोत्तमः । एदमस्मिन्नुपुराणे तु संस्कारान्ब्राह्मणस्य तु ॥१७१
शृणोति यश्च जानाति यश्चापि पठते सदा । ऋद्धिं वृद्धिं तथा कीर्तिं प्राप्यहृ श्रियमुत्तमाम् ॥१७२
धनं धान्यं यशश्चापि पुत्रान्बन्धून्मुरूपताम् । सादित्रं लोकमासाद्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥१७३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां
ब्राह्मे पर्वणि द्वितीयोऽध्यायः । २।

के निमित्त द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों) को प्रशस्त वैदिक कर्म द्वारा शरीर का पवित्र संस्कार करना चाहिए । १६६। इस तरह शरीर संस्कृत होने पर गर्भ-शुद्धि और आश्रमानुसार धर्म को प्राप्त कर, पुराणवचनानुसार हे राजन्, वह व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करता है, इसमें सदेह नहीं है । १६७। हे कुरुवंश में श्रेष्ठ राजन् ! आश्रित जनों के प्रति स्वस्तिवाचन करने वाले ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) सर्वदा प्रसन्न रहते हैं । इसमें कोई सदेह नहीं है । १६८। समीपस्थ ब्राह्मणों को त्यागकर जो अन्य ब्राह्मणों की पूजा करते हैं, वे निकटस्थ ब्राह्मण के अपमान से निचित ही पाप के भागी होते हैं, उस पाप का वर्णन नहीं किया जाता । १६९। हे राजन् ! इसलिए निकटस्थ ब्राह्मण की सदा पूजा करनी चाहिए । इसी प्रकार भोजन और पेय पदार्थों से अतिथियों का सम्मान करना चाहिए । १७०। ब्राह्मण सभी वर्णों में ज्येष्ठ, श्रेष्ठ तथा उत्तम है । इस प्रकार इस पुराण में (प्रतिपादित) ब्राह्मण के संस्कारों को जो व्यक्ति सदा श्रवण करता है या जानता है पाठ करता है, वह इस संसार में ऋद्धि, वृद्धि, कीर्ति, उत्तम श्री, धन, धान्य, यश, पुत्र, बन्धु तथा सुन्दर स्वरूप को प्राप्त करके सविता के लोक में जाता है और अनन्तर ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है । १७१-१७३

श्रीभविष्यमहापुराण में शतार्धसाहस्री नामक संहिता के
ब्रह्मपर्व में दूसरा अध्याय समाप्त । २।

१. एत () च्चिह्नान्तर्गतोऽयं पाठः कस्मिश्चिदेकस्मिन्युस्तके दृश्यते । स च किंचित्प्रकरणा-
दूरवर्तीति हेतोश्चिह्नं प्रवेशितम् । इति बोध्यम् ।

अथ हृतीयोऽध्यायः

गर्भाधानादारभ्य सनात्सर्वसंस्कारवर्णनमाचमनादिविधिवर्णनञ्च

शतानीक उवाच

जातकमादिसंस्कारान्वर्णनाभनुपूर्वशः । आश्रमाणां च मे धर्मं कथयस्व द्विजोत्तम ॥१
सुमन्तुरुवाच

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा । जातकर्मान्नप्राशश्च चूडामैञ्जीनिबन्धनम् ॥२
द्वैजिकं गार्भिकं चैन्देः द्विजानामपमृग्यते । स्वाध्यादेन व्रतैहर्वैनैस्त्रैविद्येनेज्यया श्रुतैः ॥३
महापूजैश्च ब्राह्मीयं यज्ञैश्च क्रियते तनुः । शृणुष्वैकमना राजन्यथा सा क्रियते तनुः ॥४
प्राज्ञानभिकर्तनात्पुंसो जातकर्म निधीयते । मन्त्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम् ॥५
नामधेयं दशस्यां तु केचिदिच्छन्ति पार्थिव । द्वादश्यामपरे राजन्मासि पूर्णं तथा परे ॥६
अष्टादशोऽहनि तथाऽन्ये वदन्ति मनीषिणः । पुण्ये तिथौ मुहर्ते च नक्षत्रे च गुणान्विते ॥७
मङ्गल्यं तात विप्रस्य शिवशर्मेति पार्थिव । राजन्यस्य विशिष्टं^१ तु इन्द्रवर्मेति कथ्यते^२ ॥८

अध्याय ३

**गर्भाधान से लेकर संक्षेप में समस्त संस्कारों एवं आचमन आदि
की विधियों का वर्णन**

शतानीक बोले—हे द्विजोत्तम ! सभी वर्णों के जांतकर्म आदि जितने संस्कार एवं आश्रमों के धर्म हैं, उन्हें हमें क्रमशः बतलाने की कृपा कीजिये ।

सुमन्तु ने कहा—राजन् ! गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, अन्नप्राशन, चूडाकरण और उपनयन इन संस्कारों के करने से द्विजों के बीज एवं गर्भ सम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं । स्वाध्याय, व्रत, हवन, तीनों वेदों के अध्ययन, महान् यज्ञों एवं सामान्य यज्ञों के अनुष्ठान से यह शरीर ब्रह्मवर्चस् से संयुक्त किया जाता है । हे राजन् ! एकाग्रचित्त होकर सुनिये कि इन संस्कारों से वह शरीर किस प्रकार ब्रह्मतेजोमय होता है । २-४। पुरुष संतान के नाल काटने से पहिले ही जातकर्म संस्कार किया जाता है और वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करते हुए सुवर्ण, मधु और धृत प्राशन कराया जाता है । ५। हे पार्थिव, हे राजन् ! कोई कोई आचार्य दसवीं तिथि को नामकरण संस्कार करने की इच्छा करते हैं, कुछ लोग बारहवीं तिथि को तथा कुछ लोग एक मास पूरे होने पर । ६। कुछ अन्य पण्डित लोग अठारहवें दिन के लिए बतलाते हैं । पुण्य तिथि, अच्छे नक्षत्र, शुभमुहूर्त में, जबकि सब प्रकार के गुण संयुक्त हों, हे तात ! ब्राह्मण का शिव-शर्मा इस प्रकार मांगलिक नामकरण संस्कार करना चाहिए, क्षत्रियों का इन्द्रवर्मा ऐसा

१. बलिष्ठं तु । २. कीर्त्यते ।

वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्रस्य च जुगुप्सितम् । धनवर्धनेति दैश्यस्य सर्वदासेति हीनजे ॥९
 मनुना च तथा प्रोक्तं नाम्नो लक्षणमुत्तमम् । शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्यादाज्ञो रक्षासमन्वितम् ॥१०
 वैश्यस्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्यसंयुतम् । स्त्रीणां सुखोद्यमकूरं विस्पष्टार्थमनोरमम् ॥११
 मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादभिधानवत् । द्वादशेऽहनि राजेन्द्र शिशोर्निङ्कमणं गृहत ॥१२
 चतुर्देश मासि कर्तव्यं तथान्येषां मत्तं विभो । षष्ठेऽन्तप्राणानं मासि यथेष्टं मङ्गलं कुले ॥१३
 चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामनुपूर्वशः । प्रथमेऽद्वे द्वितीये^१ वा कर्तव्यं कुरुनन्दन ॥१४
 गर्भाष्टमेऽव्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् । गर्भदिकादर्शे राजनक्षत्रियस्य विनिर्दिशेत् ॥१५
 द्वादशेऽव्देऽपि गर्भात् वैश्यस्य व्रतमादिरोत् । ब्रह्मवर्चसकामेन कार्यं विप्रस्य पञ्चमे ॥१६
 बलार्थिना तथा राजा: षष्ठेऽव्दे कार्यमेव हि । अर्थकामेन वैश्यस्य अष्टमे कुरुनन्दन ॥१७
 आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते । द्वाविंशतेः क्षत्रबन्धोराच्चतुर्विशतिर्विशः ॥१८
 अत ऊर्ध्वं तु ये^२ राजन्यथाकालमसंस्कृताः । सावित्रीपतिता ब्रात्या ब्रात्यस्तोमादृते^३ क्रतोः ॥१९

विशिष्ट नामकरण करना चाहिए । ७-८। वैश्य का धन संयुक्त नाम रखना चाहिये । शूद्र का कुछ जुगुप्सित नामकरण करना चाहिये जैसे वैश्य का नाम धनवर्धन और शूद्र का नाम सर्वदास । ९। मनु ने नाम के ये उत्तम लक्षण बतलाये हैं कि ब्राह्मण के नाम के साथ शर्मा, क्षत्रिय के साथ रक्षार्थी (वर्मा), वैश्य के साथ पुष्टिप्रदायक नाम (कोई संज्ञा) तथा शूद्र के साथ (दास्यभाव) युक्त कोई नाम हो । स्त्रियों के नाम सुख देने वाले, मृदु भावना के प्रतीक, सरल, स्पष्ट, मनोहारी, मांगलिक, अन्त में दीर्घवर्ण युक्त तथा आशीर्वाद व्यंजित करने वाले हों । हे राजेन्द्र ! बारहवें दिन शिशु का घर से बाहर के लिए निष्क्रमण होता है । १०-११। हे विभो ! कुछ अन्य आचार्यों का मत है कि शिशु को चौथे मास घर से बाहर निकालना चाहिये । छठे मास में अन्नप्राशन करने से परिवार में यथेष्ट मङ्गल की प्राप्ति होती है । १२। हे कुरुनन्दन ! सभी द्विज कही जाने वाली जातियों में क्रमशः शिशुओं का चूडाकर्म संस्कार प्रथम अथवा तीसरे वर्ष में करना चाहिए । १३। ब्राह्मण शिशु का उपनयन संस्कार गर्भ से आठवें वर्ष में करना चाहिये । हे राजन् ! क्षत्रिय का उपनयन संस्कार गर्भ से चारहवें वर्ष में करना चाहिये । १४। वैश्यों के लिए यह व्रत बारहवें वर्ष में भी वैध माना गया है । किन्तु इसके अतिरिक्त अधिक ब्रह्मवर्चस की कामना हो तो ब्राह्मण शिशु का यज्ञोपवीत संस्कार पांचवें वर्ष में करना चाहिये । १५। राजाओं के शिशुओं को अधिक बली होने की कामना से छठे वर्ष में यज्ञोपवीत करा देना चाहिये । हे कुरुनन्दन ! इसी प्रकार विशेष धन उपार्जित करने की कामना से वैश्य का आठवें वर्ष में उपनयन संस्कार सम्पन्न करना चाहिये । १६। सोलह वर्ष की अवस्था तक ब्राह्मण कुमार की सावित्री अतिक्रमण नहीं करती (अर्थात् १५वें वर्ष तक भी ब्राह्मण कुमारों का यज्ञोपवीत संस्कार हो सकता है ।) उसी प्रकार क्षत्रियों का बाईं वर्ष से पूर्व तथा वैश्यों का चौबीस वर्ष की अवस्था तक भी उपनयन संस्कार हो सकता है । १७। हे राजन् ! किन्तु इससे ऊपर हो जाने पर भी जिनका उपनयन संस्कार नहीं होता वे असंस्कृत हैं । सावित्री के पतित होने पर वे ब्रात्य हो जाते हैं, और ब्रात्यस्तोम यज्ञ के बिना कुछ नहीं हो सकता । १८। ऐसे अपवित्र के साथ

१. द्वितीये वा । २. त्र्योऽप्येते । ३. न ते संस्कारभागिनः ।

त चाप्येभिरपूतैस्तु आपद्यति हि कर्हिचित् । ब्राह्मं यौनं च सम्बन्धमाचरेद्ब्राह्मणः सह ॥२०
 भवन्ति राजश्चर्माणि भ्रतिनां त्रिविधानि च । कार्ष्णरौरवबास्तानि ब्रह्मक्षत्रिविशां नृप ॥२१
 वंशीरंश्चानुपूर्व्येण वस्त्राणि विदिधानि तु । ब्रह्मक्षत्रिविशो राजञ्छाणक्षोमादिकानि च ॥२२
 मौञ्जी त्रिदुत्समा इलक्षणा कार्या विप्रस्य मेलला । क्षत्रियस्य च मौर्वीज्या दै॒यस्य शणतान्तवी ॥२३
 मुञ्जालाभे तु कर्तव्या कुशाश्मन्तकदत्त्वजः । त्रिवृत्ता गत्यन्तैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेद च ॥२४
 कार्पासमुषवीतं स्पाद्विप्रस्योर्ध्ववृतं त्रिवृत् । शणसूत्रमयं राजो दै॒यस्याविकसौत्रिकम् ॥२५
 पुष्कराणि तथा चैषां भवन्ति त्रिविधानि तु । ब्रह्मणो बैत्यपालाशौ तृतीयं प्लञ्जं नृप ॥२६
 वाटखादिरौ क्षत्रियस्तु तथान्यं वेतसोद्भवम् । पैलदेवुम्बरौ वैश्यस्तथाऽवत्थजमेव हि ॥२७
 दण्डनेतान्महाबाहो धर्मोर्जहन्ति धारितुम् । केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्यः प्रमाणातः ॥२८
 ललाटसम्मितो राजः स्यात् नासान्तिको विशः । ऋजदस्ते त्वं सर्वे स्मुर्द्वाह्याणः सौम्यदर्शनाः ॥२९
 अनुद्वेगकरा नृणां सत्वचो नागिनदूषितः । प्रगृह्ण चेप्सितं दण्डमुपस्थाय च भास्करम् ॥३०
 सम्यगुरुं तथा पूज्य चरेद्भैक्ष्यं यथाविधि । भवत्पूर्वं चरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः ॥३१

कभी आपत्ति में भी अध्ययन, अध्यापन, अथवा यौन सम्बन्ध ब्राह्मण को नहीं रखना चाहिये । २०। हे राजन् ! उपनयन व्रत पालन करने वाले व्रतियों के लिए तीन प्रकार के चर्म भी होते हैं, ब्राह्मण के लिए कृष्ण मृग चर्म, क्षत्रिय के लिए रुह मृग चर्म और वैश्य के लिए बकरे का चर्म । २१। हे राजन् ! इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यों को सन, रेशमी आदि विविध प्रकार के वस्त्र क्रमानुसार धारण करने चाहिये । २२। (इन उपनयन संस्कार में) ब्राह्म की मेलला मूँज की बनी हुई त्रिसूती तीन लड़ियों वाली, समान तथा चिकनी करनी चाहिए । क्षत्रिय के लिए मूर्वा की बनी होनी चाहिये । तथा वैश्य के लिए सन् के रेशों की होनी चाहिये । २३। मूँज न मिलने पर ब्राह्मणों के लिए कुश, अशमन्तक अथवा बल्वज (बगही) की मेलला बनानी चाहिये । उसे एक गाँठ बाँधकर तीन लड़ की बना लेनी चाहिये अथवा तीन गाँठ या पाँच गाँठ बाँधनी चाहिये । २४। ब्राह्मण का उपवीत कपास का (अर्थात् सूती) होना चाहिये, जो तीन लड़ियों में हो और ऊर्ध्ववृत हो राजाओं अर्थात् क्षत्रियों का यजोपवीत सन के सूतों से बना हुआ तथा वैश्यों का भेंड़ के रोम के सूतों का बना हुआ होना चाहिये । २५। इन तीनों वर्णों में ब्रह्मचारियों के दण्ड भी तीन प्रकार के होने चाहिये । नृप ! ब्राह्मण बेल, पलाश अथवा पाकर का दण्ड ग्रहण करे । २६। क्षत्रिय बरगद, सदिर (सैर) अथवा बेंत का तथा वैश्य, पीलु वृक्ष का, गूलर अथवा पीपल का दण्ड ग्रहण करें । २७। हे महाबाहु ! इन दण्डों को (उपनयन संस्कार के समय) धर्मतः धारण करना चाहिये । ब्राह्मणों का दण्डमाप उनके केशांत (भाग) तक होना चाहिये । २८। राजाओं का दण्ड ललाट पर्यन्त का तथा वैश्यों का नासिका के अन्त तक का होना चाहिये । वे सब दण्ड देखने में सीधे तथा मुन्दर हों जिनके देखने से मनुष्यों के मन में किसी प्रकार की उद्गेभ-भावना न फैले । उन पर उत्तम बकला लगा हो, कहीं अग्नि से जले हुए न हों । इस प्रकार अपनी इच्छानुसार दण्ड ग्रहण कर भास्कर की उपासना कर भली-भाँति गुरु की पूजा कर ब्रह्मचारी यथाविधि भिक्षाटन करे । उपनीत ब्राह्मण पहले भवत् शब्द का प्रयोग कर भिक्षाटन करे, क्षत्रिय वाक्य के मध्य में भवत् शब्द का प्रयोग करे और वैश्य वाक्य के अन्त में भवत् शब्द का प्रयोग करे ।

भवन्नमध्यं तु राजन्यो वैश्यस्य भवदुत्तरम् । मातरं वा स्वसारं वा मादुव्रा भगिनों निजाम् ॥३२
 भिक्षेत भैक्ष्यं प्रथमं या चैनं नावमानयेत् । सुवर्णं रजतं चान्नं सा पात्रेऽस्य विनिर्दिशेत् ॥३३
 समाहृत्य ततो भैश्चं यावदर्थमायथा । निवेद्य गुरुवेऽनीयादऽचम्य प्राइमुखः शुचिः ॥३४
 आयुष्यं प्राइमुखो भुइक्ते यशस्य दक्षिणामुखः । श्रियं प्रत्यहमुखो भुइक्ते ऋतं^१ भुइक्ते उद्धमुखः ॥३५
 उपस्थुप्य द्विजो राजशशमद्यात्समाहितः । भुइक्ता लोभस्त्रैत्सम्यगद्ब्रिः खानि च संस्पृशेत् ॥३६
 तथान्नं पूजयेत्प्रियमद्याच्चैतदकुत्सयन् । दर्शनात्स्य हृष्येदै प्रसीदेच्चापि भारत ॥३७
 अभिनन्द्य ततोऽनीयादित्येवं मनुरब्बीत् । पूजित त्यशं नित्यं दलभोजश्च यच्छाते ॥३८
 अपूजितं तु तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिवम्^२ । नोच्छिष्टं करयच्चिद्याम्राद्याच्चैतत्थान्तरा ॥३९
 यस्तदश्वनन्तरा इत्वा लोभादत्ति नृपोत्तम् । विनाशं याति त नर इह लोके परत्र च ॥
 यथाभवत्युरा वैश्यो धनवर्द्धनसंज्ञितः ॥४०

शतानीक उच्चाच

स कथमन्तरं पूर्वमन्तस्य द्विजसत्तम् । किमन्तरं तथान्तस्य कथं वा तत्कुतं भवेत् ॥४१

माता, वहिन, अथवा अपनी मौसी से सर्वप्रथम भिक्षा की याचना करनी चाहिये । जो ब्रह्मचारी की अवमानना न करे । उसे अर्थात् देने वाली को मुवर्ण या चाँदी के पात्र में अन्न रखकर दान करने का निर्देश है ॥२९-३३। इस ब्रकार भिक्षाटन कर ब्रह्मचारी मायारहित हो सब थन गुह को समर्पित कर पवित्र भाव से आचमन कर पूर्वाभिमुख हो भोजन करे ॥३४। पूर्वाभिमुख भोजन करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है, दक्षिण मुख से यश की प्राप्ति होती है, पश्चिम मुख करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । तथा उत्तर मुख करने से ऋत की प्राप्ति होती है ॥३५। हे राजन् ! द्विज समाहित चित्त होकर विधिपूर्वक आचमन कर अन्न का भक्षण करे । भोजन करने के उपरान्त भी जल से अच्छी तरह आचमन कर सब इन्द्रियों का स्पर्श करे ॥३६। अन्न की सर्वदा पूजा करे, कुत्सित भावना का सर्वशा परित्याग कर उसका भक्षण करे । हे भरत ! उसको देखकर प्रसन्नता और सन्तोष प्रकट करे ॥३७। अन्न का अभिनन्दन (प्रशंसा) करने के बाद भोजन करे—ऐसा मनु ने कहा है । पूजित अन्न सर्वदा बल एवं ओज प्रदान करता है ॥३८। और अपूजित अन्य के भोजन से वह उन दोनों का विनाश होता है । अपना जूठ किसी को न दें और न स्वयं किसी का जूठा खाय ॥३९। इसी ब्रकार बचे हुए अपने ही जूठे अन्न को कुछ देर बाद फिर से न खाय । हे नृपोत्तम ! लोभवश जो अपने ही जूठे अन्न को द्वासरे समय में खाता है, वह दोनों लोकों में नष्ट होता है, जैसे प्राचीन काल में धनवर्धन नामक वैश्य का नाश हुआ था ॥४०

शतानीक बोले—हे द्विजसत्तम ! अन्न शब्द होने के पहले वह कैसा था वह और अन्न शब्द के पीछे वह कैसा हुआ तथा उससे क्या हुआ ॥४१

१. सत्यं । २. नृप । ३. अभूत्युप्यकर्मकृत् ।

सुमन्तरवाच

पुरा कृतयुगे राजन्वैश्यो वसति पुष्करे । धनवर्धननामावै समृद्धौ धनधान्यतः ॥४२
निदाघकाले राजेन्द्र स कृत्वा वैश्वदेविकम् । सपुत्रभ्रातृभिः सार्थं तथा वै मित्रबन्धुभिः ॥
आहारं कुरुते राजन्भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्^१ ॥४३
अथ तद्भुञ्जतस्तस्य^२ अन्नं शब्दो महानभूत् । करणः कुरुशार्दूल अथ तं स प्रधावितः ॥४४
त्यक्त्वा स भोजनं यावश्चिकान्तो गृहबाह्यतः । अथ शब्दस्तिरोभूतः स भूयो गृहमागतः ॥४५
तपेव भाजनं गृह्यै आहारं कृतवान्नृप । भुक्तशेषं महाबाहो आहारं स तु भुक्तवान् ॥४६
भुक्त्वा स शतधा जातस्तस्मिन्नेव क्षणे नृप । तस्मादन्नं न राजेन्द्र अशनीयादन्तरा क्वचित् ॥४७
च चैवात्यशनं कुर्याम्न चोच्छिष्टः क्वचिद्वज्रेत् । रसो भवत्यत्यशनाद्वासाद्रोगः प्रवर्तते ॥४८
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवभिपूजनम् । न भवन्ति रसे जाते नराणां भरतर्षभ ॥४९
अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्णं चातिभोजनम् । अपुष्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तपरिवर्जयेत् ॥५०
यक्षभूतपिशाचानां रक्षसां च नृपोत्तम । गम्यो भवति वै विप्र उच्छिष्टो नात्र संशयः ॥५१
शुचित्वमाश्रयेत्स्माच्छुचित्वान्मोदते दिति । सुखेन चेह रमते इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥५२

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! बहुत दिन पहले की बात है, सतयुग में पुष्कर नामक नगर में धनवर्धन नामक एक वैश्य निवास करता था, जो धन धान्यादि से परिपूर्ण था । ४२। हे राजेन्द्र ! (एक बार) ग्रीष्मऋतु में वह अपने मित्र, बन्धु-बान्धव, पुत्र, भाई आदि के साथ वैश्वदेवादि का विधान सम्पन्न कर विविध प्रकार के भक्ष्य भोज्य पदार्थों का आहार कर रहा था कि बीच में ही अन्न शब्द हुआ जो उसे सुनाई पड़ा । हे कुरुवंश सिंह ! (धन वर्धन उस शब्द को सुनकर) उसी ओर दौड़ पड़ा । ४३-४४। अपने भोजन को छोड़कर जब तक वह घर से बाहर निकला तब तक वह शब्द तिरोहित हो गया, जिससे वह फिर अपने घर लौट आया । ४५। हे राजेन्द्र ! घर आकर उसने वही पात्र लेकर फिर आहार किया । हे महाबाहु उस शेष भोजन का ही भक्षण उसने किया । ४६। किन्तु भोजन करने के क्षण में ही वह सौ टुकड़ों में परिणत हो गया । हे राजेन्द्र ! इसलिए भोजन कभी भी बीच में व्यवधान करके नहीं करना चाहिये । ४७। इसीलिए कभी भी अधिक भोजन नहीं करना चाहिए और न जूठ मुँह रखकर कहीं जाना ही चाहिये । अत्यन्त ठूस ठूस कर भोजन करने से शरीर में रस की वृद्धि होती है, और रस से रोगों की उत्पत्ति होती है । ४८। हे भरतवर्ण ! शरीर में रस की वृद्धि होने पर स्नान, दान, जप, हवन और देव-पितृ-पूजा मनुष्यों द्वारा नहीं हो पाती । ४९। अत्यन्त भोजन करना आरोग्य, आयुष्य और स्वर्ग इन सबको न देने वाला है । उससे पुण्य की भी हानि होती है एवं लोक में भी द्वेष बढ़ता है । इसलिए (मनुष्य को) अत्यन्त भोजन करने की प्रवृत्ति को छोड़ देनी चाहिये । ५०। इसी प्रकार हे राजन् ! उच्छिष्ट ब्राह्मण यक्ष, भूत, पिशाच राक्षसों का गम्य बन जाता है, इसमें सन्देह नहीं है । ५१।

शतानीक उवाच

शुचिताभियात्कथं विप्रः कथं चाशुचिताभियात् । एतन्मे ब्रूहि विप्रेन्द्र कौतुकं परमं सम् ॥५३
 सुमन्तुरुवाच

उपस्थृत्य शुचिर्विप्रो भवते भरतर्षभ । दिधिवत्कुरुशार्दूल भवेदिधिपरो हृतः ॥५४
 शतानीक उवाच

उपस्पर्शविधिं विप्र कथय त्वं समाखिलम् । शुचित्वसाम्प्रयादेन आचान्तो ब्राह्मणो द्विजः ॥५५
 सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्ठोऽस्मि राजेन्द्र शृणु विप्रो यथा भवेत् । शुचिर्भरतशार्दूल विधिना येन वा त्रिभौ ॥५६
 प्रक्षाल्य हस्तौ पादौ च प्राइमुखोदाइमुखोऽपि वा । उपविश्य शुचौ देशे बाहुं कृत्वा च वक्षिणम् ॥५७
 जान्वन्तरे महाबाहो ब्रह्मसूत्रसमन्वितः^१ । सुसमौ चरणौ कृत्वा तथा दद्विशिखो नृप ॥५८
 न तिष्ठन्न च संजल्यंस्तथा चानवलोकयन् । न त्वरन्कुपितो वापि त्यक्त्वा राजन्सुदूरतः ॥५९
 प्रसन्नाभिस्तथाद्ब्रिस्तु आचान्तः शुचिताभियात् । नोषणाभिर्न सफेनाभिर्युक्ताभिः कलुषेण च ॥६०
 वर्णेन रसगन्धाभ्यां हीनाभिर्न च भारत । सबुद्बुदाभिश्च तथा नाचामेत्पण्डितो नृप ॥६१

अतएव शुद्धता को अपनाना चाहिए । शुद्धता से ही दिति प्रसन्न होती हैं । यनुष्य यहाँ पर भी सुखपूर्वक आनन्दित होता है । ऐसा वेदवाङ्मय में कहा गया है ॥५२

शतानीक ने कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! ब्राह्मण कैसे पर्वित्रता को प्राप्त होता है कैसे अपवित्रता को प्राप्त होता है, यह मुझे बताइये, मेरे मन में महान् कौतूहल हो रहा है ॥५३

सुमन्तु ने कहा—हे भरतवंश में उत्पन्न होने वाले कुरुशार्दूल ! ब्राह्मण उपस्पर्श करके पवित्र होता है तथा इसी से ही विधिपूर्वक विधिजाता होता है ॥५४

शतानीक ने कहा—हे ब्राह्मण ! तुम मुझे सारी उपस्पर्शविधि को बताओ । जिससे आचार्य ब्राह्मण एवं द्विष पवित्रता को प्राप्त करते हैं ॥५५

सुमन्तु ने कहा—हे भरतशार्दूल श्रेष्ठ राजेन्द्र ! तुमने सही पूछा है । मुझो, जैसे अथवा जिस विधि से ब्राह्मण पवित्र हो जाता है ॥५६ । अपने हाथ पैर को धोकर पूरब की ओर या उत्तर की ओर मुँह करके पवित्र स्थान पर वैठकर दाहिनी भुजा को दक्षिण की ओर करके, कन्धे पर यज्ञोपवीत (ब्रह्मसूत्र) को धारण करके अपने चरणों को समान करके शिखा को बाँध करके न तो बैठते हुए न तो बात करते हुए, न तो देखते हुए, न तो कुद होकर, न तो दूर से किसी वस्तु का परित्याग कर अत्यन्त निर्मल एवं समुज्ज्वल जल से आचमन करके, हे महाबाहु राजन् ! ब्राह्मण पवित्र हो जाता है । हे भरतवंशी राजन् ! न तो गर्भ, न तो फेनयुक्त, न तो कलुषित, न तो वर्ण एवं रसगन्ध से हीन तथा न तो बुद्बुद करती हुई जलविन्दुओं से पण्डित को आचमन करना चाहिए ॥५७-६१ । हे सम्माननीय राजन् ! ब्राह्मण के दाहिने

१. यज्ञसूत्रसमन्वितः ।

पञ्चतीर्थाति विप्रस्य श्रूयन्ते दक्षिणे करे । देवतीर्थं पितृतीर्थं ब्रह्मतीर्थं च मानद ॥६२
 प्राजापत्यं तथा चान्यतथान्यसौम्यमुच्यते । अङ्गुष्ठमूलोत्तरतो येयं रेखा महीपते ॥६३
 ब्राह्मं तीर्थं बदन्त्येतद्विष्णाद्या द्विजोत्तमाः । कायं कनिष्ठिकामूले अङ्गुष्ठग्रे तु दैवतम् ॥६४
 तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पित्र्यं तीर्थमुदाहृतम् । करमध्ये स्थितं सौम्यं प्रशस्तं देवकर्मणि ॥६५
 देवार्चाबिलहरणं प्रविक्षप्तमेव च । एतानि देवतीर्थेन कुर्यात्कुरुकुलोद्धृह ॥६६
 अन्ननिर्वयणं राजस्तथा सपदनं^१ नृप ! लाजाहोमं तथा सौम्यं प्राजापत्येन कारयेत् ॥६७
 कमण्डलूपस्पर्शनं दधिप्राशनमेव च । सैन्यतीर्थेन राजेन्द्र सदा कुर्याद्विचक्षणः ॥६८
 पितृणां तर्पणं कायं पितृतीर्थेन धीमता । ब्राह्मण चापि तीर्थेन सदोऽस्पर्शनं परम् ॥६९
 धनाङ्गुलिकरं कृत्वा एकाग्रः सुभना द्विजः । त्रिः कृत्वा यः पित्रेदापो^२ मुखशब्दविकर्जितः ॥७०
 शृणु यत्कलमाप्नोति प्रीणाति च यथा सुरान् । प्रथमं यत्पित्रेदप्य ऋग्वेदस्तेन तृप्यति ॥७१
 यद्द्वितीयं यजुर्वेदस्तेन प्रीणाति भारत । यत्तृतीयं सामवेदस्तेन प्रीणाति भारत ॥७२
 प्रथमं यन्मृजेदास्यं दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः । अथर्ववेदः प्रीणाति तेन राजश्वसंशयः ॥७३
 इतिहासपुराणानि यद्द्वितीयं प्रमार्जति । यन्मूर्धानि हि राजेन्द्र अभिदिङ्चति वै द्विजः ॥७४

हाथ में पाँच तीर्थ सुने जाते हैं जिन्हें देवतीर्थ, पितृतीर्थ, ब्राह्मतीर्थ, प्राजापत्यतीर्थ तथा सौम्यतीर्थ कहा जाता है । अंगूठे के मूल भाग से जो रेखा प्रारम्भ होती है उसे वशिष्ठ आदि द्विजोत्तम ब्राह्मतीर्थ कहा करते हैं । कनिष्ठिका के मूल में (कायतीर्थ) प्राजापत्यतीर्थ एवं अंगुलियों के अग्रभाग में देवतीर्थ विद्यमान है । ६२-६४। तर्जनी एवं अंगूठे के मध्य का भाग पितृतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है । देवकार्य में प्रशस्त सौम्यतीर्थ हाथ के मध्य में स्थित है । ६५। हे कुरुकुल में उत्पन्न ! देवता की अर्चना करना, बलि का हरण तथा उसका प्रक्षेपण करना इत्यादि कार्यों को देवतीर्थ से करना चाहिए । ६६। अंड का दान (भेट करना) सञ्चय तथा लाजाहोम (लावे की आहुति) इत्यादि सौम्य कार्य प्राजापत्य तीर्थ से करना चाहिए । ६७। हे राजेन्द्र ! कमण्डलु का उपस्पर्श एवं दधि का सेवन विचक्षण व्यक्ति को सदैव सौम्यतीर्थ से करना चाहिए । ६८। बुद्धिमान व्यक्ति के द्वारा पितरों का तर्पण (पिण्डदण्डन आदि) पितृतीर्थ से करना चाहिए । श्रेष्ठ उपस्पर्शको सदैव ब्रह्मतीर्थ से करना चाहिए । ६९। अंगुलियों की धना करने एकाग्र होकर सुन्दर मन से जो ब्राह्मण बिना मुख से शब्द किये हुए तीन बार जल को पीता है, वह जो फल प्राप्त करता है तथा जिस प्रकार देवताओं को प्रसन्न करता है, उसे सुनो । पहले जो जल पीता है उससे क्रग्वेद तृप्त होता है । हे भारत ! दूसरी बार जो जल पीता है उससे यजुर्वेद तृप्त होता है, तीसरी बार जो जल पीता है उससे सामवेद प्रसन्न होता है । ७०-७२। पहले पहल जो दाहिने हाथ के अंगूठे के मूलभाग से मुख को साफ करता है, हे राजन् ! उससे निश्चित रूप से अथर्ववेद प्रसन्न हो जाता है । ७३। जो दो बार मार्जन करता है । (कुशादि से जल छिड़कता है) उससे इतिहासपुराण प्रसन्न होते हैं । हे राजेन्द्र ! जो ब्राह्मण अपने मस्तक का अभिषेक करता है, तथा अपनी

१. संचयनम् । युताङ्गुलिकरम् । ३. अपः ४. स सम्यक्फलमाप्नोति ।

तेन प्रीणाति वै रुद्रं शिखामालम्य वै क्रषीन् । यदक्षिणी चालभते रविः प्रीणःति तेन वै ॥७५
 नासिकालम्बनाद्वायुं प्रीणात्येव न संशयः । यच्छ्रोत्रमालभेदिप्रो दिशः प्रीणाति तेन वै ॥७६
 दमं कुदेरं चरुणं दासदं द्वाग्रिमेव च । यद्वाहूमन्वालभते एतान्प्रीणःति तेन^१ वै ॥७७
 यश्चाभ्रिमन्वालभते प्राणानां ग्रन्थमेव च । तेन प्रीणाति राजेन्द्र इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥७८
 अंभिषिञ्चति यत्पादौ विष्णुं प्रीणाति तेन वै । यद्भूम्याच्छादकं दारि विसर्जयति मासन्द ॥७९
 वासुकिप्रमुखाश्रागांस्तेन प्रीणःति भारत । यद्विन्दवोऽन्तरे भूमौ पतन्तीह नराधिप ॥८०
 भूतग्रामं ततस्तस्तु प्रीणन्तीह चतुर्विधश् । अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या लभेत चक्षिणी नृप ॥८१
 अनामिकाइगुष्ठिकाम्यां नासिकामालभेन्त्यृप । भध्यमाद्गुष्ठाम्यां मुखं संस्तुशेद्वरतर्षभ ॥८२
 कनिष्ठिकाइगुष्ठकाम्यां कर्णमालभते नृप^२ । अङ्गुलीभिस्तथा बाहुमङ्गुष्ठेन तु मञ्जलम् ॥८३
 नाभिं कुरुकुलश्रेष्ठ शिरः सर्वाभिरेत्र^३ च । अङ्गुष्ठोप्रिम्भाबाहो प्रोक्तो वायुः प्रदेशिनी ॥८४
 अनामिका तथा सूर्यः कनिष्ठा भाघवा विभौ । प्रजापतिर्मध्यमा ज्ञेयः तस्माद्वरतसत्तम् ॥८५
 एत्वाचाम्य विप्रस्तु प्रीणाति सततं जगत् । सर्वाश्रद्ध देवतास्तात लोकांश्रापि न संशयः ॥८६
 तस्मात्पूज्यः सदा विग्रः सर्वदेवमयो हि चः । ब्राह्मण विप्रतीर्थेन नित्यकालमुस्तृते ॥८७

शिखा का स्पर्श करता है उससे रुद्र एवं क्रृषिगण प्रसन्न हो जाते हैं । जो अपनी आँखों का स्पर्श करता है, उससे सूर्य देवता प्रसन्न हो जाते हैं । ७४-७५। नासिका का स्पर्श करके वह निःसन्दिध रूप से वायु को प्रसन्न कर देता है । जो ब्राह्मण अपने कान का स्पर्श करता है, उससे दिशायें प्रसन्न हो जाती हैं । ७६। जो अपनी भुजाओं का स्पर्श करता है उससे यम, कुबेर, दसु, वरुण तथा अग्नि प्रसन्न हो जाते हैं । ७७। जो प्राणों की ग्रन्थि एवं नाभि का स्पर्श करता है, उससे राजेन्द्र प्रसन्न हो जाते हैं, ऐसा वैदिक साहित्य से बोध होता है । ७८। जो अपने पैरों का अभिषेक करता है उससे विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं । हे सम्मान्य ! जो पृथ्वी पर, चारों तरफ से ढक लेने वाले जल का विसर्जन करता है, उससे वासुकि प्रमुख सूर्य प्रसन्न हो जाते हैं । हे नरेश भारत ! जिसके जल की बैंदं पृथ्वी के अन्तरतम में गिरती है, उससे चारों प्रकार के भूतग्राम प्रसन्न हो जाते हैं । हे राजन् ! अङ्गुठे एवं अंगुली से आँख का स्पर्श करना चाहिए । ७९-८१। हे राजन् ! अनामिका एवं अङ्गूठे से नाक का स्पर्श करना चाहिए । हे भरतवंश में उत्पन्न ! मध्यमा एवं अङ्गुठे से मुख का स्पर्श करना चाहिए । ८२। हे राजन् कनिष्ठिका एवं अङ्गुठे से कान का स्पर्श करना चाहिए । अंगुली से हाथ का तथा अङ्गूठे से समूचे मण्डल का स्पर्श करना चाहिए । ८३। नाभि एवं सिर का स्पर्श सभी अंगुलियों से करना चाहिए । हे कुरुकुल में श्रेष्ठ महाबाहु ! अङ्गुठा अग्नि कहा गया है तथा तर्जनी वायु कही गयी है । हे श्रेष्ठ ! अनामिका सूर्य कही गयी है तथा कनिष्ठा इन्द्र कही गयी है । हे भरतवंश में श्रेष्ठ ! मध्यमा को प्रजापति कहा गया है । ८४-८५। हे बन्धु ! इस प्रकार आचमन करके ब्राह्मण समग्रलोक को, संसार को, देवताओं को निःसन्दिध रूप से निरन्तर प्रसन्न करता है । ८६। इसलिए सर्वदेवमय ब्राह्मण सदैव पूज्य हैं । ब्राह्मणिक प्रस्तुति तीर्थ के द्वारा प्रतिदिन काल का उपस्पर्श करना चाहिए इस पैत्रिक शरीर एवं वैदेशिक

कायत्रैदेशिकान्यां वा न पित्र्येण कदाचन । हृदयाभिः शूयते दिप्रः कण्ठमाभिस्तु मूर्मिपः ॥८८
 वैश्योद्धिः प्राशिताभिस्तु शूद्रः स्पृष्टाभिरन्ततः । उद्गृहे दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते बुधः ॥८९
 सब्बेन प्राचीनावीती निवीती कण्ठसंज्ञिते । मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् ॥९०
 अप्यु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मन्त्रवित् । उपवीत्याचमेन्नियमन्तर्जानु महीपते ॥९१
 एवं तु विप्रो ह्याचान्तः शुचितां याति भारतः प्रात्स्त्वेताः करमध्ये तु रेखा विप्रस्य भारत ॥९२
 गङ्गाद्याः सरितः सर्वा ज्ञेया भारतसत्ततः । यान्यह्यगुलिषु पर्वाणि गिरयस्तानि विद्धि वै ॥९३
 सर्वदेवमयो राजन्करो विप्रस्य हक्षिणः । हस्तोपस्पर्शनविधिस्तवाल्यतो महीपते ॥९४
 एषु सर्वेषु लोकेषु येनादान्तो दिवं द्रजेत् ॥९५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां
 ब्राह्मणपर्वाणि निधिर्गणं नाम तृतीयोऽध्यायः । ३।

(मन) द्वारा कभी भी नहीं । हृदय के गीतों (स्तोत्रों) द्वारा ब्राह्मण पवित्र (सन्तुष्ट) होते हैं । कण्ठ में विद्यमान गीतों (स्तोत्रों) द्वारा राजा पवित्र (सन्तुष्ट) होता है । ८७-८८। वैश्य जल से पवित्र होता है तथा अन्त में स्पष्ट मुक्त जल से शूद्र पवित्र होता है । दक्षिण (दाहिने) हाथ के उद्गृहे होने पर (उठने पर) विद्वान् लोग उपवीती की स्थिति बताते हैं । ८९। सब्ब होने पर प्राचीनावीती और कण्ठ में लटकते रहने पर निवीती कहते हैं । मेखला, चर्म, दण्ड, उपवीत और कमण्डलु—इनमें से किसी के नष्ट होने पर मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल प्राशन करने से पवित्रता प्राप्त होती है । हे राजन् ! यज्ञोपवीत को बाएँ कन्धे पर रखकर दाहिने हाथ को दोनों जानुओं के मध्य भाग में रखकर आचमन करने वाला ब्राह्मण पवित्रता को प्राप्त होता है । हे भरतवंश सिंह ! ये ब्राह्मण के हाथ में जो रेखाएँ दिखाई पड़ती हैं, उन्हें गङ्गा आदि पुण्य सलिला नदियाँ जानना चाहिये । उनकी अँगुलियों में पोर दिखाई पड़ते हैं उन्हें पुण्य पर्वत जानना चाहिये । ९०-९३। हे राजन् ! इस प्रकार ब्राह्मण का दाहिना हाथ सर्वदेवमय कहा है । हे महीपति ! हाथ से आचमन करने की विधि तुम्हें बतला चुका । ९४। इस प्रकार विधिपूर्वक आचमन करके इस सभी लोकों में निवास करने वाला स्वर्ग प्राप्त करता है । ९५

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मणपर्व में आचमनविधि
 नामक तीसरा अध्याय समाप्त । ३।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

प्रणवार्थसावित्रीमाहात्म्योपनयनविधिवर्णनञ्च

सुमन्तुरुखवाच

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विभीतये । राजन्यबन्धोद्दीर्विंशे वैश्यस्य अधिके ततः ॥१
 अमन्त्रिका सदा कार्या स्त्रीजां चूडा महोपते । संस्कारहेतोः कायस्य यथाकालं दिभागशः ॥२
 वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो नैगमः स्मृतः । निवसेहा गुरोर्वापि गृहे वाप्तिपरिक्षिया ॥३
 एष ते कथितो राज्ञौपनायनिको विधिः । द्विजातीनां महाबाहो उत्पत्तिव्यञ्जकः पर ॥४
 कर्मयोगमिदानीं ते कथयामि महाबल । उपनीय गुरुः शिष्यं प्रथमं शौचमादिशेत् ॥५
 आचारमयिकार्यं च सन्ध्योपासनमेव च । अद्यापयेत् सच्छिष्यान्सदानान्त उद्दमुखः ॥६
 ब्रह्माञ्जलिकरो नित्यमध्याप्यो विजितेन्द्रियः । लघुवासास्तथैकाग्रः सुमना सुप्रतिष्ठितः ॥७
 ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौ पूज्यौ गुरोः सदा । संहृत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥८
 व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसइप्रहणं गुरोः । सव्येन सव्यः स्पष्टव्यो दक्षिणे तु दक्षिणः ॥९

अध्याय ४

प्रणव के अर्थ, सावित्री के माहात्म्य तथा उपनयन की विधि का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! । ब्राह्मण का केशान्त संस्कार सोलहवें वर्ष में किया जाता है । क्षत्रियों का बाईसवें और वैश्य का तेर्वें वर्ष में करने का विधान है । १ हे महीपति ! स्त्रियों का चूडा संस्कार सर्वदा मंत्र रहित करना चाहिये । शरीर की रक्षा के लिए उसके संस्कारों का कालक्रमानुसार विभाग किया गया है । २ स्त्रियों का केवल वैवाहिक संस्कार वेदानुमित कहा जाता है । उक्त उपनयन संस्कार के पूर्व (ब्रह्मचारी) गुरु के घर पर निवास करे अथवा अपने ही घर पर अन्याधान करता रहे । ३ हे राजन् ! ब्राह्मणादि के उपनयन संस्कार को मैं बतला चुका । हे महाबाहु ! यह (उपनयन संस्कार) द्विजातीयों के लिए भावी उत्पत्ति का व्यंजक है । ४ हे महाबल ! अब मैं कर्मयोग के बारे में तुमसे बतला रहा हूँ । सर्वप्रथम गुरु शिष्य का उपनयन संस्कार करके शौच का आदेश करे । ५ फिर आचमन अग्नि कार्य और सन्ध्योपासन का उपदेश करे । आचार्य सर्वदा उत्तराभिमुख हो आचमन करके योग्य शिष्यों को पढ़ाये । ६ शिष्य सर्वथा अपनी इन्द्रियों को वश में रख ब्रह्माञ्जलि बाँधकर अध्ययन करे । लघु वस्त्र धारण करे । एकाग्रचित रहे । मन प्रसन्न रहे । ७ दृढ़ रहे । वेदाध्ययन के प्रारम्भ और समाप्ति पर सर्वदा गुरु के दोनों चरणों की पूजा करनी चाहिये । दोनों हाथों को जोड़कर रखना चाहिये । यही ब्रह्माञ्जलि कही जाती है । ८

शिष्य अपने हाथों को गुरु के चरणों (व्यत्यस्त) का पाणि से स्पर्श करना चाहिये अर्थात् उस समय अपने दाहिने हाथ से गुरु के दाहिने चरण का तथा बाएँ हाथ से बाएँ चरण का स्पर्श करना

अप्येष्यमाणं तु गुरनित्यकालमतन्द्रितः । अथीज्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति वारयेत् ॥१०
 ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावते च सर्वदा । ऋदत्यनोऽकृतं पूर्वं परस्तान्व विशीर्यते ॥११
 श्रूयतां चापि राजेन्द्र यथोङ्कारं द्विजोऽर्हति । प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः ॥१२
 प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्ततस्त्वेऽङ्कारमहति । अङ्कारलक्षणं चापि शृणुष्व कुरुनन्दन ॥१३
 अङ्कारं द्विष्टुकारं च मकारं च प्रजापतिः । वेदत्रयात् निर्गृह्ण्य भूर्भूवः स्वरितीते च ॥१४
 त्रिभ्य एव तु देवेभ्यः पादंपादमद्वृहत् । तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥१५
 एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम् । सन्ध्ययोरुभ्योविप्रो वेद पुण्येन युज्यते ॥१६
 सहस्रकृत्वस्त्वम्यस्य भृहिरेतत्त्रिकं द्विजः । महतोऽप्येनसो मासात्वचेवाहिर्दिष्टुमुच्यते ॥१७
 एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया । विप्रक्षत्रियविडधोनिर्हणां याति साधुषु ॥१८
 शृणुष्वैकमनाराजन्परम्भं ब्रह्मणो मुखम् । अङ्कारपूर्विकास्तिक्षेमहाव्याहृतयोऽव्ययाः ॥१९
 त्रिपदा चैव सावित्री विजेया ब्रह्मणो मुखम् । योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः ॥२०

चाहिये । १। सर्वदा पढ़ाते समय गुरु निरालस भाव से शिष्य को यह आज्ञा करे कि अब पाठ प्रारम्भ करो । और इसी प्रकार पाठ समाप्ति पर 'अब बन्द करो' ऐसी आज्ञा दे । १०।

ओंकार का स्वरूप—वेदाध्ययन करते समय आरम्भ और समाप्ति पर सदा प्रणव का उच्चारण करे । क्योंकि वेदाध्ययन के पूर्व ओंकार का उच्चारण न करने से पाठ व्यर्थ हो जाता है । और समाप्ति पर न करने से सारा पाठ विशीर्ण हो जाता है । १। हे राजेन्द्र ! सुनो, मैं बतला रहा हूँ कि ब्राह्मण को इस प्रणवोच्चारण करने की क्यों आवश्यकता होती है ? सुन्दर सरोवर अथवा नदी आदि के टट पर आसीन होकर भाव पूर्वके केवल तीन प्राणायाम करने से वह पवित्र हो जाता है, यही कारण है कि ब्राह्मण के लिए इसकी विशेष महत्ता है । हे कुरुनन्दन ! इस ओंकार के लक्षण को भी बतला रहा हूँ, सुनिये । १२-१३। (इस ओंकार के) अकार, उकार तथा मकार प्रजापति ने तीनों वेदों से तथा भूः, भुवः और स्वः को ग्रहण कर इन तीनों वेदों से ही इनके एक एक पादों का दोहन किया है । इस सावित्री की ये तीनों ऋचाएँ हैं । इन उपर्युक्त तीनों अक्षरों को व्याहृतिपूर्वक दोनों सन्ध्याओं के अवसर पर जप करने वाला ब्राह्मण वेदाध्ययन का पुण्य प्राप्त करता है । १४-१६। एकान्त में बाहर जाकर इस त्रिकृत्याहृति पूर्वक प्रणव का एक सहस्र बार जप करने वाला ब्राह्मण एक मास में घोर से घोर पाप से भी उसी प्रकार छूट जाता है जैसे सर्प अपने पुराने चर्म से । १७। इस ऋचा से तथा अपनी क्रिया से विहीन होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य सत्पुरुषों में निन्दा के पात्र बनते हैं । १८। हे राजन् ! आप एकाग्र मन से इसे फिर से सुन लीजिये कि ओंकारपूर्वक ये तीनों अक्षय महाव्याहृतियाँ ब्रह्मा का परमोत्तममुख हैं । 'तीनों चरणों वाली सावित्री को ब्रह्मा का मुख समझना चाहिये । जो ब्राह्मण निरालस भाव से तीन वर्षों तक प्रतिदिन इसका अध्ययन करता है वह आकाश की भाँति व्यापक मूर्तिमान् वायु का स्वरूप धारण कर परम ब्रह्म में

१. ओऽम् भूर्भूवः स्वः प्रथम पाद, तत्सवितुर्वरेण्यं भगो देवस्य धीमहि द्वितीय पाद तथा धियो योनः प्रचोदयात् तृतीय पाद है ।

स ब्रह्म परमम्भेति वायुभूतः खमूर्तिमन् । एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तपः ॥२१
 सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सुत्यं विशिष्यते । तपः क्रिया होमक्रिया तथा दानक्रिया नृप ॥२२
 अक्षयान्तः सदा राजन्यथाह भगवान्मनुः । अवरं स्वकरं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥२३
 विधिप्रजातसदा राजन्यथायज्ञो विलिष्यते : नानाविधैर्गुणोद्दीपैः सूक्ष्मास्थातैर्नृपोत्ततः ॥२४
 उपांशुः स्याल्लक्षणुणः सहन्त्रो ग्रानसः स्मृतः । ये पाकयज्ञाश्रत्वारो विधियज्ञेन चान्दिताः ॥२५
 सर्वे ते जन्यज्ञस्य कलं नार्हात्त योडशीम् । जपादेव तु संसिध्येद्वाह्यणो नात्र संशयः ॥२६
 कुर्यादन्यन्यं वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते । पूर्वा सन्ध्यां जपस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ॥२७
 पश्चिमां तु समासीनः सम्यग्क्षविभावनात् । दिनस्थादौ भद्रेत्पूर्वां शर्वर्यादौ तथा परा ॥२८
 सनकत्रा परा ज्ञेया अपरत् सदिवाकरा । जपस्तिष्ठन्यरतं सन्ध्यां नैशमेनो व्यपोहृति ॥२९
 अपरतं तु समासीनो मलं हन्ति दिवाङ्गतम् । नोपतिष्ठति यः पूर्वा नोपास्ते पश्चिमां नृप ॥३०
 स शूद्रवद्वहिष्कार्यः सर्वसमाद्विजकर्मणः : अपां समीपे नियतो नैत्यकं विधिप्रास्थितः ॥३१

विलीन हो जाता है। एकाक्षर (ओकार साक्षात्) पर ब्रह्म स्वरूप है; प्राणायाम सभी तपों में बढ़कर है । १९-२१। सावित्री से बढ़कर माहात्म्य किसी का नहीं है, मौन की अपेक्षा सत्यभाषण की विशेषता है। हे राजन् ! जैसा कि भगवान् मनु ने कहा, तपस्या, हवन एवं दान—ये सारी प्रणय क्रियाएँ सर्वदा अक्षय फलदायिनी होती हैं। इनके अतिरिक्त एकाक्षर प्रणव भी अक्षय फलदायी है, इसे साक्षात् प्रजापति ब्रह्मा का स्वरूप जानना चाहिये । २२-२३। हे राजन् ! हे नृपेत्तम विधानपूर्वक किये जाने वाले यज्ञ की अपेक्षा जप यज्ञ की विशेषता मानी जाती है। विधिप्रकार के गुणों एवं नामोच्चारण और सूक्ष्म से जप का कार्य उच्चारण के कारण उपांशु^१ जप का लाख गुना फल होता है, मानसिक जप का सहस्र गुणित फल स्मरण किया जाता है। जो विधि यज्ञों से समन्वित चारों पाक^२ यज्ञ हैं, वे सभी जपयज्ञ की सोलहवीं कला की भी योग्यता नहीं रखते। ब्राह्मण को जप से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है—इसमें सन्देह नहीं । २४-२६। कुछ दूसरा कार्य करे अथवा न करे पर वह ब्राह्मण कहलाता है क्योंकि वह जप यज्ञ करता है। प्रातःकाल सूर्य के दर्शन होने तक खड़े-खड़े गायत्री का जप करना चाहिये और उसे इसी प्रकार सायंकाल की सन्ध्या को भी भली-भाँति नक्षत्रों के आकाश में समुदित हो जाने तक बैठकर करना चाहिए। दिन के प्रारम्भ में पूर्व सन्ध्या और रात्रि के प्रारम्भ में पर सन्ध्या होती है। पर अर्थात् सायंकाल की सन्ध्या सनकत्रा और पूर्व अर्थात् प्रातःकाल की सन्ध्या सदिवाकरा जाननी चाहिए। परासन्ध्या का जप करने से रात्रि का तथा अपरा का जप करने से दिन का पापकर्म नष्ट होता है। हे नृप ! जो ब्राह्मण इन पूर्वा और परा सन्ध्याओं की उपासना नहीं करता वह द्विजाति के सभी अधिकारों से शूद्र के समान बाहर कर देने योग्य है। वसकी उपासना जलाशय के समीप संयमपूर्वक नित्यविधि के साथ करनी

१. बहुत धीरे-धीरे इस प्रकार जप करना, जिसमें कोई दूसरा न सुन सके और प्रत्येक अक्षर का स्पष्ट उच्चारण भी हो। अर्थात् अपने ही सुनने योग्य ।

२. दर्शपूर्णमासचारदि ।

सावित्रीमन्धस्थीयोत गत्वाऽरण्यं समाहितः । वेदोपकरणे राजन्स्वाध्याये चैव नैत्यके ॥३२
 नात्र दोषोस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु वा विज्ञो । नैत्यके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसूत्रं हि तत्त्वमृतम् ॥३३
 ब्रह्मग्रहतिहृतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् । श्लोकां यस्त्वधीयोत विद्यना नियतो द्विजः ॥३४
 तस्य नित्यं क्षरत्येवा पयो मेध्यं धृतं मधुः । अशिष्णुश्रूषणं भैक्षमधः स्यायां गुरोर्हितम् ॥३५
 आसमावर्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनो द्विजः । आचार्यपुत्रश्रूषां ज्ञानदो धार्मिकः गुरुः ॥३६
 आप्तः शत्तोऽश्वदः साधुः स्याध्यात्मा दश धर्मतः । नापृष्टः कस्यचिद्बूयाश्च चान्यायेन पृच्छतः ॥३७
 ज्ञानश्रियं हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् । अधर्मेण च एः प्राह यश्राधर्मेण पृच्छति ॥३८
 तप्येऽन्यतरः प्रैति विद्वेषं वा निगच्छति । धर्मर्थीं यत्र न स्यातां शुश्रूषा चापि तद्विद्धा ॥
 न तत्र विद्या वप्तव्या शुभं बीजमिवोषरे ॥३९
 विद्यैव सम्भवं कामं र्मतव्यं ब्रह्मवादिना । आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामीरिणे वरेत् ॥४०
 विद्या ब्राह्मणमित्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम् । असूयकाय मा प्रादात्तथा स्यां वीर्द्यपत्तमा ॥४१
 शेवं सुखमुशल्तीह केविज्ञानं प्रचक्षते । तौ धारयति वै यस्माच्छेवधिस्तेन सोच्यते ॥४२

चाहिए । २७-३१। अथवा अरण्य में जाकर समाहित चित हो इसका अध्ययन (जप) करना चाहिए । हे राजन् ! वेदोक्त नैत्यिक स्वाध्याय एवं हवन के मन्त्रों में अनध्याय का दोष नहीं लगता, क्योंकि ये सब ब्रह्मसूत्र कहे जाते हैं । ३२-३३। ब्रह्म अर्थात् वेदमन्त्रों का उच्चारण करना, शन्तोच्चारण पूर्वक आहुति देना, अनध्याय का विचार कर अध्ययन करना तथा वषट्कार करना पुण्य है । जो ब्राह्मण नियमपूर्वक सविधि एवं क्रचा का भी अध्ययन करता है, उसे वह (क्रचा) पवित्र दूध, धृत, मधु देती है । अग्नि की शुश्रूषा, भिक्षाटन, भूमिशयन, गुरु का हित (इन सब कर्तव्यों का पालन) उपनयन संस्कार से संस्कृत द्विज समावर्तन संस्कार पर्यन्त करे । आचार्य पुत्र, सेवक, ज्ञानदाता, धार्मिक, पवित्र यथार्थवक्ता, समर्थ, अन्नदाता, साधु प्रकृति वाले इन दशों को धर्मपूर्वक पढ़ाना चाहिए । विना पूछे किसी से कुछ न बोले और न अन्यायपूर्वक पूछे जाने पर ही बोले । ३४-३७

(अन्याय का जहाँ सम्बन्ध हो) उसे जानता हुआ भी मेधावी जड़ बनकर चुप रह जाय क्योंकि जो अधर्म से बोलता है अथवा जो अर्थमपूर्वक किसी से (कुछ कहलाने के लिए) पूछता है, उन दोनों में से एक मर जाता है अथवा (लोगों के साथ) शवुता को प्राप्त करता है । जिस शिष्य को पढ़ाने से धर्म अथवा अर्थ की प्राप्ति न हो और यथोचित शुश्रूषा भी न मिले, वहाँ पर ऊसर भूमि में अच्छे बीज की तरह विद्या को नहीं बोना चाहिये । ३८-३९। ब्रह्मवेता को विद्या ही के साथ भले मर जाना पड़े, किन्तु कठिन से भी कठिन आपत्ति आने पर भी वह अपात्र में विद्या को न बोये । ४०। विद्या ने ब्राह्मण के समीप आकर कहा कि तुम मेरी रक्षा करो, मैं तुम्हारी निधि हूँ मुझे ऐसे व्यक्ति को न देना, जो गुणों में भी दोष दिखलाता है । यदि तुम ऐसा करोगे तो मैं तुम्हारे लिए परम बलवती सिद्ध होऊँगी । ४१। कुछ लोग शेष शब्द का अर्थ सुख बतलाते हैं और कुछ ज्ञान बतलाते हैं, इन दोनों को यतः वह धारण करती है, अतः शेवधि नाम से उसकी प्रसिद्धि है । ४२। (विद्या ने आगे चलकर ब्राह्मण से कहा कि) तुम जिस ब्रह्मचारी को नियमनिष्ठ एवं पवित्र भावों तथा आचरण वाला समझना उसी परम सावधान चेता एवं निधि की यथार्थ रक्षा करने

यमेव तु शुचिं विद्यानिःश्चितं भ्रह्मचरिणम् । तस्मै मां ब्रूहि दिपाय निधिपायात्रमादिने ॥४३
भ्रह्म यस्त्वनुज्ञातसधीयानादवाप्यात् ॥४४

लौकिकं वैदिकं वा पि तथाध्यात्मिकमेव च । स याति नरकं घोरं रौरवं भीमदर्शनम् ॥४५
अणुमात्रात्मकं देहं षोडशार्थीमिति स्मृतम् । आदीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमन्वितादयेत् ॥४६
सत्त्वित्रीसारमात्रोऽपि वरो विप्रः त्रुयन्त्रितः । नायन्त्रितस्त्रिदेवोऽपि सदाशी सर्वविक्रीयी ॥४७
शत्यासनेध्याच्चरिते श्रेयसा न स्त्वाविशेत् । शत्यासनस्थश्चैवेनं प्रत्युत्थायाभिवादयेत् ॥४८
ऊर्ध्वं प्राणा हृत्कामन्ति द्रूनः स्थविर आनन्दते । प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्ताम्भतिपद्यते ॥४९
अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेवितः । चत्वारि सम्भाववर्धने आपुः प्रज्ञा यशो बलम् ॥५०
अभिवादपरो विप्रो ज्यायांसमभिवादयेत् । असौ नामाहमस्मीति त्वनाम परिकीर्तयेत् ॥५१
नामधेयस्य ये केविदभिवादं न जानते । तान्प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्त्यैव च ॥५२
भोः शब्दं कीर्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोभिवादने । नाम्नः स्वरूपभावो हि भो भाव ऋषिभिः स्मृतः ॥५३
आपुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने । अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षिरः प्लुतः ॥५४

वाले ब्राह्मण को ही मुझे सौंपना ॥४३। जो वेद का अध्ययन करते हुए, बिना उसकी आज्ञा से वेद-ज्ञान अथवा लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करता है, वह भयंकर रौरव नरक को जाता है ॥४४-४५। अणुमात्रात्मक देह (त्रूक्ष्म शरीर) को आठ तत्वों से निर्मित कहा गया है। जिससे ज्ञान प्राप्त करे उसका पहले (उठकर) अभिवादन करना चाहिए ॥४६। केवल सावित्री का ज्ञान रखने वाला भी संयमी ब्राह्मण जो अनियन्त्रितचित्त, सर्वभक्षी तथा सर्वविक्रीयी है उस त्रिवेदज्ञ ब्राह्मण से भी श्रेष्ठ है ॥४७

शत्या एवं आसन पर गुरु के सामने बैठकर अध्ययनादि कार्य करने वाला कल्याणभाजन नहीं होता । यदि शत्या पर स्थित भी हो तो गुरु के आने पर उठकर अभिवादन करे ॥४८। वृद्धों अर्थात् गुरुजनों के सामने आने पर युवकों के प्राण ऊपर की ओर खिंच उठते हैं अर्थात् बाहर निकल जाना चाहता है और अभिवादन करने से वह उनको पुनः प्राप्त करता है ॥४९। सर्वदा वृद्धों अर्थात् गुरुजनों की सेवा में निरत रहने वाला तथा उन्हें अभिवादन करने वाले की आयु, बुद्धि, यश और बल इन चार वस्तुओं की अभिवृद्धि होती है ॥५०। अपने से बड़े लोगों को प्रणाम करने से पूर्व ‘असौ नाम अहमस्मि’ मैं अमुक नामक व्यक्ति हूँ—इस प्रकार अपना परिचय देते हुए अभिवादन करे ॥५१। जो लोग अज्ञानता के कारण उपर्युक्त नामोच्चारणपूर्वक अभिवादन करने के अर्थ को न समझते हो उन्हें ‘मैं हूँ’ ऐसा स्पष्ट कहते हुए अभिवादन करें । सभी स्त्रियों में भी ऐसा ही व्यवहार करें ॥५२। अपने नाम का उच्चारण कर प्रणाम करते समय अन्त में ‘भोः’ अर्थात् अभिवादन में ‘असौ नाम अहमस्मि भोः’ शब्द का उच्चारण करना चाहिए । नाम का स्वरूप ही भोः शब्द का स्वरूप है—ऐसा ऋषियों ने बतलाया है ॥५३। अभिवादन करने पर ब्राह्मण को है सौम्य ! दीघार्यु हो, ऐसा आशीर्वाद देना चाहिए । उसके नाम के अन्त में अकार का उच्चारण करना चाहिए । नाम का पूर्वाक्षर प्लुत अर्थात् विमात्रिक उच्चारित होना चाहिए ॥५४।

यो न वेत्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् । नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्त्वैव सः ॥५५
 अभिवादे कृते यस्तु न करोत्यभिवादनम् । आशीर्वा कुरुशार्दूल स याति नरकं ध्रुवम् ॥५६
 अभीति भगवान्विष्णुवर्दियामीति शङ्करः । द्वावेव पूजितौ तेऽयः करोत्यभिवादनम् ॥५७
 ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षब्रन्धुमनामयम् । वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रसारोग्यमेव तु !!५८
 त वाच्यो दीक्षितो नामः यवीयानपि यो भवेत् । भो भवत्पूर्वक्त्वेन इति: स्वायम्भुवोऽङ्गवीत् ॥५९
 परपत्नी तु या राजन्रसम्बद्धा तु योनितः । वक्तव्या भवतीत्येवं सुभगे भगनीति च ॥६०
 पितृव्यान्मातुलान्राजञ्छवशुरानृतिविजो गुरुन् । असादहर्मिति ब्रूयात्प्रत्युत्याय जघन्यजः ॥६१
 मातृष्वसा^१ मातुलानी श्वशूरथ पितृष्वसा : सम्पूज्या गुरुपत्नी च समास्ता गुरुभार्यया ॥६२
 ज्येष्ठस्य भ्रातुर्या भार्या सवर्णहिन्यहिन्यपि । ^२पूजयन्नश्रयतो विप्रो याति विष्णुसदो नृप ॥६३
 प्रवासादेत्य सम्पूज्या ज्ञातिसम्बन्धियोपितः । पितृर्या भगिनी राजन्मातुञ्चापि विशोम्पते ॥६४

जो ब्राह्मण अभिवादन करने पर प्रत्यभिवादन (अभिवादन का उत्तर) करना नहीं जानता, उसका अभिवादन विद्वान् पुरुष न करें, क्योंकि जैसे एक शूद्र है, वैता ही वह भी है ॥५५

जो ब्राह्मण किसी के अभिवादन करने पर प्रत्यभिवादन नहीं करता, अथवा आशीर्वाद नहीं देता, है कुरुक्षण शार्दूल ! वह निश्चय ही नरकगामी होता है ॥५६। अभिवादयामि (आपको प्रणाम कर रहा हूँ) इस वाक्य में 'अभि' इस शब्द से भगवान् विष्णु और 'वादयामि' इस शब्द से शंकर—ये दोनों देवता उसमें पूजित हो जाते हैं, जो अभिवादन करता है ॥५७

ब्राह्मण को अभिवादन करने पर 'कुशल' शब्द कहकर वार्ता पूछनी चाहिये । क्षत्रियों 'अनाशय' (स्वस्थ) कहकर वार्ता पूछनी चाहिए । वैश्य का क्षेम (धन का संरक्षण, और परायेधन का अपहरण न करना) कुशल और शूद्र का आरोग्य पूछना चाहिये ॥५८। अपने से छोटा भी हो यदि वह दीक्षित हो चुका है तो उसे नाम लेकर नहीं पुकारना चाहिये, प्रत्युत उसे पुकारते समय आदर व्यक्त करने के लिए भो अथवा भवत् (आप) शब्द का प्रयोग करना चाहिये । ऐसा स्वायम्भुव मनु ने बतलाया है ॥५९। हे राजन् ! परकीय स्त्री के साथ जिसका अपने साथ यौन सम्बन्ध नहीं है, बातचीत करते समय 'भवती' (श्रीमती) सुभगे अथवा भगिनि (ऐसे) शब्दों का उच्चारण करना चाहिये ॥६०। हे राजन् ! अपने चाचा, मामा, श्वसुर, पुरोहित एवं गुरुजनों को उठकर 'असौ अहम्' (मैं यह हूँ) ऐसा सादर निवेदन करते हुए प्रणाम करें, क्योंकि उनके सामने वह स्वयं छोटा है ॥६१। मौसीं, मामी, सास, फूआ और गुरु पत्नी ये सभी गुरु पत्नी के ही समान पूज्य हैं ॥६२। हे राजन् ! सर्वाण ज्येष्ठ भाई की जो स्त्री हो उसकी प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये । नियतेन्द्रिय होकर इस प्रकार का आचरण करने वाला ब्राह्मण विष्णुलोक को प्राप्त करता है ॥६३। परदेश से लौटकर अपनी जाति बिरादरी की स्त्रियों की भी सादर पूजा करनी चाहिये । हे राजन् ! हे भरत कुल श्रेष्ठ ! कुरुकुलनन्दन !

१. माता मातृष्वसा चैव । २. पुरुषोत्तम ।

आत्मनो भगिनी या च ज्येष्ठा कुलकुलोद्धृतः । सदा स्वमातृवद्वृतिमातिष्ठेद्धूरतोत्तमः ॥६५
 गरीयसी ततस्ताभ्यो नाता ज्ञेया नराधिप । पुत्रामित्रभागिनेया द्वष्टव्या ह्यात्मना समाः ॥६६
 दशाब्दाल्यं पौरसंश्वं पञ्चाब्दाल्यं कलाभृताम् । अब्दपूर्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेनापि स्वयोनिषु ॥६७
 ब्राह्मणं दशवर्षं च शतवर्षं च भूमिपम् । पितापुत्रौ विजानीयाद्ब्राह्मणस्तु तथोः पिता ॥६८
 इत्येवं क्षत्रियपिता त्रैश्यस्यापि पितामहः । प्रपितामहश्च शूद्रस्य प्रोक्तो विष्णो मनीषिभिः ॥६९
 विनं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी । एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यद्वृत्तरम् ॥७०
 पञ्चानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवत्ति च । दस्य स्युः सोऽत्र जानार्हः शूद्रोऽपि दशर्मो गतः ॥७१
 नक्षिणो दशमीस्थस्य रोत्तरं भारिणः^१ स्त्रियाः । स्नातकस्य तु राजश्च बन्धा देयां वरस्य च ॥७२
 एषां समागमे तात पूज्यौ स्नातकपार्थिवौ । आत्मां समागमे राजस्नातको नृपमानभाक् ॥७३
 अध्यापयेद्यस्तु शिष्यं कृत्वोपनयनं द्विजः । सरहस्यं सकल्पं च वेदं भरतसत्तम ॥

अपने पिता की बहिन, माता की बहिन, अपनी बड़ी बहिन, इन सबके साथ सर्वदा माता के समान व्यवहार करना चाहिये । ६४-६५। इन सबों से माता अधिक श्रेष्ठ है—ऐसा विचार भी रखना चाहिये । हे नराधिप, अपने पुत्र, मित्र तथा भाजे को सर्वदा अपने ही समान देखना चाहिये । ६६। एक ग्राम में निवास करने वाले के साथ दस वर्ष में मित्रता कही जाती है । कलाकारों अर्थात् कला से जीविका उपार्जित करने वालों के साथ पाँच वर्ष में मित्रता कही जाती है, श्रोत्रियों के साथ तीन वर्ष में मित्रता होती है, किन्तु अपने कुल अथवा परिवारादि के सम्बन्ध में बहुत स्वल्प काल (दो वर्ष) में ही मित्रता सम्पन्न होती है । ६७। दस वर्ष की अवस्था का ब्राह्मण सौ वर्ष की अवस्था का क्षत्रिय इन दोनों को परस्पर पिता पुत्र की भाँति जानना चाहिये । इन दोनों में ब्राह्मण पिता है । और इस प्रकार वह दस वर्षीय ब्राह्मण क्षत्रिय का तो पिता है, वैश्य का पितामह और शूद्र का प्रपितामह है, मनीषियों ने इस विषय में ऐसा ही निर्णय दिया है । ६८-६९। धन, बन्धु, अवस्था, कर्म और विद्या—ये पाँच माननीय होने के कारण होते हैं, (अर्थात् सम्मान के यही कारण हैं) । इनमें एक की अपेक्षा दूसरा, दूसरे की अपेक्षा तीसरा, अर्थात् उत्तरोत्तर एक दूसरे से अधिक श्रेष्ठ हैं । ७०। तीनों उच्च जातियों में ये पाँचों गुण जिनमें अधिक मात्रा में हों, वही सम्मान का पात्र होता है, शूद्र भी यदि अपनी दसवीं अवस्था पर है, अर्थात् बहुत बढ़ हो चुका है, तो वह भी सम्माननीय है । ७१। रथ चलाने वाले अतिवृद्ध रोगी, भारवाहक, स्त्री, स्नातक और राजा एवं (विवाह करने के लिए जाते हुए) वर इनके जाने के लिए मार्ग छोड़ देना चाहिये । ७२। हे राजन् ! उन सबों के एकत्र समागम होने पर स्नातक और राजा—ये दो पूजा के योग्य हैं । इन दोनों के साथ समागम में स्नातक राजा से भी सम्मान का अधिकारी है (अर्थात् वही सर्वप्रथम पूज्य है) । ७३

जो ब्राह्मण उपनयन संस्कार सम्पन्न कर शिष्य को सरहस्य तथा कल्प समेत वेद का अध्यापन

तमाचार्यं महाबाहो प्रवदिन्ति मनीषिणः

॥७४

एकदेशं तु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः । योऽध्यापयति वृत्त्यर्थमुपाध्यायः स उच्यते ॥७५
 निषेकादीनि कार्याणि यः करोति नृपोत्तमः । अध्यापयति चान्येन स विप्रो गुरुरुच्यते ॥७६
 अग्न्याधेयं पाक्यज्ञानान्विष्टोमादिकान्मत्सान् । यः करोति वृतो यस्य स तस्यत्विगृहोच्यते ॥७७
 य आवृणोत्पवितश्च ब्रह्मज्ञा श्रवणावुभौ । स माता स पिता ज्ञेयस्तं न दुहोत्कथञ्चन् ॥७८
 उत्पाद्यायान्दशाचार्यं आचार्याणां शतं पिता । सहक्षेण पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥७९
 उत्पादकब्रह्मादाश्रोरीयान्ब्रह्मदः पिता । ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥८०
 कामान्नातः पिता चैनं यदुत्पादयतो मिथः । सम्मूतिं तस्य तां विद्याद्यदोनावभिजायते ॥८१
 आचार्यस्तस्य तां जातिं विधिदेवपारगः । उत्पादयति सावित्रा सा सत्या लाङ्जरामरा ॥८२
 उपाध्यायमादितः कृत्वा ये पूज्याः कथितास्तत्वं । महागुरुर्भाबाहो सर्वेषामधिकः स्मृतः ॥८३

करता है, हे महाबाहु ! मनीषी पण्डित लोग उसे 'आचार्य' कहते हैं ॥७४

वेद की कोई शास्त्रा, अर्थवा वेदाङ्गों को जो अपनी जीविका निर्वाह के लिए अध्यापन करता है, वह 'उपाध्याय' कहा जाता है ॥७५

हे नृपेत्तम ! जो गर्भधानादि संस्कार कर्म करता है, और अन्नादि से पालन करते हुए विद्याध्ययन करता है, वह ब्राह्मण 'गुरु' कहा जाता है ॥७६। अग्न्याधान पाक्यज्ञादि तथा अग्निष्टोम प्रभुति यज्ञों को वरण लेकर जो सम्पन्न करता है, वह इस लोक में 'ऋत्विक्' कहा जाता है ॥७७। जो शुद्धस्वरादि को उच्चारणपूर्वक दोनों कानों को भरता है (अर्थात् सिसाता है) उसी को माता और पिता अर्थात् अध्यापक जानना चाहिये, उनके साथ कभी द्वोह भावना नहीं रखनी चाहिये ॥७८। उपाध्याय से दस गुना अधिक सम्मान एवं प्रतिष्ठा आचार्य की है, आचार्य से सौ गुना अधिक सम्मान पिता है । पिता की अपेक्षा सहस्र गुणित अधिक सम्मान माता का है ॥७९। उत्पन्न करने वाले और वेद ज्ञान प्रदान करते वाले इन दोनों में ब्रह्मज्ञान प्रदान करने वाला ही पिता और श्रेष्ठ है, क्योंकि ब्रह्मज्ञान के लिए ब्रह्म अर्थात् वेद जानने के लिए जन्म अर्थात् उपनयन संस्कार ही इह लोक परलोक—दोनों में शाश्वत कल्पाण देने वाला है ॥८०। माता और पिता तो परस्पर कामना से उसकी उत्पत्ति करते हैं । जिसके द्वारा वह माता के गर्भ में आकर स्वरूप धारण करता है ॥८१। विधिवत् वेदों का पारगामी आचार्य उसको ही सावित्री का दान करके जो जाति जन्म देता है वह सत्य अजर एवं अमर है ॥८२। महाबाहो ! ऊपर मैंने जिन उपाध्याय आदि पूज्य वर्गों की चर्चा की है, उन सबों में महागुरु श्रेष्ठ कहा जाता है ॥८३। एक लाख अधिक गुण वाले

सहस्रशतसंख्योऽसावाचार्याणामिदं मतम् । चतुर्जामिपि वर्णानां स महागुरुरुच्यते ॥८४
शतानीक उवाच

य एते भवता प्रोक्ता उपाध्यायमुखः द्विजः । विदिता एव मे जर्वे न महागुरुरेद हि ॥८५
सुमन्तुरुवाच

जयोपजीदी यो विप्रः स महागुरुरुच्यते । अष्टदशपुराणानि रामस्य चरितं तथा ॥८६
विष्णुधर्मादयो धर्माः शिवधर्मात्रं भारत । कार्णं वेदं पञ्चमं तु यन्महाभारतं स्मृतम् ॥८७
श्रौताः^१ धर्मात्रं राजेन्द्र नारदोक्तं महीपते । जदेति नाम एतेषां प्रवदत्ति मनीषिणः ॥८८
एवं विश्रकदम्बस्य धारकः^२ प्रवरः स्मृतः । यस्त्वेतानि समस्तानि पुराणानीह विन्दति ॥८९
भारतं च महाबाहो ज्ञे सर्वज्ञे मतो नृणाम् । तस्मात्स पूज्यो राजेन्द्र वर्णविप्रादिभिः सदा ॥९०
किं त्वया न श्रुतं वाक्यं यदाह भगवान्निदभुः । अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः ॥
तमपीह गुरुं विद्याच्छ्रुतोपक्रिया तया^३ ॥९१

ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता स्वधर्मस्य च शास्त्रिता । बालोऽसि विप्रो वृद्धस्य पिता भवति धर्मतः^४ ॥९२
अध्यापयामास पितृच्छिशुराङ्गिरसः कदिः । पुत्रका इति होवाच जानेन परिगृह्ण तान् ॥९३
ते तर्थमपृच्छत्त देवानागतमन्यवः । देवाश्रेतान्समेत्योच्चुर्णाय्यं वै शिशुशक्तवान् ॥९४

है—ऐसा आचार्यों का मत है । वह महागुरु चारों वर्णों में कहा जाता है । ८४

शतानीक बोले—आपने उपाध्याय प्रभृति जिन ब्राह्मणों की अभी चर्चा की है, उन सबको तो मैं जानता हूँ किन्तु महागुरु को नहीं जानता । ८५

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! जो ब्राह्मण ‘जय’ से जीविका उपार्जित करने वाला है । वही महागुरु कहा जाता है । (अब सुनिये कि जय का क्या तात्पर्य है) अठारहों पुराणं, भगवान् रामचन्द्र के पुण्य चरितं, विष्णु तथा शिव सम्प्रदाय के धर्मं, कृष्ण द्वैपायन का पाँचवा वेद, जिसे लोग महाभारत भी कहते हैं, हे राजेन्द्र ! नारद के कहे गये श्रौत धर्म—इन सबों को पण्डित लोग जय नाम बतलाते हैं । ८६-८८। जो इन समस्त पुराणादि एवं महाभारत को भलीभांति अधिगत कर लेता है, वह ब्राह्मण समुदाय का धारक (अध्यक्ष) नेता एवं श्रेष्ठ जन कहा जाता है । हे महाबाहु ! मनुष्यों में वह सर्वज्ञ समझा जाता है । हे राजेन्द्र ! यही कारण है कि वह विप्रादि वर्णों द्वारा सर्वदा पूजनीय है । ८९-९०

क्या तुमने वह बात नहीं सुनी है, जिसे परमैश्वर्यशाली भगवान् ने स्वयं कही है । थोड़ा या बहुत, वेद ज्ञान के बारे में जो कोई उपकार करता है, उसे भी इस वेद ज्ञान के सहायक होने के नाते इस लोक में गुरु जानना चाहिये । ९१। ब्रह्मज्ञान के विषय में जन्म देने वाला अर्थात् वेदज्ञान कर्ता और अपने धर्म का पालक विप्र बालक होकर भी वृद्ध धर्मतः पिता होता है । ९२। आंगिरस (अंगिरा के पुत्र) कवि ने शैशवावस्था में अपने पितरों को जान का उपदेश किया और यह बात जानते हुए भी कि

१. सौरा: २. वाचकः ३. मिथः ४. धार्मिकः ।

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः । अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येद तु मन्त्रदम् ॥१५
 पितामहेति जयदमित्युच्चते दिवौकसः । जयो मन्त्रास्तथा वेदा देहमेकं त्रिधा कृतम् ॥१६
 नहायनैर्न यत्तिर्न मित्रेण न बन्धुभिः । क्रष्णश्वकिरे धर्मं याज्ञूचानः स नो महान् ॥१७
 ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च विशापते । ज्येष्ठं दन्वदत्तिं राजेन्द्रं सन्देहं शृणु वै यथा ॥१८
 ज्ञानतो वीर्यतो रजत्थनतो जन्मतस्तथा । शीलतस्तु प्रधाना ये ते प्रधाना मता भन ॥१९
 न तेन स्थविरो भवति येन । स्य पालतं शिरः । यो वै पुवाप्यधीयानस्त देवाः स्थविरं विदुः ॥२००
 यथा काष्ठलमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः । यश्च विग्रोऽनधीयानस्त्यप्यस्ते नाम^१ बिश्रुति ॥२०१
 यथा योषाऽफला त्व्रीयु यथा गौर्गविं चाफला । यथा चाज्ञेऽफलं दानं यथा तिग्रोऽनृचोऽफलः ॥२०२
 वैश्वदेवेन ये हीना आतिथ्येन विवर्जितः । सर्वे तु वृजला ज्ञेयाः प्राप्तवेदा अपि द्विजाः ॥२०३
 नानृग्राहणो भवति न वणिङ्न कुशोलियः । न शूद्रः प्रेषणं कुर्वन्नस्तेनो न चिकित्सकः ॥२०४

ये हमारे पितर हैं, उनको पुत्र कहकर बुलाया । १३। उनके इस व्यवहार से कुद्ध पितरगण ने देवगणों से इसका कारण पूछा । देवताओं ने उन्हें एकनित कर उनसे कहा कि शिणु (कवि) ने अप्य लोगों को उचित ही कहा है । १४। क्योंकि जो अज्ञ होता है वही बालक है और जो मंत्र का उपदेश करता है, वही पिता होता है । लोग अज्ञ को बालक, मन्त्रदाता को पिता तथा जयदाता (उक्त महाभारत पुराण, रामायाणादि के उपदेशक) को पितामह कहते हैं—ऐसा देवताओं ने उन पितरों से कहा । जय, मंत्र तथा वेद—ये तीनों एक ही शरीर के तीन भाग किये गये हैं । १५-१६। क्रृष्णियों ने धर्म की व्यवस्था अवस्थां में बहुत वर्जों के होने से, बाल पक जाने से, मित्र अथवा बंधु होने से नहीं की, जो षड़ज्ञवेद का अधिकारी प्रवक्ता है, वही हम सबों में महान माना गया है । १७। हे राजेन्द्र ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन चारों जातियों में जिसे ज्येष्ठ कहते हैं, उसे बतला रहा हूँ, सुनी । १८। हे राजन् ! (ब्राह्मणों में) ज्ञान से ज्येष्ठ होते हैं, (क्षत्रियों में) पराक्रम से, (वैश्यों में) धन से, एवं (शूद्रों में) जन्म से और शील से ज्येष्ठ माने जाते हैं—ऐसा हमारा मत है । १९। यदि किसी के शिर के बाल पक गये हैं तो वह उससे वृद्ध नहीं हो जाता जो जवान है और षड़ज्ञ वेदों का परिशीलन करने वाला है वही वृद्ध है क्योंकि देवता लोग उसी को वृद्ध जानते हैं । २०। निंद्य ब्राह्मण जैसे काष्ठ का बना हुआ हाथी और चमड़े का मुँग केवल नामधारी रहता है, उसी प्रकार बिना अध्ययन का ब्राह्मण भी नामधारी रहता है—ये तीनों केवल नाम धारण करते हैं । २१। जैसे नपुंसक स्त्रियों के साथ स्त्री (संतान उत्पन्न करने में) विफल है, गौओं के साथ वंद्या गौ विफल है और मूर्ख को दान देना विफल है, उसी तरह वेद विहीन ब्राह्मण भी विफल है । २२। किन्तु वेद प्राप्त करने वाले भी वै द्विज शूद्र हैं, जो बलिवैश्वदेव, और आतिथ्य सत्कार से विमुख रहते हैं । २३

जिस प्रकार वेदज्ञान विहीन ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है, उसी प्रकार वणिक वृत्ति करने वाला, नट व कथक की वृत्ति से जीविका प्राप्त करने वाला, दूसरे की सेवा करने वाला या अन्य प्रकार का शूद्र व्यापार करने वाला, चोरी करने वाला तथा चिकित्सा करने वाला भी ब्राह्मण नहीं है । २४।

१. नामधारकाः ।

अव्रता हृनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः । तं ग्रामं दण्डयेद्वाजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥१०५
 सन्तुष्टो यत्र वै विप्रः सप्तप्रिकः कुरुनन्दन ! याति सत्कल्यतां वेदैर्देवैरेवं हि भाषितम् ॥१०६
 वेदैरुत्तं यथा वीर सुरज्येष्ठमुपेत्य वै । वेपन्ते ब्राह्मणा भूमावभ्यस्यन्ति हृनश्चिकाः ॥
 क्लिश्यते ते किमर्थं हि मूढा वै फलकाञ्छया ॥१०७
 अनुष्ठानदिहेनानामस्मानभ्यस्ततां भुवि । क्लेशो हि केवलं देव नाम्नदभ्यस्ते फलम् ॥१०८
 अनुष्ठानं परं देवमस्मत्स्वभ्यस्तात्सदाऽः । इत्येवं राजसाद्वूल वेदा ऊर्चुर्हि वेधसन् ॥
 तस्माच्च देवाभ्यसनादनुष्ठानं परं प्रतम् ॥१०९
 चत्त्वारो वा त्रयो वापि दद्बूयुवेदपारगाः । स धर्म इति विजेयो नेतरेषां सहस्रशः ॥११०
 यद्वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममजानतः^१ : तत्पापं शतया भूत्वा दक्षत्वेनेवानुगच्छति ॥१११
 शौचाहीने वत्तभ्रष्टे विषे देवविवर्जिते । दीयमानं रुदत्यन्नं कि मया दुष्कृतं कृतम् ॥११२
 जपोपजीविने दत्तं यदारात्मनं प्रपश्यति । नृत्यति स्म तदाराजनकरावुद्धृत्य भारतः ॥११३

जहाँ पर बतविहीन, बिना पढ़े लिखे, भिक्षा पर जीविका निर्वाहित करने वाले ब्राह्मण निवास करते हैं, उस ग्राम के ऊपर राजा को दण्ड लगाना चाहिये, क्योंकि वह चोरी वृत्ति को प्रोत्साहन देने वाला (ग्राम) है । १०५। हे कुरुनन्दन ! जिस ग्राम में ब्राह्मण सन्तुष्ट हों वह ग्राम सामिनिक (यज्ञ भूमि) है क्योंकि उसकी सफलता वेद से होती है—ऐसा देवताओं ने बतलाया है । १०६। हे वीर ! वेदों ने देवताओं में सर्वश्रेष्ठ पितामह ब्रह्मा के पास जाकर इस प्रकार निवेदन किया था । हे देव ! पृथ्वी पर ब्राह्मण इसलिए दुखी होते हैं कि आग्निक लोग वेदों का अम्यास करते हैं । वे मूर्ख (वेदाभ्यास द्वारा) फल की आकांक्षा करके क्यों देकार में कष्ट भोगते हैं? । १०७। अनुष्ठान से हीन होकर केवल हमारा (वेद) अम्यास करने से तो केवल कष्ट मिलेगा क्योंकि (कोरे) वेदाभ्यास से कोई फल नहीं मिलता । १०८। हे देव ! सर्वदा वेदाभ्यास करने से क्रियाओं का अनुष्ठान श्रेष्ठ होता है । हे राजसिंह । वेदों ने इस प्रकार की बातें ब्रह्मा जी से कहीं । अतः वेदाभ्यास से (उनमें कहे गये आग्निहोत्रादि का) सदनुष्ठान श्रेष्ठ है—ऐसा हमारा भी मत है । १०९। वेदों के पारञ्जत विद्वान् चार अथवा तीन ही जो भी कुछ करें वही धर्म है, उनके अतिरिक्त ऐसे सहस्रों लोग जो वेदों के अधिकारी नहीं हैं, व्यवस्था करें तो वह धर्म नहीं कहा जा सकता । ११०। धर्म के माहात्म्य को न जानने वाले अज्ञानावृत्त मूर्ख लोग (धर्म के विषय में) जो कुछ उलटी-पलटी बातें कहते हैं वह सैकड़ों पापों के रूप में (उनके) बोलने वाले के ही पीछे-पीछे चलता है । १११। वेदविवर्जित, शौचाचार विहीन, द्रव नियमादि से भ्रष्ट ब्राह्मण को दिया जाने वाला अन्तु रोता है कि 'हाय मैंने ऐसा कौन दुष्कर्म किया (जो इस पापात्मा के) हाथों पड़ा । ११२। हे भरतकुल श्रेष्ठ ! जप द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले को अपने को दिये जाते अप्न जब देखता है तो दोनों हाथों को ऊपर (उठाकर) अपने सीधार्य पर नाच उठता है । ११३

विद्वातपोन्मां सम्पङ्गे ब्राह्मणे गृहभागते । कीउन्त्यैवधयः सर्वा यास्यामः परसां गतिम् !!११४
 'अवतानाममन्त्राणामजपानां च भारत । प्रतिप्रहो न दातव्यो न शिलातारयेच्छिलाम् !!११५
 श्रोत्रियायैव देयानि हृत्यकश्चानि नित्याः । अश्रोत्रियाय दत्तानि न पितृप्राप्तिष्ठितः !!११६
 यस्य चैव गृहे मूर्खो द्वारे चापि बहुश्रुतः । बहुश्रुताय दातव्यं नास्ति मूर्खव्यतिक्रमः !!११७
 ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति मूर्खे जपविद्वर्जिते । ज्वललत्तमपिमुत्तृज्य न हि भस्मनि हृयते !!११८
 न चैतदेव मन्यन्ते पितरो देवतास्तथा । सगुणं निर्युणं चापि ब्राह्मणं दैवतं परम् !!११९
 नातिक्रमेद्गृहसीनं ब्राह्मणं विप्रकर्मणिः । अतिक्रम्भवाहो रौरवं याति भारत !!१२०
 गायत्रीमात्रसारोऽपि ब्राह्मणः पूज्यतां गतः । गृहात्मो विशेषेण न भवेत्प्रतितस्तु सः !!१२१
 दान्यशून्यो यथा ग्रामो यथा कूपश्च निर्जलः । ब्राह्मणानधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः !!१२२
 पस्त्वेकपद्गत्यां विषयमं ददाति स्नेहाद्वयादा यदि वार्थहेतोः ।

बेदेषु दृष्टमृषिभिश्च गीतं तां ब्राह्महत्यां मुनयो बदन्ति ॥१२३

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्वेतोऽनुशासनम् । वाक्चैव मधुर इलङ्गा प्रयोज्या धर्मसीप्तता ॥१२४

हे राजन् ! वह अन्न विद्या एवं तपस्या से सुसम्पन्न ब्राह्मण के अपने घर आने पर समस्त औषधियाँ (अन्नादि) क्रीड़ा करने लगती हैं कि हम सब परम गति प्राप्त करेंगी ॥१४॥ हे भारत ! जो व्रत नियमादि के पालन करने वाले नहीं हैं, मंत्र नहीं जानते, जप नहीं करते, उन्हें कभी दान नहीं करना चाहिये, क्योंकि एक शिला कभी भी दूसरी शिला को नहीं तार सकती ॥१५॥ सर्वदा हृत्य, कव्यादि श्रोत्रिय ब्राह्मणों को देना चाहिये, अश्रोत्रियों को दिया गया हृत्य, कव्यादि न देवताओं को प्राप्त होता है न पितरों को ॥१६॥ जिसके घर में मूर्ख हैं और बहुश्रुत विद्वान् दूरी पर हैं, उसे भी बहुश्रुत को ही बुलाकर दान देना चाहिये, इससे मूर्ख का व्यतिक्रम नहीं होता । (अर्थात् मूर्ख के अपमान की कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥१७॥ जप रहित मूर्ख ब्राह्मण को किसी कार्य में अतिक्रमण (दोष) नहीं होता, जैसे जलती हुई अग्नि को छोड़कर राख में आढ़ुति नहीं दी जाती ॥१८॥ पितर और देवगत इस प्रकार का दान प्रशस्त नहीं मानते । ब्राह्मण सुगुण हो अथवा निर्युण वह परमदेवता है ॥१९॥ ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न होने वाले यज्ञादि शुभ कार्यों में अपने घर पर बैठे ब्राह्मण का अतिक्रम नहीं करना चाहिये । हे महाबाहु भारत ! जो ऐसे ब्राह्मण का अतिक्रमण करता है वह रौरव नरक प्राप्त करता है ॥२०॥ केवल गायत्री जानने वाला भी ब्राह्मण पूज्य है, विशेषतया यदि वह घर में हो तो उसकी पूजा करनी चाहिए ॥२१॥ अन्न रहित ग्राम, जल रहित कूप तथा वेद न पढ़ता हुआ ब्राह्मण—ये तीनों केवल नामधारी हैं ॥२२॥ जो किसी स्वार्थवश, भयवश अथवा भ्रेवश होकर एक पंक्ति में बैठे हुए को भेद करके दान करता है वह ब्रह्महत्या का भागी होता है—ऐसा नियम वेदों में देखा गया है, ऋषियों और मुनियों ने ऐसी व्यवस्था बतलाई है ॥२३॥

धर्म की इच्छा करने वाले को सभी जीवों के ऊपर कल्याण का अनुशासन अहिंसक भावना से करना

१. अधमानाम् । २. तर्पयन्नीति शेषः । ३. हि विकर्मणि ।

यस्य वाइमनसो शुद्धे सत्यगुप्ते च भारत । स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्लोपगतं फलम् ॥१२५
नारन्तुदः स्यादातोऽपि न परद्वोहकश्चधीः । यथास्यो द्विजते लोको न तां चाचमुदीरयेत् ॥१२६
यत्करोति शुभं वाचा^१ प्रोच्यमाना मनीषिभिः । श्रूयतां कुरुशार्द्दलं सदां चापि तथोच्यताम् ॥१२७

न तथा शशी न सत्तिलं न चन्दनरसो न शोतलच्छाया ।

प्रह्लादयति च पुरुषं यथा मधुरभाषिणी वाणी ॥१२८

अर्हणाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्दिजेत विषादित्व । अमृतस्येद चाकाङ्क्षेदपमानस्य^२ सर्वदा ॥१२९
सुखं ह्यवमतः शेते सुखं च प्रतिबुध्यते । सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमन्ता विनश्यति ॥१३०
अनेन विधिना रजन्संस्कृतात्मा द्विजः शनैः । गुरौ वसन्तेचिनुयाद्ब्रह्माधिगमिदं तपः ॥१३१
तपेविशेषविर्विद्यैर्वैश्वर्विविधोदितेः । वेदः कृस्नोधिगऽन्तव्यः सरहस्यो द्विजनमना ॥१३२
वेदेमेवाभ्यसेन्नित्यं तपस्त्वर्यद्विजोत्तमः । वेदाभ्यासो हि विप्रत्य तपः परमिहोच्यते ॥१३३
आहैव स नखग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः । यः सुप्तोऽपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोऽन्वहम् ॥१३४
योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् । स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥१३५

'चाहिए, मधुर और कोमल वाणी का प्रयोग करना चाहिये । १२४। हे भारत ! जिस व्यक्ति के मन और वचन शुद्ध सत्य सुरक्षित हैं, वह वेदान्त प्रतिपादित समस्त फलों को प्राप्त करता है । १२५। आर्त होकर भी कभी किसी की भावना को चोट न पहुँचाये, दूसरे का द्वेष करने का विचार न करे । जिस वाणी को सुनकर लोगों का यन उद्घिन हो जाय, उस वाणी का उच्चारण कभी न करे । १२६। हे कुरुशार्द्दल ! मनीषी पीडितों द्वारा मधुर वचन का प्रयोग कर जो शुभ कार्यों को सम्पन्न करते हैं उन्हें सुनिये और वैसा ही प्रयोग कीजिये । १२७। चन्द्रमा, जल, चन्दन का रस और शीतल सुखदायिनी छाया पुरुष को उतनी आह्नादित नहीं करती जितनी उसकी मधुर वाणी । १२८। ब्राह्मण को सर्वदा सम्मान एवं प्रतिष्ठा से विष की भाँति उद्घिन होना चाहिये (अर्थात् सम्मान और प्रतिष्ठा से बहुत दूर रहना चाहिए) सर्वदा अमृत की तरह उसं अपमान की आकांक्षा करनी चाहिये । १२९। क्योंकि जिसका अपमान हुआ रहता है वह तो सुखपूर्वक शयन करता है सुखपूर्वक जागता है और सुखपूर्वक अपना कार्य करता है परन्तु अपमान करने वाला इस लोक में विनष्ट हो जाता है । १३०

हे राजन् ! इसे प्रकार से शनैः-शनैः परिशुद्ध आत्मा होकर गुह के आश्रम में निवास करते हुए व्रह्मा को प्राप्त करने वाले तप का संचयन करना चाहिये । १३१। विविध प्रकार के व्रतों एवं तपस्याओं द्वारा गूढ़ स्थलों समेत समस्त वेदों का अध्ययन द्विजाति को करना चाहिये । १३२। उत्तम द्विज को सर्वदा तपों का विधिपूर्वक पालन करते हुए वेदाभ्यास में ही निरत रहना चाहिये । इस लोक में ब्राह्मण के लिए वेदाभ्यास ही परम श्रेष्ठ तप कहा गया । १३३। जो ब्राह्मण सोते हुए भी अपनी शक्ति के अनुकूल प्रतिदिन स्वाध्याय करता है वह नख पर्यन्त समस्त शरीर से परम तपस्या करता है । १३४। जो ब्राह्मण वेदों का अध्ययन कर करके अन्य कार्यों में श्रम करता है वह जीता हुआ ही

१. भागुरिमते टापू, अजादित्वाद्वा । २. कर्मणः सम्बन्धविवक्षया षष्ठी ।

न यस्य वेदो न जपो न विद्याश्रव्ण विशास्पते । स शूद्र एव मन्तव्य इत्याह् भगवान्विभुः ॥१३६
 मातुरये च जननं द्विर्तीयो मौञ्ज्जीबन्धनम् । तृतीयो यज्ञदीक्षायां द्विजस्य विधिरीरितः ॥१३७
 तत्र यद्ब्रह्म जन्मस्य मौञ्ज्जीबन्धनचिह्नितम् ॥१३८
 तत्रास्य साता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते । वेदप्रशानास्वाचार्यं पितरं मनुरब्रवीत् ॥१३९
 द हृस्य विद्यते कर्म विज्ञिन्द्रियमौञ्ज्जीबन्धनात् । नाभिष्वाहारयेद्ब्रह्म रवधानिनयनादृते ॥१४०
 शूद्रेण तु समं तावद्यावद्वेदे न जायते । कृतोपनयनस्यास्य द्रवतादेशनामध्यते ॥
 श्रद्धाण्डो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् ॥१४१
 यत्सुत्रं चापि यज्ञर्म या या चास्य च नेखता । वसनं चापि यो दण्डस्तद्वै तस्य व्रतेष्वन्मि ॥१४२
 सेवेतेमास्तु नियमान्ब्रह्मचारी^१ गुरौ दसन् । सक्षिण्येन्द्रियग्रामं तपोबृद्धर्थसात्मनः ॥१४३
 वृन्दारकर्षिपितृगां कुर्यात्पर्णमेव हि । नराणां च महाज्ञाहो नित्यं स्नात्वा प्रयत्नतः ॥१४४
 पुष्टं तोयं फलं चापि समिदाधानमेव^२ च । नानाविधानि काष्ठानि मृत्तिकां च तथा कुशान् ॥१४५

परिवार समेत बहुत शीघ्र शूद्रता को प्राप्त करता है ॥१३५। हे राजन् ! जिस ब्राह्मण के पास न वेद है, न जप है, न विद्या है, उसे शूद्र ही मानना चाहिये—ऐसा भगवान् ने स्वयं कहा है ॥१३६। ब्राह्मण का जन्म सर्वप्रथम माता के उदर से होता है, दूसरा जन्म मौञ्ज्जीबन्धन (अर्थात् यज्ञोपवीत) संस्कार से होता है, तीसरा जन्म यज्ञ की दीक्षा लेने से होता है ॥१३७। उपत्यन संस्कार का महत्व इन तीनों जन्मों से उसका दूसरा जन्म जो मौञ्ज्जीबन्धन के समय होता है, उसमें उसकी माता सावित्री और पिता आचार्य होता है । वेदों के दान करने के कारण मनु ने आचार्य को पिता बतलाया है ॥१३८-१३९। मौञ्ज्जीबन्धन संस्कार के पूर्व ब्राह्मण का कोई (वैदिक और स्मार्त) कर्म नहीं होता (अर्थात् यज्ञोपवीत संस्कार होने के पहले ब्राह्मण कोई (वैदिक और स्मार्त) कर्म नहीं कर सकता । 'स्वधा' कहने के अधिकारी हुए बिना (अर्थात् आद्विमंत्रों के अतिरिक्त) वेद का उच्चारण नहीं करना चाहिये ॥१४०। जब तक वेद में अधिकार नहीं प्राप्त कर लेता तब तक वह भी शूद्र के समान है । उपत्यन संस्कार के बाद उसे सभी कर्मों के करने का आदेश दिया जाता है । उसके बाद ही वेदाध्ययन क्रमशः विधिपूर्वक करना चाहिये ॥१४१। यज्ञोपवीत संस्कार में उसके पास जो सूत, धर्म, मेखला, वस्त्र और दण्ड रहता है, वह सब वेदाध्ययन के व्रत में भी रखना चाहिये ॥१४२

ब्रह्मचारी गुरु के समीप निवास करता हुआ इन समस्त नियमों का सेवन करे, अपनी तपः शक्ति बढ़ाने के लिए उसे अपने इन्द्रिय समूहों को बह भैं करना चाहिये ॥१४३। हे महाबाहु ! सर्वदा देवताओं, ऋषियों, पितरों और मनुष्यों का विधिपूर्वक स्नानकर तर्पण करना चाहिये ॥१४४। पुष्य, जल, फल, सेमिधा, विविध प्रकार के काष्ठ, मृत्तिका और कुश का उसे संचयन

१. विलयनादृते । २. गुरावधिवसन्सदा । ३. संचिनुयादितिशेषः ।

वर्जयेन्मधु मांसं च गन्धनाल्परथान्स्त्रयः । शुक्लानि दैव सर्वाणि प्राणिनां^१ चैव हिंसनम् ॥१४६
 अस्यङ्गमज्ञनं चाक्षणोरुपानच्छत्रधारणम् । संकल्पं कामजं क्रोधं लोभं गीतं च वादनम् ॥१४७
 नर्तनं च तथा दूतं जनवादं तथानृतम् । परिवादं चापि विभो द्वरतः परिवर्जयेत् ॥१४८
 स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्जो रपवीतं^२ परस्य च । पुंश्लीभिस्तथा सङ्घं न कुर्यात्कुरुनन्दन ॥१४९
 एकः शयीत् सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्कवच्नित् । कामाद्वि स्कन्दपन्नरेतो हिनस्ति व्रतमेव तु ॥१५०
 सुप्तः क्षरन्बहृचारी द्विजः शुक्रमकामतः । स्नात्वाऽकर्मचयित्वा तु पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥१५१
 मनोरपि तथा चात्र श्रूयते परमं वचः । उदकुम्भं सुमनसो गोशङ्गमृतिकां कुशान् ॥

आहरेयावदर्थान्तिः भैक्षं चापि हि नित्यशः ॥१५२

गृहेषु येषां कर्तव्यं ताञ्छृणुज्व नृपोत्तम् । स्वकर्मसु रता ये वै तथा वेदेषु ये रताः ॥

दत्तेषु चापि राजेन्द्र ये च शद्वासमाप्तितः ॥१५३

ब्रह्मचार्यहरेद्वैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् । गुरोः कुले न भिक्षेत् स्वज्ञातिकुलबन्धुषु ॥१५४
 अलाभे त्वन्यगोत्राणां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत् । सर्वं चापि चरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भदे ॥

करना चाहिये ॥१४५। नियमकाल में उसे मधु, मांस, चन्दन, माला, दाहनादि स्त्रियों सभी प्रकार की श्वेत वस्तुयें तथा प्राणियों की हिंसा—इस सबों से वर्जित रहना चाहिये ॥१४६। हे विभो ! आँख में अंजन लगाना, शरीर में उबटन लगाना, जूता, छाता, कामजनित संकल्प, क्रोध, लोभ, गीत वादन, नाचना, दूत क्रीडा, असत्य प्रचार, असत्य भाषण, परकीय निन्दा—इन सबको ब्रह्मचारी को दूर से ही छोड़ देना चाहिये ॥१४७-१४८। हे कुरुनन्दन ! ब्रह्मचारी को स्त्रियों की ओर देखना, स्त्रियों का आलिंगन, दूसरे के अपकार, पुंश्ली स्त्री का साथ कभी नहीं करना चाहिये ॥१४९। उसे सब जगह अकेले ही शयन करना चाहिये, कहीं वीर्यपात नहीं करना चाहिये । कामवश यदि वह कहीं अपने वीर्य का क्षरण करता है तो अपने व्रत को ही नष्ट करता है ॥१५०। ब्रह्मचारी शयन करते समय यदि बिना कांमोऽसना के वीर्य क्षरण करे तो स्नान कर सूर्य की पूजा करते हुए 'पुर्नमास...' इस क्रृचा का (तीन बार) जप करे ॥१५१। ब्रह्मचारियों के व्रत एवं नियमादि के बारे में मनु का भी बहुमूल्य वचन सुना जाता है । जल कलश, पुष्प, गोबर, मृत्तिका, कुश आदि प्रतिदिन अपनी शक्ति के अनुकूल एकत्र करे और भिक्षाटन कर जीविका निर्वाहित करे ॥१५२। हे नृपोत्तम ! ब्रह्मचारी किन-किन घरों में भिक्षा की याचना करे—इसका भी निश्चय किया गया है, मुनो । हे राजेन्द्र ! जो अपने कर्म में निरत हों, वेदों में आस्था रखते हों, यज्ञादि करने वाले और श्रद्धालु प्रकृति के हों, उनके घर से ब्रह्मचारी अपनी भिक्षा का संग्रह करे ॥१५३। प्रतिदिन चित्त एवं इन्द्रियों को निरुद्ध कर उसे गृहस्थों के घरों से भिक्षा की याचना करनी चाहिये । अपने गुरु के एवं परिवार वर्ग के घर भिक्षाटन नहीं करना चाहिये ॥१५४। यदि अन्यत्र न मिले तो पूर्व-पूर्व को अर्थात् ऊपर कहे हुए घरों में पहले वालों को छोड़ देना चाहिये । और क्रमणः अन्त से लेना चाहिये । हे महाबाहु ! यदि अन्यत्र मिलना एकदम असम्भव

अन्त्यवर्जं महाबाहो इत्याह भगवान्विभूः

॥१५५

बाचं नियम्य प्रयतस्त्वप्निं शस्त्रं च वर्जयेत् । चातुर्वर्ज्ये चरेद्वैक्षमलाभे कुरुनन्दन ॥१५६

आरादाहृत्य समिधः सन्निदध्याद् गृहोपरि । सायंप्रातस्तु जुहुयाताभिरप्निमतन्दितः ॥१५७

भैक्षाचरणमकृत्वा न तमग्निं समिध्य वै । अनातुरः सप्तरात्रमदकीर्णिवतं चरेत् ॥१५८

वर्तन चत्स्य भैक्षेण प्रवदन्ति मनीषिणः । तस्माद्वैक्षेण वै नित्यं नैकाक्षात्वी भवेद्व्रती ॥१५९

भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिपवपाससमा स्मृता । दैवत्ये व्रतवद्राजन्यित्र्ये कर्मण्यर्थिवत् ॥

काममध्यर्थितोऽनीयाद्व्रतमस्य न लुप्यते ॥१६०

ब्राह्मणस्य महाबाहो कर्म यत्समुदाहृतम् । राजन्यवैश्ययोर्नैतत्पर्जितैः कुरुनन्दन ॥१६१

चोदितोऽचोदितोऽवापि गुरुजा नित्यमेव हि । कुर्यादध्ययने योगमाचार्यस्य हितेषु च ॥१६२

ब्रुद्धिन्द्रियाणि मनसा शरीरं दाचमेव हि । नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वैक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥१६३

नित्यमुद्भृतपाणिः स्यात्साध्वाचारस्तु संवतः । आस्यतामिति चोक्तः सप्नासीताभिमुखं गुरोः ॥१६४

हो तो शूद्र को छोड़कर ग्राम भर में भिक्षाटन करना चाहिये—ऐसा स्वयं भगवान् ने कहा है ॥१५५। ब्रह्मचारी को मन एवं इन्द्रियों को वश में कर वचन को भी नियन्त्रित करना चाहिये, (अपने कार्य के लिए) अग्नि एवं शस्त्र का भी प्रयोग उसे नहीं करना चाहिये । हे कुरुनन्दन ! यदि सर्वथा असम्भव हो तो चारो वर्णों में भिक्षाटन करना चाहिये ॥१५६। दूर के वन प्रान्त से समिधाएँ लाकर उसे अपनी कुटी के ऊपर रख देना चाहिये उन्हीं समिधाओं से सावधानीपूर्वक आलस्यादि छोड़कर सायंकाल एवं प्रातःकाल हवन करना चाहिये ॥१५७। ब्रह्मचारी भिक्षाटन एवं अग्नि में हवन कार्य—इन दोनों नैतिक कर्मों को यदि नहीं करता है तो उसे सात रात तक सुस्थिर एवं व्यवस्थित चित्त से अवकीर्ण प्रायशिन्त का पालन करना चाहिये ॥१५८। जब ब्रह्मचारी को जीविका के लिए भिक्षाटन का ही विधान बतलाते हैं इसलिए उसे सर्वदा भिक्षा द्वारा ही जीविका निर्वाहित करनी चाहिये । एक व्यक्ति का अन्न खाने वाला व्रती नहीं कहा जा सकता ॥१५९। भिक्षाटन द्वारा जीविका चलाने वाले ब्रह्मचारियों का भोजन भी उपवास के समान स्मरण किया जाता है । हे राजन् ! देव कर्म में द्रती के समान पितृकर्म में ऋषियों के समान व्यवहार करना चाहिये—इनमें यदि कोई भोजन ग्रहण करने के लिए बहुत अनुरोध करे तो भोजन कर लेना चाहिये । इस प्रकार उसका व्रत नष्ट नहीं होता ॥१६०। हे कुरुनन्दन ! महाबाहु ! ये ब्राह्मण ब्रह्मचारी के कर्म बतलाये गये हैं, पण्डितों ने क्षत्रिय एवं वैश्यों के लिए इनके अतिरिक्त अन्यान्य नियम बनाये हैं ॥१६१। गुरु प्रेरणा करे या न करे, सर्वदा अश्ययन में चित्त लगाना चाहिये । उसी प्रकार गुरु के कल्याण की भी उसे सर्वदा चिन्ता करनी चाहिये ॥१६२। ब्रुद्धि, इन्द्रिय समूह, मन, शरीर और वाणी इन सबको नियन्त्रित कर गुरु के मुख की ओर देखते हुए उसे अंजलि बांधकर स्थित रहना चाहिये ॥१६३। अपने दाहिने हाथ को सदैव उत्तरीय से बाहर रखना चाहिए और सर्वदा साधु आचरण करना चाहिये । तथा

१. चोदितो वापि गुरुणा नित्यमेव हि पाथव ।

दस्त्रवेष्टस्तथान्नेत्तु हीनः स्पादगुरुतश्चिधौ । उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य जदन्यं चापि संविशेत् ॥१६५
 प्रतिश्वरणसम्भाषे तत्पस्थो न समाचरेत् । न चासीनो न भुज्जानो न तिष्ठज्ञ पराङ्मुखः ॥१६६
 आसीनस्य स्थितः कुर्यादिभिगच्छंश्च तिष्ठतः । प्रत्युद्दत्ता तु व्रजतः पश्चाद्वावश्च धावतः ॥१६७
 पराङ्मुखस्याभिमुखो दूरस्थस्पैत्य चान्तिकम् । नमस्कृत्य शयानस्य निदेशे तिष्ठेत्सर्वदा ॥१६८
 जीवं शव्यासनं चास्य शर्वदा गुरुतश्चिधौ । गुरोश्च चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ॥१६९
 नामोच्चारणमेवास्य परोक्षमपि तुद्रतः । न चैनमनुकूर्वत गतिभाषणचेष्टितैः ॥१७०
 परीवादस्तथा निन्दा गुरोर्दत्र प्रवत्तते । कर्त्तो तत्र रिधातव्यो गत्तव्यं या ततोऽन्यतः ॥१७१
 परीवादाद्रासभः स्यात्तारमेवस्तु निन्दकः । परिभोक्ता धृमिर्वति कीटो भवति सत्सरी ॥१७२
 दूरस्थो नार्चयेदेन नकुद्वो नान्तिके स्त्रियाः । यानासनस्तो राजन्नवरह्याभिवादयेत् ॥१७३
 प्रतिकूले समाने तु नासीत गुरुणा सह । अशुर्ण्वति गुरौ राजन्न किञ्चिदपि कीर्तयेत् ॥१७४

शरीर को वस्त्र से आच्छादित रखें । गुरु यदि कहे कि बैठ जाओ, तब उसे गुरु के अभिमुख होकर बैठना चाहिये । १६४। गुरु के समीप में उसे हीन (अल्प) वस्त्र हीनवेश (अल्प) तथा हीन भोजन अन्न (अल्प अन्न) से करना चाहिये । गुरु के उठने के पहले ही उठ जाना चाहिये और बैठने के बाद बैठना चाहिये । १६५। गुरु के उपदेश सुनते समय, सम्भाषण करते समय, उसे विस्तर पर नहीं बैठना चाहिये । इसी प्रकार बैठकर भोजन करते हुए खड़े-खड़े एवं पराङ्मुख होकर भी गुरु से सम्भाषणादि नहीं करना चाहिये । १६६। गुरु बैठे हों तो (उनकी आज्ञा से) उठकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य तथा बात-चीत करे । यदि वे खड़े हों तो उनकी ओर दो चार पग चलकर आज्ञा को सुने और बात-चीत करें । वे जब आये तो उनके सम्मुख जाकर आज्ञा स्वीकार एवं बात-चीत कर और यदि वे दौड़ रहे हों तो उनके पीछे दौड़कर सुने । १६७। यदि गुरु अपनी ओर से पराङ्मुख हों तो उनके सम्मुख स्वयं हो जाना चाहिये, वे दूर हों तो स्वयं उनके समीप जाकर बातचीत प्रारम्भ करनी चाहिये । उनके शयन करते समय नमस्कार करके आदेश का सर्वदा पालन करना चाहिये । १६८। सर्वदा गुरु के समीप में अपनी शय्या निम्न स्थान में रखे । गुरु की जहाँ तक दृष्टि पड़े वहाँ तक स्वतंत्रता से (अर्थात् पैर फैलाकर आदि) न बैठें । १६९। हे सुव्रत ! गुरु के नाम का कभी परोक्ष में भी उच्चारण नहीं करना चाहिये, गमन, भाषण एवं चेष्टाओं से भी कभी उनका अनुकरण नहीं करना चाहिये । १७०। जहाँ पर गुरु की निन्दा अथवा अप्रतिष्ठा की चर्चा हो रही हो, वहाँ अपने कानों को मूँद लेना चाहिये अथवा वहाँ से अन्यत्र हट जाना चाहिये । १७१। गुरु की अपमानसूचक बातें करने से गर्दभ योनि में जन्म होता है, निन्दा करने वाला कुत्ता होता है । इसी प्रकार गुरु का अन्नादि भक्षण करने वाला कृमि होता है, गुरु के अमुख मत्सर प्रकट करने वाला कीट योनि में उत्तम होता है । १७२

दूर से ही गुरु की पूजा नहीं करनी चाहिये, क्रोधावेश में एवं स्त्रियों के समीप में भी नहीं करनी चाहिये । हे राजन् ! इसी प्रकार बाह्य एवं आसन से उत्तर कर गुरु का अभिवादन करना चाहिये । १७३। गुरु के साथ प्रतिकूल एवं समान स्थिति में नहीं बैठना चाहिये । हे राजन् ! उस समय जब कि गुरु का ध्यान किसी अन्य विषय में हो, अर्थात् अपनी बात वह न सुन रहा हो, शिष्य को कोई बातचीत नहीं करनी चाहिये । १७४। किन्तु बैलगाड़ी, ऊँटगाड़ी, अट्टालिका प्रस्तर खण्ड, चटाई, शिलाखण्ड

गोभोद्वयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च । असीत् गुरुणा सार्धं शिलाफलकनौषु च ॥१७५
 गुरेगुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृत्तिमान्वरेत् । गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोत्रैव स्वबन्धुषु ॥१७६
 बालः समानजन्मा दः विशिष्टो यज्ञकर्मणि । अध्यापयन्गुरुमुतो गुरुवन्मानमहति ॥१७७
 उत्सादनमथाङ्गानां स्नापनेच्छिष्टभोजने । पादयोर्नेजनं रजन्जुरुपुत्रेषु वर्जयेत् ॥१७८
 गुरुवल्पत्तिपूज्यास्तु सवर्णा गुरुयोषितः । असवर्णास्तु सम्भूज्याः प्रत्युत्यानाभिवादनैः ॥१७९
 अभ्यञ्जनं स स्नपनं गात्रोत्सादनमेव च । गुरुपत्न्यः न कार्याणि केशानां च प्रसाधनम् ॥१८०
 गुरुपत्नीं तु युवतीं नाभिवादेत पादयोः । पूर्वांशितिवर्णं गुणदोषौ विज्ञानता ॥१८१
 स्त्रश्वाएव नारीणां नराण्मिह द्वृष्णम् । १.अतोर्थान्न प्रमाद्यति प्रतिवद्वय विपश्चितः ॥१८२
 अविद्वांसमलं लोके विद्वांसमपि वा पुनः । प्रमदा हृत्यथं नेतुं कामकोधवशानुगम् ॥१८३
 मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा च न विविक्तासानो भ्रह्मेत् । बलवानिन्द्रियग्रामो दिद्वांसमपि कर्षति ॥१८४
 राजेन्द्रं गुरुपत्नीनां युवतीनां युवा भुवि । विधिवद्वन्दनं कुर्यादिसावहमिति ब्रुवन् ॥१८५

नौका में गुरु के साथ भी बैठना चाहिये । १७५। गुरु के गुरु यदि वर्तमान हों तो उनके साथ भी गुरुवत् व्यवहार करना चाहिये, इसी प्रकार श्रेष्ठ गुरु पुत्रों एवं गुरु के परिवार वर्ग वालों के साथ भी गुरुवत् व्यवहार करना चाहिये । १७६। गुरु का पुत्र यदि बालक है, अथवा समान अवस्था का है, तब भी यज्ञ कर्म में उसकी विशेषता है । गुरु का पुत्र यदि पढ़ता है तो वह गुरु के सागान ही सम्मानीय है । १७७। हे राजन् ! (गुरुपुत्र के साथ गुरुवत् व्यवहार करते हुए भी इन कार्यों को वर्जित रखे) अंगों में उबटन लगाना, स्नान करवाना, जठा भोजन करना, पैरों का धोना । १७८। गुरु की पत्नी यदि सवर्णा हैं, (अर्थात् उन्हीं की वर्ण वाली हैं) तो वह भी गुरु के समान ही पूजनीय हैं । और यदि असवर्णा हैं तो वह भी उठकर सम्मान व्यक्त करके तथा अभिवादन करके सम्मानीय है । १७९। गुरु की पत्नियों के अंगों में तेल लगाना, दबाना, स्नान करवाना, शरीर में उबटन लगाना एवं केशों की रचना करना आदि कार्य नहीं करना चाहिये । १८०। गुरु की पत्नी यदि युवती है तो संसार के गुण दोष जानने वाले, उसके बीस वर्ष के शिष्य को उसके चरणों का स्वर्ण करके अभिवादन नहीं करना चाहिये । क्योंकि इस संसार में स्त्री एवं पुरुष दोनों की स्वाभाविक प्रवृत्ति^१ दोषों की ओर होती है । जो परम विवेकशील एवं बुद्धिमान हैं, वे इसीलिए स्त्रियों के प्रति असावधानी नहीं करते । १८१-१८२। स्त्रियों काम एवं क्रोध के वशीभूत अविद्वान् तथा विद्वान् को भी अनुचित मार्ग में ले जाने को समर्थ होती हैं । १८३। अपनी ही माता, बहिन एवं कन्या हों, तब भी उनके साथ एकान्त में नहीं बैठना चाहिये, ये इन्द्रिया बड़ी दलवान् हैं, बड़े-बड़े पण्डित को भी ये खींच लेती हैं । १८४। हे राजेन्द्र ! इसलिए युवा शिष्य को इस पृथ्वी पर युवती गुरुपत्नियों के साथ दूर से ही 'अमुक'^२ मैं प्रणाम कर रहा हूँ, कहकर प्रणाम करना चाहिये । १८५। प्रवास

१. भार्यासु । २.अतोर्थान्न प्रमाद्यति प्रमदासु विपश्चितः । ३. अपृतम् ।

१. तरुणावस्था प्रायः अनुभवहीनता के कारण मूर्खता ही के समान मानी जाती है ।

विप्रोऽस्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम् । गुरुदारेषु कुर्वत सतां धर्ममनुस्मरन् ॥१८६
यथा सनन्तनित्रेण जलमाप्नोति' मानवः । तथा गुरुगतां विद्यां गुश्रूपुरधिगच्छति ॥१८७
मुण्डो वा जटिलो वा स्यादथ वा स्याच्छ्लीजटी ।

तैनं ग्रामेऽभनिम्लोचेदकों नाभ्युदियत्क्वचित् ॥१८८

तं चेदभ्युदियात्सूर्यः शगानं कामकारतः । निम्लोचेद्वात्यश्नानाज्जपनुपवसेद्विनम् ॥१८९
सूर्येण ह्यभिन्नमूलः शयानोभ्युदितश्च यः । प्रायश्चित्तमुर्द्वालो युल्लः त्यान्महतैनसा ॥१९०
उपस्थृण ग्रहाराज उभे स्तन्धे समाहितः । शुचौ देशे जपञ्जप्यनुपासीत यथाविधि ॥१९१
यदि स्त्री यद्यवरदः श्रेयः किञ्चित्तस्माच्चरेत् । तत्सर्वमाच्चरेद्युल्लो यत्र वा रमते मनः ॥१९२
धर्मार्थाच्चते श्रेयः कामार्थो धर्ममेव च । अर्थं एवेह वा श्रेयस्त्रिवर्गे इति संस्थितिः ॥१९३
पिता भाता तथा भ्राता आचार्यः कुरुनन्दन । नार्तनाप्यदमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः ॥१९४
आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः । माताप्यथादितेर्मूर्तिर्भ्राता स्यान्मूर्तिरात्मनः ॥१९५

से आने पर शिष्य को सत्पुरुषों के चलाये हुए धर्म का स्मरण कर प्रतिदिन गुरु पत्नी का पाद स्पर्श एवं अभिवादन करना चाहिये ॥१८६। जिस प्रकार कुदाल आदि खनने वाले हथियारों से लगातार खनते रहने पर मनुष्य अन्त में जल प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार गुरु सेवा में निरत रहने वाला शिष्य गुरु की समस्त विद्याओं को प्राप्त कर लेता है ॥१८७

ब्रह्मचारी चाहे मुंडित शिर हो, चाहे जटाधारी हो चाहे जटा की भाँति शिखाधारी हो, उसको ग्राम में शयन करते हुए सूर्य का अस्त एवं उदय नहीं देखना चाहिये ॥१८८। यदि इस नियम को जान बूझकर इच्छानुकूल शयन करते-करते उसके सूर्य अस्त हो जायें वा उदित हो जायें तो दिन भर उपवास रखकर जप करना चाहिये ॥१८९। सूर्योदय अथवा सूर्यास्त तक सोकर जो उक्त प्रायश्चित्त नहीं करता है वह महान् पापकर्म से युक्त होता है ॥१९०। हे महाराज ! समाहित चित हो दोनों सन्ध्याओं को विधिपूर्वक पवित्र देश में बैठकर आचमन कर जप एवं उपासना करनी चाहिये ॥१९१। यदि स्त्री (अथवा शूद्र) कुछ श्रेयस्कर कार्य करे तो स्वयमेव उन सब कर्मों को करना चाहिये अथवा अपना मन जिस कार्य में लगे वह काम करना चाहिये ॥१९२। कुछ लोग धर्म और अर्थ को श्रेय कहते हैं, कुछ काम और अर्थ को श्रेय कहते हैं । इस लोक में कुछ लोग अर्थ को ही श्रेय मानते हैं—इन्हीं तीनों को त्रिवर्ग कहते हैं ॥१९३

हे कुरुनन्दन ! पिता, माता, भ्राता एवं आचार्य इन सबका अपमान विशेष आर्त अवस्था में होने पर भी कभी नहीं करना चाहिये । ब्राह्मण को तो इस नियम का विशेषतया पालन करना चाहिये ॥१९४। आचार्य ब्रह्मा की मूर्ति है, पिता प्रजापति की मूर्ति है, माता अदिति की मूर्ति है, भाई अपनी ही मूर्ति है ॥१९५। मनुष्य को उत्पन्न करने में-माता और पिता जो कष्ट सहते हैं, उसका बदला सैकड़ों

यन्माता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् । न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥१९६
 तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च भारत । तेषु हि त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते ॥१९७
 तेषां प्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते । न तैरनभ्यनुज्ञातो धर्मसन्धं समाचरेत् ॥१९८
 त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः^१ । त एव च त्रयो वेदस्त एवोक्तास्त्रयोऽप्यः ॥१९९
 माता वै गाहृपत्याग्रिः पिता वै दक्षिणः स्मृतः । गुरुराहवनीणश्च साप्रिव्रता गरीयसी ॥२००
 त्रिषु तुष्टेषु चैतेषु श्रीलोकाभ्ययते गृही ! दीप्यमानः स्ववपुषा देववह्विं मोदते ॥२०१
 इमं लोकं पितृभक्त्या मातुभक्त्या तु मध्यमम् । गुरुशुश्रूषया चैत गच्छेच्छकसलोकताम् ॥२०२
 सर्वे तेनादृताः धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः । अनादृतास्तु येनैते सर्वास्तत्स्याफलाः क्रियाः ॥२०३
 यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तादवन्नान्यत्साचरेत् । तेष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥२०४
 तेष्मनुपरोधेन पार्थक्यं^२ यद्याचरेत् । तत्त्रिवेदयेतेष्यो भनोवचनकर्मभिः ॥२०५
 त्रिष्वेतेष्विति कुत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते । एष धर्मः परः साक्षादुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥२०६
 अद्वधानः शुभां विद्यमाददीतावरादपि । अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥२०७

वर्ष में भी नहीं किया जा सकता । १९६। हे भारत ! इसलिए मनुष्य को सर्वदा उन दोनों अर्थात् माता-पिता का तथा आचार्य का कल्याण साधन करना चाहिये । इन तीनों के सन्तुष्ट रहने पर सभी तपस्याएँ समाप्त हो जाती हैं । १९७। इन तीनों की शुश्रूषा करना ही परम तपस्या कही गयी है । इनकी आज्ञा को बिना प्राप्त किये हुए किसी अन्य धर्म का पालन नहीं करना चाहिये । १९८। वे ही तीनों-तीनों लोक हैं तीनों आश्रम हैं, तीनों वेद हैं, और तीनों अग्नियाँ^३ हैं । १९९। माता गाहृपत्याग्नि है, पिता दक्षिण अग्नि कहा जाता है, गुरु आहवनीय अग्नि है ये तीनों अग्नियाँ परम गौरदास्त्र हैं । २००। गृहस्थ पुरुष यदि इन तीनों को सन्तुष्ट कर लेता है तो वह तीनों लोकों को जीत लेता है । (इसके माहात्म्य से) वह अपनी दिव्य शरीर कान्ति से संयुक्त होकर देवताओं के समान स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है । २०१। पितृभक्ति से इस लोक को मातुभक्ति से मध्यलोक को एवं गुरु भक्ति से इन्द्रलोक को प्राप्त करता है । २०२। जिसने इन तीनों का आदर किया उसने सब धर्मों का आदर कर लिया और जिसने इन तीनों का अनादर किया उसकी सारी क्रियाएँ निष्फल हैं । २०३। जब तक ये तीन जीवित हैं तब तक किसी अन्य धर्म का पालन नहीं करना चाहिये सर्वदा उनके प्रिय एवं कल्याणदायी कार्यों में लगे रहकर उनकी शुश्रूषा करते रहना चाहिये । २०४। उनकी अनुभुति से यदि उनसे अलग रहकर कुछ कार्य करे भी तो उन सबको मनसा वाचा कर्मणा उनसे निवेदित कर देना चाहिए । २०५। गृहस्थ पुरुष के सारे कर्तव्य सारे धर्म इन्हीं तीनों की सेवा में समाप्त हो जाते हैं । यही परम धर्म है, इसके अतिरिक्त सब उपधर्म कहे जाते हैं । २०६। अपने से निम्न कोटि के व्यक्ति से भी कल्याणदायिनी, विद्या श्रद्धापूर्वक लेनी चाहिये । शूद्र भी हो यदि उसके पास कोई श्रेष्ठ धर्म है तो उसे ले लेना चाहिये । इसी

१. आगमा । २. पवित्रम् ।

३. गाहृपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय ।

विषादप्यमृतं श्राहं बालादपि सुभाषितम् । अमित्रादपि सहृतममेष्यादपि काञ्चनम् ॥२०८
स्त्रियो रत्नं नयो विद्या धर्मः शौचं सुभाषितम् । विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वशः ॥२०९
अब्राह्मणादध्यदन्नापत्काले विधीयते । अनुद्रज्या च शुश्रूषा यावदध्ययनं गृहोः ॥२१०
नाब्राह्मणे गुरौ शिष्यो दत्तमात्यन्तिकं वसेत् । द्राह्मणे चाननूचाने काञ्जन्नातिमनुत्तमाम् ॥२११
यदि त्वात्यन्तिको चासो रोदते च गृहोः कुले । द्रुक्तः परिचरेदेनमशारीरविनोक्षणात् ॥२१२
आ समाप्ते: शरीरस्य यस्तु शुश्रूषते गुरुम् । स गच्छत्यज्जन्माः विप्रो द्राह्मणः सद्य शाश्वतम् ॥२१३
न पूर्वं गुरुवे किञ्चिद्बुधकुर्वीत धर्मवित् । स्नानाद गुरुणाज्ञप्तः शक्त्या गुरुर्वद्यनाहरेत् ॥२१४
क्षेत्रं हिरण्यं गामश्च छत्रोपानहमेव च । धान्यं वासांसि शाकं वा गुरुवे प्रीतमाहरेत् ॥२१५
स्वगंते गां परित्यज्य गुरौ भरतसत्तम । गुणान्विते गुरुमुते गुरुदत्तेऽय वा नृप ॥
सपिण्डे वा गुरोद्भाषिपि गुरुवद्वृत्तिमाचरेत् ॥२१६
इतेष्वविद्यमानेषु स्थानासनविहारवान् । प्रयुञ्जनोऽप्रिशुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः ॥
वीरस्य कुर्वञ्चछुश्रूषां याति वीरसलोकताम् ॥२१७
चरत्येवं हि यो विप्रो ब्रह्मचर्यमविप्लुतः । स गत्वा ब्रह्मसदनं ब्रह्मणा सह मोदते ॥२१८

प्रकार दुष्ट कुल से भी स्त्रीरत्न ले लेना चाहिये । २०७। विष से भी अमृत ले लेना चाहिये, बच्चा भी है यदि कोई सच्ची और सुन्दर बात कह रहा है तो उसे ग्रहण करना चाहिये । इसी प्रकार शत्रु से भी सदाचरण की शिक्षा लेनी चाहिये, और अपवित्र स्थल से भी सुवर्ण ले लेना चाहिये । २०८। स्त्री, रत्न, नीति, विद्या, पवित्रता, धर्म सुभाषित एवं विविध प्रकार के शिल्प कर्म—इन्हें सम स्थानों से ले लेना चाहिये । २०९

आपत्ति काल में अब्राह्मण से भी अध्ययन करने का विधान है । जब तक अब्राह्मण गुरु के समीप अध्ययन चले तब तक उसकी भी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिये । २१०। कोई ब्राह्मण यदि वेदों का अधिकारी विद्वान् नहीं है, किन्तु शिष्य वेदाध्ययन कर परमोत्तम गति प्राप्त करने की इच्छा से अब्राह्मण गुरु से अध्ययन करता है तो उसे उस अब्राह्मण गुरु के समीप सर्वदा निवास नहीं करना चाहिये । २११। यदि गुरु के कुल में सर्वदा निवास करने की इच्छा शिष्य को है तो उसे अपने शरीर छोड़ने तक निष्ठा एवं भक्तिपूर्वक सेवा करते हुए निवास करना चाहिये । २१२। इस प्रकार जो ब्राह्मण शिष्य अपने शरीर के त्याग पर्यन्त गुरु की शुश्रूषा करता है वह शीघ्र ही ब्रह्म के शाश्वत पद को प्राप्त करता है । धर्म की मर्यादा जानने वाले शिष्य को अध्ययन समाप्ति के पूर्व उपकार नहीं करना चाहिये, उसे दीक्षा स्नान के लिए गुरु की आज्ञा प्राप्त करने के अनन्तर यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये । २१३-२१४। इवेत, सुवर्ण, गौ, अश्व, छत्र, जूता, धान्य, वस्त्र, शाकादि गुरु के प्रसन्नार्थ लाना चाहिये । २१५। हे भरतकुल सत्तम ! गुरु के इस पृथ्वी को छोड़कर स्वर्ग चले जाने पर गुणयुक्त गुरुपुत्र गुरु पत्नी वा गुरु के सपिण्डज के साथ भी गुरुवत् व्यवहार करना चाहिये । २१६। इन सबों के न रहने पर उचित स्थान, आसन एवं विहार से युक्त अग्नि की शुश्रूषा करते हुए अपने शरीर को उचित ढंग से साधन में लगावे । वीर की शुश्रूषा करने से वीरता की प्राप्ति होती है । २१७। इन उपर्यक्त नियमों के अनुसार जो विप्र अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त कर ब्रह्मा

इत्येष कथितो धर्मः प्रथमं ब्रह्मचारिणः । गृहस्थस्यापि राजेन्द्र शृणु धर्मसेषतः ॥२१९
 काले प्राप्य व्रतं विप्रं क्रतुयोगेन भारत । प्रपालवन्द्रतं याति ब्रह्मसालोक्यतां विभो ॥२२०
 सदोपनयनं शस्तं वसन्ते ब्राह्मणस्य तु । क्षत्रियस्य ततो भीष्मे प्रशस्तं मनुरद्वीत ॥२२१
 प्राप्ते शरदि वैश्यस्य सदोपनयनं परम् । इत्येष त्रिविधः कालः कथितो व्रतयोजने ॥२२२
 इति श्रीभविष्ये महापुराणं शतार्द्धसाहस्राणां संहितायां ब्राह्मे पर्वीणि
 उपनयनविधिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः । ४१

अथ पञ्चमोऽध्यायः

स्त्रीजां शुभाशुभलक्षणवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

षट्क्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ वैवेदिकं व्रतम् । तदर्थिकं पादिकं वा गृहणान्तिकमेव च ॥१
 वेदानधीत्य वेदों वा वेदं वापि नृपोत्तम । अविष्टुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममात्पसेत् ॥२
 तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः । ऋग्विणं तत्पृष्ठं आसीननर्हयत्प्रथमं गदा ॥३

के साथ आनन्द का अनुभव करता है । २१८। प्रथम ब्रह्मचारी के धर्म का यह वर्णन मैं कर चुका, हे राजेन्द्र ! अब गृहस्थाश्रम में निवास करने वालों के समस्त धर्मों को भी बतला रहा हूँ, मुझे । २१९। हे भारत ! हे विभो ! इस प्रकार उचित समय एवं क्रतु काल के अवसर पर ब्रह्मचर्यव्रत का पालन कर मनुष्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है । २२०

ब्राह्मण का यज्ञोपवीत संस्कार सर्वदा वसन्त क्रतु में प्रशस्त माना गया है, मनु ने क्षत्रियों का यज्ञोपवीत संस्कार ग्रीष्म क्रतु में श्रेयस्कर बतलाया है । २२१। वैश्यवर्ण का उपनयन संस्कार सर्वदा शरद् क्रतु के आने पर श्रेष्ठ है। यज्ञोपवीत संस्कार के लिये तीनों वर्णवालों के ये तीन समय बतलाये गये हैं । २२२ श्री भविष्य भगवान् ब्राह्मण के ब्राह्मपर्व में यज्ञोपवीत संस्कार विधि वर्णन नामक चौथा अध्याय समाप्त । ४१

अध्याय ५

स्त्रियों के शुभ और अशुभ लक्षणों का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—गुरु के समीप रहकर छत्तीस वर्ष तक वैवेदिक व्रत अर्थात् तीनों वेदों के अनुसार, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये अथवा उसके आधे वा चौथाई या वेद के अध्ययन समाप्त करने पर्यंत समय तक करना चाहिये । १। हे नृपोत्तम ! तीनों वेदों का या दो वेदों का अथवा एक वेद का विधिवत् अध्ययन कर अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने वाला ब्रह्मचारी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे । २। पिता के द्वारा वेद का अध्ययन समाप्त करने वाले उस प्रस्थात ब्रह्मवर्चस् एवं धन सम्पत्ति के उत्तराधिकार को प्राप्त करने (अथवा गृहस्थाश्रम में आने के लिए उद्यत) ब्रह्मचारी का अपने नैष्ठिक धर्म से समन्वित उस गुरु को सुन्दर आसन पर बिठा कर माला से विभूषित कर सर्व प्रथम गौ (मधुपर्क) द्वारा

१. तत्र ।

गुरुणा तमनुज्ञातः समावृत्तौ यथाविधि । उद्घेत द्विजो भार्या सवर्णा लक्षणान्विताम् ॥४
शतानीक उवाच

लक्षणं द्विजशार्दूलं स्त्रीणां वद महामुदे । कौदृग्लक्षणसंयुक्ता कन्या स्यात्सुखदा नृप ॥५
सुमन्तुरुद्वाच

यदुकं ब्राह्मणा पूर्वं स्त्रीलक्षणमनुत्तमम् । श्रेयसे^१ सर्वलोकानां शुभाशुभफलप्रदम् ॥६
तत्ते वच्चि महाबाहो शृणुष्वैकमना नृप । श्रुतेन येन जानीषे कन्यां शोभनलक्षणान् ॥७
सुखासीनं सुरश्रेष्ठमधिगम्य भर्हष्य । पप्रच्छुर्लक्षणं स्त्रीणां यत्पृष्टोऽहं त्वयाधुना ॥८
प्रणस्य शिरसा देवमिदं वचनमनुवन् । भगवन्धूहि नः सर्वं स्त्रीजां लक्षणमुत्तमम् ॥९
श्रेयसे सर्वलोकानां शुभाशुभफलप्रदम् । पशस्तामप्रशास्तां च जानीमो येन कन्यकाम् ॥१०
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा विरच्चो वाक्यमनवीत् । शृणुष्वं द्विजशार्दूला वच्चि युष्मास्वशोषतः ॥११
प्रतिष्ठितततौ सम्यग्रताम्भोजसमप्रभौ । ईदृशौ चरणौ धन्यौ योषितां भोगदर्घनौ ॥१२
करालैरतिनिर्मासै रुक्षैरर्धशिरान्वितैः । दारिद्र्यं दुर्भगत्वं च प्राप्नुदन्ति न संशयः ॥१३

पिता या आचार्य की पूजा करे । ३। इस प्रकार गुह की आज्ञा से यथाविधि समावर्तन संस्कार सम्पन्न होकर ब्राह्मण अपने वर्ण में उत्पन्न शुभलक्षण समन्वित स्त्री के साथ विवाह संस्कार करे । ४

शतानीक बोले—हे महामुनि ! द्विज शार्दूल ! मुझे स्त्रियों के लक्षण बतलाइये । हे नृप, किस प्रकार के लक्षणों वाली कन्या पति को मुख देने वाली होती है ? ५

सुमन्तु ने कहा—समस्त लोक के कल्पाणार्थ स्त्रियों के शुभाशुभ फल देने वाल जिन लक्षणों को पूर्वकाल में ब्रह्मा जी ने बतलाया है, उन्हें तुम्हें बतला रहा हूँ, हे महाबाहो, हे नृप ! एकाग्र होकर सुनिये ! उन सबके मुन लेने पर तुम भी शुभलक्षणान्वित कन्या के पारखी बन जाओगे । ६-७। तुमने स्त्रियों के जिन लक्षणों को मुझसे अभी पूछा है, उन्हीं को एक बार ऋषियों ने सुखपूर्वक विराजमान सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा जी के पास जाकर पूछा था । ८। देव ब्रह्मा जी को शिर न न्द्र कर विधिवत् प्रणाम करने के बाद ऋषियों ने यह वचन कहा—हे भगवन् ! समस्त लोक के कल्पाणार्थ स्त्रियों के शुभाशुभ फल प्रदान करने वाले लक्षणों को हमें बतलाइये । जिससे हम लोग उत्तम एवं निङ्गाष्ट कोटि की कन्याओं की परख कर सकें । ९-१०। (ऋषियों) उनके वचन मुनकर ब्रह्मा जी ने कहा—स्त्रियों के समस्त लक्षणों को बतला रहा हूँ, सुनिये । ११। सुन्दर लाल कमल दल के समान कान्तिमान् एवं प्रतिष्ठित (भूमि में समान रूप से बैठने वाले) तलुओं वाले पैर, धन्य हैं, वे स्त्रियों के भाग्य की वृद्धि करनेवाले हैं । १२। जो कराल मांस रहित, रुखा और नसों के उभाड़ से युक्त हो, वे स्त्रियों का चरण निस्सन्देह दारिद्र्य, दौर्भाग्य का देने वाला होता है । १३। सधन, गोली,

१. धन्या । २. ऋषीणां कुरुशार्दूल ।

अद्युत्त्वः संहता वृत्तः स्तिधाः सूक्ष्मनखास्तथा । कुर्वन्त्यत्यन्तमैश्वर्यं राजभावं च योषितः ॥१४
 हस्वाः सुजीवितं हस्वा विरला वित्तहत्तये । दारिद्र्यं शूलमग्रासु प्रेष्यं च वृथलासु च ॥१५
 परस्परसमालूढैस्तनुभिर्वृत्तपर्वभिः । ब्रह्मनपि पतीनहत्वा दासी भवति वै द्विजाः ॥१६
 अद्युत्त्वोशतपद्माणस्तुङ्गापाः कोमलान्विताः । रत्नकाञ्चनलाभाय विपरीता विपत्तये ॥१७
 नुभगत्वं नखैः स्तिधैराताञ्चैश्च धनाद्यप्रता । पुत्राः स्युरुन्नतैरेति: मुसुदैश्चापि राजता ॥१८
 पाण्डुरैः स्फुटितैः रूपैर्नैतैर्धूमैस्तथा खरैः^१ । निःस्वता भद्रति स्त्रीणां पीतैश्चाभक्षणम् ॥१९
 गुन्काः स्तिधाश्च वृत्ताश्च समारूढशिरास्तथा । यदि स्वर्नपुरान्दध्युर्बन्धदाहैः समान्तुयुः ॥२०
 अशिरा शरकाण्डाभाः सुवृत्तात्पत्तनुरुहाः । जड्धाः कुर्वति सौभाग्यं यानं च गजदाजिभिः ॥२१
 व्लिश्टते रोमजड्धा स्त्री भ्रमत्युद्वतपिण्डिका । काकजड्धापति हन्ति वाचाटा कपिलाचया ॥२२
 जानुभिश्चैव मार्जरासिंहजावनुकारिभिः । श्रियमाण्यं सुभाग्यत्वं प्राप्नुवन्ति सुतांस्तथा ॥२३
 घटाभैररथवगा नार्जे निर्मासैः कुलटा स्त्रियः । शिरालैरपि हिंस्माः स्युर्विश्विष्टैर्धनवर्जिताः ॥२४

चिकनी एवम छोटे मुन्दर नखों वाली पैर की अँगुलियाँ स्त्रियों को परम ऐश्वर्य एवं राज्यपद को देने वाली होती है ॥१४। छोटी अँगुलियों वाली स्त्रियाँ दीर्घजीवी होती हैं । किन्तु छोटी और बिरली जो एक में मिली न हो, अँगुलियाँ धन हानि करने वाली होती हैं । शूल स्थान पर टेढ़ी रहनेवाली अँगुलियाँ दारिद्र्य की सूचन हैं, भोटी अँगुलियों से दासता की प्राप्ति होती है ॥१५। हे द्विज वृन्द ! अत्यन्त सूक्ष्म, परस्पर एक दूसरे पर चढ़ी हुई एवं गोले पर्व (पोरों) वाली अँगुलियों से युक्त स्त्री अनेक पतियों को मारकर दासी होती है ॥१६। उच्च पर्व (पोरों) से युक्त अँगूठे, उन्नत अग्रभागवाली कोमल अँगुलियाँ रत्न एवं सुवर्ण लाभ की सूचना देती हैं, इससे विपरीत जो होती हैं वे विपत्ति में डालने वाली होती हैं ॥१७। चिकने नखों से जौभाग्य की प्राप्ति होती है, लाल नखों से प्रचुर धन मिलता है । उन्नत नखों से अनेक पुत्रों की प्राप्ति होती है एवं सूक्ष्म नखों से राजत्व की प्राप्ति होती है ॥१८। स्त्रियों के पाण्डुर टूटे, फटे, रुखे, नीले एवं धूमिल तथा खर नखों से निर्धनता बढ़ती है, उनके पीले नख अभक्ष्य-भक्षण की सूचना देते हैं ॥१९। इसी प्रकार यदि स्त्रियों के चिकने, गोले, शिराओं (नसों) को ढंके हुए गुल्क (ऐँड़ी के ऊपर की गाठ) हों तो वे नूपुर से सर्वदा शब्दायमान रहने वाले तथा बांधवों से युक्त करने वाले होंगे ॥२०। शिराओं से रहित, शरकाण्ड (सरकण्डा) के समान गौरवर्ण से युक्त, मुन्दर गोले एवं छोटी-छोटी रोमावलियों से सुशोभित स्त्रियों की जंघाएँ परम सौभाग्य एवं हाथी घोड़े की संवारी देने वाली होती हैं ॥२१। रोमावलि से युक्त जंघावाली स्त्री कष्ट का अनुभव करती है, इसी प्रकार जिसकी पिण्डली ऊपर की ओर लिंची हुई-सी हो वह बहुत भ्रमण करने वाली होती है ॥२२। बिल्ली और सिंह के घुटनों के अनुकरणशील घुटनों वाली स्त्रियाँ लक्ष्मी की प्राप्ति कर सौभाग्य एवं अनेक पुत्रों को भी प्राप्त करने वाली होती हैं ॥२३। इसी प्रकार कलश के समान घुटनों वाली स्त्रियाँ अधिक मार्ग चलने वाली होती हैं, मांसरहित घुटनोवाली स्त्रियाँ कुलटा होती हैं । शिराओं से व्याप्त घुटनों वाली स्त्रियाँ हिंसक स्वभाव वाली होती होती

^१ आपत्ते ।

अत्यन्तबुटिलै रुद्धैः स्फुटितार्गुडप्रभैः । अनेकजैस्तथा रेमैः केशंश्चापि तथाविष्टैः ॥२५
 अत्यन्तपिङ्गला नारी विषतुल्येति निश्चितम् । सप्ताहात्यन्तरे पापा पति हन्यान्न संशयः ॥२६
 हस्तिहस्तनिभैर्वृते रमभाभैः करभोपमैः । प्राप्तुवन्त्यूरुभिः शश्वत्स्त्रयः सुखमनङ्गजम् ॥२७
 दौर्भाग्यं बद्धमांसैश्च बन्धनं रोमशोरुभिः । ततुभिर्वैधमित्याहुर्भृथच्छ्रेष्ठनीशता ॥२८
 सन्ध्यावर्णं समं चारु सूक्ष्मगोमान्वत् युथु । जघनं शस्यते स्त्रीणां रतिसौख्यकरं द्विजः ॥२९
 अरोभको भगो यस्याः समः मुश्मिष्टसंस्थितः । अपि नीचकुलोत्पन्न राजात्तनी भवत्यसौ ॥३०
 अश्वत्थपत्रसदृशः कृष्णपृष्ठोन्नतस्तथा । शशिविष्वनिभञ्चापि तथैव कलशाकृतिः ॥
 भगः शत्तमः स्त्रीणां रतिसौभाग्यदर्धनः ॥३१
 तिलपुष्पनिभो यश्च यद्यग्ने खुरसन्निभः । द्वावप्येतौ परप्रेष्यं कुर्वति च इरिद्रिताम् ॥३२
 उलूखलनिभैः शोकं मरणं विवतानन्तैः । विरूपैः पुतिनिर्मासैर्गजसन्निभः रोमधिः ॥
 दौःशीत्यं दुर्भगत्वं च दारिद्र्यमधिगच्छति ॥३३

हैं, दुर्बल एवं असुन्दर घुटनों से धनहीन होती हैं । २४। अत्यन्त कुटिल, रुद्धे, टूटे फूटे अग्रभाग वाले, गुड़ के समान लाल वर्णवाले, एक-एक रोम कूप से अनेक संख्या में उत्पन्न होने वाले रोम एवं कणों से युक्त अत्यन्त पिंगल वर्ण की नारी विषतुल्य समझनी चाहिये—यह निश्चित मानिये । वह पापिनी एक सप्ताह के भीतर ही अपने पति का नाश करती हैं—इसमें सन्देह मत यानिये । २५-२६। हाथी के शुण्डादण्ड के समान चढ़ाव उतार वाले, कदली के रंग के समान गोरे, चिकने एवं शीतल करभैः के समान मनोहर एवं रिनध उह प्रदेशों से स्त्रियाँ सर्वदा कामदेव का सुखभोगने वाली होती हैं । २७। बैध गये हैं मांस पिण्ड जिनमें—ऐसे उरुओं से युक्त स्त्रियाँ परम दुर्भाग्य शीतल होती हैं । बहुत रोमावलि से युक्त उरुओं से उसे बन्धन की प्राप्ति होती है । इसी प्रकार सूक्ष्म उरुओं वाली स्त्रियों का वध होता है—ऐसा लोग कहते हैं । मध्य में छिद्र भाग वाले उरुओं से प्रभुत्वहीनता की प्राप्ति होती है । २८। हे द्विज ! संध्या के समान मनोहर वर्णवाले (लालिमा युक्त) सूक्ष्म रोमावलि से सुपोभित, स्थूल जंघे स्त्रियों के परम प्रशंसनीय भने जाते हैं, वे विशेष रति सुख प्रदान करने वाले होते हैं । २९। जिस स्त्री का योनि प्रदेश रोम रहित, समान एवं संधियों से सुशिलष्ट हो, वह चाहे नीच कुल में ही उत्पन्न क्यों न हुई हों—राजा की पत्नी होती हैं । ३०। पीपल के पत्ते के समान कछुए की पीठ के समान ऊपर की ओर उत्तर चन्द्रविष्व की भाँति कलश के समान आकारवाला योनि प्रदेश स्त्रियों के लिए परम प्रशंस्त बतलाया गया है, वह उनके रति एवं सौभाग्य की वृद्धि करने वाला है । ३१। जो तिल के पुष्प की भाँति हो, आगे की ओर पशु की खुरों की भाँति दिखाई पड़ता हो—ऐसे दो प्रकार के योनि प्रदेश दरिद्रता एवं दूसरे की दासता करने वाले होते हैं । ३२। उलूखल के समान योनियों से शोक प्राप्ति होती है, जिसका मुख प्रदेश सर्वदा फैला हुआ हो—ऐसा योनि प्रदेश मरण की सूचना देता है । असुन्दर, दुर्गन्धियुक्त, मांसरहित, हाथी के समान रोमावलि युक्त प्रदेश स्त्रियों की दुःशीलता, दौर्भाग्य एवं दारिद्र्य के सूचक होते हैं । ३३। हे द्विजगण ! कैथे के फल के समान

१. हथेली में मणिबन्ध से लेकर कनिष्ठिका तक का वह भाग जो बाहर की ओर रहता है ।

कपित्थफलसंकाशः पीनो वलिदिर्जितः । स्फीता: प्रशस्यते त्वीणां निन्दितश्चान्यथा द्विजाः ॥३४
 पयोधरभरान प्रप्रचलित्रवलीगुहः । मध्यः शुभावहः स्त्रीणां रोमराजीविभूषितः ॥३५
 पणवाभैर्मृदज्ञाभैस्तथा मध्ये यवोपमैः । प्राप्नुवन्ति भयावासक्लेशदौःशील्यमीदृशैः ॥३६
 अवकःुल्बणं पृष्ठमरोमशनगर्हितम् । नानास्तरणपर्यङ्करतिसौख्यकरं परम् ॥३७
 कुब्जमद्रोणिकं पृष्ठं रोमां प्रदि योषितः । स्वप्रान्तरे भुखं तस्य नास्ति हन्यात्पतिं च सा ॥३८
 विपुलैः ॑भुकुमारैश्च कुलिभिः सुबहुप्रजाः । मण्डूककुर्विर्या नारी राजानं सा प्रसूदते ॥३९
 उन्नतेर्बलिभिर्वन्ध्याः सुवृतैः कुलटाः स्त्रियः । ॒जारकमर्ततास्ताः स्यः प्रबल्ज्यां च समाप्त्युः ॥४०
 उन्नता च नतैः शुद्राः विषमैर्विषमाशया । आत्मुरैश्चर्यसम्पन्ना वनिता हृदयैः समैः ॥४१
 मुवृतमुन्नतं पीतमद्वृत्रेन्नतमायतम् । स्तनयुगममिदं शस्त्रस्तोऽन्यदमुखान्वहम् ॥४२
 उन्नतिः प्रथमे गर्भे द्वयोरेकस्य श्रूयसी । वामे तु जायते कन्या दक्षिणे तु भवेत्सुतः ॥४३
 दीर्घे तु ॑चूचुके यस्याः सा त्वं धूर्ता रातेप्रिया । सुवृत्ते तु पुनर्यस्या द्वेष्टि ता पुरुषं सदा ॥४४

गोले, पुष्ट, सिकुड़न रहित एवं लिकने योग्यानं प्रदेश स्त्रियों के प्रशंसनीय माने गये हैं, इनके अतिरिक्त सभी निन्दित हैं । ३४। उन्नत स्तनों के भार से ज्ञाका हुआ एवं चञ्चल तीन सिकुड़न की रेखाओं से युक्त, रोमावलि से विभूषित मध्यभाग स्त्रियों का परमकल्याणदायी एवं प्रशंसनीय बतलाया गया है । ३५। पणव, मृदज्ञ, एवं जौ की तरह मध्यभाग वाली स्त्रियाँ भय, निवास का कष्ट एवं दुःशीलता को प्राप्त करती हैं । ३६। अवक, सीधे एवं समान, अव्यक्त-अर्थात् ऊपर की ओर न उठा हुआ, रोमावलिरहित पृष्ठ प्रदेश प्रशंसनीय माना गया है । वह विदिध प्रकार के विछावन, पर्यंत एवं रति का सुख प्रदान करने वाला होता है । ३७। स्त्री का पृष्ठ प्रदेश (पीठ) यदि कुबड़ा, असुन्दर एवं रोमावलि से व्याप्त हो तो उसे कभी स्वप्न में भी सुख की प्राप्ति नहीं होती, वह अपने पति को मारने वाली होती है । ३८। विस्तृत एवं सुकुमार कुक्षि प्रदेश (उदर) से स्त्रियाँ अनेक सन्तानों वाली होती हैं । जो स्त्री मेढ़क के समान उदर वाली होती है वह राजा को उत्पन्न करती है । ३९। उदर प्रदेश में स्थित बलियों (सिकुड़न की रेखाओं) के उन्नत होने से स्त्रियाँ बन्ध्या होती हैं, गोलाकार होने से कुलटा होती हैं । ऐसी स्त्रियाँ सर्वदा जार (छिनाले) कर्म में निरत रहकर भगेली बनी रहती हैं । ४०। नीचे की ओर ज्ञुके द्वारा हृदय प्रदेश से स्त्रियाँ उन्नत स्वभाव वाली होती हैं । ऊँचे-नीचे हृदय प्रदेश से क्षुद्र स्वभाववाली एवं कठोर होती हैं । समान हृदय प्रदेश से युक्त स्त्रियाँ दीर्घायु एवं परम ऐश्वर्य सम्पन्न होती हैं । ४१। सुडौल, गोल, उन्नत, पुष्ट, सघन एवं आयताकार दोनों स्तनों के मण्डल स्त्रियों के लिए परम प्रशंसनीय माने गये हैं, इनके विपरीत जो हों वे दुःख देने वाले कहे जाते हैं । ४२। प्रथम गर्भावस्था में यदि स्त्रियों के दोनों स्तनों में सेकिसी की पहले विशेष वृद्धि हो तो उसका फल इस प्रकार होता है । वाम स्तन की वृद्धि से कन्या एवं दक्षिण स्तन की वृद्धि से पुत्र की उत्पत्ति होती है । ४३। जिस स्त्री के चूचक लम्बे होते हैं वह परमधूर्त एवं रति को विशेष पसन्द करने वाली होती है । इसके विपरीत जिसके चूचक बहुत गोले होते हैं वह सर्वदा अपने पति से द्वेषभाव

१. कुसुमाकारैः । २. परकर्म । ३. चुबुके ।

स्तनैः सर्पफणाकारैः चेजिह्वाकृतिभिस्तथा ! दारिद्र्यमधिगच्छन्ति स्त्रियः पुरुषचेष्टिताः ॥
 अवप्त्वद्धटीतुल्या भवन्ति हि तथा द्विजाः ॥४५
 सुसमं मांसलं चारु शिरो रोमविवर्जितम् । वक्षो यस्या भवेन्नार्या भोगान्भुक्ते यथेष्पितान् ॥४६
 हिंका भवति वक्षेण दौःशील्यं रोमशेन द्वुः : निर्मासेन तु दैधव्यं दिस्तीर्णं कलहप्रिया ॥४७
 चतब्दे रक्तगम्भीरा रेखाः स्तिथाः करे त्रियाः । यदि स्मुः तु उपसमाप्तोति विच्छिन्नभिरनीशता ॥४८
 रेखाः कनिष्ठिकामूलाद्यस्या : प्राप्ताः प्रदेशिनीम् । शतमात्रुर्भवेत्तस्यास्त्रयाणामुम्भतौ क्रमात् ॥४९
 संवृत्ताः समपर्दाणस्तोक्षणाग्रा : कोमलत्वचः । समाहृण्गुलयो यस्याः सा नारी भोगवर्धिनी ॥५०
 बन्धुजीवारुणस्तुर्गंखेरभृत्यमाप्नुयात् । खरैवकैर्विद्विष्णश्च : भेतप्रीतैरनीशता ॥५१
 रक्तमृदुभिरैभृत्यं निश्चिद्राङ्गुलिर्भिर्द्विजाः । स्फुटितैर्विष्णमे रूक्षैः क्लेशं पाणिभिराम्बुद्युः ॥५२
 समरेखा यवा यासाङ्गुष्ठाङ्गुलिपर्वम् । तासां हि विपुलं सौख्यं धनं धान्यं तथाऽक्षयम् ॥५३
 मणिबन्धोऽव्यवच्छिन्नो रेखात्रयविभूषितः । ददाति न चिरादेव भोगमायुस्तथाक्षयम् ॥५४
 श्रीवत्सध्वजपद्माक्षगजवाजिनिवेशनैः । चक्ररवस्तिकवज्ञासिपूर्णकुम्भनिभाङ्गुशः ॥५५

रहने वाली होती हैं । ४४। सर्प के फण एवं कुते की जीभ के समान आकार वाले स्तनों से स्त्रियाँ पुरुष के समान चेष्टा करने वाली तथा दरिद्रता को प्राप्त करने वाली होती हैं । हे द्विजवृन्द ! इसी प्रकार छोटे कलश के समान स्तनों वाली स्त्रियाँ भी पुरुषवत् चेष्टाशील तथा दरिद्र होती हैं । ४५। जिस स्त्री का वक्षस्थल समान, मांसल, शिरा (नस) एवं रोमावलि से रहित होते हैं वह, मन चाहे भोग विलास का आनन्द उठाती है । ४६। वक्र वक्षस्थल से हिंसक स्वभाव वाली तथा रोमावलि युक्त वक्षस्थल से स्त्रियाँ दुशील होती हैं । मांसरहित वक्षस्थल वैधव्य का सूचक तथा विस्तृत वदास्थल कलह प्रिय का सूचक होता है । ४७। स्त्री के हाथ में चिकनी गम्भीर लालिमायुक्त चार रेखाएँ यदि हों तो वह प्रचुर मुख प्राप्ति करती है, यदि ये ही रेखाएँ टूटी-फूटी और अपूर्ण हों तो वह प्रभुत्वहीन होती है । ४८। जिस स्त्री के हाथ में कनिष्ठिका अङ्गुली के मूल से निकलने वाली रेखा प्रदेशिनी (तर्जनी) अङ्गुली तक पहुँचने वाली हो और क्रमशः तीनों अङ्गुलियों तक उत्तरोत्तर उन्नत हो उसकी आयु सौ वर्ष की होती है । ४९। जिस स्त्री के हाथ की अंगुलियाँ सुन्दर, भोली, समान पर्वोवाली, आगे की ओर पतली, कोमल चमड़ी से युक्त एवं समान हों, वह स्त्री भोग की वृद्धि करने वाली होती है । ५०। दोपहरी के पुष्य के समान अत्यन्त रक्तवर्ण एवं ऊपर की ओर उठे हुए नखों से स्त्रियाँ ऐश्वर्य की प्राप्त करने वाली होती हैं । प्रखर, टेढ़े-मेढ़े, विवर्ण, श्वेत एवं पीले नखों से अप्रभुत्व को प्राप्त करने वाली होती हैं । ५१। हे द्विजवृन्द ! रक्तिम, मृदुल एवं छिद्ररहित अङ्गुलियों वाले मनोहर पाणि से स्त्रियाँ ऐश्वर्यशालिनी होती हैं । इसके विपरीत टूट-फूटे, ऊँचे नीचे एवं रुखे हाथों से वह क्लेशयुक्त रहती है । ५२। जिन स्त्रियों के हाथ में समान रेखाएँ तथा अङ्गूठे में जौ के आकार की रेखा हो, उनको विपुल मुख-साधन तथा अक्षय धन-धान्य की प्राप्ति होती है । ५३। तीन लम्बी रेखाओं से विभूषित अव्यवच्छिन्न मणिबन्ध जिस स्त्री का हो उसे बहुत शीघ्र ही अक्षय भोग ऐश्वर्य एवं दीर्घायु प्राप्त होता है । ५४। श्रीवत्स, ध्वज (पताका) कमल, अष्ट, हाथी, घोड़ा, भवन, चक्र, स्वस्तिक, वज्र, तलवार, पूर्णकलश, अंकुश, राजभवन, छत्र, मुकुट, हार, केयूर, कुण्डल, शंख, तोरण एवं व्यूह के चिह्न

प्रासादच्छत्रमुकुटैर्हरिकेयूरकुण्डलैः । शशूतोरणनिर्वृहैर्हस्तन्यस्तैर्नृपत्तियः ॥५६
 यस्या: पाणितले रक्ता यूपकुम्भाश्रव कुण्डिकाः । दृश्यते चरणे यस्या यज्ञपत्नी भद्रत्यस्तौ ॥५७
 वीथ्यापण्टुलामानैस्तथा मुद्रादिभिः स्त्रियः । भवन्ति दण्डाणं पत्न्यो रत्नकाञ्चनशालिनाम् ॥५८
 दात्रयोऽश्रयुगाबन्धफलोलूखललाङ्गूलैः । भवन्ति धनधान्यादधाः कृषीवलजनाङ्गूलाः ॥५९
 अनुश्रतशिरासन्धि पीनं रोमविवर्जितम् । गोपुच्छाङ्गति नारीणां दुजयोर्युगुलं शुभम् ॥६०
 निष्ठूदग्रन्थयो यस्या: कूर्षरौ रोमवर्जितौ । चाहू इ ललितौ यस्या: प्रशत्तौ वृत्तकोमलौ ॥६१
 उश्रतावनतौ चैव नातिस्थूलौ न रोमशो । मुखदौ तु सदा स्त्रीणां सैभायारोपयर्घनौ ॥६२
 स्थूले स्कन्धे वहेद्वारं रोमशं व्याधिता अवेत् । वक्षस्कन्धे भवेद्वन्ध्या कुलटा चोश्रतःन्ने ॥६३
 स्पष्टं रेखाश्रयं यस्या प्रीवायां चतुरड्युलम् । मणिकाञ्चनमुक्तादधं सा इधाति विसूषणम् ॥६४
 अधनः स्त्री दृश्यीवा दीर्घीवा च बन्धकी । हस्तवीवा दृतापत्या स्थूलप्रीवा च हुःखिता ॥६५
 अनुश्रता समांसा च समा यस्या: कुकटिका । मुदीर्घमायुस्त्वस्यास्तु चिरं भर्ता च जीवति ॥६६
 निर्मासा बहुमांसा च शिराला रोमशा तथा । कुटिला विकटा चैव विस्तीर्णा त्रुच्च शस्यते ॥६७

जिनके हाथ में हों वे राजा की स्त्रियाँ होती हैं । ५५-५६। जिस स्त्री के हाथ में रक्तवर्ण के स्तम्भ तथा कलश एवं चौकोर कुण्डिका पैर में हों वह स्त्री किसी यज्ञकर्ता की पत्नी होती है । ५७। गळी, बाजार, तराजू एवं मुद्राओं के चिह्न जिन स्त्रियों के हाथ में हों वे सुवर्ण रत्न के महान् व्यापारी की पत्नी होती हैं । ५८। दात्र (काटने वाले हथियार) योक्त्र (नाधा) जूआ, फाल, उलूखल (ओखली) एवं हल के चिह्नों वाली स्त्रियाँ धन-धान्य सम्पद एवं किसान की गृहिणी होती हैं । ५९। जिसकी नसे एवं संधियाँ बहुत उश्रत न हों, पुष्ट, भासल एवं रोमावलि रहित हों, गौ की पूँछ के समान आकार दाली हों ऐसी स्त्रियों की दोनों भुजाएँ कल्पाणवारक होती हैं । ६०। जिसकी ग्रन्थि (गाठ) ढाँकी हुई हो, ऐसी कुहने वाली रोमरहित, गोल, कोमल, ललित भुजाएँ स्त्रियों की प्रशंसनीय मानी गई हैं । ६१। उचित स्थान पर उश्रत एवं उचित स्थान पर अवनत बहुत भद्रे, मोटापे से रहित, रोम विहीन बाहुएँ स्त्रियों की सौभाग्य एवं आरोग्य की वृद्धि करने वाली तथा सर्वदा सुखदायिनी होती हैं । ६२। जिस स्त्री के दोनों कन्धे बहुत मोटे होते हैं, वह भार ढाँचेवाली होती हैं, रोमावलि युक्त कन्धेवाली स्त्री व्याधियुक्त होती है । टेढ़े कंधेवाली बन्ध्या तथा ऊँचे नीचे कन्धे वाली व्यभिचारिणी होती है । ६३। जिस स्त्री के कण्ठ में चार अंगुल तक स्पष्ट तीन रेखाएँ हों, वह भणिजटिट सुवर्ण के अलंकारों को धारण करने वाली होती है । ६४। जिस स्त्री का कण्ठ प्रदेश बहुत दुर्बल रहता है वह निर्धन होती है । लम्बी ग्रीवा वाली स्त्री बंधकी अर्थात् छिनाल होती है । जिस स्त्री का कण्ठ प्रदेश बहुत अल्प होता है उसकी सन्ततियाँ नहीं जीतीं, इसी प्रकार स्थूल ग्रीवा वाली स्त्री सर्वदा दुःख भोगने वाली होती है । ६५। जिस स्त्री की कुकटिका (ग्रीवा की ऊँची ग्रन्थि, जो रीढ़ को जोड़ती है) अनुनत अर्थात् ऊँची उठी हुई न हों, मांसल एवं समान होती हैं उसकी आयु बहुत लम्बी होती है, उसका पति भी दीर्घजीवी होता है । ६६। वह ग्रन्थि यदि मांस रहित अथवा अत्यन्त मासल, नसों से व्याप्त, रोमावलियुक्त, वक्ष, विकट एवं विस्तीर्ण हो तो वह प्रशंसनीय नहीं है । ६७। न अत्यन्त स्थूल, न कृश, न

न स्थूलो न कृशोऽत्यर्थं न वह्नो न च रोमशः । हनुरेवंविधः श्रेयांस्ततोऽन्यो न प्रशास्यते ॥६८
 चतुरलमुखी धूर्ता मण्डलास्या शिवा^१ भवेत् । अप्रजा वाजिवका स्त्री महावका च दुर्भगा ॥६९
 श्वराहृष्टकोलूकमर्कटास्याश्र्व याः स्त्रियः । हृष्टास्ताः पापकर्मिण्यः प्रजाबान्धवर्जिताः ॥७०
 मालतीबकुलाम्भोजनीलोत्पलमुगन्धि यत् । वदनं मुच्यते नैतत्पानताम्बूलभोजनैः ॥७१
 ताम्राभः किञ्चिदालम्भः रथौल्यकाशर्यविदजितः । अधरो यदि तुङ्गश्च नारीणां भोजदः सदा ॥७२
 स्थूले कलहशीला स्याद्विवर्णं चातिदुर्खिता । उत्तरोष्णेन तीक्ष्णेन वनिता दातिकोपना ॥७३
 जिह्वा तनुतरा वक्ता ताम्रा दीर्घा च शस्यते । स्थूला हृस्वा विवर्णा या वक्ता भिन्ना च निन्दिता ॥७४
 शङ्खकुन्दे न्दुधवलैः स्तिर्गैस्तुङ्गैरसान्धभिः । मिष्टान्नपानभः प्रोति दन्तैरेभिरनुक्षतैः ॥७५
 सूक्ष्मैरतिकृशैर्हस्वैः स्फुटितैर्विरलंस्तथा । रुक्षेश्व दुःखिता नित्यं विकटैर्भासिनी भवेत् ॥७६
 सुमृष्टदर्पणम्भोजपूर्णविम्बेन्दुसनिभम् । वदनं वरनारीणामभीष्टफलदं स्मृतम् ॥७७
 न स्थूला न कृशा वक्ता नातिदीर्घा समुन्नता । ईदृशी नासिका यस्याः सा धन्या तु शुभङ्करी ॥७८
 उन्नता मृदुला या च रेखा शुद्धा न सङ्घ्रता । भ्रूदक्तुल्या सूक्ष्मा च योषितां सा सुआवहा ॥७९

वक्ता, न रोमावलियुक्त—ऐसा चिबुक स्त्रियों का परम कल्याणदायी होता है। इसके विपरीत जो हों, वे प्रशंसनीय नहीं माने गये हैं । ६८। चौकोर मुखवाली स्त्री धूर्त स्वभाव की होती है। मण्डलाकार अर्थात् गोले मुखवाली कल्याणदायिनी होती है । घोड़े के समान पुँह वाली स्त्री सन्तानविहीन एवं लम्बे मुखवाली स्त्री दुर्भगा होती है । ६९। इसी प्रकार कुन्जे, शूकर, भेड़िया, उल्लू, बन्दर के समान मुखवाली स्त्रियाँ कूर स्वभाव वाली पापिनी, सन्तान एवं बन्धु-बान्धवादि से विहीन होती हैं । ७०। मालती, मौलसिरी, लाल कमल एवं नीलकमल के समान ऊँगन्धि जिससे निकलती हो, स्त्रियों का ऐसा मुख सुस्वादु पेय, ताम्बूल एवं सुभोजन से कभी वञ्चित नहीं होता । ७१। लालिमायुक्त स्तिर्गै, स्थूलता एवं कृशता से रहित, ऊपर की ओर उठे हुए स्त्रियों के अधर सर्वदा भोग देने वाले होते हैं । ७२। स्थूल अधरोंवाली स्त्री कलहप्रिय होती है, विवर्ण अधरों वाली अत्यन्त दुःखभागिनी होती है; ऊपर का ओठ यदि बहुत पतला हो तो वह स्त्री अत्यन्त क्रोधी स्वभाव वाली होती है । ७३। जो अत्यन्त पतली, टेढ़ी, लम्बी एवं लालिमायुक्त हो—ऐसी जिह्वा स्त्रियों के लिए प्रशंसनीय मानी गई है। इसके विपरीत मोटी, छोटी, विवर्ण, टेढ़ी एवं भिन्न दिखाई पड़ने वाली जिह्वा निन्दनीय मानी गई है । ७४। शंख, कुन्दपुष्प एवं चन्द्रमा के समान श्वेत, चिकने, ऊँचे, सधि रहित (एक दूसरे में एकदम सटे हुए) एवं अनुग्रह दाँतों से स्त्रियाँ मिष्ठान एवं मुन्दर सुस्वादु पेय प्राप्त करती हैं । ७५। इसके विपरीत बहुत छोटे-छोटे अत्यन्त कमज़ोर, फूटे हुए, विरल रूखे एवं विकट दाँतों से स्त्रियाँ सर्वदा दुःख भोगने वाली होती हैं । ७६। परम स्वच्छ, मुन्दर, दर्पण, कमल एवं पूर्णिमा के चन्द्रविम्ब की भाँति आकर्षक एवं मनोहर मुख परमश्रेष्ठ स्त्रियों को अभीष्ट फल प्रदान करने वाले कहे जाते हैं । ७७। न अत्यन्त मोटी न अत्यन्त कृश, न अत्यन्त लम्बी, समुन्नत नासिका जिसकी हो वह कल्याणी स्त्री धन्य है । ७८। उन्नत, मृदुल (कोमल) शुद्ध रेखाङ्कित, मुख के समान आकार वाली सूक्ष्म भौंहें

‘धनुस्तुत्याभिः सौभाग्यं वन्ध्या स्पाददीर्घरोमभिः । पिङ्गलासङ्कृता हस्ता दारिद्र्याय न संशयः ॥८०
 नीलोत्पलदलप्रख्यैरातामैश्चारुपक्षमभिः । वनिता नयनैरभिर्भौगोंसौभाग्यभागिनी ॥८१
 खञ्जनाक्षी मृगाक्षी च वराहाक्षी वराङ्गना । यत्रयत्र समुत्पन्ना महान्तं भोगमशनुते ॥८२
 आगम्भीरैरसंभिष्ठैर्बहुतेखाविभूषितैः । राजपत्न्यो भवन्तीह नयनैर्मधुपिङ्गलैः ॥८३
 वायसाकृतिनेत्राणि दीर्घपाङ्गानि योषिताम् । अनाविलानि चारुणि शवन्ति हि विसूतये ॥८४
 गम्भीरैः पिङ्गलैश्च दुःसिताः स्युश्चिरायुषः । वयोमच्ये त्यजेत्प्राप्णानुशताक्षी तु॒ पाङ्गना ॥८५
 रक्ताक्षी विषमाक्षी च॒ धूमाक्षी पेतलोचना । वर्जनीयः सदा नारी श्वेता चेव द्रवतः ॥८६
 उद्भ्रान्तकैः करैश्चित्तैर्नैस्त्वंशास्त्विष्यह । मद्यमांसप्रिया नित्यं चपलाश्चैव सर्वतः ॥८७
 करालःकृतयः कर्णा नभःशब्दास्तु संस्थिताः । वहन्ति दिक्सत्कान्ति हेमरत्नविभूषणम् ॥८८
 खरोष्टनकुलोलूककपिलश्वरणः स्त्रिदः । प्राप्नुवन्ति महृःखं ग्रायशः प्रवजन्ति च ॥८९
 ईषदापाणुगण्डा या तुवृत्ता पर्वणि त्विह । प्रशस्ता निन्दिता त्वन्या रोमकूपकद्विषिता ॥९०
 अर्धनुद्वितिमाभोगमरोम तु समाहितम् । भोगःरोग्यकरं श्रेष्ठं ललाटं वरदोषिताम् ॥९१

स्त्रियों को सुख देने वाली होती हैं । ७९। धनुष के समान टेढ़ी भौंहें सौभाग्य देने वाली होती हैं, दीर्घ रोमावलि युक्त स्त्रियों की भौंहें उनके वन्ध्यापन की सूचना देती हैं । इसी प्रकार पिङ्गल वर्णवाली, असंगत एवं छोटी भौंहें निस्सन्देह दरिद्रता देनेवाली होती हैं । ८०। नीले कमल दल के समान मनोहर, कुछ लालिमा लिये हुए, सुन्दर, भौंहों से विभूषित नेत्रोंवाली स्त्री सौभाग्य एवं भोग विलास को प्राप्त करने वाली होती हैं । ८१। खञ्जन, मृग एवं शूकर के समान नेत्रोंवाली सुन्दरी स्त्री जहाँ तहाँ उत्पन्न होकर महान् भोग एवं ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाली होती हैं । ८२। गंभीरता रहित असंशिष्ट, बहुत रेखाओं से विभूषित मधु के समान लाल वर्ण के नेत्रोंवाली स्त्रियाँ इस लोक में गजपती के रूप में उत्पन्न होती हैं । ८३। कौआं के आकार के समान, लम्बे कोण वाले स्वच्छ सुन्दर स्त्रियों के नेत्र उनके धन सम्पत्ति की सूचना देने वाले होते हैं । ८४। अत्यन्त गम्भीर (गहरे) पीले वर्ण के नेत्रोंवाली स्त्रियाँ लम्बी आगु प्राप्त कर दुख भोगने वाली होती हैं । जो स्त्री उन्नत नेत्रोंवाली होती है वह अपनी जवानी में ही मृत्यु को प्राप्त करने वाली होती है । ८५। लाल, विषम, धूमिल एवं प्रेतों के समान नेत्रोंवाली स्त्री सर्वदा वर्जनीय है, इसी प्रकार कुते के समान नेत्रवाली स्त्री को भी दूर से ही छोड़ देना चाहिये । ८६। उद्भ्रान्त (टपरे) केकर (ऐच्चाताना) एवं विचित्र वर्ण वाले नेत्रों से स्त्रियाँ मद्य सांस को पसन्द करने वाली तथा सर्वत्र चञ्चल रहती हैं । ८७। कराल आकृति वाले लम्बे कान स्त्रियों के सुवर्ण एवं कणों के आभूषण से युक्त मनोहर कान्ति प्राप्त करनेवाले होते हैं । ८८। गधा, ऊँट, नेवला एवं उलूक के समान कानोंवाली एवं कपिल वर्ण के कानोंवाली स्त्रियाँ महान् दुख भोगती हैं और प्रायः इधर-उधर भ्रमण करने वाली होती हैं । ८९। कुछ पाण्डु वर्ण वाले गोल कपोल स्त्रियों के प्रशंसनीय माने गये हैं । इसके विपरीत रोम कूपों से दूषित कपोल वाली स्त्रियाँ दूषित बतलायी गई हैं । ९०। अर्धचन्द्रमा के समान आकार वाले, रोमावलि रहित, समान, सुन्दर ललाट मुन्दरी स्त्रियों के भोग एवं आरोग्य की वृद्धि करने वाले होते हैं । ९१। जैसा

१. नेत्रतुल्याभिः । २. रुजं गता । ३. वृत्ताक्षी ।

द्विगुणं परिणाहेन ललाटं विहितं च यत् । शिरः प्रशस्तं नारीणामधन्या हस्तिमस्तका ॥१२
 सूक्ष्मा: कृष्णा मृदुस्तिन्द्या: कुञ्जिताप्राः शिरोरुहाः । भवान्ति श्रेयसे स्त्रीणामन्ये स्युः क्लेशशोकदाः ॥१३
 हंसकोकितवीणालिशिखेणुस्वरा: स्त्रियः । प्रामुखन्ति बहूभोगान्भृत्यानाज्ञापयन्ति च ॥१४
 भिन्नकांस्यस्वरा नारी दरकाकस्वरा च या । रोगं व्याधिं भयं शोकं दारिद्र्यं चाधिगच्छति ॥१५
 हंसगोवृष्टचक्राद्ब्रह्मतमातङ्गामिनी । स्वकुलं घोतथेन्नारी महिषी पार्थिवस्य च ॥१६
 श्वशृगालगतिर्निन्द्या या च वायसवद्वजेत् । दासी मृगागतिर्नारी द्रुतगामी च बन्धकी ॥१७
 फलिनी रोचना हैमकुड्कुमप्रभ एदं च । वर्णः शुभकरः स्त्रीणां यश्च द्वर्चाइकुरोपमः ॥१८
 मृद्वनि मृदुरोमाणि नात्यन्तस्वेदकर्णि च । तुरभीणि च गात्राणि यासां ताः पूजिताः स्त्रियः ॥१९
 नोद्रहेत्कगिलं कन्यां नाधिकाङ्गीं न रोगिणीम् । नालेमिकां नातिहस्वां न वाचाटां न पिङ्गलाम् ॥२०
 नर्कवृक्षनदीनाम्नीं नात्यर्पवतनामिकाम् । न पक्ष्यहिष्ठेष्वतनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥२०१
 अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनःप्रीं हंसवारणगामिनीम् । तनुलोमकेशदशनां मृदङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥२०२
 महान्त्यपि समृद्धानि गोजाविधनधान्यतः । स्त्रीसम्बन्धे दरैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥२०३

कि ललाट बतलाया गया है, विस्तार में उससे द्विगुणित शिर स्त्रियों के प्रशंसनीय माने गये हैं । हाथी के समान विशाल शिर वाली स्त्री प्रशंसनीय नहीं समझी जाती है । १२। सूक्ष्म (महीन) काले, मृदुल चिकने, आगे की ओर कुञ्जित (धूंधराले) शिर के केण स्त्रियों के कल्याण के लिए होते हैं, इसके विपरीत जो हैं वे क्लेश और शोक देने वाले कहे जाते हैं । १३। हंस, कोकिल, वीणा, भ्रमर, मधूर और वेणु के समान स्वर वाली स्त्रियाँ बहुत भोग एवं ऐश्वर्य की अधिकारिणी होती हैं, वे नौकरों पर शासन चलाने वाली होती हैं । १४। जो स्त्री पूरे हुए कासे के वर्तन के समान स्वर वाली एवं गधे और कौआे के समान स्वरवाली होती है वह रोग, शोक, व्यादि, भय एवं दरिद्रता को प्राप्त करने वाली होती है । १५। हंस, गौ, वृषभ, चक्रवाक एवं मतवाले हाथी के समान गमन करने वाली स्त्री अपने कुल को प्रकाशित करने वाली अथवा राजा की स्त्री होती है । १६। कुते और सियार के समान गमन करने वाली स्त्री निन्दित मानी गई है, इसी प्रकार जो कौआे के समान चलती है वह भी निन्दनीय है । मृग के समान गमन करने वाली स्त्री दूसरे की दासी एवं शीघ्र गमन करने वाली व्यभिचारिणी होती है । १७। मेंहदी, हरिद्रा, गोरोचन, सुवर्ण, केसर और चम्पे के पुष्प के समान शरीर का वर्ण स्त्रियों के लिए कल्याणकारी होता है । १८। इसी प्रकार दूब के अंकुर के समान (गोरे) वर्ण भी स्त्रियों का प्रशस्त बतलाया गया है । मृदुल, मनोहररोमावलि से विभूषित अत्यन्त पसीना न होने वाले सुगन्धित शरीर जिन स्त्रियों के हों वे पूजनीय हैं । १९। कपिल (भूरे) वर्ण की कन्या का विवाह न करें । इसी प्रकार रुण, अधिक अंगों वाली, लोम विहीन, वामनाकृति, वकवादिनी एवं पिंगल वर्णवाली कन्याओं के साथ विवाह नहीं करना चाहिये । २०। नदी, वृक्ष, नक्षत्र, पर्वत, पक्षी, सर्प, दासादि भाव व्यञ्जक तथा भयानक नाम जिन कन्याओं के हों उनके साथ भी विवाह नहीं करना चाहिये । २०१। मनोहर अंगोंवाली मुन्द्र नाम से तिभूषित, हंस एवं हाथी के समान गमन करने वाली, सूक्ष्म लोभ, सूक्ष्म केश एवं सूक्ष्म दांतों वाली कोमलाङ्गी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये । २०२। प्रचुर धन-धान्य सम्पत्ति के समूह हों, गौ, अज, (बकरी) अवि (भेड़) आदि दूध देने वाले पशुओं की भी अधिकता हो, किन्तु फिर भी इन दस कुलों को स्त्री सम्बन्ध करते हुए छोड़ देना चाहिये । २०३।

हीनक्रियं निष्पुरुचं निश्छन्दोरोमशार्शसम् । कथामयाव्यप्तस्मारिभित्रकुष्ठिकुलानि च ॥१०४
 पादौ मुगुलकौ प्रथमं प्रतिष्ठौ जङ्गे द्वितीयं च सुजानुचक्षे ।
 मेद्रोलुगुह्यं च तत्स्तृतीयं नाभिः कटिश्चेति चतुर्थमाहुः ॥१०५
 उदरं कथयत्ति एव्वरं हृदयं षष्ठमथ स्तनान्वितम् ।
 अथ सप्तममंसजनुणी कथगः न्यष्टममोष्ठकन्धरे ॥१०६
 नवमं नयने च सन्त्रुणी सललाटं दशमं शिरस्तथा ।
 अशुभेष्टशुभं दशाफलं चरणं चरणाद्यशुभेषु शोभनम् ॥१०७
 इदं महात्मा स महानुभावः शाचीनिमित्तं गुरुरबीदिद्वजाः ।
 शक्णेण पृष्ठः सविशेषमुत्तमं संलक्ष्यमुत्तं वरयोषलक्षणम् ॥१०८
 मत्सकाशात्युनः श्रुत्वा लक्षणं पुरुषस्य च । यथाधुना भवद्दिस्तु श्रुतं मत्तो द्विजोत्तमाः ॥१०९
 लक्षणेभ्यः प्रशस्तं तु स्त्रीणां सदृतमुच्चते ; सदृतमुक्त्वा या स्त्री सा प्रशस्तः न च लक्षणैः ॥११०
 ईदृतलक्षणसम्पन्नां सुकन्यामुद्दहेतु यः । श्रद्धिर्विद्विस्तथा कीर्तिसत्र तिष्ठति नित्यशः ॥१११
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्राणां संहिताणां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीलक्षणवर्णनं
 नाम पञ्चमोऽध्यायः ।५।

क्रियाहीन, पौरुषरहित, वेदविहीन, अधिकरोमवाले, अर्श रोग वाले, क्षय रोगवाले, मृगी रोग वाले, सर्वदा किसी न किसी रोग में ग्रस्त रहने वाले, इवेत कुष्ठ एवं गलित कुष्ठ वाले कुलों के साथ विवाह संस्कार न करे । १०४। स्त्रियों के दोनों पैर और गुल्फ प्रथम प्रशंसनीय माने गये हैं । फिर सुन्दर जानु (घुटने) भाग से मुशोभित जंघाओं की प्रशंसन में द्वितीय स्थान है । फिर मेद्र (जिङ्ग) उर एवं गुह्याङ्ग का तृतीय स्थान है, कटि एवं नाभि का चतुर्थ स्थान बतलाया गया है । १०५। पाँचवाँ स्थान सुन्दरता में उदर का है, स्तनमण्डल समेत हृदय का छठाँ स्थान है ; कंधा और उसकी सन्धि का सातवाँ तथा दोनों ओठों का आठवाँ स्थान है । १०६। नवाँ स्थान सुन्दर भौंहों से युक्त नेत्रों का तथा दसवाँ स्थान सुन्दर ललाट से सुशोभित शिर का है । इन चरणादि अङ्गों के उपर्युक्त लक्षणों के अनुसार शुभ होने पर शुभ दशा एवं फल भोगना पड़ता है, अशुभ होने पर अशुभ भोगना पड़ता है । १०७। द्विजवृन्द ! महानुभाव एवं परममहात्मा बृहस्पति ने इन्द्र द्वारा शाची के लिए पूछे जाने पर स्त्रियों के इन समस्त लक्षणों को विशेषता पूर्वक बतलाया था । १०८। हे द्विजवृन्द ! जिस प्रकार आप लोगों ने स्त्रियों के समस्त शुभाशुभ लक्षणों को सुना है उसी प्रकार पुरुषों के समस्त लक्षणों को मुझसे सुनकर अवगत कर लीजिये । १०९। मैंने जिन शुभाशुभ फलदायक लक्षणों की ऊपर चर्चा की है, उनसे बढ़कर स्त्रियों के सदाचरण की प्रशंसा की गई है । अच्छे लक्षणों वाली भी स्त्री यदि सदाचरण विहीन है तो वह प्रशंसनीय नहीं है । ११०। इन उपर्युक्त शुभ लक्षणों से मुशोभित सुकन्या के साथ जो विवाह करता है, उसके गृह में सर्वदा ऋद्धि, वृद्धि एवं कीर्ति का निवास रहता है । १११

श्री भविष्यमहापुराण के ब्रह्मचर्य पर्व में स्त्रीलक्षण वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।५।

अथ षष्ठोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणसद्वृत्तवर्णनम्

शतानीकउवाच

सद्वृत्तं श्रेत्रुमिच्छाणि देवस्त्रीणां सुविस्तरात् । उत्तमाधममध्यं च सम्बन्धे स्त्रीकृते यथा ॥१

सुमन्तुरुखाच

शतानीक महालाहो ब्रह्मलोके पितामहः । उदत्ता सलक्षणं स्त्रीणां सद्वृत्तं चोक्तवान्युनः ॥२
 यथोत्तं ब्रह्मणां^१ तेषामृषीणां कुरुनन्दन । स प्रेयो वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा बननमबर्वीत् ॥३
 भृणुध्वं द्विजशार्दूलाः स्त्रीणां सद्वृत्तमादितः । वक्ष्ये युष्मानशेषं वै लोकानुग्रहकाम्यया ॥४
 त्रिवर्गप्राप्तये वक्ष्ये स्त्रीवृत्तं गृहमेधिनाम् । प्राग्विद्यादीनुपादाय तैर्थाश्र यथाक्रमम् ॥५
 विन्देत सदृशीं भार्या शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥५
 गृहाश्रमो हि निःस्वानां महत्येषा विडम्बना । तस्मात्पूर्वमुण्डादेयं वित्तमेव गृहैषिणा ॥६
 वरं सोढा मनुष्येण तीव्रा नरकवेदना । न त्वेव च गृहे दृष्टं पुत्रदारक्षुधादितम् ॥७

अध्याय ६

स्त्रीलक्षण-सद्वृत्त वर्णन

शतानीक बोले—हे मुनि जी ! अब मैं उन देवस्त्रियों के सदाचार को सविस्तार सुनना चाहता हूँ
 स्त्रियों के सम्बन्ध में जिनका उत्तम, मध्यम एवं अधम कोटि का स्थान माना गया है ॥१

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाबू शतानीक ! ब्रह्मलोक में स्त्रियों के लक्षण सुना चुकते के उपरान्त
 पितामह ब्रह्मा ने स्त्रियों के सदाचार के सम्बन्ध में पुनः बोले ॥२ हे कुरुनन्दन ! जिस प्रकार उन
 कृषियों एवं ब्राह्मणों से स्त्रियों के सदाचार के सम्बन्ध में कहा था, उस कल्पाणिदायक वचन को सुन कर
 ब्रह्मा ने कहा ॥३ द्विजशार्दूलगण ! प्रारम्भ से स्त्रियों के सदाचार का श्रवण कीजिये । लोक पर
 अनुग्रह करने की इच्छा से मैं स्त्रियों के समस्त सदाचारों को बतला रहा हूँ ॥४ गृहस्थाश्रम में निवास
 करने वालों को विवर्ग धर्मार्थकाम की प्राप्ति हो जाय इस पवित्र उद्देश्य से ही मैं स्त्रियों के इन सदाचारों
 को बतला रहा हूँ । सर्वप्रथम विद्या आदि का उपार्जन कर एवं उनसे धन प्राप्ति कर शास्त्रीय विधिपूर्वक
 अपने अनुरूप स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये ॥५ निर्धन व्यक्तियों के लिए गृहस्थी एक बड़ी बाधा
 एवं विडम्बना के रूप में दुःखदायिनी हो जाती है अतः गृहस्थी की इच्छा रखने वाले को प्रयत्नः धन का
 ही उपार्जन करना चाहिये ॥६ मनुष्य को तीव्र नाटकीय वेदना सह लेना श्रेष्ठ है, पर घर में भूख से व्याकुल

१. स नः । २. विप्राणाम् ।

अतस्मिवे शिशुं दृष्ट्वा रुदन्तं प्रार्थनापरम् । दञ्चत्तारम्यं मन्ये हृदयं यन्त दीर्घते ॥८
 साध्वीं भार्या प्रियां दृष्ट्वा कुचलां कुत्कृशीकृताम् । अस्य दुःखस्य तन्नास्ति गुणं यत्समांवजेत् ॥९
 रुक्षान्विवरणान्सुधितान्मूलिप्रस्तरशायिनः । पुत्रदारान्निजान्दृष्ट्वा किमकार्यं भवेन्नुणाम् ॥१०
 बाहूत्तरीयं कृत्कामं दृष्ट्वा दीनमुखं युतम् । भृत्युरेवोत्सवः पुंसां व्यसनं जीवितं द्विजः ॥११
 परिसीदत्स्वपत्येषु दृष्ट्वा दीनमुखेण प्रियाम् । वज्रकार्यशरीरास्ते ये न यान्ति सहस्रधा ॥१२
 तस्मादर्थविहीनस्य पुंसो द्विरपिप्रहात् । कुतस्त्रिवर्गं संसिद्धिर्यात्तनैव हि तस्य सा ॥१३
 अभार्यस्याधिकारोऽस्ति न द्वितीयाश्मे यथा ! तद्रादर्थविहीनानां सर्वत्र नाधिकरित ॥१४
 केचित्स्वपत्येवाहुस्त्रिवर्गाद्विनिःसाधनम् । पुंसामर्थः कलन्दं च येऽन्ये नीतिविदो विदुः ॥१५
 धर्मोऽपि द्विविधो यस्मादिष्टापूर्वतक्षिणात्मकः । स च वारात्मकः सर्वं ज्ञेयमर्थैकसाधनम् ॥१६
 निजेनापि^१ दरिद्रेण लोको लज्जाति बन्धुना । परोऽपि हि मनुष्याणामैश्चर्यात्स्वजनायते ॥१७
 न दरिद्रं तसीपेऽपि स्थितवन्तं प्रपश्यति । दूरस्थमपि वित्तादथमादराद्वूजते जनः ॥१८

पुत्र स्त्री का देखना उचित नहीं है । १। असमर्थता में प्रार्थनापूर्वक किसी वस्तु के लिए लालायित होकर रोने वाले बालक को देखकर जो हृदय फट नहीं जाता वह मानो वज्र के सारभाग से रचा गया है । २। अपनी साध्वी प्रियतमा को मलिन वस्त्र धारण किये हुए क्षुधा से दुर्बलाङ्गी देखने के समान संसार में कोई दुःख नहीं है जो इसकी समानता कर सके । ३। क्षुधा से पीड़ित रुदे मकान सुख पत्थर की शिला एवं भूमि पर शयन करने वाले अपने स्त्री पुत्रों को देखकर मनुष्य के लिए संसार में कुछ भी अकरणीय नहीं है । ४। द्विजगण ! क्षुधा से अतिशय पीड़ित वस्त्रहीन दीनमुख पुत्र को देखकर पुरुष को मर जाना ही श्रेष्ठ है, ऐसा जीवन तो विडम्बना मात्र है । ५। बच्चों को क्षुधा से व्याकुल देख अपनी प्रियतमा जब अतिशय दीनमुखी हो जाती तो उसे देखकर जो सहस्रों टुकड़ों में चूर्ण नहीं हो जाता वह वज्र का शरीर है । ६। इसलिए धनहीन पुरुष को विवाह करने से धर्मार्थकाम की सिद्धि भला किस प्रकार हो सकती है उसके लिए तो स्त्री केवल दुःख देने वाली ही होगी । ७। जिस प्रकार स्त्री विहीन पुरुष को गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने का कोई अधिकार नहीं है उसी प्रकार धन विहीन पुरुषों का किसी भी कार्य में अधिकार नहीं है । ८। कुछ लोग सन्तानों को ही त्रिवर्ग-धर्मार्थ काम की प्राप्ति में साधनभूत बतलाते हैं । इसके अतिरिक्त कुछ अन्य नीतिज्ञ जन हैं जो स्त्री और धन को ही त्रिवर्ग का साधक बतलाते हैं । ९। धर्म भी इष्ट, अर्थात् अग्निहोत्र, तप, सत्य, यज्ञ, दान, वेदरक्षा, आतिथ्य, वैश्वदेव और ध्यान आदि कार्य दूसरा पूर्व अर्थात् बावली, कुआ, तालाब, देवमंदिर धर्मशालां, बगीचा आदि का निर्माण करवाना ये दोनों धर्मकार्य स्त्री के बिना नहीं सम्पन्न हो सकते धन तो इन सबका मुख्य सहायक ही है, अतः दोनों को धर्मों का एक मात्र साधन धन को ही जानना चाहिये । १०। लोग अपने ही दरिद्र भाई से लज्जा करते हैं, और दूसरी ओर ऐश्वर्य के कारण दूसरे के साथ भी जिसका अपने साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, स्वजन की भाँति व्यवहार करते हैं । ११। अपने पड़ोस में भी रहने वाले दरिद्र को लोग नहीं पहचानते, दूसरी ओर

१. लोको निजोऽप्यपार्थस्य शत्रुर्भवति भूमिप—इति पाठान्तरम् ।

तस्मात्प्रथत्तः पूर्वमर्थमेव प्रसाधयेत् । स हि मूलं त्रिवर्गस्य गुणानां गौरवस्य^१ च ॥१९
 सर्वेऽपि हि गुणां विद्याकुलशीलादयो नृणाम् । सन्ति तस्मिन्नसन्तोऽपि सन्ति सन्तोऽपि नासति ॥२०
 शास्त्रं शिल्पं कलाः कर्म यज्ञवान्यदपि चेष्टितम् । साधनं^२ सर्वमर्थानामर्या धर्मादिसाधनाः ॥२१
 साधनानां त्रिवर्गस्ति तं बिना केवलं नृणाम् । अजगत्सत्तनस्येव निधनायैव संभवः ॥२२
 प्रत्यक्ष्युण्णैर्विपुला सम्पद्मकामादहेतुग्रा । भूयो धर्मेण सामुत्र तयां^३ तादिति^४ च क्रमः ॥२३
 एकचक्कमेतद्वि प्रोत्कमन्योन्यहेतुकम् । पूर्वपञ्चमबाहुभ्यामुत्तराधरमध्यमाः ॥२४
 विज्ञाय मतिमानेव यस्त्रिवर्गं निषेवते । संख्याशतममायुतैरताप्नोत्युत्तरोत्तरम् ॥२५
 नाभार्यस्याधिकारोऽस्ति त्रिवर्गं निर्धनस्य दा । ना भार्यायामतः पूर्वमर्थमेव प्रसाधयेत् ॥२६
 तस्मात्कमागत्तरर्थः स्वयं वाधिगत्तर्युतः । क्रियायोग्यैः सर्वर्थश्च कुर्याद्विरपिरप्रहम् ॥२७
 अनुरूपे कुले जातां श्रुतवित्तकिमदिभिः । लभेतानिन्दितां कन्यां मनोज्ञां धर्मसाधनाम् ॥२८
 पुमानर्धपुमांस्तावद्यावद्वार्यां न बिदत्ति । तस्माद्यथाक्रमं काले कुर्याद्विरपिरप्रहम् ॥२९

दूर निवास करने वाले धनिक की भी आदरपूर्वक सेवा करते हैं । १८। इन सब बातों को जान कर मनुष्य को सर्वप्रथम प्रयत्नपूर्वक धन सञ्चय करना चाहिये वही त्रिवर्ग का एकमात्र साधक है यही नहीं वह गौरव एवं समस्त गुणों का मूल स्थान है । १९। विद्या कुलीनता, शील आदि मनुष्यों के सभी गुण धनवान, व्यक्तियों में न रहने पर भी रहते हैं, और दूसरी ओर निर्धन व्यक्तियों में ये रहने पर भी नहीं रहते । २०। शास्त्र, शिल्प, कलाएँ, कर्म एवं संसार के जितने भी व्यापार हैं, वे सब धन प्राप्त करने के साधन हैं, और धन धर्मादि (पुण्य कार्यों) का साधन हैं । २१। इसलिए यह धन ही त्रिवर्ग का साधनभूत है उसके बिना मनुष्य की उत्पत्ति बकरी के गले में लटकते हुए निरर्थक स्तनों की भाँति केवल मृत्यु के लिए है । २२। पूर्व जन्म के महान पुण्यकर्मों से धर्मार्थकाम की साधनभूत विपुल धन सम्पत्ति की प्राप्ति होती है और उस सम्पत्ति से धर्मादि पुण्य कार्य होते हैं । इस प्रकार ये दोनों धन और धर्मादि परस्पर अश्रित रहते हैं । २३। ये दोनों एक ही चक्र के अवयव कहे जाते हैं इनका अन्योन्यहेतुक सम्बन्ध है । पूर्व और पश्चिम के बाहुओं से उत्तर अधर एवं मध्यम का ज्ञान होता है अथवा रथ के दोनों चक्र से उसके आगे पीछे और मध्य भाग का ज्ञान होता है । इस प्रकार जानबूझकर जो बुद्धिमान् त्रिवर्ग का अर्जन करता है वह पूर्ण सौ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त कर उत्तरोत्तर कल्याण एवं सुख का अनुभव करता है । २४-२५। किन्तु इस त्रिवर्ग में स्त्री विहीन एवं धनविहीन का अधिकार नहीं है । धनविहीन का तो जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका स्त्री पर भी अधिकार नहीं है, अतः सर्वप्रथम धन का अर्जन करना चाहिए । २६। अतः क्रमानुसार शनैः शनैः अर्जित किये गये अथवा बिना परिश्रम किये हुए प्राप्त पर्याप्त धन का संग्रह कर क्रियाओं को सम्पन्न करने में समर्थ बनकर स्त्री ग्रहण करना चाहिये । २७। अपने समान विद्या, धन एवं क्रियाओं से सम्पन्न कुल में उत्पन्न होने वाली मनोहर धर्म की साधन भूत प्रशंसनीय कन्या का ग्रहण करना चाहिये । २८। पुरुष तब तक आधा पुरुष है जब तक वह पत्नी को प्राप्त नहीं कर लेता इसलिए उसे उपर्युक्त क्रम से उचित समय आने पर स्त्री को ग्रहण करना चाहिए । २९।

एकचको रथो यद्वेकपक्षो यथा खगः । अभायोऽपि 'नरस्तद्वदयोगः सर्वकर्मसु ॥३०
वत्नीपरिश्राद्धमस्तथार्थो बहुलाभतः । सत्प्रीतियोगात्कामोऽपि ऋयमस्यां विदुर्बुधाः ॥३१
त्रिधा विवाहसम्बन्धो हीनतुल्याधिकैः सह । तुल्यैः सह समस्तेषामितरौ नीचमध्यमौ ॥३२
असमैर्निन्द्यते सद्गृहतमैः परिभूयते । तुल्यैः प्रशस्यते यस्मात्स्मात्साधुतमो मतः ॥३३
कृत्वैवाधिकसम्बन्धमस्मानं समश्नुते । न चैजामानतिं गच्छेत्वै नीचैः सहेष्यते ॥३४
उत्तमोऽपि च सम्बन्धो नीचस्तत्समतां व्रजेत् । उत्तमं वर्जयेद्विमानिन्दितं सदृशेत्तमैः ॥३५
विज्ञतीयैश्च सम्बन्धं तहेच्छन्ति न सूरयः । उभयोऽभ्रश्यते तेन यथा कोकिलया शुकः ॥३६
तद्वाति कुलब्राह्मत्वाददश्यं चावामानतः । प्रतिपत्तेत्तरक्यन्त्वाच्चोत्तमोऽपि न शस्यते ॥३७
एकेऽपि परिहृतव्या अन्ये परिहरन्त्युत । तस्माद्द्वावपि नैवेष्टौ सम्बन्धावधमोत्तमौ ॥३८
एकपात्रादिभिर्येषामुगवारैः परस्परम् । प्रत्यहं वर्धते स्नेहः सम्बन्धः सोऽभिधीयते ॥३९
यत्रावाहविवाहादावन्योऽन्याः प्रतिपत्तयः । स्वर्धयैत ग्रवर्धन्ते तं सम्बन्धं विदुर्बुधाः ॥४०

जिस प्रकार एक चक्षे का रथ और एक पंख का पंक्षी अपना कार्य नहीं कर सकता, बेकार है, स्त्रीविहीन पुरुष भी सभी कार्यों में अयोग्य है । ३०। दली के ग्रहण करने पर धर्म अनेक प्रकार के लाभ से धन एवं परस्पर सञ्ची प्रीति से काम की प्राप्ति होती है इस प्रकार पण्डित लोग तीन प्रकार के विवाह सम्बन्ध स्त्री के ग्रहण में तीनों वर्गों की प्राप्ति बतलाते हैं । ३१। विवाह कर्म तीन प्रकार के बतलाये गये हैं, हीन, समान एवं उच्च के साथ । इनमें अपने बराबर वाले के यहाँ विवाह करने को समान और दोनों को नीच और मध्यम कहा है । ३२। असमान के यहाँ विवाह करने को साधुलोग निन्दित बतलाते हैं । उत्तम के यहाँ करने से अनादर होता है अतः तुला स्थिति वालों के साथ विवाह करने को सभी लोग बहुत अच्छा बतलाते हैं । ३३। अपने से अधिकवाले के यहाँ सम्बन्ध करने से सर्वथा अपमान भोगना पड़ता है, अतः मनुष्य को ऐसे लोगों के साथ अपमान नहीं सहना चाहिये इसी प्रकार नीच स्थिति वाले के साथ भी उसे विवाह करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए । ३४। जिस प्रकार उत्तम के साथ सम्बन्ध वर्जनीय है उसी प्रकार (उत्तम को) नीचों के साथ सम्बन्ध करने से नीच बनना पड़ता है । यह सब जान बूझ कर बुद्धिमान् को उत्तम के समान ही नीच को भी वर्जित रखना चाहिये । ३५। पण्डितजन विजाति वालों के साथ सम्बन्ध करने की इच्छा नहीं करते क्योंकि विजातिवालों के साथ सम्बन्ध करने से दोनों अष्ट हो जाते हैं जैसे कोकिला के साथ शुक । ३६। अपने कुल से उच्चकुल के साथ सम्बन्ध होने के कारण यद्यपि नीच कुल वाला शोभा पाता है पर अपमान और सामर्थ्य के अभाव के कारण दुःख सहना पड़ता है इसलिए विवाह में उत्तम कुल वाला भी प्रशंसनीय नहीं है । ३७। एक होने पर भी नीच के या ऊंच के साथ विवाह संस्कार परिवर्जनीय है, अन्य सभी लोग ऐसे बेमेल विवाहों को वर्जित करते हैं, इसीलिए विवाह सम्बन्ध में उत्तम और अधम ये दोनों विवाह वर्जनीय हैं । ३८। जिन सत्यात्र के व्यवहारादि से परस्पर प्रेम प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता है वही सम्बन्ध कहा गया है । ३९। जिनके विवाहादि के अवसरों पर एक दूसरे के गौरव एवं सम्मानादि की रक्षा के लिए स्पर्द्धा बढ़ती रहती है पण्डित लोग उसी को सम्बन्ध कहते

व्यसनेऽन्तुद्ये वापि येषां प्राणीर्धनैरपि । सहैकप्रतिपत्तिवं सम्बन्धानां स उत्तमः ॥४१
 स्नेहव्यक्तौ मनुष्याणां द्वावेद निकषोपलौ । तथा कृतज्ञतायां च व्यसनाम्युदयागमौ ॥४२
 स च स्नेहो नृणां प्रायः समेष्वेव^१ हि दृश्यते : साम्यं चाप्युपगत्व्यं वित्तशीलकुलादिभिः ॥४३
 तस्माद्विदाहसम्बन्धं संस्थमेकान्तकारिणाम् । सदृशैरेव कुर्वति नोत्तमेनाम्यनुत्तमैः ॥४४
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतरुद्धसाहस्र्याणां संहितायां ब्राह्मे एवं चिंतिणि
 स्त्रीलक्षणसदृचर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।६।

अथ सप्तमोऽध्यायः

विवाह-धर्मवर्णनम्

ब्रह्मोदाच^२

असपिण्डा च या मातुरसम्मेत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥१
 सहजे न भवेद्यस्या न च विज्ञायते पिता । नोपयच्छेत् तां प्राज्ञः पुनिकाधर्मशङ्ख्या ॥२
 ब्राह्मणानां प्रशस्ता स्यात्स्वर्णा दारकर्मणि । कानस्तु प्रवृत्तानामिमाः स्युः क्रमशोऽद्वराः ॥३

हैं । ४०। अम्युदय तथा संकट के अवसर पर जो परस्पर प्राणों एवं धनों से एक दूसरे की सहायता के लिए साथ साथ सन्नद्ध रहते हैं, वही सम्बन्धों में उत्तम माना जाता है । ४१। मनुष्यों की कृतज्ञता एवं स्नेह को प्रकट करने के लिए उस की दो कलौटी मानी गयी हैं, अम्युदय और और संकटावस्था । ४२। मनुष्यों में वह स्नेह सम्बन्ध प्रायः समान स्थिति वाले के साथ ही होता है अतः धन, शील सदाचार एवं कुल में समान के साथ ही स्नेह सम्बन्ध भी करना चाहिए । ४३। इन सब बातों को जानकर विद्वान् पुरुष को मित्रता एवं विवाह सम्बन्ध सर्वदा समान स्थिति वाले के साथ ही करना चाहिये । उत्तम अथवा नीच रित्यति वाले के साथ नहीं । ४४

श्री भविष्यमहापुराण के ब्राह्मपर्व में स्त्रीलक्षण एवं सदाचार वर्णन नामक छठों अध्याय समाप्त । ६।

अध्याय ७

विवाह धर्म वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—राजन् ! अपनी माता की सपिण्ड (सात पीढ़ी) तथा अपने पिता की सगोत्र कन्या को छोड़कर अन्य कन्याओं के साथ द्विजाति का मैथुन एवं विदाहादि संस्कार करना प्रशंसनीय माना गया है । १। जिसका कोई सगा भाई न हो जिसके पिता का कोई पता न हो, बुद्धिमान् पुरुष को उस कन्या के साथ पुत्रिका की आशंका से विवाह नहीं करना चाहिये । २। ब्राह्मण का विवाह संस्कार सर्वर्ण (ब्राह्मण) के यहाँ ही प्रशस्त माना गया है कामदश उसे अन्य तीनों वर्णों की कन्याओं के साथ भी क्रमशः विवाह करना बताया गया है किन्तु वे तीनों स्त्रियाँ नीच कही गयी हैं । ३।

१. तस्मिन्काले हि दृश्यते । २. नापि चाध्यमैः । ३. इतः प्रागेकस्मिन्मुत्सकेऽध्यायार्थकथानुसंधानार्थम्—“अथोत्रिविधसंबंधनिर्णयः” । ४. उद्देवित्यर्थः—‘उपाद्यम्’ इत्यात्मनेपदम् ।

क्षत्रस्यापि सर्वा स्यात्प्रथना द्विजसत्तमाः । द्वे चावरे तथा प्रोक्ते कामतस्तु न धर्मतः ॥४
 वैश्यस्यैका वरा प्रोक्ता सर्वा चैव धर्मतः । तयवरा कामतस्तु द्वितीया न तु धर्मतः ॥५
 शूद्रेवं भार्या शूद्रस्य धर्मतो मनुरब्बीत् । चतुर्णामपि वर्णानां परिणेता द्विजोत्तमः ॥६
 न ब्राह्मणक्षत्रियो रापद्यपि हि तिष्ठतोः । कर्त्स्मश्चिर्दर्यं वृतान्ते शूद्रा भायोपदिश्यते ॥७
 हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्भवन्तो द्विजातयः । कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्तानानि शूद्रतम् ॥८
 शूद्रभारोप्य चेद्यां^२ तु पतितोऽत्रिर्बसूव ह । उत्थयः पुत्रजननातःतित्वश्वान्तवान् ॥९
 शूद्रस्य पुत्रमासाद्य शौनकः शूद्रता अतः । भृगवादयोप्येवमेव पतितत्वमवाप्नुयः ॥१०
 शूद्रां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यत्यधोगतिम् । जनदित्वा सुत तस्यां ब्राह्मण्यादेव हृयते ॥११
 देवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु । नादन्ति पितरो देवाः स च स्वर्गं न गच्छति ॥१२
 वृषलीक्नेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च । तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥१३
 चतुर्णामपि विप्रेन्द्राः प्रेत्येह च हिताहितम् । समासतो ब्रवीम्येव विवाहाष्टकमुत्तमम् ॥१४
 ज्ञाह्यो दैवस्तथा चार्षः प्राजापत्यस्तथामुरः । गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥१५

द्विजवर्यं वृन्द ! इसी प्रकार क्षत्रिय के लिए भी धर्मानुसार क्षत्रिय कन्या के साथ विवाह संस्कार करना प्रशस्त बतलाया गया है कामवश दो अन्य वर्ण वालों वैश्यों तथा शूद्रों के साथ भी उसे विवाह करने का विधान बतलाया गया है पर धर्मानुसार नहीं ।४। वैश्य के लिए सर्वा कन्या के साथ विवाह करने का विधान है, उसे केवल एक वर्ण शूद्र की कन्या के साथ कामवश विवाह करने का विधान है धर्मानुमोदित नहीं ।५। शूद्र की स्त्री को शूद्रकुलोत्पन्ना ही होना चाहिये—ऐसा मनु ने बतलाया है । उत्तम द्विज ब्राह्मण, चारोंवर्णों की कन्याओं के साथ विवाह करने का अधिकारी है ।६। किन्तु महान् आपत्ति काल में भी किसी परिस्थिति में ब्राह्मण एवं क्षत्रिय को शूद्र कुलोत्पन्न कन्या को स्त्री नहीं बनाना चाहिये ।७। द्विजाति वर्ग अज्ञानवश नीच कुलोत्पन्न स्त्रियों के साथ विवाह करके सन्ततियों समेत अपने कुल को भी शोध ही शूद्र बना देते हैं ।८। ऐसी प्रसिद्धि है कि महर्षि अत्र अपनी वेदी पर शूद्र को आरोपित करके पतित बन गये । उत्थय पुत्र उत्पन्न करने के कारण पतित बन गये ।९। शौनक शूद्र के पुत्र को प्राप्त कर स्वयं शूद्र बन गये इसी प्रकार भृगु आदि भी पतित बन गये ।१०। शश्या पर शूद्रा स्त्री को आरोपित कर अर्थात् स्त्रीरूप में अंगीकार कर ब्राह्मण अधोगति को प्राप्त हो जाता है उसमें पुत्र उत्पन्न करके वह ब्रह्मतेज से च्युत हो जाता है ।११। जो दैव, पितर और आतिथ्यादि कर्म को ऐसे शूद्र की प्रधानता में करते हैं उसके यहाँ पितर एवं देवगण भोजन नहीं करते हैं, और वह स्वयं स्वर्ग नहीं जाता ।१२। वृषली अर्थात् शूद्रा के फेन को पीने वाले निःश्वास से स्पष्ट तथा उससे उत्पन्न होने वाले का निस्तार नहीं होता ।१३

है विप्रवर्यवृन्द ! चारों वर्णों को उभय लोक में सुख और दुःख देने वाले आठ विवाहों का मैं संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ सुनिये ।१४। ब्राह्मा, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आमुर, गान्धर्व राक्षस और सब से अधम पैशाच ये आठ प्रकार विवाह होते हैं ।१५

१. जातित्वाद्वाप् । २. शश्यां तु ।

ये यत्थ धर्मा वर्णस्य गुणदोषौ च यस्य यौ । शृणुध्वं तदिद्वजशेषाः प्रसवे च गुणागुणम् ॥१६
 विप्रस्यै चतुरः पूर्वनक्षत्रस्य चतुरोऽवरान् । विट्ठशूद्रयोस्तु त्रीनेव विद्याद्वमनिराक्षसान् ॥१७
 चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विदुः । राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यशूद्रयोः ॥१८
 क्षत्रियाणां त्रयो धर्म्या द्वावधम्यैः स्मृताविह । पैशाचश्चासुरधैव न कर्तव्यौ कर्तव्यं च ॥१९
 पृथक्पृथग्वा मिश्रौ वा विवाहौ पूर्वचोदितौ । गान्धर्वों राक्षसधैव धर्म्यौ क्षत्रिय तौ स्मृतौ ॥२०
 आच्छाद्य चार्चियित्वा तु श्रुतशीलवते स्वयम् । आहृय दानं कन्याया ब्राह्मो धर्मः प्रकीर्तिः ॥२१
 वितते चापि यज्ञे तु कर्म कुर्वति चार्चित्वजिः । अलङ्कृत्य सुतादानं दैवते धर्म उदाहृतः ॥२२
 एकं गोगियुतं द्वे वा वरादादाय धर्मतः । कन्याप्रदानं विधिवदाष्टीयो धर्म उच्यते ॥२३
 सहोभौ चरतं धर्मसिति वाचानुभाष्य तु । कन्याप्रदानमध्यर्चं प्राजापत्यविधिः स्मृतः ॥२४
 ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्त्वा कन्यायाधैव शक्तिः । कन्याप्रदानं स्वच्छन्दादासुरो धर्म उच्यते ॥२५
 इच्छायान्योऽन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च । गान्धर्वः स विधिर्ज्ञेयो मैथुन्यः कामसम्भवः ॥२६

जिस वर्ण का जो विवाह कहा गया है उनकी संतानों में दोष है, उन्हें आप सुने ! । १६। ब्राह्मणों के लिए पहले वाले चार (ब्राह्म, दैव, आर्य एवं प्राजापत्य) विवाह संस्कार प्रशस्त बतलाये गये हैं और क्षत्रिय के लिए पिछले चार असुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच विवाह करणीय है वैश्यों और शूद्रों को राक्षस विवाह छोड़कर पिछले चार विवाहों में से शेष तीन ही विहित माने गये हैं । १७। पण्डितों ने पूर्व चार विवाहों को ही ब्राह्मणों के लिए प्रशस्त बतलाया है, राक्षस विवाह क्षत्रियों के लिए प्रशस्त माना है असुर विवाह वैश्य और शूद्रों के लिए विहित है । १८। इस लोक में क्षत्रियों के लिए तीन विवाह धर्मानुसूतेदित है किन्तु पैशाच और आसुर ये दो विवाह उसके लिए अधर्ममय हैं, अतः किसी भी अवस्था में इन दो विवाहों को उसे नहीं करना चाहिये । १९। पूर्वकथित दो दो विवाहों को परस्पर सम्मिलित कर के अथवा पृथक् पृथक् करके भी करने का विधान है । गान्धर्व और राक्षस ये दो विवाह क्षत्रियों के लिए धार्मिक बतलाये जाते हैं । २०। आठों विवाहों के लक्षण श्रुति ज्ञान सम्पन्न एवं सुशील वर को स्वयं अपने घर बुलाकर सम्मानपूर्वक पूजित एवं वंस्त्र से आच्छादित कर कन्या दान करने की विधि को ब्राह्म धर्म (विवाह) कहा गया है । २१। विवाह यज्ञ के व्याप्त होने पुरोहित के विधिपूर्वक कर्म करते हुए कृतुक कन्या को अलंकार वस्त्राभूषण आदि से अलंकृत कर कन्या देना देव धर्म (विवाह) कहा गया है । २२। धर्म पूर्वक वर से एक अथवा दो गौ के जोड़े को लेकर विधिपूर्वक दिये गये कन्या दान को आर्य धर्म (विवाह) कहा जाता है । २३। तुम दोनों एक साथ धर्माचरण करो—ऐसा कहकर वर और कन्या को एक साथ रहने के नियमादि की शिक्षा देकर विधिपूर्वक दिये गये कन्यादान को प्राजापत्य विवाह माना गया है । २४। अपनी सामर्थ्य के अनुकूल कन्या के बन्धुओं तथा कन्या को धन देकर स्वच्छन्दता पूर्वक कन्या दान करने की विधि को असुर विवाह कहा गया है । २५। कन्या और वर की इच्छा से कामवासना जनित जो परस्पर अन्योन्य संयोग होता है इसे गान्धर्व विवाह जानना चाहिये ।

हृत्वा छिन्ना च भिस्त्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात् । प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते ॥२७
मुप्तां मृतां प्रमत्तां च रहो यत्रोपगच्छति । स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः कथितोऽष्टमः ॥२८
जलपूर्व द्विजाग्र्याणां कन्यादानं प्रशस्यते । इतरेषां तु वर्णनाभितरेतरकन्याः ॥२९
यो यस्यैषां विवाहानां विभूतानां कीर्तितो युगः । तं निबोधत वै विप्राः सम्यक्कीर्तयतो मम ॥३०
कुलानि दश प्रवर्णाणि तथान्यात्मनि दरौत तु । स हि तान्यात्मना द्वैतं मोचयत्येनसो धूनम् ॥३१
अःहीमुत्रः मुक्ततक्षैवोढाजं सुतं शृणु । दैनोढाजः सुतो विप्राः सप्त सत्त एवावरान् ॥

आर्थोढाजः सुतः स्त्रीणां पुरुषांस्तारयेद्विद्वजः ॥३२
ब्राह्मणदिषु विवाहेषु चतुर्ष्वदानुपूर्वशः । ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायन्ते शिष्टसम्मताः ॥३३
रूपसत्त्वमुणोपेता धनवन्तो यशस्विनः । पुत्रवन्तोऽथ धर्मिष्ठा जीवन्ति च शतं समाः ॥३४
इतरेषु निबोधत्वं तृशंसानृतवादिनः । जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः^१ मुताः ॥३५
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा । निन्दितर्निन्दिता नृणां तस्मान्निद्यान्विवर्जयेत् ॥३६
करग्रहणसंस्काराः सवर्णामु भवन्ति वै । असवर्णास्वयं ज्ञेयाः विधिरुद्वाहकर्मणि ॥३७

१२६। बन्धनों को तोड़कर भवनादि को? फोड़ फाड़कर पिता के घर से चिल्लाती रोती हुई कन्या को जबरदस्ती अपने गृह उठा ले जाने को रौक्षस विवाह कहते हैं । २७। एकान्त में सोई हुई मद से उन्मत अथवा प्रमाद से द्रविष्ट स्त्री के साथ जो छिपकर समागम किया जाता है वह पापमय आठवाँ पैशाच नामक विवाह कहा गया है । २८। ब्राह्मण का कन्यादान जल संयुक्त प्रशस्त कहा जाता है अन्य वर्ण वालों में एक दूसरे की इच्छा से चाहे जिस किसी पदार्थ को लेकर किया जा सकता है । २९। हे विप्रगण ! इन सामर्थ्यशील विवाहों में जिसका ऐसा गृण बतलाया गया है उसे मैं अच्छी तरह बतला रहा हूँ सुनिये । ३०। ब्राह्मण विवाह से उत्पन्न सत्तर्मपरायण पुत्र दस पूर्वज एवं दस पीछे उत्पन्न होने वाली पीढ़ियों के साथ स्वयं अपने को भी महान पापकर्मों से उबारता है । ऐसा निश्चय मानिये । ३१। अब देव विवाह से उत्पन्न होने वाले पुत्र को सुनिये । विप्रवृन्द ! वह देवविवाह से उत्पन्न होने वाला धर्मपरायण पुत्र सात पूर्वज एवं सात बाद में उत्पन्न होने वाली पीढ़ियों के साथ अपने को उबारता है । हे द्विजवृन्द ! इसी प्रकार आर्ण विवाह से विवाहित स्त्रियों से उत्पन्न पुत्र भी सात पूर्वज एवं सात पश्चात की पीढ़ियों का उद्धार से उत्पन्न पुत्रों के गुण ब्राह्म आदि विवाह करता है । ३२। ब्राह्म आदि चार विवाहों में क्रमशः उत्पन्न होने वाले पुत्र गण ब्रह्मतेजोमय, शिष्टानुमोदित, रूपवान्, पराक्रमी, गुणवान्, धनवान्, यशस्वी, पुत्रवान् एवं धार्मिक होते हैं वे एक सौ वर्ष की दीर्घायु तक ब्रीवित रहने वाले होते हैं । ३३-३४। अब अन्य चार विवाहों से उत्पन्न होने वाले पुत्रों को सनिये । वे द्रविष्ट विवाहों से उत्पन्न होने वाले पृत्र गण मिथ्यावादी ब्राह्मण एवं धर्म से द्वेष रखने वाले होते हैं । ३५। अनिन्दित विवाहों से विवाहित स्त्रियों से सत्ततियाँ भी अनिन्दित होती हैं । इसी प्रकार निन्दित विवाहों से निन्दित संततियाँ पैदा होती हैं । अतः मनुष्यों को इन निन्दित विवाहों से वर्जित रहना चाहिये । ३६। यह निश्चय है कि सर्वां कन्याओं के साथ पाणिग्रहण संस्कार होता है असवर्ण कन्या के साथ विवाह करते समय इन वस्तुओं को ग्रहण करना

बाणः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो दैश्यकन्यया । वसनस्य दशा ग्राह्या शूद्रयोत्कृष्टवेदने ॥३८
न कन्यायाः पिता विद्वान् गृहीया च्छुल्कमण्वपि । गृह्णन्हि शुल्कं लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविकल्पी ॥३९
स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवन्ति बान्धवाः । नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम् ॥४०
आर्षे गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मूर्खैव^१ तत् । अल्पे वापि महान्वापि विक्रयस्तावदेव सः ॥४१
यासा नाददते शुल्कं ज्ञातयो न स विक्रयः । अर्घण्यं तत्कुमा रीणामानूशंस्यं च कंवलम् ॥४२
इत्थं दारान्समासाद्य देशमप्यं समावसेत् । ब्राह्मणो द्विजशार्दूलं य इच्छेद्विपुलं यशः ॥४३

ऋष्य ऊचुः

को देशः परमो ब्रह्मन्कश्च पुण्यो मतस्तद । प्रवसन्नत्र विप्रेन्द्र यशः प्राप्नोति कञ्जज ॥४४

ब्रह्मोवाच

न^२ हीयते यत्र धर्मश्रतुष्यात्स कलो द्विजाः । स देशः परमो विप्राः स च पुण्यो मतो मम ॥४५
विद्वद्द्विः सेवितो धर्मो गस्मिन्देशे प्रवर्तते । शास्त्रोत्कश्चापि विप्रेन्द्राः स दशः परमो मतः ॥४६

चाहिये—यही विधि जाननी चाहिये । ३७। असर्वण विवाह के अवसर पर क्षत्रिय कन्या को बाण धारण करना चाहिये दैश्य कन्या को एक चाबुक ग्रहण करना चाहिये । इसी प्रकार उत्कृष्ट जातिवालों के साथ विवाह होते समय शूद्र कन्या को वस्त्र का छोर (अंचल) ग्रहण करना चाहिये । ३८। विद्वान् कन्या पिता को चाहिये कि वह रक्ती भर का किसी प्रकार का शुल्क जामाता से न ग्रहण करे लोभवश शुल्क ग्रहण करने पर वह अपनी सन्तान का विक्रय करता है । ३९। अज्ञान वशंजो पिता बन्धु आदि परिवार के लोग कन्या के कारण मिले हुए धन का उपभोग करते हैं अथवा उसके कारण मिले हुए वस्त्र को ब्राह्मणादि धारण करते हैं वे पापी अधोगति को प्राप्त होते हैं । ४०। कुछ लोगों ने आर्य विवाह में शुल्क रूप में जो गौ के जोड़े देने की प्रथा बतलाई है वह झूठी है चाहे अत्य मात्रा में हो या अशिक मात्रा में हो वह भी एक विक्रय ही होता है । ४१। वर द्वारा दिये गये कन्याओं के धन को दान में उनके बंधु आदि कुछ शुल्क नहीं लेते वह विक्रय नहीं कहलाता क्योंकि वह उस कन्या के सत्कार में दिया गया है और वही उसके साथ परम दया और कृपा है । ४२। हे विप्रशार्दूल ! इस प्रकार जो ब्राह्मण विपुल यश का अभिनाशी हो उसे उपर्युक्त विधियों से स्त्री को अंगीकार कर किसी श्रेष्ठ देश में आवास करना चाहिये । ४३

ऋषियों ने कहा—पंकजोद्भव ! ब्रह्मन् ! कौन से देश परम पुण्यप्रद तथा उत्कृष्ट माने गये हैं जहाँ पर निवास करने वाला परम यश का भाजन होता है । ४४

ब्रह्मा ने कहा—विप्रवन्द ! जहाँ पर धर्म अपनी सम्पूर्ण भाषाओं तथा चारों चरणों से हीनता को नहीं प्राप्त होता है वही देश परम श्रेष्ठ तथा पुण्य प्रद माना गया है । ४५। हे विप्रेन्द्रवन्द ! जिस पुनीत देश में विद्वान् पुरुषों द्वारा आचरित तथा शास्त्र सम्मत धर्म का प्रचलन रहता है वह देश परम श्रेष्ठ माना गया है । ४६

ऋषय उच्चुः

विद्वद्ब्रह्मसेवितं धर्मं शास्त्रोक्तं च सुरोत्तमं । ददात्स्मासु सुरश्रेष्ठ कौतुकं परमं हि नः ॥४७
ब्रह्मोदाच

विद्वद्ब्रह्मः सेवितः सद्गुर्विनत्यमद्वेषरागिभिः । हृदयेनाभ्यनुज्ञाता यो धर्मस्तं निबोधत ॥४८
 कामात्मना न प्रशस्ता न वेहात्याप्यकामता । काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥४९
 सङ्कल्पाज्ञायते काम्यो यज्ञाद्यानि च सर्वदः । लनाः नियमधर्मश्च भवेऽसङ्कल्पज्ञाः स्मृताः ॥५०
 कामादृते क्रियाज्ञारी दृश्यते नेह कर्हचित् । यद्यद्धि कुरुते कश्चित्तत्त्वामस्य चेष्टितम् ॥५१
 निगमो^१ धर्ममूलं स्यात्स्मृतिशास्त्रे तथैव च । तथा चारश्च साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥५२
 सर्वं तु समवेक्षेत निश्चयं ज्ञानचक्षुषा । श्रुतिप्राधान्यतो विद्वान्स्वधर्मं निवसेत वे ॥५३
 श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममुत्तिष्ठउन्सदा^२ नरः । प्राप्य चेह परां कीर्तिं पाति शक्सलोकताम्^३ ॥५४
 श्रुतेन्तु वेदो^४ विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः । ते सर्वर्थेण भीमांत्ये ताम्यां धर्मो हि निर्बन्धो ॥५५
 योऽवस्थ्येत ते चोर्भे हेतुशास्त्राश्रवादिद्विजः । स साधुभिर्बद्धिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥५६
 वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य त्रिप्रियमात्मनः । एतच्चतुर्वार्धं विप्राः साक्षाद्गुर्मस्य लक्षणम् ॥५७

ऋषियों ने कहा—सुरश्रेष्ठ ! देवेश ! विद्वान् पुरुषों द्वारा आचरित तथा शास्त्र सम्मत धर्मों को सुनने के लिए हमारे मन में बड़ा कुतूहल हो रहा है कृपया कहिये ॥४७।

ब्रह्मा बोले—ऋषिवृन्द ! राग द्वेष विहीन सद् विदान् पुरुषों द्वारा आचरित एवं अपने हृदयानुभव धर्म को मैं बतला रहा हूँ सुनिये ॥४८। इस लोक में फल की इच्छा कर के कर्मों को प्रारम्भ करने की विधि प्रशस्त नहीं मानी गई है और न इच्छा रहित कर्मों की ही प्रशंसा की गई है क्योंकि काम्य कर्मों का विधान भी वेदानुभव है और निष्काम कर्मयोग भी वैदिक है ॥४९। संकल्प से कामना की उत्पत्ति होती है यज्ञादि कार्यों में सर्वत्र इस संकल्प का अस्तित्व रहता है यही नहीं त्रत, नियम एवं अन्य धर्म कार्य भी संकल्प से उत्पन्न होने वाले कहे जाते हैं ॥५०। इस लोक में कहीं पर इच्छा अथवा कामना के बिना किसी कर्म में प्रवृत्त होने वाला कोई नहीं दिखाई पड़ता । मनुष्य जो कुछ भी कार्य करता है वह सब कामना की ही चेष्टा से करता है ॥५१। सभी धर्मों के मूल वेद हैं स्मृतियाँ हैं सत्पुरुषों द्वारा आचरित शील सदाचार एवं जिन कर्मों से अपनी आत्मा को वास्तविक सन्तोष हो ऐसे कर्म इन सबको ज्ञान नेत्र से भली भाँति देखकर धर्म का निश्चय किया जाता है । इन सब पर ध्यान रखकर भी विद्वान् पुरुष को श्रुतियों (वेदों) को विशेषता देते हुए अपने धर्म में विश्वास रखना चाहिए ॥५२-५३। श्रुतियों तथा स्मृतियों द्वारा अनुगोदित धर्म का सर्वदा पालन करते हुए मनुष्य इस लोक में परम कीर्ति उपार्जित कर इन्द्र लोक (स्वर्ग) को प्राप्त करता है ॥५४। श्रुति को वेद एवं स्मृति को धर्मशास्त्र जानना चाहिए । सभी प्रकार के कार्यों में इन दोनों से भीमांसा कर लेनी चाहिए । क्योंकि सभी धर्म-कार्य इन्हीं दोनों से सुशोभित होते हैं ॥५५। जो द्विज हेतुवाद का आश्रय लेकर इन दोनों वेदों तथा स्मृतियों की अवहेलना करता है, सज्जनों को चाहिए कि उसे समाज से बहिष्कृत कर दे, क्योंकि वह वेद निन्दक नास्तिक हैं ॥५६। **विप्रवृन्द !** वेद स्मृति सदाचार एवं अपनी आत्मा के अनुकूल प्रिय कार्य ये चारों धर्म के साक्षात् लक्षण कहे गये हैं ॥५७।

१. नियमा धर्ममूलं स्युः । २. हि मानवः । ३. ब्रह्मसलोकताम् । ४. धर्मः ।

धर्मज्ञानं भवेद्विप्रा अर्थकामेष्वसज्जताम् । धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणान्वैगमं परम् ॥५८
 निषेकादिशमानन्तरे मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः । अधिकारो भवेत्तत्य वेदेषु च जपेषु च ॥५९
 सरस्वतीदृष्ट्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्^१ । तदेव निर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥६०
 यस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः । वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥६१
 कुरुक्षेत्रं च मत्स्याश्र पञ्चालाः सूरसेनयः । एष ब्रह्मापिदेशो वै ब्रह्मावर्तादिनन्तरम् ॥६२
 एतदेशप्रस्तृतस्य सकाशादग्रजन्मः । स्वं स्वं चरित्रं शिखन्ति पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥६३
 हिमपृष्ठन्धयोर्मध्ये यत्प्राग्विनश्नानादपि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ॥६४
 आ समुद्रात् ते पूर्वादासमुद्रात् पश्चिमात् । तयोरेवान्तरं गिर्योरायार्वर्तं विदुर्बुधाः ॥६५
 अटते यत्र कृष्णा गौर्नूरो नित्यं स्वभादतः । स ज्ञेयो याज्ञिको देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ॥६६
 एतान्नित्यं शुभादेशान्संश्रयेत द्विजोत्तमः । यस्मिन्कर्मस्त्र निवेत्यादजो^२ वृत्तिकर्शितः ॥६७
 प्रकीर्तितेयं धर्मस्य बृह्यर्येनिद्विजोत्तमाः । सम्भवश्चास्य सर्वस्य समासान्न तु विरतरात् ॥६८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वपि विवाहधर्मवर्णनं

नाम सप्तमोऽध्यायः । ७।

एवं काम में अतिशय अनुरक्त न रहने वाले और वास्तविक धर्म को जानने के लिए इच्छुक लोगों को ही धर्म का वास्तविक ज्ञान होता है । ऐसे लोगों के लिए सभी प्रमाणों में निगमों अर्थात् वेदों का प्रमाण सर्वश्रेष्ठ माना गया है । ५८। गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि क्रिया तक के सारे संस्कार जिसके लिए भंत्रोच्चारण पूर्वक विहित माने गये हैं । उसी का अधिकार वेदों में और जपों में भी माना गया है । ५९। सरस्वती और दृष्टदीती नामक देव नदियों के बीच की जो भूमि है, वह पवित्र देश ब्रह्मावर्त के नाम से कहा जाता है । ६०। जिस देश में जो आचार व्यवहार पुरातन काल से परम्परा गें बढ़ होकर चले आते हों, वे ही उस देश के रहने वाले चारों वर्णों के तथा वर्ण संकरों के सदाचार कहे जाते हैं । ६१। कुरुक्षेत्र मत्स्य पंचाल और सूरसेन ये ब्रह्मावर्त के बाद ब्रह्मपिण्डों के प्रदेश कहे गये हैं । ६२। इन देशों में उत्पन्न होने वाले अग्रजन्मा ब्राह्मणों से संसार के सभी मनुष्यगण आकर अपने-अपने चरित्रों की शिक्षा प्राप्त करें । ६३। हिमालय और विन्ध्याचल के बीच में विनशन अर्थात् कुरुक्षेत्र के पूर्व तथा प्रयाग के पश्चिम का सारा प्रदेश ‘मध्य देश’ के नाम से विख्यात है । ६४। पूर्व में समुद्र पर्यन्त तथा पश्चिम में समुद्र पर्यन्त विस्तृत हिमालय तथा विन्ध्याचल इन दोनों पर्वतों के मध्यभागस्थ प्रदेश को पण्डित जन ‘आर्यवर्त’ नाम से जानते हैं । ६५। जिस देश में कृष्णा गौ एवं कृष्ण मृग सम्भवतः नित्य विचरण करते हों वह याज्ञिक यज्ञ करने योग्य देश है इसके अनन्तर म्लेच्छ देश है । ६६। उत्तम ब्राह्मण को उपर्युक्त कल्याण मय देशों का आश्रय ग्रहण करना चाहिये । चरणों से उत्पन्न होने वाले शुद्र अपनी जीविका की सुविधा से चाहे जिस देश में निवास करे उसके लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है । ६७। द्विजवर्यवृन्द ! पण्डित जनों ने धर्म ज्ञान प्राप्त करने की यही शिक्षा बतलाइ है उसे बतला चुका हूँ और सभी के उत्पन्न होने की कथा भी अति विस्तार में नहीं प्रत्युत संक्षेप में कह चुका हूँ । ६८।

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में विवाह धर्मवर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त । ७।

१. गिरिनदोः । २. ब्राह्मणो वृत्तिकर्शितः ।

अथाष्टमोऽध्यायः

विवाहधर्मेषु स्त्रीविषये नरवृत्तवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कर्तव्यं यदगृहत्थेन तदिदानीं निबोधत् । गदतो द्विजशार्दूल विस्तराञ्छास्त्रतस्तथा ॥१
 वैवाहिकेऽप्त्वै कुर्वीत गृह्यं कर्म यथाविधि । शुभदेशाश्रयश्वेव पत्नी वैवाहिकी गृहे ॥२
 स्वाश्रयेण विनः शक्यं न यस्माद्रक्षणादिकम् । वित्तानात्मिक दारणामतस्तद्विधिरुच्यते ॥३
 हेतवो हि त्रिवर्गस्य विपरीतास्तु^१ मानद । अरक्षणाद्बृवत्त्यस्माद्मीषां रक्षणं मतम् ॥४
 निसर्गात्मितुंस्यसन्तोषाद्गुणदोषविमर्शतः । दुष्टानां चापि संसर्गाद्रक्ष्या एव च योषितः ॥५
 पुरुषस्थानवेशमानि त्रिविधं प्राहुराश्रयम् । वित्तानां रक्षणाद्यर्थमपूर्वाधिगमाय च ॥६
 कुलीनो नीतिमान्प्राप्तः सत्यसन्धो दृढवतः । विनीतो धार्मिकस्त्यागी^२ विजेयः पुरुषाश्रयः ॥७
 नगरे खर्वटे खेटे ग्रामे चापि क्रमागते । याद्रावशाद्वा निवसेद्वार्मकाद्यजनान्विते ॥८

अध्याय ८

**स्त्रियों के दुष्ट और अदुष्ट स्वभाव की परीक्षा के साथ समुचित व्यवहार कथन
तथा मानव चरित्र वर्णन**

ब्रह्मा बोले—द्विजशार्दूल ! अब इसके उपरान्त गृहस्थाश्रम में निवास करने वालों को जो जो कुछ करना चाहिये शास्त्र सम्मत उन समस्त गृहस्थ कर्तव्यों को मैं विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ मुनिये । १। (गृहस्थ को) वैवाहिक अनिमें विधिपूर्वक समस्त गृहा कर्म करने चाहिये । घर में विवाहिता पत्नी उस स्थान में रहे । २। अपने आश्रय के बिना स्त्रियों की रक्षा उसी प्रकार नहीं की जा सकती जिस प्रकार (आश्रम के बिना) धन सम्मान आदि की अतः स्त्रियों की रक्षा आदि के नियम बतला रहा हूँ । ३। हे मानियों को मान देने वाले ! ये स्त्रियाँ जिस प्रकार त्रिवर्ग धर्मार्थ काम देने वाली भी होती हैं अतः इनकी रक्षा करनी चाहिए । ४। निवास, स्वभाव, दोष विमर्श में स्वाभाविक असन्तोष, भावना, गुणदोष के व्यत्यय एवं दुष्टों के संसर्ग से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये । ५। पुरुष स्थान और घर ये तीन स्त्रियों के आश्रय स्थल कहे गये हैं । धन सम्पत्ति आदि की रक्षा एवं अपूर्व की प्राप्ति उपर्युक्त तीन प्रकार के आश्रम कहे गये हैं । ६। कुलीन, नीतिज्ञ, बुद्धिमान्, सत्य प्रतिष्ठा, दृढ़वत, विनीत, धार्मिक प्रवृत्ति सम्पन्न एवं त्यागी पुरुष को आश्रम के योग्य समझना चाहिये । ७। यात्रा के प्रसंग में धार्मिक जनों से मुक्त खर्वट (कस्बा) खेट (कस्बे से छोटा सा ग्राम) एवं ग्राम क्रमशः इन्हीं में से किसी को निवास-स्थान के योग्य

१. विपरीतार्थसाधकाः । ७. स्वामी ।

गुणानुमतस्तज्ज प्राप्त्यादिजनेन वा । प्रतिवेशगद्यबाधेन शुद्धं कुर्याद्विशेनम् ॥९
 द्वारचत्वशालानां^१ सर्वकारकवेशमनाम् । द्यूतसूनासुरावेशनटराजानुजीविनाम् ॥१०
 पाखण्डदेववीथीनां राजमरणकुलस्य च । दूरात्तुगुप्तं कर्तव्या जीविका विभवोचिता ॥११
 सापिधानैकनिष्काशं शुद्धपृष्ठं समन्ततः । सदृत्ताक्षजनाकीर्णमदुष्टप्रातिवेशिकम् ॥१२
 प्रागुदक्षवणे देशे वास्तुविद्याविधानतः । प्रविभक्तक्रियकाञ्चं सर्वरुक्मनोहरम् ॥१३
 अर्चत्त्वानोदकागारगोष्टागारमहानसैः । युक्तं गोवाजिशालाभिः सदासीमृत्यकाश्रयैः ॥१४
 बहिरन्तः पुरस्त्रीकं सर्वोपकरण्युर्तम् । विभक्तशयनोदेशमाप्तवृद्धैरधिष्ठितम् ॥१५
 अरक्षणाद्विदाराणां वर्णसङ्करजादयः । दृष्टा हि बहूवो दोषास्तस्माद्रद्ध्यः सदा तित्रयः ॥१६
 न ह्यासं प्रसदं दद्याश्च स्वातन्त्र्यं न विघ्सेत् । दिश्वस्त्वच्च चेष्टेत न्यायं भर्त्सनभाचरेत् ॥१७
 नाधिकारं क्वचिद्द्वादृते पाकादिकर्मणः । स्त्रीणां ग्रामीणवत्ता हि भोगायालं सुशासिता ॥१८
 नित्यं तत्कर्मदोगेन ताः कर्तव्या निरन्तराः । इत्येवं सर्वदाः व्याप्ते: स्यादविद्यनिराश्रया ॥१९

समझना चाहिये । १। इन उपर्युक्त स्थानों में से किसी एक में गुहजनों की अनुमति तथा प्रमुख लोगों की सहायता प्राप्त कर पड़ोसियों को किसी प्रकार की असुविधा न देते हुए निर्दोष निवास का निर्माण करना चाहिए । २। प्रवेश द्वार, नौराहा, राजभवन सभी प्रकार के कारीगरों के मकान द्यूतकर्म में निरत रहने वालों के निवास हिसक प्रवृत्ति वालों के निवास वेश्या नट एवं राजकर्मचारियों के निवास पाखण्डी लोगों के आवास देवमन्दिर की गली राजमार्ग एवं राजाकुल के लोगों के निवास स्थल से बहुत दूर, अपनी शक्ति के अनुसार सुरक्षित जीविका बनानी चाहिए । १०-११। छाजयुक्त एक द्वार वाले भवन का जो चारों ओर से स्वच्छ दिखाई पड़े, निर्माण करना चाहिये वह ऐसे स्थान पर हो जिसके चारों ओर सञ्चरित्र तथा आप्त लोगों की बस्ती हो, विशेषतया पड़ोसी दुष्ट स्वभाव वाले न हो । १२। भवन का निर्माण ऐसी जर्मान में करना चाहिए जो पूर्व अथवा उत्तर की ओर ढालू हो, वास्तु दिव्या के अनुसार उसका इस प्रकार से निर्माण होना चाहिए जिसमें प्रत्येक कार्यों के लिए अलग-अलग सभी क्रतुओं में मनोहर कर्म बन सके । जैसे पूजा गृह (देवगृह) स्नानगृह, जलागार, गोशाला, रसोई घर, अशवशाला, दासी एवं नौकरों के गृह स्थियों के अन्तःपुर, बाहरी गृह आदि सभी अलग-अलग से सभी सामग्रियों समेत बनाये जा सके । स्त्रियों का शयनागार सबसे अलग सुरक्षित स्थान में होना चाहिए जहाँ पर श्रेष्ठ वृद्ध जनों का निवास हो । १३-१५। क्योंकि स्त्रियों की सुरक्षा के बिना वर्णसंकर सन्तान आदि अनेक दोष देखे जाते हैं, अतः सर्वदा स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए । १६। इनको कभी उन्मादक वस्तुएँ नहीं देनी चाहिए इसी प्रकार न तो कभी स्वतन्त्रता देनी चाहिए और न पूर्णलूपेण विश्वास ही करना चाहिए । सर्वदा विश्वस्त की भाँति व्यवहार तो करना चाहिए किन्तु अवसर-अवसर पर समुचित भर्त्सना करते रहना चाहिए । १७। भोजनादि बनाने के कार्यों को छोड़कर कभी इन्हें कोई अधिकार नहीं देना चाहिए । अनुशासन के भीतर रहने वाली स्त्रियों की गृहस्थी के कार्यों की निपुणता ही भोग के लिए पर्याप्त है । १८। उन्हें सर्वदा किसी काम में लगे रहना चाहिए किसी समय भी बैठकर व्यर्थ समय नहीं बिताना चाहिये । इस प्रकार से गृहस्थ का गृह अविद्या एवं अलक्ष्मी से रहित हो

१. द्वारचत्वरनागाना शस्त्रकारकवेशमनाम् । अतिन्यूनावरावेशनटरंगानुजीविनाम् । पाखण्डदेव-तीर्थानाम् ।

दौर्गत्यमतिरूपं^१ चाप्यसत्तज्ज्ञः स्वतन्त्रता । पानाशनकथागोष्ठीप्रियत्वाकर्मशीलता^२ ॥२०
 कुहकेक्षणिकामुण्डाभिक्षुकीसूतिकादिभिः । गोप्रसङ्गस्तथाैसद्वृलिङ्गयाचकशिल्पिभिः ॥२१
 संवाहोद्यानयात्रासूदानेष्वामन्त्रणादिषु । प्रसङ्गस्तीर्थयात्रार्थं धर्मेषु प्रकटेषु च ॥२२
 विप्रयोगः सदा भर्त्रा तज्ज्ञातिक्षुलनिःस्वता । अमाधृत्यकर्दर्यत्वे भूशं पूसां च वाच्यता ॥२३
 अतिक्षीर्थमतिक्षालितरत्यन्ताभीतिपातनम् । स्त्रीभिजितत्वमत्यर्थं ज्ञत्वं तत्त्वाः सदोषताः ॥२४
 स्त्रीणां^३ पत्युरधीनत्वात्मानेव हि निन्द्यते । अर्तुरेषु हि तज्जाडयं यद्भृत्यानामयोग्यता ॥२५
 तस्माद्यथोदितास्तेता रक्ष्याै शासनतादनैः । ताडनैश्च यथाकालं यथावत्समुपाचरेत् ॥२६
 परिगृह्य बहून्दारानुपचारैः समो भक्तेत् । यथक्रमोचितैः कर्म दानसत्कारवासनैः ॥२७
 प्रथमोऽभिजनो धर्मो योग्यत्वं च सुमुक्त्रात् । पक्षे वित्तं विशेषस्त्रीणां भानस्तत्कारणं तथः ॥२८
 तस्मान्मानो न कर्तव्यो हेयश्चापि न तत्कृतः । गुरुत्वे लाघवे वापि शतां कार्यं निबन्धनम् ॥२९
 आकस्मिके प्रद्युम्जानः प्रेक्षावान्मानलाघवे । स यत्किञ्चनकारित्वाच्छायभेदैति लाघवम् ॥३०

जाता है । ११। घर में दुर्गति । (दरिद्रता) अत्यन्त भुन्दर हूण असज्जनों की संगति, स्वतंत्रता, मधुमान, सुन्दर भोजन, कथा एवं गोष्ठी को अधिक पसन्द करने की आदत बिना, किसी काम के दौरे रहना, मेला आदि में जाने की विशेष रुचि, भिक्षुकी, कुटनी, नटी, दाई आदि दुष्ट स्त्रियों की संगति, संन्यासी, भिक्षुक, शिल्पकार एवं अस्तुरुणों की संगति अथवा अधिक समागम, वाहन पर आरोहण, उद्यान, क्रीड़ा यात्रा तथा निमंत्रणादि में शरीक होना तीर्थयात्रा एवं धर्म कार्य के प्रसंग से बहुत बाहर धूमना सर्वदा पति का वियोग जाति अथवा कुल की निर्धनता रूखा व्यवहार, कायरता तथा पति की सर्वदा निन्दा सुनते रहना, अतिशय कूरता अतिशय शान्ति अतिशय भय एवं अतिशय पतन तथा तुरन्त पराजित होने की अशक्ति ये सब स्त्रियों के लिए परम दोषकारी कारण है । २०-२४। स्त्रियों के अधीन रहने वाल पति निन्दा का पात्र होता है यह भी स्वामी की अयोग्यता अथवा मूर्खता का परिचय है जो उसके नौकर चाकर अयोग्य बने रहते हैं । २५। इसलिए जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अनुशासन एवं ताडनादि से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए उसी प्रकार समय पड़ने पर उनका सम्मान भी करना चाहिए । २६। उनके क्रम अर्थात् बड़ी छोटी के विचार से उचित दान, सत्कार एवं वस्त्रादि से व्यवहार करना चाहिए । २७। स्त्रियों की प्रथम योग्यता उनकी कुलीनता है इसके पश्चात् उनके धार्मिक आचरण तथा पुत्रवती होना उनकी योग्यता है । समय का विचार कर उन्हें धनादि भी देना चाहिये । यथोचित सम्मान का ध्यान रखना चाहिये उसके कारण पर ध्यान रखना चाहिए । २८। इसलिए न तो कभी सामान्य कारणवश विशेष सम्मान करना चाहिए और न किसी कारण वश अपमान ही करना चाहिए । सत्यरुणों को किसी के गौरव एवं लाघव करने में कुछ नियम बनाना चाहिए । २९। मनमानी मान एवं लाघव (अपमान) का प्रयोग बिना किसी नियम के आकस्मिक उन्नति एवं स्वयं लघुता प्राप्त करते

१. सौगन्ध्यमतिरूपत्वमुत्त्वेच्च पतिव्रता । २. पानगेयकथागोष्ठीप्रियत्वाकर्मशीलता ।
३. प्रसंगाद्यस्तथासत्स्त्रीलिंगधारकशिल्पिभिः । ४. स्त्रीणां पत्युरधीनत्वं प्रमाणैरधिगम्यते ।

यथा मानसप्रमानौ हि प्रयुज्येतानिमित्ततः । तन्निमित्ता जनत्यागे प्रयतन्ते तदाश्चितः ॥३१
एतदेव हृषीप्रयाणां^१ जयं माननकारणम् । यत्त्वापत्यनिमित्तेषु^२ प्रधाने कुलयोग्यते ॥३२
तत्संयोगस्तुखं पुंसां महद्वङ्गं वियोगतः । तत्प्राप्तिः प्रति॒हृतव्या स्वार्थयैव प्रियाण्यपि ॥३३
अतः स्वार्थ्येकनिष्ठोऽयं लोकः सर्वोऽवसीयते । तत्सिद्धिर्भवेदस्तमानाद् भ्रान्तिविधायकः ॥३४
ततो दारादिका भृत्या नियन्त्यास्तथा द्विजा । यथेहामुत्र वा श्रेयः प्राप्त्यादुत्तरेतरम् ॥३५
स्त्रीणां धर्मार्थकामेषु नातिसन्धानमानरेत् । तासां तेष्वभिसन्धानाद् वेदात्माभिसंहितः ॥३६
जायात्वदर्द्धं शरीरस्य नृणां धर्मादिसाधने । नातस्तामु व्यथां काञ्चित्प्रतिकूलं समाचरेत् ॥३७
यज्ञोत्सवादौ नाकस्मात्कञ्चिदासां विशेषयेत् । वस्त्रतान्नलदानादौ प्रतिपत्तौ समो भवेत् ॥३८
प्रियाप्रियत्वं भेदो हि कामतस्तु रहोगतः । उपदर्शः पुनर्दर्शैस्तुत्प्रवृत्तिः प्रशस्यते ॥३९
आत्मि तु पुनः सर्वा उपग्रह्याः प्रिया इव । पूर्वभिजातधर्मार्था पुत्रिणी चोतरेतरम् ॥४०
उदगच्छेदनेनैव विधिना नित्यमार्तवे । तत्प्रवृत्तिर्थाकालं स्वं स्वं वासमखण्डयन् ॥४१

हैं । ३०। जिस प्रकार बिना किन्हीं कारणों से मान एवं अपमान का प्रयोग होता है और उसके आश्रय में रहने वाले लोग उन्हीं कारणों से उसके त्याग करने का प्रयत्न करते हैं । ३१। सन्तानों के मान होने में उनकी (माता की) कुल एवं योग्यता की प्रधानता है । ३२। उनके संयोग से पुरुष को सुख होता है और उनके वियोग से महान् दुःख होता है । इसलिए स्वार्थ के लिए उसकी प्राप्ति का ही परित्याग करना चाहिए । उसी भाँति तत्सम्बन्धी प्रिय वस्तुओं का भी परित्याग करना चाहिए । ३३। इन्हीं कारणों से स्वार्थपरायण स्त्रीदायक यह सारा संसार विनाश को प्राप्त हो जाता है । विनाश होने से ही उसकी यह प्रसिद्धि होती है । ३४। द्विजवृन्तः । इन्हीं सब कारणों से मनुष्यों को अपने नौकर-चाकर तथा स्त्रियों आदि का अनुशासन पूर्वक नियमन करना चाहिए । जिससे इस लोक तथा परलोक में उत्तरोत्तर कल्याण की प्राप्ति हो । ३५। धर्म, अर्थ एवं काम सम्बन्धी कार्यों में स्त्रियों के साथ प्रवचना नहीं करनी चाहिए । इन कार्यों में यदि कोई स्त्रियों के साथ छलपूर्ण व्यवहार करता है तो वह अपनी आत्मा के साथ वच्चना करता है । ३६। धार्मिक कार्यों में स्त्री पुरुष का आधा शरीर मानी गई है । इसलिए उनके साथ ऐसा प्रतिकूल व्यवहार न रखे कि उन्हें व्यथा हो । ३७। यदि कई स्त्रियाँ हों तो पुरुष को यज्ञोत्सव आदि में बिना किसी कारण के किसी एक को विशेष महत्व नहीं देना चाहिये । वस्त्र, ताम्बूल आदि के देने में तथा अन्य सामान्य व्यवहारों में सर्वदा समानतारखनी चाहिये । ३८। कामवश यदि कोई विशेष प्रिय है और कोई अप्रिय है तो एकान्त में उनके साथ ही वैसा व्यवहार करना चाहिये । सामान्य व्यवहार एवं बातचीत में तो समानता ही की प्रशंसा की जाती है । ३९। क्रतुकाल में तो सभी के साथ प्रियतमा मानकर समागम करना चाहिये । ज्येष्ठ कुलीन सदाचार परायण धर्मशील एवं पुत्रवती इनमें से क्रमशः एक के बाद दूसरी हो सम्मानीय समझाना चाहिये । ४०। इसी नियम से क्रतुकाल में सर्वदा स्त्री के साथ समागम करना चाहिये । समय आने पर अपने निवास को बिना खण्डित किये सब के साथ समान व्यवहार रखना चाहिये । अर्थात् क्रम से किसी के घर में अनुपस्थित नहीं होना चाहिये । ४१। सर्वदा

१. हि पत्नीनाम् । २. समुत्पद्य निमित्तेषु प्रधाने गुणयोग्यता । यत्स्यामाश्रयं पुंसां महद्वङ्गं वियोगवत् ।

नित्यपर्याप्तवासानामपादानमसून्विदुः । क्रतुदुखं प्रमोदश्च तथा पूर्वं समागतः ॥४२
 अन्यया सह यद्बुद्धं सदसद्वा रहोगतम् । उत्कण्ठितं वा यत्किञ्चित्सपलीषु न तद्वसेत् ॥४३
 यत्किञ्चित्वदन्यसम्बद्धमन्यथा कथितं मिथः । तस्य कुर्यादनिर्वेदमात्मनैव विचिन्तयेत् ॥४४
 अन्येऽन्यमत्सरास्यानैर्न ता चाचापि भर्त्सयेत् । युणदोषो च विज्ञाय स्वयं कुर्यात्रि निष्कलौ ॥४५
 वस्त्रालङ्घातरभोज्यादौ तदपत्येष्वनुक्रमात् । मातृदोषाननादृत्य तुल्यदृष्टिः पिता भवेत् ॥४६
 अन्यस्यान्यगतैर्दोषैर्दूषणं न हि नीतिमत् । यतु तेषामपत्यं तु ततुल्यमुभयोरपि ॥४७
 प्रीतिं द्वैशमभिप्रायं शौक्षशौचगतागमान् । बहिरन्तश्च जानीयादास मृडचरैः सदा ॥४८
 आत्मानमपि दिज्ञाय चित्तवृत्तेरनीश्वरम् । विश्वसेत कथं स्त्रीषु सर्वादिनयद्याममु ॥४९
 वृद्धदास्यः क्रमायाता धात्र्यश्च परिचारिकाः । तन्मातृपृतृकाद्याश्र षण्डवृद्धाश्वरा मताः ॥५०
 विविधैस्तत्कथाख्यानैस्तुल्यशीलदयान्वितैः^१ । प्रविश्यान्तरभिप्रायं विद्यात्काले प्रयोजितेः ॥५१
 तेषु तेषु कथर्थेषु कथमानेषु लक्षयेत् । मुखाकारादिभिर्लङ्घरभिप्रायं मनोगतम् ॥५२

पर्याय क्रम से निवास करने को प्राण कहते हैं । क्रतुकालीन दुःख, प्रमोद एवं पूर्वं समागम एवं सर्वदा पर्याय क्रम से आवेच्छिन्न निवास को प्राण कहते हैं ॥४२। एकान्त में एक पली के साथ जो कुछ दुःख सुख अथवा सत् असत् व्यवहार का अनुभव पति को हो अथवा पली के मन में पति के लिए जो उत्सुकता एवं उत्कण्ठा हो, उसका वर्णन सपलितयों के सामने नहीं करना चाहिये ॥४३। एक पली पति से दूसरी सपली के सम्बन्ध में यदि कोई शिकायत की बात एकान्त में कहे तो उसको वहीं पर स्वयं उचित समाधान करके दुःख रहित कर देना चाहिये ॥४४। एक दूसरे के प्रति मत्सर भावनाओं का प्रचार नहीं करना चाहिये : कभी वचन द्वारा भी स्त्रियों की भर्त्सना नहीं करनी चाहिये । उनके गुण एवं दोष को भली भाँति जानकर उनके दूर करने एवं बढ़ाने का उपक्रम करना चाहिये ॥४५। सभी स्त्रियों की सन्ततियों के साथ वस्त्र अलंकार एवं भोजनादि में माताओं के क्रम से ध्यान रखना चाहिये, माता के दोष को न देखकर पिता को सब की सन्ततियों के साथ समानता का व्यवहार करना चाहिये ॥४६। एक के दोष को दूसरे पर थोपना नीति के अनुकूल नहीं है । सब की सन्ततियों के साथ माता पिता दोनों को समानता का व्यवहार रखना चाहिये ॥४७। स्त्रियों के प्रीति, द्वेष, अभिप्राय, पवित्रता, अपवित्रता बाहर भीतर का गमन एवं आगमन सब का दास एवं भेदियों से सर्वदा पता लगाते रहना चाहिये ॥४८। अपने चित्त की वृत्तियों के ऊपर अपना ही अधिकार सर्वदा नहीं रहता (अर्थात् जब अपना ही चित्त अपने अधीन नहीं रहता) तो सभी प्रकार के अविनय की मूर्त रूप स्त्रियों का विश्वास किस प्रकार किया जा सकता है ॥४९। चरों के द्वारा स्त्रियों के अभिप्राय को समझना वंश परम्परागत वृद्ध, दासी, धाय, परिचारिका, उनकी माताएँ एवं पिता आदि तथा नपुंसक वृद्ध ये ही (अन्तःपुर में प्रवेश करने के योग्य) चर माने गये हैं ॥५०। विविध प्रकार की कथाओं उपास्यानों एवं प्रवृत्तियों द्वारा समय-समय पर अन्तःपुर में प्रविष्ट होकर उनके अभिप्रायों का पता लगाना चाहिये ॥५१। उन कथाओं के कहे जाने के समय उनकी मुख्य मुख्य घटनाओं पर स्त्रियों के मुख आदि के आकार एवं शरीर के अन्यान्य चिह्नों के द्वारा मनोगत भावों का

१. भावं विद्यात्प्रवृत्तिभिः ।

सीतारुन्धतिसम्बन्धैस्तथा शाकुन्तलादिभिः । सदसञ्चरिताख्यतैर्भावं विद्यात्प्रवृत्तिः ॥५३
 तदृष्टानामदुष्टेषु साधून्मितरेषु च । प्रीतिः कथाप्रबन्धेषु स्यात्सत्यं पुरुषेष्वितः ॥५४
 एवमागमदुष्टाभ्यामनुमित्या च तत्त्वतः । स्त्रीणां विदित्वाभिप्रायं वर्तेताम् यथोचितम् ॥५५
 स्त्रीभ्यो विप्रतिपन्नाभ्यः प्राणैरपि वियोजनम् । दृष्टं हि च यथा^१ राजामतो रक्षेत्प्रयत्नतः ॥५६
 वेष्या गृहेन शस्त्रेण हतो राजा शुभध्वजः । मेखलान्मणिना देव्या सौंदीरश्च नराधिषः ॥५७
 भ्रात्रा देवीप्रयुक्तेन भद्रसेनो निपातितः । तथा पुत्रेण काल्पो धातितो दर्घणसिना ॥५८
 द्वौ कांशिराजौ वै वन्यो चानन्दपुरुषोऽपि तथा : विषं प्रयुज्य पञ्चत्वमानीतौ पुजितात्मकौ ॥५९
 एवमादि महाभागा राजानो ब्राह्मणाश्च ह । स्त्रीभिर्भृत्य निपात्यन्ते तत्रान्येष्विह का कथा ॥६०
 तस्मान्नित्याप्रमत्तेन जाया रक्ष्याश्च नित्यशः । यथावदुपचर्याश्च गुणदोषानुरूपतः ॥६१
 दैषम्यादुपचाराणां विकरैश्वानिमित्तजैः । विशेषेण सपत्नीकैरकस्माज्ञापि वेदनैः ॥६२
 असम्भागं च वाग्दण्डपारुष्यादप्रसङ्गतः । प्रद्वेषो भर्तरि स्त्रीणां प्रकोपश्चापि जायते ॥६३
 ततश्चायाति वार्धक्यमुद्वोदुश्चापि शत्रुताम् । तस्मान्न तान्प्रयुज्जीत दोषान्दारविनाशकान् ॥६४
 न चैता: स्वकुलाचारमर्थम् वापि चान्जसा । न गुणांश्चाप्युपेक्षन्ते प्रकृत्या किमु पीडिताः ॥६५

यथार्थतः पता लगा लेना चाहिये ।५२। सीता अरुन्धती शकुन्तला आदि के सत् एव असत् चरित्र सम्बन्धी कथ भारो की ओर प्रदृति से स्त्रियों के मनोगत भावों का पता लगाना चाहिये ।५३। इन कथा प्रबन्धों में आने वाले पुरुषों एवं स्त्रियों के दुष्ट एवं सच्चे स्वभाव वाले पुरुषों एवं स्त्रियों के साथ दुष्ट एवं सच्चे स्वभाव वाली स्त्रियों की विशेष रुचि होती है ।५४। इस प्रकार शास्त्र (शब्द प्रमाण), प्रत्यक्ष और अनुमान एवं युक्ति से स्त्रियों के वास्तविकता का पता लगाकर उनके साथ शीघ्र ही वैसा व्यवहार भी करना चाहिये ।५५। विरोध भावना रखने वाली स्त्रियों के कारण कितने राजाओं का भूतकाल में प्राणत्याग तक होता देखा गया है अतः उनसे सर्वदा सतर्कता पूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये ।५६। केशपाण में छिपे हुए शास्त्र से राजा शुभध्वज मारे गये । अपनी स्त्री की मेखला मणि से सौंदीर नरेश का प्राणान्त हुआ ।५७। अपनी ही स्त्री की प्रेरणा से राजा भद्रसेन भाई द्वारा मारे गये इसी प्रकार कारुष देणाधिपति अपनी स्त्री की प्रेरणा से दर्द नाश करने वाले पुत्र द्वारा मारे गये ।५८। काशी के दो राजा, जो अपनी प्रजा के परम प्रिय एवं वन्दनीय थे विष देकर अन्तःपुर को स्त्री द्वारा मारे गये ।५९। ऐसे परम विद्वान् ब्राह्मण एवं महाभाग्यशाली राजाओं को जब उनकी स्त्रियाँ मार डालती हैं तो अन्य साधारण लोगों के लिए क्या कहा जाय ।६०। इन्हीं सब वातों को ध्यान में रख कर मनुष्य को सर्वदा सतर्कता से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये तथा उन्हें गुण एवं दोष के अनुरूप नियमन एवं सल्कार करता रहे ।६१। व्यवहार की विषमता, निष्कारण मनोमालिन्य विशेषतया सपत्नि की प्रेरणा से होने वाले दुर्व्यवहार बिना अपराध के दण्ड यथेष्पित सम्भोग का अभाव दण्ड की कंठोरता बिना प्रसंग के सर्वदा कठोरं वचन बोलते रहना—इन सबं कारणों से पति में स्त्रियों की विद्वेष भावना बहुत बढ़ जाती है ।६२-६३। इससे वृद्धता एवं शत्रुता आ जाती है, अतः मनुष्य को ऊपर कहे गये दुर्व्यवहारों का प्रयोग स्त्रियों के प्रति कभी नहीं करना चाहिये—ये स्त्रियों के नष्ट करने वाले होते हैं ।६४। जब ये स्त्रियाँ भलीभाँति प्रसन्न रहने पर भी अपने कुलचार, अर्धम एवं सदगुणों की ओर सहसा कोई ध्यान नहीं रखतीं, पीड़ित होने पर तो क्या

सतीत्वे प्रायशः स्त्रीणां प्रदृष्टं कारणत्रयम् । परपुंसासम्प्रीतिः प्रिये प्रीतिः स्वरक्षणे ॥६६
 तस्मात्सुरक्षिता नित्यमुपचारैर्यथोचितैः । मुभृता^१ नित्यकर्मणः कर्तव्यः योषितः सदा ॥६७
 उत्तमां सामदानाभ्यां मध्यमाभ्यां तु मध्यमाम् । पश्चिमाभ्यामुभाम्यां च अधमां सम्प्रसाधयेत् ॥६८
 भेददण्डै प्रमुल्यापि प्रागण्याद्यपेक्षया । तच्छिष्टानां तदा पश्चात्सामदानप्रसाधने ॥६९
 यात्नु विश्वस्तद्वारित्रा भर्तुभावितकारिका । त्यज्या एवं स्त्रियः सद्गुरु^२ कालकूटविषेपणः ॥७०
 दृष्टा^३ कुलोदगताः स्त्राद्ययो दिनीताभृत्वत्सलाः । सर्वदा साधनीयस्ता: सन्त्रिदायतोत्तरैः ॥७१
 एवमेव यथोद्दिष्टं स्त्रीवृत्तं योजनुष्ठितिः । प्राप्नोत्येव स भूम्पूर्ण विवर्गं "लोकसम्भवम् ॥७२
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्राणां संहितायां इहातो पर्वणि विवर्णः सर्वेषु
 स्त्रीविषये नरवृत्तदर्थनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥।

अथ नवमोऽध्यायः

आगमप्रशसावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं स्त्रीषु मनुष्याणां वृत्तिरूपा समाप्ततः । साम्प्रतं च मनुष्येषु स्त्रीणां समुपदिश्यते ॥१

रखेंगी ।६५। स्त्रियों के सती होने में प्रायः तीन कारण देखे जाते हैं, पारकीय पुरुष के साथ समागम होने का अभाव अपने पति में विशेष्य प्रीति और अपनी रक्षा ।६६। इसलिए यथोचित सत्कारादि द्वारा सर्वदा स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए। उन्हें सर्वदा अन्तःपुर में सुरक्षित एवं निरन्तर क्रियाशील बनाना चाहिए।६७। उत्तम स्वभाव वाली स्त्री को साम एवं दान से सन्तुष्ट रखना चाहिये। इसी प्रकार मध्यम स्वभाव वाली स्त्री को दान एवं यथावसर दण्ड के द्वारा उत्तम रखना चाहिये। अधम स्वभाव वाली स्त्री के लिए दण्ड एवं भेद से जाम लेना चाहिये ।६८। ऐसी अधम स्वभाव वाली स्त्री को पहले दण्ड एवं भेद द्वारा दण्डित करके बच्चों की रक्षा आदि के लिए कुछ दिनों के बाद पुनः साम दान का प्रयोग करना चाहिये ।६९। उनमें जो अत्यन्त दुष्ट चरित्र एवं पति का अकल्याण सोचते वाली हों उन स्त्रियों को सत्युरुष कालकूट विष के समान (प्राण धातक) समझ कर तुरन्त छोड़ दे ।७०। अपने मन के अनुकूल चलने वाली, उच्च-कुल में उत्पन्न साध्वी, विनीत, सर्वदा पति प्रिया स्त्रियों को उत्तरोत्तर अधिकाधिक सम्मानादि द्वारा सन्तुष्ट करते रहना चाहिये ।७१। ऊपर कहे गये नियमों के अनुसार जो मनुष्य अपनी स्त्रियों के साथ व्यवहार रखता है वह इस संसार में प्राप्त धर्मार्थकाम रूप विवर्ग का यथेष्ट संवादीतः उपभोग करता है ।७२

श्रीभविष्य महापुराण के ब्राह्मणपर्व में विवाह धर्म के प्रसंग में स्त्रियों के सम्बन्ध में पुरुषों का कर्तव्य वर्णन नामक आठवाँ अध्याय समाप्त ।८।

अध्याय ९

स्त्रीकर्तव्य-निर्देशपूर्वक आगम (शास्त्र) की प्रशंसा

ब्रह्मा बोले—स्त्रियों के प्रति किये जाने वाले पुरुषों के व्यवहारों का मैं संक्षेप में वर्णन कर चुका हूँ।

१. स्वादृताः । २. सर्वाः । ३. हृष्टाः कुलोद्भवाः । ४. अप्रमादोत्तरैः । ५. स्त्रीवर्गलोकसंमतम् ।

सम्यगाराधनात्पुंसां रत्तिवृत्तिश्च योषितः । पुत्राः स्वर्गद्यृष्टं च तस्मादिष्टो हि तद्विधिः ॥२
 कर्तव्यं नाम यक्तिज्ञवत्सर्वं विधिमपेक्षते । व्यक्तिमायति वैफल्यं तदेवारध्यमन्यथा ॥३
 विधयपेक्षीणि सर्वाणि कार्याण्यविफलान्यपि^१ । हेतुभूतास्त्रवर्गस्य महारम्भा विशेषतः ॥४
 सर्वसांगविधिज्ञनमाग्मैकनिवन्धनम् । साध्यं दृष्टमदृष्टं च द्वयं विधिनिषेधयोः ॥५
 शास्त्राधिकारे न स्त्रीणां न ग्रन्थदनां च धारणे । तस्मदिहाच्ये मन्यन्ते तच्छासनमनर्थकम् ॥६
 आगमैकक्रियायोगे स्त्रीणामध्यधिकारिता । मृते भर्तरि साध्वी स्यादित्यादौ स्मृतिभाषितम् ॥७
 तस्मात्कार्यमकार्यं वा विज्ञाय प्रभुरागमात् । गुणदेषु ताः सम्यक्छात्ति राजा नजा इव ॥८
 सद्येत पमदाः काश्रिद्विशेषाधिगतागमाः । वतु शास्त्राधिकारित्वं वचनं स्यान्निरर्थकम् ॥९
 केचिद्वेदविदो विप्राः कुलैर्वैष्णक्रियापराः । तथापि^२ जातिमात्रेण त एवात्राधिकारिजः ॥१०
 क्रियन्ते वेदशास्त्रज्ञैः प्रयोगाः शास्त्रलौकिकाः । हित्यत्मेषामद्वरेऽपि शास्त्रमेव निबन्धनम् ॥११
 व्याधधीयरगोपालप्रभूतीनां च दृश्यते । विष्टचं गारकसौयादिदिनानां परिवर्जनम् ॥१२
 गम्यगम्यादिकार्येण नियताचारसंस्थितिः । लोकानां शास्त्रवाक्यानां प्राणाः स्वेष्टनिबन्धनाः ॥१३

अब पुरोगों के प्रति किये जाने वाले स्त्रियों के व्यवहारों का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये । १। पति की भली भाँति आराधना करने ही से स्त्रियों को रति, जीविका पुत्र, स्वर्ग, एवं अन्यान्य दुर्लभ पदार्थों की प्राप्ति होती है, अतः विधिपूर्वक पति की आराधना करना ही उनके लिए कल्याणकर है । २। संसार में जो कुछ कर्तव्य है वे सब विधान की अपेक्षा रखते हैं, विधान के विपरीत आरम्भ करने से उस कार्य की विफलता स्पष्ट दिखाई देती है । ३। विधिविहित होने के नाते सारे कार्य-कलाप सफल होते हैं यदि वे विशेष सतरक्ता पूर्वक प्रारम्भ किये जायें तो इस लोक में त्रिवर्ग (धर्मार्थकाम) के कारण होते हैं । ४। सब प्रकार के कार्यों एवं उनके विधि निषेधों का ज्ञान एकमात्र शास्त्र से ही होता है । विधि एवं निषेध के दृष्ट और अदृष्ट दोनों ही साध्य हैं । ५। किन्तु स्त्रियों को शास्त्र (वेद) में अधिकार नहीं है और न उनके गम्यों के पढ़ने का ही अधिकार है । इसीलिए उनके संबंध में शासन (उपदेश) देना व्यर्थ मानते हैं । ६। एकमात्र शास्त्रीय कार्य (यज्ञादि) में स्त्रियों का पति के साथ रहने का अधिकार है । पति के मर जाने पर स्त्रियों को सदाचार परायण होना चाहिए-इत्यादि विषयों में स्मृतियों का समर्थन है । ७। पति को चाहिए कि वेद से कार्य तथा अकार्य का ज्ञान प्राप्त कर स्त्रियों के गुण-दोषों के सम्बन्ध में भली भाँति वैसा ही व्यवहार करे जैसा प्रजाओं के साथ राजा व्यवहार करता है । ८। विशेष रूप से वेद के ज्ञान को प्राप्त किये हुए कुछ स्त्रियां ही ही । (ऐसी स्त्रियों के सम्बन्ध में) शास्त्रीय अधिकारों का कथन निरर्थक होता है । ९। कुछ ऐसे ब्राह्मण होते हैं जो वैदिक क्रियाओं के अनुसार अपना वेश भी रखते हैं और तदनुकूल आचरण भी करते हैं किन्तु वेद में उनका अधिकार जाति मात्र से ही है । १०। वेदों एवं शास्त्रों को जानने वाले शास्त्रीय एवं लौकिक दोनों प्रकार के आचारों को करते हैं इनके अतिसन्निकट रहने पर भी (शास्त्रीय कार्यों के लिये) शास्त्र ही प्रमाण माने जाते हैं । ११। व्याध, धीवर, गोपाल प्रभृति जातियों में भी भद्रा एवं मंगल रविवार आदि दिनों का परित्याग देखा जाता है । १२। गम्य (उचित) एवं अगम्य (अनुचित) कार्यादि के लिए आचार व्यवहार की स्थिति उनमें भी नियत रहती है, जिसके लिए किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं होती । शास्त्रीय वाक्यों एवं लौकिक व्यवहारों के प्राण अपनी-अपनी इच्छा

१. रतिर्भवति योषिताम् । २. स्थिर । ३. अल्पफलानि च । ४. तत्रापि ।

तस्माच्चतुर्णां वर्णनामाक्षमाणां च सर्वशः । मुख्यगौणादिभेदानां ज्ञेया शास्त्राधिकारिता ॥१४
 पौर्वापर्यं तु विज्ञातुमशक्यं लोकशास्त्रयोः । तच्छास्त्रमेव मन्तव्यं थथा कर्मशारीरदत् ॥१५
 आगमे च पुराणे च द्विधैव नास्तिकग्रहम् । मार्गं महद्विराचीर्णं प्रपद्येताविकल्प्यधीः ॥१६
 मूलं गृहस्थधर्माणां यस्मान्नार्थाः पतिव्रताः । तस्मादासां प्रवक्ष्यामि भर्तुराराधने विधिम् ॥१७
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे शताधीसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पूर्वीं
 आगमनप्रशंसानाम नवमोऽध्यायः । १।

अथ दशमोऽध्यायः

स्त्रीदुराचारवर्णनम्

ब्रह्मोवाच्

आराध्यानां हि सर्वेषामयमाराधने विधिः । चित्त^१ ज्ञानानुवृत्तिश्च हितैषित्वं च सर्वदा ॥१
 कन्या पुनर्भूर्वेश्या च त्रिदिधा एव योषितः । प्रिया मध्यप्रिया चैव योग्या मध्येतरा तथा ॥२

पर निर्भर रहते हैं । १३। इसलिए चारों वर्णों एवं आश्रमों में रहने वाले का शास्त्रों पर मुख्य एवं अमुख्य रूप से अधिकार जानना चाहिए । १४। कर्म और शरीर की भाँति लोक-ब्रावहार एवं शास्त्र इन दोनों में कौन पहले का है, कौन बाद का है यह जानना अति कठिन है इसलिए शास्त्र को ही (सबका आधार) मानना चाहिए । १५। वेदों एवं पुराणों में नास्तिकता का ज्ञान दो ही प्रकार से होता है । अतएव सत्पुरुषों द्वारा अंगीकृत मार्ग को बिना किसी विकल्प (संदेह) के ग्रहण करना चाहिये । १६। गृहस्थाश्रम के समस्त धर्मकार्यों की मूलस्तररूप पतिव्रता स्त्रियाँ होती हैं अतः इनको अपने पति की आराधना किस प्रकार करनी चाहिए इसकी विधि बतला रहा हूँ । १७

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में आगम प्रशंसा नामक नवाँ अध्याय समाप्त । १।

अध्याय १०

स्त्रियों के दुराचार का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सभी आराध्यों की आराधना के लिए यही विधि है जिसे मैं बतला रहा हूँ आराधक को सर्व प्रथम अपने आराध्य की चित्तवृत्ति का परिज्ञान करना चाहिये तदनन्तर उसी के अनुरूप अपना व्यवहार रखते हुए सर्वदा उसके कल्याण के कार्यों को करना चाहिये । १। स्त्रियाँ तीन प्रकार की होती हैं कन्या, पुनर्भू और वेश्या रूप से ये तीनों क्रमशः प्रिया, मध्य प्रिया एवं योग्य मध्येतर (अधमप्रिया) के नाम से पुकारी जाती हैं । समान श्रेष्ठ एवं नीच इन तीन भेदों से स्त्रियों के पुनः तीन प्रकार बतलाये जाते हैं । प्रिय एवं अप्रिय को छोड़कर इन दोनों बाद वाली स्त्रियों के समस्त कार्यों को पहली ही के कार्यों के समान जानना चाहिये अर्थात् पहली स्त्री की तरह ये बादवाली स्त्रियाँ प्रेम नहीं करती और अपराध भी

समा श्रेष्ठा च नीचा च भूयोपि त्रिविधा: पुनः । पूर्ववत्परयोर्वृत्तिरिष्टानुकृत्या^१ प्रियाप्रिये ॥३
 अधमाप्रिययोरत्र पतिपत्न्यादिका मता । निषिद्धानां तु भक्ष्यादि तद्विद्विद्यते ॥४
 एकद्वित्वबहुत्वाद्या^२ ये भेदाः समुदाहृताः । ज्येष्ठादिवृत्ते बक्ष्यामस्तानशेषान्द्विजोत्तमाः ॥५
 वृत्तं च द्विविधं स्त्रीणां ब्राह्ममाभ्यन्तरं तथ । भर्तुरन्यजने बाह्यं तस्याः शारीरमाल्तसम् ॥६
 ज्ञातीतरविभागेन तद्वाहां द्विविधं पुनः । पूज्यं तुल्यं कनिष्ठं च तत्प्रत्येकं पुनस्त्रिधा ॥७
 रहोरतं प्रकाशं च शारीरमषि तत्त्रिधा । भर्तुश्रित्तानुकूल्येन प्रयोक्तव्यं यथेचित्तम् ॥८
 माता पिता स्वसा भाता पैतृव्याचार्यनातुलाः । सभार्या^३ भगिनी भर्ता भर्तुमातृपितृस्ता ॥९
 धार्मी वृद्धाङ्गनादिश्रवस्त्राप्ताः समो जनः । प्रथमोटः सपत्नी च स्त्रीणां मान्यतमो गणः^४ ॥१०
 एषामेव व्यत्पत्यादिभगिनीभ्रातरस्तथा ! कनिष्ठा भर्तुरत्यादिभार्या आप्तसमो भतः ॥११
 हीनोऽन्यः शासनीयस्तु तत्र तावन्न विद्यते । योग्यता मुतसौभाग्यैर्न यदवत्स्पतिरिष्टिता ॥१२
 यत्रापि गुरु भर्तुणामानुकूलेन सर्ददा । वृत्तिः प्रशस्यते स्त्रीणां पूजाचाराविरोधिनी^५ ॥१३

उससे अधिक करती हैं पर शेष कार्यों में पुत्रादि उत्पन्न करने में अथवा गृहस्थी के अन्य कार्यों में ये दोनों भी उसी के समान होती हैं । २-३। इस लोक में उन अधम एवं अप्रिय दम्पति में भी पति-पत्नी का व्यवहार माना जाता है निषिद्धों में जो भक्ष्य आदि हैं । द्विजवृन्द । इनका फलपूर्वक विधान करते हैं । ४। ज्येष्ठ आदि के कार्यों प्रसंग में उन सबको मैं दत्तलाङ्गा । जो एक दो एवं अनेक भेद (स्त्रियों के) कहे गये हैं स्त्रियों के मुख्यतः व्यवहार होते हैं । ५। एक अभ्यन्तर दूसरा बाह्य पति को छोड़कर दूसरे जितने भी मनुष्य हैं उन सबके साथ किये जाने वाले व्यवहार को बाह्य कहते हैं । अपने शारीर सम्बन्धी जितने कार्य होते हैं उन सब को आभ्यन्तर कहते हैं । ६। जाति विरादरी वालों के साथ एवं अन्य सर्वसामान्य लोगों के साथ दो प्रकार के व्यवहारों के कारण बाह्य व्यवहार के भी दो भेद हो गये । उनमें भी पूज्य, तुल्य, एवं कनिष्ठ लोगों के साथ (होने वाले व्यवहारों के कारण) उक्त दोनों भेदों में से प्रत्येक के तीन-तीन भेद हुए । ७। इसी प्रकार शारीर व्यवहार के भी रहस्य एवं प्रकाश इन तीन प्रकारों से तीन भेद हुए पत्नी अपने पूज्य पतिदेव के चित्र के अनुकूल इनको करे । ८। माता, पिता, बहिन (बड़ी) भाई, चाचा, मामा आचार्य, सपत्नी बहिन (चाचा फूफी आदि की लड़कियाँ) स्वामी और पति की माता पिता की बहिनें, धाय, परिवार की वृद्ध स्त्रियों ये सभी स्त्रियों पूज्य के समान समादरणीय हैं । अपने से पहिले चाही गई सपत्नी जी इसकी परम सम्माननीय है । ९-१०। इन सब के लड़के लड़कियाँ पद में लगने वाले छाटे भाई बहने पति की छोटी सपत्नी आदि भी उसके सम्मान के योग्य मानी जाती हैं । ११। वधू के लिये तो पति गृह में तब तक कोई भी छोटा व्यक्ति शासनीय नहीं रहता जब तक पुत्र प्राप्ति एवं अन्यान्य सौभाग्यादि से वह पूर्ण संयुक्त नहीं हो जाती । १२। अपने गुरुजनों एवं पति की इच्छा के अनुकूल उसे सर्वदा अपना व्यवहार रखना चाहिये । पति एवं गुरुजनों की सेवा के अतिरिक्त किसी भी पूजा एवं व्रतोपवासादि को करने का आचरण स्त्रियों का प्रशंसनीय माना गया है । १३। अपने देवरों एवं पति के

१. पूर्ववत्परयोर्वृत्तिं विद्यान्मुक्त्वा प्रियागसम् । २. एका द्विवहनारीणाम् । ३. सभक्ता । ४. गुणः ।
 ५. पूज्यदाराविरोधिनी ।

देवरैः पतिमित्रैश्च परिहासक्रियोचितैः । विविक्तदेशावस्थानं वर्जयेदिति नर्म च ॥१४
 प्रायशो हि कुलस्त्रीणां शीलविध्वंसहेतवः । दुष्टयोगो रहो नित्यं स्वातन्त्र्यमतिनर्षता ॥१५
 दुष्टसङ्गे त्वरा स्त्रीणां युवभिर्नर्म नोचितम् । निर्भेषता स्वतन्त्राणां साफल्यं रहसि द्वजेत् ॥१६
 पुंसो दुष्टेद्विताकारात्नुष्टभावप्रदोजितान् ! भ्रातृवित्यत्रवैतान्यशयती परिवर्जयेत् ॥१७
 पुंसोऽन्याग्रहमालापस्मितदिप्रेक्षितानि च । करान्तरेण^१ द्रव्याणां निवन्ध्य^२ ग्रहणपर्णम् ॥१८
 द्वारप्रदेशावस्थानं राजसार्गाविलोकनम् । प्रेक्षोद्यानादिशीलत्वं निरुद्यादेशमालयम् ॥१९
 बहूनां दर्शने स्थानं दृष्टिवाक्याप्यचापलम् । ल्लोऽनन्तवं ससीत्कारमुच्चैर्हसितजल्पितम् ॥२०
 साङ्गत्यं लिङ्गिदुष्टस्त्रीभिक्षुणीक्षणिकादिभिः । मन्दमण्डलदीक्षायां सक्तिः संवसनेषु च ॥२१
 इत्येवमादिदुर्वृत्तं प्रायोदुष्टजनोदितम् । वर्जयेत्परिरक्षत्ती कुलत्रितयदाच्यताम् ॥२२

इति श्रीभद्रिष्ये महापुराणे शतार्द्दिसाहक्ष्यां संहितायां ब्राह्मोपर्दणि
 स्त्रीदुर्बलत्वर्णनन्तम् दशमोऽध्यायः । १० ।

मित्रों के साथ उचित परिहासादि एकान्त स्थान में निवास एवं हास्य आदि भी उसे नहीं करना चाहिये । १४। ये सब प्रायः कुलाङ्गनाओं के शील को भ्रष्ट कर देने के कारण बन जाते हैं दुष्टों की संगति नित्य एकान्त निवास स्वतंत्रता एवं अतिशय हास्य । १५। दुष्टों की संगति में शीघ्रता एवं युवकों के साथ परिहास ये दो बातें तो स्त्रियों के लिए सर्वथा अनुचित हैं । स्वच्छन्द प्रवृत्ति वाली स्त्रियों की कुचेष्टाएँ एकान्त में बहुत शीघ्र सफल हो जाती हैं । १६। परकीय पुरुषों के गन्दे इशारों से जो दुष्ट भावना से सम्बन्ध रखने वाले होते हैं उन्हें अनन्त भाई और पिता की दृष्टि से देखकर उनका परित्याग करे । १७। परकीय पुरुष के साथ वस्तुओं का आदान-प्रदान वार्तालाप हास्य-परिहास विप्रेक्षण किसीं भी दूसरे व्यक्ति के हाथ से रूपये पैसे का लेन-देन, दरवाजे पर खड़ा होना, सड़क की ओर ताकना, खिड़की और झरोखे में बैठकर देखना बाग एवं उपवन की सैर करना, ऐसे स्थान पर खड़ा होना जहाँ बहुतों की दृष्टि पड़े । नेत्र, वचन एवं शरीर की चंचलता, थूकना, उच्च स्वर से हँसना, बेकार की गर्मे हँकना, संन्यासी, दुष्ट स्त्री, भिक्षुकी, कुटनी आदि की संगति करना मंत्र मण्डला दीक्षा एवं ग्रामीणों के विशेष उत्सवों में आसक्ति रखना प्रायः ये सभी कार्य दुष्ट प्रकृति वालों के लिए उचित कहे गये हैं । पतिव्रता वधू तीनों कुलों के इन निन्दात्मक कार्यों को अपने शील सदाचार की रक्षा करती हुई छोड़ दे । १८-२२

श्रीभद्रिष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में स्त्री दुराचारवर्णन नामक दसवाँ अध्याय समाप्त । १० ।

१. कालान्तरेण । २. विरुद्धम् ।

अथैकादशोऽध्यायः

स्त्रीणां गृहस्थधर्मवर्णनम्

ब्रह्मोघाच

या पति दैवतं पश्येन्मनोवाक्कायकर्मभिः । तच्छरीरार्धजातेव सर्वदा हितमाचरेत् ॥१
 तत्पियां प्रियवत्पश्येतद्देष्यां देष्यवत्तदा । अधर्मनर्थयुक्तेभ्योऽयुक्ता चास्य निवर्तते ॥२
 प्रिय किमस्य किं पश्यं साम्यं चास्य कथं भवेत् । ज्ञात्वैव सर्वभृत्येषु न प्रमादेत वै द्विजः ॥३
 देवतापितृकार्येषु भर्तुः स्नानाशनादिषु । सत्कारेऽयागतानां च यथौचित्यं न हापयेत् ॥४
 वेशमात्मा च शरीरं हि गृहिणीनां द्विधा कृतम् । संस्कर्तव्यं प्रयत्नेन प्रथमं पश्चिमादिपि ॥५
 कृत्वा देशम् सुसंमृष्टं त्रिकालविहितार्चनम् । वृत्तकर्मोपभोगानां संस्कर्तव्यं यथोचित्तम् ॥६
 प्रातर्मध्यापराह्णेषु बहिर्मध्यान्तरेषु च । गृहसम्मार्जनं कृत्वा निष्काराणं निशि क्षिपेत् ॥७
 गोमहिष्यादिशालानां तत्पुरीषादिमात्रकम् । व्यपत्नेयं तु यत्नेन सम्मार्जन्या प्रसाधनम् ॥८
 दायकर्मकरादीनां बाह्याभ्यन्तरचारिणाम् । पोषणादिविधिं दिव्याददुष्ठानं च कर्मष्टु ॥९

अध्याय ११

स्त्रियों के गृहस्थ धर्म का वर्णन

बाह्या बोले—पतिव्रता पत्नी अपने आराध्य पति को सर्वदा मनसा वाचा कर्मणा देवता की भाँति देखे और सर्वदा उसके कल्याण साधन में आधे शरीर से उत्पन्न की भाँति निरत रहे । १। उसकी प्रिय वस्तुओं एवं व्यक्तियों को प्रिय की तरह और उसकी अप्रिय को अप्रिय की तरह देखे सर्वदा अनर्थ एवं अधर्म कार्यों से पति को बचा कर रखे । २। द्विजवृन्द ! (पतिव्रता को चाहिये) हमारे पति का प्रिय क्या है (उसी के अनुरूप) दोनों का साम्य कैसा होगा यह मानकर सभी दारा दासियों के साथ कभी असावधानी से उनके साथ व्यवहार न करे । ३। देवता एवं पितरों के कार्यों में पति के स्नान भोजनादि कार्यों में अतिथियों के स्वागत सत्कारादि में उसे औचित्य की रक्षा करनी चाहिये । ४। गृहस्थों की पलियों के शरीर घर और आत्मा को इन दो भागों में विभक्त किया गया है । इन दोनों में घर को आत्मा से भी बढ़कर प्रयत्न पूर्वक स्वच्छ रखना चाहिये । ५। प्रातः मध्याह्न एवं सायं इन तीनों कालों में खूब झाड़ बुहार कर घर को स्वच्छ रखे और उसकी पूजा करे । इनके अतिरिक्त अपने सभी कार्यों में एवं समस्त घरेलू वस्तुओं में भी यत्पूर्वक पर्याप्त स्वच्छता रखे । ६। घर के भीतर बाहर एवं मध्य भाग में सर्वत्र प्रातःकाल मध्याह्न एवं अपराह्न में झाड़ से साफ करके कूड़ा बाहर फेंकना चाहिये । पर रात्रि काल में कूड़े को बाहर नहीं ढालना चाहिये । ७। गोशाला एवं भैसों की शाला आदि से उनके मूत्र एवं गोबर आदि को सप्रयत्न झाड़ से खूब स्वच्छ करना चाहिये । ८। घर के भीतर एवं बाहर काम करने वाले दास-दासी एवं मजदूरों के सान पानादि की व्यवस्था गृहिणी को करना चाहिये, घरेलू सारे कार्यों की निगरानी भी उसे रखनी चाहिये । ९। शाक, मूल, फल, लता, औषधि एवं सभी प्रकार के बीजों का

शाकमूलफलादीनां वल्तीनामैषयस्य च : सङ्ग्रहः सर्वबीजतां यथाकालं पथाबलम् ॥१०
 तान्नक्रांस्यायसादीनां काष्ठवेणुग्रयस्य^१ च । मृत्युनां च भाण्डानां विविधानां च सङ्ग्रहम् ॥११
 कुण्डकादिजलद्रोणा कलशोदञ्चतालुका : । शाकपात्राण्यनेकानि स्नेहानां गोरसस्य च ॥१२
 मुसलं कुण्डनीयं तु एन्त्रकं^२ चूर्णचालनी । दोहन्यो नेत्रकं मन्था मण्डन्यः शृङ्खलानि च ॥१३
 सन्दन्नाः कुण्डिका शूलाः पट्टपिप्पलके दृपत् । डिविका हस्तको दर्वी भास्त्रस्फुटताकानि च ॥१४
 तुलाप्रस्थादिमानानि मार्जन्यः पिटकानि च । सर्वमेतत्प्रकुर्वीत प्रयत्नेन च सर्वदा ॥१५
 हिंवादिकमथो जाजी गिपत्यो मारिचानि च । राजिका धान्यकं शुण्ठी त्रिद्वुर्जातिकानि च ॥१६
 लवणं क्षारवगाश्च तौवीरकप्रूपकै । द्विदत्तामलकं चिचा सर्वाश्च लेहजातयः ॥१७
 शुक्रकाष्ठानि बल्लूरभरिष्टा पिष्टमाषयोः । विकाराः पयसश्रापि विविधाः कन्दजातयः ॥१८
 नित्यनैमित्तिकानां हि कर्याणामुपयोगतः । सर्वमित्यादि संग्राहं यथावद्विभवोचितम् ॥१९
 यत्कार्याणां समुत्पत्तावपाहुर्हुं न चृश्यते । तत्पागेव यथायोगं सङ्गृहीयात्प्रयत्नतः ॥२०
 धान्यानां घृष्टपिण्डानां क्षुण्णोपहतयोरपि । भूंशं शुष्काद्विसिद्धानां क्षयवृद्धी त्रिलूपयेत् ॥२१

इति श्रीभविष्ये भहातुराणे रतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि

गृह्धर्मवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः । ११।

समय-समय पर अपनी शक्ति के अनुरूप उसे संग्रह करना चाहिये । १०। ताँबे, काँसे, लोहे काष्ठ बाँस एवं मिट्टी के गृहस्थी के उपयोगी विविध पात्रों का भी उसे विधिवत् संग्रह करना चाहिये । ११। जल रखने के लिए बनी हुई बड़ी बड़ी द्रोणियाँ (छोड़े) कलश, झारी तथा उदंचन (बड़े पात्र से जल निकालने के लिए छोटे जल पात्र) एवं शाक आदि रखने के पात्रों का भी उसे संग्रह करना चाहिये । तेल की एवं गोरस रखने के पात्रों को भी सावधानी से संगृहीत करना चाहिये । १२। मूसल, ओखली, सूप, चालनी, दोहनी, सिल, चक्की, मथानी, जंजीर, सतरी, कुण्डिका, शूल, परी, चिमटा, करछुल, कड़ाही, बड़े करघे, तराजू, सेर, अधसेरा, आदि के मान, झाड़ू पिटारी इन सब गृहस्थी की परम उपयोगी वस्तुओं का प्रयत्न पूर्वक सर्वदा संग्रह करना चाहिये । १३-१५। हींग जीरा, पिघली, धनियाँ, राई तीन प्रकार की सोठ, नमक अन्य सभी प्रकार के क्षार, कांजी, सिरका, दाल, आँवला, इमली, सभी प्रकार के तेल, सूखी लकड़ी, पिसा हुआ उड्ड, सूखे हुए मांसादि रीठा इन सबको तथा दूध से बनने वाली सभी वस्तुओं सब प्रकार के कन्दों एवं अन्यान्य प्रकार की गृहस्थी की नित्य उपयोगी वस्तुओं को पहले से ही संगृहीत करना चाहिए । अपनी आर्थिक स्थिति के अनुरूप ऐसी सभी वस्तुओं को सोच विचार कर पहले ही से अपने पास रख लेना चाहिये । १६-१७। इनके अतिरिक्त जो वस्तुएँ कार्यारम्भ हो जाने पर तुरन्त न मैंगाई जा सकती हों, उन्हें भी पहले ही से प्रयत्न पूर्वक संग्रह करे । अब इसके बाद घिसे हुए पिसे हुए पकाये गये और कच्चे तथा खूब सूखे हुए एवं गीले अन्तों में कितनी वृद्धि होती है, कितनी न्यूनता होती है इन सबका निरूपण कर रहा हूँ । २०-२१

श्रीभविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में गृह्धर्म वर्णन नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त । ११।

अथ द्वादशोऽध्यायः

स्त्रीधर्मवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ब्रीहीणां कोदवालां च सारधर्ममुदारकः । कङ्गुदोद्रवयोर्ज्ञेयो द्वरटः पञ्चभागकः ॥१
 पञ्चभागान्नियङ्गूनां शालीनां च अदोऽस्त्वं च । दण्डकानां तृतीयांशः समक्षुण्णं त्रयं विदुः ॥२
 पानीयवद्गोधूमं ३ एष्टधान्यचतुर्ष्टयम् । तुल्यमेववगत्त्वयं मुद्गा नाषास्तिला यवाः ॥३
 पञ्चभागादिका घृष्टा गोधूमाः सत्त्वस्तथा । कुल्मादाः पिष्टमांसं च सम्यगर्धादिकं भवेत् ॥४
 सिद्धं तदेव द्विगुणं पुन्नाको यावकस्तथा । कहसुकोद्रवयोरन्नं चगकोदारकस्य च ॥५
 द्विगुणं ४ चीनकानां च ब्रीहीणां च चतुर्गुणन् । शाले: पञ्चगुणं विद्यात्पुराणे त्वतिरिच्यते ॥६
 क्रियापाकविशेषात्तु वृद्धिरेवोपदिश्यते । निमित्तस्य वरान्नस्य तदृद्धिगुणा भवेत् ॥७
 तस्माद्दूयो विरुद्धस्य चतुर्भागो विवर्धते । लाजा धानाः कलायाश्च भृष्टादिद्विगुणवृद्धयः ॥८
 भ्रष्टव्यानामतोऽन्येषां पञ्चभागोऽधिको मतः । चापकानां च पिष्टानां पादहीनाः कलायजाः ॥९

अध्याय १२

स्त्रीधर्म का वर्णन

ब्रह्मा बोले—व्रीहिधान्य (गेहूं आदि) और कोदो के चावल कूटने में आधा भाग तात्त्विक होता है और आधी भूसी निकल जाती है । काकुन और कोदो का पाँचवा भाग परत होता है । १। इसी प्रकार प्रियगु धान्य का पाँचवा भाग भी न्यून होता है शाली का एक तृतीयांश तथा अष्टमांश न्यून होता है । २। चने का एक तृतीयांश निकल जाता है—ऐसा लोग कहते हैं और ये तीनों समान कूटने योग्य हैं । ३। पानीय (सिंधाड़ा) ज्वार गेहूं एवं पीसे हुए चार प्रकार के अन्नों का जलन एक समान ही जानना चाहिये । मूँग, उड्ड, तिल, तथा जवा इन चारों में समान जलन एवं छीजन जाता है । ४। गेहूं और सतू इनमें पीसने पर पाँचवाँ भाग निकल जाता है । कुल्माथ (कुलयी) और पिष्टमांस में भी अच्छी तरह पीसने पर आधे से अधिक जाता है । ५। किन्तु पकाने पर वह दुगुना हो जाता है । पुन्नाक और याद्वक में भी ऐसा ही होता है । काकुन और कोदो के अन्न में चना और उदारक के अन्न को पकाने पर द्विगुणित वृद्धि होती है । चीनी ब्रीहि (चावल) पकाने पर चौगुना होता है साठी का पाँच गुना होता है पुराने होने पर और अधिक होता है । ५-६। पाक क्रिया में विशेषता (नियुणता) रखने वाले तो इससे भी बढ़कर वृद्धि होने का उपदेश देते हैं । शुद्ध श्रेष्ठ अन्न को वे द्विगुणित बड़ा देते हैं । ७। उससे भी बढ़कर वे अन्न बढ़ते हैं जो अंकुरित हो जाते हैं, उनका चतुर्थांश बढ़जाता है । लावा, धान और कलाय ये भूने जाने पर द्विगुणित बढ़ जाते हैं । ८। इनके अतिरिक्त जो भूने जाने वाले अन्न हैं उनका भूनने पर पाँचवाँ भाग अधिक माना जाता है । चापक एवं पीसे गये अन्नों के कलायज चौथाई न्यून हो जाते हैं । ९

१. सारमर्धमुदारकः २. यमनीयवगोधूमम् । ३. यवकोदारवस्य । ४. त्रिगुणम् ।

मुद्गमाषमसूराणामर्धपादावरोभवेत् । क्लिनशुष्कवराश्नानां हानिर्वृद्धिविशिष्यते ॥१०
 तथार्थन् तु शोध्यानामाढक्या मुद्गमाषयोः । मसूराणां च जानीयात्क्षयं पञ्चमभागकम् ॥११
 षड्भागेनात्सीतैलं सिद्धार्थकपित्थयोः । तथा निष्वकदम्बादौ^१ दिव्यात्पञ्चमभागकम् ॥१२
 तिलेइगुदीमधूकानां^२ नक्तमालुकुम्भयोः । जानीयात्सादकं तैलं खलमन्यत्रचक्षते ॥१३
 स्त्रेवकालक्रियादिभ्यः ज्ञायादेव्यभिचारतः । प्रत्यक्षीकृत्य तान्सम्यग्नुमित्यावधारयेत् ॥१४
 क्वीरदोषे गत्रां^३ प्रस्त्रं सहिर्षणां च सर्पिषः । पादाधिकमजावीनामुत्पादं तद्विदो विदुः ॥१५
 सुनृमितृणकालेऽस्यो वृद्धिर्वा क्षीरसपिषाम् । अतत्सेखं दिधातव्यो हृथदिवर्वै विनिश्चयः ॥१६
 पत्यक्षीकृत्य यत्तेजं पक्षमासान्तरे तथा । पयोर्वृत्तैर्वावीनां कुर्यात्सम्भवनिर्णयम् ॥१७
 कार्पासिङ्कमिकोशौमौर्णक्षोमादिकतंत्रम् । कुणिगपद्मनन्धोषाभिर्विधवाभिश्च क्रारयेत् ॥१८
 बालवृद्धान्तकार्पण्ये यत्कर्तव्यमवश्यतः । विनियोगं नयेत्सर्वं शियोपण्हपूर्वकम् ॥१९
 कर्मणामन्तरालेषु प्रोषिते चापि भर्तरि । स्वयं वै तदनुष्ठेयं नित्यानां च विवरोधतः ॥२०

मूग, उड़द और मसूर का आठवाँ भाग न्यून हो जाता है । विशेष गीले सूखे एवं श्रेष्ठ पुष्ट अन्नों की हानि (न्यूनता) और वृद्धि इस सामान्य नियम से कुछ बढ़ घट जाती है । १०। ऐसे मूग उड़द और मसूर में जो शोधनीय रहते हैं अर्थात् खूब साफ नहीं रहते उनके पाँचवे भाग की कमी जाननी चाहिये । ११। अलसी का तेल छठवाँ भाग निकलता है, सरसों कपित्थ (कैथा) नीम और कदम्ब आदि में पाँचवे भाग जानना चाहिये । १२। तिल, इंगुदी, महुआ, नक्तमाल (करञ्ज) और उसगामा में एक चौथाई तेल जानना चाहिये । खल (खरल खली) का लक्षणादि अन्यत्र कहा गया है । १३। खेत, समय, निकालने की प्रक्रिया आदि के कारण इस उपर्युक्त नियम में कुछ व्यभिचार दिखाई पड़ेगा, अर्थात् जितना कहा गया है, उससे अधिकता या न्यूनता हो सकती है अतः उन्हें (खेत, समय एवं प्रक्रिया) को अपनी आँखों से देखकर अनुमान द्वारा घटा बढ़ाकर जान लेना चाहिये । १४। गौओं के दूध में एक सेर धी होता है परन्तु दूध के दोष आदि के कारण सेर आदि में कुछ निश्चित परिमाण भी नहीं बतलाया जा सकता । भैस बकरी और भेड़ों में उनकी अपेक्षा चौथाई से कुछ अधिक धी पैदा होता है अर्थात् १६ सेर दूध में सवा सेर से अधिक धी होता है । ऐसा उसके विषय में अधिक जानकारी रखने वाले लोग कहते हैं । १५। अच्छी भूमि धास और समय के अनुसार दूध और धी में इससे अधिक भी वृद्धि होती है । अतः उनके लिए निश्चित परिमाण का निश्चय उन्हीं सब पर विचार करके स्वयं ले करना चाहिये । १६। एक पक्ष अथवा एक महीने तक प्रत्येक खिलाने पिलाने के उपाय से गौओं आदि के दूध एवं धी में उत्पत्ति का निश्चय करना चाहिये । १७। कपास रेशम एवं सन आदि के कीड़ों एवं उनके चुनने एवं काटने आदि का काम गूंगी, लंगड़ी, बहरी एवं विधवा स्त्रियों से कराना चाहिये । १८। बालक, वृद्ध, अन्ध एवं दीन व्यक्तियों को उनकी अभीष्ट वस्तुएँ एवं भोजनादि देकर योग्य कामों में लगाकर सब काम करा लेना चाहिये । १९। नित्य होने वाले कार्यों में पति के विश्राम के अवसर पर तथा उसके परदेश चले जाने पर पल्ली को बिना किसी विरोध के स्वयमेव

१. कृसम्भादेः । २. माषकाणाम् । ३. व्रद्धन् । ४ तनद्वागविनिश्चयः ।

शूद्राणां स्थूलसूक्ष्मत्वं बहुत्वं च व्ययाव्ययौ । मत्वा विशेषं कुर्वीत चेतनप्रतिपत्तिषु ॥२१
 कारयेद्वस्त्रधान्यादि स्वाप्तवृद्धेराधिष्ठितएँ^१ । शूद्राणां क्षयवृद्धचादि मन्तव्यं वेतनानि च ॥२२
 क्षौसकर्पासियोविद्यात्सूत्रं पञ्चममागकम् । देशकालादिभागात् प्रत्यक्षादेव निर्णयः ॥२३
 अद्यधातेन तूलस्य क्षयो विशेषतम्भगकः । छन्नां व्याप्तां तु वातेन तद्वृद्धीं प्रचक्षते ॥२४
 पञ्चाशास्त्रागिकों हानिं सूत्रे कुर्वीत लक्षणात्^२ । वृद्धस्तु मण्डसम्पर्कहृषीकादशिका भवेत् ॥२५
 शूद्रजनध्यनसूत्राणां भर्त्ताधिकसमं भवेत् : स्थूलानां तु पुनर्भूल्यात्सादोनं वालचेतनम् ॥२६
 कर्णिणों सूरीभेदत्वादेशकालप्रभेदतः^३ । तद्वृद्ध्य एव बोद्धव्यो वालचेतननिश्चयः ॥२७
 स्थूलं दिनत्रयं देयं मध्यमं च त्रिरात्रिकम् । सूक्ष्ममापक्षतो मृष्टं^४ मासात्तर्पर्कर्मकम् ॥२८
 यदत्र क्षत्रपृद्धचादि तदुत्सर्गात्प्रदर्शितम्
 कालकर्त्तादिभेदेन व्यभिचारोऽपि दृश्यते । शश्यासनान्यनेकानि कम्बलात्मतुराश्रिकाः ॥२९
 कम्बुकाश्रावकोषाश्रम मध्या रक्ताश्रम भूरिशः । युरुचालादिवृद्धानामभ्यागतजनस्य च ॥३०

सहयोग करना चाहिये । २०। शूद्रों (नौकरों) की मोटाई दुर्बलता एवं संस्था की अधिकता को देखकर एवं भलीभाँति चिचारकर व्यय सब संचय में विशेषता तथा चतुरता प्राप्त करनी चाहिये । २१। अपने घर के बड़े और अनुभवी बहुजनों द्वारा बतलाये गये नियमों का वस्त्र एवं अन्न सम्बन्धी कार्यों में पालन करना चाहिये । इसी प्रकार सेवकों की संस्था बढ़ाने घटाने एवं उनके वेतनादि में भी अनुभवी वृद्धों द्वारा जानकारी प्राप्त कर के निश्चय करना चाहिये । २२। अलसी और कपास में पाँचवाँ हिस्सा सूत जानना चाहिये । किन्तु इस नियम में देश और काल के कारण प्रत्यक्ष देखकर ही निर्णय करना चाहिये । २३। पुनर्ने पर रुई का बीसवाँ भाग क्षय हो जाता है । भेड़ आदि के अच्छे ऊन यदि नायु से सुरक्षित स्थल में रखकर धुने जायें तो वे भी उतने ही न्यून हो जाते हैं । २४। कपड़ा बिनाने पर इन सूतों का पचासवाँ भाग न्यून हो जाता है । बुनते समय माँड़ के मिला देने से दसवें एवं यारहवें भाग जितनी वृद्धि हो जाती है । २५। बहुत महीन चिकने और मध्यम कोटि के सूतों में ऊपर के आधे अथवा उससे कुछ अधिक की न्यूनता होती है । मोटे सूतों में वह न्यूनता चौथाई हो जाती है । २६। किन्तु यह सब बातें बनने वालों की अज्ञता एवं निपुणता पर निर्भर करती है । कार्यों के अनेक भेद होने के कारण तथा देश और काल के भेद से अज्ञों और निपुणों की जानकारी ऐसे अनुभवी लोगों से ही प्राप्त करनी चाहिये जो उक्त विषय के विशेषज्ञ हों । २७। मोटे सूत का कपड़ा तीन दिन में देना चाहिये, मध्यम कोटि के सूत का तीन रात में तथा बहुत सूक्ष्म और चिकने सूत का कपड़ा एक पक्ष भर में प्रस्तुत कर के दे देना चाहिये । इसमें जो कुछ न्यूनता वा वृद्धि होती है, उसे पहले ही कह चुके हैं । २८। काल एवं कर्त्ता आदि के भेद से इस नियम में व्यभिचार भी देखा जाता है । अर्थात् कहीं पर उक्त परिमाण से कम और कहीं पर उक्त परिमाण से अधिक क्षय वृद्धि होती है शश्या अनेक प्रकार के आसन, कम्बल, जिस पर कम से कम चार व्यक्तिं बैठ सके कम्बल और चावकोष ये मध्यम कोटि के तथा विशेषतया अधिक रक्त वर्ण के होते हैं । गुरुजन, बालक

१. आयुर्वृद्धैः । २. लेखनादिति पाठः । ३. देशकालप्रसिद्धितः । ४. गृष्टम् ।

भोगस्यानुगतो भर्ता कुर्याद्विविधसाङ्कम् । यदस्य श्वशुरादीनां कृत्प्रतं शयनादिकम् ॥३१
 भर्तुश्चेव विशेषण तदव्येन न कारयेत् । बन्धं मात्यमनङ्गारं विधृतं देवरादिभिः ॥३२
 न धारयेन्न चैतेषामाक्षमेच्छयन्!नि वा । पिण्डाकनककुट्टाश्र्म^१ कालरक्षणि यात्रि च ॥३३
 हेयं पर्युषिताद्यन्नं गोभक्तेनोपयोजयेत् । कुलानां बहुधेनानां गोध्यक्षजजीविनाम् ॥३४
 किल्लटगविकादीनां भक्तार्थमुपयोजनम् । वद्धः समाहरेत्सप्तर्षिर्द्वित्तरक्ष षीषयेत् ॥३५
 वर्षाशरद्वसन्तेषु द्वौ कालाद्यन्यदा सकृत् । तद्वं वाप्यपुयुज्जीत श्वशराहादिपौलके ॥३६
 पिण्डारक्षलेदनार्थं वा विक्लेयं च तदर्हयेत् । वृत्तिं धात्यहिरव्येन गोपादीनां अक्षयेत् ॥३७
 ते हि सीरवता लेनादुपहन्युस्तदन्वयान् । दोहकालं गदां दोधानीतिवर्तते वै द्विजाः ॥३८
 प्रसरोदकयोगोपा भन्यकस्य च भन्यकाः । भासमेकं यथा स्तन्यं भासमेकं स्तनद्वयम् ॥३९
 सततं पापयेद्वृद्धर्वं स्तनमेकं स्तनद्वयम् । तिलपिण्डाभिः एष्टाभिस्तृणेन स्वर्णेन च ॥
 वारिष्णा च यथाकालं पुण्यीयादिति वत्सकान् ॥४०

बृद्ध और अतिथि इन सब की सुविधा एवं भोग के लिए पति के साथ (बहू) विविध प्रकार के कार्यों को करे । श्वसुर आदि बृद्धजनों के लिए जो शैव्या निश्चित है, उसे तथा विशेषतया पति की शैव्या को दूसरे नौकर चाकरादि से नहीं बिछवानी चाहिये । देवर आदि के द्वारा धारण किये गये वस्त्र, माला, पुष्प एवं आभूषणादि को स्वयं कभी नहीं धारण करना चाहिए । इसी प्रकार उनकी शैव्या पर भी कभी पैर नहीं रखना चाहिये । खली अन्न के टुकड़े (दलिया और भूसी) सूखे हुए अन्न तथा बासी बचे हुए अन्न को गौ आदि के खाने के लिए रखना चाहिये । बड़े बड़े साँड़ों के साथ चलने वाली अनेक प्रकार की गौओं के समूहों के लिए उन सब का उपयोग करना चाहिये । मध्ये हुए मट्ठे का उपयोग भी उन्हों गौओं के लिए करना चाहिये । दही से धी निकाल लेना चाहिये गौओं को यथासमय दुहना चाहिये किन्तु दुहते समय दछड़ों को पीड़ित नहीं करना चाहिये । २९-३५। वर्षा, शरत् और वसन्त क्रतु में दो बार दुहना चाहिये, अन्य क्रतुओं में केवल एक बार दूध से निकले हुए मट्ठे का उपयोग कुत्ते एवं शूकर आदि के पालने के कार्यों में करना नाहिये । ३६। अथवा खली के भिगोने के काम में लाना चाहिये अथवा बिक्री कर देना चाहिये । गौओं के चराने एवं पालन करने वाले गोपादिकों का अन्न अथवा सुवर्ण का पारिश्रमिक देना चाहिये । ३७। वे दूध बेचने वाले होते हैं उपयुक्त पारिश्रमिक न देने पर वे लोभ से गौओं के बच्चों को पीड़ित करते हैं अतः इनकी देखरेख रखनी चाहिये ठीक समय पर गौओं को अवश्य दुह लेना चाहिये । द्विजवृन्द ! उनको दुहने में तनिक देर नहीं करनी चाहिये । ३८। वे गौओं की रक्षा करने वाले लोग ही अधिक जल डालकर दुग्ध एवं दही के मथने वाले भी होते हैं । जब गौ व्यावे तो एक मास तक उसे सभी स्तनों का दूध पीने देना चाहिये तदुपरान्त एकमास तक दो स्तनों का । ३९। इसके उपरान्त उसे सर्वदा एक स्तन का दूध पीने देना चाहिये । तिल के चूर्ण पिण्ड (पिसान के गोले) तृण (घास) नमक एवं जल

जरदगुर्भिणी धनुर्दत्ता वत्सतरी तथा । पञ्चानां समभागेन घासं यूथं प्रकल्पयेत् ॥४१
 एको गेपालकस्तस्य त्रयाणामथ वा ह्यम् । पञ्चानां वत्सकश्चैकः प्रवरास्तु पृथक्पृथक् ॥४२
 गोचरस्यानयनार्थं व्यालानां त्रासनाय च । घण्टा^३ कर्णेषु बघीयुः शोभारक्षार्थमेव च ॥४३
 पशव्ये व्यालनिर्मुक्ते देशे भूरितुषोदके । असूतदुष्टे वारण्ये सदा कुर्वीत गोकुलम् ॥४४
 सगुप्तमटवीदासं नित्यं कुर्यादजाविकम् । ऊर्णा वर्षे द्विरादद्याच्चैत्राश्वयुजमासयोः ॥४५
 यूथं वृता दशैतासं चत्पारः पञ्चवा गवाम् । अशोष्टमहिशाणां च यद्य स्युः सुखसेविताः ॥४६
 विद्यात्कृषीवलादीनां योगं कृत्स्निकर्मसु । भक्तवेतनलाभं च कर्मकालानुङ्गतः ॥४७
 क्षेत्रकेदारवाटेषु भृत्यानां कर्म कुर्वताम् । खलेषु^३ च विजानीयात्प्रियायोगं प्रतिक्षणम् ॥४८
 योग्यतातिशयं मत्वा कर्मयोगेषु कस्यचित् । ग्रासाच्छदिशिरोभ्यङ्गर्विशेषं तस्य कारयेत् ॥४९
 पद्मशक्तिद्वापानां कन्दबीजादिजन्मनाम् । सङ्ग्रहः सर्वबीजानां काले वापः सुभूमिषु ॥५०
 जातानां रक्षणं सम्प्रक्षितानां च संग्रहः । तेषां च संगृहीतानां यथावन्निवपक्षिया ॥५१

से सन्य समय पर बछड़ों को पालते रहना चाहिये । ४०। बुड़ी गौ, गर्भिणी गौ, लगने वाली गौ, बछवा बछिया तथा सद्योजात गौ शिशु इन पाँचों को ही समान भाग से घास देना चाहिये । ४१। गौओं के पीछे एक या दो गोचालक नियुक्त करना चाहिये, उसमें पाँच बछवा बछिया भी रह सकते हैं उनमें जो बड़े बड़े हों वे परस्पर अलग-अलग हों । ४२। गोचर भूमि से घर तक आने में सर्पादि जीवों को डराने के लिए शोभा वृद्धि एवं रक्षा के लिए गौओं के गले में घण्टी बाँधनी चाहिये । ४३। सर्वदा सर्पादि दुष्ट जीव जन्मुओं से विहीन पशुओं के लिए लाभदायी अधिक घास वाले, चोरों से रहित ग्राम्य स्थान में अयवा जंगल में गौओं के दिन में बैठने व चरने का स्थल निश्चित करना चाहिये । ४४। भेड़ों व बकरियों का चरागाह सर्वदा सुरक्षित जंगली स्थान में करना चाहिये । वर्ष में दो बार चैत्र व आश्विन मास में भेड़ों के ऊनों को काट लेना चाहिये । ४५। बकरियों के समूह में दस के पीछे एक (भेड़ बकरा) रहना चाहिये इसी प्रकार गौओं के समूह में चार वा पाँच के पीछे एक साँड़ रहना चाहिये । घोड़े, ऊँट एवं भैसों के समूह में जितने ही अधिक हों उतनी ही अधिक सुविधा रहती है उन साडों का विधिवत् पालन करना चाहिये । ४६। कृषि के कामों में कर्मकरों एवं मजदूरों के कार्यों की बराबर देख-रेख रखनी चाहिये । ४७। तैयार फसल वाले खेत में, बाटिका में, हल के पास एवं स्लिहान में काम करने वाले मजदूरों के कामों की प्रतिक्षण देख भाल करती रहनी चाहिये । कामों में किसी मजदूर की लगन यदि अतिशय देखी जाय तो उसका ध्यान रख कर भोजन वस्त्र शिर पर लगाने के तेल आदि देकर अन्य मजदूरों की अपेक्षा उसके प्रति विशेषता दिखानी चाहिये । ४८-४९। पथ, शाक, कन्द मूलादि के बीजों का एवं अन्य गृहस्थी के आवश्यक बीजों का समय-समय पर अच्छा संग्रह रखना चाहिये और उनके ठीक समय आने पर अच्छी भूमि में बो देना चाहिये । ५०। जो फसल पैदा हो गई हो उसकी अच्छी तरह से रक्षा करनी चाहिये और उन सुरक्षित अन्नादि का अच्छी तरह से संग्रह करना चाहिये । और उन संगृहीत अन्नादिकों का बोने आदि की क्रिया

गृहमूलं स्त्रियश्चैव धान्यमूलो गृहाश्रमः । तस्माद्वान्येषु भक्तेषु न कुर्यान्मुक्तहस्तताम् ॥५२
धान्यं तु सञ्चितं नित्यं भित्तो भक्तपरिव्ययः । न चाल्ने मुलहस्तत्वं गृहिणीनां प्रशस्यते ॥५३
अल्पमित्येव नावज्ञां चरेदंजेषु वै द्विजाः । मधुवल्मीक्योर्वृद्धिं क्षयं दृष्ट्वांजनस्य च ॥५४
ये केचिदिह निर्दिष्टा व्यापाराः पुरुषोचिताः । दाम्पत्योरैक्यमास्थय तद्विदानप्रसङ्गः ॥५५
सन्त्येव पुण्या लोके स्त्रीप्रधानाः सहवशः । तेषु तासां प्रयोक्तृत्वाददोष इति गृह्यताम् ॥५६
एवं योग्यतया युक्तः सौभाग्येनोदयमेन च । सम्यगाराध्य भर्तारं तत्रैनं वशनानगेत् ॥५७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितयां द्वाहृणे पर्वणि स्त्रीधर्मवर्णनं
नाम त्रादशोऽध्याय । १२

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

स्त्रीधर्मवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्रथमं प्रतिबुध्येत प्रवर्तेत स्वकर्मसु । पश्चाद्भूत्यजनस्यापि भुञ्जोत च शयीत च ॥१

भी अच्छी तरह सम्पन्न करनी चाहिये । ५१। गृह की सर्वस्व मूलभूत स्त्रियाँ कही जाती हैं, गृहस्थाश्रम अन्न का मूल स्वरूप कहा जाता है, इसलिये अन्न को विशेषतया भोजन को मुक्त हस्त होकर दान नहीं देना चाहिये । ५२। अन्न को सर्वदा संचित करते रहना चाहिये, पकाने में मितव्यविता करनी चाहिये, निपुण गृहिणी की अन्न के विषय में मुक्त हस्तता प्रशंसित नहीं मानी गई है । (अर्थात् उसे अन्न को इधर-उधर बहुत दान नहीं देना चाहिये) । ५३। द्विजवृन्द ! बहुत थोड़ा है यह जानकर अल्प अन्न की भी अवज्ञा नहीं करनी चाहिये इसकी वृद्धि के लिए मधु और चीटी के बिल के उपर संचित मिट्ठी का उदाहरण लेना चाहिये । और उसकी कमी के लिए अंजन का उदाहरण अपनाना चाहिये । (तात्पर्य यह कि जिस प्रकार मधु की मक्कियाँ तनिक तनिक सा मधु एकत्र कर राशि बटोर लेती हैं चीटियाँ तनिक तनिक सी मिट्टी खोद कर उन्नत ढेर वना देती हैं उसी प्रकार स्त्रियाँ भी थोड़ा थोड़ा अन्न इकट्ठा कर एक राशि एकत्र कर सकती हैं और जिस प्रकार अंजन तनिक सा आँख में लगाने पर भी धीरे धीरे बहुत परिमाण में रहने पर भी समाप्त हो जाता है उसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा अन्न लापरवाही से छोड़ देने पर वा ऐसे गैरे को झूटी प्रशंसा के लिए देने पर एक राशि भी नष्ट हो जाती है । ५४। इस प्रसंग में कुछ काम ऐसे हैं जो पुरुषों के योग्य हैं उनका निर्देश दम्पत्ति की अभेद्य एकता को लेकर किया गया है । स्त्रियों के दान के प्रसंग से इन सबका वर्णन मैंने कर दिया है । ५५। लोक में ऐसे सहस्रों पुरुष भी मिलेंगे जिनमें स्त्री की प्रधानता पाई जाती है, उन पुरुषों को प्रेरणा देने वाली उनकी स्त्रियाँ ही होती हैं । अतः उनके ऐसे व्यवहार में कोई दोष नहीं है ऐसा जान लीजिए । ५६। इस प्रकार योग्यता सौभाग्य और उद्यम से स्वामी की भलीभांति आराधना करके उन्हें अपने वश में करें । ५७।

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में स्त्री-धर्म वर्णन नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त । १२।

अध्याय १३

स्त्रीधर्म का वर्णन

ब्रह्मा बोले—स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा पहले जग जाना चाहिये और अपने कर्म में लग जाना

भर्त्रा विरहिता स्त्री च शशुग्राभ्यां विशेषतः । देहर्त्तीं नातिवर्तेत प्रतीकारे^१ महत्पि ॥३
 उत्थाय प्रथमं भर्तुरविज्ञाता न निष्क्रमेत् । क्षपायां सादरोषायां रात्री दा वासरादिषु ॥३
 तद्वासभवनत्यैव शनैराहूय कार्मिकान् । स्वव्यापारेषु तान्सर्वास्तत्रतत्र नियोजयेत् ॥४
 विबुद्धस्य ततो भर्तुर्निर्वत्यादिश्कं विधिम् । गृहकार्याणि सर्वाणि विवर्धीतास्तनादतः ॥५
 मुक्त्वावासकनेपथ्यं कर्मयोग्यं विधाय च । तत्कालोचित्कर्तव्यमनुतिष्ठेद्यथाक्रमम् ॥६
 महानसं सुसम्मृष्टं चुल्यादिविहितार्चनम् । सर्वोपरणोपेतमसम्बाधमनाविलम् ॥७
 न चातिगुह्यं प्रकटं प्रविभक्तक्रियश्वरूपम् । भर्तुराप्तजनाकीर्णं गृहं कक्षादिवर्जितम् ॥८
 तत्र पाकादिभाण्डानि बहिरन्तरं करयेत् ; निर्णित्तम्लरड्डानि शुक्तिवल्कादिचूर्णकैः ॥९
 निशि कुर्वीत धूमार्चिः शोधितानि दिवातपैः ; दधिपात्राणि दुर्वीतं सदेवान्तरितानि च ॥१०
 साधुकारितदुग्धेषु शोधितेषु दिवातपै । ईषद्गृहोत्तपात्रेषु स्वच्छं येन भवेदधि ॥११
 स्नेहगोरसपाकादि कृत्वा सुप्रत्ययेक्षितम् । कुर्यात्तत्त्वमधिष्ठाय भर्तुः पाकविधिक्रियाम् ॥१२
 किं प्रियं च किमाद्येयं षड्सन्न्यन्तरेषु च । किं पथ्यं किमपश्यं च स्वास्थ्यं^२ वास्य कथं भवेत् ॥

चाहिये । नौकर चाल्लरों के भी बाद में उन्हें भोजन और शयन करना चाहिये । १। बहुत बड़ी कठिनाई आ पड़ने पर भी स्वामी से और विशेषतया सास-सनुर से विरहित स्त्री अपने घर की देहली भी न डाँके । २। पति के पहले शैव्या से उठकर उसके बिना जाने हुए कहीं भी बाहर नहीं निकलना चाहिये । ३। (चाहे रात बहुत थोड़ी ही बीत गयी हो, आधी रात हो या दिन का समय हो) अपने निवास के कमरे से ही काम करने वालों को धीरे से बुलाकर उन्हें अपने-अपने व्यापार में नियुक्त कर देना चाहिये । ४। तदनन्दर पति के जान जाने पर आवश्यक कर्मों से निवृत्त होकर घर के समस्त कार्यों को सावधानी पूर्वक सम्पन्न करे । ५। घर का काम काज करते समय स्त्री अपने रात वाले वस्त्राभूषण को उतार कर अलग रख दे और काम के अनुसार वस्त्रादि धारण कर कालक्रमानुसार सब कार्य सम्पन्न करे । ६। रसोईघर को भलीभांति पोतकर चूल्हे आदि का सविधि अर्चन करके रसोईघर को सभी सामग्रियों एवं सामानों से संयुक्त रखे, तथा सविधि रखते हुए उसे भलीभांति स्वच्छ किये रहे । ७। वह न तो अत्यन्त छिपी जगह में हो न खुली जगह में सभी प्रकार के भोजनों को बनाने के लिए अलग-अलग स्थान निर्धारित हों । जहाँ पर पति के आप्त जन रहते हों गूढ़ हो और कोठरियों से रहित हो ऐसे गुप्त स्थान पर ही रसोई का स्थान रखना चाहिये । ८। रसोईघर के पात्रों को भीतर-बाहर से सूत्र स्वच्छ करना चाहिए, उनमें न तो कीचड़ लगा हो न जूठा । ९। दिन में धूप के द्वारा शोधित दही के पात्र को रात में धुआँ देना चाहिए और उन्हें अलग रखना चाहिए । १०। दिन की धूप में सुखाये गये पात्रों में दुग्ध को सफाई से रखना चाहिये और दधि-पात्र से थोड़ा दही लेकर उसमें रखे जिससे दही भी स्वच्छ बना रहे । ११। तेल गोरस एवं पाक क्रिया आदि की अच्छी तरह देखभाल रखकर पति का भोजन स्वयं तैयार करना चाहिये । १२। उस समय यह ध्यान रखना चाहिये कि भोजन के छहों रसों में कौन रस पति की

१. प्रतीहासे । २. सात्म्यं चास्य यथा भवेत् ।

इति यत्त्वाद्विजानीयादनुष्ठेयं च तत्तथा ।

॥१३

नित्यानुरागां सत्कारमाहारं सुपरीक्षितम् । महानसादौ कुर्वात जनमातं क्रमागतम् ॥१४
 शत्रुं दायादसम्बन्धं कुद्धभीतावमानितम् । अवाच्योपगृहीतं वा नैवमादीनि योजयेत् ॥१५
 पुनः पुनः प्रतिष्ठाप्य गुप्तं स्वयमधिष्ठितम् ! भर्तुराहारपानादि विदध्यादप्रभादतः ॥१६
 पाकं निर्वर्त्त मात्राणां कृत्वा स्वेदप्रभार्जनम् । गन्धताम्बूतामाल्यादिकिञ्चिद्वादाय मात्राणा ॥१७
 यथौचित्यादितत्काले भर्तुर्विनयसम्ब्रमैः । तत्कालानुगतत्यर्थमाहारमुपएदयेत् ॥१८
 स्वभावामयकालानां वैपरीत्येन सर्वदा । सर्वमाहारपानादि प्रयोज्यं तद्विद्वे जगुः ॥१९
 हीनतुल्याधिकत्वेन भर्ता पश्यति यं यथा । तं तथैवाधिकं पश्येन्यायातः प्रतिपत्तिषु ॥२०
 सापत्नकान्यपत्यानि पश्येत्स्वेष्यो विशेषतः । भगिनीवत्सपत्नीश्च तद्वृद्धिनिजदन्धुवत् ॥२१
 ग्रासाच्छादिशिरोभ्यङ्गस्नानमण्डनकादिकम् । सपत्नीनामकृत्वा तु आत्मनोऽपि न कारयेत् ॥२२
 व्याधितानां चिकित्सार्थमौषधादिकमादरात् । विदध्यादात्मनस्तासां सर्वांश्चितज्जनस्य च ॥२३
 तच्छ्लोके शुचमादद्यात्ततुष्टौ मुदमावहेत् । भृत्यनन्धुसपत्नीनां तुल्यदुःखमुखा भवेत् ॥२४

जठरागि को उद्दीप्त करने वाला है कौन सा पदार्थ प्रिय है क्या पथ्य है और क्या अपथ्य है एवं किस पदार्थ के खाने से पति का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा इन सब बातों को प्रयत्नपूर्वक जान लेना चाहिये और उसी के अनुसार कार्य भी करना चाहिये । १३। रसोईघर में सर्वदा प्रेम पूर्वक अच्छी तरह पहले से परीक्षित आहार को सत्कार भावना से करना चाहिये भोजन क्रमशः आये हुए श्रेष्ठ जनों को (पहले) परोसना चाहिये । १४। शत्रु दायाद (हिस्सेदार) जो कुद्ध हों भयभीत हों जिनका कभी अपमान हुआ हो, जिन्हें कभी गाली कुड़ाच्य कहा गया हो ऐसे लोगों को रसोई में नहीं नियुक्त करना चाहिये । १५। स्वयं अपने हाथों से बनाये गये सुन्दर सुस्वाद सुरक्षित अच्छी तरह परोसे गये पति के भोजन पानादि को समुचित डंग में सावधानता पूर्वक प्रस्तुत करना चाहिये । १६। भोजन से निवृत्त होकर सारे शरीर से पसीने को पोंछ डाले और सुगन्धित इत्र एवं ताम्बूल माला आदि को थोड़ा सा लेकर जिस प्रकार उचित हो, पति के हाथों में विनय एवं सत्कारपूर्वक निवेदित करे । समय अयवा क्रतु के अनुसार आहार की व्यवस्था करनी चाहिये । १७-१८। स्वभाव राग और काल की विपरीतता देखते हुए सभी भोजन पानादि की व्यवस्था करनी चाहिये ऐसा उसके जानकार लोगों ने कहा है । १९। पति घर में जिस व्यक्ति जिस वस्तु को हीनदृष्टि तुल्य दृष्टि एवं अधिक दृष्टि से देखना है पत्नी को उन व्यक्तियों एवं वस्तुओं के साथ उससे और अधिक रूप में वैसा न्यायतः व्यवहार करना चाहिये । २०। अपनी सपत्नी के बच्चों को अपने बच्चों से अधिक स्नेह के साथ देखना चाहिये सपलियों को अपनी सगी बहन के समान एवं उनके भाइयों को अपने भाइयों के समान देखना चाहिये । २१। भोजन, वस्त्र शिर के ऊपर तेल रखना स्नान अलंकारों से शरीर की सजावट आदि कामों को सपत्नी के लिए न करके अपने लिए भी नहीं करना चाहिये । २२। अपने उनके और सभी आश्रित लोगों के बीमार होने पर अत्यन्त आदरपूर्वक चिकित्सा के लिए औपधियों का प्रबन्ध करना चाहिये । २३। उनके शोकाकुलित होने पर स्वयं शोकमग्न होना चाहिये और उनके सन्तुष्ट होने पर स्वयं सन्तुष्ट होना चाहिये । अपने बन्धु, नौकर सपत्नी इन तीनों के दुःख एवं सुख को

सत्त्वावकाशा स्वप्नाच्च निशि भुप्तोत्थिता क्रमात् । अन्यत्र व्ययकर्तारं पतिं रहसि बोधयेत् ॥२५
 यद्यद्यं सपलीनां स्वयमस्मै न तद्वदेत् । दौःशील्यादि तु सापायं गूढमस्मै निवेदयेत् ॥२६
 दुर्भगामनपत्यां वा भर्ता चातितिरस्कृताम् । ^१अदुष्टां सम्यमाभास्य तेनैतामनुकूलयेत् ॥२७
 तथा वादण्डपारुष्यर्जनं भर्ता विपीडितम् । कुर्याद्विषेगमाश्वास्य न चेहोषाय तद्वचेत् ॥२८
 मत्वात्मनोनप्त्यत्वं कालं चापि गतं बहुम् । सन्तानादिकमुहृश्य कार्यमःत्वनिवेदनम् ॥२९
 यच्चान्यदपि जानीयत्किञ्चिद्वस्तु चिकीर्षितम् । तत्किलाजानतीवास्य तिष्ठमेव प्रदर्शयेत् ॥३०
 वैदाहिकं विधि भर्तुः सर्वं कृत्वा सप्तभ्रमम् । परिणीतां च तां पश्येन्तित्यं भगिनिकामिव ॥३१
 पूजां सम्बन्धिर्वर्गस्य मङ्गलं मङ्गलानि च : कुर्यादभिनवोदायाः सुप्रहृष्टेन चेतसा ॥३२
 मातृवच्छक्षयेदेनो गृहकृत्येष्वमत्सरा । प्रदेशिकविधिं वास्या विद्यधाद्यत्ततः स्वयम् ॥३३
 एवं भर्तुरभिप्राय सर्वभित्यादिकारयेत् । मुखार्थं वापि सत्यज्य स्त्रीणां भर्ताधिदेवता ॥३४
 भर्ताधिदेवता नार्या वर्णा ब्राह्मदेवताः । ब्राह्मणा ह्याप्रिदेवास्तु प्रजा राजन्यदेवताः ॥३५

अपने ही समान अनुभव करना चाहिये । २५। इस प्रकार नित्य कर्मों से अवकाश प्राप्त कर भृहिणी रात में क्रमशः शयन करे और सोकर पहले उठे । निषुण गृहिणी व्यर्थ के कामों में अपव्यय करने वाले पति को नप्रतापूर्वक एकान्त में समझावे । २५। सपलियों के ऐसे अनुचित आचरणों की चर्चा जो कहने योग्य न हो, स्वयं न कहे हाँ यदि उसके आचरण सम्बन्धी दोष बहुत विकृत हो गये हों तो एकान्त में उनके द्वार करने के उपायों के शाय पति से भी उनकी चर्चा करे । २६। अभागिनी, सन्तति विहीन पति से अत्यन्त तिरस्कृत किन्तु दोषरहित सपली को अच्छी तरह आश्वासन देना चाहिये और ऐसे उद्योग करने चाहिये जिनसे पति उससे अनुकूल हो जाये । २७। इसी प्रकार पति के कठोर वचन दण्ड वा कठोर व्यवहारों से पीड़ित भृत्य वर्गों को भी आश्वासन देते रहना चाहिये किन्तु इसका ध्यान रखना चाहिये कि ऐसा करने से पति के चिन्त को क्षेष्टा तो नहीं होता, अन्यथा इससे बहुत अनिष्ट होने की सम्भावना रहती है । २८। बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर यदि अपने कोई सन्तति न उत्पन्न हों तो स्वयमेव पति से सन्तति आदि के सम्बन्ध में अपनी बातें करनी चाहिये । २९। इसके अतिरिक्त यदि पति के किसी गुप्त मनोरथ की सूचना उसे हो तो उसे इस प्रकार पूर्ण करके दिखा दे कि पति को यह न विदित हो कि उसे वह गुप्त अभिप्रायज्ञान हो गया था । ३०। शीघ्रतापूर्वक पति के विवाह के कार्य को भलीभांति सम्पन्न करके उससे विवाहित पत्नी को अपनी बहिन के समान देखे । ३१। सूब प्रसन्न मन से समस्त सम्बन्धियों की एवं परिवार वर्ग की पूजा तथा अन्य मण्डपादि मांगलिक विधानों को उस नव वधू के विवाह में स्वयं सम्पन्न करे । ३२। घरेलू कार्यों में माता की तरह सर्वदा उस सपली को द्वेषहीन होकर शिक्षा देती रहे पति के साथ प्रथम समागम आदि कार्यों को भी प्रपत्र पूर्वक स्वयं सम्पन्न करे । ३३। इस प्रकार पति के समस्त अभिप्रायों को जानकर पूर्ण करती रहे । पति के सुख के लिए स्त्री इस प्रकार सर्वदा प्रयत्न करती रहे क्योंकि स्त्रियों के लिए पति ही देवता बतलाये गये हैं । ३४। ऐसा कहा भी गया है कि स्त्रियों के देवता उनके पति हैं तीनों क्षत्रियादि वर्णों के देवता ब्राह्मण हैं । ब्राह्मण के देवता अग्नि हैं प्रजाओं के देवता

तासां त्रिवर्गसंसिद्धौ प्रदिष्टं कारणद्वयम् । भर्तुर्यदनुकूलत्वं यच्च शीलमविप्लुतम् ॥३६
 न तथा यौवनं लोके नायि रूपं न भूषणम् ; यथा प्रियानुकूलत्वं सिद्धं शश्वदनौषधम् ॥३७
 दयोरूपादिहारिण्यो दृश्यन्ते दुर्भगाः स्त्रियः । वल्लभा मन्दरूपाश्र बहूचो गलितयौवनाः ॥३८
 तस्मात्प्रियत्वं लोकानः निदानं योग्यतापरम् । तां विनान्ये गुणा वन्ध्याः सर्वेऽनर्थकृतोऽपि वा ॥३९
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन विदध्यादात्मयोग्यतान् । परचित्तज्ञता वास्या मूलं सर्वक्रियास्त्विह ॥४०
 दहिरागच्छतो ज्ञात्वा कालं संमृज्ञा भूमिकाम् । सज्जीङ्गतसना तिष्ठेतस्याज्ञां प्रतितत्परा ॥४१
 स्वयं प्रक्षालयेत्पादावुत्थाप्य परिचारिकाम् । तालवृन्तादिकैः कुर्याच्छ्रमस्वेदापनोदनम् ॥४२
 आहारस्नानपानादौ तत्पृह् यत्र लक्षयेत् । तर्दिगितज्ञः तत्त्वेन सिद्धस्सै निवेदयेत् ॥४३
 सपलीर्पत्तबन्धूनां भर्तृचित्तानुकूल्यतः । प्रतिपत्तिं प्रयुक्त्यन्नीति स्वबन्धूनां न दै तथा ॥४४
 तेषु चात्मनि च ज्ञात्वा भर्तृचित्तं प्रसादयेत् । प्रतिपत्तिं तथायेषां नादिदेत स्वदन्धु ॥४५

राजा लोग हैं । ३५। स्त्रियों के लिए धर्मर्थ काम त्रिवर्ग की सिद्धि के दो कारण बताये जाते हैं ।
 प्रथमतः उनका पति के अनुकूल व्यवहार द्वितीय उनके पवित्र शील सदाचार । ३६। स्त्रियों के लिए न तो उनका गौवन उतना सुख देने द्वाला होता है न रूप होता है न भूषण होता है, जितनः पति की अनुकूलता होती है, पति की अनुकूलता ही उनके शाश्वत कल्याण की एकमात्र औपचार्य है । ३७। सुन्दर जवानी एवं मनोहारी रूपवाली स्त्रियाँ भी अभागिनी एवं दुर्भगा देखी जाती हैं, इसके विपरीत उनसे रूप में हीन कटिवाली ऐसी स्त्रियाँ जिनका यौवन कभी समाप्त हुआ रहता है, पति की परम वल्लभा एवं (सुखी) होती हैं । ३८। इसलिए प्रिय होने का कारण लोक में योग्यता ही है उस योग्यता अर्थात् पति को अपने अनुकूल करने की क्षमता के बिना अन्य सारे गुण निष्कल हैं यही नहीं इसके अभाव में सारे गुण भी अनर्थकारी बन जाते हैं । ३९। इसलिए स्त्रियों को सभी उपायों द्वारा अपने में वह योग्यता लानी चाहिये, स्त्रियों की दूसरों के मन की बात जान लेने की विशेषता सारे कार्यों में सफलता मूल होती है । ४०। पति को बाहर से आता हुआ जान कर भी भूमि और आँगन आदि को सूख स्वच्छ करके शश्या को सजाकर प्रतीक्षा करनी चाहिये और आने पर उसकी आज्ञा का तत्परतापूर्वक पालन करना चाहिये । ४१। दासी को हटाकर स्वयं अपने हाथों से पति के चरणों को प्रक्षालित करना चाहिये और ताड़ की पंखी आदि लेकर थकाई के कारण उत्पन्न उसके पसीने को दूर करना चाहिये । ४२। आहार स्नान एवं पान आदि में पति को जिस वस्तु की ओर विशेष रूप से इच्छुक देखे उस वस्तु को प्रस्तुत करके पति की मनोगत इच्छाओं एवं सकेतों को जानने वाली पत्नी पति को निवेदित करे । ४३। पति की चित्तवृत्ति के अनुसार सपली तथा पति के बन्धु आदि के साथ सहानुभूति एवं प्रेम का व्यवहार करना चाहिये अपने बन्धु आदि के साथ उतना नहीं । ४४। इन सबों में तथा स्वयं अपने में पति की चित्त वृत्ति को खुब जान-बूझकर ही व्यवहार करना चाहिये अर्थात् पति जिसे अधिक प्यार करता हो उसे प्यार करना और जिससे देष करता हो उससे देष करना चाहिये । किन्तु इसके पूर्व स्वयं अपने प्रति पति का कैसा भाव है, इसका जान लेना आवश्यक है । सपली एवं पति के बन्धु वर्गादि द्वारा अपने प्रति किये गये आदर सत्कार एवं प्रतिष्ठा आदि सम्मानजनक व्यवहारों की प्रशंसा अपने बन्धु वर्गों के सामने नहीं करनी चाहिये । ४५। पति के कुल में

१. क्षमता परा ।

अपि भर्तुरभिप्रेतं नारी तत्कुलवासिनी । सत्कारैर्निजबन्धूनां तेन नोपैति वाच्यताम् ॥४६
 पूज्य एव हि सम्बन्धः सर्वाक्षस्थासु योषिताम् । कस्ततोऽप्युपकाराशां लिप्सेत कुलजः उमान् ॥४७
 सम्पूज्य स्वसुतां तस्मै विधिवत्प्रतिष्ठायते । नतोऽस्या लिप्सते नाम किमकार्यमतः परम् ॥४८
 कन्यां प्रदाय यैर्द्वितिरात्मनः परिकल्पयते । दात्सभण्डनटादीनां नार्गोऽयं न महात्मनाम् ॥४९
 तस्मात्स्त्रीबांधवा नित्यं प्रीतिमाद्वैकसाधिनीम् । प्रतिष्ठितं समानद्वयः सम्बन्धम्यः प्रसागिनीम् ॥५०
 तस्या भर्तरि रक्षेत प्रीतिं लोके च वाच्यताम् । आत्मनोऽसत्प्रवादं च चेष्टेरन्सः युवृत्तयः ॥५१
 एवं विज्ञाय सदृशं त्री वर्तेत तथा सदा । येन तत्यर्दिर्दर्शस्य भवेद्दूर्तुश्च सम्मता ॥५२
 प्रियापि साधुवृत्तापि विष्व्यातात्भिजनापि च । जनापवादात्सम्भाप सीतानर्थं सुदारुणम् ॥५३
 सर्वस्याभिष्ठन्त्वादगुणदोषानभिज्ञतः । प्रायेणाविनयौचित्यात्स्त्रीणां वृत्तं हि दुष्करम् ॥५४
 अगृह्यत्वात्मनोवृत्तेः प्रायः कपटदर्शनात् । निरइकुशत्वाल्लोकस्य निर्वाच्या विरलाः स्त्रियः ॥५५
 दैवयोगादयोगत्वाद्व्यवहारानभिज्ञतः । वाच्यतापत्तयो दृष्टाः स्त्रीणां शुद्धेऽपि चेतसि ॥५६
 तात्सं दैवप्रतीकारो नोपभोगादृते भवेत् । चरित्रं लोकवृत्तं च एतयोर्विदुरैषधम् ॥५७

निवास करने वाली पति के समस्त अभिप्रायों को समझने वाली स्त्री अपने बन्धु वर्गादि के सत्कारों से सम्मानित होकर कभी निन्दा की पात्र नहीं बनती । ४६। सभी अवस्थाओं में स्त्रियों का सम्बन्ध पूजनीय माना गया है उसके कुल (पिता के कुल) में उत्पन्न होने वाला ऐसा कौन-सा पुरुष होगा जो उससे भी उपकार एवं लाभ की इच्छा करेगा । ४७। लोग अपनी कन्या को विधिपूर्वक पूजित कर जामाता को दान देते हैं तो फिर उसी कन्या से यदि लाभ की वै इच्छा करें तो इससे बढ़कर निन्दा कर्म क्या होगा ? । ४८। जिसे अपनी कन्या दे दिया गया है उसी से अपनी जीविका की भी इच्छा करना यह पद्धति तो दास, भाँड़, नट आदि तुच्छ जाति वालों की है, उच्च विचार वालों की नहीं । ४९। इसलिए वधू के बन्धु बान्धवादि को चाहिये कि वे अपने सम्बन्धी एवं जामाता आदि से केवल प्रेम एवं सहानुभूति को बढ़ाने वाला सद्व्यवहार रखे जिसकी समय-समय पर वृद्धि होती रहे । ५०। ऐसे सत्कर्म परायण स्त्रियों के बन्धु वर्ग अपने ऐसे व्यवहारों द्वारा पति में वधू की प्रीति की रक्षा लोक में वधू की निन्दा और स्वयं अपने ऊपर उठने वाले अपवादों से अपनी रक्षा कर सकेंगे । ५१। इस प्रकार कुल दधू को चाहिये कि वह अपने सत् कर्तव्यों को भली भाँति जान बूझकर सर्वदा उनका पालन करे जिससे अपने बन्धु बान्धवादि एवं पति के सम्मान की पात्र बन सके । ५२। क्योंकि पति की परम प्रिया सत्कर्म परायण उच्चकुलोत्पन्न यशस्विनी सीता को भी लोकावाद से परम दारुण कष्ट सहना पड़ा । ५३। सब से अधिक आमिष (सुन्दरी एवं आर्कपक) होने के कारण गुण तथा दोषों की अनभिज्ञता के कारण विशेषतया अनुदारता एवं अविनय के कारण स्त्रियों के कर्तव्य बड़े कठोर एवं दुष्करणीय होते हैं । ५४। मनोवृत्ति न पकड़ सकने के कारण प्रायः सभी व्यवहारों में कपट करने के कारण तथा लोगों के निरंकुश होने के कारण ऐसी बिरली स्त्रियाँ ही मिल सकेंगी जो निन्दा की पात्र न बन सकें । ५५। दैव योग से अपनी अयोग्यता एवं व्यवहार कुशलता के अभाव के कारण स्त्रियाँ शुद्धचित्त होने पर भी निन्दा की पात्र एवं आपत्ति ग्रस्त होती देखी जाती हैं । ५६। उनके इस दुर्भाग्य का प्रतिकार उपभोग के बिना नहीं होता। चरित्र एवं लोक-व्यवहार-पटुता ये

हिंदोलकादिकीडायं प्रसक्तः तरुणीं निशि । इमसाधारं विटैः सार्थं विधवां स्वैरचारिणीम् ॥५८
 वृद्धादिभार्यां सज्जायां यानगेयादिसंगिनीम् । कः श्रहध्यात्सतीत्येवं साध्वीमपि हि योषितम् ॥५९
 द्वै चासामिङ्गिताकारौ सन्दिग्धार्थप्रसाधकौ । तयोस्तत्त्वपरिज्ञानं विषयो योगिनां^२ यदि ॥६०
 तस्माद्यथोक्तमाचारमनुतिष्ठेत्सुसंयता । मिव्यालप्यसद्वादः कम्पयत्येव तत्कुलम् ॥६१
 लिङ्गुल्या वाच्यता गृक्ष्या प्रतिष्ठात्यय सन्ततिः । भर्तुस्त्रिवर्गसिद्धिश्राद्य तत्कुलयोषिताम् ॥६२
 पातयन्त्येव दौःशील्यादात्मानं स्तुलोत्तरम् । उद्धरन्ति तदैवैताः स्त्रियश्वारित्रभूषणाः ॥६३
 भर्तुचित्तानुकूलत्वं यासां शीलमविच्छुतम्^३ । तासां रत्नसुवर्णादि भार एव न मण्डनम् ॥६४
 लोकजने परा कोटिः पत्यौ भक्तिश्च शःश्वती । शुद्धान्वयानां नारीणां विद्यादेतत्कुलव्रतम् ॥६५
 तस्माल्लोकश्च भर्ता च सम्यगाराधितो यथा । धर्ममर्थं च कामं च सैवाप्नोति निरत्यया ॥६६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीधर्मकथनं

नाम त्रयोदशोऽध्यायः । १३।

ही हो ऐसे उपाय हैं जिन्हें उनके अपवाद को दूर करने की औपचार्य कहा जाता है । ५७। हिंडोला आदि क्रीडाओं में रात के समय यदि कोई तरुणी स्त्री बहुत आसक्ति दिलाती है, अथवा भाँड आदि हीन कोटि के लोगों के साथ सहवास करती है अथवा कोई विधवा होकर आपनी इच्छा के अनुसार कार्य करती है, अथवा कोई वृद्ध मनुष्य की गृहणी तरुणी स्त्री है, अथवा सच्चरित्र होकर भी कोई सवारी वा गाने बजाने में विशेष सहयोग करती है तो कौन ऐसा पुरुष है जो ऐसी सती स्त्रियों पर श्रद्धा की दृष्टि रखेगा भले ही वे चरित्र से साध्वी हो । ५८-५९। इन स्त्रियों की इंगित एवं आकार ही संदिग्ध अर्थ की पुष्टि करने वाले होते हैं उनके इंगित एवं आकार का तात्त्विक ज्ञान योगियों को ही ज्ञात हो सकता है । यदि वे योगी जन जानने की विशेष इच्छा करें तो । ६०। इसलिए जैसा ऊपर कहा जा चुका है कुलवधू को संयम एवं शान्तिपूर्वक सदाचारों का पालन करना चाहिये । इठ-मूठ में जी लगा हुआ अपवाद स्त्रियों के समस्त परिवार तक को कम्पित कर देता है । ६१। कुलवधू को अपने तीन कुल की निन्दा की रक्षा करनी चाहिये अपनी प्रतिष्ठा एवं सन्तति की रक्षा करनी चाहिये । यही नहीं उसे अपने पति के धर्मार्थ काम त्रिवर्ग की सिद्धि में सहायक होना चाहिये । ये ही उसके जीवन के मुख्य घ्रेय हैं । ६२। स्त्रियां अपने अंसद् व्यवहारों से अपने समेत तीनों कुलों को गिरा देती हैं । और इसी प्रकार अपने उत्तम चरित्र रूप भूषण से वे ही अपने समेत तीनों कुलों को भव सागर से उबार लेती हैं । ६३। जो स्त्रियाँ अपने पति की चित्तवृत्ति के अनुकूल चलने वाली हैं तथा जिनका शील सदाचार कभी व्युत नहीं हुआ है उनके लिए रत्न एवं मुवर्ण आदि के आभूषण केवल भार हैं आभूषण नहीं अर्थात् वे अपने इन्हीं सदगुणों से ही सर्वदा आभूषित रहती हैं । ६४। उच्च शुद्ध वंश की स्त्रियों का यह कुलव्रत जानना चाहिये कि वे लौकिक व्यवहारों में परम प्रवीण तथा पति की अनन्य भक्ति में सर्वदा निरत रहने वाली होती हैं । ६५। इन सब बातों को ध्यान में रखने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि किस कुलवधू ने लौकिक व्यवहारों एवं अपने पूज्य पति की पर्याप्त आराधना कर ली अपने जीवन में उसकी कुछ भी हानि नहीं हो सकती और वही धर्म अर्थ काम की सिद्धि भी प्राप्त करती है । ६६

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में स्त्री धर्म कथन नामक तेरहवाँ अध्याय समाप्त । १३।

१. सती चासी जाया चेत कर्मधारयः । २. यदि योगिनां स्यात्तर्हि स्वान्वन्त्रस्माकमित्यवान्तरवाक्यम् ।
३. न विप्लुतम् ।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः
पतिपरदेशवासे स्त्रीणां शृङ्गारनिषेधः
ब्रह्मोवाच

प्रेषिते मण्डनं इत्रीणां पत्न्यौ मङ्गलत्वात्रकम् । निष्पादनं च यत्नेन तदाभ्यन्तर्य कर्मणः ॥१
 श्यामासुष्टुजनमर्थानां व्यायानां परिहापणम् ॥२
 व्रतोपवासतात्पर्यं तदात्मिरिमार्गणम् । दैवं ज्ञेयाणि कलाभ्नो देवानासुष्टुपयात्वनम् ॥३
 नित्यं तस्यागमतांशं स्त्रीमार्यं देवपूजनम् । न चात्युज्ज्वलवेषत्वं न सदा तैलधारणम् ॥४
 ज्ञातिवेशम् न गन्तव्यं सकामगमनेन च । गुहणामत्तेजया यावद्बृत्तुराप्तजनैः सह ॥५
 तत्रापि न चिरं तिखेत्त्वानादीन्वापि नाचरेत् । यावदर्थं क्षणं स्थित्वा ततः शीघ्रं समाचरेत् ॥६
 आगते प्रकृतिस्त्यैव कृत्वा तात्कालिकं दिधिम् । मुक्तप्रवासने पर्ये स्नाने भक्तवति प्रिये ॥७
 आत्मानं समलङ्घकृत्य सविशेषं मुदान्विता । देवपूजोपहारादीन्दद्यात्मागुपदादितान् ॥८

अध्याय १४
पति के परदेश में रहने पर स्त्रियों का शृङ्गार निषेध

ब्रह्मा बोले—ऋषिवृन्द ! पति के परदेश जाने पर कुलवधू केवल सौभाग्य सूचक अलंकारों को धारण करे । और प्रयत्न पूर्वक पहले से आरम्भ किये गये कर्मों को ही निष्पत्त करे । १। उसे उस समय गुरुजनों के समीप में अपनी शैव्या स्थापित करना चाहिये शरीर में विशेष शृङ्गार एवं आभूषणादि की सजावट नहीं करनी चाहिये । यथासाभव प्रत्येक कार्यं में धनं अर्जित करने की चेष्टा करनी चाहिये और व्यय को कम करना चाहिये । २। व्रत एवं उपवास में विशेष निष्ठा रखनी चाहिये, पति के कुशल समाचार की सर्वदा खोज करते रहना चाहिये । पति की कुशल वार्ता के लिए ज्योतिषो एवं दैवज्ञ से प्रश्न करके देवप्रार्थना करनी चाहिये । ३। नित्य उसके आगमन की आकृक्षा एवं कुशल क्षेम के लिए देवपूजा करनी चाहिये । प्रेषितपत्तिका को अत्यन्त उज्ज्वल वेष नहीं धारण करना चाहिये और न सर्वदा तैल लगाना चाहिये । ४। उस अवधि में जब तक कि पति परदेश से नहीं आ जाता उसे अपने पड़ोसी एवं जातिवालों के घर पर नहीं जाना चाहिये यदि किसी आवश्यक कार्य से जाना अनिवार्य हो तो पति के गुरुजनों से आज्ञा प्राप्त कर अपने से श्रेष्ठ जनों के साथ जाना चाहिये । ५। और वहाँ जाकर बड़ी देर तक न रुके, न स्नान भोजनादि ही करे । जब तक प्रयोजन रहे उसी समय तक वहाँ रहकर शीघ्र वापस आ जाना चाहिये । ६। पति के प्रवास से वापस आ जाने पर स्वाभाविक प्रेम के साथ उस समय समुचित समादरादि से सत्कृत कर प्रवासकालीन वेश-भूषा को उत्तरवाये फिर पति के विधिपूर्वक स्नान और भोजन कर लेने के उपरान्त परम प्रसन्नता पूर्वक विशेष रूप से अपने को अलंकारादि से सजावे । फिर पहले ही से माने गये देवताओं के उपहारादि को सम्पन्न करे । ७-८। कनिष्ठ कुलवधू को ज्येष्ठ सप्तली के साथ

कनिष्ठामातृदज्ज्येष्ठां तदपत्यानि चात्मवत् । पश्येत्तत्परिवर्गं तु नित्यं स्वपरिवर्गवत् ॥१९
 तत्पुरोनासने तिष्ठेत्पर्ति नामंत्रयेत च । तदभिप्रायतः कुर्यात्प्रवृत्तिं सर्वकर्मसु ॥२०
 न संसृजेत तदिद्वष्टैः सख्यं कुर्वात् तत्प्रियेः । जनमान्तरम् तस्य नदाभर्तुश्च ज्ञानयेत् ॥२१
 यैतृकात्समुपानीतं बुम्सीगंधिकादिकम् । तस्मै निदेवात्मतया तदा तदुपयोजयेत् ॥२२
 सोऽपि तत्प्रीतये किंचिदादद्यादल्पमूल्यम् । संगोप्य मातृवत्स्येयं तत्तथैवोपयोजयेत् ॥२३
 तत्प्रीत्पर्य गृहीतं यद्दैलक्ष्यतदिनिवृत्ये । सविशेषं प्रसगेन तत्पैतत्रपिपादेयत् ॥२४
 स्त्रीणां यदेत्तापत्पर्यं पर भात्सर्यकारणम् । तस्मात्परिहृत्पर्यं परमोदारच्यवद्यतः ॥२५
 तथा कल्पितनेपथ्या भर्तुः पर्यायवात्तरे । ह्लियमादयम्भानेवै पतिं गच्छेद्विसंजिता ॥२६
 गत्वा रहसि भर्तरं तत्कालोचित्संब्रामैः । तद्वादानुगतैत्स्तैः सविशेषमुपाचरेत् ॥२७
 ग्रन्तिबुद्ध्यं ततः काले सविशेषं त्रपान्विता । ज्येष्ठाय दत्तति गच्छेद्विशेषेण तथा पुनः ॥२८
 अप्रातिकूल्यं ज्येष्ठाया हितमन्यत्र योषितः । ततः शनैस्त्ववर्ज्जिद्य पर्ति तद्वक्षमानयेत् ॥२९

माता के समान व्यवहार करना चाहिये और उसके बच्चों को अपने समान समझना चाहिये उसके परिवार एवं नौकर चाकर आदि को भी अपने ही परिवार एवं नौकरों के समान समझना चाहिये । १। उसके सामने न तो आसन पर बैठे और न पति को बुलावे । प्रत्युत उसके अभिप्राय को भलीभाँति सोच-विचार कर सभी कार्यों में प्रवृत्त होना चाहिये । १०। उसका जिन लोगों के साथ द्वेष हो, उनके साथ कभी संसर्ग न स्थापित करे उसके प्रियजनों के साथ अपनी भी मित्रता करे । ११। पति के गुरुजनों का सर्वदा समादर रखे । अपने पिता के घर से आई हुई खाने-पीने अथवा शृङ्खार की सूगन्धित आदि सारी सामग्रियों को सर्वप्रथम आत्म भावना से उसको निवेदित करे और उसके बाद निजी उपयोग के लिए रखे । १२। उसे (ज्येष्ठ) भी चाहिये कि उसकी (छोटी वधू की) प्रीति की रक्षा के लिए उसमें से कुछ थोड़ा सा भाग जो अल्पमूल्य का हो, लेकर शेष वापस कर दे । और इस प्रकार प्राप्ते उन वस्तुओं को माता की भाँति सुरक्षित रखे और उसी के अनुरूप उसका उपयोग करे । १३। छोटी सपत्नी की शर्म आदि को मिटाने के लिए जो कुछ वस्तु ज्येष्ठ सपत्नी ने ग्रहण किया हो किसी अनुकूल प्रसंग के आने पर उसमें अपनी ओर से कुछ और मिलाकर उसे भेंट करे । १४। स्त्रियों में सपत्नियों के जो व्यवहार परस्पर अतिशय दुःख एवं मत्स्यर के कारण बन जाते हैं उन्हें इन्हीं प्रकार के परम उदारतापूर्ण कार्यों द्वारा दूर करना चाहिये । १५। अपनी बाती आने पर अनेक प्रकार के साज शृङ्खार से अपने को विधिवत् विभ्रषित कर ज्येष्ठ सपत्नी से विसर्जित होकर लज्जा व्यक्त करती हुई सी पति के पास जाय । १६। और इस प्रकार एकान्त में पति के पास जाकर उस समय के योग्य हास विलास एवं हावभाव आदि से पति की इच्छा के अनुरूप उसे विशेष सन्तुष्ट एवं प्रसन्न करे । १७। फिर प्रातःकाल के समय शय्या से उठकर विशेष लज्जापूर्वक ज्येष्ठ सपत्नी के पास जाय और फिर वहाँ से अपने भवन में जाय । १८। इस प्रकार बाहरी कामों में ज्येष्ठ सपत्नी के विरोध न करने से वधू की सर्वत्र हित-सिद्धि होती है अन्यत्र अर्थात् एकान्त में उसे चाहिये कि धीरे-धीरे पति की इच्छाओं के अनुरूप अपने आचरणों द्वारा वह पति को वश में

१. तस्मै । २. परमोदारकर्मणा । ३. दयते: शानचि रूपम् ।

बहिष्पाकादियोगेत् चतुष्पृष्ठाच्चा रहोगतम् । ज्येष्ठास्तिशयानेव भर्तार्मुपरञ्जयेत् ॥२०
 प्रगल्म्यं रहसि स्त्रीणां लज्जाधिक्यं ततोन्यदा । चित्तक्षानानुवृत्तिश्च पत्पौ लंसेवनं धरम् ॥२१
 एवमाराव्य भर्तारं गृहमाक्लम्य च क्रमात् । गौरवं प्रतिपत्तिं वा ज्येष्ठादिषु न हापयेत् ॥२२
 गृहव्यापाररवानेषु पर्ति गृहं तथा वदेत् । अधिकुर्यादिविच्छल्लती ज्येष्ठदेवनं यथा बलात् ॥२३
 सापि विज्ञाय भर्तारं कनिष्ठाद्वष्टमानमन्मन् । विश्रामं प्रार्थयेदेनामधिकुर्यात्सुतामिव ॥२४
 भर्ता भर्तुरभिप्रेतं रक्षन्ती निजगौरदम् । कृतं भर्तुनून्तं स्वात्मस्पृश्यनुमोदयेत् ॥२५
 स्वामिनो यदभिप्रेतं भृत्यैः कि क्रियतेऽन्यथा । किलश्यते तत्र मूढात्मा परतन्त्रो वृथा जनः ॥२६
 तस्मात्सर्वात्मवस्थासु मनोवाक्षःयकर्मभिः । हितं स्वाम्यनुकूलत्वं नारीणां तु विशेषतः ॥२७
 सापि ज्येष्ठापतिं चैव गृहतन्त्रं च सर्वदा । समावर्ज्यैः गुणीर्धरा प्रागदस्थां न विस्मरेत् ॥२८
 न सौभाग्यमदं कुर्यान्ति चौद्वयादिविक्रियाम् । नितरामानन्ति गच्छेत्सदानायेऽयादिवै ॥२९

कर ले । १९। बाहर सूब अच्छे भोजनादि की व्यवस्था द्वारा एवं अन्तःपुर में दौंसठ कलाओं की निपुणता द्वारा छोटी वधू ज्येष्ठ सपली को अतिक्रान्त कर पति को परम सन्तुष्ट कर अपने अधीन कर लेती है । २०। एकान्त स्थल में पति के साथ प्रगल्भता (ठिठाई) का व्यवहार करना चाहिये अन्यत्र तो लज्जा की अधिकता ही (उसका भ्रष्ट है) पति की चित्तवृत्ति के अनुकूल उसकी सेवा में सर्वदा लगा रहना ही कुल वधू का एकमात्र धर्म है । २१। इस प्रकार पति की आराधना में तत्पर रहकर और उसमें सफलता प्राप्त कर जिस क्रम से पतिगृह में आगमन हुआ हो, उस क्रम के अनुसार अपने से ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ जनों के गौरव का सम्मान आदि की हानि नहीं करनी चाहिये । २२। घरेलू कार्यों तथा दानादि सत्कर्मों में पति से गुप्त रूप में बात करनी चाहिये । इस प्रकार बाहर से इच्छा प्रकट किये बिना ही ज्येष्ठ सपली की भाँति पति को अपने अनुकूल कर लेना चाहिये । २३। ज्येष्ठ कुलवधू को चाहिये कि जब वह देवी कि पति का मन कनिष्ठ सपली में आकृष्ट हो गया है तो वह उस छोटी सपली के साथ अपनी पुत्री के समान व्यवहार करे और उसके विश्राम आदि की प्रार्थना करती रहे । २४। पति के मनोगत भावों को समझ अपने गौरव एवं मर्यादा की रक्षा करते हुए सब कार्य सम्पन्न करे । पति के अनुकूल समस्त कार्यों को समाप्त कर उसकी इच्छाओं का अनुमोदन करती रहे । २५। स्वामी को जो कार्य विशेष इष्ट हो उसे स्वयं अपने हाथों से करना चाहिये नीकरी द्वारा वह काम उतना सन्तोषदायी नहीं हो सकता । जो लोग (वधू) ऐसा नहीं करते वे मूढात्मा सर्वदा परतन्त्र रहकर वृथा क्लेश सहन करते हैं । २६। इसलिए सर्वदा सभी अवस्थाओं में मनसा, वाचा, कर्मणा अपने स्वामी (पति) के अनुकूल एवं हितप्रद कार्यों को करते रहना चाहिये । स्त्रियों को तो इसका विशेष ध्यान रखना चाहिये । २७। उस विशेष परिस्थिति में जब कि पति कनिष्ठ सपली के प्रेमपाश में निबद्ध हो जाता है, ज्येष्ठ वधू अपने सद्गुणों द्वारा सर्वदा पति की चित्तवृत्ति एवं घर के समस्त कार्यों को समझती हुई और यथाशक्य अनुकूलता उत्पन्न करने की चेष्टा करती हुई अपनी पूर्वावस्था का विस्मरण न करे । २८। उस समय वह अपने सौभाग्य का अभिमान भूल कर भी न करे और न उद्धता एवं चच्चलता ही दिखलावे । प्रत्युत सर्वदा कार्यभार से खिल्न हुई की तरह विनम्रता

दथा योग्यतया पत्वौ सौभाग्यमभिवर्धते । स्पर्धयेच्च कुलस्त्रीणां प्रश्योपाधिकं तथा ॥३०
एदप्राराध्य भर्तर्िं तत्कार्येष्वप्रमादिनी । पूजने नित्यं मृत्यानां भरणेषु च ॥३१
गुणानामर्जने नित्यं शीलवत्यरिक्षणे । प्रेत्य चेह च निर्द्वन्द्वं सुखमाप्नोत्यनुत्तमम् ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यः संहितायां बाह्ये पर्वणि स्त्रीधर्मेषु

तपत्त्वोक्तत्ववर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

स्त्रीधर्मवर्णनस्

ब्रह्मोदाच

दुर्भगा च पुर्ननित्यमुपवासादितत्परा । ब्रह्मेषु पतिकृत्येषु स्याद्विशेषमियोगिनी ॥१
न प्रशंसां सपल्लीषु निदां चापि तथात्मनि । असूयां भर्तुरीर्यां वा प्रणयं वापि दर्शयेत् ॥२
मद्विधा या हि बद्वेतत्तत्त्वात्यंतिकमश्नुते । यदस्या युष्मतो याःद्वार्पशब्दाभिदेयताम् ॥३
न च निर्मूषणः तिलेन्न चायुद्धत्तमूषणः । नान्यदा गंधमात्यादि ग्राह्यं पत्युपचारतः ॥४
तन्नूनं सर्वशो ग्राह्यं वल्लभाया विशेषतः । मूषणं गंधमात्यं तु तावत्कालमत्क्षितम् ॥५

दिखाते हुए सब कार्य करती रहे । २१। जिस प्रकार से एवं जिस योग्यता से पति को अनुकूल कर सौभाग्य की वृद्धि होती है उसके लिए कुलदधुओं को परस्पर स्पर्द्धा करनी चाहिये और वैसे सद्गुणों को विशेष रूप में प्रश्रय देना चाहिये । २०। इस प्रकार पति के कार्यों एवं सेवाओं में सावधान रहकर पूजनीयों की पूजा एवं भृत्यवर्गों की पालना में तत्पर रहकर सर्वदा सद्गुणों के अर्चन एवं रक्षण में तत्पर रहकर कुलदधु सर्वदा इस लोक में तथा परलोक में परम आनन्द का अनुभव करती है । ३१-३२

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में सपत्नीकर्त्तव्यवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय समाप्त । १४।

अध्याय १५

स्त्री-धर्म का वर्णन

ब्रह्मा बोले—दुर्भगा स्त्रियों को चाहिए कि सर्वदा उपवास आदि में तत्पर रहकर पति के बाहरी कार्यों में विशेष रूपेण सहयोग प्रदान करती रहें । १। सपत्नियों के बीच में कभी अपनी प्रशंसा न करे प्रत्युत अपनी निन्दा का ही वर्णन करे, और प्रसंग आने पर पति की ईर्ष्या असूया तथा स्नेह का भी प्रदर्शन करती रहे । २। ऐसा कहे कि मेरी जैसी हतभाग्या के लिए जो कुछ मिल रहा है वही बहुत है मैं इसी में बहुत (अधिक सुख तथा भोगादि का) अनुभव कर रही हूँ जो इस दीर्घजीवी की भार्या बनने का सौभाग्य प्राप्त कर सकी । ३। उसे न तो कभी बिना आभूषण के रहना चाहिये और न बहुत अधिक आभूषण ही पहनना चाहिये । सुगन्धित पदार्थ इत्र आदि तथा पुष्ट माला आदि बेमैके पर उपयोग में नहीं लाना चाहिये केवल पति की प्रसन्नता एवं उनके सेवा के लिए ग्रहण करना चाहिये । ४। उस समय भी अति न्यून रूप में ग्रहण करना चाहिये तथा जो विशेष पति की परम प्यारी हो उससे आभूषण तथा इत्र

सम्बाधानां प्रदेशानां नित्यं स्वेदादिमार्जनम् ! इन्तनासादिपङ्कानां विगच्छस्य च शोधनम् ॥६
 निमित्तं भर्तुरेतासां यत्किञ्चिदभिलक्षयेत् । नानेन वा तयोर्यत्नं विदध्यादङ्गमार्जने ॥७
 सर्वासां च सपलीनां सर्वत्रानुगता भवेत् । वैतसीं वृत्तिमास्थाय वल्लभाया विशेषतः ॥८
 अन्यस्या यदनुष्ठेयं यन्न सीदेत्सम्पत्तम् । भर्तुश्चाविदितं यत्नास्त्वं यदिरोधि चेत् ॥९
 कोशवस्त्राश्रान्ताम्बूलगन्धालानौषधादिकम् : तत्सर्वमनियुक्तानां दोषवत्वाद्विरुद्ध्यते ॥१०
 यतु मुक्तमनुष्ठेयं गृहसम्मर्जनादिकम् । स्त्रीणामनधिकारेऽपि प्रायस्तद्विरुद्ध्यते ॥११
 अभ्यङ्गोदर्तनं स्नान भोजनं मण्डनानि च । कुर्याद्गृहरूपत्यानां धात्रीकर्माणि सादरम् ॥१२
 आत्मवस्त्रान्यपत्यःनि साध्यत्यनुयोगतः । स्तेनाप्यमीषां विसेन विदध्यान्मण्डनादिकम् ॥१३
 भोगः स्वयमपत्यैर्वा स्त्रीवित्तस्य पतिर्विधा ; पुर्वे वयस्यभिनन्द्य पश्चिमे चोपयोजनम् ॥१४
 उभयोगदतु वा मा वा कर्मजः पृथगेव सः । सद्वृते त्वधिकां स्थार्ति कुर्वाति क्रियया पुनः ॥१५
 न कापि दुर्भगा नाम सुभगा नाम जातितः । व्यवहाराद्वृत्येष निर्देशो रिपुमित्रवत् ॥१६

पुष्टादि का इस प्रकार श्योग करना चाहिये कि उस समय भी वे आभूषणादि दिखाई न पड़े ।५। उन्हें अपने उदर कुक्षि आदि गोपनीय शरीराङ्गों की विशेष सफाई करनी चाहिये सर्वदा स्वेदादि रहित कर स्वच्छ रखना चाहिये । इसी प्रकार दाँत, नाक एवं पैरों में लगी हुई कीचड़ आदि तथा दुर्गन्धि की भी सफाई करनी चाहिए ।६। पति की प्रसन्नता के लिए इन्हें चाहिये कि जो कुछ भी उचित समझे करें । यदि सामान्य यत्न से सफलता न मिले तो अङ्ग की स्वच्छता पर और अधिक यत्न करें ।७। सभी कार्यों में सर्वदा सपत्नियों की अनुगमनी बनी रहे विशेषतया जो सपली पति को बहुत प्यारी है उसकी तो सर्वदा ठहल बजाती रहें । ऐसे अवसर पर उसे वैतसी (वैत की) वृत्ति अपनानी चाहिए ।८। सपली के करने का जो कार्य हो उसे वह स्वयं कर ले और जो कुछ मिले उस पर रोप न प्रकट करे । पति के प्रतिकूल जो कार्य न पड़े उसे गुप्त रूप से करते रहने का प्रयत्न करती रहे ।९। कोश, वस्त्र, अन्न, ताम्बूल, सुगन्धित पदार्थ, पेय पदार्थ तथा औषधियाँ इन सब को बिना दिये हुए लेने पर विरोध बढ़ता है अतः इन सब को पति वा सपली की आज्ञा के बिना न ग्रहण करे ।१०। घर की सफाई झाड़ना बहारना आदि कार्य जिन्हें सेवकादि किया करते हैं कुल वधुओं को उसके करने का अधिकार न रहने पर भी प्रायः ऐसे कार्यों को वह दुर्भगा वधू अपने कल्याण के लिए करे ।११। उसे अपने पति के तथा सपत्नियों के सन्तानों के अंगों में उपठन लगाना, अंगों में तेल लगाना, स्नान करना, भोजन निर्माण करना, अलंकृत करना आदि दाइयों के करने योग्य कार्यों को भी आदरपूर्वक करना चाहिये ।१२। अपनी सपत्नियों के बच्चों को भी अपने ही बच्चों की तरह प्रत्येक बातों में देखते रहना चाहिये और अपने पास से रूपये व्यय करके उनके आभूषणादि का प्रबन्ध करना चाहिये ।१३। प्रायः स्त्रियों के पास रहने वाली सम्पत्ति का उपभोग उनकी सन्ततियाँ, पति तथा वे स्वयं करती हैं । उन्हें चाहिये कि पूर्वावस्था में धन संग्रह की भावना का अभिनन्दन कर वृद्धावस्था में उसका उपयोग करे ।१४। उपयोग होना या न हो वह तो कर्म के अधीन रहता है और उसका संग्रह करने से कोई सम्बन्ध भी नहीं है । अतः पूर्वावस्था में उन्हें धन संग्रह तो करना ही चाहिये । इस प्रकार दुर्भगा कुलवधू को सत्कर्मों के द्वारा अधिक स्थान प्राप्त करनी चाहिये ।१५। कोई स्त्री जन्म से ही सुभगा वा दुर्भगा नहीं होती वह शत्रु और मित्र की तरह अपने व्यवहार से ही सुभगा हो जाती

भृत्यचित्तापरिज्ञानादननुष्ठानतोऽपि वा। वृत्तेलोकविश्वद्वेष्ट्र यान्ति दुर्भगतां स्त्रियः ॥१७
 आनुकूल्यान्मनोवृत्तैः परोऽपि प्रियतां ब्रजेत् । प्रतिकूल्यान्मिलोप्याशु प्रियः प्रदेषतामियात् ॥१८
 तस्मात्सर्वास्त्ववस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः । प्रियं समाचरेन्मित्यं तच्चित्तानुविश्वायिनी ॥१९
 यामन्यां कर्मयेत्तासां त तथा संप्रदेशयेत् । कुपितां च प्रियां काञ्चित्विद्यतादस्मै प्रसादयेत् ॥२०
 तत्यादपरिचर्यायां गोद्धमंवाहने^१ तथा । पीडने शिरसंश्वैव दरं कौशलमभ्यसेत् ॥२१
 पीडनं मृदु मध्यं च गात्रावस्थाविशेषतः । मुखगात्रादिभिर्तिङ्गैः प्रयोज्यं तत्सूक्ष्मावहम् ॥२२
 ब्राह्मस्कटपृष्ठेषु स्कंधे शिरसि पादयोः । गाढमर्दनमिच्छन्ति प्रायोन्यद्वापि मध्यमम् ॥२३
 निर्मासेषु प्रदेशेषु नाभिन्नतेषु ममसु । हृदगांडकक्षेलादाविच्छान्ति मृदुमर्दनम् ॥२४
 गाढं जाग्रदवस्थायामर्धनुपत्स्य मध्यमम् । किञ्चन्तसपरिघातं च मृदुसुन्तस्य नेति वा ॥२५
 विश्वद्वं सर्वगात्रेषु^२ लोमबदत्तु विशेषतः । उत्कण्डयत्सु सोदृष्टं स्नेहतेषु च मर्दनम् ॥२६
 स्पर्शाद्वीभाज्ज्वजननं सनसच्छुरितं शतैः । पुलकोल्लेखनोपेत शिरःकंडूश्च पार्श्वयोः ॥२७

है । १६। प्राप्तः स्त्रियाँ पति की वित्त वृत्ति के ल जानने के कारण उसके मनोनुकूल न चलने के कारण एवं समाज विरुद्ध कार्यों के जरने के कारण दुर्भगा होती है । १७। मनोवृत्ति के अनुकूल चलकर पराया भी प्रिय हो जाता है और मन के विरुद्ध चलकर आत्मीय भी शीघ्र विरोधी बन जाता है । १८। इसलिए प्रत्येक कार्यों एवं अवस्थाओं में स्त्रियों को मन, वचन, शरीर एवं कर्म से पति के प्रिय कार्यों को करना चाहिये और सर्वदा उसकी चित्तवृत्ति के अनुकूल अपने को रखना चाहिये । १९। सपलियों में वह जिससे अधिक प्रेम करता हो उससे उसको मिलाने का प्रयत्न करना चाहिये विघटन का नहीं और यदि कोई उसकी प्यारी सपली कुपित हो गई हो तो प्रयत्न करके उसके लिए उसे प्रसन्न करना चाहिये । २०। उसके पैरों को दबाने में शरीर के समस्त अंगों को मीजने में शिर को सहलाने एवं तैल मालिश करने में परग कुशलता प्राप्त करनी चाहिये । २१। शरीर की स्थिति के अनुसार अंग मीजने के तीन प्रकार होते हैं मृदु, मध्यम और गाढ़ । जिस प्रकार से अधिक सुख मिले ऐसा विचार कर शरीर के अंगों की स्थिति के अनुसार युखादि का सवाहन (मर्दन) उसे करना चाहिये । २२। बाढ़, वक्षस्थल, कमर, पीठ, कंधे, शिर और दोनों पैरों में गाढ़ मर्दन की इच्छा लोग करते हैं और अन्य स्थलों में मध्यम (न अधिक गाढ़ न अधिक मृदु) मर्दन की । २३। मांसरहित अंगों में नाभि के मूल भाग मर्मस्थल हृदयगण्ड और कपोल आदि में मृदु मर्दन की इच्छा लोग करते हैं । २४। जागते समय गाढ़ मर्दन करना चाहिये अर्थ सुप्त अवस्था में मध्यम मर्दन करना चाहिये । इसी प्रकार सो जाने पर मृदुमर्दन करते रहना चाहिये वा थोड़ी देर बाद मर्दन बन्द कर देना चाहिये । २५। समस्त अंगों में विशेषतया जिन स्थानों पर रोमावलि अधिक हो मर्दन न करना चाहिये क्योंकि वहाँ मर्दन करना विश्वद्व है तेल से सूब चिकना कर उन स्थानों पर सूब मर्दन करना चाहिये जहाँ खुजली उठती हो । २६। जिस अंग के स्पर्श करने से रोमांच उत्पन्न हो जाय वहाँ नस से कोमलतापूर्वक स्पर्श करते हुए धीरे-धीरे मर्दन करना चाहिये जिससे पुलकावली उठ पड़े । शिर के दोनों पाश्वों में शनैः-शनैः खुजलाना चाहिये । २७।

१. पादसंवाहने तथा । २. कटिगुह्येषु ।

तैऽु तंषु च गतेषु तत्प्रयोज्यं तथातथा । निद्रागमय तत्काले रागसंधुक्षणाय च ॥२८
 तिष्ठतश्चोपविष्टस्य^१ जाग्रतः स्वपतोऽपि वा । संवाहन प्रशंसति यदत्यर्थं सुखावहम् ॥२९
 नैष्ठन्दं पुलकोद्भेदो गात्राणामक्षिमीलनम् । तत्प्रदेशार्पणं किञ्चिद्विधेदिकृतिदर्शनम् ॥३०
 अहं नृतादिदेशो च तत्पाणिप्रतिपीडनम् । लक्षदेवन्निषुणा^२ यत्र तत्रवाधिकभाव्यरेत् ॥३१
 इत्येवं यथोद्दिष्टं स्त्रीवृत्तं यानुतिष्ठति । पतिसाराध्य सम्पूर्णं त्रिवर्गं साधिगच्छति^३ ॥३२
 हिति श्रीभविष्ये नहापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि स्त्रीधर्मवर्णनं
 नाम पञ्चदशोऽध्यायः । १५।

अथ षोडशोऽध्यायः

प्रतिपत्कल्पवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा स्त्रीलक्षणमशेषतः । सदृतं च तथा स्त्रोणां जगाम स निजालयम् ॥१
 शूद्रश्चयश्च तथा जग्मुः स्वानि धिष्यान्यशेषतः । स्त्रीलक्षणं तथा वृत्तं श्रुत्वा कृत्स्नं महीपते ॥२
 इत्थं लक्षणसम्प्राप्तां भार्या प्राप्य महीपते । कर्तव्यं यद्गृहस्थेन तदिदानीं निबोध मे ॥३

उस समय चाहिये कि उन शरीरांगों में कामराग उद्बोधित करने के लिए तथा निद्रा आ जाने के लिए उसी के अनुसार उन -उन अङ्गों में मर्दन करे । २८। बैठे-खड़े सोते जागते अगों में मर्दन की लोगों ने बहुत प्रशंसा की है क्योंकि वह अतिशय सुख पहुँचाने वाला होता है । २९। जिस अंग के मर्दन करने से पति-परम सुख का अनुभव करे पुलकावलि उठ जाय, नेत्र मूँद ले, उसी प्रदेश को बारम्बार अर्पित करे उसमें चतुर स्त्री को विशेष रूप से मर्दन करना चाहिये । ३०। उर के मूल आदि भाग में पति अपने हाथों से यदि पीट कर मर्दन करने का सकेत करता है तो नियमण वधु को चाहिये कि उस स्थल पर सब से अधिक मर्दन करे । ३१। जैसा ऊपर कह चुके हैं इन नियमों का जो स्त्री सावधानी पूर्वक पालन करती है वह सम्पूर्ण रीति से पति की आराधना कर धर्मार्थ काम रूप त्रिवर्ग को प्राप्ति करती है । ३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्रह्मपर्व में स्त्रीधर्म वर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त । १५।

अध्याय १६

प्रतिपदा कल्प का वर्णन

सुमन्त बोले—ऋषिवृन्द ! इस प्रकार स्त्रियों के समस्त लक्षणों एवं उनके सत्कर्तव्यों को सम्पूर्णतया कह लेने के उपरान्त भगवान् ब्रह्मा अपने स्थल की ओर चले गये । १। और हे राजन् ! उनसे स्त्रियों के गुभाशुभ लक्षणों एवं सत्कर्तव्यों को सुनकर सब ऋषिगण भी अपने-अपने स्थान की ओर प्रस्थित हो गये । २। हे राजन् ! अब इसके उपरान्त उपर्युक्त शुभलक्षणान्वित गृहिणी को प्राप्त कर

१. संविष्टस्योपविष्टस्य । २. न क्षयंति व्रणायत्र । ३. अधितिष्ठति ।

वैवाहिकग्नौ कुर्वीत गृहां कर्म वयस्त्रिधि । पञ्चयज्ञविधानं तु पर्तिं कुर्यात्सदा गृही ॥४
पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति । कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भीः प्रमार्जनी ॥५
आसां क्रमेण सर्वासां विशुद्धयर्थं^१ मनीषिभिः । पञ्चोदिष्टा महायज्ञः प्रत्यहं गृहमेधिनम् ॥६
अध्यापनं ब्रह्मायज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम् । होमो दैवो ब्रतिर्भासस्तात्योऽतिथिपूजनम् ॥७
पञ्चतात्यो महायज्ञान्नं हापयति शक्तिः । स गृहेऽपि वसन्तित्यं सूनोदोर्जन्ते लिप्यते ॥८
देवताःतिथिभूत्वानां पितृ णामात्मनश्च यः । न निर्वपति पञ्चानामुच्छसन्न च जीवति ॥९

शतानीक उवाच

थत्य नारित गृहे त्वग्निः स मृतो नाम संशयः । न स पूजयितुं शक्तो देवादीन्द्रःहृणोत्तमः ॥१०
निरप्रिकस्य विप्रस्य कथं देवादयो द्विज । प्रीताः स्युः शान्तये तस्य परं ज्ञौतुहलं मम ॥११

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्ठोऽस्मि राजेन्द्र श्रूयतां परमं वनः । अन्तग्रयस्तु ये विप्रास्तेषां क्षेयोऽभिधीयते ॥१२

गृहस्थाश्रमी दो जो कुछ करना चाहिये उसे मुझसे सुनिये । ३। वैवाहिक अग्नि में यथा विधि गृह्य सूत्रोक्त विधानों को सम्पन्न करना चाहिये । गृहस्थाश्रमी सर्वदा पंच नहायज्ञों तथा पाक का विधान सम्पन्न करे । ४। गृहस्थ को सर्वदा पाँच हिंसाएँ लगती हैं जिनके कारण वह स्वर्ग नहीं जा सकता । वे पाँचों हिंसाएँ हैं । कण्डवी (मूसल से चावल आदि को कूटते समय उनमें रहने वाले जीव मर जाते हैं ।) पेषणी (पीसते समय चक्की में कितने जीव मर जाते हैं ।) चुल्ली (चुल्हा साफ करते समय कितने जीव मर जाते हैं ।) उदकुम्भी (कलश में जल भरते निकालते समय भी कितने जीव मर जाते हैं और प्रमार्जनी भी (झाड़ू देते समय भी अनेक जीव मर जाते हैं ।) ५। इन सब हिसाओं से शुद्ध प्राप्त करने के लिए बुद्धिमानों को क्रमशः पाँच महायज्ञ (पाक यज्ञ) करने का विधान बतलाया गया है गृहस्थाश्रमी को प्रतिदिन उनका अनुष्ठान करना चाहिए । ६। (शिष्यों को) विद्यादान करना वह्य रूप कहा गया है (पितरों का) तर्पण करना पितृयज्ञ है । हवन करना दैवयज्ञ है । बलि देना भौम (भ्रत) यज्ञ है तथा अतिथियों की पूजा करना अतिथि यज्ञ कहा गया है । ७। इन पाँचों पाकयज्ञों को जो गृहस्थाश्रमी अपनी शक्ति के अनुकूल कभी नहीं छोड़ता नित्य प्रति करता है वह गृहस्थ होने पर भी इन पाँचों हिसाओं के दोषों से लिप्त नहीं होता । ८। और इसके विपरीत जो देवता अतिथि भूत्य पितर एवं अपने कल्याण के लिए इन पाँचों यज्ञों का विधान नहीं सम्पन्न करता वह जीवन धारण करके भी मृतक है ।

शतानीक बोले—द्विजवर्य ! जिस गृहस्थ के घर में अग्नि वैवाहिक विद्यमान नहीं रहती वह मृतक है इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं क्योंकि वह उत्तम ब्राह्मण होकर भी देवादि की आराधना करने में असमर्थ रहता है । १०। हे द्विज ! किन्तु मेरे मन में इस बात का बड़ा कौतुहल हो रहा है कि उस निराग्नि विप्र के ऊपर उसके कल्याण के लिए देवादिगण किस प्रकार सन्तुष्ट होते हैं । ११

सुमन्तु बोले—राजेन्द्र ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न छेड़ा ! इस परम बात को सुनो । जो निराग्नि

दतोपवासनियमेननादानैस्तथा^१ नृप । देवादयो भवन्त्येव प्रीतास्तेषां न संशयः ॥१३
विशेषादुपवासेन तिथौ किल महीपते । प्रीता देवादयस्तेषां भवन्ति कुरुनन्दन ॥१४

शतानीक उवाच

भगवन्त्वं तिथीन्दूहि तिथीनां च विधि हि मे । प्राशनं गृह्यधर्माश्र उपवासविधीनमि ॥१५
मुच्येम येन पापौघात्वत्प्रसादिद्वजोत्तम । संसाराच्चापि विप्रेन्द्र श्रेपसे जगतस्तथा ॥१६

सुमन्तुरुवाच

शृणु कौरव कर्माञि तिथिगुह्याश्रितानि तु । कुतानि व्यन्ति पापानि उपेषितफलानि च ॥१७

प्रतिपदि क्षीरप्राशनं द्वितीयाणां लवणतङ्गनम् ।

तृतीयाणां तिलान्नं प्राशनीयाच्चतुर्थ्यां क्षीराशनश्च पञ्चम्याम् ॥

फलाशनः सदा षष्ठ्यां शाकाशनः सप्तम्यां बिल्डाहारोष्टम्यां तु ॥१८

पिष्टाशनो नवम्यामनग्रिपाक्लाहारो दशम्यामेकादश्यां वृताहारो द्वादश्यां पायसाहारः ।

त्रयोदश्यां गोमूत्राहारश्चतुर्दश्यां यवान्नाहारः ॥१९

मुशोदकप्राशनः पौर्णमास्यां हृविष्याहारोऽमावास्यायाम् ।

एष प्राशनविधिस्तिथीनानेव चानेन विधिता पक्षमेक यो वर्तयति ॥२०

विप्र हैं उनको कल्याण प्राप्ति जिस उपाय से होती है, बतला रहा हूँ ॥१२। हे राजन् ! ऐसे ब्राह्मणों के ऊपर देवादि व्रत उपवास नियम एवं अन्याय नस्तुओं के दान करने से प्रसन्न होते ही हैं इससे तनिक भी सन्देह नहीं है ॥१३। हे महीपते ! कुरुनन्दन ! विशेषतया कुछ विशेष तिथियों में उपवास रखने से उन पर देवादि प्रसन्न होते हैं ॥१४

शतानीक ने कहा—भगवन् ! उन विशेष तिथियों को मुझे बतलाइये और उनमें उपवास रखने की विधियाँ बतलाइये । उपवास एवं उसके वाद प्राशन (भक्षण) करने के गृह्य शास्त्रोक्त जो विधान बनाये गये हैं उन्हें भी सुनना चाहता हूँ ॥१५। हे द्विजोत्तम ! जिससे तुम्हारी कृपा से मैं अपने पाप समूह से मुक्त हो जाऊँ हे विप्रेन्द्र ! (इस प्रकार घोर संकटपूर्ण) संसार से भी मेरी मुक्ति हो जायगी और संसार का महान कल्याण भी इससे होगा ॥१६।

सुमन्तु बोले—कुरुनन्दन ! उन विशेष पुण्यदायिनी तथा उनमें होने वाले व्रत उपवासादि तिथियों को बतला रहा हूँ सुनो । (उनके उपवास करने से जो पुण्यप्राप्ति होती है) उनके सुनने मात्र से पाप समूह नष्ट हो जाते हैं । उपवास के फल भी सुनो । ॥१७। प्रतिपदा तिथि को दुग्धाहार, द्वितीया को नमक के बिना भोजन, तृतीया को तिलान्न, चतुर्थी को दुग्धाहार, पञ्चमी को फलाहार षष्ठी को शाकाहार, सप्तमी को बेल का आहार, षष्ठी को (उरदी) का पीसा हुआ आहार, नवमी को बिना अग्नि का पका हुआ भोजन अर्थात् फलाहार, दशमी तथा एकादशी को धूत का आहार, द्वादशी को दुग्धाहार, त्रयोदशी को गोमूत्र का आहार चतुर्दशी को जड़ का आहार, पौर्णमासी को कुरुषमिश्रित जल का आहार अमावास्या को हृविष्यान्न का आहार । विभिन्न तिथियों में इन उपर्युक्त आहारों का विधान है । इस विधि से जो एक

सोऽश्वमेधफलं दशगुणफलमवाप्नोति । स्वर्गे मन्वन्तराणि यावत्प्रतिदक्षति ॥२१
उपगीयमानोप्सरोगन्धर्वैर्मासत्रयचतुष्टयम् । सोऽश्वमेधराजसूयानां शतगुणमदान्तेति ॥२२

स्वर्गे उपगीयमानोप्सरोगन्धर्वैश्चतुर्युग्मानां दशशतीर्यावित्प्रतिवसति ।

तथाष्टमासपारणे राजसूयाश्चनेधाभ्यां सहस्रगुणफलमवाप्नोति ॥२३

स्वर्गे चतुर्दशे प्रन्वतराणि यावत्प्रतिवसति ।

उपगीयमानोप्सरोगन्धर्वैर्य एवं नियममास्थाय वर्षमेकं वर्तयति ॥२४

स सवितुलोके कालं मन्वन्तरं प्रतिवसति

॥२५

य एवं नियमान्नराजस्त्रयुजनवम्यां माघमासस्य सप्तम्यां दैशत्स्त्रृतीयायां कार्त्तकपौर्णमास्यां
तिथिव्रतानि गृहणाति ब्रह्मचारी गृहरथो वनस्थो नारी नरो वा शूद्रः प्रयत्नमानसः दीर्घायुष्यं सवितुः
सालोक्यं व्रजति

॥२६

यैश्चापि पुरा राजन्ननेन विधिना एतासुतिथिष्वन्यजन्मान्तरे उपदासविधिः कृतः दानानि इत्तानि
विविधप्रकाराणि ब्राह्मणानां तास्त्विजनेषु वा

॥२७

त्रिरात्रोपवासिनां तीर्त्यात्रातपोगुरुभातः तित्वशुश्रूषानिरतानां तेषां स्वर्गादिभोगवासनादिहा-
गतानां फलनिष्पत्तिचिह्नानि मनुष्यलोके प्रत्यक्षत एव दृश्यन्ते

॥२८

हस्त्यश्वयानयुग्मधनरत्नकहिरप्पकटकेयूरग्रैयकटिसूत्रकर्णालङ्कारमुकुटवरवस्त्रवरनारी-

पक्ष तक नियम रखता है वह अश्वमेध यज्ञ के दस गुणित पुण्य फल की प्राप्ति करता है । और स्वर्ग में
अनेक मन्वन्तरों तक निवास करता है । १८-२१ तीन चार मास तक इस नियम का पालन करने वाला
अप्सराओं एवं गन्धर्वों के समूहों के द्वारा उपगीत होकर अश्वमेध एवं राजसूय यज्ञों के सौनुने अधिक फल
को प्राप्त करता है । २२। इसी प्रकार आठ मास तक नियम रखने वाला अप्सराओं एवं गन्धर्वों से उपगीत
होकर एक सहस्र चतुर्युग्मों तक स्वर्ग में निवास करता है और राजसूय और अश्वमेध यज्ञों के सहस्रगुणित
फल प्राप्त होता है । २३। इसी प्रकार एक वर्ष तक जो उपर्युक्त नियम का पालन करता है वह अप्सराओं
एवं गन्धर्वों के समूहों द्वारा उपस्तुत होकर चौदह मन्वन्तरों तक निवास करता है । २४। और एक
मन्वन्तर तक सविता के लोक में निवास करता है । २५। हे राजन् ! जो व्यक्ति इन नियमों का आश्विन
की नवमी, माघमास की सप्तमी, वैशाख की तृतीया तथा कार्त्तिक की पूर्णिमा को इन तिथियों के ब्रतों को
प्रारम्भ करता है वह चाहे ब्रह्मचारी हो चाहे गृहस्थ वानप्रस्थ नर नारी अथवा शूद्र हो मन एवं इन्द्रियों
को संयत रख कर करता है तो वह दीर्घायु होकर सविता का लोक प्राप्त करता है । २६। हे राजन् ! यही
नहीं जो मनुष्य पूर्वजन्म में इन उपर्युक्त तिथियों में अन्य जन्मों में उपवास की उक्त विधि का पालन कर
चुके हैं विविध प्रकार के दानों को ब्राह्मणों वा तपस्वियों को दे चुके हैं तीर्थयात्रा में तीन रात तक उपवास
करने वाले गुरु भाता पिता की सेवा शुश्रूषा में निरत रहने वाले तथा स्वर्गादि के भोग करने की वासना से
इस मर्त्यलोक में जन्म धारण करने वाले उन मनुष्यों के लिए इसी लोक में उक्त पुण्य फलों की निष्पत्ति
प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त होती देखी जाती है । २७-२८। हाथी, घोड़ा, सवारी, रथ, धन, रत्न, सुवर्ण,
सुवर्णनिर्मित वलय, कण्ठहार, कटिसूत्र, ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) कुण्डल, मुकुट, सुन्दर बस्त्र, सुन्दरी स्त्री,

वरविलेपनसुरुपगुणदीर्घायुषो विगताधिव्याधयो दानोपवासरतानां फलान्येतानि नृत्यगीत-	
वादित्रमङ्गलपाठकशब्दैरहायापि पुण्यकृतो बोध्यमाना दृश्यन्ते इति	॥२९
तथाकृतोपवासा अपि हि दृश्यन्ते	॥३०
तथा अदत्तदाना अकृतपुण्याश्र प्रत्यक्षत एव दृश्यन्ते	॥३१
तद्यथा काणकुष्ठिवधिरजडनूकव्यङ्गा रोगदान्त्रियोपर्सव्याधिहतपुण्यश्र दृश्यतेऽद्यापि प्रानवाः ॥३२	

शतानीक उवाच

द्विजेन्द्र तिथिः प्रोक्ताः समाख्येन त्वया बुधः । विस्तरेण्यै भूयः प्रबूहि द्विजसत्तम ॥३३
रहस्यं यत्तिथीनां तु देवतानां च विचेष्टितम् । यानीज्ञानि च देवानां भोज्यानि नियमास्तदा ॥३४
तानि भै वद धर्मज्ञ येन पूतो भवेन्वहम् । निर्द्वन्द्वो हि यथा विष्णु लभे यागफलानि तु ॥३५

सुमन्तुरुवाच

रहस्यं यत्तिथीनां च भोजनं फलमेव तु । यावच्च येन नियमो विशेषात्स्रीजनस्य च ॥३६
एतते सर्वमाल्यामो रहस्यं तथिबोध मे । यन्मयो नोक्तपूर्वं हि कस्यचित्सुप्रियस्य हि ॥३७
तत्तेऽहं सम्प्रबक्ष्यामि यस्य देवस्य या तिथिः । देवतानां रहस्यानि व्रतानि नियमास्तथा ॥३८
ताञ्छृणुष्व महाबाहो शटतो सम नारद । सृष्टि पूर्वं वदिष्यामि संक्षेपेण तिथिं प्रति ॥३९

मुन्दर चन्दनादि मुन्दर रूप, गुण, दीर्घायु, आधिव्याधि से रहित आदि फल इन उपर्युक्त दानों एवं उपवासों में निरत रहने वाले को प्राप्त होता है भाच, गाना, वाद्य एवं मङ्गल पाठकों द्वारा पुण्यात्मा व्यक्ति शर्पन के बाद जगाये जाते देखे जाते हैं । २९। इसके विपरीत जो इन पुण्यप्रद उपवासों का पालन नहीं करते उक्त दानों को नहीं देते वे अपुण्यशील भी इस संसार में प्रत्यक्ष रूप से देखे जाते हैं । ३०-३१। वे जैसे काना, कुछ्छी, बधिर, जड़, मूक, विकलाङ्ग रूण, दरिद्र, व्याधिग्रस्त, क्षीण आयु मनुष्य के रूप में पृथ्वीतल पर आज भी देखे जाते हैं । ३२

शतानीक ने कहा—हे द्विजवृन्द ! हे द्विजसत्तम ! आपने संक्षेप में इन तिथियों के माहात्म्य को मुझसे बतलाया है । द्विजवर्य ! कृपया उनके बारे में मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइये । ३३। उक्त तिथियों का जो रहस्य हो देवताओं की जो विशेष चेष्टाएँ हों उनके जो विशेष प्रिय भोज्य पदार्थ हों जो कुछ नियम हों हे धर्मज्ञ ! उन सबका विस्तृत परिचय मुझे दीजिये जिससे मैं पवित्र हो सकूँ । हे विष्ण ! जिससे मैं निर्द्वन्द्व होकर यज्ञ फल की प्राप्ति कर सकूँ । ३४-३५

सुमन्तु ने कहा—उक्त तिथियों की जो विशेष रहस्यपूर्ण बातें हैं उनके उन भोज्य सामग्रियों के जो विशेष फल बतलाये गये हैं उनसे जो फल ग्राहित होती है जिस प्रकार से उनके उपेषित करने के नियम कहे गये हैं उन सब रहस्यपूर्ण बातों को विशेषतया स्त्रियों के लिए मैं तुमसे बतला रहा हूँ । जुनों । वे ऐसी गोपनीय हैं कि मैंने आज से पहिले अपने किसी भी प्रियजन को उनका रहस्य नहीं बतलाया है । ३६-३७। जिस देवता की जो विशेष तिथि कही जाती है जिन देवताओं का जो रहस्य व्रत तथा नियम है, हे महाबाहु नारद जी ! उन सब बातों को मैं बतला रहा हूँ सुनिये । संक्षेप में इन तिथियों के वर्णन प्रसंग मैं सृष्टिपूर्व

तमोभूतमिदं त्वासीदलक्ष्यमवितर्कितम् । जगद्ब्रह्मा समागत्याद्युजदात्मानसमात्मना ॥४०
 संभूतात्मैव आत्मासादण्डमध्याद्विनिःसृतः । आत्मनैवात्मनो हृष्णं सृष्ट्वा स विभुरादितः ॥४१
 ब्रह्म नारायणाल्योऽसौ सृष्टिं कर्तुं समुद्यतः । ताभ्यां सोण्डकपालाभ्यां द्विं भूमि च निर्ममे ॥४२
 दिशश्चेष्ठदिशश्चैव देवादीन्दानवांस्तथा । तिथिं पूर्वामिमां राजंश्चकाराथ विभुः स्वयम् ॥४३
 तिथीनां प्रवरा यस्माद्ब्रह्मणा समुदाहृता । प्रतिपादितापरे पूर्वे प्रतिपत्तेन तूच्यते ॥४४
 अस्मात्पदात् तिथयो यस्मात्दन्याः प्रकीर्तिताः । अस्यान्ते कथियत्यामि उपवासविधिं परम् ॥४५
 कार्त्तिक्यां माघसप्तम्यां वैशाखस्य द्रुतादिषु । नियमोपवासं प्रथमं ग्राहयेत विधानवित् ॥४६
 एवं तिथिं नियमं कर्तुं भक्त्या समनुगच्छति । तस्यां तिथौ विधानं यत्तत्रिवोथं जनाधिप ॥४७
 यदा तु प्रतिपद्यां वै गृहीयत्विवरं नृप । चतुर्दश्यां कृताहारः संकल्पं परिकल्पयेत् ॥४८
 अमावास्यां न भुञ्जीत त्रिकालं स्नानमाचरेत् । पदित्रो हि जपेन्नित्यं गायत्रीं शिरसा सह ॥४९
 अर्चयित्वा प्रभाते तु गन्धमाल्यैर्द्विजोत्तरान् । शक्त्या क्षीरं प्रदद्यात् ब्रह्मा मे प्रीयतां प्रभुः ॥५०

के वृतान्त को बतला रहा हूँ । ३८-३९। (सृष्टि के पूर्व) यह समस्त जगन्मण्डल अंधकारमय था जिसका न तो कोई चिह्न शेष था न कोई अनुमान करने का साधन शेष था । भगवान् ब्रह्मा ने ऐसे जगत् में आकर अपने ही द्वारा इसका सर्वप्रथम आविर्भाव किया । ४०। उस विशाल अण्डरूप जगत् के मध्य से संभूतात्मा भगवान् ब्रह्मा स्वयं निकल पड़े । सर्वप्रथम सर्वैर्शशाली नारायण उपाधिधारी भगवान् विभु ने सृष्टि करने की कामना से उद्यत होकर उस विशाल अण्ड की सृष्टि भी स्वयं अपने ही से की थी । ४१। उन्होंने उसके दो कपालों (टुकड़े) से पृथ्वी और भूलोक का निर्माण किया । ४२। हे राजन् ! उन्हीं में से तदुपरान्त भगवान् ब्रह्मा ने स्वयं दसों दिशाओं उपदिशाओं देवताओं एवं दानवों की रचना की । इन सब की रचना भगवान् ने सर्वप्रथम इसी पूर्व तिथि प्रतिपदा को ही की थी । ४३। यतः ब्रह्मा द्वारा यह सभी तिथियों में श्रेष्ठ कही गयी और पश्चात् लोगों ने उसका प्रतिपादन किया इसलिए वह तिथि प्रतिपदा कही जाती है । ४४। इसी पद के बाद दूसरी तिथियों कही गई है इसके अन्त में उपवास करने का जो परम विधि है उसे कह रहा हूँ सुनिये । ४५। विधानवेता कार्तिक की माघ की सप्तमी तथा वैशाख की युगादि तिथियों में नियमपूर्वक उपवास को सर्वप्रथम अंगीकार करे । ४६। हे जनाधिप ! इन पन्द्रह तिथियों में जिस तिथि को विधान कर्ता भक्तिपूर्वक नियम का पालन करता है उसके विधि के विधानादि को बतला रहा हूँ, सुनिये । ४७। हे नृप ! जब प्रतिपदा तिथि को नियम का प्रारम्भ करना चाहे तो चतुर्दशी तिथि को ही आहार ग्रहण करने के बाद इसका संकल्प करना चाहिये । ४८। उसके अनन्तर अमावास्या तिथि को व्रती को बिना आहार ग्रहण किये त्रिकाल स्नान करना चाहिये । और सारे दिन पवित्र भाव से शिर के साथ गायत्री का जप करते रहना चाहिये । ४९। फिर दूसरे दिन प्रतिपदा के प्रातःकाल सुगन्धित द्रव्य, पुष्प एवं माला आदि से उत्तम ब्राह्मणों की पूजा कर “भगवान् परमेश्वर्यशाली ब्रह्मा हमारे ऊपर प्रसन्न हों” इस भावना से दुध का दान करना चाहिये । ५०। हे राजन् ! इस विधि के साथ नियम समाप्ति के अनन्तर व्रती गोदुध के साथ आहार ग्रहण करे । हे नृप ! सभी तिथियों में यही नियम देखा गया

ततो भुज्जीत गोक्षीरमनेन विधिना नृप । एष एव विधिर्दृष्टः सर्वासु तिथिषु नृप ॥५१

संवत्सरंगते काले वत्मेतत्समाप्यते । व्रतांते यत्कलं तस्य त्रिनिवेद्य नराधिप ॥५२

विमुक्तपापः शुद्धात्मा दिव्यदेहस्य देहिनः । ब्रह्मा इदाति संतुष्टो विमानमतिलेजसम् ॥

अव्याहतगर्ति दिव्यं किन्नरास्सरसैर्युतम् ॥५३

रमित्वा सुचिरं तत्र दैदत्तैः सह देववत् । इह चागत्य दिव्रत्यं दश जन्मान्यसौ लभेत् ॥५४

देवदेवदांगविद्यश्च दीर्घायुश्चैव सुत्रभः । भोगी धनपतिर्दीता जायतेऽसौ कृते युगे ॥५५

विश्वामित्रस्तु राजेन्द्र ब्राह्मणत्वजिगीषया । ताणश्चार लिपुलं सन्तापाय दिवौकसाम् ॥

ब्राह्मणत्वं न लेभेत्सौ लेभे विद्वाननेकशः ॥५६

ततस्तु नियमातेऽनं तिथीनां प्रवरा तिथिः । उपेषिता ब्रह्मिधा ज्ञात्वा ब्रह्मप्रियां तिथिम् ॥५७

ततो ददौ ब्रह्मा विश्वामित्राय धीमते । इहैव तेन देहेन ब्राह्मणत्वं सुदुर्लभम् ॥५८

तिथीनां प्रवरा होषा तिथीनामुत्तमा तिथिः । क्षत्रियो वैश्यशूद्रौ वा ब्राह्मणत्वमवाप्नुयः ॥५९

एवं तिथिरियं राजन्कामदा कञ्जजप्रिया । तरहस्या मया प्रोक्ता या नोक्ता यस्य फस्यचित् :: ६०

हैहयैस्तालजड्जैश्च तुरुष्कर्यवनैः शकैः । उपोषिता इहात्रैव ब्राह्मणत्वमभीम्पिभिः ॥६१

है । ५१। इस प्रकार एक वर्ष समय व्यतीत होने पर यह नियम समाप्त होता है, नराधिप ! व्रत समाप्ति पर व्रती को जो पुण्य मिलता है उसे सुनिये । ५२। उस व्रती पुरुष के समस्त पाप इस नियम के पालन से छूट जाते हैं और उसकी आत्मा निर्मल हो जाती है उसे जन्मान्तर में दिव्यगुण सम्पन्न शरीर की प्राप्ति होती है । भगवान् ब्रह्मा परम सन्तुष्ट होकर उसे परम तेजोमय एक ऐसा दिव्य विमान समर्पित करते हैं जिसकी गति कहीं रुद्ध नहीं होती और चारों ओर से जिसे किन्त्रों एवं अप्सराओं के समूह घेरे रहते हैं । ५३। उस पुनीत लोक में वह प्राणी देवताओं की तरह सभी सुखों एवं समृद्धियों का चिर काल तक सदुपयोग कर इस लोक में पुनः जन्म धारण कर दस जन्म तक ब्राह्मण कुल प्राप्त करता है । ५४। इसी पुण्य के प्रभाव से वह वेदों तथा वेदाङ्गों समेत समस्त विद्याओं का ज्ञान प्राप्त कर परम तेजस्वी, भोगी धनपति तथा दानी रूप में सतयुग में उत्पन्न होता है । ५५। हे राजेन्द्र ! विश्वामित्र ने ब्राह्मण की पदवी जीतने के लिए और स्वर्गस्थ देवताओं को संताप देने के लिए विपुल तपस्या की किन्तु उन्हें ब्राह्मणत्व की पदवी नहीं मिली प्रत्युत अनेक विद्व एवं कष्ट झेलने पड़े । ५६। तब उन्होंने समस्त तिथियों में श्रेष्ठ प्रतिपदा तिथि को ब्रह्मप्रिया समझकर नियमपूर्वक अनेक प्रकार के दानादि कर्म करते हुए उपवास किया । ५७। जिससे भगवान् ब्रह्मा ने परम बुद्धिमान् विश्वामित्र के लिए प्रसन्न होकर इसी शरीर द्वारा परम दुर्लभ ब्राह्मणत्व का वरदान दिया । ५८। यह प्रतिपदा तिथि सभी तिथियों में श्रेष्ठ एवं उत्तम पुण्य प्रदान करने वाली है । इसके नियमपूर्वक पालन करने से क्षत्रिय अथवा वैश्य, शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त होते हैं । ५९। हे राजेन्द्र ! इस प्रकार यह प्रतिपदा तिथि भगवान् पद्मयोनिब्रह्मा को परम प्रिय एवं व्रती की समस्त कामनाओं को सफल बनाने वाली है । मैंने इसे किसी को भी आज तक नहीं बतलाया था आपसे इसके नियम एवं रहस्य को बतला चुका । ६०। इसी मर्त्यलोक में यह परम पुण्यप्रदायिनी प्रतिपदा हैह्य, तालजड्घ, तुरुष्क (तुरुक) यवन, एवं शक प्रभृति

इत्येषा पश्चा पुष्या शिवा पापहरा तथा । पठितोपासिता रात्रज्ञाद्वया च श्रुता^१ तथा ॥६२
माहात्म्यं चापि योप्यस्याः भृण्यान्वानवो नृप । श्रद्धिं वृद्धिं तथा कीर्ति शिवं चाच्य दिवं ब्रजेत् ॥६३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां द्वात्मे पर्वणि प्रतिपत्कल्पवर्णनं

नःम पोडशोऽध्यायः ॥६४

अथ सप्तदशोऽध्यायः प्रतिपत्कल्पविषये ब्रह्मणः पूजा

शतानीक उवाच

ब्रूहि मे विस्तराद्ब्रह्मन्प्रतिपत्कृत्यमादरात्^२ । ब्रह्मपूजाविधानं च पूजते यच्च वै फलम् ॥१

सुमन्तुरुवाच

श्रुणुष्वैकमना राजन्कथयाम्येष शान्तिदन् । पूर्वमेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजन्ममे ॥२
स्वयन्भूरभवद्वेवः सुरज्येष्ठश्चतुर्मुखः । सर्वज्ञ लोकान्देवांश्च भूतानि विविधानि च ॥३
कायेन मनसा वाचा जग्न्मस्थावराणि च । पिता यः सर्वदेवानां भूतानां च पितामहः ॥४
तस्मादेष सदा पूज्योः यतो लोकगुरुः परः । सृजत्येष जगत्कृत्स्नं पाति संहरते तथा ॥५

ब्रह्मणत्व की पदवी प्राप्ति के अभिलाषियों द्वारा उपोषित की गई है । ६१। यह परम पुण्य प्रदायिनी कल्याण प्रदा एवं पापहरिणी है । हे राजन् ! श्रद्धापूर्वक इस व्रत के नियमादि के सुनने पढ़ने एवं पालन करने से मनुष्य को उक्त फल की प्राप्ति होती है । ६२। हे नृप ! जो मनुष्य केवल इसके माहात्म्य को सुनता है उसे परम श्रद्धि-वृद्धि, कीर्ति कल्याण एवं स्वर्ग की प्राप्ति होती है । ६३

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में प्रतिपदा माहात्म्य वर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६

अध्याय १७ प्रतिपदाकल्प के विषय में ब्रह्मा की पूजा

शतानीक ने कहा—ब्रह्मन् ! अब मुझे विस्तार पूर्वक प्रतिपदा में किये जाने वाले कार्य और उक्त ब्रह्मा की पूजा का विधान सादर बतलाइये और यह भी बतलाइये कि उस पूजन से क्या फल प्राप्त होता है । १

सुमन्तु ने कहा—राजन् ! एकाग्रचित होकर सुनिये । इस शान्तिप्रद कथा को मैं कह रहा हूँ । प्राचीनकाल में जब स्वयम्बर एवं जंगम रूप समस्त जगत् एवं घोर महासमुद्र में नष्ट हो गया था उस समय स्वयं उत्पन्न सुरश्रेष्ठ चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा उत्पन्न हुए । उन्होंने ही समस्त देवताओं लोकों और अनेक प्रकार के भूतों की सृष्टि की । मनसा वाचा कर्मणा उन्होंने स्थावर जंगम जीव समूहों की पुनः सृष्टि की इसीलिए वे देवताओं के पिता तथा समस्त भूतों के पितामह कहे जाते हैं । २-४। और इसीलिए सदा परम पूज्य भी माने गये हैं क्योंकि लोक में सबसे बढ़कर महान् हैं । वे ही समस्त संसार की सृष्टि करते हैं पालन करते हैं और अन्त में सब का संहार करते हैं । ५।

१. अत्र विशेषतः । २. प्रतिपत्कल्पम् ।

रुद्रोऽस्य मनसो जातो विष्णुर्जातोऽस्य^१ वक्षसः । मुहेभ्यश्चतुरो^२ वेदा वेदाङ्गानि च कृत्स्नशः ॥६
 देवाप्सरसगन्धवाः सयज्ञोरगराक्षसाः । पूजयन्ति सदा वीरं विरिचि युरनायकम् ॥७
 सर्वे ब्रह्ममये लोकः सर्वं ब्रह्मणि संस्थितम् । तस्मात्सर्वचयेद्ब्रह्मन्य इच्छेष्ट्य आत्मनः ॥८
 यो न पूजयते भक्त्या सुरज्येष्ठं^३ सुरेश्वरम् । न स नाकस्य राज्यत्य त च मोक्षस्य भाजनम् ॥९
 यस्तु पूजयते भक्त्या विरिचि भुवनेश्वरम् । स नाकराज्यमोक्षेषु क्षिप्रं भवति भाजनम् ॥१०
 तस्मात्सौम्यमना भूत्वा यावज्जीवं प्रतिज्ञाय । अर्चयित्वा सदा देवमापन्नोऽपि नरो नृपः ॥११
 वरं देहपरित्यागो वरं नरकसम्भवः । न त्वेवाग्न्यं भुञ्जन्ति^४ देवं वै यत्संभदम् ॥१२
 सदा पूजयते यस्तु वीरं भक्त्या पितामहम् । मनुष्यवर्मणा नद्धः स वेधा नात्र संशयः ॥१३
 न हि वेधोऽर्जनार्त्तिकित्युप्यमन्यदिकं भवेत् । इति विज्ञाय यत्नेन पूजनीयः सदा विद्धिः ॥१४
 यो ब्रह्माणं द्वेष्टि सोहात्सर्वदेवतमस्कृतम् । नरो नरकगामी स्यात्स्य संभाषणादपि ॥१५
 ब्रह्मणोर्चा प्रतिष्ठाप्य तत्वयत्नैर्विधानतः । यत्पुण्डं कलमाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ॥१६
 सर्वयज्ञतपोदानतीर्थवेदेषु यत्कलम् । तत्कलं कोटिगुणितं लभेद्वेधः प्रतिष्ठया ॥१७
 कञ्जजं स्थापयेद्यत्तु कृत्वा शालां भनोरमाम् । सर्वाग्मोदितं पुण्यं कोटिकोटिगुणं लभेत् ॥१८

हृष उनके मनसे तथा विष्णु उनके वक्षस्थल से उत्पन्न हुए हैं । उन्ही के मुखों से चारों वेद एवं समस्त वेदाङ्ग प्रादुर्भूत हुए हैं । ६। हे वीर ! सुष्ट्रेष्ठ उन भगवान् विरिचि की देव अस्त्रा, गन्धर्व, यक्ष, उरग एवं राक्षसगण सर्वदा पूजा करते हैं । ७। सभी लोक ब्रह्ममय हैं सभी ब्रह्म में स्थित हैं इसलिये जो अपना कल्याण चाहता है उसे ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिये । ८। सुरेश्वर सुरज्येष्ठ उन भगवान्ब्रह्मा की जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पूजा नहीं करते वह स्वर्ग राज्य और मोक्ष का भाजन नहीं होता । ९। जो मनुष्य भुवनेश्वर विरिचि की भक्तिपूर्वक पूजा करता है वह शीघ्र ही स्वर्ग राज्य एवं मोक्ष का भाजन बनता है । १०। इसलिए हे राजन् ! मनुष्य को चाहिये कि वह चाहै कैसीं भी विपत्ति में क्यों न पड़ा हो जब तक जीवित रहे प्रतिज्ञापूर्वक प्रसन्न मन से सर्वदा देवाधिदेव भगवान् ब्रह्मा की पूजा में निरत रहे । ११। पद्मयोनि भगवान् ब्रह्मा की पूजा न करके जो लोग भोजन कर लेते हैं उनके लिए इस जीवन से शरीर का परित्याग करना तथा नरक में गिरना ही श्रेष्ठ है । १२। हे वीर ! जो मनुष्य सर्वदा भक्तिपूर्वक पितामह भगवान् ब्रह्मा की पूजा करते हैं वह निस्सन्देह मनुष्य के चमड़े में नधा द्वारा साक्षात् ब्रह्मा ही है । १३। भगवान् ब्रह्मा की पूजा से अधिक कोई पुण्य इस संसार में नहीं है ऐसा समझ कर मनुष्य को यत्पूर्वक ब्रह्मा की सर्वदा पूजा करनी चाहिये । १४। जो मनुष्य सभी देवताओं द्वारा नमस्कृत भगवान् ब्रह्मा के साथ मोहवश द्वेष करता है वह नरकगामी होता है यही नहीं उस पापात्मा के साथ सम्भाषण करने से भी नरकगामी होना पड़ता है । १५। भगवान् ब्रह्मा की प्रतिमा को प्रतिष्ठापित कर सभी यन्त्रों से विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य जो पुण्यफल प्राप्त करता है उसे एकाग्र नन से सुनिये । १६। सब प्रकार के यज्ञ, तप, दान, तीर्थस्नान एवं वेदाध्ययन से जो पुण्य की प्राप्ति होती है उससे कोटि गुणित फल ब्रह्मा की मूर्ति प्रतिष्ठा करने वाले प्राप्त करते हैं । १७। जो मनुष्य उत्तम मन्दिर का निर्माण कर उसमें ब्रह्मा की प्रतिष्ठा करता

१. च ३० पा० । २. चत्वारः । ३. विरिचि सर्वकामदम् । ४. भुञ्जते ।

भातृजानियतृजांश्चैव यां चैवोद्भवते स्त्रियम् । कुलैकविशमुत्तर्य ब्रह्मलोके महीयते ॥१९
 भुक्त्वा तु विपुलान्भेगान्प्रलये समुपस्थिते । ज्ञानयोगं समाप्ताद्य स तत्रैव विमुच्यते ॥२०
 अथ वा राज्यमाकाञ्छेज्जायते सम्भवान्तरे । सप्तद्वीपसमुद्रायाः क्षितेरधिपतिर्भवेत् ॥२१
 त्रिसंधं यो जपेदब्रह्म कृत्वाष्टदलपक्षजम् । पौर्णमास्या प्रतिपदि तत्पुष्ट्यफलं शृणु ॥२२
 अनेनैव स देहेन ब्रह्मा संतिष्ठते क्षितौ !पतःहा सर्वमत्यर्थानां दर्शनात्पर्यशनादपि ॥२३
 उद्दृत्य दिवि संस्थाप्तं हुत्यनामेकविशतिम् । तैः कुलैः सहितो निर्यं भोदने गोगतोऽनृप ॥२४
 अप्येकवारं यो भक्त्या पूजयेत्पद्मं संभवन् । पद्मस्थं मूर्तिमन्तं वा ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥२५
 पुण्यक्षयात्क्षतिं प्राप्य भवेत्क्षतिपतिर्महान् । वेदवेदाङ्गतत्त्वलो ब्रह्माणश्चापि जायते ॥२६
 न तत्पोभिरत्युग्रैर्न च सर्वर्महामलैः । शङ्खेदब्रह्मपुरं दिव्यं मुक्त्वा भक्तिपरात्मकान् ॥२७
 मृद्वर्ष्टकशैलैर्वा यः कुर्यादब्रह्मणो गृहम् । त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो ब्रह्मलोके महीयते ॥२८
 भूम्यात्क्षेत्रिगुणितं फलं दार्विष्टाकामये ! इष्टकादिद्वगुणं पुण्यं कृते शैलमये गृहे ॥२९
 क्रीडमानोऽपि३ यः कुर्याच्छालां वै ब्रह्मणो नृप ; ब्रह्मलोके स लभते विमानं सर्वकाभिकम् ॥३०

है वह सभी शास्त्रों में कहे गये पुण्यों से कोटिगुणित अधिकपुण्य फल की प्राप्ति करता है । १८। यह महान् पुण्यशाली मनुष्य अपने मातृकुल, पितृकुल तथा जिस स्त्री के साथ विवाह करता है उस कुल की इक्कीरा पीढ़ियों को तारता है और स्वयं ब्रह्म लोक में पूजित होता है । १९। वहाँ पर विपुल भोगों का अनुभव कर प्रलय के अवसर पर ज्ञानयोग की सिद्धि प्राप्त कर वही पर मुक्त भी हो जाता है । २०। अथवा यदि वह ब्रह्मलोक में राज्य प्राप्ति की कामना करता है जो जन्मान्तर में सातों द्विषों तथा समुद्रों समेत सम्पूर्ण पृथिवी का एकछत्र स्वामी होता है । २१। जो मनुष्य पूर्णिमा तथा प्रतिपदा तिथियों में अष्टदल कमल का निर्माण कर भगवान् ब्रह्म के नाम का तीनों संघाओं में जप करता है उसके पुण्य-फल की कथा सुनो । २२। उसके लिए अधिक क्या कहा जाय, यही समझना चाहिए कि उसके इस शरीर से भगवान् ब्रह्म ही पृथ्वी पर निवास कर रहे हैं । उसका दर्शन एवं स्पर्श ही सभी मनुष्यों के पापों को नाश करता है । २३। वह पुण्यशील मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियों को उद्धार कर स्वर्ग में प्रतिष्ठित करता है । हे राजन् ! अपने कुलपुरुषों के साथ वह पुण्यात्मा भूमिलीक में सर्वदा आनन्द का अनुभव करता है । २४। जो मनुष्य एक बार भी पद्म पर समासीन वा मूर्तिमान् पदयोनि भगवान् ब्रह्म की भक्ति पूर्वक पूजा करता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है । २५। और पुण्य क्षय के बाद वहाँ से पृथ्वी लोक में महान् राजा के रूप में जन्म धारण करता है । समस्त वेद एवं वेदांगों का पूर्व ज्ञान प्राप्त कर श्रेष्ठकुलीन ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न होता है । २६। भक्ति पूर्वक भगवान् ब्रह्म की पूजा को छोड़कर न तो कठोर तपस्याओं से दिव्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति हो सकती है और न समस्त महान् यज्ञों के अनुष्ठानों से । २७। जो मनुष्य मिट्टी, काष्ठ ईंट अथवा पत्थरों से ब्रह्मा का मन्दिर बनवाता है वह अपने इक्कीस कुल पुरुषों के साथ ब्रह्मलोक में पूजित होता है । २८। मिट्टी के मन्दिर से ईंट और काष्ठ का मन्दिर कोटि गुणित अधिक फलदायी होता है और ईंट के मन्दिर से द्विगुणित अधिक पुण्य पत्थर द्वारा बनवाने में होता है । २९। हे नृप ! जो मनुष्य खिलवाड़ में ही ब्रह्मा का आयतन बनवा देता है वह भी

१. गां भूमिं गतः—भूमिष्ठ एवेत्यर्थः । २. सर्वकामदम् । ३. क्रीडन् ।

पुष्पमालापरिक्षिप्तं किञ्चित्तीजालभूषितम् । दोलाविक्षेपसम्पन्नं घटाचामरभूषितम् ॥३१
 मुक्तादामवितानेन शोभितं सूर्यसुप्रभम् । अप्सरोगणसंकीर्णं सर्वकामसुखप्रदम् ॥३२
 तत्रोषित्वा महाभोगी क्षीडमानः सदा सुरैः । पुनरागत्य लोकेस्मिन्नाजा भवति धार्मिकः ॥३३
 पश्यन्वरिहरञ्जन्मृदुपुद्वं महीपते । शनैः सम्मार्जनं कुर्याद्ब्रह्माद्यणफलं व्रजेत् ॥३४
 वस्त्रपूतेन तोयेन यः कुर्यादुपलेपनम् । पश्यन्वरिहरञ्जन्मृद्वान्द्राद्यणफलं लभेत् ॥३५
 नैरन्तर्येण यः कुर्यात्यक्षं सम्मार्जनार्चनम् । युगकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीपते ॥३६
 तत्यान्ते स चतुर्वेदः सुरुपः प्रियदर्शनः । आदृशः सर्वगुणोपेते राजा भवति धार्मिकः ॥३७
 कपटेनापि यः कुर्याद्ब्रह्मशालां सुमानद । सम्मार्जनादि वै कर्म सोऽपि प्राप्नोति तत्कलम् ॥३८
 तावद्भ्रमन्ति संसारे दुःखशोकभयप्लुताः । न भवन्ति सुरश्रेष्ठे यावद्भूक्ता महीपते ॥३९
 समाप्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे । यद्येवं ब्रह्मणि न्यस्तं को न मुच्येत बन्धनात् ॥४०
 खण्डस्तुटिसंस्कारं शालायां यः करोति वै । अरामावसथाद्येषु लभते मौक्तिकं फलम् ॥४१

ब्रह्मलोक में सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले विमान की प्राप्ति करता है ॥३०। उसका वह सुन्दर विमान सुगन्धित पुष्पों की मालाओं से चारों ओर घिरा हुआ छोटी-छोटी किकिणियों से विभूषित झूलों एवं हिंडोले से संयुक्त घटा तथा चामर से समन्वित रहता है ॥३१। उसमें चारों ओर ऊपर मोतियों की लड़ियाँ झूलती रहती हैं उसकी शोभा सूर्य के समान तेजोमयी रहती है । अप्सराओं के समूह चारों ओर से उसमें आकीर्ण रहते हैं । और सब प्रकार की कामनाएँ एवं समस्त सुख प्रदान करती हैं ॥३२। पश्चात् उस ब्रह्म लोक में रहकर देवताओं के साथ छोड़ा करता हुआ वह महान् भोगी फिर इस लोक में आकर परम धार्मिक राजा होता है ॥३३। हे महीपति ! ब्रह्मा के उस आयतन में जन्मुओं वो देखकर उन्हें छोड़ते हुए मृदुता के साथ-साथ धीरे-धीरे मार्जन करने से मनुष्य चान्द्राद्यण व्रत का पुण्य प्राप्त करता है ॥३४। वस्त्र से पवित्रि किये गये (छाने गये) जल द्वारा जो मनुष्य जन्मुओं को देख कर छोड़ते हुए जो उपलेपन करता है वह चान्द्राद्यण व्रत का पुण्य प्राप्त करता है ॥३५। जो मनुष्य एक पक्ष तक निरन्तर आयतन में मार्जन एवं अर्चन करता है वह शत कोटि युगपर्यन्त ब्रह्मलोक में पूजित होता है ॥३६। उस अवधि के व्यतीत हो जाने के उपरान्त वह चारों वैदों का पारगामी विद्वान्, सुन्दर स्वरूपवान प्रियदर्शी, धन-धान्य सम्पन्न, सर्वगुणान्वित एवं परम धार्मिक राजा होता है ॥३७। हे सुमानद ! कपट पूर्वक भी जो व्यक्ति ब्रह्मा के आयतन का निर्माण करता है तथा उसमें सम्मार्जन एवं अर्चन आदि कर्म करता है वह भी उक्त फल की प्राप्ति करता है ॥३८। हे महीपति ! लोग इस संसार में विविध प्रकार के दुःख शोक एवं भय में तभी तक फैसे रहते हैं जब तक सुरश्रेष्ठ में उनकी भक्ति नहीं हो जाती ॥३९। प्राणियों का चित्त जिस प्रकार ब्रह्म सांसारिक भोग विलासादि विषयों में समाप्तक्त रहता है यदि उसी प्रकार ब्रह्म में अनुरक्त हो जाय तो ऐसा कौन है जो बन्धनों से मुक्त न हो जाय ॥४०। ब्रह्मा के टूटे-फूटे वा अपूर्ण आयतन का जो मनुष्य जीर्णोद्धार करा देता है अथवा पूर्ण करा देता है तथा उसमें वाटिका एवं विश्रामस्थल आदि का निर्माण करा देता है वह भी मोक्ष का फल प्राप्त करता है ॥४१। ब्रह्मा के समान न

नास्ति ब्रह्मसमो देवो^१ नास्ति ब्रह्मसमो गुरुः । नास्ति ब्रह्मसमं ज्ञानं नास्ति देवधः समं तपः ॥४२
 प्रतिपद्मादिसर्वेषु दिवसेष्टसवेषु च । पर्वकालेषु^२ पुण्येषु पौर्णमास्यां विशेषतः ॥४३
 शंखभेर्यादिनिधोर्बैर्महद्वर्णोयसंयुतैः । कुर्यान्नीराजनं देवे सुरज्येष्ठै^३ चतुर्मुखे ॥४४
 यावत्यवर्द्धणि विधिना कुर्यान्नीराजनं नृप । तावद्युगमहस्ताणि ब्रह्मलोके महीयते ॥४५
 स्नानकाले त्रिसंध्यं तु यः कुर्यान्नीत्यवादनम् । गीतं वा मुखवत्यं वा तस्य पुण्यं फलं शृणु ॥४६
 यावत्यवहानि क्रूरते गेयनृत्यादिवादनम् । तावद्युगमहस्ताणि ब्रह्मलोके महीयते ॥४७
 कपिलापञ्चगव्येन कुर्यादारियुतेन च । स्नापयेष्टंभ्रपुतेन आहं स्नानं हि तत्पृथम् ॥४८
 कपिलापञ्चगव्येन बधिक्षीरथृतेन च । स्नानं^४ शतगुणं ज्ञेयमितरेचां दराधिप ॥४९
 देवाप्लिकः पैमुद्दिश्य कपिलामाहरेत्सदा । ब्रह्मक्षत्रिविश्वश्चैव न शूद्रस्तु कदद्वचन ॥५०
 कापिलं यः पिवेच्छद्वो देवकार्यार्थिनिर्मितम् । स पच्येत महाघोरे सुचिरं नरकार्णवे ॥५१
 वर्षकोटिसहस्रैस्तु^५ यत्पापं समुपार्जितम् । सुरज्येष्ठधृताभ्यंगाद्देत्सर्वं न संशयः ॥५२
 कल्पकोटिसहस्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम् । पितामहः भृतस्नानं दहत्यप्रिवेन्धनम् ॥५३
 धृतस्नानं प्रतिपदि सकृत्कृत्वा तु काञ्जनम् । कुलैकविशमुत्तार्य विष्णुलोके महीयते ॥५४

तो कोई देव है न कोई गुरु है न कोई ज्ञान है न कोई तप है ॥४२। प्रतिपदा आदि सभी तिथियों में सभी दिनों में उत्सव के दिन में पर्व के दिन में अथवा किसी भी पुण्य अवसर पर विशेष तथा पूर्णिमा तिथि को शंख भेरी आदि के मांगलिक शब्दों के बीच में सुमधुर संगीत एवं महान् समारोह कराते हुए सुरज्येष्ठ चतुर्मुख देव का नीराजन करना चाहिये ॥४३-४४। हे राजन् ! मनुष्य इस प्रकार जितने पर्वों में विधिपूर्वक नीराजन करता है उतने सहस्र युगों तक ब्रह्मलोक में पूजित होता है ॥४५। स्नान के समय तीनों सन्ध्याओं में जो मनुष्य ब्रह्मा के मन्दिर में नृत्य एवं वादा का सभारोह रचता है गीत गाता है अथवा केवल मुख का वादा बजाता है उसका पुण्य फल सुनो ॥४६। जितने दिनों तक वह गायन नृत्य तथा वादा का समारोह करता है उतने ही सहस्र युगों तक ब्रह्म लोक में पूजित होता है ॥४७। कपिला गौ के पञ्च गव्य तथा कुशमिश्रित जल से जो मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित कर स्नान किया जाता है उसे ब्रह्म स्नान कहा जाता है ॥४८। हे नराधिप ! इससे शतगुना अधिक पुण्य कपिला के पञ्चगव्य तथा दही, क्षीर और धृत से स्नान करने की पुण्यपथ की अपेक्षा शत गुना अधिक है ॥४९। देवता तथा अग्नि कार्य के उद्देश्य से ब्राह्मण धत्रिय तथा वैश्य को सर्वदा कपिला गौ का ही आहरण (प्रयोग) करना चाहिये । शूद्र को कपिला का आहरण कभी नहीं करना चाहिये ॥५०। देव कार्यों के लिए विहित कपिला गौ के दूध को जो शूद्र पीता है वह महाघोर नरक समुद्र में चिरकाल तक सन्तप्त होता है ॥५१। सहस्रकोटि वर्षों में मनुष्यों द्वारा जो पाप कर्म किये हुए रहते हैं वे सब सुरज्येष्ठ ब्रह्मा को धृत स्नान कराने से निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं ॥५२। यहाँ नहीं सहस्रों कोटि कल्पों में जो पाप किये गये रहते हैं उन्हें भी पितामह का धृत स्नान इस प्रकार जला देता है जिस प्रकार अग्नि इन्धन को ॥५३। प्रतिपदा तिथि को पंकजोद्भव ब्रह्मा जी को केवल एक बार धृत द्वारा स्नान कराने से मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार कर विष्णुलोक में

१. लोके । २. सर्वकालेषु । ३. भक्तिपूर्वम् । ४. दशगुणम् । ५. सहस्रे तु ।

अयुतं यो गवां दद्याद्बूक्त्या^१ वै वेदपारगे । वस्त्रहेमादियुक्तानां क्षोरङ्गानेन यत्फलम् ॥५५
 सकृदान्ज्येन पयसा विरिञ्चि स्तम्येत् यः । गाङ्गेयेन स यानेन याति ब्रह्मसलोकताम् ॥५६
 स्नाय दध्ना सकृद्वीर कञ्जजं विष्णुमाप्नुयात् । मधुना स्नापयित्वा तु वीरलोके महीयते ॥५७
 स्नानभिक्षुरसेनेह यो विरिञ्च्चे: समाचरेत् । स याति लोकं सवित्स्तेजसा भास्यन्निभः ॥५८
 शुद्धोदकेन^२ यो भक्त्या स्नपयेत्यद्यसंभवम् । उत्सृज्य पापकलिलं स यात्येव सलोकताम् ॥५९
 वस्त्रपूतेन तोयेन न्नपेद्यः सकृद्विभूम् । स सर्वकालं दृप्तात्मः ज्ञाकवश्यत्वमाप्नुयात् ॥६०
 सर्वोषधीभिर्यो भक्त्या स्नपयेत्यद्यसंभवस् । कञ्जजेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ॥६१
 गन्धचन्दनतोयेन स्नपयेद्योम्बुजोद्भवम् । रुद्गलोकमज्ञाप्नोति तेजसा हेमसन्निभः ॥६२
 पाटलोत्पत्तपद्मानि करवीरणि सर्वदा । स्नानकाले प्रयोज्यानि स्थिराणि मुरभीणि च ॥६३
 एषामेकतमं स्नानं भक्त्या कृत्वा तु वेधसि । विधूय पापकलिलं विधिलोके^३ महीयते ॥६४
 कर्पूरागरुतोयेन स्नपयेद्यस्तु^४ कञ्जजम् । सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोके महीयते ॥६५
 गायत्रीशतजप्तेन विमलेनाभ्यसा विभूम् । स्नपयित्वा स्तुद्वूक्त्या ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥६६

पूजनीय होता है । ५४। दस सहस्र वस्त्र सुवर्णादि से अलंकृत गौरैँ भक्तिपूर्वक वेदज्ञ ब्राह्मणों को प्रदान करने से मनुष्य जो पुण्य प्राप्त करता है और (ब्रह्मा को) क्षीर स्नान कराने से प्राप्त होता है । ५५। जो मनुष्य धृत एवं क्षीर द्वारा ब्रह्मा को केवल एकबार स्नान कराता है वह गांगेय यान द्वारा ब्रह्म लोक को प्राप्त करता है । ५६। हे वीर ! पंकजोद्भव ब्रह्मा जी को केवल एक बार दही द्वारा स्नान कराने से विष्णु को प्राप्त करता है और मधु द्वारा स्नान कराकर वीरलोक में भूषित होता है । ५७। जो ईश के रस द्वारा ब्रह्मा को स्नान कराता है वह अपने देदीप्यमान तेज से आकाशमण्डल को भासित करते हुए सूर्य के लोक को प्राप्त करता है । ५८। इसी प्रकार केवल शुद्ध जल से जो मनुष्य पंकजोद्भव ब्रह्मा जी को भक्तिपूर्वक स्नान कराता है वह पापपंक से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को अवश्य प्राप्त करता है । ५९। जो वस्त्र द्वारा शुद्ध किये गये जल से परमैश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा को स्नान कराता है वह सर्वदा सन्तुष्टि लाभ करते हुए लोक को वश में करने की क्षमता प्राप्त करता है । ६०। सम्पूर्ण औषधियों द्वारा जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पद्मयोनि ब्रह्मा को स्नान कराता है वह सुर्वर्णमय विमान द्वारा ब्रह्मलोक में पूजित होता है । ६१। सुगन्धित द्रव्य एवं चन्दन के तैल द्वारा जो पद्मज ब्रह्मा को भक्तिपूर्वक स्नान कराता है वह अपनी सुर्वर्ण के समान निर्मल कान्ति से शोभा सम्पन्न होकर रुद्गलोक को प्राप्त करता है । ६२। ब्रह्मा के स्नान के अवसर पर कमल, पच, करवीर आदि स्थिर सुगन्धि वाले पुष्पों का सर्वदा प्रयोग करना चाहिये । ब्रह्मदेव के समक्ष उपर्युक्त सामग्रियों को रखकर जो मनुष्य इनमें से किसी एक स्नान को कराता है तो वह अपने सम्पूर्ण पाप पंकों से छुटकारा प्राप्त कर ब्रह्मलोक में पूजित होता है । ६३-६४। जो मनुष्य कपूर अथवा अगर मिश्रित जल द्वारा पंकजोद्भव को स्नान करता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त एवं विशुद्धात्मा होकर ब्रह्म लोक में पूजित होता है । ६५। सौ बार गायत्री मंत्र से विमल जल द्वारा सर्वैश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा को भक्ति पूर्वक एक बार स्नान कराने से ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है । ६६। विभु ब्रह्मा को सर्वप्रथम शीतल जल से

१. विप्रे । २. फलोदकेन । ३. विधुलोकमवाप्नुयात् । ४. पूजयेत् ।

विभु शीताख्युना स्नाप्य धारोणपयसा हतः । ततः पश्चाद् घृतस्नानं कृत्वा पापैर्विमुच्यते ॥६७
 एतत्स्नानत्रयं कृत्वा पूजयित्वा तु भक्तिः । अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति सनादः ॥६८
 मृत्कुम्भस्ताग्रजैः कुम्भैः स्नानं शतगुणं^१ भवेत् । रौप्ये लक्षोत्तरं प्रोक्तं हैमैः कोटिगुणं भवेत् ॥६९
 ब्रह्मणो दर्शनं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शनं परम् । स्पर्शनादर्द्धनं श्लेष्ठं घृतस्नातमतः परम् ॥७०
 दाचिकं मानसं परम् घृतस्नानेन देहिनाम् । क्षिणुते पदमजो यस्मात्स्नानं स्माचरेत् ॥७१
 स्नपयित्वार्द्देहूक्त्यत् यथा तच्छृणु भारत । शुचिवस्त्रधरः स्नातः कृतन्यासश्च भारत ॥७२
 चर्तुहस्तं लिखेत्पदं चतुर्भागितिभगितम् । मध्ये तस्य लिखेच्चहं इतैद्वादिशभिश्चितम् ॥७३
 सरोजानि ततोऽन्यस्य अक्षराणि समन्ततः । अक्षरं विहितं चान्यत्प्रभागे प्रकीर्तितम् ॥७४
 नानावर्जकसंयोगाल्लिखेच्चवानुपूर्वशः । कृष्णोत्कटं तु मध्यं स्यात्पीतरक्तं तथा परम् ॥७५
 सिंहं शुद्धं तु कर्तव्यं मध्यभागे तु वर्तुलम् । प्रभाकुण्डलकैबाह्यर्क्षेष्टयेच्चक्रनाटकम् ॥७६
 एवमालित्य ग्रलेन मूलमन्त्रं ततो न्यसेत् । मूर्च्छः पादतलं यादतप्राणवं विन्यसेत्युधः ॥७७
 नादरूपं न्यसत्तावद्यावच्छब्दस्य शून्यता । तत्कारं^२ विन्यसेन्मूर्धिन् सकारं मुखमण्डले ॥७८

फिर धारोण दुग्ध से तदनन्तर घृत से स्नान कराने वाला सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है । ६७। उन उर्पयुक्त तीनों स्नानों को कराकर फिर भक्तिपूर्वक पूजा करके मनुष्य सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है । ६८। पिंडी के कुभों से अथवा ताप्र के कुभों से स्नान कराने पर शतगुना अधिक पुण्यफल प्राप्त होता है । ६९। चाँदी के कुम्भ से लक्षगुणित तथा सुवर्ण के कुम्भ से कोटिगुणित फल प्राप्त होता है । ७०। भगवान् ब्रह्मा का यों तो दर्शन हीं परमपुण्यप्रद है किन्तु दर्शन से अधिक पुण्य स्पर्श करने का है । उस स्पर्श से भी अधिक पुण्य पूजन करने का है और उससे भी अधिक पुण्यप्रद घृत-स्नान कहा गया है । ७१। शारीरधारियों के वाचिक एवं मानसिक पापों को भगवान् पदमसम्भव घृत स्नान से नष्ट कर देते हैं इसीलिए लोग उनके स्नान की महत्ता बतलाते हैं । ७१। हे भरतवशो ! विधिपूर्वक स्नान करने के बाद जिस प्रकार ब्रह्मा की भक्तिपूर्वक पूजा की जाती है उसे बतला रहा हूँ, सुनिये । भरतकुलोत्पन्न सर्वप्रथम स्नानकर पवित्र वस्त्र धारण कर न्यास कर चार हाथ प्रमाण में कमल का निर्माण करे, जो चार भागों में विभक्त हो । उसे कमल के मध्य भाग में बारह दलों से संयुक्त एक चक्र का विन्यास करे । ७२-७३। और उसके चारों ओर निम्नलिखित सरोज नामक अक्षरों की रचना करे । पत्र भाग में जिन अक्षरों का विन्यास करना चाहिये वे ये कहे गये हैं । ७४। उन्हें कम्पर्वक विविध प्रकार के रंगों द्वारा लिखना चाहिए उनमें से जो बहुत काले रंग हों उनका प्रयोग मध्य भाग में होना चाहिये । पीले तथा लाल रंग का प्रयोग उस मध्य भाग के पश्चात् करना चाहिये । ७५। मध्य भाग में वर्तुलाकार श्वेत शुभ्र रंग का प्रयोग करना चाहिए । बाहर से प्रभावान् कुण्डलों से उस चक्र को अच्छी तरह आवेष्टित कर देना चाहिए । ७६। इस प्रकार यत्नपूर्वक उक्त चक्र का चित्र अंकित कर मूल मंत्र का न्यास करना चाहिये । बुद्धिमान् पुरुषमस्तक से लेकर पादतल तक प्रणवाक्षरों का विन्यास करे । ७७। तब तक नाद रूप वर्णों का न्यास करे जब तक शब्दों की शून्यता हो, मस्तक भाग में 'तत्' का न्यास करे । सकार का न्यास मुखमण्डल पर

१. दशगुणम् । २. इत आरम्भ्य गायत्रीप्रत्येकार्णन्यासः प्रोच्यते ।

विकारं कण्ठदेशे तु तुकारं सर्वसंधिषु^१ । वकारं हृदि मध्ये तु रेकारं पार्खदोर्धयोः ॥७९

णकारं दक्षिणे कुक्षी यकारं वामसंजंके । भकारं कटिनाभिस्यं गोकारं जनुपर्वम् ॥८०

देकारं जंघयोन्यस्य वकारं प्रादपशयोः । स्वकारमझगुष्ठयोन्यस्य धीकारं चोरसि न्यसेत् ॥८१

मकारं जानुदेशे तु हिकारं गुह्यमाश्रितम् । धिकारं हृदये न्यस्य योकारं चौष्ठयोन्यसेत् ॥८२

नकारं नासिकाप्ये तु प्रकारं नेत्रमाश्रितम् । लोकारं तु भुदोर्मध्ये दकारं पाणमाश्रितम् ॥८३

याकारं विन्यसेन्मूलिन तकारं केशमाश्रितम् । न्यासं कृत्वाल्लनो देहे देवे कुर्यात्तथा नृप ॥

सर्वोपचारसम्पन्नं कृत्वा निरीक्षयेत् ॥८४

कुंकुमागुरुकर्पूरचन्दनेन विमिश्रितम् । गन्धतोयमुपस्कृत्य गायत्र्या प्रणवेन च ॥

प्रोक्षयेत्सर्वद्व्याणि पश्चादर्द्धनमाचरेत् ॥८५

चक्रग्रन्थिषु सर्वासु प्रणवं विनिवेशयेत्^२ । पूयः प्लुतं समुच्चार्य प्रणवं सर्वतोमुखम् ॥८६

विन्यसेत्पद्ममध्ये तु पीठनिष्पत्तिहेतुवे ! आसने पृथिवी ज्ञेया सर्वसत्त्वधरा मतः ॥८७

हस्तोङ्कारे मता सा तु दीर्घोङ्कारे तु देवराट् । प्लुतस्तु व्यापयेद्वावं मोक्षदं चामृतात्मकम् ॥८८

करे । ७८। कण्ठ प्रदेश में 'वि' का न्यास किया जाता है । सर्वसन्धि प्रदेशों अथवा अंग सन्धि प्रदेशों में 'तु' कार का न्यास करना चाहिये । हृदय के मध्य में 'व' कार का न्यास किया जाता है । दोनों पार्खवप्रदेशों में 'रे' कार का न्यास करना चाहिये । ७९। दाहिनी कुक्षिमें 'ण' कार का न्यास होता है । इसी प्रकार वाम कुक्षिमें 'य' कार का न्यास करके कटि एवं नाभि प्रदेश में 'भ' कार का न्यास करना चाहिए । दोनों धुटनों के पोरों पर 'र्गों' कार का न्यास करना चाहिये । ८०। इसी प्रकार दोनों जंगलों में 'दकार' का न्यास कर दोनों चरण कमलों में 'व' कार का न्यास किया जाना चाहिए । दोनों अंगूठों में 'स्या' कार का न्यास कर वक्षस्थल में 'धी' आदि का न्यास करना चाहिए । ८१। जानु प्रदेश में 'म' कार का न्यास कर गुह्य प्रदेश में 'हि' कार का न्यास करना चाहिये । इसी प्रकार हृदय में 'धि' कार का न्यास कर दोनों ओठों पर 'यो' कार का न्यास करना चाहिए । ८२। नासिका के अग्रभाग में 'न' कार का न्यास कर नेत्रों में 'प्र' कार का न्यास करना चाहिए । दोनों भौंहों के मध्य भाग में 'च' कार का न्यास कर प्राण स्थान पर दकार का न्यास करना चाहिए । ८३। पुनः मूर्धभाग में 'या' कार का न्यास कर केशों में 'त' कार का न्यास करना चाहिए । हे राजन् ! इस प्रकार अपने शरीर में न्यास कर देव के शरीर में भी उक्त न्यास करना चाहिए और तदुपरान्त समस्त प्रसाधनों से भलीभांति सुशोभित कर निरीक्षण करना चाहिए । ८४। कुंकुम, अगर, कपूर तथा चंदन से विमिश्रित सुगन्धित जल से प्रणव सहित गायत्री मंत्र का उच्चारण कर समस्त द्रव्यों का प्रोक्षण (अभिषेचन) करना चाहिए । तदनन्तर पूजा करनी चाहिए । ८५। लिखित चक्र की सब ग्रन्थियों में प्रणव का न्यास करना चाहिये । फिर प्लुत (त्रिमात्रिक आयास एवं समय में) स्वर में उच्चारण कर सर्वतोमुखी प्रणव का पद्म के मध्य भाग में पीठ सिद्धि के लिए न्यास करना चाहिये आसन के रूप में पृथ्वी को भी जानना चाहिए । जो समस्त जीवों को धारण करने वाली मानी गयी है । ८६-८७। पृथ्वी को हस्त औंकार में माना गया है, दीर्घ औंकार में देवराज इन्द्र की सत्ता मानी गयी है । प्लुत औंकार तो मोक्षप्रद अमृतात्मक भावों में

यत्स्थो न निवर्तेत् योगी प्राणपरायणः । आवाहनं ततः कुर्यादक्षरेण परेण^१ तु ॥८९
 आवाह्य तेजोरूपं तु न्यसेन्मन्त्रवरांस्ततः । ततो विभादयेदेवं पद्मस्य चतुराननम् ॥९०
 तष्टारं सर्वजगतां विष्णुरुद्रविधानगम् । संभाव्य विधिवद्वक्त्या पश्चाच्चार्चनमाचरेत् ॥९१
 गन्धपुष्पादिसंभारान्कमात्स्वर्वान्मिकल्पयेत् । गयत्रीमुच्चरन्मन्त्रं सर्वकर्मणि कारयेत् ॥९२
 पुष्पं धूपं तथा दीपं नैवेद्यं सुमनोहरम् । लंडलङ्डुकश्रीबेष्टकासाराशोकर्तिकाः ॥९३
 स्वस्तिकोल्लोपिकादुग्धतित्वादेष्टतिलादिकाः । ऋतानि देवं पक्वानि लग्नखण्डगुडानि च ॥९४
 अन्यांश्च विधिद्वान्तरात्पूर्णानि विविधानि च । एवमादीनि सर्वाणि दापयेच्छक्तिं नृप ॥९५
 मूलमन्त्रेण देवस्य ततो देहं विभावयेत् । पूजयेच्चापि विधिना येन तं ते ब्रवीन्यहस् ॥९६
 प्राणायामन्त्रं कृत्वा देहसंशोधनाय वै । आवाहयेत्तोऽनन्तं धारयन्तं दद्यः सदा ॥९७
 ध्यात्वानन्तं ततो रुद्रं पद्माकिंजल्कमध्यगम् । ध्यायेद्विष्णुं ततो देवं न्यसेत्पद्मोदरोद्द्रवम् ॥९८
 एवं त्रिदेवता रुदं पद्ममध्येऽम्बुजोद्द्रवम् । पूजयेन्मूलमन्त्रेण पद्मोदरभवं नृप ॥९९
 ऋग्वेदं तु यजुर्वेदं सामदेवं च पूजयेत् । ज्ञानवैराग्यमैश्वर्यं धर्मं संपूजयेद्बुधः ॥१००

व्याप्त माना गया है ॥८८। प्राणवायु को वश में करने वाले योगी को यत्न पूर्वक साधनों में निरत रहकर निवृत्त न होना चाहिए। तदनन्तर परम अक्षर का उच्चारण करते हुए देव का आवाहन करना चाहिए ॥८९। इस प्रकार तेजोरूप देव का आवाहन करने के उपरान्त श्रेष्ठ मंत्रों का न्याय करना चाहिए। तदनन्तर पद्मदल पर अवस्थित उन भगवान् चतुरानन का ध्यान करे ॥९०। जो सम्पूर्ण चराचर जगत् के स्त्राणा एव विष्णु तथा रुद्र के विधान को अतिक्रान्त करने वाले हैं। इस प्रकार भक्ति के साथ विधिपूर्वक भगवान् को संभावित करने के बाद उनकी पूजा करनी चाहिए ॥९१। सुगन्धित द्रव्य पुष्पमाला आदि समस्त पूजा की सामग्रियों को क्रमणः एकत्रित करके ब्रह्मदेव की पूजा करनी चाहिए। उस समय सभी कार्य का आरम्भ मंत्र का उच्चारण करते हुए करना चाहिए ॥९२। पूजा के द्रव्य मुख्यतया ये हैं। पुष्प, धूप, दीप, मनोहरि नैवेद्य श्रीबण्ड, लङ्डू, श्री बेष्टकासार, अंशोकर्तिका, स्वस्तिकोल्लोपिका (?) दुध, तिल मिथित मिष्ठान, पक्व देव विविध फल, खांड और गुड़ से बने हुए विविध पदार्थ। इनके अतिरिक्त अन्यान्य विविध प्रकार के फलों का दान करना चाहिए। विविध प्रकार के बने हुए पूरे भी हों। हे राजन् ! अपनी शक्ति भर सभी पदार्थों का दान करना चाहिए ॥९३-९५। तदनन्तर मूल मंत्र से देव के शरीर का विधिवृत्त ध्यान करना चाहिए। उस समय जिस विधि से पूजा की जानी चाहिए उसे मैं तुम्हें बतला रहा हूँ ॥९६। शरीर शुद्धि के लिए तीन बार प्राणायाम करके सर्वदा देवों को धारण करने वाले अनन्त देव का ध्यान करना चाहिए ॥९७। अनन्त का ध्यान करने के अनन्तर पद्म के केशर में प्रतिष्ठित रुद्र का ध्यान करना चाहिए तत्पश्चात् भगवान् विष्णु का ध्यान कर ब्रह्म देव का न्याय करना चाहिए ॥९८। इस प्रकार तीनों देवों से आरुहं पंकज के मध्य भाग में प्रतिष्ठित ब्रह्मा की मूलमंत्र द्वारा पूजा करनो चाहिए ॥९९। हे राजन् ! तदनन्तर जान, वैराग्य, ऐश्वर्य एवं धर्म का पूजन करके क्रहवेद यजुर्वेद एवं सामदेव की पूजा बुद्धिमान पुरुष को करनी चाहिए ॥१००।

ईशानादिक्रमाद्वाजन्विदिशासु समन्ततः^१ । शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च ॥१०१
ज्योतिषं च महाबाहो उग्नेदाश्र छृत्स्नाः । इतिहासपुराणानि यथायोग्यं यथाक्रमम् ॥१०२
शिक्षा कल्पो व्याकरणं देवस्य पुरतः सदा । कल्पादयस्तत्त्वान्वे दिशासु विदिशासु च ॥१०३
महाव्याहृतयः सर्वाः प्राप्तेन समन्विताः । पूर्वादिक्रमयोगेन पूजयेद्विधिना नृप ॥१०४
शक्तयो ऋहग्रहस्त्रेत लोकरूपा व्यवस्थिताः । पूजनीयाः प्रयत्नेन मन्त्ररूपाः स्थिताः स्वयम् ॥१०५
अरकान्तरस्तत्यांश्र^२ वट् समुद्रान्तसमर्चयेत् । नक्षत्राणि ग्रहाधैव राशाद्वृत्ते विशेषतः ॥
दूर्ज्याः सर्वे यथान्यायं मुराग्रेषु व्यवस्थिताः ॥१०६
नागाश्च गरुडश्चैव पूजनीयस्तथाग्रतः । देवता ऋषयश्चैव सहिताः कुलपर्वताः ॥
तत्त्वेजोनिलदा: सर्वे पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥१०७
आचम्य विधिवत्पूर्वं मन्त्रपूतेन वारिणः । हृदयादीन्यसेदङ्गान्त्वदयादिषु कृत्स्नाः ॥१०८
शिखा नेत्रं तथा चर्म अस्त्रं च भरतर्षभः । महेन्द्रादिदिशश्चैताः पूजयेद्विधिवन्नृप ॥१०९
हृदयं पुरतः पूर्ज्यं शिरो देवस्य पृष्ठतः । पूर्वं संपूजयेद्वै मूलमत्रेण कृत्स्नाः ॥११०
विसर्जयेद्विश्यित्वा मुद्रां तु भरतर्षभः । अङ्कुशं^३ नरशार्दूल ह्राह्वाने कंजासादिगेत् ॥१११

ईशान कोण से प्रारम्भ कर सभी दिशाओं एवं कोणों में सभी ओर शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष एवं अन्यान्य उपवेदों की एवं इतिहास पुराणादि की यथायोग्य क्रमशः पूजा करनी चाहिए । १०१-१०२। इन सर्वों में शिक्षा, कल्प एवं व्याकरण इन तीनों को देव के सम्मुख रखना चाहिए, अन्य कल्पादिकों को अन्यान्य दिशाओं में निर्दिष्ट करना चाहिए । १०३। हे राजन् ! प्रणव के साथ सम्पूर्ण महाव्याहृतियों की पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः पूजा करनी चाहिए । १०४। ये महाव्याहृतियाँ ब्रह्मा द्वारा व्यवस्थित लोक स्थानपिणी शक्तियाँ हैं । उनको प्रयत्नं पूर्वक पूजा करनी चाहिए, वे मंत्र रूप में स्थित ब्रह्मा की मूर्तिमान शक्तियाँ हैं । १०५। उस चक्र के मध्य में न्यस्त अरों के अन्तर्भाग में प्रतिष्ठित छहों समुद्रों की भी विधिवत् पूजा करनी चाहिए । देवों के अग्र भाग में व्यवस्थित, नक्षत्रों, ग्रहों एवं विशेषतया राशियों की भी यथाविधि पूजा करनी चाहिए । १०६। उनके अग्रभाग में व्यवस्थित नागों की तथा गरुड़ की भी पूजा करनी चाहिए । जितने भी देवता एवं ऋषियों के समेत कुल पर्वत गण हैं वे सब भी उस (अनन्त) तेजोनिलय (निवास) स्वरूप हैं, अतः उनकी भी प्रयत्नं पूर्वक पूजा करनी चाहिए । १०७। मंत्र से पवित्र जल द्वारा विधि पूर्वक आचमन करके हृदय आदि समस्त अंगों का न्यास करना चाहिए । १०८। हे राजन् ! तदनन्तर सिर, नेत्र, चर्म तथा अस्त्र का न्यास कर पूर्व आदि दिशाओं की पूजा करनी चाहिए । १०९। देव के हृदय भाग की आगे से पूजा करनी चाहिए और शिरोभाग की पीछे से । मूल मत्र द्वारा सम्पूर्ण अंगों में देव की पूजा करनी चाहिए । ११०। भरतवशियों में श्रेष्ठ ! तदनन्तर मुद्रा दिखला कर विसर्जन करना चाहिए । नरशार्दूल ! ब्रह्मा के आवाहन में अंकुश तथा कमल का आदेश किया गया है । १११। जो मनुष्य पूणिमा तिथि को उपवास रखकर सर्वदा

१. समाहितः । २. यन्त्रदलान्तवर्तिन इत्यर्थः । ३. ऋषयश्च । ४. अल्पभारं च भारत । ५. मुकुलम् ।

यस्त्वेवं पूजयेद्देवं प्रतिपन्नित्यमेव च । उपोष्य इत्यचदश्यां तु स याति परमं^१ पदम् ॥११२
सुमन्तुरुखाच

आपो हिष्ठेति मंत्रोऽयं हृदयं परिकीर्तितम् । ऋतं सत्यं शिखा प्रोक्ता उद्गुत्यं नेत्रमःदिशेत् ॥११३
चित्रं देवानां मस्तामिति सर्वलोकेषु विश्रुतम् । वर्मला ते च्छादयामि कवचं समुदाहृतम् ॥११४
भूर्भुवः स्वरिति तथा शिरसे परिकीर्तितम् । गायत्रीमूलतन्त्रस्तु साधकः सर्वकर्मणाद् ॥११५
गायत्री पूजयेद्देवमोकारेणाभिमंत्रितम् । प्रणवेनापरान्सर्वानृदेवादीन्पूजयेत् ॥११६
आह्वाने पूजने वीर विसर्गं ब्रह्मणस्तथा । गायत्री परमो मंत्रो वेदमाता विभाविनी ॥११७
गत्प्रश्न्यक्षरतत्त्वेस्तु पूजयेद्यस्तु देवताम् । स गच्छेद्ब्रह्मणः स्थानं दुर्लभं यद्दुरासदम् ॥११८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां सहितायां आह्वे पर्वणि प्रतिपत्कल्पे
ब्रह्मणोऽर्चनविधिर्भूतं नाम सप्तदशोऽध्यायः । १७।

अथाष्टादशोऽध्यायः

प्रतिपत्कल्पसमाप्तिवर्णनम्

सुमन्तुरुखाच

पौर्णमास्युपवासं तु कृत्वा भक्त्या नराधिप । अनेन विधिना यस्तु विरिज्ञं पूजयेन्नरः ॥१

प्रतिपदा तिथि को उक्त प्रकार से देव की पूजा करता है वह परम पद को प्राप्त करता है । ११२

सुमन्तु बोले— ‘आपोहिष्ठा’ यह मंत्र हृदय न्यास के लिए कहा गया है०, ‘ऋतं च सत्यं च.....इत्यादि’ मन्त्र शिखा के लिए प्रयुक्त है । ‘उद्गुत्यं.....इत्यादि’ मंत्र नेत्र के लिए बतलाया गया है । ११३। ‘चित्रं देवानाम.....इत्यादि’ मंत्र मस्तक के लिए सब लोकों में प्रसिद्ध माना गया है । ‘वर्मणा तेच्छादयामि.....इत्यादि’ मंत्र कवच के लिए बतलाया गया है । ११४। ‘भूर्भुवः स्वः यह मंत्र सिर के लिए कहा गया है । गायत्री मंत्र सभी कर्मों में सिद्धि का प्रदाता कहा गया है । ११५। अङ्कार से संयुक्त गायत्री मंत्र द्वारा ही देव की पूजा करनी चाहिए । अन्य ऋचेदादि को केवल प्रणव द्वारा पूजित करना चाहिए । ११६। हे वीर ! देव के आवाहन, पूजन एवं विसर्जन में सर्वत्र वेदमाता परम पुण्य प्रदायिनी गायत्री ही प्रमुख मानी गयी हैं । ११७। गायत्री के अक्षर तत्त्वों से जो मनुष्य देव की पूजा करता है, वह ब्रह्मा के उस श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है जो परम दुर्लभ एवं दुष्प्राप्य कहा जाता है । ११८

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में प्रतिपदा तिथि में ब्रह्म की पूजन विधि का वर्णन

नामक सत्रहवाँ अध्याय समाप्त । १७।

अध्याय १८

प्रतिपदा कल्प की समाप्ति का वर्णन

सुमन्तु बोले—नराधिप ! जो मनुष्य उक्त विधि से भक्तिपूर्वक पूर्णिमा तिथि को उपवास रखकर

प्रतिपद्यां महाबाहो स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् । ऋग्भिर्विशेषतो^१ देवी विरच्चिर्वर्वास्तुदेवताः ॥२
 कार्तिके मासि राजेन्द्र पौर्णमास्यां चतुर्मुखम् । मार्गेण चर्मणा सार्थं सावित्र्या च परन्तप ॥४
 भ्रामयेन्नगरं सर्वं नानाविधिः समन्वितम् । स्थापयेद्भ्रामयित्वा तु सलोकं दगरं नृपः ॥५
 ब्राह्मणं भोजयित्वाप्ये शांडिलेयं प्रपूज्य च । आरोपयेद्वये देवं पुण्यवादित्रिनिष्वन्नः ॥६
 रथाप्ये शांडिलोपुत्रं पूजयित्वा विधानतः । द्राह्मणान्वाचयित्वा च कृत्वा पुण्याहमगलम् ॥७
 देवमारेष्यित्वा तु रथे कुर्यात्विजागरम् । नानाविधिः प्रेक्षणकैब्रह्मघोषेष्वं पुष्कलैः ॥८
 दृत्वा प्रजागरं हैवं प्रभाते ब्राह्मणं नृप । भोजयित्वा यथाशक्त्या भक्ष्यभोज्यरनेकशः ॥९
 पूजयित्वा जने^२ वीरं वस्त्रेण विधिवन्नृप । बीजेन च महाबाहो पयसा पायसेन च ॥१०
 ब्राह्मणान्वाचयित्वा च च्छांदेन विधिना नृप । कृत्वा पुण्याहशब्दं च रथं च भ्रामयेत्पुरे ॥११
 चतुर्वेदविवैविप्रभ्रमियेद्ब्रह्मणो रथम् । बहवृचार्थवर्णोच्चारैश्छन्दो गाधवर्युभिस्तथा ॥१२
 भ्रामयेद्वदेवस्य सुरज्येष्टस्य तं रथम् । प्रदक्षिणं पुरं सर्वं मार्गेण सुसमेन तु ॥१३
 न वोदव्यो रथो वीरं शूद्रेण शुभमिच्छता । नारुहेत रथं प्राज्ञो मुकुदैकं भोजकं नृप ॥१४

प्रतिपदा तिथि को ब्रह्मा की पूजा करता है, हे महाबाहु ! वह ब्रह्मपद को प्राप्त करता है । १। ऋचाओं द्वारा विरच्चिक की देवी की पूजाकरनी चाहिए जो उनकी वास्तु देवता मानी गई है । २। कार्तिक मास में देव की रथयात्रा की प्रशंसा की गई है । जिसको सविधि सम्पन्न करने वाला भक्तिभान्त पुरुष ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त करता है । ३। हे राजेन्द्र ! कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को सादित्री के साथ मृगचर्म पर भगवान् ब्रह्मा को स्थापित कर अनेक प्रकार के वाचों के साथ-साथ रथ को नगर में सर्वत्र घुमावें । हे राजन् ! इस तरह नगर में सर्वत्र घुमा लेने के बाद रथ को एक स्थल पर स्थापित कर दे ॥४-५। आगे शांडिलेय ब्राह्मण को विधिवत् पूजित कर भोजन करवाये । तदनन्तर उस शांडिली पुत्र ब्राह्मण को विप्रिपूर्वक पूजित कर रथ के अग्रभाग में बैठावे । उसके पूर्व ही पुण्यप्रद वाद्य एवं गीतादि के साथ देव को रथ पर स्थापित करे । ६। रथ के अग्रभाग में विधानपूर्वक उस शांडिली पुत्र की पूजा कर फिर ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन के उपरान्त देव को रथ पर आरोपित (प्रतिष्ठित) करते हुए रात भर जागरण करे । उस रात्रिको अनेक प्रकार के ब्रह्म घोष (वेदध्वनि) एवं मांगलिक समारोहों के बीच में जागरण करते हुए वह रात व्यतीत करे । राजन् ! फिर प्रातःकाल होने पर ब्राह्मण को पूजित कर अपनी शक्तिभर भोजनादि करा कर सन्तुष्ट करे । ७-९। हे नृप ! हे वीर ! तदनन्तर उस ब्राह्मण को वस्त्रद्वारा पूजित कर बीज दुधं एवं दुध से बने हुए अन्यान्य भक्ष्य भोज्य पदार्थों द्वारा सन्तुष्ट करे । १०। हे नृप ! फिर ब्राह्मणों द्वारा वेदविहित विधि से मन्त्रोच्चारण तथा पुण्याहवाचन कराकर रथ को पुर भर में घुमावें । ११। चारों वेदों के पारगामी पण्डित ब्राह्मणों द्वारा ब्रह्मा के रथ को घुमवाना चाहिये । उनमें बहवृच, आर्यवर्ण, छन्दोग एवं अध्वर्यु सभी होने चाहिये । १२। ऐसे उच्चकोटि के पण्डित व वेद ब्राह्मणों द्वारा सुरश्रेष्ठ के उक्त रथ से मुन्दर समतल मार्ग द्वारा समस्त नगर की प्रदक्षिणा करानी चाहिये । १३। हे वीर ! कल्याण कामी जन को शूद्र द्वारा देवश्रेष्ठ का उक्त रथ नहीं वहन करवाना चाहिये । हे नृप ! इसी प्रकार उक्त भोजक ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी दूसरे को रथ पर

१. अस्मि । २. तु तं वीरं वस्त्रेण विधिवन्नृप ।

ब्रह्मणो दक्षिले दार्शन सावित्रीं स्थापयेन्नपृष्ठ । भोजको वामपार्श्वेनु पुरतः कञ्जजं च्चसेत् ॥१५
एवं तूर्यनिनादैस्तु शंखशब्देश्च पुष्कलैः । श्रामयित्वा रथं राजन्पुरं सर्वं प्रदक्षिणम् ॥
स्त्रस्थाने स्थापयेद्भ्रयः कृत्वा नीराजनं बुधः ॥१६

य एवं कुरुते यात्रां भक्त्या यश्रापि पश्यति । रथं चाकर्षते यस्तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥१७
कार्तिके मास्यतावावास्यां यस्तु दीपश्चादीपनम् । शालायां ब्रह्मणः कुर्यात्स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥१८
प्रतिपदि ब्राह्मणांश्रापि गुडमिश्रैः प्रदीपकैः । दासोभिरहतैश्रापि स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥१९
गंधेषुष्यैर्नवैर्वस्त्रैरात्मानं पूजये न्व यः । तस्यां प्रतिपदायां तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम् ॥२०
महापुण्ड्रः तिश्चिरिद्य बहिराज्यप्रवर्तनी । ब्रह्मणः नुश्रियः नित्यं बालेया परिकीर्तिता ॥२१
ब्राह्मणान्यूजयित्वास्यामात्मानं च विशेषतः । स याति दरनं स्थानं विज्ञोरनितेजसः ॥२२
चैत्रे मासि महाबाहो युष्या प्रतिपदा परा । तस्यां यः इवपचं स्पृष्टा स्नानं कुर्यात्त्रोरोत्सम् ॥२३
न तस्य दुरितं किञ्चिच्चन्नाधयो व्याधयो नृप । भवन्ति कुरुशार्दूलं तस्मात्स्नानं प्रवर्तयेत् ॥२४
दिव्यं नीराजनं तद्वि सर्वरोगविनाशनम् । लोमहिष्वादि यत्किञ्चित्तसर्वं भूषयेन्नपृ ॥२५

बैठाना भी नहीं चाहिये । १५। हे राजन् ! भगवान् ब्रह्मा के दाहिने पार्श्व में सावित्री को स्थापित करना चाहिये । भोजक ब्राह्मण को वाम पार्श्व में रखना चाहिये । सम्मुख भाग में पद्मोद्भव को स्थापित करना चाहिये । १५। तुरुही आदि सुन्दर वाद्यों की एवं शंखों की तुमुल कराते हुए रथ को पुट की प्रदक्षिणा क्रम से घुमाते हुए अपने स्थान पर लाकर पुनः स्थापित कर देना चाहिये । १६। जो मनुष्य इस प्रकार की रथयात्रा सम्पन्न करना है तथा ऐसा रथयात्रा के उत्सव समारोह को भक्तिपूर्वक देखता है जो उक्त रथ को खींचता है वह ब्रह्म पद को प्राप्त करता है । १७। कार्तिक मास की अमावास्या तिथि को जो मनुष्य ब्रह्मा के आयतन में दीपदान करता है वह ब्रह्म पद को प्राप्त करता है । १८। इसी प्रकार कार्तिक मास से प्रतिपदा तिथि को दीपकों के साथ-साथ गुड मिश्रित अन्न एवं नूतन वस्त्रों द्वारा जो ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करता है वह ब्रह्मपद की प्राप्ति करता है । १९। उसी प्रतिपदा तिथि को गन्ध पुण्य एवं नवीन वस्त्रों द्वारा अपने को जो मनुष्य पूजित करता है वह ब्रह्म पद को प्राप्त करता है । २०। यह प्रतिपदा तिथि महान् पुण्यप्रद तथा बलि को राज्य प्रदान करने वाली है यह ब्रह्मा की परम प्रिय है इसकी बालेया (बलिराज्यदायिनी) प्रतिपदा के नाम से ख्यात है । २१। जो मनुष्य इस परम पुण्यप्रदायिनी तिथि को ब्राह्मणों को विशेष रूप से पूजित कर अपना पूजन भी करता है वह परम तेजस्वी भगवान् ब्रह्मण के लोक को प्राप्त करता है । २२। हे महाबाहु राजन् ! चैत्र मास की परम श्रेष्ठ प्रतिपदा तिथि भी परम पुण्यप्रदायिनी मानी गई है, उस पुण्य तिथि को जो चाँडाल का स्पर्श कर स्नान मात्र कर लेता है उसे कोई पाप नहीं लगता न कोई आधि-व्याधि ही होती है । हे कुरुशार्दूल ! अतः उक्त तिथि को स्नान अवश्य करना चाहिये । २३-२४। वह परम दिव्य भाजन है, जो समस्त रोगों का विनाश करने वाला है । हे राजन् ! उक्त पुण्य तिथि को यजमान को चाहिये कि जो भी गौ-भैंस आदि पशु उसके पास हों तेल तथा

१. अः नैवेद्यैः ।

तैलशस्त्रादिभिर्वस्त्रस्तोरणाधस्ततो नयेत् । ब्राह्मणानं तथा भोज्यं कुर्यात्कुरुकुलोद्ध्रह ॥२६
 तिक्ष्णे ह्येताः पराः प्रोक्तास्तिथयः कुरुनन्दन । कार्त्तिकेश्वयुजे मासि चैत्रे मासे च भारत ॥२७
 स्नानं दानं शतगुणं कार्त्तिके या तिथिर्नृप ! बलिराज्याप्तिसुखदापांशुलाशुभनाशिनी ॥२८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्दसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि प्रतिपत्कल्पसमाप्तिवर्णनं
 न।मण्डादशोऽध्यायः ।१८।

अथैकोनविंशोऽध्यायः शर्यात्प्राख्याने पुष्पद्वितीया वर्णनम्

सुमन्तरुखाच

द्वितीयायां तु राजेन्द्र अश्विनौ सोमपीतिनौ : च्यवनेन कृतौ यज्ञे मिष्टो मधवस्य^१ च ॥१
 शतानीक उवाच

कथमिन्द्रस्य निषतः कृतौ तौ सोमपीतिनौ । च्यवनेन हि देवानां पश्यतां तद्विस्त्र मे ॥२
 अहो महत्पत्स्तस्य च्यवनस्य महात्मनः । यदिन्द्रस्य बलादेव देवत्वं प्रापितावुभौ ॥३

शस्त्र तथा वस्त्रादि से भली भाँति विभूषित करे फिर उन्हें तोरण के नीचे से निकाले । हे कुरुकुलोत्पन्न ! उस अवसर पर ब्राह्मणों को विधवत् भोजन कराना चाहिए । २५-२६। हे कुरुनन्दन ! ये उपर्युक्त तीन आश्विन कार्तिक एवं चैत्र की प्रतिपदा तिथियाँ सब में परम श्रेष्ठ मानी गई हैं किन्तु हे भारत ! इनमें से कार्तिक की जो तिथि है वह स्नान तथा दान में सौ गुनी अधिक फल देने वाली है । वह परम पुण्यदायिनी कार्तिक की प्रतिपदा बलि को राज्य प्राप्त कराने वाली सुखदायिनी पणु कल्याणकारिणी तथा अशुभ विनाशिनी है । २७-२८।

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्म पर्व में प्रतिपदा कल्प समाप्ति वर्णन नामक अठारहवाँ अध्याय समाप्त । १८।

अध्याय १९ शर्याति के आख्यान में पुष्पद्वितीया का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—हे राजेन्द्र ! द्वितीया तिथि को देवराज इन्द्र को ही धोखा देकर च्यवन के यज्ञ में दोनों अश्विनी कुमारों ने सोमपान किया । १

शतानीक बोले—ब्रह्मन् ! देवराज इन्द्र को धोखा देकर च्यवन के यज्ञ में देवों के देखते-देखते दोनों अश्विनी कुमारों ने किस प्रकार सोमरस का पान किया ? उस महात्मा च्यवन का महान् तपोबल प्रतीत होता है, जो इन्द्र के बल से ही दोनों अश्विनी कुमारों को (सोमरस का पान कराकर) देवत्व का अधिकारी बनाया । २-३

१. केवलमार्वोऽयं पाठः सर्वेषु पुस्तकेषु ।

सुमन्तुहवाच

पुरातनयुगे सन्धौ पश्चिमेऽथ नराधिप । अवनो योगमास्थाय गंगाकूलेऽवलच्छिरम् ॥४
तत्र शर्यातिरायातः स्नातुभृत्तः^३ पुरैः सह । स्नात्वा भ्यर्च्छ ३पितृन्देवानामनायोपचक्रये ॥५
तत्र मूढं जनपदशपथत्पवि चेष्टनम् । विभूत्रोत्सर्संश्वदं ज्योतिराक्षस्तनिष्क्रियम् ॥६
भ्रमन्तं तत्रत्रैव समीक्ष्य स बलं नृपः ॥६

उवाच दुर्भाना राजा अमात्यान्त्वान्पुरोगमान् । अवनस्याश्रमोऽयं हि नापराद्वं तु केनचित् ॥७
त चोवाच यदा कश्चित्स्य राजस्तु पृच्छतः । तदा सुता सुकन्यास्य प्रोवाच पितरं वचः ॥८
मया दृष्टं तु यत्तात् सखिभिः सह कौतुकम् । तते वच्मि निवोधं त्वं शृणु तात् महाद्भुतम् ॥९
शिव्विजातारावद्भुलाः काञ्चीः पुरमेखलाः । गायन्त्यो विलपत्यश्च कीडन्त्यश्राव्र कानने ॥१०
कोकिलाद्विनिमश्रौं व्यक्ताव्यक्ताक्षरं कृशम् । सुकन्ये हेहिहेहीति वल्मीकाद्वच्छुदिगरन् ॥११
तत्र गत्वाद्भुतं तात् पश्यामः किल पावकोः । दीपाविवाचलशिलां भूयः कन्या उवाच ह ॥१२
मया च कौतुकात्तात् किमेतदित्यबुद्धितः । सूदितौ इर्भसूच्यग्रैस्ततेजः समुपारमत् ॥१३
तच्छृत्वा नृपतिस्त्रस्तस्तूर्णं तद्वनमागमत् । यत्रास्ते भार्गवः कष्टं वल्मीकान्तर्गतो मुक्तिः ॥१४

सुमन्तु ने कहा—नराधिप ! प्राचीन युग की अन्तिम सन्धि बेला में अवन योगमासी होकर चिरकाल तक गङ्गा-टट पर निवास करते थे ॥४। वहीं पर राजा शर्याति भी अपने स्त्रियों के साथ स्नान करने के लिए आये थे । स्नान करने के उपरात्त उन्होंने पितरों एवं देवताओं की अर्चना की और फिर राजधानी को लौटने का उपक्रम किया ॥५। इसी अवरार पर राजा ने मार्ग में एक जनपद (स्थान) देखा और यह भी देखा कि सारी सेना चेतनाहीन हो गयी है; थोड़ी सेष्टता उनमें शेष है । सब निरिन्द्रिय-से हैं । एक महान् ज्योति से सबके सब हतप्रभ और निष्क्रिय बन गये हैं । इधर-उधर व्याकुल दशा में धूमती हुई सेना को देखकर राजा ने अपने प्रधान मंत्रियों से व्यथित चित्त होकर कहा—‘यह महात्मा अवन का पवित्र आश्रम है, यहाँ आकर किसी ने कोई अपराध तो नहीं किया ॥६-७। उन लोगों में से जब किसी ने राजा के पूछ्ने पर कोई उत्तर नहीं दिया, तब उसकी पुत्री सुकन्या ने अपने पिता से यह बात कही ॥८। हे तात ! सखियों के समेत मैंने जो कुछ कौतुक देखा है, उसे आपसे निवेदित कर रही हूँ मुनिये । सचमुच वह महान् अद्भुत दृश्य है ॥९। इसी कानन प्रदेश की अनेक आभूषणों के ध्वनियों से तथा करधनी, नूपुर और मेखला की मधुर ध्वनियों से गुञ्जार करने वाली अनेक स्त्रियों को मैंने देखा, जो बहुत-सी बातें कर रही थीं और चिविध कीड़ीओं में निरत थीं ॥१०। मैंने कोकिलाओं की मनोहर ध्वनि भी सुनी । उसी अवसर पर बल्मीक प्रदेश से ‘सुकन्ये ! यहाँ आओ, यहाँ आओ ।’ इस प्रकार की कुछ स्पष्ट तथा कुछ अस्पष्ट एक ध्वनि भी मुझे सुनाई पड़ी ॥११ हे तात ! उस बल्मीक प्रदेश के पास जाकर हमने एक अद्भुत प्रकार की अग्नि के समान जाज्वल्यमान एवं वायुरहित अविचल शिखावाले दीपक के समान प्रकाशमान दो ज्योतियाँ देखीं ॥१२। देखकर इस कुपूरह से कि ‘ये क्या है ?’ अपनी निर्बुद्धिता से कुश (सूची) के अप्रभाग से कुरेद दिया और इससे वे ज्योतियाँ शान्त पड़ गईं ॥१३। सुकन्या की ऐसी बातें सुनकर राजा नस्त हो गया । और शीघ्र ही उस वन्य प्रदेश में गया जहाँ पर बल्मीक के अन्दर भार्गव अवन ऋषि

गत्वा स तत्र प्रोवाच प्रणिपत्य द्विजोन्नमम् । अपराह्णं मया^१ देव तत्क्षमस्व नमोऽस्तु ते ॥१५
स तं प्रोवाच नृपतिं मया ज्ञातं नराधिप । सुकून्यां मे प्रयच्छस्व निवेशार्थी^२ ह्यहं नृप ॥

अनुक्रमन्सुकून्यां तु दत्त्वा राजन्सुखी भव ॥१६

इत्युक्तः प्रददौ राजा सुकून्यामविचारयन् । ततः स्वपुरमागम्य अवस्तुचिरं सुखी ॥१७
सुकून्यापि पतिं लब्ध्वा सुप्रीताराधयत्तदा । राज्यशिरं परित्यज्य वल्कलाजिनधारिणी ॥१८
गते बहुतिथे काले वसन्ते समुपस्थिते । तपोद्योतितसर्वाङ्गीं रूपोदार्यगुणान्विताम् ॥

स्नातां स्वभायां च्यवन उवाच मधुराक्षरम् ॥१९

एहेहि भद्रे भद्रं ते शयनीयं तमाश्रय । अपत्यं जनयस्वाद्य कुलद्वयविवर्धनम् ॥२०

एवमुत्ता तु सा कन्या प्राञ्जलिः पतिमब्रवीत् । ^३नार्हस्यद्य सुकूल्याण सङ्घमं स्थण्डितेऽसमे ॥२१

मम प्रियं कुरुज्वाद्य ततो मामाह्नयस्व च । पितृगेहे यथातिष्ठं शयनीये सुसंस्कृते ॥२२

बहौरिक्वर्णद्यैः श्वेतपीतारुणाकुले । वस्त्रालङ्कारगन्धाद्यैस्तथा त्वमपि तत्कुरु ॥२३

कष्ट के साथ समाप्तीन थे । १४। वहाँ जाकर राजा ने द्विजवर्य च्यवन को प्रणाम कर निवेदन किया । देव ! मैंने महान् अपराध किया, उसे कृपया क्षमा कीजिये, आपको मेरा नमस्कार है । १५। च्यवन ने राजा शर्याति से कहा—‘राजन् ! मैं आपका अपराध जानता हूँ । तुम सुकून्या को मुझे दे दो, क्योंकि मैं अब गृह पर रहना चाहता हूँ । हे राजन् !’ इस अपराध की शान्ति के लिए तुम सुकून्या को देकर सुख प्राप्त करो । १६। च्यवन के इस प्रकार कहने पर राजा शर्याति ने बिना विचार किये ही सुकून्या को उन्हें समर्पित कर दिया और उसके बाद अपने पुर को वापस लौटकर चिरकाल तक सुखपूर्वक निवास किया । १७। उधर सुकून्या ने भी पति रूप में च्यवन की प्राप्त कर परम प्रसन्नतापूर्दिक उनकी आराधना की । उसने राजोन्नित वेशभूषा एवं अलङ्कारादि को त्याग दिया और केवल वल्कल तथा मृगचर्म धारण किया । १८। इस प्रकार उसके बहुत समय बीत गये और वसन्त का सुहावना समय उपस्थित हुआ । उस अनुकूल अवसर पर तपस्या से समर्त अङ्गों की शोभा जिसकी बहुत बढ़ गई थी, अपने अनुपम रूप, उदारता एवं सद्गुणों से जो परम शोभायभान हो रही थी, उस कहुस्नान से निवृत अपनी पत्नी सुकून्या से क्रियवर्य च्यवन ने मधुर स्वर से ये बतें कहीं । १९। ‘भद्रे ! यहाँ आओ ! शैव्या पर मेरे साथ शयन करो । तुम्हारा परम कल्याण होगा । आज दोनों कुलों की वृद्धि करने वाली शुभ सन्तति को मुझसे उत्पन्न करो । २०। पति च्यवन के इस अनुरोध पर सुकून्या ने अञ्जलि बांधकर निवेदन किया—कल्याणचरण ! इस ऊँचै-नीचे स्थण्डिल (चबूतरे) पर हम दोनों का समागम आज उचित नहीं है । २१। प्रथमतः आज मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये तब मुझे बुलाइये । अपने पिता के घर में मैं जिस प्रकार की सजाई गई सुन्दर शैव्या पर सोती थी, उसी प्रकार की शैव्या तुम भी बनवाओ । २२। वह सुन्दर शैव्या अनेक गैरिक लाल, पीले, हरे तथा इवेत वस्त्रों से सुशोभित रहती थी, यही नहीं उसमें अनेकानेक वस्त्र तथा अलङ्कारादि जहाँ शोभावृद्धि के लिए लगते थे । उसी प्रकार आप भी बनवायें तथा उस सुन्दर और

१. मयेति कून्यायां स्वत्वाभिमानात् । परिवारकृतस्यापि कर्मणः स्वामिन्यारापेऽस्य सार्वत्रिकत्वात् । २. निवेशं गच्छ वै नृप । ३. नार्हति ह्यद्य कल्याण आह्वानं स्थण्डिले मम ।

आत्मानं वयसोपेतं रूपवन्तं सुर्वचसम् । वस्त्रालङ्कारगन्धादृशं पश्देयं येन सादरम् ॥२४
 सुकन्याया वन्नः श्रुत्वा च्यवनः प्राह् दुर्मनाः । न मेऽस्ति वित्तं कल्याणि पितुस्तेऽस्ति यथा वने ॥२५
 स क्यं नूदयाम्यथ मुरुपश्च क्यं वद । प्रोवाच सा पति मूयः प्रहसन्ती कृताञ्जलिः ॥
 वित्तं ददावैलविलो रूपं वैरोचनोऽवदत् ॥२६
 च्यवनः प्राह् भावर्ह तां न॑ करिष्ये तपोव्ययम् । एवमुक्त्वा तपश्चोत्तं तताप सुचिरं तदा ॥२७
 अश्च तत्रागतौ वोरावश्विनौ कालपर्यात् । दृष्टवन्तौ सुकन्यां तौ दौप्त्या दै देवतामिव ॥२८
 उद्गम्योऽतुस्तां तौ का त्वं सुन्दरि छपिणी । किमर्भमिह एका त्वं तिष्ठसे कल्तवाभ्यः ॥२९
 सा तावुवाद तन्मङ्गी॒ शर्यांतिदुहिता ह्यहम् । भर्ता च च्यवनो महां कौ च दां मे तथो च्यताम् ॥३०
 ऊचतुश्चाश्विनौ देवावावां विद्धि नृपात्सजे । किं करिष्यसि तेन त्वं जीर्णे च कृशेन च ॥
 आवयोर्वृणु भर्तारभेकमेव यमि च्छसि ॥३१

रमणीक शश्या पर अपने ही समान अवस्था वाले, सुरुपवान्, परमतेजस्वी, विविध प्रकार के वस्त्रों तथा अलङ्कारों तथा सुगन्धित पदार्थों से सुशोभित आपको मैं आदरपूर्वक देखूँ । २३-२४। सुकन्या की ऐसी बातें सुनकर च्यवन ने व्यथित मन से कहा—‘हे कल्याणि ! यहाँ वन में मेरे पास तो ऐसा धन है ही नहीं जैसा तुम्हरे पिता के पास धन है । २५। पर उस धन से आज वन्य प्रदेश में वे सामग्रियाँ किस प्रकार प्रस्तुत हो सकती हैं । तो फिर उन सब सामग्रियों से मैं शश्या को तथा अपने को कैसे सजा सकता हूँ । यही नहीं मैं सुरुप भी कैसे हो सकता हूँ, कोई उपाय भी तो बतलाओ ।’ पति के इस प्रकार उत्तर देने पर सुकन्या ने हँसते हुए अञ्जलि बाँधकर पति से पुनः निवेदन किया—‘आराध्यचरण ! पूर्वकाल में ऐलविल ने अपने तपोबल के माहात्म्य से धन का दान किया था और विरोचन के पुत्र बलि ने रूप का दान किया था । २६। च्यवन ने अपनी स्त्री सुकन्या से कहा ‘कल्याणि !’ (बात तुम्हारी सच तो है) पर मैं ऐसे कार्य के लिए अपनी तपस्या का व्यय नहीं कर सकूँगा ।’ पति से इस प्रकार के उत्तर प्राप्त होने पर सुकन्या ने चिरकाल तक भीषण तपस्या की । २७। बहुत समय बीत जाने पर (उसकी उस कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर) परमवीर दोनों अश्विनी कुमार वहाँ आये । उन्होंने वहाँ आकर देवता की भाँति अपनी अनुपम कान्ति से परम शोभायमान सुकन्या को देखा । २८। उसके समीप जाकर उन्होंने पूछा—हे सुन्दरि ! परम रूप सौन्दर्यशालिनी तुम कौन हो ? किस कार्य के लिए यहाँ अकेली स्थित हो ? तुम्हारा आश्रय कौन है । २९। अश्विनी कुमारों के इन प्रश्नों के उत्तर में सुन्दरी सुकन्या ने कहा—मैं राजर्षि शर्याति की कन्या हूँ । मेरे पति महर्षि च्यवन मेरे आश्रय हैं । आप दोनों कौन हैं—मुझे कृपया यह बताइये । ३०। सुकन्या के इस प्रकार पूछने पर दोनों अश्विनी कुमारों ने कहा—राजपुत्रि ! हम दोनों को तुम अश्विनी कुमार देवता समझो । उस परम दुर्बल एवं वृद्ध पति को लेकर तुम क्या करोगी ? हम दोनों में से किसी एक को जिसे पसन्द करो, पति रूप में वरण करो । ३१। अश्विनी कुमारों की ऐसी बात सुनकर

१. तत्करिष्ये तपोव्ययात् । २. तत्त्वज्ञा ।

सा त्वद्बदीच्च मा भैवं वक्तुमहीं दिवौकसौ । भर्तारभनुरक्ताङ्गी यथा स्वाहा विभावसोः ॥३२

अश्विनावूचतुः

आपातु च विशत्वद्य च्यवनो वैष्णवीजलम् । ततो नौ मध्यगं ह्येकं वृणीव्यान्तं यमिच्छसि ॥३३
 तावद्गूतं सुकन्या तु गत्वा पृच्छ रक्षकं प्रतिश्व । तं च पृष्ठ्या पुनश्चाश्रागच्छ नौ सन्निधीं पुनः ॥३४
 आत्मनत्रव तिष्ठावो यज्ञदागमनं तत्र । सा गत्वा प्राह भर्तारभश्विनादेवसूचतुः ॥३५
 रूपवन्तं च भर्तारं करिष्यावो यमिच्छसि । अथ मध्यगतं ह्येकं भर्तृत्वेन वरिष्यसि ॥३६
 एवमस्त्विति तां प्राह भार्या च्यवनस्त्वद्वन् । सा तं गृहं जगामाशु यत्र तौ भिषजाङ्गुश्मी ॥३७
 सा तावुवाच च्यवनो यथोक्तं भवतोर्वदः । कुरुतं हृषिभिनौ क्षिप्रं तुकन्या चेप्तितं वृणोत् ॥३८
 तौ तं सङ्गृहं गङ्गायां प्रविष्टौ मुनिना तद् । मुहूर्तान्तु समुत्तिष्ठन्त्वपतञ्च श्रिया वृताः ॥३९
 शोभन्ते स्म महाबाहौ कन्तुक्षिद्वय तपोयुताः । कल्पादौ कलगे यद्वत्कञ्जालं व्योम वेधसः ॥

सुकन्या ने कहा, 'महाराज !' आप लोगों को देवता होकर ऐसी बातें नहीं करनी चाहिये । मैं अनने पतिदेव के चरणों में उसी प्रकार अनुरक्त हूँ जैसे स्वाहा विभावसु (अग्नि) में ॥३२

दोनों अश्विनी कुमारों ने कहा—सुकन्ये ! प्रथमतः यह होना चाहिये कि च्यवन यहाँ आवें और इस वैष्णवी (गङ्गा) के जल में प्रवेश करें । फिर हम लोगों में से तुम किसी एक को जिसे चाहो पसन्द कर लो ॥३३। पुनः उन दोनों ने सुकन्या से कहा—'तुम जाकर ऐसी बात अपने पति से पूछो, और उनसे पूछकर फिर यहाँ आकर हम लोगों को बतला जाओ ॥३४। जब तक तुम्हारा आगमन होगा, तब तक हम लोग यहाँ पर रुके हुए हैं ।' अश्विनी कुमारों के इस प्रस्ताव को सुनकर सुकन्या ने अपने पति च्यवन के पास जाकर कहा कि अश्विनी कुमार लोग ऐसी बातें कर रहे हैं ॥३५। कि 'हम तुम्हारे पति को अति रूपवान् बना देंगे और उस समय हम तीनों में से किसी एक को, जिसे पसन्द करना, पति रूप में बरण कर लेना ॥३६। सुकन्या की ऐसी बातें सुनकर च्यवन ने शीघ्रतावूर्धक उससे कहा—'ठीक है ऐसा ही करो ।' च्यवन के सहमत हो जाने पर सुकन्या शीघ्रतावूर्धक उह्ये साथ लेकर वहाँ पहुँची, जहाँ वे दोनों सुर वैष्णविराजमान थे ॥३७। वहाँ पहुँचकर च्यवन ने अश्विनी कुमारों से कहा—'सुरवैष्ण, जैसा कि आप लोगों ने सुकन्या से कहा है, शीघ्र अपने वचन का पालन कीजिए, और सुकन्या हम तीनों में से जिसे चाहेगी अपनी इच्छा के अनुसार वरण कर लेगी ॥३८। च्यवन के इस प्रकार कहने पर दोनों अश्विनी कुमारों ने उह्ये साथ लेकर गङ्गा में प्रवेश किया और थोड़ी देर उसमें रहकर रूप सौन्दर्य सम्पन्न होकर जल से बाहर निकले ॥३९। हे महाबाहु राजन ! परम तपस्वी वे तीनों जल का भेदन कर जब बाहर आये तो इस प्रकार शोभित हुए, जिस प्रकार कल्प के प्रारम्भ काल में ब्रह्मा के कलश में आकाश सुशोभित होता है । वे तीनों

उदकादुत्थितास्तस्मात्सर्वे ने समरूपका:

॥४०

सुकन्या तु ततो वृष्ट्वा भर्तारं देवरूपिणम् । हर्षेण नहताविष्टा न च तं वेद भारत ॥४१
 समकायाः समवयः समरूपाः समश्रियः । वस्त्रालङ्घारसवृशान्दृष्ट्वा चिन्तां गताः दिरम् ॥४२
 सा चिन्तियित्वा सुचिरं दैद्यदेवादुचाच ह । बीभत्तोऽपि स्या भर्ता परित्यक्तो न कर्हिचित् ॥४३
 भद्रद्विरात्मसदृशं कथं? त्यक्त्वा वृणे परम् । तस्मात्मेव भर्तारं प्रयच्छध्वं दिवौकासः ॥४४
 तया सबहुमानं तौ प्रज्जल्या प्रार्थितौ तदा । देवचिंहानि स्वान्वेव धारयन्तौ सुपूजितौ ॥४५
 सुकन्या निषुणं तौ तु सुनिरोक्ष्य च विह्वलाः । न रजो न निषेषो वै न स्पृशेते धरां पदे ॥४६
 अयं च सरजा न्तानेः मूर्मिप्राश्रित्य तिष्ठति । निषेषं चैव तस्यैवं ज्ञात्वा वै च्यवनो वृतः ॥४७
 च्यवने द्वाते सुकन्या पुष्पवृष्टिः पपात ह । देवदुन्दुभयश्चैव प्रावाद्यन्त अनेकशः ॥४८
 ततस्तु च्यवनस्तुष्टोऽद्विल्पधरस्तदा । उचाच तौ तु सुप्रीत अधिनौ किं करोमि वाम् ॥४९
 भार्या दत्ता कुतं रूपं देवानामपि दुर्लभम् । उपकारं वरिष्ठं यो न करोत्युपकारिणः ॥५०

एक ही समान रूप वाले होकर जल से जाहर निकले । ४०। भरत कुलोत्पन्न राजन् ! सुकन्या देव रूप में उपस्थित अपने पति को देखन्तर परम प्रतन्न तो हुई किन्तु पहचान नहीं सकी । ४१। क्योंकि वे सब समान शरीर वाले, समान अवस्था वाले तथा रूपवाले और समान कान्तिवाले थे । यही नहीं, वे वस्त्र अलंकार आहि भी एक ही समान धारण किये हुये थे । इस प्रकार उन तीनों को एक स्थिति में देखकर सुकन्या बहुत देर तक परम चिन्तित रही । ४२। और बहुत देर तक सोचने विचारने के बाद (जब उसे कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ा) तब अश्विनी कुमारों से बोली—‘सुरवैद्यो ! आप लोग यह भली भाँति जानते हैं कि मैंने अपने बीभत्स एवं रुण पति का भी कभी परित्याग नहीं किया । ४३। तो फिर आपके समान सुन्दर आकृति एवं वय वाले उसी पति को छोड़ द्वासरे को कैसे वरण कर सकती हैं ? इसलिए आप लोग कृपापूर्वक हमारे उसी पति को प्रदानं करें । ४४। सुकन्या द्वारा हाथ जोड़कर अत्यन्त प्रार्थना एवं पूजा करने के बाद उन दोनों अश्विनीकुमारों ने अपने देव-चिह्नों को धारण किया । ४५। पति के संशय में पड़ी हुई, विकल सुकन्या ने उन दोनों को भली भाँति पहचाना, उसने देखा कि उन दोनों के शरीर में न तो धूलि लगी हुई है न आँखों की पलकें गिरती हैं, पृथ्वी पर उनके दोनों पैर भी स्पर्श नहीं कर रहे हैं । ४६। और यह (च्यवन) धूल से धूसरित होकर पृथ्वी पर ही बैठा है, यही नहीं इसकी पलकें भी नीचे ऊपर आ जा रही हैं । इस प्रकार खूब पहचान लेने के बाद सुकन्या ने च्यवन का वरण किया । ४७, सुकन्या द्वारा च्यवन के वरण करने के अवसर पर आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई । देवगण अनेक प्रकार के बाजन तथा दुन्दुभि बजाने लगे । ४८। तदनन्तर दिव्य स्वरूपधारी च्यवन परम सत्त्वुष्ट होकर उन दोनों देववैद्यों से बोले— अश्विनी कुमारों ! मैं तुम लोगों पर परम प्रसन्न हूँ, बोलो, तुम्हारे लिए मैं इस समय क्या करूँ । ४९। क्योंकि तुम लोगों ने मुझे ऐसी गुणवती स्त्री प्रदान किया है और देवताओं को भी दुर्लभ ऐसा सुन्दर स्वरूप प्रदान किया है, जो व्यक्ति अपने उपकार करने वाले का कोई महान् प्रत्युपकार नहीं करता वह क्रम से

एकविंशत्तिगच्छेच्च नरकःणि क्लेषं दै । तस्मादहं वरिष्ठं वै करिष्येऽहममानुषम् ॥५१
 उपकारं भवद्वच्छां तु प्रीतः कुर्यां सुनिश्चितम् । यज्ञभागफलं दद्यां यदेवेष्टपि हुर्लभम् ॥५२
 एवमुक्त्वा तु देदेशौ विसर्ज महामुनिः । आजगामाश्रमं पुष्यं सहभायों सुदान्वितः ॥५३
 अथ शुश्राव शर्यातिश्श्रयवनं देवरूपिणम् । जगाम च महातेजा द्रष्टुं मुनिवरं वशी ॥५४
 तं दृष्ट्वा पाणेपत्यादौ प्रतिषूज्य यथार्हतः । मुक्त्वां तु ततो दृष्ट्वा प्रणिपत्याभिनन्द्य च ॥५५
 सत्वजे मूर्खिं लाघायततोत्सङ्गं^१ सज्जनयत् । सा^२ तस्याः^३ सत्वजे प्रेष्णा आनन्दाश्रुपरिप्लुता !!
 संस्थाप्य तां मुवा युक्तो नृपतिः सह भार्या ॥५६
 मूर्खोऽवावीन्त्सुन्तुष्टं च्यवनस्तं नराधिपम् । संभारं कुरु यज्ञार्थं यज्ञयिष्ये नराधिप ॥५७
 एवनुक्तः स नृपतिः प्रणिपत्य महामुनिम् । जगाम स्वपुरं हृष्टो यज्ञार्थं यत्वमाद्वरत् ॥५८
 सप्रेष्यान्प्रेषयन्क्षिप्रं यज्ञार्थं द्रव्यमाहरत् । मंत्रिपुरोहिताचार्यनानयामास सत्वरम् ॥५९

इकीसी पीढ़ी नक नरक को प्राप्त करता है । इसलिए तुम लोगों के उपकार से प्रसन्न होकर मैं भी तुम्हारा कोई महान् प्रत्युपकार अवश्य करूँगा, जिसे सर्वसामान्य मनुष्य नहीं कर सकते, यह हमारा सुनिश्चित मत है । मैं इस प्रकार के बदले मैं तुम लोगों को यज्ञ में भाग प्राप्त करने का अधिकारी बनाता हूँ, जिसे देवगण भी कठिनाई से प्राप्त करते हैं । ५०-५१ इस प्रकार वरदान देने के उपरान्त महामुनि च्यवन ने उन दोनों देव वैद्यों को विदा किया और स्वयं स्त्री समेत परम प्रसन्न होकर अपने पुण्य आश्रम को आये । ५३। कुछ समय बीतने के बाद जितेन्द्रिय एवं महान् तेजस्वी राजा शर्याति को भी च्यवन के दिव्य स्वरूप धारण करने की बात ज्ञात हुई तब वे देखने के लिए च्यवन के आश्रम को आये । ५४। सर्वप्रथम च्यवन को तथोत्तम स्वरूप सम्पन्न देखकर राजा ने प्रणाम किया और उचित पूजनाद द्वारा सत्कृत किया तदनन्तर अपनी पुत्री मुकन्या का चरण-स्पर्श तथा अभिनन्दन किया । ५५। उस अवसर पर राजा शर्याति ने मुकन्या को अपने अङ्गों में लेकर वात्सल्य भावना से अभिभूत होकर आलिङ्गन किया, उसके शिर का आघाण किया और पुनः गोद में उठा लिया । इसी प्रकार मुकन्या की माता ने भी अँखों में आनन्द के आँसू भरकर उसे गोद में उठाकर अपना वात्सल्य प्रेम प्रकट किया । कुछ देर बाद पल्ली समेत परम हर्षातिरेक से अभिभूत राजा ने मुकन्या को सादर बैठा दिया । ५६। तदनन्तर परम सन्तुष्ट राजा से च्यवन ने कहा—नराधिप ! यज्ञ के लिए समारम्भ करो । मैं तुमसे यज्ञ कराऊँगा । ५७। महामुनि च्यवन की ऐसी आदेशपूर्ण बात सुनकर राजा शर्याति ने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और सुप्रसन्नचित होकर अपने पुर को प्रस्थान किया । अपनी राजधानी में पहुँचकर राजा ने यज्ञ के लिए प्रयत्न प्रारम्भ किया । ५८। यज्ञीय सामग्रियों को एकत्र करने के लिए शीघ्र ही भृत्यों को चारों ओर भेज दिया, यज्ञ में व्यय करने के लिए द्रव्य को भी कोश से अलग करवाया । शीघ्रही मंत्री, पुरोहित, आचार्य आदि को भी

१. सन्धिरार्थः । २. मुकन्या । ३. मातुरित्यर्थः । तस्य इत्यस्य प्रेष्णोत्यनेत सम्बन्धः स्वस्वजे इत्यनेत समिति विभक्तिपरिणामः ।

समानीतेषु सर्वेषु तेषु द्रव्येषु भारत । आजगाम दिशुद्वात्मा च्यवनः सह भार्या ॥६०
 समूजितश्च शुश्राव महान्तं त्यगमौजस्म् । अन्यैश्च बहुभिः सार्द्धमश्चाङ्गरसमारपैः ॥६१
 प्रवर्तिते महायज्ञे यजमाने नुपोत्तमे । ऋत्विक्त्वकर्मनिरते हृयमाने हृताशने ॥
 आहृतः स्वागताः सर्वे भागार्थं त्रिविदालयाः ॥६२
 यज्ञभासे प्रवृत्ते तु शास्त्रेक्तेन विधानतः । आगतावशिवनौ तत्र आहृतौ च्यवनेन तु ॥६३
 आहृताने क्रियमाणे तु अशिष्माणं तु तदा नृप । प्रोवाल्लेन्द्रोऽथ च्यवनं नैतौ भागान्वितौ कुरु ॥
 देवानां विषजावेतौ न भागार्हो न दैवतौ ॥६४
 च्यवनस्त्वद्वामाहेदं देवौ ह्येतावुक्षाविं । ममोपकारिणावेतौ ददि भागं न संशयः ॥६५
 ततो ह्युवाच सक्रोधः स शक्तश्च्यवन रुषा । वित्रर्व प्रहरिष्यामि यदि भागं प्रयच्छति ॥६६
 एवमुक्तस्तु विप्रिष्ठिनं चोवाचापि किञ्चन । भग्नौ ददौ च सोऽशिक्ष्यां रुवमुदम्य मन्त्रतः ॥६७
 अथ उदास्य भिदुरं सोकुकामो दिवस्पतिः । स्तम्भितश्च्यवनेनाथ सवज्ञः स नराधिप ॥६८
 स स्तन्भयित्वात्विन्दं तु भागं दत्त्वाश्चिनोर्वशी । समाप्यामास तदा यज्ञकर्म यथार्थवत् ॥६९

राजदरबार में बुलवाया ।५९। भरतकुलोत्पन्न ! यज्ञ की समस्त सामग्रियों के जुट जाने पर दिशुद्वात्मा महामुनि च्यवन भी पत्ती समेत राजा के पुर में उपस्थित हुए ।६०। उस समय उनके साथ मुनिवर अत्रि, अंगिरा तथा भार्या भी थे । राजा शर्याति ने उन सबका विधिवत् सत्कार किया । महामुनि च्यवन ने पुर में राजा के त्याग, निष्ठा एवं महता की चर्चा सुनी । तददन्तर महायज्ञ प्रारम्भ हुआ ।६१। राजश्रेष्ठ शर्याति ने यजमान का आसन ग्रहण किया । ऋत्विग् गण अपने अपने कर्मों में निरत हो गये, हृताशन (अग्निदेव) में आहृति छोड़ी जाने लगी । महायज्ञ में भाग प्राप्त करने के लिए समस्त स्वर्गलोक निवासी देवगण स्वागत सत्कारपूर्वक अपने भाग ग्रहण के लिए समीप स्थित हो गये ।६२। शास्त्रोक्त विधि से उन सब को यज्ञ में भाग प्रदान करते समय उस महायज्ञ में च्यवन द्वारा आवाहित दोनों अश्विनीकुमार भी समुपस्थित हुए ।६३। इन्द्र ने च्यवन द्वारा दोनों अश्विनीकुमारों को आवाहित करते हुए जब देखा तब च्यवन से कहा—‘इन दोनों को यज्ञ में भाग मत लेने दो । ये तो देवताओं के वैद्य हैं, देवता नहीं हैं, अतः यज्ञ में भाग प्राप्त करने के अधिकारी भी नहीं हैं ।६४। इन्द्र की दातें सुनकर च्यवन ने इस प्रकार कहा—‘देवराज ! ये दोनों भी सुर हैं । इन दोनों ने हमारा महान् उपकार किया है, मैं इन्हें निश्चय ही यज्ञ में भाग द्वैगा ।६५। च्यवन की दुदत्पूर्ण वातें सुनकर इन्द्र ने रोषपूर्वक कहा—‘विप्रिष्ठच्यवन ! यदि तुम उन्हें भाग प्रदान करोगे तो यह जान लो कि मैं तुम पर (अनन्योपाय होकर) अवश्य प्रहार करूँगा ।६६।’ इन्द्र की इन बातों को सुनकर भी महामुनि च्यवन कुछ नहीं बोले, एकदम चुप रहे । और यथाविधि उन्होंने मंत्रों का उच्चारण करते हुए अपने सूवे को उठाकर दोनों अश्विनी कुमारों के लिए भाग प्रदान किया ।६७। च्यवन को यज्ञभाग प्रदान करते देख दिवस्पति इन्द्र ने अपने वज्र को उठाकर उन पर प्रहार करने की चेष्टा की । किन्तु हे राजन ! ऐसा करने का विचार करते ही वे वज्र समेत च्यवन द्वारा स्तम्भित (जडीभूत) कर दिये गये ।६८। इस प्रकार जितेन्द्रिय एवं महामुनि च्यवन ने इन्द्र को स्तम्भित करने के उपरान्त अश्विनी कुमारों के लिए विधिवत् यज्ञ भाग प्रदान किया । और इस प्रकार समस्त तत्त्वों के जानने वाले उस महामुनि ने उक्त महायज्ञ की समस्त क्रियाएँ विधिवत् सम्पन्न कीं ।६९। उसी

कञ्जजोऽथाजगामाशु आह च च्यवनं तदा । उत्तंश्चता मयं लेखो भागश्चास्त्वश्वनोरिह ॥७०
तथेन्द्रस्तमुवाचेदं च्यवनं प्रीतमानसः । जानामि शक्तिं तपसश्च्यवनेह तवोत्तमाम् ॥७१
स्थापनार्थं हि तपसस्त्व एतकृतं मया । अद्यप्रभृति भागोऽस्तु देवत्वं चाभिनोस्तथा ॥७२
यस्त्वमां तपसः खदाति त्वदीयां वै पठिष्यति । शृणुयाद्वापि शुद्धात्मः तस्य पुण्यफलं शृणु ॥७३
विरोचनसदो गत्वा गत्वा पुण्यसदस्तथा । कालेऽथ बामदेवस्य मुञ्जकेशसदस्तथा ॥

यौननयुक्तः स क्रीडास्तिष्ठतीति न संशयः ॥७४

एवमुक्त्वा जगामाशु देवः स्वभवनं वशी । च्यवनोऽपि सभार्यो वै शयार्तिश्चाश्रमं गतः ॥७५
अथापश्यद्विभानाभं भदनं देवनिर्मितम् । शय्यासनदरैर्जुष्टं सर्वकाषस्मृद्धिमत् ॥७६
‘उद्यानवापिभिर्जुष्टं देवेन्द्रेण समाहृतम् ।’ गोखण्डशिखं रेजे गृहं तदभुवि दुर्तभेदः ॥७७
मुभूषणाति दिव्यानि रत्नवत्ति महान्ति च । अरजन्मिस च वस्त्राणि दिव्यप्रावरणानि च ॥७८
दृष्ट्वा तत्सर्वमणितं सह पत्न्या महामुनिः । मुदुं परमिकां लेभे शकं च प्रशंसांस ह ॥७९
एवमिष्टा तिथिरियं द्वितीया अभिनोर्नृप । देवत्वं यज्ञभागं च सम्प्राप्ताविह भारत ॥८०

अवसर पर शीघ्रतापूर्वक कहीं से भगवान् ब्रह्मा आ गये और उन्होंने च्यवन से कहा—मुनिवर ! इस देवपति का स्तम्भत अब मुक्त कर दो । आज से दोनों अश्विनी कुमारों का भी यज्ञों में भाग रहेगा ॥७०। तदनन्तर देवराज इन्द्र भी परम प्रसन्न होकर च्यवन से बोले—‘महामुनि च्यवन मैं तुम्हारी तपस्या की परमशक्ति को जानता हूँ ॥७१। तुम्हारे तप की स्थाति को अधिक बढ़ाने के लिए मैंने ऐसा किया है । आज से मैं इनके देवत्व प्राप्त करने को भी स्वीकारता हूँ ॥७२। तुम्हारी यशः स्थाति की इस पुनीत कथा को जो पढ़ेगा अथवा विशुद्ध चित्त होकर सुनेगा, उसका कल सुनो ॥७३। वह प्राणी विरोचन (सूर्य-चन्द्रमा) की सभा में जाकर पुण्य (?) की सभा में जाकर पुनः समय पर यामदेव तथा मुञ्जकेश की सभा में जाकर, युवा होकर क्रीड़ा करता हुआ निवास करता है—इसमें तनिक सन्देह नहीं ॥७४। देवराज इन्द्र च्यवन से इस प्रकार की बातें कर अपने लोक को चले गये, जितेन्द्रिय महामुनि च्यवन भी पल्ली समेत अपने आश्रम को गये, राजा शयार्ति भी अपने नगर को गये ॥७५। च्यवन ने आकर अपने देव-निर्मित आश्रम को देखा, जो सुन्दर देव विमान की भाँति शोभत हो रहा था, उसमें परम सुन्दर शश्या तथा आसन यथास्थान लगे हुए थे, सभी कामनाओं दो पूर्ण करने वाली वस्तुओं की अधिकता थी ॥७६। आश्रम के समीप उद्यान तथा बावली भी देवेन्द्र की प्रेरणा से विराज रही थी । इस प्रकार उनका वह पवित्र आश्रम समस्त भूलोक में दुर्लभ सूर्यमण्डल के स्वर्ग की भाँति परम शोभित हो रहा था ॥७७। परम सुन्दर दिव्य रत्नजटित आभूषणों से भवन की शोभा वृद्धि हो रही थी । निर्मल वस्त्र तथा सुन्दर दिव्य फर्श एवं चैदोवों की निराली शोभा थी ॥७८। पल्ली समेत महामुनि च्यवन अपने आश्रम की इन सारी विभूतियों को देखकर परम आनन्द के समुद्र में गोता लगाने लगे और देवराज इन्द्र की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥७९

हे राजन् ! इस प्रकार यह द्वितीया तिथि अश्विनी कुमारों की परम इष्ट तिथि कही जाती है । भारत ! इसी पुण्यतिथि को उन्होंने देवत्व एवं यज्ञों में भाग प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त किया ॥८०।

उपोष्या विधिना येन तं शृणुष्व नराधिप । रूपं सुरूपं यो वाञ्छेदिद्वितीयायां नराधिप ॥८१
 कार्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां नराधिप । पुष्टाहारो वर्षमेदं भवेत्स नियतात्मवान् ॥८२
 कालप्राप्तानि यानि स्युर्हविष्यं युमुमानि तु । भुञ्जीयातानि दत्त्वा तु ब्राह्मणेभ्यो नराधिप ॥८३
 सौवर्णरैप्यदुज्याणि अथ वा जलजानि^१ च । ब्रतान्ते तस्य सन्तुष्टौ देवौ त्रिभुवनेऽधिनौ ॥८४
 ददतुः कामग दिव्यं दिमानमतितेजसन् । सुचिरं दिवि नारीभिर्लोकेभ्यौ रमतेऽधिनोः ॥८५
 इह नागत्य कल्पान्ते जातो विप्रः पुरस्कृतः । वेदवेदांगविदुषः सप्तजन्मान्तराण्यसौ ॥८६
 जातो जातः भवेद्विद्वान्ब्राह्मणेऽसौ कृते युगे । दाता यज्ञपतिर्वर्षमी आधिव्याधिविवर्जितः ॥८७
 पुत्रपौत्रैः परिवृतः सह पत्न्याऽदसच्चिरम् । मध्यदेशे भुग्नरे^२ धनिष्ठो राज्यभाग्भवेत् ॥८८
 इत्येषा कथिता तुभ्यं द्वितीया पुष्यसंजिता । फलसंज्ञा तथान्या स्यात्मुते वै मुञ्जकेशिनि ॥८९
 सुष्ठु पुण्या पापहरा विष्टरश्वसः प्रिया । अशून्यशयना लोके प्रख्याता कुरुनन्दन ॥९०

हे राजन् ! इस पुण्यतिथि में उपवास करने का विधान बता रहा हूँ, सुनिये ! हे राजन् ! जो लोग मुन्दर स्वरूप प्राप्त करने की कामना करते हैं, ने कार्तिक मास के शुक्लपक्ष की द्वितीया तिथि को प्रारम्भ कर एक वर्ष तक प्रत्येक द्वितीया को आत्मनिष्ठ एवं संयत होकर केवल पुष्टाहारी बनें । ८१-८२ हे राजन् ! उक्त नियम के अङ्गीकार कर लेने पर यथा समय जो-जो पुष्ट मिलें, उन्हीं की हवि बनावें और उन्हीं को ब्राह्मणों को दान देकर स्वयं भक्षण करें । ८३ हे नराधिप ! इसी प्रकार सुवर्ण का चाँदी का तथा जल में उत्पन्न होने वाले (कमल, कुमुदिनी) पुष्पों का भी इस व्रत में उपयोग किया जा सकता है । इस व्रत के समाप्त होने पर त्रिभुवन में रहने वाले यजमान के ऊपर दोनों अश्विनीकुमार परम सन्तुष्ट होते हैं । ८४ और उसे अमित तेजस्वी दिव्य विमान प्रदान करते हैं, जो इच्छानुसार चलने वाला होता है । स्वर्गलोग में वह प्राणी अश्विनी कुनारों की कृपा से दिव्य रमणियों के साथ निवास करता है । ८५ एक कल्प व्यतीत हो जाने के बाद पुनः मर्त्यलोक में आकर वह वेद वेदाङ्ग पारङ्गत ब्राह्मण के रूप में जन्म धारण करता है और प्रत्येक कार्यों में पुरस्कृत रहता है । इसी प्रकार सात जन्मों तक ब्राह्मण जाति में उत्पन्न होता है । ८६ इस प्रकार कृत युग में परम विद्वान् ब्राह्मण का जन्म धारण कर वहाँ पर दानी, यज्ञकर्ता, प्रवक्ता, आदिव्याधि रहित होकर पुत्र, पौत्रादि से समन्वित होकर चिरकाल तक जीवन धारण करता है । ८७ वह मध्य प्रदेश में किसी मुन्दर नगर में परम धार्मिक प्रवृत्ति सम्पन्न तथा राज्य पद का अधिकारी होता है । ८८ मैंने तुमसे इस प्रकार पुष्य द्वितीया की सारी कथा बतला दी अब इसके उपरान्त दूसरी फल द्वितीया नामक द्वितीया की कथा बतला रहा हूँ । जो पुत्र प्राप्ति के लिए मुञ्जकेश में परमप्रीति रखकर सम्भल की जाती है । ८९ हे कुरुनन्दन ! वह फल द्वितीया भगवान् की परम प्रिया, पुण्य प्रदायिनी तथा मंगलदायिनी है, लोक में उसकी अशून्य शयना द्वितीया के नाम से भी प्रसिद्धि है । ९० हे राजन् ! उस

१. काञ्चनानि तु । २. तु नगरे ।

तामुपोष्य नरो राजञ्छद्वाभक्तिपुरस्कृतः । ऋद्धिं वृद्धिं श्रियं वाय भार्ययः सह मोदते ॥११
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मो पर्वणि द्वितीयाकल्पे शर्यात्याख्याने
पुष्पद्वितीयावर्णनं नामैकोनविशोऽध्यायः । ११।

अथ दिंशोऽध्यायः

अशून्यशयना नाम्याः द्वितीयात्थेर्महत्त्वम्

शतानीक उवाच

भूहि जे द्विजशार्दूल द्वितीयां फलसंज्ञितम् । यामुपोष्य नरो योषिद्वयोगं नेह गच्छति ॥१
पत्न्या नरो मुनिश्रेष्ठ भार्या च पतिना' सह । तामहं श्रेतुमिच्छामि विधवा स्त्री न जायते ॥२
उपोषितेन येनार्द पत्न्या च सहितो नरः ॥२
तन्मे भूहि द्विजश्रेष्ठ श्रेयोर्थं नरयोषितम् । येन मे कौतुकं ब्रह्मञ्छु त्वापूर्वं प्रसर्पति ॥३
सुमन्तुरुवाच
अशून्यशयनां जाम द्वितीयां शृणु भारत । यामुपोष्य न वैधव्यं स्त्री प्रयाति नराधिप ॥
पत्नीवियुक्तश्च नरो न कदाचित्प्रजायते ॥४

परम पुण्यप्रदायिनी द्वितीया को श्रद्धा एवं भक्ति से युक्त होकर उपोषित करने वाला ऋषि-वृद्धि, लक्ष्मी तथा प्रियतमा पत्नी के समेत आनन्द का अनुभव करता है । १।

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में द्वितीयाकल्प में राजा शर्याति के ज्ञाराधन प्रसङ्ग में पुष्प द्वितीयावर्णन नामक उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त । १।

अध्याय २०

अशून्यशयना नामक द्वितीया तिथि का महत्त्व

शतानीक बोले—द्विजशार्दूल ! अब आप मुझसे उस फल द्वितीया का माहात्म्य बतलाइये जिसे उपोषित करने वाला इस लोक में कभी वियोग नहीं प्राप्त करता । १। हे मुनिश्रेष्ठ ! उस परम पुण्यप्रदायिनी द्वितीया के समग्र माहात्म्य को बतलाइये, जिसे उपोषित करने वाली पत्नी कभी अपने पति के साथ तथा पति अपनी स्त्री के साथ वियुक्त नहीं होता । पुण्यशाली व्रत की उपोषिका (व्रत करने वाली) स्त्री कभी विधवा नहीं होती । इसी प्रकार विधिपूर्वक उपोषक (व्रत करने वाला) पुरुष भी सर्वदा पत्नी सहित रहता है । २। हे द्विजश्रेष्ठ ! मानव स्त्रियों के कल्याण के लिए उस परम प्रभावशाली द्वितीया को (द्वितीया का व्रत विधान) मुझे बताइये । हे ब्रह्मन् । उसको सुनने के लिए मेरे मन में अपूर्व कीदूहल हो रहा है । ३

सुमन्तु ने कहा—भारत ! उस अशून्यशयना नामक द्वितीया को सुनो । हे नराधिप ! जिसे उपोषित करने वाली स्त्री कभी वैधव्य नहीं प्राप्त करती और पुरुष कभी विधुर जीवन नहीं बिताता

शेते जगत्पतिः कृष्णः श्रिया स्वार्थं यदा नृप । अशून्यशयना नाम तदा प्राह्णा हि सा तिथिः ॥५
कृष्णपक्षे द्वितीयायां श्रावणे मासि भारत । इदमुच्चारयेत्तनातः प्रणम्य जगतः पतिम् ॥

श्रीवत्सधारिणं देवं भक्त्याम्यर्ज्यं श्रिया सह ॥६

श्रीवत्सधारिण्ड्वीकान्तं श्रीवत्सं श्रीपतेऽव्यय । गार्हस्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम् ॥७
गावश्च मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु से जनाः ॥८

जामयो मा प्रणश्यन्तु भत्तो दाम्पत्यभेदतः । लक्ष्म्या वियुज्येऽहं देव न कदाचिद्यथा भवान् ॥९

तथा कलत्रसम्बन्धे देव जा मे वियुज्यताम् । लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा ॥१०

श्या ननाप्यशून्यास्तु तथा तु मधुसूदन । एवं प्रमाणं पूजां च कृत्वा लक्ष्म्यास्तथा हरेः ॥११

फलानि दद्याच्छायायामभीष्टानि जगत्पतिम् । नक्तं^१ प्रणम्यायतने हविर्भुज्जीत याम्यतः ॥१२

ब्राह्मणाय द्वितीयेऽहितं शद्याय दद्याच्च दक्षिणान् ॥१३

शतानीक उवाच

कानि तानि अभीष्टानि केशवस्य फलानि तु । योज्यानि शद्यने विप्र देवदेवस्य कञ्चित्ताम् ॥१४
किं च दानं द्वितीयेऽहितं दातव्यं ब्राह्मणस्य तु । भक्तैर्नर्द्विजश्रेष्ठ देवदेवस्य शक्तिः ॥१५

।४। हे राजन् ! जिस समय भगवान् कृष्ण (विष्णु) लक्ष्मी के साथ शयन करते हैं, उसी समय वह अशून्यशयना नामक द्वितीया उपेषित करनी चाहिए ।५। भारत ! श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि को यजमान स्नान कर जगत्पति, श्रीवत्सचिह्नधारी विष्णुदेव को भक्तिपूर्वक प्रणाम करे और लक्ष्मी समेत उनकी विधिवत् पूजा करे ।६। उस समय यह प्रार्थना करे—‘श्रीवत्सधारिणं ! श्रीकान्तं ! श्रीवत्स ! श्रीपति ! अव्यय भगवन् ! धर्म, अर्थ, काम स्वरूप त्रिवर्ग को देने वाली मेरी गृहस्थी कभी विनाश को न प्राप्त हो ।७। मेरी गौँएँ नष्ट न हों, मेरे परिवार के लोगों का नाश न हो ।८। हमारी बहनें तथा कुल-वधुएँ नष्ट न हों, उनके दाम्पत्य-प्रेम में किसी प्रकार की मेरी ओर से बाधा न पड़े । हे देव ! जिस प्रकार आप कभी लक्ष्मी से वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार मैं भी इस लोक में कभी लक्ष्मी से वियुक्त न होऊँ—यह मेरी कामना है ।९। हे देव ! उसी प्रकार मेरा स्त्री सम्बन्ध भी कभी खण्डित न हो । हे वरद ! जिस प्रकार आपकी शश्या कभी लक्ष्मी से सूनी नहीं रहती, उसी प्रकार मेरी भी शश्या कभी सूनी न हो ।१०। हे मधुसूदन ! ऐसी कृपा मेरे ऊपर कीजिए । यजमान उपर्युक्त रीति से लक्ष्मी तथा हरि की पूजा कर छाया में जगत्पति के उद्देश्य से फल प्रदान करे । रात के समय मन्दिर में (भगवान् को) प्रणाम कर संयत भाव से हवि का भक्षण करे ।११-१२। फिर दूसरे दिन अपनी शक्ति के अनुकूल ब्राह्मणों को दक्षिणा दें ।१३

शतानीक बोले—हे विप्र ! भगवान् केशव के अभीष्ट वे कौन से फल हैं, जिन्हें उनकी शश्या पर दान करना चाहिये ।१४। और दूसरे दिन भगवान् के निमित्त यथाशक्ति ब्राह्मण को कौन-सा दान करना चाहिये ? हे द्विजश्रेष्ठ ! इन दोनों बातों का ठीक उत्तर हमें दीजिए ।१५

१. नक्तं च प्रणम्याणु ।

सुमन्तुरुवाच

यानि तत्र महाबाहो काले सन्ति फलानि तु। मधुराणि सुतीदार्णि न नापि कटुकानि तु ॥१६
 दातव्यानि नृपश्रेष्ठ स्वशक्त्या शयने नृप । मधुराणि प्रदत्तानि नरो बल्लभतां व्रजेत् ॥१७
 योषिच्च कुरुशार्दूलं भर्तुवल्लभतामियात् । तस्मात्कटुकतीव्राणि स्त्रीतिङ्गानि दिवर्जयेत् ॥१८
 खर्जूरमातुलिङ्गानि श्वेतेन शिरसा सह : फलानि शयने राजन्यज्ञभागहरस्य तु ॥१९
 देयादि कुरुशार्दूलं स्वशक्त्या मुञ्जकेशिते । एतान्येव तु विप्रस्य गाङ्गेयनहितानि तु ॥२०
 द्विनीयेऽद्विप्रदेयानि भक्त्या खक्त्या च भारत । वासेदानं तथा धान्यफलदानसमन्वितम् ॥

गः गङ्गेयस्य विशेषणं धान्यदानं प्रचक्षते ॥२१

एवं करोति द: सन्देइनरो मासचतुष्टदम् : ततो जन्मत्रयं वीरं गृहभङ्गो न जायते ॥२२
 अशून्यशयनश्वासौ धर्मकामार्थसाधनः । भवत्यव्याहृतेभ्यः पुरुषे नात्र संशयः ॥२३
 'नःरी च राजन्धर्मज्ञा व्रतमेतद्यथाविधि ! या करोति न सा शोच्या बन्धुर्दर्गास्य जायते ॥२४
 वैधव्यं दुर्भगत्वं च भर्तृत्यां च सत्तम । नप्रोति जन्म त्रियतमेतच्चीर्त्वा^१ नहावतम् ॥२५
 अदत्त्वा कटुकानीह फलानि कुरुनन्दन । खर्जूरमातुलिङ्गानि दृहत्कलशिरांसि च ॥२६

सुमन्तु ने कहा—हे महाबाहु ! अपने समय में जो न अत्यन्त मधुर न अत्यन्त तीव्र, न अत्यन्त कड़वे (फल) हों, हे नृपश्रेष्ठ ! उहें अपनी शक्ति के अनुकूल भगवान् की शय्या पर प्रदान करना चाहिए। मधुर फलों के दान करने से यजमान प्रिय होता है। १६-१७ हे कुरुश्रेष्ठ ! इसी प्रकार मधुर फल प्रदान करने वाली स्त्री भी पति की प्रियतमा होती है। इसलिए कड़वे, तीव्र और स्त्री भावना की अभिव्यक्ति करने वाले फलों को नहीं देना चाहिये। १८ हे कुरुशार्दूल ! विशेषतया सूजूर, मातुलिङ्ग (मातुलिङ्ग अर्थात् बिजौरा) श्वेत शिर अर्थात् नारियल का फल यज्ञ भाग प्राप्त करने वाले भगवान् की शय्या पर निवेदित करना चाहिये। १९ हे राजन् ! इन उपर्युक्त फलों का दान अपनी शक्ति के अनुसार मुञ्जकेशी को देना चाहिये। और यही वस्तुएँ गङ्गा जल समेत दूसरे दिन ब्राह्मण को यथाशक्ति भक्तिपूर्वक दान भी देना चाहिये। २०। उस समय वस्त्र दान, अन्न फलदानादि के साथ ही उक्त दान देना चाहिये। सुवर्ण दान की विशेषता मानी गई है, यों धान्य दान की भी प्रशंसा की जाती है। २१। जो मनुष्य इस प्रकार चार मास तक उपर्युक्त नियमों का भली भाँति पालन करता है, हे वीर ! उसके तीन जन्म तक कभी गृहभङ्ग नहीं होता (अर्थात् तीन जन्म तक उसकी गृहस्थी नहीं बिगड़ती)। २२। धर्मार्थ काम का मुख्य साधन रूप यह अशून्य शयन नामक द्रुत कहा जाता है, इसका पालन करने वाले पुरुष का ऐश्वर्य कभी न्यून नहीं होता—इसे निश्चय समझिये। २३। उक्त व्रत को यथाविधि पालन करने वाली धर्मज्ञ स्त्री भी अपने परिवार वर्ग के लिए शोचनीय नहीं होती (अर्थात् उस स्त्री के विषय में परिवार के लोगों को कोई चिन्ता नहीं होती)। २४। हे सत्तम ! वह पुण्यशीला नारी कभी वैधव्य, दुर्भगत्व एवं पति के द्वारा त्याग देने जैसी दुस्त्यति को इस महा व्रत को सम्पन्न करने के कारण तीन जन्म तक नहीं प्राप्त होती। २५। हे कुरुनन्दन ! कड़वे फलों को न देकर जो व्यक्ति इस महा व्रत में सूजूर, बिजौरा व नारियल के फलों का ब्राह्मणी के लिए दान करता है, अथवा अन्यान्य मधुर फलों का दान

दत्त्वा द्विजेभ्यो राजेन्द्र मधुराणि पराणि च । तस्मात्स्वशक्त्या यत्तेन देयानि मधुराणि च ॥२७
इत्येषा कथिता कृष्णद्वितीया तिथिरहत्तमा । यामुपोष्य नरो राजन्‌द्विं वृद्धिं तथा वजेत् ॥२८

शतानीक उवाच

भवता कथितेण ई द्वितीया तिथिरहत्तमा । अभिभ्यां द्विजरार्द्वल कथमस्यां जनार्दनः ॥२९
सन्नूज्यः फलसंज्ञायां कथितः पश्या तह । तदत्र कौतुकं महां सुमहज्जायते द्विज ॥३०

सुमन्तुरुवाच

एवमेतन्न सन्देहो तथा बदलि भारत ! अश्विनेर्वै तिथिरियं किं तु वाक्यं निबोध मे ॥३१
अशून्यशयनार दत्तेर 'दिज्ञोरमिततेजसः । अभिभ्यां कुरु शार्दूलं प्रीतये मुञ्जकेशिनः ॥३२
तावेव कुरुशार्दूलं पूज्येतेऽन्नं महीपते । नासत्यौ भगवान्विष्णुर्दत्तम् श्रीर्विभाव्यते ॥३३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां आह्ये पर्वणि
द्वितीयाकल्पसमाप्तौ विशोऽध्यायः । २०।

करता है—वह उपर्युक्त फल अवश्यमेव प्राप्त करता है। इसलिए यजमान को प्रयत्नपूर्वक मधुर फलों का दान करना चाहिये । २६-२७। हे राजन् ! उस परम उत्तम फल प्रदान करने वाली कृष्ण द्वितीया तिथि को इस प्रकार मैं बतला चुका, जिसको उपोषित करने वाला कृद्धि एवं वृद्धि को प्राप्त होता है । २८

शतानीक ने कहा—द्विज शार्दूल ! आपने उत्तम (अशून्य शयना) द्वितीया तिथि की पुण्यदायिनी कथा अश्विनी कुमारों के साथ जो सुनाई है, और जो यह बतलाया है कि इसमें तथा पुष्प फल द्वितीया में लक्ष्मी के राथ भगवान् जनार्दन की पूजा किस प्रकार होती है ? हे द्विज ! उन सब को सुनकर हमारे मन में महान् कातृहल हो रहा है । २९-३०

सुमन्तु बोले—हे भरतकुलोत्पन्न राजन् ! जैसा तुम कह रहे हो, वह सब सत्य है । ये दोनों तिथियाँ उन दोनों अश्विनी कुमारों की पूजा के लिए हैं, किन्तु मेरी बात फिर से स्पष्ट सुनिये । ३१। इन तीनों में से अशून्य शयना जो है, वह अमित तेजस्वी भगवान् विष्णु के लिए है, जिसे मुञ्जकेशी भगवान् की प्रीति के लिए अश्विनी कुमारों ने दिया था । ३२। उन दोनों अश्विनी कुमारों की इन्हीं दिनों पूजा होती है और उनमें नासत्य साक्षात् भगवान् विष्णु हैं और दक्ष लक्ष्मी रूप जाने गये हैं । ३३

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में द्वितीया कल्प समाप्ति नामक
बीसवाँ अध्याय समाप्त । २०।

अथैकविंशोऽध्यायः तृतीयातिथिव्रतमाहात्म्यम्

सुमन्तुरुवाच

पतिव्रता पतिप्राणा पतिशुश्रूद्देष रता । एवंविधापि या प्रोक्ता शुद्धिः संशोभना सती ॥१
सोपवासा तृतीयं तु 'लवणं पारदर्जयेत् । सा गृह्णाति च वै भक्त्या व्रतमानरणत्तिकम् ॥२
गौरी ददाति सन्तुष्टा रूपं सौभाग्यमेव च । लावण्यं ललितं हृद्यं श्लाघ्यं पुसां मनोरमम् ॥३
पुंसो मनोरमा नारी भर्ता नार्या मनोरमः । गौरीद्रतेन भद्रति राजल्लवणवर्जनात् ॥४
इदं व्रतं प्रति विभो धर्मराजस्य शृण्वतः । उमया च युरा प्रोक्तं यद्वाक्यं तन्निबोधे मे ॥५
मया व्रतमिदं सृष्टं सौभाग्यकरणं नृणाम् । मत्यें तु नियता नारी व्रतमेतच्चरिष्यति ॥

सह भर्ता स मोदेत यशा भर्ता हरो मम ॥६

याच कन्या न भर्तारं विन्दते शोभना सती । सा त्विदं व्रतमुद्दिश्य भवेदक्षारभोजना ॥

मच्चित्ता मन्त्वनाः कुर्यान्मद्भूत्का मत्परिधह ॥७

अध्याय २१ तृतीया तिथि व्रत का माहात्म्य

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! परम पतिव्रता, पतिप्राण, पति की शुश्रूषा में रात दिन निरह रहने वाली एवं इसी प्रकार के अन्यान्य राद्गुणों से समन्वित परम सुन्दरी पवित्र भावनाओं से पूत जो जीती कही गई हैं, उसको तृतीया व्रत को उपवास रखकर लवण का त्याग करना चाहिये । इस पुनीत व्रत को जो स्त्री भक्तपूर्वक मरण पर्यन्त रखती है उसे सन्तुष्ट होकर गौरी देवी रूप एवं सौभाग्य प्रदान करती हैं । पुरुषों की दृष्टि में परम मनोहर रूप लावण्य एवं हृदय को वश में करने वाली सरलता भी उसे गौरी के प्रसाद से प्राप्त होती है । १-३। हे राजन् ! पुरुष की दृष्टि में मनोरमा नारी एवं स्त्री की दृष्टि में मनोरम पति गौरी के व्रत से एवं नमक वर्जित करने से होते हैं । ४। विभो ! इस पुनीत व्रत के विषय में पार्वती ने धर्मराज से पुराकाल में जो कुछ कहा है उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये । ५। पार्वती ने कहा था—‘मैंने इस परम पुनीत व्रत का निर्माण मुत्युलोक में मनुष्यों के सौभाग्य की वृद्धि के लिए किया है । नियमों का पालन करती हुई स्त्रियाँ मर्त्यलोक में इसका पालन करेंगी । इस व्रतपालन के माहात्म्य से वे स्त्रियाँ अपने मनोमुकूल पति के द्वारा ठीक उसी प्रकार का आनन्दानुभव करेंगी जैसे मैं अपने पति शिव के साथ । ६। जो कुमारी सुन्दरी कन्या उत्तम पति को सीधे नहीं प्राप्त करती वह हमारे इस व्रत का पालन करते हुए नमक वर्जित भोजन करे । उस समय उसका चित्त मुझमें हो, उसका मन मुझमें हो, उसकी भक्ति मुझमें हो, उसकी समस्त आकांक्षाएँ मुझमें ही निहित हों । ७। उसे उस समय सुवर्णमयी गौरी की स्थापना करनी चाहिये,

गौरीं संस्थाप्य सौवर्णीं गन्धालङ्कारभूषिताम् । वस्त्रालङ्कारसंबोतां पुष्पमण्डलमण्डिताम् ॥८
 लवणं गुडं घृतं तैलं देव्यै शक्त्या निवेदयेत् । कटुखण्डं जीरकं च पत्रशाकं च भारत ॥९
 गुडघृष्टास्तथापूपान्लडलेष्टांतथा नृप । ब्राह्मणे व्रतसम्पन्ने प्रदद्यात्मुबहुश्रुते ॥१०
 शुक्लपक्षे सदा देयः यथा शक्त्या हिरण्मयी । धनहीने तु भक्त्या^३ च मधुवृक्षमयी नृप ॥११
 अच्छ्या नित्यं संनिधानातत्र गौरी न संशयः । अक्षरलवणं रात्रौ शुक्ते चैव सुवाग्यता ॥१२
 गौरी सम्भिता नित्यं भूमौ प्रस्तरशायिनी^४ । एवं नियमयुक्तस्य^५ देव्या यत्समुदाहृतम् ॥१३
 तच्छृणुष्व महाबाहो कथ्यमानं महाफलम् । भर्तारं तु लभेत्कन्या यं वाच्छ्रुतिं भनोत्नुज्ञाम् ॥१४
 सुचिरं सह वै भट्ट्रा क्रीडित्वा^६ इहैव सा । सन्ततिं च प्रतिष्ठाप्य सह तेनैव गच्छति ॥१५
 हेलिलोकं चन्द्रलोकं लोकं चित्रशिखण्डिनः । गत्वा याति सद्वो राजन्वासदेवस्य भारत ॥१६
 विधवा तु यदा राजदेव्या व्रतपरायणा^७ । भर्तारं नियता नित्यं सदार्चनपरायणा ॥१७

और उस मूर्ति को जुगन्धितं द्रव्यं एवं अलंकारों से विधिवत् दिभूषित करना चाहिये । सुन्दर वस्त्र, अलंकार एवं पुष्प, माला से विभूषित करना चाहिये । इसके उपरान्त नमक, गुड, धी और तैल यथाशक्ति देवी के लिए समर्पित करें । किर कटुखण्ड (गोलमिर्च), जीरा, पत्रशाक, गुड मिथित अथवा खाँड से लपेटे गये पूप किसी ऐसे बहुश्रुत ब्राह्मण को दान करे, जो ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त कर गृहास्थाश्रम में हो । ८-१०। शुक्लपक्ष की तृतीया को सर्वदा यथाशक्ति सुवर्णमयी प्रतिमा दान करनी चाहिये । हे राजन् ! निर्धनता की अवस्था में मधु (महुआ) दृक्षमयी प्रतिमा दान करनी चाहिये । ११ देवी की पूजा सर्वदा उसी मूर्ति के समीप से करनी चाहिये, उसमें गौरी का निवास रहता है—इसमें कोई सन्देह नहीं । उस समय व्रत पालन करने वाली स्त्री को वाणी पर संयम रखकर रात्रिकाल में नमक के बिना भोजन करना चाहिये । १२। उस समय सर्वदा भूमि पर अथवा पत्थर की शिला पर शयन करना चाहिये, वहाँ गौरी का सान्निध्य रहता है । इस प्रकार के नियमों से उक्त व्रत को पालन करने वाली स्त्री को जिस महा फल के मिलने की बात देवी ने बतलायी है, हे महाबाहु ! उस मैं कह रहा हूँ, सुनिये । जो कुमारी इस व्रत का पालन करती है वह अपनी इच्छा के अनुकूल जिस पति की कामना करती है उसे प्राप्त करती है । १३-१४। उसका वह पति उसके मन के अनुकूल चलने वाला होता है । अपने उस पति के साथ बहुत दिनों तक इस लोक के समस्त आनन्दों का अनुभव कर अपनी सन्ततियों को पूर्ण प्रतिष्ठित कर पति के साथ ही परलोक की यात्रा करती है । १५। भरत कुलोत्पन्न ! राजन् ! वह व्रत के अनुष्ठान को करने वाली स्त्री इस लोक के उपरान्त सूर्यलोक, चन्द्रलोक, सप्तर्षियों के लोक में तथा भगवान् वामदेव की सभा में पति के साथ स्थान प्राप्त करती है । १६। हे राजन् ! जो व्रत परायणा विधवा सर्वदा अपने स्वर्णीय पति के चरणों में मन लगाकर देवी के उक्त व्रत को पूजनादि में तत्पर रहकर सम्पन्न करती है वह भी इस लोक में अपने शरीर को छोड़कर हरि

१. तथा खण्डम् । २. शक्त्या । ३. स्वास्तरशायिनी । ४. एवं नियमयुग्मिति विशेषणसामर्थ्यादिव्रतमित्यध्याहार्यम्, व्रतस्य देव्या यन्महाफलं समुदाहृतं तच्छृण्वित्यर्थः । एवं नियमयुक्तस्येत्येकं वा पदम्, अत्रापि पक्षे व्रतस्येवेदं विशेषणम् । ५. क्रीडित्वा । ६. नीतिपरायणा ।

इह चोत्सृज्य देहं तदं दृष्ट्वा हरिपुरे प्रियम् । आक्षिप्य यमदूतेन्मः सह भर्ता रसेहिदि ॥१८
 वर्षकोटि दशगुणां रमित्वा क्षा इहागता । भर्ता सहैव पूर्वोत्तं ज्ञभते फलमीप्सितन् ॥१९
 इन्द्रार्थापि वतमिदं पुत्रार्थिन्या नराधिप । लघ्वः पुत्रो वतस्यान्ते जयन्तो नाम नामतः ॥२०
 अरुन्धत्या तथा चीर्णं वशिष्ठं प्रति कामतः । दृश्यते दिवि चायादि वशिष्ठस्य समीपतः ॥२१
 रोहिण्या लवज्ञत्यागात्सप्तनीगणमद्वन्म् । लघ्वं देव्यतः प्रसादेन सौभाग्यमद्वलं दिवि ॥२२
 इत्येषा तिथिरित्येव तृतीया लोकपूर्जिता । सदा दिरेषतः पुण्या दैशाखे मासि या भवेत् ॥२३
 पुण्या भाद्रपदे मासि माघेष्येव न संशयः । माघे भाद्रपदे चायि स्त्रीणां धन्या^१ प्रवक्तते ॥२४
 साधारणी तु वैशाखे तर्तुलोकस्य भारत । माघमासे तृतीयायां गुरुस्य लवज्ञस्य च ॥
 बानं वैयस्करं राजन्स्त्रीज्ञां^२ च पुरुषस्य च ॥२५
 गुडेन तुष्यते दत्तो लवणेन तु विश्वम् । गुडपूषास्तु दातव्या मासि भाद्रपदे तथा ॥२६
 तृतीयायां तु माघस्य^३ वामदेवस्य प्रीतये । वारिदानं प्रसास्तं स्यान्मोदकानां च भारत ॥२७
 वैशाखे मासि राजेन्द्र तृतीया चन्दनस्य च । वारिणा तुष्यते वेधा मोदकैर्भीम एव हि ॥

के पुर में आपने पति का दर्शन करती है और यमदूतों का आक्षेप करती हुई पति के साथ स्वर्गलोक में सुख का अनुभव करती है । १७-१८। वहाँ पर दश कोटि वर्ष तक पति के साथ रमण कर वह पुनः इह लोक में जन्म धारण करती है और यहाँ आकर पति के साथ इच्छित फलों का भोग करती है । १९। हे नराधिप ! पुत्र प्राप्ति की इच्छुक इन्द्राणी ने भी इस व्रत का विधिवत् अनुष्ठान किया था और उसी के माहात्म्य से द्रष्ट के अवसान में जयन्त नामक पुत्र की प्राप्ति की थी । २०। इसी प्रकार अरुन्धती ने पति रूप में वशिष्ठ की कामना करके इस व्रत का पालन किया था, जिसके फलस्वरूप स्वर्ग में आज भी वह वशिष्ठ के समीप निवास करती है । २१। रोहिणी ने नमक का त्यागकर उक्त व्रत का पालन किया था, और देवी के प्रसाद से सप्तलियों के मान मर्दन करते का अवसर प्राप्त किया था, स्वर्गलोक में उसका सौभाग्य आज भी निश्चल है । २२। इस प्रकार यह पुण्य तृतीया तिथि यूं तो साधारणतया लोक में परम स्थात है पर इन सबमें वैशाख मास की जो होती वह परम पुण्यदायिनी है । २३। इसी प्रकार भाद्रपद मास में भी वह परम पुण्यदायिनी है। माघ मास की तृतीया के पुण्यप्रद होने में भी कोई सन्देह नहीं है । माघ तथा भाद्रपद की तृतीया विशेषतया स्त्रियों के लिए धन्य कही जाती है । २४। हे भरतकुलोत्पन्न ! वैशाख मास की तृतीया सर्व सामान्य लोगों की है । हे राजन् ! माघ मास की तृतीया को गुड़ और नमक का दान स्त्री और पुरुष दोनों के लिए अधिक श्रेयस्कर माना गया है । २५। उक्त तिथि को गुड़ तथा नमक के दान करने से विश्वात्मा भगवान् परम सन्तुष्ट होते हैं । भाद्रपद मास में गुडमिथित पूआ का दान करना चाहिये । २६। हे भारत ! माघ मास की तृतीया को भगवान् वामदेव की सन्तुष्टि तथा अपनी समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिए मोदक दान तथा वारि (जल) दान की प्रशंसा की गई है । २७। हे राजन् ! वैशाख मास की तृतीया को चन्दन, जल तथा बड़े-बड़े मोदकों से ब्रह्मा सन्तुष्ट होते हैं।

१. धर्मम् । २. सर्वकामफलप्रदम् । ३. सर्वकामार्थसिद्धये ।

दानातु चन्दनस्येह कञ्जजो नात्र संशयः

॥२८

यात्वेषा कुरुशार्दूल वैशाखे मासि वै तिथिः । तृतीया साऽक्षया लोके गोवर्धारभिनन्दिता ॥२९
आगतेयं महाबाहो शूर चन्द्रं वसुव्रता । कलधौतं तथान्नं च धृतं चापि विशेषतः ॥

यद्यद्वत् त्वक्षयं स्यात्तेनेयमक्षया स्मृता ॥३०

दत्किञ्चिद्दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु । तत्सर्वमक्षयं स्याद्वै तेनेयमक्षया स्मृता ॥३१
योऽस्यां ददाति करकन्वारिबीजतनन्वितान् । स याति पुरुषो वीर लोकं वै हेममालिनः ॥३२

इत्येषा कथिता वीर तृतीया तिथिरुत्तमा । यानुपोष्य नरो राजन्नुद्धिं वृद्धिं श्रियं भजेत् ॥३३

इति श्रीभद्रिष्ये महापुराणे शतार्द्दसाहस्र्यां ब्राह्मे पर्वणि तृतीयाकल्पविधिवर्णनं

नामैकविंशोऽध्यायः ॥२१

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

चतुर्थोतिथिन्नतमःहात्यम्

सुमन्तुरुखाच

चतुर्थ्या तु सदा राजन्निराहारद्रत्तान्वितः । इन्द्रा तिलान्नं विप्रस्य स्वयं भुक्ते तिलौदनम् ॥१

इस वैशाख तृतीया को चन्दन दान से पद्मोद्भव सन्तुष्ट होते हैं इसमें सन्देह नहीं । २८। कुरुशार्दूल ! वैशाख मास की जो यह पुण्यदायिनी तृतीया तिथि है वह इस लोक में अक्षय तृतीया के नाम से देवगणों द्वारा अभिनन्दित है । २९। हे महाबाहु ! यह पुनीत अक्षय तृतीया प्रचुर धन-धान्य देने के लिए इस पृथ्वीतल पर आई हुई है । इसमें सुर्वार्ण, अन्न, निशेषतया धृत आदि जो जो पदार्थ दिये जाते हैं, वे सब अक्षय रूप में प्राप्त होते हैं, इसी से यह अक्षय तृतीया नाम से स्मरण की जाती है । ३०। इसमें जो कुछ भी दान किया जाता है वह अपरिमाण में चाहे स्वल्प हों या बहुत अधिक हो, अक्षय रूप में प्राप्त होता है । इसी से यह अक्षय तृतीया नाम से प्रसिद्ध है । ३१। जो वारि बीज (कमल) युक्त कमण्डलु का दान करता है वह सुर्यलोक प्राप्त करता है । ३२। हे राजन् ! इस पुण्यप्रद अक्षय तृतीया को उपवास करने वाला ऋद्धि, वृद्धि एवं लक्ष्मी को प्राप्त करता है । ३३।

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में तृतीया कल्पविधि वर्णन नामक इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त । २१।

अध्याय २२

चतुर्थो तिथि के व्रत का माहात्म्य

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! चतुर्थो तिथि को जो मनुष्य निराहार व्रत का पालन करके ब्राह्मण को तिल का दान करता है तथा अन्त में स्वयं तिल मिश्रित ओदन (भात) का भोजन करता है, और इस प्रकार

वर्षद्वये समाप्तिर्हि वत्स्य तु यदा भद्रेत् । विनायकस्तस्य तुज्ञो द्वाति फलमीहितम् ॥२
 याति भाग्यनिवासं हि क्रीडते विभवैः त्थः । इह चागत्य पुष्यान्ते दिव्ये दिव्यवर्पुर्यशाः ॥३
 मत्तिमान्धृतिमान्वान्मी भाग्यवान्कामकारवान् । असाध्यान्यपि साध्येह ऋणादेव महान्त्यपि ॥४
 हस्त्यन्धरथसम्पन्नं पत्नीपुत्रसहायवान् । राजा भवति दीर्घायुः सप्तजन्मान्यसौ नृप ॥
 एतद्वाति सन्तुष्टो विघ्नहन्ता॑ विनायकः ॥५

शतानीक उवाच

विघ्नः कस्य कृतस्तेन येन विघ्नविनायकः । एतद्वदस्व विघ्नेश विघ्नकारणमद्य मे ॥६
 सुमन्तुखवाच

कौश्लरे लक्षणे पुंसां स्त्रीजां च सुकृते कृते । विघ्नं चकार विघ्नेशो गाङ्गेयस्य विनायकः ॥७
 तं तु विघ्नं विदित्वातौ कार्तिकेयोः रुषान्वितः । उत्कृष्य दन्तं तस्यात्याद्वन्तु तं च समुद्यतः ॥८
 निवार्यापृच्छद्वेशो रोषः कार्यः कुतस्यव्या । तं चाचर्ख्यौ स पित्रे वै कृतं पूरुषलक्षणम् ॥
 तत्र विघ्नकृते महां योजिता न च लक्षणम् ॥९

दो वर्ष तक अपने इस व्रत को निर्विघ्न सम्पन्न कर लेता है उसके ऊपर विनायक प्रसन्न होते हैं तथा उसके समस्त मनोवाच्छित कार्यों की सिद्धि करते हैं । १-२। इस व्रत के माहात्म्य से वह भाग्य के निवास को प्राप्त करता है तथा वहाँ समस्त दैभवों एवं ऐश्वर्यों के साथ आनन्द का अनुभव करता है । फिर पुण्य के क्षीण हो जाने पर दिव्य शरीर धारण कर वह पुण्यात्मा प्राणी यशस्वी, मतिमान, धैर्यशील, प्रवत्ता, भाग्यशाली तथा स्वच्छदंतापूर्वक कार्य करने वाला होकर पुनर्जन्म धारण करता है तथा अपने जीवन में असाध्य एवं महान् कार्यों को भी क्षण भर में साध्य बनाने वाला होता है । ३-५। हाथी, अश्व, रथ आदि सुख साधनों से सम्पन्न पत्नी पुत्रादि के साथ वह दीर्घायु पर्यन्त राजा होता है और सात जन्मों तक इसी प्रकार राजा होता है । विघ्नों के विनाश करने वाले भगवान् विनायक उक्त चतुर्थी व्रत के पालन से सन्तुष्ट होकर उक्त फल प्रदान करते हैं । ५

शतानीक बोले—मुनिवर ! विनायक ने किस कार्य में किसको विघ्न पहुँचाया था ? जिसके कारण उनका विघ्न विनायक नाम पड़ा । कृपया आज मुझसे उनके विघ्नेश एवं विघ्न विनायक होने का कारण बतलाइये । ६

सुमन्तु ने कहा—राजन् ! पूर्वकाल में गाङ्गेय स्वामिकार्तिकेय पुरुषों एवं स्त्रियों के लक्षणों को निर्दिष्ट कर रहे थे । उनके इस कार्य में विघ्नेश विनायक ने विघ्न पहुँचाया । ७। कार्तिकेय विनायक को अपने कार्य में विघ्न डालने वाला जानकर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उनके मुख से एक दाँत को निकाल पूर्णतः मार डालने को समुद्यत हो गये । उस समय देवेश शङ्कर ने कार्तिकेय को रोककर पूछा—‘तुमने ऐसा भीषण क्रोध क्यों किया है ? कार्तिकेय ने उत्तर दिया ‘तात ! मैंने पुरुषों एवं स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षणों को लिपिबद्ध करने का विचार किया था, उसमें पुरुषों का तो समाप्त कर चुका था, स्त्रियों का अभी समाप्त नहीं हुआ था, सो उसमें इसने विघ्न पहुँचा दिया है

अथोवाच महादेवः प्रहसन्त्स्वमुतं किल । मम किं लक्षणं पुत्र चक्षयसे त्वं बदस्व मे ॥१०
 स चोवाच करे तुम्यं कपालं द्विजलक्षितम् । अविचारेण संस्थाप्य कपाली तेन चोच्यसे ॥
 स तत्त्वाश्रणमादाय समुद्रे प्राक्षिपद्मा ॥११
 अथ देवसमाजे वै प्रवृत्ते ब्रह्मद्वयोः । अहं ज्यायानहुं ज्यायान्विवादोऽभूत्पर्द्योः ॥
 तव संभूत्यग्निजोऽस्ति मां तु देव न कश्चन ॥१२
 एवं शिवेऽति भूत्यति ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः । मुल्लादृहासं प्रोवाच त्वामहु वेदिता भव ॥१३
 एवं भूत्यु रुद्देण ब्राह्म ह्यशिरो भहू । नखाग्रेण निकृतं च तस्यैव च करे स्थितम् ॥१४
 करस्थेनैव तेनादावागच्छद्यत्र वै हरिः । तपस्तेषे नद भेरो तत्रासौ भगवान्वशी ॥१५
 कृते ह्यशिरे तस्मिन्न्यानात्तस्मात् ब्रह्मणः । रोषाद्विनिःसृतस्त्वन्यः पुरुषः खेतकुण्डली ॥१६
 कवची सशिरस्कञ्च तश्चरः सग्रासनः । अनिर्देश्यवपुः लग्नी किं क्वरोमि स चाबवीते ॥१७
 अथोवाच रुषा ब्रह्मा हन्तं स सुदुर्भितिः । स तु मार्गेण रुदस्य आगच्छद्वेषतो द्रुतम् ॥१८
 रुदोऽपि विष्णुतेजोभिः प्रदिष्टः स त्वधिष्ठितः । स प्रविश्य तदापश्यत्पन्त चोत्तमं तपः ॥

१८-१। अपने पुत्र कार्तिकेय की इस बात को सुनकर महादेव हँसते हुए बोले—‘पुत्र ! तो देखो मेरे शरीर में कौन लक्षण है ? और उसका क्या फल होगा ?’ यह मुझसे बताओ । १०। कार्तिकेय ने कहा—‘तात ! आपके हाथ में अविवेक के कारण किसी ब्राह्मण के कपाल (शिर) का स्थापन होगा, और उससे आपकी कपाली नाम से स्थाति होगी’ कार्तिकेय से ऐसी बातें सुनकर शिव जी ने अति कुद्द होकर उस लक्षण प्रन्थ को समुद्र में फेंक दिया । ११। इस घटना के बहुत दिनों बाद एक बार शिव और ब्रह्मा में भरी देवसभा के बीच इस विषय पर विवाद उठ खड़ा हुआ कि दोनों में कौन बड़ा है ? उस अवसर पर इन दोनों देवों में मैं बड़ा हूँ, मैं बड़ा हूँ’ यह कह-कहकर विवाद होने लगा । इसी बीच शिव ने ब्रह्मा से कहा—‘मैं तुम्हारी उत्पत्ति जानता हूँ किन्तु मेरी उत्पत्ति कोई नहीं जानता है । १२। शिव की उक्त आक्षेप पूर्ण बात को सुनकर ब्रह्मा के पाँचवें शिर ने अट्टहास करते हुए कहा—भव ! मैं भी तुमको भली-भाँति जानता हूँ । १३। ब्रह्मा के ऐसा कहते ही रुदने अपने रक्ष के अग्रभाग से ब्रह्मा के उस महान् हय (घोड़े वाले) शिर को धड़ से अलग कर दिया । शरीर से अलग होकर भी वह महान् शिर रुद के हाथों में स्थिर हो गया । १४। अपने हाथों में चिपके हुए उस शिर के साथ रुद वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवान् हरि विराजमान थे । जितेन्द्रिय भगवान् उस समय सुमेर पर्वत पर तपस्या में लीन थे । १५। इधर पाँचवें हय शिर के कट जाने पर ब्रह्मा के शरीर के उसी स्थान से उनके क्रोध से एक पुरुष आर्विभूत हुआ, जो श्वेत कुण्डल विभूषित, कवच एवं शिरस्त्राण से सुरक्षित तथा धनुष एवं बाण से विमण्डित था । उसका विशाल शरीर अनुपमेय एवं अनिर्देश्य था । उसके विशाल वक्षःस्थल पर एक माला शोभायमान हो रही थी । आर्विभूत होते ही उस क्रोधी पुरुष ने ब्रह्मा से कहा—‘भगवन् ! मेरे लिए क्या आज्ञा है । १६-१७। कुद्द होकर ब्रह्मा ने कहा—‘उस पाप बुद्ध शंकर को मार डालो । (ब्रह्मा के आदेश से वह श्वेत कुण्डली) पुरुष क्रोध से अभिभूत होकर उसी मार्ग से दौड़, जिससे रुद गये थे । १८। उधर भगवान् विष्णु के आश्रम में पहुँच कर रुद भी भगवान् विष्णु की तेजोविभूति से प्रभावित हो गये वहाँ पहुँचकर उन्होंने कठोर तपः साधना में लीन अपराजित भगवान्

हरो नारायणं देवं वैकुण्ठमपराजितम्

॥१९

हरं दृष्ट्वा थ सम्प्राप्तं कार्यं चास्य विचिन्त्य च । उवाच शूलिनं देवो भिन्दि शूलेन भे भुजम् ॥२०
स बिभेद महातेजा भुजं शूलेन तं हरः ॥२१

शूलभेदादसूक्ष्मोद्धर्वं जगामादृत्य रोहसी । विनिवृत्य ततः पश्चात्कपाले निपपात ह ॥२२
असृक्कपाले पतितं प्रदेशिन्या अवर्द्धयत् । यदा हि विनिवृत्तिः स्वादेवस्य रुधिरं प्रति ॥२३
तदा तु असृजतोयं स कृत्वा आरुर्गीं तनुम् । तोये प्रवृत्तेऽन्तर्मूते कपाले यत्र तच्छिरः ॥२४
कपाले तु प्रदेशिन्या रुद्धोऽसौ रुधिरेऽन्तर्मूत । आमुक्तकवचं रक्तं रक्तकुण्डलिनं नरम् ॥२५
अथोवाच भद्रं देवं किं करोमीति नानद । असावपि सप्तर्जाय श्वेतकुण्डलिनं नरम् ॥२६
तावुशौ समयुध्येतां धनुष्प्रवरधारिणौ । यथा राजन्बलीयांसौ कुजकेतूं युगात्यये ॥२७
तयोस्तु युध्यतोरेवं संवर्तश्चाधिको गतः । न चादृश्यत विजय एकस्यापि तदा तयोः ॥२८
अथन्तरिक्षे तौ दृष्ट्वा वागुदाचाशरीरिणी । अवतारोऽथ भविता युवयोर्हि भया सह ॥२९
भारादनोदः कर्तव्यः पृथिव्यर्थे भुरैः सह । तदाश्रयों हि भवितः देवकार्यार्थसिद्धये ॥३०
भूलोकभावं निर्धूय भूयो गन्ता चुरालयम् । एवमुक्त्वा तु वैकुण्ठो ददावेकं रदेस्तदा ॥३१

वैकुण्ठ (विष्णु) को देखा । १९। भगवान् ने अपने आश्रम में समुपस्थित हर को देखकर तथा उनके आगमन के प्रयोजन को जानकर त्रिशूलधारी से कहा—‘हूद ! अपने शूल से तुम मेरी बाहु को आहत करो । २०। महान् तेजस्वी हर ने अपने त्रिशूल से विष्णु की बाहु को आहत कर दिया । २१। शूल से बाहु को आहत होने पर रक्त की एक परम तीव्रगम्भीरी धारा उठी और सारे भ्रमण्डल में व्यात्प होकर पुनः लौटकर उसी कपाल में आकर गिरी । २२। इस प्रकार सारी रक्तराशि उस कपाल में भर गयी और रुद्र ने अपनी प्रदेशिनी अङ्गुली से उस कपाल स्थल रक्तराशि का विलोडन किया । प्रदेशिनी से रक्त आलोडन जब बन्द-हुआ तब देव ने अपनी देह को वरुण की भाँति जलमयी बनाया और जल उत्पन्न किया । पुनः उस कपाल में जिसमें ब्रह्मा का शिर था, रुद्र ने जल के रक्तमय हो जाने पर प्रदेशिनी द्वारा उस रक्तराशि में एक कवचावृत रक्तकुण्डलधारी रक्त शरीर पुरुष की सृष्टि की । २३-२५। उस रक्तकुण्डलधारी पुरुषाकृति ने भव से पूछा—‘मानद ! मैं आपका कौन सा कार्य कहूँ ? जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, ब्रह्मा से भी श्वेत कुण्डल धारी एक पुरुष की उत्पत्ति हुई थी । २६। हे राजन् । महान् धनुषधारी वे दोनों क्रोध-जात पुरुष एक दूसरे से इस प्रकार मिड़ गये । जिस प्रकार महाप्रलय के अवसर पर मंगल और केतु भिड़ गये हों । २७। घोर युद्ध में लीन उन दोनों पुरुषों के एक कल्प से अधिक समय व्यतीत हो गये, किन्तु उन दोनों में से किसी एक के विजयी होने के लक्षण नहीं दिखाई पड़े । २८। तदनन्तर उन दोनों को देखकर आकाशवाणी हुई कि तुम दोनों का अवतार हमारे साथ होगी । २९। समस्त देवताओं के साथ हमें पृथ्वी लोक के कल्पाण के लिए उसका भार उतारना पड़ेगा और उस समय देवकार्यों की सिद्धि के लिए आश्चर्यजनक घटनाएँ घटित होंगी । ३०। तब फिर भूलोक की अवस्थिति को समाप्तकर पुनः स्वर्गलोक चले जायेंगे । इस प्रकार आकाशवाणी द्वारा अपने विचारों को व्यक्त कर भगवान् वैकुण्ठ ने उन दोनों में से एक पुरुष को

भेतकुण्डलिनं दृप्तं^१ तं जग्राह रविर्मुदा । इन्द्रस्यापि ततः पश्चादकुण्डलिनं ददौ ॥३२
जग्राह च मुदा युक्त इन्द्रः स्वं च पुरं ययौ । गतौ रवीन्द्री प्रगृहा पुरुषौ क्रोधसम्भवौ ॥३३
अथोवाच तदा रुद्धं देवः कमलसंस्थितः । गच्छ त्वमत्यि कापाले कपालव्रतचर्यया ॥

अवतारो ब्रतस्यास्य मर्त्यलोके भविष्यति ॥३४

ये च वतं त्वदीयं वै धारयिष्यन्ति भानवाः । न तेषां दुर्लभं किञ्चिद्भूवितेह परत्र च ॥३५

एवं संलप्य बहुशः सुमुखं प्रतिनन्द्य च । आहय च समुद्रं त प्रत्युवाचाविचारयन् ॥३६

कुरुष्वाभरणं^२ स्त्रीणां लक्षणं यद्विलक्षणम् ! कार्तिकेयेन यत्प्रोक्तं तद्वदस्वाविचारयन् ॥३७

स चाह मम नाश्रेदं भवेत्पुरुखलक्षणम् । देवेन तत्प्रतिज्ञातमेव नेतद्भूविष्यति ॥३८

कार्तिकेयेन यत्प्रोक्तं तद्वदस्वाविचारयन् ॥३९

प्रयच्छास्य विषाणं वै निष्कृष्टं यच्चयाऽधुना । अवश्यमेव तद्भूतं भवितव्यं तु कस्यचित् ॥४०

ऋते विनायकं तद्वै दैवयोगान्न कामतः । गृहाण एतत्सामुद्रं यत्त्वया परिकीर्तितम् ॥४१

स्त्रीपुंसोर्लक्षणं श्रेष्ठं सामुद्रमिति विश्रुतम् । इमं च सविषाणं वै कुरु देवविनायकम् ॥४२

रवि को दे दिया । ३१। उस श्वेत कुण्डलधारी परम गर्वोन्नत पुरुष को रवि ने परमानन्दित होकर अंगीकार किया । इसके उपरान्त रक्तकुण्डलधारी पुरुष को भगवान् ने इन्द्र के लिए प्रदान किया । ३२। उसे अंगीकार कर इन्द्र सहर्ष अपने पुर को चले गये । इस प्रकार ब्रह्मा एवं शंकर के क्रोध से उत्पन्न द्वोनों पुरुषों को लेकर सूर्य और इन्द्र अपने-अपने पुर को प्रस्थित हो गये । ३३। इस घटना के उपरान्त कमलासन पर स्थित भगवान् ब्रह्मा ने रुद्र से कहा—रुद्र ! तुम भी इस कपाल की ब्रतचर्या को सम्पन्न करने के लिए कपाल तीर्थ की यात्रा करो । इस व्रत का अवतार मर्त्यलोक में होगा । ३४। जो मनुष्य तुम्हारे उस व्रत को सम्पन्न करेंगे, उन्हें न तो इस लोक में कुछ दुर्लभ होगा, न परलोक में । ३५। इस प्रकार की बहुत सी बातें करके तथा उस सुन्दर मुख की प्रशंसा कर समुद्र का आवाहन किया । समुद्र के आने पर बिना विचार किये ही उन्होंने कहा । ३६। समुद्र ! तुम स्त्रियों के लिलक्षण लक्षणों का निर्माण करो, जो उनकी शोभा के कारण हैं । कार्तिकेय ने पुरुषों एवं स्त्रियों के लक्षण को लेकर जो कुछ निश्चित किये हैं, उन्हें विना विचार किये ही यथार्थ रूप में मुझसे प्रकट कर दो । ३७। समुद्र ने कहा—‘भगवन् ! मेरे द्वारा प्रकट होने वाले वे लक्षण समूह मेरे ही नाम से स्वाति प्राप्त करें ।’ समुद्र के इस अनुरोध को देव ने स्वीकार करते हुए वचन दिया कि ‘ऐसा ही होगा’ । ३८। तुमसे कार्तिकेय ने जो कुछ कहा है, उसे बिना कुछ विचार किये मुझे बतला दो । ३९। समुद्र के ऐसा कहने के उपरान्त देव ने कार्तिकेय से कहा—‘तुम इसके विषाण को दे दो, जो अभी उखाड़ लिया है । किसी के भाग्य में जो कुछ रहता है, वह तो धृष्टि होकर ही रहता है । ४०। दैवयोग से इस विषय को विनायक के अतिरिक्त कोई इच्छा करने पर भी नहीं जान सकता । इस सामुद्रिक विद्या को ग्रहण करो, जिसका तुमने वर्णन किया है । ४१। यह स्त्रियों और पुरुषों का श्रेष्ठ लक्षण समूह सामुद्रिक विद्या के नाम से विस्थात है । देव विनायक को इसके साथ-साथ तुम विषाण से भी संयुक्त करो । ४२। ये

अथोवाच च देवेशं बाहुलेयः समत्सरम् । विषाणं दधि चास्याहं तत्र वाक्यान्न संशयः ॥४३
 यदा त्वयं विषाणैः च मुक्त्वा तु विचरिष्यति । तदा विषाणमुक्तः सन्भस्म देतं करिष्यति ॥४४
 एवमस्त्वितं तं चोक्त्वा विषाणं तत्करे ददौ । विज्ञायकस्य देवेशः कार्तिकेयमते स्थितः ॥४५
 सविषाणकरोऽद्यापि दृश्यते प्रतिमा नृप । भीमसूनोर्भहाबाहोर्विघ्नं कर्तुं महात्मनः ॥४६
 एतद्वहस्यं देवानां मया ते समुदाहृतम् । यत्र देवो न वै वेद देवानां भुवि दुर्लभम् ॥४७
 मया प्रसन्नेन तत्र गुह्यमेतद्विद्वाहृतम् । कथितं तिथिसंयोगे विनायकथामृतम् ॥४८
 य इदं श्रावयेद्विद्वान्नाहृणान्वेदरागान् । क्षत्रियांश्च स्वदृतिस्थान्दटशूद्रांश्च गुणान्वितान् ॥४९
 न तस्य दुर्लभं किञ्चिद्विद्वाहृतमाप्नोति न च याति पराभवम् ॥५०
 निर्विघ्नं सर्वकार्याणि साधयेन्नात्र संशयः । ऋद्धिं दृद्धिं श्रियं चापि विन्देत भरतोत्तम ॥५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां बाह्ये पर्वणि द्वनुर्थीकल्पवर्णनं

नाम द्वाविंशोऽध्यायः । २२।

बातें सुनकर बाहुलेय कार्तिकेय मत्सरपूर्वक देवेश से बोले—आपकी आज्ञा से ही मैं इसके विषाण को दे रहा हूँ, इसमें सन्देह नहीं । ४३। किन्तु जिस समय यह इस विषाण को छोड़कर इधर-उधर विचरण करेगा, उसी समय यह विषाण इससे मुक्त होकर इसे ही भस्म कर देगा । ४४। ऐसा ही हो—कहकर बाहुलेय ने विषाण को विनायक के हाथ में दे दिया । कार्तिकेय के इस कार्य से देवेश शङ्कर जी सहमत हो गये । ४५। (सुमन्तु कहते हैं) हे राजन् ! अज भी कार्यों में विघ्न पहुँचाने के लिए परम बलशाली महाबाहु भीम (भयंकर) पुत्र विनायक की प्रतिमा विषाण युक्त हाथ से समन्वित दिखाई पड़ती है । ४६। देवताओं की इस रहस्यपूर्ण चार्ता की चर्चा मैंने तुमसे की है, इसे देवताओं में भी कुछ लोग नहीं जानते, पृथ्वी तल पर तो यह दुर्लभ ही है । ४७। अतिशय प्रसन्ना होकर ही मैंने इस परम गोपनीय विनायक के कथामृत को तिथिमाहात्म्य के प्रसङ्ग में तुमसे बतलाया है । ४८। जो विद्वान् इस पुण्यकथा को वेद पारगामी ब्राह्मणों, अपनी वर्णाश्रम मर्यादा में स्थित अश्रियों, गुणवान् वैश्यों तथा शूद्रों को सुनाता है, उसके लिए इस लोक तथा परलोक में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती । वह कभी दुर्गति को प्राप्त नहीं होता और न कभी उसे पराभव मिलता है । ४९-५०। इसमें सन्देह नहीं कि वह अपने समस्त कार्यों को निर्विघ्न सम्पन्न करता है । हे भरतकुलश्रेष्ठ ! वह विद्वान् ऋद्धि-सिद्धि तथा लक्ष्मी की भी प्राप्ति करता है । ५१

श्री भविष्य महापुराण के ब्रह्मपर्व में चतुर्थी कल्प वर्णन
 नामक बाईसवाँ अध्याय समाप्त । २२।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

विघ्न-विनायककथावर्णनम्

शतानीक उवाच

केनायं भीमजो विप्र प्रमथायिषतः कृतः । भर्तुन्वे चापि विद्वानाशधिकारी कर्यं बभौ ॥१

सुमन्तुरुचाच

साधु पृष्ठोऽस्मि राजेन्द्र यदर्थं विघ्नकारकः । यैर्वापि विघ्नकरणं निर्युक्तोऽपि विनायकः ॥

तते वच्च महाबाहो शृणु व्य॑क्तमनाधुना ॥२

आद्ये कृतयुगे वीर प्रजासर्गमवाप ह । दृष्ट्वा कर्माणि सिद्धानि विना विघ्नेन भारत ॥३

अगतक्लेशां प्रजां दृष्ट्वा गर्वितां कृत्स्नशो नृप । बहुशश्विन्तयित्वा तु इदं कर्म महीपते ॥४

विनायकः समृद्धर्थं प्रजानां विनियोजितः । गणानां चाधिपत्ने च भीमः कञ्जजसात्त्वतैः ॥

ततोपसृष्टो यस्तस्य सक्षणानि निजोध ने ॥५

स्वप्नेवगाहनेऽत्यर्थं जलं युग्डांश्च पश्यति । काषायवासमत्रैव क्रव्यादांश्चाधिरोहति ॥६

अन्त्यजैर्गदं भैरुष्टैः । सहैकत्रावतिष्ठते । द्रजमानस्तथात्मानं मन्यतेजुगतं परः ॥७

अध्याय २३

विघ्न-विनायक की कथा का वर्णन

शतानीक बोले—विप्रवर्य ! भीमपुत्र विनायक किसके द्वारा प्रमथगणों के अधिष्ठित बनाये गये ? और वे किस प्रकार विघ्नों के अधिकारी पद पर प्रतिष्ठित हुए ? ।१

सुमन्तु बोले—हे राजेन्द्र ! आपने बड़ा अच्छा विषय पूछा, जिस कारणवश विनायक विघ्नकारक रूप में प्रसिद्ध हुए और जिन-जिन विघ्नों के करने से उन्हें विनायक पद पर नियुक्त किया गया, हे महाबाहु ! उन सब कारणों को मैं तुमसे अब बतला रहा हूँ, एकाग्रचित होकर सुनो ।२। हे वीर ! हे भारत ! आदिम सतयुग में, जब प्रजाओं को सृष्टि प्रारम्भ हो चुकी थी, तब उनके कर्म बिना विघ्न बाधा के ही सम्बन्ध होते थे ।३। हे भारत ! (इस प्रकार निर्विघ्न कार्यों की समाप्ति के कारण) प्रजा को क्लेश से रहित तथा सभी प्रकार से गर्वित स्वभाव वाली देखकर हे महीपते ! भगवान् ब्रह्मा ने इस कर्म के विषय में बहुत सोच-विचार कर विनायक को उन्हीं प्रजाओं की समृद्धि के लिए विनियुक्त किया । भयानक कर्मनिरत विनायक को प्रमथों के आधिष्ठित पद पर इस प्रकार कमलयोनि ब्रह्मा ने नियुक्त किया । इसके बाद उनके द्वारा विघ्न पट्टुचाये गये लोगों के लक्षणों को मुझसे सुनिये ।४-५। स्वप्न में वह व्यक्ति बहुत अधिक जल (तैल) में स्नान करता है, मुण्डित शिर वाले को देखता है । काषाय (गेल्जा) वस्त्र पहनने वाले का दर्शन करता है, तथा कच्ची मांस स्नाने वाले हिंस जानवरों पर आरुढ़ होता है ।६। अन्त्यज गदहे, ऊँट आदि के साथ स्वप्न में एक स्थान पर निवास करता है । पीछे चलने वाले अनेक व्यक्तियों के साथ अपने को गमन करता हुआ देखता है ।७। यही नहीं, वह सर्वदा उन्मन, निष्फल कार्य आरम्भ करने वाला

विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः । करटालङ्घमात्मजमभसोन्तरगं तथा ॥८
पांत्तभिश्वावृतं यान्तं सङ्गमनान्तिकं नृप । पश्यते कुरुशार्दूल स्वप्नान्ते नात्र संशयः ॥९
चितं च विकृताकारं करवीरविभूषितम् । तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं पौर्वसंभवम् ॥१०
कुमारी न च भर्तारमपत्यं गर्भिणी तथा । आचार्यत्वं श्रोत्रियश्च शिष्याश्राधयनं तथा ॥११
वणिगलामं च नाप्रोति कृषिं चैव कृषीदलः ॥११

स्तपतं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽहनि^१ महीपते । गौरसर्षपकल्पेन साज्येनोत्सादितेन तु ॥१२
शुक्लपक्षे चतुर्थ्या तु वासरे धिषणस्य च । तिष्ये च बीरनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृप ॥१३
सर्वोषधैः सर्वगन्धैर्दिलिप्तशिरसस्तथा । भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्ति वाच्य द्विजाङ्गुशान् ॥१४
व्योमकेशं तु सम्पूज्य पार्वतीं भीमजं तथा । कृष्णं सदितरं तात ^२पवमानं सितं तथा ॥१५
धिषणं चेन्दुपुत्रं च ^३कोणं केतुं च भारत । विधुन्तुदं बाहुलेयं नन्दकस्य च धारिणम् ॥१६
अश्वस्थानादगजस्थानादत्मीकात्सङ्गमादहदात् । मृत्तिकां रोचनां गन्धानगुणुलं चाप्सु निक्षिपेत् ॥१७
यदाहृतं हृकवर्णेश्वर्तुर्भिः कलशीहर्दात् । चर्मण्डानडुहे रक्ते स्थाप्यं भद्रासनं तथा ॥१८

तथा अकारण कष्ट भोगने वाला होता है। हे कुरुशार्दूल ! हे नृप ! विनायक द्वारा विजित व्यक्ति अपने को हाथी के गण्डस्थल पर आरुह तथा जल के भीतर नग्न होता हुआ देखता है । १। इसी प्रकार राजा शत्रुघ्नी की पैदल सेना से चारों ओर धिरा हुआ अथवा कहीं दूर देश की यात्रा करता हुआ, स्वप्न के अन्त में अपने को देखता है इसमें कोई सन्देह नहीं । २। उसका चित विकृत रहता है तथा अपने को स्वप्न में कर-वीर (कनेर के पुण्य) से विभूषित देखता है । इस प्रकार विनायक द्वारा विजित राजा अपने पुर्वजों का अर्जित राज्य नहीं प्राप्त करता । ३। कुमारी पति नहीं प्राप्त करती तथा गर्भिणी स्त्री रान्तात नहीं प्राप्त करती, श्रोत्रिय आचार्यत्व नहीं प्राप्त करता तथा विद्यार्थीं ठीक तरह से अपना पाठ नहीं चला पाते । इसी प्रकार वैश्य व्यापार में लाभ नहीं प्राप्त करता तथा कृषक लोग कृषि में सफलता नहीं प्राप्त करते । ४। हे राजन् ! ऐसे व्यक्ति को पुण्य दिन में यथाविधि सफेद सरसों के कल्प से, जिसमें धुत एवं सुगन्धित द्रव्य मिले हुए हों, स्नान करना चाहिये । ५। हे राजन् ! शुक्ल पक्ष में चतुर्थी तिथि को बृहस्पति के दिन पुण्य नक्षत्र में अथवां वीर नक्षत्र में उसी के सम्मुख यह क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए । ६। सब प्रकार के सुगन्धित पदार्थों से विमिश्ति, सब औषधियों से शिर को भलीभांति लिप्त करके एक शुभ आसन पर बैठकरे कुलीन एवं सदविचार रखने वाले ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन कराये । ७। हे तात ! पहले शिव-पार्वती तथा गणेश जी की पूजा करके उसी प्रकार पितरों समेत कृष्ण, वायु, शुक्र, बृहस्पति, बुध, मंगल कार्तिकेय केतु और तलवार लिए हुए राहु की पूजा करे । ८-९। एक रङ्ग के सुन्दर एवं जल भरे हुए चार कलशों में धोड़े और हाथी के रहने के स्थान की मिट्टी तथा वल्मीक (चींटी) एवं नदियों के सङ्गम की भूमि सरोवर की मिट्टी, गोरोचन, चन्दन और गुणगुल आदि सुगन्धित वस्तुओं को डालकर, उसके जल से गणेश जी को, जो लाल रङ्ग के बैल के चमड़े के सुन्दर आसन पर बैठाये गये हों, स्नान कराये । १०-११। पदित्र,

सहस्राङ्गं शतधारमृषिभिः^१ पावनं कृतम् । तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ॥१९
 भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः । भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥२०
 यते केशेषु दौर्भार्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि । ललाटे कर्णयोरक्षणोगपस्तद्घन्तु ते सदा ॥२१
 स्नातस्य सार्षपं तैलं सुदेणौदुन्वरेण तु । जुह्यान्मूर्धनि कुशान्सव्येन परिगृह्य तु ॥२२
 मितश्च समितश्चैव तथा च शालकंटकः । कूष्माण्डो राजश्रेष्ठास्तेऽग्रयः स्वाहारामन्विताः ॥२३
 नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्विताः । दद्याच्चतुष्प्रये शूर्यं कुशानास्तीर्यं सर्वतः ॥२४
 कृताकृतांस्तण्डुलांश्च पलतौदैनपेव च । मत्स्यान्पञ्चांस्तैवामान्मांसमेताददेव तु ॥२५
 पुष्पं चित्रं सगन्धं च सुरां च त्रिविधामयि । भूलकं पूरिकाः पूपांस्त्यैदेऽप्तेरिकासजम् ॥
 दधिपायसमन्नं च युड्डेष्टान्समोदकान् ॥२६
 विनायकस्य जननीमुपरिष्ठेत्तोऽस्त्रिकाम् । द्वूर्वासर्वपुष्पाणां दत्त्वा पुष्पाञ्जलित्रयम् ॥२७
 रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे ! पुत्रान्देहि धनं देहि स्वान्नामांश्च देहि मे ॥
 अचलां बुद्धिं मे देहि धरायां ख्यातिमेद च ॥२८
 ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनः । भोजयेद्ब्राह्मणान्दद्याद्वस्त्रपुगमं गुरोरपि ॥२९

निर्मल एवं क्रषियों द्वारा अभिमत्रित किये हुए तथा सहस्राक्ष की भाँति सहस्र धारवाले इस जल से तुम्हारा अभिषेक करता हूँ, यह जल तुम्हें पवित्र करे । १९। राजा वरुण, सूर्य, बृहस्पति, इन्द्र, वायु और सातों कृष्ण—मरीचि, अङ्गिरा, अश्वि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ तुम्हें ऐश्वर्य प्रदान करें । २०। उसी भाँति तुम्हारे शिर के बालों, मस्तक, कान तथा आँखों में स्थित दुर्भाग्य (अशुभसूचक कुलक्षण) को यह जल सदा नष्ट कर दे । २१। इस प्रकार स्नान कराये जाने के बाद सरसों का तैल उनके मस्तक पर गूलर के मुवा द्वारा, बायें हाथ में कुश लिये हुए दिया जाय । २२। मित, समित, शालकंटक तथा कूष्माण्ड आदि दुष्ट ग्रह और राजश्रेष्ठ एवं स्वाहा से युक्त अग्नि तुम्हारा कल्पण करें । २३। इसके अनन्तर चौराहे पर कुश बिछाकर उसके ऊपर सूप रखकर जिसमें कच्चा-पक्का चावल, मांस-भात, मछली, अनेकों प्रकार के पुष्प, इत्र, तीन प्रकार की मद्य, मूती, पूरी, मालपूआ, गुडहर के फूल की माला, दहीं और स्त्रीर, अन्न और गुड़ के बने लड्ह रखा हो, सावधान होकर पृथक्-पृथक् देवताओं का नाम और बलि मंत्रों का उच्चारण करते हुए नमस्कार पूर्वक बलि के रूप में अर्पित करे । २४-२६। इसके पश्चात् अपनी अंजलि में द्वूर्वा, पुष्प और और सरसों (राई) लेकर गणेश जी को भगवती अम्बिका को (मंत्रो द्वारा) तीन बार पुष्पाञ्जलि देकर यह मंत्र पढ़े । २७। हे भगवति ! मुझे सुन्दर रूप, कीर्ति, ऐश्वर्य, धन, पुत्र, पूर्ण भनोरथ एवं निश्चल बुद्धि प्रदान करती हुई आप पृथ्वी के चारों ओर मेरी प्रस्त्राति करायें । २८। तदुपरात्त श्वेत वस्त्र, माला और चन्दन से सुसज्जित होकर ब्राह्मणों को भोजन करायें तथा प्रत्येक ब्राह्मणों को चद्र चमेत दो वस्त्र (धोती) देवें । उसी भाँति गुरु को भोजन कराकर उन्हें दो वस्त्र समर्पित करे । २९। इस

एवं दिनायकं पूज्यं प्रहांश्चैव विधानतः । कर्मणां फलमाप्नोति श्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् ॥३०
आदित्यस्य सदा पूजां तिलकं स्वामिनस्तथा । विनायकपतेश्चैव सर्वसिद्धिमवान्नुयात् ॥३१

इति श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्दसाहक्षयाः संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पवर्णनं
नाम ब्रयोविज्ञोऽध्यायः । २३।

अथ चतुर्विंशतोऽध्यायः

चतुर्थीकल्पे पुरुषलक्षणवर्णनम्

शतानीक उवाच

नराणां योगितां चैव लक्षणानि महामते । प्रोक्तानि यानि विप्रेन्द्र व्योमकेशस्य सूनुना ॥१
कुद्देन यानि क्षिप्तानि ईश्वरेण महोदधौ । कृष्णस्य वचनादभूयः समुद्रेणार्पितानि वै ॥२
अर्पितानि ततस्तस्य तेन प्राप्तानि वै कथम् । बाहुलेन विप्रेन्द्र तानि मे वद मुवत ॥३

सुमन्तुरुवाच

यथा गुहेन राजेन्द्र स्त्रीपुंसां लक्षणानि वै ! प्रोक्तानि कुशशाढूल तथा ते कथयामि वै ॥४
शक्तिपाताढ्ठते क्लौञ्चे व्योमकेशस्य सूनुनाः । अहम् तुष्टोऽव्रवीदेन वरं वरय मेऽनघ ॥५

प्रकार विधि-विधान सहित गणेश तथा ग्रहों की पूजा करने से निर्विघ्न कार्य की समाप्ति तथा उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । ३०। इसलिए अपनी सभी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए सूर्य कार्तिकेय और गणेश की तिलक समेत सविधि पूजा अवश्य करनी चाहिये । ३१

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में चतुर्थी कल्पवर्णनामक तेईसवाँ अध्याय समाप्त । २३।

अध्याय २४

पुरुष-लक्षण वर्णन

शतानीक बोले—हे महामते ! व्योमकेश (शिव) के पुत्र (स्वामिकार्तिकेय) ने स्त्री-पुरुषों के जिन लक्षणों को बनाया था, उन्हें कुद्द होकर शिव जी ने समुद्र में डाल दिया था । विप्रेन्द्र ! किन्तु भगवान् कृष्ण के कहने से समुद्र ने फिर उन लक्षणों को स्वामिकार्तिकेय जी को लौटा दिया था । और कार्तिकेय ने उन्हें किस प्रकार प्राप्त किया । मुवत ! अतः आप उसी कथा को सुनाने की कृपा करें । १-३

सुमन्तु ने कहा—हे राजेन्द्र ! मैं उसी कथा को, जिसमें स्वामिकार्तिकेय ने स्त्री-पुरुषों के समस्त लक्षणों को बताया है, तुम्हें कह रहा हूँ । ४। जिस समय व्योमकेश के पुत्र स्वामिकार्तिकेय ने अपनी शक्ति के आधात से क्रौञ्च पर्वत का विदारण किया था उनसे उसी समय अत्यन्त प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने कहा—हे पुण्यात्मन् ! तुम्हारे इस कार्य से मैं बहुत प्रसन्न हूँ । अतः मुझसे यथेच्छ वरदान माँगो । ५। इसे सुनकर महा

असत्रपि महातेजा: प्रणम्य शिरसा विभूतः । पितामहं बभाषेदं लक्षणं ब्रह्मि मे विभोः ॥६
नराणां युवतीनां च कौतुकं परमं मम । यन्मयोक्तं पुरा देव प्रक्षिप्तं लवणार्णवे ॥७
मत्पित्रा देवदेवेश सङ्कोधेन पुरा तथा । प्राप्तं च विस्मृतं भूयस्तन्मे ब्रह्मि ह्यशेषतः ॥८

ब्रह्मोदाच

साधु पृष्ठोऽस्मि देवेश भीमस्थानन्दवर्धन । लक्षणानि निबोध त्वं पुरुषाणामशेषतः ॥
अधमोत्तममध्यानि यानि ग्राम पर्योनिधिः ॥९
शिवेऽहनि मुनक्षत्रे ग्रहे सौम्ये शुभे रवौ । प्रदाह्ले मङ्गलैर्युक्ते परीक्षेत विचक्षणः ॥१०
प्रमाणं संहितं छायां गतिं सर्वाङ्गलक्षणम् । इन्तकेशनखशमशु एतत्सर्वं विचक्षणः ॥११
पूर्वमायुः परीक्षेत पश्चालक्षणमादिशेत् । क्षीरे ह्यायुषि मर्त्यनां लक्षणैः किं प्रयोजनम् ॥१२
जघन्यो नवतिः ग्रोक्तो भृथमस्तु शताङ्गुलः । अष्टोत्तरशतं यस्य उत्तमं तस्य लक्षणम् ॥१३
प्रमाणलक्षणं ग्रोक्तं समुद्रेण शुभाशुभम् । यन्मे पुरा देवनर नया वै कथितं तव ॥
अतः परं प्रवध्यामि देहाद्यवलक्षणम् ॥१४
पादे: समासके: स्तिःऽर्थे रक्ते: सौम्यैः सुशोभनेः । उम्भते: स्वेदरहितैः शिराहीनैश्च पार्थिवः ॥१५

तेजस्वी स्वामिकर्तिकेय भी नतमस्तक होकर प्रणाम करते हुए ब्रह्मा से बोले—हे विभो ! मुझे उन लक्षणों को बताइये ।६। मैंने स्त्री-पुरुषों के जिन लक्षणों को कहा था, उसे कुद्ध होकर मेरे पिता ने समुद्र में डाल दिया था । वह मुझे प्राप्त हो गया था किन्तु मुझे अब उसका स्मरण भी नहीं हैं । अतः देवाधि देव ! विस्तारपूर्वक मुझे उसी को सुनाने की कृपा करें क्योंकि पुरुषों-स्त्रियों तथा मुझे भी उसे सुनाने का महान् कोतुक है । देवाधिदेव ! विस्तार पूर्वक मुझे उसी को सुनाने की कृपा करें :७-८

ब्रह्मा ने कहा—हे देवेश भीम के आनन्दवर्द्धक ! तुम्हारा प्रश्न बड़ा उत्तम है । मैं पुरुषों के उन उत्तम, मध्यम एवं अधम लक्षणों को, जिन्हें समुद्र ने प्राप्त किया है, तुम्हें सुना रहा हूँ ।९। शुभ नक्षत्र, सौम्य ग्रह और सूर्य के शुभ स्थान में रहते समय किसी शुभदिन के मांगलिक कर्मयुक्त पूर्वभाग में पुरुष के प्रमाण (लम्बाइं), छाया-गति (चाल) दाँत, केश, नख, दाढ़ी एवं सर्वाङ्ग आदि लक्षणों की परीक्षा विद्वान् को करनी चाहिए ।१०-११। परीक्षा करते समय सर्व प्रथम आयु की परीक्षा होनी चाहिए पश्चात् और लक्षणों को कहे इसलिए कि यदि उस पुरुष की अल्पायु मालूम हुई तो लक्षण-परीक्षा व्यर्थ हो जायेगी ।१२। जो पुरुष अपने अंगुल-प्रमाण से एक सौ आठ, सौ एवं नब्बे अंगुल का ऊँचा हो, उसे क्रमणः उत्तम, मध्यम और अधम लक्षण वाला जानें ।' हे देव श्रेष्ठ ! समुद्र ने स्वयं मुझसे इस शुभाशुभ प्रमाण लक्षण को, जो मैंने आपको बताया है, कहा था । इसके पश्चात् मैं शरीर के सभी ओंगों का लक्षण बता रहा हूँ ।१३-१४

जिस पुरुष के चरण, मांसल रक्तवर्ण, मनमोहक चिकने हों, सौम्य, सुशोभन, ऊँचे, स्वेद रहित तथा नसें जिसमें दिखाई न पड़ें, तो वह राजा होता है ।१५। जिसके चरण के तलुवे में अंकुश के समान रेखा हो,

यस्य यादतले रेखा सांकुशेव प्रकाशते । सततं हि चुखं तस्य पुश्पस्य न संशयः ॥१६
 अत्वेदनौ मृदुतलौ कमलोदरसशिभौ । श्लिष्टाइगुलो^१ तान्नरलौ सुपाण्डी^२ व्योमकेशजः ॥१७
 उण्णौ शिराविरहितौ गूढगुलौ च भीमज । कूर्मोक्षतौ च चरणौ ग्रस्यातौ पार्थिवस्य तु ॥१८
 शूर्पकृती महाबाहो रुक्षौ श्वेतनखौ तथा । वक्रौ शिरासन्ततौ च संशुष्कौ विरलाइगुली ॥१९
 दारिद्र्घदुखदौ ज्ञेयौ चरणौ भीमनन्दन । ब्रह्मपूर्वै देवशार्दूल^३ दक्षमुत्सदृशौ पदौ ॥२०
 पीतावाग्म्यानिरतौ कृष्णौ यानरतौ सदा । अभक्ष्यभक्षणे श्वेतौ ज्ञेयौ सेनाधिपोत्तमः ॥२१
 अइगुण्ठौ पृथुलौ येणां ते नरा भार्यवर्जिताः । क्लिश्यन्ते विकृताइगुण्ठास्ते नराः पादगामिनः ॥२२
 चिपिटैर्विकृतैर्भग्नैरइगुण्ठैरतिनिन्दिताः । दक्षर्भग्नैस्तथा हस्तैरइगुण्ठैः क्षेत्रशाभागितः ॥२३
 शूर्पकारंश्च विकृतैर्भग्नैर्वक्षैः शिरततैः । सस्वेदैः पाण्डुरुक्षैश्च चरणैरतिनिन्दिताः ॥२४
 यस्य प्रदेशिनीं दीर्घा अइगुण्ठं या अतिकमेत् । स्त्रीभोगं लभते नित्यं पुरुषो नात्र संशयः ॥
 कनिष्ठायां तु दीर्घायां सुवर्णस्य तु भागिनः ॥२५
 चिपिटा विरलाः शुष्का यस्याइगुल्यो भवन्ति वै । सभवेदुःखिते नित्यं धनहीनश्च वै^४ गुह ॥२६
 श्वेतैनखैर्विरुक्षैश्च पुरुषा दुःखजीविनः । कुशीलाः कुनैर्कर्त्तयाः कामभोगविवर्जिताः ॥
 विकृतैः स्फुटितैरुक्षैनखैर्दर्दिद्वच्चभागिनः ॥२७

वह निःसन्देह सर्वदा सुखी रहता है । १६। हे कार्तिकेय ! स्वेदरहित, कोमल चरण-तल, कमल की भाँति मुन्दर, मिली हुई अङ्गुलियाँ, लाल रंग के नख, मुन्दर ऐड़ी, नसों से हीन, गरम घना गुल्फ और कछुवे के समान ऊँचे ऐसे चरण, राजा के ही होते हैं । १७-१८। हे भीम नन्दन, हे महाबाहो ! सूप के समान आकार, रेखा, श्वेतरंग के नख, टेढ़े, नसों से चिरे हुए तथा सूखे अलग-अलग अङ्गुली वाले चरण दुःखी और दरिद्र पुरुष के होते हैं । देव शार्दूल ! पक्की मिट्टी के समान चरण वाला पुरुष ब्रह्महत्या करने वाला होता है । १९-२०। हे सेनानायक ! इसी प्रकार जिसके चरण पीले वर्ण के हों वह अगम्या स्त्री के साथ गमन करने वाला, काले रंग के हों, तो वह शारीरी एवं श्वेतरंग के हों तो वह अभक्ष्य का भक्षण करने वाला होता । २१। जिसके चरण का अङ्गूठा मोटा हो तो वह भाग्यहीन एवं जिसके अङ्गूठे में किसी प्रकार का विकार हो, वे खुले पैरों पैदल चलने वाले होते हैं और दुःखी रहते हैं । २२। न्निपटे, विकार सहित और टूटे अङ्गूठे वाला मनुष्य अतिनिन्दनीय, छोटे, टेढ़े और टूटे अङ्गूठे वाला दुःखी होता है । २३। इसलिए सूप के समान आकार, विकारी, टूटे, टेढ़े, नसों से भरे पसीने वाले, पीले वर्ण और रुखे चरण को अति निन्दित जानना चाहिए । २४। जिसके चरण की तर्जनी अङ्गुली अङ्गूठे से बड़ी हो उसे निःसन्देह सदा स्त्री-सुख मिलता है । यदि कनिष्ठा बड़ी हुई तो सुवर्ण की प्राप्ति होती है । २५। हे गुह ! जिसके चरण की अङ्गुलियाँ चिपटी, विरल एवं सूखी हुई हों वह सदा दुःखी तथा निर्धन रहता है । २६। जिसके चरण-नख श्वेत, अति रुखे एवं किसी प्रकार के विकारी हों वह शील रहित दुःखी तथा संसार के सभी सुखों से वंचित रहता है । स्फुटिट और रुखे हों वे दरिद्र होते हैं । २७। हरे रंग के नख वाला पुरुष ब्रह्महत्या करने वाला तथा भाइयों से अलग

१. स्निग्धांगुली । २. पादौ वै । ३. नृपशार्दूल । ४. नित्यशः ।

ब्रह्माहृत्यां च कुर्वन्ति पुरुषा हरितर्नखेः । बन्धुभिश्चियुज्यन्ते कुलक्षयकराश्च ते ॥२८
इन्द्रगोपकसंकाशैनखैनृपतयः स्मृताः । शङ्खावत्प्रतीकाशैनखैभवति पार्थिवः ॥२९
ताम्रैर्नखैस्तथैश्वर्य धन्याः पद्मनखा नराः । रक्तैर्नखैस्तथैश्वर्य पुण्यितः सुभगो भवेत् ॥

सूक्ष्मैरूपचितैस्ताम्रैर्नखैनृपतयः स्मृताः ॥३०

रोमशाभ्यां च जड्याभ्यां दुःखदारिद्र्यभागिनः । बन्धनं हस्तजड्यानामैश्वर्य चैव निर्दिशेत् ॥३१

*पृगजड्याश्च राजानो जायन्ते नात्र संशयः । दीर्घजङ्घाः स्थूलजड्या नित्यं भाग्यविवर्जिताः ॥३२

शृगालजड्याः पुरुषा नित्यं भाग्यविवर्जिताः । काकजड्या नरा ये तु भद्रेगुरुः खभागिनः ॥३३

*पीतजड्यास्तथैश्वर्य प्राप्नुवन्ति म संशयः । सिंहव्याघ्रसमा जड्याः धनिनः परिकीर्तिताः ॥३४

पार्थिवानां भवेद्वोम चैकैकं रोमकूपके । पंडितश्रोत्रियाणां च द्वेषे ज्ञेये महामते ॥३५

त्रिभिस्त्रिभिस्तथः निःस्वा मांवादुःखभागिनः । केशाम्रैव महाबाहो निन्दिता पूजितास्तथा ॥३६

निर्मासिजानुर्प्रियते प्रवासे शिवनन्दनः ॥३७

सौभाग्यमल्पैः कथितं दारिद्र्यं विकटैस्तथा । निष्ठैः त्वस्त्रीजिता ज्ञेयाः समांसै राज्यभागिनः ॥३८

*हंसभासशुकानां च तुल्या यस्य गतिर्भवेत् । स भवेत्पार्थिवः पूज्यः समुद्दद्वचनं यथा ॥३९

अन्येषामपि शस्तानां पक्षिणां च शुभा गतिः । वृषसिंहगजेन्द्राणां *गतिर्भोगविवर्धिनी ॥४०

और कुल का नाश करने वाला होता है । २८। इन्द्रगोपक कीट के समान लाल रंग, शंख धुमाव के समान आकार वाले नख, राजाओं के होते हैं । २९। ताम्रवर्ण नख वाले ऐश्वर्यशाली और कमल वर्ण के समान नख वाले धन्य होते हैं तथा रक्तवर्ण नख वाले ऐश्वर्यशाली होते हैं । पुण्यित (विकसित) नख वाले सुन्दर होते हैं । सूक्ष्म उपचित (पुष्ट) तथा ताम्रवर्ण के नख वाले राजा होते हैं । ३०। जिसकी जाँघ में लोम हों वह दुःखी एवं दरिद्र होता है । छोटी जाँघ वालों को बन्धन तथा ऐश्वर्य मिलता है । ३१। मृग के समान जाँघ वाले निःसदेह राजा होते हैं । लम्बी, मोटी, सियार तथा कौवे की भाँति जाँघ वाले निरन्तर दुःखी एवं भाग्य-हीन होते हैं । ३२-३३। मोटी जाँघ वाले निरन्तर दुःखी एवं भाग्यहीन होते हैं । सिंह तथा बाघ के सामन जाँघ वाले धनी होते हैं । ३४। पत्येक रोम कूप में एक-एक रोम हों तो राजा, दो-दो हों तो वैदिक विद्वान् और तीन-तीन हों तो निर्धन एवं धनी होता है । हे महाबाहो ! इसी प्रकार लोम तथा केश का शुभ और अशुभ लक्षण जानना चाहिए । ३५-३६

हे शिव नन्दन ! जिसकी जानु (घुटने) मांसरिहत हों उसकी मृत्यु विदेश में होती है । ३७। इसी प्रकार छोटी होने से सौभाग्य, विकट से द्रविदता, नीची होने से स्त्री से पराजय तथा मोटी जानु राज्य प्रदान करने वाली होती है । ३८।

जिसकी गति (चाल) हंस, मोर एवं शुक पक्षी के समान हो वह पूज्य राजा होता है । जैसा कि समुद्र ने बताया है । ३९। अन्य उत्तम पक्षियों के समान वाली गति भी शुभ सूचक होती है । बैल, सिंह और

१. भवन्ति नृपसत्तम । २. मीनजड्या । ३. दाण्डनन्दन, कुरुनन्दन । ४. हंसभासशिखण्डीनाम् ।
५. पृथ्व्याम् । ६. भाग्यविवर्धिनी ।

जलोर्मिसदृशी या च काकोसूकसमा च या । गतिर्दव्यविहीनानां दुःखशोकभयङ्करा ॥४१
भानोष्ट्रमहिषाणां 'खरसूकरयोस्तथा । गतिर्मेषसमा येषां ते नरा भाग्यवर्जिताः ॥४२

इति श्रीभविष्ये नहापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां आह्ये पर्वणि चतुर्थीकल्पे
पुरुषलक्षणवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।२४।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

पुरुषलक्षणवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दक्षिणावर्तीलिङ्गश्च नरो दै पुत्रमान्भवेत् । वामावर्ते तथा लिङ्गे नरः कन्यां प्रलूप्यते ॥१
स्थूतैः शिरलैविषमैर्लिङ्गदरिद्रधमादिरोत् । श्वजुभिर्वर्तुलाकरेः पुरुषा पुत्रभागिनः ॥२
निष्प्रपादोपविष्टस्य सूमि॑ स्पृशति मेहनः । दुःखितं तं विजानीयात्पुरुषं नात्र संशयः ॥३
भूमौ पादोपविष्टस्य गुल्फौ स्पृशति मेहनः । इश्वरं तं विजानीयात्प्रमदानां च वल्लभम् ॥४
सिंहव्याघ्रस्त्रो यस्य हस्तो भवति मेहनः । भोगवान्स तु विज्ञेयोऽशेषभोगसमन्वितः ॥५
रेखाकृतिर्भगिर्यर्थ्य मेहने हि विराजते । पार्थिवः स तु विज्ञेयः समुद्रवचनं यथा ॥६

हाथी वाली गति भोग को बढ़ाती है ।४०। जल की तरंगों, कौवे और उल्लू पक्षी के समान वाली गति, भयंकर एवं दुःख शोक उत्पन्न करने वाली होती है ।४१। इसी प्रकार कुत्ता, ऊँट, भैसा, गधा, सूकर और भेड़ों के समान वाली गति दुर्भाग्य सूचक होती है ।४२

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में पुरुष-लक्षण वर्णन नामक
चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ।२४।

अध्याय २५

पुरुषों के लक्षण का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—जिस पुरुष का लिङ्ग दाहिनी ओर झुका हो तो उसके पुत्र तथा बायें ओर झुकने से कन्यायें उत्पन्न होती हैं ।१। मोटी-मोटी नसों वाला एवं विषम लिंग दरिद्र सूचक होता है । सीधा तथा वर्तुलाकार लिंग पुत्रवान होने का सूचक होता है ।२। नीचे पैर बैठने से जिसका लिंग पृथ्वी में छू जाय उसे निःसन्देह दुःखी जानना चाहिए ।३। इसी प्रकार भूमि में पैर पर बैठने पर यदि गुल्फ (एडी), में लिंग छू जाय तो वह स्त्रियों का प्राणप्रिय और राजा होता है ।४। सिंह तथा बाघ के समान छोटे लिंग वाला पुरुष समस्त भोगों को भोगने वाला होता है ।५। समुद्र के कथनानुसार जिसके लिंग का अग्रभाग रेखा के समान हो वह राजा होता है ।६। इसी प्रकार सुवर्ण, चाँदी, मणि, मोती और पुवाल के समान वर्ण एवं स्निग्ध अग्र

मुद्गर्जतप्रल्यैर्मणिमुक्तासभप्रभैः । प्रवालसदृशैः स्निग्धैर्सणिभिः पर्थिवो भवेत् ॥७
 पाण्डुर्मलिनै रुक्षैर्दीर्घव्यासैर्दिशो वजेत् । समैस्तथोश्नेत्रश्नापि सुस्निग्धैर्मणिभिर्गृही ॥८
 धनरक्षास्तथा स्त्रीणां भेक्तारस्ते भवन्ति हि । मणिभिर्ध्यनिम्नस्तु पितरस्ते भवन्ति हि ॥९
 युवतीनां महाबाहो निःस्वाश्रापि भवन्ति ते । नोत्पौश्रापि धनिनो नरा वीरा भवन्ति हि ॥१०
 मूत्रधारा यतेदेका बलिता दक्षिणा यदि । स भवेत्पर्तिवः पृथ्व्याः समुद्रस्त्रं यथा ॥११
 द्वे धारे च तथा स्निग्धे धनवान्नोऽवान्स्मृतः । बहुधारास्तथा रुक्षाः सशब्दाः पुरुषाद्याः ॥१२
 लीनान्धि भवेत्तो धनवान्पुत्रवान्भवेत् । हविगन्धि भवेद्यस्य धनाढ्यः श्रोत्रिदः स्मृतः ॥१३
 'मूषगन्धिर्भवेत्युक्ती दद्यगन्धिर्भवेत्युपः स्मृतः । लाक्षागन्धिर्भवेद्यश्च बहुकृच्छः प्रजायते ॥

मद्यगन्धिर्भवेद्योद्धुः क्षारगन्धिर्भविद्विकः ॥१४

श्रीघ्रैमैयनगमी यः स दीर्घायुरतोऽन्धथा । अल्पायुर्देवशार्दूल विजेयो नात्र संशयः ॥१५
 तनुशुक्रः स्त्रीजनको मांसगन्धी च भोगवान् । पद्मवर्णं भद्रेत्कं स नरो धनवान्भवेत् ॥१६
 किञ्चिद्वद्वत्तं तथा दृष्ट्यं भवेद्यस्य तु शोणितम् । अधमः स तु विजेयः सदा दुखैकभाजनम् ॥१७
 प्रवालसदृशं स्निग्धं भवेद्यस्य च शोणितम् । राजानं तं विजानीयात्सप्तद्वोपाधिपं गुह ॥१८

भाग वाला लिंग राजा होने का सूचक होता है । ७। जिसका लिंग पांडु (पीला-सफेद) मलिन, रुक्षा और लम्बे अग्रभाग वाला हो, तो वह चारों ओर धूमने वाला होता है । सग, ऊँचा और स्निग्ध (चिकना) अग्रभाग जिसके लिंग का हो, वह स्त्रियों का प्रिय एवं धन की रक्षा करने वाला होता है । यदि अग्रभाग के मध्य का भाग नीचा हो, तो वह केवल कन्याओं का पिता और निर्धन होता है । हे वीर ! उसके अस्पष्ट साफ न रहने पर भी वह पुरुष धनी होता है । ८-१०। जिसका मूत्र दाहिनी ओर एक धार होकर गिरे समुद्र के कथानामुसार वह राजा होता है । ११। चिकनाहट लिए हुए दो धार होकर गिरे तो वह धनवान तथा भोगी होता है । अधम पुरुषों का मूत्र, रुक्षा एवं कुछ ध्वनि करते हुए बहुधार होकर गिरता है । १२। जिसके वीर्य में मछली की भाँति गंध हों, वह धनवान् एवं पुत्रवान् होता है । अग्नि में हवन करने पर उठे हुए गंध के समान गंध हो तो धनी और वैदिक विद्वान् हों । १३। भेड़ के समान गन्धवाला पुत्रवान्, कमल की भाँति गंधवाला राजा होता है । लाह की भाँति गंध हो तो उसके अधिक कन्याएँ होती हैं । शराब की भाँति गंध होने से योद्धा तथा खार वस्तु के समान गन्ध होने से दरिद्र होता है । १४। जो मैयन शीघ्र करता है वह दीर्घायु होता है । हे देव शार्दूल ! इसके विपरीत हो तो उसे निश्चय अल्पायु जानना चाहिए । १५। जिसके अल्प वीर्य हों उसके कन्यायें होती हैं । यदि मांस के समान गंध हो तो वह भोगी होता है । जिसका रक्त, लाल कमल की भाँति हो वह पुरुष धनवान होता है । १६। जिसका रक्त, अल्प एवं काले रंग का हो, उसे अधम तथा सदा दुखी जानना चाहिए । १७। हे गुह ! जिसका रक्त, मूरे के समान और चिकनाहट लिए हो, उसे सातों द्वीपों का राजा जानना चाहिए । १८। पुरुषों की नाभि के नीचे का

१. मेषगन्धिर्भवेत्युक्ती ।

विस्तीर्णं मांसला स्तिर्गदा बस्ति: पुंसां प्रशस्यते । निर्मासा विकटा रुक्षा बस्तिर्येषां न ते शुभाः ॥१९
 गोमायुसदृशो यस्य श्वानोष्ट्रमहिषस्य च । स भवेदृःखितो नित्यं पुरुषो नात्र संशयः ॥२०
 यश्चैवकृषणस्तात जले प्राणान्विमुञ्चति । स्त्रीचञ्चलस्तु विषमैः समै राज्यं प्रचक्षते ॥२१
 ऊर्ध्वगौश्रापि हस्त्याः शतञ्जीवी प्रस्तम्बधृक् । मानवांश्रापि रत्तेस्तु धनवन्तो भवन्ति वै ॥२२
 स्त्यूलस्फिरभदति क्षेमी द्वयपुरुक्तः समांसधृक् । व्याघ्रस्फिरमण्डलो राजा सण्डूकस्फिराधिष्ठानः ॥२३
 द्विमण्डलो महाद्वाहो सिंहरिफक्सार्वभौमता ॥२३
 उष्ट्रवानरयोर्यस्तु लारयेत्स्फिरमहामते । धनधान्यविहीनोऽसौ द्वित्तेष्टे भीमनन्दन ॥२४
 पुमान्मृगोदरो धन्यो मयूरोदर एव च । व्याघ्रोदरो नरपती राजा सिंहोदरो भवेत् ॥२५
 मण्डूकसदृशं यस्य पुरुषस्योदरं भवेत् । स भवेत्पार्थिवः पृथ्व्यां समुद्रवचनं यथा ॥२६
 मांसत्तेष्टजुभिर्वृत्तैः पाइर्वन्नपतयः स्मृताः । ईशदरो व्याघ्रपृष्ठस्तु सेनायाश्रेव नायकः ॥२७
 सिंहपृष्ठो नरो यस्तु बन्धनं तस्य निर्दिशेत् । कूर्मपृष्ठास्तु राजानो धनमौभाग्यभागिनः ॥२८
 विस्तीर्णं हृदयं पेषां मांसलोभचितं सद्म् । शतायुषो विजानीयाद्भूगोभाजो महाधनान् ॥२९
 विरलाः शुष्कास्तथा रुक्षा दृश्यन्तेऽङ्गुलयः करे : स भवेदृःखितो नित्यं नरो दारिद्र्यभाजनम् ॥३०

भाग, चौड़ा मांस भरा हुआ एवं चिकना हो, तो शुभदायक तथा मांसहीन, विकट और रुक्षा हो तो अशुभ करने वाला होता है । १९। जिसका (मूत्राशय) सियार, कुत्ता, ऊंट और भैंसे के समान हो तो वह निःसंदेह पुरुष द्रुखी रहता है । २०। हे तात ! जिसके एक अण्डकोष हों, वह जल में प्राण-त्याग करता है । छोटे-बड़े होने, स्त्री-व्यभिचारी एवं सम होने से राज्य-लाभ होता है । २१। ऊपर उठा हो तो अल्पायु, अधिक लम्बा हो तो सौ वर्ष का जीवन तथा लाल रंग का हो तो वह मनुष्य धनवान् होता है । २२। कमर के नीचे का भाग स्त्यूल हो तो कल्याणकारी, मांस से भरा हो तो धनवान्, बाघ के समान हो तो राजाधिपति, मेढ़क के समान हो तो राजा और सिंह के समान हो तो दो देशों का सार्वभौम महाराजा होता है । २३। हे महामते ! ऊंट और वानर के समान हो तो वह मनुष्य दरिद्र होता है । २४। जिसका उदर, मृग या मोर के समान हो वह उत्तम पुरुष, बाघ के समान हो तो नराधिप, सिंह के समान हो तो राजा होता है । २५। मेढ़क की भाँति जिसका उदर हो, वह समुद्र के कथनानुसार पृथ्वीपति होता है । २६

जिसका पार्श्व और पीठ मांस से भरा, सीधा एवं गोलाकार हो वह नराधिप होता है । जिसकी पीठ बाघ के समान हो वह सेनाधिपति, सिंह की भाँति हो तो कैदी और कछुवे के भाँति हो तो अनेक प्रकार का सुख भोगने वाला राजा होता है । २७-२८। जिसका हृदय चौड़ा, मांस एवं रोम से भरा हो तथा बराबर हो वह सौ वर्ष जीवित रहने वाला तथा अतुल धन का उपभोग करते वाला होता है । २९

हाथ की अंगुलियाँ, विरल, सूखी और रुखी हों तो वह मनुष्य सदा द्रुखी एवं दरिद्र रहे । ३०।

यस्य भीनसमा रेखा कर्मसिद्धिश्च तस्य तु । धनवान्स तु विजेयो बहुपुत्रश्च मानवः ॥३१
 तुला यस्य तु वेदी वा करमध्ये तु दृश्यते । तस्य सिध्यति वरणिज्ज्यं पुरुषस्य तं संशयः ॥३२
 सौम्ये पाणितले यस्य द्विजस्य तु दिशेषतः । यज्ञयाजी भवेन्नित्यं बहुविलक्ष्य मानवः ॥३३
 शैलं दाप्यथ वा वृक्षः करमध्ये तु दृश्यते । अचलां श्रियमाप्नोति बहुभृत्यसमन्वितः ॥३४
 शक्तिरोमरबाणासिरेता^१ चासोपसा तथा : यस्य हस्ते महाब्रह्मो स जयेद्विग्रहे रिपून् ॥३५
 ध्यजश्चाप्यथ वा शंखः करमध्ये तु दृश्यते ; समुद्रयायी स भवेद्वन्नी च सततं गुह ॥३६
 श्रीवत्सस्थ वा पद्मं वज्रं वा चक्रमेव च । रथो दाप्यथ वा कुम्भो दत्त्य हस्ते प्रकाशते ॥
 २४. जानं तं विजानीयात्परसैन्यविदारणम् ॥३७

दक्षिणे तु कराङ्गुष्ठे यदो यस्य तु दृश्यते । सर्वविद्याप्रवक्ता च भवेद्वै नात्र संशयः ॥३८
 यस्य पाणितले रेखा कनिष्ठामूलमुत्थिता^२ । गता मध्यं प्रदेशिन्याः स जीवेच्छरदः शतम् ॥३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्थसाहस्र्यां संहितायां भाष्ये पर्वणि चतुर्थीकल्पे
 पुरुषलक्षणवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः । २५।

जिसके हाथ की रेखा मछली की भाँति हो उसे प्रत्येक कार्य में सफलता मिलती है तथा वह धनवान् और बहु पुत्रवान् होता है । ३१। जिसके हाथ के मध्य में तुला (तराजू) या वेदी की भाँति रेखा हो, उस पुरुष के व्यापार की सफलता में कोई संदेह नहीं रहता । ३२। जिस किसी का विशेषतया द्विज का करतल सुन्दर हो, वह नित्य यज्ञ करने वाला तथा महा धनवान् होता है । ३३। हाथ के भीतर पर्वत या वृक्ष के सामने रेखा दिखाई दे तो वंह अचल लक्ष्मी (सम्पत्ति) एवं बहुत से सेवकों से युक्त होता है । ३४। हे महाबाहो ! जिसके हाथ की रेखा शक्ति, गुर्ज, बाण, तलवार और धनुष के समान हो, वह युद्ध में शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है । ३५। हे गुह ! हाथ के मध्यम में ध्वज या शंख के समान रेखा हो तो वह सदा धनी एवं समुद्र की यात्रा करता है । ३६। जिसके हाथ में श्रीवत्स, कमल, दत्त्य, चक्र, रथ अथवा कलश के समान रेखा हो वह शत्रु की सेनाओं का नाश करने वाला राजा होता है । ३७। जिसके दाहिने हाथ के अंगूठे में जव का चिह्न हो तो वह सम्पूर्ण विद्याओं का निःसन्देह प्रवक्ता विद्वान् होता है । ३८। जिसके करतल की रेखा कनिष्ठा के मूल से निकल कर तर्जनी के मध्य में पहुँचती है, वह सौ वर्ष का जीवन प्राप्त करता है । ३९

थ्री भविष्य महापुराण के व्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में पुरुष-लक्षण वर्णन नामक
 पचीसवाँ अध्याय समाप्त । २५।

अथ षड्द्विंशोऽध्यायः

पुरुषलक्षणवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

समकुक्षिर्भवेद्गोगी निश्चकुक्षिर्धनापहः । मायावी विषमा^१ कुक्षित्तथा कुहक्षुत्तदा ॥१
राजा स्यान्निन्नकुक्षित्तु सार्वभौमो महाबलः । सर्पोदरा दरिद्राः स्मृबहुभक्षाश्रव सुव्रत ॥२
विस्तीर्णभिर्मन्डलाभिरुक्षताभिश्च नाभिभिः । भवन्ति स्त्र॒विनो वीरा धनधान्यसमन्विताः ॥३
निश्चाभिरथ स्वत्पाभिः क्लेशभाजो भवन्ति हि । वलिर्मध्यङ्गता वीरा विषमः च विशेषतः ॥४
धनहानिं तथा शूलं नित्यं जनयते विभो ॥५

वामवातीं सदा शान्तिं करोतीति विदुर्बुधाः । करोति मेधां दक्षिणेन संप्रवृत्ता दिवस्पते ॥५
पश्चायिता दीर्घमायुरैश्वर्यमूर्ध्वतः त्सृतम् । गवाढ्यतामधस्तातु करोतीति विदुर्बुधाः ॥६
शतपत्रकर्णिकाभा नाभिर्यस्य महामते । भूपत्वं कुरुते सा तु पुरुषत्य न संशयः ॥७
समोदरो भवेद्गोगी निस्वः स्याद्विषमोदरः । सूक्ष्मोदरो भवेद्वाग्मी बहुसम्पत्समन्वितः ॥८

अध्याय २६

पुरुषलक्षणवर्णन

ब्रह्मा बोले— सम कोख (पेट की दाहिनी और बाईं बगल) वाला मनुष्य भोगी, नीची-ऊँची कोख वाला चौर, एवं विष (ऊँची-नीची) कोखवाली पुरुष जाल साजी करके सदैव ठगने वाला होता है । १। सुव्रती ! इसी भाँति नीची कोख वाला महाबली एवं सार्वभौमराजा और सर्प की भाँति कोख वाला दरिद्र तथा अधिक भोजन करने वाला है । २। चौड़ी, गोल और ऊँची नाभि वाला मनुष्य सुखी, वीर तथा धन-धान्य से सदैव युक्त रहता है । ३। नीची और छोटी नाभिवाला मनुष्य दुःखी रहता है । बलि (त्रिवली) के मध्य मांग में होकर विषम नाभि हो तो धन की हानि एवं सर्वदा शूल की पीड़ा देने वाली होती है । ४। उसी प्रकार बाईं ओर से धूमी हुई नाभि सदा शान्तिदायक होती है इसे विद्वान् लोग भली-भाँति जानते हैं । ५। हे दिवस्पते ! दाहिनी ओर से धूमी हुई नाभि मेधा (धारणा शक्ति) दायक होती है । ६। जिसकी नाभि पाश्वभाग (बगल) में लम्बी-चौड़ी हो, तो वह मनुष्य दीघायु, ऊपर की ओर लम्बी-चौड़ी हो तो ऐश्वर्यसम्पन्न एवं नीचे की ओर लम्बी-चौड़ी हो तो उसके अधिक गाये होती है जिसे पण्डित गण भली-भाँति जानते हैं । ७। इसी प्रकार जिसकी नाभि कमल की भाँति हो वह निःसंदेह राजा होता है । ८। सम उदर वाला मनुष्य भोगी, विषम (ऊँच-नीच) उदर वाला निर्धन और सूक्ष्म उदर वाला मनुष्य वीर उसी प्रकार वक्ता तथा महान् धनी होता है । ९। पेट में एक बलि हो तो उस मनुष्य की शस्त्र से मृत्यु होती

शस्त्रेणान्तं वजेद्वीर स्त्रीभेगं चाप्नुयातथा । आचार्यो बहुपुत्रश्च यथासद्व्यं विनिर्दिशेत् ॥९
 वलिभिर्देवशार्दूल इत्याह स पर्योनिधिः । अगम्यागमिनो ज्ञेया विषमाभिर्न संशयः ॥१०
 ऋजुभिर्वसुभोगी स्यात्परदारदिनिन्दकः । मांसलैर्मृदुभिः पार्श्वे राजा स्यान्नात्र संशयः ॥११
 अनूर्ध्वचिबुका ये तु लुभगास्ते भवन्ति वै । निर्धना विषमैर्दीर्घभवन्तीह सुवीरज ॥१२
 पीनेश्वेष्टपचितंनिष्ठेः 'स्कन्धभौमाङ्गसम्भव । राजनः सुविनश्चापि भवन्तीह न संशयः ॥१३
 स्मोन्नतं तु हृदयं समं च पृथु चैव हि । अवेपनं मांसलं च पार्थिदनां न संशयः ॥१४
 खररोमचितं दीरशिरातं च विशेषतः । अधनानां भवेदेव हृदयं ऋभवोत्तम ॥

तमवक्षसोऽर्थयुताः पीनैः शूराः स्मृता बृथैः ॥१५

तनुभिर्द्व्यहीनाः स्युरसमैश्व्राप्यकिञ्चनाः । वध्यन्ते चापि शस्त्रेण नात्र कार्या विचारणा ॥१६
 हनुभिर्दिव्यनैर्वार जन्महोनो भवेन्नरः । यस्योन्नतो भवेद्वनुः स भोगी स्यान्न संशयः ॥१७
 निर्मासैर्विषमैर्वार निःस्वो निष्ठेः प्रचक्ष्यते । धनवांश्च भवेत्पीनैः सुखभोगसमन्वितः ॥

विषमैरर्थयुताः स्याहुःखभागी सदा गरः ॥१८

चिपिटशीवको दुष्टो भतो लोके स वै गुह । शूरः स्यान्नमहिष्मीवो मृगशीवो भयम्भुरः ॥१९
 कम्बुग्रीवो भवेद्वाजा लम्बकण्ठोऽग्नलक्षणः । हस्तवीवस्तु धनवान्नसुखो भोगदांस्तथा ॥२०

है दो बलि हो तो स्त्री भोगी, तीन बलि हो तो आचार्य और उसके अधिक पुत्र होते हैं । १। है देवशार्दूल !
 इसी प्रकार समुद्र ने बताया था कि विषम बलि हो तो उसे निःसंदेह अगम्या (जो किसी प्रकार से भोग करने योग्य न हो) स्त्री के साथ गमन करने वाला जानना चाहिये । १०। सीधी बलि हो तो धन का उपभोग करने वाला एवं परस्ती की निंदा करने वाला होता है । यदि दोनों ओर कोमल मासों से भरी बलि हो तो वह निःसंदेह राजा होता है । ११। ऊपर की ओर न बढ़ने वाली ठोड़ी निश्चित शुभदायक होती है । है सुवीर पुत्र ! उसी प्रकार विषम और लम्बी ठोड़ी निर्धन करने वाली होती है । १२। इसी प्रकार मोटा उन्नत एवं नीचा कंधा राजा एवं मुखी बनाती है, इसमें कोई कोई संशय नहीं है । १३। संम, ऊँचा तथा सम मोटा, निष्कम्प और मांस से भरा हुआ हृदय राजाओं का ही होता है । १४। है देवशेष ! कठोर रोम तथा नसों से भरा हुआ हृदय निर्धनों का होता है । जिसकी छाती सम हो तो धन देने वाली और मोटी हो तो शूर बनाने वाली होती है, ऐसा पंडितों का कहना है । १५। छोटी हो तो निर्धन और विषम हो तो भी निर्धन तथा अस्त्र से उसकी मृत्यु होती है । यह निर्विवाद सिद्ध है । १६। विषम ठोड़ी वाला मनुष्य जीवन-हीन होता है । जिसकी ठोड़ी ऊँची हो वह निःसंदेह भोगी होता है । १७। मांस-हीन, विषम और नीची ठोड़ी वाला निर्धन होता है । भोटी ठोड़ी हो तो वह धनवान्, मुखी एवं भोगी होता है । उसी भाँति विषम ठोड़ी वाला मनुष्य धनहीन तथा सदा दुःखी रहता है । १८। है गुह ! जिसकी गर्दन चपटी हो संसार में उसका दुष्ट होना निश्चित बताया गया है । उसी प्रकार भैसे की भाँति गर्दन वाला मनुष्य शूर, मृग के समान गर्दनवाला भयभीत, शंख के समान गर्दन वाला राजा, लम्बी गर्दन वाला अच्छे लक्षणों से भूषित

१. चिबुकैर्झभवोत्तम ।

निर्मासौ रोमशौ नप्रावल्पौ वापि विशेषतः । निर्धनस्येदृशावंसौ प्रस्थातौ व्योमकेशज ॥२१
 भवेदरोमसं पृष्ठं धनिनां भीमसम्भव । सलोमशं तथा वक्तं निर्धनानां बलाधिप ॥२२
 अस्वेदनाकुञ्जतौ च तथा पीनौ षडानन । समरोमसुगन्धौ च कक्षौ ज्ञेयौ धनान्वितौ ॥२३
 अव्युच्छिन्नौ तथा श्लिष्टौ विपुलौ च सुराधिप । शूराणामीदृशावंसौ नगजानन्दवर्धन ॥२४
 उदृद्धवाहुको यत्तु वध्वन्धनमाप्नुयात् । दीर्घवाहुर्भवेद्राजा समुद्रवचनं यथा ॥२५
 प्रलम्बवाहुर्विजेयो नरः सर्वगुणान्वितः । हन्त्यवाहुर्भवेद्वासः परप्रेष्यकरोऽपि वा ॥२६
 वामावर्तभुजा ये तु दीर्घयतभुजाश्च ये । सम्पूर्णबाहू राजा स्यादित्याह स गमेनिधिः ॥२७
 श्रीदा च 'वर्तुलाकारा कम्बुरेखासमावृता : त भवेत्पार्थिवो भूमौ सर्वदुष्टनिर्बहणः ॥२८
 दीर्घप्रीवा बकप्रीवा शुकप्रीवाश्च ये नराः । उष्ट्रग्रीवाः करिग्रीवाः सर्वे ते निर्धनाः स्मृताः ॥२९
 इमाङ्गसदृशौ वृत्तौ समौ पीनौ च सुव्रत । आजानुलम्बिनौ बाहू पार्थिवानां न संशयः ॥३०
 दरिद्राणां लोमशौ हस्त्यौ बाहू ज्ञेयौ सुरोत्तम । तस्कराणां च दिशमौ स्थूलौ सूक्ष्मौ च सुव्रत ॥३१
 निन्नं करतलं यस्य पितृवित्तं न तस्य वै ; भवेदार्भवशार्दूलं तथा भीरुश्च मानवः ॥३२
 सुवृत्ततनुनिष्ठेन धनवान्करतलेन तु । उत्तानकरतलो दाताः भवतीति न संशयः ॥३३

और छोटे गर्दन वाला मनुष्य धनी, मुखी एवं भोगी होता है । १९-२०। शिव पुत्र ! मांसरहित, रोम से भरा हुआ, टेढ़ा और छोटा कन्धा विशेषकर निर्धनों के लिए ही प्रसिद्ध है । २१। हे सेनानायक ! उसी भाँति-रोमहीन पीठ धनिकों की और रोमवाली एवं टेढ़ी निर्धनों की होती है । २२। पीन से रहित, ऊँची मोटी, समान रोम और मुगंध वाली काँख धनवानों की होती है । २३। सुराधिप ! पार्वती आनन्दवर्धन ! सम, चौड़ा एवं धना, कन्धा शूरों का ही होता है । २४। जिसकी भुजा, ऊपर की ओर लिंची हुई होती है, वह मनुष्य बंधन में जकड़ा हुआ रहकर मरण को प्राप्त होता है । समुद्र के कथनानुसार दीर्घ भुजाओं वाला राजा होता है । २५। अधिक लम्बी भुजाओं वाले पुरुष सब गुणों से युक्त होते हैं, ऐसा जानना चाहिए । छोटी भुजाओं वाला मनुष्य दास या संदेशवाहक होता है । २६। बाँई और से धूमी हुई लम्बी-चौड़ी भुजाओं वाला एवं पूरी भुजाओं वाला पुरुष राजा होता है, इसे समुद्र ने बताया है । २७। जिसकी गर्दन गोल-तथा शंख की भाँति रेखाओं से युक्त हो वह पृथ्वी के समस्त दुष्टों का नाश करने वाला राजा होता है । २८। लम्बी-चौड़ी, बकुला, तोता, ऊंट और हाथी के समान सम, गोल मोटी और घुटने तक वाली लम्बी, निःसंदेह ऐसी भुजाएँ राजाओं की होती है । २९। हे देवश्रेष्ठ ! रोमवाली और छोटी भुजाएँ दरिद्रों की तथा ऊँची-नीची, पतली और मोटी भुजाएँ चोरी करने वालों की होती हैं । ३१। जिसकी हथेली नीची होती है, उसे पिता का धन नहीं मिलता है और वह अनुत्साही (कायर) भी होता है । ३२। सुन्दर, गोल, पतली एवं नीची हथेली वाला मनुष्य धनवान् तथा ऊँची हथेली वाला निःसंदेह दानी होता है । ३३। ऊँची-नीची

विषमा भृत्यं विषमैर्निष्ठाश्चापि विशेषतः । करतलैर्देवशार्दुललाक्षा भैरीश्वरा: स्मृताः ॥३५
 अगम्यागमनं दोते रुक्षैर्निर्धन्ता स्मृता । अपेयपानं कुर्वन्ति नीलकृष्णैः सदैव हि ॥३५
 निन्माः स्त्रिगाधा भवेन्दृतां रेखा करतले गुह । धनिनां न दरिद्राणामित्याह स पयोनिधिः ॥३६
 विरलाइगुलयो ये तु ते दरिद्राः प्रचक्षते । धनिनस्तु महाबाहो ये घनाइगुलयो नराः ॥३७
 ददनं मण्डल यम्य धर्मशीलं तमादिशेत् । शुण्डवक्त्रा नरा ये तु दुर्भेगास्ते न संशयः ॥३८
 हरिव्रका जिह्ववका विकृतास्यास्तथा नराः । भग्नवक्राः करालास्याः सर्वे ते तस्कराः स्मृताः ॥३९
 सप्त्युर्णदक्षा राजान्तो गलसिंहाननास्तथा । छागवानरवक्राश्च भनिनः परिकीर्तितः ॥४०
 यस्य गज्जौ सुसम्पूर्णा पद्मपत्रसमग्रभौ । कृषिभागी भवेन्नित्यं द्रहविनश्च मानवः ॥४१
 सिंहव्याघ्रगजेन्द्राणां कपोलः सदृशो यदि । महाभोगी स विज्ञेयः सेनादाश्रैव नायकः ॥४२
 ददनं तु समं भूक्षणं सौम्यं भंडृतसेव हि । पर्थिवानां महाबाहो विपरीतन्तु दुःखदम् ॥४३
 महामुखं तु देवेश दुर्भगत्वं प्रयच्छति । स्त्रीमुखं पुत्रनाशाय मण्डलं सुखितां द्रजेत् ॥४४
 द्रव्यनाशाय वै दीर्घं पापदं भयदं तथा । धूर्तानां चतुररम्भं स्वात्मुत्रहानिकरं शृणु ॥४५
 निन्मवक्रं च देवेन्द्रं पुत्रहानिकरं भवेत् । हस्तं भतति कीनशो पूर्णकाल्ला च भोगिनाम् ॥४६
 दत्ताधरो नरपतिर्धनवान्कमलाधरः । स्थूलोऽष्टा हनुमलाश्च शुष्कैस्तीक्षणेश्च दुःखिताः ॥४७

और अधिकतर नीची हयेली अच्छी नहीं होती है । हे देव वीर ! लाल के समान हयेली वाला ऐश्वर्यवान् होता है ॥३४। पीली हयेली से मनुष्य अगम्या (जो किसी प्रकार से भोग करने के योग्य न हो) स्त्री के साथ गमन, रुखी हयेली से निर्धन, नीली एवं काली हयेली से अपेय (जो किसी प्रकार पीने के योग्य न हो) वस्तु का सदैव पान करने वाला होता है ॥३५। हे गुह ! नीची और चिकनी रेखा धनवानों की हयेली में होती है न कि दरिद्रों की, समुद्र ने बताया है ॥३६। जिसकी अंगुलियाँ द्विरल होती है वे दरिद्र होते हैं । हे महाबाहो ! घनअंगुलियों वाले मनुष्य धनवान् होते हैं ॥३७। जिसका मुख गोल होता है वह धार्मिक होता है । हाथी के सूँड के समान मुख वाले मनुष्य निःसदेह भाग्यहीन होते हैं ॥३८। सिंह की भाँति, टेढ़े, विकारी टूटे-फूटे और भयंकर मुखवाले सभी मनुष्य चोर होते हैं ॥३९। सौन्दर्य-पूर्ण मुख राजाओं का होता है । हाथी, सिंह, बकरा एवं वानर की भाँति मुख वाले धनी होते हैं ॥४०। जिसका कपोल पूर्ण-सुन्दर तथा कमल के पाते के समान हो, वह सेती का सदैव उपभोग करने वाला एवं महाधनी होता है ॥४१। सिंह, बाघ और हाथी के समान कपोल वाला मनुष्य महान् भोगी तथा सेना-नायक होता है ॥४२। सम, चिकना, गोल और सुन्दर मुख राजाओं का होता है । हे महाबाहो ! इसके विपरीत मुख, दुःखदायक होते हैं ॥४३। हे देवेश ! बड़ा मुख भाग्य-हीन बनाता है । स्त्री के समान मुख पुत्र का नाश एवं गोल मुख मुखी करता है ॥४४। लम्बा-चौड़ा मुख धन का नाश, पापी और भयप्रद होता है । उसी भाँति धूर्तों का मुख चौकोर होता है । हे देवेन्द्र ! अब पुत्र की हानि करने वाले (मुख) को बता रहा हूँ सुनो ! ॥४५। नीचा मुख पुत्र की हानि करता है । छोटा मुख वाला मनुष्य नीच होता है एवं भोगी पुरुषों का मुख सौन्दर्य-पूर्ण होता है ॥४६। लाल रंग के ओंठ वाला मनुष्य नराधिप होता है और कमल की भाँति ओंठ वाला धनवान् एवं मोटे-बड़े, सूखे और उप्र ओंठ वाले मनुष्य दुःखी होते हैं ॥४७। हे गुह ! जिसका अग्रभाग फटा न हो,

अस्तकोटिततां प्रस्तु च न तं मृदु तथा गुह । सम्पूर्णं च सदा शस्तं इमश्च भूमिपतेर्गुह ॥४८

रक्तेश्वराल्पैस्तथा रुक्षः इमश्रुभिर्भीमनन्दन । नराश्वैरा भवन्त्येव परदाररतास्तथा ॥४९

निर्मासी यस्य वै कर्णो संग्रामान्नाशमृच्छति । चिपिटाभ्यां भवेद्वोगी हृस्वौ च कृपणस्य च ॥५०

शड्कुकर्णश्च भूनायः सर्वशब्दुभयद्वृक्षः । दीर्घवृ रोमशान्यां तु लिपुलाभ्यां नराधिदः ॥

भोगी च स भवेन्तिं देवव्राह्मणपूजकः ॥५१

शिरावबद्धौ द्वूरस्य व्यालम्बो च विशेषतः । मांसलौ सुखदौ ज्ञेयौ श्रवणौ व्योमकेशङ् ॥५२

भोगी स्यान्निगण्डो वै मन्त्री सम्पूर्णगण्डकः । शुभभाकृष्णकनासस्तु चिरजीवी शुष्कनासिकः ॥५३

कुन्दकुण्डलसञ्ज्ञाशैः प्रकाशैर्दशनैर्पृष्ठः । श्रद्धवानरदन्ताश्च नित्यं क्षुत्यरिपीडिताः ॥५४

हस्तिदन्ताः खरदन्ताः स्तिरथदन्ता गुणान्विताः । करातैर्विरर्लै रुक्षैर्दशनैर्दुःखजीविनः ॥५५

द्वात्रिंशदन्ता राजान एकत्रिंशच्च भोगवान् । त्रिंशदन्ता नरा नित्यं सुखदुखित्वभागिनः ॥

ऊनत्रिंशच्च दशनैः पुरुषाः दुःखभागिनः ॥५६

कृष्णजित्वो भवेत्प्रेयः सवलया तु जिह्वया । भद्रेत्कोपस्य कर्ता वै स्थूलरुक्षश्च जिह्वया ॥५७

श्वेतजित्वा नरा ज्ञेयाः शौचाचारसमन्विताः । पद्मपत्रसमा जिह्वा सूक्ष्मा दीर्घा सूक्ष्मा भूनाय ॥

स्थूला च न च विस्तीर्णा येषां ते मनुजाधिपाः ॥५८

चिकनी, नीचे की ओर झुकी हुई, कमल और बालों से भरी हुई (अच्छी दाढ़ी राजा की होती है) ॥४८। हे भीमनन्दन ! उसी प्रकार लाल, थोड़ी और रुखी दाढ़ी वाले मनुष्य चोर तथा व्यभिचारी होते हैं ॥४९। जिसके कान मांस-हीन हों, लड़ाई द्वारा उसका नाश होता है । चिपटे कान वाला मनुष्य भोगी, छोटे कान वाला कृपण (कंगूस) नुकीले कान वाला समस्त शशुरों के लिए भयंकर पृथ्वीपति, रोम से भरे हुए कान वाला दीर्घजीवी एवं बड़े कान वाला मनुष्य भोगी तथा देवता और द्वाहृण की पूजा करने वाला राजा होता है ॥५०-५१। नसों से घिरे हुए कान निर्दीपी मनुष्य के होते हैं । हे शिवपुत्र ! भली-भाँति लम्बे एवं मांस से भरे हुए कान सुखदायक होते हैं ॥५२। नीचे की ओर झुके कंपोल वाला मनुष्य भोगी और सब भाँति सुन्दर कंपोल वाला मन्त्री होता है । तोते के समान नाक वाला उत्तम पुरुष, सूखी नाक वाला दीर्घजीवी होता है ॥५३। उसी प्रकार कुन्द पुष्प की कली की भाँति चमकीले दाँत राजा के होते हैं । रीछ और बानर के समान दाँत वाले मनुष्य सदैव भूख से अत्यन्त दुःखी रहते हैं ॥५४। हाथी और गधे के समान तथा चिकने दाँत गुणवानों के होते हैं एवं कराल विरले और रुखे दाँत वालों का दुःखी जीवन होता है ॥५५। बत्तीस दाँत वाले मनुष्य राजा, एकतीस दाँत वाले भोगी, तीस दाँत वाले मनुष्य सदा समान सुख-दुःख भोगते हैं और उन्तीस दाँत वाले पुरुष सदैव दुःखी रहते हैं । काली और चित्र-चित्र वर्ण की जीभ वाला मनुष्य सेवक, मोटी एवं रुखी जीभ वाला क्रोधी तथा सफेद जीभ वाला सदाचारी होता है । कमल के पत्ते की भाँति पतली और लम्बी जीभ बहुत अच्छी होती है । जिसकी जीभ अधिक मोटी तथा चौड़ी न हो तो वे राजा होते हैं ॥५६-५८। यदि नीची-चिकनी, छोटी और लाल रंग की जीभ हो तो वे निःसंदेह विद्याओं

निन्मा श्रिधा च हस्ता च रक्ताग्रा रसना यदि । सर्वदिद्याप्रवक्तारस्ते भवन्ति न संशयः ॥५९

कृष्णतालुर्नो यस्तु स भवेत्कुलनाशनः । मुखभागी दुखभागी पीततालुर्नराधिपः ॥६०

विकृतं स्फुटिं रूपं तातुकं न प्रस्त्यते । सिंहतालुर्नरपतिर्गजतालुस्तथैव च ॥

पद्मतालुर्नवेदाजा भेततालुर्धनेश्वरः ॥६१

हुसरवरा नरा धन्या सेधगम्भीरनिःस्वनाः । क्रौंचस्वनाश्च राजानो भोगवन्तो शूद्राधनाः ॥६२

चक्रवाकस्वना धन्या राजानो धर्मवत्सलाः । कुम्भन्त्वनो नरपतिर्दुन्दुभिस्वन एव च ॥

स्खदीर्घस्वरा: कूरा: पश्नां सृष्टा न तु ॥६३

‘गुरुरस्वरसंयुक्ताः पुरुषाः क्लेशञ्जगिनः । चाषस्वना भाग्ययुता चिन्नकांस्यस्वराश्च ये ॥

क्षीणभिन्नसद्वा ये स्युरधमास्ते प्रकीर्तिताः ॥६४

पर्थिवात्तुनासाश्च दीर्घनासाश्च भोगिनः । हृस्वनस्सा नरा ये तु धर्मशीलास्तु ते मताः ॥६५

हस्यधर्मसिंहनासाश्च सूचीनासाश्च ये नरा । तेषां सिद्धिं वाणिज्यं हयानां चैव विक्रयः ॥६६

दिङ्गता नासिका यस्य ‘स्थूलाग्रा ल्पवर्जितः । पादरूपा स विज्ञेयः सामुद्रवचनं यथा ॥६७

दाढिमोपुष्पसंकाशे भवेतां यस्य लोचने । ‘भूपतिः स तु विज्ञेयः सप्तद्वीपाधिपो गुह ॥६८

व्याघ्राक्षाः कोपना ज्ञेयाः ‘कर्कटाक्षाः कलिप्रियाः । बिडालहंसनेत्राश्च भवन्ति पुरुषाधमाः ॥६९

के विद्वान् होते हैं ।५९। काले रंग का तालू वाला पुरुष, कुल का नाश करने वाला होता है । पीले तालू वाला मनुष्य समान सुख-दुःख भोगने वाला राजा होता है ।६०। विकार समेत, फटी और रुखी तालू अच्छी नहीं होती है । सिंह, हाथी एवं कमल की भाँति तालू वाले मनुष्य राजा और मफेद तालू वाले धनवान् होते हैं ।६१। हंस की भाँति स्वर वाले मनुष्य प्रणेता के पात्र होते हैं । मेघ के समान गम्भीर तथा करोंकुल पक्षी के समान स्वर वाले मनुष्य भोगी एवं महाधनवान् राजा होते हैं ।६२। चक्रवाक् (चक्रवा) के समान स्वर वाले राजा होते हैं । रुखी और जोर की वाणी जो पण्डितों के समान न हो, बोलने वाले निर्दयी होते हैं ।६३। धर्घर वाणी वाले मनुष्य दुःखी रहते हैं । नीलकंठ के समान स्वर वाले भाग्यशाली और फूटे कांसे (धातु की भाँति) क्षीण एवं दूरी-फूटी वाणी वाले मनुष्य अधम होते हैं ।६४। पतली नाक वाले मनुष्य राजा, लम्बी-चौड़ी नाक वाले भोगी और छाटी नाक वाल मनुष्य धार्मिक होते हैं ।६५। हाथी, घोड़े, सिंह एवं सूई की भाँति नाक वाले मनुष्य सफल व्यापारी तथा घोड़े का रोजगार भी करते हैं ।६६। जिसकी नाक में विकार अग्रभाग में मोटी एवं भंडी हो ममुद्र के कथनानुसार उन्हें पापी जानना चाहिए ।६७। हे गुह ! जिसकी आँखें अनार के फूल के समान हो वह सातों द्वीप का महाराजा होता है ।६८। बाघ के समान आँखों वाला मनुष्य क्रोधी, केकड़ा और भाँति आँख वाला कलह-प्रिय (झगड़ालू) और बिल्ली एवं हंस की भाँति आँखों वाला मनुष्य नीच होता है ।६९। मोर तथा नेवला के समान आँख

१. दुखी । २. दुर्वाच । ३. मांसला । ४. पुरुषः । ५. कुकुटाक्षः । ६. न स्त्री त्यजति ।

मधूरनकुलाक्षाश्च नरात्मे मध्यमाः स्मृताः । न 'श्रीस्त्यजति सर्वज्ञ पुरुषं मधुषिङ्गलम् ॥७०
आपिङ्गलाक्षा राजानः सर्वभोगसमन्विताः । रोचना हरितालाक्षा गुञ्जापिङ्गा धनेश्वराः ॥

बलसत्त्वगुणोपेताः पृथिवीचक्रवर्तिनः ॥७१

द्विभात्रावोदरणा नित्यं जीवन्ति परमाश्रिताः । त्रिमात्रास्थन्दिनो ज्ञेयाः पुरुषाः सुखभागिनः ॥७२

चतुर्मात्रानिमेवैश्च नदनैरीश्वराः स्मृताः । दीर्घायुषो धर्मरताः पञ्चमात्रानिमेविणः ॥७३

हृष्टवकर्णा महाभाग भक्ताश्च ये नराः । आवर्तकर्णा धनिनः तिनग्रधकर्णास्त्वयैव च ॥७४

दीर्घायुषः शुक्लिकर्णाः शहृष्टकर्णा सहधनाः । दीर्घायुषो दीर्घकर्णा लम्बकर्णास्त्वपस्त्विनः ॥७५

ललाटेनार्थदन्देश भवन्ति पृथिवीश्वराः । विपुलेन ललाटेन महाधनपतिः स्मृतः ॥

स्वल्पेन तु ललाटेन नरो धर्मरतः स्मृतः ॥७६

रेखा पञ्च ललाटे तु स्त्रिया वा पुरुषस्य वा । शतं जीवति वर्षणामैश्वर्यं चाधिगच्छति ॥७७

चतूरेखामशीति तु त्रिभिः सप्ततिमेव च । द्वाभ्यां जप्त्वा तु रेखाभ्यां चत्वारिंशत्तयैकया ॥

अरेखेन ललाटेन विज्ञेया पञ्चविंशतिः ॥७८

रेखाच्छेदस्तु विज्ञेया हीनमध्योत्तमा नराः । अल्पायुषस्तथाल्पाभिव्याधिभिः परिपीडिताः ॥७९

त्रिशूलं पट्टिशं वापि ललाटे यस्य दृश्यते । इश्वरं तं विजानीयाद्वौगिनं कीर्तिमाश्रितम् ॥८०

वाले मनुष्य अधम श्रेणी के होते हैं । शहद के समान भूरा लिए हुए लाल या पीतवर्ण की आँख वाले का त्याग, लक्ष्मी कभी नहीं करती हैं । ७०। एकमात्र लाल या थोड़ी पीती (कंजा) आँख वाले मनुष्य संपूर्ण उपशोग काने वाले राजा होते हैं । गोरोचन, हरताल और धूंघुची के समान आँख वाले सात्विक एवं चक्रवर्ती राजा होते हैं । ७१। दो क्षण तक अपलक देखने वाला मनुष्य किसी बड़े के आश्रित रहकर जीवन व्यतीत करता है । तीन क्षण तक अपलक देखने वाला सुखी रहता है । ७२। चार क्षण तक अपलक देखने वाला स्वामी होता है और पाँच क्षण तक अपलक देखने वाला मनुष्य दीर्घजीवी और धार्मिक होता है । ७३। छोटे कान एवं विशाल कान वाले मनुष्य पुण्यात्मा होते हैं । भैवर की भाँति कान वाले और चिकने कान वाले धनवान् होते हैं । ७४। सीप के समान कान वाले दीर्घजीवी, शंख की भाँति कान वाले महाधनवान्, लम्बे कान वाले दीर्घजीवी एवं तपस्वी होते हैं । ७५। अर्द्धचन्द्र की भाँति ललाट वाले महीपति, बड़े-चौड़े ललाट वाले महाधनी और छोटे ललाट वाले मनुष्य धर्मप्रिय होते हैं । ७६। पुरुष या स्त्री के भाल में पाँच रेखा हो तो वह सौ वर्ष का जीवन एवं ऐश्वर्य प्राप्त करता है । ७७। चार रेखा वाले अस्सी वर्ष, तीन रेखा वाले सत्तर वर्ष, दो रेखा वाले साठ वर्ष, एक रेखा वाले चालीस वर्ष और बिना रेखा वाले मनुष्य पञ्चीस वर्ष की आयु प्राप्त करते हैं । ७८। इस रेखा विभाग द्वारा मनुष्य की आयु उत्तम, मध्यम और अल्पायु जाननी चाहिए । अल्पायु वाले मनुष्य कुछ रोग से सदैव दुःखी भी रहते हैं । ७९। जिसके भाल में त्रिशूल या वज्र दिखाई दे वह स्वाति प्राप्त अधिनायक एवं भोगी होता है । ८०।

उक्तान्तनिन्ने तु शिरः स्वल्पोपहतनेव च । चन्द्राकारं^१ नरेन्द्राणां गवाढयं मङ्गलं सूर्यम् ॥८१
विसमं तु दरिद्राणां शिरे दीर्घं तु दुःखिनाम् । नागकुम्भनिभं राज्ञः समं सर्वत्र भोगिनः ॥८२
कपिलं स्फुटितै रूपैः स्थूलैश्च शिखरेशयैः । दुःखिता पुरुषा जेया रोमशमशुभिरेव च ॥८३
रूपा विवर्णा निस्तेजा: ह्यराः स्थूलाश्र मूर्धजाः : नातिस्तोका न बहुशो मूर्धजा दुःखभागिनः ॥८४
विरलाश्र मृदुस्तिनाथा भ्रमराज्जनसप्रशाः । कचा यस्य तु दृश्यन्ते स भवेत्पृथिवींपर्ति: ॥८५

इति क्षीनविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां इत्ये पर्वणि चतुर्थीकल्पे
पुरुषलक्षणवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

पुरुषलक्षण-वर्णनम्

कार्तिकेय उवाच

संक्षेपतो नम विभो लक्षणानि नृपस्य तु । शुभानि चाङ्गजातानि ब्रह्मि मे ददतां वर ॥१
ब्रह्मोवाच

शृणु वक्ष्येऽङ्गजातानि पार्थिवस्य शुभानि च । पार्थिवो ज्ञायते यैस्तु नराणां मध्यभागतः ॥२

ऊँचाई-नीचाई लिए (चढ़ाव-उतार) कुछ दबे हुए एवं चन्द्राकार शिर राजाओं के लिए माङ्गलिक, अधिक गौओं को देने वाला कहा गया है ॥८१। दरिद्रों का ऊँचा या नीचा, दुःखी लोगों का लम्बा, राजा का गजकुंभ के समान और सर्वत्र उपभोग करने वाले मनुष्य का सम, सिर होता है ॥८२। कपिल (भूरा) फटे, रूपे एवं मोटे बाल, शिर देह या दाढ़ी के हों तो उस पुरुष को दुःखी जानना चाहिए ॥८३। रूपे कांतिहीन, निस्तेज, नुकीले, मोटे, न अति अल्प एवं न अत्यधिक शिर के बाल दुःखी मनुष्य के होते हैं ॥८४। विरल, कोमल, चिकने तथा भौंरे की भाँति काले बाल जिसके शिर में हों वह मनुष्य भूपति होता है ॥८५

श्रीभविष्य महापुराण में ब्रह्मपर्व के चतुर्थीकल्प में पुरुष लक्षण वर्णन नामक
छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२६।

अध्याय २७

पुरुषों के लक्षण का वर्णन

कार्तिकेय ने कहा—हे कहने वालों में श्रेष्ठ प्रभो ! मुझसे संक्षेप में राजा का लक्षण और उनकी शरीर के शुभसूचक अंगों को भी बताइये । १

ब्रह्मा बोले—राजा के उन शुभ अंगों को, जिनके द्वारा मनुष्यों के बीच में राजा को जाना जा सके, मैं कहता हूँ, मुझो ! ॥२। हे महाबाहो ! हे प्रभो ! जिस मनुष्य के तीन बड़े, छँऊंचे, तीन गंभीर, चार छोटे, सात

श्रीणि यस्य महादाहो विगुतानि नरस्य तु । उन्नतानि तथा षड् वै गम्भीराणि च श्रीणि वै ॥३
 चत्वारि चापि हस्त्वानि सप्त रक्तानि वा विभो । दीर्घाणि चापि सूक्ष्माणि भवन्ति यस्य पञ्च वा ॥४
 नाभिः संधिः स्वनश्चेति गम्भीराणि च श्रीणि वै । बदनं च तलाटं च दन्तोत्तम उरस्तथा ॥५
 विस्तीर्णमेतत्स्त्रितयं दीर यस्य नरस्य तु । स राजा नान्न सन्देहः शृणुव्वेदोन्नतानि च ॥६
 कृकाटिका तथा चास्य नखा वक्षोऽहं नासिका । कषे चापि महादाहो षडेतानि विदुर्बुधाः ॥७
 लिङ्गं पृष्ठं तथा शीवा जङ्घां हस्त्वानि मुव्रत । नेत्रान्ते हस्तपादां तु ताल्दोऽठौ च मुरोत्तमः ॥८
 जिद्वा रक्तम नखनश्चैव सन्तैतानि महाभृते ॥८

त्वचः कररुहा: देशा दशना ऋग्भूवोत्तम । शूद्रभान्येतानि च गुह पञ्च चापि विदुर्बुधाः ॥९
 नासिकालोचने बाहु स्तनयोरन्तरं हनुः । इति दीर्घमिदं प्रोत्तं एञ्चकं भूभुजां नृप ॥१०
 क्षुतं राजां सकृदिद्विस्त्रित्वान्दितं हादितं तथा । दीर्घायुषां प्रयुक्तं ते हस्तिं च विदुर्बुधाः ॥११
 पद्मपत्रनिभे नेत्रे धनिनां शिखनन्दन । भर्गवीमास्त्रुयात्सोऽपि रक्तान्ते यस्य लोचने ॥१२
 नशुपिङ्ग्नं र्महात्मानो नरा ज्ञेयः मुराधिपः । भीरवो हि कृशाक्षास्तु चौरा मण्डलचक्रकैः ॥१३
 कूरा: केकरनेत्रास्तु गम्भीरैरर्थसम्पदः । नीलोत्पलाभैर्देवविदो भृशं कृष्णस्तथाधिता ॥
 मन्त्रित्वं स्थूलसुदृशो वदन्ति भुवि तट्टिदः ॥१४

लाल, पाँच लम्बे एवं पाँच पतले हों । जैसे—जिस पुरुष की नाभि, संधि (गांठ या स्वभाव) और वाणी ये तीनों गंभीर हों तथा हे दन्तोत्तम ! मुख, ललाट एवं छाती ये तीनों चौड़ी हों, वह नि संदेह राजा होता है । उसी प्रकार ऊँचे स्थानों को भी कह रहा हूँ, मुनो । ३-६। गले की छाँटी, मुख, नख, उरस्यल, नाक और काँख इन छहों को विद्वानों ने ऊँचे बताये हैं । ७ हे मुव्रत ! लिंग, पीठ, गला एवं जाघ ये छोटे, नेत्र का बाहरी कोना, हाथ, पाँव, तालू औंठ और जीभ एवं नख ये सातों लालरंग के होने चाहिये । ८ हे देवेष्ठ ! उसी भाँति अंगुलियों का पोर देह का ऊपरी चमड़ा, नख, केश एवं दाँत को पतला होना, विद्वानों ने बताया है । ८-९। नाक, आँख, भुजा, स्तनों के बीच का भाग (छाती) एवं ठुड़ी ये पाच राजा के लिए बड़े बताये गये हैं । १०। उसी भाँति राजा की छीक कुछ ध्वनि के कारण और एक होती है । दो या तीन बार मधुर शब्द सहित छीक दीर्घजीवी लोगों की होती है, ऐसा विद्वानों ने बताया है । ११ हे शिखनन्दन ! कमल के पते की भाँति नेत्र, धनवानों के होते हैं । जिसके नेत्र के बाहरी कोने का भाग लाल रंग हो उसे भी पृथ्वी-लाभ होता है । १२। शहद की भाँति पिंगलवर्ण (भूरा लिये हुए लाल) वाले मनुष्य महात्मा होते हैं । हे मुराधिप ! पतली या छोटी आँख वाले भीर और गोल पहिए की भाँति आँख वाले चोर होते हैं । १३। कंजी आँख वाले निर्दयी एवं गहरी आँख वाले धनवान, नीलकमल की भाँति आँख वाले वैदिक-विद्वान् और अत्यन्त काली आँख वाले भी धनवान् होते हैं । संसार में नेत्र के विद्वानों ने बड़ी एवं सौन्दर्यपूर्ण आँख वालों को मंत्री होना बताया है । १४। श्याम वर्ण की आँख वाले सौभाग्यवान् एवं

इयासाक्षाः सुभगा ज्ञेया दीनाक्षैश्च दरिद्रता । विस्तीर्णभौमिनो श्रेष्ठा विपुलैश्च तथा गुह ॥१५
 अन्युश्रताभिर्हस्यायुर्विशालाभिः सुखी भवेत् । दरिद्रो विषमाभिस्तु ततो ज्ञेयः सुरोत्तम ॥१६
 भुजो बालेऽनुसदृशा धनिनामार्भवोत्तम । दीर्घाभिर्निर्धनो ज्ञेयः संसक्ताभिस्तु लुब्रत ॥१७
 क्षीणाभिरर्थहीनाः स्युर्नरा ज्ञेयाः सुरोत्तम । मध्ये नतञ्चुयो ये च परदाररतास्तु ते ॥१८
 विरलैश्चतः शास्त्रैर्न्याः^१ स्युर्नात्र संशयः । निष्ठाः स्तुत्यर्थसंसक्ता^२ उप्लत्यंश्च जनाधिकाः ॥१९
 दिष्मललाटा विश्वतः सदा स्मृदेवसत्तम । आचार्याः शुक्लिः दृशीर्नरा^३ स्युर्नात्र संशयः ॥२०
 उश्मतशिरोभिरादधा नरा ज्ञेयाः सदा गुह । वधबन्धभागिनो वीरा नरा निष्प्रललाटिनः ॥

मृशमुश्रतैश्च मूर्दश्च कृषणाश्च तथा नतैः ॥२१
 शुभावहं मनुष्याणां ददनं स्याद्यथा भृणु । अदीनमाननं स्तिर्धं सस्मितं च विशेषतः ॥२२
 राशुदीनं तथा रूपमस्तिर्धं निन्दितं^४ गुह । असम्भाव्यं मुखं ज्ञेयं नराणां नगदारण ॥२३
 अकम्यं शुभदं ज्ञेयं नराणां हसितं गुह । निमीलिताक्षं पापस्य हसितं चार्भवोत्तम ॥२४
 रामण्डलं शिरो यस्य स गवाढधो नरो भवेत् । छण्डाकृति शिरो यस्य स भद्रेश्वरतिर्नरः ॥२५
 चिपिटाकारितशिरा हन्याद्वै पितरौ नरः । घण्डाकृति शिरोश्वानमसङ्गत्सेवते नरः ॥

दीनहीन आँखों वाला दरिद्र होता है । हे गुह ! उसी प्रकार चौड़ी और बड़ी आँखों वाले को भोगी जानना चाहिए । १५। हे सुरोत्तम ! चारों ओर से ऊँची आँख वाला अत्यायु, विशाल नेत्र वाला सुखी और विषम आँख वालों को दरिद्र जानना चाहिए । १६। धनवानों की भाँहें नवीन चन्द्रमा (द्वितीया के चन्द्रमा) की भाँति होती है । हे मुव्रत ! सुरोत्तम ! भली-भाँति आपस में मिली हुई और लम्बी चौड़ी भाँह वाले निर्धन तथा दुबली-पतली भाँह वाले को भी निर्धन जानना चाहिए । जिसकी भाँह का मध्य भाग नीचा हो, वह व्यधिचारी होता है । १७-१८। विरल, ऊँची एवं शंख के समान, भाँह वाले मनुष्य निःसदेह प्रतिष्ठित होते हैं । नीची भाँह वाले मनुष्य सदैव प्रशंसा करने में लगे रहते हैं और ऊँची भाँह वाले नराधिप होते हैं । १९। हे देवश्रेष्ठ ! विषम ललाट वाले सदैव धन-हीन रहते हैं । सीप की भाँति ललाट वाले निःसदेह आचार्य होते हैं । २०। हे गुह ! ऊँचे शिर वाले सदा धनवान् होते हैं । नीचे ललाट वाले बंधनों से बँधे हुए होते हैं । और मारे जाते हैं । अत्यन्त ऊँचे मस्तक वाले मूर्ख एवं मुके हुए मस्तक वाले कृषण (कंजूस) होते हैं । २१। पुत्र ! मैं मनुष्यों के शुभसूचक मुख को बता रहा हूँ, सुनो ! उदार, कान्तिमान एवं विशेषकर मन्द मुस्कान वाला मुख उत्तम होता है । २२। हे गुह ! हे पर्वत विदारक ! आसुओं समेत, दीन-हीन, रूखा तथा कान्तिहीन मुख अशुभ कारक होता है । मनुष्यों के ऐसे मुख को सदैव अश्रेयस्कर जानना चाहिए । २३। हे गुह ! मनुष्यों की निष्कंप हँसी शुभदायक होती है । हे देवश्रेष्ठ ! पापी लोग आँख मूँदकर हँसते हैं । २४। चारों ओर से गोल शिर जिसका हो उसे अधिक गाये रहती है । जिसका शिर छते के समान हो वह मनुष्य राजा होता है । २५। चिपटे शिर वाले मनुष्य माँ-बाप के धातक होते हैं । घंटे के समान शिर वाला पुरुष सदा पर्यक बना रहता है । हे देवश्रेष्ठ ! मनुष्यों का नीचा शिर हनिकारक होता है । २६। गोल,

१. धनाढधा: । २. मुताश्रसंसक्ताः । ३. अदीनानशुस्तिर्धं च । ४. च तथा गुह ।

निनं शिरोनर्थदं स्यान्नराणामर्भवोत्तम
गुडः स्त्रियैस्तथा कृष्णैरभिन्नाग्रैस्तथैव हि । केशैर्न चातिबहुलैर्मृदुभिः पार्थिवो भवेत् ॥२६
बहुलाः कपिलाः स्थूला विषमाः स्फुटितास्तथा । परुषा हस्त्वात्कुठिसा दरिद्राणां कच्चाः घनाः ॥२७
इत्युक्तं लक्षणं नृणां शुभं दाशुभमेव च । योषितां तदिदानीं ते लक्षणं वच्चिम भीमज ॥२८
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्राणां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे पुरुषलक्षणवर्णनं
नाम सप्तदिव्योऽध्यायः । २७।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

भृण्डिवानीं भद्राबाहो स्त्रीलक्षणमनुत्तमम् । यन्मयोक्तं पुरा वीर नारदस्य महात्मनः ॥१
तत्त्वं विज्ञायते येन शुभाशुभगवत्प्रितम् । निन्दितं च प्रशस्तं च स्त्रीणां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥२
मातरं पितरं चैव भ्रातरं मातुलं तथा । द्वौ तु विष्वो परीक्षेत समुद्रस्य वचो यथा ॥३
मुहूर्ते तिथिसम्पन्ने नक्षत्रे चाभिपूजिते । द्विजस्तु सह वागम्य कन्यां वीक्षेत शास्त्रवित् ॥४
हस्तौ पादौ परीक्षेत अङ्गुलीनखमेव च । पाणिमेव च जड्ये च कटिनासोरु एव च ॥५

चिकने, काले, जिसका अग्रभाग फटा न हो, कोमल एवं अधिकता न हो, तो ऐसे केश वाल। मनुष्य राजा होता है । २७। अधिक कपिल, (भूरा) मोटे, विषम, अग्रभाग फूटे, कड़े, छोटे, अत्यन्त टेढ़े और घन केश दरिद्रों के होते हैं । २८। हे भीमपुत्र ! मैंने इस प्रकार पुरुषों का शुभ एवं अशुभ-सूचक लक्षण बता दिया । अब स्त्रियों का शुभ-अशुभ लक्षण तुम्हें बता रहा हूँ । २९।

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में पुरुष-लक्षण नामक

सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त । २७।

अध्याय २८

स्त्रियों के लक्षणों का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—हे महाबाहो ! इस समय स्त्री के उन लक्षणों को, जिन्हें पहले मैंने महात्मा नारद जी को बताया था, कह रहा हूँ, सुनो ! । १। जिनके द्वारा स्त्रियों का शुभ-अशुभ मालूम होता है, उन अच्छे और बुरे लक्षणों को मैं बता रहा हूँ । २। माँ-बाप, भाई और मामा (अर्थात् दोनों भातृकुल और पितृकुल) की परीक्षा समुद्र के बचनानुसार होनी चाहिए । ३। किसी शुभ-मुहूर्त, तिथि एवं अच्छे नक्षत्र में लक्षणों का विद्वान्, ब्राह्मणों के साथ जाकर कन्या को देखे । ४। पश्चात् हाथ, चरण, अंगुली, नख, करतल, जाँघ,

जघनोदरगृष्णं च स्तनौ कण्ठं भुजौ तथा । जिह्वां चोष्ठौ च दन्ताश्च कपोलं गलकं तथा ॥६
 चक्षुर्नासा ललाटं च शिरः केशांस्त्यैव च । रोमराजिं^१ स्वरं वर्णमावर्तानि तु वा पुनः ॥७
 यस्यास्तु रेखाश्रीदायां या^२ च रक्तान्तलोचना । यस्य सा गृहमागच्छेत्तदगृहं सुखमेधते ॥८
 ललाटे दृश्यते यस्यास्त्रिशूलं देवनिर्मितम् । दृहनां स्त्रीसहस्राणां स्वामिनों तां विनिर्दिशेत् ॥९
 राजहंसगतिर्यस्या मुगाक्षी मृगवर्णिका । समसुक्लाप्रदन्ता च कन्धां तासुतमां विदुः ॥१०
 मण्डूकलुक्षी या कन्धा न्यग्रोधपरिमाडला । एकं जनयते पुत्रं सोऽपि राजा भविष्यति ॥११
 हंसस्वरा श्रुद्वच्चा या कन्धा मधुपिङ्गला । अब्दौ जनयते पुत्रान्धनधान्यविवर्धिनी ॥१२
 आप्ततौ श्रदण्डौ यस्ता: सुरूगा चापि नारिका । भुवौ चेन्द्रायुधाकारौ सात्यन्तं सुखभागिनी ॥१३
 तन्वी इयामा तथा कृष्णा स्तिर्धान्जी शृद्वभाषिणी । शश्वकुदेन्दुदशना भवेदैश्वर्यभागिनी ॥१४
 विस्तीर्णं जघन यस्या वेदिभ्यां तु या भवेत् । आयते विपुले नेत्रे राजपत्नी तु सा भवेत् ॥१५
 यस्याः पयोधरे वामे हस्तेकर्णे गलेऽपि वा । मशकं तिलकं वापिसा पूर्वं जनयेत्सुतम् ॥१६
 गृद्धगुलाङ्गुलिशिरा जलप्यार्णिः सुमध्यमा । रक्ताक्षी रक्तत्त्वरणा सात्यन्तं सुखभागिनी ॥१७
 कूर्मपृष्ठायतनलौ स्तिर्धभावविवर्जितौ । वक्राङ्गुलितलौ पादौ कन्धां तां परिवर्जयेत् ॥१८
 येन केनचिद्देशेन मांसं यस्या विवर्धते । रासभीं तादृशीं विद्याम्रं सा कल्याणमर्हति ॥१९

कमर, नाक, घुटना, उदर, पीठ, स्तन, कान, भुजा, जीभ, ओठ, दाँत, कपोल, कण्ठ, आँख, मस्तक, शिर, केश, रोमावली, स्वर, वर्ण और नाभि की परीक्षा करे । ५-६ जिसके गले में रेखा तथा आँख के समीप का भाग लाल रंग हो, वैसी स्त्री जिस घर में आती है उस घर में उत्तरोत्तर सुख की वृद्धि होती है । ८। जिसके भाल में त्रिशूल का चिह्न हो, वह अनेक सहस्र स्त्रियों की अधिकारिणी होती है । ९। जिसकी राजहंस की भाँति गति (चाल), मृग के समान आँखें तथा वर्ण एवं सम और कान्तिमान् सामने वाले दाँत हों वह उत्तम कन्धा बताई गई है । १०। जिसकी मेढ़क की भाँति कोख हो और वट वृक्ष के समान मण्डलाकार हो वह स्त्री एक पुत्र उत्पन्न करती है, जो राजा होता है । ११। जिस कन्धा का हंस के समान स्वर, कोमल वाणी एवं शहद के समान (भूरा लिए हुए लाल) वर्ण हो, वह धन-धान्य की वृद्धि करती हुई आठ पुत्रों को उत्पन्न करती है । १२। जिसके लम्बे कान, मुन्दर नाक और इन्द्रधनुप की भाँति भौंहें हों, वह अत्यन्त सुख का उपभोग करती है । १३। जिसकी पतली देह, साँवला रंग, चिकने एवं कान्तिमान् अंग, कोमल वाणी और शाख, कुंद एवं चन्द्र की भाँति दाँत हों, वह स्त्री ऐश्वर्य का उपभोग करती है । १४। जिसकी चौड़ी जांघ, बेदी की भाँति (पतली) मध्यम भाग तथा लम्बी चौड़ी आँख हों, वह राजा की स्त्री होती है । १५। जिसके बायें स्तन, हाथ, कान एवं गले में मसा या तिल हो वह पहले पुत्रं पैदा करती है । १६। जिसकी ऐँड़ी के ऊपर की गाँठ और नसें मांसल (मास से छिपी) अंगुलियाँ अतिसमीप, छोटी ऐँड़ी, मुन्दर कमर, आँख और चरण लाल हों वह अत्यन्त सुख का उपभोग करती है । १७। जिसके कद्धुवे की पीठ की भाँति चौड़े नख, टेड़ी अंगुली, कान्तिहीन चरणताल हों उस कन्धा के साथ विवाह न करें । १८। जिसके किसी अंग का मांस बढ़ता हो, ऐसी स्त्रियों को (गधी के समान) जो कल्याण के सर्वथा

१. रोमराजिस्तथामध्यमावर्तानि । २. यायद्रक्षानुलोमगा ।

पादे प्रदेशिनी यस्या अङ्गुष्ठं समतिक्रमेत् । दुशीला दुर्भगा कृन्यां तां परिवर्जयेत् ॥२०
 पादे मध्यमिका यस्या: क्षितिं न स्पृशते यदि । रमते सा न कौमारे स्वच्छन्दा^१ कामचारिणी ॥२१
 पादे अनामिका यस्या: क्षितिं न स्पृशते यदि । द्वितीयं पुरुषं हत्वा वृतीये सा प्रतिष्ठिता ॥२२
 पादे कनिष्ठा यस्यास्तु क्षितिं न स्पृशते यदि । द्वितीयं पुरुषं हत्वा वृतीये सा प्रतिष्ठिता ॥२३
 न देलिका न धनिका न धान्यप्रतिनामिका: । गुल्म्बुक्षसनाम्नी च कन्दां तां परिवर्जयेत् ॥२४
 इन्द्रचन्द्रादिपुरुषसनाम्नी च यदा भवेत् । नैताः पतिषु रज्यन्ते दाश नक्षत्रनामिकाः ॥२५
 आवर्तः पृष्ठतो यस्या नाभिं समनुविन्दति । तदपत्यं भवेद्ग्रस्तं हस्यायुश्च विनिर्दिशेत् ॥२६
 पृष्ठावर्ता पतिं हन्ति नाम्यादर्ता पतिप्रता । कटशावर्ता तु स्वच्छन्दा न कदाचिद्विरज्यते ॥२७
 यस्यास्तु हस्यानाया शण्डे जायेत् कूपकम् । रमते सा न कौमारे स्वच्छन्दा कार्यकारिणी ॥२८
 यस्यास्तु गच्छमानायाच्चिद्टीकायति जडिघका । पुत्रं व्यदस्येता कर्तुं पतित्वे नाशं संशयः ॥२९
 स्थूलपादा च या कृन्या सर्वांगेषु च लोमशा । स्थूलहस्ता च या स्याद्वै दासीं तां निर्दिशेत्तुधः ॥३०
 यस्याश्रोतकटकौ^२ पादौ मुखं च विकृतं भवेत् । उत्तरोष्ठे च रोमाणि सा क्षिप्रं भज्येत्पतिम् ॥३१
 श्रीणि यस्या: प्रलम्बन्ते ललाटमुदरं स्तिक्चौ । श्रीणि भक्षयते सा तु देवरं श्वशुरं पतिम् ॥३२

अयोग्य है, जानना चाहिए । १९। जिसके चरण की तर्जनी अंगुली अंगूठे के ऊपर चढ़ी रहती है, उसे दुशीला और भान्यहीन जानकर छोड़ देना चाहिए । २०। जिसके चरण की मध्यमा पृष्ठी में न छू जाय, वह कुमारावस्था में रमण तो नहीं करती, पर आगे चलकर स्वतंत्र व्याभिचारिणी होती है । २१। जिसकी अनामिका यदि पृष्ठी में न छू जाय तो वह द्वासरे पति को भी मार कर तीसरे के साथ रहे । २२। जिसकी कनिष्ठा भी पृष्ठी में न छू जाय वह भी द्वासरे पति को मार कर तीसरे पति के साथ रहती है । २३। किनी देवी के नाम तथा धने, धान्य गुल्म (हाथी, घोड़े, वृण एवं लता) और वृक्ष नाम वाली कन्याओं के साथ विवाह नहीं करता चाहिए । २४। इन्द्र, चन्द्रादि, पुरुष एवं नक्षत्र नाम वाली कन्यायें भी अपने पति से प्रेम नहीं करती हैं । २५। जिसकी पीठ और नाभि में भौंरी हो, तो उसकी सन्तान छोटी एवं अत्यायु होती है । २६। पीठ से भौंरी हो तो पति का नाश करने वाली, नाभि में भौंरी हो, तो उसकी संतान छोटी एवं अत्यायु होती है तो वह ऐसी स्वतन्त्र होती है कि कभी विरागन नहीं होती है । २७। जिसके कपोल में हँसते समय गड्ढे हो जाते हैं वह कुमार अवस्था में रमण तो नहीं करती पर आगे चलकर स्वतन्त्र काम करने वाली होती है । २८। जिसके चलते समय गुल्फ, और जांघ के मध्य किसी स्थान में टिक-टिक की आवाज होती है, वह ऐसी व्यभिचारिणी होती है कि पुत्र को भी पति बनाने के लिए प्रयत्नशील रहती है इसमें सन्देह नहीं । २९। जिस कन्या के मोटे पैर, समस्त शरीर में रोम तथा मोटे हाथ हों, उसे दासी होना विद्वानों ने बताया है । ३०। जिसके पैर का ऊपरी भाग गोला, मुख में विकार और ऊपर वाले ओठ में रोम हों, वह शीघ्र पति का नाश करती है । ३१। जिसके मस्तक, उदर और कमर का पिछला भाग तीनों अधिक लम्बे हों, वह देवर, समुद्र और पति का शीघ्र नाश करती है । ३२। सुन्दर चरित्र, गुह-भक्त, पतिपरायण और

१. दुशीला कार्यनाशिणी । २. चोत्कम्पकौ ।

समुद्रमूषितचारिञ्चा गुरभक्ता पतिव्रता । देवब्राह्मणभक्ता च मानुषीं तां विनिर्दिशेत् ॥३३
 नित्यं स्नाता सुगन्धा च नित्यं च प्रियवादिनी । अल्पाशिन्यल्परोषा च देवतां तां विनिर्दिशेत् ॥३४
 प्रच्छुभ्रं कुरुते पापमयवादं च रक्षति । हृदयं न्याज्च दुर्प्राण्हं मार्जारीं तां विनिर्दिशेत् ॥३५
 हसते क्रीडते चैव कुद्दा चैव प्रसीदति । नीचेवु रमते नित्यं रासभीं तां विनिर्दिशेत् ॥३६
 प्रतिकूलकरी नित्यं कन्धनां भर्तुरेव च । स्वच्छन्दे ललितां चैव आमुरीं तां विनिर्दिशेत् ॥३७
 'बहुशी बहुवाक्या च नित्यं चाप्रियवदादिनी । हिनस्ति स्वपतिं या तु राक्षसीं तां विनिर्दिशेत् ॥३८
 गौचाचारपरेप्रस्ता रूपभ्रष्टा भयङ्करा । प्रस्वेदमलपङ्क्तं च पिशाचीं तां विनिर्दिशेत् ॥३९
 नित्यं स्नातां सुगन्धां च मांसमद्यप्रियादिनीम् । वृक्षोद्यानप्रसक्तां च गान्धर्वीं तां विनिर्दिशेत् ॥४०
 चपला चञ्चला चैव नित्यं पश्येद्विस्तथा । चलस्वभावा तु द्व्यादृशाधरीं बुधः ॥४१
 चन्द्राननां शुभाङ्गीं तु मत्तवारणगामिनीम् । आरक्तनखहस्तां तु विद्याद्विद्याधरीं बुधः ॥४२
 वीणावादिव्रशब्देन इशगीतरवेण च । पुष्पधूपप्रसक्तां च गान्धर्वीं तां विनिर्दिशेत् ॥४३

देवता एवं ब्राह्मणों की भक्ति करने वाली स्त्री को मानुषी स्त्री बताया गया है । ३३। उसी प्रकार नित्य स्नान एवं सुगंध सेवन करने वाली मधुर बोलने वाली, अल्प भोजन और अल्प क्रोध करने वाली स्त्री को देवता बताया गया है । ३४। गुप्त पाप करने वाली, नित्यितु कर्म करके उससे बचाव करने वाली तथा जिसके हृदय का भाव जल्दी न जाना जा सके, उसे मार्जारी (विल्ली) जानना चाहिए । ३५। हँसते और खेलते समय भी जो क्रोधी एवं प्रसन्न होती है, तथा नीचों से सदा प्रेम करती है, उसे रासभी (गढी) कहते हैं । ३६। सदा अपने पति एवं भाइयों के प्रतिकूल कार्य करने वाली और स्वतंत्र विहार करने वाली स्त्री को आमुरी कहते हैं । ३७। अधिक भोजन तथा अधिक एवं सदा अप्रिय बोलने वाली और अपने पति को मारने वाली स्त्री को राक्षसी कहते हैं । ३८। शौच (बाहरी शुद्धि) और आचार से भ्रष्ट, कुरुप, भयंकर स्वभाव, पसीना, मल और कीचड़ लगाने वाली स्त्री को पिशाची कहते हैं । ३९। नित्य स्नान और सुगंध लगाने वाली, मांस मद्य और प्रिय वस्तु सेवन करने वाली एवं बगीचे में विहार करने वाली को गान्धर्वी कहते हैं । ४०। जो स्त्री स्वयं चपल, चञ्चल नेत्र, सदा इधर-उधर देखने वाली एवं स्वभाव की अस्थिर हो, और लोभी हो उसे वानरी कहते हैं । ४१। चन्द्रमा की भाँति मुङ्ग, अच्छे लक्षणों से भूषित देह, मतवाले हाथी के समान चाल तथा नख और हाथ भली भाँति लाल रंग के हों उसे पंडित लोग विद्याधरी कहते हैं । ४२। वीणा, मृदग और वंशी की तान में सदैव सीन रहकर पुष्पों और धूप में निमग्न रहने वाली को गान्धर्वी कहते हैं । ४३

१. कर्मण्यण्, ततो डीप् । २. कुद्दा च ।

सुमन्तुरुवाच

इत्येवमुक्त्वा स महानुभावो जगाम वेधा निजमन्दिरं वै ।

स्त्रीणां तथा पुंस्त्ववतां च वीर यत्क्षणं पार्थिव लोकपूज्यम् ॥४४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थी कल्पे
तत्त्वोलक्षणवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ।२८।

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

गणपतिकल्पवर्णनम्

शतानीक उवाच

गकाराक्षरदेवस्य गणेशस्य महात्मनः । आराधनविधिं ब्रूहि साङ्गं मन्त्रसमान्वितम् ॥१

सुमन्तुरुवाच

न तिथिर्व च नक्षत्रं नोपवासो विधीयते । यथेष्टं^१ चेष्टतः तिद्विः सदा भवति कामिक्ता ॥२
श्वेतार्कमूलं सङ्घृता कुर्याद्गणपतिं बुधः । अङ्गुष्ठपर्वमात्रं तु पद्मासनगतं तथा ॥३
चतुर्भुजं त्रिनेत्रं च सर्वाभरणभूषितम् । नागयज्ञोपवीताङ्गं शशाङ्ककृतशेखरम् ॥४
दन्तं सव्ये करे दद्याद्द्वितीये चाक्षसूत्रकम् । तृतीये परशुं दद्याच्चतुर्थं मोदकं न्यसेत् ॥५

सुमन्तु ने कहा—हे वीर ! इस प्रकार ब्रह्मा स्त्रियों और पुरुषों के उन लक्षणों को, जो लोगों को प्रिय हैं, कह कर अपने भवन चले गये ।४४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के चतुर्थी कल्प में स्त्री लक्षण नामक
अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त ।२८।

अध्याय २९

गणपति कल्प वर्णन

शतानीक ने कहा—‘ग’ अक्षर वाले उन पूज्य गणेशदेव की आराधना करने की वह विधि, जिसमें अंगन्यास और मंत्र हो, आप हमें कृपा करके बताइये ।१

सुमन्तु बोले—वह सदैव मनोरथ सफल करने वाली सिद्धि है, जिसमें तिथि, नक्षत्र और उपवास की आवश्यकता नहीं रहती है ।२। सफेद अर्क (मदार) के जड़ के भाग की, गणेश की एक प्रतिमा, जो अंगूठे के पर्व (पोर) के बराबर एवं कमल के आसन पर स्थित हो, विद्वानों को चाहिए सप्रयत्न बनावें ।३। जिसमें चार भुजाएँ, तीन नेत्र, सम्पूर्ण आभूषणों से सुसज्जित देह में सर्प की भाँति यज्ञोपवीत और भाल में चन्द्रमा हों ।४। उनके बायें हाथ में दाँत, दूसरे में रुद्राक्ष की माला, तीसरे में फरसा एवं चौथे में

कुद्कुमं चन्दनं चापि सनातसभनमुच्यते । वासोभिर्भूषणैः रक्तमर्त्त्येश्वाराधयेद्गणम् ॥६
 धूपेन च सुगन्धेन मोदकेश्वापि पूजयेत् । एवं पूज्याग्रतस्तस्य भोजयेद्ब्राह्मणं बुधः ॥७
 वासमनं कुञ्जकं चापि भोजदेत्पुरतो द्विजम् । आशीर्वादं ततस्तस्मात्प्राप्य सिद्धिसवाप्नुयात् ॥८
 भक्त्या कुरुकुलश्रेष्ठं शृणुमन्त्रपदानि वै । गं स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं प्रणवेन समन्वितः ॥९
 गां नमो हृदयं ज्ञेयं गर्णि शिरः परिकीर्तितम् । शिला च गूं नमो ज्ञेयो मे नमः कवचं स्मृतम् ॥१०
 गर्णि नमो नेत्रमुद्दिष्टं गः फट् कालास्त्रमुच्यते । आगच्छोल्कामुखायेति मन्त्र आवाहने ह्रायम् ॥११
 गं गणेशाय नमो गन्धमन्त्रः प्रकीर्तिः । पृष्ठोल्काय नमः पृष्ठमन्त्र एष प्रकीर्तिः ॥१२
 धूपोल्काय नमो धूपमन्त्र एष प्रकीर्तिः । दीपोल्काय नमो दीपमन्त्र एष भक्तीर्तिः ॥१३
 अं गं महोल्काय नमो बलिमन्त्रः प्रकीर्तिः । ओं संसिद्धोल्काय नमोमन्त्रश्रायं विसर्जने ॥१४
 ओं महाकर्णाय विश्वहे दक्षतुण्डाय धीमहि । उत्तो दिन्तः प्रचोदयात् गायत्री जपः पूर्वतः ॥१५
 महागणपतये वीर^१ स्वाहा दक्षिणतः सदा । नहोल्काय पश्चिमतः कूशमाण्डायोत्तरेण तु ॥
 एकदन्तत्रिपुरात्काय आग्नेयां दीर निर्दिशेत् ॥१६
 ओं शिवदत्त विकटहरहास प्राणाय स्वा नैऋत्याम् ।^२ तुलम्बनात्यचलदन्तकाय स्वाहा वायव्याम् ॥१७
 पद्मदन्ष्टाय नरायेति ऐशान्यां होमयेद्बुधः । हुं फट् हुं फट् हस्ततालधर्मिर्हसनकूर्दनः ॥१८

मोदक (लड्डू) रखे । ५। पश्चात् कुंकुम, चन्दन, वस्त्र, आभूषण और लाल फूलों की माला से गणपति की सावधान होकर आराधना करनी चाहिए। धूप, सुगंधित वस्तु (इत्र) एवं लड्डू से पूजा करके उन्हीं के सामने ब्राह्मणों को भोजन कराये । ६-७। उस समय वासन (नाटे) और कूबड़े ब्राह्मण को भी उनके सामने भोजन कराकर उनसे आशीर्वाद लेने पर सिद्धि प्राप्ति होती है । ८। हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! भक्तिपूर्वक अद्य मंत्र का विधान सुनो ! मैं कह रहा हूँ, प्रणव (ओंकार) के सहित 'गं स्वाहा' यही मूल मंत्र है । ९। 'गं नमः' कहकर हृदय, 'गं नमः' से शिर, 'गूं नमः' से शिला चोटी, 'गं नमः' से कवच एवं 'गं नमः' से आँखों को छूकर 'गः फट्' नामक कामास्त्र का उच्चारण करे । 'उल्कामुखाय नमः' कहकर आवाहन करना चाहिए । १०-११। 'गं गणेशाय नमः' से गंध, 'पृष्ठोल्काय नमः' से फूल, 'धूपोल्काय नमः' से धूप एवं 'दीपोल्काय नमः' से दीप दर्शन करना चाहिए । १२-१३। पश्चात् 'ओं गं महोल्काय नमः' से बलि प्रदान और ओं संसिद्धोल्काय नमः' से विसर्जन करे । १४। 'ओं महाकर्णी' आदि इस गायत्री मंत्र से पूरब 'महागणपतये स्वाहा' से दक्षिण, 'महोल्काय' से पश्चिम, 'कूशमाण्डाय' से उत्तर, 'एकदन्त त्रिपुरात्काय' से आग्नेय, 'ओं शिवदत्त अदि स्वाहा' से नैऋत्य, 'तुलम्ब अदि स्वाहा से' वायव्य तथा 'पद्मदन्ष्टाय अदि' से ईशान, कोण में पूजन हवन करके 'हुंफट हुं फट्' के उच्चारणपूर्वक हाथ की ताली बजाते हुए हँसे और कूदे । १५-१८। देव की मुद्रा बनाकर पश्चात् हवन आरम्भ करना चाहिए । यदि वह वशीभूत न हो, तो काले

१. अयं वीरशब्दोऽन्यत्र नास्ति । २. ओं उनचावनस्त्रकाय स्वाहा ।

मृदनर्तनगपतिर्देवस्य मुद्रां ततो होमं नमाचरेत् । न यदा वश्या भवति ॥
 कृष्णतिलाहुतिमष्टसहस्रं जुहुयात्तिवरात्रेण राजा वश्यो भवति ॥१९
 तिलयवहोमेन सर्वे जनपदा वश्या भवन्ति । अति रूपवती कन्या गच्छन्तमनुच्छति ॥२०
 चम्पतन्दुलहोमेनाजितो भवेत् । निम्बपत्रसमैस्तैलैविद्वेषणं करोति ॥
 सोमग्रहणं उदकमध्ये अवतीर्य अष्टसहस्रं जपेत् । सङ्घाने अपराजितो भवति ॥२१
 (ॐ लम्बराजे नमः ।)

आदित्यमुखो मूत्वा अष्टसहस्रं जपेत् । आदित्यो वरदो भवति ॥२२
 शुस्तचतुर्व्यापुषोष्य गन्धपुष्यादिभिरचंनं कृत्वा तिलतन्दुलाञ्जुह्यात् । शिरसा धारयस्तैर-
 पराजितो भवति ॥२३

अपामार्गसमिद्धिरप्ति प्रज्वाल्य एकविंशत्याहुतीर्यो जुह्यात् । द्विरात्राञ्जत्रुं व्यापादयति ॥२४
 अथोत्तरेण मन्त्रं व्याख्यास्ये । वृक्षमूर्ते कञ्जलं सद्गृह्ण सप्तभिर्मन्त्रितं कृत्वा नेत्राण्यञ्जयेद्यं
 पश्यति स वशी भवति ॥२५

पुष्यं फलं मूलं चाष्टसहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा यस्मै ददाति स वश्यो भवति ॥२६
 यत्किञ्चिन्मूलमन्त्रेण करोति तत्सिध्यति । सर्वे ग्रहाः सुप्रीता भवन्ति ॥
 नगरद्वारां गत्वा अष्टसहस्रं द्वारं निरूपयेत् ॥२७

पुरं द्वारेण गृह्यते प्राइमुखो यजति स उच्चाटयति । सम्मुखो जपति चोरन्विद्रावयति ॥२८

तिल से तीन रात तक आठ हजार आहुति डाले, इससे राजा दश में होता है । १९। तिल और जवा से होम करने पर सभी मनुष्य वश में होते हैं । परमसुन्दरी कन्या तो उसके पीछे-पीछे चलती है । २०। चना एवं चावल के हवन से पुरुष अजेय होता है । नीम की पत्ती और तेल होम से शत्रु दिव्वेषण होता है । चन्द्रग्रहण में जल के भीतर आठ हजार मन्त्र का जप करे तो युद्ध में कभी पराजय न हो । २१। 'ओ लम्बराजे नमः' इस मंत्र का आठ हजार जप सूर्य की ओर मुख करके करे तो प्रसन्न होकर आदित्य वर प्रदान करते हैं । २२। शुक्ल पक्ष की त्रुटी को उपवास कर गंध-पूष्यों से पूजा करके तिल और चावल का होम करे और शिर से धारण करे तो वह अजेय होता है । २३। जो अपामार्ग (चिचिरा) की लकड़ी जलाकर अग्नि में इक्कीस आहुति तीन दिन तक अर्पित करता है, उसके शत्रु नष्ट हो जाते हैं । २४। मैं अब मन्त्र की व्याख्या कर रहा हूँ, सुनो ! जो मनुष्य पेड़ की जड़ का काजल बनाकर सात बार उसे अभिमंत्रित कर आँख में लगाकर जिसे देखता है वह वश में हो जाता है । २५। फल, फूल एवं मूल को आठ हजार बार अभिमंत्रित करके जिसे दिया जाता है वह वश में होता है । २६। उसी मूल मंत्र द्वारा जो कुछ किया जाता है वह सिद्ध होता है । सभी ग्रह, प्रसन्न होते हैं । जो नगर के दरवाजे पर जाकर आठ हजार बार जप एवं पूरब की ओर मुख करके पूजन करता है, वह शत्रु का उच्चाटन, संमुख जप करने से चोरों का नाश, तृणों का कोटना, काठ में छेद

तृणानि लूनयति । काष्ठानि च्छेदयति ॥२९
 'गजराजेन युद्धयति । जलमध्ये स्तंपरात्रं जपेत् । अकाले वर्षयति । कूपतडागाञ्छोषयति ॥
 प्रतिमां नत्ययति । आकर्षयति । स्तम्भयति । योजनरातात्स्त्रीपुरुषानाकर्षयति ॥३०
 नोरेचनां च सहस्राभिमन्त्रितं कृत्वा हस्ते बद्धा योजनशतसहस्रं गत्वा पुनरागच्छति ॥३१
 अथ मारयितुकामः खदिरकीलकं कृत्वा स्त्रोपुरुषं विचिन्त्य हृदये तिखनयेत् । क्षणादेव छिन्नते ॥३२
 दर्शसत्कविमुत्तो भवति । अप्नितेजाः सर्वेष्योऽपराजितो भवति ॥३३
 ॐ वक्तुउडाय स्वाहा । ॐ एकदंष्ट्राय स्वाहा । ॐ कृतकृष्णाय स्वाहा । ॐ गजकर्णाय स्वाहा ॥
 ॐ सम्बोदराय स्वाहा । ॐ विकटाय स्वाहा । ॐ धूम्रवर्णाय स्वाहा । ॐ गगनकूजाय स्वाहा ॥
 ॐ विनायकाय स्वाहा । ॐ गणपतये स्वाहा । ॐ हस्तिमुखाय स्वाहा ॥३४
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसहस्र्यां संहितायां ब्राह्मणं पर्वणि चतुर्थीकल्पे
 गणपतिकात्पर्वणं नामेकोनत्रिशोऽध्यायः ॥२९।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

विनायकपूजाविधिवर्णनम्

सुमन्तुरवाच

निम्बमयमङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा नित्यधूपगन्धादिभिरर्चयित्वा प्रच्छन्नं शिरसि बद्धा गच्छेत् ॥

और हाथी की लड़ाई करा देता है । जल के बीच में सात रात जप करने से अकाल वर्षा, कूर्झ-ताजाब का सूखना, मूर्ति को नचाना, आकर्षण एवं स्तम्भन और सैकड़ों योजन से स्त्री-पुरुष को आकर्षित करता है । २७-३०। गोरोचन को हजार बार अभिमन्त्रित करके हाथ में बाँधने से हजारों योजन जाकर भी फिर वापस आता है । ३१। और मारने की इच्छा हो तो चाहे स्त्री हो या पुरुष उसके (शत्रु की प्रतिमा के) हृदय में खीर की (लकड़ी की) कील गाढ़ देने से उसी समय वह मृतक हो जाता है । ३२। इस प्रकार गणपति की पूजा से मनुष्य समस्त पापों से छूट जाता है और अग्नि के समान तेजस्वी होकर सदैव अजेय रहता है । ३३। हवन के समय 'वक्तुउडाय' आदि मंत्रों का उच्चारण कर हवन करना चाहिए । ३४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में गणपति कल्पवर्णन नामक उन्नतीसर्वां अध्याय समाप्त । २९।

अध्याय ३०

विनायक पूजा विधि का वर्णन

सुमन्तु बोले—नीम की लकड़ी की गणेश जी की एक प्रतिमा, जो ऊँगूठे के पोर के बराबर हो,

१. गजं गजेन ।

सर्वजनप्रियो भवति । इवेतार्कमूलाइगुष्ठमात्रं गणपतिं कृत्वा धूपादिभिर्चर्चित्वा सर्वान्वर्णान्वशमानयति ॥
इवेतचन्दननङ्गुष्ठमात्रं गणपतिं कृत्वा पुष्पगन्धादिभिरचर्चित्वा शुक्तचतुर्थमिष्टम्यां वा बलिं
कुर्यादिष्टसहस्रं जुहुयाद्वध्ना पाद्यसेन राजानं वशमानयति ।

रक्तचन्दनमयं गणपतिं इगुष्ठमात्रं कृत्वा भौतिकं बलिं दद्याद्धिमधुृताद्वृत्तेनां गणपतिमष्टसहस्रं
जुहुयादात्मप्राप्तिक्षं प्रजां वशमानयति । रक्तकरशीरमूलाइगुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कारयेत् ॥
रक्तपुष्पगन्धोपहारैर्बलिं दद्यात् । तिलजवनघृतेनाष्टसहस्रं जुहुयात् । दशशामान्वशमानयति ॥
इवेतक्लरवीराइगुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा तिलपिष्टदधिधृतक्षीरहरिदामिश्रेणाष्टसहस्रं
जुहुयाद्वैश्यां वशमानयति ॥

अध्यत्यमूलाइगुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वागन्धपुष्पधूपबलिं दद्यात् शतं जुहुयाच्छत्रुं वशमानयति ॥
अर्कमूलाइगुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा गन्धपुष्पधूपवलीन् दद्यात् । तिन्दुकाष्टशतं जुहुयाच्छत्रुं
वशमानयति ॥

बिल्वमूलमयमङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कृत्वा गन्धपुष्पधूपार्चितं कृत्वा त्रिमध्वत्कानामष्टसहस्रं
जुहुयादाजामात्यान्वशमानयति ॥

शिरसि धूपान्धृत्वा गच्छेद्वाजद्वारं विघ्रहे जयो भवति ।

हस्तिदन्तमृत्तिकामयमङ्गुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कारयेत् ॥

बनाकर नित्य धूप एवं गंधादि से पूजन करते हुए उसे शिर में गुप्त रूप से बाँध कर (कहीं भी) जाये तो
वह मनुष्य सभी लोगों का प्रिय होता है । सफेद अर्क (मदार) के जड़ की उतनी ही बड़ी मूर्ति गणेश जी
की बनाकर धूप आदि से पूजन करे तो सभी जाति के लोग वश में होते हैं । शुक्लपक्ष की चतुर्थी अथवा
अष्टमी के दिन सफेद चन्दन की गणपति की वैसी ही मूर्ति बनाकर फूलों से पूजन करके (प्रज्वलित अग्नि
में) दही और सीर की आठ हजार आहुति डालने के पश्चात् उन्हें बलि प्रदान करने से राजा वश में होता
है । उसी भाँति लाल चन्दन द्वारा गणपति की मूर्ति बनाकर पूजनोपरांत प्रज्वलित अग्नि में दही, शहद
और धी की आठ हजार आहुति डालने एवं भूतों की बलि प्रदान करने से प्रजा उसके वश में हो जाती है ।
लाल करवीर (कनेर) की अंगूठे के बराबर गणपति की मूर्ति बनावे, लालफूल एवं गंधादि से पूजन कर
बलि प्रदान करे तथा अग्नि में तिल, नमक और धी की आठ हजार आहुति डाले, तो दश गाँव की समस्त
जनता वश में होती है । सफेद करील की अंगूठे के बराबर गणपति की मूर्ति बनाकर पूजनोपरांत तिल,
दही, धी, दूध और हल्दी मिलाकर आठ हजार की आहुति डालने से वेश्या वश में होती है । पुनः पीपल की
उसी भाँति गणपति की मूर्ति बनाकर गंध, पुष्प, धूप और बलि प्रदान कर सी आहुति डाले तो शत्रुवश में
होता है । अर्क (मदार) की अंगूठे के बराबर गणपति की मूर्ति बनाकर गंध, फूल, धूप और बलि देवे
तथा तेंदू की लकड़ी की प्रज्वलित अग्नि में सी आहुति डाले तो शत्रुवश में होता है । बेल की जड़ की
गणपति की मूर्ति बनाकर गन्ध, पुष्प और धूप से पूजन कर तीन बार शहद में डुबोकर आठ हजार
आहुति डाले तो राजा का मंत्री वश में होता है । पुनः शिर को धूप से धूपित कर राजा के यहाँ जाये

गन्धपुष्पधूपर्चितं कृत्वा कृष्णचतुर्थ्या नन्मो भूत्वाभ्यर्चयेत् ।
सप्त वाराञ्जपेशित्वं^१ नारीणां सुभगो भवति ॥
वृषभृज्ञमृतिकाइगुष्ठमात्रं गणपतिं कारयेत् ।
गन्धपुष्पार्चितं कृत्वा गुगुलुधूपं दद्याद्घोषपतिं बशमानयति ॥

अथ ता वल्मीकीदृत्सक्षांगुष्ठपर्वमात्रं गणपतिं कारयेत् । कटुकतैलेन प्रतिमां लेपयेत् ॥
उन्मत्तककाष्ठेनानिं प्रज्वाल्य हृतीनामष्टसहस्रं जुट्यातिलसर्षीपमिश्रेण सर्वधूपं दद्यात्रिकटुकेन लेपयेत् ॥
अगरधूपं दद्याद्जानां वशमानयति । परेषां च वल्लभो भवति । रत्नचन्दनेनात्मानं धूपयेत्सुभगो भवति ॥
ॐ गणपतये वक्त्रतुण्डाय गजदन्ताय गुलगुलेतिनिनादाय^२ चतुर्भूजाय त्रिनेत्राय मुशलपाश-
वज्रहस्ताय सर्वभूतदमत्ताय सर्वलोकवशंकराय सर्वदुष्टोपघातजननाय सर्वशत्रुविमर्दनाय सर्वराज्य-
समीहनाय राजान्मिह वशमानय हन हन पच पच वज्राङ्कुशेन गणेश फट् स्वाहा ।
ॐ गां गौं गूं गैं गौं गौः स्वाहा नमः हृदयं मूलमन्त्रस्य ।
ॐ कः शिरः, ॐ खः शिखा, ॐ गः हृदयम्, ॐ गुः कवच, ॐ गैः नेत्रम् । ॐ धः कवचम्, ॐ झः आवाहनं
हृदयस्य आवाहनाङ्गानिभवति ॐ नमः हृदयं मूलमन्त्रस्य, ॐ गा: शिरः, ॐ गैः नमः शिखा ॐ गौः
नमः कवचम्, ॐ गं नमः नेत्रे, ॐ गः फट् अस्त्रम् ॥

तो लड़ाई (वाद-विवाद) में विजय होती है । कृष्णपक्ष की चतुर्थी के दिन नग्न होकर हाथी के दाँत द्वारा
खोदी हुई मिट्टी की गणपति की मूर्ति बनाकर गध, पुष्प और धूप से सात रात पूजन करे तो वह स्त्रियों
का प्रिय होता है । बैल के सीधे द्वारा खोदी हुई मिट्टी की उसी प्रकार गणपति की मूर्ति बनाकर गन्ध-पुष्प
से पूजन कर गूगुल की धूप दे तो गायें और अहीर जहाँ रहते हों उनके स्वामी वश में होते हैं । वल्मीकी की
मिट्टी की अंगूठे के बराबर गणपति की मूर्ति बनाकर कडवा तेल से प्रतिमा का लेपन करे । धतूर की
लकड़ी जलाकर तिल और सरसों की आठ हजार आहुति डाले तथा सर्वोषधि का धूप दे और सोंठ मरिच
तथा पीपरिं का लेपन करके अगुरु की धूप दे तो राजा वश में होता है तथा वह और लोगों का भी प्रिय
भाजन होता है किन्तु लाल चन्दन से अपने को धूपित करे तो स्वयं सुभग होता है । उसका मंत्र यह
है—

मंत्र—ओं गणपतये वक्त्रतुण्डाय गजदन्ताय गुलगुलेति निनादाय चतुर्भूजाय त्रिनेत्राय
मुशलपाशवज्रहस्ताय सर्वभूतदमनाय सर्वलोकवशंकराय सर्वदुष्टोपघातजननाय सर्वशत्रुविमर्दनाय
सर्वराज्यसमीहनाय राजान्मिह वशमानय हन हन पच पच वज्राङ्कुशेन गणेश फट् स्वाहा । ‘ओं’ गां गौं
गूं गैं गौः स्वाहा नमः’ यह मूल मंत्र का हृदय है । ओं ‘कः’ से शिर, ओं ‘खः’ से शिखा, ओं ‘गः’ से हृदय, ओं ‘गुः’
से मुख, ओं ‘गैः’ से नेत्र, ओं ‘गः’ से कवच, ओं ‘झः’ से हृदय का आवाहन करे । ‘ओं नमः’ यह मूलमंत्र का हृदय है,
ओं ‘गा: शिर, ओं ‘गैः नमः’ से शिखा, ओं ‘गौः नमः’ से कवच, ओं ‘गं नमः’ से नेत्र, ओं ‘गः फट् अस्त्रम् । ओं

ॐ अङ्गुष्ठोल्काय स्वाहा आवाहनं हृदयस्य स्वाहा । विजर्जनं हृदयस्य ॐ शन्धोल्काय स्वाहा ॥
गन्धमन्त्रः ॥ ॐ धर्मशूतोल्काय स्वाहा ॥ पुष्टमन्त्रः ॥ दुर्जयाय^१ पूर्वेण । ॐ धूर्जटये दक्षिणेत ।
ॐ लम्बोदराय पश्चिनतः । ॐ गणपतये उत्तरतः । ॐ गणाधिपतये ऐशान्याम् । ॐ महागणपतये
आग्नेयाम् । ॐ कूर्माण्डाय नैऋत्याम् ।

ॐ एकदंतत्रिपुरधातिनै^२ त्रिनेत्राय वायव्याम् । ॐ महागणपतये विश्वहे वक्तुण्डाय धीमहि ॥
तत्त्वोदान्तः प्रचोदयात् ॥ नायत्री ॥

पश्चदञ्जामालाप्रकर्षणीपरञ्जवंकुशपाशपटहमुद्रा अष्टौ मुद्रा दर्शयित्वा ततः कर्माणि कारयेत् ॥
कृष्णतिलाहुतीनाम्पत्सहनं त्रुह्यात् । रजानं वशमानयेत् ॥
आवाहनायेकादशमुद्रा नैवेद्यान्तं कृष्णादृशयेत् ॥

आराधयेदेन विधिना त्रिनेत्रं शूलिनं हरस् । तेनैवाराधयेदेवं विघ्नेशं गणपं नृप ॥१
तदेव सगडलं चास्य अङ्गन्यातस्तथैव च । ऋते मन्त्रपदानीह समानं सर्वमेव हि ॥२
पूजयेद्यस्तु विघ्नेशमेकदन्तमुमासुतम् । नश्यन्ति तस्य विघ्नानि न चारिष्टं कदाचन ॥३
यश्चोपवासं कृत्वा तु चतुर्थ्यां पूजयेन्नरः । सर्वं तस्य समारम्भः सिध्येयुनात्रि संशयः ॥४
यस्यानुकूलो विघ्नेशः शिवयोः कुलनन्दन । तस्यानुकूलं सर्वं स्याज्जगद्वै सर्वकर्मसु ॥५
तस्मादाराधयेदेनं भक्तिश्रद्धासमन्वितः । कुङ्कुमागुरुधूपेन तथैवोण्डीरक्षज्ञा ॥
४पललोत्सापिकाभिश्रु जातिकोन्मत्तकैस्तथा ॥६

अंगुष्ठोल्काय स्वाहा से हृदय का आवाहन और विसर्जन करे । ओं धर्मशूतोल्काय स्वाहा से गंध प्रदान करे । ओं दुर्जयाय से पूर्व, ओं धूर्जटये से दक्षिण, ओं लम्बोदराय से पश्चिम ओं गणपतये से उत्तर, ओं गणाधिपतये से ईशान, ओं महागणपतये से आग्नेय, ओं कूर्माण्डाय से नैऋत्य, ओं एकदंतत्रिपुरधातिनै त्रिनेत्राय से वायव्य में पुष्ट अर्पित करे पश्चात् 'महागणपतये आदि गायत्रीमन्त्र दे जप करें । 'पश्च, दंत, माला, प्रकर्षणी, परशु, अंकुश, पाथ और पटह नामक इन आठों मुद्राओं को दिखाकर कार्य आरम्भ करे । काले तिल की आठ हजार आहुति डालने से राजा वश में होता है । इसी भाँति क्रमशः आवाहनादि से नैवेद्य तक यारहों मुद्राओं को दिखाना चाहिए । तीन आँख वाले तथा शूल लिए शंकर जी की जिस विधि से आराधना की जाती है उसी भाँति विघ्नेश गणपति देव की भी पूजा करनी चाहिए । १ केवल मन्त्र को छोड़कर बही मंडल, बही अंगन्यास एवं सभी कुछ समान ही कहा गया है । २। इस प्रकार एक दाँत वाले, उमा के पुत्र गणेश की ज, पूजा करता है, उसके सभी विघ्न नष्ट हो जाते हैं और कभी अरिष्ट नहीं होता । ३। जो भनुष्य चतुर्थी में उपवास कर उनकी पूजा करता है, उसके आरंभ किये हुए सभी कार्य निःसन्देह सफल होते हैं । ४। हे कुलनन्दन ! उमा और महेश के पुत्र गणेश जिसके अनुकूल हों, उसके सभी कार्योंमें सारा संसार सहायक रहता है । इसलिए श्रद्धा और भक्तिपूर्वक शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में तोरण वंदनवार वांधकर कुङ्कुम, गूगुल की धूप, कमल के फूल की माला, कूटा हुआ तिल, जूही एवं धूतूर का फूल इन सामग्रियों से

१. दुर्गयी पूर्वे । परं चासाधीयानप्रकृतत्वात् । २. एकदंतत्रिपुरान्तकाय । ३. पललाप्रविकारैश्रु जातीकुरवकैस्तथा ।

शुक्लपक्षे चतुर्थ्या तु विधिनानेन पूजयेत् । तस्य सिद्ध्यति निर्विघ्नं सर्वकर्म न संशयः ॥७
एकदन्ते जगन्नाथे गणेशे तुष्टिभूमते । पितृदेवमनुव्याद्याः सर्वे तुव्यन्ति भारत ॥८
तस्मादाराधयेदेनं सदा भक्तिपुरःसरम् । कर्णलैपैस्तुणिकाभिर्मर्दकैश्च । महीपते ॥
पूजयेत्सततं देवं विष्णविनाशात् दल्लिनम् ॥९

श्रीभविष्ये भहापुरागे शतार्द्धसाहृद्यां संहितायां ब्राह्मणे पर्वज्ञि चतुर्थीकल्पे
दिनायकपूजादिधिनिरूपणं नाम त्रिशोऽध्यायः ॥३०॥

अथैकान्त्रिंशोऽध्यायः

शिवाचतुर्थी पूजनम्

सुमन्तुरुवचः

शिवा शान्ता मुखा राजंश्चतुर्थी त्रिविधा त्मूता । मासि भाद्रपदे शुक्ला शिवा लोकेषु पूजिता ॥१
तत्यां स्नानं तथा दानमुपवासो जपस्तथा । क्रियमाणं शतगुणं प्रसादाद्वन्तिनो नृप ॥२
गुडलवण्यृतानां तु दानं शुभकरं स्मृतम् । गुडापूर्वस्तथा वीर पुण्डं ब्राह्मणभोजनम् ॥३
यास्तस्यां नरशार्दूलं पूजयन्ति सदा स्त्रियः । गुडलवणपूर्वश्च शब्दं शशुरमेव च ॥४

उपरोक्त विधान से पूजा की जाये, तो उसके सभी कार्य निर्विघ्न समाप्त होते हैं । ५-७। हे भारत ! हे
महीपते ! एक दाँत वाले एवं जगत् के स्वामी गणेश के प्रसन्न होने पर पितर, देवता और मनुष्य सभी
संतुष्ट रहते हैं । ८। अतः विघ्नों के विनाश होने के लिए भक्तिपूर्वक एक दाँत वाले (गणेश) देव की पूजा,
चन्दन, कमल और लड्डू आदि सामग्रियों द्वारा सविधि सुसम्पन्न करनी चाहिए । ९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के चतुर्थी कल्प में विनायकपूजा विधि वर्णन नामक
तीसवाँ अध्याय समाप्त । ३०।

अध्याय ३१

शिवा चतुर्थी का पूजन

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! शिवा, शान्ता और सुखा नाम के भेद से चतुर्थी तीन प्रकार की होती
है । भादों के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी का नाम शिवा है, वह लोगों में अत्यन्त सम्मानित है । १। हे नृप !
उसमें किया गया स्नान, दान, उपवास और जप गणेश की कृपा से सौ गुना अधिक होता है । २। उसमें
लवण्य (नमक) तथा धी का दान अत्यन्त शुभ बताया गया है । हे वीर ! उसी प्रकार उस पूजन में गुड़ का
बना बालपुआ ब्राह्मणों को खिलाना विशेष पुण्यप्रद होता है । ३। हे नरशार्दूल ! उसमें जो स्त्रियाँ गुड़ लवण
और बालपुआ से सास-ससुर की पूजा अर्थात् मीठों और नमकीन वस्तुएँ खिलाती हैं गणेश की प्रसन्नता से

१. पुण्डरीकैः । २. महत् ।

ता: सर्वाः सुभगाः स्युर्वैं विद्वेशस्यानुमोदनात् । कन्यका तु विशेषेण विधिनानेन पूजयेत् ॥६
 (इति शिवाकल्पः)

सुमन्तुरुवाच

माघे मासि तथा शुक्ला या चतुर्थी महीपते । सा शान्ता शान्तिदा नित्यं शान्तिं कृपात्सदैव हि ॥६
 स्नानदानादिकं कर्म मर्वमस्यां कृतं विभो । भवेत्सहस्रगुणितं प्रसादात्स्यै दन्तिनः ॥७
 कृतोपवासो यस्तस्या पूजयेद्विघ्नाग्रकम् । तस्य होः गदिकं कर्म भवेत्साहस्रिकं नृपः ॥८
 लवणं च गुडं शाकं गुडधूपांश्च भारत । दत्त्वा भक्त्या तु विश्रेष्यः कलं साहस्रिकं भजेत् ॥९
 विशेषतः स्त्रियो राजन्मूजन्यन्तो गुरुं नृप । गुडलवणघृतैर्वैर सदा स्युर्भाग्यसंयुताः ॥१०
 (इति शान्ताकल्पः)

सुमन्तुरुवाच

सुखावहा च सुसुखा सौभाग्यकरणी परम् ॥११
 चतुर्थी कुरुशार्द्दलं उपसौभाग्यदा शुशा । सुखावतं शःहापुञ्जं रूपदं भाग्यदं तथा ॥१२
 चुम्भकमं मुकरं धन्यमिह पुण्यसुखावहम् । परत्र फलदं वीर दिव्यरूपप्रदायकम् ॥१३
 हसितं लतितं चोक्तं चेष्टितं च सुखावहम् । सविलासभूजलेपश्चकमश्चेष्टितं शुभम् ॥१४
 सुखावतेन सर्वेषां सुखं कुरुकुलोद्धह । कृत्येन पूजिते चेशो विद्वेशो शिवयोः सुते ॥१५

वे सभी निश्चित सौभाग्यशालिनी होती हैं । विशेषकर कन्याओं को इस विधि से अवश्य पूजन करना चाहिये । ४-५। (इति शिवाकल्प)

सुमन्तु ने कहा—हे महीपते ! माघके महीने की शुद्धल पक्ष की चौथ का नाम शान्तिदायिनी होने के नाते शान्ता है, वह सदा शान्ति प्रदान करती रहती है । ६। हे विभो ! उसमें स्नान-दान जो कुछ कर्म किये जाते हैं, वे सभी गणेश की कृपा से हजार गुने अधिक फलदायक होते हैं । ७। जो उसमें उपवास करके विघ्नविनायक (गणेश) की पूजा करता है, उसके होमादिक कर्म हजार गुने अधिक फल देते हैं । ८। अतः लवण, गुड, साग एवं मालपूआ का दान ब्राह्मणों को अर्पित कर हजार गुना अधिक फल अवश्य प्राप्त करना चाहिये । ९। हे राजन् ! विशेषकर स्त्रीर्णां गुड, लवण और धी द्वारा गुरुजनों की पूजा करें, नमकीन मीठी चीज खिलावें तो सौभाग्यवती हों । १० (इति शान्ताकल्प)

सुमन्तु बोले—हे कुरुशार्द्दल ! सदा सुखस्वरूप महान् सुखों को देने वाली अत्यन्त सौभाग्य करने वाली, मांगलिक एवं रूप-सौन्दर्य देने वाली यह चौथ होती है । हे वीर ! सुखा नामक चौथ का व्रत अधिक पुण्य, रूप देने वाला, अत्यन्त सूक्ष्म, सरल, संसार की प्रतिष्ठा एवं स्वर्गसुख, परलोक का फल तथा दिव्यरूप देने वाला बताया गया है । ११-१३। इसमें हँसना, लीलाकरना, चेष्टा करना, हाथों द्वारा हाव-भाव प्रकट करना और धूमना चक्कर लगाना सुखदायक एवं शुभ होता है । १४। हे कुरुकुल नायक ! सुखा का व्रत तथा उमा-महेश के पुत्र गणेश की सविधि पूजा करने से भी प्राणियों को सुख मिलता है । १५।

१. नित्यम् । २. दन्तिनो नृप । ३. भवेत् । ४. कुरुनंदन । ५. मैत्रम् ।

यथा शुक्लचतुर्थ्यां तु वारो भौमस्य वै भवेत् । तदा मा सुखदा ज्ञेया चतुर्थीं वै सुखेति च ॥१६
 पुरा मैथूनमाश्रित्य स्थिताभ्यां तु हिमाचले । भीमोभाभ्यां भहाबाहो रक्तबिन्दुश्च्युतः क्षितौ ॥१७
 मेदिन्यां स प्रयत्नेन सुखे विधृतोऽनया । ज्ञातोत्थाः स कुजो दीर रक्तो रक्तसमुद्भवः ॥१८
 ममाङ्गतो एष्टेत्प्रस्तस्मादङ्गारको ह्यायम् । अङ्गदोङ्गोपकारश्च अङ्गानां तु प्रदो नृणाम् ॥१९
 सौभाग्यादिकरो यस्मात्स्मादङ्गारको मतः । भक्त्या चतुर्थ्यां नक्तेन यो वै श्रद्धासमन्वितः ॥२०
 उपवत्स्यति ना राजशरीर वा नान्यमानसा । पूजयेच्च कुञ्जं भक्त्या रक्तपृष्ठविलेपनैः ॥२१
 त्वांश्च प्रथमं भक्त्या शोजयेच्छुद्यान्वितः । यस्य तुष्टः प्रयत्नेत्सौभाग्यं रूपसम्पदन् ॥२२
 पूर्वं च कृतसङ्कृत्यः स्नानं कृत्वा यथाविधि । गृहीत्वा मृत्तिकां वर्देन्मन्त्रेणानेन भारत ॥२३
 इह त्वं वन्दिता पूर्वं कृष्णेनोद्धरता किल । तस्मान्मे दह पाप्मानं यन्मया पूर्वतज्ज्वितम् ॥२४
 इहम् मन्त्रं पठन्वीर आदित्याय प्रदर्शयेत् । आदित्यरशिसम्पूर्तां गङ्गाजलकणोक्षिताम् ॥२५
 दत्त्वा मृदं शिरसि तां सर्वाङ्गेषु च शोजयेत् । ततः स्नानं प्रकुर्वीत मन्त्रदेत जलं पुनः ॥२६
 त्वमापो योनिः सर्वेषां दैत्यदानवद्योक्तासाम् । स्वेदाण्डजोऽद्विदां चैव रसानां पतये नमः ॥२७
 स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु सर्वप्रक्लवणेषु च । तडागेषु च सर्वेषु मानसादिसरःसु च ॥२८
 नदीषु देवसातेषु सुतीर्थेषु हेषु वै । ध्यायन्यठक्षिप्तं मन्त्रं ततः स्नानं समाचरेत् ॥२९
 ततः स्नात्वा शुचिसूत्वा गृहमागत्य वै स्पृशेत् । दूर्वार्घतथौ शमीं स्पृष्ट्वा गां च मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥३०
 दूर्वा नमस्य मन्त्रेण शुचीं भूमीं समुत्थिताम् । त्वं दूर्वेऽमृतनामासि सर्वदेवैस्तु वन्दिता ॥३१

शुक्ल पक्ष में मंगल के दिन वाली चौथ को सुखा कहते हैं जो सुख प्रदान करती है । १६। हे महादाहो !
 पहले समय में हिमालय पर्वत पर उमा-शिव के सम्भोग करते समय रक्त का बूँद पृथ्वी पर गिरा
 था । १७। हे वीर ! उसे पृथ्वी ने सुख एवं यत्नपूर्वक धारण किया उसी रक्त के द्वारा लाल रंग वाले भौम
 को पृथ्वी ने उत्पन्न किया है । १८। तथा मेरे अंग से पैदा होने के नाते इन्हें “अंगारक” भी कहते हैं । अंगों
 के देने वाले, अंगों का उपकार (हृष्ट-मुष्ट) करने वाले तथा मनुष्यों को सदैव अंग प्रदान करने वाले
 बताये गये हैं । १९। सौभाग्य आदि प्रदान करने के नाते भी ‘अंगारक’ कहलाते हैं । अतः हे राजन् !
 भक्ति-श्रद्धा पूर्वक जो कोई स्त्री-पुरुष इस चतुर्थी में उपावस करके रात में लाल फल और लेप चन्दन
 द्वारा एकाग्रचित्त से मंगल की पूजा में सर्वप्रथम गणेश की पूजा करता है, उसे प्रसन्न होकर वे रूप, सौन्दर्य,
 सौभाग्य प्रदान करते हैं । २०-२२। हे माता ! पहले संकल्प करके विधिवत् स्नान करते समय मिट्टी
 लेकर ‘इहत्वंवन्दिता’ आदि मन्त्रों द्वारा उसकी बन्दना करते हुए उसे सूर्य को दिखाने और सूर्य की किरणों
 द्वारा पवित्र गंगा जल के बूँदों से उस मिट्टी को भिंगोकर पहले सिर में लगाये फिर समस्त शरीर में
 लगाने के पश्चात् स्नान करने के लिए ‘त्वामायो योनिः सर्वेषाम्’ आदि मन्त्रों से जल को अभिमंत्रित कर
 के स्नान करे । २३-२४। तदुपरान्त मन्त्र वेत्ता स्नान करके पवित्र हो घर में आकर दूर्वा, पीपल, शमी
 और गाय का स्पर्श करे । २५। हे महीपते ! पवित्र स्नान में रहने वाली दूर्वा की ‘त्वं दूर्वेऽमृते

वन्दिता दह तत्सर्वं दुरितं यन्मया^१ कृतम् ॥२२
 शमीमन्त्रं प्रवक्ष्यामि तन्निबोध महीपते । पवित्राणां पवित्रां त्वं काश्यपी प्रथिता श्रुतौ ॥
 शमी शमय मे शार्वं नूनं वेत्सि धराधरान् ॥२३
 अश्वत्थातस्मने दौर मन्त्रजेतं निबोध मे । नेत्रस्पन्दादिजं दुःखं दुस्त्वं दुर्विचिन्तनम् ॥
 शक्तानां च त्तमुद्योगमध्यत्य त्वं क्षमस्व मे ॥२४
 इमं मन्त्रं पठन्वीर कुर्याद्वै स्पर्शनं बुधः । ततो देव्यै तु गं इद्याद्वीरं कृत्वा प्रदक्षिणाम् ॥
 सम्भालभ्य तु हृत्तेत ततो मन्त्रवृदीरयेत् ॥२५
 सर्वदेवमयी देवि मुनिभिर्तु सुपूजिता । तस्मात्स्पृशामि वन्दे त्वां वन्दिता पापहा भद ॥२६
 इमं मन्त्रं पठन्वीर^२ भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । प्रदक्षिणं तु यः कुर्यादर्जुनं कुरुनन्दन ॥
 प्रदक्षिणीकृतः तेन पृथिवी स्यान्त संशयः ॥२७
 एवं मौनेन चागत्य ततो वक्तिगृहं वजेत् । प्रक्षाल्य च मृदा पदावाचान्तोग्निगृहं विशेत् ॥
 होमं तत्र प्रकुर्वीत एविर्भान्त्रपदैवर्तैः^३ ॥२८
 शर्वाय शर्वपुत्राय क्षोण्युत्सङ्घभवाय च । कुजाय ललिताङ्गाय लोहिताङ्गाय वै तथा ॥२९
 अङ्कारपूर्वकैर्मन्त्रैः स्वाहाकारसमन्वितैः । अष्टोत्तरशतं दौर अर्धार्धमर्धमेव च ॥४०
 एतैर्मन्त्रपदैर्भक्त्या शक्त्या वा कामतो नृप । खादिरैः सुसमिद्भूस्तु चाज्यदुर्गम्यवैस्तिलैः ॥४१
 भृथ्यैर्नानाविधैश्वान्यैः शक्त्या भक्त्या समन्वितः । हुत्वाद्वृत्तीस्ततो^४ दौर देवं संस्थापयेत्स्तिलौ ॥४२
 सौवर्णं राजतं वापि शक्त्या दारुमयं नृप । देवदारुमयं वापि श्रीखण्डचन्दनैरपि ॥४३

नामासि' इति मन्त्र से बन्दना करके शमी की बन्दना करे, उनके मंत्रों को भी कहता हूँ सूनो ! हे दौर ! 'पवित्राणा पवित्रात्वं' आदि । अश्वत्थ (पीपल) के स्पर्श करने का यह 'नेत्रस्पन्दादिज' मन्त्र को पढ़ कर प्रदक्षिणा करते हुए हाथ से गाय के स्पर्श करते हुए इस 'सर्वदेवमयी देवी' मन्त्र का उच्चारण करे और उन्हें गौ दान करे । हे कुरुनन्दन ! जो इस मन्त्र को पढ़ते हुए भक्तिशब्दपूर्वक अर्जुन की प्रदक्षिणा करता है उसने निःसंदेह समस्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर ली है । ३ १-३७। फिर मौन होकर अग्निशिला (हवनस्थल) में आये । वहाँ पहले मिट्टी से पैर को शुद्ध कर आचमन करे पश्चात हवन गृह में प्रवेश कर वहाँ इन 'ओंकार पूर्वक 'स्वाहांत्र शर्वाय शर्वपुत्राय' आदि मन्त्रों का उच्चारण करते हुए प्रज्वलित अग्नि में अनेक भाँति के एवं अन्य स्वाद्य पदार्थ सैर की लकड़ी की धी, दूध, जवा और तिल की एक सौ आठ या उसके आधे भाग या उसके आधे भाग की आहुति डाले । हे नृप ! इसे भक्ति पूर्वक कामना वश अपनी शक्ति के अनुसार ही सुसम्प्रब्र करना चाहिये । हे दौर ! हवन के पश्चात अपनी शक्ति के अनुसार सोने, चाँदी, देवदारु या अन्य लकड़ी या चन्दन की बनी हुई देव मूर्ति को ताँबे या चाँदी के पात्र में पृथ्वी पर स्थापित करे । अनन्तर धी, कुकुम,

१. मध्यमणित्यायेन भयेत्यस्योभयत्र सम्बन्धः, तथा चायमर्थः। हे दूर्वेत्वं देवैर्वन्दिता तु पुनः भया वन्दिता सती यन्मया दुरितं कृतम्, तत्सर्वं दह । इह वन्दितेतिद्विरुक्त्या शब्दावृत्तिदीपकोलङ्घारः ।
 २. नित्यम् । ३. हरिव्रह्यशिवादिभिः । ४. कृत्वा कृत्यम् ।

तामे पात्रे रौप्यमये चाज्यकुद्कुमकेसरैः । अन्दैर्वा लोहितैर्वापि पुष्ट्यैः पत्रैः फलैरपि ॥
रक्तेश्च विविधैर्वीर अथ वा शक्तितोर्चर्पयेत् ॥४४
वरद्विसृजते वित्तं वित्तवान्वीर भक्तिः । तावद्विवर्धते पुण्यं दातुं शतसहस्रिकम् ॥४५
अन्ये ताम्रमये पत्रै वंशजे मृत्ययेऽपि वा । पूज्यन्ति नराः शक्त्या कृत्वा कुद्कुमकेसरैः ॥
दुरुपाद्वितिकृतं पात्र इमं मन्त्रैः समर्द्दयेत् ॥४६
अग्निर्मूर्तिं मन्त्रेण गन्धपुष्ट्यादिभिस्तथा । शुपैररम्यर्च विधिवद्ब्राह्मणाय प्रदेयते ॥४७
गुडैदनं धृतं क्षीरं गोद्घमाङ्गलितपुलान् । अवेक्ष्य शक्तिं दद्याद्वै दरिद्रो वित्तवान्स्तथा ॥४८
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं विद्यमाने धने नृप । वित्तशाठ्यं हि कुर्वणो नामुत्र बलभागभवेत् ॥४९

शतानीक उवाच

अङ्गारकेण संयुक्ता न्तुर्थी नक्तभोजनैः । उपेष्या कतिमात्रा तु उताहो सकृदेव तु ॥५०

सुमन्तुरुदाच

चतुर्थीं सा चतुर्थीं सा यदाङ्गारकसं युता ! उपेष्या तत्र तत्त्वैव प्रदेयो विधिवद्गुडः ॥५१
उपेष्य नक्तेन विभो चतत्रः कुजसंयुता । चतुर्थीं च चतुर्थीं च विधानं शृणु यादृशम् ॥५२
सौवर्णं तु कुञ्जं कृत्वा सविनायकमादरात् । दशसौर्वाणिकं नुख्यं दशार्धमर्घमेव च ॥५३
सौर्वर्णपात्रे रौप्ये वा भक्त्या ताम्रमयेऽपि वा । विंशत्पलानि दात्राणि विशत्यर्धपलानि वा ॥५४

केसर, लाल फूल एवं फल तथा पत्ते अथवा शक्ति के अनुसार (जो कुछ मिले) पूजन करे । ३८-४४। हे वीर ! धनवान् पुरुष (इसमें) जितना ही व्यय करता है उसका उससे हजारों गुना पुण्य बढ़ता है । ४५। तबे, बाँस के बने एवं मिट्ठी के जात्र में भी कुंकुम और केशर द्वारा मनुष्य लोग उनकी पूजा करते हैं। इसलिए पुरुष की भाँति आदार बनाकर पात्र में रख इस 'अग्नि मूर्धा' आदि मन्त्र का उच्चारण करते हुए गंध, फूल और धूप आदि से विधिपूर्वक पूजन करके उसे ब्राह्मण को समर्पित करे । ४६-४७। अनन्तर दरिद्र हो या धनी अपनी शक्ति के अनुसार मीठाभात धी, धूप, गेहूँ, और शाही चावल (ब्राह्मण) को समर्पित करे । ४८। हे नृप ! धन के रहते हुए कृपणता न करनी चाहिये, क्योंकि कृपणता करने वाले मनुष्य को स्वर्गीय फल नहीं मिलता है । ४९

शतानीक ने कहा—मंगल की चौथ का व्रत जिसमें रात में भोजन किया जाता है कितने बार सुमन्त्र करना चाहिए या एक ही बार । ५०

सुमन्तु बोले—अंगारक (मंगल) की चौथ ही चौथ कहलाती है, वह समयानुसार जबभी आये उसमें उपवास करते हुए विधिपूर्वक गुड़ का दान देना चाहिये । ५१। हे विभो ! उसी प्रकार मंगलवाली चौथ के चार बार (व्रत) रहने का आदेश है अतः उसमें जैसा विधान है, कहता हूँ सूनो ! ५२। ऐसे पूर्वक दशफल^१ उसके आधे या उसके भी आधे भाग सुर्वण की गणेश और मंगल की प्रतिमा बनाकर सोने,

१. भक्तिः । २. हि ।

१. सोलह माशे का एक वर्ष और चार वर्ष का एक पल होता है ।

विशत्कर्षणि वा वीरं विशदर्थार्थमेव वा । रौप्यसङ्ख्यं पलं कायं पलार्धमर्घमेय च ॥५५
शक्त्या दितैश्च भक्त्या च पात्रे ताप्नमयेऽपि तु । प्रतिष्ठाप्य ग्रहेण वै वस्त्रैः सम्भरवेष्टितम् ॥

विविधैः साधकै रक्तैः पुण्यै रक्तैः समन्वितम् ॥५६

ब्राह्मणाय सदा दद्यांक्षण्यासहितं नृपः वाचकाय महजाहो गुणिने श्रेयसे नृपः ॥५७

इति ते कथिता पुण्या तिथीनामुत्तमा तिथिः । यानुपोद्य नरो रूपं दिव्यमप्नोति भारत ॥५८

कान्त्यात्रेयसमं वीरं तेजसा रविसन्निभम् । प्रभया रविलल्पं च समीरबलसंश्रितम् ॥५९

ईदृशूपूर्णं समाप्येह यद्गति भौमसदो नृपः । प्रसादाद्विव्वनाथस्य तथा गणपतेनृप ॥६०

पठतां शृणुतां राजन्कुर्वतां च विशेषतः । ब्रह्महत्यादिपापानि क्षीदन्त नात्र संशयः ॥

ऋद्धिं वृद्धिं तथा लक्ष्मी लभते नात्र संशयः । ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि चतुर्थीकल्पे

मुखावहाङ्गारकचतुर्थीव्रतनिरूपणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः । ३१।

(समाप्तश्चायां चतुर्थीकल्पः)

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

नागपञ्चमीपूजनम्

सुमन्तुरुवाच

पञ्चमी दियता राजन्नागानां नन्दिर्वर्धिनीं । पञ्चम्यां किल नागानां भवतीत्युत्सवो महान् ॥१

चाँदी एवं ताँबै के पात्र में वस्त्र लपेट कर रखे । हे वीर ! वह पात्र भी बीस या दश पल अथवा बीस, दश या पाँच कर्ष मुर्वण का होना चाहिये । चाँदी का पात्र बीस, दश या पाँच पल का ही होता है इस भाँति ताँबै का पात्र भी भक्ति पूर्वक अपनी धन-शक्ति के अनुसार ही बनाये । हे महाबाहो ! उपरान्त नाल फूल एवं वस्त्र आदि विविध प्रकार की साधनसामग्रियों द्वारा पूजन कर उसे (प्रतिमा) दक्षिणा समेत अपने कल्याण के निहित कथा बाचने वाले किसी विद्वान् ब्राह्मण को समर्पित करे । ५३-५७। हे भारत ! इस प्रकार मैंने इस पुण्य-स्वरूपा तिथि (तथा विधानआदि) को जो सभी तिथियों में श्रेष्ठ एवं जिसका व्रत रह कर मनुष्य दिव्य (देवताओं) का रूप प्राप्त करता है बता दिया । जिसके फलस्वरूप चन्द्रमा की भाँति कान्ति, सूर्य के समान प्रखर तेज एवं वायु के समान बल शाली रूप प्राप्त कर विद्वेश्वर गणपति की कृपा द्वारा वह मनुष्य शिवलोक प्राप्त करता है । ५८-६०। हे नृप ! इस आद्यान के पढ़ने, सुनने एवं विशेषकर इसे सुसम्पन्न करने वाले मनुष्य के ब्रह्म हत्या आदि दोष निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं और उसे क्रह्दिं-वृद्धि समेत लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । ६१

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के चतुर्थी कल्प में मुखावहांगारक चतुर्थी व्रत निरूपण नामक

इकतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३१।

(इति चतुर्थीकल्पः)

अध्याय ३२

नागपञ्चमी पूजन

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! नागों (सर्वों) का आनन्द बढ़ाने वाली यह पञ्चमी उन्हें अति प्रिय है

दासुकिस्तक्षकभ्रैद कालियो मणिभद्रः । ऐरावतो धृतराष्ट्रः^१ कर्कोटकधनञ्जयो ॥
एते प्रयच्छत्त्वयभयं प्राणिनां प्राणजीविताम् ॥२
पञ्चम्या स्नपयन्तीहै नागान्क्षीरेण ये नराः । तेषां कुले प्रयच्छन्ति तेऽभयप्रश्नदक्षिणाम् ॥३
शप्ता नागा यदा मात्रा दह्माना दिवानिशम् । निर्दिष्यन्ति स्नपनैर्गवां^२ क्षीरेण मिश्रितैः ॥४
गे स्नपयन्ति वै नागान्भवत्या श्रद्धासमन्विता । तेषां कुले सर्पभवं न भवेदिति निश्चयः ॥५
शतानोक उवाच

मात्रा शप्ता: कथं नागाः कि समुद्दिश्य कारणम् । कथं चानन्दकरणं कस्य वा सम्भ्रसादजम् ॥६
सुमन्तुरुवाच

उच्चैःश्रवा अभरत्लं इवेतो जातोऽमृतोऽद्वृवः । त दृष्ट्वा चाहवीत्कदूनार्गनां जननी स्वसाम्^३ ॥७
अभरत्लमिदं इवेतं सम्प्रेक्षेऽमृतसम्भवम् । कृष्णांश्च वीक्षसे ब्रतान्सर्वं वेतनुताम्बरे ॥८
विनतोवाच

सर्वभेतो हृयवरो नास्य कृष्णो न लोहितः । कथं पश्यसि कृष्णं त्वं विनतोवाच तां स्वसाम् ॥९
कदूरुवाच

वीक्षेऽहमेकनयना कृष्णबालसमन्वितम् ! द्वित्रा त्वं तु विनते न पश्यसि पणं कुरु ॥१०

इसीलिए पञ्चमी के दिन नागों का निश्चित महान् उत्सव सुसम्पन्न होता है । १। वासुकि, तक्षक, कालियानाग, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनंजय ये सभी नागदेव सभी प्राणियों को अभय प्रदान करते हैं । २। अतः जो लोग पञ्चमी में नागों को दूध से स्नान-पूजन कराते हैं उनके कुल को वे सदैव अभयपूर्वक प्राण दान देते रहते हैं । ३। इसलिए उसीदिन माता के शाप द्वारा रात-दिन पीड़ित रहने वाले नागों को जो श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक गाय के दूध या जल से स्नान कराता है निश्चित ही उसके कुल में साँपों का भय कभी नहीं होता है । ४-५

शतानोक ने कहा—माता ने नागों को शाप क्यों दिया, उनका क्या उद्देश्य था ? तथा किसकी कृपा से उन्हें यह (पंचमी का दिन) आनन्द दायी हुआ । ६

सुमन्तु बोले—समुद्र मर्यादे समय अमृत से उच्चैःश्रवा नामक अश्व की उत्पत्ति हुई जो इवेत रंग एवं सभी अश्वों में रत्न रूप था । उसे देख कर नागों की माता कदू ने अपनी बहन विनता से कहा—अमृत से उत्पन्न हुए इस घोड़े को जो इवेत एवं घोड़ों में रत्न रूप है, मैं देख रही हूँ पर, वह काला भी है तुम भी आकाश में उसके काले बाल को देखती हो या इवेत वर्ण ही देखती हो । ७-८

विनता ने कहा—यह उत्तम घोड़ा सर्वाञ्ज इवेत है, इसके बाल न काले हैं और न लाल तुम इसे काला कैसे देख रही हो । ९

कदू ने कहा—विनते ! मेरी तो एक ही आँख है, पर, उस काले बाल वाले को मैं देख रही हूँ और तुम्हारे दो आँखें हैं फिर भी नहीं देख रही हो । तो फिर बाजी लगाओ । १०

१. सार्वं कुर्याद्वै सर्वमेव वा । २. धृतशिरास्तथान्ये ये महोरगाः । ३. पूजयन्ति । ४. च जलैर्गवां क्षीरैरमिश्रितैः ।

विनतोवाच

अहं दासी भवित्री ते कृष्णे केशे प्रदर्शिते । न चेद्दर्शयसे कदू मम दासी भविष्यसि ॥११
 एवं ते विपणं कृत्वा गते क्रोधसमन्विते । विनता शयने मुष्टा कदूजिह्वामचिन्तयत् ॥१२
 आहूय पुत्रान्प्रोवाच बाला भूत्वा हयोत्तमे । तिष्ठधं विपणे जेष्ठे विनतां जयगद्धिनीम् ॥१३
 पोनुस्ते जिह्वाबुद्धिं हां नागा भातां^१ विगृह्य तु । अथस्यमेतत्मातस्ते न करिष्याम ते वचः ॥१४
 ताञ्छराप रुषः कदूः पावको वः प्रधृष्यति । गते बुद्धिथे काले गाण्डवो जनमेजयः ॥१५
 सर्पसत्रं स कर्ता वै भूति हान्यैः सुउष्करम् । तस्मिन्सत्रे स तिगमांशुः पावको वः प्रधृष्यति ॥१६
 एवं शस्त्वा रुषा कदूः किञ्चित्त्रोक्तदत्ती तु सा । भात्रा शफ्तात्तथा नागः कर्तव्यं नान्वपत्तत ॥१७
 वानुर्किं दुखितं ज्ञात्वा ब्रह्मा प्रोवाच सात्त्वदन् : मा शुचो वासुकेऽत्यर्थं शृणु मदुचनं परम् ॥१८
 यायावरकुले जातो जरत्कारुरिति द्विजः । भविष्यति महातेजास्तस्मिन्काले तपोनिधिः ॥१९
 भगिनीं च जरत्कारु तस्मै त्वं प्रतिदास्यति । भविता तस्य पुत्रोऽसावास्तीक इति दिश्व्रुतः ॥२०
 स तत्सत्रं प्रवृद्धं ये नागानां भयदं महत् । निषेधेत्पुमितर्वार्द्धिभरग्यांभस्तं नविष्यति ॥२१
 तदिमां भगिनीं राजंस्तसा त्वं प्रतिदास्यति । जरत्कारुं जरत्कारोः प्रदद्या अविचारयन् ॥२२

विनता ने कहा—यदि उसके काले बाल को तू दिखायेगी तो मैं आजीवन तेरी दासी रहूँगी नहीं तो तू मेरी दासी होगी ॥११। इस प्रकार उन दोनों ने कुदू होकर बाजी लगाया और जब विनता शयनागार में सो गयी तब कदू ने छल करने की सोची ॥१२। अपने लड़कों को बुलाकर कहने लगी कि बाल की भाँति पहले हो कर उस सुन्दर घोड़े के अंग में चिपट जाओ, जिससे इस बाजी में जय का लोभ करने वाली उस विनता को जीत लूँ ॥१३। इसे सुनकर नागों ने छल करने वाली अपनी उस माँ से कहा—माता ! ऐसा करना अधर्म है अतः हम लोग तुम्हारी इस बात को नहीं मानेंगे ॥१४। अनन्तर कुदू होकर कदू ने उन्हें शाप दिया कि तुम्हें अग्नि जला! डाले बहुत दिन बीतने पर पाण्डव जनमेजय इस प्रकार की सर्पयज्ञ जो पृथ्वी में दूसरे के लिए महा कठिन हैं आरम्भ करेंगे उसी यज्ञ में प्रचण्ड ज्वाला वाले अग्नि तुम्हें जलायेंगे ॥१५-१६। कुदू होकर कदू ने इस प्रकार शाप देकर फिर कुछ नहीं कहा और माँ द्वारा शाप होने पर नाग लोगों को भी उस समय कर्तव्य का ज्ञान न रहा ॥१७। उस समय बासुकि को दुखी देख शांति प्रदान करते हुए ब्रह्मा ने कहा, वासुके ! अधिक चित्ता न करो मेरी उत्तम बातें सुनो ॥१८। उसी समय में यायावर कुल में महातेजस्वी एवं तपोमूर्ति जरत्कारु नामक एक वाह्यण उत्पन्न होगा ॥१९। उसे तुम जरत्कारु नामक अपनी बहन (पत्नी रूप में) अर्पित करोगे। उससे आस्तिक नामक पुत्र उत्पन्न होगा, ऐसा (मैंने) सुना है ॥२०। तदुपरांत वह बुद्धिमान् ब्राह्मण उत्तमवाणी द्वारा प्रार्थना करके नागों के लिए आरम्भ किये गये उस महान एवं भयंकर यज्ञ को स्थगित करा (रोकवा) देर्गा ॥२१। हे राजन् ! इसलिए तू अपनी इस भगिनी (बहिन) को उस ब्राह्मण को अवश्य अर्पित करना क्योंकि जरत्कारु के लिए जरत्कारु को बिना कुछ सोचे-समझे ही प्रदान करना चाहिये ॥२२। यदि अपना कल्याण चाहते हो

यदासौ प्रार्थतेऽरण्ये यत्किञ्चिद्दि वदिष्यति । तत्कर्तव्यमशद्देन यदीच्छेः श्रेय आत्मनः ॥२३
 पितामहवचः श्रुत्वा वासुकिः प्रणिपत्य च । तथाकरोद्यथा चौक्तं यत्नं च परमास्थितः ॥२४
 तच्छ्रुत्वा पञ्चगाः सर्वे प्रहर्षोत्तुल्लोचनाः । पुनर्जातमिवात्मानं मेनिरे भुजगोत्तमाः ॥२५
 तत्र सदं महाबाहो^१ तव पित्रा प्रवर्ततम् । ऋत्विग्भिः स हि तेनेह सर्वलोकेजु^२ दुष्करम् ॥२६
 प्रोक्तं च विष्णुङ्गा पूर्वं धर्मपुत्रस्य भीमतः । अवश्यं तस्म भविता नागानां भयकारकम्^३ ॥२७
 तस्मात्कालान्तराद्वाजन्त्स्मै वर्षशते गते । तत्सत्र भविता घोरं नागानां धयकारकम् ॥२८
 यास्यन्त्यर्थमभरित दंद्युक्त विजोल्बणा । क्षेट्रिसङ्ख्या मह्, राज निपतिष्यन्त्यहनिशम् ॥२९
 अपूर्वे तु निन्द्रानां घोरे रौद्राश्विसागरे । आस्तीकस्तत्र भविता तेषां नौर्दहितागरे ॥३०
 श्रुत्वा स चाप्ति राजानमृत्विजस्तदनन्तरम् । निर्वर्तयिष्यते यां नागानां मोहनं परद् ॥३१
 पञ्चमयं तत्र भविता ब्रह्मा प्रोवाच लेलिहान् । तस्मादियं महाबाहो पञ्चमी दियता सदा ॥
 नागानामानन्दकरी दत्ता वै ब्रह्मणा पुरा ॥३२
 कृत्वा तु भोजनं पूर्वं ब्राह्मणान् तु कामतः । विसृज्य नागाः प्रीयन्तां देः केचित्पृथिवीतले ॥३३
 ये च हेलिमरीचिस्था येऽन्तरे दिवि संस्थिताः । ये नदीषु महानागा ये सरस्वतिगामिनः ॥
 ये च वापीतडागेषु तेषु सर्वेषु वै नमः ॥३४

तो (वहाँ) जंगल में वह ब्राह्मण जो कुछ याचना करे (मांगे) या कहे उसे निःशंक हो कर करना । २३।
 इस भाँति पितामह ब्रह्मा की बातें सुनकर नागवासुकि ने उन्हें प्रणाम करते हुए यत्नपूर्वक उसे सुसम्प्रस्तुत करने की स्वीकृति प्रदान की । २४। इसे सुनकर सभी नागों की आंखें हर्षातिरेक से खिल उठी और वे अपने को फिर से उत्पन्न हुए की भाँति समझने लगे । २५। हे महाबाहो ! ऋत्विक् (यज्ञ करने वाले) ब्राह्मणों के साथ तुम्हारे पिता ने उस यज्ञ को जो सभी लोकों में महान् कठिन समझा जाता था आरम्भ किया था । २६। भगदान् कृष्ण ने परम बुद्धिमान् युधिष्ठिर से पहले ही कहा था कि नागों का नाश करने वाला यह यज्ञ अवश्य आरम्भ होगा । २७। इसीलिए हे राजन् ! सौ वर्ष (का समय) बीत जाने पर नागों का नाश करने वाला वह घोर यज्ञ अवश्य आरम्भ होगा । २८। हे महाराज ! वे विपधर नागण भी अधर्मी होंगे अतः करोड़ों की संख्या में वे रातदिन (उसमें) गिरेंगे । २९। किन्तु अपूर्व, घोर एवं प्रचण्ड ज्वाला वाले उस अग्नि के सागर से उन्हें बचाने के लिए समुद्र में नौके की भाँति आस्तीक पहुँचेगा । ३०। और उस यज्ञ को आरम्भ सुनकर क्रमशः अग्नि, राजा एवं ऋत्विकों समेत नागों को मुग्ध करने वाले उस यज्ञ को भी रोक देगा । ३१। ब्रह्मा ने उन सर्पों से कहा था कि इनकी रक्षा का कार्य पञ्चमी में ही होगा । महाबाहो ! इसीलिए यह पञ्चमी नागों को अति प्रिय हुई है प्राचीन काल में ब्रह्मा ने भी इसी पञ्चमी में नागों को वर प्रदान कर आनन्द प्रदान करने वाली यह पञ्चमी उन्हें सौंप दिया था । ३२। अतः उस दिन पहले ब्राह्मणों को भली भाँति भोजन कराकर (भोजन पश्चात्) नागों का विसर्जन करते हुए प्रार्थना करे कि भूतल, हेलि, मदार के वृक्ष, मरीचि (सप्तर्षि) आकाश, सरस्वती, नदी, बावली और तालाब आदि में रहने वाले नाग देव को नमस्कार है । इस प्रकार नागों और ब्राह्मणों

१. मातामित्यार्थम् । २. महाराज । ३. सर्वलोकसुदुर्धरम् ।

नागान्विप्रांश्च सम्भूज्य विसुज्य च यथार्थतः । ततः पश्चात् भुञ्जीत सह मृत्यैर्नराधिप ॥३५
 पूर्वं मधुरमशनीयात्ततो भुञ्जीत कामतः । एवं नियमपुक्तस्य यत्कलं तन्निबोध मे ॥३६
 मृतो नागपुरं याति पूज्यमानोऽन्तरोगणैः । विमानवरभालडो रमते कालमीप्सितम् ॥३७
 इह चतुर्त्य राजासावयुतस्नां^१ वरो भवेत् । सर्वरत्नसमृद्धः स्याद्वाहनादग्रं जायते ॥३८
 यज्ञं जलस्त्वयसौ राजा द्वापरे द्वापरे भवेत् । आधिव्यापिविनिर्मुक्तः पन्नीपुद्रतहस्यवान् ॥३९
 तस्मात्पूज्याश्च पाल्याश्च^२ घृतपायसगुणगुलैः ॥४०

शतानीक उवाच

दशन्ति ये नरं विप्रं नागाः क्रोधसमन्विताः । भवेत्किं तस्य द्वजस्य विस्तराद् बूहि मे द्विज ॥४०

सुमन्तुरुवाच

नागदष्टो नरो राजन्नाप्य मृत्युं व्रजत्यथः । अधो गत्वा भवेत्सर्पे निविदो नात्र संशयः ॥४१

शतानीक उवाच

नागदष्टः पिता यस्य भ्राता वा द्रुहितपि दा ; माता पुत्रोऽथ दा भार्या किं कर्तव्यं वदस्व मे ॥४२
 मोक्षाय तस्य विप्रेन्द्र दानं व्रतमुपोषणम् । बूहि तदिद्विजशार्दूलं येन तद्वै करोम्यहम् ॥४३

का पूजन एवं विसर्जन करके हे राजन् ! पश्चात् सेवकों को साथ ले भोजन करे ॥३३-३५। उस समय सर्वपथम मधुर भोजन करना चाहिये पश्चात् जैसी रुचि हो । इस प्रकार नियम पूर्वक इसे सुसम्पन्न करने वाले को जो फल प्राप्त होता है, मैं उसे कह रहा हूँ मुनो ॥३६। शरीर त्याग करने पर वह प्राणी पहले नाग लोक में जाता है । वहाँ अप्सराएँ उसकी सेवा अरती हैं वहाँ उत्तम विमान पर बैठ कर वह अपने मन इच्छित समय तक उनके साथ क्रीड़ा करता है ॥३७। और फिर (कभी) इस लोक में आकर इस प्रकार का राजा होता है, जो भूमण्डल का पति होकर समस्त रत्नों एवं सर्वारियों की अधिकता से सदैव परिपूर्ण रहता है ॥३८। इसी भाँति वह द्वापर के प्रत्येक युग में पाँच जन्मों तक राजा होता है जो शारीरिक एवं मानसिक कष्टों से सदैव मुक्त रहता है तथा स्त्री और पुत्र उसकी सेवा के लिए सदैव तत्पर रहते हैं इसलिए इस दिन धी, सीर और गूगुल द्वारा नागों का पूजन और सम्मान अवश्य करना चाहिये ॥३९

शतानीक ने कहा—हे विप्र ! कुद्ध होकर नाग जिसे काट लेते हैं उस (प्राणी) की कौन गति होती है, इसे विस्तार पूर्वक हमें सुनाइये ॥४०

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! नाग जिसे काट खाते हैं वह मनुष्य मृत्यु प्राप्त कर नीचे पाताल लोक में जाता है और वहाँ जाकर निश्चित विषहीन सर्प होता है ॥४१

शतानीक ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! जिसके पिता, भाई, लड़की, माँ, पुत्र या स्त्री को साँप काट लेता है उसका (उसके प्रति) क्या कर्तव्य होता है, मुझे बताने की कृपा करे ॥४२। और उसके मुक्ति के लिए दान, व्रत एवं उपवास आदि क्या किया जाता है ? अथवा जो होता हो मुझे बतायें मैं उसे अवश्य कहौंगा ॥४३

सुमन्तुरुवाच

उपेष्या पञ्चमी राजशागरानां पुष्टिवर्धिनी । त्वमेवमेकं राजेन्द्र विधानं शृणु भारत ॥४४
 मासि भाद्रपदे या तु कृष्णपक्षे^१ महीपते । महापुर्णा तु सा प्रोक्ता ग्राह्यापि च महीपते ॥४५
 ज्ञेया द्वादश पञ्चम्यो हायने भरतर्षभ । चर्तुर्थ्या त्वंकथं तु तस्मां नक्तं प्रकीर्तितम् ॥४६
 भुवि^२ चित्रमयान्नामनश्च वा कलधौतकान् । कृत्वा दारुमयान्वापि अथ वा मृत्यान्लृप ॥४७
 पञ्चम्यानर्चयेद्भूक्त्या नागानां पञ्चकं नृपः करवीरे: शतपत्रैर्जातीपुष्टैश्च सुद्रत ॥४८
 तथा गन्धैश्च धूपैश्च पूज्य पञ्चकमुत्तमम्^३ । आहृणं भोजेत्यश्चाद् धृतपायसमोदकैः ॥४९
 अनन्तो बासुकिः शङ्खः पद्मः कम्बलं एव च । तथा कर्कोटको नागो नागो ह्यश्वतरो नृप ॥५०
 धृतराष्ट्रः शङ्खपालः कालियस्तक्षकस्तथा । पिङ्गलश्च तथा नागो मासि प्रकीर्तितः ॥५१
 वत्सरान्ते^४ पाराणं स्याद्ब्राह्मणान्भोजयेद्दहून् । इतिहासविदे नागं गैरिकेण कृतं नृप ॥५२
 तथार्चना प्रदातव्यः वाचकाय महीपते^५ ॥५२
 एष वै नागपञ्चम्या^६ विधिः प्रोक्ता दुर्धनृप । तद पित्रा कृतश्चैव पितुर्मोक्षाय भारत ॥५३
 त्वमेकमेकं वै वीर पञ्चम्यां भरतर्षभ । सुवर्णभारतिष्ठन्नं नागं दत्त्वा तथा च गाय ॥५४

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! उस प्राणी के निमित्त पञ्चमी का व्रत करना चाहिये जो लोगों को सुदृढ़ बनाती हैं अतः हे राजेन्द्र ! तुम उसका एक विधान सुनो ! हे भारत ! अब मैं उसका विधान बता रहा हूँ सुनो ! हे महीपते ! भादों महीने की 'कृष्ण पक्ष वाली पञ्चमी अधिक पुण्य प्रदान करती है अतः व्रत पूजा हेतु उसी को ग्रहण करना चाहिये । ४४-४५। हे भरतर्षभ ! वर्ष भर में बारह पञ्चमी होती है । इसलिए (उसके विधान में) पञ्चमी के पूर्व चौथी की रात में एक बार भोजन का विधान कहा गया है । हे नृप ! फिर (दूसरे दिन) पञ्चमी में पांच नागों की प्रतिमा का जो सोने की चित्रविचित्र, काष्ठ, वा मिट्टी का बना हो, भक्ति पूर्वक पूजा करनी चाहिए । ४६-४७। हे सुद्रत ! करील, कमल एवं मालती के पुष्पों, गंध और धूपों द्वारा पंचमी में पांचों (नागों) की पूजा करने के पश्चात् ब्राह्मणोंको मिश्रित धी खीर और लड्डू का भोजन कराना चाहिये । ४८-४९। हे नृप ! इसीलिए बारहों महीने के क्रमशः ये अनंत, बासुकी, शङ्ख, पद्म, कंबल, कर्कोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शङ्खपाल, कालिय, तक्षक और पिंगल नामक नाग (पूजन के लिए) बताये गये हैं । ५०-५१। वर्ष के पूरे होने के पश्चात् पाराण करे और उसमें अधिक ब्राह्मणों का भोजन कराकर सोने की वह (नाग की) प्रतिमा उन कथा वाचक ब्राह्मणों को जो इतिहास आदि के भी पूर्ण विद्वान हों सम्मान पूर्वक अर्पित कर देना चाहिए । ५२। हे नृप ! नाग पंचमी के विधान को जो विद्वानों ने बताया है, तुम्हारे पिता ने अपने पिता की मुक्ति के लिए सुसम्पन्न किया था । ५३। अतः हे भारत ! तुम भी पंचमी के प्रत्येक व्रत में एक-एक नाग की प्रतिमा जो अधिक सोने की बनी हैं ।

१. मान्याश्च । २. शुक्लपक्षे । ३. भूरि चन्द्रमयं नागम् । ४. पुस्कांतरे च "भूरि चन्द्रमयं नागमय वा कलधौतकम् । कृत्वा दारुमयं वापि अथ वा मृत्यमयं नृप । पंचम्यानर्चयेद्भूक्त्या नागं पंचफणें नृप । करवीरे: शतपत्रैर्जातीपुष्टैश्च सुद्रत । तथा गन्धैश्च धूपैश्च पूज्य पश्चगमुत्तमम् । ५. पश्चमम् ।

व्यासय कुरुशार्दूल पितुरानुष्मयमाप्नुयाः । तत्र पित्रा कृता ह्येवं पञ्चम्युपासना नृप ॥५५
 उत्सृज्य नागां वीर तद् पूर्वपितामहः । पुष्पोत्तरं सदो गत्वा तथा पुष्पसदो नृप ॥५६
 मुनासीरसदो गत्वा तदा भर्गसदो गतः । स्वभूसदस्ततो गत्वा कञ्जजस्य सदो गतः ॥५७
 अन्येऽपि ये करिष्यन्ति इदं व्रतन्तुतमम् । इष्टको मोक्षते तेषां शुभं स्थानमवाप्यति ॥५८
 यश्चेदं शृणुयान्नित्यं नरः^१ श्रद्धासमनिदितः । कुले तस्य न नाशेष्यो भयं भवति कुत्रचित् ॥५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहक्यां संहितायां आहो वर्णिणि पञ्चमीकल्पे

नागपञ्चमीव्रतवर्णनं नाम द्वाक्षिण्योऽप्यायः । ३२।

अथ त्र्यास्त्रशोऽध्यायः

सर्पभेदम्

शतानीक उवाच

सपांगां कृति रूपाणि के वर्णाः किं च लक्षणम् । का जातिस्तु भद्रेतेषां केषु योदिकुलेषु वा ॥१

सुमन्तुरुवाच

पुरा नेरौ नगवरे कश्यपं तपसां निधिम् । प्रणम्य शिरसा भक्त्या गैतमो वाक्यमब्रवीत् ॥२

गौ समेत व्यास (कथावाचक) को देकर अपने पितृ-ऋण से मुक्त हो जाओ। क्योंकि तुम्हारे पिता ने इसी प्रकार की पञ्चमी की पूजा की थी ५४-५६। हे नृप ! तुम्हारे पूर्व पितामह ने अपनी नाग की शरीर त्याग कर क्रमशः कुवेर, इन्द्र, शिव, ब्रह्म एवं विष्णु के लोक की प्राप्ति की है ५७। इसी प्रकार अन्य जो लोग भी इस व्रत को सुसम्पन्न करेंगे तो प्रणियों को जिन्हें साँप ने काट खाया है नित्य उत्तम स्थान की प्राप्ति होगी ५८। अतः जो मनुष्य थ्रद्धा पूर्वक इस कथा को नित्य सुनता है, उसके कुल में साँप का भय कभी भी उपस्थित नहीं होता ५९।

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के पञ्चमी कल्प में नागपञ्चमी व्रत वर्णन नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त । ३२।

अध्याय ३३

साँपों के भेद

शतानीक ने कहा—साँप के कितने रूप, रंग और जाति होती है ? उनका लक्षण क्या है और किस योनि में उनकी गणना होती है ? बताने की कृपा करें । १

सुमन्तु बोले—पहले समय में गौतम जी ने सौन्दर्य पूर्ण मेष पर्वत पर (रहने वाले) उन तपोमूर्ति कश्यप जी को भक्तिपूर्वक सादर सिर से प्रणाम किया और (उनसे) कहा—हे प्रजापति ! हे प्रभो !

१. संवत्तति पारणं स्यान्महाब्राह्मणभोजनम् ।

सर्पणां कृति रूपाणि कि चिह्नं किं च लक्षणम् । जार्ति कुलं तथा वर्णान्बूहि सर्वं प्रजापते ॥३
 कथं वा जायते सर्पः कथं मुञ्चेद्विषं प्रभो ! विषवेगः लृति प्रोक्ताः कत्येव विषनाडिकाः ॥४
 दण्ड्राः कृतिविधाः प्रोक्ताः कि प्रमाणं विषगमे । गृहीते तु कदा गर्भं कथं चेह प्रसूयते ॥५
 कीदृशीं स्त्रीं पुमान्श्चैव कीदृशःश्च नपुंसकः । कि नाम दशनं चेद एतत्कथय सुव्रत ॥६
 तस्य^१ तद्वचनं श्रुत्वा कश्यपः प्रत्यभाषत । शृणु गौतम तत्वेन सर्पणामिह लक्षणम् ॥७
 सास्याद्वादे तथा ज्येष्ठे प्रनाद्यान्ति भुजङ्गमाः । ततो नागोऽयं नागी च मैथुने सम्प्रपद्यते ॥८
 चतुरो वार्षिकान्मासाशारागी गर्भमधारयत् । ततः कार्तिकमासे तु अण्डकानि प्रसूयते ॥९
 अण्डकानां तु विजेये द्वेराते ह्वे च लिंशती । तान्येव भक्षयेत्ता तु भौैकं धृण्या त्यजेत ॥१०
 स्वर्णर्किवर्णद्वृत्तमात्पुमान्तङ्गायतेऽण्डकात् । नान्येव खादते सर्पं अहोरात्राणि विंशतिम् ॥११
 स्वर्णकेतकवर्णमादीर्घराजीवसन्निमाद् । तस्मादुत्पद्यते स्त्रीं वै अण्डाद्ब्राह्मणसत्तम् ॥१२
 शिरीषपुष्पवर्णमादिङ्गकात्प्राप्तम्भुंसुकः । ततो भिनति चाण्डानि षज्मासेन तु गौतम ॥१३
 ततस्ते प्रीतिसम्बन्धात्प्लेहं बन्धनित बालकाः । ततोऽतौ सप्तरात्रेण कृष्णो भवति पक्षगः ॥१४
 आयुःप्रमाणं सर्पणं शतं विशेषतरं स्मृतम् । मृत्युश्चाष्टविधो ज्ञेयः शृणुष्वात्र यथाक्रमम् ॥१५
 मयूरान्मानुवाद्वापि चकोराद्गोक्षुरात्थाऽपि । बिडालान्मकुलाच्छैव वराहाद्वश्रिकातथा ॥

सांपों के कितने रूप, चिह्न, लक्षण जाति, कुल एवं रंग हैं ये सभी बातें हमें बताने की कृपा करे । २-३।
 सांप केसे उत्पन्न होते हैं, वे कैसे जाटते हैं और विष को कैसे छोड़ते हैं, कितने विष के आवेग एवं कितनी
 विष की नाड़ियाँ हैं, दाँत के भेद तथा उनके विषधर होने में क्या प्रमाण है ? कब गर्भ धारण करते हैं और
 कैसे बच्चा उत्पन्न करते हैं ? तथा उनमें किस भाँति की स्त्री, पुरुष तथा नपुंसक होते हैं एवं काटना किसे
 कहते हैं । हे सुव्रत ! ये सभी बातें सुनकर कश्यप ने कहा—गौतम !
 सावधान होकर सांपों के लक्षणों को मैं बता रहा हूँ सूनो । आपाद और जेठ के मास में सांप मतवाले होते
 हूँ तभी नाग और नागिन से भोग करते हैं । ७-८। वर्षा काल में चार मास गर्भिणी रह कर पश्चात्
 कार्तिक मास में नागिन अंडे उत्पन्न करती है । ९। वे अंडे दो सौ चालीस की संख्या में होते हैं जिन्हें
 नानिन भक्षण करना आरम्भ करती है पर धृणा वश एक भाग छोड़ भी देती है । १०। सुवर्ण और सूर्य की
 भाँति चमकीले उस अंडे से पुरुष (नर) नाग उत्पन्न होते हैं सांप जिन्हें बीस दिन तक सतत खाता रहता
 है । ११। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! इसी भाँति सुवर्ण केतकी एवं लम्बे कमल के समान बाले अंडे से स्त्री (मादा)
 तथा शिरीष पुष्प की भाँति वाले अंडे से नपुंसक नाग उत्पन्न होता है । हे गौतम ! छठे मास में अंडे फूट
 जाते हैं पुनः उन बच्चों में माँ का स्नेह उत्पन्न हो जाता है और सात दिन में वे काले हो जाते हैं । १२-१४।
 सांपों की आयु एक सौ बीस वर्ष की होती है और उनकी आठ प्रकार की मृत्यु होती है उनके क्रम को सुनो, मैं
 बता रहा हूँ । १५। मोर, मनुष्य, चकोर, गौओं का खुर, बिल्ली, नेवला, सुअर और बिछू से यदि वे सुरक्षित
 रह सकें तो वे एक सौ बीस वर्ष का जीवन प्राप्त करते हैं । सात दिन पूरा होने पर दाँत निकल आते हैं और

१. श्रद्धाभक्तिसमन्वितः । २. कर्त्त्वमित्पुस्तके पूर्वं प्रोक्तः “सुमन्तुरुवाच” इत्यादिपाठो नास्ति परं
 त्वं त्र-तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सुमन्तुः प्राह तत्तदा ॥ इममर्थं पुरा पृष्ठो गौतमेन च कश्यपः । प्रहृष्टवदनः सौम्यः
 कश्यपः प्रत्यभाषत ॥” इति पाठोऽस्ति ।

एतेषां यदि मुन्येत जीवेद्विशोत्तरं शतम्

॥१६

सप्त्वा हे तु ततः पूर्णे दंष्ट्राणां चाधिरोहणम् । विषस्यागमनं तत्र निक्षिपेत्त्वं पुनः पुनः ॥१७
एवं ज्ञात्वा तु तत्त्वेन विषकम्मारभेत वै । एकविशतिरात्रेण विषदंष्ट्रा सुजायते ॥

नागीपाश्वर्षसमावर्ती बालसर्पः स उच्यते

॥१८

पञ्चविंशतिरात्रस्तु सद्यः प्राणहरो भवेत् । षण्मासाज्जातनावस्तु कडचकुं द्वै प्रमुच्चति ॥१९
पादानां चापि विज्ञेये द्वे शते द्वे च विंशती । गोलोवसदृशाः पादाः प्रविशन्ति क्रमन्ति च ॥२०
सन्धीनां चात्म्य विज्ञेये द्वेशते दिंशती तथा । अंगुल्यश्चापि विज्ञेया द्वे शते विंशती तथा ॥२१
अकालजाता ये सर्पा निविषास्ते प्रकीर्तितः । पञ्चसप्ततिर्वर्षाणि आयुस्त्वेषां प्रकीर्तिम् ॥२२
रक्तपीतशुक्लदन्तः अनीता सन्दवेगिनः । एते अल्पायुषो ज्ञेयो अन्ये च भीरवः स्मृता ॥२३
एकं चात्म्य भवेद्वक्षंद्वे जिह्वे च प्रकीर्तिते । द्वात्रिंशदृशनाः प्रोक्ताः पश्चागानां च संशयः ॥२४
तेषां मध्ये चतुर्वस्तु दंष्ट्रा याः सुविषावहाः । मकरी कराली कालरात्री यमदूती तथैव च ॥२५
सर्वासां चैव दंष्ट्राणां देवताः परिकीर्तिताः । प्रथमा ब्रह्मदेवत्या द्वितीया विष्णुदेवतः ॥

तृतीया रुद्रदेवत्या चतुर्थी यमदेवता

॥२६

हीना प्रमाणतः सा तु वामनेत्रं समाख्निता । नास्यां मन्त्राः प्रयोक्तव्या नौषधं नैव भेषजम् ॥२७
वैद्यः पराङ्मुखो याति मृत्युस्तस्या विलेखनात् । चिकित्सा न द्वयैः कार्या तदन्तं तस्य जीवितम् ॥२८
मकरीं मासिकां विद्यात्कराली च द्विमासिका । कालरात्री भवेत्त्रीणि चतुरो यमदूतिका ॥२९

उनमें दिष्प-संचय भी होने लगता है । १६-१७। इसे जानते हुए भी वे काटना आरम्भ कर देते हैं पर विष वाले दाँत इक्कीस दिन में भली भाँति दृढ़ होते हैं । नागिन के साथ रहने वाले साँप को बाल साँप कहते हैं । १८। इस प्रकार पूरे पञ्चीस दिन वाला साँप (काटने पर) तुरन्त प्राण लेता है । (साँप) छठे मास केचुल का त्याग करते हैं । १९। गाय के रोम के समान इनके दो सौ चालीस पैर होते हैं जो चलने पर ही निकलते हैं एवं सदा भीतर ही घुसे रहते हैं । २०। इनकी देह में दो सौ बीस संधियाँ तथा इतनी ही अंगुलियाँ होती हैं । २१। जो साँप अपने समय पर नहीं उत्पन्न होते हैं वे विष-हीन एवं पचहत्तर वर्ष की आयु वाले होते हैं । २२। लाल पीले तथा सफेद दाँत वाले नीले रंग से भिन्न रंग वाले मंद वेग वाले (साँप) अत्यायु होते हैं और अन्य भीरु होते हैं । २३। साँपों के एक मुख दो जिह्वा एवं बत्तीस दाँत होते हैं । २४। उनमें चार दाँत घोर विष वाले होते हैं जिनके (दाढ़ के) क्रमशः मकरी, कराली, कालरात्री, यमदूती ये चार नाम और ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा यम ये क्रमशः उनके देवता कहे गये हैं । (यमदूती नामक दाढ़) अत्यन्त छोटी तथा बायें नेत्र पर रहती है इसके काटने पर मंत्र का प्रयोग, औषधि, या कोई भी उपचार नहीं करना चाहिये । २५-२७। क्योंकि मृत्यु निश्चित होने से वैद्य हार जाता है इसलिए उसका जीवन वहीं तक था ऐसा समझ कर उसकी चिकित्सा पंडितों को नहीं करनी चाहिए । २८। एक मास में मकरी, दो मास में कराली, तीन मास में कालरात्री एवं चार मास में यमदूती उत्पन्न होती है । २९।

मकरीं गुडौदनं^१ दद्यात्कषयान्नं करात्तिकाम् । कालरात्रीं कटुयुतं दूर्तीं वै सान्निपातिकम् ॥३०
मकरी शस्त्रकं विद्यात्करली काकपादिका ; कराकृतिः कालरात्रिर्याम्या कूर्माकृतिः स्मृता ॥३१
मकरी वातुला ज्ञेया कराली पैत्तिकी स्मृता । कफात्तिका कालरात्री यमदूती सान्निपातकी ॥३२
शुक्ला तु मकरी ज्ञेया कराली रक्तस्त्विभा । कालरात्री भवेत्पौता कृष्णा च यमदूतिका ॥३३
वामा शुक्ला च कृष्णा च रक्ता पीता च दक्षिणा । समासेन तु ब्रह्मामि यथेता वर्णतः स्मृताः ॥३४
शुक्ला तु ब्राह्मणी ज्ञेया रक्ता तु क्षत्रिया स्मृता । वैश्या तु पैतिका ज्ञेया कृष्णा इद्वा तु कथ्यते ॥

अतः परं शब्दशामि दंष्ट्राणां द्विष्टलक्षणम्^२ ॥३५
दंष्ट्राणां तु विषं नास्ति नित्यमेव भुजङ्गमे । दक्षिणं नेत्रमासाद्य वेषं सर्पस्य तिष्ठति ॥३६
सद्गुद्धस्येह सर्पस्य विषं गच्छति मस्तके । मस्तकाद्मनीं याति ततो नाडीषु गच्छति ॥३७
नाडीभ्यः पद्यते दंष्ट्रां विषं तत्र प्रवर्तते । तत्सर्वं कर्याय्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥३८
अष्टभिः कारणैः सर्वो दशते नात्र संशयः । आङ्गान्तो दशते पूर्वं द्वितीयं पूर्ववैरिणम् ॥३९
तृतीयं दशते भीतश्चतुर्थं मददर्पितः । पञ्चमं तु क्षुधाविष्टः षष्ठं चेह विषोल्बणः ॥

सप्तमं पुररक्षार्थमष्टमं कालचोदितः ॥४०
यस्तु सर्वो दशित्वा^३ तु उदरं परिवर्तयेत् । बलभुग्नाकृतिं दंष्ट्रामाकान्तं तं विनिर्दिशेत् ॥४१

मकरी के लिए गुड़, चावल, कराली के लिए कपास स्वाद के अन्न, कालरात्री के लिए कड़वी वस्तु एवं यमदूती के लिए ये सभी वस्तुएँ एक में मिलाकर देना चाहिये । ३०। शस्त्र की भाँति मकरी, कौवे के पैर की भाँति कराली, हाथ की भाँति कालरात्रि और कछुवे के समान यमदूती का आकार होता है । मकरी में वात की प्रधानता, कराली में पित्त की, कालरात्रि में कफ की एवं यमदूती में तीनों की प्रधानता होती है । ३१-३२। मकरी का सफेद, कराली का लाल, कालरात्री का पीला और यमदूती का काला रंग होता है । ३३। बाँई ओर दाढ़ श्वेत एवं काली तथा दाहिनी ओर की लाल और पीली होती है । अब इनके वर्ण का भी संक्षेप में विवेचन कर रहा हूँ । ३४। श्वेत (दाढ़) ब्राह्मणी, लालवाली क्षत्रिय, पीलीवाली वैश्य और काली वाली दाढ़ शूद्र कही जाती है । इसके पश्चात् 'दातों' में विष कैसे बढ़ जाता है यह बता रहा हूँ । ३५। सापों के दांतों में सदैव दिव नहीं रहता है अपितु दाहिनी आँख के समीप विष का स्थान होता है । ३६। सांप के कुद्ध होने पर विष (उनके) मस्तक में पहुँच जाता है वहाँ से धमनी नाड़ी द्वारा अन्य नाड़ियों में पहुँचता है और नाड़ी द्वारा दांतों में पहुँच जाता है । निश्चित आठ कारणों से सांप (किसी को) काटते हैं । सर्वं प्रथम दब जाने से, दूसरे अपने पहले के शत्रु को, तीसरे भयभीत होकर, चौथे मतवाला होकर, पाँचवे भ्रूख से व्याकुल होकर छठें विष की ज्वाला वश, सातवें पुत्र की रक्षा के लिए और आठवें काल की प्रेरणा से (काटते हैं) । ३७-४०। काटने के पश्चात् जो सर्प पेट के बल उलट जाय एवं दाढ़ टेढ़ी कर ले उसे दब जाने से (काटना) जानना चाहिये । ४१। सांप के काटने पर जिसके गहरा ब्रण

यस्य सर्पेण दष्टस्य गभीरं दृश्यते ब्रणम् । वैरदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥४२
एकं दण्डादादं यस्य अव्यक्तं न च कल्प्यतम् । भीतदष्टं विजानीयाद्यथोदाच प्रजापतिः ॥४३
यस्य सर्पेण दष्टस्य रेखा दन्तस्य जायते । मददष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥४४
द्वे च दण्डापदे यस्य दृश्यन्ते च महाक्षतम् : सूधाविष्टं विजानीयाद्यथोदाच प्रजापतिः ॥४५
द्वे इच्छे यस्य दृश्यते क्वचिन्दिवरसङ्कुले । विषोल्बणं विजानीयाद्वाशं तं नात्र संशयः ॥४६
अपत्वरक्षणार्थ्या जानीयात्तं न संशयः । यतु काकपदाकारं त्रिभिर्दन्तैस्तु लक्षितम् ॥४७
महानाग इति प्रोक्तं कालदष्टं विनिर्दिशेत् । त्रिविधं दष्टजातेत्तु लक्षणं समुदाहृतम् ॥४८
दष्टानुपीतं विज्ञेयं कश्यपस्य वचो यथा । विषभागान्तु सर्पस्य त्रिभागस्तत्र संक्षेत् ॥४९
उदरं दर्शयेद्यस्तु उद्धतं तं विनिर्दिशेत् । छर्दितं विषवेगेन निर्विषः पश्चगो भवेत् ॥५०
असाध्यश्चापि विज्ञेयश्चतुर्दष्टाभिषीडितः । ग्रीवाभङ्गे भवेत्किञ्चित्सन्दष्टो विषयोगतः ॥
इतो दंशस्ततः शुद्धो व्यन्तरः परिकीर्तिः ॥५१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि दञ्चमीकल्पे
सर्पदण्डावर्णनं नाम त्रयस्त्रिशोऽध्यायः । ३३।

(छिद्र) हो जाय, कश्यप के कथनानुसार उसे शत्रुता वश (उसका) काटना जानना चाहिये । ४१।
(जिसके) एक दाँत का चिह्न हो जो स्पष्ट हो किन्तु कल्प्यत (बनावटी) न जान पड़े प्रजापति ने कहा है,
उसे भयभीत होकर साँप का काटा हुआ जाने । ४३। साँप के काटने पर जिसके दाँत की रेखा (समान)
हो जाये, कश्यप के वचनानुसार उसे मतवाले साँप द्वारा काटा गया समझना चाहिये । ४४। जिसके दो
दाँतों के चिह्न एवं महाम् धाव दिखाई दे उसे प्रजापति के कथनानुसार भ्रूख से पीड़ित साँप का काटा हुआ
समझे । जिसके दो दाँतों का चिह्न दिखायी दे जो रक्त से भरे हों निश्चित उसे (काटने को) विष की
ज्वाला वश काटा हुआ समझें । ४५-४६। और इसी को सन्तान की रक्षा के निमित्त भी जानना
चाहिए । जिसके तीन दाँतों का चिन्ह दिखायी दे जो कौवे के पैर के समान हों उसके काटने का कारण
काल की प्रेरणा वश जाने और उस काटने वाले भाग को महानाग जानना चाहिये । इस प्रकार काटने के
तीन प्रकार के लक्षण होते हैं उन्हें बता दिया । ४७-४८। कश्यप के कथनानुसार दष्टानुपीत (काटने के
द्वारा अनुपान कराना) लक्षण कहा गया है । दिष्प का तीन भाग काटे गये उस प्राणी के अन्दर पहुँच
जाता है । जो (साँप) काटने के पश्चात् उलट जाता है, उसे मतवाला जानना चाहिये । जिसके काटने से
खरोंच जाय उस साँप को विष हीन समझना चाहिए । चारों दाँतों द्वारा काटा गया असाध्य होता है
अर्थात् उसमें किसी प्रकार सफलता नहीं मिलती है ; जो साँप काटने के पश्चात् अपने गले को मोड़ ले
उसके काटने को विष वश जाने । इस भाँति साँप के काटने का विचार कर शुद्ध (उससे मुक्त होने का
विचार करेंगे) व्यन्तर का विचार करेंगे । ४९-५१

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मणवर्व के पञ्चमी कल्प में सर्पदण्डा वर्णन नामक
तैतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३३।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

काललक्षणम्

कश्यप उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि कालदप्तस्य लक्षणम् । शृणु गौतम तत्त्वेन यादृशो भवते नरः ॥१
जिह्वाभङ्गोऽय हृच्छूलं चक्षुभ्यर्या च न पश्यति । दंश च दग्धसंकाशं पक्वजन्मूफलोपमम् ॥२
दैवर्ण्यं चैव दन्तानां श्यादो भवति वर्णतः । सर्वेष्वज्ञेषु शैथिल्यं पुरीपस्य च भेदनम् ॥३
भग्ररकन्धकटिग्रीवं ऊर्ध्वदृष्टिरधोमुखः । दद्यते वेपते चैव स्वपते च मुहुर्मुहः ॥४
शस्त्रेण छिद्धमानस्य रुधिरं न प्रवर्तते । दण्डेन ताडयमानस्य दण्डराजी न जायते ॥५
दंशे काकपदं सुनीलमसकृज्जन्मूफलाभं घनमुक्त्वा रुधिराद्वसेकवहुलं कृच्छ्रान्निरोधो भवेत् ।
हित्कार्यासगलग्रहणं सुमहात्पाणुस्त्वचा दृश्यते शुक्राङ्गः प्रवदति शास्त्रनिपुणास्तत्कालदप्तं विदुः ॥६
दंशे यस्याथ शोथः प्रचलितवलितं मण्डलं वा सुनीलं प्रस्वेदो गात्र भेदः यवति च रुधिरं सानुनासं च जल्पेत् ।
दन्तोषाग्नां वियोगं भ्रमति च हृदयं सनिरोधश्च तीव्रो विद्यानामेष दंशः स्थलविपुलमयो विद्धिं तं कालदप्तम् ॥७
दन्तर्दन्तान्स्पृशति बहुशो दृष्टिरात्मासखिन्ना स्थूलो दंशः स्ववति रुधिरं केकरं चक्षुरेकम् ॥

अध्याय ३४

काल के काटने का लक्षण

कश्यप ने कहा—हे गौतम ! अब इसके पश्चात् काल के काटने पर मनुष्य की यथार्थ में जो दशा होती है मैं कह रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! ।१। काल के काटने पर जीभ भंग हो जाती है, कलेजे में शूल की पीड़ा एवं आँख से दिखाई नहीं देता है ; काटा गया स्थान अग्नि द्वारा जले हुए की भाँति हो जाता है जो पके जामुन के फल के समान (काला) होता है ।२। स्तान मुख काले-पीले मिश्रित रंग की भाँति दाँत, शरीर के सभी अंगों में शिथिलता और गुदा फट जाता है ।३। कंधे, गला एवं कमर टेढ़ी हो जाती है, आँखें ऊपर आ जाती हैं तथा मुख नीचे हो जाता है, जलन, कम्प एवं बार-बार मूर्छा आती है ।४। हथियार से काटने पर (शरीर से) रुधिर नहीं निकलता है और दंडे से मारने पर दंडे का चिह्न (शरीर में) नहीं होता है ।५। काटने (के स्थान) पर कौवे के पैर की भाँति चिह्नों जो अत्यन्त नील एवं जामुन के समान होता है; मोटा, सूजन, बार-बार रक्त का निकलना, जो कठिनाई से बन्द किया जा सके, लगातार हिचकी का आना तथा सांस का फूलना, शरीर का पीला रंग, सभी अंगों का सूखना, दिखाई दे, उसे शास्त्र के मर्मज्ञ पंडित काल का काटा हुआ बतलाये हैं ।६। काटने पर (उसी स्थान में) शोथ टेढ़ा या गोल, काला धब्बा, पसीना, (किसी अंग का) विदीर्ण होना, रक्त का लगातार निकलना, नाक से बोलना, दाँत-ओंठ का अलग-अलग हो जाना, कलेजे में धड़कन तथा सहसा उसकी गति बन्द हो जाये और बहुत दूर तक काटने का चिह्न हो तो उसे काल का काटा हुआ जानना चाहिए ।७। जिसमें बार-बार दाँत से दाँत का रगड़ना, भार में दबी हुई की भाँति आँखें, (काटने के स्थान में) स्थूल चिह्न, रक्त का निकलना, ऊपर नीची आँखों

प्रत्यादिष्टः श्वसिति सततं सानुनासं च भाषेत्पापं बूते नकलगदितं कालदष्टं तमाहुः ॥८
 वेष्टते वेदना तीक्रा रक्तनेत्रश्च जायते । श्रीवाभज्ञश्चला नाभिः कालदष्टं विनिर्दिशेत् ॥९
 दर्पणे सलिले वापि आत्मच्छायां न पश्यति । मन्दरर्झम तथा तीव्रं तेजोहीनं दिवाकरम् ॥१०
 वेष्टते नेदनात्रस्तो रक्तनेत्रश्च जायते । स याति निधनं जन्मुः कालदष्टं विनिर्दिशेत् ॥११
 अष्टम्यां च नवम्यां च कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् । नागपञ्चमीदष्टानां जीवितस्य च संशयः ॥१२
 आद्राश्चलेषामधाभरणीकृतिकामुः विरोष्टः । विशाखां त्रिषु पूर्वासु मूलम्बातीशतात्मके ॥
 सर्पदष्टा न जीवन्ति विषं पीतं च प्रस्तथा ॥१३
 शून्यागारे इमशाने च शुष्कवृक्षे तथैव च । न जीवन्ति नरः दष्टा नक्षत्रे तिथिसंयुते ॥१४
 अष्टोत्तरं नर्म शतं प्राणिनां समुद्राहृतम् । तेषां मध्ये तु मर्माणि दश द्वे चापि कीर्तिते ॥१५
 शङ्खः नेत्रे भ्रुवोर्नद्ये बल्तिभ्यां वृषणोत्तरे । कक्षे स्कन्द्ये हृदि मध्ये तालुके चिबुके शुद्धे ॥१६
 एषु द्वादशमर्मेषु^२ दंशैः शस्त्रेण वा हतः । न जोदति नरो लोके कालदष्टं विनिर्दिशेत् ॥१७
 अकच्चटपत्यशां वदन्ति प्रोक्ता जीवन्ति न तत्र हि । गतं ब्रायदि स्खलति शिरस्तस्य सम्प्राप्तकातः ॥१८
 भवति च यदि द्रूतो हृत्तमस्याधसो वा यदि भवति च द्रूत उत्तमो वाधमस्य ।

का होना, कुछ कहने पर बार-बार साँस का लेना, नाक से बोलना (पूँछने पर) दुःखी करने वाली वातों कहना आदि लक्षण दिखे तो उसे काल का काटा हुआ बताया गया है । १। (जिसके शरीर में) कम्प, भारी पीड़ा, गले का लटकना, नाभि का फड़कना मालूम हो उसे काल का काटा जानना चाहिए । १। जिसे शीशे एवं जल में अपनी छाया न दिखायी दे कांतिहीन चन्द्रमा एवं तेजोहीन सूर्य दिखाई दें । १०। और पीड़ा से दुःखी होकर शरीर काँपता हो तथा आंखें लाल हों तो उसकी मृत्यु हो जाती है और उसे काल का काटा हुआ बताया गया है । १। अष्टमी, नवमी, कृष्णपक्ष की चतुर्दशी एवं नाग पञ्चमी में काटने पर (प्राणी के) जीवन में संदेह हो जाता है । १२। आद्रा, श्लेषा, मङ्गा, भरणी, कृतिका, विशाखा, तीनों पूर्वा, मूल, स्वाती और शतभिषा नक्षत्रों में साँप का काटा हुआ तथा जिसने विष-पान किया हो जीवित नहीं रहता है । १३। सूरे घर, इमशान एवं सूखे पेड़ या नीचे के तिथि समेत (उपरोक्त) नक्षत्रों में साँप के काटने पर वह (प्राणी) जीवित नहीं रहता है । १४। प्राणियों के एक सौ आठ मर्मस्थान बताये गये हैं, पर, उनमें मस्तक की हड्डी, भौंह का मध्यभाग नाभि के नीचे दोनों ओर, अंडकोष, काँख, कन्धा, हृदय, कटि, तालू, ठोड़ी और गुदा इन बारहों स्थानों में साँप कटे या हथियार का आघात हो, तो वह मनुष्य जीवित न रहे तथा उसे काल का काटा हुआ जानना चाहिये । १५-१७। यदि कहलाने पर क्रमशः अ, क, च, ट, त, प, इन वर्णों एवं य श तक का उच्चारण करे तो जीवित रहता है किन्तु पिछला (अक्षर) कहे या कुछ कहे तो उसके शिर पर काल पहुँच गया है ऐसा समझ लेना चाहिये । १८। ऊँची जाति का प्रथम द्रूत या नीच जाति का उत्तम द्रूत हो जो सर्वप्रथम वहाँ पहुँचकर काटे गये (प्राणी) का नाम ही बताये या अन्य किसी से (उसके विषय में) बातें किया हो तथा दोनों में जाति भेद भी रहा तो

आदौ दष्टस्य नाम यदि वदति क्वचिद्गति तस्याथ पञ्चातंवर्णभेदो यदि भवति समः प्राप्त कालस्य द्रूतः ॥१९
 द्रूतो वा दण्डहस्तो भवति च युगलं पाणहस्तस्तथा वा रक्तवस्त्रं च क्रृष्णमुखशिरसिगतमेकवस्त्रश्च द्रूतः ॥
 तैलाभ्यत्तश्च तद्यादि त्वरितगतिर्मुक्तकेशश्च याति यः कुर्यादिघोरशब्दं करचरणात् ग्राप्तकालस्य द्रूतः ॥२०
 नागोदयं प्रवक्ष्यामि ईशानेन तु भाषितम् । ब्रह्मणा तु पूरा सृष्टा ग्रहा नागास्त्वनेकणः ॥२१
 अनन्तं भास्करं विद्यात्सोमं विद्यात् वासुकिम् । तक्षं भूमिपुत्रं तु कर्कोटं च बुधं विदुः ॥२२
 पर्यं बृहस्पतिं विद्यान्महापर्यं च भार्गवम् । कुलिकः शंखपालश्च द्वावेतीति तु शनैश्चरः ॥२३
 पूर्वपादः शंखपातो द्वितीयः कुलकस्तथा । नित्यं भागे यथोदिष्टे दिनरात्री तथैव च ॥२४
 शुक्रसोमै च मध्याह्ने उदये तु क्षमानुतः । शनिः प्रागप्तमे भागे दिवारात्रे त्विहोच्यते ॥२५
 ग्रहश्च भुज्जते चैव शेषं भागस्य लक्षणम् । रविवारे सदा ज्ञेयौ पादौ दश चतुर्दश ॥२६
 अष्ट द्वादश वै चन्द्रे दश षष्ठे कुजे तथा । बुधर्य नदमे पादे राहौ च दिवस्य च ॥२७
 गुरोद्वितीयः षष्ठश्च पोडशस्य तु वर्जयेत् । भास्करस्य दिने प्रोक्ते चतुर्थे दशमेष्टमे ॥२८
 शनैश्चरदिने पादं त्यजेच्चैव शुदारुणम् । द्वितीयं द्वादशं चैव षोडशस्य तु वर्जयेत् ॥२९
 मुहूर्तघटिकादूदधर्वं घटिका चतुर्थं भागं विशतिश्च । कुहसुतं बुद्बुदं निमेषमेत्कालस्य लक्षणम् ॥३०

इति श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे
 दंशदष्टकद्रूतलक्षणं नाम चतुर्मिश्रोऽध्यायः । ३४।

उसे चिकित्सक का द्रूत नहीं बल्कि काल का द्रूत जानना चाहिए । १९। इसी प्रकार हाथ में दंडा या फौस मिलिये हुए दो व्यक्ति हों, मुख या शिर पर लाल या काले कपड़े हों, एक ही वस्त्र पहने हों तेल लगाये, जल्दी-जल्दी आते हों, बाल खुले हों एवं हाथ पैर से भयानक शब्द करते हों, उन्हें आये हुए काल का द्रूत जानें । २०। नागों के उदय को जिसे शंकर जी ने पहले कहा था, कह रहा हूँ । ब्रह्मा ने सबसे पहले ग्रह और अनेक नागों की सृष्टि की है । अनन्त नाग सूर्य, वासुकी चन्द्रमा, तक्षक मंगल, कर्कोटक बुध, पद्म बृहस्पति, महापद्म शुक्र, कुलिक और शंख पाल शनैश्चर (के रूप) हैं । २१-२३। दिन और रात को भाँति पूर्व पाद का स्वामी शंख पाल तथा दूसरे पाद का कुलिक है बताया गया है । दिन उदय में मंगल, मध्याह्न में शुक्र और चन्द्रमा तथा दिन-रात में पहले आठ भाग तक शनि का भोग रहता है, शेष भाग में रविवार का दशवाँ, चौदहवाँ, सोमवार का आठवाँ, बारहवाँ, मंगल का छठाँ, दशवाँ, बुध का नवाँ, बृहस्पति का दूसरा, छठाँ, शुक्र का चौथा, आठवाँ एवं दशवाँ, शनि का पहला, दूसरा और बारहवाँ भाग अत्यन्त भयावह होने के नाते त्याज्य हैं, अर्थात् इसमें साँप के काटने पर प्राणी जांबूत नहीं रहता । २४-२९। मुहूर्त की घड़ी से ऊपर की घड़ी चौथा और बीसवाँ भाग भी त्याज्य हैं जो क्रमशः कुह-सुत-बुद्बुद एवं निमेष के नाम से जात हैं । इस प्रकार काल के (त्याज्य) लक्षण को बता दिया गया । ३०

श्री भविष्ये महापुराण में बाह्यपर्व के पञ्चमी कल्प में दंशदष्टक द्रूत लक्षण
 नामक चौतीसवाँ अध्याय समाप्त । ३४।

अथ पञ्चांत्रिशोऽध्यायः

यमदूतीलक्षणम्

कश्यप उवाच

सदिषा दण्ड्योर्मध्ये यमदूती तु वं भवेत् । न चिकित्सा बुधैः कार्या तं गतायुं विर्निदेशेत् ॥१
प्रहरार्धे दिवारात्रावेकैकं भुञ्जते बहिः । एकस्य च समानं च द्वितीयं षोडशं तथा ॥२
नागोदयो यमुहिंश्य हतो विद्वो विदारितः । कालदण्डं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥३
यन्मात्रं पतते बिन्दुवालायं सालिलोदृतम् । तन्मात्रं ऋते द्रष्ट्वा विषं सर्पस्य दारणम् ॥४
नाडीशते तु समूर्णे देहे सङ्क्रमते विषम् । यावत्सङ्क्रामयेद्वाहुं कुञ्चितं वा प्रसारयेत् ॥५
अनेन क्षणमात्रेण विषं गच्छति मस्तके । वेपते विषवेगे तु शतशोऽथ सहस्राः ॥६
वर्धते रत्ननासाद्य ततो वास्तैः शिखी यथा । तैलविन्दुर्जलं प्राप्य यथा वेगेन वर्धते ॥७
शिखण्डी आश्रयं प्राप्य मारुतेन समीरितः । ततः स्थानशतं प्राप्य त्वचास्थानं विचेष्टितम् ॥८
त्वचामु द्विगुणं विद्याच्छोणितेषु चतुर्गुणम् । पिते तु त्रिगुणं याति इलेष्मे वै षोडशं भवेत् ॥९
वायो त्रिशद्गुणं द्वैत्र मज्जाष्ठिगुणं तथा । प्राणे चैकार्णवीभूते सर्वगात्राणि सन्धयेत् ॥१०

अध्याय ३५

यमदूतीलक्षण

कश्यप बोले—दाढ़ों के बीच मे विष से भरी हुई यमदूती नामक दाढ़ होती है । उसके द्वारा साँप के काटने पर विद्वानों को किसी प्रकार की चिकित्सा न करनी चाहिए और प्राणी की भी आयु भमाप्त समझनी चाहिये जिसे साँप ने काट खाया है । १। इसी भाँति दिन और रात में एक-एक पहर के आधे आधे भाग और उसी के समान दूसरे और सोलहवें भाग को साँप भोगते हैं । इसलिए उसं नागोदय काल मे साँप ने जिस पर आधात किया अथवा फाड़ दिया तो कश्यप के कथनानुसार उसे काल द्वारा ही किया गया जानना चाहिए । २-३। पानी से भीगे हुए बाल के अग्रभाग पर जितनी बड़ी बूँद रह कर गिरजाती हैं साँप के दाढ़ द्वारा उतनी ही मात्रा में घोर विष निकलता है तथा जितनी देर में भुजा समेटी या फैलाई जाती है उतने समय में वह विष उसके सैकड़ों नाड़ियों से पूर्ण देह में पहुँच जाता है । फिर उसी क्षण शिर में भी विष पहुँच जाता है जिससे विष की तीक्ष्णता वश वह प्राणी सैकड़ों एवं सहस्रों बार काँपता रहता है । ४-६। पश्चात् वह विष रक्त में पहुँच कर वायु द्वारा अग्नि की भाँति विस्तृत होता है । जिस प्रकार तेल की बूँद पानी में तेजी से फैलती है, उसी प्रकार अपने स्थान में पहुँच कर वह विष भी वायु द्वारा प्रफुल्लित होकर बढ़ता है अग्नि की भाँति उसी तेजी से शरीर में फैल जाता है । ७-८। इस प्रकार सैकड़ों स्थानों में पहुँच कर वह विष त्वचा (शरीर के ऊपरी चमड़े) में दुगुना रक्त में चौगुना, पित्त में तिगुना, श्लेष्मा (बलगम) में सोलहगुना, वात में तीस गुना, मज्जा (नली की हड्डी के भीतर के गुदे) में साठ गुना

श्रोत्रे निरुद्धयमाने च याति दष्टस्त्वसाध्यताम् । ततोऽसौ म्रियते जन्मुनिः श्वसोऽच्छ्वासर्जितः ॥११
 निष्क्रान्ते तु ततो जीवे भूतेऽपञ्चत्वमागते । तानि भूतानि गच्छन्ति यस्य यस्य यथातथम् ॥१२
 चृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । इत्येषामेव सङ्घातः शरीरमभिर्धीयते ॥१३
 पृथिवी पृथिवीं याति तोयं तोयेषु लीयते । तेजो गच्छति चादित्यं मारुतो मारुतं व्रजेत् ॥१४
 आकाशं चैवमःकरो सह तेनैव गच्छति । स्वस्थानं ते प्रपद्यन्ते परस्परनियोऽनितः ॥१५
 न जीवेदागतः कश्चिदिहं जन्मनि सुव्रत । विषार्तं न उपेक्षेत त्वरितं तु चिकित्सयेत् ॥१६
 एकमस्ति विषं लोके द्वितीयं चोपपद्यते । यथा नानाविधं चैव स्थावरं तु तथैव च ॥१७
 प्रथमे विषवेगे तु रोमहर्षोऽभिजायते । द्वितीये विषवेगे तु स्वेदो गात्रेषु जायते ॥१८
 तृतीये विषवेगे तु कम्पो गात्रेषु जायते । चतुर्थे विषवेगे तु श्रोदान्तरनिरोद्धकृत् ॥१९
 पञ्चमे विषवेगे तु हिक्का गात्रेषु जायते । षष्ठे च विषवेगे तु प्राणोभ्योऽपि प्रमुच्यते ॥
 रातधादुवहा होते वैनतेयेन भाषिताः ॥२०
 त्वचः स्थाने विषे प्राप्ने तस्य रूपाणि मे शृणु । अङ्गानि तिमिरायन्ते तपन्ते चं मुहुर्मुहुः ॥२१
 एतानि यस्य चिह्नानि तस्य त्वचि गतं विषम् । तस्यागादं प्रवक्ष्यनि येन सम्पद्यते सुखम् ॥२२
 अर्कमूलमपामार्गं प्रियङ्गुं तगरं तथा । एतदालोड्य दातव्यं ततःसम्पद्यते सुखम् ॥२३

बढ़कर फिर प्राण और समस्त देहमें व्याप्त हो जाता है । १९-२०। इसलिए कान से न सुनाई देने पर यह असाध्य रोगी हो जाता है और श्वास का आना-जाना बन्द होने के नाते उसकी मृत्यु हो जाती है । २१। प्राण के निकल जाने पर शरीर, पृथ्वी, जल आदि पाँचों भूत जहाँ-जहाँ से आते हैं उसी में पुनः मिल जाते हैं । २२। क्योंकि पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश के इकट्ठे होने को ही शरीर कहते हैं । २३। अतः मरने पर पृथिवी पृथिवी में पानी पानी में तेज आदित्य में वायु वायु में एवं आकाश आकाश में (प्राण निकलने के) साथ-साथ विलीन हो जाते हैं और अपने-अपने स्थान में पहुँच जाते हैं । हे सुन्रत ! यहाँ इस लोक में जन्म लेने पर कोई (सदैव) जीवित नहीं रहता है अतः विष-पीड़ित की उपेक्षा न करके अति शीघ्र उसकी चिकित्सा करनी चाहिये । २४-२६। जिस प्रकार विष एक ही है और इसी प्रकार का हो जाता है और संसार में वह कई प्रकार का दिखाई देता है, फल भी उसके भिन्न-भिन्न होते हैं उसी भाँति (संखिया आदि) स्थावर विष को भी उनके रूप का जानना चाहिये । २७। विष के प्रवेश करने पर पहले क्षण में वेग द्वारा (शरीर में) रोमाञ्च, दूसरे में समस्त शरीर में पसीना, तीसरे में कम्प चौथे में कान के भीतरी पर्दे का बन्द होना, पाँचवें में हिचकी और छठे में प्राण वियोग हो जाता है । गरुड़ के कथनानुसार इसी भाँति सातों धातुओं में विष पहुँचता है । २८-२९। अब त्वचा में विष के पहुँचने पर जो उसकी दशा होती है, मैं कह रहा हूँ मुनो ! विष के भीतर पहुँचने पर शरीर के सभी अंगों में अन्धकार सा दिखाई देता है और ऐंठन व जलन होती है । २१। इस लक्षण से त्वचा में विष का पहुँचना जानना चाहिए । अब उसके औषध को मैं कह रहा हूँ जिसके सेवन मात्र से उसके रोगी को सुख मिलता है मदार की जड़, चिचिरा, प्रियङ्गु (राई, पीपर, कांगनी और कटुकी) एवं तगर इन्हें एक में घोट कर (रोगी को) देने से शीघ्र

१. वर्धयेत् । २. तैलकम् ।

ततस्तस्मन्कृते विप्र न निवर्तेत चेहियम् । त्वचः स्थानं ततो भित्वा रक्तस्थानं प्रधावति ॥२४	
विषे च रक्तं संप्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु । दद्युते मुहृते ^१ चैव शीतलं बहु सन्यते ॥२५	
एतानि यस्य रूपाणि तस्य रक्तात् विषम् । तत्रागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥२६	
उशीरं चन्दनं कुष्ठमुत्पलं तगरं तथा । भहाकालस्य मूलानि सिन्दुवारनगस्य च ॥	
हिङ्गुलं मरिचं चैव पूर्वद्वेषे तु दाषेयत्	॥२७
बृहती वृष्टिका कली इन्द्रवारणिमूलकम् ^२ । रक्षतगन्धधृतं चैव द्वितीये पर्क्रीतितम् ॥२८	
सिन्दुवारं तथा हिङ्गुं तृतीये कारयेद्युधः । तस्य पानं च कुर्वीत अञ्जनं लेपनं तथा ॥२९	
एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम् । रक्तस्थानं ततो गत्वा पित्तस्थानं प्रधावति ॥३०	
पित्तस्थानगते विप्र विषरूपाणि मे शृणु । उत्तिष्ठते निपतते दहृते मुहृते तथा ॥३१	
गत्रतः पीतकः स्पाहृ दिशः पश्यति पीतिकाः । ग्रबला च भवन्मूर्च्छा न चात्मानं विजानते ॥	
विषक्रियां तस्य कुर्याद्याया सम्पद्यते सुखम्	॥३२
पित्तस्थानमतिक्रम्य श्वेषमस्थानं च गच्छति	॥३२
पित्तस्थो मधुकं चैव मधु खण्डं धृतं तथा । मधुसारमलाकूं च जार्ति शङ्करवालुकाम् ॥	
इन्द्रवारणिकामूलं गवां मूत्रेण पेषयेत्	॥३४

शारिति मिलती है । २२-२३। हे विप्र ! इस प्रयोग के द्वारा यदि विष नाश न हुआ तो उसे त्वचा से आगे रक्त में पहुँचा हुआ जाना चाहिए । २४। रक्त में विष के मिलने पर जो दशा होती है उसे भी कह रहा हूँ मुनो ! देह में दाह और मूर्छा एवं अधिक ठंडी भी लगती है । २५। जिसकी ऐसी दशा हो उसके रक्त में विष पहुँच गया है, ऐसा जानना चाहिए । उसकी औपचिति भी बताता हूँ जिसके द्वारा उस प्राणी को मुख प्राप्त होता है । २६। उशीर (गड़रा की जड़), चन्दन, कुष्ठ (एक प्रकार का विष), नील कमल, तगर, महाकाल (एक प्रकार की लता) एवं सिन्दुवार (म्यौड़ी) की जड़ हिंगुल (ईंगुर) और काली मरिच इन्हें एक में मिलाकर विष के पहले ही वेग में रोगी को दे देना चाहिए । २७। दूसरे वेग में भटकटैया, वृश्चिका, काली, इन्द्रवारणी (पीलेफूल और श्वेत जड़वाली एक प्रकार की लता की जड़) सातों गंध और धी देने को कहा गया है । २८। तीसरे वेग में सिंदुरवार (म्यौड़ी) तथा हींग का पान (नेत्र में) अंजन और (देहों) में लेप करें । २९। इन्हीं के इस प्रकार के उपचार करने से (रोगी को) सुख प्राप्त होता है । रक्त के पश्चात् वह (विष) पित्त में पहुँचता है । ३०। हे विप्र ! पित्त में पहुँच कर जो उसका रूप होता है, मैं कहता हूँ, मुनो ! (बार-बार) उठना, गिरना, जलन, मूर्च्छा, देह का पीला होना और (रोगी को) दिशायें पीली दिखायी देती हैं तथा उसे मूर्च्छा इतनी बड़ी प्राप्त हो जाती है कि वह अपने आप को एकदम भूल जाता है इसलिए उस विष की ऐसी प्रतिक्रिया करनी चाहिए जिससे शीघ्र सुख प्राप्त हो जाय । ३१-३२। पित्त स्थान के पश्चात् वह श्लेष्मा में पहुँचता है । ३३। पीपर, महुआ, शहद, खांड, धी, मधुसार (महुआ की शराब), अलाकू, (जण्ड लौकी) जाती, (चमेली) शंकर बालुका, इन्द्रवारणी की जड़ इन्हें गो मूत्र में

नस्य तस्य प्रयुज्जीत पानमालेपनाऽङ्गनम् । एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम् ॥३५
श्लेष्मस्थानं ततः प्राप्ने तस्य रूपाणि मे शृणु । गात्राणि^१ तस्य रुद्धन्ते निःश्वासश्व न जायते ॥

लाला च स्वतो तस्य कण्ठो घुरुषुरायते ॥३६

एतानि यस्य रूपाणि तस्य इलेष्मगतं विषम् । तस्यागदं प्रवृप्तामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥३७

त्रिकुटको श्लेष्मातको लोध्रभ्व मधुसारकम् । एतानि सम्भागानि गवां मूत्रेण पेषयेत् ॥३८

तस्य पानं च कुर्वीत अङ्गनं लेपनं तथा । एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम् ॥३९

इलेष्मस्थानमतिकम्य वायुस्थानं च गच्छति । तत्र रूपाणि वक्ष्यामि वायुस्थानगते विषे ॥४०

आध्माप्ते च जठरं बान्धवांश्च न पश्यति । ईदृशं कुरुते रूपं दृष्टिभङ्गश्च जाप्ते ॥४१

एतानि यस्य रूपाणि तस्य वायुगतं विषम् । तस्यागदं प्रक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥४२

शोणामूलं प्रियालं च रक्तं च गजिप्पलीम् । भार्डीं वचां पिप्पलीं च देवदारं मधूककम् ॥४३

मधूकसारं सहसिन्दुवारं हिङ्गुं च पिष्टा गुटिकां च कुर्यात् ।

दद्याच्च तस्याऽङ्गनलेपनादि एषोऽग्रदः सर्पविषाणि हन्यात् ॥४४

अङ्गनं चैव नस्य च किंच दद्याद्विषान्विते । वायुस्थानं ततो मुक्त्वा मज्जास्थानं प्रक्षावति ॥४५

विषे मज्जागते विषे तस्य रूपाणि मे शृणु । दृष्टिश्च हीयते तस्य भृशमङ्गानि मुञ्चति ॥४६

पीस कर नास दे, पान, करायें लेपन और अङ्गन दे, इसी उपचार मात्र से उसे सुख प्राप्त होता है । ३४-३५। विष के श्लेषा में पहुँचने पर प्राणी की जो दशा होती है, मैं कह रहा हूँ, सुनो ! कान से सुनाई नहीं देता, साँस रुक जाती है, मूँह से लार गिरता है एवं गले में घुरुषुराहट होती है । ३६। ऐसी दशा होने पर उसके श्लेष्मा में विष पहुँच गया, जान लेना चाहिए अब उसकी ओषधि कह रहा हूँ जिसके सेवन से (रोगी) सुखी होता है । त्रिकुटका (सोंठ मिर्च पीपर) इलेष्मातक (लसोडा) लोध, मधुसार (महुवा का शराब) इनके बराबर भाग को गोमूत्र में पीसकर । उसका पान, अंजन और लेप करे, इसी उपचार से उसे सुख मिलता है । ३७-३९। इलेष्मा में पहुँच कर वह विष वायु में पहुँचता है । वात में मिलने पर उसकी जो अवस्था होती है, कह रहा हूँ । पेट फूल जाता है भाई-बन्धु को नहीं देख पाता है, और दृष्टि भी नष्ट हो जाती है । ४०-४१। ऐसी दशा होने पर उसके वायु में विष पहुँच गया है जानना चाहिए ऐसे (रोगी) को आरोग्य करने वाली ओषधि बता रहा हूँ सुनो ! । ४२। शोणामूल (बनहर की) प्रियाल (द्राक्षा) रक्त गजपीपल, भृङ्गराज, बच पीपरि, देवदार, महुआ, मधूक सार, (महुआ का शराब) सिंतुरवार (म्पौडी) और हिगु (हींग) इन्हें पीसकर गोली बनाये इस प्रकार उसी का अङ्गन-लेपन आदि करने से साँप का विष नष्ट हो जाता है । ४३-४४। आँखों में अङ्गन और नाक में नास तुरंत देना चाहिए । उसके पश्चात वह (विष) मज्जा में पहुँचता है । ४५। विष ! मज्जा में पहुँचने पर उसकी जो दशा होती है बता रहा हूँ सुनो ! दृष्टि कम हो जाती है और (सभी) अंग जैसे शरीर से अलग हो गये हों ऐसा मालूम होने लगता है । ४६। ऐसी दशा होने पर मगज में विष

एतानि यस्य रूपाणि तस्य मज्जागतं विषयः । तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पृष्टते सुखम् ॥४७
 घृतमधुशर्करान्वितमुशीरं चन्दनं तथा । एतदालोड्ड दातव्यं पानं नस्यं च सुव्रत ॥४८
 ततः प्रणश्यते दुःखं ततः सम्पृष्टते सुखम् । अथ तस्मिन्कृते योगे दिवं तस्य निवर्तते ॥४९
 मज्जस्थानं ततो गत्वा मर्मस्थानं प्रधावति । विषे तु मर्मसंप्राप्ते शृगु रूपं यथा भवेत् ॥५०
 निश्चेष्टः पतते भूमौ कर्णाभ्यां बधिरो भवेत् । वारिणा सिद्ध्यमानस्य रोमहर्षे न जायते ॥५१
 दण्डेन हन्यमानस्य दण्डराजी न जायते । शस्त्रेण छिद्यमानस्य रुधिरं न प्रवर्तते ॥५२
 केशेषु लुच्यमानेषु नैव केशान्श्वेदते । यस्य कर्णो च पार्श्वं च हस्तपादं च सन्ध्याः ॥

शिथिलानि गृन्तीह स गतासुरिति श्रुतिः ॥५३

एतानि यस्य रूपाणि विपरीतानि गौतम । मृतं तु न विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥५४
 वैद्यास्तस्य न पश्यन्ति ये भवन्ति कुशिक्षिताः । विचक्षणास्तु पश्यन्ति मन्त्रौषधिसमन्विताः ॥५५
 तस्यागदं प्रवक्ष्यामि स्वयं रुद्रेण भासितम् । मधुरपितं माजारपितं गन्धनाडीमूलमेवं च ॥५६
 कुड़कुमं तगरं कुण्ठं कासमर्दत्वचं तथा । उत्पलस्य च किञ्जलं पदमस्य कुमुदस्य च ॥५७
 एतानि समभागानि गोमूत्रेण तु पेषयेत् । एषोऽगदो यस्य हस्ते दष्टो न प्रियते स वै ॥

कालाहिनापि दष्टेन क्षिप्रं भवति निर्विषः ॥५८

पहुँच गया है, जानना चाहिए। उसे आरोग्य करने वाली औषधि बता रहा हूँ। जिससे उसे सुख हो सुनो !
 ।४७। धी, शहद एवं शक्कर मिलाकर (गडरे की जड़) और चन्दन को अत्यन्त पिस कर पिलावें और नास दें। हे सुत्रत ! ऐसा करने से रोगी का दुःख दूर हो जाता है और उसे सुख प्राप्त होता है।४८-४९।
 मज्जा के पश्चात् वह मर्मस्थल में पहुँचता है। विष के मर्मस्थल में पहुँचने पर जो अवस्था प्राप्त होती है,
 बता रहा हूँ सुनो ! ।५०। निश्चेष्ट (बेहोश) होकर भूमि पर गिर जाता है, कान का बधिर हो जाता है,
 पानी से नहलाने पर रोमांच (ठंडी) नहीं होता।५१। दड़े से मारने पर दड़े का चिह्न नहीं दिखाई देता है
 हथियार से काटने पर रक्त नहीं निकलता है।५२। और बालों के नोंचने पर उसे उसका ज्ञान ही नहीं
 रहता है। इस प्रकार जिसके कान, (दोनों) बगल, हाथ, पैर और (अंगों के) जोड़ शिथिल हो जायें, उसे
 निश्चित मृतक जानना चाहिये।५३। हे गौतम ! इसके प्रतिकूल जिसकी अवस्था हो, उसे कश्यप के
 कथनानुसार मृतक न समझे और उसका उपचार करे पर कुशिक्षित वैद्य को उसकी जानकारी नहीं होगी।
 जो अत्यन्त चतुर वैद्य है मंत्र एवं औषध द्वारा उन्हें ही (इसका) ज्ञान होता है।५४-५५। उसकी
 चिकित्सा, जिसे स्वयं रुद्र भगवान् ने कहा है, बता रहा हूँ। मोर एवं बिल्ली का पित्त, चन्दन, नाडीमूल
 (गण्डद्वारा), कुंकुम, तगर, कुण्ठ, कोसमर्द (वृक्ष) की छाल, नीलकमल, कमल और कुमुद का पराग
 इनके समान भाग को गोमूत्र में पीस कर आजन लगाये और नासदे, यह औषध जिसके पास हो वह साँप के
 काटने पर कभी प्राण त्याग नहीं कर सकता है। इसलिए यह मृतसंजीवनी औषधि कही गयी है क्योंकि काल

क्षिप्रमेव ब्रदातव्यं मृतसञ्जीवनौषधम् । अञ्जनं चैव नस्यं च क्षिप्रं दद्याद्विचक्षणः ॥५९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि पञ्चमीकल्पे
धातुगतं विषकियावर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः । ३५।

अथ षट्त्रिंशोऽध्याय

नागपञ्चमीव्रतवर्णनम्

गौतम उवाच

कीदृशं सर्पदष्टस्य सर्पिण्याः कीदृशं भवेत् । कुमारदष्टः कीदृक्स्यात्सूतिकादंशितस्य च ॥१
रूपं नपुंसकेनेह व्यन्तरेण च कीदृशम् । एतदाख्याहि मे सर्वमेभिर्दष्टस्य लक्षणम् ॥२

कथयत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि नागानां रूपलक्षणम् । सर्पदष्टस्य च तथा समसाद्विद्वप्तुङ्गव ॥३
अथ सर्पेण दष्टस्य ऊर्ध्वदृष्टिः प्रजायते । सर्पादष्टस्य च तथा अधोदृष्टिः प्रजायते ॥४
कन्यादष्टस्य वामा स्पादृष्टिर्द्विजवरोत्तम । कुमारेणापि दष्टस्य दक्षिणा एव जायते ॥५
गर्भिण्या वाथ दष्टस्य तथा स्वेदश्च जायते । रोमाञ्चः सूतिकायास्तु वेपथुश्चापि जायते ॥६
नपुंसकेन दष्टस्य अङ्गमर्दः^१ प्रजायते ॥६

के काटने पर भी इस उपचार द्वारा उसका विष शान्त हो जाता है । ५६-५९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के पंचमी कल्प में धातुगत विष क्रिया वर्णन
नामक पैतींसवाँ अध्याय समाप्त । ३५।

अध्याय ३६

नागपञ्चमी व्रत वर्णन

गौतम ने कहा—साँप, साँपिनि, कुमार (बच्चे), प्रसूता, नपुंसक (साँप) तथा व्यंतर के काटने पर (प्राणी की) किन-किन प्रकार की दशाएँ होती हैं इसे तथा इनके काटने के लक्षणों को विस्तार पूर्वक मुझे बताने की कृपा करें । १-२

कथयत बोले—हे द्विजश्रेष्ठ ! इसके पश्चात् अब मैं बड़े नागों और साँप के काटने पर प्राणी के (विकृत) रूप और लक्षण संक्षेप में कहा रहा हूँ । ३

साँप के काटने पर (प्राणी की) आँखें ऊपर हो आती हैं उसी प्रकार साँपिनी के काटने पर नीची, कुमारी के काटने पर बाँई और कुमार के काटने पर दाहिनी ओर हो जाती हैं । ४-५। गर्भिणी साँपिनी के काटने पर पसीना हो आता है प्रसूता के काटने पर रोमाञ्च और कम्पन होता है एवं नपुंसक (सर्प) के

१. गंधनानालीमूल मेव च ।

पश्चात् प्रश्नो रात्रो दिवा सर्पेऽ विषाधिकः । न पुंसकस्तु सन्ध्यायां कश्यपेन तु भाषितम् ॥७
अन्धकारे तु दृष्टो य उद्देशे गहने बने । मुक्तो वा चेत्रमतो वा यदि सर्पं न पश्यति ॥
दृष्टरूपाण्यज्ञानन्वै कथं वैचिचिकित्सितम् ॥८

चतुर्विधा इह प्रोक्ताः पश्चात्स्तु महात्मना । दर्वीकरा मण्डलिनो राजिला व्यन्तरास्तथा ॥९
दर्वीकरा वातविषा मण्डला पैतिकाः स्मृताः । शैवमला राजिला ज्येष्ठा व्यंतरा: सान्निपातिकाः ॥१०
रक्तं परीक्षेदेवां सर्पणां तु पृथक्पृथक् । कृष्णं दर्वीकरणां तु जायते नाल्पमुल्बण्न् ॥११
रक्तं घनं च रुदुः शोणितं मण्डलीकृतम् । पितृहृतं राजिले स्वत्यं तद्वद्वयन्तरके तथा ॥१२
भर्ता ज्येष्ठास्तु चत्वारः पञ्चमो नोपलभ्यते । खाहणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव चतुर्थकः ॥१३
ब्राह्मणे मधुरं दद्यात्तिकं दद्यात्तयोत्तरे । वैश्ये कर्षफलं दद्याच्छूद्रे त्रिस्थूणमेव' च ॥१४
ब्राह्मणेन तु दृष्टस्य दाहो गात्रेषु जायते । मूर्छां च प्रबलाः स्थाद्वै नात्मानमभिजातते ॥१५
इयामवर्णं मुखं च स्थान्मज्जास्तमभश्च जायते । तस्य कुर्वात्प्रतीकारं येन सम्पद्यते मुखम् ॥१६
अश्वगन्धाप्यपामार्गः सिन्दुवारं मुरामदम् । दत्तस्पर्शः समायुक्तं पाते नस्ये च दापयेत् ॥
एतेनैवोपचारेण मुखी भवति मात्रवः ॥१७

क्षत्रियेण तु दृष्टस्य कम्पो गात्रेषु जायते । मूर्छा भोहस्तशा स्याद्वै नात्मानमभिवेति सः ॥१८

काटने पर (देह के) अंग टूटते हैं । १६। कश्यप ने बताया है कि साँपिनी का प्रभाव रात में और साँप का प्रभाव दिन में एवं नपुंसक का प्रभाव संध्या समय अधिक रहता है । १७। इसलिए अंधेरे में पानी में या घोर जंगल में यदि साँप ने काट लिया और वह प्राणी सोया रहा हो या विशेष मस्ती में हो साँप को नहीं देखा तो उसके काटने के चिह्न को न जानते हुए वैद्य उसकी चिकित्सा कैसे कर सकता है । १८। दर्वीकर (करछो की भाँति फण वाले), मंडली, राजिल (डोंडा साँप) और व्यंतर, ये चार प्रकार के भेद साँप के बताये गये हैं । १९। दर्वीकर का विष, वातप्रधान, मंडली का पित्त प्रधान, राजिल का श्लेष्म प्रधान और व्यंतर का सन्निपात (सब मिला हुआ) प्रधान होता है । २०। इन साँपों के रक्त की अलग-अलग परीक्षा करनी चाहिए दर्वीकर का रक्त काला और अधिक गरम होता है, गाढ़ा और लाल रक्त मंडली का होता है जो कीचड़ की भाँति और स्वत्यं दिखायी देता है राजिल तथा उसी भाँति व्यंतर का भी रक्त होता है । २१-२२। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ये ही चार वर्ण के होते हैं पाँचवा कहीं नहीं मिलता । २३। ब्राह्मण को मधुर, क्षत्रिय को तीसा, वैश्य को कर्षफल (बहेड़ा) और शूद्र को कुट (कडुवा) देना चाहिए । २४। ब्राह्मण (साँप) के काटने पर शरीर में दाह होता है और मूर्छा इतनी बड़ी आती है कि वह अपने आप को कुछ भी नहीं जान पाता । २५। मुख काला हो जाता है एवं मज्जा में स्तम्भन होने लगता है अतः उसकी प्रतिक्रिया (औषध मंत्रद्वारा) करनी चाहिए जिससे रोगी को मुख प्राप्त हो । २६। अश्वगंधा, चिचिरा और शाराब समेत सिदुवार (म्याड़ी) इन्हें घीर में मिलाकर पिलावें और नास दे बस इतने ही उपचार करने से प्राणी मुखी हो जाता है । क्षत्री के काटने पर देह में कम्प तथा मूर्छा एवं मोह

जायते देहना तस्य ऊर्ध्वं चैव निरीक्षते । तस्य कुर्यात्प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥१९
अर्कमूलमपाभागं प्रियंगुमिन्द्रवारुणीम्^१ । एतत्सर्विः समायुक्तं पानं नस्यं च दापयेत् ॥
एतेनैवोपचारेण सुखी भवति मानवः ॥२०

वैश्येनापि हि दष्टस्य शृणु रूपाणि यानि तु । श्लेष्मप्रकोपो लाला च न चोद्धृति चेतनाम् ॥२१
मूर्छा च द्रब्ला यस्य आत्मानं नाभिनन्दति । तस्य दुर्यात्रितीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥२२
अङ्गगन्धा सगोमूत्रा गृहं धूमं सगुगुलम् । शिरीषार्कपलाशेन श्वेता च गिरिकर्णिका ॥२३
गोमूत्रेण समायुक्तं पानं नस्यं च दापयेत् । एष वैश्येन दष्टानामगदः परिकीर्तिः ॥२४
शूद्रेणापि हि दष्टस्य शृणु तत्त्वेन गौतमः । कुरुथ्यते^२ वेपते चैव ज्वरः शीतं च जायते ॥२५
अङ्गानि चुलुचुलायन्ते^३ शूद्रदष्टस्य लक्षणम् । तत्रागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥२६
पद्मं च लोध्रं चैव क्षौद्रं पद्यस्य केसरम् । मधूकसारं मधुं च श्वेतां च गिरिकर्णिकाम् ॥२७
एतानि समभागानि पेषयेच्छीतवारिणा । पानलेपाञ्जनैर्नस्यैः सुखी भवति मानवः ॥२८
पूर्वाह्ले चरते विप्रो मध्याह्ले क्षत्रियश्वरेत् । अपराह्ले चरेद्वैश्यः शूद्रः सन्ध्याचरो भवेत् ॥२९
आहारो वायुपुष्पाणि^४ ब्राह्मणानां विदुर्बुधाः । सूषिका क्षत्रियाणां च आहारो द्विजसत्तमः ॥
वैश्या मण्डूकभक्षात्रं शूद्राः सर्वांशिनस्तथा ॥३०

उसे इस प्रकार का होता है कि उसे अपनी मुध-बुध नहीं रहती है । १७-१८। उसे पीड़ा होती है और वह आँख से ऊपर देखने लगता है । अतः शीघ्र उसकी मुख प्रदान करने वाली प्रतिक्रिया करनी चाहिए । १९। मदार की जड़ चिचिरा प्रियंगु (माल कंगुनी) इन्द्रवारुणी (लता) इन्हें थी में मिलाकर पान करावे तथा नास दे । इसी उपचार से मनुष्य नीरोग हो जाता है । २०। वैश्य जाति के साँप द्वारा काटे गये प्राणी की दशा में कह रहा हूँ मुनो ! श्लेष्मा दूषित हो जाती है जिससे मुख से लार गिरता है तथा चेतना विहीन हो जाता है । उसे भी इतनी बड़ी मूर्छा होती है जिसमें अपने आप का ज्ञान नहीं रहता है उसकी भी वैसी ही सुखदायिनी प्रतिक्रिया करनी चाहिए । २१-२२। गोमूत्र में मिली अश्वगंधा, गुगुल के साथ शिरीष, (सिरसा) मदार, पलाश और श्वेत अपराजिता (विषुक्रान्ता) इन्हें गोमूत्र में मिलाकर पान करावे । २३। यह प्रतिक्रिया वैश्य के काटने पर बतायी गयी है । २४। हे गौतम ! अब शूद्र जाति के साँप काटने पर प्राणी की दशा मुनो ! वह प्राणी कुद्द होता है, कॉपता है शीतज्वर से पीड़ित होता है । अंगों में चुनचुनाहट होती है, यही शूद्र के काटे गये प्राणी का लक्षण है । अतः उसकी औषधि बता रहा हूँ जो सेवन मात्र से सुख प्रदान करती है । २५-२६। कमल, लोध कमल मधु छोटे कमल का केसर मधूकसार, (महुआ की शराब) शहद और श्वेत अपराजिता नामक (लता) इनके समान भाग को ठंडे पानी में पीसकर पीने अंजन लगाने और नास देने से मनुष्य नीरोग हो जाता है । २७-२८। पूर्वाह्ल समय में ब्राह्मण, दोपहर में क्षत्रिय उसके अपराह्ल में वैश्य और संध्या समय में शूद्र वर्षण का साँप धूमता है । २९। द्विजसत्तम ! पंडितों का कहना है कि ब्राह्मण वायु और फूल का भोजन करता है, क्षत्रिय चूहे, वैश्य मेदक एवं शूद्र सभी कुछ

१. कटुकमेव च । २. प्रियंगुमत्तवारुणीम् । ३. कुरुथ्यते । ४. चिमिचिमायन्ते ।

अग्रतो दशते विप्रः क्षत्रियो दक्षणेन तु । ब्रामपाश्वे सदा वैश्यः पश्चाद्व शूद्र आदर्शेत् ॥३१
मदकाले तु सम्प्राप्ते पीडयमाना महाविषाः । अवेलःयां दशन्ते वै मैथुनार्ता भुजङ्गमाः ॥३२
पुष्पगन्धाःस्मृताः विप्राः क्षत्रियाश्वन्दनावहाः । वैश्याश्व धृतगन्धा दै शूद्राः स्युर्मत्स्यगन्धिनी ॥३३
वासं तेषां प्रवक्ष्यामि यथावद्युपूर्वदः । वापीकूपतडागेषु च ॥
वसन्ति^३ ब्राह्मणाः सर्पा प्रानद्वारे चतुर्ष्ये ॥३४

आरानेषु पवित्रेषु शुचिल्पायतनेषु^४ च । वसन्ति क्षत्रिया नित्यं तोरणेषु सरःसु च ॥३५
इमशाने भस्मशालामु पलालेषु तटेषु च । गोष्ठेषु पर्य वृक्षेषु विप्र वैश्या वसन्ति च ॥३६
अविवक्तेषु स्थानेषु निर्जनेषु वनेषु च । शून्यागारे इमशाने च शूद्रा दिप्र वसन्ति च ॥३७
इवेताश्व कपिलाश्व ये सपास्त्वनलप्रभाः । मनस्त्विनः सात्त्विकाश्व ब्राह्मणास्ते दुष्टैः स्मृताः ॥३८
रक्तवर्णाः सुवर्णभाः प्रवालमणिसन्निभाः । सूर्यप्रभास्तथा विप्रस्ते क्षत्रिया भुजङ्गमाः ॥३९
नानाविचित्राजीभिरतसीवर्णसन्निभाः । बाण पुष्पसवर्णभा वैश्यास्ते वै भुजङ्गमाः ॥४०
काङ्गोदरनिभाः केचिद्ये च अञ्जनसन्निभाः । काङ्क्वर्णा धूमवर्णस्ते शूद्राः परिकीर्तिताः ॥४१
यस्य सर्पेण दष्टस्य दंशमद्युष्मन्तरम् । बलदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥४२
यस्य सर्पेण दष्टस्य दंशं द्वयद्युलमन्तरम् । यौवनस्थेन दष्टस्य एतद्वशति लक्षणम् ॥४३
यस्य सर्पेण दष्टस्य सार्थं द्वयद्युलमन्तरम् । वृद्धदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥४४

खाता है । ३०। सम्मुख होकर ब्राह्मण, दाहिनी ओर से क्षत्रिय, दाईं ओर से वैश्य तथा पीछे की ओर से शूद्र काटता है । ३१। मस्ती के समय काम-पीडित होने के नाते साँप असमय में भी काट सकता है । ३२। फूल की भाँति गंध ब्राह्मण की, चन्दन की भाँति गंध क्षत्रिय की, धी के समान गंध वैश्य की और मछली की भाँति गंध शूद्र की होती है । ३३। अब इन लोगों का क्रमशः वास-स्थान बता रहा हूँ ! बावली, नदी, कूप, तालाब, पहाड़ों झरनों गाँवों में आने-जाने के मार्ग तथा चाँराहे पर ब्राह्मण (साँप) रहता है । ३४। पवित्र बगीचे, साफ-सुधरे घरों तोरण (घर या नगर का बाहरी फाटक) और तालाबों में क्षत्रिय, साँप रहता है । इमशान, रास के स्थानों में पलाल (पैरा) एवं किनारों पर गोशाला मार्ग और पेड़ों पर वैश्य साँप तथा गंदे स्थानों निर्जन वनों सूने घर एवं इमशानों में शूद्र साँप रहता है । ३५-३७। श्वेत, कपिल (पीले सफेद नीले), अग्नि के समान कान्ति वाले, मनस्त्वी और सात्त्विक साँपों को धंडितों ने ब्राह्मण साँप बताया है । ३८। हे विप्र ! उसी प्रकार लालरंग, सोने के रंग प्रवालरंग एवं मणि की भाँति तथा सूर्य के समान कान्ति वाले सर्प क्षत्रिय कहे जाते हैं । ३९। रंगबिरंगे धारी के समान रेखा और अलसी या बाण पुष्प की भाँति चितकबरे वर्ण वाले साँप को वैश्य कहते हैं । ४०। कौवे के पेट या अंजन की भाँति कान्ति तथा कौवे या धूएँ के समान वर्ण वाले को शूद्र कहते हैं । ४१। अंगूठे मात्र फासते से जो साँप काटता है, उसे कश्यप के कथनानुसार बालक साँप समझना चाहिये । ४२। जो दो अंगुल की दूरीसे काटता है उसे युवा साँप जानना चाहिए । ४३। तथा दाईं अंगुल की दूरी से काटने वाले को कश्यप जी ने वृद्ध बताया है । ४४।

१. चांतरे । २. आहारं चात्र पुष्पाणि । ३. नदीहृदतडागेषु ।

अनन्तः प्रेक्षते पूर्वं वामपार्षे तु वासुकिः । तक्षको दक्षिणेनेह कर्कोटः पृष्ठतस्तथा ॥४५
चलते भ्रमते पश्चो महापश्चो निष्पत्तिः । विसज्जन्तिष्ठते^१ चैव शङ्खपालो मुदुमुहः ॥४६

सर्वेषां कुरुते रूपं कुलिकः पश्चगोत्तम । अनन्तस्य दिशा पूर्वा वासुकेस्तु हुताशानी ॥४७
दक्षिणा तक्षकस्योत्ता कर्कोटस्य तु नैर्श्रीती । पश्चिमा शूद्रानभस्य महापश्चस्य वायुजा ॥

उत्तरा शङ्खपालस्य ऐशानी कम्बलस्य तु ॥४८

अनन्तस्य भवेत्पश्च वासुकेः स्यात्तथोत्पत्तम् । स्वास्तिकं तक्षकस्योत्तं कर्कोटस्य तु^२ चङ्गजम् ॥४९

पश्चस्य तु भवेत्पश्चं शूलं पश्चेतरस्य तु । शङ्खपाले भवेच्छत्रं कुलिकस्यार्धचन्द्रकम् ॥५०

अनन्तकपिलौ विप्रौ क्षत्रियौ शङ्खवासुकी॒ । महापश्चस्तकश्च वैश्यो विप्रं प्रकार्तीतौ ॥

पश्चकर्कोटकौ शूद्रौ सदा ज्ञेयौ मनीषिभिः ॥५१

अनन्तकुलिकौ शुक्लौ वर्णतो ब्रह्मसम्भवौ । वासुकिः शङ्खपालश्च रक्तौ हृशिसमुद्भूवौ ॥५२

तक्षकश्च पहापश्च इष्टतीतौ^३ द्वूपवतुः । पश्चकर्कोटकौ विप्रं सर्पौ कृष्णौ द्वूपवतुः ॥५३

हयं यानं^४ वृजं छत्रं राजानमयं पावकम् । धरणीमुत्पाद्य धृतानेतान्सिद्धिकरान्विदुः ॥५४

द्वृग्कुम्भः पताका च काञ्चनं मण्यस्तथा । शिरोवं^५ भाणिकं कण्ठे जीवजीवेति सुव्रत ॥

एतेषां दर्शनं श्रेष्ठं कन्या चैकप्रसूयिका ॥५५

चतुःषष्ठिः समाख्याता भोगिनो ये तु^६ पश्चगाः । अदृश्यास्तेषु षट्ट्रिंशदृश्यार्स्त्रशन्महीचराः^७ ॥५६

अनन्त नामक नाग सामने से तथा बायें बगल से वासुकी, दाहिनी ओर से तक्षक, और पीछे की ओर से कर्कोटक देखता है । ४५। पश्चानामक साँप इधर-उधर घूमते हुए चलता है । उसी प्रकार पानी में डूबे हुए की भाँति महा पश्च चलता है तथा बार-बार चेतना हीन की भाँति शंखपाल दिखाई देता है । ४६। कुलिक नाम साँप जो साँपों में उत्तम माना गया है अत्यन्त सुन्दर होता है । पूरब दिशा का अनन्त, अग्निकोण का वासुकी, दक्षिण दिशा का तक्षक, नैऋत्यकोण का कर्कोटक, पश्चिम दिशा का पश्चानाभ, वायुकोण का महापश्च उत्तर दिशा का शंखपाल और ईशान कोण का कंबल स्वामी बताया गया है । ४७-४८। अनंत का पश्च, वासुकी का उत्पत्त, तक्षक का स्वास्तिक, कर्कोटक का पंकज, पश्च (नामक साँप) का पश्च, महापश्च का शूल, शंखपाल का छत्र और कुलिक का अर्धचन्द्र, असु (हयियार) है । ४९-५०। हे विप्र ! अनंत और कपिल ब्राह्मण, शंख एवं वासुकी क्षत्रिय, महापश्च तथा तक्षक वैश्य और उसी प्रकार पश्च कर्कोटक शूद्र बताये गये हैं । ५१। अनंत और कुलिक शुक्र वर्ण एवं ब्रह्मा से उत्पन्न हैं, वासुकी शंखपाल रक्त वर्ण तथा अग्नि से उत्पन्न हैं, तक्षक-महापश्च कुछ पीले वर्ण और (इन्द्र से) उत्पन्न हैं तथा पश्च एवं कर्कोटक काले वर्ण और (यम से) उत्पन्न हुए हैं । ५२-५३। घोड़ा, यान, सवारी बैल, छत्र, राजा, अग्नि और पृथिवी इन्हें उत्पन्न कर धारण करने से सिद्धि प्राप्त होती है । ५४। पूर्ण कलश, पताका, सुर्वण, मणि, गले में धारण की जाने वाली शिरीष पुष्प की माला जीवञ्जीव, तथा एकबार प्रसव वाली कन्या इनके दर्शन अत्यन्त उत्तम कहे गये हैं अतः कल्याणार्थ नित्य दर्शन करे । ५५। अब पुनः प्रसञ्ज की बात कहता हूँ ! चौसठ प्रकार के साँप होते हैं, जिनमें छत्तीस अदृश्य और

१. विप्रो वै वसते नित्यं सदा ब्राह्मणसत्तम । २. विशुद्धायतनेषु च । ३. विमञ्जन्तिष्ठते ।
४. त्रिरेखकम् । ५. नृपोत्तम । ६. प्रायः पीतौ । ७. हयपालम् ।

विशद्गच्च स्त्रियणः प्रोत्ता: सप्तं सण्डलिनस्था । राजीवन्तो दश प्रोत्ता दर्व्यः षोडश पञ्च च ॥५७
दुन्दुभे दुन्दुभश्चेव चेटभश्चेन्द्रलाहनः^१ । नागपुष्पस्तवर्णाल्या निर्विषा ये च पश्चगाः ॥
एवमेव तु सर्पाणां शतद्विनवति स्मृतम् ॥५८

वराहकर्णीं गजपिप्पलीं च गन्धारिकां पिप्पलदेवदार ।
मधूकसारं सहसिन्दुवारं हिङ्गं च लिङ्गवा गुटिका च कार्या ॥५९

सुनन्तु रुवाच

इत्युक्तवान्सुर वीर गौतमस्य ब्रजापतिः । लक्षणं सवेनागानां रूपवर्णां विषं तथा ॥६०
तस्मात्स्मृजयेन्नागान्तदा भक्त्या स्तमन्वितः । विशेषतस्तु पञ्चम्यां पद्मसा पायसेन च ॥६१
श्रावणे भास्ति पञ्चम्यां शुक्लपक्षे^२ नराधिप । द्वारस्योभरत्ते लेख्या गोमयेन विषोल्ब्राणाः ॥६२
पूजयेद्विष्टिवद्वारं दधिद्वर्वाक्षतेः कुशः । गन्धपुष्पोपहारश्च ब्राह्मणानां च तर्पणः ॥६३
ये त्वस्थां पूजयन्तीह नागान्भक्तिपुरःसराः । न तेषां सर्पतो खीर भयं भवति कर्हचित् ॥६४
इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां इत्ये पर्वणि पञ्चमीकल्पे
श्रावणिकनामपञ्चमीवतवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः । ३६।

अट्टाइस दिलाई पड़ते हैं ।५६। उनमें बीस प्रकार के मालाधारी सात प्रकार के मंडली दश प्रकार के राजिल और इक्कीस प्रकार के दर्वीं साँप होते हैं ।५७। नागपुष्प की भाँति वर्ण वाले साँप विष-हीन होते हैं और दुन्दुभ, दुन्दुभ (डेडहा) चेटभ और इन्द्रवाहन नामक साँप को भी ऐसा ही जानना चाहिये इस प्रकार साँपों का दो सौ नब्बे भेद बताया गया है ।५८। अतः वराहकर्णीं, गजपीपल, गन्धक, पिप्पल, देवदार, मधूकसार (मुहुआ का शराब), सिंदुवार (म्याडी) और हींग इन्हें पीसकर गोली बना लेनी चाहिए, यह विष दूर करने की उत्तम औषधि है ।५९

सुमन्तु दोले—हे वीर ! इस प्रकार कशय ने गौतम जी को साँपों का लक्षण, रूप-रंग, जाति और विष दत्ताया था । इसलिए साँपों की पूजा भक्ति पूर्वक सदा करनी चाहिए । विशेषकर पंचमी में दूध और खीर से पूजा करनी चाहिए । ६०-६१। मनुष्यों को चाहिए कि सावन के महीने में शुक्लपक्ष की पंचमी के दिन दरवाजे के दोनों पाश्व भाग में गोबर से साँप की मूर्ति बनाकर दही, दूर्बा, अक्षत, कुश, गंध एवं फूल से विधिवत् उनका पूजन करें और पश्चात् ब्राह्मण भोजन करायें । ६२-६३ । हे वीर ! इस पञ्चमी के दिन जो भक्ति पूर्वक साँपों की पूजा करता है उन्हें साँपों का भय कभी नहीं होता । ६४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के पञ्चमी कल्प में श्रावणिक नामपंचमी व्रत वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त । ३६।

१. शयनं भणिकं कण्ठे । २. शरसौमाणिकं कण्ठे ।

अथ सप्तांत्रिशोऽध्यायः

भाद्रपदिकनागपञ्चमीवर्णनम्

सुमन्तुरुचाच

तथा भावपदे मासि पञ्चम्यां श्रद्धयान्वितः । अथातेष्य नरो नागः कृष्णवर्जादिवर्णकैः ॥१॥

पूजयेदग्नध्युष्ट्यैश्च सप्तः पयसागुमुलैः । हस्य तुष्टि समायान्ति वश्चगात्तकादयः ॥२॥

आसप्तमाकुलात्तस्य न भयं नागतो भवेत् । तस्मात्सर्वप्रश्लेन नागान्सन्दूजयेद्युधः ॥३॥

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्याणां संहितायां ब्राह्मणे वर्णणि पञ्चमीवर्णे

भाद्रपदिकनागपञ्चमीद्रवर्णनं नाम सप्तांत्रिशोऽध्यायः ॥३७॥

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

नागपञ्चमीकल्पसमाप्तिकथनम्

तुमन्तुरुचाच

तथा चाष्ट्युजे मासि पञ्चम्यां कुरुनंदन । कृत्वा कुशमयाश्चागानंधादौः^१ सम्प्रपूजयेत् ॥१॥

धृतोदकाम्यां पयसा स्नपयित्वा विशांपते : गोधूमैः पयसा स्विन्नर्भस्त्यैश्च विविधैस्तथा ॥२॥

अध्याय ३७

भाद्रपदिक नाग पञ्चमी व्रत वर्णन

सुमन्तु ने कहा—इसी प्रकार जो मनुष्य भादों की पंचमी में श्रद्धा भक्ति पूर्वक काले रंग की साँपों की मूर्ति बनाकर उसे गंध, फूल, धी, लीर, गूगुल से उसकी पूजा करता है, तो तक्षकादिक साँप अत्यन्त प्रसन्न होते हैं और इसके कुल में सात पीढ़ी तक साँपों का भय कभी नहीं होता है । अतः सभी बुद्धिमानों को साँपों की पूजा अवश्य करनी चाहिए । १-३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मणे पर्व के पञ्चमी कल्प में भाद्रपदिक नाग पञ्चमी व्रत वर्णन
नामक सैंतसीवाँ अध्याय समाप्त । ३७।

अध्याय ३८

पञ्चमीकल्प समाप्ति कथन

सुमन्तु ने कहा—हे कुरुनंदन ! उसी प्रकार कुवार के मास में पंचमी के दिन कुश की साँप की मूर्ति बनाकर गंध आदि से उसकी पूजा करनी चाहिए । १ हे राजन् ! सर्वप्रथम धी, जल एवं दूध से क्रमशः स्नान कराकर और दूध मिश्रित गेहूँ की भाँति-भाँति की उत्तम भक्षय वस्तुओं से उनकी पूजा करनी

१. इंद्राण्या सह पूजयेत् ।

यस्तदस्यां विधिवश्चागाञ्छुचिर्भक्त्या समन्वितः । पूजदेत्कुरुणार्द्वूलं तत्य शेषादयौ नृप ॥३
नागाः प्रौता भवन्तीह शान्तिमाप्नोति वा विनो । स शान्तिलोकमासाद्य मोदते शाश्वताः समाः ॥४
इत्येष कथितो वीर पञ्चमीकल्प्य उत्तमः । यश्चायमुच्यते भन्तः सर्वसर्वनिषेधकः ॥५

(ॐ कुरुकुल्ले फट् स्वाहा)

इति श्री भद्रिष्ये प्रहापुराणे रातार्द्वासाहृष्यां संहितायां ब्राह्मे वर्णिण पञ्चमीकल्प्ये
समाप्तिकथनं नामाष्टविशेषध्यायः । ३८।

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

षष्ठीतिथिमाहात्म्यम्

सुमन्तुरुवाच

षष्ठ्यां फलाशनो राजन्विशेषात्कार्तिके नृप । राज्यम्बुतो विशेषेण स्वं राज्यं लभतेऽचिरात् ॥१
एषी त्रिर्थिर्हाराज सर्वदा सर्वकामदा । उपोष्ट्या तु प्रयत्नेन सर्वकालं जयार्थिना ॥२
कार्तिकेयत्य दियता एषा षष्ठी महातिथिः । देवसेनाधिपत्यं हि प्राप्तं तस्यां महात्मना ॥३
अस्यां हि श्रेयसा युक्तो यस्मात्कन्दो भवाग्रणीः । तस्मात्पञ्चां नक्तभोजी प्राप्नुयादीप्सितं सदा ॥४
दत्त्वाधर्य कार्तिकेयाय स्थित्वा वै दक्षिणामुखः । दध्ना धृतोदकैः पुष्ट्यभन्त्रेणानेन सुव्रत ॥५

चाहिए । २। क्योंकि और पवित्रता पूर्वक जो इस पंचमी में साँपों की पूजा करते हैं, उन्हें शेष आदि नाग अत्यन्त प्रसन्न होकर शांति प्रदान करते हैं और वह पुरुष शांति स्नेह में बहुत दिवस तक निवास करता है । हे वीर ! इस प्रकार यह उत्तम पञ्चमी कल्प सप्तश्च हुआ जिसमें साँपों के विष निवारणार्थ मंत्र कहा गया है 'ॐ कुरु कुल्ले फट् स्वाहा' यह साँप के निवारण का मंत्र है । ३-५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व में पंचमी कल्प वर्णन समाप्ति कथन नामक
अड्डतीसर्वां अध्याय समाप्त । ३८।

अध्याय ३९

षष्ठी तिथि का माहात्म्य

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! सभी षष्ठी तिथि में केवल फलाहार करके रहना चाहिए, पर, कार्तिक मास की षष्ठी का विशेष महत्व है । हे नृप ! जिस राजा का रांग्य किसी प्रकार से छूट गया हो, (इसके पूजन से) वह राजा अतिशीघ्र अपने राज्य को प्राप्त करता है । १। हे महाराज ! षष्ठी तिथि सदैव सभी कामनाओं की पूर्ति करती है । अतएव विजय की अभिलाषा वाले सदैव इसका व्रत करते हैं । २। इसी प्रकार कार्तिकेय को भी यह महातिथि षष्ठी अत्यन्त प्रिय है क्योंकि इसी में वे देवसेना के अधिनायक हुए हैं । ३। और स्कन्द को शिवजी का ज्येष्ठ पुत्र बनाने का श्रेय इसी षष्ठी को प्राप्त हुआ है । इसलिए इसमें नक्त (दिन में व्रत रहकर रात्रि में) भोजन करते वाले प्राणी अपने मनोरथ सफल करते हैं । ४। पूजनोपरांत दक्षिण की ओर मुख करके स्कन्द को

सप्तर्षिदारज स्कन्द स्वाहापतिसमुद्भव । रुद्रार्थमाग्निज विभो गङ्गागर्भं नमोऽस्तु ते ॥
प्रीयतां देवसेनानीः सम्पादयतु हृदयतम् ॥६

दत्त्वा विप्राय चात्मां यज्ञान्यदपि विद्यते । पश्चाद् भुइक्ते त्वसौ रात्रौ भूमिं कृत्वा तु भाजनम् ॥७
एवं षष्ठ्यां व्रतं त्लेहात्प्रोक्तं स्कन्देत् यत्ततः । तत्प्रिवोध महाराज प्रोच्यमात्रं मयाखिलम् ॥८
षष्ठ्यां यस्तु फलाहारो नक्ताहारो भविष्यति । शुक्लाकृष्णासु नियतो ब्रह्मचारी समाहितः ॥९
तस्य सिद्धिं धृतिं तुर्बिं राज्यमायुक्तिरामयम् । पारत्रिकं वैहिकं च दद्यात्स्कन्दो न संशयः ॥१०
यो हि नक्तोपवासः स्यात्स नक्तेन व्रती भवेत् । इह वायुप्र सोऽस्त्वं लभते स्यात्सितमाम् ॥

त्वर्णे च नियतं व्रासं लभते नात्र संशयः ॥११

इह चागत्य कालान्ते यथोक्तफलभाग्मवेत् । देवानामपि वन्द्योऽत्तो राजां राजा भविष्यति ॥१२
यश्चादि शृणुयात्कल्पं षष्ठ्याः कुरुकुलोद्धव । तस्य तिद्विस्तथा तुर्बिधृतिः स्यात्स्यातिसम्भवा ॥१३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि

षष्ठीकल्पवर्णनं नाम एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः । ३९।

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

कार्तिकेयवर्णनम्

शतानीक उवाच

अहो व्रतं महत्कष्टं संशयो हृदि वर्तते । कार्तिकेयस्य माहात्म्यं श्रुत्वा जन्म तथा द्विज ॥१

अर्ध, दही, धी, जल और फूलों का 'सप्तर्षिदारजस्कन्द' आदि मन्त्रों से अर्घ्य प्रदान कर ब्राह्मण को उत्तम पदार्थ का भोजन करावे जो विविध भाँति से बनाया गया हो पश्चात् शेष अन्न को रात में भूमि पर रख कर स्वयं भी भोजन करे तथा और भी जो कुछ हो वह ब्राह्मण को देवे । ५-७। हे महाराज ! इस प्रकार षष्ठी के जिस व्रत-विधान को स्नेह वश स्कन्द ने यत्पूर्वक बताया था उस समस्त विधि-विधान को मैं कह रहा हूँ सुनो ! । ८। शुक्ल एवं कृष्ण पंक्ष की षष्ठी में जो ब्रह्मचर्य पूर्वक व्रत रह कर फलाहार करता है, उसे स्कन्द सिद्धि, धैर्य प्रसन्नता, राज्य, आयु एवं लोक-परलोक का सुख प्रदान करते हैं । ९-१०। इसी प्रकार जो नक्तव्रत (दिन में व्रत रहकर रात में भोजन) करता है, उसकी स्वायत लोक-परलोक दोनों में होती है तथा उसका स्वर्ग में वास नियत रूप से जात होता है और यदि कभी यहाँ भूतल पर जन्म लिया तो उपरोक्त सभी फल उसे प्राप्त होते हैं । वह देवताओं का वन्दनीय एवं राजाओं का राज होता है । हे कुरुकुल नायक ! जो इस षष्ठी कल्प की कथा ही सुनते हैं, उन्हें भी सिद्धि, धैर्य, प्रसन्नता एवं यश प्राप्त होता है । ११-१३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व में षष्ठीकल्प वर्णन नामक उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त । ३९।

अध्याय ४०

कार्तिकेय का वर्णन

शतानीक ने कहा—हे द्विज ! कार्तिकेय का माहात्म्य और जन्म सुनकर अत्यन्त कष्ट के साथ मन में

अनेकजनितस्ये ह कार्त्तकेयस्य गुवत् । माहात्म्यं सुमहद्विप्र कथमेतद्विभाव्यते ॥२
जातिः श्रेष्ठा भवेद्वीर उत कर्म भवेद्वरम् । संशयस्तु महानन्द्र दृष्ट्वा मे कृतिकामुतम् ॥३
एतद्वद विनिश्चित्य न यथा संशयो भवेत् । जन्मतः कर्मणश्चैव यज्ञ्यायस्तद्ब्रवीहि मे ॥४

सुमन्तुरुवाच

इमर्थं पुरा पृष्ठो ब्रह्मा शिष्यर्मनोदिभिः । यदुत्तं तेन तेषां च तते वच्चम निबोध मे ॥५
मुरज्येष्ठं मुखस्तीनमभिगम्य मर्हयः । प्रणम्य च महाबाहो विश्वमिद्रस्य विप्रताम् ॥६
दृष्ट्वा विस्मयमागत्य धौतूहलसमन्विताः । भक्तिं श्रद्धां पुरोद्धय प्रणम्यानतकन्धराः ॥७

ऋष्य ऊचुः

भो ब्रह्मन्नादकल्पे हि ब्राह्मणं श्रूहि किं भवेत् । जात्यध्ययनदेहात्मसंस्काराचारकर्मणाम्^१ ॥८
ब्राह्मायन्तरसामान्यविशेषा यदि कृतिमाः । ननोवाकर्कमशः रीरजातिद्रव्यगुणात्मकाः ॥९
सन्त्यक्तव्याः प्रसिद्धा ये जातिभेदवेधायिनः । वस्तुभूताः परोक्षर्वा प्रमाणैर्न विनिश्चिताः ॥१०
अव्यक्तागमसिद्धिचेज्जातिभेदविधिर्नृणाम् । विकल्पोऽयं न पुष्णाति भवतः शेषुषोबलम् ॥११

यह संदेह हो रहा है कि जब कार्तिकेय जी का जन्म कई व्यक्तियों द्वारा संपन्न हुआ है तब इनका इतना बड़ा माहात्म्य कैसे संभव हो सकता है । १-२। हे वीर ! कृतिका के पुत्र को देख कर मुझे यह भी संदेह उत्पन्न हुआ है कि जाति सर्वथेष्ठ है या कर्म ? इसे भली-भाँति निश्चित कर मुझे इस प्रकार बताने की कृपा करें जिससे मेरा संदेह दूर हो जाये अर्थात् जन्म द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त होती है या कर्म द्वारा इसे स्पष्ट मुझसे कहें । ३-४

सुमन्तु बोले—(ब्रह्मा के) बुद्धिमान शिष्यों ने भी एकबार इसी विषय को ब्रह्मा से पूछा था । उन्होंने उन लोगों से जो कुछ कहा है वही मैं कह रहा हूँ, सुनो ! ५। हे महाबाहो ! विश्वामित्र का ब्राह्मण होना देख कर ऋषियों को महान् आशर्चय हुआ एवं उसकी (जानकारी के लिए) उन्हें कौतूहल भी हुआ । इसीलिए उन लोगों ने सुख पूर्वक बैठे हुए ब्रह्मा के पास जाकर श्रद्धा और भक्ति पूर्वक शिर झुकाकर प्रथम उन्हें प्रणाम किया, और पश्चात् पूछना आरम्भ किया । ६-७

ऋषियों ने कहा—हे ब्राह्मण ! आदि कल्प में जाति, वेदाध्ययन, देह, आत्म-संस्कार, आचार और (वैदिक) कर्म, इनमें किसके द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है अर्थात् ब्राह्मण होने का कौन-सा मुख्य कारण है ? यदि कहा जाय कि कृतिम (काल्पनिक) वस्तु प्रभाग है जो मन, वाणी, कर्म, शरीर, जाति (ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व आदि), द्रव्य (पृथ्वी जल, तेज, आदि) गुण (रूप, रसादि द्वारा उत्पन्न होता है तथा बाहरी और भीतरी दोनों दृष्टि से सामान्य या विशेष स्थिति में वर्तमान हो तो प्रसिद्ध होते हुए भी वह जाति भेद विधायक प्रमाण जिसे वस्तु सिद्ध करने में परोक्ष आगम अनुमानादि प्रमाणों द्वारा निश्चित समर्थन नहीं प्राप्त है सर्वथा त्याज्य है, अतः वह जाति का कारण नहीं हो सकता है यदि मनुष्यों का जाति भेद, वेद द्वारा ही सिद्ध है, तो यह कल्पना भी आपके बुद्धि बल को सुदृढ़ बनाने में सर्वथा असमर्थ है । ८-११

१. संस्काराधानकर्मणाम् ।

ब्रह्मोद्घात

एवमेतन्न सन्देहो यथा यूयं बदन्ति^१ ह । शृणुष्व योगिनो वास्यं सतके शिष्यश्रेयसे ॥१२
योगेश्वर उवाच

प्रगाणे हि प्रतिक्षेत् तु भिस्त्यर्थदिष्ये यतः । स्पष्ट्योग्यार्थदिष्यं प्रत्यक्षं तात्त्वदीक्षते ॥१३
समान्यातीन्दियग्राही सिद्धान्तोऽभ्युपगम्यते । स एव भगवानेकं प्रमाणमिति चेन्न तत् ॥१४
यस्माद्विविधमे तत्ते सज्जुटं भद्रं वर्तते । वेदस्य पौरुषेयत्वं नित्यजातिसर्मर्थकम् ॥१५
कार्द्वं विशेषा वेदोक्ता न युक्तमकृतं वचः । तात्त्वादिकरणानां च व्यापारानन्तरं श्रुतेः ॥१६
व्यापारात्परतस्तस्य प्रागभादविदेषतः । तद्वावानुविधायित्यमन्वयव्यतिरक्तेः ॥१७
तस्माद्भाग्निवद्वार्यफलभावोद्भविष्यते । न च व्यापारवक्षसोन्यथानुपपत्तिः ॥१८
पुरुषानुगता ज्ञातिर्द्वाहणत्वादिकास्ति चेत् । द्विर्णजातिभेदेन प्रत्यक्षार्थोपत्क्षणात् ॥१९
गोवर्गमध्यं च गतो यथाद्वौ विधार्थिते ज्ञैः सुविचक्षणत्वात् ।
मनुष्यभावादविशिष्यमाणस्तद्विद्वजः शूद्रगणान्न भिन्नः ॥२०

ब्रह्मा बोले—जिस प्रकार तुम लोग कह रहे हो, वह ऐसी ही बात है इसमें संदेह नहीं किन्तु इसके विषय में योगेश्वर की तर्कपूर्ण बातें सुनो । उससे शिष्यों का कल्याण होगा एवं तुम्हारा संदेह भी दूर हो जायगा । १२

योगेश्वर ने कहा—यद्यपि भिन्न अर्थों और सभी विषयों में प्रमाण प्रसिद्ध हैं तथापि सबसे अधिक योग्य एवं स्पष्ट प्रमाण प्रत्यक्ष ही माना जाता है । १३ । यद्यपि सामान्य और अतीन्दिय (विशेष) विषयक सिद्धात आप स्वीकार करें तो उसमें केवल एक भगवान् ही प्रमाण है ऐसी बात नहीं । १४ । हे भद्र ! जिस कारण तुम्हें अनेक प्रकार के संकट उपस्थित हुए हैं उसके निवारण के लिए एक बात को कहना आवश्यक त्रतीत हो रहा है कि वेद का पौरुषेय होना ही जाति के होने में नित्य प्रमाण है । १५ । अतः वेदोक्त को ही विशिष्ट प्रमाण मानना चाहिए, त कि अव्यवहारिक वाक्य को प्रमाण मानना युक्त युक्त है जिस प्रकार तात्त्वादि करण-व्यापार होने के अनन्तर ही वर्ण (अक्षर) सुनाई देते हैं । १६ । और तात्त्वादि व्यापार होने के पूर्व वर्णों का प्रागभाव रहता है व्यापार होने पर वर्ण सुनाई देते हैं (इससे यह निश्चय हुआ कि तात्त्वादि) व्यापार होने पर (वर्ण) सुनाई देते हैं और (व्यापार) न होने पर नहीं सुनाई देते हैं इसी को शास्त्रों में अन्वय व्यतिरेक (अर्थात् करण के रहने पर कार्य का होना और न रहने पर कार्य का न होना) कहा गया है । १७ । इसलिए धूयों को देख कर अग्नि के निश्चित करने की भाँति (अन्वय-व्यतिरेक के द्वारा) फल की सत्ता का अनुमान करना चाहिए त कि केवल व्यापार द्वारा अन्यथा उसके उत्पन्न होने में ही संदेह होगा । १८ । ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति भेद प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं इसलिए पुरुष होना ही ब्राह्मणादि जाति का समर्थक है यह कहना भी उचित नहीं है क्योंकि बुद्धिमान मनुष्य जिस भाँति गौवों के बीच में घोड़े को पहचान लेते हैं उसी प्रकार मनुष्य होने के नाते तथा कोई विशेषता न रहने के कारण

मनुष्यजातेर्न परो विशेषो यः कल्पते सर्वनरानुयायी ।

संस्कारयुक्ता हि क्रियाविशिष्टा द्विजन्मनः शूद्रविवेकहेतुः ॥२१

जीवोऽपि ब्राह्मणः प्रोक्तो यैरतत्त्वज्ञमानदैः । प्रश्नप्रष्ठब्राह्मणत्वास्ते जायन्ते विप्रसङ्गतः ॥२२
जराजन्मान्तरक्षलेशदुष्टप्राहुकुलःकुलम् । नरर्तिर्यगसच्छूद्रयोनिदुःखोर्मिसंकटम् ॥२३
दैःस्थित्यरोगशोकार्तज्जनावर्तसमवितम् । श्वानशूकरचाण्डालहृमिकूर्मादिकायकम् ॥२४
संसारसागरं घोरं मध्यः खलु परिप्लदन् । भूरिप्रापभराकान्तः स जीवो ब्राह्मणः कथम् ॥२५

ब्रह्मोवाच

सप्तव्याधकथा विष्णु मनुना दरिकीर्तिताः । तं निशम्य यदुश्रेष्ठ नित्यं जातिपदं त्यजेत् ॥२६

सप्तव्याधा दशार्णेषु^१ मृगाः कालञ्जरे गिरौ । चक्रदाकाः सरिद्वीपे हंसाः शरसि मानसे ॥२७

तेऽपि जाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा देवपासगः । प्रस्थिता दीर्घमध्यावानं यूयं किमवसोदथ ॥२८

तस्मान्न जीवे ब्राह्मणं पश्यामो हि कथञ्चन ॥२९

शस्त्रादिभूद्वर्गवजातियुक्तो गजाभ्यगोजोष्टुखरादिकानाम् ।

शक्त्या कृतो हृङ्गज्वर्णर्थमेभेदः स्फुटं लक्षणतोऽत्र यद्यत् ॥३०

शूद्रों के बीच में ब्राह्मण क्षत्रिय आदि मनुष्य को नहीं पहचान सकते हैं । १९-२०। सभी मनुष्य को एक मानने वाले जो लोग कहते हैं कि मनुष्य जाति से उत्तम कोई दूसरी (जाति) नहीं है, उनके मन में, (यज्ञोपवीत आदि) संस्कार पूर्वक क्रिया का करना ही शूद्रों से उनके पृथक् होने में प्रमाण है । २१। कुछ अज्ञानियों का कहना है कि जीव ही ब्राह्मण है, किन्तु (पतित) ब्राह्मणों के सम्पर्क होने से उनका ब्राह्मणत्व नष्ट हो जाता है इस कारण यह भी नहीं माना जा सकता है । २२। यह जीव बुढापा जन्मान्तर के ग्रहण करने का दुःखरूपी मगरों से भरा हुआ तथा मनुष्य, पक्षी, अस्पृश्य शूद्र आदि दुःखरूपी लहरों से संकटप्रस्त एवं दुस्थिति, रोग, शोक आर्तिरूपी मनुष्यों के भैवरों से युक्त और कुत्ते, मुअर, , चांडाल, कीड़े एवं कछुवे आदि की शरीरों में युक्त, घोर संसार सागर में डूबते उत्तराते हुए अत्यंत पाप के भार से दबे हुए वे जीव भला ब्राह्मण कैसे हो सकते हैं । २३-२५

ब्रह्मा ने कहा—हे विश्र ! मनु जी की कही हुई सातों व्याधों की कथा को सुन कर जाति की चर्चा ही छोड़ देनी चाहिए । २६। क्योंकि वे सातों व्याध (बहेलिया) सर्वप्रथम दशार्ण देश में उत्पन्न हुए थे । पुनः वे ही कालंजर पर्वत पर मृग, शरद्वीप में चकोर, मानसरोवर में हंस और कुरुक्षेत्र में वेद के पारगामी ब्राह्मण हुए । अतः इतनी लम्बी यात्रा के लिए प्रस्थित होकर तुम लोग भी अब दुःखी क्यों हो रहे हो । इस प्रकार जीव किसी भी भाँति ब्राह्मण नहीं हो सकता । २७-२९। शस्त्रादिधारी भार्वाव जाति तथा हाथी, घोड़े, गाय, बकरी, ऊँट और गधा के अंगों से उत्पन्न वर्ण चर्म द्वारा जिस प्रकार भेद स्पष्ट रूप से प्रकट है । जो शक्ति सम्पन्न लक्षणों से भली भाँति प्रतीत होता है वैसे ही जीव में भेद स्पष्ट है । ३०।

तदुत्तराभैव विकर्तनीया ब्राह्मणजातिनृषु नास्ति काचित् ।
 नित्याङ्गतिनिरुपभेदल्पा यथा हि भेदः परमोऽत्र सिद्धेत् ॥
 सिताद्यसाधारणतुल्यरूपाः सनातनोऽग्नेषु न वर्णभेदः ॥३१
 ब्राह्मणमधुबमिदं किल कृत्रिमत्वादकृत्रिमं भवति सामयिकत्वयोगात् ।
 साङ्केतिकं सुकृतलेशविशेषलब्धं वाणिज्यभेजकृताभिव जातिभेदाः ॥३२
 किं ब्राह्मणा धे सुकृतं त्यजन्ति किं अत्रिया लोकमपालयन्तः ।
 स्वधर्महीना हि तत्थेव वैश्याः शूद्राः स्वपुरुषक्रिया विहीनाः ॥३३
 तस्मान्न गेष्व वत्दश्चिजातिभेदोऽस्ति इहिनाम् । कार्यशक्तिनिमित्तस्तु सङ्केतः कृत्रिमो भद्रेत् ॥३४
 एवं प्रमाणैः प्रतिषिद्ध्यमानां साङ्केतिकों याति नरो व्यवस्थाम् ।
 स्वकोपसिद्धां स्वमतीर्निषिद्धां न दुध्यते मूढमना वराकः ॥३५
 गोमहिष्यजवाज्युष्ट्वानेयाविगजाः पिपाः । प्रेष्यावधुषिकाकार्यकरणोद्यतनानसाः ॥३६
 विनष्टात्ते तु विज्ञेयाः क्रव्यादाश्र कुशीलवाः ॥३७
 पलाण्डुलशुनादाश्र मृग्युष्टीक्षीरपायिनः^३ । मांससर्वरसक्षीरक्रयविक्रयकारिणः ॥३८

और भी इस उत्तर से ब्राह्मण-जाति विषयक प्रश्न कभी सुलझ नहीं सकता है क्योंकि मनुष्यों में ब्राह्मण आदि कोई जाति ही ही नहीं है और इसका कोई उपभेद भी नहीं है जिसके द्वारा वह महान् भेद सिद्ध किया जा सके और मनुष्य के तो शरीरों में कोई भेद दिखाई भी नहीं देता है । गोरे और काले होने का भेद भी स्तम्भ होने के नाते जाति भेद का सूचक नहीं है तथा अंगों के रूप रंग का भेद भी सनातन (नित्य) नहीं है । ३१। इसलिए कृत्रिम (बनावटी) होने के नाते ब्राह्मण आदि जाति भी अनित्य (कात्पनिक) है, वह सामयिक प्रभाव वश नित्य हो जाया करती है । वैश्य और बैद्य में कात्पनिक जाति-भेद की भाँति जो अल्प या विशेष सुकृत से उत्पन्न होती है वह सांकेतिक वस्तु है । ३२। अच्छे कर्तव्य का परित्याग करने वाले ब्राह्मण, जनता का पालन न करने वाले अत्रिय, अपने धर्म से च्युत होने वाले वैश्य और अपने कर्तव्य से हीन सूद्र क्या अपने जाति के कहे जा सकते हैं । ३३। इसलिए गाय घोड़े के जाति भेद की भाँति जीवों में जाति-भेद नहीं होता है क्योंकि कार्य-शक्ति में निमित्त मात्र होने के नाते सकेत कृत्रिम (कात्पनिक) होना बताया गया है । ३४। इस प्रकार मनुष्यों में ब्राह्मण क्षत्रिय आदि जाति व्यवस्था को, जो प्रमाणों द्वारा निषिद्ध है, केवल सकेतमात्र स्वीकार करना चाहिए । उसी को बेचारे मूर्ख लोग नहीं समझ पाते हैं कि यह (व्यवस्था) अपनी ही बनाई है एवं अपने ही मत से निषिद्ध भी है । ३५। इसलिए गाय, भैंस, बकरी, घोड़े, ऊँट, भेंड और हाथी की नौकरी करने वाले, संदेश वाहक, व्याज खोरी करने वाले, बनिए का काम करने वाले, दीवाल पर चित्र बनाने वाले, राक्षसी का काम करने वाले एवं कथक (नाच-गान करने वाले) ब्राह्मण यदि तेजस्वी हो तो भी उन्हें भ्रष्ट समझना चाहिए । ३६-३७। उसी प्रकार प्याज और लहसुन खाने वाले मृगी एवं ऊंटिनी का दूध पीने वाले, मांस,

१. वाणिज्याविष्टहृदयाः । २. मत्स्यादाः स्त्रीषु यायिनः ।

पुनर्भूषतीवेश्याचाण्डालस्त्रीनिषेविणः । शूद्रान्नरसपुष्टाङ्गः प्रेतवस्त्रान्नभोजनाः ॥३९
 मृतसूतकलव्याप्तपानाद्यम्यवहारिणः । ब्रह्मदेवपितृमृतमनुष्येषु बहिष्कृताः ॥४०
 मात्सर्यमदविद्वेषतृष्णाकामतभासमयाः । हीनाचारा^१हि ये केचिद्विपरे पिशुना द्विजाः ॥
 प्रकारैर्द्वृष्टिः तर्वं ते प्रणश्यन्ति नान्यथा ॥४१
 एवं शास्त्रोदितन्यायमर्त्ताभ्रष्टात्मु ये नराः । विशिष्टगोत्रसंस्कारकलायसकलात्मकाः ॥४२
 वेदानन्यायपत्तोऽपि तेऽधीयनाः श्रुतिक्रमात् । ब्राह्मणत्वाद्विहीन्यते दुराचारदिधायिनः ॥४३
 तस्मान्न जातिरेकं शूतात्मात्मन्त्रायिनी । नाशित्वादद्वच इलोकान्मानवाः सप्तधीयते ॥४४
 सद्यः पतिति भासेन लक्षण्या लक्षणेन च । अ्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी ॥४५
 गोरक्षकान्वाणिजिकास्तथा काष्ठकुर्शीलवान् । प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैव शूद्रांस्तान्मनुरब्रवीत् ॥४६
 शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम् । क्षत्रियो याति चिप्रत्वं विद्यादैश्यं तथैव च ॥४७

इति श्री भविष्ये भग्वानुपुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां सहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे
 कार्तिकेयवर्णने जातिवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः । ४०।

रामस्त रस तथा दूध के क्रय विक्रय करने वाले द्विज और दोबार विवाही हुई स्त्री, शूद्र की स्त्री तथा चांडालिनी के साथ समागम करने वाले, शूद्र के अन्न से जीवन निर्वाह करने वाले एवं प्रेत का वस्त्र पहनने वाले तथा प्रेत कर्म में उनके अन्न स्थाने वाले मरण या जननाशौच में सर्वत्र भोजन करने वाले, ब्राह्मण देवता, पितर, भूत गैर इतर मनुष्यों से भी ब्रह्मकृत हैं, तथा मत्सर, मद, द्वेष एवं तृष्णा करने वाले, कामान्ध, चुगुली करने वाले तथा आचार-हीन ब्राह्मणों को सभी प्रकार से (नष्ट) ब्राह्मणच्युत समझना चाहिए । ३८-४१। क्योंकि शास्त्र में बताये गये न्याय मार्य से च्युत होने वाला ब्राह्मण विशिष्ट गोत्र एवं शुद्ध संस्कार युक्त होकर तथा वेद पढ़कर उसका अध्यापन करते हुए भी दुराचारी होने के नाते पतित माना गया है । ४२-४३। अतः जीव की जाति अनश्वर वस्तु नहीं है और नश्वर होने के नाते ही मनुष्य इस बात को मानते हैं कि मांस, लाख और नमक बेंचने वाला ब्राह्मण उसी समय पतित हो जाता है तथा दूध बेंचने वाला ब्राह्मण तीन दिन तक शूद्र रहता है । ४४-४५। उसी प्रकार कृषि, गोरक्षा, वैश्य का काम, दीवाल पर चित्र बनाने नाच-गाना करने सेवक और ब्याज का काम करने वाले ब्राह्मण को मनु जी ने शूद्र होना बताया है । ४६। इस प्रकार शूद्र ब्राह्मण हो जाता है ब्राह्मण शूद्र हो जाता है क्षत्रिय ब्राह्मण हो जाता है था ऐसे ऐसे ही वैश्य भी हो जाता है । ४७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में कार्तिकेय के वर्णन में जाति वर्णन नामक
 चालीसवाँ अध्याय समाप्त । ४०।

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्राह्मणविवेकवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

वेदाध्ययनम्येतद्ब्राह्मणं प्रतिपद्यते । विप्रवद्वैश्यराजन्यो राक्षसा रावणादयः ॥१
 श्वरदचाण्डालदासाश्रम लुब्धकःभीरधीवराः । येन्नेऽपि वृषलाः केचित्तेऽपि वेदानधीयते ॥२
 शुद्धा देशान्तरं गत्वा ब्राह्मणं आत्रियं श्रिताः । व्यापाराकारभाषादैविप्रतुल्यैः प्रकल्प्यते ॥३
 वेदानधीत्य वेदौ वा देवं वापि यथाक्लमम् । प्रोद्भव्वित्ति शुभां कन्यां शुद्धब्राह्मणजां नराः ॥४
 अथवाधीत्य वेदान्स्तु क्षत्रवैश्यस्तु^१ वा नराः । गौद्यपूर्वां कृतामेयुर्जातिं वा दाक्षिणात्यजाम् ॥५
 अपरिज्ञातशूद्रत्वाद्ब्राह्मणं यान्ति कामतः । तस्मान्न जायते भेदो वेदाध्यायक्रियाकृतः ॥६
 शास्त्रकारैस्तथा चोक्तं न्यायमार्गानुसारिभिः । ते साधु मतताकर्ण्य सन्तः सन्ति विमत्सराः ॥७
 आचारहीनान्नं पुनंति वेदा यद्यप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः^२ ।

शिल्पं हि वेदाध्ययनं द्विजानां दृतं स्मृतं ब्राह्मणलक्षणं तु ॥८

अधीत्य चतुरो वेदान्यदि वृत्ते न तिष्ठति । न तेन क्रियते कार्यं स्त्रीरत्नेनेव षण्ठकः ॥९

अध्याय ४१

ब्राह्मणविवेक का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—यदि वेदाध्ययन से ही ब्राह्मण होना है, तो ब्राह्मण की भाँति वैश्य और क्षत्रिय भी ब्राह्मण कहे जायें जैसे रावणादि राक्षस हो गये हैं । १। इसी प्रकार कुत्ता खाने वाले चांडाल दास, शिकारी, अहीर, मल्लाह शूद्र आदि भी वेद पढ़ते हैं । २। जिस भाँति शूद्र कहीं विदेश में जाकर किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय के अधीन रहते हुए उनके व्यापार के अनुसार कार्य भेद एवं भाषा का अनुसरण करके चारों या किसी एक ही वेद को पढ़कर किसी शुद्ध ब्राह्मण की कन्या के साथ विवाह कर लेता है तथा कोई क्षत्रिय या वैश्य वेद पढ़ कर दक्षिण की गीड़ या द्रविड़ जाति में मिल जाता है उसी प्रकार शूद्र भी (लोगों के) अनजान में ब्राह्मण हो जाता है । अतः वेदाध्ययन ही जाति भेद का समर्थक नहीं है । ३-६। इसलिए सज्जन पुरुष न्याय पक्ष के पथिक शास्त्रकारों के कहे हुए वाक्यों को सुनकर किसी से वैर नहीं करते हैं । ७। छहों अंगों के समेत वेद पढ़ने वाले द्विज को आचार-हीन होने पर वेद पवित्र नहीं कर सकता है । द्विज के लिए वेदाध्ययन ही शिल्प वृत्ति (कारीगरी है) बताया गया है और यही ब्राह्मण का लक्षण भी है । ८। जिसने चारों वेदों को पढ़कर अपने वृत्त धर्म को न अपनाया तो स्त्री रत्न प्राप्त होने पर हींजड़े के समान उसने कुछ भी नहीं किया । ९। शिल्पा (चोटी) इसका ओंकार पूर्वक संस्कार, संध्योपासन, भेदला

१. उद्भव्वित्ति द्विजस्त्रियः । २. न तैः क्रिया सतां कार्या वैश्यास्ते ब्राह्मणा मताः ।

शिखाप्रणवसंस्कारसन्धेऽपासनमेलता: । दण्डजिनपविश्वायाः शूद्रैष्वपि निरद्भुताः ॥१०
 प्रसङ्गोऽपि हि शूद्राणां न शक्यो विनिवारितुम् । देवोत्तमत्रयेणापि निवर्तन्ते नराः स्वयम् ॥११
 तस्माश्वेतेऽपि लक्ष्यन्ते विलक्षणतया^१ नृणाम् । यजोपवीतसंस्कारमेल्लालःचूलिकादयः ॥१२
 आशिचारिकमन्त्राद्यैर्द्विभूत्वादिभालणैः : ब्राह्मणस्यैव शक्तिश्वेतकेनास्त्य विनिहन्त्यते ॥१३
 तपः सत्यादिमाहात्म्यादेवतासमयस्मृतिः ! मन्त्रशक्तिर्णृणामेषां सर्वेषामपि दिघते ॥१४
 वज्ञनं दुर्वचस्यापि क्रियते सर्वमानवैः । शूद्राहाण्योस्तस्मान्लास्ति भेदः फलवज्ञन ॥१५
 शापनुग्रहकारित्वं शदितभेदो त विद्यते । चौरचाटादिराजन्वद्वुर्जनाभिहते त्रृणाम् ॥१६
 आत्मादुःखोऽपापायं स्वेषु जन्तुषु रक्षणम् । कर्तुं न प्रभवेच्छूद्रो ब्राह्मणस्तद्वेव हि ॥१७
 मा भूद्युगे कलावेदद्वेषो चाकार्यहृद्विद्वजे । स्पादन्यदेशकालादौ द्विजानामतिशयिनाम् ॥१८
 शापनुग्रहसमर्थमन्यद्वाध्यात्मगोचरम् । ब्रह्मसाधनमेतद्विद्विज्ञः केचित्प्रचक्षते ॥१९
 संसारात्कर्त्तव्येतत्स्का मोहान्धत्तमसावृताः । पतन्त्युन्मार्गतेषु प्रत्यग्नि शतभा यथा !!२०
 जातिधर्मः स्वयं क्रित्यद्विशेषः श्रुतिसङ्गमात् : असिद्धः शूद्रजातीनां प्रसिद्धो विप्रजातिषु ॥२१
 संस्कारो योनिसाध्यो द तामग्री प्रभवोऽय वा । शूद्रैष्योऽतिशयं धते यः साधारणतामुणः ॥२२

(मूज की करधनी), दंड और मृग चर्म इन्हें (ब्राह्मण की भाँति) शूद्र भी अपना सकते हैं । १०। शूद्र होने के प्रसंग को ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी रोक नहीं सकते तो मनुष्यों की बात ही क्या है । इसलिए मनुष्यों का यजोपवीत संस्कार, मेल्लाल और चोटी का रखना आदि भी (जाति), सूचक नहीं है । ब्राह्मण की शक्ति यदि तंत्र मंत्रों में और आकस्मिक भाषणों में विशेष है तो उसमें प्रवृत्त शूद्र की शक्ति को कौन नष्ट कर सकता है । १-१३। क्योंकि तप एवं सत्य बोलने आदि के महत्व द्वारा देवतः की दातां की जानकारी और मंत्र की शक्ति सभी (शूद्रादि) मनुष्यों में भी देखी जाती है । १४। एवं सभी शूद्रादि मनुष्य कठोर बोलने वाले की प्रवंचनां करते ही है अतः शूद्र और ब्राह्मण में कोई भेद किसी प्रकार सम्भव नहीं है । १५। शाप और अनुग्रह (क्षमा) करने की शक्ति भी (शूद्रादि में) भिन्न नहीं देखी गई है एवं उसी भाँति चोर, विश्वास घातक, राजपुत्र अथवा किसी दुर्जन द्वारा उपहत होने पर मनुष्यों में कोई भेद दिखायी नहीं देता है । शूद्र जिस प्रकार अपने दुखों का नाश एवं अपने आत्मीय जीवों की रक्षा नहीं कर सकता है, ब्राह्मण भी उसे करने में वैसे ही असमर्थ है । १६-१७। कलियुग के रहते इस देश में ब्राह्मणों में यह बात (कुर्कम करने वाला कोई) न हो तभी अच्छा है चाहे दूसरे समय में तथा दूसरे देश में श्रेष्ठ ब्राह्मणों में भले ही कोई हो । १८। शाप और अनुग्रह का सामर्थ्य और अध्यात्म विचार करना ही कुछ लोग (ब्राह्मण होने का) लक्षण मानते हैं । १९। किन्तु सांसारिक विषयों में अनुरक्त एवं मोह रूपी अंधकार में पड़े रहने के नाते (सभी) लोग नरक के कुंडों में विवश होकर अग्नि में पतिगे की भाँति गिरते ही रहते हैं । २०। यद्यपि वेद के प्रभाव वश जाति धर्म की विशेषता कुछ अवश्य है जो वह ब्राह्मणों में (वेदाध्ययन करने के नाते) तो प्रसिद्ध है और शूद्रों में कुछ भी नहीं । २१। संस्कार या उत्तरी सामग्री अथवा कारण जो दूसरे लोगों में साधारण-सा होता है वही शूद्रों में विशेषता उत्पन्न करता है । २२।

१. विचक्षणतया । २. केनान्यस्य विहन्त्यते ।

विप्राणां पञ्चदा भेदः कल्पनीयस्तु पण्डितैः । न जातिजस्त्रयीजो वा विशेषो युक्तिबाधकात् ॥

क्रमाक्रमक्रियाः सन्ति न सनातनवस्तुनः

॥२३॥

नित्यो न हेतुर्विगत्क्रियत्वाद्वेतुभवेदेविशेषतः सः ।

स तत्सम्पत्त्वात्मतिसन्धियानात्कालात्ययेक्षित्वमयुक्तमेव ॥२४॥

स्वान्तः शरीरवृत्तिस्थः शुतियोगादुदेति यः । सोऽनन्यवेददिज्ञातस्वभावोऽन्यैर्न गम्यते ॥२५॥
विशिष्टाद्यातीतिर्धर्मत्वे कृत्रिमा ब्रह्मतङ्गतिः । यस्यास्यतिशयस्तस्य नान्यः नाश्रयते यदि ॥२६॥

दृश्यस्वभावं किमभीष्टमेतद्द्वाहाप्यमाहोस्त्विदृष्टरूपम् ।

सर्दैः प्रतीयेत हि दृश्यरूपं ततोऽन्यथावद्वागतिरेव न स्यात् ॥२७॥

सामग्र्यभावात्परमं विशेषं भूदेवगात्रस्यमभूमिदेवाः ।

स्मरन्ति तैनात्मनि पुण्यादापं यथा तथेत्येतदयुक्तमुक्तम् ॥२८॥

सामग्र्यनुष्ठानपुण्डिः समग्राः शुद्धा यतः सन्ति समा द्विजानाम् ।

तस्माद्विशेषो द्विजशूद्रानान्नोर्नार्थ्यात्मिको बाहृनिमित्तको वा ॥२९॥

संस्कारतः सोऽर्तिशयो यदि स्यात्सर्वस्य पुंसोऽस्त्यतिसङ्कृतस्य ।

यः संस्कृतो विप्रगणप्रधानो व्यासादिकैस्तेन न तस्य साम्यम् ॥३०॥

पंडितों ने पाँच प्रकार के ब्राह्मणों के भेद की कल्पना की है पर वह भेद युक्तयुक्त न होने के कारण न जाति द्वारा और न वेद द्वारा ही संभव हो सकता है । क्योंकि सनातन नित्य या अविनाशी वस्तु में क्रमशः यों ही कोई भी क्रिया उत्पन्न ही नहीं होती है । २३। इसीलिए अनश्वर (वस्तु) में कोई क्रिया संभव न होने के नाते वह किसी कारण नहीं हो सकता है, यदि कहीं (कारण) होता भी है तो वेदों की विशेषता वश । वह उसके सम्ब्रहित होने (वेदाध्ययन) से उसके समान हो सकता है किन्तु अवश्वर बूक जाने पर केवल नाश मात्र (शरीर त्याग और जल ग्रहण) करना ही हाथ आता है जो सर्वथा अनुचित बताया गया है । २४। अपने अंतःकरण में रहने वाले उस संस्कार को जिसका उदय वेदाध्ययन से कहा गया है वेदाध्ययन न करने वाले कोई भी प्रात नहीं कर सकते हैं । २५। क्योंकि वेदाध्ययन के करने की विशेषता प्राप्त करना ही ब्राह्मण के लक्षण हैं इसलिए वेदाध्ययन न करने वाले ब्राह्मण नहीं कहे जा सकते हैं । २६। इसी प्रकार दृश्यरूप (प्राकृतिक रूप) अदृष्टरूप इन दोनों में ब्राह्मण होने में कौन कारण है । समस्त व्यक्तियों को दृश्य-रूप (दिखायी देने वाले) की ही प्रयाति होती है और उससे अन्यथा (अदृष्टरूप) की गति ही न होगी । सामग्री के अभाव से पृथ्वी पर न रहने वाले देवता अपनी आत्मा में ही पृथ्वी, देवता एवं शरीर में स्थित अत्यन्त विशिष्ट पुण्य एवं पाप का स्मरण करते हैं । यह निःसन्दिग्ध उक्ति है । सामग्रीपूर्वक अनुष्ठान आदि गुणों से शूद्र भी ब्राह्मणों के समान ही है अतः शूद्र और ब्राह्मणों में आध्यात्मिक भेद नहीं है । किन्तु संस्कारी एवं तेजस्वी शूद्र को देखकर स्मरण की चर्चा नहीं होती है उसी भाविति यह भी कारण सर्वथा अनुपयुक्त ही कहा जायेगा । या बाहरी भेद कारण नहीं हो सकता है । २७-२९। यदि संस्कार ही ब्राह्मण होने में मुख्य है, तो जिसके सभी संस्कार हुए हैं वे ब्राह्मण हैं पर संस्कार हीन व्यासादिक से उनकी तुलना कैसे हो सकती है । इसलिए जाति के

१. भाव्यम् । २. विद्यते ।

हेतुत्वं घटते^१ नैषां जात्यादीनामसम्भवात् । जातेरकृतकत्वाच्च अधीते न विशेषतः ॥३१
 संस्कारातिशयाभावादन्तरस्यागते परैः । भौतिकत्वाच्छरीरस्य समस्तानामसंहतैः ॥३२
 किं चान्यनास्तिकम्लेच्छ यवनादिज्ञेष्वलम्^२ ॥३३
 वेदोदितवर्हिदुष्टचरितेषु दुरात्मसु । धर्मादितिशयोः^३ दृष्टः कूरसाहसिकादिषु ॥
 तस्माद्विप्रेषु जात्यादितामग्रीप्रभवो न सः ॥३४
 तस्मान्त च विभेदेऽस्ति न बहिनन्तरात्मनि । मुखादौ न चैश्वर्यं नाज्ञायां नाभयेष्वपि ॥३५
 न बीर्यं नाकृतौ नाके न व्यापारे न चायुषि । नाङ्गं पुष्टे न दूर्बल्ये न स्थैर्यं नापि चाप्ते ॥३६
 न प्रज्ञायां न वैराग्ये न धर्मं न पराक्रमे । न श्रिवर्गं न नेषुण्ये न रूपादौ न भेषजे ॥३७
 न स्त्रीरथं न गमने न देहमलसम्लवे । नस्त्यिरन्त्ये न च प्रेम्णि न प्रमाणेषु लोभ्नु ॥३८
 शूद्रब्राह्मण्योर्भेदो जृयमाणोऽपि यत्नतः । नेष्यते सर्वधर्मेषु संहतैस्त्रदौरपि ॥३९
 उक्तमात्रा विसम्भूतिर्विचारकःकारिभिः । वृद्धपून्दरकाधीशैत्रप्रघृष्यमिदं वचः ॥४०
 न ब्राह्मणश्वन्दभरीच्छिशुभ्रा न क्षत्रियाः किञ्चुकपुष्यवर्णाः ।
 न चेह वैश्या हरितालतुल्याः शूद्रा न चाङ्गरसमानवर्णाः ॥४१

समर्थन में कोई भी कारण संभव नहीं है । यद्यपि जाति नित्य मानी गई है पर उसके अध्ययन में वोई महत्त्वपूर्ण विशेषता नहीं देखी जाती है और वह जो विशेषता होती है वह वेदारम्भादि संस्कार से भी संभव नहीं है । शरीर भी संस्कार की महत्त्वा के प्रभाव एवं भौतिक (पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश से बनी) होने के नाते ब्राह्मण होने में कारण नहीं है क्योंकि उसके सभी तत्त्व पृथक-पृथक् रहते वाले हैं (कुछ समय के लिए एकत्र रहते हैं) और भी विशेषता यह है कि नास्तिक, म्लेच्छ एवं यवन आदि की भी शरीर सभी के समान ही होती है । ३०-३३। इसी प्रकार दुश्चरित्र, दुष्ट, कूर, एवं धातक मनुष्यों में भी वेद में कही गयी धार्मिक-विशेषता समान ही देखी जाती है, अतः ब्राह्मण आदि जाति होने में संस्कार आदि कारण नहीं हो सकते । ३४। इसलिए (ब्राह्मण शूद्र के) बाहरी और भीतरी तथा मुख-दुःख ऐश्वर्य आज्ञा देने, निर्भय, वीर्य, शरीर, जुआ देलने, व्यापार आय, शरीर की पुष्टता, दुर्बलता, स्तिर, चंचलता, बुद्धि, वैराग्य, धर्म, पराक्रम, त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम), चतुरता, रूप-रंग, औषधि, स्त्रियों के गर्भ, मैथुन, शरीर के मल, शरीर की हड्डी, शरीर में छिद्र, प्रेम, लम्बाई, चौड़ाई और रोम में कोई भेद नहीं है अतः सभी देवता मिलकर अतिपरिश्रम के साथ शूद्र और ब्राह्मण में उपरोक्त अंगों द्वारा कोई भी भेद निकालना चाहें तो किसी भी तरह संभव नहीं हो सकता है । ३५-३९। इस प्रकार इस विचारक्रम में जो बातें निश्चित कह दी गई हैं उन्हें वृद्ध अनुभवी या इन्द्रादि देव भी अनिश्चित नहीं कर सकते हैं । ४०। क्योंकि ब्राह्मण चन्द्रमा की किरणों की भाँति धबल, क्षत्रिय किञ्चुक पुष्य के समान रुद्रवर्ण वैश्य हारिताल के समान पीत वर्ण और शूद्र आधी जली हुई लकड़ी (कोयले) के समान काले ही नहीं होते हैं । ४१। अतः पैर से

१. विद्यते । २. अपि । ३. योऽस्मात् ।

पादप्रयारैस्तनुवर्णकेषौः सुखेन दुःखेन च शोणितेन ।
 त्वङ्मासमेदोस्थिरसैः^१ समानाश्रुष्प्रभेदा हि कथं भवन्ति ॥४२
 वर्णप्रमाणाङ्कतिगर्भवासवाग्बुद्धिकर्मन्दियजीवितेषु ।
 ब्रलत्रिवर्गामयभेषजेषु न विद्यते जातिकृतो विशेषः ॥४३
 स एक एकात्र पतिः प्रजानां कथं पुनर्जीतिहृतः प्रभेदः ।
 प्रमाणदृष्टः त्वन्यप्रवादैः परीक्षयमाणो विघटत्वमेति ॥४४
 चत्वार एकस्य पितुः सुताश्र तेषां सुतानां छत्रु जातिरेका ।
 एवं प्रजानां हि पितेक एवं पित्रेकभावान्न च जातिभेदः ॥४५
 फलान्यर्थाद्वारवृक्षजातेर्यथाप्रमध्यान्तभवानि यानि ।
 वर्णाङ्कतिस्पर्शरसैः समानि तथैकतो जातिरतिप्रचिन्त्या ॥४६
 ये कौशिकाः काशयमगौतमाश्र कौडिन्यनाण्डव्यवशिष्ठोत्राः ।
 आदेयकौत्साङ्गिरसैः सगारा मौद्गल्यकात्यायनभार्गवाश्र ॥४७
 गोदाणि नानाविधजातयश्च भ्रातृस्तुषामैयुनपुत्रभावाः ।
 वैवाहिकं कर्म न वर्णभेदः सर्वाणि शिल्पानि भद्रन्ति तेषाम् ॥४८

ये चान्ये^२ पण्डिताः प्राहुदेवब्राह्मणतां नराः । तेषां दुर्दृष्टितिनिरमपनीयानुकम्प्य च ॥४९
 न्यायाङ्गजनौषधैर्दिव्यैः परिणामसुखावहैः । उपनीतैः प्रयत्नेन सुदृष्टिं संविदद्यहे ॥५०

चलने, शरीर के रंग, केश, दुःख-सुख, रक्त, चमड़े, मांस, मेदा हही और रस में समानता होने के कारण (मनुष्यों में) चार प्रकार (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) का भेद कैसे हो सकता है ।४१ जब कि रंग, लम्बाई-चौड़ाई, शरीर-रचना, गर्भ में निवास, वाणी, बुद्धि, कर्मन्दिय (वाक् हाथ, पैर, गुदा एवं मूर्त्रेन्द्रिय), जीवन, बल, त्रिवर्ग, रोग, और औषध में जाति द्वारा कोई विशेषता नहीं दिखाई देती है ।४३ इसलिए वही एक ही (आत्मा) तो प्रजाओं का पति भी है भला उसमें जाति द्वारा भेद कैसे संभव हो सकता है । प्रमाण, दृष्टांत था नीति के द्वारा किसी भी प्रकार से उसे कसौटी पर लाने से सफलता नहीं मिल सकती है ।४४ जिस प्रकार किसी पिता के चार लड़के रहते हैं किन्तु उनकी सुनिश्चित एक ही जाति रहती है, इसी प्रकार सभी को उत्पन्न करने वाला पिता एक ही है, उसके एक हीने से जाति भेद कहाँ हो सकता है ।४५ गूलर के फल में जिस प्रकार अग्र भाग, मध्य और अंत में रूप-रंग, रचना, स्पर्श एवं रस समान होता है, उसी प्रकार एक से उत्पन्न इन मनुष्यों में जाति कल्पना करना अनुचित है ।४६ इस प्रकार कौशिक, काश्यप, गौतम, कौडिल्य, मांडव्य, वशिष्ठ, क्षत्रिय, कौत्स, आगिरस, गर्ग, मौद्गल्य, कात्यायन, और भार्गव गोत्र वालों के भाई पुत्र-वधू (पतोहू) मैथुन पुत्र, जन्म, विवाह, रूप-रंग तथा सभी शिल्प कलाएँ भी समान ही हैं ।४७-४८ यद्यपि कुछ पंडित गण देह को ब्राह्मण मानते हैं तथा उनके तिमिराच्छन्न नेत्र के लिए न्याय रूपी अंजन से जो उत्तम औषध के संमिश्रण से बनाया गया है और परिणाम में (लगाने पर) सुख प्रदान करता है उसी को देने की कृपा करके उनकी आँख अच्छी कर रहा है ऐसा बोलते हैं यह गलत है ।४९-५०। देह क्योंकि

१. त्वङ्मासमेदोस्थिरसैः । २. ये चार्यम् ।

मूर्तिमत्त्वाच्च नाशित्वाच्छेषमूर्तवद् । देहाधारनिविष्टानां ब्राह्मणं न प्रकल्प्यते ॥५१
 एकैकोवयवस्त्वेषां न ब्राह्मणं समझनुते । न चानेकसमूहेऽपि^१ सर्वथातिप्रसङ्गतः ॥५२
 पृथिव्युदकवाय्प्रिपरिणामविशेषतः । देहतः सर्वमूर्तानां ब्राह्मणत्वप्रसङ्गतः ॥५३
 देहस्य ब्राह्मणत्वं येरतत्त्वज्ञः प्रकल्प्यते । संस्कृतैर्णां शरीरस्य तेषां न ब्रह्मता भवेत् ॥५४
 मृग्यमाणे प्रयत्नेन देहे तत्त्वोपलम्भ्यते । तत्सान्न देहे ब्राह्मणं नापि देहात्मकं भवेत् ॥५५
 वर्णापिसदचांडात्तभवदादीनां^२ प्रसञ्जते । यदि देहस्य विप्रत्वं भवद्वृद्धुपनम्भ्यते ॥५६
 देहशक्तिगुणे: क्षीरे: कायभस्मादिरूपवद् । तत्सान्न देहात्मकेनैतद्ब्राह्मणं नापि कर्मजम् ॥५७

इति श्रीभद्रिष्ये महापुराणे शतार्धताहस्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि इच्छोकल्पे
 ब्राह्मण्यदिवेकवर्णनं नामैकचत्वार्दशोऽध्यायः । ४१।

अथ द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्राह्मणसंस्कारविवेकवर्णनम्

ब्रह्मोदाच

अपरैश्च सदाचारयोगयुक्तर्मनोऽधिभिः । यदकारि महासत्त्वैः सुभाषितमिदं शृणु ॥१

प्रतिमान होने के नाते नश्वर होती है और नश्वर होने के कारण यह देह भ्रत (पृथिव्यादि) की भाँति नष्ट हो जाती है इसलिए देह को ब्राह्मण कभी नहीं कहा जा सकता है । ५१। इसी प्रकार देह के एक-एक अंग या समस्त अंग (देह) को ब्राह्मण कहना उचित नहीं है । ५२। क्योंकि सर्वथा अति प्रसंग हो जायगा और पृथिवी आदि पाँच भूतों के परिणाम रूप देह होने के कारण सभी भूत ब्राह्मण कहे जायेंगे । ५३। अज्ञानियों ने देह को ब्राह्मण होना स्वीकार किया है संस्कार करने वाले की देह में ब्राह्मणत्व नहीं हो सकता है । ५४। क्योंकि प्रयत्न पूर्वक स्वोजने पर भी देह में ब्राह्मणत्व नहीं मिलता है इसलिए देह ब्राह्मण नहीं हो सकती और ब्राह्मणत्व देह का स्वरूप भी नहीं है । ५५। उस अवस्था में तो अधम, नीच, चांडाल एवं कुत्ता खाने वाले आदि की शरीर भी ब्राह्मण हो जायगी । यदि देह ही को आप लोग ब्राह्मण मानते रहेंगे । ५६। क्योंकि देह की शक्ति और गुण नष्ट हो जाता है और देह (किसी समय) राख हो जाती है अतः ब्राह्मणत्व न देह की वस्तु है और न देह से उत्पन्न ही होती है । ५७

श्री भविष्य गुरुणम् में ब्राह्मपर्व के पाष्ठी कल्प में ब्राह्मण विवेक वर्णन नामक
 एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त । ४१।

अध्याय ४२

ब्राह्मण संस्कार विवेक का वर्णन

ब्रह्मा गोले—ऐसे महात्मा लोग जो सदाचारी, योगी एवं धुरन्धर विद्वान् हैं, जो कुछ किये और

१. वेदाधारविनष्टान्म् । ६. समस्तोऽपि हि देहोऽप्यं सर्वस्यातिप्रसङ्गतः । ३. वर्णापिसद-चाण्डालनिषादानां प्रसञ्जते ।

बहुवनस्पतिशङ्कुपिणीलिकाप्रभरवारणजातिमुदाहरन् ।

गतिषु कर्मितो नटवत्सदा भ्रमति जन्तुरलब्धसुदर्शनः ॥२

रूपैर्भर्यज्ञानकुलैर्विभवैर्वर्मितो नूत्वा धर्मपथं चेद्विजहसि ।

न वस्थे द्वजन्मुखवानानि त्वमटिश्चंतस्मादभिभ्रत्सीमुते मद अत्मनः ॥३

जातिकुलरूपवयोवणनिकश्रुतमदग्न्याः क्लीबाः । परत्र चेह च हितमप्यर्थं न पश्यन्ति ॥४
 ज्ञात्वा भवपरिवर्ते जातीनां कोटिशतसहस्रेषुः हीनोत्तममध्यत्वं को जातिमदं द्वयः कुर्यात् ॥५
 नैकाङ्गज्ञातिविशेषानिन्दियनिवृत्तिपूर्वकास्त्वर्वान् । कर्मवशाद्गच्छत्यत्र कस्यैका शाश्वतीजातिः ॥६
 विद्वत्सदस्योऽप्याह संस्काराद्ब्राह्मणो भवन् । न्यायज्ञैः^१ सन्निराकार्यो वाक्यैन्यायानुसारिभिः ॥७
 गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा । जातकर्म नामकर्म तथाव्रप्राशनं च वै ॥८
 चूडोपनयनं चास्य चतुर्देशस्तथैव च । समावर्तनमप्यच्यत्याणिग्रहणमेद च ॥९
 इत्येवनार्दिसंस्कारविधानैर्येत्तिसंस्कृताः । त एव ब्राह्मण येषां नैरत्यर्थेण^२ कामनाः ॥१०
 यस्माद्वै ब्राह्मणा जाता ब्राह्मणैः कृतसंस्कृतैः । नायुः शक्तिर्हि कान्त्यादिविशेषो विद्यते त्फुटः ॥११
 तौ वा ब्राह्मणगात्रोल्लौ संस्कृतासंस्कृतौ नरौ । इष्टनिष्टप्त्यनाप्तिम्यां न भवेते परस्परम् ॥१२

कहते हैं उनकी सुन्दर वाणियों को मैं बता रहा हूँ । सुनो ! उनका कहना है कि वह जीव, जिसे कभी किसी अच्छे (देवता तीर्थ आदि) का दर्शन नहीं प्राप्त है, भाँति-भाँति के वनस्पति, शंख, चींटी, भौंटे, हाथी आदि योनियों में कर्म वश नर की भाँति भ्रमण किया करता है । १-२। इसलिए रूप-रंग-ऐश्वर्य, ज्ञान और कुल एवं विभव से सुरक्षित होकर धार्मिक पथ का अनुसरण यदि तुम नहीं करते हो तो मैं नहीं कह सकता कि तुम्हें इस मद के नष्ट हो जाने पर चलते-फिरते किन-किन (नीच) लोकों में नहीं घूमना पड़ेगा । ३। क्योंकि जाति, कुल, रूप-रंग अवस्था एवं भाँति-भाँति की विधाओं के मद से अन्धे होकर हिजड़े की भाँति लोग इस लोक और परलोकी की अपने हित की बातों को ध्यान में नहीं लाते हैं । ४। इस प्रकार संसार एक महान गड्ढा है, जिसके भैंवर में सैकड़ों, हजारों एवं करोड़ों जातियाँ पड़ी डूब रही हैं । ऐसा जानते हुए कौन बुद्धिमान् जाति का अभिमान कर सकता है । ५। ऐसे एक नहीं प्रत्युत अनेकों मनुष्य हैं जो अच्छे कुल में उत्पन्न संतुष्ट इन्द्रिय कहे जाते हैं वे कर्म वश यहाँ संसार में आया-जाया करते हैं, इसलिए किसकी एक ही जाति सर्वदा स्थिर रह सकती है । ६। विद्वन्मंडली में जिसमें भी (केवल) संस्कार से ब्राह्मण होना बताया है न्याय का अनुसरण करने वाली अपनी नैतिक बातों से उसकी बातों का खण्डन कर दें । ७। क्योंकि यदि गर्भाधान, पुंसवन, सीमतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन (अन्नखिलाना), चूडा करण (मुंडन), यज्ञोपवीत (जनेऊ), वेदारंभ, समावर्तन और विवाह आदि संस्कार विधि पूर्वक जिसके हो चुके हैं वे ही ब्राह्मण हैं तो संस्कार हीन एवं नीच कर्म करने वाले ब्राह्मण कैसे कहे जा सकते हैं । ८-१०। इसी प्रकार संस्कार किये गये ब्राह्मणों की संतान तथा संस्कारहीन (ब्राह्मणों) संतान की आयु, शक्ति और कांति आदि में कोई विशेषता सामने नहीं दिखाई देती है । ११। जिस प्रकार ब्राह्मण के शरीर से उत्पन्न उन दोनों पुत्रों के जिसमें एक का संस्कार हुआ है और दूसरा संस्कार हीन है, मुल-दुःख तथा (किसी अच्छी

१. न्यायज्ञः सत्क्रिया: कार्या: । २. नेह ते हृतकाधमा: ।

ज्ञानाध्यदनमीमांसानियमेन्द्रियनिग्रहैः । विना संस्कारयोगेऽपि पुंसः शूद्राश्च भिन्नता ॥१३
 संस्कारः क्रियमाणश्च न शूद्रे च प्रवर्तते । संस्कृताङ्गश्च^१ पापेभ्यो न पश्यति निर्दर्तते^२ ॥१४
 विलासिनीभुजंगादिजनवन्मदविह्वलाः । व्यामुहून्ति सदाचाराद्ब्राह्मणत्वात्पतन्ति^३ च ॥१५
 संस्कृतोऽपि दुराचारो नरकं याति मानवः । निःसंस्कारः सदाचारो भवेद्विप्रोत्तमः सदा ॥१६
 मन्त्रपूतात्मसंस्कारयुक्तोऽपि लक्ष्यते न तु । ब्राह्मण्यादविकल्पं ता पश्चाद्वृश्चरितो नरः ॥१७
 सामर्थ्यात्पतनं तस्माद्ब्राह्मण्यम्भुच्यते धूवम् । दुरुष्टानसक्तानां पुंसां पुरुषपुञ्जवैः ॥१८
 किं क्वचिद्वृश्चमेवतांकं वा स्पधोविदत्पत्यम् । दुर्ज्यमुत्सहसे कर्तुमप्यदृष्टं तदा वद ॥१९
 आन्वारमनुष्ठिन्तो व्यामादमुनिसत्तमाः । गर्भाधानादिसंस्कारकलापरहिताः स्फुटम् ॥२०
 विप्रोत्तमाः श्रियं प्राप्ताः सर्वलोकनमस्कृताः । बहवः कथ्यमाना ये कतिचित्तान्निबोधत ॥२१
 जातो व्यासस्तु कैवर्याः श्वपाक्याश्च पराशरः । शुक्याः शुकः कणादात्यस्तयेलूक्याः मुतोऽभवत् ॥२२
 मृगीजोर्थर्षभृङ्गोपि वशिष्ठो गणिकात्मजः । नन्दपालो^४ मुनिश्रेष्ठो नाविकापत्यमुच्यते^५ ॥२३
 माण्डव्यो मुनिराजस्तु मण्डूकीगर्भसंभवः । दहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्ववदिद्वजाः ॥२४

वस्तु के) मिलने न मिलने में कोई भेद नहीं होता है । १२। इसी प्रकार संस्कार हीन पुरुष के ज्ञान अध्ययन, मीमांसा (विचार), नियम और इंद्रिय संयम में शूद्र की उन बातों से कोई विशेषता नहीं होती । १३। यद्यपि शूद्रों का संस्कार नहीं होता है तथापि संस्कार किये हुए (किसी ऊँची जाति) के शरीर के कोई भी अंग पाप-युक्त नहीं दिखाई देते हैं । १४। क्योंकि विलासी और दुष्ट आदि लोगों की भाँति मदान्ध होकर (संस्कारी) पुरुष मोह में पड़कर सदाचार एवं ब्राह्मणत्वसे च्युत हो जाते हैं और संस्कार किये जाने पर भी दुराचारी होने के नाते नरक में जाते हैं । किन्तु संस्कार हीन पुरुष, सदाचारी एवं उत्तम (शेष) ब्राह्मण हो जाते हैं । १५-१६। इसलिए मन्त्रों द्वारा पवित्र एवं संस्कार युक्त पुरुष भी (माया मोह में) ढूबता ही है और ब्राह्मणत्व हीन होकर सर्वदा के लिए दुराचारी भी हो जाता है । १७। क्योंकि अनुचित कामों में लीन रहने वाले पुरुष अपने ही सामर्थ्य से अन्धे होकर पतित होते हैं और ब्राह्मणत्व से संदैव के लिए निरिचित पृथक् भी हो जाते हैं । १८। क्या इस प्रकार मनुष्य में जाति भेद न होते हुए भी वही आप को भेद दृष्टि गोचर हुआ या केवल द्वेष के कारण ही ऐसी बातें कह रहे हैं यदि दृष्टादृष्ट में कोई विशेषता नहीं है तो आपको यही कहना उचित होगा कि मैंने भेद कहीं नहीं देखा क्योंकि आचार करने वाले व्यास आदि महर्षियों में शेष हो गये हैं, उनके गर्भाधान आदि कोई संस्कार नहीं हुए थे यह विलुप्त स्पष्ट है । १९-२०। महर्षियों में अधिकांश ऐसे लोग भी हैं जो ब्राह्मणों में शेष भी संपन्न और सभी लोगों में बन्दनीय हो गये हैं उनमें से कुछ को कह रहा हूँ, मुनो । २१। व्यास कैवती (केवट की स्त्री) से, पराशर चांडालिनी से, शुक तोते (पक्षी-स्त्री) से, कणाद उल्लू (पक्षी-स्त्री) से, शृंगी ऋषि मृगी से, वशिष्ठ वेश्या से, मंट (मेद) पाल लावा पक्षी से एवं माण्डव्य मेढकी से उत्पन्न हुए हैं और ऐसे बहुतों ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया जो पूर्व के समान (उच्च कोटि के) ब्राह्मण हुए हैं । २२-२४।

१. संस्कृताङ्गस्य पापेभ्यो लावण्यं विनिवर्तते । २. संस्कारेभ्यः । ३. ब्राह्मणं हापयन्ति च ।
 ४. मेदपालः । ५. लाविकागर्भसंभवः ।

यच्चैतच्चारुचरितेरर्च्यमुच्चरितं वचः । तद्विचार्यनिरम्भुच्चैरत्त्वारोपचितद्युतिः !!२५
 हरिणीगर्भसम्भूत ऋष्यशृङ्गो महामुनिः । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् !!२६
 श्वपाकीगर्भसम्भूतः पिता व्यासस्य पार्थिव । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् !!२७
 उलूकीगर्भसम्भूतः कणादाख्यो महामुनिः । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् !!२८
 गणिकागर्भसम्भूतो वशिष्ठश्च महामुनिः । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् !!२९
 नाविकागर्भसम्भूतो मन्दपालो महामुनिः । तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् !!३०
 वेदतन्त्रजसंस्कारकलापिनिपूर्णरपि । विद्यातपोधनबलादुत्कृष्टं लभ्यते फलम् !!३१
 लब्धसंस्कारदेहात्र महापातकिनो नराः । यस्माद्विनिर्वत्ते ब्रह्म तस्पात्साद्वैतिकं विद्वः !!३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ज्ञातो पर्वणि
 षष्ठीकल्पे ब्राह्मणसंस्कारविवेकवर्णनं नाम द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः । ४२।

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

वर्णव्यवस्थावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

किं चान्यदपरं यूयं वेदमन्त्रविदो जनाः । प्रष्टव्याः कस्य संस्कारे विशेषमुपगच्छत ॥१

इसलिए मुन्द्र चरित्रों के नायक इन लोगों ने जो कुछ आदरणीय वचन कहा है उसके विचार पूर्वक तदनुकूल कार्य करने वाले तेजस्वी होते हैं । २५। क्योंकि हरिणी के गर्भ से उत्पन्न होकर महामुनि शृङ्गी ऋषि ने तपोबल द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त किया अतः ब्राह्मण होने में संस्कार ही मुख्य हैं। राजन् ! इसी प्रकार व्यास के पिता (पराशर) चांडाली के गर्भ से कणाद उलूकी के गर्भ से, महामुनि वशिष्ठ वेश्या के गर्भ से, और महर्षि मन्दपाल लावा के गर्भ से जन्म ग्रहण कर तपोबल द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मण हुए हैं। इसलिए संस्कार मुख्य कारण हैं । २६-३०। वैदिक एवं तांत्रिक संस्कार से निषुण भी लोग विद्या तथा तप के द्वारा श्रेष्ठ हो सकते हैं। किन्तु (केवल) संस्कार मात्र से नहीं क्योंकि कुकर्मवश मनुष्य महापापी भी हो जाता है और उस महापातक द्वारा ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाता है इसलिए ऐसी ब्राह्मणत्व जाति को केवल सांकेतिक (काल्पनिक) ही मानना चाहिए । ३१-३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में ब्राह्मण संस्कार और विवेक वर्णन नामक ब्रायालिसवाँ अध्याय समाप्त । ४२।

अध्याय ४३

वर्णव्यवस्था वर्णन

ब्रह्म ने कहा—संस्कार द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्ति का विचार भी उन लोगों से भी जो वैदिक मंत्रों के निषुण विद्वान् हैं, पूछना चाहिए कि किसके संस्कार करने पर विशेषता (ब्राह्मणत्व) प्राप्त होती है । १।

कि देहस्योत येनासौ निसर्गमलिनः स्थितः । शुक्रशोणितसम्भूतः शमलोद्भवकीटवत् ॥२
 निषेकादिशमशानान्तैर्विधैर्विधिवस्तरैः । देहिनोऽतिशयं केचिदुपगच्छन्ति मानवाः ॥३
 तेषां गृष्मनः कायवाग्विदुष्टैः सुचेष्टितैः । असंयतमनुष्याणां पक्षोऽयं दूष्यते भया ॥४
 दैविकाखिलसंस्कारसारभूता द्विजातयः । सर्वकार्यकरात्मवान्दृशलानतिशेरते ॥५
 चण्डकर्मा विकर्मस्थो ब्रह्महा गुह्यत्प्यगः । स्तनो गोधः सुरापाणः परस्त्रीरमणप्रियः ॥६
 भिष्यावादी मदोन्मत्तो नास्तिको वेदनिन्दकः । ग्रामवाजकनिर्ग्रन्थौ बहुदोषो दुरासदः ॥७
 निःषिद्वाचारसंसेवी चोरश्चाटो मदोद्वतः । धूर्तो नटः शठः पापी सर्वादी सर्वदिक्ययी ॥८
 वाइमनः कायजैर्दुष्टैर्हृता ये ब्राह्मणाधमाः । हे न शुद्धिं वजन्तीह अपि यज्ञशतैरपि ॥९
 शूद्राणां याच्यनिष्टानि सम्पत्तन्ते स्वभावतः । विप्राणामपि तात्येव निर्विघ्राति भवन्ति न ॥१०
 तस्मान्मन्त्रोद्विद्वित्रं वा वेदां पशुदयोऽपि वा । हेतवो न हि विप्रत्वे शूद्रैः शक्या क्रिया यथा ॥११
 ये चापि कर्मबन्धेन ब्रद्वाः सोदन्ति जन्तवः । संसारानलसन्तापविक्लवीकृतमानसाः ॥१२
 ते जन्ममरणःटव्यां सुखमृतपिणासव । कृपणस्याश्रयेऽन्तो लभन्ते नैव निर्वृतिम् ॥१३

क्या शरीर के जो स्वभावतः मल पूर्ण एवं विष्ठा से उत्पन्न कीड़े की भाँति शुक्र शोणित से बनी है । २। या गर्भाधान आदि से लेकर शमशान तक भाँति-भाँति के संस्कार से पूर्ण होने के नाते जीव के । अर्थात् कुछ लोगों का मत है कि संस्कार करने पर जीव द्वारा ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है । ३। उन संयम न करने वाले मनुष्यों के मन, शरीर, और वाणियों में दुष्टता भरी रहती है, उनकी चेष्टाएँ भी दोष पूर्ण ही हुआ करती हैं । इसलिए इस कथन के द्वारा ही मैं उनके जीव वाले पक्ष का स्पष्टन करता हूँ । ४। द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) लोग समस्त वैदिक संस्कार के सार रूप हैं और इसीलिए वे (छोटे-बड़े) सभी कार्य करने वाले शूद्रों से श्रेष्ठ भी माने जाते हैं । ५। (किन्तु दंस्कार सम्पन्न होने पर भी) उन उग्र कर्म तथा बुरा कर्म करने वाले ब्राह्मण हत्या एवं गुह्यपत्नी के साथ मैथुन करने वाले, चोरी करने वाले, गोहत्या करने वाले, शराबी, व्यभिचारी, मिथ्या बोलने वाले, मदान्ध, वेद नास्तिक, वेद की निन्दा करने वाले, गाँव गाँव में धूम कर यज्ञ कराने वाले निर्ग्रन्थ (बौद्ध), अनके भाँति के दोषी, बड़ी कठिनाई से पकड़े जाने वाले निषिद्ध आचरण करने वाले, चोर विश्वासघात द्वारा धन चुराने वाले, मतवाले, धूर्त, नट, शठ, पापी, सभी कुछ खाने वाले सभी कुछ बेंचने वाले, मन, वाणी और शरीर से दुष्टता करने वाले उन ब्राह्मणों की शुद्धि सैकड़ों यज्ञ करने पर भी नहीं हो सकती है । ६-९। शूद्रों के स्वभावतः जो कार्य महान् विघ्नों द्वारा नष्ट होते हैं ब्राह्मणों के भी वे ही (कार्य) निविघ्र समाप्त नहीं हो जाते हैं । १०। इसलिए मंत्र, अग्नि, होम और वेदी (यज्ञ) पर पशुबलि भी ब्राह्मण होने में उसी भाँति कारण नहीं हो सकती है जिस प्रकार अपनी शक्ति के अनुसार सभी कार्य करने पर भी शूद्र शूद्र ही रहता है । ११। जो संसार रूपी अग्नि की ज्वाला से व्याकुल चित्त वाले जीव कर्मरूपी बंधन में पड़कर (भाँति-भाँति से) दुःख का अनुभव करते हैं । १२। वे सुख रूपी अमृत का पान करने के लिए जल भरण रूपी संसार जंगल में सदैव धूमते हुए भी कृपण के दरवाजे से निराश होने की भाँति कभी भी निर्वृति (सुख) प्राप्त नहीं करते हैं । १३। इसलिए

१. निषिद्वाचारसंवीतो यो रथ्यादौ मदोद्वतः । २. वर्षज्ञतैः ।

चतुर्वर्णा नरा ये तु तत्तद्वीर्यं नराधमाः । तेषां सर्वात्मना सर्वैर्धर्मैः साङ्कुर्यमीक्षयते ॥१४
 शूद्रविप्रादयो योनौ न भिद्यन्ते परस्परम् । सर्वधर्मसमानत्वात् संस्कारादि निरर्थकम् ॥१५
 तदनुष्ठानवैधर्म्यवियोगमरणादिभिः । असेन्यसेवनैरन्वैः शूद्रविप्रादयः समाः ॥१६
 बुद्ध्या शक्त्या स्वभावेन धर्मेन्जर्तिया^१ दिभिः क्षिया । कर्तव्यं पुण्यपापाभ्यां शनैः^२ सर्वशरीरगैः ॥१७
 बन्धनैः रोधनैर्नान्वितात् तोपायपीडनैः । दण्डेरदण्डकरणैविषादयरिवेदतः ॥१८
 सात्त्विकैः प्रतिधर्माद्यै राजसैश्चित्रवेष्टितैः । तामरैस्तत्पमोहाट्टैश्चामानाः पुनः^३ तुनः ॥१९
 श्लेष्मारुपतित्ताद्यर्थमाबीश्चत्सदर्शनैः । एवचिद्वित्तिवृत्तिभ्याममृतानन्ताहिताहितैः ॥२०
 अलङ्कारोपयोगेन मन्मथद्यर्विचेष्टितैः । धनलाभाशयत्कैजन्तुसङ्कृतपाततनैः ॥२१
 अधिसिद्धिगतं याति नानाविधमनोरथैः । आत्मस्नेहस्त्रद्वेषस्त्वैकृतद्वरक्षणैः ॥२२
 अतिक्षीबत्वसंक्षेष्मभक्षुतक्षामक्षमामयैः । यातनोपायपैशुन्यशुन्यत्वोपरमैस्तथा ॥२३
 अप्रशस्तैरनुष्ठानैः समीपस्थापदः समाः । हिसकाः प्राणिनः पश्चवितश्चालापभाषिणः ॥२४
 साधुनांभाषकाः स्तेना निर्दग्धाः पारादरिकाः । नीचकर्मसमाचाराः सर्वभक्षाः पिशान्वत् ॥२५
 दुष्कुलोना दुराचारा नृपाणामुपजीविनः । विप्रकार्या विकर्मस्थाधनिनो दुष्टचेतसः ॥२६
 तुव्यक्ता हरिगान्हत्वा वासं कृत्वा यथा वने । तथा खादन्ति पिशुना बहवश्च^४ क्रियावशात् ॥२७

चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैद्य एवं शूद्रों) में जितने मनुष्य हैं, वे एक दूसरे के वीर्य से उत्पन्न होने के नाते अधम हो गये हैं और उनमें सभी धार्मिक कार्यों द्वारा वर्ण सांकर्य दिलाई भी देता है । १४। शूद्र और ब्राह्मण आदि की रचना में कोई भेद नहीं है अतः सभी धर्म समान होने के नाते संस्कार आदि व्यर्थ हैं । १५। उसी प्रकार अन्यान्य धर्म द्वारा कार्य करना विद्योग, जन्म मरण और असेवनीय पदार्थ का सेवन करना तथा अन्य बातों में शूद्रों और ब्राह्मणों में समानता है । १६। तथा बुद्धि, शक्ति, स्वभाव, धर्म जाति आदि, संपत्ति, समस्त शरीर से किये गये पुण्य पाप, वाले कर्तव्यों के करने, बंधन अवरोधन, भाँति-भाँति के दुःख देने के उपायों से भीड़ित करने दण्ड देने, निषाद, दुख, सात्त्विक प्रेम एवं धर्म आदि रजोगुण द्वारा उत्पन्न अनके भाँति की चेष्टाओं के करने आदि तपोगुण द्वारा उत्पन्न संताप तथा मोह में पड़कर बार-बार दुःखी होने के वात, पित्त और कफ द्वारा भयानक दर्शन, कहीं प्रवृत्ति कहीं निवृत्ति कहीं सत्य कहीं असत्य कहीं हित और कहीं अहित, अच्छे-अच्छे अनेक आभूषणों से सज्जित होकर कामवश भाँति-भाँति की चेष्टा करने, धन लोभ के नाते अनेक जीवों के वध करने भाँति-भाँति के मनोरथ सफल करने आत्मीय (अपने) से स्नेह दूसरे से वैर एवं अपने धन की रक्षा करने अत्यन्त मद, मानसिक दुःख, क्षुधा तृष्णा वाले रोग, दुखदायी उपाय करने, चुगुली (किसी के घर को सूना करने के लिए उपाय) करने आदि इन अनुचित कार्यों द्वारा जो आपदायें आती हैं वे शूद्रों और ब्राह्मणों के लिए समान ही होती हैं । इसी भाँति हिसक जीव, पापी एवं शूद्र बोलने वाले, कभी अच्छी बात भी बोलने वाले चोर, निर्दयी, व्यभिचारी, नीच कर्म करने वाले, पिशाच की भाँति सभी कुछ खाने वाले, नीच कुल में उत्पन्न,

१. धर्मेन्ज्यादिभिः । २. मंत्रः । ३. हरयश्च ।

वेदवादमधीयानाः^१ प्राणिधाताभिशंसिनः । पुष्णन्ति कपटैरर्थान्वेदविकल्पिणोऽधनाः ॥२८
 मायिनो मत्सरप्रस्ता तुव्या मुग्धा नदोद्धताः । चाटा: कार्पटिका: कूरा: कदर्या: कलहस्तिया: ॥२९
 बाचाटदुष्टकुलटा अटन्तो भाटकैः सह । भण्डमान्या भटाटोपैः संजुङ्गाः सुविलुण्ठकाः ॥३०
 पर्यटा भाटका जीवा: कण्ठकम्लोळभाषिणः । विकीणते हृविक्रियमभक्ष्यद्रव्यभक्षिणः ॥३१
 शूद्रकम्लानुतिष्ठन्ते नित्तपास्ते नराधमाः । सेदाध्यापनदर्णिणज्यकृप्याद्यारम्भलम्भिताः ॥३२
 गृह्णन्तः सम्पदो बाह्यादद्रव्यधान्यधनादिकाः ॥३२
 कोषाणाभ्यन्तरान्वेषांस्तथा दुष्टमनोरथान् । अत्यजन्तो विशिष्टानां श्रेष्ठास्ते कचमर्दिनः ॥३३
 नोपदेयानि वस्त्राणि नित्यमादते द्विजाः । हृण्यन्ति न हेयानि कथं ते गुरुबः क्षितौ ॥३४
 दण्डिका विंडिकः भज्ञाश्रेष्टाश्रेष्टालचेष्टिता । वैतण्डकास्ते निद्रन्ति यथा सिंहो मृगान्पश्चून् ॥३५
 निर्दन्त्य मुनिमालोरुप मन्यमानाः समुप्रतम् । परिशूद्यादतिष्ठन्ते विक्तानित्तान्सवैरिणः ॥३६
 तस्मात्संसारिकाः सत्त्वाश्रितक्लेशकलद्विताः । दौः शील्यदौर्भनस्याद्यैस्तुल्यजातीयवन्धनात् ॥३७

दुराचारी, राजा के सेवक, विरुद्ध कर्म करने वाले, नीचकर्म में सदैव लीन रहने वाले, धनी, दुष्ट, जंगल में रहकर हरिणों का वध कर जाने वाले बहेलिये की भाँति अनेकों प्रकार के काम करने वाले चुगुल खोर भी अनेकों के विनाश करते हैं । वेद के अर्थवाद को पढ़ने वाले जीव वध के लिए सम्मति देने वाले ऐसे नीच पुरुष, जो वेद बेंचने वाले हैं, छल से अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं । उसी प्रकार मायावी मत्सरता से युक्त लोभी, मुग्ध, मदांध, विश्वासधाती, कषाय वस्त्र पहनने वाले, कूर कदर्य, क्षगड़ालू, अत्यन्त बोलने वाले, दुष्टकुल का साथ करने वाले भीरों के साथ धूमने वाले आडम्बर के नाते भाँडों द्वारा सम्मानित क्रोधी चोर । १७-३०। किराये की सवारी से चारों ओर धूमने वाले, कंठस्थ इलोंकों का हर (सर्गव) उच्चारण करने वाले तथा जो निषिद्ध वस्तु बेंचते हैं एवं अभक्ष्य पदार्थ खाने वाले ऐसे अधम मनुष्य अपने आचरणों द्वारा शूद्रों की भाँति तपोबल से च्युत हो जाते हैं । इसी भाँति नौकरी, अध्यापक, रोजगार, खेती करते हुए धन, धान्य और संपत्ति जो किसी भी प्रकार की एवं बाहर से प्राप्त होती है इन्हें वे स्वीकार कर लेते हैं । महान् क्रोध के वश में होकर मानसिक दोष एवं दुष्ट भावना को कभी नहीं छोड़ते हैं और नाई का काम करते हुए भी वे अपने को सब से श्रेष्ठ मानते हैं । ३१-३३। इसीलिए जो ब्राह्मण नीच वृत्ति अपना कर नित्य वस्त्रों का आदान प्रदान करते हैं, और हेय (त्याज्य) वस्तु का त्याग नहीं करते हैं वे इस पृथ्वी पर गुहभायों (ब्राह्मणत्व) से सम्मानित कैसे हो सकते हैं । ३४। क्योंकि दंड धारण बाजे, बजाकर याचना, भाँड़ों का साथ भीषण काम, चांडाल के समान व्यवहार तथा वैतण्डिक मनुष्य जंगली जानवरों के वध करने वाले सिंह की भाँति (मनुष्यरूप) पशु के वध को करते ही रहते हैं । ३५। बौद्ध साधुओं को देख कर अपने को बहुत बड़ा मानने वाले पराभव को प्राप्त करते हैं अपने में ऐसे निर्यक वैर करने वाले को बार-बार धिक्कार है । ३६। इस प्रकार संसार के जीव सुशीलता, दौर्मनस्य आदि के द्वारा समान जातीय होने के नाते अशान्त चित्त रहते हैं । ३७। जिस प्रकार ब्राह्मण मैथुन करने के लिए अनुराग करने वाली

शूद्रां प्ररोचते विप्रो दागिणीं मैथुनं प्रति । ता कामदुःखविगमे गर्भं धते समागमे ॥३८
 कामकामातुराम्यस्तु रोचन्ते शूद्रमानवाः । मैथुनं प्रति ब्राह्मणे तेऽपि तासां तुखावहाः ॥३९
 ये तु जात्यादिभिर्भिन्ना गवाख्योष्ट्रमतङ्गजाः । ते विजानिषु नो गर्भं कुर्वतेऽपि सुखार्थिनः ॥४०
 अनड्वानेव गोरेव कामं पुण्णाति सङ्गमे । घोटकाश्च रत्ति सम्यक्कुर्वते वडवासु च ॥४१
 पतिं करभमेवाप्य करभो रमते मुद्वा : ग्रजमेव पर्ति लब्धवा मुखं तिष्ठति हस्तिनी ॥४२
 तिर्यग्जातिः स्त्रिया साकं कुर्वण्णाऽपि हि मैथुनम् । न तस्याः कुरुते गन्धं नरो नापि तुलसितिकाम् ॥४३
 तिरश्चा सह कुर्वणा मैथुनं मनुजाङ्गना । नाधते तत्कृतं गर्भं न युक्तं मैथुनं त्ययोः ॥४४
 नैवं कश्चिद्विभागोस्ति मैथुने स्त्रीमनुष्ययोः । येन संभीयतं भेदः प्रस्फुटं द्विजशूद्रयोः ॥४५
 वेदपानच्छ्लेनायां न क्रियाभिः प्रपद्यते ! वहुप्रिञ्जडसङ्गातैरविशिष्टे पदेऽहनि ॥४६
 देहे देहिनि चामुच्चिन्द्रशुद्धावनवस्थिते । रागद्वेषादिभिर्दैर्यरथिकं परिपीडिते ॥४७
 कुलालचक्रवद्भ्रान्तमानसे विषयार्थवे । घोरदुःखभयाक्रान्ते समाजेऽनीश्वरात्मनि ॥४८
 जन्ममृत्युजराशोकानिष्टगोगाग्निपीडिते । हीनसत्त्वशरीरादै न दिवेषो विभाव्यते ॥४९
 तस्मान्मनुष्यभेदोऽयं सङ्गेतबलनिर्मितः । ब्राह्मणं ब्राह्मणासङ्गाद्ब्राह्मणी चोपसेवते ॥५०

शूद्र स्त्री को चाहता है और वह स्त्री उसके समागम कामपीड़ा समाप्त होने पर गर्भधारण करती है । २८। उसी प्रकार काम पीडित ब्राह्मणी भी भोग करने के लिए शूद्र को अत्यन्त चाहती है और वे उन्हें सुख भी प्रदान करते हैं । इससे शूद्र भी ब्राह्मण के समान ही हैं । ३१। जिस प्रकार गाय, घोड़े, ऊँट, हाथी जिनकी जाति पृथक-पृथक है, वे अपने से भिन्न दूसरी जाति वाले को चाहते हुए भी उसके साथ भोग आदि नहीं करते हैं । ४०। क्योंकि सांड और गाय ही के संयोग में उनकी रति उन्हें आनन्द प्रदान करती है, घोड़े इसी प्रकार से घोड़ी ही के साथ भोग करते हैं, ऊँटिनी अपने पति ऊँट को प्राप्त करके आनन्द पूर्वक रमण करती हैं एवं हथिनी अपने पति हाथी को पाकर सुखी होती है । ४१-४२। इसलिए जिस प्रकार पशु-पश्ची आदि से भोग कराने पर मनुष्य स्त्री (उनके द्वारा) गर्भ धारण नहीं कर सकती है इसी प्रकार मनुष्य भी किसी पशु आदि से सभोग कर उनमें गर्भाधान नहीं कर सकता है । ४३। यद्यपि यह ठीक है कि मनुष्य स्त्री, पशु, पश्ची द्वारा संभोग करने पर गर्भ धारण नहीं करती है तथापि इन दोनों का आपस में भोग करना भी उचित नहीं है । ४४। इसी प्रकार सभी पुरुषों एवं स्त्रियों में कोई ऐसा भेद नहीं है जिसके द्वारा (ब्राह्मण आदि से पृथक्) शूद्र एवं (ब्राह्मणी से पृथक्) शूद्र की स्त्री पहचानी जा सके । ४५। उसी प्रकार वेदाध्ययन के व्याज से या क्रिया के द्वारा भी जाति विभाग नहीं हो सकता है । क्योंकि अनेक जड़ पदार्थ (पृथिवी जल आदि) के भेद से बनी हुई यह देह तथा अपवित्र अस्थिर और प्रेम, द्वेष आदि दोषों से सदैव दुःखी जीव में (जाति भेद) संभव नहीं हो सकता है । जिस प्रकार विषय रूप समुद्र में कुम्हार के चाक की भाँति मन सदैव झूमा करता है, उसी प्रकार घोर दुःख एवं भय से व्याकुल होने वाले नास्तिक समाज में जन्म-मरण, बुदापा, शोक, दुःख और अग्निदाह से दुःखी होने वाले उन साधारण जीव की शरीर आदि में कोई विशेषता होती भी नहीं है । ४६-४९। इसलिए मनुष्यों में जाति भेद की कल्पना के अनुसार ब्राह्मण के साथ समागम न करने

पर्ति त्यक्त्वा मुखास्वादलालसैर्मदलालसैः । असेव्यते विटं गत्वा बन्धकी स्तेकैरयि ॥५१
ब्राह्मणात्प्रच्यवन्तेऽन्ये महापातकसेविताः । व्यलीकल्पनैवैषा तस्माज्जात्यादिकल्पना ॥५२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे
वर्णव्यवस्थावर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः । ४३।

अथ चतुर्थचत्वारिंशोऽध्यायः

वर्णविभागविवेकवर्णनम्

ब्रह्मोदाच

हेयोपादेयतत्त्वज्ञास्त्यक्तान्यायपथानामाः । जितेन्द्रियमनोदाचः सदाचारपरायणाः ॥१
नियमाचारवृत्तस्था हितान्वेषणतत्पराः । संसाररक्षणोपायक्रियायुक्तमनोरथाः ॥२
सम्यग्दर्शनसम्पन्नाः समाधिस्था हृतकुधः । स्वाध्यायथरत्त्वहृदयास्त्यक्तसङ्गा विमत्सराः ॥३
विशोकः विमदा शान्ता सर्वप्राणिहितैषिणः । सुखदुःखसमालोका विविक्तस्थानवासिनः ॥४
द्रतोपयुक्ततर्वङ्गा धार्मिकाः पापभीरवः ; निर्भमा निरहङ्कारा दानशूरा दयापराः ॥५
सत्यब्रह्मविदः शान्ता सर्वशास्त्रेषु निष्ठिताः । सर्वलोकहितोपायप्रवृत्तेन स्वयंभुवा ॥६

पर भी (सदाचारिणी) ब्राह्मणी ब्राह्मण कहलाती है पर मुख के स्वाद (चटोरापन) या मस्ती में आकर पति का त्याग कर जार पुरुष से सम्भोग कराने तथा व्यभिचारिणी होने पर नौकर चाकर आदि सभी लोगों से भोग करने पर वह ब्राह्मणत्व से च्युत भी हो जाती है । ५०-५१। इसी भाँति अन्य महापातक करने वाले भी ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाते हैं । इसलिए ब्राह्मण-क्षत्रिय दी कल्पना निश्चित झूठी कल्पना है । ५२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मण्पर्व के षष्ठी कल्प में वर्णव्यवस्था वर्णन नामक

तैतालिसवाँ अध्याय समाप्त । ४३।

अध्याय ४४

वर्ण विभाग विवेक वर्णन

ब्रह्मा बोले— (कौन वस्तु) त्याज्य और कौन वस्तु ग्राह्य है, इसका भली-भाँति ज्ञान रखने वाले वे ब्रह्मण जो अनीति मार्ग को त्याग इन्द्रियजित् होकर मन एवं वाणी पर अधिकार रखते हैं, सदाचारी हैं नियम और आचार को अपनाकर हितान्वेषी, संसार की रक्षा के लिए उपायों द्वारा कार्य करने में उत्साही, तत्त्वज्ञानी के लिए समाधि में स्थित, क्रोधहीन और स्वाध्याय का प्रेमी आसक्ति रहित मत्सरहीन, शोक और मद शून्य, शांत, सभी जीवों के हितेच्छु मुख-दुःख में समान देखने वाले एकान्तवासी, तन-मन से व्रती एवं धार्मिक, पाप से डरने वाले निर्मोही, निरभिमानी, दानवीर, दयालु, सत्य रूपी ब्रह्म के ज्ञानी और सभी शास्त्रों के जो नैषिक विद्वान् हैं उन्ही मर्यादा रखने वाले को सभी के हित करने में सदैव लगे रहने वाले को स्वयंभू, वागीश्वर देव, नाभि से उत्पन्न, भव को नाश करने वाले ब्रह्म ने

वागीभ्वरेण देवेन नाभेयेन भवन्त्तिदा । ब्रह्मणा कृतमर्यादात्त एवं ब्राह्मणाः स्मृताः ॥७
 महतपोधनैरार्थः सर्वसत्त्वाभयप्रदः । सर्वलोकहितार्थाय निपुणं सुप्रतिष्ठितम् ॥८
 वृहस्त्वाद्ब्रगवान्ब्रह्मा नाभेयस्तस्य ये जनाः । भक्त्यासक्ताः प्रपञ्चात्र ब्राह्मणात्ते प्रकीर्तिताः ॥९
 क्षत्रियास्तु क्षत्रियाणाद्वैश्या वार्ताभिवेशनात् । ये तु श्रुतेद्वृत्तिं प्राप्ताः शूद्रास्तेनेह कीर्तिताः ॥१०
 ये चाचाररतः प्राहुर्ब्रह्मण्य ब्रह्मददिनः । ते तु फलं प्रशंसन्ति यत्सदा सनसेप्तितम् ॥११
 क्षमा दमो दया दानं सत्यं शौचं धृतिर्घृणा । मार्दवार्जवसन्तोषवनहङ्कारतःशानाः ॥१२
 धर्मो ज्ञानमपैशुन्यं ब्रह्मचर्यममूढता । ध्यानमःस्तिक्यमद्वेषो वैराग्यं च शमात्मता ॥१३
 यापभीरुत्वमस्तेष्ममात्सर्यमतृज्ञता । नैःसद्यं गुणुशूषा सनोवाक्याय संयमः ॥१४
 य एवम्भूतमाचारमनुष्ठिन्ति मानवाः । ब्राह्मण्यं पुष्कलं तेषां नित्यमेव प्रवर्धते ॥१५
 ते स्वमतास्वादलब्धवर्णन्नारा महैजः । सर्वशास्त्राविरोधेन पवित्रीकृतमानसाः ॥१६
 सज्जनाभिमताः प्राज्ञाः पुराणागमपण्डिताः । गीतगीतागमाचाराः स्मृतिकाराः पठन्ति च ॥१७
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु चतुर्युर्गविभागाशः । वर्णश्रमाचारकृतं कर्म सिद्धचत्यनुत्तमम् ॥१८
 संसिद्धायां तु वार्तायां ततस्तेषां स्वयं प्रभुः । मर्यादां स्थापयामास यथारब्धं परस्परम् ॥१९
 ये वै परिगृहीतारस्तेषां सत्त्वबलाधिकाः । इतरेषां क्षत्रियाणान्स्थापयामास क्षत्रियान् ॥२०

ब्राह्मण हैं, ऐसा कहा है । १-७। उसी प्रकार महातपस्वी तथा सभी जीवों को अभय प्रदान करने वाले आर्यों ने भी समस्त लोकों के कल्याण के निमित्त इस मर्यादा को भली भाँति सुदृढ़ एवं निश्चित कर दिया है । ८। इस प्रकार वृहत् होने के नाते ब्रह्मा और उस महान् पुरुष की नाभि से उत्पन्न होने के कारण नाभिय कहे जाते हैं उनमें जो लोग भक्त एवं प्रपञ्च (शरणागत रक्षक) हैं, वे ब्राह्मण कहे गये हैं । ९। इसी भाँति किसी को नष्ट होने से बचाने वाले क्षत्रिय, कृषि एवं व्यापार संबंधी आदि कार्य करने वाले वैश्य और जो वेदाध्ययन से अत्यन्त दूर भागे हैं वे शूद्र कहे गये हैं । १०। जो सदाचारी ब्रह्मज्ञानी को ब्राह्मण कहते हैं वे उनके कर्म फलों की जो सदाचारियों के मनोरथ के अनुकूल होते हैं प्रशंसा करते हैं । ११। इसलिए क्षमा, इन्द्रिय दमन, दया, दान, सत्य, पवित्रता, धैर्य, धारणा, मृदुता, सरलता, संतोष, निरभिमान, तप, शम, धर्म, ज्ञान, चुगुली न करने, ब्रह्मचर्य, विद्वान्, ध्यान, आस्तिकता, द्वेषहीन, स्वर्ग आदि लोक में विश्वास रखने, वैर न करने, वैराग्य, पाप से डरने, चोरी, मत्सर एवं तृष्णा न करने, संसार से पृथक् रहकर गुरुसेवा करने वाले, मन, वाणी और शरीर का संयम रखने वाले ऐसे सदाचारी मनुष्यों में ब्रह्मतेज पूर्ण रूप से सदैव बढ़ता रहता है । १२-१५। ऐसे ही लोग वर्ण और आचार की प्राप्ति कर महान् तेजस्वी भी हो गये हैं एवं सभी शास्त्रों की पवित्र भावनाओं द्वारा उनके चित्त निर्विरोध शुद्ध हो गये हैं । १६। सज्जनों की सम्मति से वे ही प्राज्ञ, पुराण एवं वेद के पडित, गीता के मर्मज्ञ और सम्पत्तियों के रचयिता हैं । ऐसे ही लोगों का कहना है कि चारों युगों के विभाग द्वारा सभी मन्वन्तरों में समय वर्ण और आश्रम के द्वारा किये गये आचार कर्मों की उत्तम सिद्धि (सफलता) प्राप्त होती रहती है । १७-१८। इसलिए कर्मसिद्धि के अनन्तर उनमें ब्रह्मा ने परस्पर प्रारम्भ की गयी मर्यादा को स्थापित किया । १९। जो अधिक शक्ति-शाली होने के नाते सभी (जनता) को अपनाने एवं उन्हें नष्ट होने से बचाने का कार्य करेंगे वे क्षत्रिय

उपतिष्ठन्ति ये तान्वे याचन्तो नर्मदाः सदा । सत्यब्रह्म सदाभूतं वदन्तो ब्राह्मणास्तु ते ॥२१
 ये चान्येष्यबलात्तेषां वैश्यकर्मणि संस्थिताः । कीलानि नाशयन्ति स्म पृथिव्यां प्रसगतन्दिताः ॥
 वैश्यानेव तु तश्नाह कीनाशान्वृत्तिमाश्रितान् ॥२२
 शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये नराः । निस्तेजसोऽप्लववीर्याश्च शूद्रांस्तानश्वीतु सः ॥२३
 खात्प्राणक्षात्र्यविशा शूद्राणां च परस्परम् । क्षम्भाणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभदैर्युजैः ॥२४
 शमस्तपो दमः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥२५
 शौद्यं तेजो धृतिर्दृष्ट्यं युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥२६
 छृषिगोरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् । परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यपि स्वभावजम् ॥२७
 योगस्तपो दमा दानं सत्यं धर्मशुतिर्घृणा । ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यमेतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥२८
 शिखा ज्ञानमयी दस्य यवित्रं च तपोमयम् । ब्राह्मणं पुष्कलं तस्य मनुः स्वायम्भुवोऽन्वीत ॥२९
 यत्र वा तत्र वा वर्णं उत्तमाधममध्यमाः । निवृत्तः पापकर्मस्यो ब्राह्मणः स विधीयते ॥३०
 शूद्रोऽपि शीलसम्पदश्च ब्राह्मणादधिको भवेत् । ब्राह्मणो विगताचारः शूद्राद्वीनतरो भवेत् ॥३१
 न सुरां सन्धयेद्यत्तु आपणेषु गृहेषु च । न विक्रीणाति च तथा तज्ज्वलो हि स उच्यते ॥३२
 दद्येका स्फुटमेव जातिरपरा कृत्यात्परं भेदिनो । यदा व्याहृतिरेकतामधिगता यच्चान्यधर्मं यर्यां ॥

कहलायेंगे और जो क्षत्रियों के यहाँ आकर उहें प्रसन्न कर याचना करते हैं और सत्य रूपी ब्रह्म की नित्यता का प्रचार करते हैं वे ब्राह्मण कहे जाते हैं । २०-२१। जो लोग निर्बल होते हुए भी वैश्य कर्म करने में संलग्न होकर पृथिवी की गहरी जुताई आदि कृषि एवं व्यापार करते हैं वे वैश्य और शोक प्रस्त एवं दीन हीन दशा में वर्तमान रहते हुए भी उपरोक्त तीनों वर्णों की जो सेवा करते हैं तथा निस्तेज एवं अन्त शक्ति वाले वे शूद्र कहे जाते हैं ॥२२-२३। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के आपसी कर्म उनके स्वाभाविक गुणों द्वारा पृथक्-पृथक् हैं । २४। इसलिए शांति, तप, दम, पवित्रता, सहनशीलता, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता (स्वर्गादि में विश्वास एवं श्रद्धा) ये ब्राह्मणों के स्वाभाविक कर्म कहे गये हैं । २५। कूरता, तेज, धैर्य, युद्ध में चतुरता एवं युद्ध से न भागना दान और प्रभुत्व ये क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं । २६। खेती, गोरक्षा और वाणिज्य (व्यापारादि) वैश्य के तथा सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है । २७। इस प्रकार योग, तप, दया, दान, सत्य, धार्मिक अध्ययन, धृणा, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता ये ब्राह्मण के लक्षण हैं । २८। क्योंकि जिसमें ज्ञान रूपी शिखा (चोटी) एवं तप रूपी पवित्रता सम्भित है उसे स्वयंभू मनु जी ने प्रधान ब्राह्मण बताया है । २९। तदनुसार जिस किसी वर्ण में उत्तम, मध्यम या अधम कोई भी मनुष्य पाप कर्म न करे वह ब्राह्मण है । ३०। क्योंकि अच्छे शीलवाला शूद्र ब्राह्मण से उत्तम बताया गया है और आचार भ्रष्ट ब्राह्मण शूद्र से भी हीन कहा गया है । ३१। इसी भाँति जो अपनी दूकान में या घर में शराब न रखे और न उसका व्यापार ही करे वह सत् (स्पृश्य) शूद्र बताया गया है । ३२। इसीलिए यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि जाति (मानव-जाति) एक ही है, किन्तु दूसरी (ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि) जाति के निर्माण केवल भिन्न-भिन्न कर्मों द्वारा किये गये हैं। अथवा व्यवहार रूप में वह (मानव-जाति) एक ही है केवल धर्मों में भिन्नता है, इसलिए निखिल भाव एवं

एकेकाखिलभावभेदनिधनोत्पत्तिस्थितिव्यापिनी ।

कि नासौ प्रतिपत्तिगोचरपथं यायाद्विभक्त्या नृणाम् ॥३३

श्री भविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठोऽन्ते
वर्णविभागविवेकवर्णनं नाम चतुश्रुत्वारिंशोऽध्यायः ।४४।

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

कातिकेयवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

इदं श्रुणु मयात्यातं तर्कपूर्वमिदं वचः । पुष्माकं संशये जाते कृते वै जातिकर्मणोः ॥१
धुनर्वच्चिम निबोधध्वं समासान्न तु विस्तरात् । संसिद्धिं यान्ति मनुजा जातिकर्मसमुच्चयात् ॥२
सिद्धिं गच्छेद्यथा कार्यं दैवकर्मसमुच्चयात् । एवं संसिद्धिमायाति पुरुषो जातिकर्मणोः ॥३
इत्येवमुत्तवान्पूर्वं शिष्याणां लोधने पुरा । योगीश्वरी महातेजाः समासान्न तु विस्तरात् ॥४

सुमन्तुरुवाच

इति पृष्ठः पुरा ब्रह्मा कृष्णोन्नोवाच भारत । सवितर्कमिदं वाक्यं विप्रर्वे जातिकर्मणोः ॥५

भेद मरण, उत्पत्ति तथा स्थिति में व्याप्त रहने वाली यह मानवी जाति इन्हें दिखाई नहीं दे रही है जो
मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जाति द्वारा विभाजन करने के लिए तैयार रहते हैं ।३३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपूर्व के षष्ठी कल्प में वर्ण विभाग विवेक वर्णन नामक
चौवालिसवाँ अध्याय समाप्त ।४४।

अध्याय ४५

कातिकेय वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मेरी उस तर्क पूर्ण बात को सुनो जो तुम लोगों के जाति कर्म विषयक संदेह को दूर
करने वाली है ।१। मैं विस्तार से नहीं प्रत्युत् थोड़े ही मैं विवेचन पूर्वक फिर कह रहा हूँ । अतः तुम लोग
सावधान होकर सुनो ! मनुष्य को जाति और कर्म इन दोनों के योग से संसिद्धि (सफलता) प्राप्त होती
है ।२। जिस प्रकार दैव बल एवं कर्म योग से कार्य की सफलता मिलती है उसी प्रकार जाति और कर्म के
(सहयोग) द्वारा पुरुष सफल होता है ।३। शिष्यों की जानकारी के लिए महातेजस्वी योगीश्वर ने पहले
ही थोड़े मैं विवेचन पूर्ण यही (बातें) कहा था ।४

सुमन्तु ने कहा—हे भारत ! ऋषियों के पूछने पर ब्रह्मा ने उनसे यही कहा था कि हे विप्रर्वि !
जाति और कर्म के संबंध में यह बात तर्कपूर्ण है ।५। हे महाबाहो ! इसलिए तुम भी कातिकेय के विषय में

तस्मात्त्वया महादाहो न कायो विस्मयो नृप । कार्तिकेयं प्रति सदा देवानं दुर्विदा गतिः ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्थसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि षष्ठीकल्पे
कार्तिकेयकर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः । ४५।

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्मपर्वर्णनम्

सुमन्तुरुद्वादृ

देयं भाद्रपदे मासि षष्ठी च भरतर्षभ । शुपुण्येयं पश्यहरा शिवा शान्ता गुहश्रियः ॥१
स्नानदानादिकं सर्वं यस्यामक्षय्यमुच्यते । येऽस्यां पश्यन्ति गाङ्गेयं दक्षिणापथमाश्रितम् ॥२
ब्रह्महत्यादिभिः पश्यमुच्यन्ते नाश्र संशयः । तस्मादस्यां सदा पश्येत्कार्तिकेयं नृपोत्तम ॥३
पूजयन्ति गुहं येऽस्यां नराभक्तिसमन्विताः । प्राप्यह ते सुखान्कामान्नाच्छन्तीन्द्रसलोकताम् ॥४
यत्तु कारयते देशम् सुदृढं सुप्रतिष्ठितम् । दार्ढं शेलमयं चापि भक्त्या श्रद्धासमन्वितः ॥५

गाङ्गेयं यानमारहृ गच्छेद्गाङ्गेयसद्य वै ॥५

सम्मार्जनादियः कर्म कुर्यादिगुहाते नरः । ध्वजस्यारोपणं राजन्स गच्छेदुद्रसद्य वै ॥६
चन्दनागरुकर्पूर्वेत्रं पूजयते गुहम् । गजाभ्यरथयानादधं सैनापत्यमवाप्नुते ॥७

संदेह न करो क्योंकि देवताओं की गति दुर्जय होती है । ६

श्री भविष्य महापुराण में ब्रह्मपर्व के षष्ठी कल्प में कार्तिकेय दर्शन नामक
ऐतालिसवाँ अध्याय समाप्त । ४५।

अध्याय ४६

ब्रह्मपर्व वर्णन

सुमंतु ने कहा—हे भरतवर्ज ! भाद्रों मास की षष्ठी तिथि पूण्य प्रदान करने वाली पापनाशिनी कल्याण एवं शांति स्वरूप और कार्तिकेय के लिए अत्यन्त प्रिय बतायी गयी है । १। इसलिए इसमें स्नान-दान एवं किये हुए तभी कुछ कर्म अक्षय होते हैं जो लोग इस तिथि में दक्षिण देशों में स्थायत प्राप्त कार्तिकेय जी का दर्शन करते हैं उनके ब्रह्म हत्या आदि सभी पाप निःसंदेह नष्ट हो जाते हैं हे नृपोत्तम ! इस तिथि में सदैव कार्तिकेय का दर्शन करना चाहिए । २-३। इस प्रकार जो मनुष्य इस तिथि में श्रद्धा भक्ति पूर्वक कार्तिकेय की पूजा करते हैं वे अपने अभिलिखित मनोरथ सफल करते हुए इन्द्र लोक की प्राप्ति करते हैं । ४। तथा जो लोग लकड़ी या पत्थर से कार्तिकेय जी के मन्दिर का सुन्दर एवं दृढ़ निर्माण करते हैं वे कार्तिकेय की सवारी पर बैठकर उनके लोक की यात्रा करते हैं । ५। और जो कार्तिकेय के मन्दिर की सफाई (झाड़ू वगैरह) करते हैं और उसे ध्वजा से भी सुशोभित करते हैं वे रुद्र लोक की प्राप्ति करते हैं । ६। इसी प्रकार जो चन्दन, गुण्गुल और कपूर से कार्तिकेय का पूजन करते हैं वे हाथी, घोड़े, रथ एवं

राजां पूज्यः सदा प्रोक्तः कार्तिकेयो महीपते । कार्तिकेयमुते नान्यं राजां पूज्यं प्रचक्षते ॥८
 ज्ञापाणं गच्छमानो यः पूजयेत्कृतिकामुतम् । स शत्रुं जयते वीर यथेन्द्रो दानवान् नरणे ॥९
 तस्मात्सर्वप्रदत्नेन पूजयेच्छङ्गारात्मजश्च । पूजमानस्तु तं भक्त्या नम्पकैर्विविधैर्नृप ॥
 मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तदा गच्छेच्छिवालयम् !!१०
 तैलं षष्ठ्यां न भुज्जीत न दिवा कुरुनन्दनः यस्तु षष्ठ्यां नरो नक्तं कुर्याद्व भरतर्षेभ ॥
 तर्वपायैः स निर्मुक्तो गाङ्गेयस्य सदो व्रजेत् !!११
 श्रिकृष्णो दक्षिणामाशां गत्वा यः शद्यान्वितः । पूजयेद्देवदेवेशं स गच्छेच्छान्तिमन्दिरम् ॥१२
 हति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां षष्ठीकर्णं कार्तिकेयमाहात्मयर्णनं
 नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६ । इति षष्ठी कल्पः समाप्तः।

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

शाकसप्तमी व्रतवर्णनम्

सुमन्तुरवाच

सप्तस्यां सोपवासस्तु नक्ताहारोऽपि वा भवेत् । सप्तस्यां देवदेवेन लब्धं स्वं रूपमादरात् ॥१

भाँति-भाँति की सवारी प्राप्त करते हुए सेना नायक होते हैं । ७। हे महीपते ! इसलिए कार्तिकेय का पूजन राजाओं को सदैव करना चाहिए क्योंकि कार्तिकेय से पृथक् अन्य कोई राजाओं का पूज्य है भी नहीं ॥८-९। इस प्रकार कार्तिकेय की पूजा करके जो मनुष्य युद्ध-स्थल में जाता है वह युद्ध में दानवों पर इन्द्र की भाँति सदैव शत्रु पर नियम प्राप्त करता है । अतः प्रयत्नं पूर्वक शकर सुत कार्तिकेय की पूजा अवश्य करनी चाहिये । हे नृप ! चम्पा आदि अनेक प्रकार के फूलों से उनका पूजन करने पर वह मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर शिव लोक की प्राप्ति करता है । १०। हे भरतर्षभ ! हे कुरुनंदन ! इसी प्रकार षष्ठी तिथि में किसी भी समय तैल का भोजन न करना चाहिए । क्योंकि जो मनुष्य षष्ठी में नक्तव्रत (रात में भोजन) रहता है वह सभी पापों से मुक्त होकर कार्तिकेय के लोक की प्राप्ति करता है । ११। और जो शद्यापूर्वक तीन बार दक्षिण दिशा में जाकर देवाधिदेव कार्तिकेय की पूजा करता है उसे शांति मंदिर (शिवलोक) की प्राप्ति होती है । १२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के षष्ठी कल्प में कार्तिकेय माहात्म्य वर्णन नामक छियालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥४६।

अध्याय ४७

शाकसप्तमी व्रत-वर्णन

सुमन्तु ने कहा—सप्तमी (तिथि) में उपवास या नक्तव्रत अवश्य करना चाहिये क्योंकि इस तिथि में देवाधिदेव सूर्य ने अपने उत्तम रूप को प्राप्त किया है । १। वे पहले अण्डे के साथ उत्पन्न हुए थे और

अण्डेन सह जातो वै अण्डस्थो बुद्धिमाप्तवान् । अण्डस्थस्यैव दक्षेण भायो दत्त्वा स्वकां मुताम् ॥२
नाम्ना हृषेति हृषेण नान्यः नारी तथाऽ भवेत् । अण्डस्थ एव सुचिरं स्थितो मार्तण्ड इत्यतः ॥३
दक्षाजया विश्वकर्मा वपुरस्य प्रकाशयन् । प्रकाशतस्ततो नाम तस्य जातं नराधिप ॥
अण्डस्थस्यैव सञ्जातो यमुना यम एव च ॥४

दाक्षायणी तस्य भार्या वैराग्यात्तनुमध्यमा । चिन्तयामास सा देवी दुःखाश्चिर्वद्यात्ता ॥५
अहो तेजोभयं रूपं कान्तस्य कान्तिमत् । न चास्य किञ्चित्पश्यामि अङ्गं तेजोविमोहितम् ॥६
शुभं कनकतुल्यं भे रूपं कान्तं सुकान्तिमत् । साम्रतं श्यामतां यातं दग्धमेतस्य तेजसा ॥७
तस्मातप्स्ये नपश्चाहं गत्वा वै उत्तरान्कुरुन् ! स्वां छायामत्र निक्षिप्य भयाच्छापस्य हृषेणी ॥८
निक्षिप्योवाच तां द्वालां ना चास्मै वै व्रदिष्यसि । एवं सा निश्चयं कृत्वा गता वै उत्तरान्कुरुन् ॥९
स्वरूपं तत्र निक्षिप्य त्रुडवारुपधारिणी । च्वातर सा मृगं सार्थं दृढन्वर्षगणान्वृप ॥१०
असावपि च मार्तण्डच्छायां भार्याभिमन्यत् । शनिं च तपतीं चैव द्वे अपत्ये च जज्जिवान् ॥११
अथ च्छायात्मापत्यानि स्नेहेन परिपालयेत् । नातिस्नेहेन चापश्चमुनां यममेव च ॥१२

अण्डस्थ रह कर ही उन्होंने उत्तम ज्ञान भी प्राप्त किया था तथा इसी अवस्था में इन्हें दक्ष प्रजापति ने अपनीं रूपा नाम की पुत्री जिसके समान मुन्दरी और कोई अन्य स्त्री नहीं थी, पल्ली रूप में प्रदान किया था । एवं अधिक समय तक अण्डे में रहने के नाते इनका नाम मार्तण्ड भी हुआ । २-३। हे नराधिप ! दक्ष की आज्ञा पाकर विश्वकर्मा ने इनके शरीर को प्रकाशित किया और प्रकाशित होने के नाते ही इनका (सूर्य) ऐसा नाम पड़ा । अण्डस्थ ही रहकर इन्होंने अपनी स्त्री से यमुना और यम नाम की दो सन्तानें पैदा की हैं । ४। एक बार तनुमध्यमा (कृष्ण मष्टक भाग वाली) इनकी दाक्षायणी स्त्री को दुःख के कारण विराग उत्पन्न हो गया था वह दुःख से घबड़ाकर सोचने लगी कि कितने दुःख की बात है कि मैं अपने पति देव के तेजोमय एवं मनोहर उस रूप को जो इनके अत्यन्त तेजस्वी होने के कारण तेज में विलीन हो गया है कुछ भी नहीं देख पा रहा हूँ । ५-६। मांगलिक एवं सुवर्ण की भाँति सौन्दर्य पूर्ण और मनोहर ऐरा यह रूप इस समय इनके तेज से जलकर श्यामल वर्ण हो गया है । ७। इसलिए शाप के भय के नाते (कहा यों ही जाना उचित नहीं है) अपनी छाया को इनकी सेवा में रखकर मैं उत्तर कुरुदेश में जाकर तप करूँगी । ८। इस प्रकार निश्चय कर उसने अपनी छाया उन (अपने पति सूर्य) कीसेवा में रखकर उससे कहा—इस (रहस्य) को इनसे न कहना इसके उपरांत अपने स्वरूप को वहीं रखकर (उत्तर कुरुदेश में जाकर) घोड़ी का रूप धारण कर वहाँ के मृगों के साथ विचरण करने लगी । हे नृप ! इस प्रकार उन मृगों के साथ विचरण करते हुए बहुत वर्ष बीत गये । ९-१०

इधर सूर्य ने भी (इस रहस्य को न जानते हुए उस छाया को ही अपनी स्त्री समझ कर उससे शनि और तपती नामकी दो सन्तानें उत्पन्न किया । १। इसके पश्चात् छाया स्नेह पूर्वक अपनी सन्तान का पालन करती थी किन्तु यमुना और यम को उतने स्नेह से नहीं देखती थी । (कुछ समय के) अनन्तर

अथ ताम्यं विवदोऽमूदादित्यदुहित्रोर्द्धयोः । ते उभे विवदन्त्यौ तु परस्परमसम्मतम् ॥

यमुना तपती चोभे निग्रे सम्बभूवदुः ॥ १३

दद्मोऽपि यमुनाभ्राता छायया ताडितो भृशम् । पाइमुद्यम्य तस्या वै तस्थौ सम्मुख एव सः ॥ १४

छाया शशाप तं रोषाद्यस्मात्पादोद्यतो ममा तस्माते कर्म बीभत्सं प्राणिनां धार्णहिसनम् ॥ १५

भविष्यति चिरं मूढ आचन्द्रार्कं न संशयः । एवं च यदि मूर्मो त्वमिमं स्मृत्यापयिष्यसि ॥ १६

कृमयो भक्षयिष्यन्ति मच्छापकलुषीकृतम् ॥ १७

तेषां विवदभानानां सार्तण्डोऽस्यागम्भत्तः । यमोऽप्याह महात्मानं मार्तण्डं लोकपावनम् ॥ १८

तात् नित्यनियं चापि कूरभावेन पश्यति : न ज्ञायाः गुसमा दृष्टिरस्मास्वस्तीति लक्ष्यते ॥ १९

प्रोवाचाच त तां छायां पार्तण्डो भृशकोपनः । १स्मे अपत्ये किं मूढे समत्वं नानुपश्यसि ॥ २०

यमः प्रोवाच पितरं नेयं माता पितर्मम् । मातुश्छाया त्वियं पापा शस्तोऽहमन्या पितः ॥

यमुना तपती वृत्तं तत्सर्वं विन्यवेदयत् ॥ २१

अथ प्रोवाच मार्तण्डो मार्तण्डो ते पादो महीतले । सांसं रुधिरमादाय कृमयो यान्तु सूतलम् ॥ २२

यमुनायाश्च यत्तोयं गङ्गातुल्यं भविष्यति । नर्मदायास्तपत्याश्च समं पुण्येन वै द्विज ॥ २३

यमुना और तपती नाम की दो लड़कियों में कलह (झगड़ा) आरम्भ हुआ जिसके परिणाम स्वरूप झगड़ती हुई उन दोनों ने आपस में एक दूसरे से विरुद्ध होकर नदी का रूप धारण किया । १२-१३। पश्चात् यमुना का भाई यम भी छाया द्वारा अत्यन्त पीटे जाने पर उसके सामने जाकर उसे अपने पैर उठाकर मारने के लिए तैयार हुआ । इस पर अत्यन्त कुद्ध होकर छाया ने उसे शाप किया कि मुझे मारने के लिए तूने अपना पैर उठाया है इसलिए तुम्हारा कर्म बीभत्सं प्राणियों की जीव हिंसा ही होगा । हे मूढ़ ! (अत्यकाल के लिए नहीं) प्रत्युत चन्द्र और सूर्य की जब तक स्थित हैं तब तक के लिए मेरा शाप समझना और उठे हुए इस अपने पैर को जो भेरे शाप से कलुषित हो गया है तू यदि भूमि पर रखेगा तो कीड़े इसे खा जायेंगे । १४-१७

इस प्रकार उन दोनों के झगड़ते हुए मार्तण्ड भी वहाँ आ गये । यम ने महात्मा मार्तण्ड से जो लोक पवित्र करते हैं कहना आरम्भ किया । १८। कि हे पिता ! यह मुझे प्रतिदिन कूर भाव से देखती है तथा हमें कभी भी अपनी सन्तान की भाँति के समान दृष्टि से नहीं देखती है यह मैं भली भाँति जानता हूँ । १९। तदुपरांत अत्यन्त कुद्ध होकर मार्तण्ड ने भी उस छाया से कहा मूर्ख ! सभी सन्तानों पर समान होने के नाते समान दृष्टि रखनी चाहिए । तू सभी को समान दृष्टि से क्यों नहीं देखती है । २०। यम ने कहा—हे पिता ! यह मेरी माँ नहीं है प्रत्युत यह पापिनी मेरी माँ की छाया है, इसलिए इसने मुझे शाप दिया है तदुपरांत यमुना और तपती का पूर्ण समाचार भी कह कर उन्हें सुना दिया । २१। इसके पश्चात् मार्तण्ड ने यम से कहा कि तुम्हारा पैर पृथ्वी पर न जाय प्रत्युत रक्त और मांस लेकर कीड़े ही भूतल पर चले जायें । २२। यमुना का जल गंगा जल के समान होगा, तपती का जल नर्मदा के समान पवित्र होगा । २३। इस प्रकार

१. समेत्योवाच संचायां समत्वं नानुपश्यसि । २. मुंच पादं महीतले ।

विन्ध्यस्य दक्षिणेन ह तपती प्रवहिष्यति । तत्संयुज्यतया सार्थं गङ्गा यास्यति शोभना ॥२४
 गङ्गामासाद्य यमुना गङ्गा सैव भद्रिष्यति । सौरमौम्ये उभे पुण्ये सर्वपापप्रणाशने ॥२५
 'सौरी च वैष्णवी चोभे महापापभयापहे । त्वं पुत्र लोकपालत्वं ऋग्णोऽज्ञां सभाजयन् ॥
 अद्यप्रभृति छायेऽस्त्वदेहस्था भविष्यति ॥२६
 एव स्थाप्य स्वां भायमिपत्यानि तथैव च । आजगाम सकाशं वै दक्षस्याह च कारणात् ॥
 दक्षो विज्ञाय तत्सर्वं मार्तण्डमिदमाह वै ॥२७
 रूपं न पश्यती तु भ्यं सा भार्या उत्तरानाता ॥२८
 हृष्टं ते प्रकटिष्यामि यदि शक्ष्यत्स वेदनाम् । असौ प्रोवाच शक्येऽहं प्रकाशी कुरु मे दप्यः ॥२९
 अथ सम्पार तक्षाणं स्मृतं एवाजगाम सः । प्रोवाच दक्षरतक्षाणं मार्तण्ड वै प्रकाशय ॥३०
 तक्षा प्रोवाच मार्तण्डं वेदना विसहिष्यते । विसहिष्यथ प्रोवाच तक्षाणं दक्षचोदितः ॥३१
 अथ तक्षा प्रकाशं वै तस्य रूपं विभावसौ । मुखादारभ्य पादान्तं ततक्षकरणैः स्वकैः ॥
 किरणैस्तु द्यमानेषु तत्याङ्गेषु पुनः पुनः । क्षेषकणे सूर्येण तार्तण्डो वेदनातुरः ॥३२
 तस्य शापभयातक्षा नादौ गुल्फादियावतः । चकाराथो निराकारा अद्युग्न्यो न प्रकाशयत् ॥३३

विंध्य पर्वत के दक्षिण तपती का प्रवाह होगा और उससे मिली हुई गंगा प्रवाहित होगी । २४। गंगा का संगम प्राप्त कर यमुना गंगा के रूप में हो जायगी तथा ये दोनों सौर-सौम्य पुण्य रूप एवं सभी पापों का नाश करने वाली होगी । २५। इस प्रकार सौरी (यमुना) और वैष्णवी (गंगा) दोनों ही महान् पापों का नाश करेंगी । हे पुत्र ! ब्रह्मा की आज्ञा से तू लोकपाल हो जाओगे और छाया की स्थिति आज से अपनी देह में ही रहेगी । २६

इस प्रकार (सूर्य ने) अपनी (छाया नाम की) स्त्री एवं सन्तानों की व्यवस्था करके दक्ष के यहाँ जाकर उन्हें समस्त समाचार सुनाया, दक्ष ने भी सभी बातें सुनकर मार्तण्ड से कहा कि— (अत्यन्त तेज के कारण) तुम्हारे रूप का स्पष्ट दर्शन न करके ही वह तुम्हारी स्त्री उत्तर कुरुदेश में चली गयी है । २७-२८। इसलिए यदि दुःख को सहन कर सको तो मैं तुम्हारे रूप को (इस प्रचण्ड तेज से पृथक्) प्रकाशित करता हूँ इसे सुनकर सूर्य ने वैसा ही करने के लिए अपनी सम्मति प्रकट की । २९। तदुपरान्त विश्वकर्मा का स्मरण किया वै आये । दक्ष ने उनसे कहा । सूर्य के रूप को स्पष्ट प्रकाशित करो ! । ३०। विश्वकर्मा ने सूर्य से कहा क्या आप इस भाँति के दुःख का सहन करना स्वीकार करेंगे । दक्ष ने कहा—हाँ इसे सहन करने के लिए ये पहले से ही तैयार हैं । ३१

पश्चात् विश्वकर्मा ने अपने हथियारों से सूर्य के मुख से लेकर पैर तक के समस्त शरीर को (पीतल आदि के बर्तनों की भाँति) खराद किया । किन्तु अंगों के खरादते समय वेदना से व्याकुल होकर सूर्य क्षण-भर पर मूर्छित हो जाते थे । ३२। उनके शाप के भय से विश्वकर्मा ने भी उनके पैर से एड़ी तक को खराद कर उनकी अंगुलियाँ खरादना चाहा कि सूर्य ने उससे असह्य वेदना के कारण घबड़ा कर

पर्याप्तं तक्षकर्मेदं वेदना मम बाधते । तक्षा प्रेवाच्च मार्तण्डं वेदनां जहि गोपते ॥३४
 करवीरस्य पुष्ट्याणि रक्तचन्दनमेव च । करादारभ्य गात्राणि विलिम्बे देहजानि ते ॥३५
 तत्कृतं तथा तेन स रुजं त्यक्तवान्द्रविः । अतश्चेमानि चेष्टानि भार्तण्डस्येह भूपते ॥३६
 करवीरस्य पुष्ट्याणि तथा वै रक्तचन्दनम् । इदमाह पुरा देवो ह्यनूरोरप्रतो नृप ॥३७
 करवीरस्य पुष्ट्याणि रक्तचन्दनमेव हि । इतिहासपुराणाभ्यां मुदग्निगुगुलं तथा ॥३८
 यः प्रयच्छति मे भक्त्या स मे प्राणान्प्रयच्छति । हस्मान्न देयमन्यन्मे भक्तियुक्तेन जानता ॥३९
 मार्तण्डस्याण्डजं तेजो गृहीत्वा किल भारत । चकार वज्रमजरं^१ शत्रुलेखादिनाशनम् ॥४०
 मार्तण्डः परितुष्टोऽभूलब्ध्वा रूपं गतव्यथः । जगाम स कुरुन्वैगात्स्वभार्दर्दिश्नोत्सुकः ॥४१
 मृगमध्यगतां दृष्ट्वा वडवारूपधारिणीम् । अश्वरूपं ततः कृत्वः स्वभार्यमधिरूप्तः सः ॥
 अवासृजत्स्वकं तेजो वेगेनारुह्य सोऽश्ववत् ॥४२
 परपुरुषाशङ्क्या सा स्थिता देवस्य संमुखो । तेजोनासापुटाभ्यां तु युगपत्साक्षिपत्युनः ॥४३
 तत्र जातो देवधिष्ठानो नासत्यावधिनाविति । रेतसोऽन्ते दुरेवन्त्स्ते दिरोचनमुतो महान् ॥४४
 तपती शनिश्च सावर्णिगछायापत्यानि वै विदुः । यमुना यसश्च पूर्वोत्तौ संज्ञा^२ याश्च तथात्मजौ ॥४५

विश्वकर्मा से कहा—वस यह अब बहुत हो चुका इसे समाप्त करो क्योंकि मुझे अत्यन्त दुःख हो रहा है । ३३-३४। विश्वकर्मा ने कहा—घबड़ायें नहीं। रक्तचन्दन (देवी चन्दन) और कनेर के फूल इन देनों का लेप तुम्हारे शरीर में किये देता हूँ, इससे अभी दुःख का शमन हो जायेगा। विश्वकर्मा के देसा करने पर सूर्य का समस्त दुःख नष्ट हो गया। हे भूपते ! इसलिए ये वस्तुएँ सूर्य को अत्यन्त प्रिय हैं । ३५-३६
 हे नृप ! पहले समय में भी सूर्य ने अरुण के सामने इन्हीं वस्तुओं के विषय में कहा था । ३७। कनेर का फूल, रक्तचन्दन, इतिहास एवं पुराण प्रसिद्ध सुपर्णा (नाग केशर, आदि) और गुगुल इन्हें भक्तिपूर्वक जो मुझे अर्पित करते हैं वे मुझे प्राणदान देते हैं इसलिए ऐसा जानते हुए उन्हें अन्य कोई दूसरी वस्तु न देनी चाहिए, क्योंकि मार्तण्ड के शरीर के खुरादते समय उनके निकले हुए तेज का अत्यन्त दृढ़वज्र बनाया गया था, जो शत्रु लेखा आदि का नाश करता है । ३८-४०

उपरोक्त मार्तण्ड स्वस्थ होकर अपने मुन्द्ररूप को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसी समय अपनी पत्नी को देखने की इच्छा से उत्तर कुरुदेश की ओर शीघ्रता से प्रस्थान भी किया। मृगों के बीच में घोड़ी का रूप धारण कर विचरण करती हुई अपनी स्त्री को देख कर के सूर्य ने भी घोड़े का रूप धारण कर उसमें अपना तेज (वीर्य) निष्केप किया । ४१-४२। उनके सामने स्थित उनकी पत्नी ने उन्हें पर पुरुष की आशंका करके उनके तेज (वीर्य) को अपनी नाक के दोनों छिद्रों से एक साथ ही निकाल दिया । ४३। जिससे अश्वनी कुमार नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। जो देवों के वैद्य हुए हैं तदुपरांत महातेजस्वी श्वेत नामक पुत्र का जन्म हुआ । ४४। इस भाँति तपती, शनि और सावर्णि छाया की एवं पहले कहे हुए यमुना और यम संज्ञा की सन्तानें हुईं । ४५

१. चक्रमजरम् । ३. सवर्णायास्तथात्मजी ।

भार्या लब्धा वपुर्दिव्यं तथा पुत्राश्च भारत । सप्तस्यां देवदेवस्य सर्वमेवमिदं यतः ॥
अनेन कारणेणाटा सदा देवस्य सप्तमी ॥४६
सप्तस्यां सोपवासस्तु रात्रौ भुज्जीत यो नरः । कृत्वोपवासं षष्ठ्यां तु पञ्चम्यामेककालभुक् ॥४७
दत्त्वा सुसंस्कृतं शाकं भक्ष्यभोजयैः समन्वितन् । देवाय ब्राह्मणेभ्यश्च रात्रौ भुज्जीत वाग्यतः ॥४८
यावज्जीवं नरः कश्चिद्द्रवतमेतच्चमेतच्चरेदिति । नस्य श्रीर्विजयश्चैव त्रिवर्गधार्षिव वृद्धते ॥४९
मृतश्च स्वर्गभायाति? विमादवरमास्तिथः । सूर्यनोके स रमते मन्वन्तरणान्बहून् ॥
इह चागत्य कालान्ते नृपः शान्तिं समन्वितः ॥५०
पुत्रपौत्रैः परिवृतो दातः स्यान्नुपतिश्चिररु । भुगत्ति हि धरां राजन्विप्रहैश्चाजितः परैः ॥५१
ये नरा राजशार्दूलं शाकाहारेण सप्तमीम् । उपेष्य लब्धं तत्तीर्थं पित्र्यं वै राजसंज्ञिकम् ॥५२
कुरुणा तव पूर्वेण शाकाहारेण सप्तमीम् । धर्मक्षेत्रं कुरुक्षेत्रं कृतं तस्य विवस्वता ॥५३
सप्तमी नवमी षष्ठी तृतीया पञ्चमी नृप । कामदास्तिथयो हयेता इहैव नरयोषिताम् ॥५४
सप्तमी माघमासे तु नवम्याश्वयुजे मता । जष्ठी भाद्रपदे धन्या दैशाखे तु तृतीयिका ॥५५
पुण्या भाद्रपदे प्रोक्तापञ्चमी नागपञ्चमी । इत्येतास्तेषु मासेषु विशेषास्तिथयः स्मृताः ॥५६
शाकं सुसंस्कृतं कृत्वा यश्च भक्त्या समन्वितः । दत्त्वा विश्रेयथाशक्त्या पश्चाद्भुइक्ते निशि व्रती ॥५७

हे भारत ! सूर्य को सप्तमी तिथि में ही स्त्री पुत्र और सुन्दर शरीर की प्राप्ति हुई है, इसी लिए सूर्य को सप्तमी अत्यन्त प्रिय है ।४६। इस प्रकार जो पुरुष पंचमी में एक बार भोजन करके षष्ठी में उपवास एवं सप्तमी की रात में साग एवं उत्तम भक्ष्य पदार्थ सूर्य और ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए स्वयं भी मौन होकर भोजन करता है एवं जीवन पर्यंत इस द्वात को इसी भाँति करता रहता है उसकी भी विजय होती है एवं त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ एवं काम) नित्य उन्नति प्राप्त करते हैं ।४७-४९। और मरण के पश्चात् सुन्दर विमान पर बैठ कर स्वर्ग तथा सूर्य लोक में अनेक मन्वन्तरों की समयावधि तक रमण करता है और कालान्तर में यहाँ आने पर शांत स्वभाव वाला राजा होता है ।५०। ऐसे व्यक्ति पुत्र पौत्र से युक्त होकर विविध प्रकार का दान करते हुए अधिक काल तक पृथिवी का उपयोग करते हैं और शत्रुओं द्वारा उनकी पराजय कभी नहीं होती ।५१। हे राजशार्दूल ! जो लोग इस प्रकार रह कर सप्तमी में केवल साग का भोजन करते हैं उन्हें अपना पैतृक राज्य एवं पुष्कर तीर्थ प्राप्त होता है ।५२। तुम्हारे पूर्वज कुरु ने भी इस सप्तमी में केवल शाकाहार किया था इसीलिए भगवान् सूर्य ने उनके कुरुक्षेत्र को धर्मक्षेत्र बना दिया ।५३

हे नृप ! इसी प्रकार सप्तमी, नवमी, षष्ठी तृतीया और पंचमी तिथियाँ स्त्रियों और पुरुषों के मनोरथ को सफल करने वाली हैं ।५४। माघ मास की सप्तमी, आश्विन मास की नवमी, भाद्रों की षष्ठी, दैशाख की तृतीया और भाद्रों की पंचमी जिसे नागपंचमी कहते हैं, ये तिथियाँ इन मासों में पुण्य स्वरूपा एवं विशेषता प्रदान करने वाली हैं ।५५-५६

साग को सुन्दर ढंग से बनाकर ब्रती, होकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को भोजन करावे । रात में स्वयं भी

कार्तिके शुक्लपक्षस्य ग्राहेयं कुरुनन्दन । चतुर्भिर्वापि मासैस्तु पारणं प्रथमं स्मृतम् ॥५८
 अगस्त्यकुमुमैश्वात्र पूजा कार्या विभावसोः । विलेपनं कुइकुमं तु धूपश्वेवाप राजितः ॥५९
 न्नानं च पञ्चवद्येन तमेव प्राशयेत्ततः । नैवेद्यं पायसं चात्र देवदेवस्य कीर्तितम् ॥६०
 तदेव देयं विप्राणां शाकं भक्षयमथात्मना । शुभशाकसमायुक्तं भक्षयपेयसमन्वितम् ॥६१
 द्वितीये पारणे राजञ्चुभगवान्धनि यानि वै । पुष्पाणि तानि देवस्य तथा श्वेतं द्व चन्दनम् ॥६२
 अगुरुश्वापि धूपोऽत्र नैवेद्यं भुडपूपकाः । न्नानं कुशोदकेनात्र प्राशनं गोमयस्य तु ॥६३
 तृतीये करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् । धूपानां गुग्गुलश्वात्र प्रियो देवस्य सर्वदा ॥६४
 शाल्योदनं तु नैवेद्यं दधिभिंशं महामते । तमेव न्नाह्याणनां च भक्षयलेह्यसमन्वितम् ॥

कालशाकेन च विभो युक्तं दद्याद्विचक्षणः ॥६५

गौरसर्षपक्लेन न्नानं चात्र विदुर्बुधाः । तस्यैव प्राशनं धन्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥६६
 तृतीये पारणस्यान्ते भद्रद्वाह्यणभोजनम् । श्रवणं च पुराणस्य वाचनं चापि शस्यते ॥६७
 दैवस्य पुरतस्तात ब्राह्मणानां तथाग्रतः । द्वाह्याणाद्वाचकाच्छाव्यं नान्यवर्णसमुद्भवात् ॥

अथ तान्ब्रह्मणात्सर्वनिभक्त्या शक्या च पूजयेत् ॥६८

वाचकस्यामले राजन्वाससी सन्निवेदयेत् । वाचके पूजिते देवः सदा तुष्ट्यति भास्करः ॥६९

भोजन करे ।५७। यह व्रत कार्तिक शुक्ल पक्ष से आरम्भ करना चाहिए । हे कुरुनन्दन ! इसी प्रकार चार मास का व्रत रहकर अन्त में पारण करे तो वह प्रथम पारण कहा जाता है ।५८। इसमें अगस्त्य के फूल अपराजिता के फूल से सूर्य की पूजा करते हुए कुइकुम का लेपन एवं धूप प्रदान भी करना चाहिए ।५९। इसी प्रकार पंचवद्य से सूर्य को स्नान कराकर नैवेद्य एवं शरीर का भोजन अपित करे और यही उत्तम साग के साथ भक्षय-पेय ब्राह्मण को भी भोजन कराये ।६०-६१। हे राजन् ! दूसरे पारण में सुगन्धित पुष्प और श्वेत चन्दन, गुग्गुल का धूप, नैवेद्य गुड के बने हुए मालपूआ इन वस्तुओं से पूजन एवं गोमय और कुशोदक से स्नान कराकर चरणामृत के रूप में उसको ग्रहण करना चाहिए ।६२-६३। तीसरे पारण में कनेर का फूल, रक्त चन्दन और गुग्गुल का धूप अपित करना चाहिए क्योंकि ये वस्तुएँ (सूर्य) देव को अत्यन्त प्रिय हैं ।६४। इसी प्रकार शाली, चावल का भात, दही नैवेद्य-मिथित देकर भक्ष्य लेह्य समेत उसे तथा सामयिक शाग भी ब्राह्मण को अपित करे ।६५। इसमें व्रत-विधान सफेद सरसों के तेल से मिथित स्नान कराना विद्वानों ने बताया है और उसी का भोजन भी करे क्योंकि यह प्रशस्त एवं सभी पापों का नाशक है ।६६। तीसरे पारण के अनन्तर वाले पारण में केवल अनेक ब्राह्मणों के भोजन और पुराण का सुनना या पढ़ना बताया गया है ।६७। हे तात ! देव या ब्राह्मण के सामने वाचक (वक्ता) ब्राह्मण ही होना चाहिए । अन्य उससे भी नहीं । उसी से भक्ष्य करें । इसलिए भक्ति पूर्वक अपनी शक्ति के अनुसार उस वाचक की पूजा करनी चाहिए ।६८। कथा वाचने वाले (ब्राह्मण) को स्वच्छ ध्वल दो वस्त्र प्रदान करना चाहिए, इसलिए कि वाचक की पूजा करने से सूर्य देव सदा प्रसन्न रहते हैं ।६९। हे कुरुनन्दन ! इस व्रत में

करवीरं यथेष्टं तु तथा रक्तं च चन्दनम् । यथेष्टं गुग्गुलं तस्य यथेष्टं पाशसं सदा ॥७०
 यथेष्टा मोदकास्तस्य यथा वै ताम्रभाजनम् । यथेष्टं च धृतं तस्य यथेष्टो वाचकः सदा ॥
 पुराणं च यथेष्टं वै सवितुः कुरुनन्दन ॥७१
 इत्येषा सप्तमी पुण्या शाक-ह्वा गोपते: सदा ; यामुपोष्य नरो भक्त्या भाग्यवांश्र' प्रजायते ॥७२
 इति श्रीभविष्यद्वयो महापुराणे शतार्द्धसाहस्राणां सहितायां ग्राह्ये पर्वणि सप्तमीकल्पे
 शाकसप्तमीद्वदर्गनंजाम सप्तचत्वारिंश्चोऽध्यायः । ४७।

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यदर्णनम्

शतानीक उवाच

विस्तराद्वा विप्रेन्द्र सप्तमीकल्पमूलतमम् । महाभाग्यं च देवस्य भास्त्करस्य महात्मनः ॥१
 सुमन्तुश्वाच

अर्थाद्वार्त्तमहात्मानः सम्बादं पुण्यमूलतमम् । कृष्णोन सह सच्चेन स्वपुत्रेण महीपते ॥२
 भक्त्या प्रणन्य विधिवद्वासुदेवं जगद्गुरुम् । इहामुत्र हिं शांबः^३ पप्रच्छ ज्ञानमूलतमम् ॥३
 जातो जन्तुः कथं दुःखैर्जन्मनीह न बाध्यते । प्राप्नोति विविधान्कामान्कथं च मधुसूदन ॥४

करवीर (कनेर) का फूल, रक्तचन्दन, गुग्गुल, सीर, लड्डू, ताँबे का पात्र, धी और वक्ता (कथावाचक) एवं सूर्य पुराण का पाठ यथेष्ट होना चाहिए । ७०-७१। सूर्य की शाक नाम की इस सप्तमी में भक्तिपूर्वक उपवास रहकर मनुष्य भाग्यवान् होता है, यह सदैव पुण्य स्वरूप हैं । ७२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में शाक सप्तमी व्रत वर्णन नामक संतालिसवाँ अध्याय समाप्त । ४७।

अध्याय ४८

आदित्य माहात्म्य वर्णन

शतानीक बौद्धे—हे विप्रेन्द्र ! सप्तमी कल्प का वर्णन जिसमें महात्मा तूर्य देव के प्राप्त सौभाग्य का वर्णन किया गया है, जिस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए ! । १।

सुमन्तु ने कहा—हे महीपते ! इसी विषय पर कृष्ण तथा उनके पुत्र शाम्ब का पुण्य रूप संवाद हुआ है, मैं वही बता रहा हूँ, मुनो ! एक बार जगद्गुरु भगवान् कृष्ण को भक्ति पूर्वक प्रणाम कर साम्ब ने अपने उत्तम ज्ञान की प्राप्ति के लिए जो लोक-परलोक दोनों के हित धारक बनाया गया है उनसे पूछा । हे मधुसूदन ! इस संसार में उत्पन्न होकर जीव किस प्रकार अनेक दुःख से मुक्त होते हुए भाँति-भाँति के

१. भाग्यव्यां न विजायते । २. सर्वत्र शांबशब्दे सांब इति दंत्यादिरपिपाठः पुस्तकान्तरेषु ।

परत्र स्वर्गमाप्नोति सुखानि विदिधानि च । अनुभूयोचितं कालं कथं मुक्तिमवाप्नुते ॥५
दृष्ट्वैवं भम निवेदो जातो व्याधिर्जनार्दन । दृष्ट्वैवं जीविताशापि रोचते न हि से क्षणम् ॥६
किं त्वेवमकृतार्थोऽस्मि यन्दे प्राणा न यान्ति हि । संसारे न पतिष्ठामि जराव्याधिसमन्विते ॥७
येनोपायेन तन्मेऽद्य प्रसादं कुरु सुदत । आधेव्याधिविनिर्वृत्तो यथाहं स्यां तथा वद ॥८

वासुदेव उवाच

देवतायाः प्रसादोऽन्यः सर्वस्य परभो मतः । उपायः शाश्वतो नित्य इति मे निश्चिता भूतिः ॥९
अनुमानागमाद्यैश्च सम्यगुत्पादिता सथा । कदाचिदन्यथा कर्तुं धीयते केत्तचित्कवचित् ॥१०
प्रसादो जायते तस्य सम्यगाराधाक्रिया । यदा तां च समुद्दिश्य कृता तद्वेदिना तथा ॥११
विशिष्टा देवता सम्यग्दिशिष्टेनैव देहिना । आराधिता विशिष्टं च ददाति फलमीहितम् ॥१२

शास्त्र उवाच

अस्तित्वे न च सन्देहः केषाच्चिद्देवतां प्रति । नास्तीति निश्चयोऽन्येषां विशिष्टास्त्वं कथाः कुरुः ॥१३
वासुदेव उवाच

सिद्धं तु देवतास्त्वित्वमागमेषु ब्रह्मव्यथ । प्रभाणमागमो यस्य तस्यास्त्वं च विद्यते ॥१४
अनुमानेन वाप्यत्य तदस्त्वत्वं प्रसाध्यते । प्रभाणमस्ति यस्येदं सिद्धागम्येह चास्तिता ॥१५

मनोरथ को सफल करता है । २-४। अर्थात् स्वर्ग प्राप्त करनेपर उसे अनेक भाँति के सुख तथा सांसारिक मुक्ति कैसे प्राप्त होगी । ५। हे जनार्दन ! इस प्रकार (सांसारिक) जीवों को देख कर मुझे महान रोग हो गया है और विरक्ति सी हो गयी है । यहाँ तक कि मुझे अब एक क्षण का जीवन भी अच्छा नहीं लग रहा है । ६। किंतु (क्या कहौँ) मेरे प्राण निकल नहीं रह हैं (प्राण निकलने के लिए प्रश्नत करता हुआ भी) असफल हो रहा हूँ । हे मुन्त्र ! जिस उपाय द्वारा बुद्धापा एवं विविध रोग पूर्ण इस प्रकार संसार में भविष्य में मुझे न आना पड़े तथा इस समय शारीरिक मानसिक रोगों से मुक्ति प्राप्ति हो आप मुझे उसे बताने की कृपा करें । ७-८

वासुदेव ने कहा—सभी लोगों की सम्मति है कि इस विषय में देवताओं की प्रसन्नता के अतिरिक्त कोई अन्य दृढ़ उपाय नहीं है और यही मुझे भी निश्चित है । ९। इसी प्रकार अनुमान एवं प्रभाण आदि द्वारा मैंने देवताओं को उत्पन्न किया है । यदि कोई (रोग आदि का प्रतीकार करके) मुखी जीवन करना चाहे तो देवताओं का ज्ञान रखने कर उसी उद्देश्य से उनकी आराधना करके उन्हें प्रसन्न करे । १०-११। क्योंकि महत्त्वपूर्ण मनुष्य, महत्त्वपूर्ण देवता की आराधना करता है तो उसे महत्त्वपूर्ण फल भी प्राप्त होता है । १२

सास्त्र ने कहा—सर्व प्रथम तो यद्यपि कुछ लोगों को देवताओं के होने में संदेह नहीं है परं कुछ लोगों की सम्मति है कि देवता है ही नहीं, तो आप विशिष्ट (देवता) की बातें कैसे कर रहे हैं । १३

कृष्ण ने कहा—वेदों में देवताओं के होने में प्रभाण अधिक हैं इसलिए जिसमें आगम भी प्रमाणित करता है उसका अस्तित्व होना निश्चित भी है । १४। अनुमान द्वारा भी उनका अस्तित्व सिद्ध है क्योंकि

प्रत्यक्षेणापि चास्तित्वं देवतायां प्रसाध्यते । तज्ज्वावश्यं प्रमाणं च दृष्टं सर्वशरीरिणाम् ॥१६
यदि नामा विविक्तास्तु तिर्यग्योनिगता अपि । नोत्पद्यते तथा ह्यस्ति व्यदहारो यथा स्थितः ॥१७

शास्त्र उवाच

प्रत्यक्षेणोपलभ्यन्ते सम्यग्वै यदि देवताः । अनुनानप्रमाणाभ्यां च तदर्थं न प्रयोजनम् ॥१८

वासुदेव उवाच

प्रत्यक्षेणोपलभ्यन्ते न सर्वा देवताः क्वचित् । अनुनानप्रमाणाभ्याः सन्ति चान्याः सहस्राः ॥१९

शास्त्र उवाच

या चाक्षगोचररः काचिद्विशिष्टेष्टफलप्रदा । तामंवादौ ममात्मक्ष्व कर्थयिष्यस्यथापराम् ॥२०

वासुदेव उवाच

प्रत्यक्षं देवता सूर्यो जगच्चक्षुर्दिवाकरः । तस्मादभ्यधिका काचिदेवताः नास्ति शाश्वती ॥२१

यस्मादिदं जगन्नातं लयं यास्यति यत्र च । कृतादिलक्षणः कालः स्मृतः साक्षाद्विवाकरः ॥२२

ग्रहनक्षत्रयोगाश्र राशयः^१ करणानि च । आदित्या दसवो रुद्रा अश्विनौ वायवोऽनलः ॥२३

अनुमान प्रमाण वाले का भी अस्तित्व माना ही जाता है । १५। इस भाँति प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा देवताओं का अस्तित्व तो सिद्ध ही है क्योंकि उस प्रमाण को सभी लोग देखते हैं और इसीलिए वह आवश्यक प्रमाण कहा गया है । १६। पशु पक्षी आदि योनियोंमें प्राप्त जीव को सामान्य विशेष विवेचन की शक्ति नहीं होती है उसी भाँति अल्प शक्ति वाले को (पुरुष को) भी किसी विशिष्ट व्यक्ति के अस्तित्व व्यवहार का ज्ञान रखना महा कठिन है । १७

भास्त्र ने कहा—यदि प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा देवताओं का अस्तित्व सिद्ध है तो उसके लिए अनुमान एवं आगम को प्रमाण रूप में स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है । १८

वासुदेव बोले—सभी देवताओं का अस्तित्व प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा ही संपन्न होता असंभव है और अनुमान प्रमाण द्वारा हजारों देवताओं का अस्तित्व सिद्ध है अतः इसे भी प्रमाण रूप में अवश्य स्वीकार करना चाहिए । १९

साम्ब ने कहा—यदि देवता जो महत्त्वपूर्ण फल प्रदान करता है और सामने दृष्टिगोचर भी हो रहा है तो पहले उसी का महत्त्व मुझे सुनाने की कृपा करें पश्चात् औरें का भी महत्त्व बताइयेगा । २०

कृष्ण ने कहा—सूर्य प्रत्यक्ष देवता हैं और संसार के नेत्र भी हैं, दिन को करने वाले हैं अतः इनसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं नित्य स्थित रहने वाला कोई अन्य देवता नहीं है । २१। सूर्य द्वारा ही इस जगत् का जन्म हुआ है इन्ही में इसकी स्थिति एवं लय भी होता है और कृत आदि युगों की काल व्यवस्था भी इन्ही द्वारा संपन्न हुई है । २२। इसीलिए ग्रह, नक्षत्र, योग, राशि, कृष्ण, आदित्य, ब्रह्म, रुद्र, अश्विनी कुमार, वायु, अग्नि, रुद्र प्रजापति, भूलोक, भुवर्लोक एवं स्वर्ग तथा सभी लोक पर्वत, नदियाँ, समुद्र , जीव समूह

१. यामदण्डक्षणानि च ।

शकः प्रजापतिः सर्वे भूर्भुवःस्वस्तथैव च । लोकाः सर्वे नगा नागाः सरितः सागरस्तथा ॥

भूतप्राममस्य सर्वस्य स्वयं हेतुर्दिवाकरः ॥२४

अस्येच्छया जगत्सर्वमुत्पन्नं सवराचरम् । स्थितं प्रवर्तते चैव स्वार्थं चानुप्रवर्तते ॥२५

प्रसादादस्य लोकोऽयं चेष्टमानः प्रदृश्यते । अस्मिन्दभ्युदिते सर्वमुदेदस्तमिते सति ॥

अस्तं यातीत्यदृश्येन किमेतत्कथ्यते मया ॥२६

तस्मादतः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति । यो वै वेदेषु सर्वेषु परमात्मेति गीयते ॥२७

इतिहासपुराणेत्रु अन्तरात्मेति गीयते । बाह्यान्तैति सुषुम्णास्यः स्वप्रस्थो जापतः स्थितः ॥२८

अस्तं यातीत्यदृष्टेन किमेतत्कथ्यते मया । तस्मादतः परं नास्ति न भूतं न भविष्यति ॥२९

यन्न वाह इति स्वातः प्रेरकः सर्वदेहिनाम् । नानेन रहितं किञ्चिद्भूतमस्ति चराचरम् ॥३०

यो वेदवेदविद्विद्विश्व विस्तरेणेह शक्यते । वक्तुं वर्षशतैर्नासौ शक्यः संक्षेपतो मया ॥३१

'तस्माद्गुणाकरः ल्यातः सर्वत्रायं दिवाकरः । सर्वेशः सर्वकर्तायं सर्वभर्तायमव्ययः ॥३२

जाता मत्स्यादयः सम्प्रगतिमन्तो महेश्वरात् । मण्डलव्यतिरिक्तं च जानामि परमार्थतः ॥३३

तथास्य मण्डलं कृत्वा यो ह्येनमुपतिष्ठते । प्रातः सायं च मध्याह्ने स यति परमां गतिम् ॥३४

किं पुनर्मण्डलस्यं यो जपते परमार्थतः । विविधाः सिद्धयस्तस्य भवन्ति न तद्द्वभूतम् ॥३५

आदि ये सभी सूर्य द्वारा ही निष्पन्न होते हैं । २३-२४। इन्हीं की इच्छा द्वारा यह समस्त संसार जिसमें चर अचर की सृष्टि है उत्पन्न हो कर अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त होता है । २५। इस प्रकार इन्हीं की प्रसन्नता वश संसार की समस्त चेष्टायें उत्पन्न होती हैं अर्थात् इनके उदग से सबका उदय एवं अस्त होने से सब का अस्त होना निश्चित है । इसमें मुझे और कहना नहीं है । २६। चारों वेदों में इन्हें 'परमात्मा' बताया गया है, अतः इनसे अधिक महत्वपूर्ण देवता न कोई हुआ और न किसी के होते की संभावना है । २७। इसी प्रकार इतिहास एवं पुराणों में इन्हें 'अन्तरात्मा' भी कहा गया है तथा जागृति स्वप्न सुषुप्ति में इन्हीं को भासित भी बताया गया है । २८। किन्तु ये भी अदृष्ट वश अस्त होते हैं । और इस प्रकार इनसे बढ़कर न कोई देवता है न हुआ है और न होगा । अतः मुझे इसमें कहना ही क्या है । २९। यही संसार के होने के नाते ये 'वाह' कहे जाते हैं इनके बिना कोई भी चर अचर है ही नहीं । ३०। कोई भी वैदिक विद्वान् वेद के द्वारा या यों ही विस्तारपूर्वक जिसकी महिमा का ज्ञान सैकड़ों वर्षों में कर सका है उसे मैं कैसे कर सकता हूँ । ३१। क्योंकि सभी जगह सूर्य के गुणविधि होने की स्थाति है यहो सब के ईश, कर्ता, पालन-पोषण करने वाले एवं अविनाशी हैं । ३२। मछली आदि जितने गतिमान् जीव हैं सभी इन्हीं द्वारा उत्पन्न हैं, केवल मंडल छोड़ कर और अन्य सभी इनकी वस्तुएँ परमार्थ के लिए ही निहित हैं । ३३

इसलिए प्रातः काल, मध्याह्न तथा सायंकाल में जो मंडल बनाकर इनकी पूजा करते हैं उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है । ३४। पुनः जो प्रत्यक्ष मण्डल बनाकर परमार्थतः इनकी आराधना करता है, (उसके लिए क्या कहना है) । भाँति-भाँति की सिद्धियाँ उसे प्राप्त होती हैं । इसमें आश्चर्य की बात ही क्या

मण्डले च स्थितं देवं देहैं चैनं व्यवस्थितम् । त्वं बुद्धैवमसम्मूढो यः पश्यति स पश्यति ॥३६
 ध्यात्वैवं पूजयेद्यस्तु जपेद्यो जुहुयाच्च यः । सर्वान्प्राप्नुयात्कामानाच्छेष्टमध्वजं तथा ॥३७
 तस्मात्त्वमिह इः खानामन्तं कर्तुं ददीच्छेष्टम् । इहामुत्र च भोगानां भुक्तिं मुक्तिं च शाश्वतीम् ॥३८
 आराध्यार्कमर्कस्थो मन्त्रैरिह तदल्लेमनि । अद्यैर्मृतं वृते चैत स्थाने शास्त्रेण शोधिते ॥३९
 कवर्चेन च सम्मुखे सर्वतोऽस्त्रेण रक्षिते । एवं धार्म्यत्वं गत्वेन सर्वदा फलभीष्मितम् ॥४०
 दुर्लभाध्यात्मिकं नेह तदा चैवाधिभौतिकम् । आधिदैविकमत्युग्रं न भविष्यति ते सदा ॥४१
 न भयं विद्यते तेषां प्रपञ्चा ये दिवाकरः । इहामुत्र सुखं तेषामच्छिद्वं जायते सुखम् ॥४२
 सूर्येण द ममोद्दिष्टं साक्षात्यज्ञानमुत्तमम् । आराधितं विधिवत्कालेन बहुजा तथा ॥४३
 प्रायते परसं स्थानं यत्र धर्मध्वजः स्थितः । एतत्संक्षिप्तमुद्दिष्टं क्षिप्रसिद्धिकरं परम् ॥
 यथा नान्यदतोऽस्तीति स्वयं सूर्येण भाषितम् ॥४४
 उपायोऽयं प्रमाण्यातस्तत्र संक्षेपतास्त्वह । यस्मात्परतरो नास्ति हितोपायः शरीरिणाम् ॥४५

इति क्षोभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्राणां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
 आदित्यमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

है । ३५। मंडल में इस देव को अपने देह के भीतर स्थिर अपनी बुद्धि द्वारा जो ज्ञानी जानता है, वही वास्तव में इन्हें जानता है । ३६। इस प्रकार जो इनका ध्यान कर पूजने, जप एवं हवन करता है उसके सभी मनोरथ सफल होते हैं एवं धर्म ध्वज (भगवान्) को प्राप्त होता है । ३७। इसलिए यदि तुम्हें भी दुःखों का अंत (नाश) लोक, परलोक का भाग एवं प्रबल भुक्ति-मुक्ति की इच्छा हो तो सूर्य की जिनके अंग आदि शास्त्र से संशोधित एवं कवच से आवृत्त (ढका) तथा अस्त्रों से रक्षित हैं मैं यौवन आराधन करें तो सदैव अभिलक्षित सिद्धि की प्राप्ति होती रहेगी । ३८-४०। उसके परिणाम स्वरूप आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक में अत्यन्त दुख तुम्हें कभी नहीं होगा । ४१। क्योंकि जो दिवाकर के शरणागत है उन्हें अभ्यदान तथा लोक-परलोक का पूर्ण सुख प्राप्त होता है । ४२। इसलिए सूर्यों के उद्देश्य से मैंने ज्ञो कुछ उत्तम ज्ञान तुमसेष्टहा है, उसे विधि-पूर्वक अधिक दिनों तक करते रहना चाहिए । उससे उत्तम स्थान प्राप्त होता है जहां स्वयं भगवान् विराजमान रहते हैं । ४३। इस प्रकार इस संक्षिप्त कथा को जो शीघ्र मनोरथ सफल करने वाली है और सब से उत्तम है स्वयं सूर्य ने कहा है । मैंने संक्षेप में तुमसे कहा है । ४४। इसलिए संक्षेप में ही इस उपाय को बताया है क्योंकि मनुष्यों के हित के लिए इससे बढ़कर कोई अन्य उपाय नहीं है । ४५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य माहात्म्य वर्णन नामक
 अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त । ४६॥

अथैकोनपञ्चाशत्सोऽध्यायः

सूर्यमाहात्म्यवर्णनम्

वासुदेव उवाच

अथर्वनलिंगं वध्ये भर्मकेतोरनुत्तमम् । सर्वकामप्रदं पुण्यं विघ्रहं दुरितापहम् ॥१
 सूर्यमन्त्रैः पुरः स्नातो यजेत्तेजैव भास्करम् । यतस्ततः प्रवक्ष्यामि स्नानमादौ समाप्ततः ॥२
 आचान्तस्तमुपालम्य मुद्रया सुचिशुद्धया । कृत्वा नीराजनं पुत्रं संशोध्य च जलं ततः ॥३
 स्नानादृदयपूतेन^१ मन्त्रेण मत्कुलोद्ध्रह । उत्थायाचार्य तेनैव वाससी परिधाय च ॥४
 हिराचम्याथ सम्प्रोदय तनुं सप्ताक्षरेण च । उत्थायाचम्य तेनैव रवेः कृत्वार्प्यमेव च ॥५
 दत्तवा तेन जपित्वा तं स्वकं ध्यात्वार्कवद्वृदि । गत्वा चायतनं शुभ्रमार्कमार्कीं तनुं यजेत् ॥६
 पूरकं शुभ्रमंडकं कृत्वा रेचकं च समाहितः । कृत्वोइकारेण दोषांस्तु हन्यात्कायादिसम्भवान् ॥७
 वायव्याग्रेयमाहेन्द्रवाहणीभिर्यथाक्रमम् । किल्बिषं वारुणाद्वृश्च हन्यात्सिद्धर्थसात्यनः ॥८
 शोषणं दहनं स्तम्भं प्लावनं च यथाक्रमस्त् । वाव्यग्नीन्द्रजनाख्याभिर्धारणाभिः कृते सति ॥९

अध्याय ४९

सूर्य माहात्म्य वर्णन

वासुदेव बोले—धर्म के केतु (ध्वजा) रूपी सूर्य के पूजन की विधि, जो उत्तम, समस्त मनोरथ सफल करने वाली, पुण्य स्वरूप, विप्रनाशक एवं पापनाशक है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ! ॥१॥ सूर्य के मंत्रों का उच्चारण करते हुए स्नान और सूर्य का पूजन करना चाहिए अतः पहले संक्षेप में स्नान विधि कह रहा हूँ ॥२॥ हे पुत्र ! सर्वप्रथम आचमन करके पवित्र और शुद्ध मुदा द्वारा (सूर्य को) देखकर उनका नीराजन करना चाहिए उपरांत जल को अभिमंत्रित कर स्नान करे और पश्चात्-पवित्रता पूर्ण मंत्रों के उच्चारण करते हुए उठकर आचमन करे और उन्हीं मंत्रों द्वारा धोती तथा दुपट्टा धारण करे ॥३-४॥ पुनः दो आचमन करके सप्ताक्षर से उच्चारण पूर्वक शरीर प्रोक्षण (पोंछना) आचमन और उसी से अर्च दान दे अनन्तर जप पूर्वक हृदय में ध्यान करते हुए सूर्य के उत्तम मंटिर में जाय और उनकी शारीरिक अर्चना करे ॥५-६॥ और ओंकार पूर्वक प्राणायाम करके जिसमें पूरक, कुम्भक एवं रेचक का विधान है, उसके द्वारा अपने शारीरिक दोषों का नाश करे ॥७॥ उसी प्रकार वायव्य, आग्नेय, पूरब और पश्चिम दिशाओं में स्थित (कलशों के) जलों से अपनी सिद्धि तथा पाप नाश के लिए मार्जन करे ॥८॥ पश्चात् वायवीय, आग्नेयी, माहेन्द्री और वारुणी धारणाओं द्वारा ध्यान का प्रकार शरीर का शोषण, दहन, स्तम्भन और प्लावन की क्रिया क्रमशः सुसम्पन्न करे ॥९॥ उपरांत अपने में अत्यन्त शुद्ध की भावना कर

१. स्नानादृदयपूतेन मधुना मत्कुलोद्ध्रह ।

ध्यात्वा दिशुद्धमात्मानं प्रणमेदर्कनास्थितम् । देहं तेनैव सङ्गचन्त्य पञ्चभूतमयं परम् ॥१०
 सूक्ष्म स्थूलं तथाकाणि स्वस्थानेषु प्रकल्प्य च । विन्यस्याइगानि खादीनि हृदाद्यानि हृद्यादिषु ॥११
 खस्वाहा हृदयं भानोः खमकार्यं शिरस्तथा । उल्का स्वाहा शिखार्कस्य यै च हुं कवचं परम् ॥
 खां फडस्त्रं च संहाराश्रादितः प्रणवः कृतः ॥१२
 स पूर्वे प्रणवस्यायोः मन्त्रकर्मप्रसिद्धये । एमिर्जलं त्रिधा जप्त्वा स्नातद्व्याणिं तेन च ॥१३
 सम्प्रोक्ष्य पूजयेत्सुर्यं गन्धपुष्टादिभिः शुभैः । ततो मूर्तिषु सर्वासु रात्रश्वग्रौ प्रपूजयेत् ॥१४
 प्राक्षश्चिमोदगम्यग्रां प्रातः सादं निशासु वै । सप्ताक्षरेण सन्मन्त्रं ध्यात्वा च पद्मकणिकाम् ॥१५
 अदित्यसण्डलात्तस्थं तत्र देहं प्रकल्पयेत् । प्रभामण्डलमध्यस्थं ध्यात्वा देहं यथा पुरा ॥
 सर्वलक्षणसम्पूर्णं सहवर्किरणोज्ज्वलम् ॥१६
 रक्तैर्निर्देश्व उष्णैश्च चर्चभिर्बलभिस्तथा । रक्तचन्दनमिश्रैर्वा वस्त्रैरावरणैः शुभैः ॥१७
 आवाहनादिकर्माणि रक्षां तु हृदयेन च । तच्चित्तश्च सदा कुर्याज्ञात्वा कर्मक्रमं बुधः ॥१८
 कृत्वा चावाहनं मन्त्रैरेकत्र स्थापनं ततः । यद्यद्यागावस्थानं तु सात्त्विध्यं तत्र कल्प्य च ॥१९
 दन्त्या पाद्यादिकां पूजां शक्त्या वाच्यं निवेद्य च । जपित्वा विधिवद्ध्यात्वा ततो देवीं विसर्जयेत् ॥२०
 एष कर्त्त ऋक्मः प्रोक्तः सर्वेषां यजनक्रमात् । प्रवक्ष्यामि जपस्थानं पद्मेशादरणे तथा ॥२१

अपने में स्थित सूर्य को प्रणाम करे और उसी भाँति उनकी पांच भौतिक शरीर का ध्यान करें । १०। ध्यान करते समय सूक्ष्म या स्थूल (शरीर) आँख एवं अपने अपने स्थानों में प्रत्येक अंगों इन्द्रियों और हृदय आदि की कल्पना करते हुए ओंकार पूर्वक मंत्रों के उच्चारण 'ख स्वाहा' से हृदय, 'ख अकार्य स्वाहा, से शिर, 'उल्काय स्वाहा' से शिखा, 'हुं से कवच, खां फट् से अस्त्र और संहार करे द्वारा सूर्य का पूजन करें । पश्चात् उनकी सभी मूर्तियों के पूजन रात में अग्नि में करें । ११-१४। इस भाँति प्रातः, सायंकाल और रात में पूर्व-पश्चिम एवं उत्तर दिशाओं में क्रमशः कमल के बीच में स्थित सूर्य संडल तथा मंडल में उनकी शरीर का ध्यान और कल्पना करे । पुनः प्रभामण्डल के मध्य में उनकी देह का जो समस्त लक्षणों से पूर्ण एवं सहस्रों द्वारा प्रदीप्त है, ध्यान करते हुए रक्त पूष्ण, चंदन, गेरूँ, रक्तचन्दनमिश्रित की बलि तथा उत्तम वस्त्रों को उन्हें धारण कराये तथा हृदय से आवाहन आदि कर्म एवं दिग्रक्षा भी उनमें लीन होकर कर्म के क्रमों को जानते हुए नित्य करनी चाहिए । १५-१८ मंत्रों द्वारा आवाहन पूर्वक एक स्थान में उन्हें स्थापित करके जब तक यज्ञ समाप्त न हो, उनके सानिध्य की कल्पना करते हुए शक्त्यनुसार पाद्य, अर्घ्य, नैवेद्य और जप समर्पित करे और इस प्रकार विधि पूर्वक ध्यान करने के उपरांत देवीका विसर्जन करे । १९-२०

क्योंकि पूजन करने में सभी लोगों के लिए कर्म का यही क्रम बताया गया है । अब कमलेश सूर्य के आवरण करने में जप का स्थान बता रहा हूँ सुनो ! । २१। कमल की कणिका में सूर्य को स्थापित करके

आदित्यं कर्णिकासंस्थं दलेष्वह्नगानि पूर्वशः । सोमादीनराहुपर्यंतान्प्रहांश्रैवोदगादितः ॥२२
 मूर्तिमल्लोकपालश्च क्षमादावरणेष्वथ । तदस्त्राणि च रक्षार्थे स्वमन्त्रैः पूजयेत्कमात् ॥२३
 प्रणवैश्वाभिधानैश्च चतुर्थ्या हृभियोजितैः । सर्वेषां कथिता मन्त्रा मुद्राश्च नथयाम्यतः ॥२४
 व्योममुद्रा रतिः पदा महाश्वेतास्त्रमेव च । पञ्चमुद्राः समाख्याताः सर्वकर्मप्रसिद्धये ॥२५
 उत्तानौ तु करो कृत्वा अङ्गुल्यो द्रव्यिताः क्षमात् । तर्जनीं यन्ति पावत्ताः समे वाधोमुखे स्थिते ॥२६
 तर्जन्योऽस्थमस्त्वैव ज्येष्ठाद्वे दानुगोपारः । मुद्रेयं सर्वमुद्राणां व्योम मुद्रेति कीर्तितः ॥
 मर्दकर्मसु योगोऽयं तथा स्थानं प्रकल्पते ॥२७
 पथदत्प्रसृताः सर्वा महाश्वेताः रवेः स्मृताः । जवसंनिहितो नित्यं रथारुणो रविः स्मृतः ॥२८
 हस्तावूर्ध्मुखो कृत्वा वामाङ्गुष्ठेन योजितौ । द्रव्याणां शोधने योज्या रक्षार्थं च विशेषतः ॥२९
 अनया मुद्रया सर्वं रक्षितं शोधितं भवेत् । अर्थं इत्या प्रयोक्तव्या पूजान्ते च विशेषतः ॥३०
 जपध्यानावसाने च यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः । अनेन विधिना नित्यं जपेदब्दमतन्त्रितः ॥३१
 स लभेतेष्वितान्कामानिहामुत्र न संशयः । रोगार्तो मुच्यते रोगाद्वनहीनो धनं लभेत् ॥३२
 राज्य-च्छटो लभेद्राज्यमपुः । उत्त्रमामुयात् । प्रजामेधासमुद्धीश्च चिरं जीवति मानवः ॥
 मुरुपां लभते कन्यां कुलीना पुरुषो ध्रुवम् ॥३३
 सौभाग्यं स्त्री कुलीनापि कन्या च पुरुषोत्तमम् । अविद्यो लभते विद्यामित्युक्तं भानुना पुरा ॥३४
 नित्ययागः स्मृतो हृषे धनधान्यसुखावहः । प्रजापशुविवृद्धिश्च निष्कामस्थापि जायते ॥३५

दलों में उनके अंगों (सहचरों) को पूर्व आदि दिशाओं में क्रमशः स्थापित करे पश्चात् चन्द्र आदि से लेकर राहु तक सभी ग्रहों को भी उत्तर की ओर से स्थापित करना चाहिये । २१। इसी भाँति मूर्तिमान् लोक-पालों का जो क्रमशः उनके आवरण की भाँति स्थित रहते हैं और रक्षा के लिए उनके अस्त्रों का भी क्रमशः मंत्र पूर्वक स्थापन पूजन करना चाहिए । २२। इस प्रकार ओकार पूर्वक (संस्कृत व्याकरण के अनुसार) चतुर्थ्यन्त नामों का उच्चारण करके आवाहनादि समस्त क्रियाएँ सुसम्पन्न करनी चाहिए । उपरात्तं सभी के मंत्रों को बता कर अब मैं मुद्राएँ बता रहा हूँ । २३। व्योम, रति, पदा, महाश्वेता एवं अस्त्र, ये पांच मुद्रायें सभी कायों में सिद्धि दायक हैं । २४। द्रव्यों के संशोधन तथा उसकी रक्षा के लिए मुद्राओं की विशेषता बतायी गई है । मुद्रा के द्वारा ही सभी लोग संशोधित एवं रक्षित रहते हैं । इसलिए अर्धदान देकर पूजा की समाप्ति में मुद्रा-प्रयोग अवश्य करना चाहिए । २५-३०। अपनी (कार्य) सिद्धि के लिए जप और ध्यान के अंत में भी मुद्राओं के प्रयोग करने चाहिए इसी विधि द्वारा यदि पूरे वर्ष तक जप आदि किये जाय तो उसके लोक-परलोक के मनोरथ सफल हों । रोगी रोग से मुक्त हो, निर्झन को धन की प्राप्ति हो, तथा राज्य-च्युत को राज्य एवं अपुत्री को पुत्र की प्राप्ति समेत कुशाग्र बुद्धि, समृद्धि तथा दीर्घ जीवन प्राप्त हो । इसी भाँति पुरुष को कुलीन एवं सौन्दर्य पूर्ण कन्या की प्राप्ति स्त्री को उत्तम सौभाग्य कन्या को पुरुष और मूर्ख को विद्या की प्राप्ति हो । इस प्रकार पहले ही सूर्य ने बताया था । ३१-३४। इसीलिए इस यज्ञ को नित्य करना चाहिए क्योंकि इसके अनुष्ठान से निष्काम पुरुष को भी धन-धान्य का, सुख सन्तान तथा

तदैकः स्त्रयते स्वर्गं शब्दधते च नरोत्तमः । भक्त्या तं पूजयेद्यस्तु नरः गुण्ठ्यतः सदा ॥३६
इह वै कामिकं प्राप्य ततो गच्छेन्मनोः पदम् । द्विजस्तत्य प्रसादेन तेजसा ब्रुधसन्निभः ॥३७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शर्तार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
सूर्यमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनपञ्चशतमौऽध्यायः । ४९।

अथ पञ्चारात्मोऽध्यायः

सप्तमीशाहात्म्यवर्णनम्

वासुदेव उवाच

नैमित्तिकं ततो वक्ष्ये यज्ञात्वा च स्पस्तः । सप्तम्यां च्छणे चैव संक्रान्तिष्ठु विशेषतः ॥१
शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां हविर्भूत्वंकृदा दिवा । सम्यगाच्य सन्ध्यायां वारणं प्रणिष्ट्य च ॥२
इन्द्रियाणि च संयम्य कुरुं ध्यात्वा स्वपेदधः । दर्भश्च्यागतो रात्रे प्रातः स्नातः सुसंयतः ॥३
ततः सन्ध्यामुपास्यतः पूर्वोक्तं च मनुं जपेत् । जुहुयाच्च तदा वह्निं सूर्यग्नो परिकल्प्य च ॥४
सूर्योन्निकरणं वक्ष्ये तर्पणं च समाप्तः । अर्चनागारमुलिलत्य प्रविश्याच्य जनैर्जनम् ॥५
प्रक्षिप्यास्तीर्य दर्भश्च पात्राद्यालंभ्य च क्रमात् । पवित्रं द्विकुशं कृत्वा सादं प्रादेशसम्मितम् ॥६

पशुओं की वृद्धि प्राप्त होती है । ३५। स्वर्ग में वही एक स्थिति प्राप्त राजा कहा जाता है । इस प्रकार भक्ति पूर्वक जो उनका पूजन करता है वह सदैव अधिक पुण्यात्मा होता है । ३६। तथा इस लोक में अपनी कामनाओं की सफलता प्राप्त कर (स्वर्ग में) मनु पद प्राप्त करता है । उनकी प्रसन्नतावश द्विज लोग बुध के समान तेजस्वी होते हैं । ३७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमीकल्प में सूर्य माहात्म्य वर्णन नामक उनचारावाँ अध्याय समाप्त । ४९।

अध्याय ५०

सप्तमी माहात्म्यवर्णन

वासुदेव बोले—(सूर्य के) नैमित्तिक पूजन को जो विशेषकर सप्तमी तिथि ग्रहण के समय एवं संक्रान्ति के दिनों में ही किया जाता है संक्षेप में बता रहा हूँ सुनो ! । १। शुक्लपक्ष की सप्तमी के पूर्व षष्ठी में एक बार दिन में हविष्यात्र का भोजन करके संध्या समय में आचमन, सूर्य को नमस्कार एवं इन्द्रिय संयम पूर्वक कुशासन पर स्थित हो ध्यान करते हुए वहीं नीचे शयन भी करके रात व्यतीत करने के पश्चात् प्रातः काल उठकर स्नान संध्योपासन करके पूर्वोक्त मनु मंत्र के जप एवं वह्नि का सूर्य और अग्नि की कल्पनाकर उसमें हवन करे । २-४। उपरात सूर्याग्निं करण संक्षेप में एवं तर्पण भी बता रहा है । पूजन करने के मंदिर को चित्रविचित्र मूर्तियों की कारीगरियों से सुशोभित करके (कुशकंडिका) करने के उपरान्त हवन करना चाहिए । ५। (हवन कुंड के चारों ओर) कुश विछाकर क्रमशः पात्रादि (प्रोक्षणीपात्र एवं प्रणीतापात्र के आचमनपूर्वक कुश के दो दलों से बने हुए पवित्रक को लेकर जिसमें

तेग पात्राणि सम्प्रोक्ष्य संशोध्याथ विलोक्य च । उदगदे स्थिते पात्रे प्रज्वल्याथेल्मुकेन च ॥७
 पर्यग्निकरणं कृत्वा तथाज्योत्यवनं क्षिदा । दरिभूज्य रुचादोऽश्व दर्भः सम्प्रोक्षेत्ततः ॥८
 जुहुदःप्रोक्ष्य तान्वद्धूरो तत्रार्कं पूर्वचद् वजेत् । अभूसौ स्थितपात्रेण विष्टरेण तु पाणिना ॥
 दानेन यदुशार्दूज नान्तरिक्षे स्थले क्वचित् ॥९

दर्क्षिणेन स्रुवं गृह्ण जुहुयत्यावकं बुधः । हृदयेन क्षियाः सर्वाः कर्तव्याः पूर्वचोक्षिताः ॥१०
 अर्कादारम्य संज्ञार्थं दद्यात्तूजों हृति स्थितः । वरणाथ शतर्माधे सप्तम्यां वरुणं यजेत् ॥११
 यथा शक्त्या तु निप्रेम्यः प्रदद्यात्खण्डवेष्टकान् । दद्याच्च दक्षिणां शक्त्या प्राप्नोति याचित्प फलम् ॥१२
 एवं वै फाल्मुने सूर्यं चैत्रे वैशाल एव च । वैशाले मासि धातारमिन्द्रं ज्येष्ठे यजेद्रविम् ॥१३
 आषाढे श्रावणे मासि नभं भाद्रपदे यमम् । तथाभ्युजि पर्जन्यं त्वष्टारं कार्तिके यजेत् ॥१४
 मार्गशीर्षे च मित्रं च पौषे विष्णुं यजेद्यदि । संवत्सरेण यत्प्रोक्तं रुलमिष्टं दिनेदिने ॥
 तत्तर्त्समान्यात्किंप्रं भक्त्या श्रद्धान्वितां व्रती ॥१५

एवं संवत्सरे पूर्णे कृत्वा वे काङ्गवनं रथम् । सप्तभिर्वाजिभिर्युक्तं नानारल्लोपशोभितम् ॥१६
 आदित्यप्रतिमां मध्ये शुद्धहेन्ना कृतं शुभम् । रत्नैरलङ्घतां कृत्वा हेमपद्मोपरिस्थिताम् ॥१७

अग्रभाग हो तथा वह प्रादेश मात्र का हो उसी द्वारा (यज्ञ) पात्रों का प्रोक्षण, संशोधन और (पितॄलाये हुए धी का) निरीक्षण करके उत्तर की ओर किये हुए पात्र (आज्यस्थाली) में रखे । पश्चात् जलती हुई एक समिधा से उसे प्रज्वलित करे । ६-८। उपरान्त अग्नि का आज्यस्थाली द्वारा एक प्रदक्षिणा कर व्यस्त हाथ के अंगूठे और कनिष्ठा के द्वारा धी का तीन बार उत्प्लावन (उपर को धीरे से उछालना) ल्पक्रिया को सुसापन्न करके अनन्तर सूर्य के (मूल, मध्य और अंत भाग को) कुशाओं द्वारा संमार्ज्जन एवं संप्रोक्षण करने के उपरांत उन कुशाओं को अग्नि में डाल देना चाहिए । हे यदुशार्दूल ! फिर पूर्व की भाँति सूर्य की पूजा करनी चाहिए । जिसके विधान में भूमि और अन्तरिक्ष से पृथक् किसी अन्य आधार पर स्थित पात्र में उसके लिए आसन प्रदान पूर्वक आवाहन एवं पूजन सुसम्पन्न कर समस्त क्रियाओं को समाप्त करना विद्वानों ने बताया है । जो पहले कही गयी है । ९-१०। अतः पुनः सूर्य से आरम्भ कर (देवों) एवं संज्ञा के लिए भी मौन होकर आहुति डालें । माध मास की सप्तमी में वरुण नामक सूर्य की पूजा करनी चाहिए जिरामें उनके लिए सौ आहुति डालने का विधान कहा गया है । पश्चात् ब्राह्मणों को मधुर भोजन कराकर यथा शक्ति दक्षिणा देने से अभिलिष्ट फलों की प्राप्ति होती है । ११-१२। इसी प्रकार फाल्मुन मास में सूर्य, चैत्र में श्वेतांशु, वैशाल में धाता, ज्येष्ठ में इन्द्र, आषाढ़ में रवि, सावन में नभ, भाद्र में यम, आष्टमि में पर्जन्य, कार्तिक में त्वष्टा, मार्गशीर्ष (अग्नह) में मित्र और पौष में विष्णु नामक सूर्य की पूजा करनी चाहिए इस प्रकार व्रत विधान द्वारा श्रद्धा भक्ति पूर्वक वर्ष के समस्त सूर्यों की पूजा सुसम्पन्न करने से प्रति दिन के सौभाग्य तथा बताये हुए सभी फलों की प्राप्ति होती है । १३-१५। इस भाँति वर्ष की समाप्ति में सुवर्ण का रथ, जिसमें भाँति-भाँति के रत्नों से सुशोभित सात घोड़े जुते हों, बनाके उसके मध्य भाग में शुद्ध सुवर्ण की बनायी गयी सूर्य की प्रतिमा जो सौन्दर्य पूर्ण रत्नों से अलंकृत एवं सुवर्ण के कमल पर स्थित हो

तस्मिन् रथवरे कृत्वा सारथिं चक्षेतः स्थितम् । वृतं द्वादशभिर्विप्रैः क्रमान्मासाधिपात्मनिः॥१८
 मध्ये कृत्वा स्वमाचार्यं पूजयित्वा यथाश्रुतेः । सञ्चिवल्यादित्यवर्णं वै दस्त्ररत्नादिनाहर्देत् ॥१९
 एवं मासाधिनन्विप्रान्सम्पूज्याथ निवेदयेत् । आचार्याय रथं छन्दं ग्रामं गाश्र महीं शुभान् ॥२०
 अचान्मासाधिपेभ्यस्तु द्वादशभ्यो निवेदयेत् । एवं भक्त्या यथाशक्त्या हेमरत्नादिभूषणम् ॥२१
 दत्त्वा तस्य ननस्कृत्य वतं पूर्जं निवेदयेत् । अत ऊर्ध्वं न दोषोऽन्नं दत्तस्याकरणेष्वपि ॥२२
 एवमप्तिवति विप्रेन्द्रैः सहाचार्यः पुनः पुनः । बह्वीश्वैराशिषो दत्त्वा प्रवदेत्रीयतामिति ॥२३
 आदित्यो येन कामेन त्वदा आराधितो व्रतैः । तुरयं ददातु तं कामं सम्पूर्णं भवतु व्रतम् ॥२४
 आचार्यान्विप्ररूपैस्तु प्रविष्टो भास्करः स्वयम् । दास्यत्येद परं कर्तुमित्युक्तं भानुना स्वयम् ॥२५
 विप्रेभ्यो गुणवद्व्यश्र निष्वैस्याश्र विशेषतः । दीनान्धकृपणेन्यश्च शक्त्या दत्त्वा च दक्षिणाम् ॥
 ब्राह्मणान्भोजयित्वा च व्रतमेतत्समापयेत् ॥२६
 कृत्वैव सप्तमीमब्दं राजा शवति धार्मिकः । पुरुषः स्त्री भवेद्राजां तादृशामथ दल्लभा ॥२७
 शतयोजनविस्तीर्णं निःत्पत्तमण्टकम् । निष्प्रब्रह्मण्डलं भुद्भक्ते साग्रं वर्षशतं सुखी ॥२८
 वित्तहीनोऽपि यो^१ भक्त्या कृत्वा तात्रमयं रथम् । दद्याद्व्रतावसाने तु कृत्वा सर्वं यथोदितम् ॥
 सोऽशीतियोजनं भुक्ते विस्तीर्णं मण्डलं नृपः ॥२९

स्थापित करके उस रथ के अग्रभाग पर सारथी की भी स्थापना करे । इसी प्रकार बारह मास के अधिपति रूप में बारह ब्राह्मणों की जिसके मध्य में आचार्य स्थित हों वस्त्र एवं रत्नों द्वारा पूजा करके उन्हें तथा आचार्य को वे प्रतिमाएँ आदि समर्पित करे । रथ, छन्द, ग्राम, गायें और भूमि का दान आचार्य को तथा उन मासों के अधीन ब्राह्मणों को घोड़े प्रदान करे । और भक्तिपूर्वक सुवर्ण और रत्नों के आभूषण भी देकर एवं उन्हें नास्कार करते हुए पूर्ण वर्ष के व्रत दो पूर्ण होने का निवेदन भी करे । पश्चात् यदि व्रत न भी करे तो कोई दोष नहीं होता है । १६-२२। पुनः नमस्कार के उपरान्त ब्राह्मण समेत आचार्य उसको 'एवमस्तु' कहकर स्वीकार करे और भाँति-भाँति के आशीर्वाद देते हुए प्रसन्न रहे । २३। और जिसे मनोरथ के लिए तुमने आदित्य की आराधना की है वे उसे सफल करते हुए व्रत को पूर्ण करे । यजमान से यह भी कहे । २४। क्योंकि आचार्य में ब्राह्मण रूप से सूर्य स्वयं प्रवेश कर तुम्हें समस्त फल देंगे ऐसा सूर्य ने स्वयं कहा है । २५। इस आंति व्रतानुष्ठान में गुणवान् एवं निर्धन ब्राह्मणों तथा विशेषकर दीन हीन अंधे एवं निःसहाय व्यक्तियों को शक्त्यनुसार दान-दक्षिणा तथा भोजन कराकर वह व्रत समाप्त करना चाहिए । २६। इस प्रकार पूर्ण वर्ष की सप्तमी के व्रत विधान सुसम्पन्न करने से वह राजा धार्मिक होता है यदि व्रतानुष्ठान करने वाली स्त्री होतो वह राजा की परम प्रेयसी रानी होती है । २७। और सौ योजन का लम्बा चौड़ा राज्य शत्रु रहित एवं निष्कण्टक राज्य मण्डल प्राप्त कर सौ वर्ष तक उसका उपभोग करते हुए सुखी जीवन प्राप्त करता है । २८। यदि कोई निर्धन (व्यक्ति) भी भक्ति पूर्वक ताँबे का रथ बनवा कर विधि पूर्वक व्रत की समाप्ति में दान करता है तो उसे असी योजन के भ्रमण्डल का राज्य प्राप्त होता है,

१. यथाशक्त्या ।

एवं पिष्टमयं योऽपि वित्तहीनः करोति ना । आपस्थियोजनं भुद्धकं दीर्घायुर्नौरुजः सुखी ॥
सूर्यलोके च कल्पान्तं यावतिथित्वेदमाप्नुयात् ॥३०
मनसापि च यो भक्त्या यजेद्कर्मतन्दितः । सर्वावस्थासु सोऽप्यत्र व्याधिभिर्मुच्यते भृगम् ॥३१
आपदो न त्पृशयन्त्येनं नीहारा इव भास्करम् । किं पुनर्वत्सम्पन्नं भक्तं मन्त्रैश्च रक्षितम् ॥३२
यत एवं ततो ज्ञात्वा विधानं कल्पचोदितम् । सुखेन फलसिद्धर्थं कुर्यात्सर्वमेषातः ॥३३
इत्येतत्कथितं साम्बु पुरा सूर्येण मे शुभम् । कल्पोऽप्यं प्रथमे कल्पे सर्वदा गोपितो मया ॥३४
अनेन विधिना वत्ता विशुद्धेनान्तरात्मना । भानुमाराधयेत्किप्रं यदीच्छेत्फलमुत्तमम् ॥३५
गयास्यैव प्रसादेन प्राप्ताः पुत्राः सहस्रशः । असुरा निजिताश्रैव सुराः सर्वे वशीकृताः ॥३६
त्वयाप्ययं गोपितव्यः कल्पः सूर्यस्य सम्भवः । प्रसादादस्य कल्पस्य सदा सन्निहितो रविः ॥
चक्रेऽस्मिन्निर्जिता येन सुरा सुरनरोरगा: ॥३७
यदिनाधिष्ठितं चक्रमिदं सूर्याशुभिः स्वयम् । सततं स्यात्प्रभायुक्तं कथमध्याहतं भवेत् ॥३८
अहमेतं जपन्नित्यं यजन्न्यायांश्च शक्तिः । जातोऽस्मि सर्वकामानां पूज्यः श्रेष्ठश्च तेजसा ॥३९
त्वमभ्यस्यैव मनसा दत्ता वा कर्मणापि वा । कुरु भक्तिमनेनैव विधिना फलतिद्ये ॥४०
शृणुयाद्ब्रह्मियुक्तो यो नरः श्रद्धासमन्वितः । विधानमादितः पुत्र सप्तमीं कुरुते च यः ॥४१

दीर्घायु, आरोग्य सगेत सुखी जीवन प्राप्त होता है तथा अन्त में एक कल्प तक सूर्य का निवास भी प्राप्त होता है । २९-३०। इस प्रकार जो मनुष्य भक्ति पूर्वक दत्तचित होकर सूर्य की केवल मानसिक पूजा करता है तो उसे भी सभी अवस्थाओं में स्वस्थ जीवन प्राप्त हो जाता है । ३१। और सूर्य को नीहार (कुहरा) की भाँति आपत्तियाँ उसे दूर तक नहीं सकती। और जो इस विधान को जानते हुए भक्ति पूर्वक फलसिद्धि के लिए सविधि व्रत करते हुए मंत्रों से रक्षित रहते हैं उन्हें क्या कहा जा सकता है (अर्थात् उन्हें असंख्य सुख साधन की प्राप्ति होती है) । ३२-३३। हे साम्ब ! पहले कल्प में कल्याणमय इस कल्प को सूर्य ने मुझसे कहा था और मैंने भी इसे सदैव गुप्त ही रखा था । ३४। हे वत्स ! इसलिए यदि उत्तम फल की कामना हो तो शुद्ध हृदय से इसी विधान द्वारा सूर्य की आराधना करे । ३५। इन्हीं की प्रसन्नता वश मुझे हजारों पुत्रों की प्राप्ति, असुरों पर विजय एवं सभी देवगण मेरी अधीनता स्वीकार करते हैं । ३६। अतः तू भी सूर्य-प्रिय इस कल्प को गुप्त रखना, क्योंकि इस कल्प की प्रसन्नता वश सूर्य सदैव मेरे चक्र के समीप ही रहते हैं जिसके द्वारा सुर असुर, मनुष्य और साँपों आदि का पराजय किया है । ३७। वे (सूर्य) यदि अपनी किरणों समेत इस चक्र में सन्निहित न रहते तो इसमें इतनी कान्ति एवं हनन की शक्ति कहाँ से होती । ३८। इसीलिए नित्य इनका पूजन, जप और यथाशक्ति ध्यान करता है और इन्हीं की आराधना करने के नाते मनुष्यादि के सभी मनोरथ में तेज के द्वारा श्रेष्ठ और पूज्य हैं । ३९। तू भी मन वाणी एवं कर्म द्वारा अपने मनोरथ की सफलता के लिए इसी विधान से इनकी भक्ति करो । ४०। हे पुत्र ! जो पुरुष-भक्तिपूर्वक इसे सुनता है, यह विधि पूर्वक सप्तमी का व्रत करता है उसे

सेह^१ प्राप्याऽखिलं काममारोग्यं च जयं तथा । भार्गव्या परया युक्ते गच्छेद्वैरोचनं सदः ॥४२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्ड्साहूक्ष्यां सहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
सप्तमीमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०।

अथैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

महासप्तमीव्रतवर्णनम्

बासुदेव उवाच

माघस्य शुक्लपक्षे तु पञ्चम्य शत्कुलोद्धृतः । एकभक्तं रदाल्लातं अष्ट्यां नक्तमुदाहृतम् ॥१
सप्तम्यामुपवासं तु केचिदिच्छन्ति सुव्रतः । अष्ट्यां केचिदुदन्तीह सप्तम्यां पारणं किल ॥२
कृतोपवासः अष्ट्यां तु पूजयेद्वास्करं बुधः । रक्ततच्चन्दनमिश्रैस्तु करवीरैश्च सुव्रतः ॥३
गुगुलेन महाबाहो संपादेन च सुव्रतः । पूजयेद्वेदेवेशं शङ्करं^२ भास्करं रविम् ॥४
एवं हि चतुरो मासान्माघादीन्यूज्येद्विविम् । आत्मनश्चादि शुद्धदर्थं प्राशनं गोमयस्य च ॥५
लानं च गोमयेनेह कर्तव्यं चात्मशुद्धये । ब्राह्मणान्दिव्यभौमांश्च भोजयेच्चापि शक्तिः ॥६
ज्येष्ठादिष्वयं लासेषु श्वेतचन्दनमुच्यते । श्वेतानि चापि पुष्पाणि शुभगन्धान्वितानि वै ॥७

सभी प्रकार की सफलता आरोग्य, विजय और पूर्व लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, तथा कालान्तर में सूर्य के भवन को प्राप्ति होती है । ४१-४२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सप्तमी माहात्म्य वर्णन नामक पञ्चाशत्तमोऽध्याय समाप्त ॥५०।

अध्याय ५१

महासप्तमी व्रत वर्णन

बासुदेव बोले—हे सुव्रत ! कुछ लोगों ने माघ शुक्ल पक्ष की पञ्चमी में एक बार भोजन, षष्ठी में नक्त व्रत और सप्तमी में उपवास का विधान बताया है तथा कुछ लोगों ने षष्ठी और सप्तमी में पारण का विधान कहा है । १-२। किन्तु उपवास करके षष्ठी में सूर्य को पूजा रक्त चन्दन और कनेर के फूलों द्वारा अवश्य सुसम्पन्न करनी चाहिए । ३। हे महाबाहो ! उसी भाँति गूगुल तथा लप्सी द्वारा देवाधिदेव शंकर और सूर्य की पूजा करना बताया गया है । ४। इस प्रकार माघ आदि चारों मासों में आत्म-शुद्धि के लिए सूर्य की पूजा करके गोमय का प्राशन (खाना) करना चाहिए इसमें स्नान भी गोमय मिश्रित का ही करके शक्त्यनुसार दिव्य भौमों और ब्राह्मण को भोजन करना चाहिए । ५-६। ज्येष्ठ आदि मासों में श्वेत चन्दन, श्वेत पुष्प, सुगन्ध आदि गुगूर का धूप, नैवेद्य और स्त्रीर से पूजन करके इन्हीं द्वारा ब्राह्मणों को

१. अत्र पादपूर्त्यर्थं स इत्यस्य सोलोर्पः । २. ग्रहेण शंकर रविम् ।

कृष्णगरुस्तथा धूपो तैवेदं पायसं स्मृतम् । तेनैव ब्राह्मणांस्तुष्टान्भोजयेच्च महामते ॥८
 प्राशयेत्पञ्चगव्यं तु स्नानं तेनैव पुत्रक । कार्तिकादिषु मासेषु आगस्तिक्रुद्यैः स्मृतम् ॥९
 पूजयेन्नरशार्दूल धूपैश्चेदपराजितैः । नैवेदं गृडपूपास्तु तथा चेक्षुरसं स्मृतम् ॥१०
 तेनैव ब्राह्मणास्तात भोजयस्व स्वशक्तिः । कुशोदिकं प्राशयेथाः लानं च कुरु गुद्यये ॥११
 तृतीये परं रगास्यान्ते भाष्ये मासि महामते । भोजनं तत्र दानं च द्विगुणं समुदाहृतम् ॥१२
 देवदेवस्य पूजा च कर्तव्या रक्तितो दुधैः । रथस्य चार्पि दानं तु रथयात्रा तु सुव्रत ॥१३
 व्रतस्य प्राप्तिहेतोर्वै कर्तव्या विभदे सति । दानं स्वर्णरथस्येह यथोक्तं दिभवे सति ॥
 इत्येषा लक्षिता पुत्र रथाद्वा सप्तमी शुभा ॥१४
 महासप्तमी विख्याता महापुण्या महोदया । यामुपोष्य धनं पुत्रान्कीर्ति दिद्यामलाप्नुयात् ॥१५
 तथाखिलं कुवलयं चन्द्रेण च समोर्चिषा ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वीणि सप्तमीकल्पे
 महासप्तमीव्रतवर्णनं नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः । ५१।

अथ द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूर्यपूजावर्गनम्

सुमन्तुरवाच

इत्युक्त्वा भगवान्देवः शङ्खचक्रगदाधरः । अन्तर्धानं गतो वीरं शास्त्रस्थेह प्रपश्यतः ॥१

ही संतुष्ट करना चाहिए । ७-८। इसमें पञ्चगव्य द्वारा स्नान और उसी का प्राशन करना बताया गया है । हे पुत्र ! कार्तिक आदि मासों में अपराजित और अगस्त पुष्टियों द्वारा पूजन धूप, तैवेद, गुड का मालपूजा, और ऊँल के रस समर्पित कर इन्हीं पदार्थों द्वारा बने भक्ष्य पदार्थ ब्राह्मणों को भी भोजन यथा शक्ति कराये और शुद्धि के लिए इसमें कुशोदक से स्नान और उसी का प्राशन करना बताया गया है । ९-११। महामते ! तीसरे पारण के अंत में जो माध के मास में होता है भोजन और दान दुगुने तप में करना बताया गया है । १२। इसीलिए बुद्धिमानों को अपनी शक्ति के अनुसार देवाधि देव (सूर्य) की पूजा, रथ दान और रथयात्रा अवश्य करनी चाहिए । १३। यदि संपत्ति हो तो अपने व्रत की पूर्ति के लिए सुवर्ण का रथ अवश्य बनवाना चाहिए । हे पुत्र ! इस प्रकार रथ नाम वाली सप्तमी को जो पुण्य रूप, महासप्तमी के नाम से विख्यात, महान् अम्बुदय करने वाली एवं जिसमें उपवास रहकर धन, पुत्र, विद्या की प्राप्ति तथा चन्द्र किरणों की भाँति समुज्ज्वल कीर्ति की प्राप्ति होती है मैने बता दिया है । १४-१६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में महासप्तमी वर्णन
 नामक एक्यावनवाँ अध्याय समाप्त । ५१।

अध्याय ५२

सूर्यपूजा का वर्णन

सुमन्त बोले—इस प्रकार शंख, चक्र और गदा को धारण करने वाले भगवान् कृष्ण देव साम्ब के

शास्त्रोऽपि कृत्वा विधिवत्सप्तमीं रथतप्तमीम् : आदिभिर्व्याधिर्निरुत्तो लगानाशु स्वमन्दिरम् ॥३

शतानीक उवाच

रथयात्रा कर्यं कार्यं रथः कार्यः रथं रथे : । केनेह मर्त्यलोकेषु रथयात्रा प्रदर्शिता ॥३

सुमन्तुरुवाच

इममर्थं पुरा पृष्ठः पश्योनि: प्रजापतिः । रुद्रेण कुरुशार्दलं आसीनः काञ्चने शिरौ ॥४
पश्यास्तनं पश्यर्यांनि सुखासीनं प्रजापतिम् ! प्रणम्य शिरसा देवो रुद्रोवाच्मुदैरर्यात् ॥५

श्रीरुद्र उवाच

य एष भगवान्देवो भास्करो लोकभास्करः । कथमेष भ्रमेष्टेवो रथस्थो विमलः सदा ॥६

ब्रह्मोवाच

यथा दिवि भ्रमेत्तात रथारुढो रवि. सदा । तथा ते वर्तगिष्ठोऽहं रथं चास्य त्रिलोचन ॥७

रथेन हृकदक्षेण पञ्चरेण त्रिणाभिना । हिरण्यमधेन कान्तेन अष्टवन्धैकनेमिना ॥८

नक्षेण भास्त्वता चैव दिवि सूर्यः प्रसर्पति । दशयोजनसाहस्रो विस्तारोऽप्यस्य कथ्यते ॥९

त्रिगुणा च रथोपस्थादीषा इण्डप्रमाणतः । युगमस्य तु विस्तीर्णमरुणो^१ यत्र लारथिः ॥१०

देखते देखते अन्तर्धान हो गये । १। साम्ब ने भी विधि पूर्वक रथ सप्तमी वाली सप्तमी के व्रत आदि द्वारा शारीरिक रोगों से मुक्त होकर अपने मन्दिर को प्रस्थान किया । २।

शतानीक बोले—सूर्य देव के रथ का निर्माण एवं रथयात्रा कैसे की जाती है और सर्वप्रथम इस भू-लोक में किसने यह रथ यात्रा आरम्भ की है । ३

सुमन्तु बोले—हे कुरुशार्दल ! किसी समय ब्रह्मा से इसी बात को जो इस समय सुमेरु पर्वत पर सुखासीन थे भगवान् रुद्र देव ने पूछा था । ४। सुख पूर्वक बैठे हुए प्रजापति (ब्रह्म) को, जो कमल पर स्थित एवं कमल से उत्पन्न हुए हैं शिर से नमस्कार करके शिव ने पूछना आरम्भ किया । ५

श्रीरुद्र ने कहा—भगवान् सूर्य जो लोक को प्रकाशित करते हैं सदैव किस प्रकार के स्वच्छ रथ पर स्थित होकर धूमते हैं ? । ६

ब्रह्मा बोले—हे तात ! जिस भाँति के रथ पर बैठकर सूर्य आकाश में सदैव धूमते हैं मैं उनका तथा उनके रथ को बता रहा हूँ । ७। सूर्य प्रदीप्त चक्र वाले उस रथ पर जिसमें देवीप्यमान एक चक्र (चक्का) पाँच आरा, तीन नाभि सीन्दर्य पूर्णी सुवर्ण के आठ बन्धनों से युक्त एक नेमि एवं दश हजार योजन का लम्बे चौड़े (रथपर) बैठकर आकाश में सदैव धूमते हैं । ८-९। रथ के उपस्थ पीछे भाग से ईषा (हरसा) दण्ड प्रमाण के अनुसार तिगुना है और रथ का युग (जुआ), जिस पर अरुण बैठते हैं अत्यन्त चौड़ा है । १०।

प्रासङ्गः कांचनो दिव्यो युक्तः पवनगर्हयैः । छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तु यतश्चकं ततः स्थितैः ॥११
 येनासौ पर्यटेद्वयोऽग्निभास्वता तु दिवस्यतिः । अथैतानि तु सूर्यस्य प्रत्येकानि रथस्य तु ॥१२
 संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम् । ^१नाभ्यस्तिस्तु चक्रस्य त्रयः कालाः प्रकीर्तिः ॥१३
 आराः पञ्चर्तवस्तस्य नेत्र्यः षडृतवः स्मृताः । रथवेदी स्मृते तस्य अयने दक्षिणोत्तरे ॥१४
 मुहूर्ते^२ इष्वदत्तस्य शम्याश्रास्य कलाः स्मृताः । तद्य काळाः स्मृताः कोणः अक्षदण्डः क्षणः स्मृताः ॥१५
 निमेषाश्रास्य कर्त्त्वाः स्यादीशादण्डो लवाः स्मृताः । रात्रिर्वर्लक्षो धर्मार्थस्य ध्वज ऊर्ध्वं प्रतिष्ठितः ॥१६
 युगाक्षिकोटी ते तस्य अर्थकामावृभौ स्मृतौ । अश्वरूपाणि छन्दांसि वहन्ते आमतो ध्रुरम् ॥१७
 गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्यनुष्टुवेव च । पदिक्ततश्च वृहती चैव उष्णिगेव तु सप्तमी ॥१८
 चक्रमक्षनिबद्धं तु ध्रुवे चाक्षः समर्पितः । सहचक्रो भ्रमत्यप्तः स चाक्षो भ्रमति ध्रुवे ॥१९
 अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवे स्थितः । एवमक्षवशात्स्य^३ भग्निवेशो रथस्य तु ॥२०
 तथा संयोगभानेन संसिद्धो भास्करो रथः । तेव चासौ रविर्देवो नभः संनर्दते सदा ॥२१
 युगाक्षकोटीसम्बद्धे द्वे रसमी स्यन्दनस्य तु । ध्रुवे ते भ्रमतो रसमी न चक्रयुगयोस्तु वै ॥२२
 भ्रमतो मण्डलान्यस्य रथेरस्य रथस्य तु : कुलालचक्रवद्याति^४ मण्डलं सर्वतोदिशम् ॥२३
 युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु । ऋग्यजुम्यां गृहीतेन द्विदक्षार्थेन वै ध्रुवे ॥२४
 हसेते तस्य रसमी तु मण्डलेषूतरायणे । दक्षिणेऽथ समृद्धे तु भ्रमतो मण्डलानि तु ॥२५

उसमें पवन की भाँति अत्यन्त वेगवाले घोड़े, जो छन्दोरूप हैं जुते हुए हैं, उनके कंधे पर सुवर्णमय जूआ स्थित है। उन्हीं के द्वारा दिन नायक (सूर्य) चमकते हुए आकाश में धूमते रहते हैं। संवत्सर (वर्ष) के सभी सभी अंग (अवयव) इसके (सूर्य के रथ के) अंग हैं, तीनों काल चक्र की तीनों नाभि, पाँच ऊरु आरा (आरागङ्ग) छठों ऊरु नेमि, दक्षिणायन एवं उत्तरायण दोनों रथ की बैदी (बैठने के स्थान) हैं, मुहूर्त, इष्व, कलाएँ, शम्य (जुए की कील) बतायी गई हैं तथा दिशाएँ कोना, क्षण, अक्षदण्ड, निमेष, कर्ष, लव, ईषा, दण्ड, रात, वृथ (रथ में बैठने का गुप्त स्थान), धर्म ध्वजा एवं अर्थ और कान धुरी के अग्रभाग हैं। छन्दोरूप घोड़े उसमें बाईं और जुतकर उसके धुरे को ले चलते हैं। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, वृहती एवं उष्णिक यही सात घोड़े हैं। धुरी पर चक्रका धूमता है, वह धुरी ध्रुव में लगी है और उस धुरी में चक्रका लगा है, चक्रके के साथ धुरी ध्रुव में लगी हुई धूमती हैं तथा उसी के द्वारा रथ चलता है। ११-२०। इस प्रकार एक-दूसरे में संयुक्त होकर सूर्य का रथ, जिसमें बैठकर (सूर्य देव) आकाश में चलते हैं, तैयार हुआ है। २१। जुए और धुरी में बांधी दो रस्सियाँ (घोड़े की बाग) रथ में रहती हैं वे धूमती नहीं हैं। २२। धूमते हुए सूर्य के रथ का मंडल (गोलाई) कुम्हार के चक्रे की भाँति चारों दिशाओं में पहुँचता है। २३। दाहिनी ओर रथ के जुए और धुरी को ऋग्वेद एवं यजुर्वेद धारण किये हैं। २४। सूर्य के धूमते हुए उत्तरायण में रश्मि (बाग) न्यून और दक्षिणायन में वृद्धि प्राप्त करती है। २५।

१. नेमयस्तस्य । २. अर्थर्त बन्धनं तस्य सावाश्रास्य कलाः स्मृताः । ३. चक्रमस्याङ्गवशं तु सन्धिदेशे रथस्य तु । ४. कुलालचक्रवत्तस्य भ्रमते मण्डलानि तु ।

युगाक्षकोटी ते तस्य भ्रमेते स्यन्दनस्य तु । सत्कासत्कं च भ्रमते मण्डलं सर्वतोदिशम् ॥२६
 आकृष्ट्येते ध्रुवणेह सम तिष्ठति सुद्रत । तदा साम्यन्तरं देवो भ्रमते मण्डलानि तु ॥२७
 ध्रुवेण सुव्यमाने तु पुना रशिमयुगेन वै । तथैव^१ दाहृतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ॥२८
 अशीतिमण्डलशतं काष्ठ्योहभयोरपि । सत्योऽधिष्ठितो देवैर्ब्रह्मेद्रिदिभिः सह ॥२९
 गन्धर्वैरप्सरोनिश्च सर्पप्रामणितक्षसैः । एतैर्वैसति वै सूर्यो मासौ ह्वौ ह्वौ क्लीण तु ॥३०
 धातार्यना पुलस्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः । खण्डको नासुकिश्चैव सकर्णो रसिमरेव च ॥३१
 तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वो गायतां चरौ । कलुत्यलाप्तरश्चैव या च मा पुष्टिजकल्पता ॥३२
 ग्रामजीरथकृत्स्नश्च रथौजाप्ततरावुभौ । रक्षोहेतिः प्रहेतिश्च यातुधानौ च तातुभौ ॥३३
 मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे । तथा ग्रीष्मौ तु द्वौ मासौ मित्रश्च वस्त्रश्च ह ॥३४
 क्रृषिरत्रिवशिष्ठश्च तक्षकोऽनन्त एव च । मेनका सहजन्या च गंधर्वो च ह्वा ह्वः ॥३५
 रथस्वनश्च ग्रामण्यौ रथचित्रश्च तावुभौ पौरुषेयो वधश्चैव यातुधानौ गहाबलौ ॥३६
 शुचिशुक्रौ तु द्वौ मासौ वसन्तोते दिवाकरे । इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ॥३७
 एलापर्णस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च पञ्चगाः । प्रस्तोत्रा दुन्दुकाश्चैव गन्धर्वो भानुदुर्दुरौ ॥३८
 यातुधानौ तथा सर्पतथा ब्राह्मणश्च तावुभौ । एते नभो नभस्यौ च निवसन्ति दिवाकरे ॥३९
 शरद्येते पुनः शुभ्रा निवसन्ति स्म देवताः । यज्ञन्यश्चैव पूषा च भारद्वाजः सगौतमः ॥४०

इस प्रकार रथ का चक्का एवं धूरी द्वारा धूमते हुए रथ का मण्डल (गोलाकार) सत्कासत्क होकर चारों दिशाओं में पहुँचता है । २६ः ध्रुव द्वारा रशिम आकृष्ट होती रहती है (तन जाती है) क्योंकि वह ध्रुव के समान ही सदै व रहती है । हे सुव्रत ! उस समय सूर्य उसके भीतर बैठकर गोलाकार धूमते हैं । २७ः ध्रुव से पृथक् दोनों घोड़े की बाग द्वारा रथ और उसके द्वारा सूर्य धूमते रहते हैं । इस प्रकार दक्षिणायन और उत्तरायण में धूमते हुए (सूर्य के) एक सौ अस्सी मंडल होते हैं । सूर्य के साथ देवता, क्रृषि, गन्धर्व, अप्सराएँ, साँप और प्रथान राक्षस गण ये सभी दो-दो मास तक वहाँ क्रमशः स्थित रहते हैं । २८-३०। जिस प्रकार धाता, अर्यमा, पुलस्त्य, पुलह, खण्डक, वासुकी, कर्ण समेत रशिम, तुम्बुह, नारद, गान कुशल दोनों गंधर्व, क्रतुस्थला, पुजिक स्थला, ग्रामणी, रथकृत्स्न, (रथीजा) दोनों घोड़े, रक्षोहेति एवं प्रहेति यातुधान ये सभी गण चैत्र और वैशाख मास में सूर्य के समीप स्थित रहते हैं । ३१-३४। उसी प्रकार जेठ, आषाढ़ में मित्रावरण, अत्रि, वशिष्ठकृषि, तक्षक, अनंत, साथ उत्पन्न होने वाली मेनका, हाहा-हहू गन्धर्व, रथस्वन एवं रथचित्र ये दोनों ग्रामणी एवं पौरुषेय और वध दोनों यहाँ बलवान यातुधान भी, जेठ और आषाढ मास में उनके समीप स्थित रहते हैं । वर्षा काल में, इन्द्र, विवस्वान, अङ्गिरा, भृगु, एलापर्ण, सर्प तथा शंखपाल नामक साँप, पुस्तोत्रा, दुन्दुका गन्धर्व, भानु और दुर्दुर यातुधान सर्प, वह्ना, नभ एवं नभस्वान् सूर्य के निकट रहते हैं । ३५-३९। शरद में धवल देवता, पर्जन्य, पूषा, भारद्वाज, गौतम, चित्रसेन गंधर्व, वसुरुचि, विश्वाची,

१. रथेन बाह्यते सूर्यः ।

चित्रसेनश्च गन्धर्वस्तथा बसुरुद्दिश्च यः । विश्वाची च वृत्ताची च हे उभे पुण्यलक्षणे ॥४१
 नागस्त्वैरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः । सेनजिञ्च सुषेणश्च सेनानीग्रामणीस्तथा ॥४२
 आपो वातश्च द्वावेतौ यातुधानौ प्रसीर्तिंतौ । वसन्त्येते तु वै सूर्ये इषोर्जों कालर्पयात् ॥४३
 हैमंतिकौ तु द्वौ मासौ वसन्त्येते दिवाकरे । अंशौ भगवं द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुस्तथा ॥४४
 भुजङ्गश्च महापद्मः सर्यः कर्कोऽकस्तथा । आपो वातश्च द्वावेतौ यातुधानौ प्रक्षीर्तिंतौ ॥४५
 नित्राङ्गदश्च गन्धर्वाणुरुणामुखैव तावुभौ । सहे चैव सहस्रे च वसन्त्येते दिवाकरे ॥४६
 पूषा जिञ्जुर्जभदरिनिर्विश्वामित्रस्तथैव च । काद्रवेयौ महानानौ कम्बलाश्वतरावुभौ ॥४७
 गन्धर्वो धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च तावुभौ । तिलोत्तमा च रस्मा च सर्वलोके च विश्रुते ॥४८
 'ग्रामणीः सेनजिञ्चैव सत्यजिञ्च महातपाः । ब्रह्मोपेतश्च वै रक्षो यज्ञो यज्ञस्तथैव च ॥
 एते तपस्तपस्यै च निवसन्ति दिवाकरे ॥४९
 अन्येऽपि ये मन्देहा राक्षसाधिपतयो देवदेवगुह्यतमस्य रक्षार्थं सकल देवैरस्मदादिभिः-
 सन्नियुक्तास्तान्भवते कथर्यामि ॥५०

रुद्र उत्तराच

वद ब्रह्मन्कथां दिव्यां यत्महं प्रष्टुमागतः । तामेव विस्तरेणैव कथयाशु भम प्रभो ॥५१
 दिविष्ठं भास्करं दृष्ट्वा नमेत्केन विधानतः । किं फलं तस्य वा देव समाप्ते भवति कर्मणि ॥५२

ब्रह्मोवाच

शृणु रुद्र समासेन भास्करस्य नतिक्रियाम् । यां कृत्वा रोगदुःखार्ता मुच्यते पापसञ्चयात् ॥५३
 स्थण्डिले मण्डलं कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः । सद्यो गोमयलिप्ते च तत्रैवावाहयेद्विम् ॥५४

धृताची, ऐरावत हाथी, धनंजय, सेनजित्, सुवेण, सेनानी, ग्रामणी और वात नामक दोनों यातुधान सूर्य के समीप रहते हैं । ४०-४३। हेमंत में अंग, भग, कश्यप, क्रतु, भुजंग, महापद्म, कर्कोटक, आप और वात नामक दोनों यातुधान, चित्राङ्गद, तथा अरुणायु गन्धर्व उनके सर्वांग रहते हैं । शिशिर में पूषा, जिष्णु, जमदग्नि, विश्वामित्र, कदू के कम्बल, अश्वतर नामक पुत्र गन्धर्व, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, तिलोत्तमा, रस्मा, सेनजित्, सत्यजित् एवं व्रह्मा समेत यज्ञ ये सभी तप करने की भाँति सूर्य के साथ स्थित रहते हैं । ४४-४९। इसी प्रकार देवाधिदेव (सूर्य) के रक्षा के लिए हन सभी देवों द्वारा नियुक्त मंदेह नामक राक्षसों के गण को जो राक्षसों के अधिपति हैं कह रहा हूँ । ५०

रुद्र ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जिस दिव्य कथा को पूछने के लिए मैं यहाँ आया हूँ, उसे विस्तारपूर्वक शीघ्र मुझे बताने की कृपा करें । ५१। आकाश में सूर्य को देखकर किस विधि से नमस्कार करना चाहिए और उसके करने से किस फल की प्राप्ति होती है । ५२

ब्रह्मा बोले—हे रुद्र ! सूर्य को नमस्कार करने की विधि को, जिसके द्वारा रोग, दुःख एवं पापसमूह से (लोग) मुक्त होते हैं, मैं कह रहा हूँ, सुनो । ५३। भूमि में बारह अंगुल का मंडल (गोलाकार) बनाकर

१. ग्रामणीर्वातजिञ्चैव सत्यजिञ्च महावलौ ।

पूजयित्वा गणेशादीन्वासुदेवं च सात्यकिम् । सत्यभामां तथा लक्ष्मीमुमां देवीं च गङ्करम् ॥५५
 मण्डलस्य समीपस्थान्यूर्वोक्तान्वेदमन्त्रवित् । ततः प्रदक्षिणीकृत्य दण्डवत्प्रणगेत्सकुत् ॥५६
 शतं सहस्रमयुतं लक्षं वा निजपापतः । दृष्ट्वा शक्तिं प्रणम्याथ सदा संयतमानसः ॥५७
 विप्राय दक्षिणां दद्यान्निरुच्छवासः समाहितः । रक्तिके च हिरण्यस्य शतमात्रे सहस्रके ॥५८
 माषकाणां चतुष्कं चायुतं दशगृणं दिगेत् । दक्षे दशगृणं प्रोक्तं दद्याद्रोगविमुक्तये ॥५९
 एवं कृते विरुद्धात्मा सर्वरोगाद्विमुच्यते । इदं रहस्यं परमं शृणुयत्यो हि भानवः ॥६०
 तस्य रोगा विनश्यन्ति मार्तण्डस्य प्रसादतः । अन्यच्च ते प्रवक्ष्यत्मि यच्चापृष्ठमुमापते ॥
 तच्छृणुष्व मया प्रोक्तं रथयन्तृनियामकम् ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतःद्व्यसाहस्र्यां संहितायां आह्वे पर्वणि सप्तमीकल्पे
 सूर्यवर्णनं नाम द्विपञ्चशतमोऽध्यायः ॥५२।

अथ त्रिपञ्चाशतमोऽध्यायः

सूर्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

तत्राखणो मया पूर्वं सारथ्ये सन्नियोजितः । इन्द्रेण माठरो नाम वायुना कलमषेण तु ॥१

उसे गोमय से शुद्ध करके पश्चात् उसमें सूर्य का आवाहन करें । और गणेश आदि वासुदेव, सात्यकि, सत्यभामा, लक्ष्मी, उमा देवी, एवं शंकर को मंगल के समीप आवाहित कर प्रदक्षिणा करते हुए उन्हें तथा सूर्य को साष्ट्वांग दण्डवत् की भाँति एक बार प्रणाम करे । ५४-५६। अपने पाप के अनुसार तथा संयमपूर्वक सौ, सहस्र, दशहजार एवं लक्ष प्रणाम करना चाहिए । ५७। पश्चात् विप्र को दक्षिणा भी देने का विधान है । पर उसमें लम्बी साँस न निकालें अर्थात् पश्चात्ताप न करें । शत बार प्रणाम करने पर दो रत्ती सुवर्ण, सहस्र बार प्रणाम करने पर चार माशा सुवर्ण, दश हजार बार में उसका दशगुना औरं लक्ष बार प्रणाम करने में उसके दशगुना सुवर्ण का दान करना चाहिए जिससे रोग एकदम शांत हो जाये । ५८-५९। हे विरुद्धात्म ! इसी भाँति सविधान इसे सुसम्पन्न करने पर सभी रोग शांत हो जाते हैं और इस परम रहस्य को जो मनुष्य मुनते हैं मार्तण्ड की प्रसन्नतावश उसके सभी रोग शांत हो जाते हैं । हे उमापते ! इस प्रकार अन्य रथ, सारथी एवं उसके नियामक को जिसका प्रश्न ही-नहीं किया गया है, मैं उसे भी बता रहा हूँ, सुनो ! । ६०-६१

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य पूजा वर्णन
 नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त । ५२।

अध्याय ५३

सूर्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—उस (सूर्य के) रथ में सर्वप्रथम मैंने अरुण को सारथी बनाकर नियुक्त किया है, उसी

वैनतेयेन ताक्षर्योपरि विमलो नखतुण्डप्रहरणः पुरोगामी नियुक्त इति ॥
कालेत दण्डे महादण्डायुधो भवतः शेषा महागणाधिपः ॥१२

वैशालेन राजा वसुभिदायुधाङ्गार्चिकौ ह्वै अग्निना पिङ्गलः ।

संपन्ना भहादण्डायुधो भदता शेषो महागणाधिपः ॥३

हस्तो यमेन पाशहस्तोम्बुपतिन्ता समिन्धनः । अलकाधिपतिना विष्णुः ॥४
अश्विभ्यां कालोपकालो वाक्षप्रधानकौ । नरनारायणाभ्यां क्षारौ धारौ धिष्ठकृज्ञौ ॥५
वैराजशड्खदालयर्जन्वरजसां दिशासु दिदिशालु दिशां पालनं विश्वेदेवा ददुः ॥६
सप्तता लोकमातरः सर्दमरुतेऽददन् । ओकारो वट्टकारो वेदनिस्वनः पिनाकी
विनायकः शेषोऽनन्तो वासुकिश्च नागसहस्रेणात्मतुल्येनादित्यस्य रथमनुयान्ति' ॥७
गायत्री सावित्री रथे स्थिते उभे सन्ध्ये सदा ता देवता या रविमङ्गलं नारैति' ।

भगवन्तं स्तुत्किरणमवलाम्ब्लतुम् ॥८

एतद्वै सर्दैवत्यं रण्डतं ब्रह्मावदिनं ब्रह्मायज्ञावदिनीं पत्रः ।

भगवद्गुक्तानां परमादित्योयं विष्णुमहिश्चरणाम् ॥९

स्थानाभिमानिनो ह्वेते सदा वै वृषभध्वज । सूर्यमात्याययन्त्येते तेजसां तेज उत्तमम् ॥१०
ग्रथितैः स्वैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ते ऋषयो रविम् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यरूपासते ॥११

भाँति इन्द्र ने माठर, वायु ने नाग एवं गृहङ् ने ताक्षर्य को, जो नख और चोंच रूपी अस्त्र धारण कर सामने उड़ते चलते हैं, नियुक्त किया है । और काल ने सूर्य को महादण्ड, अर्पित किया है तदनुसार वसु ने भेदन करने वाला आयुध एवं आंशकिर, अग्नि ने पिंगल, ग्रम ने दंडायुध, वरुण ने पाश, कुद्देर ने विष्णु, अश्विनी कुमारों ने काल और उपकाल, नर-नारायण ने वाक्ष एवं प्रधान, विश्वेदेवों ने अर्पित किये हैं भिषण तथा कृष्ण, वैराज, शंखपाल, और पर्जन्य को दिशाओं और उपदिशाओं (दोनों) के रक्षार्थ प्रदान किये हैं । १-६। उसी भाँति सप्त मातृकाओं ने भी सभी मरुत, वेदों ने ओंकार-वषट्कार, शिव ने विनायक तथा शेष ने अनन्त और वासुकी नामक साँपों को दिये हैं, जो हजारों नागों के समान बलवान् हैं और सभी सूर्य के रथ का सदैव अनुगमन करते रहते हैं । ७। इस प्रकार गायत्री, सावित्री एवं दोनों संध्याएँ आदि अन्य कोई ऐसे देव नहीं हैं, जो भगवान् सूर्य के मंडल का, जिसमें हजारों किरणें निकलती रहती हैं सदा अनुगमन न करते हों । ८। समस्त देवतागणों का यह सुरचित मंडल है, इसमें ब्रह्मवेता ब्रह्मस्वरूप, याज्ञिक लोग यज्ञ, विष्णुभक्त परमादित्य विष्णु की और महेश्वर भद्रेश्वर की भावना रखते हैं । ९। हे वृषभध्वज ! तेजस्वी सूर्य को प्राप्त कर ये सभी गण अपने-अपने स्थान के महत्व का अभिमान करते हैं । और तेजस्वी सूर्य के तेज को बढ़ाते हैं । इतना ही नहीं ऋषिगण भी अपनी स्तुतियों द्वारा, गन्धर्व और अप्सराएँ, नृत्य, गान द्वारा सूर्य की स्तुति और उपासना करती हैं । १०-११। ये लोग आकाश में चलते

विष्वद्भ्रमणतो रक्षां कुर्वतिस्म इसुग्रहम् । सर्वा वहन्ति वै सूर्यं ग्रानुधानास्तु दान्ति च ॥१२
 दालखिल्यः 'नमन्त्येतं परिचार्योदयाद्विष्ट् । दिवस्पतिः स्वसूश्चोभौ अग्रगौ योजनस्य तु ॥१३
 भर्गोऽथ दक्षिणे पार्श्वे कञ्जजो वामतः स्थितः । सर्वे ते पृष्ठगां ज्ञेया ग्रहा लोकेषु पूजिताः ॥१४
 उपरागाशिखी चोभावप्रतो नात्र संशयः । मनुष्यधर्मा दक्षिणत उत्तरेण प्रवेत्सः ॥१५
 सम्भवन्ति तथा कृष्ण उभावेतौ तदाग्रगौ । कावेन वीतिहोत्रस्तु पृथग्तस्तु हृषिः सदा ॥१६
 रथपीठे क्षमा ज्ञेया अन्तराले नक्षत्रत्या । आश्रित्य रथजां कान्तिं लं दिवः समयः स्थितः ॥१७
 ध्वजो दण्डश्च दिजेयो ध्वजाग्रे वृष एव च । ऋद्विद्विद्विस्तथा श्रीश्च पताका पार्वतीप्रिय ॥१८
 ध्वजदण्डाग्रे गरुडस्तदप्ये वरुणालयः । मैलाकश्छत्रदण्डस्तु हिमवांश्छत्रमुच्यते ॥१९
 केचिदेवं वदन्तीह लोके चान्ये महामते । छत्रदण्डस्तथा क्लेशः क्लेशं छत्रं विदुर्बृद्धाः ॥२०
 एतेवासेय देवानां यथा वीर्यं तथा तपः । यथाद्योगं तथा सत्त्वं यथा सत्त्वं तथा बलम् ॥२१
 तथा तपत्यसौ सूर्यस्तेषां सिद्धः स्वतेजसा । एते तपन्ति वर्षन्ति यान्ति विश्वं सृजन्ति च ॥२२
 मूत्रानामगुणं कर्म व्यपोहन्ति च कीर्तिः । एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ते सानुगा दिवि ॥२३
 तपन्तश्च जपन्तश्च ल्लादयन्तश्च वै द्विजाः । गोपादान्ति स्म मूत्रानि इह ते ह्यनुकम्पया ॥२४
 प्रीणाति देवानमृतेन सूर्यः सोमेन सूक्तेन विवर्धीयत्वा ।

हुए सूर्य की रक्षा करते हैं, साँप रशिम बनकर रथ का बहन तथा राक्षसगण रथ के पीछे-पीछे चलते हैं और बालखिल्य गण सेवा के बहाने चारों ओर से उन्हें नमस्कार करते हैं। इस प्रकार दिवस्पति एवं स्वयंभूये दोनों रथ के आगे-आगे एक योजन की दूरी पर स्थित रहते हैं । १२-१३। तथा भर्ग दाहिनी ओर और ब्रह्मा बाईं ओर और सभी ग्रह उनकी दाईं ओर क्रमशः स्थित रहकर चलते हैं । १४। राहु, केतु, रथ के सामने चलते हैं, कुबेर दक्षिण, वरुण उत्तर चलते हैं इस प्रकार ये दोनों तथा कृष्ण आगे ही रहते हैं एवं वीतिहोत्र बाईं ओर, तथा हरि पीछे-पीछे चलते हैं । १५-१६। हे पार्वतीप्रिय ! उस रथ के पीठ स्थान में पृथिवी, मध्य में आकाश, रथ की कान्ति में स्वर्ग, ध्वजा में दण्ड, उसके (ध्वजाग्रमें) सामने धर्म, तथा ऋद्विद्विद्विश्च, श्री, पताका और गरुड़ ध्वजदण्ड के सामने रहते हैं एवं उनके सामने वरुण का निवास रहता है। हे महामते ! मैलाक उनके छत्र का दण्ड और हिमवान छत्र हैं। यही अधिकांश लोगों की सम्मति है । १७-१९। किन्तु लोगों का मत है कि क्लेश ही छत्रदण्ड तथा छत्ररूप है । २०

इन देवताओं के शक्तिके अनुसार तप, तपके अनुसार सत्त्व एवं सत्त्व के अनुसार बल है । २१। और इन्हीं के बलानुसार सूर्य सदैव अपने तेज से तपते हैं। इसी भाँति ये समस्त देवगण तपते हैं तथा वर्षा करते हैं तथा विश्व की रचना करते हैं । २२। उसी भाँति जीवों के अशुभ कर्मों का नाश तथा आकाश में सूर्य के साथ भ्रमण किया करते हैं । २३। ब्राह्मणवर्ग भी अपने तप तथा जप द्वारा प्रसन्न करते हुए तुम्हारी अनुकम्पा से जीवों की रक्षा करते हैं । २४। यद्यपि सूर्य अपनी किरणों द्वारा अमृतमय चन्द्र की जो क्रमशः दिन व्यतीत करते हुए शुक्ल पञ्च की पूर्णिमा को पूर्ण होते हैं, वृद्धि करके उसे कृष्ण पक्ष में देवताओं को

गुरुस्तेन पूर्ण दिवसङ्गमेण तं कृष्णपक्षे विबुधाः पिबन्ति ॥२५

यीत हि सोम द्विकलावशेषं कृष्णे तु पक्षे रुचिभिर्ज्वलन्तम् ।

सुधामृतं तत्पितरः पियन्ति ऊर्जाश्री सौम्याश्र तथैव कल्पाः ॥२६

सूर्येण गोभिश्च समृद्धिताभरद्विः पुनश्चैव समुज्जिताभिः ।

नरैष्वधीर्भिः सततं पिलन्ति अत्यन्तपानेन क्षुधा जयन्ति ॥२७

मासार्धत्रूपितस्तु मतःभिरद्विमासेन त्रूपिः स्वाध्या गिरुणात् ।

अग्नेन शश्वद्विदक्षाति मर्त्यं त्वयं जगच्चैव विभिर्गोभिः ॥२८

अहोरात्रं रथेनासादेवकक्षेण वै अनन् । सप्तद्वीपरः नुहान्नां सप्तभिश्च हयैः स्त्रैः ॥२९

छन्दोभिर्वाजिरुपैर्तैर्यतश्चक्तं ततः स्थितैः । कामरूपैः सकृद्युतैरन्तरस्थर्मनोजवैः ॥३०

हरिनिरच्छवैर्यश्चै कृष्णाश्रमविर्जितैः । द्वृधशीतिमण्डलाशात्मीहन्त्यब्देन वै हयः ॥३१

वाह्यतोऽस्यन्तरं चैव मण्डलं दिवसङ्गमात् । कल्पादौ सम्प्रयुक्तास्ते वहन्त्याभूतसम्प्लवम् ॥३२

आवृता बालखिलैर्यस्त्रेमन्ति ताल्यहानि तु । ग्रथितैः स्वैर्वचाभिस्तु स्तुवमातो महर्षिभिः ॥३३

सेव्यते नृत्यगीतैश्च गन्धर्वरप्सरोगणैः । पतझाः पतौरूपवैर्वसते भ्रमयन्दिवि ॥३४

बीज्याप्यया विचरते नक्षत्राणि यथा शशी । मध्यगाश्चामरावत्पात् यदा भवति भास्त्वातः ॥३५

वैवस्वते संयमने उत्तिष्ठन्दृश्यते तदा । सुखायामर्धरात्रं तु विभायामस्तमेति च ॥३६

पान करते हैं और इस प्रकार अमृतपान के द्वारा वे देवों को सदैव संतुष्ट रखते हैं ॥२५। तथापि (देवों के) अमृत पान करने पर मनोरम कांतियों से पूर्ण दो कलायें कृष्ण पक्ष में शेष रह जाती हैं । जिसे तेजस्वी एवं सौम्य पितर लोग पान करते हैं ॥२६। सूर्य (अपनी किरणों द्वारा) जलपूर्ण पृथिवी के रस (जल) को लेकर फिर (वृष्टि रूप में) उसे त्याग देते हैं, जिसके द्वारा इस प्रकार की औषधि उत्पन्न होती है जो पान करने पर कुधा को एकदम शांत कर देती है । उसे पितररगण पान करते हैं ॥२७। उस वृष्टि के जल के द्वारा एक पक्ष में और स्वधा द्वारा दिये हुए जल से पूरे मास में पितर लोग तृप्त होते हैं एवं उससे समृद्ध अन्नों द्वारा नित्य मनुष्यों की तृप्ति होती है । इसी प्रकार अपनी किरणों द्वारा सूर्य समस्त जगत् का पालन-पोषण करते रहते हैं ॥२८। इसी भाँति एक चक्के वाले रथ पर जिसमें सात घोड़े जुते हुए हैं, बैठकर सूर्य सातों द्वीप के समुद्र-पार की यात्रा अहोरात्र में सम्पन्न करते हैं ॥२९। सूर्य उस (रथ में जुते हुए) घोड़े द्वारा, जो छन्दोरूप, सौन्दर्यपूर्ण, मन की भाँति श्रीघणामी, सदैव महाशक्तिशाली, वशीभूत, भूख-प्यास से सैदव मुक्त रहते हैं, पूर्ण वर्ष में एक सौ वयसी मंडल की यात्रा करते हैं ॥३०-३१। इस प्रकार दिवस के क्रम से (वे घोड़े) कल्प के आरम्भ काल में यात्रा के लिए प्रस्थान करते हैं और महाप्रलय तक उसी भाँति बाहरी एवं भीतरी मंडल को बनाते एवं चलते रहते हैं ॥३२। उस समय जिस भाँति सूर्य के चारों ओर धेरे हुए बालविल्प, स्तुति करते हुए महर्षि लोग और नृत्य-गान द्वारा सेवा करती हुई अप्सराएँ तथा गन्धर्व लोग स्थित रहते हैं ऐसे ही चन्द्र की भाँति नक्षत्रों को पार करते हुए सूर्य भी आगे बढ़ते रहते हैं । इस प्रकार श्रीघणामी घोड़ों के द्वारा आकाश में सूर्य पूर्णते रहते हैं । सूर्य द्वारा अमरावती में जब मध्याह्न (दोपहर) होता है, तो उस समय, संयमनी (यमफुरी) में सूर्योदय, (वरुण की) सुखा नगरी में आधीरात

वैवस्वते संयमने मध्यमस्तु रदिर्यदा । सुखायामश वारुण्यामुत्तिष्ठन्दृश्यते तदा ॥३७
 रात्र्यर्थं चामरावत्यामस्तमेति यमस्य वै । सोमपुर्या विभायां तु मध्यग्रार्थमा यदा ॥३८
 माहेन्द्रस्यामरावत्यामुत्तिष्ठति दिवाकरः । अर्धरात्रं संयमने वारुण्यामस्तमेति च ॥३९
 एवं चतुर्षु पार्श्वेषु मेरोः कुर्वन्प्रदक्षिणम् । उद्यास्तमने चासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः ॥४०
 पूर्वाह्ले चापराह्ले च द्वौ द्वौ देवालयौ पुनः । तपन्येकं दु एव्याह्ले ताभिरेव गभस्तिभिः ॥४१
 उद्दितो वर्धमानाभिरामध्याह्लात्पेद्रिविः । ततः परं हसन्तीभिर्गोभिरस्तं नियच्छति ॥४२
 यत्रोद्यन्दृश्यते सूर्यः स तेषामुदयः स्मृतः । प्रणाशां रुच्छते यथा स तेषामस्ततुल्यते ॥४३
 एवं पुष्करमःयेन तदा सर्पति भास्करः । त्रिंश्चक्रागं तु भेदिन्या मुहूर्तेन स गच्छति ॥४४
 योजनाग्रेण सङ्ख्यां^१ तु नुहर्तस्य निबोध मे । पूर्णं शतसहस्राशं सहस्रं तु त्रिलोक्त ॥४५
 पञ्चाशङ्क तथात्पानि सहवाण्यधिकानि तु । शौहर्तिकी गतिर्हेषा सूर्यस्य तु विशीयते ॥४६
 योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने । निमेषाव्याप्तरमात्रेण दिवि सूर्यः प्ररस्ति ॥४७
 स शीघ्रमेव पर्यंति भास्करोऽलःतत्त्वकवत् । भ्रमन्वै भ्रममाणेषु श्लेषु विचरत्यसौ ॥४८
 इन्द्रः पूजयते सूर्यमुनिष्ठन्तं दिने दिने । मध्याह्ले च यमः पश्चादस्तं यान्तमपां पतिः ॥४९
 सोमस्तथार्धरात्रे तु सदा पूजयते रविम् । विष्णुर्भवानहं रुद्धः पूजयाम निशाक्षये ॥५०

एवं (चन्द्र की) विभाषुरी में सूर्यास्ति होता है । ३३-३६। उसी भाँति संयमनी में जिस समय मध्याह्ल होता है, उस समय सुखानगरी में सूर्योदय, अमरावती में आधी रात तथा संयमनी में सूर्यास्ति होता है । और विभा में जिस सनय मध्याह्ल होता है, उस समय अमरावती में सूर्योदय, संयमनी में आधी रात और (वरुण की) मुखा नगरी में सूर्यास्ति होता है । ३७-३९। इस प्रकार मेरु पर्वत के चारों ओर प्रदक्षिणा करते हुए सूर्य का बार-बार उदय और अस्त होता है । ४०। दिन का पूर्वाह्ल (पूर्व भाग) और अपराह्ल (उत्तर भाग) रूप दो देवालय हैं, उनके मध्य में सूर्य अपनी प्रखर किरणों द्वारा तपता है । ४१। (सूर्य) उदय काल से मध्याह्ल तक अपनी, वृद्धि प्राप्त किरणों द्वारा तपते रहते हैं तथा दूसरे समय क्षीण किरणों द्वारा अस्त होते हैं । ४२। उदय होते हुए (सूर्य) जिस दिशा में दिखाई पड़े वह उदय (पूर्व) दिशा और जहाँ अस्त होते हुए दिखाई दे वह अस्त (पश्चिम) दिशा होती है । ४३। इस प्रकार सूर्य, पुष्कर के मध्य भाग होकर चलते हैं और वे एक मुहूर्त में पृथिवी के विस्तार प्रमाण के तीसवें भाग के समान दूरी की यात्रा कर पाते हैं । ४४। हे त्रिलोचन ! इस भाँति योजन के प्रमाण से सूर्य डेढ़ लाख योजन की यात्रा एक मुहूर्त में करते हैं और उनकी एक क्षण की यात्रा दो हजार दो सौ योजन की होती है । ४५-४७। अलात चक्र की भाँति अत्यन्त शीघ्र गति से सूर्य धूमते हुए नक्षत्रों के मध्य होकर चलते हैं । ४८। उनके उदय काल में इन्द्र, मध्याह्ल में यम, अस्त काल में वरुण और अर्धरात्र में चन्द्रमा सूर्य की पूजा करते हैं । हे देवशार्दूल !

एवमग्निर्कृतिश्च वायुरीशान एव च । पूजयन्ति क्रमेगैद भ्रमभाणं दिवाकरम् ॥
श्रेयोऽर्थं देवशार्दूल सर्वे बहादयः मुराः ॥५१॥

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यः संहिताःशां ब्राह्मणे पर्वणि रथसप्तमीकल्पे
सूर्यगतिवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः सूर्यसहिमवर्णनम्

रुद्र उवाच

अहो हंसस्य माहात्म्यं वर्णितं भवतेदृशम् । कथ्यतां पुनरेदेवं माहात्म्यं भास्करस्य तु ॥१

ब्रह्मोदाच

आदित्यमन्त्रमदिलं त्रैलोक्यं सच्चाचरस्म् । भवत्यस्माज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥२
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्रत्रिदिवौज्ञासाम् । महाद्युतिभां कृत्लं तेजो यत्सावलौकिकम् ॥३
सर्वात्मा सर्वलोकेशो द्वेवदेवः प्रजापतिः । सूर्य एष त्रिलोकरथ मूलं परमदैवतम् ॥४
अग्नौ प्रास्ताहुतिः सप्तगादित्यमुपतिष्ठति । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥५

इसी प्रकार रात व्यतीत होने पर विष्णु, आप (जल) तथा रुद्र, अग्नि, राक्षस, वायु, ईशान एवं ब्रह्मादिक देव क्रमशः सभी सूर्य की पूजा करते हैं । ४९-५१

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के रथसप्तमी कल्प में सूर्य गति वर्णन नामक तिरपनवाँ अव्याय समाप्त । ५३।

अध्याय ५४ सूर्य की महिमा का वर्णन

रुद्र ने कहा—आपके मुख से इस प्रकार सूर्य के माहात्म्य को सुनकर मेरी अभिलाषा बढ़ रही है मैं चाहता हूँ कि इनके माहात्म्य को आप फिर मुझे सुनायें ।

ब्रह्म बोले—तीनों लोकों की जिसमें चर एवं अचर सभी हैं, रचना में मूल कारण आदित्य का मन्त्र ही है । इन्हीं से समस्त जगत्, जिसमें देव, असुर और मनुष्य हैं, उत्पन्न हुआ है । २। इस प्रकार रुद्र, इन्द्र, विष्णु और चन्द्र आदि देवताओं में इन्हीं महातेजस्वी (सूर्य) का तेज निहित है, क्योंकि इनका तेज सभी लोकों में व्याप्त है । ३। सभी की आत्मा, समस्त लोकों के स्वामी, देवाधिदेव, एवं प्रजापति होने के नाते सूर्य तीनों लोकों के महान् देवता है । ४। क्योंकि अग्नि में दी हुई आहुति भी सूर्य को प्राप्त होती है, उनसे वर्षा होती है, वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है और अन्न द्वारा प्रजाओं का जीवन होता है । ५। इस भाँति सूर्य

सूर्यात्रिसूर्यते १ तर्वं तत्र चैव प्रलीपते । भावाभावौ हि स्तेकानामादित्यान्निःसृहौ पुरा ॥६
 एतत्तु श्यानिनां ध्यानं मोक्षं चाप्येष मोक्षिणाम् । अब्र गच्छन्ति निर्वाणं जायन्तेऽस्मात्पुनः प्रजाः ॥७
 क्षणा मुहूर्ता दिवसा निशा: पक्षाश्व नित्यशः । मासाः संवत्सराश्वैव ऋत्वोऽयं युगानि च ॥८
 सदादित्यादृते हेषा कालसङ्ख्या न विद्यते । कालादृते न नियमो नाग्निर्न हवनक्रिया ॥९
 ३ ऋतुनामविभागाच्च तुष्ट्यमूलक्ष्यलं कुतः । कुतः सस्यदिनिञ्चित्तस्तृणौषधिगणाः ५ कुतः ॥१०
 अभावो व्यवहाराणां जन्मतां दिवि चेह च । जगत्प्रतपनमृते शास्करं वारितस्करम् ॥११
 नावृष्ट्या तपते सूर्यों नावृष्ट्या परिविश्यते । नावृष्ट्या विकृतिं धने व्रतिणा दीप्यते रविः ॥१२
 वसन्ते कपिलः सूर्यों ग्रीष्मे काङ्चनसप्रभः । इवेतो वर्णन वर्षसु पाण्डुः शरदि भास्करः ॥१३
 हेमन्ते ताम्रवर्णस्तु शिशिरे लोहितो रविः । इति वर्णः समाख्याताः शृणु वर्णफलं हरः ॥१४
 कृष्णोभ्याय जगत्स्तान्नः सेनापतिं विनाशयति । पीतो नरेन्द्रपुत्रं इदेतस्तु पुरोहितं हन्ति ॥१५
 चित्रोऽश वापि धूम्रो रवी रश्मिव्याकुलं करोत्युच्चैः । तस्करशस्त्रनिपातैर्यदि न सलिलमाशु पातयति ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां द्वाहृपवर्णि रथसप्तभीकल्पे
 सूर्यमहिमवर्णनं नाम चतुष्पञ्चाशत्मोऽध्यायः । ५४।

द्वारा ही सभी वस्तुओं का उत्पादन और उन्हीं में लय होता है । लोकों का उत्पन्न और विनाश होना भी सूर्य के ही अधीन है यह पहले से निश्चित है । ६। और यही ध्यान करने वालों के ध्येय, और मोक्ष प्राप्त करने वालों के मोक्ष स्थान हैं । इन्हीं द्वारा निर्वाण पद की प्राप्ति होती है । ७। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष, ऋतु और युग रूप काल की भी व्यवस्था सूर्य के बिना संभव नहीं होती है । ८। तथा समय व्यवस्था के बिना नियम, अग्नि और हवन एवं ऋतुओं के विभाग न होने पर पुष्ट, मूल, अन्न, तृण, औषधि, और लोक-परलोक वाली मनुष्य की क्रियाएं भी वास्तविक रूप में सूर्य के बिना सुसम्पन्न नहीं हो सकती हैं । ९-११। बिना वृष्टि के सूर्य में तपन, परिवेष (बादलों से घिरना) और अन्य विकार भी संभव नहीं होते हैं क्योंकि जल से ही सूर्य दैविष्यमान होते हैं । १२

सूर्य बसंत ऋतु में कपिल, ग्रीष्म ऋतु में सुवर्ण कान्ति, वर्षा में इवेत, शरद में पाण्डु, हेमन्त, में तांबे की कान्ति की भाँति और शिशिर में लोहित (रक्त वर्ण) के रहते हैं, अतः अब वर्णों का फल बता रहा हूँ सुनो ! १३-१४। हे हर ! जिस प्रकार कृष्ण वर्ण के सूर्य से समस्त जगत् को भय, उनके तांबे वाले वर्ण से सेना नायक का विनाश, पीतवर्ण से राजा पुत्र का निधन, इवेत वर्ण से पुरोहित का नाश होता है, उसी भाँति चित्र-विचित्र वर्ण पर धुएँ के समान वर्ण वाले सूर्य से यदि शीघ्र वर्षा न हो, तो चोरों एवं तस्करों के आधातों द्वारा (जगत् को) पीड़ा प्राप्त होती है । १५-१६

श्री भविष्य महापुराण में द्वाहृपव के रथसप्तभी कल्प में सूर्य महिमा वर्णन नामक
 चौवनवाँ अध्याय समाप्त । ५४।

अथ पञ्चपञ्चाशतमोऽध्यायः

सूर्यरथयात्रावर्णनम्

रुद्र उवाच

रथयात्रा कथं कार्या भास्करल्पेह मात्मवः । ग़लं च किं भवेत्तेवां यात्रां कुर्वन्ति ये रथेः ॥१
विधिना केत लक्ष्या कस्मिन्काले सुरोत्तम । कथं च भ्रामयेदेवं रथारुढ़ै दिवेनकरन् ॥२
देवस्य ये रथं भक्त्या भ्रामयन्ति वहन्ति च । तेषां च किं फलं प्रोक्तं ये च नृत्यकरा नराः ॥३
भ्रमन्ति ये न च देवेन नृत्यगीतपरायणः । प्रजागरं च कुर्वन्ति भक्त्या शद्वासमन्विताः ॥४
तेषां च किं फलं प्रोक्तं रथं दच्छन्तिै ये रथे । बलिं भक्तं च ये भक्त्या दिशन्त्याहिकभोजनम् ॥५
एतम्न्ये शूहि निखिलं सुरज्येष्ठ सविस्तरम् । लोकानां श्रेयसे देव परं कौतूहलं हि मे ॥६

लहूपोवाच

माधु पृष्ठोऽस्मि भूतेश गणेशोऽसि त्रिलोचन । भृगुष्टैकमना वच्चिम यथाप्रश्नं सविस्तरन् ॥७
देवस्य रथयात्रेण भास्करस्य भहात्मनः । इन्द्रोत्सवस्तथा रुद्र मया हृतौ प्रकीर्तितौ ॥८
मर्त्यलोके शान्तिहेतोलोकानां लोकपूजित । प्रवर्तितावुभौ यस्मिन्देशे देवमहोत्सवौ ॥९
न तत्रोपद्रवाः सन्ति राजतस्करसम्भवाः । तस्मात्कार्याविमौ भक्त्या दुर्भिक्षास्येह शान्तये ॥१०

अध्याय ५५

सूर्य की रथ यात्रा का वर्णन

रुद्र ने कहा—मनुष्यों को सूर्य की रथ यात्रा किस भाँति करनी चाहिए और जो उनकी रथ यात्रा करते हैं, उन्हें किस फल की प्राप्ति होती है । १। हे सुरोत्तम ! वह (रथयात्रा) किस समय में किस विधि द्वारा की जाती है तथा देव (सूर्य) को रथ पर बैठाकर किस प्रकार से धुमाया जाता है । २। भक्तिपूर्वक जो रथ को से चलते एवं धुमाते हैं, तथा नाच-गान द्वारा जागरण, बलि एवं भोजन समर्पित करते हैं, उन्हें किस फल की प्राप्ति होती है । हे सुरज्येष्ठ ! मुझे इन बातों के जानने के लिए महान् कौतूहल है और इससे लोगों का महान् कल्पाण भी होगा अतः ये सभी बातें विस्तार पूर्वक मुझे बताने की कृपा करें । ३-६

ब्रह्मा बोले—हे भूतेश, हे त्रिलोचन ! आप गणों के स्वामी हैं इसीलिए प्रश्न भी बहुत उत्तम किये हैं, अस्तु सावधान होकर सुनो ! मैं प्रश्न के अनुसार विस्तार पूर्वक इसका उत्तर दे रहा हूँ । ७। हे रुद्र ! महात्मा सूर्य देव की रथयात्रा और इन्द्र का महोत्सव मैंने पहले ही कह दिया है । ८। हे लोकपूजित ! इस मर्त्यलोक में लोगों की शांति प्राप्त करने के लिए जिस प्रदेश में ये दोनों महोत्सव किये जाते हैं, उसमें राजा के द्वारा (अत्याचार) और चरों के द्वारा कोई उपद्रव नहीं होता है, अतः दुर्भिक्ष (अकाल) की शांति के लिए इन महोत्सवों को अवश्य करना चाहिए । ९-१०

१. नराः । २. रथं च नभसि स्थितम् । ३. गच्छन्ति ।

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां मासि भाद्रपदे हर । धूतेनाभ्यङ्गयेदेवं पञ्चपूतोङ्गजेन वै ॥११
 अभ्यङ्गयेदमहेशं यः सर्वैः श्रद्धयान्वितः । दिने दिने जगन्नाथं प्रविष्टं वर्णके रविश् ॥१२
 स गच्छेद्यानमारुढो शैरिकं किञ्चिकणीकृतम् । वैश्वानरपुरं दिव्यं गन्धर्वाभ्यसरशोभितम् ॥१३
 शाल्योदनं खण्डसिश्र वज्रं वज्रसमन्वितम् । वर्णभक्तं प्रयच्छेद्यो भास्कराय दिने दिने ॥१४
 आरुढः स विमानं तु ज्वालामालाकुलं शुभम् ; गच्छेन्नम पुरं देव स्तूपमानो महर्षिभिः ॥१५
 तरमात्सर्प्रदत्तनेन भास्कराय नरैः शिव । वर्णभक्तं प्रदातव्यं प्रविष्टस्येह वर्णकम् ॥१६
 धूतपूर्णं खण्डवेष्टं कासारं मोदकं पयः । दध्योदनं पायत्तं च संयादं गुडपूपकान् ॥१७
 ये प्रयच्छन्ति देवस्य भास्करस्येह वर्णकम् । ते गच्छन्ति न सन्देहो नरा वै मन्त्रिरं भम् ॥१८
 अहन्यहनि यो भक्त्या भास्कराय प्रगच्छति । अभ्यङ्गाय धूतं देयं स याति परमां गतिम् ॥१९
 तथा यो वर्णभक्तं च अहन्यहनि भक्तितः । स ग्राघ्येह शुभान्कामानगच्छेत्स भवसालयम् ॥२०
 चूर्णमुद्वर्तनायेह यः प्रयच्छेत्तुभं रवेः । स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥२१
 ततस्तं स्नापेतेवं पौषे मासि विधानतः । सप्तम्यां शुक्लपक्षस्य शृणुस्वैकमनास्तथा ॥२२
 तीर्थोदकमुपानीय अन्यद्वाय जलं शुभम् । देवोक्तेन विधानेन प्रतिमां स्थापयेदुधः ॥२३
 यजेद्द्वि तीर्थेनामानि मनसा संस्मरन्बुधः । प्रयागं पुष्करं देवं कुरुक्षेत्रं च नैमिषम् ॥२४
 पृथूदकं चन्द्रभागां शौरं गोकर्णमेव च । ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं बिल्वकं नीलपर्वतम् ॥२५

भादों भास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन सूर्य के अंगों में पंचगव्य समेत धी लगावे और श्रद्धापूर्वक रक्तवर्ण के अंगों में सरसों के तेल द्वारा अस्यंग करने से ऐसे विमान पर बैठकर जिसमें सुसज्जित सुलर्णी की छोटी-छोटी धंटियों की मनोहर व्यनि होती हो, गंधर्व एवं अप्सराओं से मुशोभित वैश्वानर लोक की प्राप्ति होती है । १-१३। जो सांड गिश्रित शाली चावल (भात) वज्र नामक पुष्य तथा लाल रंग के चावल के भाग सूर्य के लिए प्रतिदिन समर्पित करता है, वह दीप्तिपूर्ण विमान पर बैठकर महर्षियों द्वारा सम्मानित होते हुए मेरे लोक को प्रस्थान करता है । १४-१५। इसीलिए लाल चावल के भात मंडलप्रविष्ट सूर्य को अवश्य समर्पित करना चाहिए । १६। इसी भाँति जो धी मिश्रित खांड, कासार (कमल) लड्डू, दूध, दही, भात, स्वीर लप्ती और गुड़ दा मालपुआ मंडल प्रविष्ट सूर्य को सादरं समर्पित करते हैं, वे निःसदैह मेरे भवन में पहुँचते हैं । १७-१८। भक्तिपूर्वक जो प्रतिदिन लेप के लिए धी प्रदान करते हैं, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है । १९। इसी प्रकार जो भक्तिपूर्वक सूर्य को लाल चावल के भात प्रदान करते हैं, वे अपने समस्त मनोरथ को सफल करके पश्चात् सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं । २०। उबटन के लिए जो उन्हें चूर्ण समर्पित करते हैं, वे सूर्य के उत्तम स्थान की प्राप्ति करते हैं । २१।

इस प्रकार जो पौष की शुक्ल पक्ष की सप्तमी में भी सूर्य को स्नान कराता है (उसके फल) सावधान होकर सुनो ! तीर्थ के जल या अन्य किसी जल से स्नान कराकर उनकी प्रतिमा को बैदिक मंत्रों द्वारा स्थापित करना चाहिए । २२-२३। प्रयाग, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, नैमिष एवं पृथूदक, चन्द्रभागा, शोण, गोकर्ण, ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, बिल्वक, नील पर्वत, गंगा द्वार, गंगासागर, कालप्रिय, मित्रवन, शृंगी स्वामी, चत्रतीर्थ, रामतीर्थ, वितस्ता, हर्षपन्थ्यो, देविका, गंगा, सरस्वती, सिंधु, चन्द्रभागा, नर्मदा, विपाशा,

गङ्गाद्वारं तथा पुण्यं गङ्गासागरमेव च। कालप्रियं मित्रवनं शुण्डीरस्वामिनं तथा ॥२६
 चक्रतीर्थं तथा पुण्यं रामतीर्थं तथा शिवन् । वितस्ता हर्षपंथं तै तथा वै देविका स्मृता ॥२७
 गङ्गा सरस्वती रिन्धुश्नन्दनागा सनर्मदा । विपाशा यमुना तापी शिवा वेत्रवती तथा ॥२८
 गोदावरी पयोष्णी च कृष्णा देव्या तथा नदी । शतरुद्रा पुष्करिणी कौशिकी सरयूस्तथा ॥२९
 तथाम्ये सागराश्रेव सान्निध्यं कल्पयन्तु वै । तथाश्रमाः पुण्यतमा दिव्यान्यत्यतनःनि च ॥३०
 एवं स्नानविधिं कृत्वा अर्चयित्वा प्रणन्य च । धूपमर्यं प्रदत्त्वा तु प्रतिमाभिधियातयेत् ॥३१
 त्रिरात्रं सप्तरात्रं दा मासं मासार्धेव च । स्थितं स्नानगृहे देवं पूजयेद्भक्तितो नरः ॥३२
 चत्वरे लेपयेद्वै चतुरलां शुभे कृताम् । चतुर्दिशं श्वेतकुम्भैर्वितानवरशोभिताम् ॥३३
 कृष्णपक्षे तु माघस्य सप्तम्यां त्रिपुरांतक । कृत्वाग्निकार्यं विधिवत्कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ॥३४
 शङ्खभेरीनिनादैस्तु ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः । पुण्याहृषेऽविविधैर्ब्रह्माणान्वस्ति वाच्य च ॥३५
 ततोऽस्य परया भक्त्या सूर्यस्य परमात्मनः । रथेन दर्शनीयेऽ किञ्चिक्षणीजालमालिना ॥
 सूर्यञ्च भ्रामयेद्वै श्वेतस्वपुरः सरम् ॥३६
 शुक्लपक्षे तु माघस्य रथमारोपयेद्विम् । कृत्वाग्निहोमं विधिवत्था ब्राह्मणभोजनम् ॥३७
 प्रीणयित्वा जनं सर्वं दक्षिणाभोजनादिना । प्रपूज्य ब्राह्मणान्दिव्यान्भौमांश्चापि सुवाचकान् ॥३८
 इतिहासपुराणाभ्यां वाचको ब्राह्मणोत्तमः । ततो देवश्च इष्टश्च सम्पूज्यो यत्नतस्तदा ॥३९
 माघस्य शुक्लपक्षस्य पञ्चम्यामेकभक्त्यकम् । अयाचितं चतुर्थ्यां तु षष्ठ्यां नक्तं प्रकीर्तिम् ॥४०

यमुना, तापी, शिवा, वेत्रवती, गोदावरी, पयोष्णी, कृष्णा, वेण्या, शतरुद्रा, पुष्करिणी, कौशिकी, एवं सरयू आदि नदियां, रागरों के पवित्र आश्रमों में देवालयों के सान्निध्य की कल्पना पूर्वक उन्हें स्नान कराकर पूजन, प्रणाम, धूप एवं अर्द्ध प्रदान कर उनकी प्रतिमा को स्थापित करना चाहिए । २४-३१। इस प्रकार तीसरे, सातवें, पन्द्रहवें दिन अथवा मास में भक्तिपूर्वक स्नानगृह में स्थित सूर्य की पूजा करनी चाहिए । ३२। किसी चढ़तरे पर चौकोर सुन्दर देवी बनाकर और गोमय से लीपकर जिसको चारों ओर से श्वेत, कलश तथा चाँदनी आदि से सुशोभित किया गया हो, उसी स्थान पर पूजा करनी चाहिए । ३२-३३

हे त्रिपुरांतक ! माघ कृष्ण सप्तमी में भी विधिवत् पूजन, हवन और ब्राह्मण भोजन सुसम्पन्न करे । ३४। शेष एवं दुंधुभी के वाद्यों समेत ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहृवाचन, स्वस्तिवाचन आदि मांगलिक वेद पाठ करते हुए सूर्यदेव के उस दर्शनीय रथ को, जिसमें छोटी-छोटी धंटियाँ माला की भाँति लगी हों, महोत्सव बनाते हुए धुमाना चाहिए । ३५-३६.

उसी भाँति माघ शुक्ल पक्ष की सप्तमी को रथ पर सूर्य देव को बैठाकर विधिवत् हवन-पूजन और ब्राह्मण भोजनादि कराकर सभी लोगों को भोजन और दक्षिणा से प्रसन्न करने के उपरान्त दिव्य भौम तथा पाँच बार कथा वाचक की जो इतिहास तथा पुराण के मर्मज्ञ हों एवं श्रेष्ठ ब्राह्मण हों, पूजा करने के पश्चात् अपने इष्टदेव की पूजा करे । ३७-३९

माघ शुक्ल पक्ष की चतुर्थी में अयाचित अन्न के भोजन पञ्चमी में एक बार भोजन करके षष्ठी में

सप्तन्यामुपवासं तु आश्रमद्वोपदेद्वथम् । अग्निकार्यं तु वै कृत्वा रथस्य पुरतः शिव ॥४१
 वल्लयां च रात्रौ भूतेश रथस्येहाधिवासनम् । ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु दिव्यान्भौमाश्च वाचकात् ॥४२
 रथमारोपयेद्वें सप्तन्यां भूतभावनम् । सितायां माघमासे तु तस्य देवालयाग्रतः ॥४३
 तप्रस्थस्यैव देवस्य कुर्याद्वात्रौ भजागरम् । नानाविधिः प्रेक्षणकैर्दीपवृक्षोपशोभितैः ॥४४
 शंखतूर्यनिनादैश्च ब्रह्मदेवैष्वद्व पुष्कलैः । कुर्यात्प्रजागरं भक्त्या देवत्य पुरतो निशि ॥४५
 ततोऽप्तस्यां च यत्नेन देवं रथस्थानं नयेत् । नगरस्योत्तर द्वारं शङ्खभेरी निनादितम् ॥४६
 ततः पूर्वं दक्षिणं च द्वारं चापि तथा परम् । एवं हि क्रियमाणायां यात्राः चावत्सरावधौ ॥४७
 मानवाः सुखमेधन्ते राजा जयति चाहितान् । नीरुजश्च जनाः तर्वं गदां शान्तिर्भवेत्तथा ॥४८
 कर्तारिश्चापि यात्रायाः स्वर्गभागो भवन्ति हि । बोद्धारश्च तथा वत्स सूर्यलोकं व्रजन्ति वै ॥४९

रुद्र उवाच

कथं सञ्चाल्यते ब्रह्मन्स्थापिता ग्रतिभा तक्षत् । एतन्मे वद देवेश सुमहान्सशयो हि मे ॥५०
 ब्रह्मोवाच

पूर्वमेव सहन्नाशोर्यान्हेतोमहात्मनः । संदत्सरस्यावयवेः ‘कल्पितोऽस्य रथो मया ॥५१
 सर्वेषां तु रथानां वै स रथः प्रथमः स्मृतः । तं दृष्ट्वा तु ततस्त्वन्ये स्यन्दना विश्वकर्मणा ॥५२

नक्त व्रत करनां चाहिए ॥५०॥ हे शिव ! इस प्रकार सप्तमी में उपवास करते हुए रथ के सामने हवन आदि करके उसे संचालित करे ॥५१॥ हे भूतेश ! सर्व प्रथम छष्ठी की रात दिव्य, भौम एवं कथा वाचक ब्राह्मणों को भोजन कराकर रथ का आधिवासन करे और माघ मास की शुक्ल सप्तमी में भूतभावन सूर्य को उसी रथ पर बैठाकर और उसी देवालय के सामने जो भाँति-भाँति के दर्शनीय दीप (दीपावली) और दीप वृक्षों से सुशोभित हो वेद पाठपूर्वक शंख एवं तूर्य (तुरुही) आदि वादों को निनादित कराते हुए रथस्थित देवता के सम्मुख भक्तिपूर्वक समस्त रात जागरण करे ॥५२-५५॥ पश्चात् अष्टमी को प्रयत्नपूर्वक देव के उस रथ को शंख और भेरी के ध्वनि कोलाहल के बीच पहले नगर के उत्तर की ओर तथा फिर पूरब और दक्षिण की ओर पश्चात् पश्चिम की ओर ले जाये । इस प्रकार वर्ष पर्यन्त यात्रा करने पर मनुष्यों को सुख, राजा को शशु विजय, अन्य लोगों को आरोग्य और गौओं को शांति प्राप्त होती है ॥५६-५८॥ यात्रा करने वाले प्राणी स्वर्ग में निवास करते हैं एवं रथ को ले चलने वाले प्राणी सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं ॥५९॥

रुद्र ने कहा—देवेश, ब्रह्मन् ! एक बार जिस प्रतिमा की स्थापना हो जाती है, उसका संचालन कैसे किया जाता है । इसमें मुझे महान् संदेह है, अतः उसकी निवृति के लिए कृपा करें ॥५०॥

ब्रह्मा बोले—मैंने सर्वप्रथम महात्मा सूर्य देव के रथ को, जो वर्ष के अवयवों (मासादिकों) द्वारा निर्मित है, बताया है ॥५१॥ क्योंकि रथों के पूर्व उसकी रचना हुई है और उसे देखकर ही विश्वकर्मा ने सभी

कल्पिताः सर्वदेवानां सोमादीनामनेकशः । विश्वकर्मकृतं प्राप्य रथं देदेत पुत्रक ॥५३
 पूजार्थमात्मनो दत्तं मनवे सत्कुलोद्धृह । मनुनेक्ष्वाकवे दत्तं भर्त्यः सम्मूज्यतां रविः ॥५४
 अतस्तु रथयानेन चालनं विहितं रवे: । तस्माक्ष चालने दोषः सवितुश्चल एव सः ॥५५
 यस्माद्वयेन पर्यंति भास्करः पृथिवीमित्राम् । शच्छन्न दश्यते चैतन्मण्डलं सवितुस्तथा ॥५६
 अदृष्टं चलते यस्मात्समादौ पार्वतीप्रिय । तदेवं रथात्रामु दृष्टं भानोर्मनीषिभिः ॥५७
 अन्यथां चालनं नेष्टं देवानां पार्वतीप्रिय । ब्रह्मविष्णुशिवादोनां स्थापितानां विधानतः ॥५८
 तस्माद्वयेन देवस्य यात्रा कार्या विधानतः । प्रजानामिह शान्त्यर्थं प्रतिसंबल्तरं सदा ॥५९
 काञ्चनो वाश रौप्यो वा दृढाकृष्णपोडपि वा । दृढाकृष्णपोडपि रथं कार्यः नुयन्त्रितः ॥६०
 तस्मिन् रथवरे श्रेष्ठं कल्पिते सुमनोररो ! अतोप्य प्रतिमां यत्वाद्योजयेद्वाजिनः शुभान् ॥६१
 हरिलक्षणसम्भवान्नुमुखान्वशवर्तिनः । क्रुइकुमेन समालधांश्चामरब्लग्वभूषितान् ॥६२
 सदश्वान्योजयित्वा तु रथस्यार्थं प्रदाय च । दिवुधान्पूजयित्वा तु धूपमाल्यानुलेपनैः ॥६३
 आहारैर्विष्वाप्तिश्चापि भोजयित्वा हिजोल्लभान् । दीनान्धकृपणादीन्श्च सर्वान्संतर्य शक्तिः ॥६४
 न कञ्चिद्विमुखं कुर्यादुत्तमाधमनव्यमम् । सूर्यक्रतौ तु वितदे एवमाहुर्मनीषिणः ॥६५

देवताओं के रथ की अनेक बार रचना की है । हे पुत्र ! विश्वकर्मा के बनाये हुए उस रथ को प्राप्त कर सूर्य देव ने उसे अपनी पूजा के निमित्त मनु को प्रदान किया और मनु ने इक्षवाकु को । अतः सभी मनुष्य को सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए । ५२-५४। रथ के चलाने से ही सूर्य का संचालन बताया गया है । अतः सूर्य के संचालन में दोष नहीं है क्योंकि वे चलने वाले ही देव बताये गये हैं । ५५। सूर्य जिस रथ द्वारा इस पृथिवी को पार करते हैं और चलते हुए उन्हें कोई भी देव नहीं पाते । उसी भाँति उनके मंडल को भी नहीं देख सकते हैं । ५६। हे पार्वतीप्रिय ! इसीलिए कि उनका चलना दिखाई पड़े, क्योंकि उनका चलना दिखायी नहीं देता है । लोग रथयात्रा करते हैं । इसी प्रकार ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की प्रतिष्ठा कर देने पर उनका संचालन (गमन) करना दृष्टं नहीं कहा गया है । अतः प्रजा (जनता) के शान्ति हितार्थ प्रतिवर्ष (सूर्य की) रथयात्रा अवश्य करनी चाहिए । ५७-५९

सोने, चाँदी पर भली-भाँति किसी दृढ़ काष्ठ का सौन्दर्यपूर्ण रथ बनाकर जिसमें धुरी, और जुए अत्यन्त दृढ़ बनाये गये हैं । उसे सुसज्जित करे और उसमें उनकी प्रतिमा को स्थापित कर उस रथ में अच्छे-अच्छे हरे रंग एवं वशीभूत घोड़ों को जो स्वयं सुन्दर और कुंकुम से युक्त, चामर, माला से सुशोभित किये हों, जोतकर देवों के अर्थ्य आदि समेत पूजन करे अनन्तर उन्हें धूप एवं चन्दन माला पहनाकर तथा रथ के पूजनोपरांत उसका संचालन करे । ६०-६३। उसमें अनेक भाँति के पदार्थ उत्तम ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिए तथा दीन, अंधे और निःसहाय व्यक्तियों को भी शक्ति के अनुसार संतुष्ट करना आवश्यक बताया गया है । ६४। विद्वानो ने बताया है कि सूर्य के ज्यै में उत्तम, मध्यम एवं अधम श्रेणी का कोई भी व्यक्ति विमुख होकर वहाँ से न जाने पाये । ६५। क्योंकि वहाँ जाकर कोई भी निराश होकर यदि क्षुधा से

१. वाहनम् । २. यत्नतः ।

यश्चिन्तयति भग्नाशः क्षुधावातप्रदीडितः । अदानुहिं पितृं स्तेन स्वर्गस्थानपि पातयेत् ॥६६
 यज्ञश्च दक्षिणाहीनः सवितुर्व प्रशस्यते' । तस्मान्नानाविधैः कामैर्भक्ष्यलेह्लासमन्वितैः ॥६७
 पूजयित्वा । जनं सर्वलिममुच्चारयेन्मनुम् । बलिं मुह्लन्तु मे देवा आदित्या वसवस्तथा ॥६८
 मरुतोथाभिनौ रुद्राः सुपर्णाः पश्चाग्र प्रहाः । असुरा यातुधानाश्रे रथस्था यास्तु देवताः ॥६९
 दिग्पाता लोकपालाक्ष्य ये च विघ्नविनायकाः । जगतः स्वस्ति हुर्वतु ये च दिव्या मर्हर्षयः ॥७०
 मा विघ्नं मतः च मे पापं मा च मे परिपन्थिनः । सौम्या भवन्तु वृप्ताश्र देवा शूतगणात्तथा ॥७१
 वामदेवैः पवित्रैश्च मानस्तोकरथन्तरैः । आकृष्णेन रजसा ऋचमेकाभुवाहरेत् ॥७२
 ततः पुण्याहशब्देन कृतवादिनिःस्वनैः । रथक्रमजकं कुर्याद्वृत्तर्भना सुसम्बन्न तु ॥
 पुरुषैश्चाग्नि वोढव्यः सूर्यभक्तिसमन्वितैः ॥७३
 मुकुतैः । 'प्रग्रहैर्दान्तिर्दलीवद्वैरथापि वा ! यथा यर्घटनं च स्याद्विष्मे पथि गच्छतः ॥७४
 उपवासस्थितैविप्रेदिव्यैर्भौमैश्च मुकुतैः । त्रिशङ्किः षोडशौर्वाणि प्रतिमां भास्करस्य तु ॥७५
 स्थानात्प्रचालयं वै रुद्र रथमारोपयेच्छनैः । राज्ञी च निक्षुभा रुद्र भर्ये तस्य महात्मनः ॥७६
 शनैरारोपयेद्वृद्ध उभयोः पाश्वयो रथे । निक्षुभां दक्षिणे पाश्वे राज्ञीं चाप्युत्तरे तथा ॥७७
 द्वावेव ब्राह्मणौ तस्मिन्दिव्यो भौमश्च पाश्वययोः । ब्रह्मकल्पस्तथा भौमः कूबरस्योपरि स्थितः ॥७८

और प्यास से पीड़ित होता है, तो उस यज्ञकर्ता के पितरगण स्वर्ग में रहते हुए भी वहाँ से च्युत होते हैं और दुख का अनुभव करते हैं । ६६। दक्षिणाहीन भी सूर्य का यज्ञ उत्तम नहीं होता है। इसलिए अनेक भाँति के बने हुए भक्ष्य लेह्ला पदार्थ के भोजन (स्वादिष्ट चटनी आदि) समेत सभी को खिलाना चाहिए । ६७। पुनः देवताओं का पूजन करके इस प्रकार कहना चाहिए कि आदित्य, वसु, मरुत, अश्विनी कुमार, रुद्र, गरुड, पञ्चग, प्रह, असुर एवं यातुधान आदि रथस्थ देवता तथा दिक्पाल लोकपाल, विघ्न विनायक और दिव्य मर्हर्षिगण बलि ग्रहण कर जगत् का कल्याण करें । ६८-७०। तथा मेरा कोई विघ्नं न हो, मुझे किसी प्रकार का पाप न लगे, मेरे कोई शत्रुं न हों और देव, भूतगण आदि सभी लोग सौम्य तथा तृत द्वारा कहकर वामदेव गान और मानस्तोक, आदि रथन्तर साम से 'आकृष्णेन रजसा, आदि इस ऋचा का पाठ करे । ७१-७२। मंगल पाठ करते हुए मृदुज्ञादि बाजाओं समेत सुन्दर और सममार्ग से उस रथ का सूर्य भक्त मनुष्यों द्वारा वहन कराये । ७३। अथवा दृढ़ रसी से बैधे तथा मजबूत बैलों को उसमें जोतना चाहिए जिससे ऊँची-नीची भूमि के मार्ग में भी रथ भली-भाँति चल सके । ७४। उपवास करने वाले दिव्य और भौम ब्राह्मणों द्वारा, जिनकी संख्या तीस या सोलह की हो, उस स्थान से सूर्य की प्रतिमा को उठाकर धीरे-से रथ पर स्थापित कराये । हे रुद्र ! उनके पाश्व भाग (बगल) में रानी और निक्षुभा को भी धीरे से स्थापित करे, जिसमें दाहिनी ओर निक्षुभा एवं बाईं ओर रानी को स्थापित करना बताया गया है । ७५-७७। पुनः देव के पाश्व में दो ब्राह्मणों को बैठाये जो ब्रह्मनिष्ठ हों एवं जूए के समीप वाले स्थान के

गरुडं पूष्कतश्चात्य दल्गमानं प्रकल्पयेत् । आतपत्रं तथा श्वेतं स्वर्णदण्डमनौपमम् ॥७९
 सुवर्णविन्दुभिश्चित्रं मणिमुक्ताफलोज्ज्वलम् । ततस्त्वन्द्रधनुःप्रख्यं स्वर्णदण्डमयान्नपाण्य् ॥८०
 ध्वजं प्रकल्पयेत्तस्य पताकाभिरलङ्घतम् । भूतेशनानावर्णाभिस्सप्तभिः कामनाशनः ॥८१
 ध्वजोपरिचरं व्योम अरुणधिष्ठितं भवेत् । रथतुण्डःतान्विप्रान्नयेद्वयवरं र्वेदः ॥८२
 सत्रथ्यं रुद्रं कुरुद्दै श्रेयोऽर्थमात्मनः सदा । नारहेत रथेऽन्नदोऽयदीच्छेष्य आत्मनः ॥८३
 रथमारोहत्तस्य क्षयं गच्छति सत्ततिः । स रथो देवदेवस्य बोढव्यो ब्राह्मणैः सदा ॥८४
 क्षत्रियैश्चापि वैश्यैश्च न तु शूद्रैः कदाचन । ये त्वन्ददेवताभक्ता ये च मद्यप्रवर्तकाः ॥८५
 नैति शूद्रैश्च बोढव्य इतरेस्तु भद्रोहाते । उपवासद्रातोपेतैर्त्रोदव्यः पर्वतेश्चित्रः ॥८६
 स्वस्थानान्वयितो इदं पूर्वद्वारं वजेत् वै । दिनमेकं वसेत्तत्र पूज्यमानो नृपेण वै ॥८७
 नानाविधिः प्रेक्षणकैः पुराणश्रवणेन च । नानाविधिर्भूयवेष्वार्द्धाणानां च तर्पणैः ॥८८
 स्थित्वा तु तत्राप्टस्यन्तं नवम्या चलते पुनः । वजेत दक्षिणं द्वारं नगरस्य त्रिलोचन ॥८९
 तत्रापि दिनमेकं तु तिष्ठत्तेन्द्रकमृदन । स्थितेऽन्नं तुः पूज्यमानो यथा राजा तथा नृपैः ॥९०
 तस्मादपि चलेद्दूद द्वारं पश्चात्तोत्तरम् । तत्रापि पूज्यः शूद्रेस्तु विधिवत्प्रियदर्शन ॥९१

ऊपर स्थित हो । पुनः (देव के) पीछे उछलते हुए गरुड बैठाये । पश्चात् सुवर्णदण्ड युक्त एवं अनुपम श्वेत छत्र को जिसमें सोने की बूँदें मणि एवं मोतियों से समुज्ज्वल, इन्द्र धनुष की भाँति चित्रविचित्र, सुवर्ण-दण्ड से भूषित एवं सर्वाङ्गं नवीन हो, भिन्न-भिन्न रंग के सात पताकाओं से अलंकृत करके लगाये । ७८-८१ हे भ्रतेश, हे कामनाशन ! (शिव) ! पश्चात् ध्वजा के ऊपरी भाग में अरुण को बैठा कर बैठे हुए ब्राह्मणों समेत उस रथ को से चले । ८२ हे रुद्र ! इस भाँति अपने कल्याण के लिए उनका सारथी भी होना स्वीकार करना चाहिए । इसी प्रकार अपना हित चाहने वाले श्रद्धाहीन व्यक्ति को उस पर कभी भी आरुड़ न होने देना चाहिए । ८३ क्योंकि पीछे कोई अश्रद्धालु रथ पर बैठना चाहेंगे तो उनके बैठते ही उनकी सन्तान नष्ट हो जायगी । देवाधिदेव सूर्य के उस रथ का वहन ब्राह्मणों द्वारा ही करना चाहिए । ८४ क्षत्रिय एवं वैश्य भी उसका वहन कर सकते हैं पर शूद्र कदापि नहीं । इसी प्रकार अन्य देवताओं के भक्त शराबी और शूद्रों को छोड़कर अन्य सभी लोग जो उपवास एवं ब्रत आदि करते हों (उसका) संवहन कर सकते हैं । ८५-८६ हे रुद्र ! अपने स्थान से चलकर वह रथ पूरब वाले दरवाजे पर जाये वहाँ एक दिन का निवास करके राजा पूजित होने के उपरान्त जिसमें भाँति-भाँति के दर्शनीय (वस्तुएँ) अर्पित की गयी हों पुराण श्रवण तथा भाँति-भाँति के ब्राह्मणों द्वारा मांगलिक वेदपाद भी किया गया हो, नवमी के दिन फिर वहाँ से चलकर दक्षिण दरवाजे पर जाये । वहाँ भी एक दिन का निवास कर राजा की भाँति उनके अधिकारियों द्वारा पूजित होकर फिर उत्तर के दरवाजे पर जाये । हे रुद्र ! वहाँ शूद्रों द्वारा पूजित होकर गाँव के मध्य भाग में उसे पहुँचाये । वहाँ श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों द्वारा शंख एवं मृदङ्गादि वायों की ध्वनि और उत्तम वस्तुओं के प्रदान होने चाहिए पश्चात् उसके कोलाहल में उसे चारों

तस्माच्च चलते रुद्र व्रजेन्मध्यं पुरस्य तु । तत्रस्थं पूजयन्ति स्म ब्राह्मणाः श्रद्धयान्विताः ॥९२
 शाखावादिवनिधींवैस्तथा प्रेक्षणकैवर्ते । ब्रह्मघोषैश्च विविधैः समन्तादीपकः शुभैः ॥९३
 नानाविधीर्वितदानैश्चाह्याणानां च तर्पणैः । दीनान्धकृपणानां च तर्पणैस्त्रिपुरान्तक ॥९४
 पुरमध्यानु चलितस्तिष्ठेत्प्राप्य स्वमंदिरम् । इत्थं प्राप्य स्थितो देवः पुरतो मंदिरस्य तु ॥९५
 तत्र स्थितः पूजनीयो भवेत्पौरेण कृत्क्षणः । पूज्यमानस्त्वहोरात्रं रथारुदस्तु तिष्ठति ॥९६
 अपरे दिने व्रजेत्स्थानं तच्चरन्तमादरात् । त्रयोदश्यां व्यातीतायां चतुर्दश्यां त्रिलोचन ॥९७
 सदैवं भ्रामयेदेवं ग्रहेण दुरितापहम् । दरिवारयुतं रुद्र सानुगं परमेन्वरम् ॥९८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ज्ञातार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मो पर्वणि रथसप्तमीकल्पे
 रथयात्रावर्णनं नाम पञ्चपञ्चाशतमोध्यायः । ५५।

अथ षट्पञ्चाशतमोऽध्यायः सूर्यरथयात्रावर्णनम् श्रीरुद्र उवाच

कथं प्रचालयेद्ब्रह्मन् रथस्थं तमनाशनम् । अनुगाश्र कथं चास्य के च ते अनुगाः क्रमात् ॥१
 भूयोभूयः सुरश्रेष्ठ विस्तरान्मम श्रेयसे । नद सर्वं जगन्नाथं परं कौतूहलं हि मे ॥२

ओर दीप से सुसज्जित करते हुए सूर्य की पूजा करनी चाहिए जिसमें, वहाँ भाँति-भाँति के दान द्वारा ब्राह्मण गण प्रसन्न किये गये हों, और दीन, अंधे एवं निराश्रित को संतोष प्राप्त हुआ हो । ८७-९४। पुनः वह रथ वहाँ से मन्दिर को लौटाना चाहिए । वहाँ मन्दिर के सामने सभी गाँव वालों को उनकी पूजा करके पञ्चात् उसी रथ पर उस दिन और रात उन्हें रख कर दूसरे दिन त्रयोदशी बीतने पर चतुर्दशी में अपने पुराने देवालय के स्थान में सादर एवं अमंत्रक स्थापित करना चाहिए । हे त्रिलोचन ! इसी प्रकार परिवार समेत देव का जो ग्रह के स्वामी एवं विघ्ननाशक हैं, सदैव रथ यात्रा द्वारा भ्रमण कराना चाहिए । ९५-९८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के रथसप्तमी कल्प में रथयात्रा वर्णन नामक
पचपनवाँ अध्याय समाप्त । ५५।

अध्याय ५६ सूर्य रथयात्रा का वर्णन

रुद्र ने कहा—हे ब्रह्मन् ! रथ पर बैठाकर सूर्य को किस भाँति चलाये, उनके अनुगामी कौन हों तथा उनका अनुगमन भी किस भाँति करना चाहिए । १। हे सुरश्रेष्ठ ! हे जगन्नाथ ! आप मेरे कल्पयान के निमित्त विस्तारपूर्वक उसे बार-बार मुझे सुनाने की कृपा करें क्योंकि मुझे इसके सुनने लिए महान् कौतूहल भी हो रहा है । २

ब्रह्मोदाद

शर्नैन्येद्वयं रुद्र वर्त्मना मु समेन तु । यथा पर्यटनं तु स्याद्विषमे पथि गच्छतः ॥३
 प्रतीहाररथं पूर्वं नयेन्मार्गविशुद्धये । तस्मादनन्तरं रुद्र दण्डनायकमादरात् ॥४
 पिङ्गलं च ततस्तस्य पृष्ठाणं चादरान्नयेत् । रक्षो द्वारको यस्माद्यथारुदौ तु पृष्ठतः ॥५
 रथारुदस्तथा दिण्डी देवस्य पुरतः स्थितः । तस्मादपि तथा रुद्र लेखको भास्करप्रियः ॥६
 शनैः शर्नैः येद्वद् रथं देवस्य यत्ततः । युगाक्षकभृद्गो वा यथा न स्यात्विलोदनः ॥७
 ईषाभृद्गे द्विजभयं भग्नेऽस्त्रे क्षत्रियज्ञयः । तुलाभृद्गे तु वैश्यानां शश्याशूद्रक्षयो भवेत् ॥८
 युगभृद्गे त्वानावृष्टिः पीडभृद्गे प्रजान्यम् । परचक्रान्तम्^१ विद्याच्चकभृद्गे रथस्य तु ॥९
 ध्वजस्य पतने चापि नृभृद्गां दिनिर्दिशेत् । ^२व्यः व्यन्तप्रतिमादां तु राजो मरणमादिशेत् ॥१०
 छत्रभृद्गादूयं रुद्र युवराजो विनिर्दिशेत् । उत्पलेष्वेवमाद्येषु उत्पातेष्वल्लभेषु च ॥११
 बलिकर्न गुनः कुर्याच्छांतिहोमं तयैव च । आह्यान्वाचयेदभूयो दद्याद्वाजानि चैव हि ॥१२
 प्रवृत्तरे च दिग्भागे रथस्याग्निं प्रकल्पयेत् । समिद्धिस्तु वृताक्ताभिर्हीमयेज्जातवेदसम् ॥१३
 स्वाहाकारान्वदन्तस्य दैवते भ्यस्त्वनुरूपमात् । ग्रहेभ्यश्च प्रजाभ्यश्च नामान्युहित्य होमयेत् ॥१४
 प्रथमं चाप्नये स्वाहा स्वाहा सोमाय चैव हि । स्वाहा प्रजापतये च देया आहतयः कमात् ॥१५

ब्रह्मा बोले—हे रुद्र ! उस रथ को, जिस प्रकार मार्ग में धीरे-धीरे चलाया जाता है, उसी भाँति विषम मार्ग में भी चलाये । ३। उस मार्ग को सुन्दर बनाने के लिए पहले द्वारपालों को रथ ले जाना चाहिए पश्चात् दंडनायक (सेनाध्यन, एवं पिञ्जल (गजादि) की पातका के अनन्तर द्वार रक्षकों के रथ ले जाना चाहिए । पुनः सूर्यदेव के रथ के सामने दिंडी का रथ तथा उससे भी सन्निकट सूर्य के प्रिय लेखक (मूर्ति रचयिता) का रथ चाहिए । ४-६। हे त्रिलोचन ! फिर धीरे-धीरे सूर्य के रथ को इस प्रकार ले चले जिसमें उसके जूआ, धुरी पर चक्के को हानि न पहुँचे, क्योंकि जुए के मध्य वर्ती काष्ठ के टूटने पर द्विजों को भय, अक्ष (मूर्डी) के टूटने पर क्षतियों का नाश, धुरा के टूटने पर वैश्यों का एवं बैठने के स्थान के भंग होने पर शूद्रों का नाश होता । ७-८। इसी भाँति जुए के भंग होने पर अनावृष्टि, पीठ (आसान) के भंग होने पर जनता को भय एवं चक्के के टूटने पर वह राज्य किसी अन्य के अधीन हो जाता है और ध्वजा के गिरने पर राजा का नाश, प्रतिमा के भंग होने पर राजा का मरण एवं छत्र भंग होने से युवराज को भय होता है । इस प्रकार के उत्पात होने पर बलि और शांतिपाठ हवन को सुसम्पन्न करते हुए ब्राह्मण द्वारा कथा को सुनकर उन्हें दान द्वारा प्रसन्न करे । ९-१२

पश्चात् रथ के ईशान कोण पर अग्नि स्थापन करके धृतात् समिधा (लकड़ी) का हवन करते हुए क्रमशः देवताओं, ग्रहों और प्रजाओं के नाम का उनके उद्देश्य से 'स्वाहान्त' उच्चारण करे । १३-१४। सर्वप्रथम अग्नि, सोम तथा प्रजापति का स्वाहान्त नामोच्चारण कर क्रमशः आहूति डाले । १५। पश्चात्

१. भयम् । २. प्रतिमायां व्यंगितायाम् ।

स्वस्त्यस्त्वच विप्रेष्यः स्वस्ति राजे तर्द्धं च । गोम्यः स्वस्ति प्रजाम्यश्च जगत् शान्तिरस्तु ई ॥१६
 शं नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शान्तिरस्तु चतुष्पदे । शं प्रजाम्यस्त्वैवास्तु शं सदात्मनि चास्तु वै ॥१७
 भूः शान्तिरस्तु देवेश भुवः शान्तिस्त्वयैव च । स्वश्रैवास्तु तथा शान्तिः सर्वव्रास्तु तथा रवे ॥१८
 त्वं देव जगतः लष्टा पोष्टा चैव त्वमेव हि । प्रजापालं प्रहेशानं शान्तिं कुरु दिवस्यते ॥१९
 द्वदशन्यल्लव वक्षामि शान्त्याः परमकारणम् । यात्राकारणमूलस्य पुण्यस्य स्वजन्मनः ॥२०
 दुःस्थानप्रहाश्च विजाय गृहशान्तिं समाचरेत् । प्रादेशसात्राः कर्तव्याः समिधोऽय प्रलग्नतः ॥२१
 अर्कमय्यो रवे: कार्या पालाद्यः शशिनः स्मृताः । खार्दिर्यर्थं भौमाय आपामार्गोऽज्जनुनदे ॥२२
 आश्वत्यध्यात्र जीवाय औदुम्बर्यः सिताए च । असिताय शमीमय्यो द्वारा कार्यस्तु राहवे ॥२३
 केतवे तु कुशाः कार्याः दक्षिणान्तकाम्यतः शृणु । सूर्याय शोभनां धेनुं शंखं दद्यादथेनदे ॥२४
 रक्तमनडवाहं भौमाय काञ्चनं सोमसूनवे । जीवाय वाससी देये शुक्रायाश्वं सितं हर ॥२५
 शनैश्च तद गां नीलां राहवे भाण्डपायसम् । छां तु केतवे दद्याच्छृण्वेषां भोजनान्यपि ॥२६
 गुडौदनं दु सूर्याय सोमाय घृतपायसम् । हविष्यमन्तं भौमाय क्षीराश्वं सोमसूनवे ॥२७
 दध्योदनं तु जीवाय शुक्रायाय घृताश्वनम् । तिलःपिष्टांश्च माषांश्च सूर्यपुत्राय वापयेत् ॥२८

विनम्र भाव से कहे—‘ब्राह्मणों, राजाओं, गौओं, प्रजाओं एवं समस्त जगत् तथा मनुष्य पशु-पक्षी एवं प्रजाओं की रक्षा-शांति करने के उपरान्त भूलोक भुवर्लोक तथा स्वर्गलोक में सूर्य कल्पाणपूर्वक शान्ति प्रदान करें । १६-१८। इस भाँति कहते हुए पुनः प्रार्थना करे कि हे देव ! तुम्हीं इस जगत् को उत्पन्न और पालन करने वाले हो अतः हे प्रजापाल, हे महेशान, हे दिवस्यते ! मुझे शांति प्रदान करने की कृपा करें । १९। ग्रहों की प्रतिकूलता में अशांति उत्पन्न होने पर जो शांति की जाती है, उसके महान कारण को मैं दूसरे स्थान पर विस्तृत रूप में बताऊँगा । २०। किन्तु संक्षिप्त विवेचनानुसार अरिष्ट स्थान में स्थित ग्रहों को देखकर उनकी शांति तो करनी ही चाहिए जिसमें समिधारैं (लकड़ियाँ) प्रदेशमात्र (फैली हुई तर्जनी और अंगठे के मध्य भाग के समान ही लम्बी होती है)। उन्हें समेत सूर्य के लिए अर्क (मदार), चन्द्रमा के लिए पलाश, मंगल के लिए सैर, बुध के लिए चिचिरा, बृहस्पति के लिए पीपल, शुक्र के लिए गूलर, शनि के लिए शमी (बबूर की भाँति पत्ती वाला एक कट्टेदार वृक्ष) राहु के लिए द्वारा एवं केतु के लिए कुशा की समिधाओं में हवन करके निम्नलिखित क्रमानुसार दक्षिणा प्रदान करना चाहिए। सूर्य के लिए मुन्द्र गौ, चन्द्रमा के लिए शंख, मंगल के लिए रक्तवर्ण का बैल, बुध के लिए सुवर्ण, वृद्धस्पति के लिए लिए दो पीत वस्त्र, शुक्र के लिए उज्ज्वल घोड़ा, शनि के लिए नीली गाय, राहु के लिए स्त्रीर, पूर्णपात्र तथा केतु के लिए छांग (छोटा बकरा) का दान करके पुनः उन्हें भोजन भी क्रमशः प्रदान करे इसे मैं कह रहा हूँ सुनो । २१-२६। गुड मिश्रित भात सूर्य के लिए धी समेत खीर चन्द्रमा के लिए हविष्यान्त पदार्थ मंगल के लिए, दूध का भक्ष्य पदार्थ बुध के लिए, दही मिश्रित भात गुरु के लिए, धी का बना हुआ उत्तम भक्ष्य शुक्र के लिए, तिल के चूर्ण और उरद का भक्ष्य पदार्थ शनि के लिए, राहु के लिए भांस तथा केतु के

१. दुष्टा प्रहाश्च विजेया: पूजाशांतिं समाचरेत् ।

राहवे दास्येन्मांसं केतवे चित्रमोदनम् । सौबीरमारनालं च स्विन्नबीजं च काञ्जिकम् ॥२९
 यथा ब्राणप्रहाराणां वारणं कवचं स्मृतम् । तथा दैवोपधातानां शान्तिर्भवति वारणम् ॥३०
 अहिंसकस्य दात्तस्य धर्मार्जितधनस्य च । नित्यं च नियमस्त्यस्य सदा सानुप्रस्ता प्रहा: ॥३१
 प्रहा: प्रज्या: सदा रुद्र इच्छता विनुलं दशः । श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समाचरेत् ॥३२
 वृष्ट्यापुःपुष्टिकामो वा त्यैवाभिचरन्तुनः । यानपत्या भवेत्तारे दुष्प्रजाश्रापि या भवेत् ॥३३
 दालायस्याः प्रस्त्रियन्ते या च कन्याप्रजा भवेत् । राज्यभ्रष्टो नृपो यस्तु दीर्घरोगी च यो भवेत् ॥३४
 ग्रहयज्ञः स्मृतस्तेषां मानवानां मनीषिभिः । तस्मादसौ सदा कार्यः श्रेयोऽर्थं जानता हर ॥३५
 दत्तपुष्यः कूरदृच्च पुष्यजो धिषणस्तथा । सितासितौ तथा रुद्र उपरागः शिदौ तथा ॥३६
 एते प्रहर महाबाहो विद्वद्विद्वः पूजिताः सदा । तात्रकात्स्फाटिकाद्रक्तचन्दनात्स्वर्णकादपि ॥३७
 राजतादायसात्तीसादप्रहा: कार्यः प्रयत्नतः । स्वर्णे वाथ पटे लेख्या यथाशास्त्रं गृहेश्वरः ॥३८
 यथावर्णं प्रदेयति वासांसि कुमुमानि च । गंधाश्व बलयश्चैव धूपो देशश्च गुणुलः ॥३९
 कर्तव्या मन्त्रैवंतश्च चरवः प्रतिदेवतम् । आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत् ॥४०
 उद्बुद्ध्यस्त्व यथासंख्यमृच एताः प्रकीर्तिताः । वृहस्पते अतिर्दर्यस्तथैवान्नात्परिस्तुतः ॥४१

लिए चित्र भात (अनेक प्रकार के भात) वैर का फल, धूतर का दण्ड भाग एवं परिपक्व कंजे का फल अर्पित करना चाहिए । २७-२९

जिस प्रकार बाणों के प्रहारों को कदच रोककर उसे निष्कल कर देता है, उसी भाँति दैव ग्रह द्वारा प्राप्त आधात से रक्षित रखने के लिए (ग्रहों) की शान्ति वारण (कवच) रूप होती है । ३०। इस प्रकार अहिंसक, शुद्धाचार एवं धार्मिक उपायों द्वारा प्राप्त धन वाले तथा नित्य-नियमों के पालन करने वाले प्राणियों के लिए प्रहर सदैव अनुकूल रहते हैं । ३१। हे रुद्र ! इसलिए अत्यन्त स्वाति प्राप्ति करने वाले पुरुष को ग्रहों की पूजा सदैव करनी चाहिए । इसी प्रकार भी और शांति के इच्छुक को भी ग्रह-यज्ञ अवश्य करना चाहिए । ३२। उसी भाँति वर्षा, आयु तथा (शरीर के) अंगों की दृढ़ता के लिए एवं निःसन्तान, दुःखदायी संतान या जिसके लड़के जीवित न रहते हों, अथवा केवल कन्या जन्माने वाली स्त्री, राज्य-च्युत राजा और दीर्घ रोगी को अवश्य ग्रह-यज्ञ (पूजा आदि) करना विद्वानों ने बताया है । हे रुद्र ! इसलिए कल्याण के अभिलाषी मनुष्य को यह (ग्रह यज्ञ) सदैव करते रहना उचित कहा गया । ३३-३५। हे महाबाहो ! इस प्रकार बृद्ध, कूर ग्रह रवि, मंगल आदि,) चन्द्र, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु की पूजा विद्वानों को अवश्य करनी चाहिए । जिसमें तांवि, स्फटिक, रक्तचन्दन, सुवर्ण, चाँदी, लोहे एवं शीशे की ग्रहों की प्रतिमा बनवायी जाये या सुवर्ण के पत्र या वस्त्र पर लिखकर स्थापित करे । उनका जैसा वर्ण है, उसी भाँति के वस्त्र, पुष्य, अर्पित कर, गंध, बलि तथा गुणुल की अर्पित करे । ३६-३९। पीत देवता के लिए चरमप्रूर्वक प्रदान करना पश्चात् हवन करते समय आकृष्णेन, इमं देवा, अग्नि मूर्धा दिवः ककुत्, उद्बुद्ध्यस्त्व, 'अतियदर्य, 'अन्नात्परिस्तुत, 'शनोदेवी' एवं 'केतुं कृष्णवस्तु इत्यादि इन

शं नो देवी तथा कांडालकेतुं कृष्णविश्वामीः क्रमात् । पूर्वोक्ताः समिधस्त्वद्दयथासास्त्रं प्रहोमयेत् ॥४२
एकैकस्याष्टशतकमष्टाविंशतिरेव वा । होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव समन्विताः ॥४३
पूर्वोक्तभोजनं यद्विभाष्येभ्यो निवेदयेत् । शक्तिरेव वा यथालाभं दक्षिणा तु^१ विधानतः ॥४४
यश्च यस्य यदा दुःस्थः स तं यत्नेन पूजयेत् । ^२मयैषां हि वरो दत्तः पूजिताः पूजिष्यथ ॥४५
ग्रहाधीना नरेद्राष्टामुच्छ्रयाः पतनानि च । भावाभावौ च जगतस्तस्मात्पूज्यतमा ग्रहाः ॥४६
ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च गुरुवो ब्राह्मणास्तथा । पूजितः द्वृजयन्तयेते निर्दहन्त्यप्रसारिताः ॥४७
यथा समुत्थितं यन्त्रं यन्त्रेणैव प्रहृन्यते । तथा समुत्थितां पीडा ग्रहशान्त्या^३ प्रशासयेत् ॥४८
यज्ज्वनां सत्यवाक्यानां तथा नित्योपवासिनाम् । जपहोमपराणां च सर्वे दुष्टं प्रसाम्यति ॥४९
एवं कृत्वा प्रजाशान्ति कृत्वा च स्वस्तिवाचनम् । पुनः सज्जं रथं कृत्वा कुर्यात्प्रकल्पणं हर ॥५०
सार्गं शेषं नयित्वा तु नयेदेवालयं रदिम् । पूजयित्वा ततः ^४पूर्वा याः प्रोक्ता रथदेवताः ॥५१
यथा पूज्या ग्रहाः सर्वे उत्पातेषु त्रिलोचन । रथदेवास्तथा^५ पूज्या याः स्थिता रथमत्थिताः ॥५२

इति श्रीभविष्यदे महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मोर्वर्णिणि सप्तमीकल्पे

आदित्यमहिमवर्णनं नाम षट्पञ्चदशतमोऽध्यायः । ५६ ।

कृचाओं का द्रग्मशः उच्चारण करते हुए सूर्यादि ग्रहों के लिए समिधा से आहुति डालनी चाहिए । ४०-४२। इस प्रकार प्रायेक ग्रह के उद्देश्य से एक सौ आठ या अट्ठाइस आहुति दही, धी और मधु, गहद, मिलाकर देनी होती है । ४३। और उपरोक्त बताये हुए भोजन पदार्थ से ब्राह्मणों को भतीभाँति तृप्त कर शक्ति के अनुसार उन्हें विधानपूर्वक दक्षिणा भी प्रदान करनी चाहिए । ४४। इसलिए जिसके जो ग्रह अरिष्ट हों, उसे उसकी पूजा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए क्योंकि मैंने इन्हें वर प्रदान किया है कि 'विश्वं यों तुम्हारी पूजा होगी, अतः तुम लोग इनकी अवश्य पूजा करो' । ४५। राजाओं की उन्नति और पतन एवं जगत् की स्थिति तथा विनाश ग्रहों के अधीन है, इसीलिए ग्रह गण अत्यन्त पूजनीय बताये गये हैं । ४६। इसी भाँति ग्रह, गौर्ये, नरेन्द्र, गुरु और ब्राह्मण भी पूजित होने पर उन्हें सम्मान प्रदान करते हैं, अन्यथा अपमान करने पर उनके द्वारा कुल का नाश हो जाता है । ४७। जिस प्रकार (विनाश के लिए) प्रेरित यत्र (अन्य) यत्र द्वारा ही नष्ट होता है, उसी भाँति किसी प्रकार की उत्पत्ति पीडा ग्रह की शांति करने से शान्त हो जाती है । ४८। इस भाँति पूजन यज्ञ आदि करने वाले, सत्यवादी, उपवास वत रहने वाले तथा जप एवं होम करने वाले मनुष्य के सभी अरिष्ट शांत हो जाते हैं । ४९। इस भाँति प्रजाओं के हितार्थ शांति सुसम्पन्न करते हुए स्वस्त्रयन आदि मांगलिक पाठपूर्वक पुनः उस सुसज्जित रथ को आगे बढ़ाना चाहिए । ५०। पुनः शेष मार्ग को समाप्त कर सूर्य को देवालय में स्थापित करने के उपरान्त पूर्वोक्त रथ के सभी देवताओं के पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए । हे त्रिलोचन ! उत्पात होने पर जिस भाँति ग्रहों की पूजा होती है, उसी भाँति रथ के आश्रित सभी देवताओं की पूजा करनी चाहिए । ५१-५२

श्रीभविष्यदे महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्त ॥। कल्प में आदित्य महिमा वर्णन

नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त । ५६ ।

अथ सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रथयात्रावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

क्षीं यवागूर्बह्यणे स्यात्परमान्नं त्रिलोचनं । एज्ञानि कार्तिकेयस्य दद्याद्भूतेशप्रीतये ॥
 विवत्यते मधु नांसं तथा मद्यं च सुष्रुतं ॥१
 पुरुहताय भक्ष्याणि सानुगाय निवेदयेत् । हविरश्ममनये स्यादग्रान्नं विष्णवे तथा ॥२
 राक्षसेभ्यः समैरेयं दद्यान्सांसौदनं हरं । संस्कृतं पिशितान्नं च रेवताय निवेदयेत् ॥३
 तिलान्नं पितृराजाय दद्यात्त्रिपुरस्सूदन । आश्विनाऽस्यामपूपांस्तु वसुभ्यो नांसमोदनम् ॥४
 पितृभ्यः पायसं दद्याद्घृताक्तं मधुना सह । कात्यायनैः यवागूर्बं च श्रियै दद्यात्तथा दधि ॥५
 सरस्वत्यै त्रिलघुरं वरुणायेष्वरसौदनम् । खांडवान्नं धनदत्तावेव नित्रे त्रिलोचनं ॥६
 सस्तेहेन तु तक्षेण मरुद्भ्यस्तर्पणं स्मृतम् । मांसाक्षभक्तभूपांश्र मातृभ्यो वै निवेदयेत् ॥७
 उल्लेपिकाश्र भूतेभ्यो जलं सूर्याय वै हरं । दद्याद्गणाधिपतये मोदकांस्त्रिपुरात्तक ॥८
 शष्कुल्यस्तु नैऋत्याय देयाः स्वर्गाणनायक । सर्वभक्ष्याणि विश्वेभ्यो दातव्यानि समन्ततः ॥९
 क्षीरौदनमृषिम्बस्तु क्षीरं नागेभ्य एव हि । सूर्यरथाय बलिं दद्यात्कुर्यादौ सार्वभौतिकम् ॥१०

अध्याय ५७

रथ-यात्रा का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे त्रिलोचन ! ब्रह्मा के लिए दूध की लाप्सी, कार्तिकेय के लिए फल, विवस्वान (यम) के लिए मधु (शहद), नांस एवं शाराब, सेवकों समेत इन्द्र के लिए अन्न के भक्ष्य पदार्थ, अग्नि के लिए हविप्राप्ति, विष्णु के लिए अग्रान्न, राक्षसों के लिए शराब समेत मांस भात, रेवत के लिए विशुद्ध पिशितान्नं पितृराज के लिए तिलपूर्ण अन्न, अश्विनी कुमार के लिए मालपूआ, दसुओं के लिए मांसभात, पितरों के लिए मधु समेत धी पूर्ण खीर, कात्यायनी के लिए लप्सी, श्री के लिए दही, सरस्वती के लिए धी, मधु एवं शक्कर, वरुण के लिए ईख के रस द्वारा बनाया हुआ भात, कुबेर के लिए खांड से बना अन्न, मरुतों के लिए स्नेहपूर्वक मट्ठा, मातृकाओं के लिए मांस-भात और रसादार पेयवस्त्र, भूतों के लिए उल्लेपिका, सूर्य के लिए जल, गणेश के लिए लड्डू, नैऋत्यों के लिए पूड़ी, विश्वावसु के लिए सभी भक्ष्य पदार्थ, ऋषियों के लिए दूध भात, सांगों के लिए दूध, सूर्यरथ के लिए सभी भूतों वाली भाँति-भाँति की बलि, एवं उसी भाँति रथ को बहन करने वालों के लिए लेप, शाराब और मांस प्रदान करना चाहिए । पुनः ब्रह्मा के लिए धी, रुद्र के लिए तिल, स्वाहा के पुत्रों के लिए लावा, भास्कर के लिए कचनार, इन्द्र के लिए राजवृक्ष

१. खंडं वान्नम् ।

जहर्तनं सुरा मांसं तद्वाहेभ्यश्च भारत । आज्यं च ब्रह्मणे दद्यात्प्रथम्बकाय तिलांत्तथा ॥११
 स्वाहातनये वै लाजा दातव्यास्तिपुरान्तक । भास्कराय सदा दद्यात्कोविदारं श्रिलोचन ॥१२
 राजवृक्षं तथेन्द्राय हविष्यं पावकाय त्व । चक्रिणे सप्तधान्यं च गरुडे मत्स्यमोदनम् ॥१३
 यक्षेभ्यो विविधाश्नानि निर्यासं रेवते त्यजेत् । वैकंकतस्त्रजो रुद्र यन्नाय परिकीर्तिः ॥१४
 देयं स्याकर्णिकारं तु अभिष्यां वृषभध्वज । श्रियं पद्मानि देयःनि चंडिकाये मुञ्चदनम् ॥१५
 नवनीतं सरस्वत्यं विनतायै तथामिषम् । पुष्पाण्यप्सरसां रुद्र मालत्याः परिकीर्तिः ॥१६
 वरुणायाग्निमन्थं तु फलं मूलं निर्द्वृतये । विल्वं दद्यात्कुबेराय कपित्वं मरुतां तथा ॥१७
 गंधर्वेभ्यस्त्वाररवर्धं दद्यात्त्रिपुरसूदन । वासदेव्यस्तु कर्पूरं दद्याद्वार गणाधिपे ॥१८
 पितृभ्यः पिण्डमूलानि भूतेभ्यश्च विभीतकम् । गोभ्यो यवान्प्रदद्याद्वै मातुभ्यश्चाक्षतान्हर ॥१९
 गृगुलं विघ्रपतये विष्वेभ्यो देयनोदत्तम् । क्रृषिभ्यो ऋषवृक्षं तु नागेभ्यो विषमुत्तमम् ॥२०
 भास्त्रकरस्येह देयानि सकलानि गणाधिप^१ । मधुसर्पिस्तथोक्तानि गैरिकस्य श्रिलोचन ॥२१
 न्यग्रोधं तस्य वाहेभ्यो भक्त्या रुद्र निवेदयेत् । सायं प्रातस्तु मध्याह्ने सदै काप्रमना हर ॥२२
 सर्वेषां शक्तितो भक्त्या देहेऽधूरं विचक्षणः । मन्त्रतो देवशार्दूल यो यस्येह प्रकीर्तिः ॥२३
 शान्त्यर्थं ब्राह्मणेभ्यस्तु तिलान्दद्याद्विचक्षणः । वैश्वानरे वा जुहुयाद् धृतेन सहितान्हर ॥२४
 देवानामसृतं हृते पितृणां हि स्वधामृतम् । शरणं ब्राह्मणानां च सदा हैतान्विदुर्धाः ॥२५

(धनबहेड), पावक के लिए हविष्य, विष्णु के लिए सप्तधान्य, गरुड़ के लिए मछली-भात, यक्षों के लिए अनेक भाँति के पदार्थ, रेवत के लिए गोंद, यम के लिए विकङ्कृत (शमी) वृक्ष के फूलों की माला, अश्विनी कुमार के लिए कर्णिकार (कनैलफूल की) माला, लक्ष्मी के लिए कमल, चंडिका के लिए उत्तम चन्दन, सरस्वती के लिए मक्खन, विनता के लिए आमिष, अप्सराओं के लिए मालती के फूल, वरुण के लिए गडियारी के फूल, निन्द्रिति के लिए फल मूल, कुबेर के लिए बेल, मरुतों के लिए कैथा के फल, गन्धर्व के लिए छितिवन के फूल, वसु के लिए कपूर, गणाधिप के लिए देवदार, पितरों के लिए पिण्डमूल (गाजर), भूतों के लिए विभीतक (बहेड़ा) गौओं के लिए जवा, मातृकाओं के लिए अक्षत, विद्वेश्वर के लिए गृगुल की धूप, शिवदेव के लिए भात, क्रृषि के लिए वृक्ष (पलाश), नागों के लिए प्रखर विष (पद्म-पराग), भास्त्रकर के लिए देने योग्य (मधु, धी, एवं सुवर्ण आदि) सभी वस्तुएँ तथा उनके वाहक के लिए भक्तिपूर्वक वरगद के फल । इस प्रकार प्रातःकाल दोपहर तथा संध्या समय एकाग्रचित्त होकर ऊपर कही हुई सभी वस्तुएँ उन-उन देवताओं को प्रेमपूर्वक प्रदान करते हुए मन्त्रसमेत धूपादिक सुगन्ध भी प्रदान करना चाहिए । १-२३। शाति के लिए ब्राह्मणों को तिल दान पर उसमें धी मिलाकर अग्नि में हवन करना बताया गया है । २४। क्योंकि देवताओं के लिए लिए यही सब वस्तुएँ अमृतमय हैं । उसी भाँति पितरों के लिए स्वधा और ब्राह्मणों के लिए शरण-दान अमृत रूप है, ऐसा विद्वानों ने बताया है । २५। कश्यप के अंग

१. यथाविधि । २. देयम् ।

कस्यपस्याङ्गजा होते पवित्राश्च तथा हर । स्नाने दाने तथा होते तर्पणेह्यशने पराः ॥२६
 इत्थं देवान्पहांश्चैव पूजयित्वा प्रयत्नतः । अवतार्य रथाच्चैनं मण्डले स्थापयेत्युनः ॥२७
 कृत्वा त्वारार्तिकं यत्नादीपतोथयवाक्षते^१ । कार्पासबीजःक्षणतुर्षुद्दुर्घितशान्त्ये ॥२८
 वेदीमारोपयेत्पश्चात्पत्नीम्यां सह सुवत् । तत्रस्यं पूजयेद्देवं दिनानि दशा सुवत् ॥२९
 दशाहिकेति विल्याता या पूजा भूतले हरः । तयः सम्पूजयेद्देवं चतुर्देवंहि तथा हर ॥३०
 चतुर्देवनि कर्तव्यं यत्नादि स्नपनं रवेः । अस्यहृतमोजनाधीस्तु पूजासत्करनण्डलैः ॥३१
 अनेन विधिनापूज्य इशाहानि दिवाकरम् । ततो नदेत्परं स्थानं यत्तत्पूर्वदम्भालयम् ॥३२
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ज्ञाहो नर्दणि रथसत्तमोकल्प
 आदित्यमहिमवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।५७।

अथाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

रथ-यात्रावर्णनम्

ब्रह्मोदाच

अनेन विधिनः यस्तु कुर्याद्वा कारयेत वा । यात्रां भगवतो भक्त्या भास्करस्यामितीजसः ॥१

से उत्पन्न होने के नाते ये देवगण परम दवित्र हैं । अतः स्नान, दान, हवन, तर्पण और भोजन आदि सभी कर्मों में इनका अत्यन्त सुसम्मान करना चाहिए । २६। इस प्रकार ग्रह और देवादिकों का सप्रयत्न पूजन करने के अनन्तर रथ से सूर्य को उतार कर पुनः मंडल में स्थापित करे । २७। एश्वात् दुर्भाग्य भाँति के लिए कपास के बीज, लवण, तुप (भूसी) जवा अक्षत और दीपक द्वारा आरतीदान करे । २८। पुनः वेदी एव दोनों पत्नियों समेत उन्हें प्रतिष्ठित करके दश दिन तक उनकी पूजा करे । २९। हे हर ! वृथिवी में जो इस भाँति की दशाहिक पूजा प्रस्तुत है, उसी विधि से चौथे दिन भी उनकी पूजा करे । ३०। इसलिए चौथे दिन स्नान, उबटन एवं भोजनादि द्वारा भली भाँति पूजा सत्कार करके मंडल दान समेत उन्हें प्रसन्न करना चाहिए । ३१। इस प्रकार दश दिन तक सूर्य का पूजन आदि करके पश्चात् पुनः उन्हें अपने पुराने देवालय के स्थान पर स्थापित करे । ३२

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य महिमा वर्णन नामक सत्तावनवाँ अध्याय समाप्त ।५७।

अध्याय ५८

रथयात्रा का वर्णन

महा बोले—इस भाँति जो अनुपम तेजस्वी भगवान् सूर्य की रथ यात्रा स्वयं करता या कराता है

१. तिलाक्षते ।

स परार्द्धं तु दर्शणा सूर्यलोके महीयते । कुले जायते तस्य दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ॥२
 अम्बद्गाय घृतं यस्तु भास्कराय प्रयच्छति । कृते तु वर्णितलके स गच्छेत्तुरभी^१ पुरम् ॥३
 तीर्थोदकं तु यो भक्तद्वयन्नायाश्च तथोदकम् । स्नानार्थमानयेद्यस्तु भास्करस्य त्रिलोचन ॥४
 भक्त्या वर्षत्रयं दद्याद्बास्करस्य त्रिलोचन । समाप्येहाखिलान्कमान्प्राप्नुयाद्वरुणालयम् ॥५
 रक्तवर्णं तु यो दद्याद्बिष्यान्नं गुडौदनम् । स गच्छेद्विप्तिमानुद्व सूर्यलोकं पूरं दद्यन् ॥६
 गच्छेत्तुरवरे रुद्रं यत्र देवः प्रजापतिः । स्नानपेद्यस्तु वा भक्त्या भास्करं पूजयेत्तथा ॥७
 स गच्छेद्विप्तिमानुद्व सूर्यलोकं न संशयः । ८ रथमारोपयेद्यस्तु रथमार्गं प्रमार्जति ॥८
 स याति वातसालोक्यं वाततुल्यपराक्रमः । रथस्य गच्छतो यस्तु मार्गं कुर्यात्सुमण्डलम् ॥९
 स लोकं प्राप्नुयात्पुण्यं भास्त नात्र संशयः । सूर्यस्य गच्छतो यस्तु मार्गं कुर्यात्सुमण्डलम् ॥१०
 स लोकं प्राप्नुयात्पुण्यं यः कुर्यात्मार्गमादरात् । पुञ्चप्रकरशोभादधं शुभतोरणर्मणितम् ॥११
 शंखतूर्यनिनादादधं तथा^२ प्रेक्षणकान्वितम् । स याति परनं स्थानं यत्र देवो विभावसुः ॥१२
 देवेन सहिते यस्तु नृत्यनायांसंतथा चयन् । कुर्यात्महोत्सवं भक्त्या स याति परमं पदम् ॥१३
 प्रजागारं यस्तु कुर्याद्वै रथगते रवौ । स सुखी पुण्यवान्नित्यं भोदते शाश्वतीः समाः ॥१४

वह परार्द्ध वर्षपर्यन्त (अन्तिम संख्या के वर्षों तक) सूर्य में पूजित रहता है और उसके कुल में कभी दरिद्र या कोई रोग नहीं होता है । १-२। इस भाँति जो सूर्य के देह में लगाने के लिए धी का दान तथा तिलक के लिए रंग प्रदान करता है, वह सुरभी (गायों के) लोक को प्राप्त करता है । ३। हे त्रिलोचन ! जो सूर्य के स्नान के लिए गंगा जल या अन्य तीर्थों के जल, तथा भक्तिपूर्वक तिलक लगाने के लिए तीनों रंगों को प्रदान करता है, वह इस लोक में अपने सभी मनोरथ सफल करके वरुण लोक को प्राप्त करता है । ४-५। जो लाल रंग समेत गुड, मिथित भात हविष्यान्न प्रदान करता है, वह तेजस्वी सूर्यलोक की यात्रा (मरने के बाद) करता है । ६। उसी भाँति जो भक्तिपूर्वक सूर्य को स्नान कराता है और पूजन करता है, उसे निःसन्देह प्रजापति लोक की प्राप्ति होती है । ७। जो रथ में स्थापित करता है या उनके रथ के मार्ग को साफ-शुद्ध बनाता है, निःसन्देह तेजस्वी होकर सूर्यलोक को जाता है । ८। वह वायु की भाँति पराक्रमी होकर वायुलोक में निवास करता है, जो चलते हुए रथ के मार्ग में सुन्दर मंडल की रचना करता है । ९। वह पुण्य वायु लोक को निःसन्देह प्राप्त करता है जो सूर्य के चलते हुए उनके मार्ग को मंडल बनाता है । १०। जो उनके मार्ग को आदरपूर्वक सजाता है जो सुन्दर तोरण (बहिद्वारि) से मणित तथा अधिक पुष्पों से सुशोभित किया गया हो, वह पुण्यलोक प्राप्त करता है । ११। शंख, तुरुही आदि वाद्यों के घवनि-कोलाहल में मार्ग को सुशोभित कर रखने योग्य बनाता है, वह सूर्य के परम स्थान की प्राप्ति करता है । १२। एवं जो सूर्य की उस यात्रा में पूजनपूर्वक नाचगान करके उसे महोत्सव को सुशोभित करता है, उस परम पद की प्राप्ति होती है । १३। तथा जो सूर्य के इस उत्सव में जागरण करता है, वह सुखी और पुण्यात्मा होकर अनेकों वर्ष का दीर्घ जीवन प्राप्त करता है । १४। जो भक्ति और दास आदि उन्हें समर्पण करता है, वह यहाँ अपने

१. सवितुः । २. स्नानार्थमानयेद्यस्तु । ३. शुभास्तरणमण्डितम् । ४. दद्यात् ।

भक्तदासादिकं^१ सर्वं यो बदाति रवेर्नतः । सम्प्राप्येहाहिलान्कामान्सूर्यलोकमवाप्न्यात् ॥१५
रथरूढस्य सूर्यस्य भ्रमतो दर्शनं हर । दुर्लभं देवशार्दूलं विशेषात्युरतो वजन् ॥१६
उत्तराभिमुखं यात्तं तथा वै दक्षिणामुखम् । धन्यः पश्यति देवेशं भास्करं भक्तवत्सलम् ॥१७
अथ संदत्सरे प्राप्ते भानोर्यात्रादिने यदि । रथप्रक्रमणं तत्र न कथञ्चिच्छत्वं भवेत् ॥१८
ततो वै द्वादशे वर्षे कर्तव्यं सूर्तिमिच्छता । इन्द्रध्वजस्य चाप्येवं पदि नोत्थापनं छत्वम् ॥१९
ततो वै द्वादशे वर्षे कर्तव्यं नान्तरा पुनः । यात्रायश्चापि ये भह्गं कुर्वन्ति वृषभध्वज ॥२०
मन्देहा नाम तं ज्ञेया राक्षसा नात्र संशयः । ये कुर्वन्ति तथा यात्रां नरा धर्मध्वजस्य तु ॥२१
इन्द्रादिदेवतस्ते ज्ञेया गताश्च परमं पदम् । पुनर्यात्राविधिं चेन्नं समासात्कथयामि ते ॥२२
यं शुत्वा सर्वपात्मेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः । वर्तमाने तु वै माघे रथे देवगणाश्रिते ॥२३
स तस्मिन्नेव मनसा स्थापनीयो रथोपरि । द्यौर्मही च द्विसूर्तिस्ये यथापूर्वं प्रतिष्ठिते ॥२४
तथैव राज्ञी द्यौर्जेया निधुभा पृथिवी स्मृता । एताः यामपि देवीम्यां यथैव सवितुस्तथा ॥२५
दिणिङ्डनः पिंगलादीज्ञां पृथुः कार्यो रथक्रमः । मनता चिन्तयेदन्यां यथास्थानेषु देवताल् ॥२६
दिक्षपालांलोकपतलांश्च कल्पयेत्मनसैदं तु । देवो वेदमयश्चायं सर्वदेवमयस्तथा ॥२७
मंडलमृह्मयं चैव छन्दांस्यास्यं प्रकीर्तिम् । गायत्री चैव त्रिष्टुप्च जगत्यनुष्टुवेव च ॥२८

मनोरथों को सफल करते हुए (अंत में) सूर्य लोक की प्राप्ति करता है ॥१५। हे देवशार्दूल ! इस प्रकार रथ पर बैठ कर धूमते हुये सूर्य का दर्शन विशेष कर अत्यन्त दुर्लभ होता है, जब वे सामने से होकर जाते हैं ॥१६। इसलिए उत्तर या दक्षिण की ओर मुख करके जाते हुए भक्तवत्सल सूर्य का दर्शन जिसे प्राप्त होता है, वह धन्य है ॥१७। यदि वर्ष के आरम्भ में किसी भाँति रथ की यात्रा न हो सके, तो कल्याण की इच्छा करते हुए मनुष्यों को बारहवें वर्ष में रथयात्रा अवश्य करनी चाहिए । इसी प्रकार इन्द्र की ध्वजा की भी जिसका उत्थापन न हुआ हो, व्यवस्था करने के लिए बतायी गयी है ॥१८-१९। हे वृषभध्वज ! बारहवें वर्ष उस यात्रा को किसी भाँति अवश्य करके पुनः प्रतिवर्ष सदैव करना चाहिए, क्योंकि यात्रा भंग करने वाले को मन्देह नामक राक्षस ही जानना चाहिए । जो धर्म ध्वज (सूर्य) की रथयात्रा करते हैं, वे इन्द्रदि देवता ही हैं क्योंकि उन्हें परमपद प्राप्त होता है । अतः इस यात्राविधि को मैं पुनः संक्षेप में कह रहा हूँ ॥२०-२१। जिसे सुनकर सभी लोग पापों से मुक्त हो जायेंगे ।

माघ मास में रथ में देवताओं के बैठने के पश्चात् उसी रथ में आकाश और पृथिवी रूप दो मूर्तियों की भी मानसिक स्थापना करनी चाहिए ॥२३-२४। क्योंकि रानी को द्यौ (आकाश रूप) और निधुभा को पृथिवी रूप बताया गया है । इसलिए इनके समेत ही सूर्य की स्थापना होनी चाहिए ॥२५। पुनः दिंडी और पिंगलादिकों की भाँति अन्य देवताओं की भी यथास्थान गानसिक कल्पना (स्थापना) करना आवश्यक बताया गया ॥२५-२६। उसी प्रकार दिक्षपाल और लोकपालों की भी मानसिक कल्पना करनी चाहिए । सूर्य वेदमय एवं सर्वदेवमय है ॥२७। उनका मंडल ऋचामय है इसलिए गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती,

१. भक्त्या दशाहिकासंज्ञम् । २. वा गणनाश्रिते ।

पंक्तिश्च बृहती चैव उष्णिगोद च सप्तमी । ततो देवमयात्वाच्च छन्दसां चैव कल्पनात् ॥२९
 ततो वेदनयात्वाच्च तरणिलोकपूजितः । 'रथप्रकमणात्सूर्यो वोढव्यो ब्रह्मवादिभिः ॥३०
 उपवासत्परेर्युक्तैर्वेदवेदांगपत्रगैः । रथं तु नाशेच्छूद्धो भास्करस्य त्रिलोचन ॥३१
 आरुह्य तरणेयनं द्वजेच्छूद्धो द्वृग्देवगतिम् । यथोक्तकरणादूद्र सदा शान्तिर्भैर्वलृणाम् ॥३२
 नायकश्चापि सर्वेषां देवानां तु^१ दिवाकरः । विन्यसेतु रथानां तु देवतायतनेषु च ॥३३
 ततो धूपोपहारैस्तु पूजयेत्प्रथमं रविम् । दिग्देवानुचरांश्चैव पूजयेत्पूज्यते श्रिया ॥३४
 अपूज्य प्रथमं सूर्यमपरान्यस्तु पूजयेत् । ^२ततद्भूतकृतं पादं न प्रगृह्णन्ति देवताः ॥३५
 यात्राकाले तु सम्प्राप्ते ^३सविदुर्दीक्षितां तनुम् । ये द्वयंति नरा भक्त्या ते भविष्यन्त्यकल्पमाः ॥३६
 गौर्जमास्याममायां च दर्शनं पुण्यदं स्नृतम् । सप्तम्यां च तथा षष्ठ्यां दिने तस्य रवेस्तथा ॥३७
 आषाढ़ी कार्तिकी माघी तिथ्यः पुण्यतमाः स्मृताः । महाभाष्यं तिथे पुण्यं यथा शास्त्रेषु गीयते ॥३८
 कार्तिक्यां तु विशेषेण महाकार्तिक्यृद्वाहतः । एवं कालसमायोगाद्यात्राकालो दितीश्वर्यत ॥३९
 दर्शनं च महापुण्यं सर्वपापहरं भवेत् । उपवासपरो दस्तु तस्मिन्काले यत्वतः ॥४०

अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती तथा उष्णिक् ये सातों छन्द उनके मुख हैं। देवमय और वेदमय होने तथा छन्द की कल्पना करने के नाते सूर्य लोकपूज्य हैं। अतः उनके रथ वहन करने के लिए ब्रह्मवादियों को जो उपवास आदि नियम पालन और वेद वेदाङ्ग के कुशल विद्वान् हों, नियुक्त करना चाहिए । २८-३०। हे त्रिलोचन! सूर्य के रथ पर शूद्र को कभी न बैठना चाहिए । ३१। क्योंकि यदि उस पर वह बैठता है तो उसकी अधोगति होती है। हे रुद्र! इस प्रकार बतायी गई इस विधि का पालन मनुष्य करे, तो उसे सदैव शांति प्राप्त होती है । ३२

क्योंकि सभी देवताओं के नायक दिवाकर हैं। अतः उन्हें तथा देवताओं को रथ में अपने-अपने देवस्थानों में स्थापित करने के पश्चात् धूपादि उपहार द्वारा प्रथम सूर्य की पूजा के पश्चात् अन्य देवताओं एवं अनुचरों की पूजा करने वाला मनुष्य श्री सम्पन्न होकर पूज्य होता है । ३३-३४। जो प्रथम सूर्य की पूजा न करके अन्य देवों की पूजा करता है, वे (देव) उसके द्वारा दिये गये पाद्यादि को स्वीकार नहीं करते हैं । ३५। इस प्रकार जो भक्तिपूर्वक यात्रा समय में सूर्य के उस दीक्षित (पूजित) शरीर का दर्शन करते हैं, वे निष्पाप हो जाते हैं । ३६। इस भाँति पूर्णिमा, अमावस्या, सप्तमी और षष्ठी के दिन सूर्य का दर्शन अत्यन्त पुण्यदायक बताया गया है । ३७। आषाढ़, माघ तथा कार्तिक मास की तिथियाँ, पुण्यस्वरूप हैं क्योंकि इन तिथियों का पुण्यस्वरूप महान् सौभाग्यकारक होना शास्त्रों में प्रतिपादित है । ३८। विशेषकर कार्तिक में वह पूजा विशेष महत्व प्रदान करती है, इसीलिए कार्तिक की पूजा का नाम भहकार्तिकी बताया गया है। इस प्रकार काल-समय के योग द्वारा यात्राकाल की विशेषता कही गई है । ३९। उस समय का दर्शन समस्त पापों के नाशपूर्वक महापुण्य प्रदान करता है। जो उस समय ब्रती रहकर उपवास करके भूक्तिपूर्वक

१. रथसंक्रमणे । २. हि । ३. ते तद्भूतकृतं पादं न प्रगृह्णन्ति देवताः । ४. दक्षिणाम् ।

पूजयेतु^१ रत्वं भक्त्या स गच्छेत्परमां गतिम् । देवोऽयं पञ्चपुरुषो लोकानुप्रहक्षांक्षया ॥४१
 प्रतिमावस्थितो भूत्वा पूजां गृह्णात्यनुग्रहात् । स्नानादानाज्जपादोमात्संयोगादेवकर्मणः ॥४२
 कूर्चानां वपनाच्चैव दीक्षितः पुरुषो भवेत् । कचानां वापनं कार्यं सूर्यभक्तेः सदा नरैः ॥४३
 मूर्दकूर्तौ शुचिस्त्वेवं दीक्षितः पुरुषो भवेत् । चतुर्मासिपि दर्शनानां भक्त्या सूर्यस्त्वं नित्यदा ॥४४
 एवं येऽत्र करिष्यन्ति ते नरा नित्यदीक्षिताः । चीर्जव्रता महात्मानस्ते यास्यन्ति परां गतिम् ॥४५
 इत्येषा कथिता रुद्र रथयात्रा दिवस्यते । यां भूत्वा वाच्चिद्वा सर्वरोगैर्विमुच्यते ॥४६
 कृत्वा च विधिवद्भूत्या याति सूर्यसदो नरः । रथाह्वा कथिता रुद्र मासासात्पत्तमी शुभा ॥४७
 मूर्योऽपि श्रूपतां रुद्र सप्तमीं गदतो मम ॥४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां आह्वे पर्दणि सप्तमोकल्पे
 रथयात्रां वर्णनं ज्ञानाप्तउच्चारतमोऽध्याय ।५८।

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

रथसप्तमी-माहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

माघे मासि तथा देव सिते पक्षे जितेन्द्रियः । षष्ठ्यात्मुपोषितो भूत्वा गन्धपुष्पोपहारतः ॥१

सूर्य की पूजा करता है, उसे उत्तम गति होती है। इसीलिए लोकोंके ऊपर विशेष कृपा करने के नाते सूर्य को यज्ञ-पुरुष बताया गया है। ४०-४१। प्रतिभा में अवस्थित होकर ये (सूर्य) कृपा करके (उसकी) पूजा ग्रहण करते हैं। सूर्य देव के स्नान, दान, जप एवं होमादि सभी कर्म करने और दाढ़ी के बाल बनवानी से पुरुष दीक्षित होता है। अतः सूर्य के भक्त को सदैव मुंडन कराना चाहिए। ४२-४३। सूर्य के यज्ञ में इसी प्रकार चारों वर्णों के पुरुष पवित्र एवं दीक्षित होते रहते हैं। ४४। इस भाँति जो सदैव उसे सुसम्पन्न करते रहेंगे वे नित्य दीक्षित होकर परमगति को प्राप्त करेंगे। ४५। हे रुद्र ! इस प्रकार यह सूर्य की यात्रा बतायी गई है। जिसे मुनकर या मुनाकर सभी रोगों से मुक्ति प्राप्त होती है। ४६। और विधिपूर्वक इसे सुसम्पन्न करने पर मनुष्य सूर्यलोक प्राप्त करता है। हे रुद्र ! रथनाम वाली इस कल्याणमय सप्तमी को संक्षेप में मैंने बता दिया किन्तु किर भी मैं सप्तमी की ही व्याख्या कर रहा हूँ मुनो ! ४७-४८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मवर्ष के सप्तमी कल्प में रथयात्रा वर्णन नामक
 अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ।५८।

अध्याय ५९

सूर्य रथ-यात्रा का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे देव ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी में इन्द्रियसंयम पूर्वक उपवास रहकर गंध

पूजयित्वा दिनकरं रात्रौ तस्याग्रतः स्वपेत् । विबुद्धस्त्वथ सप्तम्यां भक्त्या भानुं समर्चयेत् ॥२
 ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्ब्रह्मतशाठचं^१ विवर्जयेत् । लण्डवेष्टमोदकैश्च तथेषुगुडपूषकैः ॥३
 अथ संवत्सरे पूर्णे सप्तम्यां कारयेद्बुधः । देवदेवस्य वै यात्रां पूर्वोक्तविधिना हर ॥४
 कृष्णपक्षे तु यः कृत्वा रथमारोहितं रविम् । पश्येद्ब्रह्मत्यः जगन्नाथं स याति एस्मां गतिम् ॥५
 तृतीयायांसेकभक्तं चतुर्थ्या नक्तमुच्यते । पञ्चम्यामयाचितं स्यात्पृष्ठयां चैवमुपोलणम् ॥६
 सप्तम्यां पारणं कुर्याद्दृष्ट्वा देवं रथे स्थितम् ; पूजयित्वा च विधिना शक्त्या भक्त्या त्रिलोचन ॥७
 सौवर्णं तु रथं कृत्वा ताम्रपात्रोपरि स्थितम् । रथमध्ये न्यसेदव्योमं पूजितं मणिभिर्हर ॥८
 पञ्चरात्रां न्यसेन्मध्ये मौक्तिकं पूर्वतो न्यसेत् । इन्द्रनीलमथो याम्यां वारुण्यां मरकतं हर ॥९
 प्रवालमुत्तरे रुद्रं सदज्ञं विन्यसेद् बुधः । श्वेतं पीतासितं चापि रक्तं चान्धकसूदन ॥१०
 एतानि तात दस्त्राणि दिक्षु सर्वासु विन्यसेत् । पताकानारसंस्थानं घण्टाभरणभूषितम् ॥११
 पुष्पैर्दर्मैरलंकृत्य रथं रुद्रं समन्ततः । यथान्यायं पूजयित्वा भास्कराय निवेदयेत् ॥१२
 भोजयित्वाथ वा विप्रानाचार्याय निवेदयेत् । योऽधीते सप्तमीकल्पं सोपाख्यानं च भारत ॥१३
 आचार्यः स द्विजो ज्ञेयो वर्णनान्मनुपूर्वकः । सौराणां वैष्णवानां तु शैवानां पार्वतीश्रिय ॥१४
 अलाभे तु सुवर्णस्य रथं राजतमादिशेत् । तद्लाभे ताम्रमयं रथं व्योमं च कारयेत् ॥१५

और पुष्पादि उपहार द्वारा सूर्य की पूजा करके रात में उन्हीं के संमाने शयन करे । पुनः सप्तमी में प्रातः काल उठकर भक्तिपूर्वक भानु की पूजा करने के अनन्तर अपनी शक्ति के अनुसार खाँड़ के लड्डू, ऊक के गुड़ के मालपुआ और लड्डू द्वारा ब्राह्मणों को भली-भाँति तृप्त करे उसमें कृपणता न होने पाये । १-३। हे हर ! पञ्चात् वर्ष की समाप्ति में सप्तमी तिथि के दिन देवाधिदेव सूर्य की (रथ) यात्रा उसे पूर्वोक्त विधि द्वारा सम्पन्न करना बताया गया है । ४। कृष्ण पक्ष में जो रथ पर बैठे हुए जगन्नाथ सूर्य का दर्शन करता है, वह परम गतिप्राप्त करता है । ५। इसी भाँति तृतीया में एक बार भोजन करके चतुर्थी में नक्त व्रत, पञ्चमी में उस अन्न का, जो किसी से याचना द्वारा न प्राप्त हो भोजन करके पष्ठी में उपवास और सप्तमी में रथ पर बैठे हुए सूर्य का दर्शन तथा भक्तिपूर्वक शक्ति के अनुसार पूजन करके पारण करना चाहिए । ६-७

सुवर्ण का रथ बनाकर उसे ताँबे के पात्र के ऊपर स्थापित करे पुनः रथ का मध्य भाग मणियों से सुशोभित करे । ८। उसके मध्यभाग में पञ्चरात्र मणि, पूर्व में मोती, दक्षिण में इन्द्रनील, पश्चिम में मरकत मणि और बज्ज समेत प्रवाल (मूँग) उत्तर की ओर सुसज्जित करे । अनन्तर श्वेत, पीत, काले एवं रक्तवर्ण के वस्त्रों से उसके चारों दिशाओं को भूषित करते हुए यथास्थान रखे हुए पताकाओं, घंटा और आचरण एवं पुष्पमालाओं द्वारा रथ को सजाकर उसे सूर्य को यथा विधिपूजन समेत सादर समर्पित करे । ९-१२। पुनः ब्राह्मणों को भोजन करा देने के पश्चात् उसे आचार्य को समर्पित करना चाहिए । हे भारत ! एवं पार्वतीश्रिय ! उपाख्यान समेत जो सप्तमीकल्प का पाठ करता है, वह द्विज ! चारों वर्णों, सौर, वैष्णव तथा शैवों का भी आचार्य होता है । १३-१४। यदि रथ रचना में सुवर्ण की प्राप्ति न हो सके,

अभावे चर्यि तात्रस्य रथः पिष्ठमयः स्मृतः । सहिरण्यो 'महादेव तात्रभाजनमाश्रितः ॥१६
 'कौशेयपुम्भत्तहिं आहृणाय निवेदयेत् । पूर्वोक्ताय महादेव वाचकाय महात्मने ॥१७
 पञ्चरत्नसमाप्तुं शुभगन्धाधिवासितम् । स्वशक्त्या तु विरूपाङ्ग वित्तशाठयं विवर्जयेत् ॥१८
 एषा पुण्या पापहरा रथाह्वा सप्तमी हर । कथिता ते मया रुद्र महतीयं प्रकीर्तिता ॥१९
 स्नानं दानस्थो होमः पूजा ग्रहपतेर्हर । शतसाहस्रं भवेदस्यां कृतं शूद्रविक्रिते ॥२०
 एवमेषा पुण्यतसा माधे प्रोक्ता तु सप्तमी । यामुपोद्य नरो भक्त्या सूर्यस्यानुचरो भवेत् ॥२१
 आहृणो याति देवत्वं क्षत्रियो विप्रता व्रजेत् । वैश्यः क्षत्रियां याति शूद्रो वैद्यत्वमेति च ॥२२
 विद्याविनयसम्पन्नं भर्तरं कन्यका लभेत् । अपुत्रा स्नी नुतं विन्देत्सौभाग्यं च गणाधिप ॥२३
 विधवा चात्युपोद्येमां सप्तमीं त्रिपुरांतक । नन्यजन्मसु वैधव्यं प्राप्नुयात्पार्वतीप्रिय ॥२४
 बहुपुत्रा बहुश्ना पत्युर्वल्लभतां इजेत् । यावद्वै सप्त जन्मानि तिन्द्रयन्तु दुर्खास्तथा ॥२५
 एवंविधा सप्तमी ते कथिता वृषभध्वज । यां श्रुत्वा मानवो भक्त्या मुच्यते आहृहत्यया ॥२६

इति श्रीनविष्ण्ये महापुराणे शतार्द्दसाहस्रणां संहितायां आह्ये पर्वणि सप्तमीकल्पे

रथसप्तमीमाहात्म्यवर्णनं नामेकोनषष्टिमोऽध्यायः ५९।

तो चांदी और उसके अभाव में ताँबे का ही रथ बनाये । १५। यदि ताँबा भी अप्राप्य हो तो चूर्ण (आटे) का रथ बनाना बताया गया है । हे महादेव ! इस प्रकार सुवर्ण के उस रथ को ताँबे के पात्र में रखकर दो रेशमी वस्त्र तथा कथावाचक द्वारा योग्यता देवता करके अपनी शक्ति के अनुसार पंचरत्न और इति आदि गंधादि द्वारा उनकी पूजा आ । यदि भी सम्पन्न करे । उसमें कृपणता न करे । १६-१८। हे हर ! हे रुद्र ! पुण्य रूप एवं पाप हारिणी इस रथ नाम वाली सप्तमी को मैंने सुना दिया जिसे महासप्तमी भी कहते हैं । १९। इसमें सूर्य के स्नान, दान, हवन और पूजन करने से वह सहस्रों गुना अधिक पुण्यप्रद होती है । २०

इसीलिए इस माघ की सप्तमी को अत्यन्त पुण्यस्वरूप बताया गया है क्योंकि भक्तिपूर्वक मनुष्य इसी का वत करके सूर्य का सेवक हो जाता है । २१। तथा (इसी के प्रभाव से) आहृण, देवता क्षत्रिय, आहृण, वैश्य क्षत्रिय और शूद्र वैश्य हो जाते हैं । २२। इसी भाँति इस प्रकार कन्या विद्या विनय सम्पन्न पति और स्त्री पुत्र एवं सौभाग्य प्राप्त करती है । २३। हे त्रिपुरांतक ! एवं पार्वतिप्रिये ! विधवा स्त्रियों को भी इस सप्तमी का वत करना चाहिए । क्योंकि उन्हें ऐसां करने पर अन्य जन्म में वैधव्य नहीं प्राप्त होता है । २४। अपितु सात जन्मों तक बहुत पुत्र, असंस्य धन की प्राप्तिपूर्वक वे सदैव पति की प्रेयसी बनी रहती हैं । इसी भाँति पुरुष को भी सभी फल की प्राप्ति होती है । २५। हे वृषभध्वज ! इस प्रकार की सप्तमी, जिसे सुनकर मनुष्य आहृहत्या के दोष से मुक्त हो जाता है, मैंने तुम्हें बता दिया । २६

श्री भविष्य महापुराण में आहृपर्व के सप्तमीकल्प में रथ सप्तमी माहात्म्यवर्णन

नामक उनसठवां अध्याय समाप्त । ५९।

१. सपर्याद्यं देवताजनमाश्रितम् । २. काषाययुग्मसहितम् । ३. कामुकी ।

अथ षष्ठितमोऽध्यायः

रथयात्रावर्णनम्

सुमन्तुरवाच

इत्युक्त्वा स जगत्सागु मुरज्येष्ठं त्रिलोचनम् । रथयात्रा महाबाहो सूर्यस्येत्यभितौजसः ॥१
शतानीक उवाच

यन्माराध्य जगत्नाथं सम पूर्वपितामहः । तुष्टधर्थं ब्राह्मणानां तु अश्वमणुश्चतुर्विधम् ॥२
तस्य देवस्य माशूलम्यं श्रुतं च बहुशो मया । देवर्षिस्तद्भनुजं: स्तुतस्य हि दिनेदिने ॥३
कः स्तोतुमीशस्तमजं' यस्यतत्सत्त्वराचरम् । अव्ययस्याप्रमेष्य विबुध्येतोदयाज्जात् ॥४
कराम्यां यस्य देवेशौ कविष्ठूं लोकपूजितौ । उत्पन्नो द्विजशार्दूल ललाटाहिंश्चपुरान्तकः ॥५
तस्य देवस्य कैः शक्या वक्तुं सर्वा विमूलयः । सोऽहमिच्छामि देवस्य तस्य सर्वात्मना द्विज ॥६
श्रोतुमाराधनं येन निस्तरेयं भवार्णनम् । केनेषायेन मन्त्रैर्वा रहस्यैः परिवर्यया ॥७
दानैर्वृतोपवासैर्वा होमैर्जप्त्यरथापि वा । आराधितः समस्तानां क्लेशानां हानिदो भवेत् ॥८
सैका विद्या हि विद्यानां यया तुष्यति सर्वकृत् । श्रुतानामपि तत्पुण्यं यत्र भानोः प्रकीर्तनम् ॥९

अध्याय ६०

रथा-यात्रा का वर्णन

सुमन्तु बोले—हे महाबाहो ! अमेय तेजस्वी सूर्य की रथ यात्रा का वर्णन देवध्रेष्ठ त्रिलोचन (शंकर) को सुना कर ब्रह्मा ने वहाँ से शीघ्र प्रस्थान कर दिया ॥१

शतानीक ने कहा—जिस जगत्नाथ की आराधना करके मेरे पूर्वजों ने ब्राह्मणों को संतुष्ट रखने के लिए चार प्रकार के अन्न प्राप्त किये हैं, और जिसकी प्रतिदिन देव, कृषि, सिद्ध और मनुष्य स्तुति करते रहते हैं, उस देव का माहात्म्य मैंने बहुत बार सुना है ॥२-३। इंसलिए उनकी स्तुति कौन कर सकता है। क्योंकि वे अजन्मा हैं, उन्हीं का यह चर-अचर रूप जगत् है, वे प्रत्यय (अविनाशी) और अप्रमेय (बुद्धि द्वारा जिसकी कल्पना न हो सके) हैं । उन्हीं के उदय होने पर समस्त जगत् जागृत होता है एवं उन्हीं के हाथों द्वारा लोक-पूजित ब्रह्मा और विष्णु, तथा ललाट द्वारा शिव उत्पन्न हुए हैं ॥४-५। अतः उस देव की समस्त विभूति का वर्णन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है । हे द्विज ! पुनः प्रातः उन्हीं देव की आराधना, जो संसार सागर को पार करने वाली है, मेरी सुनने की प्रबल इच्छा है । और उनके मन्त्रों, रहस्यों, सेवा, दान, व्रत, उपवास, हवन एवं जप में किस युक्ति-युक्त उपाय द्वारा उनकी आराधना करने पर समस्त दुःखों का नाश होता है ॥६-८।

क्योंकि विद्याओं में वही एक श्रेष्ठ विद्या बतायी गयी है, जिसके द्वारा वे प्रसन्न होते हैं । और सूर्य

रहस्यानां रहस्यं तदेन हंसः प्रसीदति । एकः श्रेष्ठतमो मंत्रस्तदेकं परमं व्रतम् ॥१०
 उपोषितं च तच्छ्रेष्ठं येन भानुः प्रसीदति । सा चैका रसना धन्या मार्तण्डं स्तौर्ति या सदा ॥११
 तदेकं निर्मलं नितं 'यद्गतं सततं रवौ । श्लोध्यानामपि तौ श्लोध्यादिह् लोके परत्र च ॥१२
 यो सदा द्विजशार्दूलं भानोः पूजाकरौ करौ ! तदेकं केवलं धन्यं शरीरं सर्वजन्तुषु ॥१३
 यदेव पुलकोद्भूतिं भानोर्नामातुकीर्तने । सा जिह्वा कण्ठतालूकमथ वा प्रतिजिह्विका ॥१४
 अथ वा सापरो रोगो या न वक्ति रवेन्युणम् । नवद्वाराणि सन्त्यस्तिमन्युरे पुरुषसत्तम् ॥१५
 प्राकारैस्त्वावृते विष्वग्वथा तानि विदुर्बुधाः । इत्वावधानं यच्छब्दे विनैव रविसंस्तुतिम् ॥१६
 श्रेयसां न हि सम्प्राप्तौ पुरुषाणां विच्छित्तम् । जन्मन्यविफला सेवा कृता याश्रित्य भास्करम् ॥१७
 दुर्गासंसारकांतारमपारमभिधावताम् । एको भानुनमस्कारः संसारार्णवतारः ॥१८
 रत्नानामाकरो मेरुः सर्वाश्र्वर्यमयं नभः । तीर्थनामाश्रयो गंगा देवानामाश्रयो रविः ॥१९
 एवमादिगुणो भोगो भानोरमिततेजसः । श्रुतो मे बहुशः सिद्धैर्गीयमानैस्तथामरैः ॥२०
 सोऽहमिच्छामि तं देवं सप्तलोकपरायणम् । द्विकरमशेषस्य जगतो हृदयस्थितम् ॥२१
 आराधयितुमीशेशं भास्करं द्यमितौजसम् । मार्तण्डं भुवनाधारं स्मृतमऽत्राधदारिणम् ॥२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि

सप्तमीकल्पे सूर्यपरिचर्चर्यवर्णनं नाम षष्ठितमोऽध्यायः ।६०।

का गुण-गान वेदों में भी वही पुण्ययुक्त है जिसमें सूर्य हो । उसी भाँति रहस्यों में वही रहस्य उत्तम है, वही एकमन्त्र है वही उत्तमव्रत, तथा वही उपवासा श्रेष्ठ है, जिसके द्वारा सूर्य प्रसन्न होते हैं । उसी मनुष्य की जिह्वा धन्य हैं, जो सदैव सूर्य की स्तुति में लगी रहती है । १-१। वही चित्त निर्मल है, जिसमें सूर्य का सतत ध्यान होता रहे । इसी भाँति (मनुष्यों के) हाथ लोक परलोक दोनों स्थानों में प्रशस्त बताये गये हैं, जिससे सदैव सूर्य की पूजा होती है एवं सूर्य के नाम संकीर्तन में जिसमें हर्षात्मिक रूप से रोमांच हो, वही शरीर सभी जन्तुओं में धन्य है । इसलिए कण्ठ और तालु समेत जो जिह्वा सूर्य के गुण-गान में लगी रहे तो वही जिह्वा और जो सूर्य के गुण का उच्चारण न करे वह जिह्वा नहीं प्रत्युत रोग रूप है । हे पुरुषोत्तम ! चारों ओर से चाहार दिवारी की भाँति धिरे हुए इस शरीर में नवद्वार हैं, अतः यदि उनके द्वारा एकाग्र मन से सूर्य की स्तुति के बिना ही शब्द के उच्चारण हो तो वे वर्य हैं । १-२-१६। और सूर्य के लिये यदि पुरुषों की चेष्टाएँ न हुईं, तो वे चेष्टाएँ कल्याणप्रद नहीं होती हैं । इस प्रकार सूर्य की जिसमें सेवा की है, जीवन में उसकी वही एक सफल सेवा है । १७। इसलिए इस दुर्गम अपार संसार रूपी जंगल में दौड़ने वाले प्राणियों के लिए सूर्य के लिए किया गया एकमात्र नमस्कार ही संसार सागर पार करने वाला है । क्योंकि अक्षय भण्डार मेरु है, एवं सभी भाँति के आश्चर्यमय नभ है तथा तीर्थों की आश्रम गंगा हैं देवों के आश्रय सूर्य हैं । १८-१९। अमित तेज वाले सूर्य के इन गुणों को, जिनके गुण-गान सिद्ध तथा देवगण सदैव किया करते हैं, मैंने अनेकों बार सुना है । २०। वही सातों लोकों के आश्रय, समस्त जगत के हृदय-निवासी, लोकों के आधार, स्मरण मात्र से पाप नाशक एवं ईशों के ईश हैं । अतः मैं उस देव की आराधना करना चाहता हूँ । २-१-२२ श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य परिचर्चर्या वर्णन नामक साठवाँ अध्याय समाप्त । ६०।

अथैकषष्ठितमोऽध्यायः

सूर्य-महिमावर्णनम्

सुमन्तुरुखाच

तमेकमक्षरं धाम परं सदसतोर्महत् । भेदाभेदस्वरूपस्थं प्रणिपत्य रविं नृप ॥१
 प्रवक्ष्यामि यथापूर्वं दिरिज्ज्ञेन महात्मना । कृपीणां कथितं पूर्वं तं निबोध नराधिप ॥२
 आराधनाय सविरुद्धहात्मा पद्मसंभवः । योगं ब्रह्मपरं प्राह महर्षीणां यथा प्रभुः ॥३
 रामस्तवृत्तिसंरोधाकेदल्पप्रतिपादकम् । तदा जगत्पतिर्ब्रह्मा प्रणिपत्य महर्षिभिः ॥४
 सर्वैः किलोत्तो भगवानात्मयोनिः प्रजाहितम् । योगं योगो भगवता प्रोक्तो वृत्तिनिरोधजः ॥५
 प्रात्मनुं शक्यः स त्वनेकैर्जन्मभिर्जगतः पते । विषया दुर्जया नृगामिन्द्रियाकर्षणः प्रभो ॥६
 वृत्तयश्चेतसश्चापि चञ्चलस्यापि दुर्धरा: । रागादयः कथं जेतुं शक्या वर्षशतैरपि ॥७
 न योगयोगयं भवति मन एभिरनिर्जितैः । अत्यायुषश्च पुरुषा ब्रह्मन्कृतयुगेष्यमी ॥८
 त्रेतायां द्वापरे चैव किमु प्राप्ते कलौ युगे । भगवांस्त्वामुपासीनान्प्रसन्नो वकुमर्हसि ॥९
 अनायासेन येनैव उत्तरेम भवार्णवम् । दुःखान्बुमग्राः पुरुषाः प्राप्य ब्रह्मन्महाप्लवम् ॥१०

अध्याय ६१

सूर्य की महिमा का वर्णन

सुमन्तु बोले—हे नृप ! मैं उन सूर्य को प्रणाम करके जो अविनाशी, सभी के लिए उत्तम प्राप्ति स्थान एवं भेदाभेद स्वरूप वाले अद्वितीय और सत्, असत् से परे हैं, उनके आराधना-विषय को कह रहा हूँ, जिसे ब्रह्मा ने कृषियों को बताया था, सुनो ! । १-२। सूर्य की आराधना के लिए ब्रह्मा ने कृषियों को वह ब्रह्म-प्रधान योग बताया था, जो समस्त वृत्ति के निरोध रूप होकर कैवल्य प्रदान करता है । ३। उस समय कृषियों ने जगत्पति ब्रह्मा को प्रणाम करके उनसे कहा—हे जगत्पते, हे प्रभो ! आपने वृत्ति के रोकने से योग बताया है, किन्तु ऐसे योग की सिद्धि अनेक जन्मों में भी नहीं हो सकती है, क्योंकि विषय-वासना मनुष्यों की इन्द्रियों को बलात् आकर्षित कर लेती है, अतः वह मनुष्यों के लिए दुर्जेय है । ४-६। हे ब्रह्मन् ! एक तो मन सर्वथा चञ्चल है, दूसरे उसकी (आसक्ति आदि) वृत्तियों को अपने वश में करना महान् कठिन है, इसलिए हम लोग सैकड़ों वर्षों में भी उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते । ७। इस प्रकार इन्हें बिना जीते हुए सैद्व लिप्त रहने वाला मन, योग के योग कैसे हो सकता है ? तथा पुरुष अत्यायु भी होते हैं । अतः जब कृत (सत्य) युग, त्रैता और द्वापर की यह बात है तो कलियुग में कुछ कहना ही नहीं है । हे भगवन् ! हम लोग आपके पास इसीलिए आये हैं अतः प्रसन्न होकर आप यह बतायें कि—इस संसार-सागर को वे मनुष्य, जो दुःखरूपी लहरों में सैद्व डूबते-उत्तराते हैं, किस आधार द्वारा पार कर सकेंगे और हम लोग भी कैसे पार करेंगे । ८-१०। उन लोकों के इस प्रकार पूछने पर ब्रह्मा ने उनसे

उत्तरेम प्रवाम्भोधिं तथा त्वमनुचिंतय । एवमुक्तस्तदा ब्रह्माक्रियायोगं महात्मनाम् ॥११
 तेषामृषीणामाच्छ नराणां हितकाम्यया । आराधयत विष्वेशं दिवाकरमन्दिताः ॥१२
 ब्राह्मसम्बन्सापेक्षास्तमजं जगतः पतिम् । इज्यापूजानमस्कारशुश्रूषाभिरहनिशम् ॥१३
 व्रतोपवासैर्विविधैर्भ्रातृहणानां च तर्पणैः । तैस्तेश्वभिमते: कामैर्ये च चेतसि दुष्टिदाः ॥१४
 अपरिच्छेद्यमाहात्म्यमाराधयत भास्करम् । तश्चिष्ठास्तदगतधियस्तत्कर्मागस्तदश्रयः ॥१५
 तदृन्दृश्यस्तन्मत्तः सर्वस्मिन्त्सु इति स्थिताः । समस्तान्यथ कर्मणि तत्र सर्वात्मनात्मनि ॥१६
 संन्यसत्यं स वः कर्ता समस्तावरणक्षयम् । एतत्तदक्षरं ब्रह्म प्रधानपुरुषावुभौ ॥१७
 ॑दत्तौ यस्मिन्यद्य चोभौ सर्वव्यापिन्यवस्थितौ । परः पराणां परमः सैकः सुमन्तसा परः ॥१८
 यस्माद्ब्रह्ममिदं सर्वं ॑यच्चेदं यच्च नेन्नति । सोक्षकारणमव्यक्तमचिन्त्यमपरिप्रहम् ॥
 समाराध्य जगन्नाथं क्रियायोगेन मुच्यते ॥१९
 इति ते भ्रह्मणः श्रुत्वा रहस्यमृषिसत्तमाः ॥२०
 नराणामुपकाराद्य योगशास्त्राणि चक्रिरेः । क्रियायोगपराणीह मुक्तिकारीण्यनेकशः ॥२१
 आराध्यते जगन्नाथस्तदनुष्ठानतत्परैः । परमात्मा स मार्तण्डः सर्वेशः सर्वभावनः ॥२२

कहा—यह क्रियारूपी योग ही मनुष्य के सभी प्रकार का हित कर सकता है । अतः संसार के ईश सूर्य की आराधना, जिसमें शारीरिक योग का भी सम्बन्ध है, सावधान होकर करो । ११-१२। इस प्रकार जगत् के स्वामी और अजन्मा उन सूर्य की उपासना—यज्ञ, पूजन, नमस्कार एवं शुश्रूषा (सेवा), व्रत और उपवास द्वारा रात दिन पत्रिक्रमपूर्वक करते हुए ब्रह्मणों को भी भली-भाँति तृप्त करो तथा अन्य भी ऐसे कार्य करो, जिन्हें सुमाप्तन करने पर मनमें अत्यन्त प्रसन्नता हो । १३-१४। क्योंकि ऐसे ही कार्यों से अतुल माहात्म्य वाले वे सूर्य अत्यन्त प्रसन्न होते हैं । अतः उन्हीं में प्रेम-बुद्धि लगाकर एवं उन्हीं के आश्रित रहते हुए, उन्हीं में सतत दृष्टि तथा मन लगाकर उन्हीं के सम्बन्ध के समस्त कर्म करे । क्योंकि वे ही सब में स्थित हैं ऐसा जानो और समस्त कर्म भी उन्हीं में सब प्रकार से अपित करे । और वे ही तुम्हारे कर्ता तथा समस्त आवरणों (दोषों) के नाश करने वाले हैं । यही अनश्वर ब्रह्म एवं प्रधान-पुरुष भी हैं जो दोनों सर्वव्यापी सूर्य में अवस्थित हैं, तथा जो परमोत्तम, देवों से भी परे, एक हैं और जिससे पृथक् होकर यह समस्त ब्रह्मण्ड, न स्थित रह सके न चेष्टा कर सके एवं मोक्ष के कारण, अव्यक्त (मन द्वारा) अचिन्त्य और सभी भाँति दुर्ग्रह्य हैं । इसलिए ऐसे जगत्पति सूर्य की आराधना क्रिया योग द्वारा सफल करके (सभी) मुक्त होते हैं । १५-१९

पश्चात् उन शेष ऋषियों ने इस प्रकार ब्रह्म से इस रहस्य को मुनकर मनुष्यों के हित के लिए क्रिया रूपी योग के प्रतिपादन करने वाले अनेक योग शास्त्रों की रचना की, जो अनेक भाँति से मुक्तिदायी हैं । २०-२१। उनके भक्त उसी क्रिया द्वारा सूर्य की, जो परमात्मा, मार्तण्ड, सभी के ईश और सभी स्थानों

१. महति । २. धाता यस्मिन्यथा चोभौ सर्वथापि व्यवस्थिती । ३. तं जाने सर्वतोगतिम् ।

यान्युक्तानि पुरा तेन ब्रह्मणा कुरुनन्दन । तानि ते कुरुशार्दूल सर्वपापहराण्यहम् ॥२३
 वद्यामि शूयतामद्य रहस्यमिदमुत्तमम् । संसारार्णवप्रग्नानां विषयाकांतचेतसाम् ॥२४
 हंसपोतं विना नान्यतिक्चिदस्ति परायणम् । उत्तिष्ठश्चित्य रथं ब्रजश्चित्य गोपतिम् ॥२५
 भुञ्जश्चित्य भार्तुं स्वपाश्रितय भास्करम् । एवमेकाग्रचित्तस्वं संश्रितः सतं रविम् ॥२६
 जन्ममृत्युमहाप्राहं संसारामप्रस्तरिष्यसि ॥२७

पहेशमीशं दरदं पुराणं जगद्विधातारमजं च नित्यम् ।

समाश्रिता ये रविमीशितारं तेषां भवो नास्ति विमुक्तिभाजाम् ॥२८

इति श्रीनविष्ण्वे महापुराणे शतरुद्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
 सूर्ययोगमहिमवर्णनं नामैकषष्टितमोऽध्यायः । ६ १।

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

सूर्यदिण्डीसंवादम्

सुमन्तुरुवाच

अथान्यं सरहस्यं तु संवादं दद्ध्म तेऽखिलम् । सूर्यस्य दिण्डिना सार्थं सर्वपापप्रणाशनम् ॥१
 ब्रह्महत्याभिभूतस्तु परा दिंडिर्महातपाः । आराधनाय देवस्य स्तोत्रं चक्रे महात्मनः ॥२

मैं प्राप्त हूँ, आराधना करते हूँ । २२। हे कुरुनन्दन ! इसलिए ब्रह्मा के पहले जो क्रूछ कहा है, उसी को, जो समस्त पापों के नाशक तथा विषय-नासना में ओत-प्रोत होकर संसार सागर में डूबने वाले (प्राणी) के लिए एक गुप्त विषय है, मैं भी कह रहा हूँ, मुनो ! २३-२४। विषयासक्त प्राणी के (संसार-सागर पार करने) लिए सूर्य रूपी नौका के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। इसलिए उठते-बैठते, चलते, भोजन करते और शयन करते आदि सभी समय एकाग्रचित्त से सदैव सूर्य के आश्रित रहते हुए संसार सागर को, जिसमें जन्म और मरण रूप महान् ग्राह (मकर) रहते हैं, पार कर सकोगे । २५-२७। अतः ग्रहों के स्वामी, वरदानी जगत् के प्राचीन विधाता एवं अजन्मा उस सूर्य के आश्रित होकर जो रहे हैं, उनकी मुक्ति हो जाती है, उन्हें फिर उत्पन्न नहीं होना पड़ेगा । २८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्ययोग-महिमावर्णन नामक
 एकसठवाँ अध्याय समाप्त । ६ १।

अध्याय ६२

सूर्य दिण्डी संवाद

सुमन्तु बोले—इसके पश्चात् दिण्डी के साथ हुए सूर्य के उस अखिल रहस्यमय सम्बाद को, जो समस्त पापों का नाश करता है, मैं कहता हूँ । १। पहले (समय में) महातपस्वी दिण्डी को ब्रह्महत्या लगी थी, उस दुःख को दूर करने के लिए उन्होंने भगवान् सूर्य की आराधना का स्तोत्र (पाठ करने के लिए

श्रुत्वा तस्मार्थतः स्तोत्रं तुतोष भगवान्विः । उवाच देवदेवस्तं दिष्टिनं गणनायकम् ॥३

आदित्य उवाच

हंत दिष्टे प्रसन्नोऽस्मि भक्त्या त्तोत्रेण तेऽनयै । धरं वृणीष्व धर्मज्ञ यत्ते मनसि धर्तते ॥४

दिष्टिरुचाद

एष एव वरः भूष्यो यत्प्राप्तोऽसि मशान्तिकम् । त्वद्वर्णनमपुष्यानां स्वप्रेष्वपि च दुर्लभम् ॥५
यथैषा ब्रह्महत्या मे आगता लोकार्हिता । भवाञ्जानाति सर्वेषो हृदिस्थः सवदेहिनाम् ॥६
त्वत्प्रसादान्तरमेशान् नशमाणु प्रथातु दै । तथा च दुरितं सर्वं यच्चान्तल्लोकार्हितम् ॥७
दद्यदिच्छाम्यहं तत्तर्त्वमस्तु दिवस्यते । एतेनैवानुमानेन प्रसन्नो भगवन्निति ॥८
ज्ञातं मया हि मार्तण्डे नाप्रसन्ने विभूतयः । एवं सर्वसुखाहादमध्यस्थोऽपि हि भानुमान् ॥९
त्वं मामगाये संसारे भग्नुदर्तुर्भर्ति । सुखानि तानि चैवान्ते तेषां दुःखं न तत्सुखम् ॥१०
यदा तु दुःखमागामि किं वा कस्यैव भक्षणात् । तत्प्रसादं कुरु विभो जगतां त्वं जगत्तते ॥११
ज्ञानदानेन यैनैवभुत्तरेयं भवार्णवम् । इत्युक्तस्तेनमार्तण्डः कथयामास योगवित् ॥१२

पद्यात्मक) बनाया था ।२। अर्थ समेत उसे सुनकर भगवान् सूर्य देव ने प्रसन्न होकर गणनायक दिंडी से कहा ।३

आदित्य ने कहा—हे दिष्टे ! भक्तिपूर्वक किये हुए तुम्हारे इस स्तोत्र के पाठ से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ ।
हे मर्मज्ञ ! तुम अपने अभिलिपित वरदान माँगों ।४

दिंडी ने कहा—आपने यहाँ आकर दर्शन दिया, यही वरदान अति-प्रणंसनीय है, क्योंकि पापियों के लिए आप का दर्शन स्वप्न में भी दुर्लभ है ।५। किन्तु इस मेरी लोक निदित ब्रह्महत्या को जो मुझे कैसे प्राप्त हुई है, यह वृत्तान्त सभी के ईश होने एवं समस्त प्राणियों के हृदय में रहने के नाते आप जानते ही हैं ।६। इसलिए हे ईशान ! आपकी कृपा द्वारा इसका शीघ्र नाश हो । और मेरे अन्य सभी लोकनिन्दित पाप का भी ।७। हे दिवस्यते ! जिस पदार्थ की इच्छा करूँ, उन सभी की पूर्ति हो जाये, हे भगवन् ! मुझे कुछ ऐसा अनुमान भी तो हो रहा है कि आप मुझ पर प्रसन्न हैं ।८। और मैं भलीभाँति जानता भी हूँ कि सूर्य के अप्रसन्न रहने पर सभी ऐश्वर्यादिक विभूतियाँ प्राप्त नहीं होती हैं, क्योंकि समस्त सुखों एवं प्रसन्नताओं के मध्यस्थ भगवान् ही हैं ।९। अतः इस अगाध संसार से आप मेरे उद्घार करने की कृपा करें, जिससे उस सुख की प्राप्ति कर सकूँ, अन्य की नहीं, क्योंकि जिस सुख के अंत में दुःख भी प्राप्त हो, उसे सुख नहीं कहा जा सकता ।१०। हे विभो, हे जगत्पते ! संसार में किसी प्रकार या किसी वस्तु के भोजन करने से भावी दुःख जो होने वाला है प्रसन्न होकर आप उसका नाश करें ।११। इसलिए ज्ञान-दान किसी उपाय द्वारा मैं तथा (सभी लोग) संसार सागर को पार कर सकें, आप उसे बताने की कृपा करें ! इस प्रकार उनके कहने पर योग के विद्वान् सूर्य ने उन्हें निर्बीज योग का, जो अत्यन्त दुःख का नाशक है, उपदेश दिया । उस निष्कल

योगं निर्बीजमत्यन्तं दुःखसंयोगभेषजम् । श्रुत्वा योगं तु तं दिङ्गिनिर्बीजं निष्कलं ब्रह्मौ ॥१३
प्रणिपत्य महातेजा इदं वचनमब्रवीत् । देवदेव त्वया योगो यः प्रोक्तो ध्वान्तनाशन ॥

नैष प्राप्यो मया नान्यैर्मानवैरजितेन्द्रियैः ॥१४

विषया दुर्जयाः पुंशिरिन्द्रियाकर्षिणः सदा । इन्द्रियाणां जयो युक्तः कः शक्तानां करिष्यति ॥१५

अहंसनेतिविष्यति तिर्दुर्जयं चञ्चलं मनः । रागादयस्तथा त्यक्तुं शक्या जन्मान्तरैर्यदि॒ ॥१६

सोऽहमिच्छामि देवेश त्वत्प्रसादादर्निर्जितैः । रागादिभिरमर्त्यत्वं प्रापुः प्रक्षीणकल्मषाः ॥१७

आदित्य उच्चाच

यच्चेवं मुक्तिकामस्त्वं गणनाथं शृणुष्व तम् । क्रियाद्योगं समस्तानां क्लेशानां हानिकारकम्^३ ॥१८

मन्मना भव मद्भूक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु । मामेवैष्यसि युक्तैवमात्मानं स्मरयणः ॥१९

मद्भूवना मद्यजना मद्भूक्ता मत्परायणः । मम पूजाकराश्चैव मद्य यान्ति लयं नराः ॥२०

सर्वभूतेषु मां पश्यन्समवस्थितमीधरम्^४ । कर्त्तासि केन चैव त्वमेवं दोषान्प्रहास्यसि॑ ॥२१

जज्ञमाजड्गमे ज्ञाते मध्यासक्ते समन्ततः । रागलोभादिनाशेन भवित्री कृतकृत्यता ॥२२

भक्त्यातिप्रणयस्याति चञ्चलत्वान्मनो यदि । मध्यावेशं दध्दं भूयः कुरु मद्भूषिणीं तनुम् ॥२३

और निर्बीजयोग को सुनकर दिङ्गी ने प्रणाम करते हुए सूर्य से इस प्रकार कहना आरम्भ किया कि—हे देवाधिदेव ! आपने जिस योग का मुझे उपदेश दिया है, वह मुझे तथा अन्य किसी असंयमी मनुष्य को अभी तक प्राप्त नहीं हुआ था । १२-१४। इन्द्रियों को आकर्षित करने के नाते विषय-वासना मनुष्यों के लिए दुर्जय है, क्योंकि शक्तिशाली इन्द्रियों का पराजय कौन कर ही सकता है । १५। यह मैं हूँ एवं ‘यह मेरी बस्तु है’ इसी में मन सदैव (लिप्त होने के नाते) चञ्चल रहता है । इसलिए उस पर विजय प्राप्त करना महान् कठिन है । हे देवेश ! इसीलिए इस मन पर विजय एवं रागादि विषय का त्याग यदि जन्मान्तर में भी किसी प्रकार संभव हो सके, तो मैं वही चाहता हूँ । क्योंकि तुम्हारी ही कृपा द्वारा रागादि विषयासक्त प्राणी भी समस्त पापों के नष्ट होने पर अमरत्व प्राप्त किये हैं, अर्थात् वे लोग देवता हो गये हैं । १६-१७

आदित्य ने कहा—हे गणनाथ ! यदि तुम्हें इस भाँति मुक्ति की इच्छा है, जो क्रिया योग को, जो समस्त दुःखों का नाशक है, सुनो ! १८। और उसे सुनकर मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्तजनों, मेरे लिए यज्ञपूजन और नमस्कार करो । इस भाँति मुझमें अपने (मन) को लगाकर सत्परायण (निरंतर मुझमें लीन) रहने पर मुझे प्राप्त कर सकोगे । १९। क्योंकि मेरे लिए अपनी भावना याजन, भक्ति एवं सत्परायण होकर मेरी पूजा करने वाले ही मनुष्य मुझे प्राप्त करते हैं । २०। इस प्रकारं सभी प्राणियों में मुझे सब अवस्थित और ईश्वर भाव से देखते हुए ‘किसके द्वारा कौन करता है, इसका ज्ञान होने पर तुम्हारे भी (सांसारिक) दोष नष्ट हो जायेंगे । २१। और चर-अचर सभी मुझमें आसक्त हैं इसका ज्ञान भली भाँति हो जाने पर रागादि नाशपूर्वक सफलता भी प्राप्त हो जायेगी । २२। अति प्रणयी होने पर भी मन के अधिक चञ्चल होने के नाते, यदि निश्चल न हो सके, तो भक्तिपूर्वक मेरे में आवेश करके अपनी शरीर में

१. जगन्नाथ । २. वद । ३. हानिकारणम् । ४. सर्वत्र । ५. प्रशास्यसि ।

मुवर्णरजतादैस्त्वं रौलमृद्वाच्छेखनम् । पूजोपहारैर्विधैः सम्पूजय त्रिलोचनम् ॥२४
 तस्याश्रितं समाविश्य सर्वभावेन तर्ददा । पूजिता सैद ते भक्त्या ध्याता चैवोपकारिणी ॥२५
 गच्छस्तिकन्त्वपन्मुञ्जस्तामेवाप्ने च पृष्ठतः । उपर्यथस्तथा पार्श्वं चिन्तयस्तन्मयश्च वै ॥२६
 स्नानैस्तीर्थोदकैर्हृदैः । 'पुण्यं नृथानुलेपनैः । वास्तोभिर्भूषणैर्भृश्यैर्गतवादैर्मनोरमैः ॥२७
 यच्च यच्च तवेष्टं वै किञ्चिद्वृज्यादिकं तव । भक्तिनन्नो गणश्चेष्ठ प्रीणयस्व कृतिं मम ॥२८
 रागेणाकृष्ट्यते तात गन्धवाभिगुणं यदि ! मयि बुद्धिं समावेश्य गायेता धः कथा मम ॥२९
 कथया रमते चेतो यदि तद्वतो मम । श्रोतव्याः प्रीतियोगेन मत्स्वरूपोद्याः कथाः ॥३०
 एवं समर्पितमनाश्रेतसो येऽय आश्रयाः । हेयांस्तान्निखिलान्दिष्टे परित्यज्य मुखी भव ॥३१
 अक्षीणरागद्वेषोऽपि मत्प्रियः परमः परम् ! पदमाप्नोऽसि मा भैर्णीमव्यर्पितमना भव ॥३२
 मयि संन्यस्य सर्वं त्वमात्मानं घलवान्भव । मदर्थं कुरु कर्णणि मा च धर्मव्यतिक्रमम् ॥३३
 एवं व्यपोह्य इत्यारत्वं ब्रह्मण मोक्षसे भवात् । एतेनैवोपदेशेन व्याख्यातमखिलं तव ॥३४
 क्रियायोगं^३ सदास्थाय मदर्पितमनाभव ॥३५

मेरे रूप की कल्पना करो । २३। इस भाँति सुवर्ण, चाँदी, पत्थर या लकड़ी आदि किसी की मेरी मूर्ति बनवाकर विविध भाँति के उपहार आदि प्रदान करते हुए उस त्रिलोचन की पूजा करो । २४। उसके अन्तिर रहकर सदैव अपनी भावनाएँ उसी के निमित्त करके एकाग्रचित द्वारा भक्तिपूर्वक उसके ध्यान और पूजन करने से इष्ट-सिद्धि प्राप्त होगी । २५। इस प्रकार बैठते, शयन करते, भोजन करते, आगे-पीछे ऊपर-नीचे एवं पार्श्व भाग में उसी की तन्मयता से चिन्तन करते हुए तीर्थोदक से स्नान, मनोहर पूष्यों से तथा गंध का लेपन, सुन्दर वस्त्र, आभूषण, भूष्य भोक्ष्य एवं गाने-बजाने आदि से प्रसन्न करने के अनन्तर और भी तुम्हें जो-जो वस्तु प्रिय हों, भक्ति और नन्द्रता पूर्वक उसे समर्पित कर मेरी उस प्रतिमा को प्रसन्न करो । २६-२८। हे तात ! यदि उस समय कोई गन्धर्व के सम्मुख होकर राग से आकृष्ट हो जाय तो मुझमें चित लगाकर मेरी कथाओं का गान करो । २९। और उससे तुम्हारे मन में यदि आनन्द हो, तो प्रेमपूर्वक मेरी कथाओं को अवश्य सुनो और हे दिंडे ! इस प्रकार अपने चित को मुझमें लगाकर मन के समस्त दोषों को त्याग करके मुखी बनो । ३०-३१। पुनः राग और देव के नष्ट न होने पर भी मुझे अत्यन्त प्रिय होकर उत्तम पद प्राप्त करोगे । अतः भय न करो । चित को मुझमें लगाओ । ३२। और मेरे लिए सभी का त्याग करके तुम सवाधान हो जाओ एवं मेरे ही लिए कर्मों को करो, जिससे किसी प्रकार धर्म का व्यतिक्रम न होने पाये । ३३। क्योंकि इससे तुम ब्रह्महत्या से मुक्त होकर संसार से भी मुक्त हो जाओगे । बस, इतने ही उपदेश द्वारा मैंने तुम्हारे लिए सभी कुछ कह दिया है । ३४। अतः क्रिया रूपी योगारम्भ में अब निमग्न रहकर तुम अपने मन को मुझमें अर्पित कर दो । ३५

१. पुण्यः । २. प्रतिकृतिमित्यर्थः ३. मव्यर्पितमना भूत्वा सर्वान्कामानवाप्स्यसि ।
४. अस्ति ।

दिण्डरुवाच

मद्दिताय जगन्नाथ क्रियायोगामृतं मम । विस्तरेण समाख्याहि प्रसन्नस्त्वं हि दुःखहा ॥३६
त्वामृते न हि तद्वक्तुं समर्थोऽन्योँ जगद्गुरो । गुहामेतद्वित्रं च तदाचक्ष्व प्रसीद मे ॥३७

आदित्य उवाच

ज्ञात्यास्यते तदलिङ्गं निर्विकल्पं गणाधिप । इत्युक्त्वान्तर्दद्य देवः सर्वलोकप्रदीपकः ॥३८
स च दिण्डर्महातेजा जगामाशु न भोगतिन् ॥३९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्राणां संहिताणां ब्राह्मे पर्वणि
दिण्डचादित्यसंवादवर्णनं नाम द्विषष्टितसोऽध्यायः । ६२।

अथ त्रिष्ठिट्टमोऽध्यायः

आदित्यमहिमावर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

प्रणन्य शिरसा देवं सुरज्येष्ठं चतुर्मुखम् । उवाच स महातेजा दिण्डलोकेशमादरात् ॥१
देवदेवेन भवतादिष्टोऽस्मि च महात्मना । क्रियायोगामृतं सर्वमाल्यास्यति भवान्किल ॥२

दिंडि ने कहा—हे जगन्नाथ ! मेरे हित के लिए आप इस क्रियायोग रूपी अमृत का पान विस्तार पूर्वक यदि (मेरे कानों का) करायेंगे तो बड़ी कृपा होगी क्योंकि सदैव आप प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं एवं दुःख नाशक भी कहे गये हैं । ३६ हे जगद्गुरो ! आप के अतिरिक्त अन्य कोई भी उसे बताने में समर्थ नहीं है और यह अत्यन्त गुप्त तथा पवित्र विषय है, अतः मुझ पर प्रसन्न होकर आप कृपया फिर वही कहें । ३७

आदित्य बोले—हे गणाधिप ! मैं उस निर्विकल्प योग की समस्त बातें तुमसे अवश्य कहूँगा, इस भाँति कहकर सभी लोकों के प्रदीप रूपी सूर्य अन्तर्धान हो गये । और वह महातेजस्वी दिंडि भी आकाशगामी हो गया । ३८-३९

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व में दिण्डयादित्य संवाद वर्णन
नामक बासठाँ अध्याय समाप्त । ६२।

अध्याय ६३

सूर्य महिमा का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—देव श्रेष्ठ एवं चतुर्मुख ब्रह्मा को शिर से प्रणाम कर महातेजस्वी दिंडी ने सादर उनसे कहा—देवाधिदेव एवं महात्मा सूर्य ने आदेश दिया है कि क्रिया योग की व्याख्या आप करेंगे

१. अस्ति । २. क्रियायोगमशृणवमाल्यातं भगवन्किल ।

स त्वां पृच्छाम्यहं ब्रह्मन्कियायोगं निरन्तरम् । जन्तोषयितुमीशेहं यथावद्गुर्महसि ॥३
ब्रह्मोवाच

एहोहि मत्सकाशं च नत्समीदे गणाधिप । ब्रह्महत्या प्रणष्टा ते दर्शनादेव तस्य तु ॥४
अनुग्राहोऽसि भूतेश भास्करस्यामितौजसः । आराधनाय भूतेश यदीरो प्रवणं मनः ॥५
यदि देवपतिं भानुभाराधयितुमिच्छसि । भगवन्नाम्नायन्तं भव दीक्षागुणान्वितः ॥६
न हृदीक्षान्वितैर्भानुर्गतिं स्तोतुं च तत्त्वतः । द्रष्टुं वा शक्यते भूडैः प्रवेष्टुं कुत एव हि ॥७
जन्मभिर्वहुभिः पूता नरस्तद्गतचेतसः । भवन्ति भगवत् तौरास्तदा दीक्षागुणान्विताः ॥८
अनेकजन्मसंसारचिते पापसमुच्चये । नाक्षीणे जायते पुंसां मार्तण्डाभिमूर्खो मतिः ॥९
प्रद्वेषं याति मार्तण्डे द्विजान्वेदांश्च निन्दति । यो नरस्तं विजानीयात्पापबीजसमुद्भवम् ॥१०
पाखण्डेषु रतिः पुंसां हेतुवादामुकूलता । जायते विष्णुमायाम्भःपतितानां दुरात्मनाम् ॥११
यदा पापक्षयः पुंसां तदा वेदद्विजादिषु । रवौ च देवदेवेशे अद्वा भवति निश्चला ॥१२
यदा स्वल्पावशेषस्तु नराणां पापसञ्चयः । तदा दीक्षागुणान्सर्वे भजन्ते नात्र संशयः ॥१३
भ्रमतामत्र संसारे नराणां पांपदुर्गमे । हस्तावलम्बदोष्येको भक्तिप्रीतो दिवाकरः ॥१४

।१-२। हे ब्रह्मन् ! अतः मैं चाहता हूँ कि क्रियायोग की व्याख्या आप यथोचित रीति से प्रदर्शित करें । जिससे मुझे सन्तोष हो जाये । ३

ब्रह्मा बोले—हे गणाधिप ! आओ ! मेरे समीप बैठो क्योंकि उनके दर्शन मात्र से ही तुम्हारी ब्रह्महत्या नष्ट हो गई है । ४। हे भूतेश ! यदि अमित तेजवाले उन सूर्य की आराधना में तुम्हारा मन लग गया है तो तुम अब अनुग्रह के पात्र हो गये हो । ५। अतः यदि देवाधिदेव एवं आदि अन्त हीन भगवान् सूर्य की आराधना करने की इच्छा है, तो पहले तुम्हें दीक्षा लेना आवश्यक है । ६। क्योंकि दीक्षा हीन मूर्खों के लिए वास्तव में सूर्य का ज्ञान, उनकी स्तुति एवं उनका दर्शन सर्वथा असंभव होता है । और उनमें प्रविष्ट होना तो दूर रहा । ७। और अनेक जन्मों में निरन्तर ध्यान करने से पवित्र होने पर मनुष्य, तब कहीं सूर्य की दीक्षा प्राप्त करता है । ८। क्योंकि संसार में अनेक जन्मों द्वारा संचित हुए पापों का नाश, जब तक नहीं होता है, तब तक सूर्य की भक्ति करने वाली बुद्धि मनुष्यों को नहीं प्राप्त होती है । ९। इस भाँति उन्हें पाप-बीज असुर अंश से उत्पन्न होना मानते हैं, वे सर्वथा सूर्य से द्वेष एवं वेद की निन्दा करते हैं । १०। तथा विष्णु की माया रूपी सागर में डूबने वाले दुरात्मा पुरुषों का प्रेम, पाखंडों में अधिक होता है, क्योंकि वह उनके (वाद-विवाद के) अधिक अनुकूल रहता है । ११। जिस समय पाप का नाश हो जाता है, उसी समय, वेद, ब्रह्मण आदि और देवाधिदेव सूर्य में उसकी अटल थद्वा उत्पन्न हो जाती है । १२। इसलिए पापों के नष्ट हो जाने पर ही मनुष्यों की प्रवृत्ति दीक्षा लेने में होती है । १३। क्योंकि इस संसार में जितने पापों के दुर्ग हैं, उनमें विवश होकर घूमते हुए मनुष्यों के हाथ पकड़कर आश्रय देने वाले एकमात्र सूर्य ही हैं जो

सर्वभागवतो भूत्वा सर्वपापहरं रविन् । आराधयेह तं भक्त्या प्रीतिमेल्यति भास्करः ॥१५
दिण्डरुवाच

किं लक्षणा नरा दीक्षामर्हन्ति पद्मसम्भवः । यज्ञे दीक्षान्वितैः कार्यं तन्मे कथय पद्मज ॥१६
ब्रह्मोवाच

कर्मणा मनसा वाचा प्राणिनां यो न हिंसकः । भावभक्तश्च मार्तण्डे तस्य दीक्षा गुणान्विता ॥१७
ब्राह्मणांश्चैव देवांश्च नित्यमेव नमस्यति । न च द्वोग्धा^१ परं वादे स मार्तण्डं सःर्वदत्ति ॥१८
सर्वान्देवात् रविं वेति सर्वलोकांश्च भास्करम् ; तेभ्यश्च नन्यमात्मानं स नरः सौरतां व्रजेत् ॥१९
देवं मनुष्यमन्यं वा पशुपक्षिलिपीलिकान् । तरुषाषाणकाष्ठानि भूम्यंभोगमन्तं दिशः ॥२०
आत्मानं चापि देवेशः दद्यति रिक्तं दिवाकरात् । यो न जानाति यतिषु स वै दीक्षागुणान्भजेत् ॥२१
भावं न कुरुते यस्तु सर्वभूतेषु शापकम् । कर्मणा मनसा वाचा स तु दीक्षां सर्वहति ॥२२
मुतप्तेनेह तपसा यथैर्वा ब्रुदक्षिणैः । तां गतिं न नरा यान्ति यां गताः सूर्यमाश्रिताः ॥२३
येन सर्वात्मना भानौ भक्त्या भावो निवेशितः । गणेश्वर कृतार्थत्वाच्छ्लाद्यः सौरः स भानवः ॥२४
अपि नः स कुले धन्यो जायते कुलपावनः । भगवान्भक्तिभावेन येन भानुरुपत्तिः ॥२५

भक्ति द्वारा प्रसन्न होते हैं । १४ अतः सभी भाँति से स्वयं भागवत होकर समस्त पापों का नाशक सूर्य की उपासना भक्तिपूर्वक सम्पन्न करो, वे अवश्य प्रसन्न होंगे । १५

दिण्डि ने कहा—हे पद्मसंभव ! किस भाँति के पुरुष दीक्षा प्राप्त करके योग्य होते हैं और दीक्षित होने पर उनका क्या कर्तव्य होता है, आप मुझसे इसे कहने की ड्रापा करें : १६

ब्रह्मा बोले—जो मन, वाणी एवं कर्मो द्वारा हिंसा नहीं करता और सूर्य में भाव-भक्ति रखता है, उसी पुरुष की दीक्षा उत्तम बतायी गई है । १७। तथा ब्राह्मणों एवं देवताओं को नित्य प्रणाम तथा उनके वाद-विवाद में द्वोह नहीं करता है, वही सूर्य की उपासना के योग्य होता है । १८। एवं जो सूर्य को सर्व देवमय एवं समस्त लोकमय मानता है, तथा उसके लिए अन्य और कोई है भी नहीं वही सौर (सूर्य का) भक्त होता है । १९। इसी प्रकार जो देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, चींटियाँ, वृक्ष, पत्थर, काष्ठ, पृथिवी, जल, आकाश, दिशाएँ और अपने को भी देवेश सूर्य से पृथक् नहीं जानता है, वही यतियों में उत्तमदीक्षित होता है । २०-२१। क्योंकि समस्त प्राणियों में जो मन, वाणी एवं बुद्धिपूर्वक पाप की भावना नहीं रखता, वही दीक्षा के योग्य होता है । २२। इसीलिए भली-भाँति तपते हुए तप और अत्यन्त दक्षिणा वाले यज्ञों के द्वारा मनुष्यों को वह गति नहीं प्राप्त है, जो सूर्य के भक्तों को प्राप्त होती है । २३। हे गणेश्वर ! इस प्रकार जिसने सर्वात्म भाव से अपनी भावना को सूर्य में निहित कर दिया है, कृतार्थ होने के नाते वही मनुष्य सूर्य का (प्रशस्त) शेष्ठ भक्त बताया गया है । २४। इसीलिए हमारे कुल में (उत्पन्न होकर) जिसने भक्तिपूर्वक भगवान् सूर्य की उपासना की है, वही धन्य है एवं कुल को पवित्र करने वाला है । २५। इसी प्रकार जो

यः कारयति देवार्चा हृदयालम्बनं रवे । त नरो भानुसालोक्यसाम्रोति ध्रुतकलमषः ॥२६
 पस्तु देवालयं भानोर्भक्त्या कारयति ध्रुवम् । स सप्त्र पुर्णांलोकं भानोर्नैर्यति मानवः ॥२७
 यावन्त्याव्दानि देवार्चा रवेस्तिष्ठति मन्दिरे । तावद्वर्षसहस्राणि सूर्यलोके 'महीयते ॥२८
 देवार्चा लक्षणोपेता तदग्रहे तन्ततो विधिः । निष्कामं च मनो यस्य स यात्यक्षरसाम्यताम् ॥२९
 पृष्ठाणि च सुगन्धीणि मनोज्ञानि च यः पुमान् । प्रयच्छति सहस्रांशोः सदा प्रयतमानसः ॥३०
 धूपांश्च तांस्तान्विविधानगन्धादच्च चानुलेपनम् । नरः सोऽनुदिनं यज्ञं करोत्याराधनं रवे ॥३१
 यज्ञेशो भगवान्पूषा सदा क्रतुभिरिज्यते । वहपकरणा यज्ञा नानासःभारविस्तराः ॥३२
 न ते दिष्टद्वाप्यन्ते मनुष्यैरत्प्रसञ्चयैः । भक्त्या तु पुरुषैः पूजा कृता द्वर्वाङ्गुरैरपि ॥

भानोर्द दाति हि फलं सर्वयज्ञैः सुदुर्लभम् ॥३३

यानि पृष्ठाणि हृद्यानि धूपगन्धानुलेपनम् । दोयतं भूषणं यज्ञं प्रीतये चैव वाससी ॥३४
 यानि चाम्यवहर्वर्णाणि भक्ष्याणि च फलानि वै । प्रयच्छ तानि मर्तार्णडे भवेथाश्चैव तन्मनाः ॥३५
 आद्यं तं भूवनाधारं यथाशक्त्या प्रसादेय । आराध्य याति तं देवं तस्मिन्नेव नरो लयम् ॥३६
 पृष्ठैस्तीर्थोदकर्गान्धीर्मधुना रर्पिषा तथा । क्षीरेण स्नापयेद्वानुं ग्रहेण गोपतिं खगम् ॥३७

देवाराधनपूर्वक सूर्य में अपना चित्त लगाता है वह पाप-मुक्त होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है । २६।
 तथा जो मनुष्य सूर्य के (सौन्दर्यपूर्ण) मन्दिर की रचना करवाता है, उसकी सात पीढ़ी के वंशज सूर्य लोक को प्राप्त करते हैं । २७। इसी भाँति गन्दिर में सूर्य की पूजा, जितने वर्षों तक होती है, उनने सहस्र गुणे वर्षों तक सूर्यलोक में वह प्राणी सम्मानपूर्वक निवास करता है । २८। इसलिए यदि विधिपूर्वक देव की अर्चना घर में सदैव होती रहे एवं मन निष्काम हो, तो उसे अविनाशी (सूर्य) का साहृष्य गोक्ष प्राप्त होता है । २९। जो पुरुष सुगन्धित एवं मनोहर पृष्ठों को सूर्य के लिए सादर समर्पित करता है एवं धूप और भाँति-भाँति के सुगन्धित चन्दन प्रदान करता है, वह इस भाँति प्रतिदिन सूर्य की आराधना रूप यज्ञ ही करता है । ३०-३१। इस प्रकार यज्ञेश भगवान् पूर्ण (सूर्य) की सदैव इस प्रकार के यज्ञों द्वारा, जिसमें नाना भाँति के साधन एवं जिसकी महान् आयोजना रहती है, लोग उपासना करते हैं। हे दिष्टिन! यद्यपि निर्धन तथा कुरुपुरुष उस भाँति के यज्ञ नहीं कर सकते हैं, पर द्वर्वाकुर मात्र से ही जो (निर्धन) उनकी भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं उन्हें सूर्य समस्त यज्ञों द्वारा प्राप्त होने वाले वे समस्त दुर्लभ फल प्रदान करते हैं । ३२-३३। अतः मनोहर पृष्ठों, धूप, गंध, चन्दन, प्रिय आभूषण तथा युगल वस्त्र, भोजन के योग्य भाँति-भाँति के भक्ष्य अन्न एवं फल को सूर्य की प्रसन्नता के लिए तत्त्वीन होकर उन्हें समर्पित करे । ३४-३५। क्योंकि वे ही भुवन के आदि आधार हैं। इसलिए शक्त्यनुसार उन्हें प्रसन्न करो। क्योंकि उन्हीं (सूर्य) देव की आराधना करके (मनुष्य) उन्हीं में लय को प्राप्त होता है । ३६। हे गण थेष्ठ ! अतः जो पृष्ठों, तीर्थजलों, गंधों, मधु, धी एवं दूध द्वारा ग्रहेश, (किरण) पति एवं आकाशगामी सूर्य का स्नान

१. स मोदते ।

दधिक्षीरहदान्पुण्यांस्ततो लोकान्मधुच्युतः । प्रयास्यति गग्नेष्ठ निर्वृत्तिं च विलक्षणाम् ॥३८
 स्तोत्रैर्गीतेस्तथा वाद्यवृह्णिणानां च तर्पणैः । मनसत्रैव योगेन आराध्य दिवाकरम् ॥३९
 आराध्यं तं जगन्नाथं प्रणा सर्गः प्रवर्तितः । विष्णुश्च पालयेल्लोकांस्तमाराध्य दिवाकरम् ॥४०
 रुद्रश्च प्राप्तवान्देवीं भवानीं तत्प्रसादतः । दीप्यन्ते क्रष्णयश्चापि तमाराध्य दिवाकरम् ॥४१
 स त्वमेभिः प्रकारैस्तमुपवासैश्च भास्करम् । तोषयावृं हि तुष्टोऽसौ भानुद्वद्प्रशान्तिदः ॥४२
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्दुसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे ब्रह्मदिङ्दिसंवादे
 आदित्यक्रियायोगवर्णनं नाम त्रिपष्टितमोऽध्यायः । ६३।

अथ चतुःषष्ठितमोऽध्यायः

फलसप्तमीवर्णनम्

दिपिंडरुवाच

उपवासैः सुरश्रेष्ठ कथं तुष्यति भास्करः । शरिहारांस्तथाचक्षव ये त्याज्याश्रोपवासिभिः ॥१
 यद्यत्कार्यं यथा चैव भास्कराराधने नरैः । तत्तर्वं विस्तराद्ब्रह्मन्यथावद्वक्तुमहसि ॥२

ब्रह्मोवाच

स्मृतः सम्पूजितो धूपपुष्पान्नैर्भानुरादरात् । भोगिनामुपकाराय किं पुनश्रोपवासिनाम् ॥३

आदि कराता है, वह मधु से भरा और दही एवं दूध के सरोवर से युक्त पुण्यलोक और विलक्षण (संसार से) निर्वृत्ति प्राप्त करता है । ३७-३८। इसलिए उनके स्तोत्र तथा गान और वाचों एवं ब्राह्मण को तृप्त करने तथा मनोयोग द्वारा सूर्य की आराधना अवश्य करो । ३९। क्योंकि जगन्नाथ उन्हीं सूर्य की उपासना करके मैंने सृष्टि रचना की है तथा उनकी अराधना करके ही विष्णु लोकों का पालन करते हैं । ४०। और उन्हीं की कृपा द्वारा रुद्र ने देवी भवानी को प्राप्त किया है तथा क्रपिगण प्रकाशित होते हैं । ४१। तुम इसी प्रकार उपवासों के द्वारा सूर्य वर्ष तक आराधना करके उन्हें प्रसन्न करो क्योंकि प्रसन्न होने पर सूर्य द्वन्द्व रूपी दुःख की शांति करते हैं । ४२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्पमें ब्रह्मदिङ्दि संवाद में आदित्य क्रियायोग वर्णन नामक तिरसठाँ अध्याय समाप्त । ६३।

अध्याय ६४

फलसप्तमी का वर्णन

दिङ्दि ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! उपवासों के द्वारा सूर्य कैसे प्रसन्न होते हैं तथा उपवास करने वालों के लिए कौन वस्तु त्याज्य है (स्वीकृत का त्याग) और कौन परिहार्य । १। ब्रह्मन् ! इसी प्रकार मनुष्यों को सूर्य की आराधना में क्या-क्या करना चाहिए । इन सभी बातों को यथोचित ढंग से विस्तारपूर्वक कहने की कृपा करें । २

ब्रह्मा बोले—धूप, पुष्प एवं अन्न आदि द्वारा पूजित होने पर सूर्य भौगी पुरुषों को भी अत्यन्त सुख

उपावृत्तस्य पापेभ्यो यस्तु बासो गुणैः सह । उपवासः स विज्ञेयः सर्वभोगविवर्जितः ॥४
एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रं नक्तमेव च । उपवासी रविं यस्तुभक्त्या ध्यायति भानवः ॥५
तप्नामजापी तत्कर्मरतस्तद्गतमानसः । निष्कामः पुरुषो दिष्टे स ब्रह्म परमामृत्यात् ॥६
यं च काममभिध्याय भास्करार्पितमानसः । उपोषति तमाश्नेति प्रसन्ने खगमेऽखिलम् ॥७

दिग्डिश्वाच

वाह्यणैः क्षत्रियैर्वैश्चैः शूद्रैः स्त्रीभिश्च कञ्जज । संसारगते पङ्क्षस्ये मुगतिः प्राप्यते कथम् ॥८

ब्रह्मोवाच

अनाराध्य जगन्नाथं गोपतिं ध्वान्तनाशनम् । निर्वलीकेन चित्तेन कः प्रयास्यति सद्गतिम् ॥९
विषयप्राहि वै यस्य न चित्तं भास्करार्पितम् । स कथं पापपङ्क्षात्तो नरो यास्यति सद्गतिम् ॥१०
यदि संसारदुःखातः मुगतिं गन्तुमिच्छसि । तदाराध्य सर्वेशं भास्करं ज्योतिषां पतिम् ॥११
पुण्यैः सुगन्धैर्हृद्यैश्च धूपैः सागरचन्दनैः । वासोभिर्भूषणैर्भृपैरुपवासपरायणः ॥१२
यदि संसारनिर्वदादभिवाच्छसि सद्गतिम् । तदाराध्य मार्तण्डं भक्तिप्रदण्चेत्सा ॥१३
पुण्याणि यदि ते न स्युः शस्तपादपल्लवैः । द्रव्याङ्कुरैरूपे दिष्टे तदभावेऽर्चयार्थम् ॥१४

प्रदान करते हैं इसलिए उपवास द्वारा उनकी आराधना करने वालों को कहना ही क्या है ? । ३। पापों की निवृत्तिपूर्वक समस्त उपभोग पदार्थों के त्याग करते हुए गुणों के साथ रहने को उपवास कहते हैं । ४। हे दिष्टे ! इस प्रकार एक, दो या तीन रात तक अथवा नक्तव्रत में उपवास करने वाला मनुष्य भक्तिपूर्वक यदि सूर्य का ध्यान और उनके लिए कर्मों में अनुरक्त एवं समर्पित होकर निष्काम कर्म करता रहे, तो वह परमब्रह्म (मोक्ष) प्राप्त करता है । ५-६। एवं जो किसी कामनावश सूर्य में मन लगा कर उपवास करता है, तो उसे भी उनके प्रसन्न होने पर अखिल वस्तुएँ प्राप्त होती हैं । ७

दिग्डि ने कहा—हे कञ्जज (कमलज) ! वाह्यणों, क्षत्रियों, वैश्यों, शूद्रों एवं स्त्रियों को संसार रूपी गड़े के कीचड़ में फँसने पर उत्तम गति कैसे प्राप्त होती है ? ८

ब्रह्म बोले—उस जगन्नाथ की, जो गो (किरणों) के पति एवं अंधकार के नाशक हैं, शुद्धचित्त से विना आराधना किये किसकी उत्तम गति हो सकती है । ९। क्योंकि जिसका मन विषयों में अनुरक्त रहने के नाते सूर्य में अर्पित नहीं है तो केवल पाप रूपी कीचड़ में सदैव फँसे हुए उस पुरुष की उत्तम गति कैसे हो सकती है । १०। अतः संसार के दुःखों से दुःखी होकर यदि उत्तम गति प्राप्त करना चाहते हों, तो भास्कर की, जो सर्वेश एवं ग्रहों के पति हैं, आराधना करो । ११। सुगंधित और मनोहर पुण्यों, धूप, गूगुल, चन्दन, वस्त्रों, भूषणों और भक्ष्य पदार्थों को उन्हें समर्पित करते हुए उपवास भी करो । १२। इस प्रकार संसार (दुःखों) से विरक्त होकर उत्तम गति प्राप्त करना चाहते हों, तो भक्ति में चित्त लीनकर उनकी आराधना अवश्य करो । १३। यदि वैसे पुण्य नहीं प्राप्त हो रहे हैं, तो प्रशंसा वृक्षों के मनोहर पल्लवों एवं उसके भी अप्राप्त होने पर केवल द्रव्याङ्कुरों के द्वारा ही सूर्य की अर्चना करो । १४। क्योंकि

पुष्पपत्राम्बुधीर्घैर्यथाविभवमात्मनः । पूजितस्तुष्टिस्तुलां भक्त्या यात्येकचेतसा ॥१५
 यः सदयतने भानोः कुरुते मार्जनकियाम् ! स यात्युत्तमके स्थाने सर्वपापं व्यपोहति ॥१६
 यावत्यः पांसुकणिका मार्ज्यन्ते भास्करालये । दिनानि दिवि तावन्ति तिष्ठत्यर्कसमो नरः ॥१७
 अहन्यहनि यत्पापं कुरुते गणनायक । गोचर्मभात्रं सम्मार्ज्य हन्ति तद्वास्करालये ॥१८
 यश्चानुलेपनं कुर्याद्वानतेरायतने नरः ! सोऽपि लोकं समासाद्य हंसेन सह मोदते ॥१९
 मृदा यातुविकारैर्वा वर्णकर्णेभगेन वा । उपलेपनकृद्याति मत्पुरं यानमःस्थितः ॥२०
 उदकाम्युक्षणं भानोर्यः करोति सदा गृहे । सोऽपि गच्छति यत्रास्ते भगवान्यादसां पर्तिः ॥२१
 पुष्पप्रकरमत्यर्थं सुगन्धं भास्करालये । अनुलिप्ते नरो दत्त्वा न दुर्गतिमवाप्न्यात् ॥२२
 विनानमतिशोभाद्यं सर्वर्तुसुखमूषितम् । समाप्नोति नरो दत्त्वा दीपकं भास्करालये ॥२३
 यस्तु संवत्सरं पूर्णं तिलपात्रप्रदो नरः । ध्वजं च भास्करे दद्यात्सममन्त्रं फलं लभेत् ॥२४
 विधूतो हन्ति वातेन दातुरज्ञानतः कृतम् । पापं कर्तुर्गृहे भानोर्दिवा रात्रौ नराधिप ॥२५
 गीतदायादिभिर्भानुं य उपास्ते तमोपहम् । गन्धवैर्नृत्यगीतैः स विमानस्थो निषेव्यते ॥२६
 जातिस्मरत्वं मेधां च तथैदोपरमे त्सृतिम् ! प्राप्नोति गणाशार्दूलं कृत्वा पुस्तकवाचनम् ॥२७

पुष्प, पत्र, जल तथा धूपादिकों द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार जो प्राप्त किये गये हैं, भक्तिपूर्वक एकचित्त होकर उनकी पूजा करने पर अनुल संतोष प्राप्त होता है । १५। इसी भाँति जो सूर्य के मन्दिर में सदैव शाद्व द्वारा मार्जन (शुद्धि करता) रहता है, वह समस्त पापों का नाश कर उत्तम स्थान प्राप्त करता है । १६। और जो सूर्य के मन्दिर में (शाद्व द्वारा) सफाई करते समय जितने धूल के कणों की सफाई करता है, उसे उतने दिन का भौतिक स्वर्ग में निवास प्राप्त होता है । १७। हे गणनायक ! इस प्रकार प्रतिदिन (मनुष्य) जितने पाप करते हैं, सूर्य के मन्दिर में केवल गो-चमड़े के परित्याग भाग की सफाई करने पर ही वे सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । १८। जो सूर्य के मन्दिर में लीपना, आदि (सफाई की क्रिया) करते हैं, वे भी सूर्य के साथ उनके लोक में आमोद-प्रमोद करते हैं । १९। एवं मिटटी, धातुविकार या गोमय द्वारा जो मन्दिर को सौन्दर्यपूर्ण करता है, वह विमान पर बैठकर मेरे लोक की प्राप्ति करता है । २०। इसी प्रकार जो सूर्य के मन्दिर को जल से साफ-सुथरा बनाता है, वह भी भगवान् वरण के लोक को प्राप्त करता है । २१। एवं सूर्य के लीपे हुए मन्दिर में जो पुष्पों और सुगन्धित वस्तुएँ प्रदान कर (उसे सुगन्धित) करता है, उस मनुष्य की कभी दुर्गति नहीं होती है । २२। तथा सूर्य के मन्दिर में दीपक प्रदान करने पर मनुष्य को, उस भाँति का विमान प्राप्त होता है जो सौन्दर्यपूर्ण एवं सभी ऋतुओं में सुख प्रदायक वस्तुओं से भूषित रहता है । २३। जो पूर्ण वर्ष तिल समेत पात्र एवं ध्वजा प्रदान करता है, उसे भी समान फल प्राप्त होते हैं । २४। और वायु द्वारा उस ध्वजा के कम्पित होने पर उसके सभी अज्ञात पाप भी नष्ट हो जाते हैं । हे नराधिप ! इस भाँति जो दिन-रात गाने-बजाने के द्वारा, अधेरे को नष्ट करने वाले सूर्य की उपासना करता है, उसे विमान पर बैठाकर गन्धर्व लोग, नाच-गायत द्वारा सदैव उसकी सेवा करते हैं । २५-२६। हे गण शार्दूल ! उनके सामने पाठ करने पर पिछले जन्म के जाति का स्मरण, मरने पर भी सभी बातों का स्मरण होता है । २७। इस

इवं सगेष्वरो भक्त्या येन भानुरूपास्ति: । स प्राप्नोति गतिं श्लाघ्यां यां यामिच्छति चेतसा ॥२८
 देवत्वं भनुजे: कैश्चिद्गन्धर्वत्वं तथा परैः । विद्याधरत्वमपरैः संरथ्येह दिवाकरम् ॥२९
 शक्रः^१ क्रतुशतेनेशमाराध्य ज्योतिषां पतिम् । देवेन्द्रत्वं गतस्तस्माश्नान्यः^२ पूज्यतमः स्वचित् ॥३०
 ब्रह्मचरिण्हस्थानां वनस्थानां गणाधिष । नान्यः पूज्यस्तथा स्त्रीणामुते देवं दिवाकरम् ॥३१
 मध्ये परिवाजकानां सहन्नांशुं महत्मनाम् । मोक्षद्वारं विश्वान्तीह तं रविं विजितात्मनाम् ॥३२
 एवं सर्वाश्रमाणां हि सहन्नांशुः परायणम् । सर्वेषां चैव वर्णानां भ्रह्मो वै गतिः परा ॥३३
 भृणुष्व गदतः काम्यानुपवासांस्तथापरम् । शृणु रिण्डे महापुण्यफलकां सप्तमीं पराम् ॥३४
 आदित्याराधनायैनां सर्वपापहरं शिवाम् । यामुपोष्य नरो भक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः ॥३५
 तथा लोकमवाप्नोति सूर्यस्यामिततेजसः । अथ भाद्रपदे मात्सि शुदलपक्षे समाप्तते ॥३६
 सोपोष्या प्रथमं तात विधानं शृणु तत्र वै । अयाचितं चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यामेकभोजनम् ॥३७
 उपवासपरः षष्ठ्यां जितक्रोधो जितेन्द्रियः । अर्चयित्वा दिनकरं^३ गन्धधूरनिवेदनैः ॥३८
 पुरतः स्त्यण्डिले रात्रौ स्वप्यादेवस्य पुत्रकः । प्रध्यादन्मनसा देवं सर्वभूतार्तिनाशनम् ॥३९
 सर्वदोषप्रशमनं सर्वपातकनशनम् । दिबुद्धस्त्वय सप्तम्यां कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ॥४०
 पूजयित्वा दिनकरं पुष्पधूपविलेपनैः । नैवेद्यं तात देवस्य फलानि कथयन्ति^४ हि ॥४१

भाँति जो आकाशचारी सूर्य की उपासना, भक्तिपूर्वक करता है, उसे मनइच्छत उत्तम गति प्राप्त होती है । २८। मनुष्यों में किसी ने देवत्व, किसी ने गन्धर्व, तथा किसी ने विद्याधरत्व इन्हीं की उपासना द्वारा प्राप्त की है । २९। इसी भाँति इन्द्र सौ यज्ञ द्वारा इन्हीं प्रहेश (सूर्य) की उपासना करके देवेन्द्र हुए हैं । अतः (इनके समान) कोई अन्य देव कहीं भी अत्यन्त प्रूजनीय नहीं है । ३०। हे गणाधिष ! इसलिए ब्रह्मचारी, गृहस्थ, संन्यासी, तथा स्त्रियों के पूज्य, सूर्य के अतिरिक्त कोई अन्य देव नहीं है । ३१। संन्यासियों के लिए सहस्रों किरण वाले सूर्य ही मोक्ष के द्वार हैं, क्योंकि जितेन्द्रिय होने पर वे संन्यासी उन्हीं को प्राप्त करते हैं । ३२। इस भाँति समस्त आश्रमों के लिए सूर्य ही प्रधान एवं सभी वर्णों के लिए उत्तम गति रूप है । ३३। हे दिङ्डे ! अब काम्य और निष्काम कर्म में उपवास समेत महान् पुण्य प्रदान करने वाली उस उत्तम सप्तमी को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ३४। जो लोग सूर्य की आराधना के लिए इस सप्तमी में, जो समस्त पापों का नाशक, तथा प्रणयस्वरूप हैं, भक्तिपूर्वक उपावस करते हैं, उनके सभी पातक नष्ट हो जाते हैं । ३५। और उसे उस अमेय तेज वाले सूर्य के लोक की भी प्राप्ति होती है । हे तात ! भाद्रों मास के शुक्ल सप्तमी में उपवास के विधान को कह रहा हूँ सुनो ! चतुर्थ्यां में, जो याचना द्वारा न प्राप्त हो, ऐसे अन्न का भोजन करके पंचमी में एक बार भोजन एवं षष्ठी में उपवास करते हुए इन्द्रिय संयम समेत क्रोधहीन होकर गंध धूपादिद्वारा सूर्य की अर्चना करे । ३६-३८। रात में सूर्य के सामने उनका मानसिक ध्यान, जो सभी प्राणियों के दुःख नाशक, समस्त दोषों को शांत करने तथा सम्पूर्ण पापों के नाशक हैं । तन्मयता से करते हुए भ्रूमि पर शयन करे और सप्तमी को प्रातःकाल उठकर पूष्य, धूप और चन्दन, नैवेद्य द्वारा सूर्य की पूजा करे । ३९-४१।

१. शक्रः क्रतुशतेनेह समाराध्य दिवस्पतिम् । २. यस्मिन् । ३. पुष्पधूपविलेपनैः । ४. कथयाम्यहम् ।

सर्जुनालिकेराजि तथा चाक्रफलानि तु । मातुलिङ्गफलान्येव कथितानि मनीषिभिः ॥४२
 एतेभ्र भोजयेद्ब्रानात्मना च प्रभक्षयेत् । तथेषां चाप्यभावेन शृणु चाच्यानि सुव्रत ॥४३
 शालिगंगोधूमपिष्टानि कारयेद्गणनायक । गुडगर्भकृतानीह घृतपाकेन पाचयेत् ॥४४
 चातुर्याविकमिश्चाणि अऽदिव्याय निवेदयेत् । अग्निकार्यमयो हृत्वा ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ॥४५
 इत्थं द्वादश वै मासान्त्कार्यं प्रतमनुत्तमम् । मासि मासि फलाहारः फलदायी फलार्द्दनः ॥४६
 वर्षान्ते त्वय कुर्वोत शक्त्या ब्राह्मणभोजनम् । स्नानप्राशनयोश्चापि विधानं शृणु सुद्रतः ॥४७
 गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दद्धि सर्पिः कुशोदकम् । तिलसर्पपयोः कल्कं खेता शृच्छापि सुद्रतः ॥४८
 दूर्वाकल्कं घृतं चापि गोमूत्रं गक्षालितं जलम् । जातिगुल्मविनिर्दासः प्रशस्तः स्नानकर्मणि ॥४९
 प्राशने चाप्यथैतानि सर्वपापहराणि वै । आदौ कृत्वा भाद्रपदं यथा संख्यं विद्वुर्बुधाः ॥५०
 इत्थं वर्षान्तसासाद्य भोजयित्वा द्विजोत्तमान् । दिव्यान्भोगाम्भ्रहोदेव ततस्तेभ्यो निवेदयेत् ॥५१
 फलानि तातः^१ हैमानि यथा शक्त्या गणाधिप । सवत्सामथ वा धेनुं शूमिं सस्यान्वितामथ ॥५२
 प्रासादमथ वा भौमं सर्वधन्यसम्बन्धितम् । दद्यात्तद्वक्ताणि^२ दस्त्राणं तामपात्रं^३ सविद्वुमम् ॥५३
 शक्तियुक्तस्य चैतानि दरिद्रस्य तु खे शृणु । फलानि विष्टकान्येषां तिलचूर्णान्वितानि तु ॥५४
 भोजयित्वा द्विजान्वद्व्याद्राजतानि^४ फलानि तु । धातुरत्तं वस्त्रयुगममाचार्याय निवेदयेत् ॥५५

विद्वानों के कथनानुसार खजूर, नारियल, आम, तथा विजौरा नीबू उन्हें समर्पित करने योग्य हैं ॥४२। इन्हें ब्राह्मणों को अर्पित करते हुए स्वयं भी भक्षण करे । हे सुव्रत ! यदि (उस समय) ये अप्राप्य हों तो चावल या गेहूँ के चूर्ण (आटे) में गुड डालकर धी द्वारा पकवान बनाकर उसके साथ चार भाँति की लस्ती भी समर्पित करे, और हवन करने के पश्चात् ब्राह्मण भोजन भी कराये ॥४३-४५। इसी भाँति बारह मास के व्रत को सुसम्पन्न करना बताया गया है । इति प्रकार मास-मास में फलाहार, फलान और फलों द्वारा पूजन करते हुए वर्ष की समाप्ति में शक्त्यनुसार ब्राह्मण भोजन, स्नान और प्राशन करने में उसके विधानों को सुनो । ॥४६-४७। गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, धी, कुशोदक, पिसी हुई सरसों, सफेद मिट्टी, पिसी हुई दूर्वा, धी, गायों के सींगों द्वारा पूत किये हुए जल, एवं चमेली के पुष्प, स्नान के लिए उत्तम बताये गये हैं ॥४८-४९। क्योंकि इनके द्वारा समस्त पापों का नाश भी होता है, अतः इन्हीं का प्राशन भी करना चाहिए । इसी दिधि द्वारा भादों में पूजन करके अन्य मासों के पूजन में भी यही विधान जानना चाहिए ॥५०। हे तात ! इस भाँति वर्ष की समाप्ति में उत्तम भक्ष्य पदार्थ ब्राह्मण भोजन के लिए अर्पित करके पुनः सुन्दर फल एवं सुवर्ण के बने फल प्रदान करे और उसके उपरान्त बछड़े समेत गाय, फूली-फली भूमि, धनधान्य-पूर्ण महल या गृह, सफेद वस्त्र, तथा विद्वुम (मूंगा) समेत ताँबे के पात्र प्रदान करना चाहिए । इस प्रकार धनवानों के लिए यह विधान बताया गया है । अब निर्धनों के लिए भी (विधान) बता रहा हूँ । सुनो ! फल या तिलचूर्ण पूर्ण (आटा) के बने पदार्थों का ब्राह्मण भोजन कराकर चाँदी तथा फल समेत लाल रंग के दो वस्त्र आचार्य को समर्पित करते हुए पंचरत्नपूर्वक सुवर्ण के साथ वार्षिक पूजा समाप्ति कर पारण

१. तानि । २. भक्त्या, रक्तानि । ३. च निर्मलम् । ४. राजा तानि ।

सहिरण्यं महादेव पञ्चरत्नसमन्वितम् । इत्यं समाप्यते तात पारणं वार्षिकान्तिकन् ॥५६
 इत्येषा वै पुण्यतमा सप्तमी दुरितापहा । यामुपोष्य नराः सर्वे यान्ति सूर्यसलोकताम् ॥५७
 'पूज्यमानः सदा देवैर्गन्धवाप्सरसां गणैः । अनया मानवो नित्यं पूजयेद्वात्करं सदा ॥५८
 दारिद्र्यदुःखदुरितैर्मुक्तो याति दिवाकरम् । ब्राह्मणो मोक्षमायाति क्षत्रियश्वेन्द्रतां द्रजेत् ॥५९
 वैश्यो धनदसालोक्यं शूद्रो विप्रत्वमास्तुयात् । अपुत्रे लभते पुत्रं दुर्भगा सुभगा भद्रेत् ॥६०
 यामुपोष्य च नातीमां सन्तमीं लोकवृजिताम् । विधवा वा सती भक्त्या अनया पूजयेद्विविन् ॥६१
 नान्यजन्मनि वैधव्यं नारी प्राप्नोति मानव । चिन्तामणितमा होषा विज्ञेत् फलसप्तमी ॥६२
 पठतां शृण्वतां दिण्डे सर्वकामप्रदा स्मृता ॥६३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ज्ञाह्ये पर्वणि ब्रह्मदिण्डिसंवादे
 सप्तमीकल्पे फलसप्तमीवर्णनं नामचतुःषष्ठितमोऽध्याय ॥६४।

अथ पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः

आदित्यमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रहस्यां नाम सप्तमीम् । सप्तमी कृतमात्रेयं नरांस्तारयते भवात् ॥१

करना चाहिए । ५१-५६। क्योंकि इसी प्रकार इस पुण्य स्वरूप एवं पाप नाशिनी सप्तमी का उपवास करके
 मनुष्य सूर्य लोक प्राप्त करते हैं । ५७। अतः इस विधि द्वारा भास्कर की पूजा करने पर वह प्राणी
 दारिद्र्य-दुःख से मुक्त होकर सूर्य लोक में पहुँचता है और वहाँ देव, गन्धर्व और अप्सराओं से सदैव पूजित
 होता है । इस प्रकार ब्राह्मणों को मोक्ष, क्षत्रियों को इन्द्रलोक एवं वैश्यों को कुबेर के लोक और शूद्र को
 ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है । तथा अपुत्री को पुत्र एवं हतभागिनी को सौभाग्य की प्राप्ति होती है
 । ५८-६०। और इस लोक-पूज्य सप्तमी व्रत के प्रभाववश, सती विधवा जन्मान्तर में वैधव्य दुःख से मुक्त
 हो जाती है । हे दिण्डे, हे मानव ! इस प्रकार चिंतामणि की भाँति यह सप्तमी फल-प्रदान करने वाली
 बतायी गयी है । इसलिए (इसके) पढ़ने-सुनने से भी सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं । ६१-६३

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मणर्थ में ब्रह्मदिण्डिसंवाद के सप्तमीकल्प में फलसप्तमी वर्णन नामक
 चौसठवाँ अध्याय समाप्त । ६४।

अध्याय ६५

आदित्य माहात्म्य व्रत वर्णन

ब्रह्मा बोले—इसके पश्चात् मैं रहस्या नाम की सप्तमी बता रहा हूँ जिसमें (व्रतादि) करने से

१. पूज्यो मान्यः सदा देवैर्गन्धवर्वोरगराक्षसैः ।

सप्तापरान्सप्त पूर्वान्यितंश्चापि न संशयः । रोगांशिद्धनति दुश्खेद्यान्दुर्जयाऽन्यते ह्यरीन् ॥२
 अर्थन्प्राप्नोति दुष्प्रापान्यः कुर्यान्नाम् सप्तमीम् । कन्यार्थी लभते कन्यां धनार्थी लभते धनम् ॥३
 पुत्रार्थी लभते पुत्रान्धमार्थी भर्तमाप्नुयात् । समयान्पालयन्स्वर्वान्कुर्याच्चेमां विचक्षणः ॥४
 समयाऽच्छुणु भूतेश श्रेयसे गदतो मम । आदित्यभक्तः पुरुषः सप्तम्या गणनायक ॥५
 मैत्रीं सर्वत्र वै कुर्याद्ब्राह्मकरं वापि चितयेत् । सप्तम्यां न स्वृशेत्तेन नीलं वस्त्रं न धारयेत् ॥६

दिष्ठिरुवाच

किमर्थं न स्परोत्तेलं सप्तम्यां पद्मसंभव
 कश्च दोषो भवेद्देव नीलवस्त्रस्य धारणात् । ॥७

ब्रह्मोवाच

शृणु दिष्ठे महाबाहो नीलवस्त्रस्य धारणे ॥८
 दूषणं गणशार्दूलं गदतो मम कृत्स्नशः । पालनं विक्रयश्चैव सदृत्तिरूपजीवनम् ॥९
 पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रिभिः कृच्छ्रैवशुद्धयति । नीलीरक्तेन वस्त्रण यत्कर्म कुरुते द्विजः ॥१०
 स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । वृथा तस्य महायज्ञा नीलसूत्रस्य धारणात् ॥११
 नीलीरक्तं यदा वस्त्रं विप्रस्त्वंज्ञेषु धारयेत् । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति ॥१२

मनुष्य स्वयं तथा उसके सात पूर्व और सात पर पीढ़ी संसार सागर को पार कर लेते हैं । १। जिस प्रकार इस सप्तमी के व्रत को सुसम्पन्न करने वाले को उसको रोगों का नाश, महान् शत्रुओं पर विजय एवं दुष्प्राप्य (वस्तुएँ) प्राप्त होती हैं, उसी भाँति कन्या के इच्छुको कन्या, धनार्थी को धन, पुत्रार्थी को पुत्र, तथा धार्मिक भावना वाले को धर्म की प्राप्ति होती है । इसीलिए इसमें सभी बताये गये विधानों का पालन बुद्धिमान् पुरुषों को अवश्य करना चाहिए । २-४। हे भूतेश ! तुम्हारे कल्याणार्थ मैं उसे बता रहा हूँ, सुनो । हे गणनायक ! सूर्य-भक्त पुरुष को सर्वत्र मैत्री भाव एवं (सूर्य की भावना) एवं सूर्य की उपासना करना चाहिए और उसे सप्तमी में तेल का स्पर्श, नील वस्त्र का धारण आँखें का स्नान एवं कहीं भी कलह न करना चाहिए । ५-६ ।

दिष्ठे ने कहा—हे पद्मसंभव ! सप्तमी में तेल का स्पर्श क्यों नहीं करना चाहिए तथा नील वस्त्र के धारण करने से कौन दोष होता है ? ७६

ब्रह्मा बोले—हे महाबाहो ! दिष्ठे ! नीलवस्त्र के धारण करने पर जितने दोष उत्पन्न होते हैं, मैं उन सभी दोषों को बता रहा हूँ । सुनो ! जिस प्रकार पालन, विक्रय (बेंचना) असदव्यवहार (अत्याचार) और उपजीवन (किसी भाँति किसी के आभित रहने) कर्मों के करने से ब्राह्मण पतित हो जाता है और उसे तीन बार कृच्छ्र नामक व्रत करने पर ही शुद्ध प्राप्त होती है । उसी भाँति नील वस्त्र धारण करके द्विज स्नान, दान, जप, हवन, अध्ययन एवं पितृतर्पण आदि जो कुछ करता है वे सभी निष्फल हो जाते हैं । अपने अंगों में नील रंग वाले वस्त्रों को धारण करने पर ब्राह्मण, दिन-रात

रोमकूर्दे यदा गच्छेद्वत्तं नीलस्य^१ कस्यचित् । पतितस्तु भवेद्विप्रस्त्रभिः कृच्छ्रैर्विशुद्धयति ॥१३
नीलीमध्यं यदा गच्छेत्प्रमादाद्ब्राह्मणः क्वचित् । अहोरात्रोषितो^२ भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्धयति ॥१४
नीलीदार यदा भिंदाद्ब्राह्मणानां शरीरके । शोणितं दृश्यते यत्र द्विजश्वान्द्रायणं चरेत् ॥१५
कुर्यादज्ञानतो यस्तु नीलेर्वा दन्तधावनम् । कृत्वा कृच्छ्रद्वयं दिष्टे विशुद्धः स्यान्न संशयः ॥१६
वापेयेत्र नीलों तु भवेत्तत्राशुचिर्मही । प्रमणद्वादशाब्दानि तत ऊर्ध्वं शुचिर्भवेत्^३ ॥१७
सप्तस्यां स्पृशतस्तैलमिष्टा भार्या विनश्यति । इत्येष नीलीतैलस्य दोषस्ते कथितो भया ॥१८
न चैव खेदेन्यांसानि मद्यानि न फिबेद्बुधः । न द्वोहं कस्यचित्कृपान्ति पारुष्यं समाचरेत् ॥१९
नावभाषेत चाण्डालं स्त्रियं नैव रजस्वलाम् । न वापि संस्पृशेद्वीनं मृतकं नायलोक्येत् ॥२०
नास्फोटयेन्नातिहसेद्गायेच्चापि न गीतकम् । न नृत्येदतिरागेण न च वाद्यानि वादयेत् ॥२१
न शायीत स्त्रिया सार्थं न सेवेत दुरोदरम् । न रुद्धादशुपातेन न च वाच्यं च शौकिकम् ॥२२
आकृषेन्न शिरोपूकः न वृथावादमाचरेत् । परस्यानिष्टकथनमतिशोकं च वर्जयेत् ॥२३
न कञ्चित्ताडयेज्जन्तु न कुर्यादितभोजनम् । न^४ चैव हि दिवा स्वप्रं दन्तं शाठयं च वर्जयेत् ॥२४
रथ्यायामटनं वापि यत्नतः परिवर्जयेत् । अथापरे विधिश्वाव शूयतां त्रिपुरान्तक ॥२५
चैत्रात्प्रभृति कर्तव्या सर्वदा नाम सप्तमी । धातेति चैत्रमासे तु पूजनीयो दिवाकरः ॥२६

का उपवास करके पंचगव्य का पान करने पर ही शुद्ध होता है । १८-१२। शरीर में रोम के छिद्रों में नील रंग किसी भाँति लग जाये तो ब्राह्मण पतित हो जाता है । और उसकी तीन बार कृच्छ्र करने पर ही उसकी शुद्धि होगी इसी प्रकार कभी प्रभाव वश ब्राह्मण यदि नील के (खेत आदि के) मध्य में पहुँच जाये तो वह दिन रात के उपवास पूर्वक पंचगव्य के पान करने पर शुद्ध होता है । १३-१५। एवं नील की लकड़ी द्वारा शरीर में चोट लगने पर कदाचित् रक्त दिलाई दे तो उस ब्राह्मण को चान्द्रायण (व्रत) का विधान करना चाहिए । १५। हे दिष्टे ! अज्ञान वश जिसने नील द्वारा दाँत-शुद्धि (दातून) कर लिया तो वह दो बार कृच्छ्र करने पर निःसन्देह शुद्ध होगा । १६। तथा जिस खेत में नील बोया गया हो वह भूमि बारह वर्ष तक अणुद्व रहेगी और उसके अनन्तर शुद्ध रहेगी । १७। उसी भाँति सप्तमी में नील के तेल का स्पर्श करने पर उसकी प्रिय स्त्री का नाश हो जाता है । इस प्रकार नील के तेल का दोष मैंने तुम्हें बता दिया । १८। इसी भाँति मांस भक्षण, मद्य का पान, किसी से गोह एवं किसी प्रकार की कठोरता न करनी चाहिए । १९। एवं चाण्डाल और रजस्वला स्त्री से किसी भाँति का भाषण, नीच का स्पर्श तथा मृतक (शव) का निरीक्षण न करना चाहिए । २०। तथा निरर्थक शब्द, अत्यन्त हँसना, गीत का गाना, अति अनुरागपूर्ण नाच पर बाजाओं का बजाना, स्त्री के साथ शयन, जूँए का खेलना, अश्रुपात पूर्वक रुदन, तोते की बोली, शिर के वालों में से जूँए का निकालना वर्ष्य दूसरे का अनिष्ट, अत्यन्त शोक, किसी जीव की ताडना, अत्यन्त भोजन, दिन में शयन, दम्भ, शठता एवं गलियों में घूमने आदि दोषों को भी त्यागना चाहिए । हे त्रिपुरान्तक ! अब दूसरी विधि भी कहा रहा हूँ । सुनो ! । २१-२५

इस सप्तमी का आरम्भ चैत्र मास में करना चाहिए तथा चैत्र मास के धाता नामक सूर्य, वैशाख के

१. वस्त्रस्य । २. त्रिरात्रोपोषितः । ३. विशुद्धयति । ४. प्रयतश्च ।

अर्थमेति च दैशाखे ज्येष्ठे मित्रः प्रकीर्तिः । आषाढे वरुणो ज्ञेय इन्द्रो नभसि कथ्यते ॥२७
 विवस्वांश्च नभस्येऽय पर्जन्येऽश्वयुजि स्मृतः । पूषा कार्तिकमासे तु मार्गशीर्षेषुकथ्यते ॥२८
 भगः पौर्वे भवेत्पूज्यस्त्वष्टा माघे तु शस्यते । विष्णुश्रव फालुने मासि पूज्यो वन्द्यश्च भास्करः ॥२९
 सप्तस्यां चैव सप्तम्यां भोजयद्भोजकान्बुधः^१ । सघृतं भोजनं देयं भोजयित्वा विधानतः ॥३०
 भोजकायैव विप्राय दक्षिणां स्वर्णमाषपक्षम् । सघृतं भोजनं देयं रक्तवस्त्राणि चैव हि ॥३१
 अभावे भोजकानां तु दक्षिणीया द्विजोत्तमाः । तथैव भोजनीयाश्च श्रद्धया परया विभोः ॥३२
 विशेषतो वाचकश्च ब्राह्मणः कल्पवित्सदा । इत्येषा कथिता तुम्हेण सप्तमी गणनायक ॥३३
 श्रुता सती पापहरा सूर्यलोकप्रदायिनी ॥३४
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतद्वासाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि ब्रह्मदिणिसंवादे सप्तमीकल्पे
 आदित्यमहात्म्यवर्णे सप्तमीवर्णनं नाम पञ्चषष्ठितमोऽध्यायः । ६५।

अथ षट्षष्ठितमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्यवर्णनम्

सुमन्तुरुच्चाच

इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा जगामादर्शनं विभोः^२ । सूर्यमासाधयद्विण्डी^३ सूर्यस्पानुचरोऽभवत् ॥१

अर्थमा, ज्येष्ठ के मित्र, आषाढ के वरुण, सावन के इन्द्र, भाद्रों के विवस्वान्, आश्विन के पर्जन्य, कार्तिक तथा अगहन के पूषा, पौस के भग, माघे के त्वष्टा एवं फालुन के विष्णु नामक सूर्य की पूजा तथा वन्दना करनी चाहिए । २६-२९। इस प्रकार प्रन्तेक सप्तमी में भोजन करने वाले ब्राह्मणों को धृत समेत एवं विधान पूर्वक भोजन कराना चाहिए । ३०। तथा उन्हें एक माशे सुवर्ण की दक्षिणा एवं सघृत भोजन तथा रक्त वस्त्र प्रदान करना भी बतलाया गया है । ३१। यदि भोजन करने वाले ब्राह्मण न मिल सकें तो दक्षिण देश के (दक्षिणवेत्ता) ब्राह्मणों को उसी भाँति श्रद्धापूर्वक भोजन करायें । ३२। विशेषकर उन्हें कथावाचक एवं कल्पवेत्ता ब्राह्मण होना चाहिए । हे गणनायक ! इस प्रकार तुम्हें यह सप्तमी बता दी गई जिसके सुनने से समस्त पापों के नाश पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । ३३-३४। श्रीभविष्यव्य महापुराण में ब्रह्मदिणिसंवाद वाले सप्तमी कल्प के आदित्य माहात्म्य वर्णन में सप्तमी वर्णन नामक पैंसठवाँ अध्याय समाप्त । ६५।

अध्याय ६६

याज्ञवल्क्य वर्णन

सुमन्तु बोले—हे विभो ! इस भाँति भगवान् ब्रह्मा उनसे कहकर अन्तर्धान हो गये और दिढ़ी भी सूर्य की आराधना करके उनके अनुचर हुए । १

१. ततः । २. अलाभे । ३. विभो । ४. सूर्यमाहात्म्यतो दिणिः ।

शतानीक उवाच

भूयः कथय विप्रेन्द माहात्म्यं भास्करस्य मे । शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिरमृतस्येव सुन्नत ॥२

सुमन्तुरुवाच

शृणुप्वावहितो राजन्सम्बादं द्विजशाङ्खयोः । यं श्रुत्वा सर्वजायेभ्यो भुव्यते मानवोऽ नृप ॥३
आत्मीनमाश्रमे शंखं द्विजो दृष्टुं जगाम ह । फलभारान्तच्छाये वृक्षवृन्दसमाकुले ॥४
परस्परमृद्गृहकण्डयितमृगावृते । बहिर्वर्णाम्बरः नीतीर्थकन्दोपभोगिनि ॥५
प्रभूतकुमुकानोदपदपदोद्गीतशालिनी । सिद्धदेवर्षिगन्धर्वतीर्थसेवितवारिणि ॥६
मृण्डेश्वरं जटिलश्वेतं तापसैरूपशोभिते । आश्रमे तं मुनिश्रेष्ठं शंखाद्वं मुखमास्थितम् ॥७
स्तोत्रैः स्तोतुं सहस्राणुं तद्भूकं तत्परायणम् । ततः संहत्य सहसा तं भोजककुमारकाः ॥८
विनीता उपसंगत्य यशावदभिक्षाद्य च । आसनेषूपविष्टास्त उपविष्टमथाबुवन् ॥९
भगवन्तर्वदेषु १ चिछिति नः संशयो महान् । विनयेनोपवन्नानां कुमाराणां ततो मुनिः ॥१०
अनादेश्वरुरो देवानुवाच प्रीतमानसः । तेषां तु पठतामेव आश्रमं तु यदृच्छ्या ॥११
मुनिश्रेष्ठोऽथ तं देशमाजगाम द्विजो नृप । यथावदर्चितस्तेन शत्रुंनामिततेजसा ॥१२
वन्दितश्वरं कुमारै स्तैरभवत्प्रीतमानसः । अर्थेतान्ब्रवीच्छंखस्तान्भोजककुमारकान् ॥१३

शतानीक ने कहा—हे विप्रेन्द ! अमृत की भाँति सूर्य के इस माहात्म्य को सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, अतः फिर उसे कहने की कृपा करें ॥२

सुमन्तु बोले—हे राजन ! (इसी विषय के) द्विज एवं शंख कृषि के संवाद को मैं बता रहा हूँ जिसे सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त होते हैं, सावधान होकर सुनो । ३। एक बार शंख कृषि दर्शन के लिए द्विज के उस आश्रम में गये जहां वे मुखासीन थे और जो फलों के मार से ज़क्री हुई छाया वाले वृक्षों के समुदायों एवं आपस में एक दूसरे को सींगों द्वारा खुजलाने वाले मृगों से चारों ओर घिरा था और कुशा वन के सुग्रिधित तीर्थोदक एवं कन्द से परिपूर्ण फूलों पर बैठकर उसके गंध का स्वाद लेते हुए भौंतों से गुंजित, सिद्ध, देव, कृषि तथा गन्धर्व द्वारा सुसेवित जल से परिपूर्ण हो रहा था । जटाधारी तपस्त्रियों से सुशोभित वहाँ सुख पूर्वक बैठे हुए मुनि श्रेष्ठं शंख को उन्होंने देखा । ४-५। जिस समय स्तोत्र द्वारा सूर्य की स्तुति करने के लिए आसन पर बैठे हुए मुनि के समीप जो सूर्य के भक्त एवं उनके लक्ष्य थे भोजक के कुमारों ने सहसा एकत्रित तथा विनीत होकर पुनः शंख मुनि से अभिवादन पूर्वक आसन पर बैठ कर कहा । ८-९। हे भगवन् ! सभी वेदों में हमें महान् संदेह उत्पन्न हुआ है । अतः आप उस संदेह को नष्ट करने की कृपा करें । १०। अनन्तर मुनि ने सप्रेम उन अनादि चारों वेदों को भली भाँति विनीत उन कुमारों को बताया और उन लोगों ने भी (संदेह नष्ट न होने पर) उसका अध्ययन करना प्रारम्भ किया था उसी समय मुनिश्रेष्ठ द्विज का आकस्मिक उस आश्रम में आगमन हुआ । अतुल तेजस्वी शंख एवं उन कुमारों ने उनका आतिथ्य सत्कार सुसम्पन्न किया । कुमारों को देखकर द्विजमुनि भी अत्यन्त प्रसन्न

शिष्टागमादनध्यायः स च जातो विरस्थ्यताम् । यथाज्ञापयसीत्याहुः कुमारास्ते श्रुतिं ततः ॥१४
प्रपञ्च सिद्धिदश्रेतान्के ह्येते किं पठन्ति च । शङ्खोवाच महाराज कुमार भोजकात्मजा ॥१५
समूक्तकल्पांश्चतुरो विप्र वेदानधीयते । तथैव सप्तमीकल्पे एरिचर्यां च भास्त्वतः ॥१६
अग्निकार्यविधानं च प्रतिष्ठाकल्पमादितः । अध्यङ्गलक्षणं^१ ब्रह्मन् रथयात्रान्विधिं तथा ॥१७

द्विज उवाच-

कथं कियेत सप्तम्यां कश्चार्चनविधिक्लमः । गन्धपुष्पप्रदीपानां किं फलं रविमन्दिरे ॥१८
केत तुष्यति दानेन अतेन नियमेन च । धूपुष्पोपहारादि तिं च देयं विवस्त्वते ॥१९
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं तन्मे ब्रूहि तपोधनं । विशेषतस्तु माहात्म्यं श्रूहि मां भास्करस्य हि ॥२०

शङ्खः उवाच-

इममर्थं वशिष्ठेन पृष्ठः सङ्खो यथा पुरा । स^२ चोवाच वशिष्ठाय तद्वां कथयामि ते ॥२१
अत्राश्रमे पृथग्यतमे तीर्थनामुत्तमे प्रभुः । ववन्दे नियतात्मानं उचित्तं मुनिसत्तमम् ॥२२
विनयेनोपसंगम्य ववन्दे चरणौ मुनेः । कृतप्रणामं साम्बं तु भक्तिप्रह्लोकृताननम् ॥२३
विलोक्य^३ परमप्रीतो मुनिः पप्रच्छ तं तदा । सर्वतः स्तुटिं गात्रं कुष्ठेन महता तव ॥२४

हुए । पश्चात् शंख ने उन कुमारों से कहा । ११-१३। किसी शिष्ट (सम्य) व्यक्ति के आने पर (उसके आतिथ्य सत्कार के निमित्त) कुछ समय अनध्याय हो जाता है, अतः अध्ययन करना बन्द कर दो । कुमारों ने भी 'जैसी आज्ञा' कह कर अपना अध्ययन रोक दिया । तदनन्तर द्विज ने शंख मुनि से पूछा—ये कौन हैं और क्या पढ़ रहे हैं ।

शंख ने कहा—हे महाराज ! ये भोजक के कुमार हैं । १४-१५। सूत्र एवं कल्प के समेत चारों वेदों के अध्ययन कर रहे हैं और सप्तमी कल्प में सूर्य की पूजा भी । १६। एवं उसी भाँति हवन, प्रतिष्ठा, सूर्य के अंगों का कल्पनापूर्वक पूजन और रथ यात्रा की विधि का भी ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं । १७

द्विज बोले—सप्तमी में किस सामग्री और किस विधान द्वारा उनकी अर्चना की जाती है तथा गंध एवं पुष्प प्रदीप उन्हें मन्दिर में प्रदान करने से किस फल की प्राप्ति होती है । १८। वे किस प्रकार के दान, व्रत एवं नियम से प्रसन्न होते हैं, और सूर्य को धूप, पुष्प एवं उपहारादि किस भाँति प्रदान किये जाते हैं ? हे तपोधन ! इसे सविस्तार कहते हुए आप भास्कर के माहात्म्य को बतायें क्योंकि मुझे उसके जानने की विशेष इच्छा है । १९-२०

शंख ने कहा—पहले इसी विषय को साम्ब से वशिष्ठ जी ने पहले पूछा था । उन्होंने वशिष्ठ को जो उत्तर दिया है मैं उसी को तुम्हें सुना रहा हूँ । २१। तीर्थ श्रेष्ठ इसी पुष्प आश्रम में वशिष्ठ जी रहते थे जो जितेन्द्रिय एवं मुनिथ्रेष्ठ हैं । सादर नम्रता पूर्वक साम्ब वहाँ पहुँचकर मुनि के चरणों में प्रणाम किया । वशिष्ठ जी ने साम्ब को जो प्रणाम करके अपनी मुख चेष्टाओं द्वारा अत्यन्त भक्ति प्रदर्शित कर रहा था,

१. अभ्यंगलक्षणम् । २. अथाचष्टे । ३. वाक्यं च ।

घोरहृषेण तीक्ष्णे कथं तद्विगतं तव^१ । कथं च लक्ष्मीरधिका रूपं चातिमनोहरम् ॥२५
तेजस्वितातिमहती तथैद^२ सुकुमारता ॥२६

साम्ब उवाच

स्तुतो नामसहस्रेण लोकनाथो दिवाकरः । दर्शनं च गतः साक्षादृत्तवांश्च वरान्मम ॥२७

वशिष्ठ उवाच

कथगाराधितः सूर्यस्त्वया यादवगंदन । कैश्च व्रततपोदानैर्दर्शनं भगवानातः ॥२८

साम्ब उवाच

भृणुष्वावहितो ब्रह्मन्सर्वदेव मया यथा । तोषितो भगवान्सूर्यो विधिना येन सुवत ॥२९
मोहान्मयोपहसितो^३ दुर्वासाः कोपनो मुनिः । ततोऽहं तस्य शापेन महाकुष्ठमवाप्तवान् ॥३०
ततोऽहं पितरं गत्वा कुष्ठयोगाभियोडितः । लज्जमानोऽतिगर्वण इदं वाक्यमथाव्रवम् ॥३१
तत सीदति मे गात्रं स्वरश्च परिहीयते । घोरलूपो महाव्याधिर्विपुरेष जिघांसति ॥३२
अशेषव्याधिराजाहं पीडितः कूरकर्मणा । वैद्यैरोषधिभिश्चैव न शान्तिर्मम विद्यते ॥३३
सोऽहं त्वया हृनुज्ञातस्यकुमिच्छामि जीवितम् । यदि वाहमनुग्राहस्ततोऽनुज्ञातुर्महसि ॥३४

देखकर प्रेगपूर्वक उससे कहा—तुम्हारी शरीर के सभी अंग इस महान् कुष्ठ रोग द्वारा विदीर्ण हो गये हैं । तो इस भयानक रोग से शान्ति पूर्वक तुम्हें भी रूप सौन्दर्य, अतुलतेज और यह कोमलता कहाँ से पुनः प्राप्त हुई है । २२-२६

साम्ब ने कहा—लोकनाथ भगवान् सूर्य की आराधना मैंने उनकी सहस्रनामावली द्वारा किया था, उससे प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे दर्शन दिया एवं यही वर प्रदान किया था । २७

वशिष्ठ बोले—हे यादव नन्दन ! तुमने सूर्य की आराधना किस भाँति की थी और किस व्रत, तप एवं दान द्वारा तुम्हें भगवान् सूर्य के दर्शन हुए थे । २८

साम्ब ने कहा—हे व्रहन् ! जिस विधान द्वारा मैंने सूर्य की आराधना करके उन्हें प्रसन्न किया था, वह सभी आप से कह रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! १२९। एक बार मोहान्ध होकर मैंने अत्यन्त क्रोधी दुर्वासा मुनि की हँसी की थी उन्हीं के शाप वश यह कुष्ठ (कोढ़ी) का रोग मुझे हो गया था । ३०। इस कुष्ठ रोग से अत्यन्त पीड़ित होने पर अपने पिता के समीप जाकर इस भाँति लज्जित होते हुए मैंने उनसे बड़े गर्व से कहा । ३१। हे तात ! मेरे शरीर में इतनी पीड़ा हो रही है कि मुझसे बोला नहीं जा रहा है, इस प्रकार यह भयानक महारोग मेरे शरीर को खा रहा है । ३२। मैं कूरकर्मा एवं समस्त व्याधियों के राजा इस राज रोग से अत्यन्त दुखी हो रहा हूँ । वैद्यों के उपचारों एवं औषधि द्वारा मुझे कुछ भी शांति प्राप्ति नहीं हो रही है । ३३। अतः आप आज्ञा प्रदान करें मैं अपना जीवन अब समाप्त करना चाहता हूँ । यदि मेरे ऊपर आप (कुछ) अनुग्रह करते हैं, तो इसके लिए श्रीघ आज्ञा प्रदान करें । ३४। इस प्रकार कहने

१. वद । २. तव साम्ब समागमत् । ३. महानुभावो हि हर्दुर्वासाः कोपितो मुनिः ।

इत्युक्तवत्क्ष्यः स पिता पुत्रशोकाभिपोडितः । पितर क्षणं ततो ध्यात्वा मासेवं दाक्ष्यमुल्लवान् ॥३५
 धैर्यमाश्रयता॑ पुत्र भा॒ शोके च भनः कृथः । हन्ति शोकार्दितं व्याधिः शुष्कं तृणमिवानलः ॥३६
 देवताराधनपरो भव पुत्रक भा॒ शुचः । इत्युक्ते च भया प्रोक्तो देवमाराधयामि कम् ॥३७
 कमाराध्य विमुच्येऽहं तात रोगः समन्ततः । इत्येवमुक्तो भङ्गवान्मामुवाच पिता भम् ॥३८
 इममर्थं पुरा पृष्ठः दध्योनिः सनातनः । यज्ञवल्क्येन ऋषिणा योगीशेन महात्मना॑ ॥३९
 यदुवाच महातेजास्तस्मै च यदुनन्दन । तञ्छृणुष्व शुचिर्भूत्वा अत्मनः श्रेयसे सुत ॥४०
 मुरुज्येऽहं सुलासीनं पश्योर्णेन प्रजापतिम् । यज्ञवल्क्यो महातेजाः पर्युच्छत्पिताप्रहम् ॥४१
 भगवञ्चत्तेतुमिद्धामि किञ्चिदात्ममनोगतम् । समाराध्य विभी॒ देवं नरो मुन्येत वै भवात् ॥४२
 गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽयं भिक्षुकः । य इच्छेन्मोक्षमास्थातुं देवतां कां यजेत सः ॥४३
 कुतो हृष्ट्य ध्रुवः स्वर्गः कुतो नैः श्रेयसं सुखम् । स्वर्गातिश्रेव किं कुर्यादेन न च्यवते पुनः ॥४४
 देवातानां तु को देवः पितृणां चैव कः पिता । तस्मात्परतर यच्च तन्से ब्रूहि पितामह ॥४५
 केन सृष्टिमिदं दिशं ऋहान्स्यावरजङ्गमम् । प्रलयो च कमभ्येति तन्मे त्वं वक्तुर्महसि ॥४६

ब्रह्मोवाच

ताधु पृष्ठोऽस्मि भवता तुष्टश्चास्मि महामते । प्रणम्य शिरसा देवं पुण्योत्तरमनुत्तमम् ॥४७

परे मेरे पिता पुत्र-शोक से अत्यन्त पीडित हुए । पश्चात् कुछ देर सोच कर उन्होंने कहा । ३५। हे पुत्र !
 धैर्य का आलम्बन करो और मन में किसी प्रकार का शोक न करो । क्योंकि रोग शोक करने वाले प्राणी
 को सुखे तृण की अग्नि की भाँति नष्ट कर देता है । ३६। अतः पुत्र ! चिंता न कर देवाराधन करो । उनके
 इस प्रकार कहने पर भैं मैंने कहा—किस देव की आराधना करूँ । ३७। हे तात ! किसी देव की आराधना
 द्वारा इस महान रोग से मुझे सर्वथा मुक्तिप्राप्त होगी । इसे सुनकर पिता ने कहा । ३८। इसी विषय को,
 महात्मा एवं योगीश यज्ञवल्क्य ऋषि ने सनातन ब्रह्मा से पूछा था । ३९। हे यदुनन्दन ! उन महातेजस्वी
 ने जो कुछ कहा था उसे मैं कहं रहा हूँ तुम अपने कल्याण के लिए पवित्र भावना करके सुनो । ४०।
 यज्ञवल्क्य ने उन पितामह से जो देवों में बड़े, पर्य से उत्पन्न एवं प्रजाओं के पति हैं, कहा—हे भगवन् !
 कुछ मेरे मन में शंकायें उठ रही हैं, उसे मैं भली भाँति जानना चाहता हूँ । हे दिभो ! जब मनुष्य देवता
 की आराधना करके संसार से मुक्त हो जाता है तो गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं सन्यासी आदि जो
 कोई मोक्ष चाहें तो किस देव की आराधना करे । ४१-४३। क्योंकि उसे निश्चित रूप से स्वर्ग की प्राप्ति
 एवं निःश्रेयस सुख की प्राप्ति इस भाँति होनी चाहिए, जिससे फिर कभी स्वर्ग से वह नीचे न गिरे । ४४। हे
 पितामह ! इसलिए देवाधिदेव, पितरों के पिता तथा उससे भी शेष्ठ कौन देवता है उसे मुझे भली भाँति
 बताने की कृपा करें । ४५। हे ब्रह्म ! तथा इस विश्व की जिसमें चर-अचर सभी हैं, किसने रक्षना की है
 और इस विश्व का किसमें प्रलय होता है, यह भी बताने की कृपा करें । ४६।

ब्रह्मा बोले—हे महामते ! हे द्विजप्रेष्ठ ! आप का प्रश्न बहुत उत्तम है इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ ।

कथयिष्ये द्विजशेषं शृणुपूर्वकमनाधुना । भात्मनः श्रेयसे विप्रं शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥४८
 उद्घन्य एष कुरुते जगद्वितिमिरं करे । नातः परतरो देवः किमन्यत्कथयामि ते ॥४९
 अनादि निधनो होषः पुरुषः शाश्वतोऽव्ययः । दीपयत्येव लोकांत्त्रीनूरवी रश्मिभिरल्बणैः ॥५०
 सर्वदेवात्मको होष तपसा चांशुतापनः । सर्वस्य जगतो नाथः कर्मसाक्षी शुभाशुभे ॥५१
 क्षपयत्येष भूतानि तथा विसृजते पुनः । एष भाति तपत्येष वर्तते च गभस्तिभिः ॥५२
 एष धाता विधाता च पूषा^१ ग्रहृतज्ञावन् । न होष क्षयमात्यति नित्यमक्षयमण्डलः ॥५३
 पितृपां हि पिता देवतानां च देवता । ध्रुव^२ स्थानं स्मृतं होष आधारो जगतस्तथा ॥५४
 सर्वकाले जगद्गृहत्स्नमः दित्यात्संप्रसूयते । प्रलये च तम्भ्येति आदित्यं दीप्ततेजसम् ॥५५
 योगिनश्चात्र संलीनास्त्यक्त्वा गृहकलेवरम् । वायुभूता विशन्त्यर्यास्मस्तेजोरारां दिवाकरे ॥५६
 तस्य रश्मिसहस्रःणि शाला इव विहंगमाः । वसन्त्याश्रित्य मुनयः संसिद्धा देवतैः सह ॥५७
 जनकादयो गृहस्थास्तु राजानो योगार्थमिणः । वालखिल्यादयश्चैव मुनयो ब्रह्मचारिणः ॥५८
 व्यासादयो वनस्थाश्च तिसुः पञ्चशिखस्तथा । सर्वे^३ ते योगमास्थाय प्रविष्टः सूर्यमण्डलम् ॥५९
 शुक्रो व्यासात्मजः श्रीमान्योगार्थमवाप्य तु । आदित्यकिरणान्पीत्वा न पुनर्भवमाप्तवान् ॥६०

अतः पुण्य स्वरूप उस देव को प्रणाम कर मैं उसे कह रहा हूँ । सावधान होकर सुनो ! उसमें तुम्हारा अवश्य कल्याण होगा । इस समय पवित्रतापूर्वक ध्यान लगाओ। ४७-४८। ये (सूर्य) उदय होते ही अपनी किरणों द्वारा समस्त जगत् को प्रकाशित करते हैं, अतः इनसे श्रेष्ठ देव और कौन हो सकता है जिसे मैं कहूँ । ४९। यही सूर्य देव नित्य प्रत्यय (अनश्वर) एवं जन्म दरण से रहित हैं और अपनी प्रखर किरणों द्वारा तीनों लोकों को सदैव प्रकाशित करते हैं । ५०। यह सर्वदेवमय हैं जिसने अपने तप द्वारा इतनी उत्पन्न किरणें प्राप्त की हैं, यही समस्त संसार के स्वामी और शुभाशुभ कर्मों के साक्षी हैं एवं यही प्राणियों का सर्जन विसर्जन भी करते हैं तथा अपनी किरणों द्वारा सदैव प्रदीप्त रहकर तपते और बढ़ते रहते हैं । ५१-५२। यही (जगत् का) धाता, विधाता तथा पूषा हैं एवं इनका क्षय कभी नहीं होता है क्योंकि ये अक्षय मंडल वाले हैं । ५३। यही पितरों के पिता, देवधिदेव, ध्रुव स्थान एवं जगत् के आधार हैं । सभी काल में समस्त जगत् इन्हीं दीपतं तेजवाले आदित्य से उत्पन्न तथा इन्हीं में लय को प्राप्त होता है । ५४-५५। योगीगण इन्हीं में सतत लीन रहकर अंत में अपने घर एवं शरीर का त्याग करके वायुरूप से इन्हीं तेजोराशि दिवाकर में प्रविष्ट होते हैं । ५६। उन्हीं की किरणों के सहजों किरणों के आश्रित होकर शाला में पक्षी की भाँति देवताओं के समेत मुनिगण सदैव विचरते रहते हैं । ५७। गृहस्थों में योगिराज राजा जनक, बालखिल्यादिक ब्रह्मचारी, वन में रहने वाले व्यासादिक और भिक्षुपञ्चशिख आदि ये सभी योग द्वारा सूर्य के मंडल में प्रविष्ट हुए हैं । ५८-५९। व्यास के पुत्र शुकदेव जी ने योग के द्वारा ही सूर्य की किरणों का पान करके अपुनर्जन्म प्राप्त किया है । ६०। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव केवल कान से

शब्दमात्रा: श्रुतिसुखा ब्रह्मविष्णुशिवादयः । प्रत्यक्षोऽयं स्मृतो देवः सूर्यस्तिमिरनाशनः ॥६१
तस्मादन्यक्षते भक्तिर्कार्या शुभमिच्छता । हृष्टेन साध्यते यस्माददृष्टं नित्यमेव हि ॥
त्वयातः सततं विप्र अर्चनीयो दिवाकरः ॥६२

यज्ञवल्क्य उवाच

अहो य एष कथितो भवता भास्करो मम । देवता सर्वदेवानां नैतन्मिश्या प्रजायते ॥६३
तत्य देवस्य भावात्मयं श्रुतं सुबहुशो मया । देवविज्ञिद्वमनुजैः स्तुतस्येह महात्मनः ॥६४
कः स्तौति दैवतमजं पृथ्यैतत्सचराचरम् । अक्षयस्याप्रमेयस्य किरणोदगमनाद्भूतेत् ॥६५
दक्षिणात्किरणाद्यस्य सम्भूतो भगवान्हरिः । दग्माद्भूवांस्तथा जातः किरणात्किल कञ्जज ॥६६
लालाटाद्यस्य रुद्रस्तु का तुल्या तेन देवतः । तस्य देवस्य कः शक्तः प्रवक्तुं गुणविस्तरम् ॥६७
सोऽहमिच्छामि देवस्य तस्य सर्वात्मनः प्रभो । श्रोतुमाराधनं येन निस्तरेयं भवार्णकम् ॥६८
केनोपायेन मन्त्रैर्वा रहस्यैः परिचर्यया । दानर्वतोपवासैर्वा होमैर्जप्यरथापि वा ॥६९
आराधितः समस्तानां क्लेशानां द्वानिदो रविः । शक्यः समाराधयितुं कथं शंस प्रजापते ॥७०
धर्मर्थकामसम्प्राप्तौ पुरुषाणां विचेष्टताम् । जन्मन्यवितथा सैका क्रिया यत्कं समाप्तिता ॥७१
दुर्गसंसारकांतारमपारमभिधावताम् । एकः सूर्यनमस्कारो मुक्तिमार्गस्य देशकः ॥७२

ही सुनाई देते हैं, किन्तु तम के नाशक सूर्य प्रत्यक्ष दिखायी देने वाले देव हैं । ६१। इसलिए शुभ की अभिलापा वाले प्राणियों को अन्य की भक्ति कभी न करनी चाहिए, अपितु दृष्ट पदार्थ (सूर्य) द्वारा अपने अदृष्ट (सौभाग्य) को उत्पन्न करना चाहिए । अतः हे विप्र ! तुम भी सदैव सूर्य की उपासना करो । ६२

यज्ञवल्क्य ने कहा—आपने मेरे लिए देवाधि देव सूर्य का जो उपदेश किया है, यह कदाचिपि मिथ्या नहीं है प्रत्युत पूर्ण है । ६३। क्योंकि देव, कृषि, सिद्ध एवं मनुष्यों द्वारा महात्मा सूर्य के माहात्म्य को मैंने अनेकों बार सुना है । ६४। उस अजन्मा देव की स्तुति जिसने अक्षय और अप्रमेय अपनी किरणों द्वारा इस चराचर को उत्पन्न किया है, कौन कर सकता है । ६५। इसलिए जिसके दक्षिण किरण द्वारा विष्णु बायीं किरण द्वारा (अब) (ब्रह्म) और ललाट से शिव उत्पन्न हुए हैं, उनके समान कौन देवता है और उनके गुण सम्प्रह का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है । ६६-६७। उस सर्वात्म देव की आराधना, जिसके द्वारा मैं संसार-सागर को पार करना चाहता हूँ, मुझे सुनने की विशेष इच्छा है । ६८। अतः उनके मंत्रों अथवा रहस्य या सेवा, दान, ब्रत, उपवास, हवन एवं जप इनमें से किस उपाय द्वारा की गई आराधना से प्रसन्न होकर सूर्य सम्पूर्ण दुःखों का नाश करते हैं । हे प्रजापते ! मैं किस भाँति उनकी आराधना करूँ । ६९-७०। यद्यपि प्रयत्नशील पुरुषों के जीवन में (उनके) धार्मिक होने के नाते उनके अर्थ एवं काम की सफलता प्राप्त होती ही रहती है, पर, उनकी यही एक क्रिया जिसके द्वारा सूर्य की आराधना की जाये, और की अपेक्षा सकल कही जा सकती है । ७१। इसलिए संसार रूपी दुर्गम जंगल में भ्रान्त होकर दौड़ने वाले के लिए सूर्य की आराधना ही उपयुक्त है क्योंकि वही एक मुक्ति-मार्ग के प्रदर्शक हैं । ७२। अतः मैं

सोऽहमिच्छानि तं देवं सप्तलोकपरायणम् । कालायनमशेषस्य^१ जगतो हृष्टवस्थितम् ॥७३
 आराधयितुं गोपालं ग्रहेशममितौजसम्^२ । शङ्करं जगतो दीपं स्मृतमात्राधनाशनम् ॥७४
 तमनाद्यं सुरश्चेष्ठं प्रशादयितुभिर्भृतः । उपदेशप्रदानेत प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥७५
 तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा भक्तिमुद्दहतो रवौ । जगत्म परितोषं स पद्म्योनिर्महतपाः ॥७६

ब्रह्मोवाच

दन्तुच्छसि द्विजश्चेष्ठ सूर्यस्याराधनं प्रति । ब्रतोपवत्सज्जप्यादि तदिहैकमना: शृणु ॥७७
 अनादि दत्त्वर ब्रह्म सर्वहेयविवर्जितम् । व्याप्ययत्सर्वभूतेषु स्थितं सदसतः परम् ॥७८
 प्रधानपुंसोरनयोर्यथः क्षोभः प्रवर्तते । निन्ययोर्व्यापिनोश्चैव जगदादौ सहात्मनोः ॥७९
 तत्क्षोभकत्वाद्ब्रह्माद्ब्रुप्तेषु भृष्टेहेतुनिरञ्जनः । अहेतुरपि सदात्मा जापते परमेश्वरः ॥८०
 प्रधानपुरुषत्वं च त तथैवश्वरतीतया । समुपैति ततश्चैव ब्रह्मत्वं छन्दितः प्रभुः ॥८१
 ततः स्थितौ पालयिता विष्णुत्वं जगतः क्षमे । रुद्रत्वं च जगन्नाथः स्वेच्छया कुरुते ददिः ॥८२

तम्भलक्ष्मीर धाम सवदवनमस्कृतम् । भद्रभद्रस्वरूप त प्राणपत्य दिवाकरम् ॥
 ३ वर्णयिष्येऽखिलं विप्र तस्यैवाराधनं रवे: ॥८३॥

गुहां चापि तथा तस्य भास्करस्य शृणुष्ट वै । तुष्टेन हि पुरा महां कथितं भास्करेण तु ॥८४॥

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शताद्वयोराहस्यां सहिताया ज्ञात्वे पर्विण याज्ञवल्क्यब्रह्मत्सवादे

सप्तमीकल्पे आदित्यमाहात्म्यदर्जनं नाम षटषष्ठितमोऽध्यायः ।६६।

भी उस देव की, जो सातों लोकों में प्रदत्त, समस्त जगत् के हृदय में अवस्थित, समय के अयन, पृथिवी-पालक, प्रहों के ईश, अमेय तेजस्ती, कल्याण-कर्ता, जगत्-प्रकाशक, स्मरण भाव से पापों को नाश करने वाले, अनादि तथा सुखधेष्ठ हैं, आराधना करके उन्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ, आप उपदेश द्वारा उस (आराधन-विधान) को बताने की कृपा करें। ७३-७५। इस प्रकार सूर्य की भक्ति में औत-प्रोत उसकी वाणी सुनकर महातपस्वी ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हए। ७६

ब्रह्मा बोले—हे दिजश्रेष्ठ ! 'ब्रत, उपवास एवं जप आदि किसके द्वारा सूर्य की आराधना होती है, यह जो पूँछ रहे हो, मैं बता रहा हूँ उसे सावधान होकर सुनो । ७७। सूर्य देव अनादि, परब्रह्म, सांकारिक हेय पदार्थों से रहित समस्त प्राणियों में अवस्थित, सत् और असत् से पृथक्, नित्य और संसार में व्यापक हैं इन्हीं के द्वारा सुष्टि आदि में प्रधान पुरुष में क्षीभ उत्पन्न होता है । क्योंकि ब्रह्माण्ड में क्षीभ होने के नाते ही सूर्य हुई है उसके कारण निराकार हेतु रहित, सर्वात्मा और परमेश्वर रूप यही हैं । ७८-८०। यही प्रभु, ब्रह्म तथा ईश्वरीय लीलाओं द्वारा प्रधान पुरुष रूप भी होते रहते हैं । ८१। और स्वेच्छा द्वारा विष्णु (जगत् के) पालक और उसके क्षय के लिए सद्गुरु में दृष्टि गोचर होते हैं । ८२। अतः उसी सूर्य की, जो, अनश्वर, समस्त देवों के बन्दनीय, भेदभेद स्वरूप तथा दिवाकर कहे जाते हैं, आराधना मैं कह रहा हूँ । ८३। हे विष्णु ! उस की वह गुप्त वस्त है, जिसे प्रसन्न होकर पहले ही उन्होंने स्वयं भूमि कहा है सुनो ! । ८४

श्री भविष्य महापुराण में वाहृपर्व के याज्ञवल्क्य द्वारा संवादरूपी सप्तमी कल्प में
आदित्य माहात्म्य वर्णन नामक छाँछठवाँ अध्याय समाप्त । ६।

१. कालालयमतिश्रेष्ठम् । २. आश्रयंतं महौजसम् । ३. वर्त्तयिष्ये ।

अथ सप्तष्ठितमोऽध्यायः

ब्रह्मयाज्ञवल्क्यसम्बादवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्रभाते संस्तुतो देवो मूर्तिहेतोर्मिदा पुरा । यजन्तं चापरं देवं भक्तिनन्द्रं महामतिः ॥१
प्रत्यक्षत्वमयो गत्वा रहस्यं प्रोक्तवत्त्वम् । अहं च कृतवान्प्रभन् दृष्ट्वा प्रत्यक्षतो रविन् ॥२
वेदेषु^१ च पुराणेषु साङ्गोपाङ्गेषु गीयसे । त्वमजः शाश्वतो धाता महाभूतमनुत्तमम्^२ ॥३
प्रतिष्ठितं भूतभव्यं त्वयि सर्वमिदं जगद् । चत्वारो ह्याश्रमा देव सर्वे गार्हस्थ्यमुलकाः ॥४
यजत्ते त्वामहरहर्नानामूर्तिसमाश्रिताः^३ । पिता माता हि सर्वस्य दैवतं त्वं हि शाश्वतम् ॥५
यजसे चैव कं देवमेवं चापि त्र विद्धहे । कथ्यतां मम देवेश परं कौतूहलं हि मे ॥६
इत्थं मयोक्तो भगवानिदं वचनमवर्वीत् । अवाच्यमेतद्वक्तव्यमात्मगुह्यं सनातनम् ॥७
तत्र भक्तिमतो ब्रह्मन्वय्यामीह यथातथम् । यतः सूक्ष्ममविज्ञेयमव्यक्तमचलं ध्रुवम् ॥८
इन्द्रियैरिन्द्रियर्थेष्व तर्वभूतश्च वर्जितम् । स हृन्तरात्मा भूतानां क्षेत्रज्ञश्वेति कव्यते ॥९
त्रिगुणव्यतिरिक्तोऽसौ पुरुषभ्रेति कथ्यते । हिरण्यगर्भो भगवान्सैव^४ बुद्धिरिति स्मृतः ॥१०
महानिति च योगेषु प्रधानश्वेति कथ्यते । सांख्ये^५ च पठयते शास्त्रे नामभिर्बहुभिः सदा ॥११

अध्याय ६७

ब्रह्म-याज्ञवल्क्य के संवाद का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—पहले (एकबार) मैंने सधिक्ति विनम्र होकर दूसरे देव की पूजा करते हुए भी मूर्तिमान् होने के लिए प्रातः काल मे सूर्य देव की आराधना करके उन्हें प्रत्यक्ष किया था, उसी समय में उन्होने मुझे इस रहस्य को बताने की कृपा की थी। मैंने प्रत्यक्ष देखकर उनसे पूछा था । १-२। कि देव ! साङ्गोपाङ्ग वेद, वेदांग, और पुराणों में आप को अजन्मा, सनातन एवं धाता बताया गया है एवं पृथिवी आदि पञ्च महाभूत भविष्य और भूत काल तथा उसके द्वारा उत्पन्न समस्त संसार आप में प्रतिष्ठित है । उसी भाँति ब्रह्मचारी आदि चारों आश्रम जो गृहस्थी के मूल कारण हैं, वे नानामूर्तिधारी प्रतिदिन विविध भाँति की आपकी (मूर्तियों का पूजन करते हैं) । क्योंकि आप सभी के माता-पिता एवं सनातन देवता भी हैं । ३-५। किन्तु हे देवेश ! आप किस देवता की उपासना करते हैं । यह मैं नहीं जानता । अतः इसे बताने की कृपा कीजिए । क्योंकि मुझे इसे जानने के लिए महान् कौतूहल हो रहा है । ६। इस भाँति मेरे कहने पर उन्होने कहा—यद्यपि यह किसी से न कहने योग्य, अव्यक्त, अत्यन्त गुह्य तथा सनातन विषय है, पर तुम्हारी भक्ति को देखकर मैं अवश्य उसे तथ्यरूप में तुमसे बताऊँगा । यह देव सूक्ष्म, अविज्ञेय, अव्यक्त, अचल, ध्रुव, इन्द्रियों, इन्द्रिय विषयों (रूप रसादिकों) तथा समस्त प्राणियों से पृथक्,

१. इतिहासपुराणेषु । २. महारूपम् । ३. नानावृत्तीरूपाश्रिताः । ४. स च । ५म वेदे पठयते शास्त्रे मुनिभिर्बहुभिः सदा ।

विश्वगते विश्वभूतश्च दिश्वात्मा विश्वसम्भवः^१ । धृतं चैवात्मकं येन इदं त्रैतोक्यमात्मना ॥१२
 अशरीरः शरीरेषु लिप्यते न च कर्मभिः । ममान्तरात्मा तव च पे चाण्ये देहसंज्ञकाः ॥१३
 सर्वेषां साक्षिभूतोऽसौ^२ न करोति न लिप्यते । सगुणो निर्गुणो^३ विष्णुर्जननगम्यो हृसौ स्मृतः ॥१४
 सर्वतः पाणिपादोऽसौ सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः । सर्वतः श्रुतियुक्तोऽसौ सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥१५
 विश्वमूर्धा^४ विश्वभुजो विश्वपादाक्षिनासिकः । एकश्वरति क्षेत्रेषु स्वेच्छारीं यथासुखम् ॥१६
 क्षेत्राण्यस्य शरीराणि बीजं चापि शुभाशुभन् । तत्त्वानि वेत्ति स योगात्मा अतः क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥
 अव्यक्तके पुरे शेते तेनाऽसौ पुरुषः स्मृतः ॥१७

निम्नं बहुविधं ज्ञेयं स च सर्वत्र दिव्यते । तस्मात्स बहुरूपत्वाद्विश्वरूप इति स्मृतः ॥१८
 महापुरुषशब्दं हि विभर्त्येषं सनातनः^५ । स तु वै विकियापत्रः सृजत्यात्मानमात्मना ॥१९
 आकाशात्पतितं तोयं याति स्वाद्वन्तरं यथा । मूमे रसविशेषणं तथा गुणवशात् सः ॥२०
 एक एव यथा वायुदेहे तिष्ठति पञ्चधा । एकत्वं च पृथकत्वं च तथा तस्य न सशयः ॥२१
 स्थानान्तरविशेषणं यथाग्निर्भते पराम् । संज्ञां दावाग्निकादेषु तथा देवो^६ हृसौ स्मृतः ॥२२
 यथा दीपसहन्माणि दीप एकः प्रसूयते । तथा रूपसहन्माणि स एवैकः प्रसूयते ॥२३

प्राणियों के अन्तरात्मा, क्षेत्रज्ञ, सत्त्वादि तीन गुणों से पृथक् होने के नाते प्रधान पुरुष, भगवान् हिरण्य गर्भ (साकार ब्रह्म), बुद्धिरूप, योग में महान् रूप सांख्य में प्रधान रूप, विराट रूप, विश्व का आधार, विश्वात्मा, विश्व के कारण, इन तीनों लोकों को धारण करने वाले, निराकार साकार होते हुए भी कर्मों से लिप्त न होने वाले, मेरे एवं तुम्हारे हृदय-निवासी, सभी प्राणियों के कर्म-साक्षी, सगुण-निर्गुण रूप विष्णु तथा ज्ञान द्वारा जानने के योग्य हैं । इनके चारों ओर अनेकों इाय, पैर, आँखें, शिर, मुख एवं श्ववण हैं, और आवरण की भाँति वे सभी को धेर कर अब स्थित हैं । १७-१५। यही समस्त विश्व के शिर, भुजाएँ, पैर, आँखें, नासिका रूप हैं, सभी शरीरों में इच्छा पूर्वक धूमने वाले, शरीर रूप एवं शुभाशुभ रूपी बीज भी हैं । वही योग द्वारा समस्त (शरीरों) के ज्ञान रखते हैं । अतः उसे क्षेत्रज्ञ तथा अव्यक्त पुरे में शयन करने के नाते पुरुष कहा जाता है । १६-१७। एवं विश्व के सभी स्थानों में वर्तमान एवं विविध भाँति के रूप धारण करने के नाते विश्व रूप कहे जाते हैं । १८। इसी भाँति महापुरुष एवं सनातन शब्द भी इन्हीं के लिए प्रयुक्त होता है । यही अपनी आत्मा द्वारा विकारी (सगुण) होकर अवतार धारण करते हैं । १९ आकाश से गिरे हुए जल की भाँति जो पृथिवी के इस ओर गुण विशेष के संपर्क से भिन्न भिन्न स्वाद का हो जाता है । २०। तथा शरीर में स्थित एक ही वायु की भाँति जो पौचं प्रकार के होते हुए भी एक रूप और पृथक-पृथक् रूप हैं । २१। तथा जिस प्रकार अग्नि जो किसी स्थानान्तर विशेष के कारण दावाग्नि आदि विशेष संज्ञा को प्राप्त करता है, इसी प्रकार ये देव भी एक होते हुए अनेक भाँति के कहे गये हैं । २२ और एक ही दीप द्वारा सहन्मों दीप के जल जाने की भाँति इन्हीं एक के द्वारा सहन्मों रूप उत्पन्न

१. विश्वभावनः । २. शक्तिभूतः । ३. विश्वः । ४. विश्वमूर्धिः । ५. एकं सनातनम् । ६. देवेष्वसौ स्मृतः ।

स यदा बुध्यतेत्मानं तदा भवति केवलः । एकत्वं प्रलये चास्य द्वहृत्वं स्पातप्रवर्तने ॥२५
 नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजड्डमम् । श्रुते^१ तमेकमीशानं पुरुषं बौजसंजितम् ॥२५
 अक्षयश्चाप्रमेयश्च सर्वग्राश्च स उच्यते । तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणं सर्वकारणम् ॥२६
 अव्यक्ताव्यक्तभावस्था दा सा प्रकृतिरुच्यते । तां योनिं ब्रह्मणो विद्धि योऽसौ सदसदात्मकः ॥२७
 नास्ति तस्मात्परो हृन्दः स पिता स प्रजापतिः । आत्मा सम स विज्ञेयस्तत्त्वं पूजयाम्यहृन् ॥२८
 स्वर्गताश्रापि ये केचित्तं नमस्यन्ति देहिनः । ते तत्प्रसादाद्गच्छन्ति तेनादिष्टाः^२ परां गतिम् ॥२९
 तं देवाश्रामुराश्चैव नानामतसमश्चिताः^३ । भक्त्या सम्पूजयन्त्याद्यं गतिं चैषां ददति सः ॥३०
 स हि सद्गतश्चैव निर्गुणश्चापि कथ्यते । एवं ज्ञात्वा तत्त्वानं पूजयामि सनक्षतनम् ॥
 भास्करं देवदेवेशं सर्वभूतेशमच्युतम् ॥३१

ब्रह्मोवाच

इत्पुक्तवान्पुरा पृष्ठो मया देवो दिवाकरः । पूजय त्वं यहात्मानं तपत्तं विपुलं तपः ॥३२
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे शताद्वेसाहस्रयां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि ब्रह्मयाजवल्क्यसंवादे
 सप्तमीकल्पे सूर्यमहिमवर्णनं नाम सप्तषष्ठितमोऽध्यायः । ६७।

होते हैं । २३। और जिस समय इन्हें अपने आत्मा का ज्ञान हो जाता है तब वे केवल होते हैं । इस भाँति प्रलय में अकेले और सृष्टि में भाँति-भाँति के अनेक रूप का होना इन्हें जानना चाहिए । २४। इस स्थावर और जंगम रूप जगत् में इन्हीं एक बीजरूप पुरुष के अतिरिक्त कोई नित्य नहीं है । २५। इन्हीं को अक्षय, अप्रमेय एवं सर्व व्यापक कहा जाता है । इस प्रकार इन्हीं सर्वकारण द्वारा त्रिगुणात्मक अव्यक्त तथा भूत प्रकृति उत्पन्न हुई है, जो (प्रकृति) व्रह्म की योनि है । यहीं सदसदात्मक, पिता एवं प्रजापति के रूप में है जिससे पर अन्य कोई नहीं है वही मेरी आत्मा है अतः मैं भी इनकी पूजा करता हूँ । २६-२८। और सर्वा जाने वाले सभी जीव इन्हें नमस्कार आदि करते हैं क्योंकि इन्हीं की प्रसन्नता वश उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है । २९। देवता एवं अमुर गण प्रथम इन्हीं की भक्तिपूर्वक उपासना मतमतान्तर को अपनाकर करते हैं तथा इन्हीं के द्वारा उन्हें सदगति प्राप्त होती है । ३०। इस भाँति ये सर्वगत एवं निर्गुण हैं केवल उन्हीं की अपनी आत्मा जानकर जो सनातन, भास्कर, देवाधिदेव, भूतेश एवं अच्युत हैं, मैं पूजा करता हूँ । ३१

ब्रह्मा ने कहा—इसी प्रकार मेरे पूछने पर दिवाकर देव ने मुझसे कहा था । अतः तुम भी विपुल तपस्वी ओर देवीप्यमान की पूजा करो । ३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्रह्मपर्व के ब्रह्म याजवल्क्य संवाद रूप सप्तमी कल्प में सूर्य महिमा वर्णन नामक सरसठवीं अध्याय समाप्त । ६७।

१. तं विहायैकमीशानग् । २. आदिष्टाम् । ५. नानामतमयस्थिताः ।

अथाष्टषष्ठितमोऽध्यायः

सिद्धार्थसप्तमीव्रतवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

बच्चि ते परमं देवं सर्वदैवैश्च पूजितम् । आराधयन्ति यं देवं ब्रह्मदिष्टुमहेश्वराः ॥१
 पश्चाकृति सदा ब्रह्मा नलिनैर्गुण्डेन तु । व्योमरूपं सदा देवं महादेवोर्चते रविम् ॥२
 जनतिपुष्टैर्द्विजश्रेष्ठ धूपेन विजयेन दु । वृषणं सिङ्हकं विप्रं श्रीखण्डमगरस्तथा ॥३
 कपूरं च तथा मुस्ता शर्करा सत्वचा द्विज । इत्येष विजयो धूपः स्वयं देवेन निभितः ॥४
 केशवश्चक्खरूपं तु सदा सम्पूजयेद्विविम् । नीलोत्पलदलश्यामो नीलोत्पलकदम्बकैः ॥५
 धूपेनागुहसंज्ञेन भक्तिश्छद्वासमन्वितः । मया स पृष्ठो देवेशस्तस्यैदाराधनाय दै ॥६
 कानि पुष्पाणि चेष्टानि सदा भास्करपूजने । तेन चोक्तानि पुष्पाणि स्वयं ताति निबोध मे ॥७
 मल्लिकायात्तु कुलुमैर्भोगवाज्ञायते नरः । सौभायं पुण्डरीकैश्च भजत्येव च शाश्वतम् ॥८
 १गन्धकुटजैः पुष्टैः परमैश्चर्यमनुते । भवत्यक्षयमत्यन्तं नित्यमर्चयते रविम् ॥९
 सदारपुष्टैः पूजा तु सर्वकुष्ठविनाशिनी^१ । बिल्वपत्रैश्च कुमुमैर्हर्तीं श्रियमनुते ॥१०
 अर्कम्बजा भवत्यर्थं सर्वकामफलप्रदः । प्रदद्याहूपिणीं कन्यार्मचितो बकुलम्बजा ॥११

अध्याय ६८

सिद्धार्थसप्तमी व्रत का वर्णन

ब्रह्मा बोले—मैं उन्हें उस महान् देवों को, जो सभी देवों के पूज्य तथा विष्णु, महेश्वर और मैं जिसकी उपासना करता हूँ बता रहा हूँ ॥१। उन्हीं पद्य की भाँति, आकार वाले सूर्य की कमल एवं गुग्गुल द्वारा ब्रह्मा अर्चना करते हैं तथा उन्हीं व्योम रूपी सूर्य की चमेली पूष्ट एवं विजय नामक धूप द्वारा शिव पूजा करते हैं । हे द्विज ! थ्रेष्ठ ! वृषण, लोहबान, श्रीखण्ड चन्दन, गुग्गुल, कपूर मुस्ता एवं शक्कर को विजय धूप कहा जाता है, इसे देव ने स्वयं बताया भी है ॥२-४। नील कमल दल के समान श्यामल विष्णु नील कमलों एवं गुग्गुल द्वारा भक्ति पूर्वक चक्र रूपी सूर्य की उपासना करते हैं । सूर्य की आराधना के लिए कौन फूल चाहिए मैंने एकबार विष्णु जी से पूछा उन्होंने जो स्वयं उत्तर दिया है उन्हें सुनो ! मल्लिका (बेला) पुष्टों द्वारा उपासना करने पर मनुष्य समृद्धिशाली होता है और कमल द्वारा उपासना करने पर सौभाग्य, कुटज (कुरैया) पुष्टों द्वारा उपासना करने पर महान् ऐश्वर्य एवं (सूर्य की) नित्य उपासना करने पर अक्षय (संपत्ति) प्राप्त होती है ॥५-९। मदार के पुष्टों द्वारा की गई पूजा से सभी भाँति के कुष्ठ नष्ट हो जाते हैं । उन्हें विल्व पत्र और रक्तपुष्ट समर्पित करने से असंख्य की (सम्पत्ति) मदार पुष्टों की माला धारण करने से समस्त मनोरथ सफल, बकुल की माला समर्पित करने

१. सुगन्धकुञ्जकैः । २. सर्वकुष्ठविनाशिनी ।

किंशुकैर्चितो देवो न पीडयति भास्करः ! पूजितोऽगस्त्यकुसुमैरानुकूल्यं प्रयच्छति ॥१२
करवीरैरतु विप्रेन्द्र सूर्यस्पानुचरो भवेत् । तया 'मुद्गरपुष्टैश्च समभ्यर्च्य दिवाकरम् ॥१३
हंसयुक्तेन यानेन रवैः सालोक्यतां व्रजेत् ! शतपुष्पसहस्रैस्तु पूषसालोदण्डां व्रजेत् ॥
बकपुष्टैर्द्विजथेष्ठ थाति भानुसलोकताम्' ॥१४

चतुःसमेन गन्धेन समभ्यर्च्य दिवाकरम् । पञ्चमूतालयस्थानमानुयानात्र संशयः ॥१५
देवाभारं तु स्मार्ज्य भक्त्या यस्तु प्रलेपयेत् । स रोगान्मुच्यते क्षिप्रं द्रव्यलाभं च विन्दति ॥१६
तस्य चायतनं भक्त्या गैरिकेणोपलेपयेत् । प्राप्युपन्महतीं लक्ष्मीं गोगैश्चापि प्रगुण्यते ॥१७
अष्टादशेह कुष्ठानि ये तान्ये व्याधयो नृणाम् । प्रलयं यान्ति ते सर्वे मृदा यद्युपलेपयेत् ॥१८
विलेपनानां सर्वेषां रक्तचन्दनमुत्तमम् । पुष्पाणां करवीराणि प्रशस्तानि प्रचक्षते ॥१९
नातः परतरं किञ्चिद्भ्रात्यवतस्तुष्टिकारकम् । किं तस्य न भवेल्लोके यस्त्वेभिः स्वर्वपेद्रविम् ॥२०
करवीरैः पूजयेद्यो भास्करं श्रद्धयान्वितः । सर्वकामसमृद्धोऽसौ सूर्यकामवासप्रयाद् ॥२१
विलेप्यायतनं यस्तु कुर्यान्मण्डलकं शुभम् । स सूर्यलोकमासाद्य मोदते शाश्वतीः समाः ॥२२
एकेनात्य भवेदर्थे द्वाभ्यामारोयमशुते । त्रिभिः सन्तत्यविच्छिन्ना चतुर्भिर्भागवीरैँ लभेत् ॥२३

से रूपवती कन्या, किणुक के पृष्ठों को समर्पित करने से भास्कर की प्रसन्नता, अगस्त्य पुष्पों को समर्पित करने से मन इच्छित वस्तु प्राप्त होती है । १०-१२। हे विप्रेन्द्र ! करवीर के पृष्ठों को समर्पित करने पर वह उनका अनुचर हो जाता है । कुँदरूप के पृष्ठों को समर्पित करने पर हंस वाले विमान पर बैठकर रवि के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है । हे द्विज थेष्ठ ! शतपुष्पा (साँफ) के सहस्र पुष्पों को समर्पित करने पर पूपा सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है एवं बक पुष्पों को समर्पित करने पर स्थान का सालोक्य मोक्ष प्राप्त होता है । १३-१४। चार भाँति के गन्धों द्वारा सूर्य की अर्चना करने पर पाँच महाभूतों का लय स्थान प्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं । १५। मन्दिर को झाड़ पोछ कर उसे गोमय आदि से शुद्ध करने पर रोग-मुक्ति एवं शीघ्र सम्पत्ति प्राप्त होती है । १६। मन्दिर की भक्तिपूर्वक गोरु के रंग से रंगाई करने पर भी अत्यन्त लक्ष्मी तथा रोग-मुक्ति प्राप्त होती है । १७। भिट्ठी द्वारा मन्दिर की जुद्धि करने पर मनुष्यों के अठारह प्रकारके कुष्ठ तथा अन्य रोग नष्ट हो जाते हैं । १८। लेपनों में रक्त चन्दन का लेपन तथा पुष्पों में करवीर (कनेर) के पुष्पों को उत्तम बताया गया है । १९। अतः सूर्य को अत्यन्त प्रसन्नता प्रदान करने वाली इन वस्तुओं से पृथक् कोई अन्य वस्तु नहीं है क्योंकि इन वस्तुओं द्वारा जो सूर्य की अर्चना करता है, उसे किस वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है अर्थात् वह सभी कुछ प्राप्त करता है । २०। इसलिए श्रद्धा समेत जो करवीर पुष्पों द्वारा सूर्य की पूजा करता है, उसे समस्त मनोरथ की सफलता पूर्वक सूर्य की प्रियता प्राप्त होती है । २१। मन्दिर को लेपनादि से शुद्ध कर उसमें जो सौन्दर्य पूर्ण मण्डल बनाता है, वह सूर्य लोक की प्राप्ति करके अनेकों वर्ष वहाँ निवास करता है । २२। इस प्रकार एक मण्डल की रचना करने पर धन, दो मण्डल की रचना करने पर आरोग्य, तीन मण्डल की रचना करने पर वंश

१. कुन्दुरपुष्टैश्च । २. भीमसलोकताम् । ३. उपलेप्यालयं यस्तु । ४. भार्गवीं जामदग्न्योपार्जि-
तत्वात्पृथ्वीमित्यर्थः । वस्तुतस्तु—लक्ष्मीमित्यर्थ एव ज्यायात्, पुराणेषु तस्यां भृगोरूपतिर्वर्णनात् ।

पञ्चभिर्विवुलं धन्यं षड्भिरायुर्बलं यशः । सप्तमण्डलकारी स्यान्मंडलाधिपतिर्नरः ॥२४
 आयुर्धनसुत्युक्तः सूर्यलोके महीयते । घृतप्रदीपदानेन 'क्षुप्ताञ्जायते नरः ॥२५
 कटुतैलप्रदानेन स शत्रुञ्जयते नरः । तिलतैलप्रदानेन सूर्यलोके महीयते ॥२६
 मधूकतैलदानेन^३ सौभाग्यं परम व्रजेत् । संपूज्य विधिवदेवं पुण्यधूपादिभिर्दृधः ॥२७
 पथाशक्तया ततः पश्चात्नैवेद्यं भक्तितो न्यसेत् । पुण्याणां प्रवरा जाती धूपानां तिजयः परः ॥२८
 गन्धानां कुड्कुमं श्रेष्ठं लेपानां रक्तचन्दनम् । दीपदाते घृतं श्रेष्ठं नैवेद्ये मोदकः दरः ॥२९
 एतैस्तुष्टिं देवेशः सान्निध्यं चाधिगच्छति । एवं संपूज्य विधिवत्कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥३०
 प्रणम्य शिरसा देवं देवदेवं दिवाकरम् । सुखासीनस्ततः पश्येद्वेरभिमुखे स्थितः ॥३१
 एकं सिद्धार्थकं कृत्वा हस्ते पानीयसंषुट्ठम् । कामं यथेष्टं हृदये कृत्वा तं वाञ्छितं नरः ॥३२
 पिबेत्सतों तं विप्र अस्त्पृष्टं दशनैः सकृत् । द्वितीयाणां तु सप्तम्यां हौ गृहीत्वा तु सुव्रत ॥३३
 तृतीयाणां तु सप्तम्यां प्रहीतव्यास्त्रयोऽपि च । ज्ञेयाश्रतुर्थ्या चत्वारः पञ्चम्यां दञ्च एव हि ॥३४
 दृष्टि पिबेच्चापि षष्ठ्यां तु इतीयं नैविकी श्रुतिः । सप्तम्यां सप्तमायां तु सप्त चैव पिबेत्तरः ॥३५
 आदौ प्रभृति विज्ञेयो मन्त्रोऽयमभिमन्त्रणे । सिद्धार्थकस्त्वं हि लोके सर्वत्र श्रूयसे यथा ॥
 तथा मामपि सिद्धार्थमर्थतः कुरुतां रविः ॥३६

अविच्छेद, (संतान परम्परा) चार मण्डल से पृथ्वी, पाँच से अत्यन्त धन, छह मण्डलों से आयु, बल एवं वंश और सात मण्डलों की रचना करने पर वह मण्डलेश्वर होकर आयु, धन एवं पुत्रों की प्राप्ति करके (कालान्तर में) सूर्य लोक की प्राप्ति करता है । उसी भाँति धी के दीप प्रदान करने से मनुष्य आयुष्मान् होता है । २३-२५। कड़ुके तेल के दीप प्रदान करने से शत्रु-विजय, तिल के तेल में दीप प्रदान करने से सूर्य लोक में प्रतिष्ठा एवं मधूक (महवे) के तेल के दीपक प्रदान करने पर महान् सौभाग्य प्राप्त होता है । इस भाँति विधि पूर्वक पुण्यादि द्वारा उनकी पूजा करके पुण्यों में जाती (चमेली), धूपों में विजय, गंधों में कुंकुम, लेपों में रक्त चन्दन का लेप दीपदान में धी का दीपक और नैवेद्यों में मोदक (लड्डू) उत्तम बताये गये हैं । २६-२९। क्योंकि इन्हीं द्वारा पूजित होने पर सूर्य अत्यन्त प्रसन्न होते हैं एवं उसे उनका सविधान भी प्राप्त होता है । इस प्रकार उनकी पूजा एवं प्रदक्षिणा करके शिर से प्रणाम और उनके सम्मुख भली भाँति बैठकर उन्हें अपने सामने देखे । ३०-३१। पश्चात् राई का एक दाना और जल हाथ में लेकर अपने मनोरथ का स्मरण हृदय में करते हुए उसे पान करें पर, उस जल का स्पर्श दाँतों से न होने पाये इसी प्रकार द्विसरी सप्तमी में दो, तीसरी में तीन, चौथी में चार, पाँचवीं में पाँच, छठवीं में छह और सातवीं में सात दानों समेत उस जल के पान करना चाहिए । ३२-३५। प्रत्येक बार उसे इसी सिद्धार्थकस्त्वं हिलोके, आदि मंत्र से अभिमन्त्रित भी कर

१. चायुष्मान् । २. मधूकतैलदीपेन भोगभाग्यपरं सुखम् ।

ततो हविरूपस्वृश्य जपं कुर्याद्यथेपितम् । हृताशनं च जुहुयाद्विधद्वष्टेन कर्मणा ॥३७
एवमेव परः कार्या सप्तम्यः सप्त सर्वदा । एकात्प्रभृति कार्या सा सर्वदोदकसप्तमी ॥३८
एकं तोयेन सहितं द्वौ चापि धृतसंयुतौ । श्रीस्तथा मधुना सार्धं दधना चतुर एव च ॥३९
गुक्तान्नप्रयसा पञ्च षट् च गोमयसंयुतान् । पञ्चाङ्गेन वै सप्त पिवेत्सद्वार्थकान्द्विज ॥४०
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्सर्वप्रसप्तमीम् । बहुपुत्रो बहुधनः सिद्धार्थश्चापि सर्वदा ॥४१
इह लोके नरो दिप्र प्रेत्ययाति विभावसुम् । तस्मात्सम्पूजयेद्देवं विधिनानेन भास्करन् ॥४२

इति श्रीभविष्ये महपुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मणे पर्वणि सप्तमीकल्पे
सिद्धार्थसप्तमीव्रतवर्णनं नामाष्टषष्ठितमोऽध्यायः । ६८।

अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

स्वभदर्शनवर्णनम्
ब्रह्मोवाच

सप्तम्यामुषितो विप्रः स्वभदर्शनमुच्चते । स्वस्त्रे दृष्टे च सप्तम्यां पुरुषो नियतवतः ॥१
सप्तम्य विधिवत्सर्वं जपहोमादिकं क्रमात् । पूजयित्वा दिनेशं तु यथाविभवमात्मनः ॥२

लेना चाहिए । ३६। पश्चात् धी का स्पर्श करके मन इच्छित जप करके तदुपरात्त विधि पूर्वक हवन करना चाहिए । ३७

इसी प्रकार से सातों सप्तमी में करना बताया गया है। इसका दूसरा भी विधान है। पहली सप्तमी में श्वेत राई का एक दाना जल के साथ, दूसरी में दो धी के साथ, तीसरी में तीन शहद के साथ, चौथी में चार दही के साथ, पाँचवीं में पाँच अन्न एवं दूध के साथ, छठवीं में छह गोमय के साथ और सातवीं सप्तमी में सात दाने पंच गव्य के साथ पान करना चाहिए । ३८-४०।

इस विधि द्वारा जो सर्वप (राई) सप्तमी का व्रत-विधान करता है, बहुत पुत्रों, बहुत धनों की प्राप्ति पूर्वक उसका सदैव के लिए मनोरथ सिद्ध हो जाता है । ४१। हे विप्र ! इसभाँति इस लोक में मनुष्य मनोरथ सफल करके (अंत में) सूर्य लोक की प्राप्ति करता है, अतः इसी विधान-द्वारा तुम भी सूर्य की उपासना करो । ४२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मण पर्व के सप्तमी कल्प में सिद्धार्थ सप्तमी वर्णन
नामक अड़सठवाँ अध्याय समाप्त । ६८।

अध्याय ६९ स्वप्न दर्शन का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—सप्तमी में उपवास पूर्वक व्रत-विधान करने वाले ब्राह्मण को नियत दर्शन होता है ऐसा बताया गया है। सप्तमी में स्वप्न दर्शन करने वाले उस नियत व्रती मनुष्य को चाहिए कि विधान

ततः शयीत शयने देवदेवं विचिन्तयन् । सम्प्रसुप्तो यदा पश्येदुदयन्तं दिवाकरम् ॥३
 शक्तध्वं तथा चन्द्रं तस्य सर्वाः समृद्धयः । दृश्यं जनं तथा शक्तिं^१ ल्राविगोवेणुनिस्वनाः ॥४
 श्वेताब्जचामरादर्शकनकासिसुतोद्भवम् । रुधिरस्य सुर्ति सेकं पानं चैश्वर्यकारकम् ॥५
 श्वेतायाः पञ्चपूताया दर्शनं वृद्धिकारकम् । प्रजापतेर्घृतात्कल्प्य दर्शनं पुत्रदं स्मृतम् ॥६
 शस्तवृक्षाभिरोहश्च किप्रमैश्वर्यकारकः । दोहनं महिषीर्सीहीगोदेनूनां स्वके युखे ॥७
 धनुषां च शराणां च नाभौ च द्रुतर्निर्भातिः । अभिहन्यात्स्वयं खादेत्सिहान्ना भुजांस्तथा ॥८
 स्वांगशीर्द्धे^२ हुतवहे तस्य श्रीरप्रतः स्थिता । राजते हैमने पात्रे यो भुक्ते पायसं द्रिजः ॥९
 एद्यपत्रे यथा विप्रस्तस्य^३ जन्तोर्बलं भवेत् । द्वूते वादेऽथ वा युद्धे विजयो हि सुखावहः ॥१०
 अग्रेस्तु ग्रसनं विप्र आग्रेयं वृद्धिकारकम् । गात्रस्य ज्वलनं विप्र शिरोदेधश्च भूतये ॥११
 माल्याम्बराणां^४ शुक्लानां शस्तानां शुक्लरक्षिणाम् । सदालाभं प्रशंसन्ति तथा विष्णानुलेपनम् ॥१२
 स्वाङ्गस्य कर्तने क्षेपे रथयाने प्रजागमः । नानाशिरोबाहुता च हस्तानां कुरुते श्रियम् ॥१३
 अगम्यागमनं द्वै शोकमध्ययनं तथा । देवद्विजजनाचार्यगुरुवृद्धतपस्त्विनः ॥१४
 यद्यद्विन्ति तत्सर्वं सत्यमेव हि निर्दिशेत् । प्रशस्तदर्शनं चैव अभिषेको नृपक्षियाः ॥१५

पूर्वक जप होमादि कर्म क्रमणः समाप्त करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार देवाधि देव सूर्य की पूजा करे और उपरात शयनासन पर देव-देव की चिन्ता करते हुए शयन करें स्वप्न में यदि उदय कालीन सूर्य इन्द्र ध्वजा एवं चंद्र को देखता है तो उसे सभी समृद्धियां प्राप्त होती हैं, इसी भाँति दर्शनीय और बलवान् पुरुष, माला पहने गाय, वेणु की धवनि, श्वेत कमल, चामर, दर्पण, सुवर्ण, तलवार, पुत्र जन्म, रुधिर का बहना सिचन या पान करना, देखने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । १-५। श्वेतवर्ण के पूर्व दर्शन से वृद्धि, धी में भीगे हुए प्रजापति के दर्शन से पुत्र एवं अच्छे वृक्षों पर चढ़ाना, देखने से शीघ्र ऐश्वर्य प्राप्त होता है । तथा इसी प्रकार अपने मुख से भैस, सिंहिनी और गायों के दुर्घे जाने को देखने से भी । ६-७। नार्मि में धनुष या बाणों का शीघ्र प्रवेश होकर निकल जाना अथवा इनके द्वारा सिह, गाय एवं सर्पों का वध करने या स्वयं इनका भक्षण करने एवं अपने शिर को अग्नि में डालने को देखने से शीघ्र लक्ष्मी प्राप्ति होती है । इसी भाँति चाँदी के पात्र या सुवर्ण के पात्र एवं कमल पत्र में खीर के भोजन करने को देखने से बल तथा जुए, वाद विवाद और युद्ध में विजय देखने से अत्यन्त सुख, अग्नि के भक्षण से जटराग्नि की वृद्धि, शरीर के जलने या शिर के बंधन से ऐश्वर्य, वस्त्र एवं माला, शुद्ध वर्ण के पक्षी तथा शरीर में विष्णा (मल) लगने से अत्यन्त लाभ, अपने अंगों के कटने, उन्हें दूर बहा देने एवं रथ पर बैठने से संतान की उत्पत्ति, अनेक शिर, बाहु एवं हाथों के होने से अगम्या स्त्री का संभोग, शोक और अध्ययन करने से सम्पत्ति की प्राप्ति होती है । ८-१४। इसी प्रकार देवता, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु, वृद्ध और तपस्वी स्वप्न में जो कुछ कहते हैं उसे सत्य मानना चाहिए । राजा के अभिषेक से सौम्य दर्शन, शिरछेदन या उसके कई टुकड़े होने से राज्य

१. शक्तम् । २. आग्नु सीमागतश्चेव । ३. ततश्वन्द्रोपमो भवेत् । ४. सुरावारणशल्याना वस्त्राणा युक्तप्रक्षिणाम् ।

स्थाद्वाज्यं शिरश्छेदेन बहुधा स्फुटितेन तु । रुदितं हृषसम्प्राप्तयै राज्यं निगडबन्धने ॥१६
 तुरङ्गं वृषभं पद्मं राजानां श्वेतकुञ्जरम् । महैश्यर्यमास्त्रोति योभीकश्चाधिरोहति ॥१७
 प्रसन्नानो ग्रहांस्तारा महीं च परिवर्तयन् । उन्मूलयन्तर्वतांश्च राज्यलाभमवास्त्र्यात् ॥१८
 देहान्तिष्कान्तिरन्त्राणां तैर्वा वृक्षस्य वैष्टनम् । पातः समुद्रसरितामैश्वर्याणि सुखानि च ॥१९
 उदांधं सरित वापि तीर्त्वा पारं प्रयाति च । अद्विं लङ्घयते श्वापि भवन्त्यर्थं जायायुषः ॥२०
 उज्ज्वला स्त्री विशेषङ्गमाशोर्वादपरा: स्त्रियः । भवत्यर्थामः शीघ्रं कृमिभिर्यदि भक्षयते ॥२१
 स्वप्ने स्वन इति ज्ञातं दृष्टप्रकथनं तथा । मङ्गलानां च सर्वेषां शुभं दर्शनमेव च ॥२२
 संयोगश्चैव मङ्गल्येरारोग्यधनकारकः । ऐश्वर्यराज्यलाभाय यस्मिन्स्वप्नं उदाहृतः ॥२३
 तंदृष्ट्यै रोगिणो रोगान्मुच्यन्ते नात्र संशयः । न स्वप्नं शोभनं दृष्ट्वा स्वप्यात्प्रातश्च कीर्तयेत् ॥
 राजभोजकविश्रेष्ठः शुद्धिभ्यश्च शुचिर्नरः ॥२४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्छसाहस्र्यां संहितायां ज्ञाहे पर्वणि सप्तमीकल्पे
 स्वप्रदर्शनवर्णनं नामैकोनसप्ततिमोऽध्यायः ॥६९।

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

सर्षपसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

ततो मध्याह्नसमये श्वातः प्रयतमानसः । तथैव देवान्विधिवत्पूजयित्वा यथासुखम् ॥१

हृष्टे रुदन एवं वेणी में बंधने से राज्य-लाभ, घोड़े, बैल, कमल, राजा, श्वेत वर्ण के गज, एवं अभीक (कामुक, स्वामी एवं निर्दीयी) के आरोहण करने से महान ऐश्वर्य की प्राप्ति होती । १५-१७। यह एवं तारा निगलने पृथिवी के उलटने और पर्वतों के उखाडने से राज्य-लाभ, देह से अति निकालने अथवा उसे वृक्षों में लपटने, समुद्र या नदी में गिरने से ऐश्वर्य एवं सुख समुद्र या नदी को पार कर पुनः वापस आने और पर्वत के लाँधने से जय तथा आयु की प्राप्ति होती है । १८-२०। उज्ज्वल वर्ण की स्त्री का अंग में प्रविष्ट होने, आशीर्वाद, देती हुई स्त्रियाँ और कोई द्वारा भक्षित होने से शीघ्र धन की प्राप्ति होती है । २१। स्वप्न में स्वप्न देखने का ज्ञान होने अथवा जाग्ने पर स्वप्नों के कहने, मांगलिक दर्शन, मंगल होने आदि देखने से आरोग्य एवं सम्पत्ति का लाभ होता है । एवं जिस स्वन का फल ऐश्वर्य पूर्णं राज्य तथा लाभ बताया गया है यदि उसे रोगी देखे तो निरिचत उसका रोग नष्ट हो जाये । इस प्रकार सुन्दर स्वप्न को देखकर फिर निद्रित न होना चाहिए और प्रातः काल स्नान आदि से शुद्ध होकर सदाचारी राजा भोजक एवं ब्राह्मणों को उसे सुनाना चाहिए । २२-२४

इति श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में स्वप्न दर्शन वर्णन

नामक उनहतरवाँ अध्याय समाप्त । ६९।

अध्याय ७०

सर्षप सप्तमी वर्णन

ब्रह्मा बोले—पश्चात् मध्याह्न में स्नान संध्या से निवृत्त होकर विधान पूर्वक गूर्ध एवं अन्य

सम्यक्कृतजपो मौनी नरो हुतहुतशनः । निष्कस्य देवायतनाद्वौजकान्भोजयेत्तः^१ ॥२
तथा पुराणनिदुष्ट इतिहासविदो द्विजान् । तथा वेदविदश्चैव दिव्यानभौमांश्च सुन्नतः ॥३

रक्तानि वस्त्राणि तथा च गावः सुगन्धमाल्यादि हृदिष्यमन्नम् ।

पयस्विनी चाप्यथ भोजकाय देया तथान्यत्रियमात्मनो यत् ॥४

भवंदलाभो ददि भोजकानां विप्रास्तदार्हित्त जयोपजीविनः ।

ये भज्वविद्ब्राह्मणाठकाश्च ये येऽपि सामाध्यनेषु युक्ताः ॥५

प्रथमं भोजका भोज्याः पुराणविदुषैः^२ सह । तेषामृते मन्त्रविदस्तथा वेदविदो द्विजाः ॥६

कृत्वैवं सप्तमीः सप्त नरो भक्त्या समन्वितः ! श्रद्धानोडनसूयश्च अनन्तं प्राप्नुयात्सुखम्^३ ॥७

दशानामश्वेधानां कृतानां यत्कलं लभेत् । तत्कलं सप्तमीः सप्त कृत्वा प्राप्नोति भानवः ॥८

दुष्प्राप्य नास्ति तत्त्वोके अनया यज्ञ लभ्यते । न च रोगस्यसौ लोके अनया यो न शास्यति ॥९

कुष्ठानि चापि सर्वाणि दुरुच्छेद्यान्यपि ध्रुवम् ! अपयान्ति यथा नागा गरुडस्य भयर्तदताः ॥१०

ब्रतनियमतपोभिः सप्तमीः सप्तएवं विधिवदिह हि कृत्वा मानवो धर्मरीलः ।

श्रुतधनसुतभाग्यारोग्यपुण्यस्तेतो ब्रजति तदनुलोकं शाश्वतं तिग्मरक्षमः ॥११

इमं विधिं द्विजश्रेष्ठं श्रुत्वा कृत्वा च भानवः । सहवर्णिम् स विशेषान्नात्र कार्या विचारणा ॥१२

देवताओं की पूजा, जप एवं मौन रहकर हवन का कार्य समाप्त करके मन्दिर से बाहर भोजक ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । १-२। तदुपरांत पौराणिक, ऐतिहासिक तथा वैदिक ब्राह्मणों को भोजन कराना बताया गया है । ३। हे सुव्रत ! पुनः रक्त वस्त्र, गाय, सुगन्ध (इत्र) माला, हविष्यान्न पयस्विनी गाय और अपनी अत्यन्त प्रिय वस्तु भोजक को समर्पित करे । ४। यदि भोजकों के अभाव में ज्येष्ठजीवी ब्राह्मण हों जो मंत्रवेत्ता, वेदधाठी एवं सामवेद का पाठन करते हैं तो उनके स्थान पर नियुक्त करें । ५। सर्वप्रथम भोजकों को पौराणिकों के साथ भोजन कराने का विधान है और उनके अभाव में मंत्रवेत्ता एवं वैदिक ब्राह्मणों का विधान है । ६। इस प्रकार श्रद्धा और असूया रहित होकर सातों सप्तमी का विधान करके मनुष्य अनन्त सुख की प्राप्ति करता है । ७। दश अश्वमेध यज्ञ के करने से जो फल प्राप्त होता है, उसे सातों सप्तमी के (ब्रत-विधान) द्वारा मनुष्य को प्राप्त होना बताया गया है । ८। इस लिए इस विधान को सुसम्पन्न करने वाले व्यक्तिके लिए कोई वस्तु दुष्प्राप्य इस जगत् में नहीं रहती है तथा कोई ऐसा रोग नहीं है जिसकी इसके द्वारा शान्ति न हो सके । ९। सभी भाँति के कुष्ठ रोग जो दुर्निवार माने गये हैं वे गरुड़ से भयभीत नाग की भाँति (इसके द्वारा) अवश्य नष्ट हो जाते हैं । १०। ब्रत, नियम एवं तप के द्वारा इन सातों सप्तमी के विधान करने के नाते वह धार्मिक मनुष्य सुत, सौभाग्य, आरोग्य एवं पुण्य की प्राप्ति करके पश्चात् तीक्ष्ण रक्षित (सूर्य) के लोक की प्राप्ति करता है । ११

हे द्विजश्रेष्ठ ! इस विधान के सुनने और सुसम्पन्न करने से मनुष्य सूर्य में प्रविष्ट होता है, इसमें विचार करने कीआवश्यकता नहीं है । १२। इसीलिए देव, मुनि तथा पौराणिक आदि सभी लोग इसका

१. नरः । २. आषोऽयं पाठः सर्वेषु पुस्तकेषूपलभ्यते । ३. फलम् ।

मुरेर्वा मुनिभिर्दापि पुराणजैरिदं श्रुतम् । सर्वे ते परमात्मानं पूजयन्ति दिवाकरम् ॥१३
 इदमाख्यानमार्थेण यन्मयभिहितं तत्वं । सूर्यभक्ताय दातव्यं नेतराय^१ कदाचन ॥१४
 यश्चैतच्छावयेभित्यं यश्चैतच्छृण्याप्नः । स सहस्रार्चिं देवं प्रविशेशात्र तंशयः ॥१५
 मुच्येदात्मस्तथा रोगाच्छ्रवेमामादितः कथाम् । जिज्ञासुर्लभते कामान्भक्तः^२ सूर्यगतिं लभेत् ॥१६
 क्षेमेण गच्छतेऽध्वानं यस्त्वदं पठतेऽध्वनिः । यो यं प्रार्थदते कामं स तं प्राप्नोति च ध्रुवम् ॥१७
 एकान्तभावोपगत एकान्ते नुसमाहितः । प्राप्यैतत्परमं गुह्यं भूत्वा सूर्यहस्ते नरः ॥१८
 प्राप्नोति परमं स्थानं भास्करस्य महात्मनः । लग्नगर्भा प्रमुच्येत गर्भिणी जनयेत्सुतम् ॥१९
 वन्ध्या प्रसदभाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितम् । एवमेतन्ममाख्यातं^३ भास्करेणःस्मितौजसा ॥
 मयापि तत्र माख्यातं भक्त्या भानोरिदं द्विज ॥२०
 पूजनीयस्त्वया भानुः सर्वपापेषान्तदे । स हि धाता^४ विधाता च सर्वस्य जगतो गुहः ॥२१
 उद्यन्यः कुरुते नित्यं जगद्वितिमिरं करैः । द्वादशात्मा स देवेशः प्रीयतां तेऽदितेः सुतः ॥२२
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्रलयां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तसमीकल्पे
 आदित्यमाहत्म्ये सर्षपसप्तमीवर्णनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०।

ज्ञान रखते हुए परमात्मा सूर्य की पूजा करते हैं । १३। इस प्रकार इस आर्थेय (ऋषियों) के कहे हुए उपाख्यान को जो सूर्य के भक्तों के अतिरिक्त किसी को कभी देने (बताने) योग्य नहीं है, मैंने तुम्हें बता दिया । १४। इस लिए जो मनुष्य इसे नित्य सुनता या शुनाता है, वह सहस्र किरण वाले (सूर्य) में निःसंदेह प्रविष्ट होता है । अर्थात् सायुज्य मोक्ष प्राप्त करता है । १५। एवं इस कथा को आरंभ से सुनकर आर्त रोग-मुक्त, जिज्ञासु सफल मनोरथ और भक्त सूर्य की गति प्राप्त करते हैं । १६। इस भाँति यात्री गण भी मार्ग में इसके द्वारा अपने मार्ग को गंगलमय बनाते हुए जिस जिस वस्तुओं की अभिलापा करते हैं, उसे वे निश्चित प्राप्त होते हैं । १७। यदि इस उत्तम और गुह्य (व्रत) की प्राप्ति कर मनुष्य, दृढ़ भावना पूर्वक एकान्त स्थान में भली भाँति ध्यान लगाकर (सूर्य का) व्रत विधान करे तो उसे महात्मा भास्कर के परम स्थान की प्राप्ति होती है और प्रसव करने वाली (स्त्री) प्रसव-पीड़ा से शीघ्र मुक्ति एवं गर्भिणी पुत्र उत्पन्न करती है । १८-१९। एवं सूर्य के अमेय तेज द्वारा वंध्या (स्त्री) प्रसव-पीड़ा से शीघ्र मुक्ति एवं गर्भिणी पुत्र उत्पन्न करती है । २०। यदि इस उत्तम और गुह्य (व्रत) की प्राप्ति कर मनुष्य, दृढ़ भावना पूर्वक एकान्त स्थान में भली भाँति ध्यान लगाकर (सूर्य का) व्रत विधान करे तो उसे महात्मा भास्कर के परम स्थान की प्राप्ति होती है और प्रसव करने वाली (स्त्री) प्रसव-पीड़ा से शीघ्र मुक्ति एवं गर्भिणी पुत्र उत्पन्न करती है । २१। तथा उदय होते ही अपनी किरणों द्वारा जो समस्त जगत् को अंधेरे से मुक्त करता है, वही द्वादशात्मा, देवाधिदेव एवं अदिति पुत्र सूर्य तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हों । २२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य माहत्म्य में
 सर्षप सप्तमी वर्णन नाभक सत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥७०।

१. नाभक्ताय । २. भक्त्या सर्वगतिं लभेत् ।

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

ब्रह्मप्रोक्तसूर्यनामवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नामभिः संस्तुते देवो धैर्यः परितुष्टिः । तानि ते कीर्त्यास्तेष्य यथावदनुपूर्वेशः ॥१
नमः सूर्याय नित्याय रदये कार्यभानवे । भास्कराय मतञ्जाय मार्तण्डाय विवस्वते ॥२
आदित्यायादिदेवाय नमस्ते रश्मिमालिने । दिवाकराय दीप्ताय अग्रदे निहिराय च ॥३
प्रश्नकराय मित्राय नमस्तेऽदितिसम्भव । ननो गोप्तये नित्यं दिशां च यतये नमः ॥४
ननो धत्रे विधात्रे च अर्यम्णे वरुणाय च । पूज्णे भगाय मित्राय पर्जन्यायांशवे नमः ॥५
नमो हितकृते नित्यं धर्माय तपनाय च । हरये^१ हरिताश्वाय विश्वस्य पतये नमः ॥६
विष्णवे ब्रह्मणे नित्यं ऋग्बकाय तथात्मने । नमस्ते सप्तलोकेश नमस्ते सप्तसप्तये ॥७
एकस्मै हि नमस्तुभ्यमेकचक्ररथाय च । ज्योतिषां पतये नित्यं सर्वप्रणाभृते नमः ॥८
हिताय सर्वभूतानां शिवार्थात्हराय च । नमः पद्मप्रबोधाय नमो वेदादिभूतयै^२ ॥९
काधिजाय^३ नमस्तुभ्यं नमस्तारामुताय च । भीमजाय नमस्तुभ्यं पावकाय च दै नमः ॥१०
धिषणाय^४ नमोनित्यं नमः कृष्णाय नित्यदा । नमोऽस्त्वदितिपुत्राय ननो लक्ष्याय नित्यशः ॥११
एतान्यादित्यनामानि मया प्रोक्तानि वै पुरा । आराधनाय देवस्य सर्वकामेन सुव्रत ॥१२

अध्याय ७९

ब्रह्मप्रोक्त सूर्य-नामों का वर्णन

ब्रह्मा बोले—जिन नामों के उच्चारण द्वारा स्तुति करने पर सूर्य प्रसन्न होते हैं, क्रमशः उन्हें मैं बता रहा हूँ । १

सूर्य, रवि, कार्यभानु, भास्कर, मतंग, मार्तण्ड, विवस्वान को नित्य नमस्कार है । २। आदित्य, आदि देव, रश्मिमाली, दिवाकर, दीप्त, अग्नि, मिहिर को नित्य नमस्कार है । ३। प्रभाकर, मित्र, अदिति-संभव, गोप्ति, दिशापति को नित्य नमस्कार है । ४। ध्राता, विधाता, अर्यमा, वरुण, पूजा, भग, मित्र, पर्जन्य, अंशु को नित्य नमस्कार है । ५। हितकृत, धर्म, तपन, हरि, हरिताश्व, विश्वपति को नित्य नमस्कार है । ६। ब्रह्मा, ऋग्बक, आत्मा, सप्तलोकेश, सप्तसप्ति को नित्य नमस्कार है । ७। एक एक चक्ररथ, ज्योतिष्पति, सर्वप्राणियों के पौषण करने वाले तुम्हें नित्य नमस्कार है । ८। समस्त प्राणियों के हितैषी शिव, अर्तिहर, पद्म-प्रबोधक, वेदादिभूति भीम पुत्र तारासुत, कविज (ब्रह्मपुत्र), पावक, धिषण, कृष्ण, अदिति पुत्र एवं लक्ष्य को नित्य नमस्कार है । ९-१। इस प्रकार हे सुव्रत ! सूर्य के इन नामों को जो सभी भाँति के मनोरथ सफल करने के लिए सूर्य देव की आराधना के लिए बताये गये हैं, मैंने पहले ही

१. तुम्यम् । २. हराय । ३. द्वादशमूर्तये । ४. भीमजाय, कविजाय । ५. विकटाय ।

सायं प्रातः शुचिर्सूत्वा यः पठेत्सुसमाहितः । स प्राप्नोत्यखिलान्कामान्यथाहृं प्राप्तवान्पुरा ॥१३
 प्रसादात्तस्य देवस्य भास्करस्य महात्मनः । श्रीकामः श्रियमःज्ञोति धर्मर्थीं धर्ममाष्टयात् ॥१४
 आतुरो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् । राज्यार्थीं राज्यमाप्नोति कामार्थीं काममाष्टयात् ॥१५
 एतज्जप्यं रहस्यं च संध्योपासनमेव च । एतेन जपमात्रेण नरः पापात्प्रमुच्यते ॥१६
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहृदयां संहितायां ब्रह्मे पर्वणि सप्तसीकल्पे
 ब्रह्मप्रोक्तसूर्यनामवर्णनं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः । ७१ ।

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः दुर्वासाशापविसर्जनवर्णनम्

सुमन्तरुखाच

इत्यं ब्रह्मवचो योगी श्रुत्वा राजन्दिवाकरम् । व्योमरूपं समाराध्य गतः सूर्यसलोकताम् ॥१
 तथा त्वमपि राजेन्द्रं पूजयित्वा विभावसुम् । गमिष्यसि परं स्थानं देवानामपि दुर्लभम् ॥२

शतानीक उवाच

आद्यं स्थानं रवे । कुत्र जम्बूद्वीपे महामुने । यत्र पूजां विधानोक्तां प्रतिगृह्णात्यसौ रविः ॥३

बता दिया था । १२। प्रातः काल और सायंकाल पवित्र होकर ध्यानपूर्वक जो इसका पाठ करता है मेरी ही भाँति उसके सभी मनोरथ सफल होते हैं । १३। महात्मा सूर्य देव की प्रसन्नता के लक्ष्यरूप धर्मर्थी को धर्म तथा आतुर रोग से बधा हुआ बन्धन मुक्त, राज्यार्थीं राज्य एं धर्मर्थीं काम की प्राप्ति करते हैं । १४-१५। ये ही संध्योपासन हैं यही रहस्य है एवं यही जप करने योग्य हैं क्योंकि इनके जपमात्र से मनुष्य पाप मुक्त होते हैं । १६

श्री भविष्य महापुराण में ब्रह्म पर्व के सप्तसीकल्प में ब्रह्म प्रोक्त सूर्य नाम वर्णन नामक एकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । ७१ ।

अध्याय ७२

शास्त्र के लिए दुर्वासा द्वारा शाप विसर्जन का वर्णन

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! इस भाँति ब्रह्म की बातें सुनकर उस योगी ने आकाशरूपी सूर्य की आराधना करके उनके सालोक्य रूपी मोक्ष की प्राप्ति की । १। हे राजेन्द्र ! तुम भी सूर्य की उपासना करके देव-दुर्लभ उस उत्तम स्थान की अवश्य प्राप्ति करोगे । २

शतानीक ने कहा—हे महामुने ! इस जम्बूद्वीप में सूर्य का प्रथम स्थान, जहाँ रहकर वे विधान पूर्वक की गई पूजा को स्वीकार करते हैं, कहाँ है । ३

सुमन्तुरुवाच

स्थानानि शीणि देवस्य द्वीपेऽस्मिन्भास्करस्य^१ तु । पूर्वमिन्द्रवनं^२ नाम तथा मुण्डौरमुच्यते ॥४
कालशिरं^३ तृतीयं तु त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । तथान्यदपि ते वच्चि पत्युरा ब्रह्मणोदितम् ॥५
चन्द्रभागातटे नाम्ना पुरं यत्साम्बसंज्ञितम्^४ । द्वीपेऽस्मिन्छाश्वतं स्थानं यत्र त्रूर्यस्य नित्यता ॥६
प्रीत्या साम्बस्य तत्रको जनत्यानुग्रहाय च । तत्र द्वादशभागेन मित्रो मैत्रेण चक्षुषा ॥७
अवलोकञ्जगत्सर्वं श्रेयोऽर्थं तिष्ठते^५ सदा । प्रदुक्तां विधिवत्पूजां गृह्णाति भगवान्स्वयम् ॥८

शतानीक उवाच

कोऽर्थं^६ साम्बः सुतः कस्य कस्य प्रीतो दिवाकरः । यस्य चार्यं सहस्रांशुर्वरदः पुण्यकर्मणः^७ ॥९

सुमन्तुरुवाच

य एते द्वादशादित्या विराजन्ते महाबलाः । तेषां यो विष्णुसंजस्तु सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥१०
इहासौ वासुदेवत्वमवाप भगवान्विभुः । तस्मात्साम्बः सुतो जन्मे जाम्बवत्यां महाबलः ॥११
स तु पित्रा भृशं शप्तः कुष्ठरोगमवाप्तवान् । तेनायं स्थापितः शूर्यः स्वानान्ना च पुरं कृतम् ॥१२

शतानीक उवाच

शप्तः कस्मिन्श्रिमित्तेऽसौ पित्रा चैवात्मसाम्बवः^८ । नात्यं हि कारणं विप्र येनासौ शप्तवान्सुतम् ॥१३

सुमन्तु बोले——इस द्वीप में मित्रवन, मुण्डीर तथा कोलप्रिय नामक ये तीन स्थान सूर्य के बताये गये हैं। इसके अतिरिक्त एक और स्थान है जिसे ब्रह्मा ने पहले बताया था, उसे बता रहा हूँ। ४-५। इस द्वीप में चन्द्रभागा नदी के तट पर साम्ब नामक पुरी में सूर्य सदैव रहते हैं, एवं वही उनका नित्य का आवास स्थान भी है। ६। शाम्ब के ऐमवश तथा वहाँ के निवासियों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए सूर्य अपने बारहों भागों द्वारा समस्त जगत् को उसके कल्पणार्थ प्रसन्ननेत्र से देखते हुए सदा वही रहते हैं। विधानपूर्वक की हुई पूजा भी वही स्वयं स्त्रीकार करते हैं। ७-८

शतानीक ने कहा—यह शाम्ब कौन है, किसका पुत्र है, तथा वह कौन ऐसा है, जिसके पुण्य कर्मों द्वारा उसके प्रेमपात्र बनकर सूर्य ने उसे वर प्रदान किया है। ९

सुमन्तु बोले——इन महाबलशाली बारहों सूर्यों में विष्णु नामक सूर्य सभी लोकों में प्रख्यात हैं। १०। उन्हीं विभु एवं भगवान् को वासुदेव कहा जाता है, और उन्हीं से जाम्बवती में उत्पन्न एवं महाबलशाली शाम्ब नामक पुत्र था। ११। पिता द्वारा शाप प्रदान करने के नाते उसे कुष्ठ रोग हो गया था इसीलिए उसने अपने नाम की पुरी जिसमें उसी द्वारा सूर्य स्थापित किये गये थे, बसायी थी। १२

शतानीक ने कहा—उसके पिता ने अपने पुत्र को, जो अपने ही द्वारा उत्पन्न था, क्यों शाप दिया ? है विप्र ! यह कोई साधारण कारण नहीं जान पड़ता, जिससे उन्होंने अपने ही पुत्र को शाप दिया। १३

१. भारतस्य तु । २. मित्रबलम्, मित्रवनम् । ३. कोलप्रियम् । ४. सर्वत्रसांबशब्दे शांब इति तालव्यादिः पा० । ५. विद्यते । ६. कोऽर्थं सांबः कुतस्तस्य यस्य नाम्ना रवे: पुरम् । ७. पृथुकर्मणः । ८. सांबः स्वयंभुवा ।

सुमन्तुरुवाच

भृषुष्वावहितो राजस्तस्य वज्ञापकारणम् । दुर्वासा नाम भगवान्ददत्यांशसमुद्भवः ॥१४
 अटमानः स भगवांस्त्रील्लोकाप्रचचार ह । अथ प्राप्तो द्वारवतीं मधुसंज्ञोचितां पुरा ॥१५
 तनागतमृषिं दृष्ट्वा साम्बो रूपेण गर्वितः । पिङ्गाक्षं 'क्षुधितं लक्षं विरूपं मुकुशं तथा ॥१६
 अनुकाराम्पदं चक्रे दर्शने गमने तथा । दृष्ट्वा तस्य मुखं साम्बो वक्रं चक्रं तथात्मनः ॥१७
 मुखं कुरुकुलश्रेष्ठं गर्वितो यौदेनेन तु । अयं कुद्धो महातेजा दुर्वासा ऋषिसत्तमः ॥१८
 सान्व चोवाच भगवांन्विष्यधुन्वन्मुखमात्मनः । यस्माद्विरुद्धं मां दृष्ट्वा स्वात्मरूपेण गर्वितः ॥१९
 गमने दर्शने भग्नमनुकारं समाचरः । तस्मात् कुष्ठरोगित्वमचिरात्मं गमिष्यसि ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्राणां संहितार्थां ब्रह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
 साम्बाय दुर्वासिसा शापविसर्जनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२।

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

साम्बकुतसूर्याराधनवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषिः । ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥१

सुमन्तु बोले—हे राजन् ! ध्यानपूर्वक उसके शाप के कारण को सुनो ! (मैं कह रहा हूँ) एक दुर्वासा नामक ऋषि, जो रुद्र के अंश से समुत्तन्न हैं, तीनों लोकों में विचरते हुए द्वारवती (द्वारका) पुरी में आये जो पूर्व में मधु नाम से स्वात थी ॥१४-१५। आये हुए ऋषि को देखकर साम्ब ने अपने रूप-सौन्दर्य के अभिमान वश ऋषि की कृशित शरीर के अंगों को, जो पीले भूखे, रुखे एवं विरूप थे, अनुकरण करने लगा—उनके मुख की भाँति अपना मुख बनाकर उनके देखने की भाँति देखने एवं चलने की भाँति चलने लगा ॥१६-१७। हे कुरुकुल श्रेष्ठ ! उसने अपनी युवावस्था में मदान्ध होकर ही ऐसा किया था । इसके पश्चात् महातेजस्त्री एवं ऋषि श्रेष्ठ दुर्वासा ने कुद्ध होकर अपने मुख को हिलाते हुए शाम्ब से कहा—अपने रूप-सौन्दर्य के अभिमानवश तुमने मुझे विरूप देखकर देखने एवं चलने में मेरा अनुकरण (नकल) किया है, इसीलिए तुम्हें अति शीघ्र कुष्ठ रोग हो जायेगा ॥१८-२०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में शाम्ब के लिए दुर्वासा द्वारा शाप विसर्जन नामक बहतरवाँ अध्याय समाप्त । ७२।

अध्याय ७३

शाम्ब द्वारा सूर्य की आराधना का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—इसी समय ब्रह्म के मानस पुत्र भगवान् नारद का भी आगमन हुआ जो तीनों

सर्वलोकचरः सोऽथ अटमानः समन्ततः । वासुदेवं स वै दृष्टुं नित्यं द्वारवतीं पुरीम् ॥२
 आयाति ऋषिभिः सार्थं कोथनो मुनिसत्तमः । अथगच्छति तर्स्मस्तु सर्वे यदुकुमारकाः ॥३
 प्रद्युम्नप्रभृतयो ये प्रह्लादावनताः स्थिताः । अभिवाद्यार्घ्यपादाभ्यां पूजां चक्रः समन्ततः ॥४
 साम्बस्त्ववश्यभावित्वात्तस्य शापस्य कारणम् । अवज्ञां कुरते नित्यं नारदस्य महात्मनः ॥५
 रतः क्रीडासु वै नित्यं रूप्यौवनगर्दितः । अविनीतं तु तं दृष्ट्वा चिन्तयामास नारदः ॥६
 अस्याहुमिनीतस्य करिष्ये दिन्यं चुभम् । एवं सञ्ज्वन्तपित्वा तु वासुदेवमयाभ्वीत् ॥७
 इमाः खोडशसाहस्र्यः स्त्रियो यादवसत्तमः । सर्वासां हि सदा साम्बे भावो देव सनाश्रितः ॥८
 रूपेणाप्रतिभिः साम्बो लोकेस्मिन्सत्त्वरचरे । सदा हीच्छत्ति 'तास्तस्य दर्शनं चापि हि स्त्रियः ॥९
 श्रुत्वैवं नारदाद्वाक्यं चिन्तयामास केशवः । यदेत्तनारदेनोक्तमन्यदत्र तु किं भवेत् ॥१०
 वचनं श्रूयते लोके चापल्यं स्त्रीषु विद्यते । श्लोकौ देमौ पुरा गीतौ चित्तज्ञेयोऽषितां द्विजैः ॥११
 पौँश्रल्याच्चलचित्तत्वान्मैःस्नेहाच्च स्वभावतः । रक्षिताः सर्वतो हेता विकुर्वन्ति हि भर्तृषु ॥१२
 नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयति निश्चयः । सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते ॥१३

लोकों में स्वाति प्राप्त एवं विचरते रहते हैं, और भगवान् वासुदेव (कृष्ण) के दर्शन करने के लिए नित्य द्वारकापुरी में ऋषियों के साथ आया करते हैं । तदुपरांत उस समय पर भी उनके आने पर प्रद्युम्न आदि कुमारों ने प्रतिदिन की भाँति अभिवादन, अर्घ्य एवं पाद्य प्रदान कर उनकी पूजा की । १-४। उनके द्वारा शाप अवश्यंभावी होने के नाते शाम्ब महात्मा नारद का सदैव अपमान ही करता रहा । अपने रूप एवं यौवन के मद से उन्मत्त हो वह सर्वदा क्रीडा (खेल) में निमग्न रहता था । ऐसे अविनयपूर्ण उसके व्यवहार को देखकर नारद ने सोचा कि—मैं ही इस अविनीत को विनीत बनाऊँ तभी इसका कल्याण हो सकेगा । ऐसा विचार करते हुए उन्होंने जानकर वासुदेवजी से कहा । ५-७

हे यादव सत्तम ! आपकी ये सोलह सहस्र स्त्रियाँ साम्ब से प्रेम करती हैं । ८। क्योंकि इस चराचर लोक में उसके समान कोई सुन्दर नहीं है, अतः ये स्त्रियाँ भी उसके दर्शन के लिए सदैव लालायित रहा करती हैं । ९। नारद की ऐसी बातें सुनकर कृष्ण ने अपने मन में सोचा कि नारद की कही हुई बात असत्य नहीं हो सकती, और लोक में सुना भी जाता है कि स्त्रियाँ चपल होती हैं तथा (स्त्रियों के) मन की गति को पहचानने वाले विद्वान् ब्राह्मणों का भी कहना है कि—'स्वभावतः व्यभिचारिणी, चपल एवं स्नेहहीन होने के नाते स्त्रियाँ (पुरुष द्वारा) भली-भाँति रक्षित रहने पर भी अपने पति से असन्तुष्ट हो जाती हैं । १०-१२। इस भाँति रूप-परीक्षा, अवस्था, सुरूप और विरूप की ओर इनका कुछ भी ध्यान नहीं रहता है, क्योंकि ये केवल पुरुष के आकारमात्र को चाहती हैं । १३

१. सांबस्य ।

१. उक्त के दो प्राचीन श्लोक यहाँ उद्धृत हैं ।

सुमन्तुरुच्चाच्च

मनसा चिन्तयन्नेव कृष्णो नारदमब्बीत् । न ह्यहं श्रद्धास्येतद्यदेतद्द्वापितं त्वया ॥१४
 ब्रुवानमेवं देवं तु नारदो वाक्यमब्बीत्^१ । तथाहं तत्करिष्यामि यथा श्रद्धास्यते भवान् ॥१५
 एवमुक्त्वा ययौ^२ स्वर्गं नारदस्तु यथागतः । ततः कतिपयाहोभिर्भारकां पुनरभग्गात् ॥१६
 तस्मिन्नाहनि देवोऽपि सहान्तःपुरिकैर्जनैः । अनुभूय जलक्रीडां पानमसेवते रहः ॥१७
 रैरम्परैवतकोद्याने नानाद्वृभिर्भूषिते । सर्वदुकुमुखैर्नित्यं वासिते सर्वकानने ॥१८
 नानाजलजफुल्लाभिर्दीर्घिकाभिरलङ्घृते । हंससारसत्तंघुष्टे चक्रवाकोपशोभिते ॥१९
 तस्मिन्न रमते देवः स्त्रीभिः परिवृत्सत्त्वा । हारन्पुरकेयूररशनाद्यैर्विभूषणैः ॥२०
 भूषितानां वरस्त्रीणां चार्वज्ञीनां दिशेषतः । ताभिः सम्पीयते पानं शुभगन्धान्वितं शुभम् ॥२१
 एतस्मिन्नतरे बुद्धा मद्यानान्तरः स्त्रियः । उच्चाच नारदः साम्बं सास्त्रोत्तिष्ठ कुमारक ॥२२
 त्वां समाह्नायते देवो न युक्तं स्थातुस्त्र ते । तद्वास्यार्थमबुद्धैव नारदेनाथ चोदितः ॥२३
 गत्वा तु सत्वरं साम्बः प्रणामसकरोत्प्रभोः^३ । साष्टाङ्गं च हरे: साम्बो विधिवद्वल्लभस्य च ॥२४
 एतस्मिन्नतरे तत्र यास्तु वै स्वल्पसात्त्विकाः । तं दृष्ट्वा सुन्दरं साम्बं सर्वाश्रुक्षुभिरे स्त्रियः ॥२५

सुमन्तु ने कहा—इस प्रकार अपने मन में विचार कर कृष्ण ने नारद से कहा—आपने जो कुछ कहा है, उस पर मुझे सहशरा विश्वास नहीं हो रहा है । १४। नारद ने उनसे कहा—मैं उसके लिए ऐसा ही (प्रयत्न) करूँगा, जिससे आपको उस बात में विश्वास होगा । १५। ऐसा कहकर नारद स्वर्ग को, जिस मार्ग में आये थे, चले गये । कुछ दिनों के अनन्तर द्वाराकापुरी में फिर उनका आगमन हुआ । १६। उस दिन भगवान् कृष्ण अन्तःपुर की सभी स्त्रियों के साथ जल क्रीडा समाप्त करके एकान्त में पान का सेवन कर रहे थे । १७। रैवतक के उस रमणीक बगीचे में, जो भाँति-भाँति के वृक्षों से अलंकृत, सभी ऋतुओं के पुष्पों द्वारा नित्य सुगंधित था, एवं भाँति-भाँति के खिले हुए कमल, हंस, सारस और चक्रवाक पक्षियों से सुशोभित बावलियों से परिपूर्ण था । १८-१९। कृष्ण देव स्त्रियों को साथ लेकर सदैव क्रीडा करते थे और वहाँ हार, नूपुर, केयूर (बाँह में पहना जाता है), एवं रशना (करधनी) आदि आभूषणों तथा सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित विशेषकर परम सुन्दरियों के साथ सुगन्धित पान भी करते थे । २०-२१

इसके बाद जब जब स्त्रियाँ मद्यपान से प्रबुद्ध हो गयीं तब नारद ने (लौटकर) साम्ब से कहा—हे कुमार साम्ब ! शीघ्र चलो, तुम्हें महाराज (कृष्ण) बुला रहे हैं । अतः यहाँ तुम्हारा रहना उचित नहीं है । नारद की बातों को भली-भाँति बिना समझ-बूझे साम्ब उनसे प्रेरित होकर शीघ्र वहाँ गया और अपने प्रिय पिता को सविधि साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगा । २२-२४। उसी समय अत्य सत्त्वगुण वाली सभी स्त्रियों के मन में जिन्होंने उसे कभी नहीं देखा था, सौन्दर्यपूर्ण साम्ब को देखकर क्षोभ (विकार) उत्पन्न

१. प्रत्युवाचह । २. भूयः । ३. पुण्यरैवतकोद्याने नानारत्नविभूषिते । ४. पितुः ।

न स दृष्टः पुरा याभिरन्तःपुरनिवासिभिः^१ । मद्यदोषात्तस्तासां स्मृतिलोयात्तथा नृप ॥२६
 स्वभावतोल्पसत्त्वानां जघनाने दिसुमुवुः । श्रूयते चाप्यं श्लोकः पुराणप्रथितः क्षितौ ॥२७
 ब्रह्मचर्येऽपि वर्तन्त्याः साध्वा हृषिपि च श्रूयते । हृष्टे हि पुरुषं दृष्ट्वा योऽनिः संक्लिद्यते स्त्रियाः ॥२८
 लोकेऽपि दृश्यते हैतन्मद्यस्यात्यर्थसेवनात् । लज्जां मुञ्च्वान्ति निःशब्दा हीमत्यो हृषिपि हि स्त्रियः ॥२९
 समांसैर्भेजनैः क्रिधेः पातः सीधुमुरात्तवैः । गन्धर्मनोज्ञैर्वस्त्रैश्च^२ कामः स्त्रीषु विजृम्भते ॥३०
 सीधुप्रयुक्तं शुक्रेण सततं साधु हीच्छता । मध्यं न पेयमत्यर्थं पुरुजेण विपश्चितः ॥३१
 नारदोप्यथं तं साम्बं प्रेषयित्वा त्वरान्वितः । आजगामात्थ तत्रैव साम्बस्यानुपदेन तु ॥३२
 आयान्ते ताश्च तं दृष्ट्वा प्रियं सौमनसमृषिम् । सहसैवोत्थिताः सर्वाः स्त्रियस्तं नदविह्वलाः ॥३३
 तासामथोत्थितानां तु वासुदेवस्य पश्यतः । भित्त्वा वासांसि शुभ्राणि पत्रेषु पतितानि तु ॥३४
 ता दृष्ट्वा तु हरिः कुद्धः सर्वास्ता शृतवान्तित्रयः । यदस्मादगतानि चेतांसि मां गुक्त्वान्यत्र च स्त्रियः ॥३५
 तस्मात्पतिकृताल्लोकानायुर्धोन्ते न यास्यथ । पतिलोकपरभ्रष्टाः स्वर्गमार्गात्तथैव च ॥३६
 भूत्वा^५ चाशरणा यूयं दस्युहस्तं गमिष्यथ ॥३७

सुमन्तुरुवाच

शापदोषात्तस्तस्मात्ताः स्त्रियः स्वर्गते हरौ । हृताः पञ्चनदैश्वौरैरर्जुनस्य तु पश्यतः ॥
 अल्पसत्त्वास्तु यास्त्वासनातास्ता द्रूषणं स्त्रियः ॥३८

हो गया ।२५। हे नृप ! मद्य पान के कारण स्मृति नष्ट हो जाने से तथा अल्प सत्व के नाते स्वभावतः उनकी जाँधे भीग गई । पुराणों में यह बात प्रसिद्ध है कि ब्रह्मचारिणी होती दृढ़े सती स्त्रियों की भी योनि, अन्त्यन्त मनोहर प्रुहृष को देखकर (मैथुन के लिए) तर (रसपूर्ण) होने लगती हैं ।२६-२८। लोक में देखा भी जाता है कि अन्त्यन्त मद्य पान करने के नाते लज्जाशील स्त्रियाँ अपनी लाज छोड़ कर निर्भय हो जाती हैं । व्योंगि मांस भोजन, उत्तम आसव का पान एवं सुगन्धपूर्ण उत्तम वस्त्रों का धारण करना ये सभी स्त्रियों के कामोत्पादक बताये गये हैं ।२९-३०। लोगों के कल्याणार्थ शुक्राचार्य ने भी कहा है कि—विद्वानों को अन्त्यन्त मद्य पान न करना चाहिए ।३१। पश्चात् साम्ब को वहाँ भेजकर नारद भी उसके पीछे ही शीघ्र वहाँ पहुँचे ।३२। उत्तम एवं प्रिय नारद कृत्त्वा को वहाँ आये हुए देखकर वे स्त्रियाँ जो (मद्य) पान से विह्वल (नशे में चूर) हो रही थीं, (प्रणामार्थ) शीघ्र उठकर खड़ी हो गई ।३३। खड़ी होने पर उनके स्वलित वीर्य का बुंद वस्त्रों से चूकर नीचे पत्तों पर पिर पड़ा । उसे देखकर कृष्ण ने कुद्ध होकर उन्हें शाप दिया कि—मुझे त्याग कर तुम्हारे मन औरों में आसक्त हुए इसलिए तुम्हें पतिलोक एवं स्वर्गमार्ग की प्राप्ति अंत में हो सकेगी । और पतिलोक तथा स्वर्ग से भ्रष्ट होकर उस समय अनाय होने के नाते तुम्हें चोरों के अधीन रहना पड़ेगा ।३४-३७

सुमन्तु बोले—कृष्ण के स्वर्ग प्रस्थान करने के पश्चात् उन स्त्रियों का शापवश अर्जुन के देखते ही पाँचनद (पंजाब) के चोरों ने अपहरण कर लिया । केवल अल्पसत्व होने के नाते उन्हें इस दोष का भागी

१. डीबभाव आर्षः । २. माल्यैश्च । ३. साधु प्रयुक्तम् । ४. तस्मात्परिहताश्रांते न पेश्यत च मां पुनः ।

५. कृत्वा ह्यविनयं यूयं दस्युहस्तं गमिष्यथ ।

रुक्मणी सत्यभामा च तथा जाम्बवती प्रिया । नैता गता दस्युहस्तं स्वेन सत्वेन रक्षिताः ॥३९
 शप्तवैव ता: स्त्रियः कृष्णः साम्बमप्यशपत्ततः । यस्मादतीव ते कान्तं रूपं दृष्ट्वा इमाः स्त्रियः ॥४०
 क्षुब्धाः सर्वा यतस्तस्मात्कुष्ठरोगस्वास्थुहि । तस्य तद्वचनं श्रुत्वा साम्बः कृष्णस्य भारत ॥४१
 उवाच प्रहसन्नराजन्संस्मरन्नृषिभाषितम् । अनिमित्तमहं तात भाददोषविवर्जितः ॥
 शप्तो न मेऽत्र वै कुद्धो दुर्वासा अन्यथा वदेत् ॥४२

सुभन्तुरुदाच

अस्मिच्छात्तेऽनिमित्तेऽस्मै पित्रा जाम्बवतीमुतः । प्राप्तवान्कुष्ठगोगित्वं विरूपत्वं च भारत ॥४३
 साम्बेन युनरर्घ्येव दुर्वाताः कोपितो नुनिः । तच्छापान्मुसल जातं कुलं येनास्य धातितम् ॥४४
 श्रुत्वा हृविनयाद्योषान्साम्बेनाप्तान्क्षमाधिपः । नित्यं भाव्यं दिनीतेन गुरुदेवद्विजातिषु ॥४५
 प्रियं च दाक्षं वक्तव्यं सर्वप्रीतिकरं दिभो । किं त्वया त श्रुतौ इलोंकौ यावृक्तौ वेदस्तु पुरा ॥
 १शृण्वतो देवदेवस्य व्योमकेशस्य भाष्ट ॥४६

यो धर्मशीलो जितमानरोषो विद्याविनीतो न परोपतापी ।

स्वदारतुष्टः परदारवर्जितो न तस्य लोके भयमस्ति किञ्चित् ॥४७

होना पड़ा । ३८। रुक्मणी, सत्यभामा एवं प्रिय जाम्बवती आदि स्त्रियाँ, जो अपने अधिक सत्त्वगुण से सुरक्षित थीं, चोरों के अधीन नहीं हुई । ३९। उन्हें शाप देकर कृष्ण ने साम्ब को भी शाप दिया कि तुम्हारे इस अधिक सौन्दर्यपूर्ण रूप को देखकर इन स्त्रियों के मन में कामवासना उत्पन्न हुई अतः यह सौन्दर्य नष्ट होकर तुम्हें कुष्ठ रोग हो जाये । हे भारत ! एव हे राजन् ! इस प्रकार कृष्ण की बात सुनकर साम्ब ने कृष्ण द्वारा कही गयी उस (शापवाली) बात स्मरण करते हुए उनसे हँस कर कहा—हे तात ! उनके प्रति मेरे भाव बुरे नहीं हैं, अतः मैं उसका (स्त्रियों में उत्पन्न विकारों) कारण नहीं हूँ । अतः बिना कारण मुझे शाप मिला । किन्तु आपने अच्छा ही किया, क्योंकि कुद्ध होकर दुर्वासा का वह कथन व्यर्थ नहीं हो सकता है । ४०-४२

सुमन्तु ने कहा—जाम्बवती पुत्र साम्ब इस भाँति पिता द्वारा अकारण शाप प्राप्त कर कुष्ठ का रोगी एवं रूपहीन हो गया । इसी प्रकार एक बार और भी दुर्वासा के साथ दुर्व्यवहार करने के नाते उसे शाप हुआ था । जिस शाप के बश उसके मुसल उत्पन्न हुआ और उसी के द्वारा उसके समस्त कुल का नाश हो गया था । ४३-४४

हे क्षमाधिप ! हे विभो ! इस प्रकार अविनय दोष के नाते साम्ब की प्राप्त अवस्था को देखकर गुरु, देव एवं वाह्यणों में विनीत भाव रखना चाहिए । ४५। और सभी से प्रेम एवं प्रियवाणी बोलना चाहिए । क्या तुमने उन बातों को, जो शिव के सामने बहाना ने कहा था, नहीं सुना है । ४६। धर्मशील, मान एवं क्रोधहीन, विद्या-विनम्र, दूसरे को संतप्त (दुःखी) न करने वाले और अपनी स्त्री में संतोष तथा परस्त्री में निरत रहने वाले मनुष्य को इस लोक में किसी प्रकार भय नहीं होता है । ४७। क्योंकि जिस प्रकार मधुर

न तथा शीतलसलिलं न चन्दनरसो न शीतला छाया ।

प्रह्लादयति च पुरुषं यथा मधुरभाषणी वाणी ॥४८

ततः शापाभिभूतेन सम्यगाराध्य भास्करम् । साम्बेनाप्तं तथारोग्यं रूपं^१ च परमं पुनः ॥४९

रूपमाप्य तथाऽरोग्यं भास्कराद्वरिसूनुना । निवेशितो रविर्भक्त्या रवनाम्ना क्षमाधिपेश्वर ॥५०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमोकल्पे

साम्बकृतसूर्याराधनवर्णनं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३ ।

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

आदित्यद्वादशमूर्तिवर्णनम्

शतानीक उवाच

स्थापितो ददि साम्बेन सूर्यश्वन्दसरित्तटे । तस्मान्नयमिदं स्थानं यथैतद्वापते भवान् ॥१

सुमन्तुरुद्वाच

आद्यं स्थानमिदं भानोः पश्चात्साम्बेन भारत । विस्तरेणास्य चाद्यस्य कथ्यमानं निबोध मे ॥२

अत्राद्यो लोकनाथोऽसौ रङ्गिमाली जगत्पतिः । मित्रत्वे च स्थितो देवस्तपस्तेषे पुरा नृप ॥३

वाणी पुरुष को प्रसन्न करती है, शीतल जल, चन्दन तथा शीतल छाया आदि कोई भी उस प्रकार प्रसन्न नहीं कर सकते हैं ॥४८। तदुपरांत शाप से दुखी होकर साम्ब ने भास्कर की भली-भाँति आराधना करके आरोग्य तथा अपने पुराने रूप-सौन्दर्य को पुनः प्राप्त किया ॥४९। हे क्षमाधिपेश्वर ! कृष्ण के पुत्र ने भास्कर द्वारा आरोग्य एवं अपने रूप को प्राप्त करके भक्ति के नाते अपने नाम से सूर्य वहाँ स्थापित किया था ॥५०

श्रीभविष्य महापुराण में व्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बकृत सूर्याराधनवर्णन नामक तिहतरवाँ अध्याय समाप्त ॥७३ ।

अध्याय ७४

सूर्य की द्वादश मूर्तियों का वर्णन

शतानीक ने कहा—चन्द्रभागा नदी के तट पर साम्ब ने सूर्य को स्थापित किया, ऐसा आप कह रहे हैं, वह सूर्य का आदि स्थान कैसे प्राप्त हुआ ॥१

सुमन्तु बोले—हे भारत ! सूर्य का आद्य स्थान यही है, साम्ब ने केवल इसे विस्तृत किया है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ॥२

हे नृप ! पहले इसी स्थान में स्थित होकर सूर्यदेव ने, जो लोकभास्त्र, किरणरूपी माला पहने एवं

१. यथाहं मधुसूदनः ।

अनादिनिधनो ब्रह्मा नित्यश्राक्षय एद च । सृष्ट्वा प्रजापतीन्ब्रह्मा सृष्ट्वा च विविधः प्रजाः ॥४
 मसर्ज मुखतो देवं पूर्वमन्बुजसन्निभम् । कञ्जजस्तं ततो देवं वक्षस्तो निर्ममे नृप ॥५
 ललाटाल्कुशशार्दूलं नीरजालं दिगम्बरम्^१ । कृभवः पादतः सर्वे सृष्टास्तेन महात्मना ॥६
 ततः शतसहस्रांशुरव्यक्तः पुरुषः स्वयम् । कृत्वा द्वादशधात्मानमदित्यामुदपद्यत ॥७
 इन्द्रो धाता च पर्जन्यः पूषा त्वष्टार्यमा भगः । विवस्वानंसृष्टिष्णुश्च वरुणो मित्र एव च ॥८
 एभिर्द्विदशभिस्तेन आदित्येन महात्मना । कृत्वन् जगदिदं व्याप्तं सूर्तिभिस्तु नराधिप ॥९
 तस्य या प्रथमा सूर्तिरादित्यस्येन्द्रसंज्ञिता । स्थिता सा देवराजत्वे दानवासुरनाशिनी ॥१०
 द्वितीया चास्य या सूर्तिराज्ञा धातेति कीर्तिता । स्थिता प्रजापतित्वे सा विधात्री सृजते प्रजाः ॥११
 तृतीया तस्य या सूर्ति । पर्जन्य इति विश्रुता । करेष्वेव स्थिता सा तु वर्षत्यमृतमेव हि ॥१२
 चतुर्थी तस्य या सूर्तिराज्ञा पूषेति विश्रुता^२ । मन्त्रेष्ववस्थिता सा तु प्रजाः पृष्णाति भारत^३ ॥१३
 सूर्तिर्या पञ्चमी तस्य नाम्ना त्वर्षेति विश्रुता । वनस्पतिषु सा नित्यमोषधीषु च वै स्थिता ॥१४
 षष्ठी सूर्तिरुद्धु दा तस्य अर्यमेति च विश्रुता । प्रजासन्वरणार्थं सा पुरेष्वेव स्थिता सदा ॥१५
 षानोर्या तप्तमी सूर्तिराज्ञा भग इति स्मृता । भूमौ व्यवस्थिता सा तु क्षमाधरेषु च भारत ॥१६
 अष्टमी चास्य या सूर्तिर्विवस्वानिंति संज्ञिता । अग्नौ व्यवस्थिता सा तु^४ पचतेऽन्नं शरीरिणाम् ॥१७
 नवमी चित्रभानोर्या सूर्तिरञ्जशुरिति स्मृता । वीर चन्द्रे स्थिता सा तु आप्याययति वै जगत् ॥१८

जगत् के स्वामी हैं, (जगत् के) कल्याण के निमित्त तप किया था । ३। जन्म-मरणहीन, नित्य, अक्षय एवं ब्रह्मा रूपी (सूर्य) ने प्रजापतियों की सृष्टि रचना करके अनेक भाँति की प्रजाओं की रचना की ॥४। जिसमें सर्वप्रथम मुख द्वारा कमल की भाँति देव (विष्णु), वक्षस्थल द्वारा ब्रह्मा एवं भाल द्वारा कग्मलेन्त्र दिगम्बर शिव को उत्पन्न किया । एवं उस महात्मा ने अपने चरण द्वारा देवों को उत्पन्न किया है ॥५-६। परश्चात् उस अव्यक्त, पुरुष एवं सहस्रांशु ने अपने को बारह रूपों में विभक्त कर अदिति में उत्पन्न, किया ॥७। इन्द्र, धाता, पर्जन्य, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, अंगु, विष्णु, वरुण एवं मित्र इन वारहों सूर्तियों द्वारा समस्त जगत् में व्याप्त होकर पुनः इस जगत् को अपने अधीन रखा । हे नराधिप ! उनकी प्रथम सूर्ति को जिसका नाम इन्द्र है, दानव एवं असुरों के नाश करने के लिए देवराज (इन्द्र) की पदवी प्राप्त हुई है ॥८-१०। दूसरी सूर्ति, जिसे विधाता कहते हैं, वह प्रजापति होकर प्रजाओं का सृजन करती है ॥११। तीसरी सूर्ति, जिसे पर्जन्य कहा जाता है, वह उनके किरणों में स्थित रहकर अमृत की वर्षा करती है ॥१२। चौथी सूर्ति, जो पूषा नाम से विल्यत है, मंत्रों में स्थित होकर नित्य प्रजा-पालन करती है ॥१३। पांचवीं सूर्ति, जिसे त्वष्टा कहते हैं, वह वनस्पतियों की औषधियों में नित्य स्थित रहती है ॥१४। अर्यमा नाम की छठीं सूर्ति प्रजा-संवरण के लिए नगरों में रहती है ॥१५। सूर्य की सातवीं सूर्ति जिसे भग कहा जाता है, भूमि में स्थित बनाकर पृथ्वी के धारण करने वालों (पर्वतों) में वह सदैव स्थित रहती है ॥१६। हे भारत ! विवस्वान् नामकी उनकी आठवीं सूर्ति अग्नि में स्थित होकर प्राणियों के जाठराग्नि द्वारा अन्न पचाती है ॥१७। चित्रभानु की नवीं सूर्ति जिसे अंगु कहा जाता है, चन्द्रमा में स्थित होकर जगत् की

मूर्तिर्या दशमी तस्य विष्णुरित्यभिधीयते । प्रादुर्भवति सा नित्यं गीर्वाणारिविनाशिनी ॥१९
 मूर्तिस्त्वेकादशी या तु भानोर्वरुणसंज्ञिता । जीवायर्थति सा कृत्स्नं जगद्वि तमुपाश्रिता ॥२०
 अपां स्थानं समुद्रस्तु वरुणोऽत्र प्रतिष्ठितः । तस्माद्वै प्रोच्यते वीर सागरो वरुणालयः ॥२१
 मूर्तिर्या द्वादशी भानोर्नामितो मित्रसंज्ञिता । लोकानां सा हितर्थं तु स्थिता चन्द्रसरित्टटे ॥२२
 वायुभक्षा तपस्तेपे युक्ता मैत्रेण चक्षुषा । अनुगृह्णन्त्सदा भक्तान्वैर्नामित्विधैः सदा ॥२३
 एवमाद्यमिदं स्थानं पुण्यं मित्रपदं स्मृतः । तत्र मित्रः स्थितो यस्मात्समान्बित्रपदं रघृतः ॥२४
 तथाराध्य महाबाहो साम्बेनामिततेजसा । तत्प्रसादात्तदादेशात्प्रतिष्ठात् तस्य वै कृतः ॥२५
 आभिर्द्वादशभिस्तेन भास्करेण गहात्मना । कृत्स्नं जगदिदं व्याप्तं मूर्तिभिस्तु नराधिप ॥२६
 तस्माद्वन्यो नमस्यन्न द्वादशस्त्वपि मूर्तिषु । ये नमस्यन्ति चादित्यं नरा भक्तिसमन्विताः ॥२७
 ते यास्यन्ति परं स्थानं^१ तिष्ठेद्यत्राम्बुजेभ्वरः । इत्येवं द्वादशात्मानमादित्यं पूजयेत्तु यः ॥२८
 स मुक्तः सर्वपापेभ्यो याति हेलिसलोकताम् ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सञ्चालिकल्पे
 सूर्यद्वादशमूर्तिवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः । ७४।

वृद्धि करती है । १८। उनकी दशवीं मूर्ति, जो विष्णुरूप है, देवों के शत्रुओं का विनाश करने के लिए वह नित्य (समयानुसार) उत्पन्न होती रहती है । १९। एवं भानु की ग्यारहवीं मूर्ति के जो वरुण नाम से स्वात है, प्राणियों आदि को (जल द्वारा) प्राणदान देने के नाते समस्त जगत् (उसके) आश्रित रहता है । २०। हे वीर ! जल का स्थान समुद्र है, उसमें वरुण रहते हैं । इसीलिए सागर वरुणालय कहा जाता है । २१। और सूर्य की बारहवीं मूर्ति, जिसका मित्र नाम है, लोक-कल्याण के लिए वह चंद्रभागा नदी के तट पर स्थित है । २२। इस प्रकार मित्र भाव से स्थित होकर भक्तों को भाँति-भाँति के दर प्रदान करते हुए उन्होंने वायु भक्षण करके वहाँ तप किया था । २३। इसीलिए यह आद्य एवं पुण्य स्वरूप मित्र नामक स्थान कहा जाता है, और वहाँ मित्र भाव से स्थित रहने के नाते ही उसे मित्र पद कहा गया है । २४

हे महाबाहो ! इस भाँति साम्ब ने उनकी आराधना की और प्रसन्न होकर सूर्य के आदेश देने पर उनकी वहाँ प्रतिष्ठा हुई । २५। इस प्रकार सूर्य अपनी इन बारहों मूर्तियों द्वारा सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त होकर स्थित हैं । हे नराधिप ! इसीलिए सूर्य बारहों मूर्तियों में स्थित रहकर वन्दनीय एवं पूजनीय होते रहते हैं । इस प्रकार भक्तिपूर्वक जो मनुष्य आदित्य को नमस्कार करता है, उसे कमलेश्वर (सूर्य) के स्थान की प्राप्ति होती है और जो बारह रूप वाले सूर्य की पूजा करता है, समस्त पापों से मुक्त होकर उसे सूर्यलोक की प्राप्ति होती है । २६-२९

श्री भविष्य महापुराण में व्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य की द्वादश मूर्ति वर्णन नामक चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । ७४।

अथ यञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

नारदोपसङ्गमनवर्णनम्

शतानीक उवाच

कथं साम्बः प्रपञ्चोऽकं केन वा प्रतिपादितः । उग्रं शापं च तं प्राप्य पितरं स किमुल्लवान् ॥१

सुमन्तु एव च

उत्तमेव युरा वीरं यथा शापः स यादवः । पित्रा साम्बो महाराज हरिणाम्बुजधारिणा ॥२
 अथ शापाभिसूतस्तु साम्बः पितरमब्दीत् । १विनयावनतो भूत्वा प्रञ्जलिः शिरसा गतः ॥३
 किं मयाप्रकृतं देव देन शप्तोस्म्यहं त्वया । अहं त्वदाज्ञया देव त्वरमाणोत्र अगतः ॥४
 कस्मान्निपादितः शापो मयितेनपकारिणि । न वै जानाम्यहं किञ्चित्प्रसीद जगतः पते ॥५
 शापं नियच्छ मे देव प्रसादं कुरु मे प्राप्तो । कश्मलेनाभिसूतोऽहं येन मुच्येय किल्बिषात् ॥६
 तमुवाच ततः कृष्णः साम्बं बुद्धा ह्यनागसम् । नाहं पुत्रं पुनः शक्तो रोगस्यास्य व्यपोहने ॥७
 ३अस्यां जातो नाथो द्वादशात्मा दिवात्मरः^३ । तहम्बरशिनरादित्यः शक्तः पुत्रं व्यपोहितुम् ॥८
 ज्ञातं मयाधुना चैव यथा त्वं नारदेन तु । रोषाद्विसर्जितः पुत्रं मत्सकाशं महात्मना ॥९

अध्याय ७५

नारदोपसंगमन वर्णन

शतानीक ने कहा—साम्ब ने सूर्य की प्राप्ति कैसे की, उसे किसने बताया तथा पिता द्वारा उग्र शाप पाने पर उसने उनसे क्या कहा । १

सुमन्तु बोले—हे वीर ! कमलधारी कृष्ण द्वारा साम्ब को शाप जिस भाँति प्राप्त हुआ, मैंने पहले ही बता दिया है । २

शाप द्वारा दुःखी होकर विनम्र एवं हाथ जोड़कर तथा नतमस्तक होकर साम्ब ने अपने पिता से कहा । ३। हे देव ! मैंने क्या अपराध किया, जिससे आपने मुझे शाप दे दिया । मैं तो आपकी ही आज्ञा से यहाँ शीघ्रतापूर्वक आया था । और मैंने जब आपका कोई अपकार भी नहीं किया, तो मैं नहीं जानता मुझे शाप क्यों दिया गया । हे जगतपते ! मैं इस विषय में कुछ भी नहीं जानता हूँ, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होकर शाप का निवारण करें । हे प्रभो ! मैं इस पाप से दुःखी हूँ, मुझे इस दुःख से बचाइये जिससे पापमुक्त हो जाऊँ । ४-६। इस भाँति साम्ब के कहने पर उसे निरपराधी समझकर कृष्ण ने कहा—हे पुत्र ! इस रोग की शान्ति करने की शक्ति मुझमें नहीं है । ७। जगत् के नाथ, द्वादशात्मा, दिवाकर एवं सहस्र रशिम वाले सूर्य ही इसे नष्ट कर सकते हैं । ८। इस समय मुझे जान हो रहा है कि नारद ने कुद्द होकर तुम्हें मेरे समीप भेजा

१. चिंतया विनतः । २. अहम् । ३. दिवस्पतिः, जगत्पतिः ।

तस्मात्तमेव पृच्छ त्वं प्रसाद्य कृषिसत्तमम् । आत्मास्थति ल ते देवं शां यस्तेऽपनेष्यति ॥१०
अथेतत्स पितुवर्क्ष्यं श्रुत्वा जाम्बवतीसुतः । दीनः 'शोकपरीतात्मा ततः सञ्चिदन्त्य भारत ॥११
द्वारवत्यां स्थितं विष्णुं कदाचिद्द्रष्टुमागतम् ! दिनयाद्विपराङ्गम्य साम्बः पप्रच्छ नारदम् ॥१२
भगवन्वेधसः पुत्रं सर्वलोकज्ञं सुव्रतः । प्रसादं कुरु मे विप्रः प्रणतस्य महामते ॥१३
ये ये नीरजं कायं कश्मलं च प्रणश्यति । तं योगं ब्रह्म मे विष्णुप्रणतस्यास्य सुव्रत ॥१४

नारद उवाच

यः स्तुत्यः सर्वदेवानां नमस्यः पूज्य एव च । पूजयित्वाशु तं देवं ततो व्याधिं प्रहास्येति ॥१५

साम्ब उवाच

कः स्तुत्यः सर्वदेवानां नमस्यः पूज्य एव च । कः तर्वगश्च सर्वत्र शरणं यं वज्राम्यहम् ॥१६
पितृशापानलेनाहं द्व्यामानो भवामुने । शान्त्यर्थमस्य कं देवं 'शरणं च वज्राम्यहम् ॥१७
इतच्छ्रुत्वा तु साम्बस्य वचनं करुणावहम् । हित्वा तु 'कामजं दीर नारदे वाक्यमब्रवीत् ॥१८
स्तुत्यो वन्द्यश्रुं पूज्यश्च नमस्य ईडच एव च । भास्करो यदुशार्दूल ब्रह्मादीनां सदानन्द ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतर्द्धसाहस्र्यः संहितायां ब्राह्मे पर्वणि साम्बोपात्माने साम्बं प्रति
कृष्णशापे साम्बस्य नारदोपसंगमनवर्णनं नाम पञ्चसप्ततिमोऽध्यायः । ७५।

था । १। इसलिए तुम उन्हीं कृषि श्रेष्ठ नारद से ही पूछो ! वे उस देव को, जिसके द्वारा तुम्हारा दुख दर
होगा, बतायेंगे । १०। इसके पश्चात् पिता की बातें सुनकर दीन एवं शोकप्रस्त होकर जाम्बवती सुत साम्ब
ने द्वारकापुरी में कृष्ण के दर्शन के लिए आये हुए नारद से विनयपूर्वक 'पूछा—हे भगवन् ! हे ब्रह्मपुत्र,
सर्वलोकज्ञं, सुव्रत एवं हे महामते ! मैं आप को प्रणाम करता हूँ, मेरे ऊपर कृपा कीजिए । १-१३।
विप्र ! जिसके द्वारा मेरा शरीर आरोग्य हो जाये एवं मेरा पाप नाश हो, उस योग को दत्ताइये । अतः मैं
पुनः प्रणाम कर रहा हूँ । १४

नारद बोले—जो समस्त देवताओं के पूज्य, स्तुत्य एवं नमस्कार करने के योग्य हैं, शीघ्र उसकी
पूजा करो, वही तुम्हारे रोग की शान्ति करेंगे । १५

साम्ब ने कहा—समस्त देवताओं का स्तुत्य, पूज्य, नमस्कार करने योग्य एवं सभी स्थानों में
पहुँचने वाला कौन है ? मैं उसी की शरण में जाना चाहता हूँ । १६। हे महामुने ! पिता के शाप रूपी अंगिन
से मैं जल रहा हूँ, इसकी शान्ति के लिए किस देवता की शरण जाऊँ । १७। साम्ब की इस कारणिक बातों
को सुनकर नारद का क्रोध शांत हो गया । उन्होंने उससे कहा । १८। हे यदुशार्दूल ! ब्रह्म आदि सभी
(प्राणियों) के लिए एक भास्कर ही स्तुति करने के योग्य, वन्दनीय, पूज्य, नमस्कार करने एवं ध्यान
करने के योग्य हैं । १९

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के शाम्बोपात्मान में शाम्ब के प्रति कृष्णशाप में
साम्ब के नारदोपसंगमन वर्णन नामक पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । ७५।

१. शापपरीतात्मा । २. देव । ३. कतमास्यम् । ४. कामजं क्रोधमित्यर्थः—'कामांक्रोधा-
भिजायते' इति भगवद्गीतासु वचनात् ।

अथ षट्सत्तितमोऽध्यायः
नारदसाम्बसंवादे सूर्यपरिवारदर्शनम्
नारद उवाच

कदाचित्पर्यट्टलोकान्सूर्यलोकम् हं गतः । तत्र दृष्टो मया सूर्यः सर्वदेवगणैर्वृतः ॥१
 गन्धर्वैरस्तरोऽपि नागैर्क्षेत्रं राक्षसैः । तत्र गायत्रि गन्धर्वा नृत्यन्तप्सरसस्तथा ॥२
 रक्षन्त्युद्यग्नशस्त्रास्तं यक्षराक्षसपत्नगाः । ऋचो यज्ञांषि साम्भानि सूर्तिमन्तीह सर्वशः ॥
 तत्कृतैर्विधौः स्तोत्रैः स्तुवन्ति ऋषयो रविम् ॥३
 सूर्तिमत्यः स्थितास्त्रत्र तिक्लः संध्या: शुभान्ताः । गृहीतवज्रनाराचाः परिदार्य रविं स्थिताः ॥४
 अरुणा दर्शतः पूर्वा मध्यमा चेन्दुसभिन्ना । त्रृतीयाक्षमाजसंकाशा^१ संध्या चैव प्रकीर्तिता ॥५
 आदित्या वसते रुद्रा भूतोयाश्विनौ तथा । त्रिसंध्यं पूजयन्त्यर्कं तथान्ये च द्विवौकसः ॥६
 ईरयज्जयशब्दं तु इन्द्रस्तत्रैव तिष्ठति । कविस्तु व्यम्बको देवस्त्रिसंध्यं पूजयन्ति वै ॥७
 ैदिनादावन्बुजाकारं पूजयेदम्बुजासनम् । चक्ररूपं तु मध्याह्ने धृतर्चिः पूजयेत्सदा ॥८
 पूजयेत्सगणं रात्रौ विपुलाज्यस्वरूपिणम् । रविं भक्त्या सदा देवं ^३कंजार्धकृतशेखरः ॥९

अध्याय ७६
नारदसाम्बसंवाद में सूर्यपरिवार का वर्णन

नारद बोले—एक बार मैं धूमता हुआ सूर्य के लोक में पढ़ैँच गया था । वहाँ देखा कि सभी देवगण सूर्य को धेरे हुए बैठे हैं । १। गन्धर्वगण, अप्सराएँ, नाग, यक्ष, एवं राक्षस लोग भी वहाँ दिखाई पड़े, वहाँ गन्धर्व लोग गान कर रहे थे, उसी प्रकार अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं एवं हयियार लिए हुए यथ, राक्षस तथा पन्नग लोग (सूर्य की) रक्षा कर रहे थे और सूर्तिमान क्रम्बेद, यजुर्वेद एवं साम्बेद की ऋचाओं द्वारा की गई (स्तुति रूपी) रचनाओं को पढ़ते हुए ऋषिगण सूर्य की आराधना कर रहे थे । २-३। उसी भाँति सौन्दर्यपूर्ण एवं सूर्तिमान् होकर तीनों संध्याएँ वज्र तथा बाणों को लिए सूर्य को धेरे स्थित थीं । ४। जिनमें रक्तवर्ण की पूर्व (पहली), चन्द्रमा की भाँति मध्यमा (द्वितीय) एवं स्थलकमल की भाँति तीसरी (सायंकाल की) संध्या बतायी गई है । ५। इस प्रकार आदित्यगण (देवता), वसु, रुद्र, मरुत् तथा अश्विनी कुमार एवं अन्य देवगण ये सभी तीनों संध्याओं में सूर्य की पूजा करते हैं । ६। अनन्तर वहाँ इन्द्र जय शब्द (जय-जयकार) का उच्चारण करते थे, शुक्र एवं शिव भी तीनों संध्याओं में उनकी पूजा करते हैं । ७। इसलिए उदयकाल में कमल के आसन पर स्थित एवं कमल की भाँति आकार वाले और मध्याह्न में चक्र की भाँति एवं धृतपूर्ण अग्नि की शिखा के समान दिखायी देने वाले उन सूर्य की सदैव पूजा करनी चाहिए । ८। क्योंकि रात में भी विपुलधृत की भाँति स्वरूप वाले (सूर्य) की गणों समेत पूजा होती है ।

१. पदासंकाशः सामरा विप्रकीर्तिता । २. शब्दादावंबुजाधारम् । ३. चन्द्रशेखर इति भावः ।

सारथ्यं कुरुते तस्य पत्तगस्याग्रजः^१ सदा : वहनानो रथं दिव्यं कालावयवनिर्मितम् ॥१०
 हरितः सप्ताभिर्युक्तं छन्दोभिर्वाज्जिर्हणिभिः ॥११
 द्वे भार्ये पाश्वर्योस्तस्य राजीनिक्षुभसंज्ञिता ! तथान्यैर्नामिभिर्देवाः परिवार्ये रथं स्थिताः ॥१२
 पिङ्गलो लेखकस्तत्र तथान्यो दण्डनायकः । राजाश्रोषौ च द्वौ द्वारे स्थितौ कल्माषपक्षिणौ ॥१३
 ततो व्योम चतुःशृङ्गं मेरोः सदृशंक्षणम् । दिण्डस्तथप्रतस्तस्य दिक्षु चान्ये स्थिताः चुराः ॥१४
 एवं सर्वगाम देवं ब्रदीपतं जगति द्विजः ब्रह्माद्यैः संस्तुतं देवं गीर्वाणंकृदभोत्तमम् ॥
 ग्रहेण भुनेशानमादित्यं शरणं लक्ष्य ॥१५

साम्ब उचाच्च

तत्त्वतः श्रोतुमित्तामि कथं सर्वगतो रविः ॥१६
 कति वा रशमयस्तस्य मूर्तयश्च कति स्मृताः । का राजी निक्षुभाका च कथायं दण्डनायकः ॥१७
 पिङ्गलश्चापि कस्तात्र किं चासौ लिखते सदा । राजाश्रोषौ च कौ तत्र कौ च कल्माषपक्षिणौ ॥१८
 किं दैवत्यं च नद्वरोमे मेरोः सदृशलक्षणम् । को दिण्डप्रतस्तत्र के देवा दिगु ये स्थिताः ॥१९
 तत्त्वतो निगमैश्चैव विस्तरेण वदस्व माम । येनाहं तत्त्वतो ज्ञात्वा ब्रजमि शरणं द्विज ॥२०
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाल्याने
 नारदसाम्बसंवादे सूर्यपरिवारवर्णनं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६।

इसलिए चन्द्रशेखर (शिव) उनकी सदैव पूजा करते हैं । १। तथा गरुड़ के बड़े भाई (अरुण) उनके उस रथ के सारथी हैं जो दिव्य एवं समय रूपी अंगों द्वारा बनाया गया है । १०। और उस रथ में हरे रंग के छन्द रूपी सात पोड़े जोते जाते हैं । ११। आकाशरूपी रानी और पृथ्वी रूपी निक्षुभा नाम की दोनों स्त्रियाँ भी उनके पाश्व (बगल) में स्थित थीं तथा अन्य नाम वाले देवगण उन्हें चारों ओर से घेर कर बैठे थे । १२। उसी भाँति पिंगल नामक लेखक दण्डनायक, चित्रवर्णवाले राजा और थौप दो पक्षियाँ दोनों द्वारपाल एवं मेरु के चारों शिखरों की भाँति वहाँ का आकाश सुशोभित हो रहा था । उनके सामने दिंडी और चारों दिशाओं में देवता लोग स्थित थे । १३-१४। हे द्विज ! इस प्रकार जो सर्वत्र व्याप्त जगत् में अत्यन्त प्रकाशित, ब्रह्मादि देवों द्वारा स्तुति करने योग्य, देवत्रेष्ठ ग्रहेण एवं भुवनों के पति हैं, उन आदित्य की शरण में अवश्य जाओ । १५

साम्ब ने कहा—मैं भली भाँति जानना चाहता हूँ कि सूर्य सभी स्थानों में कैसे पहुँचते हैं । १६। उनकी कितनी किरणें, कितनी मूर्ति एवं राजी (रानी) और निक्षुभा नाम वाली स्त्रियाँ कौन हैं । इसी भाँति दण्डनायक तथा पिंगल कौन हैं, और वे क्या लिखा करते हैं, और राजा और थौप एवं चित्र वर्ण वाले दोनों पक्षी द्वारपाल, मेरु के समान वहाँ का आकाश, दिंडी तथा वहाँ दिशाओं में कौन देवगण स्थित हैं । १७-१९। इन्हें वैदिक रीति के अनुसार एवं विवेचन पूर्वक मुझे बताइये, जिससे मैं भली भाँति समझकर उस देव की शरण जाऊँ । २०

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में शाम्बोपाल्यान के नारदशाम्बसंवाद में सूर्य परिवार वर्णन नामक छिह्नतरवाँ अध्याय समाप्त । ७६।

१. वैनतेयाग्रजः सदा २. दौवारिकौ च द्वौ द्वारे ततः कल्माषपक्षिणौ ।

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

साम्बोपाल्वाने सूर्यवर्णनम्

नारद उदाच

विस्तरेणानुपूर्वा च सूर्यं निगदतः शृणु । ततः शेषान्प्रवदयेऽहं नमस्कृत्य दिवस्वते ॥१
 अव्यक्तं कारणं पत्तनित्यं सदसदात्मकम् । प्रधानं प्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वदिन्तकाः ॥२
 गन्धीवर्जै रसैर्हीनं शब्दस्पर्शविजितम् ; जगद्योनि भद्रद्वूतं परं ब्रह्मा सनातनम् ॥३
 निग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तमभद्रत्किल । अनाद्यन्तशजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाप्ययम् ॥४
 अनाकारमविजेयं तमाहुः पुरुषं गरम् । तस्यात्मना सर्वमिदं जगद्व्याप्तं महात्मनः ॥५
 तस्येश्वरस्य प्रतिमा 'ज्ञानवैराग्यलक्षणा । धर्मेभ्यर्थकृता बुद्धिराह्वी तस्याभिमानिनः ॥६
 अव्यक्ताज्ञायते तस्य अन्तस यद्यादिच्छति । चतुर्भुखस्य ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकूद्धवेत् ॥७
 सहस्रमूर्धा पुरुषस्तिसोवस्थाः स्वयम्भुवः । सत्त्वं रजश्च ब्रह्मत्वे कालत्वे च रजस्तमः ॥८
 सात्त्विकं पुरुषत्वे च गुणवृत्तं स्वयंभुवः । ब्रह्मत्वे सृजते लोकान्कालत्वे चादि संक्षिपेत् ॥९
 पुरुषत्वे उदासीनस्तिस्रोऽवस्थाः प्रजापते: । त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रिकालं सम्प्रवर्तते ॥१०

अध्याय ७७

साम्बोपाल्व्यानं में सूर्य का वर्णन

नारद बोले—मैं सूर्य का विस्तारपूर्वक एवं आनुपूर्णी (क्रमशः) वर्णन कर रहा हूँ, मुनो ! तथा फिर सूर्य को नमस्कार करके उनकी ज्ञेय बातों को भी बताऊँगा । १। (सूर्य) अव्यक्त कारण, जिसे तत्त्वज्ञ लोग नित्य एवं सदसदात्मक प्रधान और प्रकृति कहते हैं । २। गंध, वर्ण, रस, शब्द एवं स्पर्श से हीन, जगत् के उत्पत्ति स्थान, महद्भूत, परम तथा सनातन ब्रह्म, सभी प्राणियों के निग्रह करने वाले, अव्यक्त, आदि अंतहीन, अजन्मा, सूक्ष्मरूप, त्रिगुण, उत्पत्ति एवं नाश करने वाले, आकारहीन, अविजेय एवं परम पुरुष हैं, और वही महात्मा समस्त संसार में व्याप्त हैं । ३-५

ज्ञान-विज्ञान रूपी उनकी प्रतिमा है तथा उस अभिमानी की धार्मिक ऐश्वर्य से उत्पन्न ब्राह्मी बुद्धि है । ६। उस अव्यक्त से मन-इच्छित वस्तुएँ सदैव उत्पन्न होती हैं । वही, चार मुख वाले, ब्रह्मा और कालरूप शिव हैं । ७। एवं सहस्रों शिर वाले वही स्वयम्भू पुरुष हैं उनकी सात्त्विक, राजस, तामस तीन अवस्थाएँ हैं, जिसमें सात्त्विक-राजस ब्रह्मा की, राजस-तामस शिव की तथा पुरुष (विष्णु) की सात्त्विक (अवस्था) बतायी गई है । यही स्वयंभू का गुण विवेचन है । वे ब्रह्मा रूप से लोकों का सृजन करते हैं । काल (शिव) रूप से संक्षेप और पुरुषरूप से उदासीन रहते हैं । इस प्रकार उग्र प्रजापति की तीन अवस्थाएँ कही गयी हैं । जो अपने बो तीन रूपों में विभक्त कर तीनों कालों के प्रवर्तित करता है । ८-१०। इस प्रकार सृजन, संक्षय

सृजते प्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिः स्वयम् । अग्रे हिरण्यगर्भस्तु प्रादुर्भूतः स्वयम्भुवः ॥११
 आदित्यस्यादिदेवत्वाद्जातत्वादजः स्मृतः । देवेषु समहान्देवो महादेवः स्मृतस्ततः ॥१२
 सर्वेशत्वाच्च लोकस्य अधीशत्वाच्च ईश्वरः । बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भवत्वाद्गूढं उच्यते ॥१३
 प्रतियस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरतः स्मृतः । पुरे शेते च दै परमात्मात्पुरुष उच्यते ॥१४
 नोत्सायद्यत्वादपूर्वत्वात्स्वदभूरितिविश्रुतः ॥१५

हिरण्याण्डगतो यस्माद्ग्रहेशो वै दिवस्पतिः । तस्माद्द्विरण्यगर्भोऽसौ देवदेवो दिवाकरः ॥१६
 अपो नारा इति प्रोक्ता क्रृषिभिस्तत्त्वदर्शभिः । अयनं तस्य ता आपस्तेन नारायणः स्मृतः ॥१७
 अर इत्येष शीघ्रार्थे निपातः कविभिः स्मृतः । आप एवार्णवा भूत्वा न शीघ्रस्तेन ता नरा: ॥१८
 एकार्णवे पुरा तस्मिन्नप्ते स्थावरजङ्गमे । नारायणाख्यः पुरुषः सुख्वाप ^२सलिले तदा ॥
 सहस्रीरा ^३मुमनाः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥१९

सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथे यः पुरुषोऽ निगद्यते^४ ।

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्व एकः पुरुषः प्रराणः ॥२०

हिरण्यगर्भः पुरुषोमहात्मा सम्पद्यते वै तमसा परत्तात् ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे

साम्बोपाख्याने सूर्यवर्णनं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥२७।

तथा निरीक्षण (पालन) का कार्य तीनों मूर्तियों द्वारा वह स्वयं करता है, और वही सर्वप्रथम हिरण्य गर्भ नाम से प्रादुर्भूत हुआ था । १। वह देवताओं में आदि देव और अनुत्पन्न होने के नाते अजन्मा कहा जाता है । इसी भाँति देवों में महान् होने के नाते महादेव, समस्त लोकों के ईश एवं अधीश्वर होने के नाते ईश्वर, वृहत् के कारण ब्रह्मा, प्रादुर्भूत होने के नाते भव, समस्त प्रजाओं के पालन करने के कारण प्रजापति और पुर में शयन करने के नाते पुरुष कहा गया है । १२-१४। अनुत्पन्न एवं अपूर्व होने के नाते स्वयंभू, हिरण्य (सुर्वर्ण) के अण्डे में स्थित रहने के नाते ग्रहेश, दिवस्पति, देवाधिदेव, दिवाकरण एवं हिरण्यगर्भ कही जाता है । १५-१६। तत्त्वदर्शी कृषियों ने नारा को जल बताया है एवं वही जल उनके अपने (गृह) होने के नाते उनका नाम 'नारायण' हुआ । १७। इसी प्रकार कवियों ने 'अर' शब्द को शीघ्रार्थ में निपातनात् प्रयुक्त किया है, इसीलिए वह जल (अर्णव) (समुद्र) रूप है, जो कभी भी शीघ्रगामी (अपने किनारे से बाहर) नहीं होता है । १८। इस भाँति उसी एक समुद्र में स्थावरं जंगमरूपी समस्त जगत् के विलोन हो जाने पर उस जल में एकमात्र वही नारायण नामक पुरुष शयन करता है, जिसके सहस्र शिर, सुन्दर (विकारहीन) मन, सहस्र आँखे और पैर एवं बाहू हैं और वही सर्वप्रथम प्रजापति तीनों देवों में पुरुष, आदित्य वर्ण होकर भुवनों का रक्षक, अपूर्व, एक प्राचीन, पुरुष एवं तम से परे हिरण्यगर्भ भी कहा जाता है । १९-२१

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में शाम्बोपाख्यान में सूर्यवर्णन
 नामक सतहतरवाँ अध्याय समाप्त ॥२७।

१. शकन्धवादित्वात्पररूपम् । २. शयने । ३., ४. पुरुषः । ५. स उच्यते ।

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सूर्यमहिमावर्णनम्

नारद उवाच

तुल्यं युगमहस्य नैशं कालगुपास्य सः । शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥१
सलिलेनाप्लुतः भूमिं दृष्ट्वा कार्यं विचिन्त्य रुः । भूत्वा स तु वराहो वै अपः सांवशते प्रभुः ॥२
सञ्चित्यैवं स देवेषो भूमेष्ठरोः क्षमः । महीं महार्जवे भग्नामुद्गुरुमुपदक्षमे ॥३
उत्तिष्ठतस्तस्य जलार्दकुक्षेर्महावराहस्य महीं विधार्य ।

विधुन्वतो वेदमयं शरीरं रोमान्तरस्था मुनयो ज्ञान्ति ॥४

उद्गत्योर्वीं स सलिलात्रजासर्गभक्तपयत् । मनसा जनयनामास युत्रानात्प्रसमाऽच्छुभान् ॥५
भृगवङ्गिरसमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । मरीचिमय इक्षं च वशिष्ठं नवमं तथा ॥६
नव प्रजापतीन्सृष्ट्वा ततः स पुरुषोत्तमः । प्रादुर्भूतोऽदितिः पुत्रः प्रजानां हितकाम्यया ॥७
मरीचात्कश्यपं पुत्रं च वेधा जनयज्जले । प्रजापतीनां दशमं तेजसा ब्रह्मणः समम् ॥८
वृक्षकन्याऽदितिर्नान्ना पत्नी सा कश्यपस्य तु । अण्डं सा जनयामास भूर्भुवःस्वस्त्रिसंयुतम् ॥९

अध्याय ७८

सूर्यमहिमा का वर्णन

नारद ने कहा—पुनः (वही) सहस्र युग के समान होने वाली रात के मध्य को व्यतीत कर अन्त में (प्रातःकाल) सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा का रूप धारण करता है । १। और जल में डूबी हुई पृथिवी को देखकर कार्यों (सृष्टि) का स्मरण करते हुए उसे (लेने के लिए) वह प्रभु वाराह का रूप धारणकर जल के मध्य में प्रवेश करता है । २। इस प्रकार ऐसा सोचकर पृथ्वी को लाने में समर्थ वह देवाधिदेव महासागर में डूबी हुई पृथ्वी के उदार के लिए उपक्रम करता है । ३। तथा पृथ्वी को लेकर जल के भीतर से ऊपर निकलते हुए महावाराह के उस वेदमय शरीर की, जिसे उन्हें उस समय स्वयं कमित किया था, तथा उनके रोम के भीतर स्थित मुनिण गप पूजा करते हैं । ४। इस भाँति वह जल के मध्य से पृथ्वी को निकाल कर उस पर प्रजाओं की सृष्टि करता है । पहले उसने अपने समान पुत्रों को मानसिक सृष्टि द्वारा उत्पन्न किया । ५। पश्चात् भृगु, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, दक्ष तथा वशिष्ठ इन नव प्रजापतियों की सृष्टि करके वह पुरुषोत्तम प्रजाओं के हित के लिए अदिति का पुत्र होकर प्रादुर्भूत हुआ । ६-७। मरीचि के कश्यप नामक पुत्र हुआ, जिसे ब्रह्मा ने जल में उत्पन्न किया था, और वही दसवाँ प्रजापति भी हुआ, जो तेज में ब्रह्मा के समान था । ८। अदिति नाम की वृक्ष की कन्या थी, वही कश्यप की स्त्री हुई है । एवं उसी के गर्भ से एक इस भाँति का अंडा उत्पन्न हुआ जिसके अन्तःस्थल में भूलोक, भुवर्लोक, और स्वर्गलोक भी निहित था । ९।

१. यजंति । २. आहृयम् ।

तत्रोत्पन्नः सहस्रांशुद्वादशात्मा दिवाकरः । नवयोजनसहस्रो विस्तारोऽस्य महात्मनः ॥
 विस्तारास्त्रिगुणशास्य परिणाहो विभावसोः ॥१०
 यथापुष्पं कदम्बस्य समन्तात्केशरैर्वृतम् । तथैव तेजसां गोलं समन्तादक्षिभिर्वृतम् ॥११
 सहस्रशीर्षा पुरुषो ब्राह्मणं योगमुदाहरन् । तैजसस्य च गोलस्य स तु मध्ये व्यवस्थितः ॥१२
 आदत्ते स तु रक्षमीनां सहक्षेण समन्ततः । अपो नदीः सुद्वेष्यो हृदकूपेभ्य एव च ॥१३
 शौरी प्रभा या देवस्य अस्तं याते दिवाकरे । अद्विमाविशते रात्रौ तस्मादद्वारात्प्रकाशते^१ ॥१४
 उदिते च ततः सूर्ये तेज आप्रेयमाविशतु । पादेन तेजसश्चाभ्यस्तस्मात्त तप्ते रविः ॥१५
 प्रकाशत्वं तथोल्लत्वं सूर्येऽप्नौ च प्रकीर्तिः । परस्परानुप्रदेशादाप्यपेते दिवानिश्च ॥१६
 व्यापकत्वं च रक्षमीनां नामानि च निबोध मे । हेतयः किरणा गावो रक्षयोऽय गभस्तयः ॥१७
 अभीष्ववो घनं चोक्षा वसवोऽथ मरीचयः । नाड्यो दीपितयः साध्या मयूखः भानवोऽशवः ॥१८
 सप्तार्चयः सुपर्णाश्च करः पादास्तथैव च । एषां तु नाम्नां रक्षमीनां पर्याप्य विंशतिः स्मृताः ॥१९
 चन्दनादीनि वक्ष्यामि नामान्येषां पृथक्पृथक् । सहस्रं तात कथितं शीतदर्जेष्वनिः खवम् ॥२०
 तेषां चतुःशतं नाड्यो वर्षते चित्रमूर्तयः । चन्दनाच्छैव मन्दाश्च कोतनामानुमास्तथा ॥
 अमृता नाम ते सर्वे रक्षयो वृष्टिहेतवः ॥२१
 हिमोद्धास्तु तत्रान्ये रक्षयस्त्रिशतं स्मृताः । चन्द्रास्ते नामतः सर्वे पीतास्ते तु गभस्तयः ॥२२

उसी अंडे से द्वादश रूप सूर्य का आविभाव हुआ, जिसका नव सहस्र योजन का विस्तार और सत्ताइस सहस्र योजन की परिणाह (मंडल) है । १०। इस प्रकार चारों ओर केशरों से आवृत्त कदम्बपुष्प की भाँति रक्षियों से चारों ओर से घिरा हुआ वह तेज का एक गोला है । ११। इसी प्रकार सहस्र शिर बाला वह पुरुष ब्राह्मण्योग को अपनाकर अपने तेज के गोले में स्थित हुआ । १२। वह नदियों, समुद्रों, कूर्णे और तालाबों के जलों को अपनी सहस्रों किरणों द्वारा ग्रहण करता रहता है । १३। उनकी शौरी नाम की प्रभा उनके अस्त हो जाने पर रात में अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है, इसीलिए अग्नि दूर से ही प्रकाशित दिखायी देता है । १४। फिर उदयकाल में वह 'आग्नेय' तेज सूर्य को प्राप्त होता है । जिससे अग्नि के द्वारा सूर्य सदैव ताप प्रदान करते रहते हैं । १५। इस भाँति जो प्रकाश एवं उष्णता (गर्भी) सूर्य और अग्नि में बतायी गई है दोनों आपस में अनुप्रवेश (आदान-प्रदान) द्वारा रात तथा दिन में बढ़ते हैं । १६। उन्हीं किरणों की व्यापकता और नाम में बता रहा हूँ, सुनो ! हेति, किरण, गो, रक्षिम, गर्भास्त, अभीषु, धन, उम्र, वसु, मरीचि, नाड़ी, दीधिति, साध्य, मयूख, भानु, अंशु, सप्तर्षि सुपर्ण, कर और पाद (एवं धृणि) ये किरणों के बीस पर्यायवाची नाम हैं । १७-१९। हे तात ! उनके उन चन्दन आदि पृथक्-पृथक् नामों को भी बताऊँगा । जिनमें से सहस्रों अर्थात् अधिक से अधिक परिमाण में शीत, वर्षा, एवं उष्णता निकलती रहती है । २०। उन्हीं की चार सौ किरणें, जिनके चित्रमूर्ति, चन्दन, मंद, कोतनामानुमा, और अमृत नाम हैं, वर्षा करती हैं । इसीलिए उन्हें ही वर्षा का मूल कारण बताया गया है । २१। उसी प्रकार पीले वर्ण की चन्द्रा नाम की तीन

१. त्वग्निः । २. चन्दनाश्रैव चन्द्राश्च केन वा गौतमास्तथा, चन्द्रश्रैव सदाचक्रोऽनानीरुननास्तथा ।

सौम्येशाश्रैव^१ वामश्र छादिनो हिमसर्जना: । शुक्लाश्र कुभश्रैव गादे निश्चभुतस्तथा ॥२३
 शुद्धास्ते नामतः सर्वे त्रिशतं धर्मसर्जना: । समं बिभ्रति ते सर्वे मनुष्या देवतास्तथा ॥२४
 मनुष्यानोषधीभिस्तु स्वधया च पितृ॒ नपि : अमृतेन सुरान्सर्वास्त्रयस्त्रभिरतर्पयन् ॥२५
 वसन्ते चैव यीम्बे च शतैः स तपते रिभिः । वर्षशरत्सु दैवेशस्तपते सम्प्रवर्द्धे ॥२६
 हेमन्ते शिशिर चैव हिमोत्तर्ण च स त्रिभिः । ओषधीषु बलं धते स्वधया च स्वधां पुनः ॥२७
 अमरेष्वसृतं सूर्यस्त्रय त्रिपु नियच्छति ॥२८
 कालोगिर्वत्सरश्रैव द्वादशात्मा प्रजापतिः । तपत्येषु सुरथेष्टस्त्रीलोकसचराचरान् ॥२८
 एष ब्रह्मा तथा विष्णुरेष एव महेश्वरः । क्रचो यज्ञोषि सामानि एष एव न संशयः ॥२९
 क्रचाभिः स्तूयते पूर्वं मध्याह्ने गजुर्भिः सदा । सत्त्वाभिस्त्वपराह्लेषु महेशानैः प्रपूज्यते ॥३०
 पूज्यमानस्तु नित्यं वै तपत्येष दिवरपतिः । सदैष तेजसं रतिर्दाप्तिमान्सर्वलोकः ॥३१
 पश्चितोर्ध्वमध्यश्रैव तापयत्येष सर्वतः । ब्रह्मविष्णुमहेशानैः पूज्यमानस्तु नित्यशः ॥३२
 यथा सर्वगतो वायुर्वह्मानस्तु लिष्ठति । तद्वत्सहस्रकिरणो ग्रहराजो दिवस्पतिः ॥३३
 सूर्यो गोभिर्जगत्कृत्स्मादीपयति सर्वदः । त्रीणि रक्षिमशतान्यस्य भूर्लोकं द्योतयन्ति वै ॥३४

सौ किरणें, जो सौष्य, वासवीष्य, छादिनी एवं हिम सर्जना कही जाती हैं, वर्फ बरसती हैं और शुक्लवर्ण की कुभ, गो, एवं विश्वभृत नामकी तीन सौ किरणें धर्म का सर्जन करती हैं। इस प्रकार वे किरणें देवताओं और मनुष्यों को समझाव से पालन-पोषण करती हैं। २२-२४। औषधियों द्वारा मनुष्यों का, स्वधा द्वारा पितरों का और अमृत द्वारा देवताओं का पालन करती हैं। २५। इसी भाँति वसन्त तथा श्रीष्म क्रतु में तीन सौ किरणें द्वारा तपना, वर्षा एवं शरत् में तीन सौ किरणें द्वारा, वर्षा तथा हेमन्त और शिशिर में तीन सौ किरणें द्वारा उनका बरसाना बताया गया है। (तीन भाँति की किरणें द्वारा) सूर्य औषधियों में बल, स्वधा में स्वधा तथा देवों में अमृत प्रदान करते हैं। २६-२७। इस प्रकार काल, अग्नि, वत्सर (वर्ष), द्वादशात्मा और प्रजापति होकर वही देवथेष्ट सूर्य चराचर रूप तीनों लोकों में ताप प्रदान करते हैं। २८। एवं यही, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, क्रग्वेद, यजुर्वेद और निश्चित सामवेद रूप भी हैं। २९। इसीलिए क्रचाओं द्वारा उदय काल में, यजुर्वेद द्वारा मध्याह्न में एवं समावेद द्वारा अपराह्न में महेशान (शिव) उनकी आराधना करते हैं। ३०। इस भाँति पूज्यमान् सूर्य, जो तेज पुञ्ज, प्रदीप्त एवं सभी लोगों में गमन करते हैं, नित्य तपते रहते हैं। ३१। तथा ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर द्वारा पूजित होकर वही सूर्य पार्श्व भाग, ऊर्ध्व (ऊपर) और नीचे (रहने वालों को) ताप प्रदान करते हैं ऐसा कहा गया है। ३२। इस प्रकार सभी स्थानों में पहुँचने वाली वायु के चलने फिरने की भाँति ग्रहेष एवं दिननायक सूर्य को भी सर्वगामी जानना चाहिए। ३३। सूर्य अपनी किरणों द्वारा समस्त जगत् को भली-भाँति प्रकाशित करते हैं। जिसमें तीन सौ किरणें द्वारा भूर्लोक, तीन-तीन सौ किरणें द्वारा अन्य दोनों (भुवर्लोक और स्वर्लोक) तथा

१. सौम्याश्र वासवीयाश्र छादिनो हिमसर्जना: ।

त्रीणित्रीणि तथा चान्यौ द्वौ लोकौ तापयन्त्युत । शतं चापि अधस्तात् पातालं तापयन्त्युत ॥३५
इत्येतन्मण्डलं शुक्लं भास्वरं हैलिसंज्ञितम्^१ । नक्षत्रप्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव च ॥

विधुक्तक्षपहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसभ्बवाः ॥३६

रवे: करसहस्रं यत्प्राइमदा मनुदाहृतम् । तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहसंज्ञिताः ॥३७

सूषुप्णो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तर्यैव च । सूर्यश्रेष्ठापरो रश्मिनांग्ना विष्णुरिति^२ स्मृतः ॥३८

सत्तत्वः सर्ववन्धुस्तु जीवायति च वै जगत् । सप्तजः प्रथमस्तत्र कञ्जजश्च तथा प्रारः ॥३९

तारेवश्चापरस्तत्र गुरुः सुमनसां तथा । जग्राह्वः चञ्चमस्तेषां युनोऽन्यो वनमालिनः ॥

कः शेषः तप्तमस्तेषामेते वै तप्त रश्मयः ॥४०

आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं सच्चराचरम् । भवत्यस्याज्जगत्सर्वं स देवामुरमानुषम् ॥४१

रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्र त्रिदिवौकसाम् । महद्युतिमतः कृत्स्नं तेजो यत्सार्वलौकिकम् ॥४२

क्षर्वात्मा सर्वलोकेशो देवदेवः प्रजापतिः । सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदेवतम् ॥४३

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरश्च ततः प्रजाः ॥४४

सूर्यात्प्रसूधते सर्वं तस्मिन्नेव प्रलीयते । भावाभावौ तु लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ॥४५

एततु ध्यानिनां ध्यानं मोक्षश्राप्येव मोक्षिणाम् । अत्र गच्छन्ति निर्वाणं जायन्तेऽस्मात्युनः प्रजाः ॥४६

सौ किरणो द्वारा अधोलोक (पाताल) को प्रकाशित करते हैं । ३४-३५। यही सूर्य का प्रदीप्त एवं शुक्ल मण्डल है । इसी प्रकार नक्षत्र, ग्रह और सोम (लता) के उत्पत्ति स्थान एवं चन्द्र, नक्षत्र और ग्रहों का उत्पन्न होना भी इन्हीं के द्वारा जानना चाहिए । ३६ इस भाँति सूर्य के सहस्र किरणें हैं, जिन्हें मैंने पहले ही बता दिया है, उन्हीं की ग्रह नाम की श्रेष्ठ सात किरणें और हैं जो सुपुमा, हरिकेश, विश्वकर्मा, सूर्य, रश्मि, विष्णु के नाम से प्रख्यात होकर बलवान् बन्धुओं की भाँति समस्त जगत् को प्राणदान देती हैं । ३७-३८। इसी प्रकार सप्तज, कञ्जज, तारेय, देव, गुरु, उग्र, जल और शेष नामक उनकी सातों किरणें हैं । ३९-४०। इस निखिल चराचर तीनों लोकों जगत् के मूल कारण सूर्य ही हैं क्योंकि इन्हीं द्वारा समस्त विश्व, जिसमें देव, असुर और मनुष्यों आदि की सृष्टि की गयी है, उत्पन्न हुआ है । ४१। हे विप्रेन्द्र ! रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) और चन्द्र देवताओं में इन्हीं महान् प्रकाशमान् सूर्य का तेज समस्त लोकों में गमनशील होने के नाते निहित है । ४२। इस प्रकार सर्वात्मा, समस्त लोकों के ईश, देवाधिदेव एवं प्रजापति रूप सूर्य तीनों लोकों के महान् देवता हैं । ४३। अग्नि में डाली गई आहुति सूर्य को ही प्राप्त होती है जिससे सूर्य द्वारा वर्षा होती है एवं वर्षा द्वारा अन्न और अन्न द्वारा प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं । ४४। इस भाँति सदैव सूर्य द्वारा सभी (जगत्) का सर्जन एवं उन्हीं में प्रलय होता रहता है । अतः लोकों का उत्पन्न और विनाश दोनों सूर्य द्वारा ही होना पहले से निर्विचित है । ४५। और यही ध्यान करने वालों के लिए ध्येय एवं मोक्ष के इच्छुकों के लिए मोक्ष रूप हैं । इन्हीं में लोगों को निर्वाण पद की प्राप्त होती है एवं पुनः उन्हीं द्वारा समस्त प्रजाओं की उत्पत्ति भी होती है

१. गोलसंज्ञितम् । २. धृष्टव्रतः ।

क्षणा मुहूर्ता दिवरा निशा: पक्षारतु नित्यशः । मासाः सम्बत्सराभ्यैव कृतवोऽथ युगानि च ॥

अथादित्यमृते हृषीणं कालसंस्था न विद्यते ॥४७

कालादृते न नियमा नाग्नेर्विहरणक्रिया । कृतू नामविभागाच्च पुष्पमूलफलं कुतः ॥४८

अभावो व्यवहाराणां जन्तूनां दिवि चेह च । जगत्प्रतापनमृते भास्करं वारितस्करम् ॥४९

नावृष्टधा तपते सूर्यो नावृष्टधा परिवेष्यते । आदित्यस्य च नश्चानि सामान्यानीह द्वादश ॥५०

द्वादशैव पृथक्त्वेन तानि वक्ष्याम्यनेकशः । आदित्यः सविता सूर्यो मिहिरोऽर्कः प्रतापनः ॥५१

मार्तण्डो भास्करो भानुश्चित्रभानुर्दिवाकरः । रविर्वै द्वादशशैव ज्ञेयः सामान्यनासभिः ॥५२

विष्णुर्धाता भगः पूषा मित्रेन्द्रो वरुणोऽर्दमा । विवस्वानंशुमांस्त्वष्टा पर्जन्यो द्वादश स्मृताः ॥५३

इत्यैते द्वादशादित्याः पृथक्त्वेन प्रकीर्तिताः । उत्तिष्ठन्ति सदा हृते यासैद्वादशभिः क्रमात् ॥५४

विष्णुस्तपति चैत्रे च वैशाखे चार्यमा तथा । विवस्वान्येष्ठमासे तु आषाढे चांशुमांस्तथा ॥५५

पर्जन्यः श्रावणे मासि वरुणः ग्रोष्ठसंज्ञके । इन्द्रश्चाश्वयुजे मासि धाता तपति कार्तिके ॥५६

मार्गशीर्षे तथा मित्रः पौषे पूषा दिवाकरः । माघे भागस्तु दिनेयस्त्वष्टा तपति फाल्गुने ॥५७

तैश्च द्वादशभिर्विष्णू रश्मीनां दीप्यते सदा । दीप्यते गोसहस्रेण शतैश्च त्रिभिर्यमा ॥५८

द्विसप्तकैर्विवस्वांस्तु अंशुमान्पञ्चचकैस्त्रिभिः । विवस्वानिव पर्जन्यो वरुणश्चार्यमा इव ॥५९

इन्द्रस्तु द्विगुणैः षड्भिर्धातैकादशभिः शतैः । मित्रवद्गवत्त्वष्टा सहस्रेण शतेन च ॥६०

१४६। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, वर्ष, कृतु और युगल्पी काल की व्यवस्था दिना सूर्य के कभी भी सम्भव नहीं हो सकती है । ४७। उसी प्रकार बिना काल व्यवस्था के नियम और अग्नि की विहरण क्रिया (हवन) कैसे हो सकती है, और अविभाजित कृतुओं में फूल, फल एवं मूल कैसे उत्पन्न हो सकते हैं । ४८। इस भाँति सूर्य के बिना, जो जगत् को प्रताप प्रदान करते एवं जल के अपहर्ता हैं, प्राणियों के लोक-परलोक के व्यवहार (कार्य) सुसम्पन्न नहीं हो सकते हैं । ४९। और बिना वर्षा के सूर्य में ताप एवं (वर्षा के) मंडल सम्भव नहीं होते हैं । अब सूर्य के बारह नाम जो सामान्य रूप से हैं, उन्होंने पृथक्, पृथक् मैं बता रहा हैं । ५० आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रतापन, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु और दिवाकर एवं रवि यही उनके सामान्य नाम हैं और विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान, त्वष्टा और पर्जन्य ये सूर्य के पृथक्-पृथक् रूप हैं, जिनका बारहों मासों में क्रमशः उदय हुआ करता है । ५१-५४

जिस प्रकार चैत में विष्णु, वैशाख में अर्यमा, ज्येष्ठ में विवस्वान्, आषाढ़ में अंशुमान्, श्रावण में पर्जन्य, भाद्रे में वरुण, आश्विन में इन्द्र, कार्तिक में धाता, मार्गशीर्ष में मित्र, पौष में पूषा, माघ में भग और फाल्गुन में त्वष्टा नामक सूर्य ताप प्रदान करते हैं । ५५-५७। उसी प्रकार क्रमशः विष्णु (नामक सूर्य) बारह सौ रश्मियों द्वारा, अर्यमा तेरह सौ किरणों द्वारा, विवस्वान् चौदह सौ, अंशुमान् पन्द्रह सौ, पर्जन्य विवस्वान् के समान (चौदह सौ) वरुण अर्यमा की भाँति (तेरह सौ), इन्द्र बारह सौ, धाता ग्यारह सौ तथा त्वष्टा मित्र और भग के समान ग्यारह सौ किरणों द्वारा ताप प्रदान करते हैं । ५८-६०। जिस भाँति

उत्तरोपक्रमेऽक्षय वर्धन्ते रक्षयः सदा । दक्षिणेनक्रमे भूयो हसन्ते सूर्यरक्षयः ॥६१
एवं रश्मसहस्रं तु सौर्यं लोकार्यसाधकम् । भिद्यते क्रतुमासैत्तु सहस्रं बहुधा 'भृशम् ॥६२
एवं नाम्नां चतुर्विंशदेकस्यैषा प्रकीर्तिता । विस्तरेण सहस्रं तु पुनरेवं प्रकीर्तितम् ॥६३
आसां परमयत्नेन बुद्धते भिन्नदर्शनः । ताप्तसा बुद्धिमोहाच्च ३ दृष्टान्तानि बुवन्ति हि ॥६४
झ्याणं कारणं केचित्केचिदाहृदिवाकरम् । केचिद्भूवं परत्वेन आहृविष्णुं तथापरे ॥६५
कारणं दु मृता ह्येते ज्ञानार्थेषु सुरोत्तमाः । एकः स तु पृथक्त्वेद स्वयंभूरिति विश्रुतः ॥६६
वनमःलिनमुप्रेषां दिवि क्षुरित्वान्तकम् । तं स्वयंभूरिति प्रोक्तं स सोपणिमनौपमम् ॥६७
यथानुरज्जते वर्णविविधैः स्फाटिको मणिः । तथा गुणवशात्तस्य द्वयंभोरनुरञ्जनम् ॥६८
एको भूत्वा यथा मेघः पृथक्त्वेन प्रतिष्ठितः । दर्शतो रूपतश्चैव तथा गुणवशात् सः ॥६९
नभसः परितं तोयं याति स्वादान्तरं यथा । भूमे रसविशेषेण तथा गुणवशात् सः ॥७०
यथेन्द्रनवशादग्निरेकस्तु बहुधायते । चर्णतो रूपतश्चैव तथा गुणवशात् सः ॥७१
यथा द्रव्यविशेषाच्च वायुरेकः पृथग्भदेत् । कुणान्धिः पूतिगन्धिर्वा तथा गुणवशात् सः ॥७२
यथा वा गार्हपत्योग्निरन्तरं वर्जेत् । दक्षिणाहवनीयादिभृहात्तिषु तथा ह्यसौ ॥७३

उत्तरायण में सूर्य की किरणें सदैव बढ़ती रहती हैं, उसी भाँति दक्षिणायन में अत्यन्त घटती जाती हैं । ६१।
इस प्रकार सूर्य की सहस्र किरणें, जो क्रतुओं द्वारा घटती-बढ़ती हैं, प्रणिणियों के प्रयोजनों को सफल करती हैं । ६२। जिस प्रकार इन एक सूर्य के चौबीस नाम हैं इनके सहस्र नाम भी इसी प्रकार विस्तार पूर्वक बताये गये हैं । ६३। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के दर्शनवादी इनकी किरणों को कुछ और ही कहने के लिए महान् प्रयत्नशील रहते हैं, जैसे तामस प्रधान पुरुष अपनी बुद्धि के भ्रमवश इन्हें देखते हुए भी (अपने सिद्धान्तों का) त्याग नहीं करते । ६४। यद्यपि किसी ने ब्रह्म, किसी ने सूर्य, किसी ने शिव तथा कुछ लोगों ने विष्णु को (जगत् का) कारण बताया है, पर ये सभी देवता उसी एक (सूर्य) द्वारा जो सभी से पृथक् एवं स्वयंभू नाम से स्वात है, आविर्भूत होकर भाँति-भाँति के कार्यों में नियुक्त हैं । ६५-६६। इसलिए बनमाली, उत्त्वेश, आंकाश के नेत्र और अंतक (काल) रूपी सूर्य को जो देवों में अनुपम हैं, स्वयंभू बताया गया है, इस प्रकार विविध भाँति के वर्णों (रंगों) द्वारा अनेक भाँति की दिखाई देने वाली स्फटिक मणि के समान स्वयंभू सूर्य भी गुणों के अनुरूप ही दिखायी देते हैं । ६७-६८। उस एक मेघ के समान, जो भिन्न-भिन्न रूपों एवं रंगों में परिवर्तित होता रहता है, सूर्य भी अपने गुणानुरूप होते रहते हैं । ६९। आकाश से पिरे हुए जल की भाँति, जो पृथिवी के रस विशेष के सम्पर्क से भिन्न स्वाद का हो जाता है, सूर्य का भी गुणानुरूप अनुरंजन होना जानना चाहिए । ७०। पुनः एक ही अग्नि के ईंधनवश अनेक भाँति के रूप-रंग होने की भाँति सूर्य में भी गुणवश (रूपरंग का) परिवर्तन होता है । ७१। जिस प्रकार एक ही वायु, विशेष के सम्बन्ध से मुग्नन्ध या दुर्गन्ध के रूप में परिवर्तित होता है, उसी भाँति गुणवश सूर्य में भी परिवर्तन होता रहता है । ७२ एवं गार्हपत्य अग्नि के समान, जो कार्यवश दक्षिणाग्नि एवं आह्वानीय आदि नामान्तरों से प्रस्थात हैं, उसी भाँति सूर्य के ब्रह्म नाम-रूपान्तर भी हैं । ७३। इस प्रकार उनके एक और

एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतश्चिदर्शनम् । तस्माद्गतिः सदा कार्या देवे हृस्मिन्दिवाकरे ॥७४
 एषोऽण्डजोऽधिगच्छेव एष एव भृगुस्तथा । एष रजत्तमश्चेव एष नत्त्वगुणस्तथा ॥७५
 एष वेदाश्र यज्ञाश्र सर्वश्चेव न संशयः । सूर्यव्याप्तमिदं सर्वं जगत्स्थावरजन्मम् ॥७६
 'इज्यते पूज्यते चासावत्र यानात्मको रचिः । सर्वत्र सविताः देवस्ततुभिर्नामभिश्च लः ॥७७
 वसत्यग्नौ तथा वाते व्योग्नि तोये तथा विभो । एवंदिग्यो हृयं सूर्यः सदा पूज्यो विजानतः ॥७८
 आदित्यं वेत्ति यस्त्वेवं स तस्मिक्षेव लीयते । अप्येकं वेत्ति यो नाम धात्वर्थनिःसै रवः ॥७९
 स रोगैर्वर्जितः सर्वेः सद्यः ३ चापात्रमुच्यते । न हि पापकृतः साम्ब भक्तिर्भवति भास्करे ॥८०
 तथा त्वं परया भक्त्या प्रपद्यस्व दिवाकरम् । देन व्याधिविर्जिमुक्तः सर्वान्कामानवाप्यसि ॥८१
 यथा तद पिता साम्ब यथा वेद्या यथा हरः । यथा गुणवशात्तस्य स्वयम्भोरनुरञ्जनम् ॥८२
 एकीसूर्य यथा मेघः पृथक्त्वेन प्रतिष्ठते । वर्णतो रूपतश्चेव तथा गुणवशात् सः ॥८३

इति श्रीभ्रविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां तंहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
 सूर्यमहिनवर्णनं नामाष्टसत्तितमोऽध्ययः । ७८।

अनेक होने में यही दृष्टान्त बताये गये हैं । अतः इस दिवाकर देव की सदैव भक्ति करनी चाहिए । ७४ यही अण्डज (मार्तिण्ड) (सर्वत्र) व्यापक, भृगु, रजस्, तमस् एवं सत्त्वगुण, वेद, यज्ञ और सर्वरूप हैं इसमें संदेह नहीं तथा स्थावर जंगम रूप से समस्त जगत् में व्याप्त हैं । ७५-७६ । इसी प्रकार यानात्मक सविता सूर्यदेव का बारहों रूपों और नामों द्वारा सर्वत्र यजन और पूजन होता है । ७७। इसी भाँति सूर्य को अग्नि, वायु, आकाश, एवं जल के निवासी भी जानते हुए उनकी सदैव पूजा करनी चाहिए । ७८। तथा जो इस भौतिक की विशिष्ट जानकारी सूर्य के विषय में प्राप्त करता है, उसे उनका सायुज्यमोक्ष प्राप्त होता है । इस प्रकार धात्वर्थ एवं निगमों (वेदों) द्वारा उनके एक ही नाम का ज्ञान रखने वाला (पुरुष) रोग एवं पापों से शीघ्र मुक्त हो जाता है । हे साम्ब ! किन्तु पापों मनुष्य सूर्य के भक्त नहीं होते हैं । ७९-८०। इसीलिए अत्यन्त भक्तिपूर्वक सूर्य की आराधना करो, जिससे व्याधिमुक्त होकर तुम्हारे सभी मनोरथ सफल हो जाय । ८१। हे साम्ब ! तुम्हारे पिता, ब्रह्मा और शिव की भाँति सूर्य का भी गुणानुरूप मनोरजन होता है । भिन्न-भिन्न रूप रंग वाले मेघ एक में मिलकर रूपरंग से जिस भाँति भिन्न-भिन्न दिखायी देते हैं सूर्य भी अपने गुणों द्वारा वैसा ही हुआ करते हैं । ८२-८३

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य महिमावर्णन नामक
 अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । ७८।

अथैकोनाशीतितमोऽध्यायः

आदित्यमहिमदर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एतच्छृत्वा तु कात्स्येन हृष्टो जाम्बवतीसुतः । जातकौतूहलो सूर्यः परिप्रच्छ नारदम् ॥१
साम्ब उवाच

अहो सूर्यस्य साहात्म्यं वर्णितं हर्षवर्धनम् । येन मे भक्तिरूपश्चा परा हृस्मिन्द्विभावसौ ॥२
ज्ञतो राजी भगवान् निक्षुभा च भ्रामुने । दिण्डनं पिङ्गलदीश्वरं सर्वान्कथय ने मुने ॥३

नारद उवाच

प्रागुक्तेऽर्कस्य द्वे भार्ये राजी निक्षुभसंज्ञिते । तयोर्हि राजी द्यौर्ज्ञेया निक्षुभा पृथिवी स्मृता ॥४
सौम्यमासस्य^१ सप्तम्यां द्यांवार्कः सह युज्यते । नाघकृष्णस्य सप्तम्यां भ्रामा सह भवेद्विः ॥५

भूरादित्यश्च भगवान्गच्छतः सङ्गमं तथा ॥५

ऋतुस्नाता महो तत्र गर्भं गृह्णाति भास्करात् । द्यौर्जलं सूर्यते गर्भं वर्षास्त्विह च मूतले ॥६
ततस्त्रैलोक्यभूत्यर्थ^२ मही सस्थानि सूर्यते । सस्योपयोगसंहृष्टा जुह्वत्याहुतयो द्विजाः ॥७

अध्याय ७९

सूर्य की महिमा का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—विस्तारपूर्वक इसे सुनकर साम्ब ने हर्षित होते हुए कौतूहलवश नारद से फिर पूछा । १

साम्ब ने कहा—आशर्चय है ! आपने सूर्य के ऐसे हर्षवर्धक माहोत्स्य को सुनाया, जिसके द्वारा मुझमें सूर्य की उत्तम भक्ति उत्पन्न हो गई । हे महामुने ! अब पुण्यवती राजी, निक्षुभा, दिंडी और पिंगल आदि को मुझे बताने की कृपा करें । २-३

नारद बोले—पहले बतायी हुई सूर्य की राजी और निक्षुभा नामकी दोनों स्त्रियों में प्रथम आकाश, रूप और दूसरी पृथ्वी रूप हैं—ऐसा जानना चाहिए । ४। पौष मास की शुक्ल सप्तमी तिथि में राजी (आकाश) का और माघ कृष्ण सप्तमी में निक्षुभा (पृथिवी) का सूर्य से सम्मिलन होता है । पश्चात् सूर्य और पृथ्वी के संयोग होने पर ऋतुकाल में स्नान की हुई (स्त्री की भाँति) पृथिवी सूर्य द्वारा गर्भधारण करती है । जिसे वर्षा काल में आकाश पृथ्वी को पुनः वृष्टि रूप में प्रदान करता है । ५-६। इस प्रकार तीनों लोकों को ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए पृथ्वी, धन-धान्यों को उत्पन्न करती है, जिसके प्राप्त होने पर

१. सादरम् । २. पौषस्य शुक्लसप्तम्यां रात्रयार्कः सह युज्यते । ३. त्रैलोक्यवातीर्थम् ।

स्वाहाकारस्वधाकारैर्यजन्ति पितृदेवताः

॥८

निष्कुभा सूयते यस्माद्नोर्विधिसुधामृतैः । मत्यान्यितृश्च देवांश्च तेन भूर्निष्कुभा स्मृता ॥९

यथा राज्ञी द्विधा भूता पस्य चेयं सुता मता । अपत्यनिं च यान्यस्यास्तानि बक्ष्यास्यरेष्टः ॥१०

मरीचिर्बहुणः पुत्रो मरीचे: कश्यपः सुतः । तस्माद्विरण्यकशिपुः प्रह्लादस्तस्य चात्मजः ॥११

प्रह्लादस्य सुतो नान्ना विरोचन इति श्रुतः । विरोक्तस्य भगिनी सज्जाया जननी शुभा ॥१२

हिरण्यकशिपोः पौत्री दिते: पुत्रस्य सा स्मृता । सा चिष्वकर्मणः पुत्री प्राह्लादी प्रोत्येते बुद्धैः ॥१३

अथ नान्ना सुरूपेति मरीचेर्दुहितः शुभा । पुत्री हृष्णिरसः सा तु जननी तु बृहस्पतेः ॥१४

बृहस्पतेस्तु भगिनी विश्रुता ब्रह्मवादिनी । प्रात्मस्तस्य तु सा पत्नी वसूनान्प्रस्त्य दु ॥१५

प्रसूता विष्वकर्मणं सर्वशिल्पकरं वरम् । रु वै नान्ना पुनस्त्वष्टा त्रिदशानां च वार्धकिः ॥१६

देवाचार्यश्च तस्येयं दुहितः विष्वकर्मणः । सुरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भागिनी ॥१७

राज्ञी सज्जा च द्यौस्त्वाष्ट्री प्रभा तैव विभाव्यते । तस्यात् या तनुच्छाया निष्कुभा सा महीमयी ॥१८

सा तु भार्या भगवतो मार्त्तिंस्य महात्मनः । सात्त्वी पतिव्रता देवी रूपयौवनशालिनी ॥१९

न तु तां नररूपेण भूर्यो भजति वै पुरा । आदित्यस्येह तदूपं महता स्वेन तेजसा ॥२०

गत्रेष्वप्रतिरूपेषु नातिकान्तमिवाभद्रत् । अनिष्पत्तेषु गात्रेषु गोलं दृष्ट्वा पितामहः ॥२१

प्रसन्नतापूर्ण होकर द्विज लोग हवन करते हैं, स्वधाकार द्वारा पितरों और स्वाहाकार द्वारा देवताओं की पूजा होती है । ७-८। इस प्रकार उत्पन्न किये हुए उस अन्न, औषधि एवं सुधा द्वारा मनुष्य, पितर और देवताओं को प्राण प्रदान करते के नाते पृथ्वी को निष्कुभा कहा गया है । ९।

उसी भाँति राज्ञी के दो रूप का होना तथा ये किसकी पुत्री हैं और इनके कितनी सन्तान हैं, मैं बता रहा हूँ सुनो ! । १०। वट्ठा के पुत्र मरीचि, मरीचि के कश्यप, कश्यप के हिरण्यकशिपु, उसके प्रह्लाद और प्रह्लाद के पुत्र विरोचन हैं, ऐसा सुना गया है । विरोचन की भगिनी, जो दितिपुत्र हिरण्यकशिपु की पौत्री, प्रह्लाद की पुत्री और विश्वकर्मा की स्त्री है, सज्जा की माँ थी । १-१२।

मरीचि की पुत्री सुरूपा, जो अंगिरा की पत्नी थी, बृहस्पति की माँ थी । १४। एवं बृहस्पति की ब्रह्मवादिनी भगिनी आठवें वसुप्रभा की स्त्री हुई, जिसने सभी शिल्पों का अभिज्ञ विश्वकर्मा नामक पुत्र को उत्पन्न किया है, जिसे देवताओं की वृद्धि करने के नाते त्वष्टा भी कहते हैं । १५-१६। विश्वकर्मा की वह सुन्दरी कन्या (सज्जा) जो तीनों लोकों में सुरेणु नाम से भी स्वात थी राज्ञी, सज्जा, द्यौ एवं त्वाष्ट्री और प्रभा के नाम से स्वात हुई । उसी के शरीर की छाया को निष्कुभा (पृथ्वी) कहते हैं । १७-१८। वही, साध्वी, पतिव्रता जो रूप, सौन्दर्य तथा यौवन पूर्ण थी, भगवान् मार्त्तिंस्य की स्त्री हुई । १९। किन्तु मनुष्य रूप में सूर्य उससे संगम नहीं करते थे । इसीलिए सूर्य का वह रूप, जो अत्यन्त तेजस्वी था, उस सौन्दर्य की प्रतिमा (संज्ञा) के लिए आकर्षक न हो सका । इसीलिए सूर्य के उस अनुत्पन्न शरीर को गोलाकार देखकर ब्रह्मा

१. सा च भार्या मधवतो मार्त्तिंस्य महात्मनः । शर्ची पतिव्रता देवी रूपयौवनशालिनी—इ० पुस्तकांतरस्थः पाठः अन्येषु पुस्तकेषु तु मूलस्थ एव ।

मार्तस्त्वं भव चाण्डस्तु मार्तण्डस्तेन स स्मृतः । देवानां च यतस्त्वादिस्तेनादित्य इति स्मृतः ॥२२
 अतः परं प्रवश्यामि प्रजास्तस्य महात्मनः । श्रीष्पत्यानि संज्ञायां जडयामास वै गच्छः ॥२३
 वर्षाणां तु सहस्रं वै वसमाना पितुर्गृहे । भर्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनःपुनः ॥२४
 अगच्छद्वडवा भूत्वा त्यक्त्वा रूपं पशस्विनी । उत्तरांश्च कुरुनात्वा तृणात्यनुच्चदार ह ॥२५
 पितुः समीपं या भार्या संज्ञा या वचनेन सा । संज्ञाया धारयद्वूपं छया सूर्यमुपस्थिता ॥२६
 द्वितीयाणां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्तयन् । आदित्यो जगयामास पुत्रोऽकन्यां च रूपिणीम् ॥२७
 पूर्वजस्य मनोस्तुल्यौ सादृश्येन च तावभौ । श्रुतश्वाश्र धर्मज्ञः श्रुतकर्मा तथैव च ॥२८
 श्रुतश्वा मनुस्तास्यां सावर्णियोऽभविष्यति । श्रुतकर्मा तु विजेयो ग्रहो यो वै रानैश्चरः ॥२९
 कन्या च तपती नाम रूपेणाप्रतिरूपिणो । संज्ञा तु पार्थिदी तेषामात्मजानां यथाकरोते ॥३०
 न स्नेहं पूर्वजानां तु तथा कृतवती तु सा । मनुस्तु क्षमते तस्या यमस्तस्या न चक्षमे ॥३१
 बहुशो यात्यमानस्तु पितुः पल्ल्या सुदुःखितः । स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥३२
 पदा सन्तर्जयामास संज्ञां वैवस्त्वतो यमः । तं शशाप ततः क्रोधात्संज्ञा सा पार्थिवी भृशम् ॥३३
 पदा तर्जयते यन्मां पितुर्भायां गरीयसीम् । तस्मात्तदैश्च त्तरणः पतिष्यति न संशयः ॥३४
 यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः । मनुना सह तन्मातुः पितुः सर्वं न्यवेदयत् ॥३५

के कहने पर कि तुम मृत (मिट्टी) के अंडे हो जाओ, सूर्य मार्तण्ड कहे जाते हैं और देवों में आदि होने के नाते आदित्य भी उन्हें कहा जाता है । २०-२२

अब मैं उनकी संतानों को बता रहा हूँ सुनो ! सूर्य द्वारा संज्ञा के गर्भ से तीन सन्तान उत्पन्न हुए । २३। यद्यपि एक सहस्र वर्ष तक पिता के यहाँ रहने पर उसे 'अपने पति (सूर्य)' के घर जाओ, इस प्रकार बार-बार उसके पिता ने कहा था । २४। किन्तु उस पुण्य स्वरूप्या संज्ञा ने अपने मनुष्य रूप को त्यागकर घोड़ी का रूप धारण किया और उत्तर कुरु देश में जाकर तृणों (धासों) को खाकर वह अपने समय व्यतीत करने लगी थी । २५। (इधर) अपने पिता के यहाँ ही रहते समय उस संज्ञा के कहने से उस की छाया संज्ञा का रूप धारण कर सूर्य के पास जाकर संज्ञा की भाँति ही रहने लगी थी । २६। उसे देखकर 'यह भंजा ही है, ऐसा निश्चित कर सूर्य ने दो पुत्र और एक सुन्दरी कन्या उससे भी उत्पन्न किया था । २७। किन्तु दो दोनों श्रुतश्वा और श्रुतकर्मा नामक धर्मज्ञ पुत्र (रूप गुणादि में) अपने पूर्वज मनु के समान ही हुए । २८। उनमें श्रुतश्वा भावी सावर्णि मनु और श्रुतकर्मा शनैश्चर नामक ग्रह हुआ । २९। और उस सौन्दर्यपूर्ण कन्या का नाम तपती रखा गया । इधर अपनी मन्तानों की भाँति छाया संज्ञा की संतानों पर स्नेह नहीं करती थी । यद्यपि मनु उस (दुर्व्यवहार) का सहन कर लेते थे, पर यम के लिए उनका सहन करना कठिन हो गया था । ३०-३१। पिता की उस स्त्री द्वारा अत्यन्त प्रताडित होने से दुःखी होकर (यम ने) एक बार क्रोध में आकर बाल्य-भाव (चञ्चलता) वश और अनिवार्य भावी (घटना) के वश होकर उस (छाया) पर पाद-प्रहार किया । उसने भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया—तूने अपने पिता की गौरवशालिनी भार्या (स्त्री) पर जिस पाद से प्रहार किया है, वह निश्चित गिर जायगा । ३२-३४। पश्चात् उस शाप के कारण अत्यन्त पीड़ित होने के नाते यम मनु को साथ लेकर पिता के समीप गये । और उनसे उन्होंने माँ द्वारा किये गये सभी (दुर्व्यवहारों को) कह सुनाया । ३५। उन्होंने

स्नेहेन तुल्यनस्मासु माता देव न वर्तते । निःस्नेहाङ्गयतो हृस्मान्कनीयां सं बुभूषति ॥३६
तस्या भयोऽयतः पादो न त्रु देव निपातितः । बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्वास्तनुमर्हति ॥३७
शप्तोऽहमस्मैल्लोकेश जनन्या तपतां वर । तव प्रसादाच्चरणस्त्रायतः महतो भयात् ॥३८

रविश्वाच

असंशयं भृत्युपत्र भविष्यत्यत्र कारणम् । येन त्वामालित्क्रोधो धर्मज्ञं धर्षशालिनम् ॥३९
ज्ञवेषामेव शापानां प्रतिघातस्तु विद्यते । न तु नात्राभिराप्तानां दचिन्मोक्षे भद्रेदिह ॥४०
न शक्यमेतन्मिथ्यः मे कर्तुं मातुर्वचस्तव । किञ्चित्तेऽहं विधास्यामि पितृस्नेहादनुप्रहस् ॥४१
कृमयो मांसमादाय यास्यन्ति तु महीतले । कृतं तत्या वन्नः सत्यं त्वं च त्रातो भविष्यासि ॥४२

सुमन्तुरुखाच

आदित्यस्त्वब्रवीन्छायां किमर्थं तत्पायवुभौ । तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेह एकत्र क्रियते त्वया ॥४३
सा^१ तत्पुराभवं तस्मै नाचप्रक्षे विवस्वते । आत्मानं स समाधाय वक्तुं तस्यामपश्यत् ॥४४
तां शप्तुकामो भगवानुद्यतः कुपितस्ततः । ततश्छाया यथावृत्तमाच्चक्षे विवस्वते ॥४५
विवस्वान्स्तु ततः क्रुद्धः श्रुत्वा इदशुरुमागतः । सा चापि तं यथान्यायमर्चयित्वा दिवाकरम् ॥

कहा—हे देव ! स्नेह के समान पात्र होते हुए भी हम लोगों में माँ समान भाव नहीं रखती है, वह छोटे को अधिक चाहती है हम लोगों को नहीं । ३६ हे देव ! यद्यपि (उसे मारने के लिए) पैर मैंने अवश्य उठाया था, पर प्रहार नहीं किया था । अतः लड़कपन या मोहवश किये गये इस मेरे अपराध को आप क्षमा करें । ३७ हे लोकेश, हे तपस्वियों में श्रेष्ठ ! इसलिए माँ (छाया) ने मुझे शाप दिया है, अतः आपकी कृपा ही उस महाभय से मेरे चरण को मुक्त कर सकती हैं (यह मुझे विश्वास) है । ३८

सूर्य बोले—हे पुत्र ! अवश्य इसमें कोई महान् कारण है, नहीं तो धर्मशील एवं धर्मज्ञ होते हुए तुम्हें इतना महान् क्रोध ही न होता । ३९ यद्यपि सभी प्रकार के शापों का प्रतिकार हो सकता है, पर, माँ द्वारा शाप प्राप्त होने पर पुल्प (उससे) किसी भाँति मुक्त नहीं हो सकता है । ४० इसलिए तुम्हारी माँ के इस बात (शाप) को असत्य करने में मैं समर्थ नहीं हूँ, किन्तु, पितृस्नेह वश तुम्हारे लिए कुछ कृपा अवश्य करँगा । ४१ कीड़े ही तुम्हारे चरण के मांस लेकर पृथ्वी पर चले जायेंगे और चरण बच जायेगा, इससे उसकी बात सत्य हो जायेगी और तुम्हारी रक्षा भी होगी । ४२

सुमन्तु ने कहा—सूर्य ने छाया से कहा कि स्नेह के समान पात्र इन लड़कों में से किसी एक ही को तू क्यों अधिक चाहती है ? । ४३ उसने संज्ञा की बातों का स्मरण कर सूर्य से कुछ भी न कहा, और सूर्य भी कुछ उत्तर सुनने के लिए) ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखने लगे । ४४ पश्चात् क्रुद्ध होकर शाप देने के लिए तैयार सूर्य को देखकर छाया सभी बातें उनसे कह सुनाई । ४५ उसे सुनकर सूर्य क्रोध के आवेग में इवसुर के पास पहुँचे, उनके इवसुर ने सूर्य की यथोचित अर्चना की और (मीठी बातों द्वारा) धीरे-धीरे उन क्रोध

निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयानात् तं शनैः

॥४६

विश्वकर्मोवाच

तवातितेजसाविष्टमिदं रूपं सुदुःसहम् । असहन्ति तु संज्ञा च वने चरति शाद्वले ॥४७
 द्रष्ट्यते तां भवानद्य स्वा भार्या शुभचारिणीम् । रूपार्थं भवतोरप्ये चरन्तीं सुमहत्तपः ॥४८
 रूपं ते ब्रह्मणो वाक्यादादिं दै रोचते विभोः । प्रशातयामि देवेन्द्रं श्रेयोऽर्थं ज्ञातः प्रभो ॥४९
 सनुष्टस्तस्य तद्विक्ष्यं बहु नेते महातपाः । ततोऽन्वजानात्वद्वारं रूपनिर्वर्तनाय दु ॥५०
 विश्वकर्मा ह्यनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्त्रतः । भ्रमिमारोप्य ततेजः शातयमास तस्य वै ॥५१
 अज्ञानुलिखितश्चरत्सौ निपुणं विश्वकर्मणां । लेखनं नाम्यनन्दहु ततस्तेन निवारितः ॥५२
 तत्र तद्वासितं रूपं तेजसा प्रकृतेन तु । कान्तात्कान्ततरं भूत्वा अधिकं शुशुभे ततः ॥५३
 ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्या बडवां तथा । अदृश्यां सर्वभूतानां तेजसा स्वेन सम्वृताम् ॥५४
 अश्वरूपेण मार्तण्डस्तां मुखेन समाप्तदत् । यैयुनाय विचेष्टन्तीं परपुंसो तिशङ्क्या ॥५५
 सा तं विवस्त्रतः शुक्रं नासाःस्यां समधारयत् । देवौ तस्यामजायेतामधिज्ञौ भिषजां वरौ ॥५६
 नासत्यद्वेद दक्षश्च तौ स्मृतौ नामतोऽश्विनौ । अतः परं स्वकं रूपं दर्शयामास भास्करः ॥
 तददृष्ट्वा चापि संज्ञा तु तुतोष च मुमोह च ॥५७

से भ्रम करने की इच्छा वाले सूर्य को शांत किया ॥४६

विश्वकर्मा ने कहा—अतितेजस्वी एवं सुदुःसह तुम्हारे इस तेज का सहन न कर सकने के कारण संज्ञा घास-पात के जंगलों में धूम रही है ॥४७। इसलिए पुण्यकर्म करने वाली उस स्त्री को, जो आपकी भाँति रूप प्राप्त करने के लिए जंगल में तप कर रही है, आप वहाँ जाकर अवश्य दर्शन दें ॥४८। हे विभो ! हे देवेन्द्र ! यदि ब्रह्मा के कहे हुए उस रूप को आप चाहते हों, तो (यन्त्रों द्वारा खरादकर) मैं बनाने को तैयार हूँ, हे प्रभो ! उससे जगत् का कल्याण होगा ॥४९। महातपस्वी (सूर्य) ने प्रसन्नतापूर्वक उनकी बातों को स्वीकार किया और उन्हें रूप सौन्दर्यं सपादन करने वाले उन त्वष्टा से कहा ॥५०। अनन्तर सूर्य की आज्ञा पाकर विश्वकर्मा ने शाकद्वीपयंत्रं (खराद वाली मशीन) लगाकर उस पर उन्हें चढ़ाकर (खरादना) तेज का काटना आरम्भ किया ॥५१। विश्वकर्मा ने बड़ी चतुरता के साथ उनकी जानु (घुटने) पर्यन्त समस्त अंगों को (खरादकर) सुन्दर बनाया । पश्चात् उन्होंने (सूर्य ने) शेष अंगों को खरादने से अनिच्छा प्रकट कर उसे सना कर दिया था ॥५२। किन्तु उतने ही (खरादने) पर पहले से भी अत्यन्त सौन्दर्यपूर्ण उनकी शरीर हो गई ॥५३।

पश्चात् योग द्वारा उन्होंने घोड़ी के रूप धारण करने वाली अपनी स्त्री को देखा, जो अपने तेज से आवृत होने के नाते सभी प्राणियों से अदृश्य होकर विचरण कर रही थी ॥५४। यद्यपि वहाँ पहुँचने पर घोड़े का रूप धारण कर सूर्य ने उसके मुख से अपने मुख को संयुक्त किया, पर, वह मैथुन के लिए प्रवृत्त देखकर उन्हें परपुरुष की ही आशंका करती रही ॥५५। इसके उपरान्त उसने सूर्य के वीर्य को अपनी नासिका के द्वारा धारण किया, और उसी से अश्विनी कुमार नामक दो देव, जो सर्वोत्तम वैद्यों में हैं, उत्पन्न हुए ॥५६।

ततस्तु जनयामास संज्ञा सूर्यसुतं शुभम् । ल्पेण चात्मनस्तुल्यं रेवतं नाम नामतः ॥५८
 पिर्दुग्गृह्यात्मं सोऽश्वं जातमात्रः पलायत । स तस्मिन्त्सकृदारुढस्तमश्वं नैव मुच्चति ॥५९
 ततोऽकर्ण समादिष्टौ दण्डनायकपिङ्गलौ । अश्वं प्रत्यानयेयां मे मा बलाच्छिद्रतोऽस्य तु ॥६०
 पार्थस्थौ तिष्ठतस्तस्य अश्वच्छिद्राभिकाञ्जिक्षणौ । न चिद्द्रं तु लभेते तौ तस्याद्यापि महात्मनः ॥६१
 प्लवनगच्छत्यसौ यस्मात्संज्ञायाः शान्तिः सुतः । रेवस्तु च यतौ धातू रेवन्तस्तेन स स्मृतः ॥६२
 मनुर्यम्भे यमी चैव सावर्णिः स शैश्वरः । तपती चार्यवनौ चैव रेवन्तश्च रवेः सुताः ॥६३
 एवमेया युरा संज्ञा द्वितीया पार्थिवी स्मृता । या संज्ञा सा स्मृता राज्ञी छाया या सा तु निक्षुभा ॥६४
 राजृदीप्तौ स्मृतौ धातू राजा राजते यत्सदा । अधिकः सर्वभूतेभ्ये राजते च दिवाकरः ॥६५
 अधिकं राजते यस्मात्स्माद्राजा स उच्यते । राज्ञः पत्नी तु सा यस्मात्स्याद्राजी प्रकीर्तिता ॥६६
 क्षुभ सञ्चलने धातुर्निश्चला तेन निक्षुभा । भद्रन्तीत्यथ वा यस्मात्स्वर्गीयाः^१ क्षुद्रिवर्जिताः ॥
 छायां तां विशते दिव्यां स्मृता सा तेन निक्षुभा ॥६७
 दृष्ट्वा जनं सदा तात भृंगं पीडितमानसम् । धर्मेण रञ्जयामास धर्मराजस्ततः स्मृतः ॥६८

नासत्य और दस्त उनका न। मकरण हुआ । परचात् सूर्य ने अपने रूप को प्रकट किया जिसे देखकर संज्ञा संतुष्ट और अत्यन्त मुश्य हुई ॥५७। उसके अनन्तर संज्ञा ने एक और पुत्र उत्पन्न किया, जो रूप-सौन्दर्य आदि में सूर्य के ही समान था । उसका रेवतक नाम करण हुआ ॥५८। उत्पन्न होते ही वह अपने पिता के आठवें घोड़े को लेकर भाग गया । यद्यपि एक ही बार उस पर सवार हुआ पर उसका त्याग कभी नहीं कर सका ॥५९। परचात् सूर्य ने दंडनायक और सिंगल को आज्ञा प्रदान की कि मेरे घोड़े को लाओ, किन्तु (लड़के से) बलात् अपहरण कर न लाना, कोई दोष ही देखकर उसका अपहरण करना ॥६०। यद्यपि उसके पार्थ भाग में स्थित होकर वे दोनों उसका छिद्रान्वेषण करने लगे, पर, आज तक भी उस महत्वपूर्ण बालक में कोई दोष न देख सके ॥६१। संज्ञा को शांति प्रदान करने वाले उस पुत्र का नाम कृदते हुए चलने और गमनार्थ रेवृ धातु के होने के नाते रेवत हुआ ॥६२। इस प्रकार मनु, यम, यमी, सावर्णि, शैश्वर, तपती, अश्विनी कुमार (नासत्य और दस्त) तथा रेवत इतनी सूर्य की सन्ताने हुई ॥६३

प्रथम संज्ञा और द्विसरीं छाया नाम की दो स्त्रियाँ उनके थीं । संज्ञा का राज्ञी (रानी) और छाया का निक्षुभा (पृथ्वी) भी नामकरण हुआ ॥६४। यद्यपि प्रदीप्तार्थक राज् धातु के होने के नाते सदैव प्रदीप्तं (सुशोभित) होने वाले को राजा कहा जाता है, किन्तु सूर्य तो सभी प्राणियों से अधिक प्रदीप्त (अत्यन्त सुशोभित) है । इसीलिए अधिक सुशोभित होने के नाते सूर्य राजा और उनकी पत्नी होने के नाते संज्ञा राज्ञी (रानी) कही जाती है ॥६५-६६। इसी प्रकार क्षुभ-धातु संचलनार्थक कही गई है, किन्तु उससे हीन (निश्चल) होने के नाते (पृथ्वी) निक्षुभा कही जाती है । अथवा वह स्वर्गीय भूमि क्षुत् (भूख) हीन होने के नाते दिव्य छाया में प्रविष्ट होती है अतः उसे निक्षुभा कहा गया है ॥६७

हे तात ! मनुष्यों को सदैव मानसिक पीड़ा से दुःखी देख धर्म द्वारा उन्हें प्रसन्न करने के नाते (सूर्य

शुद्धेन कर्मणा तात शुभेन परमद्युतिः । पितृणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमत्थ च ॥६९
 साम्प्रतं वर्तते योऽयं मनुलोके महामते । यस्यान्ववाये जातस्तु शङ्खचक्रगदाधरः ॥७०
 यमस्य भगिनी या तु यमी कन्या यशस्विनी । साभवत्सरितां श्रेष्ठा यमुना लोकपावनी ॥७१
 मनुः प्रजाऽतिस्त्वेष सादर्थिः त यमायशः । भविष्यन्तं मनुस्तात अष्टमः परिकीर्तिः ॥७२
 मेरुरूष्ठे तपो दिव्यमद्यापि चरते प्रभुः । भ्रता शनैश्चरस्तस्य ग्रहत्वं स तु लब्धवान् ॥७३
 तपती नाम या नाम्ना तयोः कन्या गरीयसी । सा द्वूषक शुभा पत्नी राज्ञः सम्वरणस्य तु ॥७४
 तापी नाम नदी चेष्ट विन्ध्यमूलाद्विनिःसृता । नित्यं युष्यजला स्नाने पश्चिमोदिग्मामिनी ॥७५
 भौम्यया सञ्ज्ञता सा तु सर्वपापभयापहा । वैवस्वती यथा दीर नञ्जन्ता शिवकान्तया ॥७६
 अश्विनौ देवदैवत्वं लब्धवन्तौ यदूत्तम । तयोः कर्मोपजीवन्ति लोकेस्मिन्प्रिष्ठजः सदा ॥७७
 रेवतो नाम योऽर्कस्य रूपेणार्कसमः सुतः । ॐश्वानामाधिपत्ये तु योजितः स तु भानुना ॥७८
 क्षेमेण गच्छतेऽध्यानं यस्तं पूजयते पर्थि । सुखप्रसाद्यो मर्त्यानां सदा यदुकुलोद्ध्रह ॥७९
 त्वष्टापि तेजसा तेन मार्तिण्डस्यैव काज्या । भोजानुत्पादयामास पूजायै सत्यं सुव्रत ॥८०

को) धर्मराज कहा गया है । ६८। हे तात ! इसी प्रकार उन्होंने शुभ और शुद्ध कर्मों एवं परमप्रकाश प्राप्त करने के कारण पितरों का आधिपत्य भी प्राप्त किया है तथा लोक पालन की प्राप्ति भी । ६९। हे महामते ! आधुनिक समय में वर्तमान इमी मनु के कुल को जन्म ग्रहण कर शंख, चक्र, गदाधारी भगवान् ने विभूषित किया था । ७०। यम की पुण्य स्वरूपा वह यमी नाम की भगिनी नदियों में श्रेष्ठ एवं लोक को परिवर्त करने वाली यमुना नाम की नदी हुई है । ७१। इसी भाँति मनु प्रजापति भी महायशस्त्री सावर्णि होगे, जिन्हें आठवाँ मनु बताया गया है । ७२। वही प्रभु मनु आदि भी मेरु पर्वत के ऊपर तपश्चर्या कर रहे हैं । और उनके भाई शनैश्चर ग्रह हुए । ७३। उन दोनों (सूर्य एवं छाया) की तपती नाम की लघु कन्या गाजा मंदरण की कल्याणकारिणी स्त्री हुई थी । ७४। पश्चात् यही विन्ध्यपर्वत के मूल भाग से निकल कर तापी नाम की नदी हुई है, जिसका जल स्नान करने के लिए अति पवित्र माना गया है और यह पश्चिम समुद्र की ओर प्रवाहित होती है । ७५। हे वीर ! इस प्रकार उस सौम्य शिवकांता (गंगा) के संगम प्राप्त होने के नाते यह वैवस्वती (तापी) समस्त पापों का नाश करती है । ७६। हे यदूत्तम । अश्विनी कुमार देवताओं के श्रेष्ठ वैद्य हुए, जिनके गुणकर्मों के द्वारा इस लोक के वैद्य सदैव जीवन निर्वाह करते हैं । ७७। सूर्य ने अपने समान तेजस्वी उस रेवतक नामक पुत्र को घोड़ों का आधिपत्य प्रदान किया है । ७८। हे यदुकुलोद्ध्रह ! जो मनुष्य कुशलपूर्वक यात्रा करने के लिए मार्ग में उनकी पूजा करते हैं, वह उन्हें सुख प्रदान करते हैं । इससे सुखपूर्वक यात्रा समाप्त होती है । ७९। हे सुत्रत ! सूर्य की आज्ञा प्राप्त कर त्वष्टा ने भी उन्हीं की पूजा के लिए उनके तेज द्वारा भोजों को उत्पन्न किया है । ८०। इस भाँति जो

य हृदं जन्म देदस्य शृणुगादा पठेत वा । विवस्वतो हि पुत्राणां सर्वेषाम् मित्रैजसाम् ॥८१
सर्वपापविनिर्मुको याति सूर्यसलोकताम् । इह राजा भवत्येव पुनरेत्य न संशयः ॥८२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्छसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे एवं सातमीकल्पे
आदित्यमहात्म्यवर्णनं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः । ७९।

अथाशीतितमोऽध्यायः

आदित्यमहिमावर्णनम्

सुमन्तरुवाच

इत्थं श्रुत्वा कथां दिव्यां हेलिमाहात्म्यमाश्रिताम् । साम्बः प्रच्छ भूयोऽपि नारदं मुनिसत्तमम् ॥१

साम्ब उवाच

सूर्यपूजाफलं यच्च यच्च दानफलं ग्रहंत् । प्रणिपाते फलं यच्च गीतवाद्ये च यत् फलम् ॥२
भास्करस्य द्विजश्रेष्ठ तन्मे ब्रूहि समन्ततः । येन सम्भूजयाम्येष भानुं देवैः^१ सदार्चितम् ॥३

नारद उवाच

इममर्थं पुरा पृष्ठो ब्रह्मा लोकपितामहः । दिण्डिना यदुशार्दूल शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥४

सूर्य के अनुपम तेज वाले इन पुत्रों की जन्म कथाएँ सुनता या पढ़ता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य के लोक को प्राप्त होता है और फिर यहाँ आकर निश्चित राजा होता है । ८१-८२

श्री भविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य माहात्म्य वर्णन
नामक उन्यासीवाँ अध्याय समाप्त । ७९।

अध्याय ८०

सूर्य की आराधना का फल

सुमन्तु बोले—इस प्रकार सूर्य के माहात्म्य की दिव्य कथा को सुनकर साम्ब ने फिर देवश्रेष्ठ नारद से पूछा । १

शाम्ब ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! सूर्य की पूजा का, महत्वपूर्ण दान का, नमस्कार का, और उनके सम्मुख गाने-बजाने के समस्त फलों को मुझे बताइये, जिससे मैं भी उस देव वन्दनीय सूर्य की पूजा करूँ । २-३

नारद बोले—हे यदुशार्दूल ! इन्हीं बातों को पहले दिंडी ने लोक पितामह ब्रह्मा से पूछा था, और

१. कैशैरिति पाठे ब्रह्मशंकरादिभिरित्यर्थः ।

सुखासीनं तथा देवं सुरज्येष्ठं पितामहम् । प्रणम्य शिरसा दिष्टिरिदं चन्नमग्नवीत् ॥५
दिष्टिरिवाच

सूर्यपूजाफलं ब्रूहि ब्रूहि दानफलं तथा । प्रणामे यत्कलं देव यच्चोक्तं तौर्यकत्रये ॥६
इतिहासपुराणाभ्यां कारिते श्रवणे तथा । पुरुतो देवदेवस्य यत्कलं स्पात्तदुच्यताम् ॥७
मार्जने लेपने यच्च देवदेवस्य मन्दिरे । भास्करस्य कृते ब्रूहि मम लोकपितामह् ॥८

ब्रह्मोवाच

स्तुतिजप्योपहरेण पूजया न नरो रवेः । उगावासेन पञ्चां च सर्वपायैः प्रभुच्यते ॥९
प्रणिधाय शिरो भूमौ नमस्कारपरो रवेः । तत्क्षणात्सर्वपायेभ्यो मुव्यते नात्र संशयः ॥१०
भक्तियुक्तो नरो यस्तु रवेः कुर्यात्प्रदक्षिणाम् । प्रदक्षिणी कृता तैन सप्तद्वीपा 'भवेन्मही ॥११
सूर्यलोकं व्रजेच्चापि इह रोगैश्च मुच्यते । उपानहौ परित्यज्य अन्यथा नरकं ब्रजेत् ॥१२
सोपानत्को नरो यस्तु आरोहेत्तर्यमन्दिरन् । स याति नरकं घोरमसिपत्रवनं दिङ्गो ॥१३
सूर्यं मनसि गः कृत्वा कुर्याद्व्योमप्रदक्षिणाम् । प्रदक्षिणी कृतास्तेन सर्वे देवा भवन्ति हि ॥१४
परितुष्टाश्च ते सर्वे प्रयच्छन्ति गतिं शुभाम् । सर्वे देवा महाबाहो द्वाभीष्टं तु परन्तप ॥१५

मैं वही कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो ! एक बार देवश्रेष्ठ ब्रह्मा से, जो वहाँ सुखपूर्वक बैठे थे, शिर से नमस्कार करके दिंडी ने इस भाँति कहा । ४-५

दिंडि ने कहा—हे देव ! लोक पितामह ! सूर्य की पूजा का फल, दान फल, नमस्कार-फल एवं उनके सम्मुख नृत्य-गान करने और वादों के बजाने के फल, उसी भाँति देवाधिदेव के सामने इतिहास एवं पुराणों की कथाओं के कहने तथा सुनने के फलों और सूर्य देव के मंदिर के झाड़ने-लीपने के फलों को आप मुझे बताइये । ६-८

ब्रह्मा ने कहा—पछी के दिन सूर्य की स्तुति, यज एवं उपहार-प्रदान रूपी पूजा और उपवास करने के द्वारा (सभी) मनुष्य समस्त पातकों से मुक्त हो जाते हैं । ९। उसी प्रकार भूमि में सूर्य के नमस्कार (साष्टांगदण्डवत्) करने पर वह प्राणी उसी समय समस्त पापों से निश्चित मुक्त हो जाता है । १०। और भर्तिपूर्वक जो मनुष्य सूर्य की प्रदक्षिणा करता है, उसने सातों द्विपों समेत समस्त पृथ्वी की निःसन्देह प्रदक्षिणा कर ली । ११। क्योंकि उपानह (जूते आदि) का त्यागकर प्रदक्षिणा करने वाले को सूर्यलोक की प्राप्ति एवं रोगों से मुक्ति होती है और उसके त्याग न करने पर नरक की प्राप्ति होती है । १२। हे विभो ! इसलिए पैर में उपानह पहनकर जो सूर्य के मन्दिर पर चढ़ता है, उसे असिपत्र नामक घोर नरक की प्राप्ति होती है । १३। मन में सूर्य का ध्यान करते हुए जो व्योम (आकाश) की प्रदक्षिणा करता है, उसने समस्त देवताओं की प्रदक्षिणा कर ली । इसमें सन्देह नहीं । १४। हे महाबाहो ! इस भाँति अत्यन्त सन्तुष्ट

१. वसुन्धरा ।

एकाहारो नरो भूत्वा षष्ठ्यां योऽर्चयते रविम् । सप्तम्यां वा महाबाहों सूर्यलोकं स गच्छति ॥१६
 अहोरात्रोपदासी त पूजयेद्यस्तु भास्करम् । सप्तम्यां वाथ षष्ठ्यां वा स गच्छेत्परमां गतिम् ॥१७
 कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां सोपवासो जितेन्द्रियः । सर्वरक्तोपहरेण पूजयेद्यस्तु भास्करम् ॥१८
 एङ्कूजैः करवीरैर्वा कुङ्कुमोदकचन्दनैः । मोदकैश्च गणश्रेष्ठं सूर्यलोकं स गच्छति ॥१९
 शुक्लपक्षस्य सप्तम्यामुपवासरतः सदा । सर्वशुक्लोपहरेण पूजयेद्यस्तु भास्करम् ॥२०
 अतीमुद्गरकैश्चैव श्वेतोत्पलकदम्भकैः । पायसेन तथा देवं सवज्ज्ञेणाच्चयेदिविम् ॥२१
 सर्वपापाणिगुद्धात्मा विधुः कान्त्या न संशयः । हंसयुजेन यनेन हंसलोकमवाप्नुते ॥२२

दिष्टिरुचाच

ब्रूहि मे विस्तरादेव सातमीकल्पमुत्तमम् । उपोष्य सप्तमीं धेन गमिष्ये शरणं रवेः ॥२३

ब्रह्मोवाच

साधु पृष्ठोऽस्मि भवता सप्तमीकल्पमुत्तमम् । यथा सहस्रकिरणः पुरा पृष्ठोऽरुणेन वै ॥२४
 कथिताः सप्त सप्तम्यो भानुना श्रेयसे नृणाम् । अरुणस्य गणश्रेष्ठं पृच्छतः कारणान्तरे ॥२५
 कस्यचित्त्वय कालस्य देवदेवं दिवाकरम् । ध्यानमाश्रित्य तिष्ठन्तमरुणो वाक्यमब्रवीत् ॥२६

होकर सभी देवता उसे उत्तम गति प्रदानपूर्वक सफल मनोरथ करते हैं । १५। हे महाबाहो! जो मनुष्य एकाहारी रहकर पष्ठी या सप्तमी में सूर्य की अर्चना करता है, उसे सूर्यलोक की प्राप्ति होती है । १६। तथा केवल दिन रात का उपवास करके जो पष्ठी या सप्तमी में भास्कर की पूजा करता है, उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है । १७। और जो इन्द्रिय संयम पूर्वक उपवास रहकर कृष्णपक्ष की सप्तमी में रक्तवर्णमय उपहारों—कमल, करवीर, कुङ्कुम और चंदनों द्वारा—सूर्य की पूजा करके (उन्हें) मोदक (लड्डू) समर्पित करते हैं तो उन्हें सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । १८-१९। उसी भाँति शुक्ल पक्ष की सप्तमी में उपवास रह कर जो शुक्ल वर्णमय समस्त उपहारों—चमेली, मल्लिका, श्वेतकमल, कदंब, पायस, और वज्र पुष्प (सामग्रियों) द्वारा सूर्य की पूजा करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विशुद्ध एवं चन्द्रमा की भाँति कान्तिमान् होकर हंस जुते हुए रथ पर बैठकर हंस लोक को निश्चित प्राप्त करता है । २०-२२

दिष्टि ने कहा—हे देव! मुझे विस्तारपूर्वक उस सप्तमी कल्प को बताइये, जिससे मैं भी सप्तमी में उपवास रहकर सूर्य की शरण प्राप्त करूँ । २३

ब्रह्मा बोले—आपने सप्तमी कल्प की चर्चा छेड़कर बड़ा उत्तम प्रश्न किया है, पहले अरुण ने भी सूर्य से यही बातें पूछी थी । २४। हे गणश्रेष्ठ! मनुष्यों के हित के लिए सूर्य ने कारणांतर द्वारा अरुण के पूछने पर सातों सप्तमी के विधान आदि को बताया था । २५। एक बार देवाधिदेव सूर्य को कुछ काल ध्यान लगाये हुए देखकर अरुण ने (उनसे) कहा । २६। हे देवदेवेश! आप किसलिए ध्यान लगाकर बैठे

किमर्थं देवदेवश ध्यानमाश्रित्य तिष्ठसि । दिनं न याति देवेश कारणं मम कथ्यताम् ॥२७
 कुरु चइकमणं देव 'वहमानो दिवस्पते । इत्येवं भगवान्पृष्ठ डदं वचनम् ब्रवीत् !!२८
 शृणु त्वं द्विजशार्दूल यदर्थं ध्यानमाश्रितः । अर्वावसुर्द्विजश्रेष्ठः स चापुत्रः खगोत्तमः ॥२९
 आराधयति नां नित्यं गन्धपुण्योपहारकैः । पुत्रकामः खगश्रेष्ठ न च जानात्ययं यशा ॥३०
 पुत्रदोऽहं भवे येन विधिना पूजितः खग । श्रूयतां च विधिः सर्वे येन प्रीतो भवे नुणाम् ॥३१
 सप्तमीकल्पसंज्ञे वै विधीनामुत्तमो विधिः । यस्तु मां पूजयेन्नित्यं तस्य पुत्रान्ददास्यत्तु ॥३२
 गृह्णीत्वं सप्तमीकल्पं गत्वा लूहि द्विजोत्तमम् । येनाहं लुपुत्रत्वं दद्यां तस्य तथा खग ॥३३
 श्रुत्वा भानोः क्षणादेव जगाम स खगोत्तमः । कथयामास तत्सर्वं भत्तोर्दद्यनमादितः ॥३४
 ब्राह्मणस्य खगश्रेष्ठ स च श्रुत्वा द्विजोत्तमः । चकार सप्तमीकल्पं यथात्यातं खगेन तु ॥३५
 क्रृद्विं वृद्धिं तथारोग्यं प्राप्य त्रुत्राश्रमं पुष्कलान् । गतोऽसौ सूर्यलोकं च तेजसा तत्समोभवत् ॥३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शनार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
 सप्तमीकल्पमाहात्म्यवर्णनं नाभाशीतितमोऽध्यायः । ८०।

हैं, और यह दिन व्यतीत क्यों नहीं हो रहा है, इसका कारण मुझे बताने की कृपा करें। २७। तथा है देव, हे दिवस्पते ! आप अब चलने का भी उपक्रम करें। इस प्रकार उनके पूछने पर भगवान् (सूर्य) ने कहा । २८। हे द्विजशार्दूल ! जिसके लिए ध्यान लगाकर मैं ठहरा हूँ, उसे बता रहा हूँ, सुनो ! हे खगोत्तम ! अर्वावसु नामक एक द्विजश्रेष्ठ के पुत्र नहीं हैं। अतः वह पुत्र की कामना से गंध एवं पुष्योपहार द्वारा नित्य मेरी आराधना करता है, किन्तु हे खगश्रेष्ठ ! वह उस विधि को, जिसके द्वारा पूजित होकर मैं पुत्र प्रदान करता हूँ, नहीं जानता है । २९-३०। हे खग ! इसलिए जिसके द्वारा मनुष्यों पर मैं प्रसन्न होता हूँ वह विधान बता रहा हूँ, सुनो ! ३१। सभी विधियों में सप्तमीकल्प नामक विधि सर्वोत्तम विधि बतायी गयी है, उसके द्वारा जो मेरी नित्य पूजा करता है, मैं उसे पुत्र प्रदान करता हूँ । ३२। हे खग ! तुम इस सप्तमी कल्प को लेकर वहाँ जाओ और उस ब्राह्मण श्रेष्ठ को इसे बताओ, जिससे मैं उसे अधिक पुत्र प्रदान कर सकूँ । ३३। यह सुनकर उसी समय उस खग श्रेष्ठ (अरुण) ने वहाँ के लिए प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचकर उन्होंने सूर्य की आदि से अन्त सभी बातें उस ब्राह्मण देव को सुनायीं। ब्राह्मण ने भी अरुण की बताई हुई उस यथावत् विधि द्वारा सप्तमी कल्प के विधान को सहर्ष पूरा किया । ३४-३५। अनन्तर क्रृद्विं वृद्धि, आरोग्य और अनेक पुत्रों की प्राप्ति करके वह ब्राह्मण अन्त में सूर्य लोक की यात्रा कर उनके समान तेजस्वी हुआ । ३६

श्रीभविष्य_महापुराण के ब्राह्मपर्व में सप्तमी कल्प माहात्म्य वर्णन नामक
 अस्सीवाँ अध्याय समाप्त । ८०।

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

विजयसप्तमीवर्णम्

ब्रह्मोवाच

जया च विजया दैव जयन्ती चापराजिता । महाजया च नन्दा च भद्रा चात्या प्रकीर्तिता ॥१
 शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां सूर्यवारो भवेद्यदि । सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महाफलम् ॥२
 स्नानं दानं तथा होम उपवासस्तथैव च । सर्वं विजयसप्तम्यां महापातकनाशनम् ॥३
 पञ्चम्यामेकभक्तं स्थात्पठ्यां नक्तं प्रचक्षते । उपवासस्तु सप्तम्यामष्टम्यां पारणं भवेत् ॥४
 केचिद्देवमुशन्त्येव नेति चान्ये गणाधिप । अभिप्रेतस्तु मे^१ पठ्यामुपवासो गणोत्तम ॥५
 चतुर्थमिकभक्तं तु पञ्चम्यां नक्तमादिशेत् । उपवासस्तु पठ्यां स्यात्सप्तम्यां पारणं भवेत् ॥६
 उपवासपरः पठ्यामब्देशं पूजयेद्दूधः । गन्धपुष्पोपहारैश्च भक्त्या श्रद्धासमन्वितः ॥७
 प्रदल्प्य पूजां भूमौ तु देवस्य पुरतः स्वपेत् । जपमानस्तु^२ गायत्रीं सौरसूक्तमथापि वा ॥८
 अक्षरं वा महाश्वेतं षडक्षरमथापि वा । विबुद्धस्त्वय सप्तम्यां हृत्वा ज्ञानं गणाधिप ॥९
 ग्रहेशं पूजयित्वा तु होमं कृत्वा विधानतः । ब्राह्मणान्भोजयेद्भूकृत्या शक्त्या च गणनायक ॥१०

अध्याय ८१

विजय सप्तमी वर्णन

ब्रह्मा बोले—जया, विजया, जयन्ती अपराजिता, महाजया, नन्दा और भद्रा यही इन सातों सप्तमियों के नाम हैं । १। शुक्ल पक्ष की सप्तमी में रविवार पड़े तो उसे विजया सप्तमी कहा जाता है । जिसमें दान रूप में दिया हुआ (सभी कुछ) अत्यन्त फलदायक होता है । २। इस प्रकार विजया सप्तमी में किये गये स्नान, दान, हृत्वा और उपवास ये सभी महापातक के नाश करते हैं । ३। पञ्चमी में एक बार भोजन करके पष्ठी में नन्द व्रत, सप्तमी में उपवास और अष्टमी में पारण करना बताया गया है । ४। हे गणाधिप ! कुछ लोग इसी रीति से ही देव की आराधना करते हैं किन्तु कुछ लोग तो पूजन स्वीकार करते हैं यही प्रार्थना करते हैं । हे गणोत्तम ! मुझे तो पष्ठी का ही उपवास प्रिय है । इसलिए चतुर्थी में एक भक्त (एक बार भोजन), पंचमी में नक्तव्रत और पष्ठी में उपवास करके सप्तमी में पारण करना चाहिए । ५-६। इस भाँति श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक उपवास रहकर पष्ठी में सूर्य की पूजा गन्ध पुष्पोहार द्वारा सुसम्पन्न करते हैं । ७। हे गणाधिप ! पूजा करने के पश्चात् देवता के सम्मुख बैठकर गायत्री या सूर्य के सूक्त का पाठ अक्षर, महाश्वेता अथवा षडक्षर के जप करते हुए भूमि में शयन करे और सप्तमी में प्रातः काल उठकर स्नान करने के उपरांत विधान पूर्वक सूर्य की पूजा एवं हृत्वा करे । और भक्ति पूर्वक शक्त्यनुसार ब्राह्मण भोजन भी कराये । ८-१०। इस प्रकार शाली (चावल) के भात, मालपुआ, खांड

१. यः । २. यजमानः ।

शाल्योदनमपूर्णंश्च सण्डवेष्टांश्च शक्तिः । सघृतं पायसं दद्यात्तथा विप्रेषु शक्तिः ॥११
 दत्त्वा च दक्षिणं भक्त्या॑ ततो विश्रान्विसर्जयेत् । इत्येषा कथिता देव पुण्या विजयसप्तमी ॥१२
 याभुपोष्य नरो गच्छेत्पदं वैरोचनं परम् । करवीराणि रक्तानि कुड्कुमं च विलेपनम् ॥१३
 विजयं धूपमस्यां तु भानोस्तुष्टिकराणि वै । एषा पुण्या पापहरा महापातकनाशिनी ॥१४
 अत्र दत्तं हुतं चापि क्षीयते न गणाधिषः । स्नानं दानं तथा होमः पितृदेवाभिष्पूजनम् ॥१५
 सदै॒ दिजदसप्तम्यां महापातकनाशनम् । आदित्यवारंण युता स्मृता विजयसप्तमी ॥१६
 इत्येषा कथिता दीर्घ सर्वकामप्रदायिनी । धन्यं यशस्यमाप्युष्यं कीर्तिं श्रवणं तथा ॥१७
 स्मरणं तु तथास्यां तु पुण्यदं त्रिपुरान्तक ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे शतार्द्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे
 विजयसप्तमीवर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः । ८१।

अथ द्वचशीतितमोऽध्यायः

नन्दवर्णनम्

दिष्ठिरुवाच

ये त्वादित्यदिने ब्रह्मन्पूजयत्ति दिवाकरम् । स्नानदानादिकं तेषां किं फलं स्याद्ब्रवीतु मे ॥१

मिथ्रित भक्त्य पदार्थ और शक्त्यनुसार धृत पूर्ण खीर भी ब्राह्मणों को अर्पित करे । ११। पुनः शक्त्यनुसार उन्हें दक्षिणा प्रदान करके भक्ति पूर्वक विसर्जित करे । इस प्रकार पुण्य स्वरूप विजया सप्तमी की व्याप्त्या मैने सुना दी, जिसमें उपवास रहकर मनुष्य सूर्य लोक की प्राप्ति करता है । सूर्य के पूजन में लाल कनेर के पुण्य, कुकुम का लेपन और विजय धूप ये उन्हें प्रसन्न करने वाली कही गयी वस्तु है । इस प्रकार यह पुण्यरूपा पापहारिणी एवं महापातक का नाश करते वाली सप्तमी कही गयी है । १२-१४। इसमें दिया हुआ दान, तथा हवन कभी नष्ट नहीं होता है । इस भाँति स्नान, दान, हवन तथा पितर एवं देवों की पूजा । १५। ये सभी विजयासप्तमी में महान् पातकों के नाशक बताये गये हैं और रविवार के दिन वाली ही सप्तमी विजया सप्तमी कही जाती है । १६। हे वीर ! इस प्रकार सभी मनोरथ सफल करने वाली इस सप्तमी को मैने (विस्तार पूर्वक) बता दिया है । हे त्रिपुरान्तक ! इसलिए इसके आख्यान का श्रवण करना, कथा वाचना और स्मरण करना ये सभी प्रतिष्ठा, यश, आयु एवं पुण्य प्रदान करते हैं । १७-१८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में विजयासप्तमी वर्णन नामक
 इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त । ८१।

अध्याय ८२

नंद विधि वर्णन

विंडि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो रविवार के दिन सूर्य की पूजा एवं स्नान, दान आदि करते हैं, उन्हें

१. शक्त्या ।
२. शस्त्रम् ।

पुण्या सा सप्तमी प्रोक्ता युक्ता तेन पितामह । विजयेति तथा नाम वर्णताःप्रत्य^१ पुण्यता ॥२

ब्रह्मोवाच

ये त्वादित्यदिने ब्रह्मज्ञादाद्वै कुर्वन्ति मानवाः । सप्तजन्मसु ते जाताः सम्भवन्ति विरोगिणः ॥३
 नन्तं दुर्दिन्ति ये तत्र मानवाः स्वैर्यमश्रिताः । जपमानाः परं जाप्यमादित्यहृदयं परम् ॥४
 आरोग्यमिह वै प्राप्य सूर्यलोकं वजन्ति ते । उपवासं च दे कुर्युत्तानित्यस्य दिने सदा ॥५
 जपन्ति च महाश्चेतां ते लभन्ते पथेपितम् । अद्ग्रोराज्ञेण नक्तेन त्रिरात्रनियमेन वा ॥६
 जपमानो, महात्मेतामीप्सितं लभते फलम् । विशेषतः सूर्यदिने जपमानो गणाधिप ॥७
 षडक्षरं^२ तथा इवेतां गच्छेद्वैरोचनं पदम् । द्वादशोह स्मृता वारा आदित्यस्य महात्मनः ॥८
 नन्दो भद्रस्तथा सौम्यः कामदः पुत्रदस्तथा । जयो जयत्तो विजय आदित्याभिमुख स्थितः ॥९
 हृदयो रोगहा चैव महाश्वेतप्रियोऽपरः । शुद्धलपक्षस्य षष्ठ्यदां तु भाष्ये मासि गणाधिप ॥१०
 यः^३ कुर्यात्स भद्रेद्भूपः सर्वपापभयापहः । अत्र नक्तं स्मृतं पुण्यं धृतेन स्नपनं रवेः ॥११
 आगस्त्यकुमुमानीह भानोस्तुष्टिकरणि तु । विलेपनं सुगन्धस्तु इवेतचन्दनमुत्तमम् ॥१२
 धूपस्तु गुगुलः श्रेष्ठो नैवेद्यं पूपमेव हि । दत्त्वा पूपं तु विप्रस्य ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥१३

किस फल की प्राप्ति होती है, इसे मुझे बताने की कृपा कीजिये । १। हे पितामह यदि उस दिन की सप्तमी पुण्य रूपा एवं विजय नाम वाली कही जाती है, तो उसकी (विशेषता) का भी वर्णन कीजिये । २

ब्रह्मा ने कहा—हे ब्रह्म ! जो मनुष्य रविवार के दिन आद्र करता है वह सात जन्म तक आरोग्य रहता है । ३। एवं स्मिरचित्त होकर जो उस दिन उत्तम आदित्य हृदय के पाठ पूर्वक नक्तव्रत करता है, उसे आरोग्य एवं सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । जो सदैव रविवार के दिन उपवास-रहकर महाश्वेता का जप करते हैं उनके सभी मनोरथ सफल होते हैं । इस प्रकार अहोरात्र के नन्द द्रत रहते हुए या जो तीन रात तक नियम पूर्वक महाश्वेता का जप करता है, उसे मनोरथ की सिद्धि प्राप्त होती है । हे गणाधिप ! विशेषतः रविवार में षडक्षर या मंहाश्वेता के जप करने से सूर्य लोक की प्राप्ति होती है जिस प्रकार सूर्य के बारह दिन बताये गये हैं उसी के अनुसार नन्द, भद्र, सौम्य, कामद, पुत्रद, जय, जयत, विजय, आदित्यभिमुख, हृदय, रोगहा और महाश्वेता प्रिय उनके भी नाम कहे गये हैं । हे गणाधिप ! माघ मास के शुक्ल पक्ष की पष्ठी में उनका व्रत जो करता है, वह राजा होता है तथा उसके महान् पातक का नाश होता है । इसीलिए उस दिन नक्तव्रत रहकर सूर्य को धी से स्नान कराना बताया गया है । ४-११। अगस्त्य के पुण्य सूर्य को अत्यन्त प्रिय हैं अतः उसे समर्पित करने के अनन्तर सुगंधित लेपन, इवेतचन्दन, गुगुल की धूप मालपूआ का नैवेद्य भी उहें समर्पित करें । १२। तथा मालपूआ भी प्रथम सूर्य एवं ब्राह्मण को अर्पित करके पश्चात् मौन होकर स्वयं भी उसका भक्षण करें । १३

१. कव्यतां मम शृण्वतः । २. प्राप्ते । ३. शुभकर्मा । ४. यो भवेत्स भवेन्दन ।

नक्षत्रदर्शनात्रकं केचिदिच्छन्ति मानद^१ । मुहूर्तोनं दिनं केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१४
 नक्षत्रदर्शनात्रकमहम्मन्ये गणाधिप । प्रस्थमात्रं भवेत्पूर्पं गोभूममयमुत्तमम् ॥१५
 यवोद्भूवं वा कुर्वत सारुडं सर्पिषान्वितम् । सहिरण्णं च दातव्यं ब्राह्मणे सेतिहासके^२ ॥१६
 भौमे दिव्येऽथ वा देवं न्यसेद्वा पुरतो रवे । दातव्यो मन्त्रतथायं मण्डको^३ प्राह्ण एव हि ॥१७
 भूत्वादित्येन वै भक्त्या आदित्यं त्रु नमस्य च । आदित्यतेजतोत्पन्नं राजीकरविनिर्मितम् ॥
 श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतीच्छापूपमुत्तमम् ॥१८
 लामदं सुखदं धर्म्य धनदं पुत्रदं तथा । तदास्तु ते प्रतीच्छापि नण्डकं भास्करमित्यम् ॥१९
 एतौ चैव महामन्त्रौ दानादाने रविप्रियौ । अपूपत्य गणश्रेष्ठ श्रेयसे नः ४ तंशयः ॥२०
 एष नन्दविधिः प्रोक्तो तरणां श्रेयसे विभो । अनेन विधिना यस्तु नरः^५ पूजयते रविम् ॥
 ५सर्वपापविमुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥२१
 न दरिद्रं न रोगश्च कुले तस्य महात्मनः । योऽनेन पूजयेद्वानुं न क्षयः रत्ततेस्तथा ॥२२
 सूर्येतोकाच्युतश्चासौ राजा भवति भूतते । बहुरलतमायुक्तस्तेजता द्विजसन्तिभः^६ ॥२३

नक्षत्रत निर्णय के विषय में कुछ लोग नक्षत्र (तारा) दर्शन के उपरान्त भोजन करने को नक्षत्र व्रत कहते हैं और कुछ बुद्धिमान् व्यक्ति मूर्हृत मात्र दिन शेष रहने पर ही भोजन करने को नक्षत्रत स्वीकार करते हैं । हे गणाधिप ! मैं तो तारादर्शन के अनन्तर ही (भोजन) करने को नक्षत्रत मानता हूँ । इस प्रकार एक सेर गेहूँ के आटे का उत्तम मालपूआ बनाना चाहिए उसके अभाव में जौ के आटे का बनाने का विधान है उसमें गुड़ और थी मिलाये । उपरान्त सुवर्ण की दक्षिणा पूर्वक उसे ब्राह्मण को, जो इतिहास का पूर्ण विद्वान हो, अर्पित करे । १४-१६। इस प्रकार मिट्टी के पात्र या अन्य किसी उत्तम पात्र में उसे रखकार सूर्य के सम्मुख (भूत्वादित्येन) वै आदि दोनों मंत्र पूर्वक उन्हें अर्पित करते हुए ब्राह्मण के हाथ में देदेवें और उस ब्राह्मण को भी चाहिए कि कामदं सुखदं आदि मन्त्र के उच्चारण पूर्वक उसे हाथ में लेकर पुनः (यजमान को) उसी समय लौटा दें । मालपूए के देने लेने के लिए कल्याणार्थ ये दोनों मंत्र सूर्य को निश्चित अत्यन्त प्रिय हैं । १७-२०। हे विभो ! इस भाँति मनुष्यों के कल्याण के लिए मैंने इस नंद विधि को बता दिया । इस भाँति इस विधान द्वारा जो मनुष्य सूर्य की उपासना करते हैं, वे समस्त पाप से मुक्त होकर सूर्य के लोक में सम्मानित होते हैं । २१। और उस महात्मा पुरुष के कुल में कभी दारिद्र्य एवं रोग उत्पन्न ही नहीं होता है उसी प्रकार इस विधान द्वारा सूर्य की पूजा करने वाले की सन्तान का नाश (परम्परा विच्छेद) कभी नहीं होता है । २२। एवं (कभी) सूर्य लोक से च्युत होने पर इस भूतल पर वह अत्यन्त

१. मानवः । २. दिव्यसंज्ञिके । ३. अपूपः । ४. नन्दम् । ५. सर्वपापविमुक्तात्मा । ६. बह्वा-नन्दसमायुक्तः-इ०, बहुभर्तृसमायुक्तः । ७. द्विजसत्तमः

पठतां भृष्टतां चेदं विधानं त्रिपुरान्तक । कं ददात्यचलं दिव्यमम्बुजामचलां तथा ॥२४
 इति श्री भविष्ये महापुराणे ब्राह्मो पर्वणि आदित्यवारकल्पे नन्दविधिवर्णनं
 नाम द्वयशीतितनोऽध्यायः ॥८२।

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

भद्रविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मासि भाद्रपदे दीर शुक्ले^१ पक्षे तु यो भवेत् । षष्ठ्यां गणकुलश्रेष्ठ स भद्रः परिकीर्तिः ॥१
 तत्र नक्तं तु यः कुर्यादुपवासनथापि वा । हंसप्यानसमारूढो याति हंससलोकताम् ॥२
 मालतीकुसुमनीह तथा श्वेतं च चन्दनम् । विजयं च तथा धूपं नैवेद्यं पायसं परम् ॥३
 पूजायां भास्करस्येह कुर्यात्विपुरसूदनम् । इत्थं सम्पूज्य देवेशं मध्याह्ने च दिनाधिपम् ॥४
 दत्त्वा तु दक्षिणां शक्त्या ततो भुज्जीत वाग्यतः । पायसं गणशार्दूल सगुडं रापिणा सह ॥५
 य एवं पूजयेद्दृक्ष्यत्याँ^२ मानवस्तिमिरापहन् । सर्वकामानवाप्नोति पुत्रदारधनादिकान् ॥६

रत्न पूर्ण एवं तेजस्वी राजा होता है । २३। हे त्रिपुरान्तक ! इस भाँति विधान के सुनने तथा पढ़ने वाले को भी सुख एवं अचल सम्पत्ति की प्राप्ति होती है । २४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में सौम्यविधि वर्णन नामक
 ब्रायसीवाँ अध्याय समाप्त । ८२।

अध्याय ८३

भद्रविधि वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे वीर ! हे गण कुलश्रेष्ठ ! भाद्रों मास के शुक्लपक्ष की पछी में रविवार की भद्र संज्ञा बतायी गयी है । १। जिसमें नक्तव्रत अथवा उपवास करने वाले को हंस जुते सवारी पर बैठ कर हंस (सूर्य) लोक की प्राप्ति होती है । २। हे त्रिपुर सूदन ! पुष्ट, श्वेत चन्दन, विजय धूप, नैवेद्य और उत्तम स्त्री का नैवेद्य सूर्य की पूजा में इन्हें अर्पित करनी चाहिए । इस प्रकार मध्याह्न काल में देवेश सूर्य की पूजा करने के उपरांत यथाशक्ति दक्षिणा प्रदान कर स्वयं मौन होकर भोजन करे । हे गणशार्दूल ! गुड़ धी समेत स्त्री का भोजन कर जो मनुष्य तिमिर के नाशक (सूर्य) की पूजा इस प्रकार करता है, उसके पुत्र, स्त्री एवं धन आदि के सभी मनोरथ सफल होते हैं और सभी पापों से मुक्त होकर वह सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति करता है । हे गणाधिप ! इस प्रकार इस भद्र-विधान को मैंने तुम्हें बता दिया

१. सुखम् । २. कृष्णपक्षे । ३. भाद्रे-इ०, भद्रम् ।

विमुक्तः सर्वपापेभ्यो ब्रजद्वानुसलोकताम् । एष भद्रा विधिः प्रेत्तो मया यस्ते गणाधिष्ठ ॥७
श्रुत्वा कृत्वा च यत्पापान्मुच्यते मानवो भुवि ॥८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वज्ञादित्यवारकल्पे भद्रविधिवर्णनं नाम
श्रीशीतितमोऽध्यायः । ८३।

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः सौम्यविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

नक्षत्रं रोहिणी वीर यदा वारेऽस्य वै भवेत् । यात्यसौ सौम्यतां वीरं स सौम्यः परिकीर्तिः ॥१
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवादितर्पणम् । अक्षयं स्यान्न सन्देहस्तवत्र वारे महात्मनः ॥२
नक्तं समाधितो योऽत्र पूजयेद्वास्त्वरं नरः । याति लोकं स देवस्य भास्करस्य न संशयः ॥३
रक्तोत्पलानि वै तत्र तथा रक्तं च चन्दनम् । मुगान्धश्चादि धूपस्तु नैवेद्यं पायसं तथा ॥४
ब्राह्मणाय च दातव्यं भांक्तव्यं चात्मना तथा ॥५

य एवं पूजयेत्सौम्ये चित्रभानुं गवाम्पतिम् । र विमुक्तस्तु पापेभ्यस्त्वाष्ट्रैः कान्तिमवास्तुयात् ॥५
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि आदित्यवारकल्पे सौम्यविधिवर्णनं
नामचतुरशीतितमोऽध्यायः । ८४।

है । पृथ्वी पर जिसे सुनकर या उसके सम्पन्न करने के द्वारा मनुष्य पाप मुक्त होते रहेंगे । ३-८
श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में भद्रविधि वर्णन नामक
तिरासीवाँ अध्याय समाप्त । ८३।

अध्याय ८४ सौम्य विधि वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—हे वीर ! यदि इसी दिन रोहिणी नक्षत्र भी आ जाय तो इसकी सौम्य संज्ञा होती है । १। इसलिए स्नान, दान, जप, हवन एवं पितृ देव आदि के तर्पण, इस उत्तम दिन में सुसम्पन्न करने से उनके अक्षय फल प्राप्त होते हैं । २। जो पुरुष इस नक्तव्रत के नियम पालन पूर्वक इनकी पूजा करता है, उसे निश्चित सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । ३। अतः इसके अनुष्ठान में रक्त कमल, रक्तचंदन, सुगंध, धूप, नैवेद्य और खीर सर्वप्रथम सूर्य तथा ब्राह्मण को समर्पित कर पश्चात् स्वयं भी उसका उपभोग करे । ४। इस भाँति जो सौम्य के दिन किरणमाली सूर्य की पूजा करता है, उसे पापमुक्त पूर्वक सूर्य की भाँति कान्ति की प्राप्ति होती है । ५.

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में सौम्यविधि वर्णन नामक
तिरासीवाँ अध्याय समाप्त । ८४।

१. वारः ।

अथ पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

कामदविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

प्राप्ने मार्गशिरे दासि शुक्लषष्ठ्यां तु यो भवेत् । स ज्ञेयः कामदो वारः सदेष्टो भास्करस्य तु ॥१
 तत्र यः पूजयेद्भूमिं भक्त्या शद्वासमन्वितः । विमुक्तः सर्वगापैस्तु प्रभूते नन्दनाधिपम्^१ ॥२
 रक्तचन्दनमिश्राणि करवीराणि सुव्रत । धूपं धृताहृति वीर भास्करस्य प्रयोजयेत् ॥३
 नैवेद्यं चापि कृशरं सुगन्धं तीक्ष्णमेव च । कृत्वोपवासाद्य ता नदतं त्रिपुरसूदन ॥४
 इत्थं प्रपूजितो ह्यत्र^२ भास्करो लोकभास्करः । कामान्ददाति सर्वान्वै अदेवं कामदः स्मृतः ॥५
 स पुत्रं पुत्रकामस्य धनकामस्य वा धनम् । विद्यार्थिने शुभां विद्यामारोग्यं रोगिणे विभो ॥६
 अन्यांश्च विद्याकामान्मन्त्रैः सम्पूजितो रविः । ददाति गणशार्दूलं अतोर्यं कामदः स्मृतः ॥७
 दद्याद्यो सण्डकं चात्र गोपतेर्गोत्रभूषणः । गोत्रारितेजसा^३ तुल्यो गोपतेर्गोपुरं ब्रजेत् ॥८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि आदित्यवारकल्पे कामदविधिवर्णनं

नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः । ८५।

अध्याय ८५

कामद विधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—मार्गशीर्ष (अगहन) मास के शुक्ल पक्ष की पच्छी में प्राप्त रविवार को ‘कामद’ नामक कहा गया है, जो सूर्य को अत्यन्त प्रिय है । भक्ति पूर्वक श्रद्धालु होकर जो उस दिन सूर्य की आराधना करता है, वह सप्तस्त पापों से मुक्त होकर नन्दन का आधिपत्य प्राप्त करता है । १-२। हे सुव्रत ! इसके अनुष्ठान में रक्तचन्दन मिथित करवीर (कनेर), धूप और धृति की आहुति सूर्य की प्रदान करनी चाहिए । हे वीर ! उस पूजन में नैवेद्य, कृशर (खिंडी) के लिए अन्न और तीक्ष्ण सुगन्ध भी उगर्युवत सामग्री के साथ रहना आवश्यक कहा गया है । हे त्रिपुरसूदन ! इसलिए उपवास या नक्त व्रत करते हुए सम्मान पूर्वक उपर्युक्त सामग्रियां प्रदान करनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार पूजित होने पर लोक को प्रकाशित करने वाले सूर्य देव उसके सभी मनोरथ की सफलता प्रदान करते हैं, इसीलिए इसे कामद कहा गया है । ३-५। इसलिए यह व्रत पुत्र की कामना वाले को पुत्र, धनार्थी को धन, विद्यार्थी को शुभदायिनी विद्या और रोगी को आरोग्यता प्रदान करता है । ६। हे गण शार्दूल ! उस दिन मन्त्रों द्वारा पूजित हाने पर सूर्य भाँति-भाँति के अन्य मनोरथ भी सफल करते हैं इसीलिए इसे ‘कामद’ कहते हैं । ७। जो कोई गात्र-भूषण (कुलभूषण) गोपति (सूर्य) के लिए मंडक (गुड़ धी समेत) मालपूआ प्रदान करता है तो वह इन्द्र लोक के समान तेजस्वी होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है । ८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में कामद विधि वर्णन नामक
 चाचासीवाँ अध्याय समाप्त । ८५।

^१ चन्दनाधिपम् । ^२ चात्र । ^३ शक्रतेजसेत्यर्थः ।

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

जयवारतिथिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पञ्चतारं भद्रेद्यत्र नक्षत्रं ते दृष्टवज्ज । वारे तु देवदेवस्य स वारः पुत्रदः स्मृतः ॥१
 उपवासो भवेत्तत्र शाद्वं कार्यं तथा भवेत् । प्राशनं चापि पिण्डस्य मध्यमस्य प्रकारोत्तम् ॥२
 सोपवासस्तु यो भक्त्या पूजयेदत्र गोपतिम् । धूपमाल्योपहारैस्तु दिव्यगन्धसमन्वितैः ॥३
 एवं पूज्य विद्वन्वन्त तस्यैव पुरतो निशि । भूमौ स्वपिति वै दीर जपञ्चदेतां महानन्ते ॥४
 प्रातरुत्थाय च स्नानं कृत्वा दत्त्वार्थ्यमुत्तमस्म् । रक्तचन्दनतस्मिन्श्चैः करवीरैर्गणाधिपः ॥५
 प्रपूज्य ग्रहभूतेशमंशुमन्त त्रिलोचनं । वीरं च दूनयित्वा तु ततः शाद्वं प्रकल्पयेत् ॥६
 पञ्चभिन्नाह्याणैर्देव दिव्यैभौमैश्चैः सुवत । मगसंज्ञैः तत्र दिव्यौ ब्राह्मणौ परिकल्पयेत् ॥७
 त्रीनक्त्र ब्राह्मणान्भीमान्प्रकल्प्यान्धकसूदन । कुर्यादिवं ततः शाद्वं पार्वणं भास्करप्रियम् ॥८
 श्राद्धे त्वय समाप्ते तु दद्यात्यिष्ठं तु भद्र्यमम् । पुरतो देवदेवस्य स्थित्वा मन्त्रेण सुव्रत ॥९
 स एष पिण्डो देवेश योऽभीष्टस्तत्र सर्ददा । अशनामि पश्यते तुम्यं तेन मे सन्ततिर्भवेत् ॥१०
 प्रसादात्तद देवेश इति मे भावितं भनः । इत्थं सम्पूजितो हृत्र भास्करः पुत्रदो भवेत् ॥११

अध्याय ८६

जयवारतिथि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे वृपाध्वज ! तुम्हारे जिस (रवि) दिन में पाँच तार (हस्त) नामक नक्षत्र प्राप्त होता है वह देवाधिदेव (सूर्य) का 'पुत्र' नामक वार बताया गया है । १। उसमें उपवास, शाद्व एवं मध्यम पिंड का प्राशन भी करना चाहिए । २। हे महामते ! इस प्रकार उपवास रहकर भक्ति पूर्वक धूप, माला एवं दिव्य गंध समेत उपहारों द्वारा सूर्य की अर्चना करके रात में उन्हीं के सम्मुख भूमि पर महाश्वेता का जप करते हुए शयन करे और प्रातः काल उठकर स्नान करके रक्तचन्दन मिथित कनेर के पुष्पों द्वारा उत्तम अर्ध्य प्रदान करते हुए पुनः ग्रहों एवं भूतों के ईश, सूर्य तथा दीपक की पूजा करने के उपरांत शाद्व विधान प्रारम्भ करना चाहिए । ३-६। हे देव ! उस (शाद्व) में दिव्य और भौम पाँच ब्राह्मणों को आमन्वित करना चाहिए जिसमें दो ब्राह्मणों के दिव्य (सूर्य) रूप और तीन ब्राह्मणों को भौम रूप बताया गया है । ७। हे अन्धक सूदन ! इसी प्रकार का पार्वण शाद्व विधान सूर्य को अत्यन्त प्रिय है । ८। पुनः शाद्व की समाप्ति में मध्यम पिंड को मंत्र के उच्चारण पूर्वक देवेश (सूर्य) के सम्मुख रखकर (प्रार्थना रूप) इस प्रकार कहे—हे देवेश ! इस तुम्हारे सदैव प्रिय पिंड का तुम्हारे देखते मैं भक्षण कर रहा हूँ, इससे तुम्हारी कृपा द्वारा मुझे संतान की प्राप्ति अवश्य होगी क्योंकि ऐसा मेरे मन में निश्चित हो

अतोऽयं पुञ्चदो वारो देवस्य परिकीर्तिः । एदमत्र सदा यस्तु भास्करं पूजयेन्नरः ॥१२
उपवासपरः श्राद्धे स पुत्रं लभते ध्रुवम् । धनं धान्यं हिरण्यं च आरोग्यं सुखदं तथा ॥

सूर्यलोकं च सम्प्राप्य ततो राजा भवेन्नृषु ॥१३

प्रभया द्विजसंकाशः कान्त्या वाम्बुजसशिखः । वीर्येण गोपतेस्तुल्यो गाम्भीर्यं सागरोपमः ॥१४

(इति पुत्रदविधिवर्णनम्)

ब्रह्मोवाच

दक्षिणे त्वयने यः स्यात्स जयः परिकीर्तिः ॥१५

अत्रोपवासो नक्तं च स्नानं दानं जपस्तथा । भवेच्छतगुणं देव भास्करप्रीतये छृतम् ॥१६

तस्मान्नक्तादि कर्तव्यं दत्स्याच्छतगुणं विभो ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे लाहो पर्वणि आदित्यदारकल्पे जयवारतिथिवर्णनं नाम
चडशीतित्तमोऽध्यायः । ८६।

अथ सप्ताशीतित्तमोऽध्यायः

जयन्तविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

जयन्तो हृत्तरे ज्ञेयश्रायने गणनायक । वारो देवस्य यः स्याद्वै तत्र पूज्योदिवाकरः ॥१

रहा है । इस प्रकार विधान पूर्वक पूजित होने पर सूर्य अवश्य पुत्र प्रदान करते हैं, और इसीलिए इसे देव का 'पुत्रद' नामक वार कहा गया गया है । इस भाँति जो पुरुष उपवास रहकर इस दिन सूर्य की सदा आराधना करता है वह निश्चित पुत्र की प्राप्ति समेत धन, धान्य, सुर्वण, सुख प्रद आरोग्य तथा सूर्य लोक की प्राप्ति करके पश्चात् मनुष्यों का राजा, होता है जिसकी चन्द्रमा की भाँति कान्ति, कमल की भाँति सौंदर्य, सूर्य के समान पराक्रम और सागर के समान गंभीरता रहती है । १५-१७

ब्रह्मा ने कहा—सूर्य के दक्षिणायन समय में प्राप्त रविवार को 'जप' नामक बताया गया है । हे देव ! उसमें उपवास, नक्त व्रत, स्नान, दान एवं जप आदि सभी पुण्य कर्म सूर्य की प्रसन्नता के लिए करने पर उसके सौंगुने फल प्राप्त होते हैं । इसलिए सूर्य के लिए नक्तव्रत आदि अवश्य करने चाहिए क्योंकि वे सौंगुने अधिक फल प्रदान करते रहते हैं । १५-१७

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्मा पर्व के आदित्यवार कल्प में जयवार तिथि वर्णन नामक
ठियासिवाँ अध्याय समाप्त । ८६।

अध्याय ८७

जयन्तविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले— हे गणनायक ! सूर्य के उत्तरायण रहने के समय में प्राप्त रविवार को 'जयन्त'

पूजितस्तत्र देवेशः सहस्रगुणितं फलम् । ददाति देवशार्दूलं स्नानदानादिकर्मणाम् ॥२
 धृते पयसा यत्र स्नानमिक्षुरसेन तु । विलेपनं कुड्कुमं तु प्रशस्तं भास्करे प्रियम् ॥३
 धूपक्रिया मुग्गुलेन नैवेद्ये मोदकः स्मृतः । इत्थं सम्पूज्य देवेण कुर्गाद्वोमं ततस्तिलैः ॥
 बाह्यणान्भोजयेत्पश्चान्तेदकांस्तिलशञ्कुलीः ॥४
 इत्थं य. पूजयेद्वानुं मन्त्रेणव गणाधिप । सहस्रगुणितं तस्य फल देवो ददाति वै ॥५.
 स्नानदानजपादीनमुपवासस्य वै विभो ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ज्ञाहो पर्वज्यादित्यवारकल्पे जयन्तदिधिवर्णनं नाम
 सप्ताशीतितमोऽध्यायः । ८७।

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

विजयवारविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां प्राजापत्यर्खमयुतः । त ज्ञेयो विजयो नाम सर्वपापभयापहः ॥१
 तत्र कोटिगुणं सर्वफलं पुण्यस्य कर्मणः । ददाति भगवान्देवः पूजितश्रन्दनाधिपः ॥२
 स्नानं दानं जपे होमः पितृदेवादिपूजनम् । नक्तं चाप्युपवासस्तु सर्वमत्र दिवाकरः ॥३

नामक कहा जाता है, उसमें अवश्य सूर्य की पूजा करनी चाहिए । १। हे देव शार्दूल ! उसमें पूजित होने पर सूर्य स्नान आदि कर्मों के सहस्रगुणे फल प्रदान करते हैं । २। धी, दूध, ऊख के रस द्वारा स्नान और कुकुम का लेपन सूर्य के लिए उत्तम और अत्यन्त प्रिय बताया गया है । ३। इसी भाँति धूप के लिए गुग्गुल और नैवेद्य के स्थान पर मोदक (लड्डू) प्रदान करना चाहिए । इस प्रकार देवेश (सूर्य) की पूजा करने के पश्चात् तिल के हवन, मोदक तिल की पूरी का ब्राह्मण भोजन कराना बताया गया है । ४। हे गणाधिप ! इस विधान द्वारा जो सूर्य की मंत्रपूर्वक पूजा करते हैं सूर्य उन्हें स्नान दान, जप आदि और उपवास के महस्त गुने फल प्रदान करते हैं । ५-६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्य बार कल्प में जयंत विधि वर्णन नामक सतासीवां अध्याय समाप्त । ८७।

अध्याय ८८

विजयवारविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—यदि शुक्ल पक्ष की सप्तमी में रविवार के दिन रोहिणी नक्षत्र भी प्राप्त हो जाये तो उसे समस्त पापों का नाशक एवं 'विजय' नामक रविवार कहा जाता है । १। क्योंकि उस दिन पूजित होने पर चंदनप्रिय भगवान् सूर्य सभी पुण्य कर्मों के कोटि (करोड़) गुने फल प्रदान करते हैं । २। तथा स्नान, दान, जप, होम, पितरों एवं देवों की अर्चना, नक्तव्रत और उपवास इन सभी कर्मों के भी कोटिगुने फल

कुर्यात्कोटिगुणं सर्वं पूजितो ह्यत्र गोपतिः । तस्माद्वा सदा देवं पूजयेद्दक्तिसाम्रः ॥४
सर्वेशं सप्तद्वीपेशं सप्तसत्यवाहनम् । सप्तम्यां तु समाराध्य सप्तशङ्कृतिसम्भवम् ॥५
सप्तलोकाधिपत्यं तु प्रामुते सप्तरिमभिः ॥६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वण्यादित्यवारकल्पे विजयवारविधिवर्णं
नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८।

अथ नदाशीतितमोऽध्यायः

आदित्याभिमुखदिधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

कृष्णपक्षस्य सप्तम्यां माघमसे भवेत्तु यः । सादित्याभिमुखो^१ ज्ञेयः शृणु चास्य द्विर्धि परम् ॥१
कृत्वैकशक्तं कृष्णस्य वारे त्रिपुरसूदनम्^२ । प्रातः कृत्वा ततः स्नानं पूजयित्वा दिवाकरम् ॥२
आदित्याभिमुखस्तिष्ठेद्यावदस्तमनं रवेः । जपमानो महाश्वेतां लाभमाश्रित्य मुदत्त ॥३
चतुर्हस्तमृजं शूक्ष्मामवणं सुसमं दृढम् । रक्तचन्दनवृक्षस्य स्तम्भं कृत्वा गणाधिप ॥४
त्रामाश्रित्य महाभक्त्या देवदेवं दिवाकरम् । पश्यमानो जपञ्चेतां तिष्ठे दस्तमनाद्रवेः ॥५

प्रदान करते हैं । इसलिए भक्तिपूर्वक मनुष्यों को सदैव सूर्य की आराधना करनी चाहिए । ३-४। इस भाँति सर्वेश, सातों द्वीपों के स्वामी तथा सात बोड़ों के वाहन वाले (सूर्य) की सप्तमी में आराधना करने पर उसे सूर्य द्वारा सातों प्रकृतियों से उत्पन्न उन सातों लोकों के आधिपत्य की प्राप्ति होती है । ५-६।

‘श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में विजयवार विधि वर्णन
नामक अटासीवाँ अध्याय समाप्त ॥८८।

अध्याय ८९

आदित्य विधि वर्णन

ब्रह्मा बोले—माघ मास के कृष्ण पक्ष की सप्तमी में प्राप्त रविवार को ‘आदित्याभिमुख’ नामक वार जानना चाहिए । उसकी उत्तम विधि को बता रहा हैं, सुनो! । १। हे त्रिपुर सूदन! पहले दिन एक बार भोजन करके उस रविवार में प्रातः स्नान पूर्वक सूर्य की पूजा करने के उपरान्त सूर्यास्त तक सूर्याभिमुख होकर खड़ा और उसमें महाश्वेता का जप भी करते रहना चाहिए । २-३। हे गणाधिप! इस प्रकार रक्त चंदन के वृक्ष का एक ऐसा स्तम्भ बनाकर जो चार हांथ का लम्बा, सीधा, चिकना, रोगहीन, सम एवं दृढ़ हो । ४। देवनायक सूर्य को उसी में स्थापित कर उन्हें देखते हुए श्वेता का जप करे । यही सूर्यास्त तक खड़ा रहने का विधान बताया गया है पश्चात् गन्ध एवं पुष्पादि द्वारा सूर्य की पूजा ब्राह्मणों को भोजन-एवं

१. ‘सोचि लेपे चेत्’ इति सुलोपः । २. च विधिना सदा ।

१. बुद्धि, अहंकार और पाँच मात्राएँ यही सातों प्रकृति हैं ।

गन्धपुष्पोपहारैस्तु पूजयित्वा दिवाकरम् । ब्राह्मणे दक्षिणां दत्त्वा ततो भुञ्जीत चाग्यतः ॥६
हृथमेतं तु यः कुर्यादादित्यप्रीतये नरः । भानुमास्तस्य प्रीतः स्यात्सर्वं प्रीतो ददादि हि ॥७
धनं थान्यं तथा पुत्रमारोग्यं भर्त्तावी यशः । तस्मात्सम्पूजयेदत्र गीवर्णाऽधिर्णात हर ॥८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मो पर्वण्यादित्यवारकल्पे आदित्याभिमुखविधिवर्णनं
नाम नवाशीतितमोऽध्यायः ॥८९।

अथ नवतितमोऽध्यायः हृदयवारविधिवर्णनम् ब्रह्मोदाच

रविसङ्ख्यकमणे यः स्याद्वेवारो गणाधिप । स ज्ञेयो हृदयो नाम आदित्यहृदयप्रियः ॥१
तत्र नक्तं समाश्रित्य देवं सम्पूज्य भक्तिः । गत्वा च सदने भानोरादित्याशिमुखस्थितः ॥२
जपेदादित्यहृदयं सङ्ख्ययाष्टशतं बुधः । अथ वास्तमनं यावद्भूस्करं चित्येद्वृदि ॥३
गृहमेत्य ततो विप्रान्भोजयेच्छक्तिः शिव । भुक्त्वा तु पायसं वीर ततो भूमौ स्वपेद्बुधः ॥४
योऽत्र सम्पूजयेद्भूत्वा श्रद्धासमन्वितः । स कामालभते सर्वान्भास्कराद्वृदयस्थितान् ॥५

दक्षिणा प्रदान करने के उपरान्त स्वयं को भी मौन होकर भोजन करना बताया गया है । ५-६। इस भाँति जो मनुष्य सूर्य की प्रसन्नता हेतु उस विधान को सुसम्पन्न करता है उसे प्रसन्न होकर सूर्य सभी (वस्तुएँ) प्रदान करते हैं । ७। हे हर ! इस भाँति उसे धन, धान्य, पुत्र, आरोग्य, भूमि एवं यश समेत सभी वस्तुएँ प्राप्त होती हैं । इसलिए इस दिन देवनायक सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए । ८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवारकल्प में आदित्याभिमुख विधि वर्णन
नामक नवासीदाँ अध्याय समाप्त । ८९।

अध्याय ९० हृदयवारविधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—हे गणाधिप ! सूर्य की संक्रान्ति काल में प्राप्त रविवार को सूर्य के हृदय प्रिय होने के नाते 'हृदय' नामक बताया गया है । १। अतः इस दिन नक्त व्रत रहकर भक्ति पूर्वक सूर्य की अर्चना करके उनके मंदिर में उनके सम्मुख स्थित होकर आदित्य हृदय का आठ सौ जप (पाठ) अथवा सूर्यस्त तक हृदय में उसका स्मरण (पाठ) करते रहना चाहिए । २-३। हे शिव ! पश्चात् घर आकर शक्त्यनुसार ब्राह्मण भोजन कराने के उपरान्त स्वयं भी खीर भोजन करके भूमि पर शयन करे । ४। इस प्रकार श्रद्धा भक्ति पूर्वक जो इस दिन सूर्य की आराधना करते हैं, सूर्य उनके हृदय स्थित सभी मनोरथों की सफलता प्रदान करते

तेजसा यशसा तुल्यः प्रभदेशां महात्मनः । शक्नोपाञ्जनानां तु गोपतेर्गोवृषेक्षण ॥५
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वेष्यादित्यवारकल्पे हृदयवारविधिवर्णनं
 नाम नवतितमोऽध्यायः । ९०।

अथैकनदतितमोऽध्यायः

रोगहरविधिवर्णनम्

ब्रह्मोदाच

पूष्णो अवेद्यदा ऋज्ञं भवेच्च भगदैवतम् । वासरः स महाप्रोक्तः सर्वरोगभयापहः ॥१
 योऽत्र पूजयते भानुं शुभगान्धविलेपनैः । सर्वरोगविनिर्मुक्तो याति भानुसलोकताम् ॥२
 अर्कपत्रपुटे कृत्वा पुष्टायर्कस्य मुव्रत । देवस्य पुरतो रात्रौ भक्त्या यः स्थापयेद्दुधः ॥३
 पूजयित्वार्कपुष्टैस्तु अर्कमर्कप्रियं सदा । प्राशयित्वार्कपुष्टं^१ तु दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥४
 भक्त्या च पायसं वीर रात्रौ स्पृष्टिं भूतले । अनेन विधिना यस्तु पूजयेदत्र वै रविम्^२ ॥५
 स मुक्तः सर्वरोगस्तु^३ गच्छेदिनकरालयम्^४ । तस्मादपि ब्रजेल्लोकं फुंकाररवहेतिनः ॥६
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वेष्यादित्यवारकल्पे रोगहरविधिवर्णनं
 नामैकनवतितमोऽध्यायः । ९१।

है ।५। हे गोवृषेक्षण ! उसे इन्द्र, गोप और अण्डज तथा सूर्य के समान तेज, यश एवं कान्ति की भी प्राप्ति होती है ।६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में हृदय वार विधि वर्णन

नामक नव्वेवाँ अध्याय समाप्त । ९०।

अध्याय ९१

रोगहरण विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सूर्य देव के प्रधान पूर्व-फालुनी नक्षत्र में प्राप्त रविवार को सज्जी रोगों के भय नाशक होने के नाते 'रोगह' नामक बार कहा जाता है । १। इस दिन जो उत्तम गंध एवं लेपन द्वारा सूर्य की आराधना करते हैं, उसे समस्त रोगों की मुक्ति एवं सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है ।२। हे मुव्रत ! मदार के पत्ते की दोनियाँ में मंदार के पुष्पों को संचित कर भक्तिपूर्वक रात में सूर्य के सम्मुख रखे तथा मदार प्रिय सूर्य की पूजा उन्हीं पुष्पों द्वारा सुसंपन्न करके उसका प्राशान करे एवं पुनः ब्राह्मणों को भोजन दक्षिणा प्रदान करने के उपरांत स्वयं भी लीर का भोजन करके रात में भूमि शयन करे इस भाँति इस दिन जो इस विधान द्वारा सूर्य की पूजा करता है, सभी रोगों से मुक्त होकर वह सूर्य लोक की प्राप्ति पूर्वक फुंकार करने वाले (वज्र) अस्त्र के महान् नायक (इन्द्र) के लोक की प्राप्ति करता है ।३-६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्य कल्प में रोगहरविधि वर्णन

नामक इक्यानवेवाँ अध्याय समाप्त । ९१।

१. पत्रम् । २. द्विजम् । ३. सर्वपापैस्तु । ४. स गच्छेद्वास्करम् ।

अथ द्विनवतितमोऽध्यायः

महाश्वेतवारविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

यस्त्वादित्यग्रहःयास्य नारो देवस्य सुव्रतः । शस्यः प्रोक्तः प्रियो लोके ख्यातो गोशुरिमूषणः ॥१॥
 यस्तु पूजयते तस्मिन्नतःइन्हां पतगप्रियम् । गन्धपुष्पाणहास्तु ज्ञायलोकं स गच्छति ॥२॥
 शोदासो गणश्रेष्ठ आदित्यग्रहणे शुचिः । जपमानो महाश्वेतां खण्डोषस्थदां शिवम् ॥३॥
 पूजयेज्जगतामीशं तमोनाशनमाशुगम् । पूजयित्वा खपोषं तु महाश्वेतां ततो जपेत् ॥४॥
 पूजयित्वा महाश्वेतां रविं देवं समर्चयेत् ॥५॥ प्रतिष्ठाप्य गन्धपुष्पैः सुपूजिताम् ॥५॥
 तस्यां एव बहिः^३ कार्यं स्थापिदलं सुसमाहितः । मुचौ भूमिविभगे तु वीरं संस्थाप्य यत्ततः ॥६॥
 कुर्याद्वोमं तितैः स्नातः सार्पिषः च विशेषतः । आदित्यग्रहवेलायां जपेऽन्धवेतां महामते ॥७॥
 भुक्ते दिनकरे पश्चात्क्षानं कृत्वा समाहितः । पूजयित्वा महाश्वेतां खण्डोलकं^३ च ग्रहाधिपम् ॥८॥
 शाहणान् वाचयित्वा च ततो भूञ्जीत वान्यतः । आदित्यग्रहयुक्तेऽस्मिन्नारे त्रिपुरसूदन ॥९॥
 अत्कर्म क्रियते पुण्यं तत्सर्वं शुभं भद्रेत् । स्नानदानजपादीनां कर्मणां गोवृष्टध्वज ॥१०॥

अध्याय ९२

महाश्वेतवारविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे सुव्रत ! सूर्य-ग्रहण के दिन प्राप्त रविवार को महाश्वेत वार कहा जाता है जो, किरण रूपी आभूषणों से विशृणित श्रवण वाले सूर्य को अत्यन्त प्रिय होने के कारण अत्यन्त प्रिय प्रशस्त हैं ॥१॥ इसलिए उस दिन जो पक्षी प्रिय का (अरुण के ऊपर कृपा करने वाले) गन्ध एवं पुष्पोपहार द्वारा आराधन करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है ॥२॥ हे गणश्रेष्ठ ! इस प्रकार सूर्य ग्रहण में पवित्र शैकर उपवास करते हुए महाश्वेता या शिव के (मंत्र) जप पूर्वक जगदीश तथा तमनाशक सूर्य की आराधना पूजन खपोष (सूर्य) या महाश्वेता का जप करना चाहिए ॥३-४॥ क्योंकि गन्ध एवं पुष्पों द्वारा महाश्वेता की प्रतिष्ठा और पूजन समेत सूर्य की आराधना बतायी भी गयी है ॥५॥ अतः ध्यान पूर्वक उसकी वेदी बाहर किसी पवित्र भूमि में बनाकर सप्रयत्न उस पर सूर्य की स्थापना करके उन्हें स्नान कराये पश्चात् धी और तिल का हवन करके पुनः उनके ग्रहण के समय महाश्वेता का जप करे और ग्रहण मुक्ति के पश्चात् एकाग्रचित्त होकर स्नान महाश्वेता तथा प्रहेश्वर सूर्य की पूजा करके वाह्यण द्वारा ताचन कराये और उन्हें भोजन कराकर स्वयं भी मौन होकर भोजन करें । हे त्रिपुर सूदन ! इस भाँति उस ग्रहण के दिन स्नान, दान एवं जप आदि जो कुछ पुण्य कर्म किये जाते हैं, वे शुभ फल प्रदान करते हैं ॥६-१०॥ हे वृष्टध्वज !

१. ततोऽर्घयेत् । २. पुरःकुर्याद्विकार्यम् । ३. रविं देवं समर्चयेत् ।

अनन्तं हि फलं तेषां भद्रत्यस्मिन्न संशयः । कृतानां तु गणश्चेष्ठा भास्करस्य वचो यथा ॥११
 तस्मादिद्वज्ञगणैः कार्यं पुण्यकर्क्षविचक्षणैः । एकभक्तं च नक्तं च उपवासं गणाधिप ॥१२
 ये बादित्यदिने कुर्युत्से यात्ति परमं पदम् । धर्म्यं पुण्यं यशस्यं च पुत्रीयं कामदं तथा ॥१३
 तस्मिन्दानसपूपस्य गोदानं तद समं भवेत् । द्वादशैते महाबाहो वीरभानोर्महात्मनः ॥१४
 तुष्टिदाः कथितस्तुभ्यं सर्वापभयापहाः । पठतां शृण्वतां तात कुर्वतां च विशेषज्ञतः ॥१५
 कृत्वैकमेषां द्विधिवद्वारां वृशभवाहन । वृशादित्रितयं प्राप्य चात्रिजामचलां तथा ॥१६
 ततो यात्ति परं लोकं वृषकेतो मदात्मनः । तेजसाम्बुजसंकाशः प्रभयाण्डजसन्निभः ॥१७
 परिहेतिसमोः वीर्यं कान्त्या चन्द्रसमप्रभः ॥१८

इति श्रीभद्रिष्ये महापुराणे ब्राह्मे श्वर्ण्यादित्यदःरकल्पे नहाश्वेतवारविधिवर्णनं
 नाम द्विवतितमोऽव्यायाः ॥१९।

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः भानुमहिमवर्णनम् ब्रह्मोवाच

येषां धर्मक्रियाः सर्वाः सदैवोद्दिश्य भास्करम् । न कुले जायते तेषां दरिद्रो व्याधितोऽपि च ॥१

निश्चित उनकर्मों को सुसम्पन्न करने पर अनन्त फल की प्राप्ति होती है । हे गणश्चेष्ठ ! क्योंकि यह सब सूर्य के कथनानुसार ही कहा गया है । ११ हे गणाधिप ! इस लिए पुण्य कर्मों के परिवेता को एकाहार, नक्तब्रत और उपवास अवश्य करना चाहिए । १२ तथा जो इस दिन इस विधान द्वारा इनकी पूजा करते हैं उन्हें उत्तम पद की प्राप्ति होती है । एवं यह धार्मिक अनुष्ठान पुण्य, यश, पुत्र और अनेक कामनाओं की सफलता प्रदान करता रहता है । १३। उस दिन मालपूए का दान करना गोदान के समान पुण्य प्रदायक बताया गया है । हे महाबाहो ! इस भाँति वीर एवं महात्मा सूर्य के ये बारहों वार जिनकी गाथाओं के मनन करने एवं सुनने पर तुष्टि की प्राप्ति पूर्वक समस्त पापों का नाश होता है, मैं ने सविस्तार बता दिया है । १४-१५। हे वृशभवाहन ! विधान पूर्वक इनमें एक ही बार के सुसम्पन्न करने से उसे धर्म, अर्थ एवं काम की सफलता पूर्वक स्थिर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । १६। पश्चात् वह कमल के समान सौन्दर्य, सूर्य की भाँति प्रभा, इन्द्र के समान पराक्रम और चन्द्रमा के समान कांति प्राप्त कर शिव लोक की यात्रा करता है । १७-१८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के आदित्यवार कल्प में महाश्वेतवार विधि वर्णन
 नामक बानबेवाँ अध्याय समाप्त । १९।

अध्याय १३ भानुमहिमा का वर्णन

ब्रह्म बोले—जिन लोगों की समस्त धार्मिक क्रियाएँ सदैव एकमात्र सूर्य के ही उद्देश्य से होती

देवायतनभूमेस्तु गोमयेनोपलेपनम् । यः करोति नरो भक्त्या सद्यः पापात्प्रमुच्यते ॥३
 श्वेतया रत्क्या वापि पीतमृतिकदर्पि वा । उपलेपनकर्ता वै चिन्तितं लभते फलम् ॥३
 चित्रभानुं विरञ्च्यैव^१ कुसुमैर्यः सुगन्धिभिः । पूजयेत्सोपवासस्तु स कामानीप्सिताल्लभेत् ॥४
 धूतेन दीपकं ज्वाल्यं तिलतेलेन वा रवेः । प्रयाति सूर्यलोकं स दीपकोटिशतैर्नृतः ॥५
 दीपं दीपते दीपते दीपते दीपते दीपते दीपते । दीपते दीपते दीपते दीपते दीपते ॥६
 दीपं दीपते दीपते दीपते दीपते दीपते दीपते । दीपते दीपते दीपते दीपते दीपते ॥७
 यस्तु कारयते^२ दीपं रवेभक्तिसमन्वितः । स कामानीप्सितान्प्राप्य वृन्दारकपुरं ब्रजेत् ॥८
 यः समालभते सूर्यं चन्दनःगुरुकुइकूमैः । कर्वीरेण विमिश्रेष्व तथा कस्तूरिकान्वितैः ॥९
 शुभं कालं कोटिशतं विहृत्य^३ च भद्रातये । पुनः सञ्जायते भूमौ राजराजो न संशयः ॥
 सर्वकामसमृद्धात्मा सर्वलोकनमस्कृतः ॥१०
 चन्दनोदकमिश्रेष्व दत्त्वार्थं कुसुमै रवेः । सपुत्रपौत्रात्मीकः स्वर्गलोके महीयते^४ ॥११
 सुगन्धेदकमिश्रेष्टं दत्त्वार्थं कुसुमै रवेः । देवलोके चिरं स्थित्वा राजा भवति भूतले ॥१२
 स हिरण्येन चार्घेण रत्नोदकपुतेन वा । कोटीशतं तु वर्षाणां स्वगेलोके महीयते ॥१३

उनके कुल में दारिद्र्य एवं कोई रोग नहीं होता । १। अतः जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देव-मंदिरों की भूमि को गोमय (गोबर) से शुद्ध (लीपना) करता है, वह उसी समय ताप मुक्त हो जाता है । २। और श्वेत या रक्त वर्ण, अथवा पीली मिट्टी द्वारा (मंदिर की दीवाल) आदि लीपने वाले को मनोवाञ्छित फल प्राप्त होते हैं । ३। इस प्रकार जो चित्र भानु (सूर्य) की मूर्ति बनाकर उपवास रहते हुए सुगन्धित पुष्पों द्वारा उनकी अर्चना करता है, उसके अभिलिप्ति मनोरथ की सफलता प्राप्त होती है । ४

जो धीं या तिल का दीपक जलाकर सूर्य के सम्मुख स्थापित करता है, वह करोड़ों दीपकों के प्रकाश में प्रस्थापन करते हुए सूर्य लोक की प्राप्ति करता है । ५। और तेल के दीपक प्रदान करने से मनुष्य को नरक की प्राप्ति नहीं होती है क्योंकि दीपक के तेल तथा तिल को महापातकों का नाशक बताया गया है । ६। इस भाँति सूर्य के मन्दिर में चौराहे या तीर्थ में जो नित्य दीपक जलाता है, उसे रूप सौन्दर्य एवं ओज (बल) की प्राप्ति होती है । ७। भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए दीपक प्रदान करने वाले को अभिलिप्ति कामनाओं की सिद्धि पूर्वक देव लोक की भी प्राप्ति होती है । ८

इस प्रकार जो चन्दन, गुग्ल, कुकुम, कपूर एवं कस्तूरी मिश्रित लेप (उबटन) सूर्य के लिए प्रदान करता है, वह करोड़ों वर्ष स्वर्ग में बिहारसुख प्राप्त कर पुनः इस प्रकार का निश्चित राजधिराज होता है । जो सभी कामनाओं की पूर्ण सफलता प्राप्त कर समस्त लोकों का वन्दनीय होता है । ९-१०

चन्दन-जल मिश्रित पुष्पों द्वारा सूर्य के लिए अर्ध्य प्रदान करने वाला पुरुष अपने पुत्र, पौत्र एवं स्त्री समेत स्वर्ग लोक में पूजित होता है । ११। उसी प्रकार सुगन्धित जल मिश्रित पुष्पों द्वारा सूर्य के लिए अर्ध्य प्रदान करने वाला पुरुष चिर काल तक देवलोक के (स्वर्ग) में प्रतिष्ठित रहकर पश्चात् इस पृथ्वी का राजा होता है । १२। तथा सुवर्ण के अर्ध्य पात्र में स्थित रक्तचन्दन मिश्रित जल द्वारा अर्ध्य प्रदान करने वाला प्राणी सौ करोड़ों वर्षों तक स्वर्ण लोक में सम्मान प्राप्त करता है । १३

१. विचित्रैर्य । २. दिनान्येव । ३. देवतायतनेषु । ४. धारयते । ५. उपित्वा च । ६. मम लोके ।

यद्यैरभ्यर्चनं कृत्वा रवे: स्वर्गागतो नरः । पदे वसति वर्षणां स्त्रीपद्मशतसंवृतः ॥१४
 गुगुलं सृष्टं दत्त्वा रवेभक्तिसमन्वितः^१ : तत्कणात्सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥१५
 पक्षं तु गुगुलं दत्त्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया । संवत्सरेण लभते अध्यनेधफलं शिवः ॥१६
 धूपेन लभते स्वर्गं तुरुष्केण सुर्गानन्धना । कर्पूरागुरुधूपेन राजसूयफलं लभेत् ॥१७
 पूर्वाङ्गे सानवै भक्त्या श्रद्धया योऽर्चयेद्विदिम् । स तत्कलमवाप्नोति यद्वते कपिलाशते ॥१८
 मध्याह्ने पौर्वर्चेत्सूर्यं प्रयतात्मा जितेन्द्रियः । लभते भूमिदानस्य गोशतस्य च तत्फलम् ॥१९
 पश्चिमायां तु सन्ध्यायां योऽर्चयेद्वास्कर नरः । शुचिः शुक्लाम्बरोष्णीषो गोसहस्रफलं लभेत् ॥२०
 अर्हरात्रे तु यो हेलिं भक्त्या सन्मूजयेश्वरः । जातिस्मरत्वसाप्नोति कुले जातो वृषान्वितः ॥२१
 प्रदोषवात्रिवेलायां यः पूजयति भास्करम् । स गत्वा सहस्रा वीरं क्रीडेत्सौमनसं^२ क्षयम् ॥२२
 दण्डनायकवेलायां प्रभातसमये पुनः । पूजयित्वा रविं भक्त्या ब्रजेदनिमिषात्ययम् ॥२३
 एवं वेलामु सर्वामु अवेलामु च मानवः । भक्त्या पूजयते योऽर्कनर्कपुष्यैः समाहितः ॥
 तेजसादित्यसंकाशो हृक्षिलोके महीयते ॥२४
 अयने तृत्तरे सूर्यमय वा दक्षिणायने । पूजयेद्यस्तु वै भक्त्या स गच्छेत्कञ्जजात्ययम् ॥२५

कमलों द्वारा सूर्य की अर्चना करने पर मनुष्य स्वर्ग में सैकड़ों पचिनी स्त्रियों (अप्सराओं) के साथ करोड़ों वर्ष तक विहरता रहता है । १४

उसी प्रकार भक्तिपूर्वक सूर्य के लिए धी समेत गुगुल की धूप प्रदान करने पर उसी समय समस्त पापों से निश्चित मुक्ति हो जाती है । १५। एक एक (१५ दिन) तक नित्य गुगुल की धूप प्रदान करने से ब्रह्महत्या से मुक्ति होती है और संपूर्ण वर्ष तक करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है । १६। एवं लोहबान की धूप देने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है एवं कंपूर मिथित अगुरु की धूप प्रदान करने से राजसूय (यज्ञ) के फल की प्राप्ति होती है । १७। जो पुरुष श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक पूर्वाङ्गे में सूर्य की पूजा करता है, उसे सौ कपिला (गौरैं) दान करने के तमान फल की प्राप्ति होती है । १८। इस भाँति जो प्रयत्नशील पुरुष इन्द्रिय संयम पूर्वक मध्याह्न (दोपहर) में सूर्य की पूजा करता है, उसे भूमि दान एवं सौ गौरैं के दान के समान फल की प्राप्ति होती है । १९। जो पुरुष पश्चिम संध्या (सायकाल) में पवित्र एवं शुभ्र वस्त्र की पणिया बाँधकर सूर्य की अर्चना करता है, उसे सहस्र गोदान के समान फल की प्राप्ति होती है । २०। भक्ति-पूर्वक जो मनुष्य आधीरात के समय सूर्य की पूजा करता है, उसकी (अपने) पिछले जन्म के स्मरण समेत धार्मिक कुल में उत्पत्ति होती है । २१। हे वीर ! जो प्रदोष समय में सूर्य की पूजा करता है, सहस्रा प्राप्त स्वर्ग में कल्प पर्यंत वह अनेक भाँति की क्रीडाँए करता है । २२। एवं प्रभा काल में अरुणोदय वेला में भक्तिपूर्वक सूर्य की पूजा करने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति होती है । २३। इस प्रकार सभी समय-असमय में एकाग्रचित एवं भक्तिपूर्वक सूर्य की आराधना मंदार पुष्यों द्वारा सम्पन्न करने पर सूर्य की भाँति तेज प्राप्त कर सूर्य लोक में सम्मान प्राप्त होता है । २४। इस प्रकार (सूर्य के) दक्षिणायन एवं उत्तरायण के समय में भक्ति पूर्वक सूर्य की अर्चना करने पर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है । २५। वहाँ सभी देवताओं में

तत्रस्यः पूज्यते कर्त्ता^१ सर्वः सुमनसैस्तथा । गोपतिः पूज्यते यद्दगोपतिप्रभुर्हैः सुरैः ॥२६
 दिषुवेषूपरगोषु षडशीतिभुखेषु च । पूजयित्वा र्त्वं भक्त्या नात्मानं शोचते नरः ॥२७
 विबुद्ध्यै वा स्वयं वापि यो नमस्कुरते रविम् । सन्तुष्टो भास्करस्तस्मै गतिमिष्टां प्रयच्छति ॥२८
 कृशरापायसापूपपलोन्मिश्रमोदकैः । बलिं कृत्वा तु सूर्याय सर्वकाममवाप्न्यात् ॥२९
 भोदकानां प्रदानेदै धायसत्य च सुव्रत । मधुमांसरसैश्रापिष्ठे प्रीयतेऽतीवभास्करः ॥३०
 धृतेन तर्पणं कृत्वा सदा स्त्नाधो भवेन्नरः । तर्पयित्वा तु भांयेन सद्यः पापात्प्रमुच्यते ॥३१
 धृतेन स्तपनं कृत्वा एकाहमुदये र्वेः । गवां शतसहस्रस्य दत्तस्य फलमश्नुते ॥३२
 गवां क्षीरेण स्तन्तर्प्य पुण्डरीकफलं लभेत् । रसेन न्नापेदैवमश्वमेधकलं^२ लभेत् ॥३३
 सूर्याय तर्हणी^३ धेनुं गतमेकां यः प्रयच्छति । कञ्जजामचलां प्राप्य पुनर्लेखपुरं वजेत् ॥३४
 गोशरीरे तु रोमाणि यावन्ति त्रिपुरान्तक । स तावद्वर्षकोटीस्तु लेखलोके महीयते ॥३५
 शोशातं भानवे दत्त्वा राजसूयफलं लभेत् । अश्वमेधफलं तस्य यः सहस्रं प्रयच्छति ॥३६
 गुग्गुलं देवदाहं च दहेन्नित्यं धृतस्त्रबम् । आज्यधूमो^४ हि देवानां प्रकृत्यैव पियः सदा ॥३७
 भैरवादीनि च वाद्यानि शाङ्खवेष्वादिकानि च । ये प्रयच्छन्ति सूर्याय यान्ति ते हंसमन्दिरम् ॥३८

वह अत्यन्त प्रभापूर्ण होकर प्रभुख देवों द्वारा सूर्य की भाँति, पूजित होता है । २६। एवं विपुव, ग्रहण एवं सक्रान्ति समय में सूर्य की पूजा करने पर मनुष्य को कभी भी (अपने मुक्त होने के लिए) चिंतित होना नहीं पड़ता है । २७। जो किसी के कहने से या स्वयं सूर्य को नमस्कार करता है उसे प्रसन्नता पूर्वक सूर्य अभिलपित गति प्रदान करते हैं । २८। खिचड़ी (मिले अन्नों का भक्ष्य), खीर, मालपुआ, तथा तिलचूर्ण मिथित मोदक को बलि रूप में सूर्य के लिये प्रदान करने पर सभी कामनाएँ सफल होती हैं । २९। हे सुव्रत ! मोदक, खीर और शहद एवं मासरस प्रदान करने से सूर्य अत्यन्त प्रसन्न होते हैं । ३०। धी के तर्पण प्रदान करने से मनुष्य सदैव प्रसन्नता पूर्ण रहता है और मांस तर्पण प्रदान करने से वह उसी समय पापमुक्त हो जाता है । ३१। इस प्रकार उदय काल में किसी एक दिन भी धी द्वारा सूर्य के स्नान कराने से सहस्र गोदान के फल प्राप्त होते हैं । ३२

गाय के दूध द्वारा तर्पण करने से पुण्डरीक (यज्ञ) तथा रस के द्वारा स्नान कराने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है । ३३। एवं सूर्य के लिए एक धेनु समर्पित करने से निश्चित लक्ष्मी तथा देवलोक की प्राप्ति होती है । ३४। हे त्रिपुरान्तक ! इस भाँति गाय के शरीर में जितने लोम होते हैं, उतने करोड़ वर्ष देवलोक में सम्मानित होता है । ३५। सूर्य के लिए सौ गोदान करने से राजसूय (यज्ञ) और सहस्र गोदान करने से अश्वमेध के समान फल की प्राप्ति होती है । ३६

गुग्गुल एवं देवदाह की धी पूर्ण और धी की धूप देवताओं को स्वभावतः सदैव प्रिय होती है । ३७। जो भेरी, शंख एवं वेणु आदि वाचों को सूर्य के लिए समर्पित करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती

१. देवैः । २. विंबमध्यगतं देवम् । ३. प्रयत्नेन । ४. मधुमांसातिवर्षेण । ५. स्तपनं कृत्वा । ६. तर्पणीम् ।

दञ्चमाहरते यस्तु रवेभक्तिसमन्वितः । तीर्थोदकमथैवान्यः स याति विदुधालयम् ॥३३
 विमानैः स्त्रीशताकीर्णः क्रीडयित्वा चिरं नरः । मानुषत्वमनुप्राप्य राजा भवति धार्मिकः ॥४०
 छत्रं ध्वजं वितानं च पताकाश्रामराणि च । हेमदण्डानि वै दद्याद्वेर्यो भक्तिमान्नरः ॥४१
 विमानेन स दिव्येन किंडिकणीजालमालिना । सूर्यलोकमतो गत्वा भवत्यप्सरसां पतिः ॥४२
 तत्रोऽस्य सुचिरं कालं स्वर्गात्प्रत्यागतः पुनः । मानुष्ये जायते राजा सर्वराजनमस्तृतः ॥४३
 दत्त्वा वासांसि सूर्याय अलङ्कारांस्तथैव च । क्रीडते जनलोकस्थो यावदामूलासप्लवम् ॥४४
 गीतवादित्रनृत्यैश्च कुर्याज्ञागरणं रवे । गन्धर्वाप्सरसां मध्ये क्रीडते सुचिरं नरः ॥४५
 गन्धैः पुष्टेस्तथा पत्रैः स्तोत्रैर्वा विद्येस्तथा । ये स्तुवन्ति र्विभक्तप्राते यान्ति पतगालयम् ॥४६
 उषः स्तुवन्ति ये सूर्यमुपगायन्ति ते सदा । पाठकाश्रामराणाञ्चैव सर्वे ते स्वर्गागामिनः ॥४७
 अवयुक्तं युर्गुर्युक्तं यो दद्याद्वये रथम् । काञ्चनं वायि रौप्यं वा नणिरत्नान्वितं शुभम् ॥४८
 स यानेनार्कवर्णेन किंडिकणीजालमालिना । स्वर्गलोकर्मितो गत्वा क्रीडतेऽप्सरसा सह ॥४९
 यस्तु दाहमयं कुर्याद्वे रथमनुत्तमम् । स यात्यर्कसर्वणेन^१ विमानेनार्कमण्डलम् ॥५०
 दत्रां कुर्वन्ति ये भानोर्नराः संवत्सरादपि । षण्मासाद्वा गणश्रेष्ठ तेषां पुण्यफलं शृणु ॥५१

है । ३८। उसी भाँति भक्तिपूर्वक सूर्य के लिए वज्र पुष्ट एवं तीर्थ जल के प्रदान करने वाले को स्वर्ग की प्राप्ति होती है । ३९। तथा सैकड़ों स्त्रियों के साथ विमान पर स्थित होकर चिर काल तक क्रीडा करने के पश्चात् वह मनुष्य योनि में उत्पन्न होकर धार्मिक राजा होता है । ४०। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक छत्र, ध्वजा, वितान (चाँदनी) पाताका, एवं सुवर्ण के दंडों से विभूषित चामर सूर्य के लिए समर्पित करता है वह दिव्य विमान पर जिसमें किकड़ी (छोटी-छोटी घंटिया) माला की भाँति लगी हों, बैठकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है और वहाँ अप्सराओं का हार्दिक पति होता है । ४१-४२। एवं पुनः चिरकाल तक स्वर्ग मुख के अनुभव करने के पश्चात् यहाँ मनुष्य कुल में उत्पन्न होकर वह समस्त राजाओं का वन्दनीय राजा होता है । ४३। इस भाँति सूर्य के लिए वस्त्रों एवं आभूषणों के सप्रेम प्रदान करने से (मनुष्य) इस लोक में प्रलय काल पर्यंत क्रीडा करते हुए जीवन व्यतीत करता है । ४४। नृत्य, गान एवं वाद्यों द्वारा सूर्य के लिए जागरण करने वाला पुरुष गन्धर्व एवं अप्सराओं के साथ चिरकाल तक क्रीडा करता है । ४५। जो और गंधों, पुष्णों, पत्रों एवं स्तोत्र आदि विविध भाँति से सूर्य की उपासना करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । ४६। उषा काल में सूर्य के लिए सदैव स्तुति पाठ एवं गान करने वाले पाठक और चारण अदि सभी लोगों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है । ४७। इस प्रकार जो कोई सुवर्ण, चाँदी अथवा मणिरत्नों से निर्मित और घोड़े जुते हुए रथ सूर्य के लिए समर्पित करता है, वह सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण एवं किकड़ी (घंटियों) की मालाओं से सुर्खेभित विमान पर बैठकर स्वर्गलोक में अप्सराओं के साथ क्रीडा करता है । ४८-४९। जो काष्ठ के उत्तम रथ बनवाकर सूर्य के लिए समर्पित करते हैं उन्हें सूर्य के समान विमान पर बैठकर सूर्यमण्डल की प्राप्ति होती है । ५०

हे गणश्रेष्ठ ! वर्ष में अथवा छठे मास जो सूर्य की (रथ) यात्रा करते हैं, मैं उनके पुण्यफल को बता

१. आज्यधूपः ।

ध्यानिनो योगिनश्चैव प्राप्नुवन्तीह यां गतिम् । तां गर्ति प्रतिपद्यन्ते सूर्यवर्तमाविगाहिनः ॥५२
रथं दहन्ति ये भानोर्नरा भक्तिसमन्विताः । अरोगाश्चादिराष्ट्रच जातौ जातौ भवन्ति ते ॥५३
कर्तारो रथयात्राया ये नरा भास्करस्य तु । ते भानुलोकमासाद्य विहरन्ति यथासुखम् ॥५४
यात्राभद्राणं तु यो शोहात्कोऽधाद्वा कुरुते नरः । मन्देहस्ते नरा ज्ञेया राक्षसाः पापकारिणः ॥५५
धनं धान्यं हिरण्यं वा वासांसि विविधानि च । ये प्रयच्छन्ति सूर्याय ते यान्ति परमां गतिम् ॥५६
गा वाथ महिषीर्वापि गजानश्वांश्च शोभनान् । य प्रयच्छति सूर्याय तस्य पुण्यफलं शृणु ॥५७
अक्षयं सर्वकामीयमश्वनेष्टकलं लभेत् । सहस्रगुणितं तच्च दानमस्योपतिष्ठति ॥५८
मही ददाति योऽकाय कृष्टां फलवतीं शुभाम् । स तात्यति दै वंशदान्दशा दूर्वान्दशतपरान् ॥५९
विमानेन च दिव्येन गोपुरं गोपतेर्वर्जित् । क्रीडत्यस्तरसां मध्ये करीब करिणीगणे ॥६०
ग्रामं ददाति यो भक्त्या सूर्याय सतिमान्नः^१ । विभानेनार्कवर्णेन स याति परमां गतिम् ॥६१
आतामान्ये प्रयच्छन्ति पत्रपुण्यफलोपगान् । भानवे भक्तिसुक्तास्तु ते यान्ति परमां गतिम् ॥६२
मानसं वर्त्तिकं वापि कर्मजं यच्च दुष्कृतम् । सर्वं सूर्यप्रसादेन अशेषं च प्रणश्यति ॥६३

रहा हूँ सुनो ! १५१। सूर्य की रथयात्रा करने वाले को ध्यानी एवं शोणी के समान जाति की प्राप्ति होती है, ऐसा बताया गया है १५२। इस भाँति भक्तिपूर्वक जो मनुष्य उनके रथ का बहन करते हैं, वे प्रत्येक जन्म में आरोग्य रहते हैं एवं कभी दरिद्र नहीं होते हैं १५३। सूर्य की रथयात्रा करने वाले मनुष्य सूर्य लोक की प्राप्ति करके सुख पूर्वक सदैव विहार करते हैं १५४

उसी प्रकार से मोह अथवा शुद्ध होकर उनकी यात्रा शंग करने वाले पुरुष को पापकर्मा मन्देह नामक राक्षस जानना चाहिए १५५। इसीलिए धन, धान्य, सुवर्ण और भाँति-भाँति के वरत्रों को सूर्य के लिए समर्पित करने वाले मनुष्य उत्तम गति की प्राप्ति करते हैं १५६। और अब मैं गाय, भैस, हाथी एवं सुन्दर घोड़े सूर्य के लिए प्रदान करने वाले के पुण्य फलों को कह रहा हूँ सुनो १५७। वह पुण्य वहाँ सहस्रगुणे तथा अक्षय होकर समस्त कामनाओं को सफल करने वाले अश्वमेध के रामान ही फल प्रदान करता है १५८। जो सूर्य के लिए इस भाँति की भूमि का, जो जोती हुई एवं सत्य (अन्न) पूर्ण रहती है, दान करता है, वह अपने दश पीढ़ी पूर्व के और दश पीढ़ी बाद के (होने वाले) लोगों का उद्धार करता है १५९। पश्चात् दिव्य विमान पर बैठकर सूर्य के गोपुर की प्राप्ति करके हस्तिनियों के मध्य में हस्ती (हाथी) की भाँति अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करता है १६०। एवं जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्य के लिए गाँव समर्पित करता है, उसे सूर्य के समान प्रभापूर्ण विमान पर बैठकर उत्तम गति की प्राप्ति होती है १६१। जो भक्तिपूर्वक बगीचे को, जो पत्र, पुष्प एवं फलों से पूर्ण हो, सूर्य के लिए समर्पित करता है उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है १६२। इस प्रकार मन, वाणी एवं शारीर द्वारा किए गए उसके निविल दुष्कृत, सूर्य की प्रसन्नता से नष्ट हो जाते

आतों वा व्याधितो दापि दरिद्रो हुःखितोऽपि वा । आदित्यं शरनं गत्वा नात्मानं शोचते नरः ॥६४
 एकाहेनापि यद्भानोः पूजायाः प्राप्यते फलम् । तदै कृत्तुशतैरिष्टैः प्राप्यते फलमुत्तमम् ॥६५
 कृत्वा प्रेक्षणं भानोर्दिव्यमायतने शुभम् । अक्षयं सर्वकामीयं राजसूयकलं लभेत् ॥६६
 वेश्याकदम्बकं यस्तु द्यात्सूर्याय भक्तिः । स गच्छेत्परमं स्थानं यद्य तिष्ठति भानुमान् ॥६७
 पुस्तकं भानवे दद्याद्वागतस्य गणाधिप । र्वापविमुक्तात्मा विष्णुलोके महीयते ॥६८
 राजायनस्य दत्वा तु पुस्तकं चिपुरान्तक । वर्जपेयफलं प्राप्य गोपतेः पुरमाद्रजेत् ॥६९
 अविष्यं सारबसंजं वा दत्वा नूर्याय पुस्तकम् । राजसूयाच्चमेधाभ्यां फलं प्राप्नोति मानवः ॥७०
 सदांक्नामानवाप्नोति याति सूर्यसलोकताम् । सूर्यलोके निरं स्थित्वा लङ्घलोकं वजेत्युनः ॥
 स्थित्वा कल्पशतं तत्र राजा भवति भूतले ॥७१
 भानोरायतने यस्तु प्रपां कुर्याद्विगणाधिप । स याति परमं स्थानं दिव्यं सौमनसं नरः ॥७२
 शीतकाले घनं दद्यान्नराणां शीतनाशनम् । भानोरायतने देव अश्वमेधफलं लभेत् ॥७३
 इतिहासपुराणाभ्यां पुण्यं पुस्तकवाचनम् । अश्वमेधसहस्रं यो नित्यं कर्तुं प्रवत्तते ॥
 न तत्फलमवाप्नोति यदाप्नोत्यस्य कर्मणः ॥७४
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं पुस्तकवाचनम् । इतिहासपुराणाभ्यां भानोरायतने शुभम् ॥७५

हैं । ६३। योंकि आर्त, रोगी एवं दुःख से पीड़ित किसी को भी सूर्य की शरण प्राप्त होने पर अपने (मोक्ष के) लिए चित्तित नहीं होना पड़ता है । ६४। और सूर्य की एक दिन की ही पूजा का फल सौ यज्ञों के समान होता है । ६५। सूर्य के मन्दिर में मुन्द्र खेल तथाशे अपित करने से अक्षय एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाले उस राजसूय के समान फल प्राप्त होते हैं । ६६। सूर्य के लिए वैश्याओं के समूह को नृत्य-गान के हेतु करने से उसे उस परम स्थान की प्राप्ति होती है जहाँ सूर्य स्वयं रहते हैं । ६७। हे गणाधिप ! सूर्य के लिए महाभारत की पुस्तक प्रदान करने वाला पुरुष समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक में पूजित होता है । ६८। हे त्रिपुरांतक ! रामायण की पुस्तक समर्पित करने से बाजपेय के समान फल की प्राप्ति पूर्वक सूर्यलोक की प्राप्ति होती है । ६९। सूर्य के लिए राजसूय एवं अश्वमेध के फलों की प्राप्ति होती है । ७०। तथा वह सभी मनोरथों को सफलता पूर्वक सूर्य के सालोक्य रूप (मोक्ष) प्राप्तकरता है तथा सूर्य लोक में चिरकाल तक रहकर पुनः ब्रह्म लोक की भी प्राप्ति करता है । इस प्रकार वहाँ सौ कल्प तक मुखानुभूति करने के पश्चात् इस भूतल में राजा होता है । ७१। हे गणाधिप ! सूर्य के मन्दिर में जो (पौसला) स्थापित करता है, उसे देवताओं के दिव्यलोक की प्राप्ति होती है । ७२। इसी भाँति शीत के समय में शीत निवारण के लिए मनुष्यों को सूर्य के मन्दिर में वस्त्र वितरण करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है । ७३। जो मनुष्य नित्य इतिहास एवं पुराण की पुस्तकों का अध्ययन करता है, उसे सहस्र अश्वमेध के फल से कहीं अधिक फल की प्राप्ति होती है । ७४। इसलिए सूर्य के मन्दिर में इतिहास एवं पुराणों की पुस्तकों का अध्ययन करने के लिए सदैव प्रयत्न शील रहना चाहिए । ७५। क्योंकि सूर्य के

नान्यत्पुष्टिकरं भानोस्तथा तुष्टिकरं परम् । पुण्याख्यानकथा यास्तु यथा! तुष्टिभास्तकरः ॥७६
 इति श्रीभगव्ये महापुराणे ब्रह्म ह पर्वणि सप्तमी कल्पे भानुमहिमावर्णनं
 नाम त्रिनवितिमोऽध्यायः ॥९३।

अथ चतुर्नवितिमोऽध्यायः

पुण्यश्रवणमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

अत्राख्यानमशन्तीह रंवादं गणपुड्गव । पितामहकुमाराभ्यां पुण्यं पापहरं शिवम् ॥१
 अष्टारं सर्वलोकानां सुखातीनं पितामहम् । प्रणम्य शिरसा देवं श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥२
 कुमारो देवशार्दूल इदं वचनमन्वीत् । गतोऽहमद्य भगवन्द्रुद्धुं देवं दिवाकरम् ॥३
 कृत्वा प्रदक्षिणं देवः स भया यजितो रविः । प्रणम्य शिरसा भक्त्या परया श्रद्धया विभ्रे ॥४
 अनुज्ञातस्ततस्तेन सुखासीनो ह्यहं स्थितः । आसीनेन भया तत्र दृष्टमार्यमद्भुतम् ॥५
 काञ्छनेन विमानेन किङ्किर्णीजालमालिना । मणिमुक्तविचित्रेण वैदूर्यवरवेदिना ॥६
 आगतं पुरुषं तत्र बृष्ट्वा देवो दिवाकरः ॥७ । ससम्भ्रमं समुत्थाय आसनादेव सत्तम ॥७

लिए उतनी पुष्टि एवं तुष्टि प्रदान करने वाली और कोई वस्तु नहीं है, जितनी कि उनके उपाख्यान की पुण्यकथा । ७६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपुराण के सप्तमी कल्प में भानुमहिमावर्णन नामक त्रिनवितेवाँ अध्याय समाप्त । ९३।

अध्याय ९४

पुण्य श्रवण माहात्म्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे गणश्रेष्ठ ! इस विषय में ब्रह्मा और कुमार के संवाद रूप एक आख्यान (कथा) प्रचलित है जो पुण्यरूप, पापनाशक एवं कल्याण प्रद है । १। हे देवशार्दूल ! एकबार समस्त लोकों के रक्षयिता ब्रह्मा सुख पूर्वक बैठे हुए थे, उन्हें श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक नतमस्तक से प्रणाम कर कुमार ने उनसे यह कहा—हे भगवन् ! आज सूर्य के दर्शन के लिए मैं गया था । २-३। हे विभो ! (मैंने) अत्यन्त श्रद्धालु होकर भक्ति पूर्वक एवं नतमस्तक होकर उन्हें प्रणाम किया तथा उनकी प्रदक्षिणा एवं पूजा भी की । ४। पश्चात् उनकी आज्ञा से सुख पूर्वक बैठे गया । तदन्तर मैंने वहाँ बैठे-बैठे एक अद्भुत आश्चर्य देखा । ५

सुवर्ण के विमान पर, जिसमें चारों ओर से छोटी-छोटी घंटियों का जाल सा लगा था, और मणियों भौतियों से चित्र विचित्र तथा वैदूर्य मणि का उत्तम आसन (बैठने का स्थान) बना हुआ था, बैठकर आये हुए पुरुष को देख कर सूर्य देव अपने आसन से सहसा उठकर सामने गये । ६-७। और उसके

१. विभावसुः ।

गृहीत्वा' दक्षिणे पाणी पुरतः प्राप्य तं नरम् । शिरस्याधाय देवेश पूजयामास वै रविः ॥८
 उपविष्टं तु तं भानुरिदं बचनमब्रवीत् । मुस्वागतं भद्रं सुखकृता प्रीतास्त्वया वयम् ॥९
 समीपे मम तिष्ठ त्वं याददासूतसंप्लवम् । पुनर्यास्यसि तत्स्यानं यत्र ब्रह्मा स्वयं स्थितः ॥१०
 एतस्मिन्शंतरे चान्यो विमानवरमास्त्वितः । आगतः पुरुषो देवो यत्र तिष्ठति भास्करः ॥११
 स चाप्येवं तरो देव पूजितो भानुनः तदा । सामपूर्वं तथोक्तस्तु प्रश्नावनतः स्थितः ॥१२
 तत्र मे कौतुकं जातं दृष्ट्वा पूजां कृतां तथोः । भानुना देवशार्दूलं पृष्ठो भानुर्मयः ततः ॥१३
 किमनेन कृतं देव योऽयं पूर्वमिहागतः । नरस्त्वं सकाशः वै यस्य तुष्टो भवत्मृशम् ॥१४
 यदस्य भवता पूजा कृता हि स्वयमेव तु । अत्र मे कौतुकं जातं विस्मयश्च विशेषतः ॥१५
 तथेवात्स्य कृता पूजा द्वितीयस्य नरस्य च । सर्वथा युण्डकर्मणाविमौ नरवरोत्तमौ ॥१६
 ब्रह्मिष्युशिवाद्यस्तु पूज्यते भगवान्सदा । यस्त्वमाभ्यां परं पूजां कृतवान्देवसत्तम् ॥१७
 कथ्यतां मम देवेश किमेतौ कर्म चक्रतुः । यस्येवं पूर्णं फलं दिव्यमवापतुः ॥
 शुन्ना तद्वचनं देव इदं बचनमब्रवीत् ॥१८

सूर्य उवाच

साधु पृष्ठोऽस्मि भवता कर्मणो निर्णयं परम्

॥१९

दाहिने हाथ को पकड़ कर उसके शिर का आधाण किया (सूधा) और तदुपरान्त सूर्य ने उसकी पूजा भी की । ८। पुनः बैठ जाने पर उससे सूर्य ने इस भाँति ये कहना आरम्भ किया है भद्र ! आप का स्वागत है, आप ने हमें सुख प्रदान किया अतः हम लोग अत्यन्त प्रसन्न हैं । अतः आप महाप्रलय काल पर्यंत यहाँ मेरे समीप हों और पश्चात् जहाँ ब्रह्मा स्वयं स्थित हैं, उस स्थान पर चले जाइयेगा । ९-१०

इसी बीच में अन्य एक सुन्दर विमान पर बैठकर दूसरा पुरुष आया जहाँ सूर्य देव रहते थे । ११। उस पुरुष की उसी प्रकार उन्होंने पूजा तथा शान्ति पूर्णं सुस्वागत किया । तत्परतात् पुरुष भी स्वागत के उपरान्त नम्रता पूर्वक (वहाँ) बैठ गया । १२। हे देव शार्दूल ! सूर्य के द्वारा उन दोनों के इस प्रकार के सम्मान को देखकर मैंने उनसे कौतूहलवश पूछा । १३। हे देव ! यह जो पहले आप के समीप आया है, इसने ऐसा कौन कर्म किया है, जिससे आप अत्यन्त प्रसन्न हैं । १४। तथा आप ने स्वयं इसकी पूजा भी की है और यह देख कर मुझे कौतूहल एवं महान् आश्चर्य भी हुआ । १५। हे देवसत्तम ! इस दूसरे पुरुष की भी पूजा आप ने वैसी ही की है, अतः ये दोनों नरोत्तम सर्वथा पुण्य कर्माः हैं क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आप की पूजा करते हैं और आप ने इन दोनों की पूजा की है । १६-१७। हे देवेश ! इसलिए इन दोनों ने ऐसे कौन कर्म किये हैं, जिससे इन्हें इस प्रकार के दिव्य पुण्य काल प्राप्त हुए बताने की कृपा करें । इसे सुनकर सूर्य ने कहा । १८

सूर्य बोले—हे मुनिसत्तम ! आप ने इनके कर्मों का निर्णय रूप बहुत उत्तम प्रश्न किया है । हे

यदनेन कृतं कर्म नरेण मुनिसत्तमः । योऽसौ सूर्यमिहायातस्तन्दृणुष्व महामते ॥२०
 येण मदंशसम्भूतैः पार्थिवैः पालिता सदा । अयोध्या नाम नगरी प्रस्याता पृथिवीतले ॥२१
 तत्रासौ वैश्यजातीयो धनपाल इति स्मृतैः । तस्यः पुर्यां द्विजश्रेष्ठ दिव्यमायतनं व्यधात् ॥२२
 तस्मिन्नायतने दिव्ये ह्याङ्गायर्थं तथाश्रितः । ब्राह्मणानां विशिष्टानां पूजयित्वा कदम्बकम् ॥२३
 इतिहासपुराणाम्यां वाचकं च विशेषतः । पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठं सुनश्रेष्ठं महामुनिन् ॥२४
 पुस्तकं चापि सम्पूज्य गन्धपुष्पोपहारतः । तस्य विप्रकदम्बस्य व्यापास्य च यथाप्रतः ॥२५
 प्रकल्प्योत्तो द्विजोऽनेन पाठकोऽवकोत्तमः । एष तिष्ठति देवेशः सहस्रकिरणो रविः ॥२६
 चातुर्वर्ष्यमिदं वापि श्रोतुकामं कदम्बकम् । तिष्ठ चेह द्विजश्रेष्ठं कुरु पुस्तकदाचनम् ॥२७
 येन मे वरदो भानुः^३ सप्त जन्मानि वै भवेत् । यावत्संबत्तरं विप्रं प्रगृह्ण वृत्तिनुत्तमाम् ॥२८
 स्वर्णनिष्कशं विप्रं ततो दास्ये तथापरम् । पूर्णे वर्षे द्विजश्रेष्ठं श्रेयोऽर्थमहनात्मनः ॥२९
 एवं प्रवर्तिते तस्मिन्पुण्डे पुस्तकवाचने । षण्मासामृतमात्रे तु काहे सुरवरोत्तमः ॥
 तथैवान्तरतश्चायं कालर्धममुपैयिव । न् ॥३०
 मया चास्य विमानं तु प्रेतितं कुर्वतो व्रतम् । इत्येषा कर्मणस्तुष्टिः पुण्ड्यास्यानकजार्चिता ॥३१
 गन्धपुष्पोपहारैस्तु न तथा जायते भम । प्रीतिदेववर श्रेष्ठं पुराणश्रवणे यथा ॥३२

महामते ! जो यहाँ (सूर्य के) मेरे समीए आ कर स्थित करते हैं उनके कर्म मैं बतां रहा हूँ सुनो ! १९-२०। इस पृथिवी पर अयोध्या नाम की एक प्रस्यात नगरी है जो मेरे अंशों से उत्पन्न राजाओं द्वारा सदैव पाली पोषी जाती है । २१। उसी पुरी में वैश्य वंश का रत्नरूप धनपाल नामक वैश्य रहता था । हे द्विजश्रेष्ठ ! वहाँ उसने एक मुन्द्र मेरा मन्दिर बनवाया था और उसने मन्दिर में विशिष्ट ब्राह्मणों के एक समूह को पूजा सत्कार पूर्वक वेदपाठ करने के लिए नियुक्त किया । २२-२३। पश्चात् उन्होंने भी ब्राह्मणों विशेष कर इतिहास एवं पुराण के मर्मज्ञ वाचक भी जो द्विजों एवं मुनियों में श्रेष्ठ एवं महामुनि थे, उनकी पुस्तक की गंध एवं पुष्पोपहार द्वारा पूजा करके पुनः उन ब्राह्मणों तथा कथावाचक व्यासों से उसने कहा । २४-२५। हे देव ! सहस्र किरणों वाले देव नायक सूर्य यहाँ विराजमान हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! चारों वर्णों के मनुष्य एवं यह ब्राह्मण समूह भी कथा सुनने के लिए यहाँ नित्य प्रति उपस्थित रहेंगे इसलिए आप इस पुस्तक का पाठ करना इस प्रकार आरम्भ करें जिसके सुनने से सात जन्म तक मेरे ऊपर सूर्य का वरद हस्त रहे । हे विप्र ! मैं आप की सेवा में पूर्ण वर्ष के लिए सुवर्ण की सी मोहरें अपित कर रहा हूँ अतः इस सुवर्ण रूपी वृत्ति को स्वीकार कीजिए, और अपने कल्याण के निमित्त मैं और भी कुछ देता ही रहूँगा । २६-२९। हे सुरवरोत्तम ! इस प्रकार उस पुण्य पुस्तक के पाठ (कथा) करने की व्यवस्था करके छह मास के व्यतीत होते ही वह अपने कलेवर के परित्यागरूप मृत्यु की गोद में सदैव के लिए सोगया । ३०। मैं ने उसी द्रव्ती के लिए यह विमान भेजा था और यह वही व्यक्ति है तथा इसके कर्मों से प्रसन्न होने का यही कारण भी है और उस पुण्य कथा की चर्चा से ही मैं प्रसन्न हुआ था । ३१

गोसुर्वर्णहिरण्यानां इत्त्राणां चापि कृत्स्नशः । प्रामाणां नगराणां च दानं प्रीतिकरं भम ॥३३
 न तथा स्यात्सुरश्रेष्ठ यथा प्रीतिकरं गुह । इतिहासपुराणाभ्यां श्रवणं सुरसैन्यप ॥३४
 श्राद्धं कुर्वन्ति ये मह्यं भक्ष्यभोज्यरनेकाशः । न करोति तथा प्रीतिर्यथा पुस्तकवाचनम् ॥३५
 कर्णश्राद्धे यथा प्रीतिर्मम स्यात्सुरसत्तम । न तथा जायते प्रीतिर्भोज्यश्राद्धे तथैव च ॥३६
 अथ कि बहुनोत्तेज नान्यत्रीतिकरं भम । पुण्याल्यानादृते देव गुह्यमेतत्प्रकीर्तिंतम् ॥३७
 यश्चायननरदो विप्र इहायतो नरोत्तमः । अद्यमासांहिदजश्रेष्ठस्तस्मिन्नेव पुरोत्तमे ॥३८
 एकदा तु गतश्चायं धर्मश्वश्रुतमम् । श्रोतुं भक्त्या द्विद्वजश्रेष्ठं श्रद्धया परया वृतः ॥३९
 शुत्वा तद्द ततो भक्त्या पुण्याल्यानमनुत्तमम् । कृत्वा प्रदक्षिणं तस्य वाचकस्य महात्मनः ॥
 एष द्विप्रोऽमरश्रेष्ठ दत्तवान्स्वर्णमाषकम् ॥४०
 दत्या तु दक्षिणां तस्मै वाचकःयमितौजसे^१ : आनन्दमगमद्विप्रः प्राप्तवान्काञ्चनं यथा ॥४१
 एतद्द्वि सफलं चास्य न चान्यत्कृतवालयम् । यदनेन कृता पूजा वाचकस्य महात्मनः ॥
 फलं हि कर्मणस्तस्य यन्मया पूजितः स्वयम् ॥४२
 वाचकं पूजयेद्यस्तु श्रद्धान्वितसमन्वितः । तेनाहं पूजितः स्यां वै को विष्णुः शाइकरस्तथा ॥४३

हे देवश्रेष्ठ ! इसलिए पुराण के सुनने से मैं जितना प्रसन्न होता हूँ गंध एवं पुष्पोपहार द्वारा उतना प्रसन्न कभी नहीं होता । ३२। हे सुरश्रेष्ठ ! हे गुह ! हे सुरसैन्य ! गौएँ, सुवर्ण, रत्नों, वस्त्रों, गाँवों एवं नगरों के दान देने से मुझे उतनी प्रसन्नता ही नहीं है, जितनी कि इतिहास एवं पुराण के (पारायण) सुनने, सुनाने से । ३३-३४। एवं जो कोई मेरे उद्देश्य से भाँति-भाँति के भक्ष्य पदार्थों द्वारा श्राद्ध करते हैं, उनके (इस) कर्म से भी मुझे उतनी प्रसन्नता नहीं होती है, जितनी कि पुस्तक के (पाट) से होती है । ३५। हे सुरोत्तम ! इस प्रकार कर्ण श्राद्ध (कथा सुनने) की भाँति प्रसन्नता मुझे भोज्य श्राद्ध में भी कभी नहीं प्राप्त होती है । ३६। हे देव ! और अधिक कथा कहूँ, बस पुण्य कथा के अतिरिक्त अन्य कोई भी मुझे प्रिय नहीं है, यह तुम्हें गुप्त (रहस्य) बता रहां हूँ । ३७

हे विप्र ! यह जो दूसरा नर रत्न यहाँ आया है, यह भी उसी नगरी में श्रेष्ठ ब्राह्मण था । ३८। एकबार यह अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक धार्मिक कथा सुनने के लिए वहाँ गया था और भक्तिपूर्वक उस पवित्र कथा को सुनकर इसने उन कथा वाचक महात्मा की प्रदक्षिणा की तत्पश्चात् उन्हें एक माशा सुवर्ण भी समर्पित किया था । ३९-४०। उपरांत उस अतुल तेजस्वी कथा वाचक को दक्षिणा अर्पित करके सुवर्ण प्राप्त किसी दरिद्र की भाँति आनन्द विभोर होता हुआ वहाँ से अपने गृह चला गया था । ४१। बस यही एक सफलता पूर्ण कार्य इसने अपने जीवन में किया और कभी कुछ नहीं किन्तु इसने जो कथावाचक उस महात्मा की पूजा की है उसी कर्म का यह फल है कि मैं ने स्वयं इसकी पूजा की । ४२

अतः श्रद्धालु होकर एवं भक्ति पूर्वक जो मनुष्य कथा वाचक की पूजा करता है, उससे मेरी ही भाँति ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर भी प्रसन्न होते हैं । ४३। भक्ति पूर्वक जो उत्तम भक्ष्य पदार्थों से कथा

वाचकं भोजयेद्यत्तु भक्त्या भोज्यैरनुत्तमैः । तेनाहं पूजितः स्यां वै दश वर्जाणि पञ्च च ॥४४
न यमो न यमी चापि न मन्दो न ननुस्तथा । तपती न तथान्विष्टा यथेष्टो वाचको मम ॥४५
वाचके सत्कृते देव भोजिते सुरसैन्यप । त्रृप्तिर्भवति मे देव संवत्सरशतद्वयम् ॥४६
न केऽलं मम प्रीतिर्वाचके भोजिते भवेत् । जुत्नशो देवतानां च इन्द्रादीनां तथा भवेत् ॥४७
ब्रह्माविष्णुशिवादीनां स चेष्टो दाचको मम ! प्रीते तस्मिन्देवताः स्युःसर्वाः प्रीताः न संशयः ॥४८
इत्येतत्कथितं सर्वाभ्यां कर्म महाबल ॥४९
न चान्यच्चक्तुः कर्म किमन्पच्छोतुमिच्छसि । एतद्दृष्ट्याहमाश्र्यं तवाभ्याशाप्यहातः ॥
किमत्र तथ्यं देवेश कथयतां कौतुकं मम ॥५०
शुत्वा कुमारवचनं रव्वलोकपितामहः ॥५१

ब्रह्मोवाच

हृत भोः साधु पुण्योऽसि नास्ति तुल्यस्त्वयापरः । यद्दृष्टौ भवता तौ हि सुपुण्यौ पुण्यकारिणौ ॥५२
यदुक्तं भानुना वत्स तत्था नान्यथा भवेत् । यदासीन्ने मुखं पुत्रं प्रथमं लोकं पूजितम् ॥५३
ज्ञानादेतानि सर्वाणि निर्गतानि समन्ततः । इतिहासपुराणानि लोकानां हितकाम्यया ॥५४
यथेतानि समेष्टानि पुराणानि महामते । न तथा वै चतुर्वेदी न चाद्विग्नि महामते ॥५५
शृणवन्त्येतानि ये भक्त्या नित्यं शद्वासमन्विताः । दत्त्वा तु वाचके वृत्ति ते गच्छन्ति परं पदम् ॥५६

वाचक को भोजन कराता है, उसने यानी पन्द्रह वर्ष तक निरन्तर मेरी ही आराधना की है ऐसा समझना चाहिए । ४४। क्योंकि यम, यमी, शनैरचर, मनु, एवं तपती ये सभी मेरे सन्तान भी कथा वाचक के समान मुझे उतने प्रिय नहीं हैं । ४५। हे देव ! हे सुरसैन्य ! कथा वाचक के सत्कार और भोजन कराने, करने से (उस व्यक्ति के ऊपर) मैं दो सौ वर्ष तक पूर्ण (प्रसन्न) रहता हूँ । ४६। और कथावाचक का भोजन कराने से केवल मैं ही नहीं प्रत्युत सम्पूर्ण इन्द्रादिक देवता भी मेरे समान ही प्रसन्न होते हैं । ४७। और मेरी ही भाँति ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव को भी वाचक उतना ही प्रिय होता है, क्योंकि उसी के प्रसन्न होने पर समस्त देवता प्रसन्न होते हैं, इसमें सदेह नहीं । ४८

हे महाबल ! इस भाँति इन दोनों अन्य व्यक्तियों के द्वारा किये गये कर्मों को मैंने तुम्हें बता दिया । ४९। इन दोनों ने इसके अतिरिक्त और कोई पुण्य कर्म नहीं किया है अब और क्या सुनना चाहते हो ! हे देवेश ! तदुपरात्त इस आश्र्य को देखकर मैं आप के पास आया हूँ, मेरे कौतूहल को बताइये कि इसमें क्या सत्य निहित है । कुमार की बातें सुनकर । ५०

ब्रह्मा बोले—आप साधु एवं पुण्यात्मा हैं, आप के समान पुण्य कर्मा दूसरा कोई नहीं है क्योंकि आपने उन दोनों पुण्य कर्म करने वाले पुण्यात्माओं के दर्शन भी किये हैं । ५१-५२। हे वत्स ! सूर्य ने जो कुछ कहा है, उसमें कोई अंश असत्य नहीं है । हे पुत्र ! क्योंकि मेरे इस लोक पूजित प्रथम मुख द्वारा लोक की हित कामना वश ये सभी इतिहास पुराण निकले हैं । ५३-५४। हे महामते ! इसीलिए मुझे आप जैसे ये पुराण प्रिय हैं, वैसे चारों वेद या उनके अंग प्रिय नहीं हैं । ५५। जो इस भाँति शद्वा एवं भक्ति पूर्वक कथा वाचक के लिए वृत्ति प्रदान कर नित्य कथा सुनते रहते हैं उन्हें उत्तम गति की प्राप्ति होती है । ५६। हे

धनर्थकाममोक्षाणां स्पष्टीकरणमुत्तमम् । इतिहासपुराणानि यथा सृष्टानि मुञ्चत ॥५७
 चत्वारो य इमे वेदा गूढार्थाः सततं स्मृताः । अतस्त्वेतानि सृष्टानि बोधायैषां महामते ॥५८
 यस्तु कारयते नित्यं धर्मश्रवणमुत्तमम् । आदित्याद्वात्स्करं प्राप्य याति तत्परमं पदम् ॥५९
 दत्त्वा तु दक्षिणां तत्र आदित्यस्य पुरं द्रजेत् । किमाश्वर्यं सुरश्वेष्ठ दानवात्रं हि तत्परम् ॥६०
 यथा देववरो लेखो यथा हेतिः परं परिः । ब्राह्मणानां तथा धेष्ठो वाचको नात्र संशयः ॥६१
 हेतिर्यथा तेजसां तु सरसां सागरे यथा । तथा सर्वद्विजेऽयस्तु वाचकः प्रवरः स्मृतः ॥६२
 वाचकं पूज्येद्यस्तु नरो भक्तिपुरुः सरम् । पूजितं सकलं तेन जगत्याक्षात्रं संशयः ॥६३
 सत्यमुक्तं न सन्देहो भावुना भल्कुलोद्धह । वाचकेन समं पात्रं न जात्वन्यद्वेत्वचिद् ॥६४
 तच्छुत्वा ब्रह्मणो वास्यं कुमारो वायमन्नदीत् ॥६५
 अहो हि धन्यता तस्य पुण्यश्रवणकारिणः । दानं च ददतोऽत्यर्थं पुण्यता वाचकाय वै ॥६६

ब्रह्मोवाच

इथं दिण्डे सदा यस्तु देवदेवस्य मन्दिरे । कुर्यात् धर्मश्रवण स याति परमां गतिम् ॥६७
 श्रीभविष्यमहापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे पुण्यश्रवणमाहात्म्य वर्णनं
 नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः । १४।

मुञ्चत ! धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष के रूप को स्पष्ट प्रदर्शित करने के लिए ही मैंने इतिहास एवं पुराणों की रचना की है ।५७। हे महामते ! इन चारों वेदों का अर्थ अत्यन्त गूढ है, इसलिए इनके अर्थ का भली भाँति बोध (ज्ञान) होने के लिए भी इनकी रचना हुई है ।५८। अतः जो नित्य इन धार्मिक कथाओं का श्रवण कराता है, वह सूर्य द्वारा तेज प्राप्त कर परम पद की प्राप्ति करता है ।५९। और (कथा वाचक की) दक्षिणा प्रदान करने से उसे सूर्य लोक की भी प्राप्ति होती है, हे सुरश्वेष्ठ ! इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि उससे उत्तम कोई दान का अन्य पात्र ही नहीं बताया गया है ।६०

देवों में इन्द्र तथा अस्त्रों में वज्र की भाँति ब्राह्मणों में कथावाचक ही सर्वश्रेष्ठ कहे गये हैं इसमें संदेह नहीं ।६१। इस प्रकार तेजस्वी होने के नाते (अस्त्रों में) वज्र और जलाशयों में सागर वीं भाँति समस्त द्विजों में वाचक ही श्रेष्ठ होता है ।६२। इसलिए भक्ति पूर्वक जो मनुष्य वाचक की पूजा करता है, उसने समस्त जगत् की पूजा की इसमें संदेह नहीं ।६३। हे मेरे कुल श्रेष्ठ ! इस भाँति सूर्य ने जो कुछ कहा है वह ध्रुद सत्य है कि वाचक के समान उत्तम पात्र अन्य कोई नहीं है ।६४। अनन्तर ब्रह्मा की इस प्रकार की बातें सुनकर कुमार ने भी कहा कि—उस पुण्य कथा के सुनने वाले को शतशः धन्यवाद है जो वाचक के लिए दान अपित करते हुए पुण्य प्राप्त करता रहता है ।६५-६६

ब्रह्मा ने कहा—हे द्विज ! इस भाँति जो देवाधिदेव सूर्य के मन्दिर में नित्य धर्म की चर्चा सुनता है, उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है ।६७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में पुण्य श्रवण माहात्म्य वर्णन
 नामक चौरानबेंवाँ अध्याय समाप्त । १४।

अथ पञ्चनवतितमोऽध्यायः

आदित्यालयमाहात्म्यवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

त्रिभिः प्रदक्षिणां कुत्वा यो नमस्कुरुते रविम् । भूमौ गतेन शिरसा स याति परनां गतिन् ॥१
सोपानत्को देवगृहमारोहेद्यस्तु मानवः । स याति नरकं घोरं तामिक्षं नाम ज्ञानतः ॥२
श्लेष्मभूत्पुरीषाणि समुत्सृजति यस्तु वै । देवस्यायनने भानोः स गच्छेन्नरकं क्रमस्त् ॥३
घृतं मधुं पयस्तोयं तथेभुरसमुत्तमम् । स्नपनार्थं तु देवस्य ये ददतोह जानवाः ॥
सर्वकामानवाप्येह ते यान्ति हेलिमण्डलम् ॥४

स्नाप्यनानं रविं भक्त्या ये पश्यन्ति वृष्टध्वज । तेऽश्वमेधफतं प्राप्य लयं यान्ति वृष्टध्वजे ॥५
स्नपनं ये च कुर्वति भानोर्भक्तिसमन्विताः । लभन्ते तत्कलं भीमं राजसूयाश्वमेधयोः ॥६
यथा न लङ्घयेत्कश्चित्स्नपनं भास्करस्य तु । तथा कार्यं प्रयत्नेन लङ्घयतं हृषुखावहम् ॥७
तामिक्षं नरकं याति लङ्घयेत्तद् स रौरवाद् । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्यं स्नपनमादितः ॥८
घृतेन स्नापयेदेवं कञ्जमाप्नोति मानवः । मधुना प्रियमायाति तोयेनांपं घृतैकसम् ॥९

अध्याय ९५

आदित्यालय माहात्म्य का वर्णन

ब्रह्मा बोते—जो तीन बार सूर्य की प्रदक्षिणा करके उन्हें भूमि में शिर से (साष्टांग) नमस्कार करता है उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है । १। इस भाँति जूते पहने हुए जो मनुष्य मन्दिरों में जाता है, उसे तामिक्ष नामक नरक की प्राप्ति होती है । २। तथा जो सूर्य के मन्दिर में थूकता है अथवा याखाना, पेशाब करता है, उसे क्रमशः (सभी) नरकों की प्राप्ति होती रहती है । ३। जो मनुष्य धी, शहद, दूध, जल एवं ऊख के रस सूर्य के स्नान के लिए समर्पित करता है, उसे समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक सूर्य के मंडल की प्राप्ति होती है । ४। हे वृष्टध्वज ! जो स्नान करते हुए सूर्य का दर्शन करता है, उसे अश्वमेध के फल की प्राप्ति पूर्वक शिव में सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति होती है । ५। हे भीम ! भक्ति पूर्वक जो सूर्य को स्नान कराते हैं उन्हें राजसूय तथा अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है । ६। और सूर्य के स्नान किये हुए जल का उल्लंघन कोई न करे इसका विशेष ध्यान रखते हुए प्रयत्न पूर्वक स्वयं वैसा ही करे क्योंकि उसे लांघने पर ऐसे मनुष्य को फल की प्राप्ति होती है जिसमें रौरव तामिक्ष आदि नरकों की प्राप्ति अनिवार्य रहती है । इसलिए प्रयत्न पूर्वक सूर्य के स्नान एकान्त स्थान में ही कराना चाहिए जिससे कोई उसे लांघन सके । स्नान कराने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, उसी भाँति शहद द्वारा स्नान कराने से (सूर्य का) प्रिय पात्र जलद्वारा स्नान कराने से देवलोक ऊख, के रस द्वारा स्नान कराने से वायुलोक तथा इन

इक्षुरसेनं संस्नाप्य पयसा कञ्जशध्वजम् । एवमेभिः नापेद्वै रविमीहितमाप्नुयात् ॥१०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मपर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यालयमाहात्म्यवर्णनं
नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः । १५।

अथ षण्णनवतितमोऽध्यायः

जयानामसात्तमीवर्णनम्

दिङ्डिलवाच

यच्चैता सप्तम्यो भवता कथिता मम । तासां या प्रथमा देव कथिता सा सविस्तरा ॥१
यास्त्वन्या देवशार्दूल ता: सर्वा: कथयस्व मे । येनोपेष्य ततस्तास्तु ब्रजेऽहं हेतिसद्य वै ॥२

ब्रह्मोलवाच

शुक्लपक्षस्य सप्तम्यां नक्षत्रं पञ्चतारकम् । यदा स्यात्सा तदा ज्ञेया जया नामेति सप्तमी ॥३
तस्यां इत्तां हुतं जापस्तर्पणं देवपूजनम् । सर्वं शतगुणं प्रोक्तं पूजा चापि दिवाकरे ॥४
भास्तरस्य प्रिया हृषेषा सप्तमी पापनाशिनी । धन्या यशस्या पुश्या च कामदा कञ्जजावहा ॥५
विधिनानेन कर्तव्या तिथिर्या मम विद्यते । तं शृणुष्व विंधि मत्तो येन कृत्वार्थमशुमते ॥६

सभी वस्तुओं के मिश्रण द्वारा स्नान कराने से मनुष्य को अभीष्ट की सिद्धि होती है । ७-१०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्यालय माहात्म्य वर्णन
नामक पंचानबेवां अध्याय समाप्त । १५।

अध्याय ९६

जयानामक सप्तमी का वर्णन

विंडि ने कहा—हे देव ! इस प्रकार उन सातों सप्तमियों में जिन्हें आपने पहले बताया था, पहली (सप्तमी) का ही विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है । १। हे देव शार्दूल ! अतः ये अन्य सप्तमियों के विधान को भी जिनके आचरण द्वारा सूर्य लोक की प्राप्ति कर सकें, मुझे बताने की कृपा कीजिए । २

ब्रह्मा बोले—शुक्ल पक्ष की सप्तमी में हस्त नक्षत्र की प्राप्ति होने से उसे जया सप्तमी कहा जाता है । ३। उसमें किये गये दान, हवन, जप, तर्पण, देवपूजन तथा सूर्य की पूजा सौंगुने फल प्रदान करती है । ४। और यह सूर्य के लिए अत्यन्त प्रिय होने के नाते पापनाशिनी एवं प्रशंसनीय भी हैं तथा यश, पुत्र, एवं कामनाओं समेत लक्ष्मी प्रदान करती है । ५। अतः जिस विधान द्वारा मेरी इस तिथि (सप्तमी) में व्रत आदि करके मनोरथ सिद्ध करते हैं उसमें बता रहा हूँ सुनो । ६

१. दानमित्यर्थः, अयं भावनिष्ठान्तः प्रयोगः । एवं हुतमित्त्रापि हवनमित्यर्थो बोध्यः ।

हसे हंसमारुद्धे शुक्लेयं सप्तमी पुरा ! समुपोष्य च कर्तव्या विधिनानेन शङ्कर ॥७
पारणा तृतीयाऽहे स्यात्कथितं गोवृषावहम् । प्रथमं चतुरो मासान्तारणं कथितं बुधैः ॥८
क्षयितान्यत्र पुष्याणि कर्वीरस्य सुव्रत । चन्दनं च तथा रक्तं धूपार्थं गुग्गुलं परम् ॥९
कांसारं तु सुपक्वं च नैवेद्यं भास्कराय वे । अनेन विधिनापूज्ञ मार्तण्डं विबुधाधिपम् ॥१०
पूज्येद्ब्राह्मणान्मीम भक्ष्यभोज्यर्थाविधिः । कांसारं भोजयेद्विप्रान्पारणेऽस्मिन्विचक्षणः ॥

स्वप्यमेव तथाइनीयात्प्रयतो मौनमाश्रितः ॥ ११

पञ्चम्यामेकश्तं तु षष्ठ्यां नक्तं प्रवर्तते । कृत्वे पवासं सप्तम्यामष्टम्यां पारणं भवेत् ॥१२
पञ्चशा समेता कर्तव्या नाष्टस्येयं कदाचन । यस्योपवासनायैव षष्ठ्यामाहुरुपोचितम् ॥१३
यथेकादश्यां कुर्वन्ति उपवासं भनीषिषः । उपवासनाय द्वादश्यां तथेयं परिकीर्तिता ॥१४
सिद्धार्थकैः ज्ञानमन्त्रः प्राशनं गोमयस्य तु । भानुमें प्रीयतामत्र दन्तकाण्ठं तथार्कजम् ॥१५
इत्येष क्षयितस्तात प्रथमे पारणे विधिः । द्वितीयं शूतां भीम पारणं गदतो मम ॥१६
मालतीकुमुमानीह श्रीखण्डं चन्दनं तथा । नैवेद्यं पादं भानोर्धूपं विजयमादिशेत् ॥१७
ब्राह्मणान्भोजयेद्वापि तथाइनीयात्त्वयं विभो । रविमें प्रीयतामत्र नाम देवस्य कीर्तयेत् ॥१८

हे शंकर ! पहले समय की बात है जबकि सूर्य के एकवार अश्वारुद्ध होने (उदयकाल) के समय यह सप्तमी शुक्लवर्ष की हो गई थी, अतः उपवास पूर्वक इसी विधान द्वारा इसे उसी भाँति सुसम्पन्न करना चाहिए । ७। और इस सप्तमी के ब्रतानुष्ठान में तीसरे दिन पारण करना बताया गया है ऐसा शंकर जी से उन्होंने कहा । इस प्रकार चार मास के ब्रत विधान सुसम्पन्न करने के उपरान्त यह गहला पारण करना विद्वानों ने बताया । ८। हे सुव्रत ! इसमें कर्वीर के पुण्य, रक्त चन्दन, गुग्गुल की धूप, पके कसेरू के फल तथा नैवेद्य सूर्य के लिए समर्पित करना चाहिए । हे भीम ! विधान द्वारा देव नामक सूर्य की पूजा सम्पन्न करने के उपरान्त उत्तम भक्ष्य पदार्थों द्वारा ब्राह्मणों की पूजा करना एवं इसका पारण बताया गया है बुद्धिमान् को चाहिए कि कसेरू के फल से ब्राह्मणों को तृप्त भोजन कराने के पञ्चात् स्वयं भी मौन होकर उसे भक्षण करे । ९-११। यद्यपि उसका इस प्रकार विधान बनाया गया है कि पंचमी में एक भक्त (एकाहार) षष्ठी में नक्तब्रत एवं सप्तमी में उपवास करके अष्टमी में पारण करना चाहिए । १२। तथापि षष्ठी युक्त ही (ब्रत आदि के लिए) इसका ग्रहण करना श्रेष्ठ कहा गया है, अष्टमी युक्त नहीं । क्योंकि उपवास के लिए षष्ठी तिथि ही निश्चित बतायी गयी है । १३

जिस प्रकार एकादशी के उपवास में शुद्ध एकादशी के प्राप्त न होने पर द्वादशी (युक्ता) में भी विद्वानों ने उपवास करना बताया है, उसी भाँति सप्तमी के उपवास में उसके शुद्ध रूप के प्रभाव होने पर षष्ठी (युक्ता) सप्तमी का ग्रहण करना बताया गया है ऐसा जानना चाहिए । १४। सरसों के उबटन लगाकर स्नान, मदार की दातून एवं गोमय के प्राशन करके इस भाँति कहे कि मेरे इन कर्मों द्वारा सूर्य प्रसन्न हों । १५। हे तात ! इसी प्रकार पहले पारण की यह विधि बतायी गई है । हे भीम द्वासरे पारण की भी विधि मैं बता रहा हूँ, मुनो ! । १६। इसमें मालती के पुष्य, मलयागिरिचंदन, नैवेद्य खीर तथा विजय धूप उनकी सेवा में अर्पित करना बताया गया है । १७। हे विभो ! ब्राह्मण भोजन तथा स्वयं भोजन करने के अनन्तर मेरे ऊपर रवि प्रसन्न हो ऐसा उनके नाम का कीर्तन करे । १८। हे वीर !

प्राशयेत्पञ्चग्रन्थं तु खदिरं दन्तधावने । द्वितीये पारणे द्वार विधिरुक्तो मयाधुना ॥१९
 तृतीयं पारणं चापि कथ्यमानं निबोध मे । अगस्तिकुमुरैत्र भास्करं पूजयेद्बुधः ॥२०
 सनालम्भनमत्रोक्तं श्रीशङ्कं कुसुमं तथा : सिंहको धूप उद्दिष्टो भानोः प्रीतिकरः परः ॥२१
 शाल्योदनं तु नैवेद्यं रसालोपरिसंयुतम् । ब्राह्मणानां तु दातव्यं भक्षयेत तथात्मना ॥२२
 कुशोदकप्राशनं तु बदर्या दन्तधावनम् । विकर्तनः प्रीयतां ऐ नाम देवस्य कीर्तयेत् ॥२३
 वर्षासु देवदेवस्य पूजा कार्या विधानतः । गन्धारुप्पोपहारैत्यु नानाप्रक्षणकैस्तथा ॥२४
 गोदानैभूमिदानैर्वा ब्राह्मणानां च तर्जैः । इत्थं सम्पूज्य देवेशं देदत्य पुरतः स्थितः ॥२५
 कारयेत्परसं पुण्यं धन्यं पुस्तकवाचनम् । वस्त्रैर्गन्धैस्तथा धूपैर्वचकं पूजयेत्ततः ॥२६
 देवस्य पुरतः स्थित्वा ततो मन्त्रमुदीरयेत् । देवदेव जगन्नाथ सर्वरोगार्तिनाशन ॥
 ग्रहेण लोकनयन विकर्तनं तमोऽपह ॥२७
 कृतेयं देवदेवेश जया नामेति सप्तमी । भया तव प्रसादेन धन्या पापहरा शिवा ॥२८
 अनेन विधिना वीर यः कुर्यात्सप्तमीमाम् । तस्य न्नानादिकं सर्वं द्वेच्छत्तुरुणं विभोः ॥२९
 कृत्वेमां सप्तमीं वीरं पुरुषः प्राप्नुयाद्यशः । धनं धान्यं सुवर्णं च पुत्रमार्यबलं श्रियम् ॥३०
 प्राप्येह देवशार्दूलं सूर्यलोकं स गच्छति । तस्मादेत्य पुनर्भूमौ राजराजो भवेद्बुधः ॥३१

इसमें एं चग्रव्य का प्राशन और द्वैर की दातून भी करनी चाहिए । इस भाँति इस दूसरे पारण के विधान को भी मैंने बता दिया है । १९। अब तीसरे पारण को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! इसके विधान में विद्वानों को अगस्त्य पूज्यों द्वारा सूर्य का पूजन करना बताया गया है । उबटन के लिए श्रीखंड चंदन और पूज्यों को नहले ही बता दिया गया है । एवं सिद्लक धूप, जो सूर्य को अत्यन्त प्रिय है अवश्य समर्पित करना चाहिए । २०-२१। आम के फलों समेत (साली) धान के चावल और नैवेद्य ब्राह्मणों को अपित करके स्वयं भी यही भोजन करें । २२। (इसमें) कुशोदक का प्राशन और द्वैर की लकड़ी की दातून करनी चाहिए । तथा विकर्तनं (सूर्य) मेरे ऊपर प्रसन्न हों ऐसा उनके नाम का कीर्तन भी करना चाहिए । २३। इसी भाँति वर्षा काल में देवाधि देव सूर्य की पूजा, विधान द्वारा जिसमें गंध एवं पुष्पोहार तथा भाँति-भाँति की दर्शनीय वस्तुएँ हों, संपादित करके और भूमि के दान एवं ब्राह्मण भोजन कराने के उपरान्त देव (सूर्य) के सम्मुख उपस्थित होकर पुस्तक का वाचनं (पाठ कथा) भी कराये जो अत्यन्त पुण्य रूप एवं प्रशंसनीय कार्य हैं । कथा वाचक ब्राह्मण को वस्त्रं गंधों एवं धूप द्वारा अवश्य पूजा करनी चाहिए । २४-२६। तदुपरान्त सूर्य के सम्मुख खड़े होकर इस भाँति निवेदन करे कि हे देवाधिदेव ! हे जगन्नाथ ! हे समस्त रोगों के नाशक, हे ग्रहेण, हे लोक तंत्र, तथा हे विकर्तन एवं तमोनाशक ! आप के अनुग्रह द्वारा मैंने इस जया नामक सप्तमी के व्रतानुष्ठान को जो प्रशंसनीय प्राप्त होकर प्रत्याणरूप है, समाप्त किया है । २७-२८। हे वीर ! इस प्रकार इस सप्तमी के व्रतानुष्ठान को जो इस विधान द्वारा समाप्त करते हैं, उनके द्वारा किये गये स्नान आदि सभी कर्म सौनुभे अधिक फल प्रदान करते हैं । २९। हे वीर ! इस भाँति विधान पूर्वक इस सप्तमी के व्रतानुष्ठान की समाप्ति करने से पुरुष को यश, धन, धान्य, सुवर्ण, पुत्र, आयु, बल और लक्ष्मी की प्राप्ति पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति होती है और पुनः यहाँ आने पर वह राजाओं का

इत्येषा कथिता वीर जया नामेति सप्तमी । कृता स्मृता श्रुता सा दु हेलिलोकप्रदायिनी ॥३२

इति श्रीभविष्य महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे जयानान्सप्तमीमाहात्म्यवर्गनं
नाम षण्वतितमोऽध्यायः ।९६।

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

जयन्तीकल्पवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

माघस्य शुक्लपक्षे तु सप्तमी या त्रिलोचन । जयन्ती नाम सा प्रोक्ता गुण्या चापहरा शिवा ॥१
स्तोपोष्या येन विधिना शृणु तं पार्वतीप्रिय । पारणानि तु चत्वारि कथितान्यत्र पण्डितैः ॥२
पञ्चम्यामेकभक्तं तु षष्ठ्यां नक्तं ब्रकीर्तितम् । उपवासस्तु सप्तम्यामष्टम्यां पारणं भवेत् ॥३
माघे च फालुने मासि तथा चैत्रे च मुव्रतः । ब्रकुण्ड्याणि रम्याणि कुड्कुमं च त्रिलेपनम् ॥४
नैवेद्यं मोदकांश्चात्र धूप आज्यमुदाहृतः । प्राशनं पञ्चमव्यं तु पवित्रीकरणं परम् ॥५
मोदकं भर्जयेद्विप्रान्यथाशक्त्या गणाधिप । शाल्योदनं च भूतेश दद्याच्छक्त्या द्विजेषु वै ॥६
इत्थं सम्पूजयेद्यस्तु भास्करं लोकपूजितम् । सर्वस्मिन्यारणे वीर सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥७

राजा (महाराज) होता है । ३०-३१। हे वीर ! इस प्रकार जया नामक सप्तमी के महत्व को जिसके आचरण स्मरण एवं कथा पारायण करने या सुनने से सूर्य लोक की प्राप्ति होती है, मैंने तुम्हें बता दिया । ३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्रह्मचर्य के सप्तमी कल्प में जया नाम सप्तमी माहात्म्य वर्णन

नामक द्यानबेंवाँ अध्याय समाप्त ।९६।

अध्याय ९७

जयन्ती भाहात्म्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे त्रिलोचन ! माघमास के शुक्लपक्ष की सप्तमी का, जो पुण्य रूप पाप का नाश करने वाली एवं कल्याण रूप है, जयन्ती नाम बताया गया है । १। हे पार्वती प्रिय ! जिस विधान द्वारा जिसका उपवास किया जाता है, उसे सुनो (मैं बता रहा हूँ) ! इसमें सप्तमी के बतानुष्ठान के पंडितों ने चार पारण बताये हैं । २। इसके अनुष्ठान-विधान में इस प्रकार बताया गया है कि पंचमी में एक भुक्त षष्ठी में नक्त ब्रत करना चाहिए सप्तमी में उपवास तथा अष्टमी में पारण करना चाहिए । ३। हे सुव्रत ! उसी प्रकार माघ, फालुन एवं चैत्र के मास में सुन्दर बक पुष्प, कुंकुम के लेपन, मोदक का नैवद्य एवं धी की धूप उन्हें अपित करें । ४। अत्यन्त पवित्र करके पंच गव्य का प्राशन करना चाहिए । ५। हे गणाधिप ! हे भूतेश ! अनन्तर यथाशक्ति ब्राह्मणों को मोदक समेत भात का भोजन भी अपित करें । ६। हे वीर ! इस प्रकार जो लोकपूज्य भगवान् भास्कर की उपासना करता है, उसे सभी पारणों में अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है । ७

द्वितीये पारणे पूज्य राजसूयफलं लभेत् । वैशाखाषाढ़ज्येष्ठेषु श्रावणे नासि सुव्रत ॥
पूजार्थमथ भानो वै शतपत्राणि सुक्रत ॥१८
श्वेतं च चन्दनं भीम धूपो गुग्गुलुरुच्यते । नैवेद्यं गुडपूपास्तु प्राशनं गोमयस्य तु !!
भोजने चापि विघ्नाणं गूडपूपाः प्रकीर्तिताः ॥१९
द्वितीयमिदमाख्यातं पारणं पापनाशनम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलद भास्करप्रियम् ॥२०
तृतीय शृणु देवस्य पूजार्थं भास्करस्य तु । नासि भाडपदे वीर तथा चाश्वयुजे विभो ॥२१
कार्त्तिके चापि भासि तु रक्तचन्दनमादिशेषू । मातृतीकुसुमतीह धूपो दिजय उच्च्यते ॥२२
नैवेद्यं धृतपूपास्तु भोजनं च द्विजन्मनाम् । कुशोदकप्राशनं तु कापशुद्धिकरं परम् ॥२३
तृतीयमपि चाख्यातं पारणं पापनाशनम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलदं भास्करप्रियम् ॥२४
चतुर्थमपि ते द्वच्चिम पारणं पापनाशनम् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलदं भास्करप्रियम् ॥२५
तदद्य देवशार्दूल पारणं श्रेष्ठसे शृणु । मासि मार्गशिरे वीर धौषे नासि तथा शिव ॥२६
माघे च देवशार्दूल शृणु पुण्यान्यशेषतः । करवीराणि रक्तानि तथा रक्तं च चन्दनम् ॥२७
अमृताख्यस्तथा धूपो नैवेद्यं पायसं परम् । आर्जनीयं तथा तक्रं प्राशनं परमं स्मृतम् ॥२८
आगरं चन्दनं मुस्तं सिल्हकं अशूषणं तथा । समभागैस्तु कर्तव्यमिदं चामृतमुच्यते ॥२९

और दूसरे पारण में राजसूय के फल की प्राप्ति होती है । हे पूज्य सुव्रत ! इसी भाँति वैशाख, ज्येष्ठ, आपाढ तथा सावन के मासों में सूर्य की पूजा के निमित्त कमल पुष्प, श्वेत चन्दन, गुग्गुल की धूप और नैवेद्य में गुड़ के मालपूपे उन्हें अर्पित करते हुए गोमय प्राशन करता बताया गया है । उसी प्रकार ब्राह्मणों को तृप्त भोजन कराने के लिए प्रधान मालपूआ ही कहा गया है । ८-९। इस प्रकार इस दूसरे पारण के विधान को जो पाप नाशक सूर्य प्रिय एवं राजसूय और अश्वमेध के फल प्रदान करता है मैंने तुम्हें बता दिया । १०। पुनः अब सूर्य की पूजा के लिए तीसरे पारण को मुनो ! बता रहा हूँ । हे विभो ! भादो, आश्विन तथा कार्तिक के मास में रक्त चंदन मालती पुष्प एवं विजय के अर्पण करने के द्वारा पूजा करनी चाहिए उपरान्त नैवेद्य और धी पूर्ण मालपूआ को अर्पित करके वही ब्राह्मणों को भी भोजन कराये । अनुष्ठान में इसके शरीर शुद्धि के लिए कुशोदक का उत्तम प्राशन करना अत्यन्त आवश्यक होता है । ११-१३। इस प्रकार यह तीसरा पारण भी जो पापनाशक एवं राजसूय तथा अश्वमेध के फल प्रदान करता है, बता दिया । १४

उसी भाँति चौथे पारण को भी जो पापनाशक राजसूय और अश्वमेध के फल प्रदान करने वाला एवं सूर्य प्रिय हैं, मैं तुम्हें बता रहा हूँ । १५। हे देव शार्दूल ! अतः आत्म कल्याण के लिए इसे विशेष ध्यान से सुनो ! हे वीर शिव मार्गशीर्ष (अगहन) पौष और माघ मास में प्राप्त होने वाले समस्त पुष्पों को भी (बता रहा हूँ) सुनो ! इस अनुष्ठान-विधि में करवीर, रक्तचंदन, अमृत धूप, नैवेद्य, खीर एवं तक्र (मट्ठे) का उत्तम प्राशन करना बताया गया है । १६-१८। जिससे सूर्य देव परम मुदित होते हैं। अगुरु, चन्दन, (मुस्ता, सिल्हक तथा अशूषण सोठ मिर्च एवं पीपरी) इन्हीं उपरोक्त सभी वस्तुओं के समभाग को एकत्र करने

नामानि कथितान्यत्र भास्करस्य महात्मनः । दिव्यभानुस्तथा भानुरादित्यो भास्करस्तथा ॥२०
प्रीयतामिति सर्वस्मिन्पारणे विधिमादिशेत् । अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्पूजां विभावसोः ॥२१
तस्यां तिथौ देवदेव स याति परस्यं पदम् । कृत्वैवं सत्तमीं भीमं ऋषकामानवास्रुते ॥२२
पुत्रार्थीं लभते पुश्टान्धनार्थीं लभते धनम् । सरोगो मुच्यते रोगैः शुभमाप्नोति पुष्कलम् ॥२३
पूर्णे संवत्सरे भीमं कार्या पूज्ञ दिवाकरे । गन्धूष्णोपहारैस्तु ब्राह्मणानां च तर्पनैः ॥

नानाविधैः प्रेक्षणकैः पूजया वाचकस्य तु ॥२४

इत्थं सम्पूज्य देवेशं ब्राह्मणांश्चाभिष्पूज्य च । वाचकं च द्विजं पूज्य इदं वाक्यमुदीरयेत् ॥२५
धर्मकार्येषु मे देव अर्थकार्येषु तित्यशः । कामकार्येषु सर्वेषु जयो भवतु सर्वदा ॥२६
ततो विसर्जयेद्विप्रान्वाचकं तु द्विजोत्तमम् । इत्थं कुर्यादिवं यस्तु स जयं प्राप्नुयात्कलम् ॥

सर्वपापनिशुद्धात्मा सूर्यलोकं स गच्छति ॥२७

विमानवरमारुदः कञ्जजोद्भवमुत्तमम् । तेजसा रविसंकाशः प्रभया पताऽप्यमः ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मो पर्वणि सप्तमीकलरे जयन्तीकल्पवर्णनं

नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः । १७।

को अमृत धूप कहा गया है । १९। पश्चात् महात्मा सूर्य के चित्रभानु, भानु, आदित्य तथा भास्कर नामों के उच्चारण पूर्वक आप मुझ पर सदैव प्रसन्न रहें ऐसी अर्थर्थता सभी पारणों में करनी चाहिए । हे देवाधिदेव ! इस प्रकार विद्यान् पूर्वक जो इस तिथि में सूर्य की पूजा करता है, उसे उत्तम पद की प्राप्ति होती है । हे भीम ! इस प्रकार सप्तमी के व्रत करने से सभी कामनाएं सफल होती हैं । २०-२१। इस भाँति पुत्रार्थी पुत्र, धनेच्छुक धन एवं रोगी रोगमुक्ति समेत अति कल्याण की प्राप्ति करता है । २३

हे भीम ! इस भाँति वर्ष की समाप्ति तक गन्ध एवं पूष्णोहार द्वारा सूर्य की पूजा करते हुए भाँति भाँति के उत्तम शक्य पदार्थों के सुतृप्त ब्राह्मण भोजन कराये तथा भाँति-भाँति की दर्शनीय वस्तुएँ अपित करते हुए वाचक की भी अवश्य पूजा करे । २४। इस प्रकार देवेश (सूर्य) ब्राह्मणों तथा वाचक ब्राह्मण की पूजा सुसम्पन्न करके विनम्र होकर ऐसी अर्थर्थता करे । २५। हे देव ! आप के अनुग्रह से धार्मिक, आर्थिक कार्यों एवं कामनाओं की सफलता में सदैव मेरी विजय होती रहे । २६। हे द्विजयेष्ठ ! पश्चात् ब्राह्मणों समेत वाचक ब्राह्मण के विसर्जन करे । इस प्रकार जो सप्तमी के अनुष्ठान को सुसम्पन्न (सप्तमी विद्यान) करता है उसे ऐसे सुन्दर विमान पर जो लक्ष्मीसंपत्र रवि के समान तेज एवं उन्हीं की भाँति प्रभा पूर्ण हो बैठकर जप फल की प्राप्ति पूर्वक समस्त पापों से मुक्ति एवं सूर्य लोक की प्राप्ति करता है । २७-२८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में जयन्ती कल्प वर्णन
नामक सत्तानबेंवा अध्याय समाप्त । १७।

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

अपराजितावर्णनम्

ब्रह्मोवाच

मासि भाद्रपदे शुद्धला सप्तमी या गणाधिप । अपराजितेति विख्याता महापातकनाशिनी ॥१
 चतुर्थ्यमिकभूतं तु पञ्चम्यां नक्तमादिशेत् ; उपवासं तथा षष्ठ्यं सप्तम्यां पारणं स्मृतम् ॥२।
 पारणान्यत्र चत्वारि कथितानि मनीषिभिः । पुष्पाणि करवीरस्य तथा रक्तं च चन्दनम् ॥३
 धूपक्रिया गुग्गुलेन नैवेद्यं गुडपूपकाः । भाद्रपदादिमासेषु विधरेष प्रकीर्तिः ॥४
 श्वेतानि भीमपुष्पाणि तथा श्वेतं च चन्दनम् । धूपमाज्यमिहाल्यातं नैवेद्यं पादसं रवे: ॥५
 मार्गशीर्षादिमासेषु विधरेष प्रकीर्तिः । ततोऽगस्त्यस्य पुष्पाणि कुट्कुमं च विलेपनम् ॥६
 धूपार्थं सिङ्गकं प्रोक्तमय दा रविवर्णकम् । शालयोदनं च नैवेद्यं सरसं फालगुनादिषु ॥७
 रक्तोत्पलानि भूतेश सागुरं चन्दनं तथा । अनन्तो धूप उद्दिष्टो नैवेद्यं खण्डपूपकाः ॥८
 श्रीखण्डं ग्रन्थसहितमगुरुः सिङ्गकं तथा । मुस्ता तथेन्द्रं भूतेश शर्करा गृह्णते त्र्यहम् ॥९
 इत्येष धूपोऽनन्तस्तु कथितो देवसत्तम । ज्येष्ठादिमासेषु तथा विधिरुक्तो मनीषिभिः ॥१०

अध्याय ९८

अपराजिता माहात्म्य का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे गणाधिप ! भाद्रो मास की शुक्ल सप्तमी जो महान् पातकों का नाश करती है, अपराजिता नाम से विराजमान है ॥१। उसके व्रतानुष्ठान में चतुर्थी में एक भुक्त, पंचमी में नक्त व्रत, षष्ठी में उपवास करके सप्तमी में पारणं करना इस प्रकार का विधान बताया गया है ॥२। विद्वानों ने इस के अनुष्ठान करने में चार पारण बताये हैं । पुनः करवीर के पुष्प, रक्त चंदन, गुग्गुल की धूप, नैवेद्य, गुड़ का मालपूआ अर्पित करते हुए भाद्रों आदि मासों में भी इन्हीं वस्तुओं को अर्पित करे ॥३-४। हे भीम इस प्रकार श्वेत पुष्प, इवेत चंदन, धी पूर्ण धूप, खीर का नैवेद्य सूर्य के लिए समर्पित करना मार्गशीर्ष आदि मासों में बताया गया है जिसे दूसरा पारण कहते हैं । इस भाँति अगस्त्य के पुष्प, कुंकुम का लेपन, सिङ्गकी अथवा लाल वर्ण की धूप तथा चावल के भात समेत मधुर नैवेद्य इन्हें सूर्य के लिए फालगुन आदि मासों के व्रत-विधान में सादर समर्पित करना बताया गया है जिसे तीसरे पारण का विधान बताया गया है ॥५-७। हे भूतेश ! लाल कमल, अगुरु, चन्दन, अनंत नामक धूप, खांड के मालपूए का नैवेद्य चौथे पारण में जो ज्येष्ठ आदिमासों के व्रतानुष्ठान में सुसम्पन्न किया जाता है, अर्पित करना चाहिए । श्रीखण्ड गांठ समेत अगुरु, सिङ्गक मुस्ता (मोथा) इन्द्र और शक्कर इन्हीं पदार्थों की वनी दुई धूप को अनन्त धूप कहा जाता है जिसकी तैयारी में तीन दिन लगते हैं ॥८-१०

शृणु नामानि देवस्य प्राशनानि च सुब्रत । सुधांशुरर्यमा चैव सविता त्रिपुरान्तकः ॥११
 पारगेष्वेव सर्वेषु प्रीयतामिति कीर्तयेत् । गोमूत्रं पञ्चगव्यं तु धृतं चोर्जं पयो दधि ॥१२
 यस्त्वेतां सप्तमीं कुर्यादनेन विधिना नरः । अपराजितो भवेत्सोऽसौ सदा शत्रुभिराहवे ॥१३
 जित्वा शत्रुं लभेतापि त्रिवर्गं नात्र संशयः । त्रिवर्गस्थसप्राप्य स्वर्भानोः पुरमश्नुते ॥१४
 ततः पूर्णेषु मासेषु पूजयेच्छक्तिः खगम् । गन्धपुष्पोपहारैस्तु पुराणश्रवणेन च ॥१५
 अश्वदानेन च विभोर्लह्मूषणानां च तर्पणैः । वानकं पूजयित्वा च भस्करस्य प्रियं सदा ॥१६
 भास्कराय ध्वजान्दद्यान्नारत्नविभूषितान् । य इत्यं कुरुते वीरं सप्तमीं यत्नतः सदा ॥१७
 स पराजित्य वै शत्रुं धाति हंससलोकताम् ॥१८
 शुक्लाश्वोद्भवयानेन आपगेन पताकिना । आपगाधिपतंकाश आपगानुचरो भवेत् ॥१९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे अपराजितावर्णनं
 नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ।९८:

हे सुब्रत ! अब सूर्य के नाम एवं प्राशन को बता रहा हूँ । सुनो ! सुधांशु, अर्यमा, सविता, एवं त्रिपुरान्तक, सूर्य मुख पर सदैव प्रसन्न रहें इस भाँति की विनम्र प्रार्थना सभी पारणों में करनी चाहिए । गाय के मूत्र, गरम दूध (तुरन्त का दुहा), दही, धी, तथा गोमय मिलाकर पंचगव्य कहा जाता है । इस व्रतानुष्ठान में इसी का प्राशन करना बताया गया है । ११-१२। इस प्रकार जो पुरुष इस सप्तमी के व्रत-विधान को सुसम्पन्न करता है, वह युद्ध स्थल में शत्रुओं द्वारा सदैव अपराजित ही रहता है । १३। पुनः शत्रु विजय होने के पश्चात् त्रिवर्ग (धर्म), अर्थ एवं काम की भी सफलता उसे निश्चय प्राप्त होती है और इसके अनन्तर उसे सूर्य लोक भी प्राप्त होता है । १४

इस प्रकार व्रतानुष्ठान करते हुए पूर्ण वर्ष की समाप्तिमें शक्त्यनुसार सूर्य की पूजा गंध पुष्पोपहार तथा पुराण श्रवण द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए । १५। हे विभो ! पुनः उसी प्रकार अश्वदान, ब्राह्मण भोजन तथा सूर्य प्रिय उस वाचक की पूजा करने के उपरांत भाँति-भाँति के रत्नों से विभूषित ध्वजाएँ सूर्य के लिए सादर समर्पित करनी चाहिए । हे वीर ! इस प्रकार जो सदैव सप्तमी के द्रव विधान अनुष्ठान करने में प्रयत्नशील रहता है, उसे शत्रु विजय की प्राप्ति पूर्वक सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति होती है । १६-१८। ऐसा व्यक्ति श्वेत रंग के घोड़े जुते हुए सवारी पर बैठकर जिसमें श्वेत वर्ण की पताकाएँ लगी हों, वर्ण की भाँति ध्वल कान्ति प्राप्त कर वर्ण का अनुचर होता है । १९

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में अपराजिता वर्णन
 नामक अट्टानबेंवाँ अध्याय समाप्त ।९८।

अथेकोनशततमोऽध्यायः

महाजयाकल्पवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तस्यां यदा संक्नते इवः । महाजया तदा सा वै सप्तमी भास्करप्रिया ॥१
स्नानं दानं ज्ञानं होमः पितृदेवाभिपूजनम् । सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तं भास्करस्य वचो यदा ॥२
यस्तस्यां मानवो भक्त्या धृतेन ज्ञापयेद्रविम् । सोऽश्वमेधफलं प्राप्य स्वग्नेलोकमाप्नुयात् ॥३
पयसा ज्ञापयेद्यस्तु भास्करं भक्तिमान्ब्रः । विमुक्तः सर्वदपेभ्यो याति तूर्यसलोकताम् ॥४
कार्पूरेण विमानेन किदिकणीजालमालिनोः । तेजसा हारिसंकाशः कान्त्या सूर्यसमस्तथा ॥५
स्थित्वा तत्र चिरं कालं राजा भवति चाव्यजसा । महाजयैषा दधिता सप्तमी त्रिपुरान्तक ॥६
दामुपोष्य नरो भक्त्या भवते सूर्यलोकाः । ततो याति परं ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचति ॥७

इति श्रीभविष्ये प्रहापुराणे ब्राह्म पर्वाणि सप्तमी कल्पे महाजयाकल्पवर्णनं
नामैकोनशततमोऽध्यायः । १९।

अध्याय ९९

महाजया कल्प का वर्णन

ब्रह्मा बोले—शुक्ल पक्ष की सातमी में (सूर्य की) संक्रान्ति प्राप्त होने पर उस सूर्यप्रिया सप्तमी को 'महाजया' नाम की बताया गया है । १। इसी लिए सूर्य के कथनानुसार उसमें किये गये स्नान, दान, जप, हवन एवं पितरों तथा देवताओं के पूजन आदि ये सभी कोटि गुणे अधिक फल प्रदान करते हैं । २। जो मनुष्य भक्ति पूर्वक इस तिथि में घी द्वारा सूर्य को स्नान कराता है, उसे अश्वमेध के फल की प्राप्ति पूर्वक स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है । ३। जो कोई भक्त मनुष्य दूध द्वारा सूर्य को स्नान कराता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य के सालोक्य मोक्ष की प्राप्ति करता है । ४। वहाँ कपूर निर्मित विमान पर जिसमें छोटी छोटी घंटियों का जाल सा लगा रहता है, बैठकर सूर्य की भाँति तेजस्वी एवं कान्तिमान् होकर चिरकाल तक वहाँ निवास करता है । पश्चात् यहाँ आकर तेजस्वी राजा होता है । हे त्रिपुरान्तक इस महाजया नामक सप्तमी को विधान द्वारा सुसम्पन्न करने पर मनुष्य को सूर्य लोक की प्राप्ति पूर्वक उस ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है जहाँ पहुँच कर किसी भाँति से चिंतित नहीं होना पड़ता है । ५-७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में महाजया कल्पवर्णन नामक
निन्यानबेंवाँ अध्याय समाप्त । १९।

अथ शततमोऽध्यायः

नन्दानामसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

या तु मार्गशिरे मासि शुक्लपक्षे तु सप्तमी । नन्दा सा कथिता वीर सर्वानन्दकरी शुभा ॥१
 पञ्चम्यामेकभक्तं तु पष्ठचां नक्तं प्रकीर्तितम् । सप्तम्यामुपवासं तु कीर्तण्टि मनीषिणः ॥२
 पारणान्यत्र वै त्रीणि शंसन्तीह मनीषिणः । मालतीकुसुमानीह सुगन्धं चन्दनं तथा ॥३
 कर्पूरागः सम्भूष्मं धूपं चात्र विनिर्दिशेत् । दध्योदनं सखणं च नैवेद्यं भास्करप्रियम् ॥४
 तमेव दद्याद्ब्रिप्रेभ्योऽमनीयाच्च तदनु स्ययम् । धूपार्थं भास्करस्यैष प्रथमे पारणे विदिः ॥५
 पलाशपुष्पाणि विभो धूपो यः शश्य एव च । कर्पूरं चन्दनं कुष्ठमगुहः सिंहकं तथा ॥६
 स्त्रियं वृषणं भीमं कुंकुमं गृजनं तथा । हरीतकी तथा भीम एष पक्षक उच्यते ॥७
 धूपः प्रबोध आदिष्टो नैवेद्यं खण्डमण्डकाः । कृष्णाग्रहः सिंहं बालकं वृषणं तथा ॥८
 चन्दनं तगरो मुस्ता ब्रबोधशर्करान्विता । भोजयेद्ब्राह्मणांश्चापि खण्डसार्वीर्णः, धूप ॥९
 निष्पत्रं तु सम्प्राश्य ततो भुञ्जीत बाग्यतः ॥१९

अध्याय १००

नन्दा नामक सप्तमी का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे वीर ! मार्गशीर (अग्रहन) मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को सभी भाँति के आनन्द एवं कल्याण दायिनी होने के नाते 'नन्दा सप्तमी' कहा जाता है । १। इसके ब्रत विधान में पंचमी में एक भुक्त (एकाहार), पष्ठी में नक्त द्रव (रात में भोजन) और सप्तमी में उपवास करना विद्वानों ने बताया है । २। एवं विद्वानों ने इसमें तीन पारण करने के विधान भी बताये हैं । इसके अनुष्ठान में मालती पुष्प, सुगन्ध चन्दन, कपूर, अगुह मिथित धूप (सूर्य के लिए) सादर समर्पित करनी चाहिए । पश्चात् दही भात और खांड समेत नैवेद्य जो सूर्य को अत्यन्त प्रिय है, उन्हें सादर समर्पित कर वहीं ब्राह्मणों को भी तृप्त भोजन कराने के उपरांत स्वयं भी भोजन करना चाहिए । इस प्रकार सूर्य के प्रथम पारण का यह विधान बताया गया है । ३-५

हे विभो (दूसरे पारण में) पलाश के पुष्प शक्त्यनुसार प्राप्त यधक धूप, कपूर, चन्दन, कूट, गुग्गुल, सिंहंक, ग्रन्थिपर्णी, कस्तूरी, गृजन तथा हरीतकी को जो (हरें) से मिलकर बनता है, सादर समर्पित करना चाहिए । ६-७

उपरान्त खांड द्वारा बनाये गये नैवेद्य तथा प्रबोध नामक धूप, जो काले, अगुह, सितकंज (सिद्धक) बाला कस्तूरी, चन्दन, तगर एवं मुस्ता (मोथा) से मिल कर बनता है सादर समर्पित करना चाहिए । हे गणाधिप खांड मिथित मधुर भोजन ब्राह्मणों को अर्पित करने के पश्चात् स्वयं भी मौन

पारणस्य द्वितीयस्य विधिरेष प्रकीर्तिः

॥१०

नीलोत्पलानि शुभ्राणि धूपं गौगुलमाहरेत् । नैवेद्यं पायसं देयं^१ प्रीतये भास्करस्य त्रु ॥११

विलेपनं चन्दनं तु प्राशने विधिरच्यते । द्वितीयस्यापि ते वीर कथितो विधिरक्तमः ॥१२

शृणु नामानि देवस्य पावनानि नृजां सदा । दिष्णर्भगास्तथा धर्मा प्रीयतामुद्गरेच्च वै ॥१३

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात्प्रयत्नमानसः । सकामानिह स्मराप्य नन्दते शाखती समाः ॥१४

ततः सूर्यसदो गत्वा नन्दते नन्दवर्धन् । एषा तु नन्दजननी तत्राख्याता यथा शिव ॥१५

यामुपोष्य ततो भुक्ष्या नन्दते हंसमाप्य वै ॥१६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे दर्शणे सप्तमीकल्पे नन्दानामसप्तमीवर्णनं

नाम शततमोऽध्यायः । १००।

अथैकाधिकशततमोऽध्यायः

भद्राकल्पवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां नक्षत्रं सवितुर्भवेत् । यदा प्रथमता चैव तदा वै भद्रतां व्रजेत् ॥१

होकर भोजन करें इसमें नीम के फल के पत्ते का प्राशन करना बताया गया है। इस भाँति पारण का यह विधान समाप्त किया गया है । ८-१०

इसी भाँति स्वच्छनीलकमल, गुगुल की धूप, स्त्रीर का नैवेद्य लेपन के लिए चन्दन, ये सूर्य के लिए अत्यन्त प्रिय वस्तुएँ हैं अतः उन्हें अवश्य समर्पित करना चाहिए । हे वीर ! इस रीति से तीसरे पारण का भी विधान बता दिया गया है । १-१२

अब सूर्य के उन नामों को, जो मनुष्यों के लिए सदैव पवित्र कारक हैं बता रहा हूँ, सुनो ! विष्णु, एवं धाता सदैव प्रसन्न रहें इस प्रकार नामोच्चारण पूर्वक अम्यर्थन करे । १३। हे नन्दवर्धन ! इस प्रकार प्रयत्न पूर्वक जो इस विधान द्वारा सप्तमी व्रत के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करता है वह कामनाओं की सफलता पूर्वक अनेकों वर्ष आनन्द मग्न जीवन व्यतीत करता है । १४। पश्चात् वह सूर्य लोक में जाकर आनन्द का अनुभव भी प्राप्त करता है । हे शिव ! इस भाँति आनन्द प्रदान करने वाली इस (सप्तमी) को जिसके अनुष्ठान द्वारा मनुष्य सूर्य की प्राप्ति करके आनंदित होता है, मैंने तुम्हें सुना दिया । १५-१६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में नंदा नाम सप्तमी वर्णन

नामक सौर्वां अध्याय समाप्त । १००।

अध्याय १०१

भद्रा कल्प का वर्णन

ब्रह्मा बोले—शुक्लपक्ष की सप्तमी में हस्त नक्षत्र के समागम से उस सप्तमी का भद्रा नाम बताया

न्नपनं तत्र देवस्य घृतेन कथितं बुधैः । क्षीरेण च तथा वीर पुनर्रक्षुरसेन च ॥२
 स्नापयित्वा तु देवेशं चन्दनेन विलेपयेत् । दद्ध्वा तु गुगुलं तत्य दद्याद्द्रुहं तथाग्रतः ॥३
 गोद्यमन्दूर्णं निवपन्विमलं शशिसन्निभम् । सवज्ञं सगुडं चैव रक्तपुण्योपशोभितम् ॥४
 यदस्य शृङ्गमीशानं तत्र वै मौक्तिकं न्यसेत् । यदाद्देयं तत्र माणिक्यं न्यसेद्वा लोहितं मणिश्च ॥५
 नैऋत्ये प्रकरं दद्यादादच्यं पद्मरागिम् । गाढ्गेयमन्ततस्तस्य स्वशक्त्या विन्यसेद्बुधः ॥६
 ननुर्थ्यमिक्तभक्तं तु पञ्चम्यां नक्तमादिरेत् । षष्ठ्याम्याचितं प्रोक्तं उपवासो हृतः परः ॥७
 पाषण्डिनो विकर्मस्थान्बैडालव्रतिकान्त्यजान् । सप्तम्यां पालयेत्प्राज्ञो दिवा स्वप्नं विवर्जयेत् ॥८
 अनेन निधिना यस्तु कुर्याद्बै भद्रसप्तमीम् । तस्मै भद्राणि सर्वाणि यच्छन्ति श्रभवः सदा ॥९
 भद्रं ददाति यस्त्वस्यां भद्रस्तस्य सुतो भवेत् । भद्रमासाद्य भूतेश सदा भद्रेण तिष्ठति ॥१०

दिष्टिरुदाच

कोऽयं भद्र इति प्रोक्तः कथं कार्यं प्रभूषणम् । इत्वा च किं फलं विद्याद्विधिना केन दीयते ॥११

ब्रह्मोवाच

व्योम भद्रमिति प्रोक्तं देवचिह्नमनूपमम् । यद्वत्वेह नरः सूर्यं मुच्यते सर्वकिल्बिष्णः ॥१२

गया है (कल्याण प्रदान करने वालों में) वह प्रथम भी है । १। हे वीर ! विद्वानों ने उसके अनुष्ठान में सूर्य के स्नान के लिए भी बताया है तथा दूध और ईख के रस से भी स्नान कराने का विधान है । २। पुनः सूर्य का स्नान कराकर उन्हें चन्दन का लेप अपित करते हुए गुगुल की धूप भी समर्पित करना चाहिए । अनन्तर गेहूँ के चूर्ण आटे द्वारा उनकी विमल भद्र मूर्ति बनाकर जो चन्दन की भाँति धवल कान्तिपूर्ण हो, उसे वज्र पुष्प गुड एवं रक्तवर्ण के पुष्पों से मुशोभित कर पुनः उस मूर्ति में चार सींगों की रचना करके उसके ईशान कोण वाली सींग में मोती, आग्नेय वाले में हीरा अथवा लाल रंग की मणि, नैऋत्य वाले में मकर और वायव्य वाले में पद्मराग मणि सुसञ्जित कर शेष अंगों को भी सुवर्ण से विभूषित करे । ३-६। तथा चतुर्थी में एक भक्त, पञ्चमी में नक्त व्रत पष्ठी में अयाचित (अन्न का) भोजन करने के पश्चात् सप्तमी में उपवास किया जाता है । विद्वानों को चाहिए कि (उस दिन) पालण्डी, दुराचारी और विडाल वृत्तिक (विलैया भक्ति करने वाले) के त्यागपूर्वक दिन में शयन न करें इस प्रकार इस विधान द्वारा जो इस सप्तमी के ब्रतानुष्ठान की समर्पित करता है उसे देव (सूर्य) सदैव कल्याण प्रदान करते हैं । ७-९। तथा जो इसमें उनकी भद्र मूर्ति का निर्माण कर अपित करता है उसे भद्र (कल्याणप्रद) पुत्र की भी प्राप्ति होती है । हे भूतेश ! इस भाँति वह भद्र की प्राप्ति कर सदैव भद्र रूप ही रहता है । १०

दिष्टि ने कहा—जिस भद्र को आपने बताया है वह कौन भद्र है, उसे अलंकृत करने के लिए कौन आभूषण होने चाहिए एवं किस विधान द्वारा कौन फल अपित करना चाहिए ? बताने की कृपा करें । ११

ब्रह्मा बोले—देवताओं के अनुपम लक्षणों से विभूषित होने के नाते उसे 'व्योम भद्र' कहा गया है एवं उसी सूर्य की प्रतिभा का ध्यान कर मनुष्य सभी पातकों से मुक्त हो जाते हैं । १२। चावल के चूर्ण

शालिदिष्टमयं कार्यं चतुष्कोणेनमनूपमम् । गव्येन सर्पिषा युक्तं खण्डशक्तरयान्वितम् ॥१३
 चातुर्जातकपूर्णं तु द्राक्षाभिश्च विशेषतः । नालिकेरफलैश्चैव सुगन्धं च गणाधिष ॥१४
 मध्येन्द्रनीलं भद्रस्य न्यसेत्प्राज्ञः स्वशक्तिः । पुष्परागं मरकतं पद्मरागं तथैव च ॥१५
 अनौपम्यं च भाणिक्यं क्रमात्कोणेषु विन्यसेत् । वाचकायाथ वा दद्यादय वा भोजके स्वप्नम् ॥१६
 अनेन विधिना यस्तु कृत्वा भद्रं प्रयच्छाति । स हि भद्राणि सम्प्राप्य गच्छेद्गोपतिमन्दिरम् ॥१७
 ब्रह्मलोकं ततो गच्छेद्यःस्तु रुद्धो न संशयः । तेजसा गोजसंकाशः कांत्यः गोजसमर्तत्वा ॥१८
 प्रभया गोपतेस्तुल्यं ऊर्जसा गोपरस्य च । तस्मादेत्य पुनर्भूमौ गोपतिः स्यान्न संशयः ॥
 प्रसादाद्गोपेवार्ं सर्वज्ञाधिपपूजितः ॥१९

इत्येषा कथिता भीम भद्रा नामेति सप्तमी । द्यामुपोष्य नरो भीम ब्रह्मलोकमदाम्बुद्यात् ॥२०
 भृष्णवन्ति ये पठन्तीहु कुर्वन्ति च गणाधिष । ते सर्वे भद्रमासाद्य यान्ति तद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥२१

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्तवान्पुरा ब्रह्मा दिष्टिने सप्तमीव्रतम् । मयाप्युक्तं त्वं विभो द्यथाज्ञातं द्यथाश्रुतम् ॥२२
 गृहीत्वा सप्तमीकल्पं मानवो यस्तु भूतले । त्यजेत्कामाद्याद्वार्णीप स ज्ञेयः पतितोऽबुधः ॥२३
 तस्माद्वारय तद्वीर न त्याज्यं सप्तमीव्रतम् । त्यजमानो भवेद्वीर आरुदपतितो नरः ॥२४

(आटे) द्वारा चार कोने वाली सुन्दर भद्र मूर्ति जिसमें गाय के धी, सफेद शक्कर चातुर्जातिक (दाल चीनी, इलायची, तेज एवं नागकेसर) द्राक्षा (मुनक्का) तथा नारियल के फल लगे हों, सुगंध पूर्ण बनाये उस भद्र मूर्ति के मध्य भाग में अपनी शक्ति के अनुसार इन्द्रनील मणि पुष्प राग, मरकत, पद्मराग तथा हीरे को क्रमशः कोने की सीगों में सुसज्जित करके पश्चात् उसे वाचक अथवा भोजक ब्राह्मण को सादर अपित कर दें । १३-१६। इस प्रकार जो भद्र की रचना करके उसे अपित करता है वह कल्याणों की प्राप्ति पूर्वक सूर्य के मन्दिर (लोक) की प्राप्ति करता है । १७। तदुपरात सूर्य की भाँति, कांति, प्रभा एवं बल प्राप्त करते हुए वह सवारी पर बैठकर ब्रह्म लोक में निश्चय सुखानुभव करता है । हे वीर ! पुनः कभी यहां आकर सूर्य के अनुग्रह वश विद्वान् राजाओं का पूज्य पृथिवी पति (राजा) होता है । हे भीम ! इस प्रकार मैंने भद्रा नामक सप्तमी की व्याख्या सुना दी जिसमें उपवास आदि रहकर मनुष्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है । १८-२०

हे गणाधिष ! इस भाँति इसके सुनने, पढ़ने एवं अनुष्ठान करने वाले लोग भद्र की प्राप्ति पूर्वक शाश्वत (अविनाशी) ब्रह्म की प्राप्ति करते हैं । २१

सुमन्तु ने कहा—इस प्रकार ब्रह्मा ने सप्तमी व्रत के विधान को दिङ्गी से बताया था । हे विभो ! मैंने भी जिस भाँति सुनकर उसकी जानकारी रखता था तुम्हें बता दिया । २२। इस भाँति इस पृथ्वी में जो मनुष्य काम एवं भयवश सप्तमी कल्प का त्याग करते हैं उन्हें पतित एवं अज्ञानी बताया गया है । २३। हे वीर ! इसलिए इस सप्तमी व्रत के अनुष्ठान को सदैव करना चाहिए, कभी भी उसका त्याग न होने पाये क्योंकि त्याग करने से मनुष्य महान् पतित हो जाता है । २४। इस भाँति जो कोई सप्तमी कल्प के विधानों

श्रावयेदस्तु भक्त्या च सप्तमीकल्पप्रादितः । सोऽश्वमेधफलं प्राप्य ततो याति भरं पदम् ॥२५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे भद्राकल्पवर्णनं
नामैकाधिकशततमोऽध्यायः । १०१।

अथ द्वचिद्धिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रपूजाविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एवं पा देवदेवस्य सप्तमी भस्करस्य तु । यथा बहूनां भायाणां भर्तुः काचित्प्रिया भवेत् ॥१
सर्वाश्रि तिथयो ह्यस्य प्रियाः सूर्यस्य भारत । तस्मादस्यां नरेणह पूजनीयो दिताकरः ॥२

शतानीक उवाच

तिथीनामधिष्ठिष्ठः सूर्यः सर्वासां कथितो यदि । सप्तम्यत्मेव यागोऽस्य किमर्थं कियते दुधैः ॥३

सुमन्तुरुवाच

इदमर्थं पुरा पृष्ठः सुरज्येष्ठो दिवि स्थितः । विष्णुना कुरुशार्दूल तेनोक्तं हरये यथा ॥४

तथा ते सर्वमात्यास्ये शृणुष्वैकमना विभो ॥४

सुखासीनं सुरज्येष्ठं पुरा देवं पितामहम् । प्रणम्य शिरसा देव कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥५

को आरम्भ से अन्त तक सुनायेंगे उन्हें अश्वमेध के फल की प्राप्ति पूर्वक परम पद की प्राप्ति होगी ऐसा कहा गया है ॥२५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में भद्राकल्प वर्णन नामक
एक सौ एक अध्याय समाप्त । १०१।

अध्याय १०२

नक्षत्र पूजा विधिवर्णन

सुमन्तु बोले—हे भारत ! सूर्य को सभी तिथियाँ प्रिय हैं पर देवाधिदेव सूर्य के लिए यह सप्तमी तिथि अनन्य प्रिय है जिस भाँति किसी पुरुष के अनेक स्त्रियों में कोई एक स्त्री अत्यन्त प्रिय होती है अतः मनुष्य को इसमें सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए । १-२

शतानीक ने कहा—यदि सभी तिथियों के अधिनायक सूर्य ही हैं तो किसलिए विद्वान् लोग सप्तमी में ही सूर्य की पूजा आदि करते हैं । ३

सुमन्तु बोले—हे कुरुशार्दूल ! इसी बात को पहले एकबार स्वर्गस्थित ब्रह्मा से विष्णु ने पूछा था । हे विभो ! उस समय विष्णु को जो कुछ बताया था मैं वही सभी बातें तुमसे बता रहा हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो ! एकबार पहले समय में सुख पूर्वक छैठे हुए पितामह ब्रह्मा को शिर से प्रणाम करने के

यद्येष भानुमान्देवस्तिथीनामधिपः स्मृतः । किमर्थं पूज्यते ब्रह्मन्सप्तम्यां ब्रूहि मे विभो ॥६
एवमुक्तः सुरज्येष्ठो विष्णुना प्रभविष्णुना । प्रहस्य भगवान्देव इदं वचनमववीत् ॥७

ब्रह्मोवाच

देवेभ्यस्तिथगो दत्ता भास्करेण महात्मना । भुक्तवें सप्तमीं सर्वा सम्यगाराधनेन वै ॥८
यस्यैव यद्दिनं दत्तं स तस्यैवाधिपः स्मृतः । स्तुदिने पूजितस्तस्मात्स्वभन्त्रैर्वरजो भवेत् ॥९

विष्णुरुवाच

अकेण कतरत्कस्मै दिनं दत्तं महात्मना । स्वदिने पूजितेऽस्मिन्वै स्वमन्त्रैर्जायते ध्रुवम् ॥१०
ब्रह्मोवाच

अप्रये प्रतिपद्मां द्वितीया ब्रह्मजे तथा । द्वितीया यक्षराजाय गणेशाय चतुर्थ्यपि ॥११
पञ्चमीं नागराजाय कार्तिकेयाय षष्ठ्यपि । सप्तमी स्थापितात्मार्थं दत्ता रुद्राय वाष्टमी ॥१२
दुर्गायै नवमी दत्ता यमाय दशमी स्वयम् । विद्वेभ्यश्चाथ देवेभ्यो दत्ता चैकादशी सदा ॥१३
द्वादशी विष्णवे दत्ता मदनाय न्योदशी । चतुर्दशी शङ्कराय दत्ता सोमाय पूर्णिमा ॥१४
पितृणां भानुना दत्ता पुण्या पञ्चदशी सदा । तिथ्यः पञ्चदशौतात्सु सोमस्य परिकीर्तिः ॥१५
पीर्यते कृष्णपक्षे तु सुरैरेभिर्यथोदितैः । शुक्लपक्षे प्रपूर्यन्ते षोडश्या कलया सह ॥१६
अक्षया सा सदैकैका तत्र साक्षात्स्थितो रविः । क्षयवृद्धिकरो ह्येवं तेनासौ तत्पतिः स्मृतः ॥१७

उपरात कृष्ण ने इस भाँति कहा । ४-५। हे ब्रह्मन् ! यदि तिथियों के अधिनायक सूर्य ही बताये जाते हैं, तो है विभो ! सप्तमी में ही इनकी पूजा क्यों होती है, इसे प्रायः मुझे स्पष्ट बतायें ! ६। प्रभुत्व गुण सम्पन्न विष्णु के इस प्रकार पूछने पर ब्रह्मा ने हँसकर यह कहा । ७

ब्रह्मा बोले——देवताओं के आराधना करने पर प्रसन्न होकर सूर्य ने तुम्हें सप्तमी तिथि के अतिरिक्त समी तिथियाँ सौंप दी हैं । ८। इसलिए जिसे जो तिथि दी गयी है वह उसका अधिनायक हो गया है और तभी से अपने तिथि के दिन गंत्र द्वारा पूजित होने पर उन्हें देवों ने वर प्रदान प्रारम्भ किया है । ९

विष्णु ने कहा—सूर्य ने किसे कौन तिथि प्रदान की है जिसमें वह मंत्र द्वारा पूजित होने पर वर प्रदाने करता है । १०

ब्रह्मा बोले—(सूर्य ने) अग्नि के लिए प्रतिपदा ब्रह्मा के लिए द्वितीया, यक्षराज (कुवेर) के लिए द्वितीया, गणेश के लिए चतुर्थी, नागराज के लिए पंचमी, कार्तिकेय के लिए षष्ठी, अपने लिए भन्तमी, रुद्र के लिए अष्टमी, दुर्गा के लिए नवमी, यम के लिए दशमी, विश्वेदेव के लिए एकादशी, विष्णु के लिए द्वादशी, काम के लिए न्योदशी, शंकर के लिए चतुर्दशी, सोम (व्रत) के लिए पूर्णिमा और पितरों के लिए पुण्य अमावस्या तिथि प्रदान किया है । ये पन्द्रह तिथियाँ चन्द्रमा की कला के रूप में हैं । ११-१५। इसलिए कृष्ण पक्ष में देवलोग इसका पान करते हैं प्रभात वे शुक्लपक्ष में सोलहवीं कला के समेत पूरी हो जाती है । १६। (चन्द्रमा की सोलहवीं) कला अक्षीण रहती है क्योंकि उसमें सूर्य साक्षात् स्थित रहते

ददाति गतिमक्षीणां ध्यानमात्रस्थितोऽरविः । अन्येषीष्टान्यथाकामात्रयच्छति सुखेन वै ॥१८
तथा सर्वं प्रवक्ष्यामि कृष्ण संक्षेपतः शृणु । अग्निष्टिवा च हुत्वा च प्रतिपद्मृतं धृतम् ॥
हविषा सर्वधान्यानि प्राप्नुयादमितं धनम् ॥१९
ब्रह्माणं च द्वितीयायां सम्पूज्य ब्रह्मचारिणम् । भोजयित्वा च विद्यानां सर्वासां पारगो भवेत् ॥२०
तृतीयायां च वित्तेण वित्तादच्चो जापते धूवम् । क्र्यादिव्यवहोरेषु लाभो बहुगुणो भवेत् ॥२१
गणेशपूजनं कुर्याच्चतुर्थां सर्वकर्मसु । अविघ्नं विद्विषां विघ्नं कुर्याच्चास्य न संशयः ॥२२
नागानिष्टिवा च पञ्चम्यां न विवैरभिसूयते । स्त्रियं च लभते पुत्रान्यरां च श्रियमाप्नुयात् ॥२३
सप्तम्यं कार्तिकेयं तु षष्ठ्यां श्रेष्ठः प्रजायते । मेधावी रूपसम्पन्नो दीर्घागुः कीर्तिवर्धनः ॥२४
सप्तम्यां पूज्य रक्षेण स्त्रिभानुं दिवत्करम् । अष्टम्यां पूजितो देवो गोवृयाभरणो हरः ॥२५
ज्ञानं ददाति विपुलं कान्तिं च विपुलं तथा । मृत्युहा ज्ञानदध्नैव पाशहा च प्रपूजितः ॥२६
द्वुर्गां सम्पूज्य दुर्गाणि नवम्यां तरतीच्छया । सङ्ग्रामे व्यदहारे च सदा विजयमश्नुते ॥२७
दशमीं यमर्मातिष्ठेत्सर्वज्याधिहरो धूवम् । नरकादथ मृत्योश्च समुद्धरति मानवम् ॥२८
एकादश्यां यथोदिष्टा विश्वेदेवाः प्रपूजिताः । प्रजां पशुं धनं धान्यं प्रयच्छन्ति महीं तथा ॥२९

हैं । इसी प्रकार सूर्य द्वारा चन्द्रमा का क्षय एवं वृद्धि होती रहती है अतः सूर्य चन्द्र के भी पिता कहे गये हैं । १७। हे कृष्ण ! जिस भाँति आकाश में केवल स्थित मात्र रहने से सूर्य अनश्वर गति एवं अन्य सभी कामनाएँ सुख पूर्वक प्रदान करते रहते हैं, संक्षेप में मैं वह सब बता रहा हूँ सुनो ! प्रतिपदा तिथि में धी की आहूति पूजनोपरांत अग्नि में डालने से समस्त धान्य एवं अमित धन की प्राप्ति होती है । १८-१९। द्वितीया के दिन ब्रह्मा का पूजन करके ब्रह्मचारी के भोजन कराने से वह सभी विद्याओं का पूर्ण वक्ता होता है । २०। तृतीया के दिन कुबेर की आराधना करने से निश्चित अत्यन्त धन एवं भाँति-भाँति के अनेक लाभ होते रहते हैं । २१। चौथे में गणेश के पूजन करने से सभी कार्यों की निर्विघ्न समाप्ति तथा शत्रुओं का निश्चित नाश होता है । २२। पञ्चमी के दिन नागों की आराधना करने पर विष के भय से मुक्ति और स्त्री, पुत्र एवं उत्तम लक्ष्मी की भी प्राप्ति होती है । २३। पष्ठी में कार्तिकेय की पूजा करने वाला श्रेष्ठ, मेधावी, रूपवान्, दीर्घायुष्मान् तथा विपुल स्वाति प्राप्त पुरुष होता है । २४। सप्तमी के दिन रक्षेण, चित्रभानु नामक सूर्य की आराधना करके अष्टमी में गोवृष (बैल) वाहन वाले हर महादेव की आराधना करने पर विपुल ज्ञान, विपुल सौन्दर्य, मृत्यु एवं जन्म-मरण रूपपाश से मुक्ति प्राप्त होती है । २५-२६। नवमी के दिन भगवती दुर्गा जी की आराधना करने से वह (संसार के विभिन्न प्रकार के) दुर्गों दुर्खों को इच्छा पूर्वक पार करता है और रणभूमि एवं व्यवहार में भी इसकी सदैव विजय होती है । २७। दशमी में यमराज की आराधना करने से सभी रोगों से अटल मुक्ति पूर्वक नरकों एवं मृत्यु से उसका उद्धार हो जाता है । २८। एकादशी में विधान पूर्वक विश्व देव की आराधना करने पर उसे वे सन्तान, पशु, धन, धान्य एवं भूमि प्रदान करते हैं । २९। किरणमाली सूर्य की भाँति विष्णु भी समस्त

द्वादश्यां विष्णुमिष्ट्वेह सर्वदा विजयी भवेत् ! पूज्यश्च सर्वलोकानां यथा गोपतिगोकरः ॥३०
 कामदेवं त्रयोदश्यां सुरुपो जायते ध्रुवम् । इष्टां रूपवतीं भार्या लभेत्कामांश्च पुष्कलान् ॥३१
 दृष्ट्वेभ्यरं चतुर्दश्यां सर्वैश्वर्यसमन्वितः ! बहुपुत्रो बहुधनस्तथा स्यान्नात्र संशयः ॥३२
 पौर्णमास्यां तु यः सोमं पूजयेद्भूलिमान्नरः । स्वाधिष्ठितं भवेत्स्य सम्पूर्णं न च हीयते ॥३३
 पितरः स्वदिने दिष्टे दृष्टाः कुर्वन्ति सर्वदा । प्रजादृढिं धनं रक्षां चायुष्यं दत्तमेव च ॥३४
 उपवासं विनाप्येते भद्रन्त्युक्तफलप्रदाः । पूजया जपहेमैश्च तोषिता भक्तिः सदा ॥३५
 मूलमन्त्रैश्च संज्ञाभिरंशमन्त्रैश्च कीर्तिताः । पूर्ववत्प्रदामध्यस्थाः कर्त्तव्याश्च तिथीश्वरः ॥३६
 गन्धपूष्योपहारैश्च यथा शक्त्या विधीयते ! पूजा बाह्येन विधिना कृतापि च फलप्रदा ॥३७
 आज्यधारासमिद्भूश्च दधिक्षीरान्नमादिकैः । यथोक्तफलदो होमो जपः शान्तेन चेत्सा ॥३८
 मूलमन्त्राश्च संज्ञाभिरडगमन्त्राश्च कीर्तिताः । कृत्यां यज्ञान्दश द्वौ च फलान्येतानि भक्तिः ॥३९
 यथोक्तानि तथोक्तानि लभेतेहाधिकान्यपि । इह यस्माद्यथान्यस्मिन्यो वसेद्यः सुखी सदा ॥४०
 तेषां लोकेषु मन्त्रज्ञो यावतेषां तिथिः स्थिता । दहेत्स्मात्तथारिष्टं तद्रूपो जायते नरः ॥४१
 सुरुपो धर्मसम्पत्तो क्षपितारिर्महीपतिः । स्त्री वा नपुंसको वापि जायते पुरुषोत्तमः ॥४२

लोकों के पूज्य हैं, अतः द्वादशी में इनकी पूजा करने से सदैव विजय प्राप्त होती है । ३०। त्रयोदशी में मदन (काम) की पूजा करने से निश्चित ही रूप-सौन्दर्य की प्राप्ति तथा अभिलपित रक्षी समेत सभी कामनाएं भी प्राप्त होती हैं । ३१। चतुर्दशी में शंकर की आराधना करने पर रामस्त ऐश्वर्यों, अनके पुत्रों एवं अतुल धन की निश्चित प्राप्ति होती है । ३२। उसी भाँति पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा की पूजा करने पर उस भक्तिमान् पुरुष को अपने सम्पूर्ण आधिष्ठत्य की प्राप्ति होती है, जिससे वह कभी नहीं च्युत होता है । ३३-

हे दिङ्डे ! अपने (अमावास्या के) दिन पूजित होने पर पितर लोग प्रसन्न होकर संतान वृद्धि, धन, रक्षा, आयु एवं बल सदैव प्रदान करते हैं । ३४। बिना उपवास के ही पूजा करने पर ये सभी देव गण उपर्युक्त फल प्रदान करते रहते हैं, अतः केवल भक्ति पूर्वक ही पूजा, जप एवं हवन द्वारा इन्हें सन्तुष्ट करते रहना चाहिए । ३५। यदि (उपवास रहकर) मूल मंत्रों, संज्ञाओं (नामों) एवं आंध्रिक मंत्रों के उच्चारण करते हुए इन तिथियों के अधिनायक को पहले की भाँति कमलासन पर स्थापित करके यथाशक्ति गन्ध एवं पुष्योहार द्वारा पूजा करें तो निश्चित उपरोक्त फल प्राप्त हों और इसी प्रकार वाह्य विधान पूर्वक पूजा करने पर भी (अत्यन्त) फल की प्राप्ति होती है । ३६-३७। धी की धारा, समिधा (लकड़ी) दही, दूध से बनाया हुआ भस्य कार्य तथा मधु द्वारा हवन एवं शांत चित्त होकर जप करने से उक्त सभी फल प्राप्त होते हैं । ३८। इसमें मूल मंत्रों एवं संज्ञाओं (नामों) के उच्चारण पूर्वक अंश मंत्रों का भी विधान बताया गया है । भक्ति पूर्वक बारह यज्ञ करने पर प्राप्त होने वाले जिन सभी फलों को बताया गया है उससे कहीं अधिक फलों की प्राप्ति अनुष्ठान के द्वारा होती है । जिस तिथि में उसके अधिनायक देव की उपासना की जाती है, उस देव के लोक में उसकी तिथि के स्थायी दिन (महाप्रलय) तक सुखपूर्वक निवास प्राप्त होता है एवं उसके बीच वाले समय में उसके अरिष्ट का नाश हो जाता है । अतः यहाँ (कभी आने पर) उसी देव के समान रूप प्राप्त कर सौन्दर्य पूर्ण, धर्मशील, एवं शक्ति-विजयी राजा होता है । इसके अनुष्ठान द्वारा स्त्री एवं नपुंसक कोई भी हो (इसके प्रभाव वश) उत्तम पुरुष होता है । ३९-४२

इत्येता: कथिता: कृष्ण तिथयो या मया तव । नक्षत्रेवता: सर्वा नक्षत्रेषु व्यवस्थिताः ॥४३
 इष्टान्कामान्प्रयच्छन्ति यास्ता वस्ये महीधर । चन्द्रमा यत्र नक्षत्रे भहावृद्धग्ना स्थितः सदा ॥४४
 उक्तस्तु देवतायज्ञस्तदा सा फलदा भवेत् । देवताश्च प्रवक्ष्यामि नक्षत्राणां यथाक्रमम् ॥४५
 नक्षत्राणि च सर्वाणि यज्ञाश्चैव पृथक्पृथक् । अधिन्यामश्चिनाविष्ट्वा दीर्घयुर्जायते नरः ॥४६
 व्याधिभिर्मृच्यते क्षिप्रमत्वर्थं व्याधिपीडितः । भरण्यां यस उद्दिष्टः कुमुमैरस्तिः शुभे ॥४७
 तथा गन्धादिभिः शुभ्रेऽप्नृत्योर्विमोदयेत् ॥४८
 अनलः कृत्तिकायां तु इह मन्त्रपूजितः परः । रक्तमाल्यादिभिर्द्यात्कलं होमेन च धुवन् ॥४९
 पूज्यः प्रजापतिः प्रीत इष्टो दद्यात्पशूस्तथा : रोहिण्यां देवशार्दूलं पूजनादिह गोपते ॥
 मृगशीर्षं सदा सोमो ज्ञानमारोग्यमेव च ॥५०
 आद्रायां तु शिवं पूज्य पश्चाद्विज्य यमाप्नुयात् । पद्मादिभिः स दिव्यैश्च पूजितः शं प्रद्यच्छति ॥५१
 तथा पुनर्वस्वदितिः सदा सम्पूज्यते दिवि । गुरुणां तपिता चैव मातेद पारंरक्षति ॥५२
 पुष्ये वृहस्पतिर्बुद्धिं ददाति विपुलां शुभाम् । गीतैर्गन्धादिभिर्नागा आश्लेषायां प्रपूजिताः ॥५३
 तपिताश्च यथान्यायं भक्ष्यादैर्मधुरैः स्तिः । रक्षामिषादिभिस्तैः श्रीतिं कुर्वन्ति मानद ॥५४
 मध्यमु पितरः सर्वे हव्यैः कव्यैश्च पूजिताः । प्रपञ्चन्ति धनं धान्यं भृत्यान्पुत्रान्पशूस्तथा ॥५५

हे कृष्ण ! इस प्रकार मैने समस्त तिथियों को तुम्हें बता दिया । इसी भाँति नक्षत्रों के अधीश्वर भी अपने-अपने नक्षत्रों में सन्निहित होते हैं ॥४३। हे महीधर ! जिस प्रकार वे मनुष्य को अभिलपित वस्तुएँ प्रदान करते रहते हैं मैं उन्हें भी बता रहा हूँ । सुनो ! चन्द्रमा जिस नक्षत्र में समृद्ध (चारों चरण समेत) दौकर स्थित रहता है, उसी नक्षत्र में उसके अधिनायक के यज्ञ (पूजा) आदि करने को बताया गया है अतः मैं क्रमशः नक्षत्रों के अधिनायक देवताओं को बता रहा हूँ ॥४४-४५। एवं सभी नक्षत्रों की भाँति उसके यज्ञ भी पृथक्-पृथक् बताये गये हैं, अश्विनी नक्षत्र में अश्विनी कुमार की पूजा करने पर मनुष्य दीर्घ आयु प्राप्त करता है ॥४६। तथा अत्यन्त व्याधि-पीडित होने पर भी शीघ्र उस रोग से उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है । भरणी में काले वर्ण के सुन्दर पुष्पों एवं उत्तम गन्धों द्वारा यम की पूजा करने पर मनुष्य अत्यमृत्यु (अकाल मृत्यु) से मुक्त हो जाता है ॥४७-४८। कृत्तिका नक्षत्र में रक्त वर्ण के पुष्पों के हवन द्वारा अग्नि की पूजा करने पर उत्तम फल की प्राप्ति होती है ॥४९। हे देव शार्दूल ! रोहिणी नक्षत्र में पूजा करने से प्रजापति ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर पशुओं की प्राप्ति होती है । हे गोपते ! मृगशीर्ष नक्षत्र में सदैव चन्द्रमा की पूजा करने से ज्ञान एवं आरोग्य की प्राप्ति होती है ॥५०। आद्रा नक्षत्र में शिव की पूजा करने पर विजय की प्राप्ति होती है तथा उत्तम कमलों द्वारा पूजित होने पर वे समस्त कल्याण प्रदान करते हैं ॥५१। पुनर्वसु नक्षत्र में आकाश स्थित अदिति की पूजा करने से अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक वह माता की भाँति रक्षा करती है ॥५२। पुष्य नक्षत्र में वृहस्पति की आराधना करने पर वे अत्यन्त कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करते हैं । आश्लेषा में गान पूर्वक गन्धादि के मधुर भक्ष्य पदार्थों द्वारा नागों की पूजा करने पर वे प्रसन्न होकर (विषादिकों) के भय से उसकी रक्षा तथा श्रीति प्रदान करते हैं ॥५३-५४। मधा नक्षत्र में हव्य-कव्य पितरों को तृप्त करने पर धन धान्यं, सेवक, पुत्र, एवं पशुओं की प्राप्ति होती

फालुन्यामय वै पूषा इष्टः पुष्पादिभिः शुभैः । पूर्वायां विजयं दद्यादुत्तरायां भगं तथा ॥५६
 भर्तारमोभितं दद्याकन्यायै पुरुषाय ताम् । इह जन्मनि युज्येत रूपद्विषणसम्बद्धा ॥५७
 प्रूजितः सविता हस्ते विश्वतेजोनिधिः सदा । गन्धपुष्पादिभिः सर्वं ददाति त्रिपुलं धनम् ॥५८
 राज्यं तु त्वष्टा चित्रायां निःतपलं प्रयच्छति । इष्टः सन्तर्पितः प्रीतः स्वात्यां वायुर्बलं परम् ॥५९
 इदाग्नी च विशाखायां जातरक्तं प्रपूज्य च । धन्द्यान्यति लब्धेह तेजस्वी निवस्तदा ॥६०
 रक्तैभित्रनूराधास्त्वेवं सम्पूज्य भक्तिः । श्रियो भजन्ति सर्वेषां चिरं जीवन्ति सर्वदा ॥६१
 ज्येष्ठायां पूर्ववच्छक्रमिष्ट्वा पुष्टिमवाप्नुयात् । गुणज्येऽन्तश्चै सर्वेषां कर्मणा द धनेन च ॥६२
 मूले देवपितृन्तस्वर्वान्भक्त्या^३ सम्पूज्य पूर्ववत् । पूर्ववत्कलमाप्नोति स्वर्गस्थाने ध्रुवो भवेत् ॥६३
 पूर्वाषाढे ह्यपः पूज्य हृत्वा तत्रैव पूर्ववत् । सन्तापान्मुच्यते क्षिप्रं शारीरान्मानसात्तथा ॥६४
 आषाढामु तथा विश्वानुत्तराषाढयोगातः । विश्वेशं पूज्य पुष्पाद्याः^३ तर्वमाप्नोति मानवः ॥६५
 श्रवणे तु सितैर्विष्णुं पीतैर्नीतैश्च भक्तिः । सम्पूज्य शियमाप्नोति परं विजयमेव च ॥६६
 धनिष्ठामु वसुनिष्ट्वा न भयं भजते क्वचित् । महतोऽपि भयात्वैतर्गन्धपुष्पादिभिः शुभैः ॥६७
 इन्द्रं शतभिषायां च व्याधिभिर्मुच्यते ध्रुवम् । आतुरः पुष्टिनाम्नोति स्वास्थ्यमैश्चर्यमेव च ॥६८

है । ५५। पूर्वा फालुनी में सुन्दर पुष्पों द्वारा पूषा की पूजा करने पर विजय, तथा उत्तरा फालुनी में भग देव को आराधना करने पर कन्या को मन चाहा पति एवं पुरुष को कन्या की प्राप्ति होती है और इसी जन्म में उसे अत्यन्त सौनर्दय पूर्वक धन की भी प्राप्ति हो जाती है । ५६-५७। हस्त नक्षत्र में विश्व के परम तेजस्वी सविता (सूर्य) की पूजा गंध पुष्पों द्वारा पूजा करने से विपुल धन की प्राप्ति होती है । ५८। चित्रा नक्षत्र में प्रूजित होने पर त्वष्टा निःसन्देह (शत्रु रहित) राज्य प्रदान करते हैं । स्वाती में विधान पूर्वक वायु को प्रसन्न करने पर अधिक फल की प्राप्ति होती है । ५९। विशाखा में अनुराग पूर्ण होकर इन्द्र और अग्नि की पूजा करने पर वह धन धान्य पूर्ण होकर सदैव तेजस्वी बना रहता है । ६०। अनुराधा नक्षत्र में रक्त वर्ण के पुष्पों द्वारा भक्ति पूर्वक मित्र की आराधना करने पर भी सम्पन्न एवं चिरजीवी होता है । ६१। ज्येष्ठा में इन्द्र की पूर्व की भाँति आराधना करने पर वह पुष्टि प्राप्त करते हुए सभी लोगों में धन, गुण और कर्म के कारण श्रेष्ठ होता है । ६२। मूल नक्षत्र में देव एवं पितरों का पूर्वोक्त की भाँति पूजन करने पर वह पूर्वोक्त फल प्राप्ति पूर्वक ध्रुव स्वर्ग का निवासी होता है । ६३। पूर्वाषाढ़ में जल की पूजा तथा हृवन करने पर शारीरिक एवं मानसिक संतापों से शीघ्र मुक्ति प्राप्ति होती है । ६४। उत्तराषाढ़ में पुष्पों आदि द्वारा विश्वदेव की पूजा करने से मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति होती है । ६५। श्वेत, पीत एवं नील वर्ण के पुष्पों द्वारा भक्ति पूर्वक विष्णु की आराधना करने पर लक्ष्मी एवं विजय की प्राप्ति होती है । ६६। धनिष्ठा नक्षत्र में उत्तम गन्ध पुष्पादि द्वारा वसु नामक देवों की पूजा करने पर उसे महान् जप से भी मुक्ति प्राप्त हो जाती है । ६७। शतभिषा नक्षत्र में इन्द्र की आराधना करने पर व्याधियों से मुक्ति एवं आतुर होने पर उसे पुष्टि तथा स्वास्थ्य एवं ऐश्वर्य का लाभ होता है । ६८। पूर्वा भाद्रपद में शुद्ध

अजं भाद्रपदायां तु शुद्धस्फटिकसन्निभम् । सम्भूज्य भक्तिमाल्नोति परं विजयमेव च ॥६९
उत्तरायामहिर्बुध्यं परां शान्तिमवास्तुयात् । रेवत्यां पूजितः पूषणः ददाति सततं गुभम् ॥
स्थितैः पुष्टैः स्थितिं चैव धृतिं विजयमेव च ॥७०
तदैवैते समाख्याता यज्ञाः संक्षेपतो मथा । नक्षत्रदेवतानां च साधकानां हिताय वै ॥
भक्त्या विज्ञानुसारेण भवन्ति फलदाः सदा ॥७१
गन्तुमिच्छेदनन्तर्य धा क्रियां प्रारब्धमेव च । नक्षत्रदेवतायज्ञं कृत्वा तत्सर्वमाचरेत् ॥७२
इवं इते हि तत्सर्वं यात्राफलमवास्तुयात् । क्रियाफलं च सम्पूर्णमित्युत्तं भानुना स्वयम् ॥७३
यज्ञात्स विजयं कुर्यात्क्रियां कुर्याद्यथेऽन्तिताम् । कालचक्रेऽय दा सूर्यं राशिचक्रे कलात्मना ॥७४
विश्वतेजोनिधिं ध्यात्वा सर्वं कुर्याद्यथेऽप्सितम् । विभूतिरेषा चोदिष्टा क्रियाभिः साध्यते ध्रुवम् ॥७५
उद्दिष्टाभिः प्रयत्नेन मुक्तियोगेन साध्यते । भानोराराधनाद्वापि प्राप्यते मुक्तिरेव हि ॥
तस्मादाराधय रविं भक्त्या त्वं मधुसूदन ॥७६
इज्यापूजानामस्कारशूश्रूषाभिरहर्निशम् । व्रतोपवार्तैर्विधैर्ब्रह्मणानां च तर्पणैः ॥७७

स्फटिक की भाँति अज की पूजा करने से भक्ति एवं विजय की प्राप्ति होती है । ६९। उत्तरा भाद्रपद में 'अहिर्बुध्य देव' की पूजा करने से उत्तम शान्ति प्राप्त होती है । रेवती नक्षत्र में पूषा की पूजा श्वेत पुष्टों द्वारा सुसम्पन्न करने पर निरन्तर कल्याण, स्थिति, धृति, एवं विजय की प्राप्ति होती है । ७०।

तुम्हारे और नक्षत्र देवताओं के साधनों के हित की कामना वश होकर मैंने संक्षेप में इन यज्ञों को सुना दिया । अपने वित्त (धन) के अनुसार भक्ति पूर्वक पूजित होने पर ये देवगण सदैव फल प्रदान करते रहते हैं । ७१। इसलिए लम्बी यात्रा अथवा किसी कार्य के आरम्भ करने में प्रथम उस नक्षत्र में अधीश्वर देव के यज्ञ को सम्पन्न कर लेना चाहिए । ७२। क्योंकि उनकी आराधना करने पर धन, पात्र के समस्त फल एवं किये गये कार्य के फल प्राप्त होते हैं ऐसा स्वयं सूर्य ने कहा है । ७३। एवं यज्ञ द्वारा विजय तथा अभिलपित कार्य की सफलता प्राप्त होती है । इस प्रकार उपस्थित काल चक्र के राशिचक्र में कलारूप में स्थायी रहने वाले सूर्य की जो समस्त विश्व के तेजो निधि रूप हैं, पूजा-ध्यान करके अपने मनोरथ को सफल करना चाहिए । जिस विभूति (ऐश्वर्य) के उद्देश्य से व्रतानुष्ठान की क्रिया प्रारम्भ की जाती है उसकी निश्चित प्राप्ति होती है इसमें संदेह नहीं । ७४-७५। और प्रयत्न पूर्वक उन्हीं उद्दिष्ट क्रियाओं एवं भुक्ति निमित्तक योग द्वारा अथवा सूर्य की आराधना करने पर भी मुक्ति (जन्म-मरण रूप बन्धनों से छुटकारा) प्राप्त होती है । अतः हे मधुसूदन ! भक्तिपूर्वक तुम सूर्य की आराधना अवश्य करो । ७६। इस प्रकार यज्ञ, पूजा, नमस्कार, शूश्रूषा (सेवा) रात दिन काव्रत उपवास और अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों को द्राह्याणों को अर्पित करते हुए जो कोई सूर्य की पूजा एवं उनका हृदयालम्बन (शारीरिक सेवा) करता

यः कारयति देवाचार्च हृदयालम्बनं रवेः । स नरो भानुसालोदयमुर्येति गतकल्पः^१ ॥७८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे नक्षत्रपूजाविधिवर्णनं
 नाम द्वधिकशततमोऽध्यायः । १०२।

अथ अधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजामहिमवर्णनम्

ब्रह्मोदाच्च

यश्च देवालयं भक्त्या भानोः क्षारयते स्थिरम् । स सप्त पुरुषाल्लोकान्भानोर्नयति भानवः ॥१
 यावन्त्यब्दानि देवाचार्च रवेस्तिष्ठति मन्दिरे । तावद्वर्षसहस्राणि सूर्यलोके स मोदते^२ ॥२
 देवाचार्च लक्षणोपेता दद्गृहे सन्ततो विधिः । निष्कामं वा मनो यस्य स यति रविसम्यताम् ॥३
 पुष्टाण्यतिसुगन्धीनि मनोज्ञानि च यः पुमान् । प्रयच्छति हि देवेशं तद्वावगतमानसः ॥४
 धूपांश्च विविधांस्तान्गन्धादधं चानुलेपनम् । दीपबल्युपहारांश्च यज्ञाभीष्टमथात्मनः ॥५
 नरः सोऽनुदिनं यज्ञात्राप्नोत्याराधनाद्वेः । यज्ञेशोभगवान्भानुर्मलैरपि च तोष्यते ॥६
 ब्रह्मपकरणा यज्ञा नानसम्भारविस्तराः । प्राप्यन्ते^३ हैर्धनयुतैर्मनुष्यैर्लोकसञ्चयैः ॥७

है, वह निष्पाप होकर सूर्य की सालोक्य मुक्ति प्राप्ति करता है । ७७-७८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में नक्षत्र पूजाविधि वर्णन नामक
 एक सौ दूसरा अध्याय समाप्त । १०२।

अध्याय १०३

सूर्यपूजामहिमा का वर्णन

ब्रह्मा बोले—भक्तिपूर्वक जो सूर्य के लिए अत्यन्त दृढ़ मन्दिर बनवाता है, उस पुरुष के सात पीढ़ी के लोग सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं । १। एवं उस मन्दिर में सूर्य की पूजा जितने वर्ष तक होती है उतने सहस्र वर्ष वह (मन्दिर का निर्माता) सूर्य लोक में आनन्द का अनुभव करता है । २। इसलिए जिस घर में विधान पूर्वक सूर्य की पूजा निरंतर निष्पाप भाव से होती है उसको (मनुष्य को) सूर्य की समानता प्राप्त हो जाती है । ३। जो पुरुष उनके प्रेम में मुग्ध होकर सुगन्धित एवं मनोहर पुष्प, भाँति-भाँति के धूप, अत्यन्त सुगन्ध पूर्ण लेपन द्वीप एवं बलि उपहार तथा और अन्य अपनी प्रियवस्तु सूर्य के लिए समर्पित करता है, उसे सूर्य के उस नित्य याग करने के द्वारा अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है । ४-६। यद्यपि यज्ञों के अनेक साधन होते हैं उनका संभार विस्तृत होता है तथा उसे धनवान् ही लोग धनसंचय के नाते सुसम्पन्न करते हैं और इसीलिए उन्हें महान फल की प्राप्ति भी होती है, तथापि निर्धन मनुष्य भी भक्ति पूर्वक केवल द्वार्वाङ्कों द्वारा सूर्य की

१. धूतकल्पः । २. महीयते । ३. प्रथन्ते ।

भक्त्या तु युरुषैः पूजा कृता दुर्वाङ्कुरैरपि । रवेददति हि फलं सर्वयज्ञैः सुदुर्लभम् ॥८
 यानि पुष्पाणि भक्ष्याणि धूपान्धानुलेपनम् । दयितं मूषणं यच्च रक्तके चैव बाससी ॥९
 यानि चाभ्युपहाराणि भक्ष्याणि च फलानि च । प्रयच्छ तानि देवेश भवेथाश्रैव तन्मनाः ॥१०
 आद्यं तं यज्ञपुरुषं यथाशक्त्या प्रसादय । आराध्य स्थापितं देवं तस्मिन्श्वेव नरालये ॥११
 पुण्यस्तीर्थोदकैर्गीर्न्धमधुना सर्पिषा तथा । क्षीरेण ज्ञापयेद्देवं चिक्षभानुं दिवाकरम् ॥१२
 दधिक्षीरहृदान्याति स्वर्गलोकान्मधुच्युतात् । प्रयात्यति यदुश्चेष्ठ निर्वृत्तिं वापि शाश्वतीम् ॥१३
 स्तोत्रैर्गीतैस्तथा वाद्यब्रह्माणानां च तर्पणैः । भद्रसश्वेकतायोगादाराध्य विभावसुम् ॥१४
 आराध्य तं विदेहानां पुरुषाः सप्तसप्ततिः । हैयानां च पञ्चाशादमृतत्वं समागताः ॥१५
 स त्वमेभिः प्रकारैस्तमुपवासैस्तु भास्करम् । सन्तोषय हि तुष्टोऽसौ भानुभदति शान्तिदः ॥१६

कृष्ण उवाच^२

उपवासैश्वित्रभानुः कथं तुष्टः प्रजायते । परिचर्या कथं कार्या या कार्या चोपवासिना ॥१७
 यद्यत्कार्यं यदा चैवभानोराराधनं नरैः । तत्सर्वं विस्तराद्ब्रह्मन्यथावद्वत्तुमर्हसि ॥१८

ब्रह्मोवाच

स्मृतः सम्पूजितो धूपपुष्पाद्यैः स सदा रविः । भोगिनामुपकाराय र्कि पुनश्चोपवासिनाम् ॥१९

आराधना करके समस्त यज्ञों द्वारा प्राप्त होने वाले उन अत्यन्त दुर्लभ एवं सम्पूर्ण फलों की प्राप्ति कर सकता है । ७-८। अतः हे देवेश ! समस्त पुष्पों, भक्ष्य पदार्थों, धूप, सुगन्धित लेपन, सुन्दर भूषण, लाल रंग के दो वस्त्रों, समस्त उपहारों एवं भक्ष्य फलों को सूर्य के लिए समर्पित करते हुए उनके ध्यान में तन्मय होने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहा करे । ९-१०। सर्वप्रथम उन यज्ञ पुरुष की अपनी शक्त्यनुसार आराधना करके उन्हें प्रसन्न करे और आराधना के पश्चात् यह बताया गया है कि उन्हें उसी मनुष्य के उसी घर में स्थापित करके पुण्य तीर्थ जल, गंध, शहद, धी, एवं दूध द्वारा उन चित्रभानु नामक सूर्य का स्नान कराना चाहिए । ११-१२। इस प्रकार इस अनुष्ठान के सुसम्पन्न करने पर उसे स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है जो दही, दूध के तालाबों से पूर्ण एवं मधुमय रहता है । हे यदुश्चेष्ठ ! इस प्रकार वह सर्वदा के लिए मुक्त भी हो जाता है । १३। अतः स्तोत्र, गायन, वाद्य एवं ब्राह्मणों की तृप्ति द्वारा तन्मय होकर सूर्य की आराधना अवश्य करे । १४। क्योंकि उनकी आराधना के द्वारा ही विदेह (जनक) की सतहतर पीढ़ी और हैय्य राजा की पचास पीढ़ी के लोगों ने मुक्ति प्राप्त की है । १५। तुम भी उसी प्रकार उपवास आदि द्वारा सूर्य को संतुष्ट करो । उससे प्रसन्न होने पर सूर्य शांति (मोक्ष) प्रदान करेंगे ऐसा कहा गया है । १६

कृष्ण ने कहा—उपवास के द्वारा सूर्य कैसे प्रसन्न होते हैं और उपवास रहकर किस प्रकार की सेवा करनी चाहिए । हे ब्रह्मन् ! जिस-जिस समय मनुष्य को जिस भाँति सूर्य की आराधना करनी चाहिए, उसे विस्तार पूर्वक आप मुझसे बताने की कृपा करें । १७-१८

ब्रह्मा बोले—केवल धूप, पुष्प, आदि द्वारा ही आराधना करने पर सूर्य भोगी पुरुषों की भी

१. जगत्पतिम् । २. श्रीविष्णुर्वाच-इति सर्वत्र कृष्ण उवाचेत्यस्य स्थाने पाठः ।

उपःवृत्तस्तु पापेभ्यो यस्तु दासोगुणैः सह । उपवासः स दिनेदः सर्वभोगविवर्जितः ॥२०
एकरात्रं द्विरात्रं वा त्रिरात्रमध्य वा हरे । उपवासी रविं यस्तु भक्त्या व्यायति मानवः ॥२१
तत्प्राप्तयाजी तत्कर्मरतस्तद्गतमानसः । निष्कामः पूजयित्वा तं परं ब्रह्माधिगच्छति ॥२२
यश्च कानभिभृत्याप्य भास्करार्पितमानसः । उपोषति तमान्नोति प्रसन्ने तु वृषद्वजे ॥२३

श्रीकृष्ण उवाच

ब्राह्मणः क्षत्रियर्वैश्यैः शूद्रैः स्त्रीभिस्तथा विभो । संसारगतपङ्कस्थैः सुगतिः प्राप्यते कथम् ॥२४

ब्रह्मोवाच

अथाराध्य जगन्नाथं भास्करं तिप्रिरापहम् । निर्व्यलीकेन चित्तेन प्रयास्यति च सद्गतिम् ॥२५
विषयापाहृवैषम्यं न चित्तं भास्करार्पणम् । स कथं पाप कर्ता वै नरो यास्यति सद्गतिम् ॥२६
यदि संसारदुःखार्तः सुगति गन्तुमिच्छसि । तदाराध्य सर्वेशं प्रहेशं लोकपूजितम् ॥२७
पुष्पैः सुगन्धेहृदैश्च धूपैः सागुरुचन्दनैः । वासोविभूषणैर्भृष्टैरुपवासपरायणः ॥२८
यदि संसारनिर्वेदादादभिवाच्छसि सद्गतिम् । तदाराध्य कलेशं यच्चेष्टं तद चेत्सा ॥२९
पुष्पाणि यदि तेन स्युः शस्तं पादपल्लवैः । दूर्वाकुरैरपि कृष्ण तदभावेऽर्पयेद्रविम् ॥३०

अभिलाषादै पूरी करते हैं और जो उपवास रह कर उनकी आराधना करता है उसके लिए कहना ही क्या है । १९। पाप निवृत्ति पूर्वक भागों के त्याग कर जो रागद्वेषरहित गुणों के साथ व्यतीत करता है उसे 'उपवास' कहते हैं । २०। हे हर ! इस प्रकार एक दो या तीन रात का उपवास रहकर भक्ति पूर्वक उनके नाम के कीर्तन उन्हीं के लिए कर्मों में अनुरक्त एवं तन्मय होकर निष्काम भावना से जो सूर्य की आराधना करता है उसे पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है । २१-२२। उनमें पूर्ण मन लगा कर तथा पूर्ण ध्यान पूर्वक उनकी आराधना जो उपवास रहकर करता है उसकी सकल कामनाएँ वृषद्वज (सूर्य) के प्रसन्न होने पर सफल हो जाती हैं । २३

श्रीकृष्ण ने कहा—हे विभो ! संसार रूपी गर्त (गढ़े) के कीचड़ में फसे हुए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं स्त्रियां उत्तम गति कैसे प्राप्त करती हैं ? २४

सुमन्तु बोले—शांत चित्त होकर जगत्पति एवं अन्धकार नाशक भास्कर की आराधना करने पर वे उन्हें उत्तम गति प्रदान करते हैं किन्तु विषय में अनुरक्त होने के नाते उसका चित्त सूर्य के लिए समर्पित (तन्मय) न हो सका तो उस पापी मनुष्य को उत्तम गति कैसे प्राप्त हो सकती है । २५-२६। इसीलिए संसार के दुःखों से दुःखी होकर यदि उत्तम गति की प्राप्ति करना चाहते हों तो लोक पूजित, ग्रहों के ईश एवं स्वाधिपति सूर्य की पुष्प, सुगन्ध, उत्तम धूप, अगुरु चन्दन, वस्त्र, आभूषणों तथा भक्ष्यपदार्थों द्वारा उपवास रहते हुए अवश्य आराधना करो । यदि संसार से विरक्त होकर सद्गति चाहते हों तो काल के ईश सूर्य की आत्मप्रिय वस्तुओं द्वारा आराधना करो । हे कृष्ण ! यदि उस समयमें किसी भाँति पुष्प प्राप्त न हो सके, तो वृक्षों के सुन्दरं पल्लवों तथा उसके अभाव में केवल दुर्वा के अङ्कुरों द्वारा ही

पुष्पपत्राम्बुद्धिर्घैर्यथाविभवमःत्मनः । पूजितस्तुष्टिमतुलां भक्ष्या यात्येकचेतसाम् ॥३१
 यः सदायतने भानोः कुर्यात्सम्मार्जनं नरः । स पांसुदेहसंयोगात्सर्दपापैः प्रमुच्यते ॥३२
 यावत्यः पांसुकणिका मार्ज्यन्ते भास्करालये । दिनानि दिवि दिव्यानि तावन्ति मोदते नरः ॥३३
 सबाह्याभ्यन्तरं वेशम शार्जते भास्करस्य यः । स बाह्याभ्यन्तरस्तस्य कायो निष्कल्मषो भवेत् ॥३४
 पश्चानुलेपनं कुर्याद्वानोरायतने नरः । स हैलिलोकामासाद्य मोदते गोगते हरौ ॥३५
 नृदा वा नृद्विकारेवा वर्गकर्गेमयेन वा । अनुलेपनकृद्वक्ष्या नरो गोपतिमाष्मयात् ॥३६
 उद्वकाश्युक्षणं भानोर्यः करोति तथाक्षये । स गच्छति नरः कृष्ण यत्रास्ते गोपतिः सदा ॥३७
 पुष्पप्रकरमत्यर्थं नुगन्धं भास्करालये । अनुलिप्ते नरो दद्यात्पूष्टेत्तरगृहं वजेत् ॥३८
 विमानदरमभ्यर्थेति सर्वरत्नमयं दिवि । सम्प्राप्नोति नरो दत्त्वा दीपकं भास्करालये ॥३९
 यस्तु सम्वत्सरं पूर्णं तिलपात्रप्रदो नरः । ध्वजं च भास्करे दद्यात्सममत्र फलं लभेत् ॥४०
 विधुनोत्पतिवातेन दातुरज्ञानतः कृतम् । पापं दातुर्गृहे भानुदिवारात्रौ न संशयः ॥४१
 गीतवाद्यादर्धिर्देवं य उपास्ते विभावसुम् । गन्धर्वनृत्यैवाद्यैश्च विमानस्यो निषेव्यते ॥४२

सूर्य की अर्चना करो । २७-३०। क्योंकि भक्तिपूर्वक तन्मय होकर शक्ति के अनुसार पुष्प, पत्र एवं जल द्वारा ही उनकी पूजा करने पर प्रसन्न होने से ये अतुलनीय तुष्टि प्रदान करते हैं । ३१। इस प्रकार जो मनुष्य उनके मंदिर में आड़ द्वारा सफाई करता है उसे अपनी देह में (आड़ द्वारा उड़ी हुई) धूल स्पर्श होते ही समस्त पातकों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है । ३२। सूर्य के मंदिर में धूल के जितने कणों की सफाई होती है, उतने दिव्य दिव्य दिव्य लोक में आनन्द का अनुभव करता है । ३३। एवं जो सूर्य के मन्दिर में उसके बाहरी तथा भीतरी भाग की सफाई करता है उसी प्रकार उस मनुष्य के शरीर के बाहरी एवं भीतरी भाग भी निष्पाप हो जाते हैं । ३४। तथा जो सूर्य के मन्दिर में लेपन (रंग आदि) लगाता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । ३५। मिट्टी या मिट्टी द्वारा बनी हुई (गेल) आदि वस्तु अथवा रंग एवं गोबर से उनके मंदिर को जो लीपता है उसे सूर्य की प्राप्ति होती है । ३६। हे कृष्ण ! उसी प्रकार अथ काल में जो जल द्वारा सूर्य का अभिषेक करता है, उसे गो पति (सूर्य) के पुनीत लोक की प्राप्ति होती है । ३७। इस भाँति सूर्य के मन्दिर में लेपन (सफाई) हो जाने के उपरांत जो सुगन्धित पुष्पों को उन्हें समर्पित करता है, उसे पूषा (सूर्य) के उत्तर (आगे) वाले गृह की प्राप्ति होती है । ३८। सूर्य के मन्दिर में दीपक जलाने वाले को रत्नमय मुन्दर विमान पर बैठकर स्वर्ग की प्राप्ति होती है । ३९। जो मनुष्य पूरे वर्ष सूर्य के लिए तिलपात्र तथा ध्वजा प्रदान करता है, उसे उसके समान ही कल की प्राप्ति होती है । ४०। तथा वायु के अत्यन्त झोंकों द्वारा ध्वजा के कम्पित होने पर उसके दाता (ध्वजा के समर्पित करने वाले) के अज्ञान वश किये गये प्रतिदिन के सभी पाप नष्ट हुआ' करते हैं । इसमें संशय नहीं । ४१। जो गायन एवं बायादि द्वारा सूर्य की उपासना करता है उसे सुसज्जित विमान पर आसीन कर गन्धर्व गण नृत्य एवं बायों द्वारा उसकी सेवा करते रहते हैं । ४२। सूर्य के मन्दिर में जो पुरुष कथाओं को

जातिस्मरत्वं वृद्धिं च ततस्तु परमां गतिम् । प्राप्नोति हेलेरायतने पुण्याल्यानकथाकरः ॥४३
तस्मात्कुर्यात्प्रयत्नेन पूजयेदापि वाचकम् । नान्यत्रीतिकरं भानोः पुण्याल्यानादृते क्वचित् ॥४४

एकोऽपि हेले: मुकृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।

दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म हेलिप्रणामी न पुनर्भवाय ॥४५

एवं^१ देवेश्वरे भक्तया येन भानुरूपासितः । स प्राप्नोति गतिं श्लाघ्यां यामिच्छति च चेतसा ॥४६

तस्माराध्य मध्य प्राप्तं ब्रह्मत्वं लोकपूजितम् । सौरेर्यथेप्तिं प्राप्तं त्वया तस्मात्पुरान्तः ॥४७

ब्रह्महत्याभिसूतस्तु गोश्चुताभरणो हरः । तस्माराध्य र्वं भक्त्या मुक्तोऽसौ ब्रह्महत्यया ॥४८

देवत्वं मनुजैः दैविद्विग्नधर्वत्वं तथा परैः । विद्याधरत्वमपरैरेवाप्तं हि दिवाकरात् ॥४९

लेखः क्रतुश्तेनेशमाराध्यैनं दिवाकरम् । इन्द्रत्वमगमत्समाज्ञान्यः पूज्यो^२ दिवाकरात् ॥५०

देवेभ्योऽप्यतिपूज्यस्तुपुरुष्ट्विचारिणा । तस्मात्स यजपुरुषो विवस्वान्पूज्य एव हि ॥५१

स्त्रियाश्च भर्तारमृते पूज्योऽत्यन्तं विभावसुः । भर्तुर्गृहस्थस्य सतः पञ्चो गोपतिरङ्गुमान् ॥५२

दैश्यानामपि नाराध्यस्तपोभिस्तमनाशनः । ध्येयः परिज्ञाजकानां सदा देवो विभावसुः ॥५३

मुनाता है उसकी जन्मान्तरीय, जातिस्मरणी एवं वृद्धि होने के पश्चात् उत्तम गति की भी प्राप्ति होती है । ४३। इसीलिए प्रयत्न पूर्वक (कथा) वाचक की पूजा करनी चाहिए क्योंकि सूर्य के प्रसन्न होने के लिए पुण्य कथाओं के सुनने-सुनाने के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरी वस्तु नहीं बतायी गयी है । ४४। एवं भनी भाँति एक ही बार सूर्य के लिए प्रणाम करने वाले को दश अश्वमेध यज्ञ करने के समान फल प्राप्त होते हैं और दश अश्वमेध यज्ञ करने वाले को यहाँ (भूमि पर) जन्म लेना पड़ता है पर सूर्य के प्रणाम करने वाले का फिर जन्म नहीं होता है । ४५। इस प्रकार जो भक्ति पूर्वक सूर्य की आराधना करता है, उसे अपने मनोनुकूल उत्तम गति की प्राप्ति होती है । ४६। हे अनंग ! पहले जिस प्रकार आपने सूर्य की आराधना द्वारा अपने मनोरथ की सफलता प्राप्त की थी उसी भाँति उन्हीं की आराधना के मैंने भी लोकपूजित ब्रह्मत्व की प्राप्ति की है । ४७। ब्रह्म हत्या से अभिमृत (दुःखी) होकर शिव ने भी सूर्य की आराधना करके ब्रह्म हत्या से मुक्ति प्राप्त की है । ४८। इस प्रकार सूर्य के द्वारा ही किसी मनुष्य ने देवत्व किसी ने गन्धर्वत्व और किसी ने विद्यापाराण की प्रगति की है । ४९। तथा सौ यज्ञ द्वारा सूर्य की आराधना करके देव ने इन्द्रत्व की प्राप्ति की है अतः दिवाकर से बढ़कर कोई पूज्य नहीं है । ५०। जिस प्रकार ब्रह्मचारी अपने गुह की आराधना करता है, उसी भाँति सूर्य भी देवताओं के आराध्य देव हैं अतः यज्ञ पुरुष सूर्य ही सभी के आराध्य एवं पूज्य देव हैं ऐसा समझना चाहिए । ५१। पति के मरणान्तर पति के अतिरिक्त सूर्य उन विधवा स्त्रियों के अत्यन्त पूज्य हैं पति के वर्तमान रहते हुए भी अंशुमाली सूर्य उनके पूज्य हैं । ५२। तमनाशक सूर्य तप द्वारा वैश्यों के भी आराध्य देव हैं और संन्यासियों के लिए तो वे उनके सदैव ध्येय हैं । ५३। इस प्रकार सूर्य सभी आश्रम, सभी वर्णों के परायण (योग्य आदि) हैं अतः उनकी

एवं सर्वाश्रमाणां हि चित्रसानुः परायणम् । सर्वेषां चैव वर्णानां तमाराध्याप्नुयाद् गतिम् ॥५४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमी कल्पे सूर्यपूजामहिमवर्गनं नाम
अधिकशततमोऽध्यायः । १०३।

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

त्रिवर्गसप्तमीव्रतनिरूपणम्

भृषुञ्ज संग्रहतः काम्यानुपवासांस्तथापरात् । तांस्तानाश्रित्य यान्कामान्कुद्दतेप्सितमानसः ॥१
सप्तम्या शुक्लपक्षे तु फालुनस्येह मानवः । जपन्हेलीति देवस्य नाम भक्त्या पुनःपुनः ॥२
देवार्चने चाष्टशतं कृत्वैतच्च जपेच्छुचिः । स्नातः प्रस्थानकाले तु उत्थाने स्खलिते क्षुते ॥३
पाखण्डान्यतितांश्चैव तथैवान्यायशालिनः । नालपेत तथा भानुमर्चयेच्छुद्धयान्वितः ॥४
इदं चोदाहरेद्द्वानौ मनः संधाय तत्परः ॥५

हंसहंस कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव । संसारार्गवमग्नानां त्राता भव दिवाकर ॥५
एवं प्रसाद्योपवासं कृत्वा नियतमानसः । पूर्वाह्नि एव च सकृतप्राशयाच्चाचमनीयकम् ॥६
स्नात्वार्चयित्वा हंसेति पुर्नाम प्रकीर्तयेत् । वज्रधारात्रयं चैव क्षिपेत्तिर्देवपादयोः ॥७

आराधना करके उत्तम गति की प्राप्ति अवश्य कर लेनी चाहिए । ५४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्य पूजा महिमा वर्णन नामक
एक सौ तीसरा अध्याय समाप्त । १०३।

अध्याय १०४

त्रिवर्गसप्तमीनिरूपण

संयम पूर्वक उन काम्य एवं अन्य उपवासों को जिसके करने से मन इच्छित फल की प्राप्ति होती है, मैं बता रहा हूँ सुनो ! । १। फालुन के शुक्ल सप्तमी के दिन स्नान द्वारा पवित्र होकर मनुष्य को सूर्य देव के 'हेति' नाम का जप बार बार करते रहना चाहिए । देवार्चन में आठ सौ बार पवित्रतापूर्ण जप करना चाहिए एवं यात्रा के समय स्नान करके शयन से उठने पर स्खलित (*मूर्च्छित*) अवस्थाओं में एवं छीकने के समय भी सूर्य के उपरोक्त नाम का जप करना आवश्यक होता है । श्रद्धालु होकर सूर्य की आराधना के समय पाखंडी पतित एवं अन्याय करने वाले मनुष्य के साथ बात चीत नहीं करना चाहिए अपितु सूर्य में मन लगाकर यही कहना चाहिए कि हे हंस हंस ! आप कृपालु एक अगति के गति हैं अतः हे दिवाकर ! संसार सागर में डूबे हुए जीवों की आप रक्षा करो । २-५। इस प्रकार उन्हें प्रसन्न कर संयम पूर्वक उपवास करते हुए (दिन के) पूर्वाह्नि समय में एक आचमन जल का एकबार प्राशन करे पश्चात् स्नान करने के उपरात उनकी अर्चना पूर्वक उस हंस नाम का बार-बार कीर्तन करते हुए उनके चरण में वज्र पुष्प की तीन अंजलि अर्पित करे । ६-७

चैत्रवैशाखयोश्वै तद्वज्ज्येष्ठे तु पूजयन् । मर्त्यलोके गतिं श्रेष्ठां कृष्ण प्राप्नोति वै नरः ॥८
 उत्कांतस्तु ब्रजेत्कृष्ण दिव्यं हंसालयं शुभम् । वृषध्वजप्रसादादौ संकल्ननश्रिया वृतः ॥९
 आषाढे श्रावणे चैव मासि भाद्रपदे तथा ; तथैवाभ्युजे चैव अनेन विधिना नरः ॥१०
 उपोष्य सम्पूज्य तथा मार्तण्डेर्ति च कीर्तयेत् । गोमूत्रप्राशनोत्पूतो धनी धनपुरं ब्रजेत् ॥११
 आराधितस्य जगतामीश्वरस्याव्यात्मनः । उत्कांतिकाले स्मरणं भास्करस्य तथाप्रायात् ॥१२
 क्षीरस्य प्राशनं कृष्ण विधिं चैव यथोदितम् । कार्त्तिकादि यथान्यायं कुर्यान्मासन्तुष्ट्यम् ॥१३
 तेनैव विधिना कृष्ण भास्करेर्ति च कीर्तयेत् । रा याति भानुमालोक्यं भास्करं इन्द्रियात् क्षये ॥१४
 प्रतिमासं द्विजातिभ्यो दद्याद्वानं यथेष्पितम् । चातुर्मास्त्ये तु समूर्णं कृत्वा पुस्तकवाचनम् ॥१५
 कथां तु भास्करस्येह सङ्गीतकमयापि वा । धर्मश्वरणमभीष्टं सदा धर्मध्वजस्य तु ॥१६
 वाचकं पूजयित्वा तु तस्मात्कार्यं विपश्चिता । श्राद्धुमन्येन पव्वेन वाचकेन द्विजेन तु ॥
 दिव्येन च यथापुक्तमभीष्टं भास्करस्य हि ॥१७
 एवमेव गतिं श्रेष्ठां देवानामनुकीर्तेनात् । प्राप्नुयात्रिविधिं कृष्ण त्रिलोकात्यां नरः ॥१८
 कथितं पारणं यत्ते प्रथमं गोधराधनम् । आधिपत्यं तथा भोगांस्ततः प्राप्नोति मानुषः ॥१९

चैत्र वैशाख मास के इस विधान की भाँति ज्येष्ठ में भी उनकी पूजा इसी विधान द्वारा सुसम्पन्न करना चाहिए । हे कृष्ण ! उसी द्वारा इस मर्त्य लोक में उस मनुष्य को उत्तम गति की प्राप्ति होती है अन्यथा नहीं ऐसा बताया गया है ॥१। हे कृष्ण ! मरणानन्तर वह पूरुष वृप ध्वज (सूर्य) की अनुकम्पा वश हर्षातिरेक से मग्न होकर दिव्य हंस (शूर्य) की प्राप्ति करता है ॥२। इसी प्रकार मनुष्य आपाद, सावन, भाद्रों तथा आश्विन मास में उपवास पूर्वक इनकी पूजा कर 'मार्तण्ड' नाम का कीर्तन और गो मूत्र का प्राशन करके पवित्र होने पर कुबेर लोक की प्राप्ति करता है ॥३-४। तदनन्तर जगत् के ईश्वर एवं अक्षय रूप सूर्य की आराधना के नाते उसे मरण समय में उसी प्रकार भास्कर का स्मरण भी प्राप्त होता है ॥५। हे कृष्ण ! उसी भाँति कार्तिक आदि चारों नासों में उसी विधान द्वारा यथोचित पूजन और दूध का प्राशन करने के पश्चात् 'भास्कर' नाम का कीर्तन करे और उनका स्मरण करने से मरण काल में (भास्कर) सूर्य के सालोक्य (मोक्ष) की प्राप्ति होती है ॥६-७। इस भाँति प्रतिमास में द्विजातियों को मनोनीत दान देते हुए चार्तुमास्य की सप्तमी में पुनः पुस्तक वाचन (कथा) श्रवण करना चाहिए ॥८। संगीत के साथ अथवा यों ही कथा का पारायण अवश्य होना चाहिए, क्योंकि उन धर्मध्वज (सूर्य) को धर्म श्रवण अत्यन्त प्रिय है ॥९। कथावाचक ब्राह्मण की पूजा करने के उपरान्त बुद्धिमान् को कथा सुनते हुए सीर आदि द्वारा शाद भी उसी दिव्य ब्राह्मण वाचक के द्वारा सुसम्पन्न कराना चाहिए । क्योंकि सूर्य को दिव्य ब्राह्मण द्वारा शाद अत्यन्त अभीष्ट रहता है ॥१०। हे कृष्ण ! इस प्रकार देवताओं के कीर्तन करने से उस त्रिलोक नामक तीन प्रकार की उत्तम गति सदैव प्राप्त होती रहती है ॥११

इस भाँति प्रथम पारण जिसके द्वारा मनुष्य आधिपत्य एवं भोगों की प्राप्ति करता है, तुम्हें बता

द्वितीयेन तथा भोगान्नोपते: प्राप्नुयान्नः । सूर्यलोकं वृत्तीवेन पारणे न तथाप्नुयात् ॥२०
एवमेतत्समाख्यातं गतिप्रापकमुत्तमम् । विधानं देवाशार्दूलं यदुक्तं सप्तमीवते ॥२१
यः इवेतां सप्तमीं कुर्यात्सुर्गांत श्रद्धया नरः । तथा भक्त्या च वै नारी प्राप्नोति त्रिविधां गतिम् ॥२२
एषा धन्या पापहरा तिर्थिनित्यमुपासिता । आराधनाय यस्तेषां यदा भानोर्धराधर ॥२३
पठतां शृण्वतां चापि सर्वपापभयापहा : तथा धन्या च तु च त्रिवर्गादीद्विदा सदा ॥२४ ।

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मण्यं पर्वणि सप्तमीकल्पे त्रिवर्गसप्तमीवतनिरूपणं नाम
चतुर्थिकशततमोऽध्यायः । १०४।

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

कामदासप्तमीवतनिरूपणम्

ब्रह्मोवाच

फल्गुनामलपक्षस्य उपत्यां क्षमाधराव्यय । उपेषितो नरो नारी समभ्यर्च्य तमोऽपहम् ॥१
सूर्यनाम जपन्भक्त्या मितभोक्ता जितेन्द्रियः । उत्तिष्ठन्त्रस्वपंश्वैव सूर्यमेवाभिकीर्तयेत् ॥२
ततोऽन्यदिवसे प्राप्ते त्वष्टम्यां प्रयतो रविम् । नात्वा देवं समभ्यर्च्य दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥३

दिया । १५। इसी प्रकार दूसरे पारण द्वारा मनुष्य सूर्य के भोगों की प्राप्ति करता है और तीसरे पारण द्वारा सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । २०। हे देवशार्दूल ! इस प्रकार मैंने उत्तम विधान को तुम्हें सुना दिया राप्तमी व्रत में अनुष्ठान द्वारा उत्तम गति प्राप्त होती है । २१। जो पुरुष या स्त्री भक्ति पूर्वक इस श्वेता नामक सप्तमी की समाप्ति विधान पूर्वक सुसम्पन्न करते हैं उन्हें उत्तमगति एवं स्त्री को त्रिविधि गति की प्राप्ति होती है । २२। इसलिए यह तिथि प्रशंसनीय, पापहारिणी एवं नित्य उपासना करने के योग्य कही गयी है देव धराधर ! जो सूर्य की इन तिथियों में सूर्य की आराधना कथा पायायण करने या श्रवण द्वारा करता है उसके समस्त पारणों को यह नष्ट करती है एवं यह सदैव प्रशस्त एवं पुण्य रूप होने के नाते धर्म, अर्थ एवं काम की सफलता भी सदैव प्रदान करती रहती है । २३-२४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मण्यं पर्व के सप्तमी कल्प में त्रिवर्ग सप्तमी व्रत निरूपण
नामक एक सौ चौथा अध्याय समाप्त । १०४।

अध्याय १०५

कामदा सप्तमीवत का निरूपण

ब्रह्मा बोले—हे क्षमाधर एवं अव्यय ! काल्पुनामास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी में पुरुष या स्त्री को चाहिए कि उपवास रहकर सूर्य की पूजा करके भक्ति पूर्वक सूर्यनाम के जप करें और भोजन के समय मित अप्न भोजन करे तत्पश्चात् संयम पूर्वक जागते एवं शयन आदि करते समय सूर्य के नाम का ही कीर्तन करता रहे । इस प्रकार दूसरे दिन अष्टमी में स्नान करके तन्मय होकर सूर्य की अर्चना, ब्राह्मणों को दक्षिणा

रविमुद्दिश्य वै चाग्नौ धृत्होमकृतक्रियः । प्रणिपत्य जगन्नाथमिति बाणीनुदीरणेत् ॥४
 यमाराध्य दुरां देवी नाविकी कामनाय वै । स मे ददातु देवेशः सर्वान्कामान्विभावसुः ॥५
 समभ्यच्छ इति प्राप्तान्कृत्स्नानाकामान्यथेप्सितान् । स ददात्यखिलान्कामान्प्रसन्नो मे दिवस्पतिः ॥६
 अष्टराज्याश्च देवेन्द्रो धमभ्यच्छं दिवस्पतिः । कामान्सम्प्राप्तवान्नाज्यं स ने कामं प्रयच्छतु ॥७
 एवमभ्यच्छं पृजां च निष्यायैह विवस्त्वतः । भूञ्जीत प्रयतः सम्यग्घविष्वं पतगध्वज ॥८
 फल्गुने दैवतैशाखज्येष्ठे पस्य समाप्तनम् । चतुर्थिः पारणं नासैरेभिन्निष्यादितं भवेत् ॥९
 करवौरैश्वतुरो मासान्भक्त्या तम्पूजयेऽविम् । कृष्णागुरुं दहेद्वपं प्राश्यं गोशृङ्गजं जलम् ॥१०
 नैवेद्यं खाडवेष्टास्तु दद्याद्विप्रेभ्य एव च । ततश्च श्रूत्यामन्द्या ह्याषादादिषु यो क्रिया ॥११
 जातीपुष्टाणि शस्तानि धूपो गौणगुल उच्यते । कूपोदकं सप्तश्नीयान्नैवेद्यं पापसं स्तम् ॥१२
 स्वयं तदेव चासीयाभ्येषं पूर्ववदाचरेत् । कार्तिकादिषु मासेषु गोमूत्रं कायशोधनम् ॥१३
 महाज्ञो धूप उद्दिष्टः पूजा रक्तोपलैस्तथा । कांसारं चात्र नैवेद्यं निवेद्यं भास्कराय वै ॥१४
 प्रतिमासं च विप्राय दातव्या दक्षिणा तथा । कर्पूरं चन्दनं युस्तान्नगरं तगरं तथा ॥१५
 ऊषणं शर्करा कृष्ण मुगन्धं सिंह्लं स्मृतो धूपः मियो देवस्य सर्वदा ॥१६

अर्पित करने के उपरांत सूर्य के उद्देश्य से अग्नि में धी की आहुति अर्पित करे । अनन्तर उन्हें प्रणाम करके (जगन्नाथ) फल्द का उच्चारण भी करे । १-४। पश्चात् यह भी कहे कि जिसकी सर्वाङ्गीण आराधना करके सावित्री देवी निखिल कामनाएँ प्राप्त की हैं वही देवनायक सूर्य उन समस्त कामनाओं को मुझे प्रदान कर अनुगृहीत करे । ५। भली भाँति पूजा करने से प्राप्त होने वाली उन समस्त कामनाओं से प्रसन्न होकर सूर्य देव मुझे वर प्रदान करने की छपा करें । ६। तथा जिस प्रकार राज्यच्युत होने पर स्वर्गपति देवराज इन्द्र को उनकी आराधना द्वारा राज्य समेत अपनी समस्त कामनाएँ पुनः प्राप्त होती है उसी भाँति वही कामनाएँ मुझे भी प्राप्त हों । ७। हे पतगध्वज ! इस प्रकार उस विवस्वान् की पूजा करके संयम पूर्वक हविष्यान्न का भोजन करें । ८। इस प्रकार फल्गुन, चैत्र, वैशाख एवं ज्येष्ठ, के इन्हीं मासों में इस व्रतानुष्ठान की समाप्ति होने के नाते इसमें चार पारण बताये गये हैं । ९। इन चारों मासों में करवीर (कनेर) के पुष्पों द्वारा सूर्य की पूजा करके काले अगुह की धूप प्रदान करने के पश्चात् गाय के सींगों द्वारा पूत जल का प्राशन करने के उपरांत नैवेद्य और खांड से बने हुए भक्ष्य पदार्थ ब्राह्मणों को समर्पित करे अब आषाढ आदि मासों के विधान को भी दता रहा हूँ मुनो ! । १०-११। इसमें चमेली के उत्तम पुष्पों एवं गुणगुल की धूप समर्पित कर कूपोदक का प्राशन करना बताया गया है । इस व्रत विधान में खीर का नैवेद्य अर्पित करके स्वयं भी इसी का भक्षण करें और शेष सभी क्रियाओं को पूर्वतः करना चाहिए । उसी भाँति कार्तिक आदि मासों में गोमूत्र का प्राशन, महांग धूप, रक्त वर्ण के कमल पुष्पों द्वारा उन भास्कर की पूजा करके उन्हें कासार (कसेह) का नैवेद्य प्रदान करना चाहिए । १२-१४

एवं प्रति मास की पूजा में ब्राह्मण को दक्षिणा अवश्य प्रदान करना चाहिए । हे कृष्ण ! कपूर, चन्दन, मुस्ता (मोथा) अगुरु, तगर, सोंठ, मिर्च, पिपरामूल एवं मुगन्ध सिंह्लक मिलाकर बने धूप को महांग धूप बताया गया है जो सूर्य के लिए सदैव प्रिय है । १५-१६। इस प्रकार प्रत्येक पारण में विशेष

प्रीणनं चेष्टया भानोः पारणेदारणे गते । यथाशक्ति यथायोगं वित्तशाठधं विवर्जयेत् ॥१७
 सद्ग्रावेनैव सप्तांबः पूजितः प्रीयते यतः । पारणान्ते यथाशक्त्या पूजितः स्नापितो रविः ॥१८
 प्रीणितश्रेप्सितान्कामान्द्यादव्याहतं हरे । लेणा पुण्या पापहरा सप्तमी भर्वकामदा ॥१९
 यथाभिलिखितान्कामाँलभते गरुडध्वज । उपोष्यैतां श्रिभुवनं प्राप्तमिन्द्रेण वै पुरा ॥२०
 पुत्रं प्रापच्च सावित्री पुत्रांस्तु अदितिस्तथा । यदवः कामनां प्राप्तं धौम्यो वेदमवाप्तवान् ॥२१
 त्वपाप्ता भार्गवी कृष्ण शङ्करः शुद्धिमाप्तवान् । पितामहत्वं प्राप्तोऽहं तत्प्रसादाज्जनार्दिन ॥२२
 अन्यश्चाधिगताः कामास्तमाराध्य न संशयः । ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैशैः शूद्रैर्यैषिद्विरेव च ॥२३
 यं यं काममभिष्यतेततं प्राप्नोत्पुष्पेषणात् । जनः प्राप्नत्यसंदिग्धं भानोराराधनात्तुः ॥२४
 अपुत्रः पुत्रमाप्नोति रोगतश्चापि सोदते । रोगाभिभूत आरोग्यं कन्या विन्दति सत्पतिम् ॥२५
 समागत्य प्रवसित उपोष्यतदवाप्नुयात् । सर्वान्कामानवाप्नेति गोगतश्चापि सोदते ॥२६
 नापुत्रो नाधनो वापि न वानिष्टो न निर्घृणः । उपोष्यैतदद्रवतं मर्त्यः स्त्रीजनो वापि न्यायते ॥२७
 गोहेलिलोकमासाद्य सोदते शाश्वतीः समाः । गौरिकं यान्त्रभारुद्धस्तेजसा रविसन्निभः ॥२८

चेष्टाओं द्वारा सूर्य को प्रसन्न करना ही मुख्य बताया गया है। इसमें यथाशक्ति धन का व्यवहरना चाहिए कृपणता कभी नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसे कार्य में कृपणता निषिद्ध बतायी गयी है। १७।
 क्योंकि सद्ग्रावना रख कर ही पूजा करने से सात घोड़े पर अधिष्ठित होने वाले सूर्य प्रसन्न होते हैं। इसीलिए प्रत्येक पारण की समाप्ति में यथाशक्ति (सामग्रियों) द्वारा किये गये स्नान एवं पूजा से प्रसन्न होकर सूर्य उसे निर्वाध मनोवांछित सफलता प्रदान करते हैं। अतः हे हर! यह सप्तमी इस प्रकार पुण्य प्राप्त हरिणी, एवं समस्त कामनाएँ प्रदान करने वाली बतायी गयी है। १८-१९

हे गरुडध्वज! पहले समय में इन्द्र ने इसी के उपवास आदि द्वारा तीनों लोकों (के आधिपत्य) की प्राप्ति की है। २०। एवं इसी के द्वारा जिस प्रकार सावित्री ने पुत्र, अदिति ने अनेक पुत्रों, यदुवंशियों ने अपनी कामनाएँ, धौम्य ने वेद, तुमने पृथ्वी, शंकर ने आत्मशुद्धि और उसी की कृपावश मैते भी पितामहत्व की प्राप्ति की है। २१-२२। इसी भाँति अन्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र एवं स्त्रियाँ भी उस देव की आराधना करके कामनाएँ सफल की हैं। २३

मनुष्य जिस कामनावश (सप्तमी में) उनकी आराधना उपवास रहकर करता है उसकी वह कामना निश्चित सफल होती है। इसी प्रकार सूर्य की आराधना करके अपुत्री पुत्र, एवं सूर्य की प्राप्ति पूर्वक आनन्दानुभव, रोगी आरोग्य, कन्या उत्तम पति एवं प्रवासी निजगृह की प्राप्ति पूर्वक समस्त कामनाएँ सफल करता है तथा सूर्य लोक में आनन्दानुभव भी प्राप्त करता है। २४-२६। इसीलिए इस व्रत विधान के अनुष्ठान सुसम्पन्न करने पर कोई भी मनुष्य अपुत्री, निर्धन, दुःखी एवं धृणा का पात्र नहीं रह जाता है अपितु चाँदी द्वारा रचित विमान पर बैठकर सूर्य की भाँति तेजस्वी होकर सूर्य लोक की प्राप्ति कर अनेकों वर्ष आनन्दानुभव करता है। २७-२८। हे कृष्ण उपरोक्त यह (पुरुष) इस पृथ्वी पर कभी जन्मग्रहण कर

पुनरेत्य महीं कृष्ण धनाधनसमो नृः । भातते स्यान्न संदेहः प्रसादादगोपतेर्नरः ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ज्ञाने पर्वणि सप्तमीकल्पे कामदासप्तमीव्रतनिरूपणं
नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः । १०५।

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

पापनाशिनीव्रतविधिवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

पुनश्चेतन्महाभाग श्रूपतां गदतो मम । प्रोक्षतं खण्डे देवानां तिथिसाहात्म्यमुक्तमम् ॥१

विष्णुरुदाच

विजयातिजया चैव जयती च महातिथिः । त्वतः श्रुता सुत्रेष्ठ ब्रूहि मे पापनाशिनीम् ॥२
तथोत्तरायणं ब्रूहि शस्तं यद्ग्रासकरार्चने । यत्र सम्पूजितो भानुभवेत्सर्वाध्यायाशनः ॥
तन्मे कथय यत्नेन भक्त्या पृष्ठोऽक्षयं फलम् ॥३

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदक्षं तु रवेभवेत् । तदा स्यात्सा महापुण्या सप्तमी पापनाशिनी ॥४

सूर्य की अनुकम्पा द्वारा इन्द्र के समान निश्चित सर्वप्रिय राजा होता है । २९।

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में कामदा सप्तमी व्रत निरूपण नामक
एक सौ पाँचवा अध्याय समाप्त । १०५।

अध्याय १०६

पापनाशिनीव्रतविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे महाभाग ! देवताओं कि प्रिय इस उत्तम तिथि के माहात्म्य को मैं फिर कह रहा हूँ, सुनो ! १

विष्णु ने कहा—हे सुरश्रेष्ठ ! विजया, अतिजया, एवं जयती नामक महातिथियों को मैने आपसे सुन लिया है अतः अब मुझे पापनाशिनी (सप्तमी) तिथि तथा उत्तरायण के महत्व को बताने की कृपा करें जो सूर्य की पूजा के लिए अत्यन्त उत्तम बताया गया है तथा जिसमें पूजित होने पर सूर्य समस्त अद्यों के नाश करते हैं । मैं जानता हूँ कि भक्ति पूर्वक इस विषय के प्रश्न करने पर भी अक्षय फल की प्राप्ति होती है । २-३

ब्रह्मा बोले—शुक्ल पक्ष की सप्तमी में हस्त नक्षत्र की प्राप्ति होने से उस महापुण्य रूप वाली सप्तमी को पापनाशिनी बताया गया है । ४। उस तिथि में देवनायक एवं जगद्गुरु सूर्य की आराधना

तस्यां सम्पूर्ज्य देवेशं चित्रभानुं जगद्गुरुम् । सप्तजन्मकृतात्यापानमुच्यते नात्र संशयः ॥५
 यश्रोपवासं कुरुते तस्यां नियतमानसः । सर्वपापविमुक्तात्मा सूर्यलोके महीयते ॥६
 दानं यदीपते किञ्चित्भुद्दिश्य दिवाकरम् । होमो वा क्रियते तत्र तत्सर्वं चाक्षयं भवेत् ॥७
 एकं ऋग्वेदः पुरतो जप्तः श्रद्धापरेण तु । क्रग्वेदस्य समस्तस्य गच्छते सतकलं ध्रुवम् ॥८
 सामवेदफलं साम यजुर्वेदफलं यजुः । अशार्वा अश्वर्गीरसो निहिलं यच्छते रविः ॥९
 तात्का इव राजन्ते द्योतमना दिवानिशम् । समस्यर्च्य च सप्तम्यां देवदेवं दिवाकरम् ॥१०
 यत्र पापमरोषं वैनाशयत्यन्न भ्रास्करः । कर्तव्या सप्तमी कृष्ण तेनोक्ता पापनाशिनी ॥११
 अस्यां समस्यर्च्य र्विं याति सौरपुरं नरः । विनानवरमारुण्यं कर्पूरोद्भवमुत्तमम् ॥१२
 तेजसा कविसंकाशः प्रभया सूर्यसन्निभः । कान्त्यात्रेयतत्त्वः कृष्ण शौर्यं हरिसमः सदा ॥१३
 भोदते तत्र सुचिरं वन्दारकगणैः सह । पुनरेत्य भ्रं बृं कृष्ण भवेत् क्षमाधिपाधिः ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे बादे पर्वणि सन्तमीकल्पे पापनाशनीव्रतविधिवर्णनः

नाम षड्धिकशततमोऽध्यायः । १०६।

करने से सात जन्मों के पापों से मुक्ति प्राप्त होती है। इसमें कोई संशय नहीं। ५: जो संयम पूर्वक इसमें उपवास करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर सूर्य लोक की प्राप्ति करता है। ६। उस दिन सूर्य के उद्देश्य से किये गये दान और हवन सभी अक्षय फलदायक होते हैं; जिस भाँति ऋग्वेद के एक मन्त्र के उच्चारण करने से सम्पूर्ण ऋग्वेद के समान फल की प्राप्ति होती है। उसी भाँति यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्व वेदों के एक एक मंत्रों के उच्चारण करने से सूर्य उन वेदों के समस्त फलों को प्रदान करते हैं। ७-९। सप्तमी में देवाधिदेव सूर्य का भली भाँति पूजन करने से ताराओं की भाँति प्रकाशपूर्ण होकर वह रात दिन सुशोभित रहता है। १०। एवं भास्कर उसके समस्त पापों का नाश करते हैं। हे कृष्ण! इसी प्रकार वह पापनाशिनी बतायी गयी है। अतः इसके विधान को अवश्य सुसम्पन्न करना चाहिए। ११। क्योंकि इसमें सूर्य की आराधना करके मनुष्य सूर्य लोक की प्राप्ति ऐसे विमान पर बैठकर करता है जो कपूर से निर्मित रहता है तथा हे कृष्ण! वह शुक्र के समान तेज सूर्य की भाँति प्रभा, चन्द्रमा की भाँति कांति और हरि के समान शौर्य की प्राप्ति पूर्वक देवताओं के साथ चिरकाल तक आनन्दानुभव करता है और पश्चात् यहाँ आने पर वह राजाओं का राजा (महाराजा) होता है। १२-१४

श्री भविष्य महापुराण में द्राहापर्व के सप्तमी कल्प में यापनाशिनी व्रत विधान वर्णन
नामक एक सौ छठवाँ अध्याय समाप्त । १०६।

अथ सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

भानुपादद्वयव्रतदर्जनम्

ब्रह्मोवाच

तथान्यदपि धर्मज्ञ भगुञ्ज गदतो मम । पदद्वयं जगद्वानुद्वेददस्य गोपते: ॥१॥
यदेकपादपीठं हि तत्र न्यस्तं पदद्वयम् । स्वयमंशुमता कृष्ण लोकानां हितकाम्यया ॥२॥
वामनस्य पदं कृष्ण ज्ञेयं है उत्तरायणम् । देवाद्यैः सकलैर्वर्णां दक्षिणं दक्षिणायणम् ॥३॥
अहं त्वं च सदा कृष्ण दक्षिणं पादमर्चतः । क्षम्भान्वितौ भास्करस्य हरीशौ वाममर्चतः ॥४॥
तस्मिन्यः प्रत्यहं सप्त्यग्देवदेवस्य मानवः । करोत्याराधनं तस्य तुष्टः स्याद्वानुमान्तसदा ॥५॥

विष्णुरुचाच

कथमाराधनं तस्य देवदेवस्य गोपते: । द्वितीये देवशार्दूल तत्समाख्यत्वमर्हसि ॥६॥

ब्रह्मोवाच

उत्तरे त्वयने कृष्ण न्नातो नियतमानसः । घृतक्षीरादिभिर्द्वयं न्नापयेत्तिमिरापहम् ॥७॥
चारुवस्त्रोपहारैश्च पुष्पधूपानुलेपनैः । समभ्यर्च्य ततः सम्यग्न्नाहाणानां च तर्जणैः ॥८॥
पदद्वयं ब्रतं यस्य गृह्णीयाद्वानुतत्परः । वन्देत्नातश्चिन्तभग्नुं ततश्च गरुडध्वज ॥९॥

अऽध्याय १०७

भानुपादद्वयव्रत विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे धर्मज्ञ ! देवाधिदेव एवं जगत् के धारण करने वाले सूर्य के (उत्तरायण और दक्षिणायन रूप) दोनों पदों (चरणों) को मैं बता रहा हूँ ॥१॥ हे कृष्ण ! लोक के हित के लिए स्वयं अंशुमाली (सूर्य) ने उस सुमेरु पर्वत पर अपने उन दोनों चरणों को स्थापित किया है जिसमें बामन रूप सूर्य के उस देव-वन्दनीय बाम पद को उत्तरायण और दक्षिण पाद को दक्षिणायन बताया जाता है ॥२-३॥ हे कृष्ण ! मैं और तुम उनके दक्षिणापाद की अर्चना करते हो, तथा अन्य इन्द्र आदि देव श्रद्धालु होकर भास्कर के बाम पाद की अर्चना करते हैं ॥४॥ उसमें जो मनुष्य देवाधिदेव की प्रतिदिन पूजा करता है, उसके लिए सूर्य सदैव प्रसन्न रहते हैं ॥५॥

विष्णु ने कहा—हे देवशार्दूल ! देवाधिदेव सूर्य की आराधना कैसे की जाती है आप उसके विधान को बताने की कृपा करें ॥६॥

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! उनके उत्तरायण रहने के दिनों में संयम पूर्वक स्नान करके धी दूध आदि द्वारा अन्धकाश्लाशक (सूर्य) का स्नान कराये ॥७॥ पश्चात् मुन्दर वस्त्रों के उपहार, पुष्प, धूप एवं लेपन अंपित करें तथा ब्राह्मणों की तृप्ति करते हुए उनकी अर्चना एवं ब्रत की समाप्ति करें ॥८॥ हे गरुडध्वज ! सूर्य के लिए तत्पुर होकर उनके पद द्वय (दक्षिणायन और उत्तरायण रूप) ब्रत का आरम्भ करना

धुक्त्वान्नं चित्रभानुं तु चित्रभानुं ब्रजस्तथा । स्वपञ्चिबुध्यन्प्रणमन्होमें कुर्वस्तथार्चयन् ॥१०
 चित्रभानोरनुदिनं करिष्ये नामकीर्तनम् । यावदद्य दिनात्प्राप्तं कलशो दक्षिणायनम् ॥११
 चलिते हुक्ते चैव वेदारन्भेऽपिवा सदा । तापद्वक्ष्ये चित्रभानुं यावदेवोत्तरायणम् ॥१२
 यावज्जीवं च यत्किञ्चित्ज्ञानतोजानतोऽपि वा । करिष्येऽहं तत्रा चैव कीर्तयिष्यामि तं प्रभुम् ॥१३
 गदानुतं किञ्चिद्वद्वक्ष्ये तदा दक्ष्यामि तद्वचः । अज्ञानादह वा ज्ञानात्कीर्तयिष्यामि तं प्रभुम् ॥१४
 षण्मासस्मेकनन्सा चित्रभानुमयं परम् । त स्मरन्लरणे याति यां गतिं सास्तु से गतिः ॥१५
 षण्मासाभ्यन्तरे मृत्युर्यदि तस्मिन्भवेन्मयम् । तत्त्वज्ञ श्रावस्त्वेह स्वप्नमात्रः नियेदितः ॥१६
 परमात्ममयं ब्रह्म चित्रभानुभ्यं परम् । यमं ते संस्मरिष्यामि स मे भानुः परा गतिः ॥१७
 यदि प्रातस्तथा सायं मध्याह्ने वा जपाम्यहम् । षण्मासाभ्यन्तरे न्यासः कृतो व्रतमयो मया ॥१८
 तथा कुरु जगन्नाथ स्वर्गलोकपरायणः । चित्रभानो यथा शक्त्या भवान्भवति मे गतिः ॥१९
 एवमुच्चार्य षण्मासं चित्रभानुमयं व्रतम् । तादग्निष्ठादपेद्यावत्सम्पूर्णं दक्षिणायनम् ॥२०
 ततश्च प्रीणनं कुर्याद्यथाशक्त्या विभावसोः । भोजयेद्वाहृणात्निव्यान्मौमांश्चापि सदक्षिणात् ॥२१

बताया गया है। जिसमें चित्रभानु नामक सूर्य की स्नान पूर्वक चन्दन आदि धारण करके ऐसी प्रतिज्ञा की जाती है कि भोजनोपरांत भी चलते, शयन करते, जागते तथा प्रणाम, हवन और अर्चना करते समय भी मैं चित्रभानु नामका कीर्तन करता रहूँगा और उसी भाँति के नाम कीर्तन करता रहे । १-११। तथा प्रतिज्ञा करते समय निम्नलिखित बातें भी उसमें जोड़ देनी चाहिए—चलते समय, हुक्कार करते समय (गर्वोक्ति के) समय और वेदारम्भ समय में भी जद तक उत्तरारण का समय रहेगा ‘चित्र भानु’ नाम का नामोच्चारण (कीर्तन) करता रहूँगा, पश्चात् प्रतिदिन ऐसा कहता रहे कि जब तक मेरा जीवन है, उसमें ज्ञान-अज्ञान वश जो कुछ कर्तव्य कर्हूँगा मैं (प्रतिक्षण) उसी नाम का कीर्तन करता रहूँगा । १२-१३। एवं कभी कुछ असत्य भाषण के समय भी वही कहता रहूँगा और इस प्रकार मैं ज्ञान-अज्ञानवश उसी प्रभु का निरन्तर कीर्तन ही करता रहूँगा । १४। इस भाँति छः मास तक एकचित्त होकर चित्रभानु के नामका तन्मय होकर कीर्तन करते हुए मरण हो जोने पर जो गति प्राप्त होती है वही गति मुझे भी तब प्राप्त हो और छः मास के भीतर यदि मेरा जीवन समाप्त भी हो जाये तो भी हानि नहीं होगी क्योंकि इसीलिए तन्मय होकर मैंने अपने आप को उन्हें समर्पित कर दिया है । १५-१६। परमात्मा ब्रह्म रूप एवं चित्रभानु रूप उस सूर्य का स्मरण मैं अन्त में करता रहूँगा क्योंकि वही मेरी उत्तम गति है । १७। और प्रातः काल मध्याह्न तथा सायंकाल में उन्हों के नाम का जप करता रहूँगा । इस प्रकार मैंने छः मास के मध्य में अपने सभी कर्तव्य को व्रतमय कर दिया है । १८। हे जगन्नाथ ! आप स्वर्ग लोक के निवासी हैं, हे चित्रभानु ! यथाशक्ति मैं (आराधना) कर्हूँगा आप ही मेरी गति रूप हो । १९। इस प्रकार कहते हुए छः मास के इस चित्रभानुमय व्रत का पालन दक्षिणायन के प्रारम्भ तक करना चाहिए । २०। पश्चात् यथाशक्ति विभावम् (सूर्य) को प्रसन्न करके दिव्य और भौम ब्राह्मणों को भोजन तथा दक्षिणा प्रेषित

पुण्याल्यानकथां कृद्यन्तार्द्धस्य तथापतः । पूजयेद्वाचकं भक्त्या यथाशक्त्या^१ च लेखकम् ॥२२
एवं व्रतमिदं कृष्ण यो धारयति मानवः । इहैव देवशार्दूल मुच्यते सर्वकिल्बर्णे ॥२३
षष्ठ्मासाभ्यन्तरे चास्य भरणं यदि जायते । प्राप्नोत्यनशनस्योक्तं यत्कलं तदसंशयम् ॥२४
पदद्वयं च देवस्य तस्यक्षदेन सदाचितम् । भवत्येतज्जगौ भानुः पुरा चन्द्राय पृच्छते ॥२५
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्म पर्वणि सप्तमीकल्पे भानुपादद्वयव्रतवर्णं

नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः । १०७।

अथाष्टाधिकशततमोऽध्यायः

सर्वार्थादिप्रतिसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोदाच

कृष्णपक्षे^२ तु माघस्य सर्वाप्ति सप्तमी भृणु । यामुपोष्य समाप्नोति सर्वान्कामांस्तथा पराम् ॥१
पाखण्डादिभिरालापं न हुर्याद्यनुत्परः । पूजयेत्प्रणतो देवमेकाग्रमनसा चुभद् ॥२
माघादैः पारणं मातैः चंडभिः साङ्कान्तिकं स्मृतम् । मार्त्तण्डः प्रथमं नाम द्वितीयं कः प्रकोर्त्ततम् ॥३
तृतीयं चित्रभानुश्च विभावनुरुतः परम् । भगेति पञ्चमं ज्ञेयं षष्ठं हंसः स उच्यते ॥४

करे । २१। पुनः सूर्य के सम्मुख भक्ति पूर्वक कथावाचक तथा लेखक का यथाशक्ति पूजन करके उनके द्वारा पवित्र कथाओं को मुने । २२। हे देवशार्दूल ! हे कृष्ण ! इस प्रकार का मनुष्य इस व्रत विधान को समाप्त करता है तो उसे यहाँ ही समस्त पातकों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है । २३। यदि छह मास के मध्य में उसका मरण हो जाये, तो अनशन के सभी फल उसे प्राप्त होंगे इसमें संशय नहीं । २४। और सूर्य के दोनों पदों की विधिपूर्वक अर्चना के फल भी उसे प्राप्त होंगे । ऐसा चन्द्रमा के पूछने पर सूर्य ने स्वयं बताया था । २५

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में भानुपादद्वयव्रत वर्णन नामक
एक भी सातवां अध्याय समाप्त । १०७।

अध्याय १०८

सर्वार्थादिप्रतिसप्तमी विधि का वर्णन

बहुग बोले—माघ की शुक्ल सप्तमी जिसमें उपदास आदि करने पर सभी कामनाएँ सफल होती हैं, सर्वाप्ति' नामक बतायी गई है, उसे बता रहा हूँ मुनो ! उस दिन व्रत कर पालंडी आदिकों से बातचीत न कर केवल एकाग्रचित्त होकर कल्पाण रूप देव (सूर्य) की नव्रतापूर्वक सविधान पूजा ही करना बताया गया है । माघ आदि छह मास के पारण विधान जो संकान्ति काल में मुसम्पन्न करने के लिए बताये गये हैं उसमें पृथक्-पृथक् मार्त्तण्ड, अर्क, चित्रभानु; विभावसु भग और हंस के क्रमशः नामोच्चारण पूर्वक कौर्तन और पूजन करना चाहिए । १-४

१. धराधरसमन्वितः । २. शुक्लपक्षे ।

पूर्णेषु दद्भु मासेषु पञ्चगव्यमुदाहृतम् । स्नाने च प्राशने चैद प्रशस्तं पापनाशनम् ॥५
 प्रणानं देवदेवस्य कृत्वा पूजां यथाविधि । विप्राय दक्षिणां द्याच्छ्रद्धानश्च शक्तिः ॥६
 पारणान्ते च देवस्य प्रीणनं भक्तिपूर्वकम् । कुर्वीत भक्त्या विधिवद्विभक्त्या तु गृह्णते ॥७
 नक्तमेजो तथा विष्णो तैलकारविर्जितः । कृष्ण जागरणं रात्रौ सप्तम्यामय वा दिने ॥८
 एतामुषित्वः धर्मज्ञो हंसप्रीणनतत्परः । सर्वान्कामानवाप्नेति सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९
 यतः सर्वमवाप्नोति यद्यदिच्छति चेतसा । अतो लोकेषु दिव्याता सर्वथाविप्तिसप्तमी ॥१०
 कृताभिलिखिता हृषा प्रारब्धा धर्मतत्परैः । पूरयत्यङ्गिलान्कमात्संजुता च दिनेदिने ॥११
 तमाराधयस्व र्त्वं तथाथ गरुडध्वज । यथाराधितवान्भानुं भगणाधिपतिः पुरा ॥१२

इहि श्रीभदिष्ये महापुराणे ज्ञाहो पर्वणि सप्तमी दल्पे सर्वार्थवाप्तिसप्तमीवर्णनम्
 नामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः । १०८।

छठे मास के व्यतीत होने पर पञ्चगव्य द्वारा स्नान एवं प्राशन करे जो इसके लिए अति उत्तम तथा पापनाशक बताया गया है ॥५। इस प्रकार देवाधिदेव (सूर्य) की विधान पूर्वक प्रणाम एवं पूजा समाप्ति के उपरांत भक्ति पूर्वक यथाशक्ति ब्राह्मणों को दक्षिणा प्रदान कर पारण के समाप्ति में सूर्य देव को भक्ति पूर्वक प्रसन्न करना नितान्त आवश्यक होता है क्योंकि भक्तिपूर्वक विधान द्वारा (वस्तुएँ) अप्यित करने पर सूर्य उस (भक्त को) अपना आत्मीय बना लेते हैं ॥६-७। हे विष्णो ! नक्त व्रत (इसमें भोजन) तेल एवं तमक के त्याग पूर्वक सप्तमी में दिन रात का जागरण करना चाहिए दर्श प्रकार धर्मज्ञ ! सूर्य की प्रसन्नता के लिए कटिबद्ध उस पुरुष की समस्त कामनाएँ सफल होती हैं एवं उसे समस्त पातकों से मुक्ति भी प्राप्त होती है ॥८-९। अतः जिस-जिस पदार्थ की वह प्राणी इच्छा करता है उन तभी की सफलता प्राप्त होती है, अतः लोक में यह सर्वाप्ति सभी मनोरथों को सफल करने वाली सप्तमी के नाम से विस्थायत है ॥१०। यदि धर्मिक पुरुषों द्वारा (विधान पूर्वक) इसकी मुसमाप्ति की गई हो या केवल उस विषय की अभिलाषा ही की गई हो अथवा प्रतिदिन इसकी चर्चा ही सुनी गई हो तो वैसा करने पर भी यह सप्तमी उसे निखिल कामनाएँ प्रदान करती है ॥११। हे गरुडध्वज ! पहले जिस प्रकार चन्द्रमा ने उस विधान की समाप्ति की है, उसी भाँति तुम भी सूर्य की आराधना करो ॥१२

श्री भविष्य भगवान्पुराण में ज्ञाहपर्व के सप्तमी कल्प में सर्वथावाप्ति सप्तमी वर्णन
 नामक एक ती आठवीं ऋच्याय समाप्त । १०८।

अथ नवाधिकशततमोऽध्यायः

मार्तण्डसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोदाच

मार्तण्डसप्तमीं कृष्ण यथान्यां^१ वच्चि तेऽनघ । शृणुष्वैकमना वीर गदतो मे शुभप्रदाम् ॥१
 यस्याः सम्यग्नुष्ठानत्प्रापोत्यनिमतं फलम् । पौषे मासे सिते पक्षे सप्तम्यां समुपोषितः ॥२
 सम्यक्सम्पूज्य मार्तण्डं मार्तण्ड इति दै जपेत् । पूजयेत्कुतपं भक्त्या श्रद्धया परयान्वितः ॥३
 द्वूपपुष्पोपहराद्यैरूपवातैः समाहितः । मार्तण्डेति जपन्नाम पुनस्तद्गतमानसः ॥४
 विप्राय दक्षिणां दद्याद्यथाशक्त्या लगध्वज । स्वपन्दिवोधन्स्खतितो मार्तण्डेति च कीर्तयेत् ॥५
 पाषण्डादिविकर्मस्थैरालापं च विवर्जयेत् । गोमूत्रं गोपयो वापि दधि क्षीरमयापि वा ॥६
 गोदेहतः समुद्भूतं प्राश्नीयादत्मशुद्धये । द्वितीयेऽहितं पुनः स्नातस्तथैवाभ्यर्चनं रवेः ॥७
 तेनैव नाम्ना सम्भूय दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् । ततो भुञ्जीत गोदोहसम्भूतेन समन्वितम् ॥८
 एवमेवाखिलान्मासानुपोष्य प्रयतः शुचिः । दद्यादगवादिकं विप्रान्त्रिमासं^२ स्वशक्तिः ॥९
 धारिता चेत्पुर्नवर्षे यथाशक्त्या गवादिकम् । दत्त्वा परं रतेभूयः शृणु यत्कलमश्नुते ॥१०

अध्याय १०९

मार्तण्डसप्तमी विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे अनघ ! हे कृष्ण ! कल्याणदायिनी उस मार्तण्ड सप्तमी को मैं बता रुहा हूँ, जिस के अनुष्ठान करने से अभिलिपित (वस्तु) को प्राप्ति होती है एकाप्रति चित्त होकर सुनो ॥१। पौष मास की शुक्ल सप्तमी में उपवास पूर्वक (सूर्य की) पूजा करके 'मार्तण्ड' नाम का जप करना बताया गया है । इसका विवरण इस प्रकार है । अत्यन्त श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक धूप एवं पुष्पादि उपहारों द्वारा उपवास पूर्वक सूर्य की पूजा करने के पश्चात् ध्यानावस्थित होकर 'मार्तण्ड' नाम का जप करे ॥२-४। हे सगध्वज ! पुनः यथाशक्ति व्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करने के उपरांत सोते जागते एवं मूर्छितावस्था में भी मार्तण्ड नाम का ही कीर्तन करता रहे ॥५। (उस दिन) पाषण्डी आदि दुराचारियों के साथ बात चीत का भी सम्पर्क न रखे । गोमूत्र, दूध, दही या कोई भी (वस्तु) जो गाय के देह से उत्पन्न हुई हो, अत्म शुद्धि के लिए उसका प्राशान करे । पुनः दूसरे दिन स्नान करके उसी भाँति सूर्य का पूजन तथा उन्हीं के नाम का कीर्तन करते हुए व्राह्मण को दक्षिणा प्रदान करे । पश्चात् दूध मिश्रित वस्तु (खोर) का भोजन कराये ॥६-८। इस प्रकार सभी मासों के ब्रतों की अत्यन्त पवित्रता पूर्वक विधान पूर्वक समाप्ति करते हुए प्रत्येक मास में अपनी शक्ति के अनुसार व्राह्मण के लिए गाय आदि वस्तु समर्पित करता रहे ॥९। वर्षे के प्रारम्भ में यदि पुनः इस सप्तमी व्रत का अनुष्ठान करे तो अपनी शक्ति के अनुसार सूर्य के लिए अधिक से अधिक गाय आदि वस्तुएँ अवश्य समर्पित करे । इस प्रकार उसके जो फल प्राप्त होते हैं उन्हें मैं बता

१. यथान्यायं च वच्चि ते । २. विद्वान् ।

स्वर्णशृंगां च पञ्चम्यां षष्ठ्यां च बृष्टभं नरः । प्रतिमासं द्विजातिभ्यो यदृत्वा फलमश्नुते ॥११

तत्प्राप्नोत्यखिलं सम्यग्व्रतमेतदुप्योदितः । तं च लोकमवान्नोति मार्तण्डो यत्र तिष्ठति ॥१२

शाण्डेलेयसप्तः कृष्ण तेजसा नाश्र संशयः । मार्तण्डसप्तमीमेतामुपोद्यैते गणा दिवि ॥१३

विद्योतमाना दृश्यन्ते लोकैरद्यापि भूधर । तत्सात्वमादिदेवेशं घहेण भास्करं रदिष्य ॥

अनयाच्य गोविन्दं गोप्तिं गोलसन्निभम् ॥१४

इति श्रीभविष्णे महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे मार्तण्डसप्तमीवर्णेनम्

नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः । १०९।

अथ दशाधिकशततमोऽध्यायः

सप्तमीकल्पेऽनन्तरसप्तमीव्रतवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां मासि भाद्रपदेऽच्युत । प्रणस्य शिरसादित्यं पूजयेत्सप्तवाहनम् ॥१

पुष्पधूपादिभिर्वीरं कुलपानां च तर्पणः । पाषण्डादिभिरालापमकुर्वन्नियतात्मवान् ॥२

विप्राय दक्षिणां दत्त्वा नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः । तिष्ठन्नजन्प्रस्थितश्च क्षुतप्रस्खलितादिषु ॥३

रहा हूँ सुनो ! । १०। उसी भाँति पञ्चमी में सुवर्ण द्वारा अलकृत किये हुए सीगों वाली गाय, षष्ठी में बैल के दान प्रतिमास में करने से मनुष्य जिस फल की प्राप्ति करता है, उस समस्त फल की प्राप्ति इस अनुष्ठान द्वारा होती है तथा मार्तण्ड जहाँ स्वयं निवास करते हैं उस लोक की भी प्राप्ति उसको हो जाती है । ११-१२। हे कृष्ण ! निश्चित उसका तेज अग्नि के समान हो जाता है । हे भूधर ! इस मार्तण्ड नामक सप्तमी के अनुष्ठान द्वारा ही आकाश में ये (तारों के) समूह जिन्हें लोक देखते हैं, आज भी प्रकाशित होकर विद्यमान हैं । अतः हे गोविन्द ! तुम भी इस सप्तमी के अनुष्ठान द्वारा आदि देतनायक, ग्रहेश, भास्कर, किरणमाली एवं गोलाकार उस सूर्य की आराधना करे । १३-१४

श्री भविष्णु महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में मार्तण्ड सप्तमी वर्णन

नामक एक सौ नवाँ अध्याय समाप्त । १०९।

अध्याय ११०

अनंतरसप्तमीव्रत विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे अच्युत ! भादों की शुक्ल सप्तमी में नतमस्तक होकर (प्रणाम पूर्वक) सात घोड़ों की सवारी पर चलने वाले आदित्य की पूजा करनी चाहिए । १। हे वीर ! पुष्प एवं धूप आदि द्वारा मन्दोष्ण सूर्य को प्रसन्न करते हुए उस संयमी को चाहिए कि (उस दिन) पाषण्डी आदि अनाचारियों के साथ किसी प्रकार की बातें न करे । २। तथा ब्राह्मण को दक्षिणा प्रदान कर रात में मौन होकर स्वयं भी भोजन करे, और कहीं भी ठहरते, चलते, यात्राओं में तथा छीकते एवं मूर्च्छावस्था में भी आदित्य नाम का

आदित्यनामस्नरणं कुर्वन्नेत्वारणं तथा । अनेनैव विधानेन मासान्द्रादश वै क्रमात् ॥४
उपोष्य पारणे पूर्णे समन्वच्च जगद्गुरुम् । एवेन श्रावणेन ह ग्रीणयन्पुष्टिमश्नुते ॥५
अनन्तं श्रावणेन ह यतः फलमुदाहृतम् । तेनादित्यं समभ्यर्च्च तदेव लभते फलम् ॥६
एवं यः पुरुषः कुर्यादादित्याधाराधनं शुचिः । प्राप्येह विषुलं भोगं धर्मसर्थं तथाव्ययम् ॥७
अमुत्रा लोकमायाति दिव्ये खे गोतसपुते । नारी वा स्वर्गमन्येत्य हानन्तं फलमश्नुते ॥८

इति श्रीभग्विष्ये महापुराणे ब्राह्मो दर्वणि सप्तकल्पेऽनन्तरसप्तमीव्रतवर्णनम्

नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः । ११०।

अथैकादशाधिकशततमोऽध्यायः

सप्तमीकल्पेऽभ्यङ्गसप्तमीवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

श्रावणे मासि देवाप्यं सप्तम्यां सप्तवाहनन् । शुक्लपक्षे समभ्यर्च्च पुष्पधूपादिभिः शुचिः ॥१
पाखण्डादिशिरालापमकुर्वन्नियतात्मवान् । विप्राय दक्षिणां दत्त्वा नन्तं भृञ्जीत वाय्यतः ॥२
अभ्यङ्गं देवदेवस्य वर्षे वर्षे नियोजयेत् । सप्तम्यामन्नमेवाप्यं शुभं शुक्लं नवं तथा ॥३

ही उच्चारण करता रहे । इन सुन्दर बारहो मासों के द्वतों को क्रमणः विधान पूर्वक समाप्ति करने के उपरांत पारण में भी उपवास पूर्वक जगद्गुरु (सूर्य) की अर्चना करके पुण्य कथाओं के सुनाने वे द्वारा उन्हें (सूर्य को) प्रसन्न करे । ३-५। अनन्त की कथा सुनने से जिस काल फल की प्राप्ति होती है, सप्तमी के द्वारा सूर्य की विधान पूर्वक पूजा करने से भी वही फल प्राप्त होता है । ६। इस प्रकार जो पुष्प पवित्रता पूर्ण सूर्य की आराधना करता है, अत्यन्त भोग, धर्म तथा अधीर धन की प्राप्ति पूर्वक गायन वाद्य से मन्त्रूत होते हुए उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । इस भाँति आराधना करने वाली, स्त्री ही क्यों न हो उसे भी स्वर्ग में अनन्त फलों की प्राप्ति होती है । ७-८।

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में अनन्तर सप्तमी व्रत वर्णन

नामक एक सौ दशवाँ अध्याय समाप्त । ११०।

अध्याय १११

अभ्यंगसप्तमीव्रत विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—श्रावण मास के शुक्ल सप्तमी में पवित्र होकर पुष्प एवं धूप आदि द्वारा देव श्रेष्ठ सूर्य की आराधना करते हुए उस दिन संयम पूर्वक रहे । क्योंकि पाखण्डी आदि दुराचारियों से किसी प्रकार की आतं न करने के लिए उसे विषेष सर्तक रहना चाहिए, तथा अनुष्ठान में ब्राह्मणों को दक्षिण प्रदान कर रात में मौन होकर उसे भोजन करना बताया गया है । १-२। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष में सूर्य के लिए अंग में लगाने के लिए अभ्यंग (तेल पर उपटन) प्रदान करना चाहिए । उसी प्रकार सप्तमी में सूर्य के लिए शुभ्र, शुक्ल, नवान्न (खीर) अर्पित करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार वाद्य आदि भी प्रदान करे । इस

विभवेषु तथान्येषु वादित्राण्येव वै विदुः । तथा देवस्य मासेऽस्मिन्नन्यज्ञः परिगीयते ॥४
गन्तुचाराधपेद्भूक्त्या भास्करस्य नरोऽच्युत । अभ्यज्ञं विधिवच्छक्त्या कृत्वा ब्राह्मणभोजनम् ॥५
शङ्खतृप्रनिनादैश्च ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः । स दिव्यं यानमाल्ढो लोकमायाति हेतिनः ॥६
अनेनैव विधानेन मासान्द्रादश वै क्रन्तात् । उपोष्य पारणे पूर्णे दद्याद्ब्रिप्राय दक्षिणाम् ॥७
व्रतं यः पुरुषः कुर्यादादित्याराधनं शुचिः । स गच्छेत्परमं लोकं दिव्यं वै वनमःतिनः ॥८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पेऽयज्ञसप्तमीवर्णनम्
नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः । १११।

अथ द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

तृतीयपदव्रतवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

एवं कृष्ण सदा भानुर्नर्भक्त्या पथाविधिः । फलं ददात्यसुलभं सलिलेनापि पूजितः ॥१
न भानुर्जीवदानेन न पुष्टैर्न फलैस्तथा । आराध्यते मुशुद्धेन हृदयेनैव केवलम् ॥२
रागादपेतं हृदयं वाग्दुष्टा नानृतादिभिः । हिसाविरहितं कर्म भास्कराराधनत्रयम् ॥३

भाँति इस मास की सप्तमी में भी सूर्य के लिए अम्यंग समर्पित करने का विधान कहा गया है । ३-४। हे अन्युत ! जो मनुष्य भक्ति पूर्वक ब्राह्मण भोजन अम्यंग प्रदान कर उनकी आराधना करता है उसे शंख भेरी की धनि एवं ब्रह्म घोपों (मांगलिक पाठों) के समेत दिव्य विमानं पर बैठकर सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । ५-६। इस प्रकार क्रम से बारहों मासों के व्रत विधानों की समाप्ति करके पारण में उपवास पूर्वक (उनकी पूजा के अनन्तर ब्राह्मण को दक्षिणा समर्पित करना चाहिए । ७। जो पुरुष पवित्रतापूर्ण इस व्रत विधान द्वारा सूर्य की आराधना करता है, उसे वनमाली के दिव्य लोक की प्राप्ति होती है । ८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में अम्यंग सप्तमी वर्णन नामक
एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त । १११।

अध्याय ११२

तृतीयपद व्रत के विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! यदि इस प्रकार मनुष्य भक्ति पूर्वक विधान द्वारा केवल जल मात्र से ही सूर्य की सदा पूजा करे तो वे उसे वह समस्त दुर्लभ फल प्रदान करते हैं । १। क्योंकि किसी प्रकार की हिसा तथा पुष्पों एवं फलों द्वारा सूर्य की आराधना नहीं की जाती है अपितु केवल शुद्ध हृदय से पूजा की जाती है । २। रागादि दोष रहित शुद्ध हृदय, असत्य आदि दोष रहित वाणी तथा हिसा शून्य कर्म ये तीनों सूर्य की आराधना में प्रशस्त बताये गये हैं । ३। क्योंकि समाधि, दोष दूषित चित द्वारा आराधना करने पर

रागादिवृष्टिते चित्ते नास्पन्दी तिमिरापहः । बध्नाति तं नरं हंसः कदाचित्कर्दमाम्भसि ॥४
 तमसो नाशनायालं चेन्दोलेखा हृजनारतम् । हिंसादिवृष्टिं कर्म केशवाराधने कुतः ॥५
 जनश्चित्तात्रसादादृ न चाप तिमिरापहम् । तस्मात्सत्यस्वभावेन सत्यवाक्येन चाच्युत ॥६
 अर्हिसकेन चादित्यो निसगर्दिदं तोषितः । सर्वस्वमणि देवाय यो दद्यात्कुटिलाशयः ॥७
 न नैवाराधयेदेवं देवदेवं दिवाकरम् । रागादपेतं हृदयं कुरु त्वं भास्करार्णजम् ॥
 ततः प्रापयसि दुष्प्राप्यापयत्नेनैत भास्करम् ॥८

निष्णुरुवाच

देवेशः कथितः सन्यक्तकाम्योऽयं भास्करो मयि । आराधनविधिं सर्वं भूयः पृच्छामि तं वद ॥९
 कुले जन्म तथारोग्यं धनवृद्धिश्च दुर्लभा । त्रितयं प्राप्यते येन तत्मे वद जगत्पते ॥१०

ब्रह्मोवाच

मासे तु माघे सितसप्तमेऽह्नि हस्तर्क्षयोगे जगतः प्रसूतिम् ।
 सम्पूर्ज्य भानुं विधिनोपेवासी सुगन्धधूपात्मवरोपहारैः ॥११
 गृही तु पुष्यैः प्रतिपाद्य पूजां दानादियुक्तं व्रतमब्दमेकम् ।
 दद्याच्च दानं मुनिपुङ्गवेभ्यस्तत्कथ्यमानं विनिबोध धीर ॥१२

सूर्य कभी प्रसन्न नहीं होते हैं क्या पङ्क दूषित जल में अपने रहने का भ्रम मनुष्य के हृदय में उत्पन्न कर (हंस) वहाँ कभी उसे अपने लिए अनुरक्त कर सकते हैं । अर्थात् कभी नहीं, क्योंकि वह (हंस) तो ऐसे स्थान में कभी रहेगा ही नहीं । ४। जब चन्द्रमा की किरणें अविरत बादलों से अनावत होने पर ही तम का नाश करती है, तो भला भगवान् की आराधना के लिए हिंसा आदि दोष दूषित कर्म प्रशस्त कहे जा सकते हैं । ५। उस प्रकार अप्रसन्न होकर (दोष-शक्ति-एवं हृदयहीन) होकर मनुष्य अन्धकार नाशक (सूर्य) को कैरो प्राप्त कर सकता है? हे अच्युत! इसलिए सत्यस्वभाव, सत्यवाक्य एवं अहिंसक कर्म द्वारा आराधना करने पर सूर्य स्वभावतः प्रसन्न हो जाते हैं । यद्यपि कुटिल मनुष्य सूर्य के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर दे तो भी उससे देवाधिदेव सूर्य की आराधना समुचित रूप से सम्पन्न हुई ऐसा कभी नहीं कहा जायेगा । इसलिए रागादि दोष हीन अपने हृदय को तुम भास्कर के लिए अवश्य समर्पित करो, क्योंकि इसी प्रकार की आराधना करने पर तुम्हें अनावास दुष्प्राप्य भास्कर की प्राप्ति अवश्य होगी । ६-८

विष्णु ने कहा—यद्यपि आप ने मेरे लिए देव नायक सूर्य की काम्य आराधना के विधान को बतादिया है किन्तु मैं फिर भी उसे सुनना चाहता हूँ । ९। हे जगत्पते! उत्तम कुल में जन्म, आरोग्य एवं दुर्लभ धन की वृद्धि ये तीनों जिसके द्वारा प्राप्त हो सके मुझे आप वही बतायें । १०

ब्रह्मा बोले—माघ मास की शुक्ल सप्तमी के दिन हस्त नक्षत्र के समागम होने पर उपवास रहकर सुगन्ध, धूप एवं अन्नादि के उपहारों द्वारा जगत् के कारण भूत सूर्य की आराधना करनी चाहिए । ११। इस प्रकार गृहस्थ पुरुषों के समर्पण पूजा तथा दान आदि करने के द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करते हुए अपने पूर्ण वर्ष के व्रत विधानों को मुसम्पन्न करना चाहिए ऐसा कहा गया है जिसमें श्वेष मुनियों को ही दान लेने का विधान है । हे वीर! उन सब को मैं विश्वस्त रूप से बता रहा हूँ । सुनो! । १२। उपरोक्त

वज्रं तिलान्वीहि॒यवान्हि॒रण्यं यवान्श्वमन्मः करकामुपानहन् ।
 छत्रोपपञ्चं गुडफेणिताद्यं दद्यात्कमाद्रस्तु अनुक्रमेण ॥१३
 यहोष॑ वर्षे विधिनेदितेन यस्यां तिथौ लोकगुणं प्रपूज्य ।
 अशसन्तनान्यात्मविशुद्धिहेतोः स्मृत्यनानोह निबोधतानि ॥१४
 गोमूश्रमभश्च रते तु शाकं द्वर्वा ददित्रीहितिलान्यवाङ्म् ।
 सूर्याशुतपं जलमन्वुजाक्षं क्षीरं च मासैः क्रमशः प्रयुज्य ॥१५
 कुले प्रधाने धनधान्यपूर्णे पद्मावृते हृस्तसमस्तुःखे ।
 प्राप्नोति जन्माऽविक्लेन्दियश्च भवत्यरोगो मतिमान्तुलो च ॥१६
 तस्मात्त्वमप्येतद्मोघवीर्यं दिवाकराराधनमप्रमत्तः ।
 कुरु प्रभावं भगवन्त्मीशमाराध्यं कामानखिलानुपेहि ॥१७
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे दर्शण सप्तमीकल्पे तृतीयपदव्रतवर्णनं
 नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२।

अथ त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यालयवन्दनमार्जनादिवर्णनम्

विष्णुरुचाच

मुरज्येष्ठं पुनर्भूहि पत्युच्छाभ्यहमादितः । यत्कलं समवाप्नोति कारयित्वा रवेर्गृहम् ॥१

व्रत विधान के अनुच्छान में वज्र, पुष्प, तिल, ब्रीहि (धान) यव, सुवर्ण, जलपूर्ण पात्र उपानह (जूते), छत्र (छाता) और बताशे, इन वस्तुओं को क्रमशः उन्हें अपित करना चाहिए ॥१३। इस प्रकार विधान द्वारा वर्ष के जिस मास की तिथि में लोकगुण सूर्य की पूजा की जाये, उसी के अनुसार आत्मशुद्धि के लिए प्राशन भी करना चाहिए उसे भी बता रहा हूँ मुनो ! ॥१४। हे अम्बुजाक्ष ! गोमूत्र, जल, धी, शाक, द्वर्वा, दही धान, तिल, जवा, सूर्य की किंणों द्वारा संतप्त जल और क्षीर इन्ही वस्तुओं का प्राशन क्रमशः मासों में करने के लिए बताये गये हैं ॥१५। इसे सुसम्प्लन करने पर वह इस भाँति के उत्तम कुल में जन्म ग्रहण करता है जहाँ पूर्ण धनधान्य समेत अयाह लक्ष्मी भरी पड़ी हो और वह सदैव इन्द्रियों की अविकलतृप्ति पूर्वक, बुद्धिमान्, एवं निरन्तर सुखी रहता है ॥१६। इसलिए तुम भी सावधान होकर अमोघवीर्य ईश एवं भगवान् दिवाकर की आराधना करके अपनी समस्त कामानाएँ पूरी करो ॥१७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में तृतीयपद व्रत वर्णन नामक
 एक सौ बारहवां अध्याय समाप्त ॥११२।

अध्याय ११३

आदित्यालयवन्दनमार्जन विधि का वर्णन

विष्णु ने कहा—हे मुरज्येष्ठ ! मैं जो कुछ पूँछ रहा हूँ, आप उसे विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें।

१. पठेच्च पाद्यम् ।

देवान्ती कारबित्वा तु यत्पृष्ठं पुरुशोऽनुन्ते । पूजयित्वा च विधिवदनुलिप्य च यत्कलम् ॥२
कानि माल्यानि शस्त्रानि कानि नार्हति भास्करः । के धूपा भरनुदयिता: के वर्जाश्च जगत्ततः ॥३
उपचारफलं कि स्पातिक फलं गीतवादिते । घृतक्षीरदिना यतु आपिते भास्करे फलम् ॥४
यथोपलेपनादौ च फलमन्युक्तितेन तु । दिवाकरगृहे तत तदशेषं वदस्त्र मे ॥५

ब्रह्मोवाच

साधु वत्स यदेतत्त्वं मार्तण्डस्येह पृच्छासि । शुक्रघणे विधिं पुण्यं तदिहैकमनाः शृणु ॥६
यस्त् देवालयं भानोर्दर्वां शैलमथापि आ । कारयेन्द्रन्मयं चापि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥७
अहन्यहनि यज्ञेन यज्ञतो यन्महृत्कलम् । प्राप्नोति तत्कलं भानोर्यः कारयति मन्दिरम् ॥८
कुलानां शतसागामि समतीतं कुलं शतम् । कारयेद्द्वागवद्वाम स नयेदक्लोकताम् ॥९
सप्तजन्मकृतं पापं स्वल्पं आ यदि वा बहु । भानोरालयविन्यासप्रारम्भादेव नश्यति ॥१०
सप्तलोकमयो भानुस्तस्य यः कुरुते गृहम्^१ । प्रतिष्ठां समवाप्नोति स नरः साप्तलौकिकीम् ॥११
प्रशस्तदेशभूभागे प्रशस्तं भवनं रवेः । कारयेदक्षयाल्लोकान्स नरः प्रतिष्यते ॥१२
इष्टकाचयविन्यासो यावद्वर्षणि तिष्ठति । तावद्वर्षसहस्राणि तत्कर्तुदिवि संस्थितिः ॥१३
प्रतिमां लक्षणवर्तीं यः कारदति भानवः । दिवाकरस्य तल्लोकमक्षयं प्रतिष्पदते ॥१४

सूर्य के लिए मन्दिर बनवाने से किस फल की प्राप्ति होती है इसी प्रकार देव की पूजा करने से पुरुष को प्राप्त होने वाले पुण्य एवं अनुलेपन करने के फल को बतलाते हुए आप सूर्य के लिए कौन प्रमुख प्रशस्त हैं कौन अप्रशस्त तथा जगत्तति सूर्य के लिए कौन धूप प्रिय है कौन अंग्रिय इसके निर्णय के समेत उपचार के फल गायन वाद्यों के फल धी, दूध, द्वारा सूर्य के स्नान कराने के फल तथा सूर्य के जगीर में लेपन एवं अभिषेक करने के द्वारा प्राप्त होने वाले इन अशेष फलों को बताने की कृपा करें ! १-५

ब्रह्मा बोले—हे वत्स ! मार्तण्ड के निमित्तक यह तुम्हारा राधु प्रश्न करना उनके लिए तुम्हारे अत्यन्त अनुरागी होने का परिचायक है, उसको मैं बता रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! १६ जो काष्ठ तथा मिट्टी द्वारा सूर्य के मन्दिर बनवाते हैं उनके पुण्य फल को भी कह रहा हूँ सुनो ! सूर्य के लिए मन्दिर बनवाने वाले को प्रतिदिन यज्ञ करने के समान् महान् फल प्राप्त होते हैं । ७-८। भगवान् (सूर्य) के लिए मन्दिर निर्माण कराने वाले के सौ पूर्व और सौ पर (आगे आने वाली) पीढ़ियों के लोग सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं । ९। सूर्य के लिए मन्दिर के निर्माण आरम्भ करते ही उसके सात जन्मों में पाप थोड़े बहुत जो कुछ रहते हैं (भी) नष्ट हो जाते हैं । १०। क्योंकि सूर्य सप्त लोकमय हैं, इसलिए उनके मन्दिर की जो रचना करता है उसे सातों लोकों की प्राप्ति होती है । ११। इस प्रकार उत्तम देश की भूमि में जो सूर्य के लिए सुन्दर मन्दिर का निर्माण करता है उसे अक्षय लोकों की प्राप्ति होती है । १२। और उनके लिए बनाये गये ईट के मन्दिर की स्थिति जितने वर्ष रहती है उतने सहस्र वर्ष तक उसके कर्ता की स्वर्ग में स्थिति रहती है । १३। इसी भाँति जो (सूर्य की) लक्षणों से मुक्त प्रतिमा बनवाता है, उसे अनेक अक्षय

वस्तिर्वर्षसहस्राणां सहस्रणि स मोदते । लोके सुमनसां बीर प्रत्येकं मधुमूदनः ॥१५
प्रतिष्ठाप्य रवेरचाँ सुप्रशस्ते निवेशने । पुरुषः कृतकृत्योऽस्ति न दोषफलमशनुते ॥१६
ये भविष्यन्ति येऽतीता आकल्पं पुरुषाः कुले । तांस्तारयति संस्थाप्य देवत्यं प्रतिमां रवे ॥१७
अनुशिष्टाः किल पुरः यमेन यमकिङ्कुराः । पाशादण्डकराः कृष्ण प्रजासंयमनोद्यताः ॥१८

यम उवाच

विहरन्तु यथान्यायं नियोगो मेजुपस्त्वताम् । नाज्ञाभद्रंगं करिष्यन्ति भवतां जन्तवः क्वचित् ॥१९
केवलं ये जगन्मूलं विवस्वन्त्युषुश्रिताः । भवद्विः परिर्हत्यास्तेषां नैवेह संस्थितिः ॥२०
ये तु वैवन्वता लोके तच्चित्तास्तत्परायणाः । पूजयन्ति सदा भानुं ते च त्याज्या सुदूरतः ॥२१
तिष्ठश्च प्रस्वपदनाच्छुतिष्ठन्स्खलिते क्षुते । सइकीर्तयति देवं यः स नस्त्याज्यः सुदूरतः ॥२२
नित्यनैमित्तिकैर्देवं ये यजन्ति तु भास्करम् । न चालोक्या भवद्विस्ते यद्गणां हंति दो गतिम् ॥२३
ये पुण्यधूपवसोऽभिर्भूषणैश्चापि वल्तमैः । अर्चयन्ति न ते ग्राहा भवित्वुत्ते परिष्ठाहाः ॥२४
उपलेपनकर्तारः कर्तारो मार्जनस्य दे । अर्कालये परित्याज्यं तेषां द्विपुरुषं कुलम् ॥२५
ये वायतनं भानोः कारितं तत्कुलोऽद्ववः । पुमान्स नः उलोक्यो है भवद्विर्द्विष्टनक्षुषा ॥२६

लोकों की प्राप्ति होती है । १४। हे बीर ! हे मधुमूदन ! वहाँ वह देवताओं के प्रत्येक लोक में साठ सहस्र वर्ष के सहस्र वर्ष (अनन्त काल) तक आनन्द का अनुभव करता है । १५। इस प्रकार उस मुन्द्र मन्दिर में सूर्य की प्रतिष्ठा एवं अर्चना करके पुरुष कृतकृत्य हो जाता है और उसे दोष-फल का भागी कभी नहीं होना पड़ता । १६। सूर्य की प्रतिमा की (मन्दिर में) प्रतिष्ठा करने दाला (व्यक्ति) अपने अतीत तथा कल्प पर्यंत तक होने वाले परिवारों को (उद्धारक) तार देते हैं । १७। हे कृष्ण ! पहले समय से एक बार यम ने अपने दूतों को जो प्रजाओं के नियह करने के लिए उद्यत होकर प्रस्थान कर रहे थे इसी भाँति की शिक्षा दी थी । १८

यम ने कहा—न्यायोचित ढंग से चारों ओर अच्छी तरह विचरण करो और मेरी आज्ञा का पालन करो ! कोई भी प्राणी आप्त लोगों की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकेगा । १९। एक बात ध्यान में अवश्य रखना । जगत् के मूल कारण भगवान् सूर्य की उपासना करने वालों के समीप कभी मत जाना क्योंकि वे यहाँ नहीं आ सकते । २०। इसलिए जो सूर्य के भक्त उन्हीं में लीन होकर तत्परता से सूर्य की पूजा करते हों दूर से ही उनका परित्याग करना । २१। इसी प्रकार स्थित रहते शयन करते, आते, जाते, उठते, मूर्छावस्था तथा छींकते आदि सभी समय जो भगवान् सूर्य के नाम का कीर्तन न करता रहे उन लोगों को मुद्रर से ही उसका त्याग करना चाहिए । २२। और नित्य या नैमित्तिक (किसी पर्व आदि काल) में जो भगवान् भास्कर की पूजा करता है उसकी ओर देखता तक नहीं क्योंकि उसकी ओर देखते ही तुम्हारी शक्ति की गति कट्ट हो जायगी । २३। इसलिए जो लोग पुष्प, धूप, वस्त्र, एवं मुन्द्र आभूषणों द्वारा (उनकी) पूजा करते हैं उन्हें छोड़ देना क्योंकि वे मेरे पिता (सूर्य) के भक्त हैं । २४। उसी भाँति जो सूर्य के मन्दिर में लीपने या आड़ द्वारा सफाई करता है उसकी तीन पीढ़ियों का रूपायग करना । २५। जिसने सूर्य के लिए मुन्द्र, मन्दिर का निर्माण कराया हो, उसके कुल में उत्पन्न पुरुष को आप लोग अपनी

येनाच्च भगवद्भक्त्या मत्पितुः कारिता शुभा । नराणां तत्कुलं वीराः सदा त्याज्यं सुदूतः ॥२७
 भवतां भ्रमतां यत्र भानुसंश्यमुद्ब्रया । न चाज्ञाभिङ्गहृत्कश्चिद्भविष्यति नरः क्वचित् ॥२८
 इत्युक्ताः किङ्करास्तेन यज्ञेन सुमहात्मना । अनाश्रित्य वचः कृष्णः सत्राजितमथो गताः ॥२९
 तस्य ते तेजसः रार्वे भानोभक्तस्य सुदूतः सोहिताः पातिता भूमौ यथा च विहगा नगात् ॥३०
 एतां महाफलां योर्चां भानोः कारयते नरः । तत्वात्यानं महाबाहो गृहं कारयितुश्च यत् ॥३१
 यज्ञा नराणां पापौघनाशकाः सर्वकामदाः । तथैवेष्टो जनद्वानुः सर्वज्ञमयो रविः ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मोपर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यालयवन्दनमार्जनादिवर्णनं
 नाम त्रयोदशाधिकशतमोऽध्यायः । ११३।

अथ चतुर्दशाधिकशतमोऽध्यायः आदित्यस्नापनयोगवर्णनम् ब्रह्मोवाच

‘थापितां प्रतिमां भानोः सम्यक्सम्पूज्य मानवः । यं यं प्रार्थ्यते कामं तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् ।’ १
 यः स्नापयति देवस्य धूतेन प्रतिमां रवे । प्रस्त्वेप्रस्त्वे द्विजाप्रयाणां स ददाति गवां शतम् ॥२

दुष्ट अँखों (दण्ड देने के विचार) से कभी न देखना । २६। एवं मेरे पिता भगवान् सूर्य की अर्चा (पूजा) जो स्वयं किया या कराया हो उनके कुल में उत्पन्न प्राणियों को अत्यन्त दूर से ही त्याग करना । २७। केवल सूर्य के आश्रितों (भक्तों) के अतिरिक्त और कोई भी मनुष्य भ्रमण करते हुए आप लोगों की आज्ञा का उल्लंघन कभी नहीं कर सकता है । २८। इस प्रकार उन महात्मा यम के कहने पर भी वे फिकर गण उनकी (यमकी) बातों को अवहेलना कर भक्ति शिरोमणि सत्राजित के पास पहुँच ही गये । २९। हे सुन्दर ! उस सूर्य भक्त के तेज से मूर्च्छित होकर वे गण पर्वत के ऊपर से गिरती हुए पक्षियों की भाँति भूमि पर गिर गये । ३०। इसलिए हे महाबाहो ! जो सूर्य की इस महान् फल दायिनी पूजा को सुसम्पन्न करता है उसे तथा उनके लिए मन्दिर बनवाने वाले को जो फल प्राप्त होते हैं वे सभी फल इस तुम्हारे आख्यान (कथा के) कहने-सुनने से प्राप्त होंगे । ३१। मनुष्यों के लिए जिस भाँति यज्ञ पाप समूह नाशन एवं भमस्त कामनाएँ प्रदान करने वाले बताये गये हैं उसी भाँति सूर्य भी संसार के लिए प्रिय एवं अभीष्ट प्रदायक कहे गये हैं क्योंकि सूर्य तमस्त यज्ञमय रूप हैं । ३२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्यालय वन्दनमार्जनादि वर्णन
 नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त । ११३।

अध्याय ११४ आदित्यस्नापनयोग विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—सूर्य की प्रतिमा (पूर्ति) की प्रतिष्ठा करके जिन-जिन उद्देश्यों से उनकी पूजा मनुष्य करता है, उसकी सभी कामनाएँ निश्चित सफल होती हैं । १। जो सूर्य की प्रतिमा का स्थान धी द्वारा

गवां शतस्य विप्रेभ्यो यद्गत्स्य भवेत्कलम् । घृतप्रस्थेन तद्वानोभवेत्सनातकयोगिनाम् ॥३
 भूरिद्युग्नेन सम्प्राप्ता सप्तद्वीपा वसुन्धरा । घटोदकेन मार्तण्डप्रतिमा ब्राह्मिता क्षिल ॥४
 प्रतिमामसिताष्टम्यां घृतेन जगतीपते: । स्नापयित्वा समस्तेभ्यः पापेभ्यः कृष्ण भुज्यते ॥५
 सप्तम्यामय षष्ठ्यां वा गव्येन हविषा रवेः । ऋपनं तु भवेच्छेष्ठं महापातकनाशनम् ॥६
 ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यत्पापं कुरुते नरः । तत्सालर्यातिं सन्ध्यादां घृतेन ऋपनं रवेः ॥७
 सर्वयज्ञमयो भानुर्हव्यतानां परमं घृतम् । तयोरशेषपापानां क्षालकः सङ्गमो भवेत् ॥८
 देषु क्षीरवहा नद्यो ह्रदाः पापत्कर्दमाः । मोदते तेषु लोकेषु क्षीरज्ञानकरो रवेः ॥९
 आह्लादं निर्वृतिस्थलमारोग्यं चारुहृताम् । सप्तजन्मान्यवाप्नोति क्षीरज्ञानपरो रवेः ॥१०
 दध्यादीनां विकाराणां क्षीरतः सभ्यवो यथा । यथा च विमलं क्षीरं यथा निर्वृतिकारकम् ॥
 तथा च निर्मलं ज्ञानं भवत्वपि न संशयः ॥११
 प्रहानुकूलतां पुष्टिं प्रियत्वमखिले जने । करोति भगवान्भानुः क्षीरलपनतोषितः ॥१२
 सर्वस्य स्त्नाधतामेति दृष्टमात्रे प्रसीद्धिति । घृतक्षीरेण देवेश स्नापिते तिमिरापहे ॥१३
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मणे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यस्नापनयोगवर्णनं
 नाम चर्तुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१४।

करता है, उसने मानो एक-एक सेर धी के दान में सौ-सौ गायों का दान किया ऐसा समझना चाहिए । १। क्योंकि ब्राह्मण को सौ गायों के दान देने से जिस कल की प्राप्ति होती है, वही फल सूर्य के एक सेर धी द्वारा स्नान कराने वाले स्नातक योगी को भी प्राप्त होता है । २। घडे के जल द्वारा मार्तण्ड (सूर्य) की सूर्ति के स्नान कराने वाले को असंख्य धन एवं सातों द्वीपों समेत वसुन्धरा (पृथ्वी) प्राप्त होती है । ३। हे कृष्ण! - कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथि में जगत्-पति सूर्य की धी से स्नान कराने से उसे समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है । ४। सप्तमी अथवा षष्ठी में उसे घृत से स्नान कराना थेष्ठ एवं महान् पातक का नाशक बताया गया है । ५। क्योंकि अज्ञान वश जो कुछ पाप मनुष्य करता है वह सभी पाप संघात समय सूर्य को धी द्वारा स्नान कराने से नष्ट हो जाता है । ६। जिस प्रकार सूर्य सर्व यज्ञमय हैं उसी प्रकार हृव्यों में परम थेष्ठ भी है, इसलिए उन दोनों (सूर्य एवं धी) का संगम होना निखिल पापों का नाशक बताया गया है । ७। इसलिए जहां सदैव दूध की नदियाँ बहती हैं, और तजाब में खीर रूपी पंक भरे पड़े हैं सूर्य के उन्हों लोकों में पहुँचकर उन्हें दूध द्वारा स्नान कराने वाले वह व्यक्ति आनन्द का अनुभव करते हैं । ८। एवं प्रतिदिन दूध द्वारा सूर्य के स्नान कराने वाला पुरुष सात जन्म तक, हर्षातिरेक, निर्वृत्ति, आरोग्य एवं सौन्दर्य पूर्ण रूप प्राप्त करता रहता है । ९। यद्यपि दही आदि (नवनीत, धी) दूध का विकार है, किन्तु उसी भाँति उसकी निर्मलता है इसलिए दूध जितना निर्मल एवं आत्मतुष्टि प्रदान करने वाला होता है, उससे स्नान कराने पर वैसा ही निर्मल ज्ञान भी उसे निश्चित प्राप्त होता है । १०। क्योंकि दूध द्वारा स्नान कराने से प्रसन्न होकर सूर्य ग्रहों की अनुकूलता एवं पुष्टि प्रदान करते हुए उसे लोक प्रिय बना देते हैं । ११। धी एवं दूध द्वारा स्नान कराने पर देवनायक तथा अनधकारानाशक (सूर्य), इस पुरुष को सभी लोगों का ऐसा प्रिय बना देते हैं जिसे देखते ही लोग आनन्द विभोर हो जाते हैं । १२। धी एवं दूध द्वारा स्नान कराने से वैसा ही निर्मल ज्ञान भी उसे निश्चित प्राप्त होता है । १३।

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मणे पर्व के सप्तमी कल्प में आदित्य-स्नापन योग वर्णन
 नामक एक सीढ़ीदहवाँ अध्याय समाप्त । १४।

अथ पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजाविधिवर्णनम्

ब्रह्मोदाच्च

**प्रशंसन्ति महात्मानः संवादं भास्कराश्रयम् । गौतम्या सह कौशल्या सुमनायां सुरालये ॥१
स्वर्णतिशोभनां दृष्ट्वा कौशल्यां पतिनां सह । ब्राह्मणो गौतमी नाम पर्यपृच्छत विस्मिता ॥२**

गौतम्युवाच

**शतशः सन्ति कौशल्ये देवाः स्वर्गनिवासिनः । देवपत्न्यस्तथैवैताः सिद्धाः सिद्धाइगनास्तथा ॥३
न तेषामीदृशो गन्धो न कान्तिर्न सुरूपता । न वाससी शोभने ये यथा ते पतिना सह ॥४
नैवाभरणजातानि तेषां भ्राजन्ति वै तथा । यथा तव यथा पत्युर्न च स्वर्गनिवासिनाम् ॥५
सुन्नातचेलश्चैव युवयोरतिरिच्यते । लेखाद्यानामपीशानां क्षयातिशयवर्जितः ॥६
तपःप्रभावो दानं वा होमो वा कर्मसंज्ञितः । युवयोर्वत्समाचक्ष्व तत्सर्वं वरवर्णिनि ॥७
येन मे विक्रमे बुद्धिमेनुजा येन सहागतः ॥८**

कौशल्योवाच

यज्ञो यज्ञेभ्यो भानुरावाभ्यां जातु तोषितः । स्वर्गप्राप्तिरियं तस्य कर्मणः फलमुत्तमम् ॥९

अध्याय ११५

सूर्य-पूजा की विधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—स्वर्ग लोक में गौतमी एवं कौशल्या के सूर्य विषयक संवाद को जिसकी महात्मा लोग अत्यन्त प्रशंसा करते हैं, मैं तुम्हें सुना रहा हूँ । १। एक समय स्वर्ग लोक में पति के साथ स्थित सर्वाङ्ग सुन्दरी कौशल्या के सौन्दर्यादि गुणों से आश्चर्य चकित होकर ब्राह्मणी गौतमी ने उनसे पूछा— २।

गौतमी ने कहा—हे सुन्दरि ! इस स्वर्ग लोक में यहाँ के निवासी सैकड़ों देवता एवं उनकी स्त्रियाँ सिद्ध तथा सिद्धाङ्गनाएँ वर्तमान हैं । ३। किन्तु हे सुशोभने ! पति के साथ रहने वाली तुम्हारी शरीर की जिस प्रकार कांति, गंध, सौन्दर्य एवं वस्त्र हैं, वैसी इन लोगों में किसी की नहीं है । ४। और जिस भाँति तुम्हारे तथा तुम्हारे पति देव के आभूषण सुशोभित हैं, उस भाँति किसी भी स्वर्ग निवासी के नहीं हैं । ५। एवं भलीभाँति सवस्त्र स्नान करने के उपरान्त इन वस्त्रों के धारण करने से तुम दोनों की (सभी लोगों) से अतुलनीय छवि हो गयी है यहाँ तक कि प्रधान देवताओं से भी अधिक सौन्दर्य पूर्ण हो क्योंकि उनमें कुछ दोष भी हैं पर तुम लोगों में दोष लेश मात्र का भी नहीं है । ६। हे वरवर्णिनि ! मुझे ऐसी बात का आश्रय हो रहा है कि तुम दोनों ने यह (अनुपम सौन्दर्य) कैसे प्राप्त किया है, यह तप का प्रभाव है ! या दान, हवन अथवा किसी अन्य कर्म का । अस्तु, जो भी कुछ हो मुझसे अवश्य कहो ! मैं भी उसे सुसम्पादित करने के लिए दृढ़ निश्चय कर चुकी हूँ तथा मनुष्य भी उसे करने के लिए तैयार ही होगे । ७

कौशल्या बोली—एक समय हम दोनों ने यज्ञ एवं यज्ञेश्वर रूप सूर्य को प्रसन्न किया था, उसी कर्म

सुरूपता ततः प्रीतिः पश्यतां चारुवेषिता । यत्पृच्छसि महाभागे तदप्येषां वदामि ते ॥९
 तीर्थोदकैस्तथा गन्धीः स्नापितो यद्दिवाकरः । तेन कान्तिरियं नित्यं देवास्त्रभुवनेश्वरान् ॥१०
 मनःप्रसादः सौम्यतं शरीरे ये च निर्वृताः । यत्प्रियलं च सर्वं स्यात्दृष्टत्रपनात्फलम् ॥११
 ग्रान्यभीष्ठानि बासांसि यच्चाभीष्ठविभूषणम् । रत्नानि यान्यभीष्ठानि यत्प्रियं चानुलेपनम् ॥१२
 ये धृता यानि ग्राल्यानि दीयतान्यभवन्सदा । मम भर्तुस्तदैवास्य तदा राज्यं प्रशासतः ॥१३
 तानिैं सर्वाणि सर्वज्ञं सर्वधातरि भानुनि । इत्तानिैं तं समुत्थोऽयं गन्धधूपात्मको गुणः ॥१४
 आहारा दीयता ये च पवित्राश्च निवेदिताः । त्रिलोककर्तुः सवितुस्तृपितस्तदगुणसम्भवः ॥१५
 स्वर्गकामेन मे भ्रात्रा स्या च शुभदर्शने । कृतमेतत्कृतेनाभूदावयोर्भवसंक्षयः ॥१६
 ये त्वकाभ्यः नराः सम्यक्तत्कुर्दन्ति च शोभने । तेषां इदाति विश्वेशो भगवान्मुक्तिमीश्वरः ॥१७

ब्रह्मोवाच

एवगन्धर्च्य मार्तण्डमर्कं देवेश्वरं गुरुम् । प्राप्तोऽस्यभिमतान्कामान्कृष्णाहं शाश्वतीः सनाः ॥१८
 चन्दनागुरुर्कूरुकुमोशीरपद्मकैः । अनुलिप्तो नरैर्भक्त्या इदातिैः सागरोद्भवाम् ॥१९

का यह स्वर्ग प्राप्ति रूप उत्तम फल प्राप्त हुआ है । १। हे महाभागे ! (हम दोनों के) सौन्दर्यं प्रीति एवं
 उत्तम वेष-भूषा देखकर जो विस्मित भाव से पूँछ रही हो वह सभी बातें मैं आप को बता रही हूँ । २।
 तीर्थों के जलों एवं गन्धों द्वारा हम लोगों ने सूर्य को स्नान कराये थे उसी द्वारा त्रिभुवन के ईश्वरों से भी
 बढ़कर यह कान्ति प्राप्त हुई है । ३। मन की सफलता, शेरीर की सौम्यता शांति एवं और भी जो कुछ
 प्रिय एवं उत्तम देख रही हो, ये सभी (जन्मी के) धी द्वारा स्नान कराने के फल स्वरूप प्राप्त हुए हैं । ४।
 हम लोगों की ये सभी अभीष्ट वस्तुएँ वस्त्र, आभूषण, रत्न जो दिखाई दे रही हैं प्रिय अनुलेपन धूप और
 प्रिय मालाएँ उस समय राज्य में शासन करते हुए मेरे पति के पास थीं वे समस्त वस्तुएँ सर्वज्ञ एवं सभी की
 रक्षा करने वाले उस सूर्य के लिए सदैव समर्पित की जाती थीं उसी से (हम दोनों के) शेरीर में गन्ध एवं
 धूप का गुण (सुगन्ध) प्राप्त है । ५-६। और उन दिनों आत्मप्रिय एवं पवित्र भोजन भी हम लोगों के
 द्वारा त्रिलोक नायक सूर्य के लिए समर्पित किये जाते थे जिससे यह परम वृप्ति प्राप्त हुई है । ७। शुभ
 दर्शन ! इस प्रकार स्वर्ग की कामना वश मैंने तथा मेरे पति ने इस भाँति की अर्चना की थी उसी के
 परिणाम स्वरूप हम लोगों को संसार (जन्म-मरण) से छुटकारा गिल गया है । ८। हे शोभने ! जो
 मनुष्य निष्काम भाव से उनकी अर्चना के निमित्त ये (सभी बातें) उनके लिए करते रहते हैं उन्हें
 विश्वेश्वर भगवान् (भास्कर) अवश्य मुक्ति प्रदान करते हैं । ९।

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! इसी प्रकार मैंने भी मार्तण्ड, देवनायक एवं गुरु सूर्य की पूजा करके अनेकों
 वर्षों के लिए अपनी समस्त कामनाएँ सफल की हैं । १। इस भाँति जो चंदन, अगुरु, कपूर, कुंकुम, खण्डा
 गन्ध उनके अङ्गलेपन के निमित्त अर्पित करता है उसे वे अभिलिप्ति मनोरथ तथा लक्ष्मी प्रदान करते

कालेयकं तुरुष्कं च रक्तचन्दनमेदं च । यान्यात्मनि सदेष्टानि तानि शस्यान्यपाकुरु ॥२०
गन्धाश्रानि शुभा ये च धूपा ये विजयोदयाः । दिवाकरस्य धर्मज्ञ निवेद्यास्त्सर्वदाच्युत ॥२१
न दद्यात्सल्लकीक्षारं नो नुखेन च संहृतम् । दद्यादर्काय धर्मज्ञ धूपमाराधनोदयः ॥२२
भ्राह्मती मल्लिका चैदं पूर्थिकः चातिमुक्तिकः । पाटलाः करवीरश्च जपा सेवनितरेव च ॥२३
कुरुक्षुमस्तगरधृत्यं कर्णिकारः सज्जेशरः । चम्पयः केतकः कुन्दो बाणबर्बरमलिङ्गः ॥२४
द्विशोकत्तिलको लोध्रस्त्वया चैवाट्टुष्वकः । शतपत्राणि धन्वानि बकाद्वानी विरेषतः ॥२५
क्षणार्पित किंशुकं तडत्पूजार्थं भास्त्रकरस्य तु । अमी पुष्ट्रकारास्तु शस्त्रा भास्त्ररपूजने ॥२६
बित्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं वा भृद्गारस्य च । तमालपत्रं च हरे सदैद भगवान्तिष्यम् ॥२७
तुलसी कालतुलसी तथा रक्तं च चन्दनम् । केतकी पत्रपुष्पं तु सद्यस्तुष्टिकरं रवेः ॥२८
पथोत्पलसमुत्थानि रक्तं नीलोत्पलं तथा । सिनोत्पलं तु भानोस्तु दयितानि सदाच्युत ॥२९
कृष्णलोकन्मतकं कान्तं तथैव निरिमलिलका । न कर्णिकारिकापुष्पं भास्त्रकराय निवेदयेत् ॥३०
कुटजं शाल्मलीपुष्पं तथान्यद्गन्धवज्जितम् । निवेदितं भयं रोगं निःस्वतां च प्रयच्छति ॥३१
येषां न प्रतिषेधोऽस्ति गन्धवर्णान्वितानि च । तानि पुष्पाणि देयानि मानवे लोकभानवे ॥३२
सुगन्धैश्च मुरामांसीकर्पूरागरुचन्दनैः । तथान्यैश्च शुभैर्द्व्यैरर्चयेद्वनमालिनम् ॥३३
दुकूलपट्टकौशेयवार्ककार्पासकादिभिः । वासोभिः पूजयेद्वानुं यानि चात्मप्रियाणि तु ॥३४
भक्षयाणि यान्यभीष्टानि भोज्यान्यभिमतानि च । फलं च वल्लभं यस्यात्तते देयं दिवाकरे ॥३५

हैं । ११। हे धर्मज्ञ ! हे अच्युत ! इसलिए कालेयक (दारुहल्दी), लोहबान, रक्त चंदन और भी जो आत्म प्रिय हों, उन्हें तथा शुभ गन्ध एवं विजयनांद धूप ये सभी दस्तुरैं सदैव सूर्य के लिए अर्पित करना चाहिए । २०-२१। हे धर्मज्ञ ! इस भाँति सल्लकी क्षार (नामक) तथा मुख से स्पर्श की हुई कोई भी वस्तु (सूर्य के लिए) समर्पित न करनी चाहिए आराधना करने वाले को धूप अवश्य करना बताया गया है । २२। मालती, मल्लिका, जूही, अति मुक्तिक (तिनिश), कुम्हडे करवीर (कनेर), जयापुष्प, सेवंति, कुंकुम, तगर, बडहर, चंपा, केतकी, कुंद, भंगरेया, अशोक, तिलक, लोध, अडूसा, कमल, बक, अगस्त्य, किंशुक, ये पुष्प भास्त्रकर की पूजा के लिए उत्तम बताये गये हैं । २३-२६। हे हर ! इसी प्रकार बिल्वपत्र, शमीपत्र, भंगरेया, तमालपत्र ये सभी भगवानु भास्त्रकर के अत्यन्त प्रिय हैं । २७। तुलसी, काली तुलसी, रक्तचन्दन, केतकी, इनके पत्र या पुष्प ये सभी अर्पित होने पर भगवानु सूर्य को सदा प्रसन्न करते हैं । २८। हे अच्युत ! कमल, रक्तकमल, नील कमल, स्वेत कमल भानु को सदैव अत्यन्त प्रिय हैं । २९।

हे कृष्ण ! धतूर, कुटज, एवं बड़हल के पुष्प कभी भी सूर्य के लिए समर्पित न करना चाहिए । ३०। क्योंकि कुटज, सेमर तथा इसी भाँति अन्य गन्धहीन पुष्प सूर्य को समर्पित करने पर भय, रोग तथा दरिद्रता प्राप्त होती है । ३१। लोक के प्रकाशक सूर्य के लिए उन पुष्पों को जिनका निषेध न किया गया हो तथा वे गन्ध एवं सौन्दर्य पूर्ण हों सादर समर्पित करना चाहिए । ३२। सुगंध, तालीस पत्र, जटामांसी, कपूर, अगुरु, चन्दन तथा अन्य उत्तम वस्तुओं द्वारा बनमाली की अर्चा अवश्य करनी चाहिए । ३३। उसी भाँति दुपट्टा, रेशम या सूती वस्त्रों एवं अन्य जो आत्मप्रिय वस्तु हों उन वस्त्रों द्वारा सूर्य की पूजा करना बताया गया है । ३४। इसी प्रकार भक्षय भोज्य तथा अत्यन्त रुचिकर फल सूर्य के लिए अर्पित करे । ३५।

मुवर्णमणिमुक्तानि रजतं च तथाच्युतः । दक्षिणा विविधा चेह्यच्चान्यदपि बल्लभम् ॥३६
आत्मानं भास्करं मत्वा यज्ञं तस्मै निवेदयेत् । तत्तदव्यक्तरूपाय भास्कराय निवेदयेत् ॥३७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्म पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यमाहात्म्ये सूर्यपूजाविधिवर्णनं
नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः । ११५।

अथ षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

रविपूजाविधिवर्णनम्

ब्रह्मोदाच

कृष्ण राजा! महानासीद्यातिकुलसम्भवः । सत्राजिदिति विस्यातश्चक्वर्तीं महाबलः ॥१
प्रभावैत्तेजसा कान्त्या क्षान्त्या बलसमन्वितः । धैर्यगम्भीर्यसम्पन्नो वदान्यो यशसान्वितः ॥२
बुद्ध्या विक्रमदक्षश्च सम्पन्नो ब्राह्मणायतः । कृती कविस्तथा शूरः पट्पदाख्यैर्न निर्जितः ॥३
सदा पञ्चमु रक्तश्च वसुमद्गुर्न निर्जितः । रुद्रता वसुभिर्जितिः सत्त्वश्रद्धासमन्वितः ॥४
अम्बुजस्याण्डजस्येव आत्रेयस्य तथाच्युत । अम्बुजायास्तथा कृष्ण वार्यपात्रं स वै विभोः ॥५
गाइनोयेन बले तुल्यः पौलस्त्यार्द्धश्रमो यथा । गाइनोयस्य तथा कृष्ण धिषणत्य हरेर्यथा ॥६

हे अच्युत ! मुवर्ण, मणि, मोती तथा चाँदी और भी जो प्रिय एवं उत्तम धातु हों उन भाँति-भाँति के धातुओं को दक्षिणा के रूप में देवाधिदेव सूर्य के लिए समर्पित करनी चाहिए । ३६। इसलिए अपने में भगवान् भास्कर की भावना रख कर उन अव्यक्त रूप भास्कर के लिए यज्ञारम्भ एवं उनकी प्रिय वस्तुएँ समर्पित करना मानव का परमर्थ है । ३७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के आदित्य माहात्म्य में सूर्य पूजा विधि वर्णन नामक एक सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त । ११५।

अध्याय ११६

रविपूजाविधि का वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे कृष्ण ! ययाति के कुल में उत्पन्न चक्रवर्ती एवं महाबली सत्राजित नामक विस्यात राजा हुआ था । १। प्रभाव, तेज, कांति, क्षमता, बल, धैर्य एवं गांभीर्य गुणों से अलंकृत होता हुआ यह उदार तथा कीर्तिमान् था । २। ब्राह्मणों के समान बुद्धिसम्पन्न और विक्रम में दक्ष वह कृती (कार्य-कुशल), कवि, शूर एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या तथा मात्सर्य इन छः दोषों का विजेता पाँच (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सूर्य, गणेश अथवा दुर्गा देवों का अनुरागपूर्ण उपासक तथा राजाओं के लिए अजेय था । सत्त्व-श्रद्धा संपन्न होकर उसने (शत्रुओं के लिए) वसुओं द्वारा रुद्रता प्राप्त कर ली अर्थात् रौद्र रूप थी । ३-४। हे अच्युत, ब्रह्मा एवं मार्तण्ड के समान (वह) चन्द्रमा तथा लक्ष्मी का भी प्रिय पात्र था । ५। वह भीष्म की भाँति बलशाली था तथा उसकी पुरी रावण की लङ्घा पुरी की भाँति ही उत्तम थी । हे कृष्ण ! वह भीष्म की भाँति पराक्रमी बृहस्पति के समान बुद्धिमान् एवं विष्णु के समान सौन्दर्य पूर्ण

काम्यश्च द्विजभक्तस्तु तथा बालभीकिवत्सदा । व्यासस्य देवशार्दूलं जामदग्न्यस्य वा विभोः ॥७
 एषां तैर्कैर्गुणैर्युक्तः स राजा क्षमातते विभो । शशास स महाबाहुः सप्तद्वीपां वसुन्धराम् ॥८
 यस्मिन्नाथां प्रगायन्ति ये पुराणविदो जनाः । सत्राजिते महाबाहौ कृष्ण धार्त्रीं समाश्रिते ॥९
 यावत्सूर्य उद्देति स्म यादच्च प्रतितिष्ठति । सत्राजितं तु तत्सर्वं क्षेत्रमित्यमधीयते ॥१०
 स सर्वरत्नसंयुक्तां सप्तद्वीपवर्तीं महीम् । शशास धर्मेण पुरा चक्रवर्तीं महाबलः ॥११
 नान्यायकृत्र चास्तको वदान्यरे बलवत्तरः । तस्याभूत्युरुषा राज्ञः सम्यग्धर्मनुशासिनः ॥१२
 चत्वारः सचिवास्तस्य राज्ञः सत्राजितस्य तु । दशूवरप्रतिहताः सदा वाति बलस्य वै ॥१३
 तस्य भक्तिरत्तीवासीभिसगादिव भूपतेः । दिवाकरे जगद्ग्रान्तौ रक्तचन्दनमालिनि ॥१४
 तस्योर्ध्वमहिमानं च विलोक्य पृथिवीपतेः । न केवलं जनस्यापि ह्यभवत्स्य विस्मयः ॥१५
 सञ्चिन्तयामास नृपः समृद्ध्या विस्मितस्तथा । कथं स्यात् सम्पदेषा मे पुनरप्यन्यजन्मनि ॥१६
 एवं स बहुशो राजा तदा कृष्णं महायशाः । चिन्तयन्नपि तन्मूलं नासदन्निश्चयान्वितः ॥१७
 यदा न निश्चयं राजा स यथौ भागवीप्रियः । तदा प्रचल्य धर्मज्ञानं विप्रान्समुपागतान् ॥१८
 सर्वाश्रम समुखान्वीर विविक्तान्तः पुरस्थितः । प्रणिपत्य महाबाहूर्वहीतुं शासनक्रियाः ॥१९
 विश्वासानुग्रहा बुद्धिर्भवतां भयि सत्तमाः । तदहं प्रष्टुमिच्छामि किञ्चित्तद्वरुमर्हथ ॥२०

था । ६। हे देवशार्दूल ! उस काम्य व्रती एवं ब्राह्मण भक्त ने बालभीकि व्यास तथा परशुराम के समान अनेक गुणों से सुसम्पन्न होकर इस पृथ्वी तल के राज्य को अपनाकर सातों द्वीपों समेत इस वसुन्धरा (पृथ्वी) पर शासन किया । ७-८। हे कृष्ण ! उस महाबाहु सत्राजित के इस पृथ्वी के अपनाने पर पौराणिक लोग उसके विषय में गाथा के रूप में गाते थे कि सूर्य जिस स्थान से उदय होकर जहाँ रहता (अस्त होता) है उनसव वर सत्राजित का आधिपत्य होने के नाते वे सब उसी राज्य के ही क्षेत्र हैं । ९-१०। महाबलणाली उस चक्रवर्ती ने समस्त रत्नों से संयुक्त एवं इस सातों द्वीपों वाली पृथिवी पर एक धार्मिक शासन किया । ११। भली भाँति धार्मिक शासन करते हुए उसके राज्य में कोई भी अन्यायी एवं अशक्त नहीं थे अपितु सभी लोग न्यायी एवं अतुल जलशाली और उदार थे । १२। उस अतिबलशाली सत्राजित राजा के अप्रतिहत शक्ति वाले चार सचिव थे । १३। जगत्प्रकाशक तथा रक्तचन्दन की माला धारण करने वाले उन दिवाकर के लिए उस राजा की स्वाभाविक अतिशय भक्ति उत्पन्न हुई थी । १४। जिसके कारण उस राजा की उन्नत महिमा को देखकर लोगों को ही नहीं अपितु स्वयं उस राजा को भी महान् आश्चर्य हुआ था । १५। क्योंकि अपने समृद्धि से आश्चर्य चकित हो कर एकबार वह सोचने भी लगा था कि इस प्रकार की अतुल संपत्ति मुझे जन्मान्तर में भी किस भाँति प्राप्त हो सकती है । १६। हे कृष्ण ! इस प्रकार बार-बार सोचने-विचारने पर भी अत्यन्त स्याति प्राप्त वह राजा उसके मूल कारण का कुछ भी निश्चय न कर सका । १७। जब पृथिवी प्रिय राजा स्वयं इसका निश्चय न कर सके तो अपने यहाँ आये हुए उन धर्मज्ञ ब्राह्मणों से उन्होंने पूछा । १८। हे वीर ! एक समय (शासन भार उठाने के समय) एकान्त अन्तःपुर में स्थित होकर उस महाबाहु ने उन सुखी ब्राह्मणों से नमस्कार करते हुए कहा—आप लोग सब भाँति परम सज्जन हैं, इसीलिए मेरे ऊपर आप लोगों को पूर्ण विश्वास एवं अनुग्रह (कृपा) हो, तो मैं कुछ पूँछना चाहता हूँ, आप उसे बताने की कृपा करें । १९-२०। सदिद्या द्वारा

सद्विद्याखिलविज्ञानसम्पन्धैतान्तरात्मभिः । भवद्विर्यद्युग्राहाः स्यामहं वेदवित्तमाः ॥२१
तच्यथावन्मया पृष्ठा भवन्तो मत्प्रसादिनः । वल्लुर्महथ विद्वांसः सर्वस्यैवोपकारिणः ॥२२

ब्रह्मोवच्च

यत्ते मनसि सन्देहस्तं पृच्छाद्य महीपते । वदिष्यामो यथान्यायं यत्ते^१ मनसि दर्तते ॥२३
तद्यं हि नृपशार्दूल भवता पारितोषिताः । सम्यङ्ग्रजां पालयित्रा ददतः थोजनं सदा ॥२४
सन्तुष्टो ब्राह्मणोऽश्नीर्याच्छ्यादा धर्मसंशयम् । हित चोपदिशेष्वर्त्म अहिताद्वा निवत्तेत् ॥२५
विवक्षुमध्य शूपलं भार्या तस्येव धीमतः । प्रणिपातेन चाहेदं विनयात्प्रणवान्वितम् ॥२६
न स्त्रोणामवनीपाल वल्लुमीदृग्गिहेष्यते । तथापि भूपते वद्ये सन्यदीदृक्सुदुर्लभाः ॥२७
भूयोऽपि संशयान्प्रष्टुमलमीशो भवन्तुवीन् । तन्वहं पुरुषव्याघ्र सदान्तः पुरुचारिणी ॥२८
तत्प्रसादं यादं भद्रान्करोति मम यार्थित । तन्मदीयमृष्टिन्प्रष्टुं सन्देहं पार्थिवार्हति ॥२९

सत्राजित उवाच

ब्रह्मि सुभूर्मतं यत्ते प्रष्टव्या यन्मया द्विजाः । भूयोऽहमात्मसन्देहं प्रत्याप्येतद्विद्वजोत्तनान् ॥३०

प्राप्त निखिल ज्ञान विज्ञान में आप की अन्तरात्मा भी भली भाँति निर्मल हो गई है, एवं आप श्रेष्ठ वेदज्ञों में से हैं आप लोग मेरे ऊपर यदि कृपा रखते हैं तो मैं प्रष्टव्य विषय को समझाने की कृपा अवश्य करूँगा (ऐसा मुझे विश्वास है) क्योंकि विद्वान् लोग सभी के उपकारी होते हैं । २१-२२

ब्रह्मा ने कहा—वे लोग बोले—हे महीमते ! आज आप के मन में जो कुछ सन्देह हो, पूँछिये ! हम लोग यथोचित पाप के मन के संदेह को करते के लिए यथाशक्ति प्रयत्न दूर करेंगे । २३। हे नृप शार्दूल ! भली भाँति प्रजाओं के पालन करते हुए आपने भोजन आदि प्रदान द्वारा हमें सतत संतुष्ट करने की संवर्था चेष्टा की है । २४। सन्तुष्ट होकर ब्राह्मण भोजन करें और (शास्त्र पढ़कर) धार्मिक संदेहों का नाश करते हुए हितेंपी मार्ग उपदेश तथा अहित के त्याग करते-कराते रहें यही नियम है । २५

तदुपरांत पूछने के लिए तैयार राजा को देख कर उस समय उसकी धर्मपत्नी ने प्रणाम करते हुए विनय पूर्वक उस (राजा) से यह कहा । २६। हे अवनिपाल ! यद्यपि स्त्रियों के लिए इस प्रकार के कहने का (साहस) करना उचित नहीं है, तथापि हे भूपते ! मैं इस राजा की सम्पत्ति के विषय में कुछ पूँछना चाहती हूँ । मैं यह कह रही हूँ कि क्योंकि इस प्रकार की संपत्ति का प्राप्त होना अत्यन्त दुर्लभ है । २७। आप अपने संदेह को ऋषियों से किर पूँछ सकते हैं क्योंकि ये ऋषिगण सदैव, आपके सम्पर्क में रहा करते हैं । हे पुरुष व्याघ्र ! मैं केवल आप के अन्तःपुर की ही सदैव रहने वाली हूँ इसलिए हे पार्थिव ! यदि आप मेरे ऊपर ऐसी कृपा करें कि (इस समय) आप मेरे ही संदेह को ऋषियों से पूछें तो मुझे महान् सुख होगा । २८-२९

सत्राजित बोले—हे सुभ्रु ! तुम अपने उस संदेह को बताओ जो मुझे इन ब्राह्मणों से पूछने को कह रहे हो मैं अपने संदेह को इन श्रेष्ठ ब्राह्मणों से किर पूँछ लूँगा । ३०

विमलवत्युवाच

श्रूयन्ते पृथिवीपाल नृपा ये तु चिरत्तनाः । येषां च सम्पदभूपाल घया तेऽया किलाभवत् ॥३१
 तदोद्दसम्पदो धाम तवांशेषं क्षितीश्वर । येन कर्मविषयकेन तद्वदन्तु महर्षयः ॥३२
 अहं च भद्रतो भार्या सर्वसीमलितनीश्वरा । अतीव कर्मणा येन तद्विज्ञाने कुत्रहलम् ॥३३
 तथा सम्पत्समृद्धत्वमन्देश्वपि हि विद्यते । निरत्तातिशयत्वेन नूनं नाल्येन कर्मणा ॥३४
 तदन्यजन्मचरितं नरनाथ निजं भवान् । मुनीन्युच्छ तद्देश चाहं दन्मया च पुरा कृतम् ॥३५

अहोवाच

स तथोक्तस्तया राजा पत्न्या विस्मितपानन्तः । मुनीनां पुरतो भार्या प्रशंसन्वाक्यमबद्देत् ॥३६
 साधु देवि भर्तं यन्मे त्वया यदिदमीरितम् । सत्यं मुनिवचः पुंसां स्वाद्यै गृहिणी तथा ॥३७
 सोऽहमेतन्महाभागो प्रुच्छाम्येतान्महातुनीन् । तेषामविदितं किञ्चिदत्रियुलोकेषु न विद्यते ॥३८
 एवमुक्त्वा प्रियां राजा प्रणिपत्य च तानृषीन् । यथाददेतदलिं पश्चज्जड धरणीधरः ॥३९

राजोवाच

भगवन्तो ममारोषं प्रसादादृतचेतसः । कथयन्तु यथावृत्तं यन्मया मुक्तं कृतम् ॥४०
 कोऽहमासं पुरा विप्राः किस्त्वत्कर्म मया कृतम् । किं वानया तु चार्द्या मम पत्न्या कृतं द्विजाः ॥४१

विमलवती ने कहा—हे पृथिवी पाल ! (अनेक पूर्वजों में) जो प्राचीन राजा थे उनकी भी आप के समान ही संपत्ति थी ऐसा सुना जाता है । ३१। हे क्षितीश्वर ! तो इस प्रकार की आप की संपत्ति एवं तेज (ये) दोनों जिन कर्मों के फल स्वरूप प्राप्त दुए हैं, उसे ये महर्षिणण बताने की कृपाकरें तथा जिस कर्म के अनुष्ठान द्वारा मैं आपकी सभी सुन्दरी स्त्रियों में परम सुन्दरी भार्या हुई हूँ उस कर्म के जानने के लिए मुझे महान् कुत्रहल है । ३२-३३। यों तो संपत्ति की अधिकता औरों के यहाँ भी देखने में आती है पर हम लोगों की यह अनश्वर एवं अथाह संपत्ति जो प्राप्त हुई है निश्चय है कि किसी अत्य कर्मानुष्ठान का परिणाम नहीं है । ३४। और हे नरनाथ ! अपने जन्मांतर के कर्म जिन्हें आप तथा मैंने सुसम्पन्न किया है आप मुनियों से पूछें । ३५।

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार उस पल्ली के दूँछने पर आश्चर्य चकित होकर राजा ने मुनियों के सामने (अपनी) स्त्री की प्रशंसा करते हुए (उससे) कहा । ३६। हे देवी ! तुमने जो कुछ कहा है उसमें देरा भी साधु समत है, अर्थात् (मैं भी उसी को पूँछना चाहता था) मुनियों का कहना सत्य है कि पुरुष की अपनी आधी (अर्धाज्ञी) उसकी गृहिणी (विवाहिता) स्त्री होती है । ३७। हे महाभाग ! मैं इन्हीं बातों को इन मुनियों से पूछता हूँ इसलिए कि तीनों लोकों में इन लोगों से कुछ अविदित नहीं है । ३८। इस प्रकार अपनी स्त्री से कह कर धरणीधर उस राजा ने उन ऋषियों से नमस्कार पूर्वक ये सभी बातें पूछी । ३९

राजा ने कहा—आप लोग सत्य बताते हैं अतः हे भगवन् ! मेरे निखिल सत् कर्म को जिसे मैंने (जन्मान्तर में) किया है, आप कृपा कर सुनायें । ४०। हे विप्र ! पहले मैं किस योनि में कहा उत्पन्न था और कौन कर्म किया था । हे द्विज ! सर्वाङ्गसुन्दरी इस मेरी पल्ली ने कौन कर्म किया है । ४१। जिससे

येनावयोरियं लक्ष्मीर्मत्यलोके सुदुर्लभा । चत्वारश्चाप्रतिहता अमात्या मम गच्छतः ॥४२
अशेषा भूमृतो वश्या धनस्यान्तो न दित्यते । बलं चैवाप्रतिहतं शरीरारोऽयमेव च ॥४३
प्रतिभाति च मे कान्त्यः भार्यायामखिलं जगत् । भमापि वपुषस्तेजो न कश्चित्सहते द्विजाः ॥४४
सोऽहमिच्छुःमि तज्जातुं तथैवेदमनिन्दिता । निजादुष्ठानमखिलं यस्याशेषमिदं फलम् ॥४५

ब्रह्मोवाच

इति पृष्ठा नरेन्द्रेण त्तमस्तास्ते तपोधनः । परावसुमयोचुस्ते कथ्यतामस्य भूमृतः ॥४६
चोदितः सोऽपि धर्मजैर्महाशूरा महामतिः । योगमास्थाय सुचिरं यथावद्यतमानसः ॥४७
ज्ञातवाशृपतेस्तस्य पूर्वदेहविचेष्टितम् । स तमाह मुनिर्भूपं विज्ञानेच्छं महामतिम् ॥४८
सप्तजितं महात्मानं जितशान्तुं मनस्त्विनम् । सपत्नीकं महाबुद्धिं ब्राह्मणान्सत्यवादिनः ॥४९

परावसुरुखाच

भृषु भूपाल सकलं यस्येदं कर्मणः फलम् । तत्र राज्यादिकं सुभ्रूयेदं चासीन्महीपते ॥५०
त्वमासीः शूद्रजातीयः परहिंसापरायणः । कुष्ठातो दण्डारुष्ये निळेहः सर्वजननुषु ॥५१
इयं च भवतो भार्या पूर्वमध्यायतेक्षणा । नित्यं बभूव त्वच्चित्ता भवच्छुश्रूणे रतः ॥५२
पतिव्रता महाभागा भर्त्यमानापि निष्ठुरम् । त्वद्वाक्येषु च सर्वेषु वीर कर्मसु चोद्यता ॥५३

इस मर्त्य लोक में हम दोनों को यह सुदुर्लभ लक्ष्मी एवं मेरे पीछे चलने वाले अप्रतिहत (अजेय) चार सचिव प्राप्त हुए हैं । ४२। भूमण्डल के समस्त राजा मेरे अधीन हैं, मेरे धन का अंत नहीं है उसी प्रकार अपरिनित बल एवं शरीर के आरोग्य मुझे प्राप्त है । ४३। तथा मेरी स्त्री की सौन्दर्य कांति से सारा संसार पूर्ण प्रकाशित हो रहा है, और हे द्विज ! मेरे शरीर के तेज के सहन करने में कोई भी समर्थ नहीं है । ४४। इसलिए कर्मनुष्ठान द्वारा ये समस्त फल मुझे प्राप्त हुए हैं उन्हें तथा अपनी स्त्री के जन्मान्तरीय कर्मों को यह तथा मैं जानना चाहता हूँ । ४५

ब्रह्मोवाच—इस प्रकार उस नरेन्द्र के पूँछने पर उन तपोधनों ने परावसु से कहा कि आप राजा की उपरोक्त सभी बातें बताने की कृपा करें । ४६। उन धर्मजों (ऋषियों) के कहने पर उस महाशूर एवं महाबुद्धिमान् ने एकाग्रचित होकर योग के बल से राजा के जन्मान्तरीय शरीर द्वारा किये गये समस्त कर्मों की जानकारी प्राप्त की । पश्चात उन्होंने विज्ञान के इच्छुक, महाबुद्धिमान् शत्रुओं के विजेता, मनस्त्री एवं सपत्नीक उस महात्मा सत्राजित से सत्यवादी ब्राह्मणों के समझ कहा । ४७-४९

परावसु ने कहा—हे भूपाल ! जिस कर्म के फल स्वरूप ये समस्त राज्यादि सुन्दर भाँह वाली (स्त्री) तुम्हें प्राप्त हुई है, मैं बता रहो हूँ सूनो । ५०। हे राजन् ! (पहले जन्म में) तुम शूद्र कुल में उत्पन्न होकर सदैव हिंसा में ही निरत रहते थे कुष्ठ रोग से दुःखी भी रहा करते थे एवं सभी जीवों को स्नेहहीन (निर्दीय) होकर कठोर दण्ड दिया करते थे । ५१। और यह विशाल नेत्रवाली (रानी) आपकी सहभर्तिणी भार्या थी उस समय भी जो नित्य दत्त चित्त होकर आपकी सेवा करती थी । ५२। हे वीर ! स्वाभाविक निष्ठुरता के कारण तुम्हारे डांटने फटकारने पर भी यह सौभाग्यशालिनी पतिव्रता तुम्हारी सभी बातें शिरोधार्य करती एवं सम्पूर्ण कार्यों के करने के लिए सदैव

नैश्चर्यादिसहायस्य त्यज्यमानस्य बन्धुभिः । क्षयं जगान योर्येऽनूत्सञ्चितः प्रपितामहैः ॥५४
 तस्मिन्कीणे कृषिपरस्त्वमासीः पृथिवीपते । सापि कर्मविपाकेन कृषिविकलतां गता ॥५५
 ततो निःस्वं परिक्षीणं परेषां भूत्यतां गतम् । तत्याज साध्वी नेयं त्वां त्यज्यमानापि पार्थिव ॥५६
 अनया तु समं साध्वा भानोरावसथे त्वया । कृतं शुश्रूषणं वृत्प्य भक्त्या सम्मार्जनादिकम् ॥५७
 निःस्नेहः सर्वकानेस्यस्तान्मयस्त्वं तदर्पणः । अहन्यहनि विश्वभात्तनिश्वावसथे रवेः ॥५८
 कान्मृकूञ्जपुरे यीर महाशुश्रूषितं त्वया । दिवाकरालये नित्यं इत्तु तन्माजेन त्वया ॥५९
 तथैवाम्बुद्धणं भूप नित्यं चैवानुलेपनम् । पत्न्यानया नृप तथा युष्मच्छित्तानुवृत्तया ॥६०
 क्षारेतं श्रवणं पुष्पमितिहासपुराणयोः । दत्त्वाइन्द्रियकं राजनिष्ठृदत्तं तु बाचके ॥६१
 अहन्यहनि यत्कर्मयुवयोर्नैर्पुर्कुर्वतोः । तत्रैव तन्मयत्वेन पापहनिरजायत ॥६२
 भानोः कार्यं भया कार्यं परं शुश्रूषणं तथा । नाप्रभातं अभातं वा चिन्तेयमभवन्निशि ॥६३
 एवमायतनं रम्यमित्येवं च सुतावहम् । सूर्यवच्चैवमेतस्यादित्यासीते मनस्तदा ॥६४
 योगिनां सुलदं कर्म तथैव सुखमित्यपि । श्रवच्छित्तमभूतत्र योगकर्मण्यहनिशम् ॥६५
 एवं तन्मनस्तत्र कुतोद्योगस्य पार्थिव : सूतानुमानिनः सम्यग्यथोक्ताधिककारिणः ॥६६

तैयार रहती थी ।५३। इसी भाँति आप जब प्रभुत्वहीन असहाय एवं बन्धुओं द्वारा परित्यक्त हो गये तो आप के पास का धन भी जिसे आपके प्रपितामह ने संचित किया था, नष्ट होगया ।५४। हे पृथिवी पते ! उस समय आप ने कृषि (खेती) करना आरम्भ किया पर बुरे कर्मों के परिणाम स्वरूप वह खेती भी निष्कल हो गई ।५५। उसके उपरान्त अत्यन्त दरिद्र एवं कृषित होते हुए भी आप को उस दयनीय दशा में नौकरी करनी पड़ी : हे पार्थिव ! उस समय विश्वबृह छोड़ दिया था किन्तु तुम्हारे त्याग करने पर भी उस महासती ने तुम्हारा त्याग कभी नहीं किया ।५६

पुनः इस पतिव्रता के साथ तुमने सेवा भाव से भक्ति पूर्वक सूर्य के मन्दिर में झाड़ आदि द्वारा सफाई करना आरम्भ किया ।५७। सूर्य के उस मन्दिर में उनके सभी काम तन्मयता पूर्वक केवल उन्हीं के लिए निःस्वार्थ भाव से विश्वस्त होकर तुम प्रतिदिन करने लगे थे ।५८। हे वीर ! दिवाकर के मन्दिर की झाड़ आदि द्वारा सफाई की वह महान् सेवा तुमने कान्मृकूञ्ज पुर में रहकर किया था । हे भूप ! उनका अभिषेक और नित्य लेप (उबटन) की सेवा करते हुए तुमने इस पत्नी के साथ जो सदैव तुम्हारे चित्त के अनुकूल रहती थी, इतिहास पुराण की पुण्य कथा भी वहाँ करायी थी । हे राजन् ! अपने पिता द्वारा प्राप्त अंगूठी इसने उस अनुष्ठान में कथावाचक के लिए अर्पित कर दी थी ।५९-६१। हे नृप इस प्रकार वहाँ प्रतिदिन तन्मय होकर जब सेवा करने लगे तो उससे तुम दोनों के पाप (उसी समय) नष्ट हो गये ।६२। सूर्य के सभी कार्य मुझे करते रहना चाहिए तथा उनकी महान् सेवा भी और उसके लिए मुझे प्रातः मध्याह्न का विचार भी नहीं करना चाहिए, इसी प्रकार विचार करते हुए तुम्हारी सारी रात बोत जाती थी ।६३। यह (सूर्य) देव का मन्दिर उन्हीं की भाँति सदैव रमणीक बना रहे तो यही भेरा सुख है उस समय तुम्हारे मन में यही भावना बनी रहती थी ।६४। योगियों के उन सुखदायक कर्मों की भाँति इनकी सेवा के ये सभी कर्म मेरे लिए नितान्त सुख कर हैं ऐसा सोचकर तुम्हारा मन उस योग्य कर्मों में रात दिन लगा रहता था ।६५। हे पार्थिव ! इस प्रकार मन लगाकर उनकी सेवा में तत्पर रहते हुए जितना कोई

स्मरतो गोपर्ति नित्यं चित्तेनापि दृढात्मनः । निःशेषमुपशांतं ते पापं सूर्यनिषेवणात् ॥६७
 ततोऽधिकं पुरस्तस्मादगारस्यानुलेपनम् । समार्जनं च बहुशः सपलीकेन यत्कृतम् ॥६८
 केवलं धर्ममाश्रित्य ल्यक्त्वा वृत्तिमशेषतः । अनया श्रवणं पुण्यं कारितं वाचकात्सदा ॥६९
 नानाधातुदिकार्त्तस्तु गोमयेन मृदा तथा । उपलेपनं कृतं भक्त्या त्वया पूर्वं सुरालये ॥७०
 अयाज्ञगाम वै तत्र कुवलाश्वे महीपतिः । भहासैन्यपरीवारः प्रभूतगजवाहनः ॥७१
 तर्वासम्पदुपेतं तं सदभिरणसूक्षितम् । वृतं भार्यासिहस्रेण दृष्ट्वा संक्रन्दनदेवहलयः ॥
 स्मृहा कृता त्वया तत्र चारनैलिनि पार्थिदे ॥७२

सर्वदामप्रद कर्म क्षियते भास्कराराश्रितम् । तेनैतदखिलं राज्यमशेषं ध्याप्तदान्महीम् ॥७३
 तेजश्चैवाधिकं यदे तथैव शृणु पार्थिवः । योगप्रभावतो लब्धं कथयाम्यशिलं तव ॥७४
 तत्रैवावसथे दीपः प्रशान्तः स्नेहसंक्षयात् । निजभोजनतैलेन दुनः प्रज्वलितस्त्वया ॥७५
 अन्या चोत्तरीयेण वीर वत्योऽवृहितः । तव पत्न्या स्वयं ज्वाल्य कान्तिरस्यात्तोऽधिकाऽ ॥७६
 तवाप्यखिलभूपालमनः क्षोभकरं दुनः । तेजो नरेन्द्र एतस्मात्किमुत्तराध्य भास्करम् ॥७७

प्राणी कर सकता है दृढ़ होकर उससे भी अधिक उनका स्मरण एवं सेवा तुमने की जिससे तुम्हारे समस्त पाप नष्ट हो गये । ६६-६७। तुम पत्नी के साथ उस मन्दिर की (चूना, झाड़ आदि द्वारा) सफाई भलीभाँति करते थे । अपनी सभी वृत्तियों को छोड़कर केवल धर्म भावना से ही तुम वैसा कर रहे थे । यह तुम्हारी स्त्री भी सदैव कथावाचक द्वारा कथा का पारायण कर उस प्रकार की पुण्य चर्चा सूर्य भगवान् को सुनाती रही । ६८-६९। (एक समय) तुम लोगोंने भाँति-भाँति के रंगों, गोबर एवं मिठ्ठियों से लीप-पोत कर उस मन्दिर को स्वच्छ किया । उस समय कुवलाश्व नामक राजा बहुत बड़ी सेना के साथ दहाँ आये जिसमें अनेकों हाथी आदि सवारियाँ थी । ७०-७१। सभी भाँति की संपत्तियों के समेत, तथा विविध प्रकार के आभूषणों से विभूषित एवं सहस्र रानियों को साथ लेकर आये-हुए उस बलशाली राजा को देखकर तुम्हें भी इच्छा हुई कि काश ! मैं भी इसी सुन्दर मुकुट धारी राजा के समान राजा हो जाता । ७२। उस समय से यही इच्छा रख कर तुमने यहाँ सूर्य के निमित्त सभी कार्य किये जो समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं । इसीलिए उस सेवा के परिणास्वरूप इतना बड़ा समस्त भूमण्डल का राज्य तुम्हें प्राप्त हुआ है । ७३

हे पार्थिव ! यह महान् तेज भी जिस योग के प्रभाव से तुम्हें प्राप्त है, मैं बता रहा हूँ सुनो । ७४। एक बार तेल की कमी के कारण उस मन्दिर का दीपक शांत (ठंडा) हो गया था किन्तु तुमने अपने निजी भोजन के लिए रखे तेल से उसे फिर से प्रज्वलित किया था । ७५। और इस रानी ने अपने ओढ़ने वाले वस्त्र (चहर) से उस दीपक की बत्ती बनाकर उसे स्वयं जलाया था । हे नरेन्द्र ! इसीलिए इसे (सबसे) अधिक मनमोहक कांति तथा तुम्हें निखिल राजाओं के मन को संतृप्त करने वाला यह तेज प्राप्त हुआ है । तो विधानपूर्वक सूर्य की आराधना के द्वारा तेज आदि प्राप्त करने वाले व्यक्ति को कहना ही क्या

एवं नरेन्द्रः शूद्रत्वाद्भानुकर्मपरायणः । तन्मयत्वेन सम्प्राप्तो महिनानमनुत्तमम् ॥७८
 कि पुनर्यो नरो भक्त्या नित्यं शुश्रूषणादृतः । करोति सततं पूजां निष्कामो नान्यमानसः ॥७९
 सर्वाभूदिमिमां लब्ध्या सर्वलोकमहेश्वरः । पूजयित्वार्कमीशेशं तमाराध्य न सीदति ॥८०
 पुष्ट्यधूपैस्तथा वान्यैर्दर्पैर्वस्त्रानुलेपनैः । आराधयार्कं तदेशम् सदा सम्मार्जनादिना ॥८१
 यद्यदिष्टतमं किञ्चिद्वाद्यन्यनु दुर्लभम् । तद्वत्वा च जगद्वात्रे भास्कराय न सीदति ॥८२
 सुगन्धागुरुक्षपूरचन्दनागुरुकुमे । वासोभिर्बिविधैर्धूपैः उपैः लक्ष्मामरध्वजैः ॥८३
 अन्योपहारैवदिधैः कृतक्षीराभिषेचनैः । गीतवादित्रनृत्यादैस्तोषयस्वार्कम्भादरात् ॥८४
 पुण्यरात्रिषु भार्तण्डं नृत्यगीतैरयोज्ज्वलम् । भूष जागरणे भक्त्या होसः कार्यः सदा शुचिः ॥८५
 इतिहासपुराणानां श्रवणेन विशेषतः । तथा वेदस्वनैः पुण्यैर्कृत्सागायजुभिर्नृप ॥८६
 एवं सन्तोष्यते भक्त्या भगवान्भवभद्रगुक्त । भूयो वैवस्त्वतो भूत्वा भवहृद्भास्त्वरो नरैः ॥८७
 तोषितो भगवान्भानुर्ददात्यभिस्तं दलम् । दैवकर्मसमर्थानां प्राणिनां स्मृतिसम्भवैः ॥८८
 तोषितो भगवान्कामान्नाच्छ्रुति दिवाकरः । नैष वृत्तैर्न रत्नैधैः पुष्ट्यधूपानुलेपनैः ॥
 सद्भावेनैव भार्तण्डस्तोषमायाति दंस्त्वृतः ॥८९
 त्वयैकापमनस्केन गृहसम्मार्जनादिकम् । कृत्वात्पमीदृशं प्राप्तं राज्यमन्येन दुर्लभम् ॥९०

हे नरेन्द्र ! शूद्र होने पर भी तन्मयता से सूर्य के लिए सभी कर्म करने पर तुम्हें इस अनुपम महिमा की प्राप्ति हुई है ॥७८। इस प्रकार भक्ति पूर्वक जो मनुष्य अनन्य भक्त होकर निष्काम भावना से नित्य उनकी पूजा सेवा करता है, उसे क्या और कहता है ॥७९। वह सर्व समृद्ध होकर समस्त लोकों का अधिपत्य प्राप्त करता है क्योंकि ईश के ईश (सूर्य) की आराधना करने पर किसी भाँति का दुःख नहीं रह जाता है ॥८०। अतः पुष्ट्य, धूप, दीप, वस्त्र, एवं चन्दन प्रदान करते हुए उनके मंदिर की सफाई करने के द्वारा भी उनकी आराधना करो ॥८१। जो अपने को अत्यन्त प्रिय हो तथा वह वस्तु अन्य दुर्लभ प्राप्त वस्तुएँ भी उन जगत्त्रियत्वा सूर्य के लिए अपित करने पर किसी भाँति का लेश मात्र भी दुःख कभी नहीं होता है ॥८२। (इसलिए) सुगन्ध, अगुह, कपूर, चन्दन, कुंकुम, वस्त्र, भाँति-भाँति के पुष्ट्य, चामर, घज्जा एवं अन्य उपहार तथा दूध द्वारा अभिषेचन, गायन, वाच एवं नृत्य आदि द्वारा सादर उन्हें प्रसन्न करो ॥८३-८४। हे भूष ! भक्तिपूर्वक पुण्य रात्रि में भास्कर मार्तण्ड देव के लिए नृत्य गान, जागरण एवं पवित्रता पूर्ण हवन विशेषकर इतिहास-पुराणों की कथाएँ सुनाने तथा कृत्वेद, सामवेदों के पुण्य पारायण द्वारा संसार (जन्म-मरण) रूप दुःख के नाशक सूर्य को संतुष्ट करना चाहिए ॥८५-८७। क्योंकि अपने आत्मीय मनुष्यों द्वारा प्रसन्न होकर संसार नाशक सूर्य भगवान् उसे अभीष्ट कल प्रदान करते हैं। इसी भाँति देव कार्य करने में दक्ष प्राणियों के सावधान होकर किये गये पूजा द्वारा प्रसन्न होने पर भगवान् दिवाकर समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं। नियम, रत्नादि, पुष्ट्य, धूप एवं लेपन द्वारा पूजित होने पर सूर्य उतने प्रसन्न नहीं होते हैं जितना कि सद्भावना द्वारा की गई आराधना से सन्तुष्ट होते हैं ॥८८-८९। एकाग्रचित्त होकर तुमने केवल मन्दिर की सफाई आदि का कार्य किया था और उसी अनन्य आराधना द्वारा इतना महान् राज्य जो अन्य के लिए अत्यन्त दुर्लभ है, तुम्हें प्राप्त हुआ है ॥९०। सूर्य के

अनया श्रवणं पुण्यं कारपित्वा गृहे रवेः । ईदृक्प्राप्ता सम्पदियं पूजां कृत्वा तु वाचके ॥११
प्राप्तोपकरणैर्यस्तमेकाग्रमतिरण्डजम् । सन्तोषयति नेन्द्रोऽपि भवतः वै समः क्वचित् ॥१२
तस्मात्त्वमनया देव्या सहात्यन्तविनीतया : भास्कराराधने यत्नं कुरु धर्मभृतां वर ॥१३

ब्रह्मोवाच

एतन्युनेर्वस्तो वीरं निशम्य स नराधिषः । भार्यासिहायः स तदा संप्रहृष्टतनुरुहः ॥१४
कृतकार्यमिवात्मानं मन्यमानस्तदाभवत् । उवाच प्रणतो भूत्वा राजा सत्राजितोऽच्युत ॥१५

सत्राजित उवाच

यथामरत्वं सम्प्राप्य यथा वायुबेलं परम् । परं निर्वाणमाप्नोति तथाहं वचसा तव ॥१६
कृतकृत्यः सुखासीनो निर्वृतिं परमां गतः । अज्ञानतमसाच्छन्ने यत्प्रदीपस्त्वया धूतः ॥१७
अहमेषा च तन्वद्विषी विभूतिभ्रंशभीरुकः । इव्यमापादितं ब्रह्मश्निहाय वचसा तव ॥१८
सम्पदः कृथितं बीजमात्रयोर्भवता मुने । त्वद्वक्त्रादुद्यतः वाचो विज्ञाता हि द्विजोत्तम ॥१९
न रत्नैर्न च वित्तौर्धनैर्न च पुष्टानुलेपनैः । आराध्यश्च जगन्नाथो भावशून्यैदिवाकरः ॥१००

मन्दिर में तुमने कथा करायी तथा कथावाचक की यही (केवल अंगूठी द्वारा) पूजा की थी उससे तुम्हें इस प्रकार की अतुलनीय संपत्ति प्राप्त हुई है । इसलिए साधन संपन्न होकर जो कोई तन्मयता से सूर्य को प्रसन्न करता है तो उसे सभी कुछ प्राप्त होता है । इसीलिए किसी भी अंश में इन्द्र भी तुम्हारी समानता नहीं कर सकता है । ११-१२। अतः हे धर्मिक श्रेष्ठ ! तुम इस धर्म पत्नी के साथ अत्यन्त नम्रता पूर्वक भास्कर की आराधना के लिए प्रयत्न करो । १३

ब्रह्मा बोले—हे वीर ! इस प्रकार मुनि की बातें सुन ज्ञर स्त्री समेत राजा (प्रसन्नता से) गदगद हो गया । १४। उस समय उसने आपने को 'कृतकार्य' होने का अनुभव किया । हे अच्युत ! अनन्तर राजा सत्राजित नम्रता पूर्वक पुनः बोला । १५

सत्राजित ने कहा—जिस प्रकार किसी को अमरत्व एवं वायु के विशाल बल की प्राप्ति के द्वारा निर्वाणपद की प्राप्ति एवं आनन्द का अनुभव होता है, उसी प्रकार मैं आपकी बातें सुनकर परमानन्द में निमग्न हो गया हूँ । १६। अज्ञान रूपी अंधकार से ढके हुए मेरे लिए (ज्ञान रूपी) दीपक जो आपने दिखाया है उससे मैं कृतकृत्य हो गया एवं सुख पूर्वक बैठे हुए मुझे आज परम निर्वृति (सुख) की प्राप्ति हो रही है । १७। मैं तया यह कृष्णज्ञी (हम दोनों) इस विशाल ऐश्वर्य के भविष्य में नष्ट हो जाने की कल्पना से भयभीत हो रहे थे, पर, हे ब्रह्मन् ! आप की बातों से मुझे आज अनभ्यर एवं अगाध संपत्ति प्राप्त हुई है मुझे ऐसा भान हो रहा है । १८। क्योंकि हे मुने ! आपने हम दोनों की संपत्ति के सूल कारण को बता दिया है, और आप के मुख से निकली हुई समस्त बातों को मैं भली भाँति समझ भी गया हूँ । १९। रत्नों, धनों, पुष्टों एवं चन्दनों के द्वारा सूर्य की आराधना नहीं हो सकती है, अपितु जगन्नाथ दिवाकर की आराधना केवल भावशून्य (रागमोह हीन) भावना से ही की जा सकती है । २०। इसलिए बाहर

ब्राह्मार्थनिरपेक्षेभ्व मतसंव मनोगतिः । निःस्वैराराध्यते देवो भानुः सर्वेश्वरेश्वरः ॥१०१
सर्वमेतन्मया ज्ञातं यत्त्वमात्थ महामुद्देश्य । यच्च पृच्छामि तन्मे त्वं प्रसादमुमुखो बद ॥१०२
कथमाराधितो देवो नरैः स्त्रीभिश्च भास्करः । तोषमायाति विप्रेन्द्र तद्वदस्व महामुद्देश्य ॥१०३
रहस्यानि च देवस्य प्रीतये या तिथिः सदा । चान्यशेषाणि मे ब्रूहि अर्काराधनकांक्षणः ॥१०४

परावसुरुद्वादश

भृणु भूपाल यैर्भानुर्गृहेष्वाराध्यते जनैः । नारीभिश्चातिघोरेऽस्मिन्यतितभिर्भवार्णवे ॥१०५
समभ्यर्च्य जगत्रायं देवगर्कं समाधिना । एकमशनाति यो भर्तुं द्वितीयं ब्राह्मणार्णवम् ॥१०६
करोति भास्करप्रीतै कार्त्तिकं मासभात्मना । पूर्वे वयसि यत्लेन जानताऽज्जानतामि वा ॥१०७
पापमाचरितं तस्माद्विद्यते नात्र संशयः । अनेनैव विधानैन मासि मार्गशिरे पुनः ॥१०८
समभ्यर्च्य मरकतं विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति । भगवत्प्रीणनार्थाय कलं तस्य भृणुष्व मे ॥१०९
मध्ये वयसि यत्पापं योषिता पुरुषेण वा । कृतमस्माच्च लेनेक्तो विनोक्तः परमात्मना ॥११०
तथा चैवेकभर्तुं तु यस्तु विप्राय यच्छति । दिवाकरं समभ्यर्च्य पौद्ये मासि महीपते ॥१११
ततच्च प्रीणयत्यर्कं वाधिकैनैव यत्कृतम् । स तस्मान्मुच्यते राजन्युमान्योषिदथामि वा ॥११२

आडम्बर (पुष्य चन्दन आदि) की अपेक्षा न रखकर केवल मनोयोग धन हीनों की भाँति ही उस सर्वेश्वर भानु की आराधना करनी चाहिए ॥१०१

हे महामुद्देश्य ! इस प्रकार मैं इन सभी बातों को जो आपने कहा है समझ गया अब पुनः जो कुछ मैं पूँछ रहा हूँ उसे प्रसन्न मुख मुद्रा से बताने की कृपा करें । हे विप्रेन्द्र ! स्त्री पुरुषों द्वारा किस प्रकार की आराधना करने पर सूर्य प्रसन्न होते हैं आप उसे बतायें ? सूर्य देव के रहस्य उनकी प्रिय तिथि, एवं अन्य सभी बातें भी मुझे बताने की कृपा करें क्योंकि मैं उनकी अध्याद्धना करने का महान् अभिलाषी हूँ ॥१०२-१०४

परावसु द्वोले—हे भूपाल ! पुरुषों या स्त्रियों द्वारा जो इस अतिघोर संसार सागर में डूब रहे हैं जिस विधान पूर्वक अपने धरों में सूर्य की आराधना सुसम्पन्न की जाती है मैं कह रहा हूँ मुनो ॥१०५। कार्त्तिक मास में सूर्य की प्रसन्नता के लिए एकाग्रचित्त होकर उस जगन्नाथ भगवान् सूर्य की अर्चना करके एक बार जो भोजन करता है तथा ब्राह्मण भोजन भी करता है उसके प्रथम (कुमार) अवस्था के पाप, जो ज्ञान या अज्ञान वश किये गये हों निर्मूल (नष्ट) हो जाते हैं । पुनः इसी भाँति इसी विधान द्वारा मार्गशीर्ष मास में जो सूर्य के प्रसन्नार्थ उनकी अर्चना करके उन ब्राह्मणों के लिए मरकत मणि अपित करता है उसके फल को बता रहा हूँ मुनो ॥१०६-१०९। उस आराधना से प्रसन्न होकर परमात्मा सूर्य मध्यमावस्था (जवानी) में उन स्त्री पुरुषों द्वारा किये समस्त पापों को नष्ट करते हैं ॥११०। हे महीपते ! उसी प्रकार पौष मास में दिवाकर की पूजा करके (रात में) एकाहार करे और ब्राह्मण भोजन कराये तो उससे प्रसन्न होकर सूर्य उसके वृद्धावस्था के समस्त पाप को चाहे वह स्त्री द्वारा किया गया हो या पुरुष द्वारा नष्ट कर देते

त्रिमासिकं व्रतमिदं यः करोति नरेश्वर । स भानुश्रीणनात्पापैर्लघुभिः परिमुच्यते ॥११३
द्वितीये वत्सरे राजन्मुच्यते चोपपातकैः । तद्वसृतीयेऽपि कृतं महापातकनाशनम् ॥११४
व्रतमेतन्नप्तैः स्त्रीभिस्त्रिभिर्मासैरनुष्ठितम् । त्रिभिः संवत्सरैश्चैव प्रददाति फलं नृणाम् ॥११५
त्रिभिर्मासैरनुष्ठानात्प्रियधात्पातकान्लृप । त्रीणि त्रामानि देवस्य मोक्षयति च वार्षिकैः ॥११६
यतस्ततो व्रतमिदं विविधं समुदाहृतम् । सर्वदापश्चामनं भास्कराराधने दरम् ॥११७

सत्राजित उवाच

कतमाय तु विप्राय दातव्यं भक्तिरो मुने । द्वितीये द्विजशार्दूल कथयस्वाखिलं मम ॥११८
परादसुखवाच्

देये पुराणविदुषे वस्त्रे विप्रोत्तमाय च । श्रूयतां चापि वचनं यदुक्तं भास्करेण च ॥
अरुणाय महाबाहो पृच्छते यत्पुरात् नृप ॥११९
उदयाचलमारुदं भास्करं तिमिरापहम् । प्रणम्य शिरसा नूनस्थिदं वचनमब्दवीत् ॥१२०
कानि प्रियाणि ते देव पूजने सन्ति सर्वदा । पुष्पादीनां समस्तानामाराधनविधौ सदा ॥
उपरागादिवस्त्रादौ वाहृणानां ज्ञात्य रवे ॥१२१

भास्कर उवाच

पुष्पाणां करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् । गुगुलञ्चापि धूपानां नैवेद्ये मोदकाः प्रियाः ॥१२२

हैं ॥१११-११२। हे नरेश्वर ! इस प्रकार इस त्रैमासिक व्रत-विधान को सुसम्पन्न करते हुए जो इसकी समाप्ति करते हैं उसके अनुष्ठान से प्रसन्न होकर सूर्य उसे छोटे-छोटे पापों से मुक्त कर देते हैं ॥११३। हे राजन् ! दूसरे वर्ष फिर इसी प्रकार से व्रत विधान को सुसम्पन्न करने से वह उपपातक से मुक्त हो जाता है तथा तीसरे वर्ष पुनः इसके विधानानुष्ठान द्वारा उसे महापातक से मुक्ति प्राप्त हो जाती है ॥११४। इस भाँति तीन मास में इस व्रत की समाप्ति करना मनुष्यों का परम कर्तव्य है । क्योंकि इसका अनुष्ठान पूरे तीन वर्ष तक अनवरत करते रहने पर मनुष्य को अत्यन्त फल की प्राप्ति होती है ॥११५। हे नृप ! इसी प्रकार सूर्यदेव के तीनों नाम तीन मासवाले इस अनुष्ठान के द्वारा पुरुषों के पातकों की तीन वर्षों में समाप्त (कृष्ट) करते रहते हैं ॥११६। इसीलिए सूर्य की आराधना द्वारा समस्त पातकों के विनाशार्थ यह व्रत विविधभाँति से बताया गया है ॥११७

सत्राजित ने कहा—हे मुने ! हे द्विजशार्दूल ! भक्तिपूर्वक किस वाहृण को दान समर्पित कर और भोजन कराना चाहिए मुझे बताने की कृपा करे ॥११८

परावसु बोले—वाहृणोत्तम एवं पौराणिक विद्वान् को ही वस्त्र आदि समर्पित करना चाहिए । हे महाबाहो ! पहले समय में इसी विषय की बातें अरुण के पूँछने पर सूर्य ने कही थी, मैं वही कह रहा हूँ मुझो ! ॥११९। एक बार उदयाचल (पर्वत) पर अन्धकार नाशक सूर्य के पहुँचने पर (प्रातःकाल ही) अरुण ने उन्हें नतमस्तक प्रणाम करते हुए यह कहा ॥१२०। हे देव ! मनुष्यों द्वारा आपके अपने पूजन सुसम्पन्न करते समय आपको कौन-सी वस्तु सदैव प्रिय लगती है, हे देव ! उसी प्रकार समस्त पुष्पों में जो पुष्प एवं ग्रहण समय में जो प्रिय वस्त्र हों जिन्हें वाहृणों को सादर समर्पित किया जा सके उन्हें बताने की कृपा करें ॥१२१

भास्कर बोले—जिस प्रकार मुझे पुष्पों में करवीर (कन्तेर), चंदन, गुगुल की धूप एवं नैवेद्य में

पूजाकरो भोजकस्तु धृतदीपस्तथा प्रियः । इनं प्रियं खगश्रेष्ठं वाचकाय प्रदीयते ॥१२३
 मामुहिश्य च यदानं दीयते नानवैर्भुवि । वाचकाय^१ तु दातव्यं तन्मनं प्रीतये खलः ॥१२४
 इतिहासपुराणाभ्यामभिज्ञो यस्तु वाचकः । ब्राह्मणो वै खगश्रेष्ठः सम्पूज्यः प्रीतये सम् ॥१२५
 पूजितेऽस्मिन्सदा विप्रे पूजितोहं न संशयः । अदामि खगशार्दूलं यतस्त्वद्वः स से सदा ॥१२६
 वेदवर्णामृदइग्नेश्च नातिगन्धविलेपनैः । तथा मे जायते प्रीतिर्था श्रुत्वा खगोऽहम् ॥१२७
 इतिहासपुराणानि वाच्यमाननि वाचकैः । अतः प्रियो वाचको मे पूजाकर्ता च भोजकः ॥१२८

इति भविष्ये नहापुराणे ब्राह्मे दर्पणि सप्तमीकल्पे सत्राजितोपाख्याने रविपूजाविधिवर्णनं
 नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः । ११६।

अथ सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

उपलेपनस्तापनमाहात्म्यवर्णनम्

अरुण उवाच

किमर्य भोजकस्तुभ्यं प्रियो देवेश कथ्यताम् । नान्ये विप्रादयो वर्णा देवतायतनेषु वै ॥१

मोदक प्रिय हैं, उसी भाँति पूजा करने वालों में भोजक (ब्राह्मण) एवं धी का दीपक, तथा हे खगश्रेष्ठ ! वाचक के लिए समर्पित किया गया दान अत्यन्त प्रिय है । १२२-१२३। इस पृथिवी तल में मनुष्यों को चाहिए कि मेरे उद्देश्य से जो कुछ दान दिये जाय उसका ग्राहक वाचक को ही बनायें अन्य को नहीं क्योंकि उससे मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होती है । हे खगश्रेष्ठ ! इतिहास एवं पुराण के विशद विद्वान् को वाचक बनाकर उसकी पूजा करनी चाहिए उससे मुझे अधिक प्रसन्नता होती है । १२४-१२५। हे खगशार्दूल ! उस वाचक ब्राह्मण की पूजा करने पर मैं ही पूजित होता हूँ। इसमें कोई संशय नहीं क्योंकि वह मुझे अत्यन्त प्रिय होता है । १२६। हे खगोत्तम ! वेद, वीणा, मृदङ्ग, अति सुर्गधित लेपन द्वारा मैं उतना प्रसन्न नहीं होता हूँ जितना कि वाचक द्वारा इतिहास एवं पुराण की कथाओं के कहने सुनने से प्रसन्न होता हूँ इसलिए वाचक तथा मेरी पूजा करने वाला भोजक मुझे अत्यन्त प्रिय है । १२७-१२८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सत्राजित उपाख्यान में रविपूजा विधि वर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त । ११६।

अध्याय ११७

उपलेपन विधि वर्णन

अरुण ने कहा—हे देवेश ! देव मन्दिरों में रहकर अर्चनादि कर्मों के लिए भोजक के अतिरिक्त आप को अन्य ब्राह्मण आदि वर्ण प्रिय नहीं हैं केवल भोजक ही क्यों प्रिय हैं मुझे बताने की कृपा कीजिए । १। हे

कश्चायं भोजको देव कस्य पुत्रः किमात्मकः । वर्णतश्चास्य मे शूहि कर्म चास्य समन्ततः ॥२
आदित्य उवाच

साधु पृष्ठोऽस्मि भद्रं ते दैतये महामते । भृणुष्वैकननाः सर्वं गदतो प्रम खेच्चर ॥३
विप्रादयस्तु ये त्वन्ये वर्णः कश्यपनन्दन । ते पूजयन्ति मां नित्यं भक्तिशद्वासमन्विताः ॥४
देवालयेषु ये विप्राः प्रीत्या मां पूजयन्ति हि । अन्याश्च देवतादृत्या ते स्युर्देवलकाः खग ॥
एतस्मात्कारणान्महां भोजको दिनितः सदा ॥५
वर्णतो ब्राह्मणश्चायं स्वानुष्ठानपरो यदि । अनुष्ठानविहीनो हि नरकं यात्यसंशयम् ॥६
न त्याज्यं भोजकंस्तस्मात्स्वकं कर्म कदाच्चन । मयासौ निर्मितः पूर्वं तेजसा स्वेत वै खग ॥७
पूजार्थमात्मनो नूनं कर्म चास्य प्रकीर्तितम् । प्रियद्रष्टसुतो राजा शाकदीपे महामतिः ॥८
तेन मे कारितं दिव्यं विमानश्रतिमं गृहम् । तस्मिन्दीपे तदत्मीये दिव्यं शिलस्यं घहत् ॥९
त यदचाँ कारयित्वा काञ्चनीं लक्षणान्विताम् । प्रतिष्ठापनाद वै तस्याश्चिन्तयामास सुव्रतः ॥१०
इत्यायतनं श्रेष्ठं तेनेयं प्रतिमा छृता । को वै प्रतिष्ठापयिता देवमर्कं शुभालये ॥११
एवं सञ्चिन्तयित्वा तु जगाम शरणं भूम । भक्तिं तस्य च सञ्चिन्त्य खगां पर्यवस्थ्य तु ॥१२

देव ! यह भोजक कौन हैं, किसका पुत्र है, इसका वर्ण (जाति) क्या है, तथा उसके कर्म कौन हैं मैं ये सभी बातें जानना चाहता हूँ ॥१२

आदित्य बोले—हे महामते, दैतये ! तुम्हारा कल्याण हो, तुमने साधु प्रश्न किया है, हे आकाश चारिन् । मैं इन सभी बातों को कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ॥३ हे कश्यपनन्दन ! ब्राह्मणादि अन्य वर्ण भी भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक नित्य मेरी आराधना करते हैं ॥४ हे खग ! जो ब्राह्मण देवालयों में स्थापित मेरी प्रतिमा की प्रेम पूर्वक आराधना करते हैं वे और पूजा को ही अपनी जीविका मानकर सदैव जो उसमें तन्मय रहते हैं उन्हें देवलक कहा जाता है किन्तु, जीविका मानकर तन्मय रहने वाले ये भोजक ही मुझे अत्यन्त प्रिय हैं ॥५ भोजक तो जाति का ब्राह्मण होता ही है, इसलिए उसे अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए । अन्यथा अनुष्ठान न करने पर उसे निश्चित नरक की प्राप्ति होती है ॥६ हे खग ! इसलिए भोजक को अपने दैनिक (कर्म) का त्याग कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि पूर्व में मैंने उसे अपने तेज से उत्पन्न किया है ॥७

अपनी पूजा करने के निर्मित मैंने इनके कर्म भी बता दिये हैं । (अब इसी विषय की कथा) बता रहा हूँ सुनो ! राजा प्रियव्रत का पुत्र शाकदीप का महाबुद्धिमान् राजा या जिसने मेरे लिए विमान की भाँति एक उत्तम मन्दिर की रचना करायी थी । उस दीप में उसने एक महान् शिला खंड की (मेरी) मूर्ति का जो सुवर्ण से खचित एवं सर्व लक्षण संपन्न थी निर्माण करा कर उसकी स्थापना (प्रतिष्ठा) के लिए सोचा कि इस अनुपम मन्दिर तथा इस प्रतिमा का निर्माण कार्य तो मैंने सुसम्पन्न कर दिया परन्तु इस मुन्द्र मन्दिर में इस मूर्ति की (सूर्य देव की) प्रतिष्ठा का कार्य किस विधान द्वारा कराया जाये ॥८-११। इस प्रकार विचारते हुए वह मेरी शरण में आया । हे खग ! मैं उस राजा की भक्ति देखकर उसके सामने प्रत्यक्ष हुआ और उससे मैंने कहा—हे राजेन्द्र ! तुम चिंतित क्यों हो रहे हो और तुम्हें चिता

गतोऽहं दर्शनं तस्य उक्तश्चापि मया खग । किं चिन्तयसि राजेन्द्रं कुर्तश्चिता समागता ॥१३
 ब्रूहि यते हृदि प्रीढं चिन्ताकारणमागतम् । संपादयिष्ये तत्सर्वं विमना भव ना नृप ॥१४
 अत्यर्थं दुष्करमपि करिष्ये नात्र संशयः । इत्युक्तः स मया राजा इतं वचनमङ्गवीत् ॥१५
 द्वीपेऽस्मिन्देवदेवस्य कृतमायतनं तत्र । मया भक्त्या जगन्नाथं तथेयं प्रतिमा कृता ॥१६
 प्रतिष्ठां कारयेद्यस्तु तत्र देवालये खग । यत्र सन्ति त्रयोः वर्णा द्वीपेऽस्मिन्क्षत्रियादः ॥१७
 ते मयोक्ता न द्वुर्वन्ति प्रतिष्ठां तत्र कृत्यशः । न चाप्यर्चां जगन्नाथं ब्राह्मणश्चात्र विद्यते ॥१८
 तेनेयमागता चिन्ता हृदि शल्यं तर्यापितम् । ततो मयोक्तो राजाऽसौ दैनतेय वचः शुभम् ॥१९
 एवमेतम् संदेहो यथात्य त्वं नराधिपः । क्षत्रियादित्रयो वर्णा द्वीपेऽस्मिन्क्षत्रियादः संशयः ॥२०
 ते च नार्हन्ति मे पूजां न प्रतिष्ठां कदाचन । तस्माते श्रेयसे राजन्त्रिष्ठामात्मनस्तथा ॥२१
 सृजामि प्रथमं वर्णं भगवंजमनौपमम् । इत्युक्त्वा तमहं वीरं राजानं खगसत्तम ॥२२
 जगाम परमां चिन्तां तस्य कार्यस्य सिद्धये । अथ मे चिन्तायानस्य^१ स्वशरीराद्विनिःसृताः ॥२३
 शशिकुन्दे द्वुसंकाशाः संलग्नाः पृष्ठौ भगवलाः । पठन्ति चतुरो वेदासांगेऽपनिषदः खग ॥२४
 काषायलाससः सर्वे करण्डाम्बुजधर्मारणः । ललाटफलकाद्द्वौ तु द्वौ चान्यौ वक्षसत्तथा ॥२५

कहाँ से आ गई ॥१२-१३। अच्छा, तुम अपने हृदय में वर्तमान विशेष चिंता के कारण को शीघ्र बताओ ! हे नृप ! मैं अवश्य उस कारण की पूर्ति करूँगा । अतः अपने चित्त को दुखी न करो । १४। यदि वह कार्य अत्यन्त कठिन भी होगा तो भी मैं उसे सिद्ध कर दूँगा इसमें संशय नहीं है । इस प्रकार मेरे कहने पर उस राजा ने कहा कि हे देवाधिदेव ! इस द्वीप में आपका मन्दिर मैंने बनवाया है, हे जगन्नाथ ! भक्तिपूर्वक मैंने इस (आपकी) प्रतिमा का भी निर्माण कराया है । १५-१६। हे आकाशगामिन् ! उस मन्दिर में आप की मूर्ति की प्रतिष्ठा कौन कराये क्योंकि उस द्वीप में क्षत्रिय आदि तीन ही वर्ण रहते हैं । १७। तथा मेरे आदेश देने पर भी वे सब आप की मूर्ति की (विधान पूर्वक) प्रतिष्ठा का कार्य सम्पूर्णतया नहीं करा सकते हैं । हे जगन्नाथ ! इसी प्रकार प्रतिदिन की पूजा भी नहीं हो सकती है क्योंकि यहाँ कोई ब्राह्मण तो है ही नहीं । १८। इसीलिए इन्हीं कार्यों की चिन्ता मेरे हृदय में शूल की भाँति पीड़ा कर रही है । हे दैनतेय ! इसके पश्चात् मैंने उस राजा से इस प्रकार मांगलिक शब्दों में कहा । १९। हे नराधिप ! क्षत्रिय आदि तीन ही वर्ण इस द्वीप में है, इसमें कोई संशय नहीं और जो कुछ तुम कह रहे हो वह भी सत्य है । २०। वे मेरी प्रतिष्ठा एवं पूजा सुसम्पन्न कराने के योग्य कभी नहीं हो सकते हैं । हे राजन् ! इसीलिए तुम्हारे कल्याण एवं अपनी (मूर्तिकी) प्रतिष्ठा के लिए मैं 'भग नामक' (श्रेष्ठ) वर्ण वाले को उत्पन्न कर रहा हूँ । हे खग ! इस प्रकार उस राजा से कह कर मैं उस राजा की कार्य-सिद्धि के लिए अधिक नहीं क्षणमात्र चित्तित हुआ कि मेरी शरीर से चन्द्र कुन्द एवं इन्दु की भाँति स्वच्छ वर्ण वाले आठ महाबली पुरुष उत्पन्न हुए । हे खग ! वे उस समय सांगोपांग उपनिषद् एवं चारों वेदों का पाठ कर रहे थे । २१-२४। सभी काषाय वस्त्र पहने तथा बाँस का पुण्यपात्र लिए हुए ये जिसमें कमल पुष्प

वरणाभ्यां तथा द्वौ तु पादाभ्यां द्वौ तथा खग । अथ ते च भहात्मानः सर्वे प्रणतकन्धराः ॥२६
 पितरं भन्यमाना मासिदं वचनमब्लुवन् । ताततात महादेव लोकनाथं जगत्पते ॥२७
 किमर्थं भवता सृष्टा वयं देवस्य देहतः । ब्रूहि सर्वं करिष्याम आदेशं भवतोऽखिलम् ॥२८
 पितास्माकं भवान्वेवो वयं पुत्रा न संशयः । इत्युक्तवन्तस्ते सर्वे मयोक्ता देवसम्भवाः ॥२९
 प्रियव्रतसुतो योद्यमस्य याक्यं कारण्यथ । स चाप्युक्तो मया राजा शाकद्वीपाधिः खग ॥३०
 य एते मत्सुताः राजशर्प्या ब्राह्मणसत्तमाः । कारण्यन्तु भ्रतिष्ठां मे सर्वैरभिर्महीपते ॥३१
 कारणित्वा प्रतिष्ठां तु ममार्चायां नराधिप । पश्चादाद्यतनं सर्वमेषामर्थ्यं पूजने ॥३२
 एते मत्पूजने योग्याः प्रतिष्ठासु च सर्वशः । समाप्य न प्रहृत्यव्यं भोजकेभ्यः कदाचन ॥३३
 सर्वमायतनार्थं तु गृहक्षेत्रादिकं च यत् । धनधान्यादिकं राजन्यन्ममायतने भवेत् ॥३४
 तत्सर्वं भोजकेभ्यस्तु दातव्यं नात्र संशयः । धनधान्यसुवर्णादि गृहक्षेत्रादिकं च यत् ॥
 यन्मदीयं भवेत्किञ्चित्दग्नामे वा नगरे क्वचित् ॥३५
 तस्य सर्वस्य राजेन्द्र मदीयस्य समन्ततः । अधिपा भोजकाः सर्वे नान्ये विप्रादयौ नृप ॥३६
 यथाधिकारी पुत्रस्तु पितृद्रव्यस्य वै भवेत् । तथा मदीयवित्तस्य भोजकाः स्युर्न संशयः ॥३७
 इत्युक्तेन मया राजा तथा सर्वं प्रवर्तितम् । कारणित्वा प्रतिष्ठां तु दत्त्वा सर्वस्वमेव हि ॥
 भोजकेभ्यः खगश्रेष्ठ ततो हर्षमवाप्तवान् ॥३८

संचित किया गया था । हे खग ! इस प्रकार मेरे मस्तक, वक्षःस्थल, चरण एवं चरणतल द्वारा वे दो-दो व्यक्ति उत्पन्न हुए थे ; पश्चात् वे महात्मा लोग मुझे पिता समझते हुए मेरी ओर न तमस्तक हो कर यह कहने लगे कि हे तात ! हे महादेव ! हे लोकनाथ ! एवं हे जगत्पते ! आप ने अपनी देह से हमें किस लिए उत्पन्न किया है आज्ञा प्रदान करें । हम लोग उसे शिरोधार्य कर उसके पालन के लिए तैयार रहे हैं । २५-२८। आप हम लोगों के पिता हैं तथा हम लोग आपके पुत्र हैं, इसमें संशय नहीं । इस प्रकार उनके कहने पर मैंने उनसे कहा । प्रियवरत राजा का यह पुत्र सामने उपस्थित है, इसकी मन इच्छित बातें पूरी करो ! हे खग ! पश्चात् मैंने उस-शाकद्वीपाधिपति राजा से भी कहा । २९-३०। हे राजन् ! ये सब ब्राह्मण थेष्ठ एवं पूजनीय मेरे पुत्र हैं । हे महीपते ! ये सभी मेरी प्रतिमा की प्रतिष्ठा करायेंगे ! । ३१। हे राजन् ! प्रतिष्ठा कराने के उपरांत मेरी पूजा करने के लिए इहाँ मन्दिर अर्पित कर देना । ३२। क्योंकि ये सभी भली भाँति मेरी प्रतिष्ठा एवं पूजा करने के योग्य हैं प्रतिष्ठा-कार्य की समाप्ति के पश्चात् भोजकों को दी हुई वस्तुएँ उनसे कभी न लेना चाहिए । हे राजन् ! अतः उस मन्दिर में गृहक्षेत्र एवं धन-धान्य आदि जो कुछ भी वस्तु एकत्र किया गया हो वे सभी भोजक को निश्चित रूप से अर्पित कर देना । क्योंकि धन धान्य सुवर्ण आदि तथा गृह एवं क्षेत्र जो कुछ भी मेरे उद्देश्य से किसी ग्राम या नगर में संचित किया गया हो, सभी प्रकार से उसके अधिकारी भोजक ही हैं न कि किसी अन्य ब्राह्मण आदि के । ३३-३५। जिस प्रकार पैतृक संपत्ति को अधिकारी उसका पुत्र होता है, उसी भाँति मेरे धन के अधिकारी भोजक हैं, इसमें संशय नहीं । ३६-३७। हे खगश्रेष्ठ ! इस प्रकार मेरे कहने पर राजा ने वैसा ही किया । प्रतिष्ठा कराने के पश्चात् उसने वहाँ का सर्वस्व भोजक को समर्पित करते हुए अत्यन्त हर्ष प्रकट किया । ३८। हे गरुडाग्रज !

एवमेतं मथा सृष्टा भोजका गरुडाप्रज । अहमात्मा ततो हृषां सर्वे सुप्रनसस्तथा ॥३९
 मत्पुत्रेण समा ज्ञेयास्तथा मम हिताः सदा । तस्मात्तेभ्यः प्रदातव्यं न हृतव्यं कदाचन ॥४०
 भोजकस्य हरेद्यस्तु लोभाद्वेषात्तथापि वा । स याति नरकं घोरं तामिक्षं शाखतीः समाः ॥४१
 तस्माद्ग्रामादिकं इव्यं यत्किञ्चिचन्मम विद्यते । तत्सर्वं भोजकस्वं हि पितृपर्यागतं मम ॥४२
 भोजकश्च भवेद्यादृक्षत्ते बच्चम् खोश्चर । मलाङ्गां पालेयद्यस्तु स्त्रानुष्ठानपरः सदा ॥४३
 वेदाधिगमनं पूर्वं दारसंप्रहणं तथा । अभ्यङ्गधारणं नित्यं तथा त्रिष्वर्णं स्मृतम् ॥४४
 पञ्चवृत्तदः सदा पूज्यो हृहं रात्रो दिने तथा । देवब्राह्मणवेदानां तिन्दा कार्या न वै क्वचित् ॥४५
 नान्यादेवप्रतिष्ठा तु जार्या दै भोजकेन तु । नसापि च न कर्तव्या तेन एकाकिना क्वचित् ॥४६
 सर्वेव निवेद्यान्नं नानीयाद्वोजकः सदा । न भुञ्जीत गृहं गत्वा शूद्रस्य गरुडाप्रज ॥४७
 शूद्रोच्छिष्टं प्रथनैन सदा त्याज्यं हि भोजकः । येऽनन्ति भोजका नित्यं शूद्रान्नं शूद्रवेशमनि ॥४८
 ते वै पूजाफलं चात्र कथं प्राप्स्यन्ति खेचरः । गत्वा गृहं तु शूद्रस्य न भोक्तव्यं कदाचन ॥४९
 गृहागतं च शूद्रान्नं तच्च त्याज्यं तथैव च । आध्मातव्योम्बुजोः नित्यं भोजकेनाप्तो मम ॥५०
 सकृत्प्रवादिते शंखे मम प्रीतिर्हि जायते । षण्णासाश्राव शन्देहः पुराणश्वरणं तथा ॥५१
 तस्माच्छंखः सदा वाद्यो भोजकेन प्रयत्नतः । तस्येयं परमा वृत्तिनविद्यं यन्मदीयकम् ॥५२

इस भाँति इन भोजकों की सृष्टि मैने ही की है इसलिए मैं इनकी आत्मा हूँ और ये सब पुत्र की भाँति मेरे सदैव हितैषी हैं अतः उन्हें ही दान आदि देना चाहिए पुनः उनसे लेना कभी नहीं । ३९-४०। क्योंकि लोभ या द्वेष वश जो उनकी संपत्ति का अपहरण करता है उसे अनेकों वर्षों के लिए तामिक्ष नामक नरक की प्राप्ति होती है । ४१। इसलिए सदैव आदि इव्यं जो कुछ मेरे लिए अपित किया गया है, वह सब भोजक का है और पिता होने के नाते मेरा भी । ४२

हे शंखश्वर ! भोजक को जैसा होना चाहिए तुम्हें बता रहा हूँ भोजक को चाहिए कि अनुष्ठान को करते हुए मेरी आज्ञा का सदैव पालन करता रहे । ४३। वेदाध्ययन के उपरांत विवाह कर गृहस्थ हो जाये और नित्य अस्यंग (लेप या उपटन) लगाकर त्रैकालिक स्नान संच्या करे । ४४। रात में पांच बार मेरी पूजा करे तथा देव, ब्राह्मण एवं वेदों की कभी कहीं निन्दा न करे । ४५। भोजक किसी अन्य देव की प्रतिष्ठा एवं एकाकी रहकर मेरी भी प्रतिष्ठा कहीं न करे । ४६। हे गरुडाप्रज ! समस्त भोज्य पदार्थं मुझे समर्पित कर पुनः स्वयं एकाकी न साये और वह शूद्र के घर जाकर भोजन भी न करे । ४७। इस प्रकार भोजक को शूद्र के उच्छिष्ट का सर्वथा त्याग करना चाहिए क्योंकि जो भोजक शूद्र के घर जाकर उसके अन्न आदि का नित्य भोजन करता है तो उसे (मेरी) पूजा के फल कैसे प्राप्त हो सकते हैं । इसलिए उसे शूद्र के घर कभी भोजन न करना चाहिए । ४८-४९। भोजक को अपने घर पर आये हुए शूद्रान्न का भी उसी भाँति त्याग करना चाहिए । भोजक को चाहिए कि मेरे सामने नित्य शंख बजाये, क्योंकि एकबार शंख बजाने से भी मुझे उतनी अधिक प्रसन्नता होती है जितनी कि छह मास पुराण के श्वरण द्वारा होती है । ५०-५१। इसलिए भोजक को सदैव सप्रयत्नं शंख बजाना चाहिए मेरे लिए समर्पित किये गये नैवेद्य आदि ही भोजक की परम वृत्ति (जीने की) बतायी गयी है । ५२

नाभोज्यं भुञ्जते यस्मात्तेनैते भोजका मताः । मगं ध्यायन्ति ते यस्मात्तेन ते मगाधाः स्मृताः ॥५३
 भोजयन्ति च मां नित्यं तेन ते भोजका स्मृताः । अभ्यङ्गं च प्रयत्नेन धार्य शुद्धिकरं पद्म् ॥५४
 अभ्यङ्गहीनो ह्यशुचिर्भर्जकः स्यान्न संशयः । यस्तु मां पूजयेद्वीर अभ्यङ्गेन विना खन ॥५५
 न तस्य सन्ततिः स्याद्वै न चाहं प्रीतिमान्भवे^१ । मुण्डनं शिरसा कार्वं शिखा धार्या प्रयत्नतः ॥५६
 नक्तं चादित्यादिवसे तथा बज्राणां प्रवर्तयेत् । सप्तस्थामुपवासस्तु मद तङ्गमणे तथाः ॥५७
 कर्तव्ये भोजकेनैव मतप्रीत्यै गणडाग्रज । त्रिकालं चापि गायत्रीं जपेद्वाचा पुरो भम् ॥५८
 मुखमावृत्य यत्नेन पूजनीयोऽहमादरात् । भौनं चास्य इत्यत्नेन त्यक्त्वा क्रोधं च द्वृतः ॥५९
 शूद्रेभ्यो यस्तु वैश्येभ्यो लोभात्काशात्प्रयच्छति । निर्माल्यं भम वै वत्स स प्रति नरकं ध्रुवम् !!६०
 लोभाद्वै भोजको यस्तु भत्युष्ट्याणि खलाधिष्ठ । यच्छतेन्यत्य दुष्टात्मा भव्यनारोप्य लेचर ॥६१
 स ज्ञेयो मे परः शङ्कः त मामहो न वाचितुम् । निर्माल्यं भम देयं स्याद्ब्राह्मणाविषु वै नृषु ॥६२
 नैवेद्यं यन्मदीयं तु तदनीधात्मसदैव हि । तेनासौ शुद्धयते नित्यं हविव्याश्रसमं तथा ॥६३
 तत्क्षणादुक्षिपेद्यस्तु ममांगात्पुष्पमेव हि । नान्यस्य देयं नैवेद्यं मदोयमुदके^२ क्षिपेत् ॥६४
 यच्चगव्यसमं तस्य मन्मतं नात्र संशयः । मनाङ्गलग्रं यत्किञ्चिद्वगन्धं पुष्पमरथापि वा ॥६५

अभक्ष्य का भोजन न करने के नाते उसे मेरी संमति से भोजक कहा जाता है तथा मग (याचना) का ध्यान रखने से मगध भी ।५३। मुझे नित्य भोजन कराने के नाते भी उन्हें भोजक कहा जाता है । अतः प्रयत्नपूर्वक अत्यन्त पवित्रि कारक अभ्यंग पारण करना चाहिए ।५४। क्योंकि अभ्यंग हीन भोजक अपवित्र होता है, इसमें संशय नहीं । हे वीर ! हे स्वर ! अभ्यंग हीन होकर जो भोजक मेरी पूजा करता है, उसकी वंशप्रत्यर्पणा नहीं चलती है और मैं प्रसन्न भी नहीं होता हूँ । उसे सदैव शिर का मुण्डन करना चाहिए तथा सिर पर शिखा रखनी चाहिए ।५५-५६। सूर्य के दिन (रविवार) में और संक्रान्ति काल में उपवास करना चाहिए ।५७। हे गणडाग्रज ! भोजक का मेरे प्रसन्नार्थ इन आदेशों के पालन पूर्वक मेरे सम्मुख त्रिकाल गायत्री जप तथा मुख ढाँकर सादर मेरी पूजा करनी चाहिए और उस समय मौन रहकर प्रयत्न पूर्वक क्रोधहीन होना चाहिए ।५८-५९। हे वत्स ! जिस भोजक ने लोभ या काम वश मेरा निर्माल्य शूद्र अथवा दैश्य को प्रदान किया तो उसे निश्चित नरक की प्राप्ति होती है ।६०। हे प्रकाशगामिन् ! जो भोजक लोभवश मेरे पुष्पों का जो मुझे समर्पित करने के लिए सुरक्षित रखे गये हों बिना मुझे अपित किये ही किसी को दे देता है, उसे मेरा परम शत्रु समझना चाहिए और वह पुष्प मेरी पूजा के योग्य भी नहीं रह जाता । मेरा निर्माल्य ब्राह्मण आदि मनुष्यों को देना चाहिए ।६१-६२। उसी को मेरे नैवेद्य का भक्षण भी सदैव करना चाहिए, क्योंकि उसके भक्षण करने से वह हविव्याश्र भक्षण करने की भाँति शुद्ध रहता है ।६३। मुझे समर्पित किये गये पुष्प एवं नैवेद्य का सेवन यदि स्वयं न करे तो किसी को देना भी नहीं चाहिए । अपितु उसे पानी में डाल देना चाहिए ।६४। क्योंकि वह उसके लिए पञ्चगव्य के समान शुद्धप्रदायक होता है । मेरे आंग में लगे हुए गन्धं पुष्प आदि किंसी वैश्य या शूद्र को कभी न देना चाहिए और न उसका

१. आर्वः उत्तमपुरुष आत्मनेपदी । २. भोजकेनतु ।

दत्तव्यं न च वैश्याय न शूद्राय कदाचन । आत्मना तद्ग्रहीतव्यं न विक्रेयं कथञ्चन ॥६६
 यत्तु नारोप्य पुष्ट्याणि अव्यङ्गानि ममोपरि । यः कश्चिदाहरेल्लोके स याति नरकं ध्रुवम् ॥६७
 ल्लपनं मम निर्मात्यं पावकं यस्तु लङ्घयेत् । स नरो नरकं याति सरोद्धं रौरवं खग ॥६८
 भोजकेत् सदा कार्यं ल्लपनं मे प्रयत्नतः । यथा न लङ्घयेत्कश्चिद्यथा भा नात्पि भक्षयेत् ॥६९
 यद्यत्यल्लपतः कुर्याद्भोजकः ल्लपनं मम । यथा वै लङ्घितमर्तिर्भक्षयतां च लगाधिप ॥७०
 स याति नरकं रौद्रं तामिश्रं नाम नामतः । एकभक्तं सदा कार्यं स्नानं त्रैकालमेव हि ॥७१
 त्रिचैलं परिवर्तेत भवितव्यं दिवेदिने । पूजाकालेऽर्थकाले च क्रोधस्त्याज्यः प्रखलतः ॥७२
 अमांगल्यं न दक्षव्यं वक्तव्यं च शुभं तदा । ईदृशभूतो भोजको मे प्रेयान् पूजाकरः सदा ॥७३
 सन्मान्यः पूजनीयश्च विप्रादीनां यथासम्यहम् । यः करोत्यवमानं तु वृत्तिरूपं तु भोजके ॥७४
 उपतेपनकर्ता च सम्मार्जनपरश्च यः ॥

परावसुरुखाच

इत्युक्त्वा भगवान्भानुर्ब्राम रथमास्थितः ॥७६
 अरुणोऽपि तथा श्रुत्वा मुदया परया नृपः । पूज्यस्तस्मान्महाराज भोजकस्तु महीपते ॥७७
 तस्माद्देयं वाचकाय द्वितीयमशनं नरैः ॥७८

विक्रय ही करना चाहिए स्वयं ही उसका उपभोग करे । ६५-६६। जो कोई मेरे अंगों में पुज्यों को बिना सुसज्जित किये उन्हें लेता है, उसे अवश्य नरक की प्राप्ति होती है । ६७। हे खग ! मेरे स्नान के निर्मात्य एवं अग्नि को लांघने वाला रौद्र एवं रौरव नामक नरक की प्राप्ति करता है । ६८। इसलिए भोजक (ऐसे स्थान में) मेरा स्नान सप्रयत्न कराये जिससे कोई उसका उल्लंघन न कर सके तथा कुत्ता उसका भक्षण भी न कर सके । ६९। हे खगाधिप ! यदि भोजक असावधानी से मेरा स्नान कराये और कुत्ता उसे खा ले तो भयानक तामिश्र नामक नरक उसे प्राप्त होता है । भोजक को एकाहार एवं त्रैकालिक स्नान करना चाहिए । ७०-७१। प्रतिदिन उसे तीन वस्त्र बदलने चाहिए और पूजा तथा अर्ध्य प्रदान के समय क्रोध त्याग के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए । ७२। अमांगलकारी शब्दों के त्याग एवं सदैव शुभदायक वाणी बोलनी चाहिए । क्योंकि इसी प्रकार की पूजा करने वाला भोजक मुझे सदैव प्रिय होता है । ७३। अन्य ब्राह्मणादि के लिए भी भोजक मेरे समान ही सम्मानीय एवं पूजनीय है, वृत्ति के विषय में जो भोजक का अपमान करता है, कुद्द होकर मैं शीघ्र उसके कुल का नाश कर देता हूँ । हे विनतासुत ! तुम्हारी भाँति जो भोजक भी लेप तथा सफाई करता है वह मुझे सदैव प्रिय होता है । ७४-७५

परावसु ने कहा—इस प्रकार कहकर भगवान् भास्कर रथ में बैठकर आगे चले गये । ७६। हे नृप ! अरुण भी इसे सुनकर अव्यन्त प्रसन्न हुए । हे महाराज ! हे महीपते ! इसीलिए भोजक पूज्य है और दूसरे ब्राह्मण के स्थान पर इन्हीं भोजक ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए । ७७-७८

ब्रह्मोदाच

इत्थं शुत्वा स राजा तु कर्मणः फलमात्मनः । धुरातनं महाबाहुर्लुदमाप महीपतिः ॥७९
यद्यदायतनं भानोः पृथिव्यां पश्यते नृपः । तस्मिस्तस्मिन्कारयति उपलेपनमादरात् ॥८०
भार्या तस्यापि मुश्रेणिः पुण्यश्रवणमादरात् । वाचके वैतनं दत्त्वा भानोदेवस्य मन्दिरे ॥८१
इत्थं राजा सपल्तीकः पूज्य भक्त्या दिव्यकरम् । प्राप्तावुभौ परां प्रीतिं गतिं चानुसमां तथा ॥८२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तशीकल्प उपलेपनस्नापनसाहात्म्यवर्णनं नाम
सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः । ११७।

सद्राजितोपाल्यानं समाप्तम्

अथाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

दीपदानफलवर्णनम्

ब्रह्मोदाच

दीपं प्रयच्छति नरो भानोरायतने तु यः । तेजसा रविसंकाशः सर्वयज्ञफलं^१ लभेत् ॥१
कार्त्तिके तु विशेषण कौमारे मासि दीपकम् । दत्त्वा फलमवाप्नोति यदन्येन न लभ्यते ॥२
कृष्णकृष्णात्र ते वच्च संवादं पापनाशनम् । भ्रातुभिः सह भद्रस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ॥३

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार अपने पुरातन कर्मों के फल को सुनकर वह महाबाहु राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ । ७९। उस भय से वह राजा इस पृथिवी में जहाँ कहीं सूर्य का मंदिर देखता था उसकी सादर सफाई कराता था और उसकी मुश्रोणी भार्या भी सूर्य के मंदिर में प्रतिदिन कथा कहने के लिए किसी वाचक को वैतनिक वृत्ति प्रदान करनित्य पुण्य कथा का श्रवण करने लगी थी । ८०-८१। इस प्रकार सपल्तीक उस राजा ने भक्ति पूर्वक सूर्य की पूजा करके (उन दोनों ने) प्रसन्नता समेत उत्तम गति की प्राप्ति की । ८२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तशी कल्प में उपलेपन स्नापन माहात्म्यवर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय समाप्त । ११७।

अध्याय ११८ आदित्यायतनदीपदान वर्णन

ब्रह्मा बोले—जो मनुष्य सूर्य के मंदिर में दीप दान करता है उसे सूर्य के समान तेज की प्राप्ति पूर्वक समस्त यज्ञों के फलों की प्राप्ति होती है । १। कार्त्तिक मास में विशेषकर कौमारावस्था में दीपदान करने से अन्य दुर्लभ फल की प्राप्ति होती है । २। हे कृष्ण ! इसी विषय पर मैं भद्र नामक उस महात्मा ब्राह्मण के पापनाशक संवाद को तुम्हें सुनाता हूँ जो उनके भाइयों में आपस में कहा सुना गया था । ३

१. सर्वज्ञत्वफलंलभेत् ।

जगत्दस्मिन्नुरी रम्या नामा माहिष्मती पुरा । तस्यामासीद्विजः कृष्ण नागशर्मेति विश्रुतः ॥४
 तस्य पुश्चशतं जातं प्रसादाद्भूस्करस्य च । तेषां कनिष्ठो भद्रस्तु तत्पुत्राणां विचक्षणः ॥५
 स च नित्यं जगद्धातुर्देवदेवस्य भास्वतः । दीपर्वातपरस्तद्वैतलाद्याहरणोदयः ॥६
 भानोरायतने तस्य तहत्र भार्गवीश्चित्र । प्रदीपानां तु जन्माल दिवारात्रमनिन्दितम् ॥७
 तस्य दीप्त्या पराभूतास्तस्य लाक्षण्यधर्षितः । सर्वे ते भ्रातरो भद्रं प्रदद्विरिदमादात् ॥८
 भे भद्र दद वै भ्रातर्भद्रं तेस्तु सदा द्विज । कौतूहलपराः सर्वे यत्पृच्छानस्तुद्व्यताम् ॥९
 तेषां तद्वचनं श्रुत्वा भद्रो वचनमश्वीत् । विषदे सति दक्षव्यं यन्मदा तदिहोत्यताम् ॥१०
 नाहं मत्सरयुक्तो वै न च रागादिद्वयितः । भद्रतो भयं सर्वे इ भ्रातरो गुरवस्तथः ॥११
 कथं न कथयाम्बेष भवतां पुश्रसम्मितः । तस्माद्बुद्धन्तु मां सर्वे भ्रातरो यद्विजितम् ॥१२

भ्रातर ऊचुः

न तथा पुष्पधूपेषु न तथा द्विजपूजने । मुख्यतं तु पश्यामो भानोरायतने परम् ॥१३
 यथाहनि तथा रात्रो यथा रात्रौ तथाहनि । तव दीपप्रदानाय यथा भद्रं सदोदयमम् ॥१४
 तत्त्वं तत्कथयास्माकं हत कौतूहलं परम् । यश्चाम दीपदानस्य भवता विदितं फलम् ॥१५
 तदेतत्कथयास्माकं सविशेषं महाबल । एवमुक्तस्ततस्तैस्तु भ्रातृभिश्चोदितो मुदा ॥१६
 व्याजहार स भ्रातृणां न किञ्चिदपि सुद्रत । पुनः पुनरसौ तैस्तु भ्रातृभिश्चोदितो मुदा ॥१७

पहले समय में इस गृथ्वी तल पर माहिष्मती नामक एक रम्य पुरी थी । उसमें नागशर्मा नामक कोई ब्राह्मण रहता था । ४। सूर्य की कृपा वश उस ब्राह्मण के सौ पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें अधिक बुद्धिमात् सबसे छोटा भद्रनामक पुत्र हुआ । ५। वह सदैव देवाधिदेव एवं जगत् के विधाता सूर्य के लिए समर्पित दीपक में उसकी बस्ती तथा तेल आदि के लिए सदैव ध्यान रखता था । ६। हे भार्गवी प्रिय ! इस प्रकार उसके प्रयत्न से दिनरात सूर्य के मन्दिर में कल्पाणप्रद सहस्र दीपक जलाये जाते थे । ७। जिससे उसके परिणामस्वरूप प्राप्त उसकी देह की दीप्ति एवं सौन्दर्य से विस्मित होकर उसके सभी भाइयों ने सादर उससे पूछा । ८। भाई भद्र ! तुम्हारा भर्वदा कल्पाण हो, हे द्विज ! एक बात के लिए हम लोगों को महान् कौतूहल हो रहा है, इसलिए पूछ रहे हैं, बताओ । ९। उनकी बातें सुनकर भद्र ने कहा उस विषय को पूछो, जो मुझे कहना है । १०। मुझमें मत्सर या रागादि दोष नहीं है जिससे मैं छिपाने की कोशिश करूँगा और आप लोग भाई हैं तथा बड़े होने के नाते गुरु भी । ११। आप के पुत्र के समान हूँ अतः अवश्य बताऊँगा, इसलिए हे भाइयों ! जो पूछने की इच्छा हो आप निःसंकोच पूछें । १२

भाइयों ने कहा—हे भद्र ! सूर्य के मन्दिर में उन्हीं के लिए दिन रात दीपक जलाने में जितना घोर प्रयत्न देखते हैं उतना (देवता के) पूजनार्थ पुष्प एवं पुष्पादि में तथा ब्राह्मण पूजन के लिए नहीं देखे हैं । इससे हमें महान् विस्मय एवं कौतूहल हो रहा है अतः दीपदान का फल जो तुम्हें विदित हो हमें बताओ । १३-१५। हे महाबल ! विस्तार पूर्वक इसे कहो । हे सुद्रत व इस प्रकार भाइयों के कहने पर प्रसन्न चित्त होकर भी उसने पहले कुछ नहीं कहा पर भाइयों के बार-बार पूछने पर दक्षिण्य गुण सम्पन्न भद्र ने उनके प्रश्न का समुचित उत्तर देना प्रारम्भ किया । १६-१७। उसने कहा— हे सुद्रत ! इस छोटी

दक्षिण्यसारो भद्रस्तु कथयामास कृत्स्नः । भवतां कौतुकं चैतदतीवाल्येऽपि शत्रुनि ॥१८
 तदेष कथयाम्यद्य यद्वतं मन सुव्रत । इक्ष्वाकुराजस्तु पुरा विशिष्ठोऽभूत्युरोहितः ॥१९
 तैन चायतनं भानोः कारितं सरयूटटे । अहन्यहनि गुश्रूषां पुष्पधूरानुलेपनैः ॥२०
 दीपदानादिभिश्चैव चक्रे तत्र स वै द्विजः । कार्तिके दीपको भज्या प्रदत्तस्तेन ई सदा ॥२१
 आसीनिर्वाण एवासौ देवार्चापुरतो निर्वाण । देवतायतने चाहमवसं व्यथितो शृशम् ॥२२
 पूर्यशोणितनिष्ठ्वं प्रावहन्कायतः सदा । तीर्णद्वाणो हृवरवो हुगेऽपतितस्तद्यः ॥२३
 दुष्टबुद्धया सदा युक्तः सप्ताख्यं प्रति सुव्रत । यदुच्छया दीपदानं इत्यर्दीनां विमावर्ती ॥२४
 तत्तद्भुक्त्वा सदा तुष्टिं ब्रजामि द्विजसहमाः । एकवा तु तत्स्तस्मिन्भानोरायतने गतः ॥२५
 रात्रौ दृष्टा मया तत्र भक्ता जागरणागतः । प्रतिश्रयं प्रार्थिताश्च तैश्च दत्तो द्यान्वितैः ॥२६
 व्याधितोऽयं सुदीनश्च इति कृत्वा मर्ति शुभाम् । ततोऽहमशिमाश्रित्य स्थितस्तेषां समीपतः ॥२७
 दुष्टां बुद्धे समाश्रित्य हर्तुकामो विवस्वतः । दिव्यमाभरणं भानोशिष्ठद्वान्वेषी द्विजोत्तमाः ॥२८
 स्थितोऽहं भोजका हृत्र यदि निद्रां त्राजान्त है । येनास्य वैरिचद्वानोर्हरात्याभरणं शुभम् ॥२९
 अयं सुप्ता भोजकास्ते निदयः मोहितास्तदा । निर्वाणाश्चापि दीपास्तु ततोऽहनुत्यितस्त्वरन् ॥३०
 मुदा परमया युक्ते गतो वैभ्वानरं प्रति । प्रज्वाल्यं पावकं यत्लादीपवर्तिन्ततो मया ॥३१

सी बात के लिए आप लोगों को जो कौतूहल हो रहा है तो मैं अपने ब्रत का विवेचन कर रहा हूँ । मुझे !
 । १८। पहले समय में राजा इक्ष्वाकु के वशिष्ठ पुरोहित थे । १९। उन्होंने सरयू के तट पर भगवान् सूर्य का
 मन्दिर बनवाया था । पुष्प, धूप, चन्दन और दीपदानादि द्वारा ये प्रतिदिन सूर्य की सेवा कर रहे थे ।
 कार्तिक मास में वे भक्तिपूर्वक सदैव दीपदान करते थे । २०-२१। क्योंकि रात्रि में सूर्य देव के सम्मुख
 मन्दिर में इस प्रकार की दीप-दान रूपी अर्चा करना मुक्ति प्राप्त करना है ऐसा कहा गया है । उसी
 मन्दिर के सामने रात में मैं रहता था । यद्यपि मैं उस समय अत्यन्त पीड़ित था और मेरे शरीर से सदैव
 पीब एवं रक्त निकला करता था नाक सूख गई थी एवं सप्त शब्दों में बोल नहीं सकता था, इस प्रकार
 शरीर की दुर्गम का नाते मैं और भी पतित हो गया था । २२-२३। हे सुव्रत ! तथापि सूर्य के प्रति मेरी
 सदैव दुर्भाविना ही रहती थी । हे द्विजसहम ! उस मन्दिर में सूर्य के लिए समर्पित किये गये दीपकों की
 बत्तियाँ आदि मेरे ही काम आती थीं क्योंकि मैं उसे चुरा कर खा लेता था, इस प्रकार मैं उस अपने आचरण से
 सदैव प्रसन्न भी रहता था । २४-२५। एक बार रात में उस मन्दिर में गया वहाँ देखा कि भक्तगण जाग रहे हैं
 मैंने उनसे अपने रहने के लिए प्रार्थना की । यह रोगी एवं दीन है ऐसा सोचकर उन लोगों ने दयावश मुझे वहाँ
 रहने का स्थान प्रदान किया । उनके समीप ही अग्नि का आश्रय लेकर तापने के ब्याज से मैं बहाँ बैठ
 गया । २६-२७। हे द्विजोत्तम ! उस समय सूर्य के दिव्य आभूषणों को देखकर उसके अपहरण करने के लिए
 मेरी बुद्धि सराब होने लगी मैं उसके अपहरण करने का उपाय सोचने लगा । २८। सोंचा कि मैं यहाँ बैठा हूँ
 और ये भोजक भी यही हैं अतः जब ये लोग निद्रित अवस्था में होंगे (अर्थात्) अच्छी तरह सो जायेंगे तब शशु
 की भाँति सूर्य के उन उत्तम आभूषणों को चुरा लूँगा । २९। इसके पश्चात् नीद में मस्त होकर वे भोजक गण
 सो गये एवं दीपक भी बुझ गया । तदुपरांत शीघ्रता से उठकर हर्षमप्त होता हुआ मैं अग्नि के समीप गया

योजयित्वा तु वै दीपे धृतो दीपेऽग्रते रवे: । हर्तुकामेनाभरणं भानोदेवस्य सुक्तम् ॥३२
 अथ हे भोजकाः सर्वे वृद्धा देवस्य पुत्रकाः । तैस्तु दृष्टो ह्यां तन्न दीपहस्तो विभावसोः ॥३३
 पुरः स्थितो द्विजश्रेष्ठा गृहीतश्चापि तैरिह । ततोऽहं तेजसा मूढो भास्करस्य महात्मनः ॥३४
 विलयन्करणं तेषां पादयोरवर्णं गतः । तैश्चापि करणां कृत्वा मुक्तोऽहं भोजकैस्तदा ॥३५
 गृहीतो राजपुरुषे: पृष्ठश्चापि समन्ततः । किमिदं भद्रतारब्धं देवदेवस्य मंदिरे ॥३६
 दीपं प्रज्वात्य दुष्टात्मन्कर्त्यतां सा चिन्त कुरु । इत्युक्त्वा तु ततस्त्तैस्तु शस्त्रहस्तैः समाङृतः ॥३७
 ततोऽहं व्याधिना किलष्टो भयेन च द्विजोत्तमाः । हित्वा प्राणान्तो यत्र स्वयं देवो विभावसुः ॥३८
 स्थित्वा कल्पं ततस्तत्र युष्माकं भ्रातृतां गतः । एष प्रभावो दीपस्य कार्तिके मासि नुक्ताः ॥३९
 दत्तस्यार्कस्य भवने यस्येयं व्युष्टिरूपतां । दुष्टबुद्ध्या कृतं यत्तु मया दीपप्रवर्तनम् ॥४०
 भगायतनदीपस्य तस्येदं भुजते फलम् । ज्ञाधाभिभूतेन मया देवदेवस्य शूषणम् ॥४१
 दीपश्च देवपुरतो ज्वालितो भास्करस्य तु । ततो जातिस्मृतिर्जन्म प्राप्तं ब्राह्मणवैज्ञनिः ॥४२
 कुष्ठिना चापि शूद्रेण प्राप्तं ब्रात्मण्यमुक्तम् । नानःविधात्नि शास्त्राणि सांगं वेदं समाप्तवान् ॥४३
 दुष्टबुद्ध्या धृतादीपात्कलमेतन्महादभुतम् । प्राप्तं नया द्विजश्रेष्ठाः किं पुनर्दीपदायिनाम् ॥४४

वहाँ उसे प्रयत्नपूर्वक प्रज्वलित कर दीपक की बत्ती किर से जलायी और दीप में रख, उसे सूर्य के सामने रख दिया इसलिए कि जिससे मैं सूर्य के आभूषणों का अपहरण भली भाँति कर सकूँ । ३०-३२। इसके उपरान्त उन सभी वृद्ध भोजकोंने जो सूर्य के पुत्र के समान ये मुझे देख लिया मैं सूर्य के सामने दीपक हाथ में लिए खड़ा था । ३३। हे द्विजश्रेष्ठ ! भगवान् भास्कर के तेज से मैं अन्धों के समान हो गया था । अतः उन लोगों ने मुझे वहीं पकड़ लिया । ३४। पश्चात् मैं कारणिक विलाप करता हुआ उन लोगों के पैरों पर गिर पड़ा इसलिए भोजकों ने भी दयावश मुझे उसी समय मुक्त कर दिया । ३५। तदुपरांत मन्दिर से बाहर आने पर राजा के सिपाहियों ने मुझे चारों ओर से घेर कर पकड़ लिया और पूछने लगे कि देवाधिदेव (सूर्य) के मंदिर में दीपक जलाकर तुम क्या कर रहे थे । हे दुष्ट ! इसका कारण शीघ्र बताओ देरी भत करो ! ऐसा कह कर वे लोग हाथ में शस्त्र लेकर चारों ओर से सावधान होकर खड़े हो गये । ३६-३७। हे द्विजोत्तम ! तदुपरांत मैं रोग से पीड़ित था ही उस समय मुझे इतना भय भी लगा कि उसी के कारण मेरे प्राण उसी समय निकल गये । पश्चात् मैं सूर्य लोक में गया । ३८। वहाँ एक कल्प पर्यंत रह कर अब आप लोगों का भाई हुआ हूँ । हे सुकृत ! यह सब कार्तिक मास के दीपदान का ही प्रभाव है । ३९। जिसका यह उत्तम परिणाम मुझे प्राप्त है । यद्यपि मैंने अपने भ्रष्ट विचार से वहाँ उस दीपक को जलाया था तथा उस समय मैं भूख से अत्यन्त व्याकुल था इसीलिए उनके आभूषणों का अपहरण करना चाहता था और उसी के निमित्त मैंने दीपक जलाकर सूर्य के सामने रखा था किन्तु उसी का यह कैसा दिव्य फल प्राप्त हुआ कि पुरातन काल के स्मरण के साथ ब्राह्मण के घर जन्म हुआ । ४०-४२। उस जन्म में कुष्ठ रोगी होते हुए भी शूद्र वर्ण से मैं उत्तम ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर भाँति-भाँति के शास्त्र तथा सांगोपाङ्ग वेदों का भी पूर्ण अध्ययन कर लिया । ४३। हे द्विज श्रेष्ठ ! मैंने अपनी दुष्ट बुद्धि के कारण ही वहाँ दीपक रखा था किन्तु जब उसका भी यह महान् आश्चर्यजनक फल मुझे प्राप्त हुआ तो शुद्ध भावना से दीपक दान करने वालों का कहना क्या

एतस्मात्कारणादीपानहमेवमहर्निशम् । प्रयच्छामि रवेर्धात्रि ज्ञातमस्य हि यत्कलम् ॥४५
 युज्माकमिदनुक्तं वै स्नेहात्सत्यं न संशयः । एष प्रभावो दीपत्य कार्तिके मासि बुद्रताः ॥४६
 अकार्यतनदीपत्य भद्रोवोचद्यथा पुरा । दिनेदिने जपन्नान भास्करस्य समाहितः ॥४७
 ददाति कार्तिके यस्तु भगायतनदीपकम् । जातिस्मरत्वं प्रजां च प्राकाश्य सर्वजन्तुषु ॥४८
 अव्याहतेन्द्रियत्वं च समाप्नोति न संशयः । सर्वकालं च चक्षुज्मान्मेधावी दीपदो नरः ॥४९
 जायते नरकं चापि तपः संज्ञं न पश्यति । षष्ठीं या सप्तमीं चापि प्रतिपक्षं च यो नरः ॥५०
 दीपं ददाति यत्नाद्यतस्तं तस्य निबोध मे । काञ्चनं भणियुक्तं च जनोज्ञमतिशोभनम् ॥५१
 दीपमालाकुलं दिव्यं विमानमधिरोहति । तस्मादायतने भानोर्दीपान्दद्यात्सदाच्युत ॥५२
 तांश्च इत्यान न हिस्याच्च न च तैलवियोजितात् । कुर्वीत दीपहर्ता तु मूषकोन्धश्च जायते ॥५३
 तस्माद्यान्नाहरेष्टे श्रेयोऽर्थीं दीपकं नरः ॥५४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे भद्रोपाख्यान
 आदित्यायतनदीपदानफलवर्णनं नामष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः । ११८।

है । ४४। इसीलिए मैं प्रतिदिन सूर्य के मन्दिर में रात-दिन दीपक जलाने का प्रयत्न करता रहता हूँ क्योंकि उसका फल मुझे मालूग है । ४५। हे मुव्रत ! मैंने आप लोगों से खेहवश ये सत्य बताए बतायी, इसमें कोई सदेह नहीं है क्योंकि कार्तिक मास में दीप दान का ऐसा प्रभाव होता ही है । ४६

पहले समय में भद्र नामक व्यक्ति ने भी सूर्य के मन्दिर में दीपदान के महत्व को ऐसा ही बताया है अतः कार्तिक के मास में सूर्य का ध्यान लगा कर प्रतिदिन उनके नाम का जप पूर्वक जो उनके मन्दिर में उनके लिए दीपदान करता है भद्र के कथनानुसार उसे जातिस्मरण बुद्धि सभी प्राणियों में स्याति तथा नीरोग इन्द्रियाँ निःसदेह प्राप्त होती हैं । इस प्रकार दीप दान करने वाला मनुष्य सभी समय चक्षुज्मान् एवं मेधावी होता है । ४७-४९। कदाचित् वह नरक भी जाये तो वहाँ भी उसे तम नामक नरक नहीं दिखाई देगा ।

अब प्रत्येक पक्ष में षष्ठी एवं सप्तमी में जो प्रयत्न पूर्वक दीप दान करते हैं उसके फलको कहु रहा हूँ सुनो ! सुवर्ण एवं मणि से युक्त मनोज्ञ सौन्दर्यपूर्ण तथा दीपक की मालाओं से सुशोभित उस दिव्य विमान पर वह सुशोभित किया जाता है । अतः हे अच्युत ! सूर्य के मन्दिर में सदैव दीपदान करना चाहिए । ५०-५२। उसी भाँति सूर्य के लिए समर्पित किये गये दीपकों को फोड़ना या तैल आदि की चोरी न करनी चाहिए । क्योंकि दीपक का अपहरण करने वाला प्राणी चूहा एवं अन्धा भी होता है । ५३। इसलिए कल्याण के इच्छुक पुरुषों को चाहिए कि दीपदान कर उसका अपहरण कभी न करें । ५४।

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में भद्रक उपाख्यान में आदित्यायतन दीपदान फल वर्णन नामक एक सौ अठारहवाँ अध्याय समाप्त । ११८।

अथैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

दीपदानवर्णनम्

ब्रह्मोदाच

अन्धे तमसि दुष्पारे नरके परितान्कित । सक्षोशमानान्तंकुञ्जानुवाच यमकिङ्गुरः ॥१
 विलादैरत्नमत्रेति कि वो विलपिते फलम् : यत्प्रमादादिभिः पूर्वमत्मायं समुपेक्षतः ॥२
 पूर्वमालोचितं नैतत्कथमत्ते नविष्यति । इदानीं यातनां भुद्धव हिं विलापं करिष्यथ ॥३
 देहो दिनानि स्वल्पानि विषयाङ्गातिरुर्बलः । एतत्को न विजानाति येन पूयं प्रमदिनः ॥४
 जन्तुर्जन्मसहस्रेभ्य एकस्त्वन्मानुषो यदि । स तत्राप्यतिमूढात्मा कि भोगानभिधावति ॥५
 पुत्रदारगृहक्षेत्रहिताय मततोद्यताः । न जानन्ति ततो मूढाः स्वल्पमप्यात्पनो हितम् ॥६
 न वेति शोहितः कश्चित्प्रकान्तनरको नरः ॥७
 न वेति सूर्यचन्द्रादीन्कालमात्माननेव च । साक्षिभूतानशेषस्य शुभस्येहाशुभस्य च ॥८
 जन्मान्यन्यानि जायन्ते पुत्रदारादिदेहिनाम् । यदर्थं दत्कृतं कर्म तस्य जन्मशतानि तु ॥९

अध्याय ११९

दीपदान विधि का वर्णन

ब्रह्मा ने कहा—अत्यन्त घोर एवं दुष्पार होने वाले उस अन्ध-तामिक्ष (घोर अन्धकारमय) नामक नरक में पड़े एवं दुःखी होकर विलाप करने वाले लोगों ने एकबार यम के दूतों से (कड़े शब्दों में) कहा था ॥१ यहाँ रुदन करना बन्द करो ! तुम लोगों के रुदन करने से कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि प्रमाद वश अपने आत्मा के उद्धार के लिए जब पहले ही नहीं सोचा और सदैव उसकी उपेक्षा ही करते रहे एवं कभी इस पर विचार ही नहीं किया तो अन्त में यहाँ आने पर क्या हो सकता है अतः इस समय यातनाओं का उपभोग करो, विलाप क्यों करते हो ॥२-३। क्योंकि इस देह को तथा इसके अल्प जीवन के दिन एवं अत्यन्त सारहीन इस विषय वासना को कौन नहीं जानता है जिसके कारण लोग प्रमाद करते हैं, जैसे तुम लोगों ने किया ॥४। और सहस्रों जन्म के पश्चात् कहीं एकबार जीव मनुष्यं जन्म प्राप्त करता है विनु अत्यन्त मूढ़ होकर विषयों में अत्यन्त लिप्त और उसके उपभोगों के लिए ही दिन रात दौड़ता फिरता है, तथा पुत्र, स्त्री, गृह एवं क्षेत्र की रक्षा के लिए निरन्तर प्रयत्न शील रहता है यही नहीं अपितु अपने जीवन के स्वास्थ्य के हित का भी ध्यान नहीं रखता है इसीलिए वह मूढ़ कहा जाता है ॥५-६। इस प्रकार भूतल में रहते समय कोई भी नरकगामी मनुष्य मोहित होने के नाते यह नहीं सोच पाता है कि मैं (आत्मोद्धार से) वंचित हो रहा हूँ और मुझे इसके बदले में वहाँ क्या प्राप्त होगा ॥७। मोहजाल में फँसे रहने के नाते ही यह शुभ एवं अशुभ कर्मों के साक्षी भूत सूर्य, चन्द्रमा, काल एवं आत्मा का ज्ञान कभी नहीं करता है ॥८। यद्यपि पुत्र एवं स्त्री आदि अन्य जन्म में जीवों को प्राप्त होते रहते हैं किन्तु उन्होंने के लिए मैंने अपने जीवन के दिन व्यतीत किये हैं और इसी कारण मुझे सैकड़ों योनियों में जाना भी पड़ा है ऐसा जीव कभी नहीं सोचता । आश्र्वय है मोह

अहो मोहस्य माहात्म्यं ममत्वं नरकेष्वपि । कन्दते मातरं तातं पीडधमान्तोऽपि यत्स्वयम् ॥१०
 एवमाकृष्टचित्तानां विषयैः स्वादुतर्पणैः । नृणां न जायते बुद्धिः परमार्थविलोकिन्ते ॥११
 तथा च विषयासङ्गे करोत्यविरतं मनः । को हि भारो रवेनान्नि जिह्वायः परिकीर्तने ॥१२
 वर्ततैलेल्पमूल्ये च यद्वित्तिरभ्यते सुधा ! अतो वै कतरो लाभः कातश्चिन्ता भवेत्तदा ॥१३
 येनायतेषु हस्तेषु स्वातंत्र्ये सति दीपकः । नहाफलो भानुगृहे न दत्तो नरकाप्ताः ॥१४
 नरो विलपते क्लिञ्चिदिदानां दृश्यते फलम् । अस्वातंत्र्ये विलपता स्वातंत्र्ये सति मानिनाम् ॥१५
 अवश्यं पातिनः प्राणा भोक्ता जीवोऽप्यर्हनिशम् । दत्तं च लभते भोक्तं कामर्यान्विषयपानपि ॥१६
 एतत्थानं द्वृज्ञतैर्वा युक्तं चाच्य मयेक्षितम् । इवानां किं दिलायेन सहृद्वं यदुपागतम् ॥१७
 यदेतदनभीष्टं वो यदुःखं समुपस्थितम् । तदद्भुतमतिः पापे न कर्तव्या कदाचन ॥१८
 कृतेऽपि पापके कर्मण्डज्ञानादघनाशनम् । कर्तव्यमनवच्छिन्नं पूजनं सवितुः सदा ॥१९

ब्रह्मोवाच

नारकास्तद्वचः श्रुत्वा तमूच्चरतिदुखिताः । क्षुत्क्षामकण्ठास्तृतापविसंस्फुटित्तालुकाः ॥२०

का इतना बड़ा प्रभाव कि नरक में रहते हुए जिसके कारण परिवार के लिए इतनी बड़ी ममता उत्पन्न हो कि यातनाएँ भोगते हुए भी तात-मात कह कर उन्हें स्वयं पुकारते रहें । १९-२०। इसीलिए स्वादिष्ट विषयों से आकृष्ट होकर सदैव उसमें लिप्त रहने के नाते मनुष्यों में परमार्थ प्राप्त करने वाली बुद्धि कभी उत्पन्न नहीं होती है । ११। क्योंकि विषयों को अपनाने के लिए ही उनका मन सदैव लालायित रहता है और उससे मुक्त होने के लिए कभी नहीं । अन्यथा उसकी रसनेन्द्रिय (जिह्वा) के लिए सूर्य का नामोच्चारण करना न प्रतीत होता । १२। एवंपि दीपक में जलने वाली बत्ती एवं तेल का गूल्य अत्यल्प होता है अतः वह सहज ही में प्राप्त हो सकता है जिसके संयोग से दीपक प्रदान करने पर सुधा की प्राप्ति होती है इस प्रकार इससे तुम्हें कितना लाभ होता है और उस समय तुम्हें कोई चिन्ता भी न होती । १३। इसीलिए स्वतंत्र रहने पर जिसने सूर्य के मन्दिर में इन अपने विशाल हाथों द्वारा महाबलशाली एवं नरक नाशक दीप का दान नहीं किया है वही मनुष्य यहाँ आकर रुदन करता है जिसको कुछ अंश में देख ही रहा हूँ । इससे यही निश्चित हो रहा है कि जीव परतन्त्र होने पर रुदन करता है और स्वतंत्र रहने पर अभिमानी हो जाता है । १४-१५। प्राण तो अवश्य पाती (एकदिन निकल जायेंगे) हैं ही और जीव, भी रात दिन सुख दुःख भोगने के लिए ही है । एवं दानस्वरूप में देने पर ही इच्छानुकूल विषयों के उपभोग प्राप्त होते हैं । १६। यह (नरक) स्थान तो प्रापों के परिणामस्वरूप प्राप्त होता है, यह भी मैं भली भाँति जानता हूँ अतः इस समय अब तुम्हारे रुदन करने से क्या लाभ होगा । १७। सामने जो कुछ उपस्थित है एकमात्र उसका सहन करो । क्योंकि यदि सामने उपस्थित अविच्छित इस दुःख को तुम नहीं चाहते तो वहाँ घर पर रहते समय तुम लोग अपनी निर्मल बुद्धि करते कभी किसी पाप कर्म में न फैसते और यदि अज्ञानवश कोई पाप कर्म हो गया हो तो उन पाप नाशक सूर्य का सदैव पूजन करते रहते । १८-१९

ब्रह्मा बोले—भूख से सुखे हुए (जल) एवं प्यास से संतप्त होकर फैसे हुए तालु वाले उन नारकीयों ने उनकी बातें मुनकर बड़े दुःख से कहा । २०। हे साधो ! आप हम लोगों के किये हुए उन कर्मों को बताने

भोभोः साधो कृतं कर्म यदस्माभिस्तदुच्यताम् । नरकस्थैर्विपाकोऽयं भुज्यते यत्सुदारुणः ॥२१

किञ्च्चित् उवाच

युज्माभिर्यौवनोन्मादान्मुदितं रविवेकिभिः । धृतलोभेन मार्तण्डगृहादीपः पुरा हृतः ॥२२
तेनास्मिन्नरके घोरे क्षुत्तृष्णापरिपीडिताः । भवन्तः पतितास्तीवे शीतवातविदारिताः ॥२३

ब्रह्मोवाच

एतते दीपदानस्य प्रदीपहरणस्य च । पुण्यं पापं च कथितं भास्करायतनेऽच्छुतः ॥२४
सर्वनैव हि दीपस्य प्रदानं कृष्ण शस्यते । विशेषेण जगदातुर्भास्त्रिकरस्य निवेशने ॥२५

येऽन्धा सूका बधिरा निर्विवेका हीनास्तैस्तैर्दानिसाधनैर्वृज्णिवीर ।

तैस्तैर्दीपाः साधुलोकप्रदत्ता देवागारादन्यतः दृश्य नीताः ॥२६

इति श्री भविष्ये महापुराणे ज्ञाहे पर्वणि सप्तमीकल्पे दीपदानमाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनर्विशत्यधिकशततमोऽध्यायः । ११९।

अथ विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यपूजावर्णनम्

विष्णुरुचाच

भगवन्प्राणिनः सर्वे विषरोगाद्युपद्रवैः । दुष्टप्रहोपघातैश्च सर्वकालमुपद्रुताः ॥१

की कृपा कीजिए जिसके द्वारा नरक में पड़कर हम लोग इस अत्यन्त दारुण फल को भोग रहे हैं । २१

यज्ञकिकरों ने कहा—पहले समय में यौवन के उन्माद में अज्ञान से मुख्य होकर तुम लोगों ने धी के लोभवश सूर्य के मन्दिर से दीपक का अपहरण किया था । २२। इसीलिए भूख और प्यास से तुम्हें निरन्तर दुःखी होना पड़ रहा है तथा शीतवात द्वारा तुम्हारे अंग विदीर्ण हो गये हैं और ऐसी अवस्था में तुम्हें इस घोर दुःखदायी नरक की प्राप्ति हुई है । २३

ब्रह्मा बोले—हे अच्युत ! इस प्रकार भास्कर के मन्दिर में दीपदान एवं दीपहरण के पुण्य पाप तुम्हें बता दिया । २४। हे कृष्ण ! इसी प्रकार दीप दान सर्वत्र प्रशस्त बताया गया है किंतु विशेषकर जगत् के धाता भगवान् भास्कर के मन्दिर में यह दीपदान अत्यन्त (प्रशस्त) है । २५। हे वृज्णिवीर ! इसीलिए जितने अंधे, गूरे, बहरे अविवेकी, एवं विभिन्नदान साधनों से हीन मनुष्य दिखायी देते हैं वे सभी देवमन्दिरों से साधुजनों द्वारा प्रदत्त दीपों का अपहरण अवश्य किये हैं । २६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मणवे के सप्तमी कल्प में दीपदान माहात्म्य वर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त । ११९।

अध्याय १२०

आदित्यपूजा विधि का वर्णन

विष्णु ने कहा—हे भगवन् ! समस्त जीव विष एवं रोगादि उपद्रवों से तथा ग्रहों के अरिष्ट होने के

आभिचारिककृत्याभिः स्पर्शरोगैश्च दारुणैः । सदा सम्पीडयमानास्तु तिष्ठन्त्यम्बुजसाभव ॥२
ऐन कर्मविदाकेन विषरोगाद्युपद्रवाः । प्रभवन्ति नृणां तन्मे यथावद्वक्तुर्महर्ति ॥३
ब्रह्मोवाच

शतोपवासैर्येभानुर्नन्यजन्मनि तोषितः । ते नरा देवशार्दूलं ग्रहरोगादिभागिनः ॥४
यैर्न तत्प्रवणं चित्तं सर्वदैव नरैः कृतम् । दिष्यग्रहज्वराणां ते मनुष्याः कृष्ण भागिनः ॥५
आरोग्यं परमां वृद्धिं मात्सा यद्यच्छति । तत्तदात्मोत्यसंदिधिं परत्रादित्यतोषणात् ॥६
नाधोन्प्राग्नेति न व्याधीश्च विषयग्रहबन्धनम् । कृत्यास्पर्शभयं चापि तोषिते तिमिरापहे ॥७
सर्वे दुष्टाः समास्तस्य सौम्यास्तस्य सदा प्रहाः । देवात्मासपि पूज्योऽसौ तुष्टो यस्य दिवाकरः ॥८
यः समः सर्वभूतेषु यथात्मनि तथा हिते । उपवासादिना येन तोष्यते तिमिरापहः ॥९
तोषितेऽस्मिन्प्रजानाथे नराः पूर्णमनोरथाः । अरोगाः सुखिनो नित्यं बहुधर्मसुखान्विताः ॥१०
न तेषां शत्रवो नैव शरीराद्यभिचारक्षप् । ग्रहरोगादिकं चापि पापकार्याद्यते ॥११
अव्याहतानि देवस्य धनजालानि तं नरम् । रक्षन्ति सकलापत्सु येन श्वेताधिपोऽर्चितः ॥१२

कारण सदैव दूःखी रहते हैं । १। हे कमलोत्पन्न ! इस प्रकार अभिचार (मारण आदि पुरश्चरण तथा विषय योग आदि) कर्मों एवं कठोर स्पर्श (छूट के) रोगों द्वारा यह जीव सदा पीड़ित ही रहता है । २। अतः जिन कर्मों के परिणाम स्वरूप विष एवं रोगादि उपद्रव मनुष्यों पर अपना प्रभाव प्रकट करते हैं वह मुझे यथोचित दंग से बताने की कृपा कीजिए । ३।

ब्रह्मा बोले—हे देवशार्दूल ! जिन्होंने पूर्व जन्म में ब्रत एवं उपवास आदि द्वारा भगवान् सूर्य को सन्तुष्ट नहीं किया है, वे ही मनुष्य ग्रह एवं रोग आदि से पीड़ित होते हैं । ४। हे कृष्ण ! इस भाँति जिन मनुष्यों ने सदैव अपने चित्त को सूर्य में तन्मय नहीं किया है, वे ही लोग विष ग्रह एवं ज्वरों के भोग भागी होते हैं । ५। क्योंकि सूर्य की सेवा करने पर आरोग्य तथा परम वृद्धि की प्राप्ति समेत मन से वह जिस-जिस (वस्तु) की इच्छा करता है उसे आदित्य के प्रसन्न होने पर उन सभी वस्तुओं की प्राप्ति होती है । ६। एवं जिस तिमिरनाशकं सूर्य के प्रसन्न होने पर आधि (मानसिक) व्याधि (शारीरिक) पीड़ाएँ विष और ग्रह तथा कृत्य (अभिचारकर्म) के स्पर्श का भय भी नहीं होता है । ७। इस प्रकार जिसके ऊपर सूर्य प्रसन्न रहते हैं उसके शत्रु सदैव शान्त रहते हैं सभी ग्रह सौम्य होते हैं तथा वह देवताओं का भी पूज्य होता है । ८। एवं जो सभी प्राणियों के लिए अपनी समान दृष्टि रखता है जैसे अपने वर्ग के लिए वैसे ही पराये (दूसरों) के लिए भी तथा जिसने उपवास आदि द्वारा सूर्य को प्रसन्न कर लिया है उन पुरुषों के प्रजानाथ सूर्य के प्रसन्न होने पर सभी मनोरथ भली भाँति सफल हो जाते हैं । वे नित्य आरोग्य, सुखी एवं अत्यन्त धार्मिक होकर सुखी जीवन व्यतीत करते हैं । ९-१०। उसके कोई शत्रु नहीं होता है, न उसके शरीर पर अभिचार (अपहरण आदि) का प्रभाव ही पड़ता है और उनके अरिष्ट ग्रह रोग आदि सभी शान्त हो जाते हैं । ११। उसी भाँति जिसने श्वेताधिप सूर्य की अर्चना की है, उसके ऊपर समस्त आपत्तियों के आने पर सूर्य देव का वह अव्याहत किरण जाल उसकी रक्षा करता है । १२

विष्णुरुचाच

अनाराधितमार्तण्डा ते नराः दुःखभागिनः । ते कथं नीशजः सन्तु विज्वरा गतकल्मणः ॥१३

ब्रह्मोचाच

आराधयन्तु देवेशं पुष्पेणैवमनौपमस् । भास्करं तु जगन्नाथं सर्वदेवगुरुं परम् ॥१४

विष्णुरुचाच

दोषाभिभूतदेहैस्तु कथमाराधनं रवेः । कर्त्तयं वद देवेश भक्त्या श्रेदोऽर्थमात्मनः ॥१५

अनुग्राहोऽस्मि यदि ते ममायं भक्तिमानिति । तन्मयोपदिश त्वं च महदाराधनं रवेः ॥१६

अनन्तसज्जरं देवं दुष्टसन्देहनाशनम् । आराधयितुमिच्छामि भगवन्तस्त्वदनुज्ञया ॥

येनाहं त्वत्प्रसादेन भवेयमतिविक्रमः ॥१७

ब्रह्मोचाच

अनुग्राहोऽसि देवस्य नूनमव्यक्तजन्मनः । आराधनाय ते विष्णो यदेतत्प्रवणं मनः ॥१८

यदि देवपति भानुमाराधयितुमिच्छसि । भगवन्तमनाद्यं च भव वैवस्वतोऽच्युत ॥१९

न ह्यैवस्वतैर्भानुज्ञातुं स्तोतुं च शक्यते । द्रष्टुं वा शक्यते मूढैः प्रवेष्टुं कृत एव तु ॥२०

तद्भक्तिप्रार्थिताः पूता नरास्तद्भक्तिचेतसः । वैवस्वता भवन्त्येवं विवस्वन्तं विशन्ति च ॥२१

विष्णु ने कहा—जिन्होंने कभी सूर्य की आराधना नहीं की है वे ही भाँति-भाँति के दुःखों से पीड़ित हो रहे हैं अतः वे मनुष्य किस प्रकार नीरोग, ज्वरादि रहित तथा पापों से मुक्त हो सकते हैं बताने की कृपा करें ॥१३

ब्रह्मा बोले—देवेश, अनुपम, जगत् के नाथ, एवं देवताओं के परम गुरु उस भास्कर की पूजा के बल पुण्यों द्वारा आप अवश्य करें ॥१४

विष्णु ने कहा—हे देवेश ! दोपादिकों से अभिभूत (पीड़ित) होने वाले को शरीर द्वारा सूर्य की आराधना किस प्रकार से करनी चाहिए इसे आत्मकल्पण के लिए मुझे अवश्य बताने की कृपा करे ॥१५। ‘मेरा यह भक्त है’ इस प्रकार के आपके सद्विचार द्वारा यदि मैं अनुगृहीत हूँ, तो आप सूर्य के उस महान् सेवा विधान का उपदेश मुझे अवश्य प्रदान करें । हे भगवन् ! आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर मैं उस अनंत, एवं दृष्टों तथा संदेहों के नाशक सूर्य देव की आराधना करना चाहता हूँ, जिससे आपकी प्रसन्नता वश प्राप्त सूर्य की कृपा द्वारा मैं अत्यन्त पराक्रमी हो जाऊँ ॥१६-१७

ब्रह्मा बोले—हे विष्णो ! अव्यक्तजन्मा उस देव की आराधना के लिए तुम्हारे मनमें जिस समय निश्चय हुआ है उसी समय तुम (उनसे) अनुगृहीत हो चुके ॥१८, हे अच्युत ! इसलिए यदि देवपति एवं अनादि भगवान् सूर्य की आराधना करना चाहते हों, तो सर्वप्रथम वैवस्वत (सूर्य) का आत्मीय बनने के लिए प्रयत्न करो क्योंकि बिना सूर्य का आत्मीय हुए उनका ज्ञान स्तुति एवं दर्शन मूढ़ों की भाँति उसे सम्भव ही नहीं हो सकता है तो उनमें प्रवेश कहाँ से हो सकेगा ॥१९-२०। क्योंकि उनकी भक्ति की भावना करने पर मनुष्य पवित्र हो जाता है और चित्त भक्ति निमग्न होने पर उसे वैवस्वत (सूर्य का

अनेकजन्मसंसारचिते पापसमुच्चये । नाशीणे जादते पुंजां मार्तण्डाभिमुखी भृतिः ॥२२
 ब्रह्मेण याति मातेष्ठे द्विजान्वेदाश्र निन्दति । यो नरस्तं विजानीयादभुरंशसमुद्भवम् ॥२३
 पाषण्डेषु रतिः पुंजां हेतुवादानुकूलता । जायते दम्भमायाम्भः पतितानां दुरात्मनाम् ॥२४
 यदा पादक्षयः पुंजां तदा वेदद्विजातिषु । भानौ च यजपुरुषे शदा भवति नैष्ठिकी ॥२५
 यदा स्वल्पावरोषस्तु नराणां पापसञ्जयः । तदा भोजकविषेषु भानौ पूजां प्रकुर्वते ॥२६
 भ्रमतामत्र संसारे नराणां कर्मदुर्गमे । करावतन्बनो हृकरे भक्तिप्रीतो दिवाकरः ॥२७
 स त्यं वैवस्वते भूत्या सर्वपापहरं हरिम् । आराध्य समं भक्त्या प्रीतिभम्येति भास्करः ॥२८

विष्णुरुचाच

किं लक्षणा भवन्त्येते ना वैवस्वतं कार्यं तन्मे कथय कञ्जज !॥२९

बहौवाच

कर्त्तणा मनसा वाना प्राणिनं यो न हिंसकः । भावधक्तश्च मार्तण्ड कृष्ण वैवस्वतो हि सः ॥३०
 यो भोजकद्विजान्वेदाभित्यमेव नमस्यति । न च भोक्ता परस्वादेविष्णो वैवस्वतो हि सः ॥३१
 सर्वान्वेदान्वर्विं वेति रादौल्लोकांश्च भास्करम् । तेभ्यश्चानन्यमात्मानं कृष्ण वैवस्वतो हि सः ॥३२

आत्मीय) कहा जाता है। इसी प्रकार वह सूर्य में प्रवेश कर पाता है। २१। इसलिए अनेक जन्मों द्वारा संसार में पापसमूह के सचित हो जाने पर जब तक उसका नाश नहीं होता है तब तक मनुष्यों की बुद्धि सूर्याभिमुखी (उनकी पूजा करने वाली) नहीं होती है। २२। उसी भौति जो मनुष्य उन्हें असुर, अंश से उत्पन्न मानता है, वह सूर्य से महान् द्वेष रखता है एवं ब्राह्मण और वेदों की निन्दा करता है। २३। क्योंकि दम्भ रूपी माया जाल में डूबे हुए मनुष्यों की अनुरक्ति पाखण्डों में इसलिए हो जाती है कि उससे उन्हें अनुकूल तर्क वाद-विवाद में सहायता प्राप्त होती है। २४। इस प्रकार पापों के नाश हो जाने पर वेद, द्विज एवं यजपुरुष सूर्य में उन पुरुषों की नैष्ठिकी शदा उत्पन्न होती है। २५। मनुष्यों के सचित पापों में से कुछ ही शेष रह जाने पर तभी से वह भोजक ब्राह्मणों एवं सूर्य की आराधना आरम्भ कर देता है। २६। क्योंकि इस कर्म रूपी दुर्गम संसार में धूमते हुए मनुष्यों के करावलम्बन (हाथ पकड़ा कर सहारा देने वाले) भक्ति द्वारा प्रसन्न किये गये एक मात्र सूर्य ही है। २७। इसलिए तुम वैवस्वत बन कर समस्त पाप नाशक सूर्य की आराधना अवश्य करो क्योंकि भक्ति करने के साथ ही सूर्य भी प्रसन्न हो जाते हैं। २८।

विष्णु ने कहा—हे कंजज (कमलोद्घव) ! वैवस्वत पुरुषों के क्या लक्षण हैं उनमें किस गुण की विशेषता रहती है उनके वैवस्वत कार्य भी मुझे बताने की कृपा करें। २९

बहा बोले—हे कृष्ण ! जो मन, वाणी, एवं कर्म द्वारा किसी प्राणी की हिंसा नहीं करता है, और सूर्य के लिए भाव-भक्ति रखता है, उसे वैवस्वत कहा गया है। ३०। हे विष्णो ! उसी भौति जो भोजक ब्राह्मण तथा देवताओं को नित्य नमस्कार करते हुए द्वासरे की वस्तुओं का स्वाद नहीं लेता है (पराये धन या स्त्री का अपहरण नहीं करता है) वह वैवस्वत कहा जाता है। ३१। एवं जो व्यक्ति सभी देवताओं को सूर्य जानता है और सभी लोकों को भी भास्कर के रूप में देखते हुए अपने को उन लोगों को अनन्य मानता

देवं मनुष्यमन्यं शा पशुपक्षिपिपीलिकम् । तस्याषाणकाष्ठादिमूम्यम्भोधिं दिवं तथा ॥३३
 आत्मानं चापि देवशाद्ब्यतिरिक्तं दिवाकरात् । यो न जानति तं विद्याकृष्ण वैवस्वतं नरम् ॥३४
 सर्वो वैवस्वतो भागो यद्भूतं यद्ब्यवस्थितम् । इति वै यो विजानाति स तु वैवस्वतोनरः ॥३५
 भवभीतिं हरत्तेष भक्तिभावेन भावितः ! विवस्वानिति भावो यः स तु वैवस्वतो नरः ॥३६
 धावं न कुरुते यस्तु सर्वभूतेषु नापकम् । कर्मणा मनसा वाचा स च वैवस्वतो नरः ॥३७
 ब्राह्मार्थनिरपेक्षो यः क्रियां भक्त्या विवस्वतः ; भादेन निष्पादयति ज्ञेयो वैवस्वतो हि तः ॥३८
 नारयो यस्य न क्रियथा न भेदाधीनवृत्तयः । दीक्षते सर्वभेदेन भानुं वैवस्वतो हि सः ॥३९
 सुतप्तेनेह तपसा यज्ञर्वा बहुदक्षिणैः ; तां गतिं न नरा यन्ति यां तु वैवस्वतो गतः ॥४०
 येन सवत्सना भिनौ भक्त्या भावो निवेशितः । देवश्रेष्ठ कृतार्थत्वाच्छ्लाघ्यो वैवस्वतो हि सः ॥४१
 अपि नः स कुले धन्यो जायेत कुलपावनः । भास्करं भक्तिभावेन यस्तु वै पूजयिष्यति ॥४२
 यः कर्तर्यति देवाल्लौ हृदयालम्बिनीं रवेः । स नरोऽकर्मवाप्नोति धर्मच्छजमनीपमम् ॥४३
 यश्च देवालयं भक्त्या भानोः कारयते स्त्विरम् । स तप्त पुरुषाल्लोकान्भानोर्नदिति मानवः ॥४४
 यावन्तोद्बान्हि देवार्चा रवेत्तिष्ठति नंदिरे । तावद्वर्षसहस्राणि पुष्पोत्तरगृहे वसेत् ॥४५
 देवार्चालक्षणोपेतो यद्गृहे सन्ततो दिधिः । निष्कामं च मनो यस्य स यात्यक्षरसाम्यताम् ॥४६

है वह वैवस्वत कहा जाता है ।३२। है कृष्ण ! इस प्रकार जो देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, चीटी, वृक्ष, पाषाण, काष्ठादि, सागर, आकाश, एवं स्वर्य अपने को भी देवेश दिवाकर से अतिरिक्त नहीं जानता है उस पुरुष को वैवस्वत जानना चाहिए ।३३-३४। तथा भूत और व्यवस्थित (वर्तमान) सभी भाग वैवस्वत हैं, ऐसा जो जानता है वह वैवस्वत पुरुष कहा जाता है ।३५। भक्ति भावना से प्रजित होने पर यह सूर्य संसार (जन्म-भरण) रूपी भय का अपहरण कर लेते हैं, इस प्रकार का भाव जिसमें सदैव रहता है वह मनुष्य वैवस्वत कहलाता है ।३६। जो लोग मन, वाणी, एवं कर्म द्वारा समस्त प्राणियों में पाप की भावना नहीं करते हैं वैवस्वत पुरुष हैं ।३७। सूर्य के लिए बाहरी विषयों में निरपेक्ष रहकर जो भक्ति पूर्वक केवल सद्गुवाना द्वारा ही उनकी आराधना के लिए सतत क्रियाशील रहता है, उसे वैवस्वत जानना चाहिए ।३८। एवं जिसके कोई शब्द या प्रिय न हों तथा उसके अन्तःकरण में भेदभाव न हो एवं समस्त (विश्व) को भानुमय देखे तो वह प्राणी वैवस्वत है ।३९। क्योंकि जिस गति को वैवस्वत प्राप्त करता है वह गति तपस्या तथा अधिक दक्षिणावाले यज्ञों द्वारा मनुष्यों को कभी नहीं प्राप्त होती है । है देवश्रेष्ठ इतीलिए जो भक्ति पूर्वक अपने को सर्वात्मना सूर्य में निहित कर दिया है वही कृतार्थ होने के कारण प्रशस्त वैवस्वत है ।४०-४१। इस प्रकार जो भक्ति पूर्वक सद्गुवाना द्वारा भास्कर की पूजा करेगा या करायेगा वह हमारे कुल में धन्य एवं कुल पवित्र करने वाला होगा ।४२। जो सूर्य की हृदयालम्बिनी (शारीरिक) पूजा करता है उसे धर्म ध्वज एवं अनुपम सूर्य की प्राप्ति होती है ।४३। जो भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए दुःख मन्दिर का निर्माण कराता है वह मनुष्य अपने सात वीढ़ियों को सूर्य के लोकों की प्राप्ति कराता है ।४४। और उस मन्दिर में जितने वर्षों तक (सूर्य देव की) पूजा होती रहेगी उतने सहस्र वर्ष पुष्पक से भी श्रेष्ठ मन्दिर में उसका निवास होगा ।४५। इसलिए जिस धर में विधान पूर्वक सूर्य की पूजा निरन्तर होती रहती है, तथा पूजा करने वाले को मन कामनाशून्य रहता है उसे अविनाशी (सूर्य) की

पुष्पाण्डितसुगंधीनि अनोजातनि च यः पुमान् । प्रयच्छति जगन्नाथे रस्ताम्बे ज्योतिषां पतौ ॥

स याति परमं स्थानं यत्र ज्योतिः सनातनम्

॥४७

यस्य यस्य विहीनो यो देशो दद्विजितं च यत् । धूपांश्च विविधांस्तान्धाराधरं सुविलेपनम् ॥४८

दीपतर्प्युपहारांश्च यच्चाभीज्ञमयात्मनः । नरः सोनुदिनं यज्ञान्करोत्याराधनाद्वदेः ॥४९

दज्जेशो भगवान्नानुर्नेहरपि स त्रोष्यते । बहूपकरणा दज्जा नानासंभारविस्तराः ॥

संप्राप्यन्ते धनयुतैर्मुख्यैर्नल्प्यसंचयैः ॥५०

भक्त्या तु पुरुषैः पूजा कुता दूर्वाकुडैरपि । रवेद्वाति हि इत्यं सर्वयज्ञैः सुरुलभद् ॥५१

यानि पुष्पाणि हृद्यानि धूपगत्यानुलेपनम् । दयितं मूषणं यच्च तथा रक्ते च वाससी ॥५२

यानि चाभ्यवहार्याणि भक्ष्याणि च फलानि च । प्रयच्छ तानि मार्तण्ड भवेयाश्वेव तन्मनाः ॥५३

आद्यं तं यज्ञपुरुषं यथा भक्त्या प्रसादय । आराध्य याति तं देव यत्तद्ब्रह्म परं स्मृतम् ॥५४

पुण्यस्तीर्थैर्दकैः पुष्ट्यैर्मधुना सर्पिदा तथा । क्षीरेण क्षापयेदेवमच्युतं जगतां पतिन् ॥५५

दधिक्षीरहृदान्युष्यांस्ततो लोकान्मधुच्युतः । प्रयास्यसि यदुश्रेष्ठ निर्वृति चापि ऐश्वरीम् ॥५६

स्तोत्रैर्द्यैर्यथा वाद्यैर्ब्रह्मणानां च तर्पणैः । मनस्त्रैकतायोगादाराध्य दिवाकरम् ॥५७

आराध्यं तं महादेवो महच्छब्दगवाप्तवान् ॥५८

अहं चापि समस्तानां लोकानां सृष्टिकारकः । तमाराध्य विवस्वन्तं तत्प्रसादाज्जनार्दन ॥५९

समानता प्राप्त होती है । ४६। जगन्नाथ एवं सात घोड़े वाले उस ज्योतिष्पति (सूर्य) के लिए जो अत्यन्त सुगन्धित तथा सुन्दर पुष्पों को समर्पित करता है, उसे सनातन (नित्य) ज्योति (ब्रह्म) के उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है । ४७। इस प्रकार भाँति-भाँति के धूप, अत्यन्त सुगन्धित चन्दन दीपक की बत्ती और उपहार एवं अन्य आत्म प्रिय वस्तुओं द्वारा जो सूर्य की आराधना करता है, वह प्रतिदिन यज्ञ ही करता है ऐसा जानना चाहिए । ४८-४९। यद्यपि यज्ञेश एवं भगवान् सूर्य यंत्रों द्वारा भी प्रसन्न किये जाते हैं पर, यज्ञ के साधन अधिक संख्या में होते हैं और भाँति-भाँति के संभार द्वारा उसका आकार-प्रकार विस्तृत होता है, इसीलिए इसे केवल धनवान ही सुसम्पन्न कर सकते हैं न कि अत्यं संचित व्यक्ति भी । ५०। भक्ति पूर्वक केवल दुर्वाङ्कुर द्वारा ही मनुष्यों से पूजित होने पर सूर्य उसे समस्त यज्ञों द्वारा प्राप्त होने वाले अत्यन्त दुर्लभ-फल प्रदान करते हैं । ५१। अतः यथाशक्ति संचित किये गये मनोहर पुष्पों धूप सुगन्धित अनुलेपन सुन्दर आभूषण, लाल रङ्ग के दो वस्त्र, तथा उत्तम भक्ष्य फलों को सूर्य के लिए अर्पित करते हुए तुम उनमें सदैव तल्लीन रहो । ५२-५३। सर्व प्रथम अपनी भक्ति द्वारा उस यज्ञ पुरुष (सूर्य) को प्रसन्न करो क्योंकि उसी देवता की आराधना करने पर ब्रह्म की प्राप्ति होती है । ५४। इसीलिए पुण्य तीर्थों के जल, पुष्प, शहद, धी एवं दूध द्वारा जगत्पति तथा अच्युत सूर्य देव को स्नान कराना चाहिए । ५५। हे यदुश्रेष्ठ ! इससे दही, दूध के सरोवर एवं मधु एवं (शहद चूने वाले) उन पुण्य लोकों की प्राप्ति के साथ साथ तुम ईश्वरीय शान्ति भी प्राप्त करोगे । ५६। इसलिए हृदयग्राही स्तोत्रों वाद्यों एवं व्राह्मणों की प्रसन्नता द्वारा एकाग्र चित्त होकर दिवाकर की आराधना अवश्य करो । ५७। क्योंकि उन्हीं की आराधना करके शिव ने महत्ता प्राप्त की है जिससे वे महादेव कहे जाते हैं और उन्हीं विवस्वान् की आराधना करके उनकी प्रसन्नतावश मैं लोकों का सृष्टिकर्ता हुआ हूँ । ५८-५९। हे हृषीकेष ! इसी प्रकार तुम भी इनकी कृपा

त्वं मध्ये तं हृषीकेश तत्प्रसादान्नं तंशयः । समर्थो देवशत्रूणां दैत्यानां नाशने सदा ॥६०
दक्षिणः किरणस्तस्य यो देवस्य विदस्वतः । अहं तस्मात्समुत्पन्नो वेदवेदाङ्गसम्मितः ॥६१
आलो यः किरणः कृष्ण रश्मिमालाकूलः सदा । तस्मादीशः समुत्पन्नः पार्वतीदयितोऽन्युत ॥६२
ब्रह्मस्तस्त्वं समुत्पन्नः शंखचक्रगदाधरः । तथाम्बुजकरा देवी अम्बुजाननदत्त्वभा ॥६३
तथाराज्य दत्तं कीर्ति शिरं चावाप्तवानहम् । तथा त्वप्रपि राजेन्द्र तमाराज्य दिवाकरम् ॥

द्याम्बानिच्छास कामांस्त्वं तास्तान्सर्वान्वाप्स्यसि ॥६४

थ इदं शृण्यथाप्तिदं संवादं विधिकृष्णदोः । सोऽपि कामनवाप्याश्र्यास्ततो लोकमवाम्यात् ॥६५
मैरिकं याननारदो युक्तं कुञ्जरवाजिभिः । तेजसाम्बुजसंकाशः प्रभदार्ढज सम्प्रिभः ॥६६
काल्पन्य चंद्रसमो राजन्दुन्दारकः पौर्वितः । गन्धवीर्गीयमानस्तु तथा द्वाप्तरसां गर्णैः ॥६७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्दणि सप्तमीकल्पे आदित्यपूजार्थानं नाम
विशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२० ।

द्वारा उन समस्त देवशत्रु दैत्यों के नाश करने के लिए सदैव समर्थ होगे इसमें सदेह नहीं । ६०। सूर्य देव की दक्षिण बाली किरण द्वारा वेद-वेदाङ्ग समेत मैं उत्पन्न हुआ हूँ । ६१। हे कृष्ण ! उसी भाँति उनकी रश्मि रूपी माला धारण किये जो बाईं किरण है, उससे पार्वती प्रिय ईशा (शिव) उत्पन्न हुए हैं । ६२। और उनके वक्षःस्थल द्वारा शंख, चक्र एवं गदा धारण किये तुम तथा कमल के समान नेत्रवाली वह तुम्हारी बल्लभा लक्ष्मी, देवी हाथों में कमल लिए उत्पन्न हुई हैं । ६३। हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार उन्हीं की आराधना करके मैंने बल कीर्ति, एवं भक्ति की प्राप्ति की है उसी प्रकार तुम भी उन दिवाकर की आराधना द्वारा अपनी भाँति भाँति की समस्त कामनाएँ प्राप्त करोगे । ६४

इस प्रकार ब्रह्मा और कृष्ण के इस संवाद का जो नित्य प्रवण करेगा, उसको भी समस्त कामनाओं की सफलता पूर्वक उत्तम लोक की प्राप्ति होगी । ६५। और इसी से वह ऐसे रजत विमान पर बैठकर उत्तम लोक की याचना करेगा जिसमें हाथी-घोड़े जुते हों और उस समय के समान भनोरम, अण्डज (सूर्य) के समान प्रभा एवं चन्द्र के समान कांति उसे प्राप्ति होगी तथा देवताओं के साथ गन्धर्व गण एवं अप्सराएँ अपने नृत्य-गान द्वारा उसे प्रसन्न करती रहेगीं । ६६-६७।

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में आदित्यपूजा वर्णन नामक
एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त । १२०।

अथैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

विश्वकर्मकृतसूर्यतेजः शातनवर्णनम्

शतानीक उवाच

शरीरलेखनं^१ भानोहक्तं संक्षेपतस्त्वया । विस्तरऽच्छ्रुतुमित्तज्ञनि तन्ममाचक्ष्व सुद्रत ॥१

मुमन्तुरुवाच

पितुर्गृहं तु यातायां संज्ञायां कुरुनंदन । भास्त्वरक्षितयामाल्ल संज्ञा भद्रपकारिणी ॥२
 एतस्मिन्नंतरे ब्रह्मा तत्रागात्य दिवाकरम् । अब्रवीन्मधुरां वाचं रवे: प्रीतिकरां शुभाम् ॥३
 आदिदेवोऽसि देवानां व्याप्तमेतत्त्वयः जगत् । श्वशुरो विश्वकर्मा ते रूपं निर्वर्तयिष्यति ॥४
 एवमुक्त्वा रविं ब्रह्मा विश्वकर्मणस्त्रवीत् । निर्वर्तस्व मार्त्तिं स्वरूपं तत्सुशोभनम् ॥५
 ततो ब्रह्मसमादेशाद्भूमिमारोप्य भास्त्वरम् । रूपं निर्वर्तयामात्स विश्वकर्मा शनैःशनैः ॥६
 ततस्तुष्टात्र तं ब्रह्मा सर्वदेवगणैः सह । गुहौर्नानाविद्यैः स्तोत्रैवदेवदाङ्गपारगैः ॥७
 स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ धर्मवर्षहिमाकर । शतिस्ते सर्वलोकानां देवदेव दिवाकर ॥८
 ततो रुद्रश्च विष्णवाद्याः स्तुवन्तस्तं दिवाकरम् । तेजस्ते वर्धतां देव लिख्यतेऽपि दिवस्पते ॥९

अध्याय १२१

विश्वकर्मकृत तेजःशातनविधि का वर्णन

शतानीक ने कहा—हे सुन्त ! आपने सूर्य के शरीर का लेखन (खरादना) संक्षेप में सुनाया था, मुझे उसे विस्तार पूर्वक सुनने की इच्छा है, इसलिए आप अवश्य सुनाने की कृपा करें ।१

सुमन्तु बोले—हे कुरुनन्दन ! संज्ञा के अपने पिताके घर जाने के बाद सूर्य चिन्तित हुए कि संज्ञा मेरे (मनोहर) रूप के लिए इच्छुक हैं ।२। उसी समय वहाँ आकर ब्रह्मा ने सूर्य से उस मधुरवाणी द्वारा कहा जो उन्हें शुभ एवं प्रसन्नता प्रदान करने वाली थी । (तुम) देवताओं के आदि देव हो, तथा तुम्हीं इस समस्त जगत् में व्याप्त हो । अतः तुम्हारे श्वसुर विश्वकर्मा तुम्हारे (मनोहर) रूप अवश्य बना देंगे ।३-४। इस प्रकार ब्रह्मा ने सूर्य से कहकर विश्वकर्मा से कहा—मार्त्तिं का सुलक्षण सम्पन्न एवं सौन्दर्य पूर्ण रूप बनाओ ।५। पश्चात् ब्रह्मा के आदेशानुसार विश्वकर्मा ने भास्त्वर को भूमि पर स्थित कर धीरे-धीरे उनका सुन्दर रूप बना दिया ।६। तदुपरांत वे वेदाङ्ग निष्णात उन समस्त देवगणों समेत ब्रह्मा ने भाँति-भाँति के गुह्य (रहस्यमय) श्रोतों द्वारा उनकी स्तुति भी की ।७। हे जगन्नाथ, धर्मवर्षी, एवं हिमाकर, तुम्हारा कल्याण हो, समस्त लोकों के देवाधिदेव ! तुम्हें शांति प्राप्त हो ।८। इसके पश्चात् रुद्र तथा विष्णु आदि देवताओं ने भी उन दिवाकर की स्तुति की कि हे देव ! हे दिवस्पते !

१. शरीरलेखनं सूर्ये कतं वै प्रतिपादितम् । दैवतैर्ऋषिभिर्वापि तन्ममाचक्ष्व सुद्रत ।

इन्द्रश्चागत्य तं देवं लिख्यमानमथास्तुवत् । जय देव जयस्वेति तत्त्वदोऽसि जगत्पते ॥१०
 ऋषयस्तु ततः सत्त विश्वामित्रपुरोगमा: । तुष्टुवुविविधैः स्तोत्रैः स्वस्तिस्वस्तीतिवादिनः ॥११
 वेदोक्ताभिरथाशीर्भिर्वालखिल्याश्रु तुष्टुवुः । त्वं नाश मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनामपि ॥१२
 त्वं गतिः सर्वैर्नूतानां त्वयि सर्वं प्रतिज्ञितम् । प्रजास्यभूचैव देवेश शं नोऽस्तु जगतः पते ॥१३
 त्वत्तो भवति वै नित्यं जगत्संलीयते त्वयि । त्वमेकस्त्वं द्विधा चैदं त्रिधा च त्वं न संशयः ॥१४
 त्वयैकेन जगत्सृष्टं त्वयैकेन प्रबोधितम् । ततो विद्याधरगणां यक्षराक्षसपन्नगाः ॥१५
 कृताङ्गजिलपुटाः सर्वे शिरोभिः प्रणता रविम् । उच्चुरेवंविधा वाचो मनः श्रोत्रसुखप्रदाः ॥१६
 सहृं भवतु ते तेजो भूतानां भूतभावन ! हाहा हृत्ततश्वेद तुम्बुर्लारदस्तथा ॥१७
 उपगातुं समारब्धा गामुच्चैः कुशला रविम् । अङ्गमध्यमगांधारप्रामत्रयविशारदाः ॥१८
 मूर्च्छनाभिस्ततश्वेद तथा धैवतपञ्चमैः । नानानुभावमन्दैश्च अर्धमन्दैस्तथैव च ॥१९
 त्रिसाधनैः प्रकारस्तु दायतालसप्तन्वितैः । विश्वाची च धृताची च उर्वशी च तिलोत्तमा ॥२०
 मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसां वरा । हावभावविलासैश्च कुर्वत्योऽभिनयान्बहून् ॥२१
 ततोऽतीव कलं गेयं मधुरं च प्रवर्तते । सर्वेषां देवसंघानां मनः श्रोत्रसुखप्रदम् ॥२२

खरादने पर भी तुम्हारे तेज की वृद्धि हो ।१। इन्द्र ने भी आकर खरादे जाने वाले उस सूर्य की प्रार्थना की कि हे देव ! आपकी जय हो, जय हो, ! हे जगत्पते ! आप तत्व के प्रदाता हैं ।१०। पश्चात् विश्वामित्र को सामने कर सत्प्रश्नियों ने स्वस्ति (कल्याण) हो, स्वस्ति हो, कहते हुए भाँति-भाँति के स्तोत्रों द्वारा उनकी स्तुति की ।११। तदुपरातं वेदोक्त आशीर्वद प्रदान करते हुए बालखिल्य लोगों ने उनकी स्तुति की । हे ज्ञाय ! तैं मोक्षेन्द्रुकों के लिए मोक्ष तथा ध्यान करने वालों के लिए ध्येय हो सभी प्राणियों का प्राप्ति स्थान तुम्हीं हो और तुम्हीं में सब स्थित भी हैं अतः हे देवेश, हे जगत्पते ! हम प्रजाओं के लिए आप कल्याण प्रदान करें ।१२-१३। यह समस्त विश्व आप से ही उत्पन्न होता है तथा आप में ही इसका लय भी होता है । इस प्रकार आप एक होते हुए भी निश्चित दो और तीन प्रकार के रूप धारण करते हैं ।१४। इसलिए तुम्हीं एकाकी ने इस जगत् की सृष्टिकी है और इसे चेतनता भी प्रदान की है । इसके पश्चात् विद्याधर गण, यक्ष, राक्षस एवं पन्नग, ये सभी लोग हाथ जोड़कर शिर से सूर्य को प्रणाम करते हुए भन्ति-भाँति और श्रवण को सुख प्रदान करने वाली वाणी बोले ।१५-१६

हे भूत-भावन ! आप का तेज प्राणियों को सहन हो अर्थात् उन्हें क्षमता प्रदान करें । तदुपरान्त गायन में निपुण हाहा, हृह, तुम्बुर और नारद ने सूर्य के लिए ऊँचे स्वर से गायन आरम्भ किया पड़ज, मध्यम, और गांधार तथा तीनों ग्रामों के ये लोग निष्णात विद्वान् हैं ।१७-१८। इसलिए इनके द्वारा एवं मूर्च्छना, धैवत, पंचम, भाँति-भाँति के अनुभव पूर्वक मंद्र तथा अर्धमन्द्र इन स्वरों और तीन प्रकार के साधनों एवं वाय तालों द्वारा गायन होते लगा । विश्वाची, धृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, सहजन्या एवं अप्सराओं में उत्तम रम्भा इन अप्सराओं ने अपने हाव, भाव तथा विलास प्रकट करते हुए भाँति-भाँति के अभिनय दिखाये ।१९-२१। पश्चात् सभी देवताओं का अत्यन्त सुन्दर एवं मधुर गायन आरम्भ हुआ, जो

प्रवाद्यं तु ततस्तत्र वीणावंशादि सुन्नत । पण्वाः पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहस्तथा ॥२३
देवदुन्तुभयः शंखाः शतशोऽथ रहस्याः । गायद्विष्ट्रैव गन्धवैनृत्यद्विष्ट्राप्सरोगणैः ॥२४
तृप्यवादिश्रोषेष्व सर्वं कोलाहलीकृतम् । ततः इतैः करपुटैः पश्चकुडमलसज्जितैः ॥२५
ललाटोपरि विन्यस्तैः प्रणेमुः सर्वदेवताः । ततः कोलाहले तस्मिन्द्विवेदसमाप्ते ॥२६
तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ॥२७

इति हिमजलयर्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य !

तदुपरि लिखनं निश्चय भानोर्द्वजति दिवाकरलोकमायुषोन्ते ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमोकल्पे विश्वकर्मकृतसूर्यतेजः शातनं
नामैकविंशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥२९

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यस्तवदर्णनम्

शतानीक उवाच

तस्मिन्काले समारूढो लिख्यमानो दिवस्पतिः : ब्रह्मादिभिः स्तुतो देवैर्यथा वै तद्वदस्व मे ॥१

मन एवं श्रवण को अत्यन्त सुख प्रदान कर रहा था । २१। हे सुन्नत ! उस नृत्य में वीणा वंशी आदि कोमल तान वाले पण्व, पुष्कर, मृदङ्ग एवं पटह आदि गम्भीर स्वर वाले वाद्य बज रहे थे । २३। कहीं देवों की दुंदुभियाँ (नगाड़े) और उसी प्रकार सेकड़ों हजारों शंख भी बज रहे थे । इस प्रकार गंधर्वों के गायन अप्सरागणों के नृत्यों एवं तूर्य (तुरुही) आदि वाद्यों द्वारा सभी स्थानों में कोलाहल (पूर्णतः) (शोर) सा प्रतीत होने लगा । इसके उपरांत मुकुलित कमल की भाँति अञ्जनी बाँधकर उसे मस्तक से लगाते हुए सभी देवताओं ने (उन्हें) प्रणाम किया । अनन्तर समस्त देवताओं के समागम रूप कोलाहल (शोर) में ही विश्वकर्मा ने उनके तेज का धीरे धीरे शातन (खरादकर ठीक) किया । २४-२७। इस प्रकार हिम जल (बर्फ), धूप एवं समय विभाग के हेतु भूत उस सूर्य के जो ब्रह्मा एवं विष्णु द्वारा संस्तुत होते रहते हैं लेखन (शरीर के खराद जाने) की कथा को सुनने से दिवाकर लोक की प्राप्ति होती है । २८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मे पर्व के सप्तमी कल्प में विश्वकर्मा कृत सूर्य तेजशातन नामक

एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त । १२१।

अध्याय १२२

आदित्यस्तव विधि का वर्णन

शतानीक ने कहा—उस समय जब कि सूर्य के शरीर का लेखन (खरादना रूप कार्य) हो रहा था, ब्रह्मा आदि देवताओं ने उनकी जिस भाँति स्तुति की है, उसे मुझे बताने की कृपा करें । १

तुमन्तुरुदाच

भृणुष्वैकमना राजन्यथा देवो दिवस्पतिः । ब्रह्मादिभिः स्तुतो देवैक्षिभिश्च पुराजनघ ॥२

प्रयत्नतः प्रणतहितानुकम्पिते स्वरूपतो लोकविभाविने नमः ।

दिवस्पते कमलकुलावबोधिने नमस्तमः पटलपटावपत्यिते ॥३

पावनातिशयपुण्यकर्मणे नैककामविभवप्रदायिने ।

भासुरामलमूखमालिने सर्वलोकहितकारिणे नमः ॥४

अजाय लोकत्रयभावनाय भूतात्मने गोपक्षये श्रियाय ।

नमो महाकारणिकोत्तमाय सूर्याय लोकत्रयभावनाय ॥५

विवस्पते ज्ञानकृतान्तरात्मने जगत्प्रतिष्ठाय जगद्वितीयिणे ।

स्वयम्भुवे लोकसमस्तचक्षुषे युरोत्तमायामिततेजसे नमः ॥६

निजो दयाय सुरगणमौलिमणे जगता त्वं महितस्त्वमूरुखसहवतपाः ।

जगति विभो वत्तमसतु व वनतिमिरासदपावन मदाद्भूवति विलोहितदिग्रहितातिमिरदित्तशिनमुप्रं
सुतरा त्रिभुवनभाप्रकरैः ॥७

रथ्यामारुहृ॒ समामयं भ्रमसि सदा जगतो हितदः ॥८

मुमन्तु बोले—हे अनघ राजन् ! पहले समय में ब्रह्मादि देवों एवं ऋषियों ने सूर्य देव की जिस भाँति स्तुति की थी, मैं बता रहा हूँ सावधान होकर सुनो ! ।२। प्राणियों के प्रयत्न पूर्वक नमस्कार करने पर उनके हित के लिए अनुकम्पा करने वाले, एवं स्वरूप भें लोकों को उत्पन्न करने वाले हैं दिवस्पते ! आप को नमस्कार है, तथा कमल समूह को विकसित करने वाले और अन्धकार समूह रूप वस्त्र को विदीर्घ करने वाले आप को नमस्कार है ।३। अतिशय पवित्र एवं पुण्य कर्म वाले, एक कामना ही नहीं अपितु विभव (ऐश्वर्य) के भी प्रदान करने वाले तथा भास्वर और अमल (स्वच्छ) किरणों की माला धारण करने वाले एवं समस्त लोकों के हितैषी (आप) को नमस्कार है ।४। अजन्मा, तीनों लोकों के अभिभावक, भूतात्मा, गोपति, प्रिय, महान् एवं श्रेष्ठ कारणिक सूर्य के लिए नमस्कार है ।५। विवस्वान् अंतरात्मा को ज्ञान प्रदान करने वाले, जगत् की प्रतिष्ठा एवं हित करने वाले स्वयम्भू समस्त लोकों के नेत्र, देवश्रेष्ठ, एवं अमित तेज वाले को नमस्कार है ।६। हे सुरगणमौलिमणे (देवताओं के शिर के मणिरूप) ! अपने अम्युदय के लिए संसार ने तुम्हारी पूजा की है तुम अपने सहस्र किरणों रूपी उह से स्थित होकर सदैव तप करते हो । हे विभो ! जगत् के अन्धकार के नाशक, वन के तिमिर आसन को पवित्र करने वाले मद के नाते ही आपकी शरीर अत्यन्त रक्तवर्ण की हो जाती है । त्रिभुवन के प्रकाश समूह रूप आप के द्वारा समस्त लोकों का अन्धकार नष्ट होता है इस प्रकार उपरूप तुम्हें नमस्कार है ।७। रथ पर बैठकर वर्षमय होकर सदैव भ्रमण किया करते हो और जगत् के हितैषी हो ।८। हे

इत्येवं संस्तुतो देवो भास्करो वेदसा पुरा । दैवतैश्च महाबाहो शिवविष्णवादिभिर्नृप ॥९
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे आदित्यस्तवो
 नाम द्वार्गावशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२२।

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

परिलेखवर्णनम्

शतानीक उवाच

भूयोऽपि कथयस्वेमां कथां सूर्यसन्तान्त्रिताम् । न त्रृप्तिमधिगच्छामि शृण्वन्नेतां कथां मुने ॥१
 सुमन्तुरवाचं

भास्करस्य कथां पुण्यां सर्वपापप्रणाशनीम् । वक्ष्यामि कथितां पूर्वं ब्रह्मणः लोककर्तृणा^१ ॥२
 ऋषयः परिपृच्छन्ति ब्रह्मलोके पितामहम् । तापिता शूर्यकिरणैस्तेजसा सम्प्रमोहिताः ॥३

ऋषय ऊचुः

कोऽयं दीप्तो महातेजा हवीराशिसमप्रभः । एतद्वेदितुमिच्छामः प्रभावोऽस्य कुतः प्रभो ॥४

महाबाहो ! इसी भाँति पहले समय में ब्रह्मा ने सूर्य देव की स्तुति की थी, हे नृप ! उसी भाँति देवताओं, शिव एवं विष्णु ने भी आराधना की थी । ९

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में आदित्यस्तव नामक
 एक सौ बाइसवाँ अध्याय समाप्त । १२२।

अध्याय १२३

परिलेखन वर्णन

शतानीक ने कहा—हे मुने ! इस सूर्य सम्बन्धी कथा को फिर से सुनाने की कृपा करें क्योंकि इस कथा को सुनते हुए मुझे त्रृप्ति नहीं हो रही है । १

सुमन्तु बोले—भास्कर की पुण्य एवं समस्त पापों के नाश करने वाली कथा को जिसे लोक के कर्ता ब्रह्मा ने पहले कहा था, मैं कह रहा हूँ सुनो ! । २। एकबार ब्रह्म लोक में जाकर ऋषियों ने जो सूर्य की किरणों से संतप्त एवं उनके तेज से शूच्छित से हो रहे थे, पितामह से पूछा । ३

ऋषियों ने कहा—हे प्रभो ! दीप्त, महातेजस्वी एवं (पायस) खीर की भाँति उज्ज्वल प्रभा पूर्ण यह कौन है, मैं जानना चाहता हूँ तथा यह भी कि इसे इस प्रकार का प्रभाव कहाँ से प्राप्त हुआ है । ४

१. आर्षो नाभावः ।

ब्रह्मोदाच

तमोभूतेषु लोकेषु नष्टे स्थावरजड़गमे । प्रवृत्ते गुणहेतुन्वे पूर्वं बुद्धिरजायत ॥५
 अहंकारस्ततो जातो महाभूतप्रवर्तकः । वाच्यप्रियापः खं भूमिस्ततस्त्वण्डमजायत ॥६
 तस्मिन्नण्ड इमे लोकाः सप्त वै संप्रतिष्ठिताः । पृथ्वी च सप्तभिर्द्वयैः समुद्रैश्चापि सप्तभिः ॥७
 तत्रैवार्थीस्यतो ह्यासमहं विष्णुर्महेश्वरः । प्रमूढास्त्वप्रसादं सर्वं प्रध्याता ईश्वरं परम् ॥८
 ततो भिद्य महातेजः प्रादुर्भूतं तमोनुदम् । ध्यानयोगेत चास्माभिर्विज्ञातं सवितुस्तथा ॥९
 ज्ञात्वा च परमात्मानं सर्वं एव पृथक्पृथक् । दिव्याभिः स्तुतिभिर्वं संत्तोतुमुपचक्रमुः ॥१०
 आदिदेवोऽति देवानामीश्वराणां त्वमीश्वरः । आदिकर्तासि भूतानां देवदेव सनातन ॥११
 जीवनं सर्वसत्त्वानां देवगन्धर्वरक्षसाम् । मुनिकिन्नरसिद्धानां तथैवोरगपक्षिणाम् ॥१२
 त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः । वायुंरिन्द्रश्च सोमश्च विवस्वान्वरुणस्तथा ॥१३
 त्वं कालः सृष्टिकर्ता च हर्ता त्राता प्रभुस्तथा । सरितः सागराः शैला विद्युदिन्द्रिधनूषिं च ॥
 प्रलयः प्रभवश्चैव व्यक्ताव्यक्तः सनातनः ॥१४
 ईश्वरात्परतो विद्या विद्यायाः परतः शिवः । शिवात्परतरो देवस्त्वमेव परमेश्वर ॥१५
 सर्वतः पाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोगुदः । सहस्रांशुस्त्वं तु देव सहस्रकिरणस्तथा ॥१६
 भूरादिभूर्भुवः स्वश्च महर्जनस्तपस्तथा । प्रदीप्तं दीप्तिमन्त्रितं सर्वलोकप्रकाशकम् ॥

ब्रह्मा बोले—तमोमय (अन्धकारमय) लोकों में स्थावर एवं जंगम रूप सृष्टि के नाश (प्रलय) होने के उपरांत गुण-हेतु के प्रवृत्ति काल में सर्वप्रथम बुद्धि उत्पन्न होती है । ५ और उससे महाभूतों का प्रवर्तक अहंकार उत्पन्न होता है । इस प्रकार वायु, अग्नि, जल, आकाश, तथा भूमि के उत्पन्न होने के उपरांत एक अंडा पैदा हुआ । ६ उसी अण्डे में इन सातों लोकों की स्थिति थी, तथा सातों द्वीप एवं सातों समुद्र समेत पृथिवी की भी । ७ उसी भाँति उसी में मैं विष्णु तथा महेश्वर भी स्थित थे पश्चात् तमोगुण अन्धकार में विपूढ़ होकर सभी लोक उस महान् ईश्वर का ध्यान करने लगे । ८ तदुपरांत उस अण्डे का भेदन करके सूर्य का अन्धकार नाशक महातेज उत्पन्न हुआ जिसे ध्यान योग द्वारा हमीं लोगों ने जाना । पश्चात् उस परमात्मा को जान कर सभी लोग पृथक्-पृथक् दिव्य स्तुतियों द्वारा उस देव की स्तुति करना आरम्भ किये । ९-१०। हे देवाधिदेव ! हे सनातन ! तुम देवताओं के आदि देव, ईश्वरों के ईश्वर, तथा प्राणियों आदि के रचयिता हो । ११। सभी जीवों, देव, गन्धर्व, मुनि, किन्नर, सिद्ध, सर्प एवं पक्षियों आदि सभी के जीवन हो । १२। ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, प्रजापति, वायु, इन्द्र, सोम, विवस्वान्, तथा वरुण रूप तुम्हीं हो । १३। तुम्हीं काल, सृष्टिकर्ता, हर्ता, त्राता, एवं प्रभु हो उसी प्रकार सरित (नदियाँ), सागर, पर्वत, विद्युत, इन्द्रधनुष, सभी के प्रलय एवं उत्पत्ति रूप तथा व्यक्त अव्यक्त सनातन हो । १४। ईश्वर से श्रेष्ठ विद्या बतायी गयी हैं । उससे उत्तम शिव है तथा शिव के अत्यन्त श्रेष्ठ देव (आप) हैं, अतः तुम्हीं परमेश्वर हो । १५। चारों और तुम्हारे हाथ ऐर नेत्र, शिर, एवं मुख विद्यमान हैं, तुम सहस्रांशु हो एवं हे देव ! तुम्हारी सहस्र किरणें हैं । १६। और भू-लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तथा तपलोक तुम हो । प्रदीप्त नित्य प्रभा पूर्ण समस्त लोकों के प्रकाशक एवं सुरेन्द्रों के लिए भी दुर्निरीक्ष्य तुम्हारे उस

दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्गूपं तस्य ते नमः ॥१७॥

सुरसिद्धगणेऽर्जुष्टं भृत्यन्निपुलहादिभिः । शुभं परममव्यग्रं यद्गूपं तस्य ते नमः ॥१८॥
पञ्चातीतस्थितं तद्वै दशैकादश एदं च । अर्धमासप्रतिक्रम्य स्थितं तत्सूर्यमण्डले ॥

तस्मै रूपाय ते देव प्रणताः सर्वदेवताः ॥१९॥

विश्वकूदिवश्वभूतं च विश्वानरसुरार्चितम् । विश्वस्थितमर्चित्यं च यद्गूपं तस्य ते नमः ॥२०॥
परं यज्ञात् परं देवात्परं लोकात्परं दिवः । दुरतिक्रमेति यः ख्यातस्तस्मादपि परं परात् ॥

परमात्मेति विश्वातं यद्गूपं तस्य ते नमः ॥२१॥

अविज्ञेयमर्चित्यं च अध्यात्मगतमव्ययम् । अनादिनिधनं देवं यद्गूपं तस्य ते नमः ॥२२॥

नमोनमः कारणकारणाय नमोनमः पापविनाशनाय ।

नमोनमो वंदितवंदनाय नमोनमो रोगदिनाशनाय ॥२३॥

नमोनमः सर्ववरप्रदाय नमोनमः सर्वबलप्रदाय ।

नमोनमो ज्ञाननिधे सदैव नमोनमः पञ्चदशात्मकाय ॥२४॥

स्तुतः स भगवानेवं तेजसां रूपमास्थितः । उवाच वाचं कल्पाणीं को वरो वः प्रदीयताम् ॥२५॥
तवातितेजसा रूपं न कश्चित्सहते विश्वो । सहनीयं भवत्वेतद्विताय जगतः प्रभो ॥२६॥

रूप को नमस्कार है । १७। देव, सिद्ध, गण, भृगु, अत्रि एवं पुलह आदि महर्षि लोग तुम्हारे जिस शुभं, परम एवं प्रिय रूप की प्रेम पूर्वक उपासना करते हैं उसे नमस्कार है । १८। हे देव ! पंच (पृथिवी, जल, तेज, वायु एवं आकाश) तन्मात्रा, दश इन्द्रियों और ग्यारहवें मन से अगोचर होने तथा अर्धमास^१ का प्रतिक्रमण करके सूर्य मण्डल में स्थित रहने वाले उस रूप को समस्त देवता प्रणाम कर रहे हैं । १९। विश्वकर्ता, विश्वरूप, वैश्वानर देव द्वारा पूर्जित, विश्वस्थित, एवं अर्चित्य उस आपके रूप को नमस्कार है । २०। श्रेष्ठ, यज्ञ, देव, लोक एवं आकाश स्वर्ग से भी जो दुर्धर्ष बताया गया है उससे भी श्रेष्ठ जो परमात्मा के नाम से विश्वात है, तुम्हारे उस रूप को नमस्कार है । २१। अज्ञेय, अर्चित्य, अध्यात्म, अव्यय एवं आदि अंतहीन देव के उस रूप को नमस्कार है । २२। कारणों के कारण (मूलावस्था) पापविनाशी, वंदित के वन्दनीय एवं समस्त रोग विनाशक को (आप को) बार-बार नमस्कार है । २३। समस्त वर प्रदान करने वाले समस्त बल प्रदायक तथा हे ज्ञान निधे ! आप के पंचदशात्मक (अर्थात् पृथिवी आदि पांचों तत्त्व और दश इन्द्रियों के) उस रूप को सदैव नमस्कार है । २४।

इसके अनन्तर तेजस्वी भगवान् सूर्य देव की इस प्रकार स्तुति किये जाने पर उन्होंने कल्याण प्रदान करने वाली वाणी से कहा । आप लोगों को कौनं वरदान दिया जावे । २५।

देवों ने कहा—हे विश्वो ! आप के इस तेजस्वी रूप के सहन करने में कोई भी समर्थ नहीं है अतः हे प्रभो ! जगत् के हित के लिए आप का यह स्वरूप जिस प्रकार सहन करने के योग्य हो इसे वैसा ही करने

१. उत्तरायण तथा दक्षिणायन देवों के शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष हैं इस प्रकार मानव का एक वर्ष देवों का एकमास होता है ।

एवमस्त्वति गामुक्त्वा भगवान्सर्वकृत्सवयम् । लोकानां कार्दसिद्धधर्थं घर्मवर्षाहिमप्रदः ॥२७
 अतः सांख्याश्च योगाश्च ये चान्ये मोक्षकांक्षिणः । ध्यायन्ति ध्यानिनो नित्यं हृदयस्थं दिवाकरम् ॥२८
 सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्वपातकैः । सर्वं तरति वै पापं देवकर्मसमाश्रितः ॥२९
 अग्निहोत्रं च वेदाश्च यज्ञाश्च बहुदक्षिणाः । भानोभेक्त्या तमस्कारकलां नाहन्ति दोडशीम् ॥३०
 तीर्थानां परमं तीर्थं मङ्गलानां च मङ्गलम् । पवित्रं च पवित्राणां तं प्रपद्ये दिवाकरम् ॥३१
 ब्रह्माद्यैः संस्तुतं देवैर्ये प्रपद्यति^१ भास्करम् । निर्मुक्ताः किल्बिषैः सर्वेस्ते यान्ति रविमान्दरन् ॥३२
 उपचर्यादिभिः साध्यो यथा वेदे दिवस्पतिः । लोकानामिह सर्वेषां तथा देवो दिवाकरः ॥३३

शतानीक उवाच

शरीरलेखनं सूर्यं कथं वै प्रतिपादितम् । देवैः सक्रूषिभिर्वापि तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ॥३४

सुमन्तुरुवाच

ब्रह्मानोके सुखाखीनं ब्रह्माणं ते मुरासुराः । क्षृष्टयः समुपागम्य^२ इदमूच्चः समाहिताः ॥३५
 भगवन्देवतापुत्रो य एष दिवि राजते । तेनान्धकारो निकृतः सोऽयं जाज्वलितीति हि ॥३६
 अस्य तेजोभिरखिलं जगत्स्थावरजंगमम् । नाशमायाति देवेश यथा क्लिष्टं नदीतटम् ॥३७

की कृपा करें । अनन्तर समस्त सुष्ठि के कर्ता भगवान् सूर्य ने स्वयं अपने आपको लोकों के कार्य की सिद्धि के लिए धूप, वर्षा एवं शीत दायक के रूप में परिणत किया । २६-२७। इसीलिए सांख्य योग्य मतावलम्बी प्राणी शोक के इच्छुक एवं ध्यानी लोग नित्य अपने हृदय में स्थित उस दिवाकर का ध्यान करते हैं । २८। क्योंकि समस्त लक्षणों से हीन एवं समस्त पातकों से युक्त होने पर भी सूर्य के आश्रित रहने से उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । २९। अग्निहोत्र, वेद एवं अधिक दक्षिणा वाले यज्ञों से ये सभी भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए किये गये नमस्कार के सोलहने अंश के समान भी नहीं होते हैं । ३०। अतः तीर्थों के परमतीर्थ, मगलों के मांगलिक, एवं पवित्रों के पवित्र उस सूर्य की शरण में मैं आया हूँ । ३१। क्योंकि ब्रह्मादि देवों द्वारा संस्तुत भास्कर की शरण जिसे प्राप्त होती है, वे सभी पाप मुक्त होकर सूर्य के मन्दिर की प्राप्ति करते हैं । ३२। जिस प्रकार उपचर्या (सेवा) आदि द्वारा सूर्य देवताओं के लिए वेद में साध्य बताये गये हैं, उसी भाँति यहाँ लोकों में उनमें रहने वाले मनुष्यों के लिए भी आराधना द्वारा दिवाकर देव साक्ष्य हैं । ३३

शतानीक ने कहा—हे सुरत ! देवता और कृषियों ने सूर्य के शरीर का लेखन (खराद पर चढ़ाया जाना) किस भाँति बताया आप मुझे उसे बतायें । ३४

सुमन्तु बोले—एक समय ब्रह्म लोक में सुख पूर्वक ब्रह्म बैठे हुए थे वहाँ देव, असुर, एवं कृषिगण पहुँच कर न ब्रतापूर्वक उनसे यह कहे । ३५। हे भगवन् ! इस देव पुत्र ने जो आकाश में स्थित होकर मुशोभित हो रहा है अपने तेज द्वारा समस्त अन्धकार का नाश कर दिया है क्योंकि वह अत्यन्त प्रज्वलित रूप है । ३६। हे देवेश ! इतना ही नहीं अन्यतु उसके तेज द्वारा स्थावर जंगम रूप इस समस्त विश्व का नदी के कठोर तट की भाँति (अल्प समय) में ही नाश हो जायेगा । ३७। हम लोग उसी के तेज

वयं च पीड़ितः सर्वं तेजसा तस्य मोहितः । पद्मश्रायं यथा म्लानो योगं योनिस्तव प्रभो ॥३८
 दिवि भुव्यन्तरिक्षे च शर्म नोपलभामहे । तथा कुरु सुरज्ञेष्ठ यथातेजः प्रशास्यति ॥३९
 एवमुक्तः स भगवान्यद्योनिः प्रजापतिः । उबाच भगवान् ब्रह्मा देवान्विष्णुपुरोगमात् ॥४०
 महादेवेन सहिता इन्द्रेण च महात्मना । तमेव शरणं देवं गच्छान्मः सहिता वयम् ॥४१
 ततस्ते सहिताः सर्वे ऋषिविष्णवादयः सुरः । गत्वा ते शरणं सर्वे भास्करं लोकभास्करम् ॥४२
 स्तोतुं प्रचक्षमुः तर्वे भक्तिनन्नाः समन्ततः । केशादिर्वताः सर्वा भक्तिभावसमन्विताः ॥४३

ऋग्विष्णवीशा ऊचुः

नमोनमः सुरवरं तिग्मतेजसे नमोनमः सुरवरं संस्तुताय वै ।
 जडान्धनूकान्बधिरान्सकुष्ठान्सच्चित्रिणोन्धान्विविधद्रणावृतान् ॥
 करोषि तानेव चुर्नत्वान्तसदा अतो भगाकारणिकाय ते नमः ॥४४
 यदौदरं ज्योतिरित्वरन्महद्यदल्पतेजो यदपीह चक्षुषाम् ।
 यदत्र यजेष्वपनीतमाहितं तवैव तद्वूपमनेकतः स्थितम् ॥४५
 सुरद्विषः सागरतोयवासिनः प्रचण्डपाशासिपरश्वधायुधाः ।
 समुच्छ्रितास्ते भुवि पापचेतसः प्रयाप्ति नाशं तव देव दर्शनात् ॥४६
 यतो भवांस्तीर्थफलं समस्तं यज्ञेषु नित्यं भगवानवस्थितः ।

से पीड़ित होकर मूर्च्छित से हो रहे हैं और हे प्रभो! आप का उत्पत्ति स्थान वह कमल भी म्लान हो रहा रहा है । ३८। हे सुरज्ञेष्ठ ! आकाश, पृथ्वी, एवं अन्तरिक्ष में कहीं भी हमें शान्ति नहीं प्राप्त हो रही है ।
 अतः जिस उपाय द्वारा इस तेज की शांति हो: सके आप शीघ्र वही करें । ३९

उन लोगों के ऐसा कहने पर कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा ने विष्णु प्रमुख आदि उन देवताओं से कहा । ४०। महादेव के समेत महात्मा इन्द्र और हम लोग उन्हीं (सूर्य) देव के ही शरण में चले । ४१। पश्चात् ब्रह्मा एवं विष्णु आदि उन समस्त देवगणों ने लोक प्रकाशक उन भगवान् भास्कर के शरण में प्राप्त होकर सर्वथा भक्ति से नन्द्र होकर प्रेम में मग्न हो उनकी स्तुति करना आरम्भ किया । ४२-४३

ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश ने कहा—हे सुरवर ! तीक्ष्णतेज वाले आप को नमस्कार है, श्रेष्ठदेवों ने आपकी स्तुति की है अतः हम लोग भी आपको नमस्कार कर रहे हैं और जड़, अन्धे, गूंगे बहिरे, कुष्ठ के रोगी, सफेद कुष्ठ के रोगी एवं भाँति भाँति के ब्रण (धाव) वाले को आप सदैव नवीन (सौन्दर्य पूर्ण) रूप प्रदान करते रहते हैं, अतः आप महान् कारणिक को नमस्कार है । ४४। उदर में जठरामिन, जल में महान् वाढवागिन प्राणियों की आँखों में दिखाई देने वाला अल्पतेज (कनीनिका तारा) तथा यज्ञों में स्थापित अग्नि ये सभी आप के ही भाँति-भाँति के रूपान्तर हैं । ४५। हे देव ! देवताओं के वे शत्रुगण, जो सागर जल के निवासी, भयंकर पाश, तलवार, एवं फरसा अस्त्रों से सुसज्जित हैं उनका तथा पृथिवी के पाणियों का नाश आपके दर्शन मात्र से हो जाता है । ४६। आप समस्त तीर्थों के फल स्वरूप हैं यज्ञों में आप नित्य

१. वैलक्ष्मानसान् ।

नमोभवन्नत्र विचारणास्ति सदा समः शांतिकरो नराणाम् ॥

यच्चापि लोके तप उच्यते बृहीत्तते महातेज उशंति पण्डितः ॥४७

स्तुतः स भगवानेवं प्रजापतिमुखैः सुरैः । अद्यधानं ततश्चके श्रवणाम्यां महीपते ॥४८

स्तुवन्ति ते ततो भूयः शिवविष्णुपुरोगमाः । कृत्वा मां पुरतः सर्वे भक्तिनश्राः समन्ततः ॥४९

‘नमोनमस्त्रिभुवनभूतिदायिने क्रतुद्विग्रासत्कलसम्प्रदायिने ।

नमोनमः प्रतिनिनकर्मसः क्षिणे सहव्रसंदीप्तिये नमोनमः ॥५०

प्रसक्तसत्ताश्वयुजे क्षयाय ध्रुवैकरशिमप्रथिने नमोनमः ।

सवालखिल्याप्तरकिन्नरोरागैः संसिद्धान्वर्वैश्चाचमानुषैः ॥

सयक्षरक्षोगणाणुहृकोत्तमैः स्तुतः सदा देव नमोनमस्ते ॥५१

यतो रसान्तंक्षिप्ते शरीरिणां गमस्तिभिर्हिमजलधर्मनिष्ठवैः ।

जगच्च संशोषयसे सदैव अतोसि लोके जगतो विशोषणम् ॥५२

ब्रह्मोवाच

जात्वा तेषामभिप्रायमुवाच भगवान्वचः^३ । लब्धवानुजां ततः सर्वे सुराः संहृष्टचेतसः ॥५३
त्वष्टारं पूजयामासुर्मनोवाक्कायकर्मभिः । विश्वकर्मा तददेशात्करोतु तव सौम्यताम् ॥५४

अवस्थित रहते हैं, एवं मनुष्यों के लिए सदैव शांति प्रदान किया करते हैं, इसमें कोई विचार करने की आवश्यकता नहीं है अतः हे भगवन् ! आपको नमस्कार है। इस लोक में विद्वानों ने जिसे तप बताया है, पण्डितों का कहना है कि वह आप का ही महान् तेज रूप है ॥५७

हे महीपते ! प्रमुख प्रजापति (ब्रह्मा) द्वारा देवताओं के इस प्रकार स्तुति करने पर उन्हें (देवों को) कानों से कुछ सुनाई पड़ने लगा ॥४८। किन्तु फिर भी वे देवगण जिसमें शिव एवं विष्णु आगे आगे चल रहे थे, मुझे प्रमुख बना कर सर्वथा भक्ति से नम्र स्तुति करने लगे ॥४९

तीनों लोकों के ऐश्वर्य प्रदान करने वाले एवं यज्ञ की क्रियाओं को सफल करने वाले आप को नमस्कार है, तथा प्रतिदिन के कर्मों के साक्षी सहस्र किरण वाले आप को नमस्कार है ॥५०। (अन्धकार के) नाश करने के लिए सात घोड़े वाले रथ पर निरन्तर बैठने वाले, एवं निश्चित एक रशिम मात्र से बैधे हुए आपको नमस्कार है और बालखिल्य, अप्सरायें, किल्लर, सर्प, सिद्ध, गन्धर्व, पिशाच, मनुष्य, यज्ञ, राक्षसगण एवं थेष्ठ गुह्यकों द्वारा आपकी सदैव स्तुति होती रहती है, अतः हे देव ! आप के लिए नमस्कार है ॥५१। अतः शरीरधारियों के रसों को (शोषण करने के रूप में) अपनी उस किरण द्वारा, जो बर्फ को जल रूप बनाने के लिए धूप रूप होकर निकलती रहती है, संक्षिप्त करते हो और इसी प्रकार सदैव जगत् का शोषण किया करते हो, अतः लोक में जगत् में विशोषक भी कहे जाते हो ॥५२

ब्रह्मा बोले—इस प्रकार उन (देवताओं) के अभिप्राय को समझकर भगवान् (सूर्य) कुछ बोले। उनकी आज्ञा प्राप्त कर अत्यन्त हृषित होकर सभी देवताओं ने मन, वाणी, एवं कर्मों द्वारा विश्वकर्मा की पूजा की और सूर्य से कहा कि—आपके ही आदेश प्राप्त कर विश्वकर्मा आप को सीम्य (सीन्दर्यपूर्ण)

१. त्रिभुवनभूरिदायिने । २. वदतां वरः ।

ततस्तु तेजसो राशिं सर्वकर्मविधानवित् । भ्रमिमारोपयामास विश्वकर्मा विभावनुभु ॥५५
 अमृतेनाभिषिक्तस्य तदा सूर्यस्य वै विभोः । तेजसः शातनं चक्रे विश्वकर्मा शनैः रानैः ॥५६३
 आजानुलिङ्गितश्रामौ समुरासुरपूजितः । नाम्यनन्दसनगे देव उल्लेखनमतः परम् ॥५७
 ततः ब्रह्मति देवस्य चरणौ नित्यसंवृतौ , तापयन्नलघयंश्च युक्ततेजोऽभवत्तदा ॥५८
 यच्चास्य शातिं तेजत्तेन चक्रं विशिर्मितव् । ये विष्णुर्जयानोऽन्तसदा वै दैत्यदानवत् ॥५९
 शूलशक्तिगदावज्जशारासनपरम्यदधान् । देवतानां ददौ कृत्वा विश्वकर्मा सहामातिः ॥६०
 त्रिदेवनिर्मितं स्तोत्रं सन्ध्ययोरुभयज्ञपन् । कलं पुनराति पुरुषो व्याधिभिर्न च पीढघते ॥६१
 प्रजावान्सिद्धकर्मा च जीवेत्साप्यं परच्छुतम् । पुञ्चान्धनवांश्च व सर्वत्र चतुरपराजितः ॥
 हित्वा पुरुं भूतमयं गच्छेत्सूर्यमयं पुरम् ॥६२
 भूयोऽपि तुष्टुबुर्देवास्तथा देवर्षयो रविम् । वागिधरित्थमशेषस्य त्रैलोक्यस्य समागताः ॥६३

देवा ऊचुः

नमस्ते^१ रविरूपाय सोमरूपाय ते नमः । नमो यज्ञः स्वरूपायाथर्वायाऽङ्गिरसे^२ नमः ॥६४
 ज्ञानैकधामभूताय^३ निर्धूततमसे नमः । शुद्धज्योतिःस्वरूपाय निस्तत्त्वायामलात्मने ॥६५

बनायेंगे । ५३-५४। तदुपरांत सभी कार्य-विधानों के कुशल विश्वकर्मा ने तेजं पुञ्ज सूर्य को खरादने वाले चक्रे पर स्थित किया । ५५। विश्वकर्मा ने अद्युत से अभिसिचित सूर्य के उस तेज का शातन (खरादना) धीरे-धीरे आरम्भ किया । ५६। सुर और असुर से पूजित सूर्य देव ने घटने तक (अंगों के) खराद जाने के उपरांत (पैरों के) खरदवाने की अनिच्छा प्रकट की । ५७। तीनी से उनके पैर एक में सम्मिलित रहने के नाते अस्फुटित ही रह गये और उसी समय से उसका तेज संतप्त करने तथा गलाने के योग्य हुआ । ५८। खरादते समय जो तेज कट कर गिर गया था विश्वकर्मा ने उसी का चक्र (अस्त्र) बनाया जिसके द्वारा भगवान् विष्णु ने भयंकर दैत्य एवं दानवों का अनेकों बार वध किया है । ५९। तथा महाबुद्धिमान् विश्वकर्मा ने शूल, शक्ति, गदा, वज्र, धनुष एवं फरसा नामक अस्त्र उसी तेज से बनाकर देवताओं को भी वितरण कर दिया था । ६०।

इस भाँति त्रिदेव (व्रह्मां, विष्णु एवं महेश्वर) के किये हुए स्तोत्र द्वारा दोनों संध्याओं (प्रातःकाल तथा सायंकाल) में उनकी आराधना करते हुए पुरुष अपना कुल पवित्र करता है तथा कभी व्याधि-पीडित नहीं होता । ६१। एवं संतान, कार्य की सिद्धि, सौ वर्ष से अधिक की आयु, पुत्र, एवं धन की प्राप्ति पूर्वक वह सर्वत्र अजेय होता है । पश्चात् मरणानन्तर वह प्राणी सूर्य लोक में जाता है । ६२। अनन्तर तीनों लोकों के समस्त देवता एवं देवर्षि आ आकर अपनी वाणियों द्वारा सूर्य की पुनः इस प्रकार स्तुति करने लगे । ६३।

देव ने कहा—तुम्हारे रवि रूप एवं सोमरूप के लिए नमस्कार है, यज्ञःस्वरूप और अर्थर्व एवं आंगिरस रूप को नमस्कार है । ६४। ज्ञान का एकमात्र स्थान भूत, अन्धकार के नष्ट हो जाने से अत्यन्त

१. नमस्ते रुद्ररूपाय सामरूपाय वै नमः । २. अर्थर्वशिरसे नमः । ३. ज्ञानैकपादरूपाय ।

नमोऽखिलजगद्वाप्तिस्वरूपायात्मसूतये । सर्दकाराभूताय निष्ठायै ज्ञानचेतसाम् ॥६६
 नमोऽस्तु ज्ञेयरूपाय^१ प्रकाशे लक्षणपिणे । भास्कराय नमस्तुभ्यं तथा शब्दकृते नमः ॥६७
 संसारहेतवे^२ चैव संध्याज्योत्स्नाकृते नमः । त्वं सर्वमेतद्गवाङ्जगदै भ्रमति त्वया ॥६८
 भ्रमत्वाविद्वमखिल द्व्याण्डं भचराचरम् । त्वदंशुभिरिदं सर्वं संसुष्टं जायते भुविः ॥६९
 क्रियते त्वत्करस्पर्जजलादीनां पवित्रता । होमदानादिको धर्मो नोपकाराय जायते ॥७०
 तदयावद्या संयोगी जगत्यत्र भद्राङ्गुच्छिः । प्रातहोमं प्रशस्तं हि उद्दिते त्वयि जायते ॥७१
 क्रचोऽथ सकला होता यजूर्यि त्वं जगत्पते । सकलानि च सामानि तपत्येवं जगत्सदा ॥७२
 क्रड्मयस्त्वं जगत्नाथ त्वत्तेव च यजुर्मयः । तथा साममयश्चैव ततो नाथ त्रयीमयः ॥७३
 त्वमेव ब्रह्मणे रूपं परं चापरमेव च । मूर्तोऽमूर्तस्तथा सूक्ष्मः स्थूलरूपतया स्थितः ॥७४
 निमेषकाष्ठादिमयः कालरूपः क्षयात्मकः । प्रसीद स्वेच्छयः रूपं स्वतेजोमयमादिशः ॥७५
 इत्थं संस्तूपमानस्तु देवैर्दर्विभिस्तथा^३ । मुमोच न्वं तदा तेजस्तेजसां राशिरव्ययः ॥७६
 यतस्य क्रड्मयं तेजो भवितरं तेन मेदिनी । यजुर्भयेनापि दिव्यं स्वयं साममयो रविः ॥७७
 शातितास्तेजसो भागा ये च स्फुर्देशं पञ्च च । तस्यैव तेन शर्वस्य कृतं शूलं महात्मना ॥७८

निर्मल शुद्ध ज्योति स्वरूप, निस्तत्त्व एवं अमलात्मा (आप) के लिए नमस्कार है । ६५। निखिल जगत् में व्यापक रूप, आत्मपूर्ति सभी के कारण एवं ज्ञानियों की निष्ठा रूप (आयु) को नमस्कार है । ६६। प्रकाश में ज्ञेयरूप (अप्रकाश में) लक्षणपत्था शब्द (शब्द शास्त्र) के निर्माता भास्कर को नमस्कार है । ६७। संसार के हेतु एवं संध्या तथा ज्योतिश्वा (चन्द्रकिरण) के रचयिता (आप) के लिए नमस्कार है, इस सब कुछ जगत् के भगवान् आप ही हैं और तुम्हारे ही द्वारा यह जगत् चलता फिरता रहता है । ६८। यह चर, अचर रूप निखिल द्व्याण्ड की रचना होने पर तुम्हारी ही किरणों द्वारा संतुलित होकर वह पवित्र होता है । ६९। और तुम्हारी ही किरणों के स्पर्श होने से जल आदि के पवित्र होने के नाते हवन एवं दान आदि धर्म तत्र तक उपकारक (फलदायक) नहीं माने जाते जब तक पवित्रात्मक तुम्हारा इस संसार से संयोग (उदय) न हो । इसीलिए आप के उदय होने पर प्रातः कालीन हवन प्रशस्त बताया गया है । ७०-७१। हे जगत्पते ! समस्त कथाएँ क्रहवेद, यजुर्वेद एवं सामवेद (भी) तुम्हीं हो और उसी द्वारा जगत् में सदैव प्रकाशित होते हो । ७२। हे जगत्नाथ ! क्रड्मय, यजुर्मय, एवं साममय होते हुए आप त्रयीमय कहे जाते हो । ७३। तुम्हीं वह्य के पर तथा अपर रूप हो तथा मूर्त-अमूर्त, सूक्ष्म एवं स्थूल रूप से स्थित हो । ७४। इसलिए निमेष (क्षण) दणों दिशाएँ कालरूप एवं कलात्मक रूप आप प्रसन्न हों और मनइच्छित अपने इस तेजोमय, रूप के लिए आज्ञा प्रदान करें । ७५।

इस प्रकार देवों एवं देवरियों द्वारा स्तुति करने पर तेजोराशि एवं अव्यय सूर्य ने आगे तेज का त्वाग किया । ७६। जिससे क्रड्मय तेज से मेदिनी (पृथ्वी) यजुर्मय तेज से स्वर्ग एवं साममय तेज से स्वयं सूर्य उत्पन्न हुए । ७७। खरादे गये तेज का जो पन्द्रहवाँ भाग था, उसी का विश्वकर्मा ने शिद के लिए शूल

नकं विष्णोर्वसूनां च शंकरस्य च दारुणम् । षष्ठ्मुखस्य तथा शक्तिः शिविका धनदस्य च ॥७९
अन्येषां चासुराणां शरव्राण्युग्राणि यःनि वै । यक्षविद्याधराणां च तानि चक्रे स विश्वकृत् ॥८०
ततश्च षोडशं भागं बिभर्ति भगवान्नर्विः । तत्तेजसः^१ पञ्चदश शातिता विश्वकर्मणा ॥८१
ततः सुरूपदृभानुशतरात्नगमत्कुरुन् । ददर्श तत्र संज्ञां च वडवारूपधारिणीम् ॥८२
इत्येतनिखिलं भासोः कथितं मुनिसत्तमाः । शृणुयाद्या नरो भक्त्या लभ्यमेष्टफलं लभेत् ॥८३

इति श्रीभविष्ण्वे महापुराणे त्राह्यं पर्वणि सप्तमीकल्पे वह्यांसंवादे परिलेखवर्णनं नाम
त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२३।

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भुवनकोशवर्णनम्

ब्रह्मोवाच

दक्ष्यास्थ्यहं ते दुनरेत दिष्टे सूर्यस्य सर्वप्रवरप्रधानम् ।
व्योम्नः परं तिष्ठति यस्तु मग्नः स मुच्यते हृष्ट इहायि देष्टे ॥१

बनाया है । ७८। उसी भाँति विष्णु के लिए चक्र, वसुओं एवं शंकर के लिए दारुण (अस्त्र) पडानन के लिए शक्ति तथा कुबेर के लिए शिविका (पालकी की सवारी)-भी बनाई गई है । ७९। और अन्य असुर शत्रु पक्ष एवं विद्याधर के जितने तीर्थग अस्त्र हैं विश्वकर्मा ने उन्हें उसी तेज से बनाया है । ८०। क्योंकि उस तेज का एक मात्र सोलहवाँ भाग भगवान् सूर्य ने अपनाया है और उसके शेष पन्द्रहवें भाग तक को विश्वकर्मा ने खराद डाला था । ८१। तदुपरात सौन्दर्य पूर्ण रूप प्राप्त कर सूर्य ने उत्तर कुरुदेश की धात्रा की और वहाँ जाकर वडवा (घोड़ी) का रूप धारण किये (अपनी स्त्री) संज्ञा की देखा । ८२

हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार मैने सूर्य के निलिल (रहस्य) को बता दिया, जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस कथा को सुनेगा उसे अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है । ८३

श्रीभविष्ण्व महापुराण में त्राह्यं पर्व के सप्तमी कल्प में ब्रह्मायिसंवाद में परिलेखवर्णन नामक

एक सौ तोईसवाँ अध्याय समाप्त । १२३।

अध्याय १२४

भुवनकोश वर्णन

ब्रह्मा बोले—हे दिढे ! मैं सूर्य के सर्वथेष्ठ अनुयायियों (देवताओं) को पुनः बता रहा हूँ सुनो ! आकाश में (सबके) अग्रभाग में जो (आनन्द) मग्न दिखायी दे रहा है, उसे (लोग) रुद्र कहते हैं और यहाँ वह दिढी के नाम से स्म्यात है । १

१. भागा इति शेषः ।

स्थित्वा पुरा ब्रह्मशिरः किलासौ प्रगृह्ण तत्तस्य शिरः कपालम् ।
 ततो हृसत्वमभमसुत्तमं शिवो दहूदकैः पुष्पफलैः समृद्धम् ॥२
 नप्त्रो यदा दाख्वने मुनीनां दृष्ट्वा च तं भैक्ष्यचरं सुरेशम् ।
 योषित्सुताः तंकुभितास्तु लर्वं जामूर्हरं तं मुनयः सुतुष्टाः ॥३
 स इन्यमानो मुनिमुख्यसंघैर्गृहीतलोष्टैर्घृषिदण्डकाष्ठैः ।
 विहायादेणिः स तु तान्सुरर्षीत्ततो रवेलोकमथाजग्नाम ॥४
 आगच्छमानं प्रमथास्तमूरुदेविश नित्यं भ्रमसे किञ्चर्थम् ।
 स प्राह तान्यापविमोचनार्थभटामि तीर्थानि सुरःलयाश्च ॥५
 ते भूय ऊचुः प्रमथास्तमेवगत्रैव तिष्ठस्व रवे: पुरस्तात् ।
 शुद्धिं तवैष प्रकरिष्यतीति शुद्धस्ततो यात्यसि रुद्लोकम् ॥६
 इत्येवमुक्तः प्रमथस्तु रुद्स्तत्रैव तस्थौ रवितोषणाय ।
 नप्त्रो जटी मुष्टिकपालपाणी रूपेण चैवाप्रतिमरित्रतोके ॥७
 उक्तः स बुद्धेन ततः सवित्रा प्रीतोऽस्मि देवागमनात्तवाहम् ।
 मदर्शनादेव भवान्विशुद्धो दिणीति नान्ना भवितासि तोके ॥८
 अष्टादशैते प्रमथास्तु भानोश्वतुर्दशान्ये तु रवे रथस्थाः ।
 हे देवते द्वौ च क्रृषिप्रधानौ गन्धर्वसर्पादिपि तावदेव ॥९

पहले (समय में) एक बार ब्रह्मशिरा नामक (किसी) स्थान में अवस्थित होकर ब्रह्मा के शिर का कपाल (आधा) भाग लिये एकदम नप्त्र होकर उस शिव (रुद्र) ने अत्यन्त जल, पुष्प एवं फलों से समृद्ध किसी उत्तम आश्रम कीं ओर प्रस्थान किया था ।२। अनन्तर उस घोर वन में भिक्षुक के रूप में उस देव श्रेष्ठ को धूमपते हुए देखकर मुनिगण उनकी स्त्रियाँ और बच्चे अत्यन्त संक्षुध होकर उनके पास पहुँचे ।३। और मुनियों ने हाथ में लिए मिट्टी के ढेले तथा क्रृषियों ने काष्ठ के दंडों से उन पर आधात किया । उनसे मार लाने के पश्चात् दिणी ने उन सुर्पियों को त्याग कर पुनः सूर्य लोक को प्रस्थान किया ।४। उन्हें आते हुए देखकर प्रमथगणों ने (चिनम्ब्र भाव से) उनसे कहा—हे देवेश ! आप नित्य इस प्रकार क्यों धूमों फिरते हैं उन्होंने उन लोगों से कहा—मैं पाप-मुक्त होने के लिए तीर्थों एवं देवालयों में धूम रहा हूँ ।५। प्रमथगणों ने (ऐसा सुनकर) पुनः उनसे कहा—आप यही सूर्य के सामने अवस्थित होवें (सूर्य) आप की भलीभाँति शुद्धि करेंगे उसके पश्चात् आप रुद्र लोक चले जाइयेगा ।६। इस प्रकार प्रमथों के कहने पर नप्त्र, जटाधारी, कपालपाणि (हाथ में कपाल लिये) तीनों लोकों में अनुपम रूप धारण करने वाले भगवान् रुद्र सूर्य की आराधना के लिए उसी स्थान में अवस्थित हो गये ।७। पश्चात् (उनकी आराधना से) प्रसन्न होकर सविता (सूर्य) ने उनसे कहा—हे देव ! मैं तुम्हारे आगमन से प्रसन्न हूँ, मेरे दर्शन मात्र से ही आप विशुद्ध हो गये और (आज से) लोक में आप ‘दिणी’ नाम से विस्थात होगे ।८। इस प्रकार (दिणी के अतिरिक्त) सूर्य के साथ उनके रथ पर उनके अठारह प्रमथ तथा अन्य और चौदह (व्यक्ति) के समेत दो प्रधान क्रृषि, दो गन्धर्व, सर्प, दो यक्ष, दो सिद्ध, दो निशाचर, अप्सराओं में उत्पन्न

यही च सिद्धौ च निशाचरौ चादित्यात्मजावप्सरसां प्रधातौ ।

वसन्ति ते हास्तमुषश्च सूर्ये तेषामशीतिश्चतुरोत्तरा सा ॥१०

इत्यादिदेवप्रवरास्तु सर्वे धात्वर्थशब्देश्च भवन्ति सिद्धः

॥११

ऋषय ऊचुः

दिस्तराद्बूहि चे अहन्प्रलरान्धातुरब्दजान् । यतश्च कौतुकं ज्ञहमस्मात्तस्मिह जायते ॥१२

अहोवाच

मूरुस्तव ऋब्दयामि दण्डनायकपिइगालौ । राजशौषादयश्चान्ये दिवदेवा दिग्दिगां सह ॥१३
मया सह समागम्य पुरा देवैर्विचारितम् । एष कारणिकः सूर्यो मुद्यते द्वानर्थैः सह ॥१४
ते तु लब्धवरा भूत्वा अमात्याद्या हृभीक्षणः । आदित्यं मन्यमानात्स्ते तपन्तं हन्तमुद्यताः ॥१५
तस्मातेषां विद्यातार्थं प्रवराश्च भवामहे । अस्साभिः प्रतिरुद्धात्स्ते न दद्यन्ति दिवाकरम् ॥१६
सम्मन्त्रयैवं ततः स्फन्दो दामपर्वते रवे: स्थितः । दण्डनायकं संजात्सु र्सवलोकस्य स प्रभः ॥१७
उत्तम्भ स तदार्कण त्वं प्रजादण्डनायकः । दण्डनीतिकरो यस्मात्समात्स्वं दण्डनायकः ॥१८
लिखते यः प्रजानां च सुकृतं यच्च दुष्कृतम् । अग्निर्विक्षिणपार्वते तु पिङ्गलत्वात्स पिङ्गलः ॥१९
आश्चिनौ चापि सूर्यस्य पार्श्वयोरुभयोः स्थितौ । अश्वरूपात्समुत्तम्नी तेन तावश्चिनौ सुरौ ॥२०

दो आदित्य के प्रधान पुत्र, ये सभी उनके अस्तोदय समय में अवस्थित रहते हैं, जिनकी संख्या चौरासी है । १-१०। इन थेष्ठ देवों के नाम की सिद्धि (व्याकरण द्वारा) तदर्थ वाचक धातु से निष्पत्र शब्दों से होती है । ११

ऋषियों ने कहा—हे द्वादून् ! इन देव प्रवरों (थेष्ठों) के नाम को धात्वर्थ वाचक शब्दों से निष्पत्र बताया गया है, अतः विस्तार पूर्वक इसे बताने की कृपा करें क्योंकि इसकी जानकारी के लिए हमें महान् कुतूहल हो रहा है । १२

आस्ता ने कहा—मैं तुहें (इसे) फिर बता रहा हूँ । सावधान होकर सुनो पहले समय में एकबार मेरे तथा दिडी के साथ दण्डनायक, पिंगल, राज, थौपादि एवं दिशाओं के देवता लोग मिल कर विचारने लगे कि कर्णानिधान भगवान् सूर्य तो दानवों के साथ तन्मय होकर युद्ध कर रहे हैं । १३-१४। इधर (राजसों के) भंत्रीगण भी वरदान प्राप्त किये हैं अतः ये देवीपापान सूर्य के प्रतिधात करने के लिए अवश्य तैयार होंगे । १५। इसलिए उनके वध के लिए हमें भी प्रबल होना चाहिए। क्योंकि हम लोगों से अवरुद्ध होने पर वे दिवाकर देव को देख न सकेंगे । १६। इस प्रकार की भंत्रणा कर स्कन्द सूर्य के बाई और अवस्थित हुए, उनका दण्डनायक नामकरण हुआ और समस्त लोकों का प्रभुत्व भी उन्हें सौंपा गया । १७। अनन्तर भगवान् सूर्य ने उनसे कहा—तुम्हें दण्डनायक बनाया गया है । १८। फिर उन्होंने अग्नि से कहा कि—(मेरे) दाहिनी ओर स्थित होकर प्रजाओं के बुरे-भले सभी कर्मों को लिखो और पिंगल होने के नाते तुम्हारा नाम पिंगल रक्षा गया है । १९। पुनः अश्चिनीं कुमार सूर्य के दोनों पार्श्व (बगल) में स्थित हुए, अश्वरूप (सूर्य) से उत्पन्न होने के नाते जिनका नाम अश्चिनी कुमार हुआ है । २०। पश्चात् सूर्य के दो

द्वारपालौ स्मृतौ तस्य राजः श्रेष्ठौ महाबलौ । कार्तिकेयः स्मृतो राजः श्रेष्ठश्चापि हरः स्मृतः ॥२१
 राजूदीप्तौ स्मृतो धारुनकारस्तस्य प्रत्ययः । सुरसेनापतित्वेन स पस्माद्दीप्ते सदा ॥
 तस्मात्स कार्तिकेयस्तु नाम्ना राज इति स्मृतः ॥२२
 द्वागतौ च स्मृतौ धारुर्यस्य स प्रत्ययः स्मृतः । गच्छतोति रहस्तस्मात्पादात्क्षेव उच्यते ॥२३
 प्रथमं यद्वेद्वारं धर्मर्थाभ्यां सप्ताश्रितम् । तत्रैती स्थितो देवो लोकपूज्यो द्विजासमाः ॥२४
 द्वितीयायां तु कक्षायाभ्रधृतौ व्यवास्थहौ । पक्षिशेताधिपो नाम्ना स्मृतः कलमाषपक्षिणौ ॥२५
 वर्णस्य शब्दत्वाच्च यमः कलमाष उच्यते । पक्षावस्त्रेति यः पक्षी गरुडः परिकीर्तितः ॥२६
 स्थितो दक्षिणतस्तस्य दण्डहस्तभमन्तिः । उन्नरेण स्थितोऽर्कस्य कुद्रेश्च विनायकः ॥२७
 कुबेरो धनदो ज्ञेयो हस्तिरूपो विनायकः । कुत्सया कुष्यताशप्तं कुशरीरमजायत ॥
 कुबेरः कुशरीरत्वात्स नाम्ना धनदः स्मृतः ॥२८
 नायकः सर्वसत्त्वानां तेन नायक उच्यते । विविधं नयते यस्मात्स तु तस्माद्विनायकः ॥२९
 रैवतश्चैव दण्डश्च तौ रवेः पूर्वजः स्थितोः । ततो दिण्डः स्मृतो रुद्रो रैवतस्तनयो रवेः ॥३०
 प्लुतं गच्छत्यसौ यस्मात्सर्वलोकनभस्कृतः । रेवूल्वगतौ धातू रैवतस्तेन स स्मृतः ॥३१

द्वारपाल हुए, जिनमें प्रथम राज और दूसरे श्रेष्ठ हैं, कार्तिकेय का ही नाम राज है और श्रेष्ठ हर हुए । एवं ये दोनों महाबली हैं । २१। दीप्ति (प्रकाश) अर्थ में राजधारु (व्याकरण शास्त्र में) पठित है उसमें ऋ (अनुबन्ध) के निकल जाने पर उसके सामने (न) कार के प्रत्यक्ष के रूप में उसके सामने आने पर राज शब्द निष्पत्त होता है । इसलिए देवताओं के सेनापतित्वेन और सदैव दीप्त होने के नाते कार्तिकेय का राज नामकरण अत्यन्त युक्त भी है इसीलिए उन्हें इस नाम से स्मरण किया जाता है । २२। गति अर्थ में सुधारु पठित है उसके सामने 'स' प्रत्यय के रूप में उपस्थित होने से जिस 'सुस' शब्द की उत्पत्ति होती है, उसी का 'एकान्त में प्राप्त' होने के अर्थ में पर्यायवाचक सौपैश शब्द निष्पत्त होता है । २३। हे द्विजोत्तम ! पहले दरवाजे पर जो धर्म एवं अर्थ का केन्द्र कहा जाता है ये दोनों लोक पूज्य देवता उसी स्थान पर सुशोभित हैं । २४। दूसरी कक्षा के दरवाजे पर कलमाष एवं पक्षी ये दोनों उपस्थित रहते हैं जो अत्यन्त दुर्धिष्ठ हैं । और शब्द (चितकबरे) वर्ण के होने के नाते यम को कलमाष और जिसके पक्ष हों उसे पक्षी कहा जाता है अतः पक्षी से गरुड़ का नाम बताया गया है । २५-२६। सूर्य के दक्षिण की ओर दंड हाथ में लिए कुबेर अवस्थित हैं और सूर्य के उत्तर विनायक की स्थिति है । २७। जिनमें धनद को कुबेर एवं हांथी रूप धारी को विनायक बताया गया है । एकबार निन्दावश किसी ने कुद्र होकर इन्हें शाप दे दिया था उसी से उनकी शरीर खराब हो गई, उसी कुशरीर के नाते धनद का नाम कुबेर पड़ा है । २८। इसी प्रकार सभी प्राणियों के नायक होने के नाते नायक, एवं भाँति-भाँति के उपायों द्वारा प्राणियों के कल्याण का नयन (उद्घन) करने के नाते उन्हें विनायक कहा जाता है । २९। इसी भाँति रैवत एवं दिंडी सूर्य के पूर्व की ओर स्थित हुए जिनमें दिंडी रुद्र का नाम है, तथा रैवत सूर्य के एक पुत्र का नाम है । ३०। कूदते हुए चलने के नाते उन समस्त लोकों के वन्दनीय का नाम रैवत हुआ । गमन अर्थ में रेवृ और प्लव धातु है उसी से रैवत शब्द निष्पत्त होता है । ३१। उसी प्रकार गमनार्थकड़ी धातु पठित है, उसी से दिंडि शब्दकी सिद्धि

डीझन्तावस्य^१ वै धातोर्दिण्डिशब्दो निपात्यते । उयतेऽस्तौ^२ तदा दिण्डी हेन दिण्डी प्रकीर्तिः ॥३२
इत्येते प्रवरा: प्रोक्ता धात्वर्था नैगमैः शुभैः । एषां संक्षेपतो भूरः सङ्ख्यां वै निगदामि वै ॥३३
अश्विनौ तौ ततोऽज्ञेयौ दण्डनायकपिङ्गलौ । तौ सूर्यद्वारगौ ज्ञेयौ राजन्मौषौ ततः स्मृतौ ॥३४
रेततश्चैव दिण्डश्च इत्येते वृद्धरा भया । अष्टादश समाख्यताः संक्षेपात्सङ्ख्यया भया ॥३५
इत्येतिर्भास्मिभिरत्वात्ये नामदाना जिधांसया । परिवर्द्धे स्थिताः भूर्भूलनाप्रहरणायुधाः ॥३६
सल्पश्चात्यरूपाश्च विरूपाः कानश्चपिलः । परिवर्द्धे स्थिताः भूर्भूर्गण्डश्च सहावलः ॥३७
धातुदिविति वै ग्रैरस्त्रौ छीड़यां स तु उच्यते । छीड़ले दिवि वै धन्तात्सद्यते दैत्याः स्मृताः ॥३८
ऋचो यजूंषि सामानि यात्युक्तानीह वै भया ! नानारूपैः स्थितान्येद रवेस्तानि समन्ततः ॥३९

सुमन्तुरुदाच

इत्येवमुक्तवाच्चहा ऋतीणां पृच्छतां पुरा । ते शुत्वाराध्य देवेशं संसिद्धा दिवि संस्थिताः ॥४०

इति श्री भाविष्ये महापुराणे ज्ञाहे पर्वणि सप्तमीकल्पे ब्रह्मर्षिसंवादे प्रवर्वर्णनं नाम
चतुर्विशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२४।

निपातन से होती है । (उयतेऽस्तौ सदा स दिंडः) इस प्रकार उसका विग्रह भी बनाया गया है । ३२।
व्याकरण के धातु अर्थ वाचक शब्दों द्वारा की गयी व्याख्या सहित इन देव प्रवरों को मैने बता दिया, अब
इनकी संख्या भी संक्षेप में तुम्हें बता रहा हूँ । ३३। दो अश्विनी कुमार, दंडनायक, पिंगल, सूर्य के द्वारपाल
राज एवं श्रौप, रेतत तथा दिण्डि इन्हीं प्रवरों को मैने बताया था जिनकी संख्या संक्षेप में अट्ठारह
है । ३४-३५। दानवों की हिंसा करने के लिए ये लोग तथा अन्य लोग भी भाँति-भाँति के अस्त्रों से
मुसङ्गित होकर सूर्य देव के चारों ओर अवस्थित हैं । ३६। इसी भाँति समान रूप वाले, अन्य रूप वाले,
विरूप, एवं कामरूप (स्वेच्छा से रूप धारण) करने वाले तथा महाबली गरुड, ये सभी लोग उन्हें धेर कर
अवस्थित रहते हैं । ३७। क्रीडा अर्थ में दिव् धातु पठित है, इसीलिए स्वर्ग में क्रीडा करने के नाते (इन्हें)
देवता कहा जाता है । ३८। एवं ऋग, यजु एवं साम आदि जो कुछ मैने पहले बतला दिया है, वे सभी
भाँति-भाँति के रूप धारण कर सूर्य के चारों ओर अवस्थित रहते हैं । ३९

सुमन्तु बोले—पहले समय में ऋषियों के पूँछने पर ब्रह्मा ने ऐसा ही कहा था पश्चात् वे सब
ऋषिगण भी उसे सुनकर देवेश सूर्य की आराधना द्वारा सफलता की प्राप्ति करके स्वर्ग में ही सदैव के
लिए स्थित हो गये । ४०।

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में ब्रह्मर्षि संवाद में प्रवर्वर्णन नामक
एक सौ चौबीसवाँ अध्याय समाप्त । १२४।

१. ऋगतावस्य वै धातुः । २. ऋच्छतीति ।

अथ पञ्चविंशत्यादिकशततमोऽध्यायः

भुवनवर्णनम्

शतानीक उचाच

वदेत्तद्वृयते व्योम भूर्यस्य पुरलो द्विज । नद्युच्यते किमात्मा च कथं भूतश्च कथ्यताम् ॥१

सुमन्तुरुचाच

हन्त व्योम प्रवक्ष्यामि सूर्यप्रहरणं शुभम् । यदात्मकं हि यत्प्रोक्तं यज्ञा वसन्ति देवताः ॥२
पुरस्ताच्च चतुःशृङ्गं तद्व्योमायतनं रवे । व्योमशब्दं चतुःशृङ्गं सर्वदेवमयं च यत् ॥३
दैरिकार्णदत्तम्भूतं यदन्तर्गर्भमाश्रितम् । ततोत्प्रस्त्रमिदं व्योम कलेवर्णेन मही स्मृता ॥४
वरुणस्य यथा पाशो हुङ्गारो वेधसो यथा । विष्णोश्चादि यथा चक्रं त्रिशूलं अग्नकस्य च ॥५
हन्द्रस्य च यथा वज्रं तथा व्योम रवे: स्मृतम् । तस्मिन्न्योगेन्नि प्रस्त्रिंशत्कीडन्तो यज्ञियाः सुराः ॥६
हरश्च वर्षशुद्धश्च अग्न्यकश्चापाणजितः । वृषाकपिश्च शस्त्रश्च कपर्दी रैवतस्था ॥

ईश्वरो भूजनश्चैते रुद्रा एकानशा स्मृताः ॥७

आदित्यानां च नामानि विष्णोश्चकस्य दीयताम् । अर्यमा च तथा मित्रो भगोऽथ वरुणस्तथा ॥८
विवस्वान्सविता चैव पूषा त्वष्टा तथैव च । अंशोभागश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥९

अध्याय १२५

भुवन-वर्णन

शतानीक ने कहा—हे द्विज ! यह जो सामने सूर्य का व्योम (नामक अस्त्र) दिखाई दे रहा है, वह किस आकार-प्रकार का है एवं कैसे उत्पन्न हुआ, भुजे बताइये ।

सुमन्तु बोले—व्योम नामक सूर्य के उस शुभ अस्त्र को मैं बता रहा हूँ कि वह कैसा है उसे क्या कहते हैं और उसमें देवता लोग किस भाँति रहते हैं । २। सूर्य का व्योम नामक अस्त्र है जो उनका आश्रय भी है उसके सामने चार भृङ्ग हैं उन्हीं चार भृङ्ग वाले एवं सर्वदेवमय के अर्थ में व्योम शब्द प्रयुक्त होता है । ३। इस प्रकार सुर्वर्ण के समुद्र-में उसके भीतरी गर्भ में जो तत्त्व स्थित था उसी से यह व्योम उत्पन्न हुआ है । कलि में व्योम के नाम से मही (पृथ्वी) का भी स्मरण किया जाता है । जिस प्रकार वरुण का पाश, नद्या का हुंकार, विष्णु का चक्र, अग्न्यक का त्रिशूल एवं इन्द्र का वज्र (अस्त्र) है, उसी भाँति सूर्य का व्योम नामक अस्त्र है, उसी व्योम में क्रीडा करते हुए तैतीस याजिक के देवता हैं । ४-६। हर, वर्षशुद्ध, अग्न्यक, अपराजित, वृषाकपि, शंभु, कपर्दी, रैवत, ईश्वर, भुवन, और द्वद ये ग्यारह द्वद एवं द्वादश (बारह) आदित्य स्थित हैं । ७। तथा इनके के जो नाम हैं, वही विष्णु के चक्र के भी नाम हैं—अर्यमा, मित्र, भग, वरुण, विवस्वान्, सविता, पूषा, त्वष्टा, अंश भग, अतितेज एवं आदित्य उनके नाम हैं । ८-९। ध्रुव, धर,

ध्रुवो धरश्च सोमश्च आपश्चैवाऽनिलोऽनलः । प्रत्यूषश्च प्रभातश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिः ॥१०
नासत्यश्चैव दसश्च स्मृतौ हृषिविनावृभौ । विश्वेदेवान्प्रवक्ष्यामि नामतस्ताम्भिर्बोधतः ॥११
कर्तुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामौ धृतिः कुरुः । शङ्खुमात्रो वामनश्च विश्वेदेवा दश स्मृताः ॥१२
वर्तमाना इमे देवाः भविष्यानन्तरे भृणु । धर्मश्च तुष्टिताश्रेव वसवोऽवशर्वतिः ॥१३
सत्याश्च भूतरजसः साध्याश्च तदनन्तराः । षट्सु मन्त्रत्रेष्वेव देवा द्वादशद्वादशः ॥१४

पारावतास्तथा चान्ते ते ह्यासंस्तुषितैः सह ॥१४

साध्यान्देवान्प्रवक्ष्यामि नामतस्तत्त्वान्निर्बोध मे । मनोऽनुमन्ता प्राणश्च नरो नारायणस्तथा ॥१५
वृत्तिलम्बो मनुश्चैव समोऽधर्मश्च वीर्यवान् । वित्तस्वामी ब्रह्मश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिः ॥१६
एते यज्ञभुजो देवाः सर्वलोकेषु पूजिताः । अदित्यामेव ते धीर कश्यपस्यात्मजाः स्मृताः ॥१७
विश्वे च वसदः साध्या विज्ञेया धर्मसूनदः । एवं धर्मेषुतः सोमस्तुतीयो बहुरिष्यते ॥१८
धर्मोऽपि अह्याणः पुत्रः पुराणे निश्चयं गतः । अथ चेन्द्रान्वस्तुश्चैव नामाभेद्य निर्बोध मे ॥१९
स्वायम्भुवो मनुः पूर्वः ततः स्वारोचिष्ठः स्मृतः । उत्तमस्तामसश्चैव रैव वतश्चाक्षुष्टस्तथा ॥२०
इत्येते षड्तिकान्ताः सप्तमः ताभ्यतो मनुः । दैवस्वतेति विज्ञेयो भविष्याः सप्त चापरे ॥२१
एषामाद्योर्कसावर्णिर्बहुसावर्णिरेव च । तस्माच्च भवसावर्णिर्धर्मसावर्णित्युत ॥२२
पञ्चमो दधसावर्णः सावर्णिः^१ पञ्च कीर्तिः । रौच्यो भौव्यश्च द्वावन्यावित्येते मनवः स्मृताः ॥२३

सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभात ये आठ वसु यहाँ हैं । १०। नासत्य एवं दस नामक दोनों अश्विनी कुमार, तथा विश्वदेव भी वहाँ स्थित रहते हैं, उनके नामों को बता रहा हूँ, सुनो । ११। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काल, काम, धृति, कुरु, शंकुमात्र, एवं वामन ये दश नाम हैं । १२। इस प्रकार उपरोक्त ये सभी देवता नित्य (व्योग में) वर्तमान रहते हैं, इसके अनन्तर भी कह रहा हूँ सुनो ! यम-तुषित एवं दशीभूत ये वसु सूर्य की अधीनता स्वीकार करके रहते हैं । सत्य, भूत रजस, साय्य, इसके पश्चात् छहों मन्वन्तरों में बारह-बारह देवता, पारावत, तथा तुषितों के समेत अन्य देवता भी वहाँ स्थित हैं । १३-१४। अब साध्यों के नाम बता रहा हूँ सुनो ! मनु, अनुमंता, प्राण, नर, नारायण, वृत्तिलम्ब, मनु, सम, धर्म, वीर्यवान्, वित्तस्वामी, तथा प्रभु यही बारह नाम हैं । १५-१६। ये सभी देवगण यज्ञ भोक्ता हैं और समस्त लोकों में पूजित हैं । हे धीर ! कश्यप की पत्नी अदिति से होकर ये कश्यप के पुत्र भी कहलाते हैं । १७। उसी प्रकार विश्वदेव, वसु, और साध्यों को धर्म के पुत्र जावना चाहिए । एवं तृतीय सोम नामक वसु भी धर्म के पुत्र हैं । १८। और धर्म व्रहा के पुत्र हैं यह पुराण से निश्चित है । अब इन्द्र वसु का नाम बता रहा हूँ सुनो ! । १९। प्रथम स्वायंभुव मनु हुए ये उनके पश्चात् स्वारोचिष्ठ, उत्तम, तामस, रैवत, और चाक्षुष हुए । २०। इन छह मनुओं का कार्य काल भी समाप्त हो गया है । क्योंकि आधुनिक सातवाँ वैवस्वत सनु है । इनके अनन्तर सात मनु और होगें— । २१। इनमें प्रथम सूर्य सावर्णि, व्रहा सावर्णि, भव सावर्णि, धर्म सावर्णि, और पाँचवा दक्ष सावर्णि, इन पाँच सावर्णियों के उपरान्त रौच्य एवं भौव्य नामक दो अन्य मनु मिलकर यही सात मनु होगे । २२-२३। इन्द्रों में सर्वप्रथम विष्णुभुक्, विद्युति,

१. रुषितश्चैव । २. तथैव वशवर्तिः । ३. वै स्मृताः । ४. हंसो धर्मश्च । ५. एकवचनमार्षम् ।

इन्द्रस्तु विष्णुभुग्नेयो विद्युतिस्तदनन्तरम् । विभुः प्रभुश्चैव शिखी तथैव च मनोजवः ॥२४
 ओजस्वी साम्प्रतिस्तिवन्दो दलिर्भाव्यस्ततः परम् । अद्भुतस्त्रिविवश्चैत्र दशमस्तिवन्द उच्यते ॥२५
 सुसात्त्विकश्रै^१ कीर्तिश्च शतधामा^२ दिवस्त्पतिः । इति भूता भविष्याश्च इन्द्रा ज्ञेयाश्चतुर्दश ॥२६
 कश्यपोऽत्रिर्दशिष्ठश्च भरद्वाजश्च गौतमः । विश्वामित्रो जमदग्निः सप्तैते ऋषयः स्मृताः ॥२७
 अतः परं प्रतक्षणमि मरहोर्जित्प्रिग्रहन् । प्रवहोर्थावहश्चैव उद्धवः रांहस्तत्त्वः ॥२८
 विवहो निवहश्चैव परिवाहस्तथैव च । अन्तरिक्षचरा^३ हैते पृथिव्यमर्गदिसातिः ॥२९
 सूर्योऽपि शुचिर्नामा वैद्युतः पावकः स्मृतः । निर्मन्थः पवसानोऽप्रिस्त्रयः प्रोक्ता इमेश्वर्यः ॥३०
 अग्नोनां पुत्रपौत्रास्तु चत्वारशतथैव तु । भूताप्यि रार्षेणां विज्ञेयाः सप्ततत्त्वाः ॥३१
 क्रतुः संवत्सरोऽहृष्टिर्कृतवस्तस्य जन्मिरे । क्रतुपुत्राश्च तै पञ्च इति सर्गः सनातनः ॥३२
 संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः । इद्वत्तारस्तुतीयस्तु चतुर्थस्त्वनुवत्सरः ॥३३
 पञ्चमो वत्सरस्तेषामित्येवं पञ्च ते स्मृताः । तेषु संवत्सरो हृष्टिः सूर्यस्तु परिवत्सरः ॥३४
 सोम इद्वत्सरस्तेषां वायुश्चैवानुवत्सरः । रुद्रस्तु वत्सरो ज्ञेयः पञ्चविना^४ युगदेवताः ॥३५
 आर्तवा: पितरो ज्ञेया ये जाताः क्रतुसूनदः । दिताम्भास्तु विज्ञेयाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः ॥३६
 सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वाताश्च ये त्रयः । एते वै पितरस्तेषां ये जीवत्पितृकरं नराः ॥३७
 आदित्यश्चैव सोमश्च लोहिताङ्गो बुधस्तथा । बृहस्पतिश्च शुक्रश्च तथा हेलिसुतश्च यः ॥३८

विभुः, प्रभु, णिखी, मनोजव, ओजस्वी, बलि, अद्भूत, दशर्वां त्रिदिव, सुसात्त्विक, कीर्ति, शतधामा तथा दिवस्तिः, यही चौद्धव नाम वाले इन्द्र भूत एवं भविष्यकाल में होंगे इनमें ओजस्वी नामक आधुनिक इन्द्र हैं । २४-२६। उसी प्रकार कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, विश्वामित्र एवं जमदग्नि, ये सात सप्तर्षि कहे जाते हैं । २७। इसके पश्चात् मरहो तथा अग्नि के नाम बता रहा हूँ सुनो ! प्रवह, आवह, उद्धव, संवह, निवह, एवं परिवह, ये सात नाम वाले मरहो, अंतरिक्ष में विचरते तथा पृथक्-पृथक् मार्ग में होकर फलते रहते हैं । २८-२९। सूर्य से उत्पन्न अग्नि का नाम शुचि, विद्युत् से उत्पन्न अग्नि का नाम पावक, और अरणि द्वारा निर्मन्थन से उत्पन्न अग्नि का नाम पवमान है । इस प्रकार तीन अग्नि हैं । ३०। इन अग्नियों के पुत्र एवं पौत्रों की संख्या चालीस है और उसी प्रकार मरहों की भी संख्या सात का सात गुना (४९) उनचास जाननी चाहिए । ३१। अग्नि नामक संवत्सर को क्रतु कहते हैं और उन्हीं से पांच पुत्रों का जन्म भी हुआ है । इस प्रकार यह सनातन (नित्य) सर्ग (सृष्टि) कहा गया है । ३२। क्रमणः संवत्सर, परिवत्सर, इद्वत्सर, अनुवत्सर, पांचवा, वत्सर, इस प्रकार उनके पांच पुत्रों के नाम हैं । उनमें संवत्सर के अग्नि, परिवत्सर के सूर्य, इद्वत्सर के सोम (चन्द्र) अनुवत्सर के वायु, और वत्सर के रुद्र युग देवता हुए हैं । ३३-३५। उपरोक्त क्रतु पुत्र एवं पितर ये ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं । ब्रह्मा के पुत्र पांच ही वर्ष के समान सदैव रहते हैं । ३६। सौम्य, वर्हिषद, एवं अग्निष्वाताता, ये जिसके पिता जीवित हैं, उनके पितर हैं । ३७। उसी भाँति सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु ये नवग्रह

१. सुशातेश्च सुकीर्तिश्च । २. यातुधानो । ३. अन्तरिक्षवहा: । ४. पंचाब्दा ये युगात्मकाः ।

उपरागः शिली चोभौ नवैते नु ग्रहाः स्मृताः । त्रैलोक्यस्य त्विमें नित्यं भ्रावाभावनिवेदकाः ॥३९
 आदित्यश्चेष्व लोमश्च द्वावेतौ मण्डलग्रहाः । राहुश्छायाग्रहस्तेषां शेषास्तारा ग्रहाः स्मृताः ॥४०
 नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रहराजो दिवाकरः । पठथते चाप्तिरादित्य उदकचन्द्रमाः स्मृतः ॥४१
 आदित्यः पठथते ब्रह्मा विष्णुस्तेषां त चन्द्रमाः । महेश्वरस्तु विज्ञेयरजृतीयस्तारकग्रहः ॥४२
 कठयपस्य सुतः सूर्यः सोमो धर्मवृत्तः स्मृतः । दैवासुरगुह द्वौ तु नामतस्तौ^१ महाग्रहाः ॥४३
 अजायतिसुतावेतावृभौ शुक्रबृहस्पती । बृधः सोमात्मजः श्रीमाङ्गछनी रविसूतः स्मृतः ॥४४
 सिंहिकायाः सुतो राहुः केतुस्तु ब्रह्मणः सुतः । सर्वेषां च ग्रहाणां हि अथस्ताच्चरते रविः ॥४५
 ततो द्वै र स्मृतं तावद्विधोर्नक्षत्रम् उलम् । नक्षत्रेष्यः कुञ्जबृधौ श्वेताङ्गस्तदनन्तरम् ॥४६
 तस्यान्माहेश्वरत्रोदर्धवै धिषणस्तदनन्तरम् । कृष्णश्वोर्धवै ततस्तस्मादथ चित्रशिखण्डजः ॥४७
 एषामेव क्रमः प्रोक्ताइश्वरासत्तं त्रिदिवं ध्रुवे । आदित्यतिलगो राहुः कदाचित्सोमनार्गिः ॥४८
 सूर्यमण्डलसंस्थस्तु^२ शिली सर्वति सर्वदा । नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भार्गवस्थ^३ तु ॥४९
 द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तरः शनिनः स्मृतः । त्रिगुणं^४ मण्डलं ज्येयं नक्षत्रं विस्तराद्विधोः ॥५०
 नक्षत्रमण्डलात्तत्र पादहीनो बृहस्पतिः । बृहस्पतिः पादहीनः शुक्रोऽग्नारक एव हि ॥५१

बताये गये हैं जो तीनों लौकों की स्थिति एवं नाश होने की सूचना नित्य दिया करते हैं । ३८-३९। सूर्य एवं चन्द्रमा ये दोनों मण्डल ग्रह हैं राहु छाया ग्रह और शेष तारा ग्रह बताये गये हैं । ४०। नक्षत्रों के अधीश्वर चन्द्रमा तथा ग्रहों के राजा सूर्य कहे जाते हैं, इनमें सूर्य अग्नि रूप एवं चन्द्रमा उदक (जल) रूप हैं । ४१। इसी प्रकार आदित्य ब्रह्मा के रूप, चन्द्रमा विष्णु रूप और तीसरा तारक भौम ग्रह महेश्वर का रूप कहा गया है । ४२। सूर्य कश्यप के पुत्र तथा चन्द्रमा धर्म के पुत्र हैं देवताओं तथा अगुरों के गुरु, बृहस्पति एवं शुक्र ये दोनों महा ग्रह कहे जाते हैं । ४३। तथा दोनों प्रजापति के पुत्र हैं । धीमान् बुध चन्द्रमा के पुत्र एवं शनि रवि के पुत्र हैं । ४४। राहु सिंहिका का पुत्र तथा केतु ब्रह्मा का पुत्र है एवं समस्त ग्रहों के नीचे स्तर में सूर्यविचरते हैं । ४५। उनसे दूर (ऊपर) चन्द्रमा, उनसे ऊपर नक्षत्र मण्डल, एवं उनसे ऊपर बुध, उनके पश्चात् शुक्र, उसके अनन्तर भौम, भौम के अनन्तर बृहस्पति उनके अनन्तर शनि, और शनि के ऊपर लोग अवस्थित हैं । ४६-४७। इस भाँति इन लोगों के स्थित होने के विषय में यही क्रम बताया गया है । इसी क्रम से स्वर्ग में स्थित होकर ये सभी ध्रुव में निबद्ध हैं । यद्यपि सूर्य के घर में राहु सदैव रहता है, किन्तु कभी-कभी वह चन्द्र भार्ग का भी अनुयायी हो जाया करता है । ४८। चन्द्र मण्डल में ही अवस्थित होकर केतु सदैव (मन्द) गमन करता रहता है, तब हजार योजन सूर्य के मण्डल का व्यास कहा गया है । ४९। एवं उससे दूना^५ विस्तार शनि एवं चन्द्रमण्डल के व्यास का है और चन्द्रमण्डल के दूने विस्तार में नक्षत्र मण्डल का व्यास है । ५०। इस प्रकार नक्षत्र मण्डल की विस्तृत संख्या का चौथाई भाग निकाल देने से वह बृहस्पति का व्यास हो जाता है, और बृहस्पति के व्यास की विस्तृत संख्या का चौथाई भाग निकाल

१. सोममण्डल । २. ब्राह्मणस्य तु । ३. द्विगुणम् ।

४. त्रिगुणा भी कहा गया है

विस्तारो मण्डलानां तु पादहीनस्तयोर्बुधः । बुधतुल्यानि शक्ताणि सर्दशक्ताणि यानि तु ॥५२
 योजनान्यर्थमात्राणि तेभ्यो हस्तं न विचरते । राहुः सूर्यप्रमाणश्च कदाचित्सोमसश्रिभः ॥५३
 नक्षत्रग्रहमानस्तु^१ केनुस्त्वनियतः स्मृतः । अविज्ञातगतिश्चैव चञ्चलत्वश्चरात्रिप ॥५४
 तथालक्षितरूपस्तु बहुरूपधरो हि सः । भूलोकः पृथिवी प्रोत्ता अन्तरिक्षं भुवः स्मृतम् ॥५५
 स्वर्लोकस्त्रिदिवं शैद्य शेषादूर्ध्वं यथालक्ष्मद् । भूपतिस्तु सदा त्वप्रिस्तेनासौ भूपतिः स्मृतः ॥५६
 दशुर्नभस्पतिस्तेन तथा सूर्यो दिवस्पतिः । गन्धर्वास्त्रिसत्त्वैव गुह्यकाः सिद्धराक्षसाः ॥५७
 भूलोकवासिनः एवं अन्तरिक्षचराञ्छृणु । मरुतः सप्तमस्कंधे रुद्रास्तत्रैव चाखिनौ ॥५८
 आदित्या वसवः सर्दे तथैव च गवां गणाः । चतुर्थे तु महत्तोंके वसन्ते कल्पनासिनः ॥५९
 प्रजानां पांतभिः सर्वैः सहिताः कुरुनन्दन । जनलोके पञ्चमे च वसन्ते भूमिहाः सदा ॥६०
 क्रतुः सनत्कुमाराद्या वैराजश्च तथाश्रयाः । सत्यस्तु सप्तमे लोके ह्यपुनर्मग्निमिनाम् ॥६१
 द्रृश्यलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षणः । इतिहासविदो यत्र क्रीडन्ते कुरुनन्दन ॥६२
 शृण्दन्ति च पुराणनि ये सदा भीमनन्दन । महीतलात्महत्वाणां शतादूर्ध्वं दिवाकरः ॥६३

देने से वह शुक्र एवं मगल का व्यास बन जाता है ॥५१। और इनके व्यास की विस्तृत संख्या का चौथाई भाग निकाल देने से वह बुध का व्यास हो जायगा । बुध के समान ही सभी नक्षत्रों का व्यास है ॥५२। जिनका प्रमाण आध्येयोजन का कहा गया है इन सब से छोटा और कोई गह व्यास नहीं है । राहु का प्रमाण सूर्यमण्डल के प्रमाण के समान है और कभी वह चन्द्रमण्डल के समान भी हो जाता है ॥५३। हे नराधिप ! केनु का प्रमाण नियत नहीं बताया गया है, और चंचल होने के नाते उसकी जाति भी अविदित ही है ॥५४। इस भाँति यद्यपि वह हमेशा अलक्षित (अदृश्य) रहता है पर कभी कभी अनेक रूप भी धारण कर लेता है । पृथ्वी को भूलोक, अन्तरिक्ष को भुवर्लोक, और स्वर्लोक को त्रिदिव (स्वर्ग) कहा गया है, एवं शेष लोक ऊर्ध्वभाग मे ही क्रमशः अवस्थित हैं । भूलोक के स्वामी होने के नाते अग्नि को भूपति कहा गया है ॥५५-५६। इसी प्रकार वायु न भस्यति और सूर्य दिवस्पति हैं । गन्धर्व, अप्सराएँ, गुह्यक, सिद्ध एवं राक्षस ये सब भू लोक के निवासी हैं और अन्तरिक्ष के निवासियों को बता रहा हूँ । सुनो ! मरुत् (वायु) सातवीं कक्षा (स्वर्ग) में रहते हैं तथा उसी स्थान पर रुद्र एवं अश्विनी कुमार, आदित्य, वसु एवं समस्त देवगण रहते हैं । चौथा महलोक है, उसमें कल्पवासी लोग निवास करते हैं ॥५७-५९। हे कुरुनन्दन ! पाँचवें जनलोक में समस्त प्रजापतियों के समेत भूमिदान करने वाले व्यक्ति सदैव अवस्थित रहते हैं ॥६०। क्रतु, सनत्कुमार आदि, वैरज ये सभी सातवें सत्य लोक में रहते हैं जहाँ पहुँच कर कोई भी पुर्वजन्म नहीं प्राप्त करता है ॥६१। इस प्रकार बहु लोक का अप्रतिघात लक्षण बताया गया है जो उपरोक्त कथन से प्रमाणित होता है । इतिहास के विशेषज्ञ (महाभारत) लोग वहाँ सदैव क्रीड़ा करते रहते हैं ॥६२। और हे भीमनन्दन ! पुराण की कथाओं का नित्य श्रवण करते वाला भी उसी लोक का निवासी होता है । पृथ्वी तल से सौ सहस्र (एकलाख) योजन की दूरी पर सूर्य स्थित है ॥६३। भूमि से

१. तस्माद्ग्रहणमात्रह तु ।

शतयोजनकोट्यस्तु^२ भूमेष्ठर्धं ध्रुदः स्थितः । ततो विशतिलक्षस्तु दैलोक्योत्सेष्ट उच्चते ॥६४
द्विगुणस्तु सहनैस्तु योजनानां शतोषु च । लोकांतरभयो चैव ध्रुवादृर्धं विशीयते ॥६५
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपत्नगाः । भूता विद्याधराश्वेव अष्टौ ते देवयोनयः ॥६६
यस्मिन्व्योन्नित्वमेलोकाः सप्त वै सम्प्रतिष्ठिताः । मरुतः पितरो हैते तस्मिन्नेवाप्नयो ग्रहाः ॥६७
यारत्यन्येताः समाख्याता मयाष्टौ देवयोनयः । सूर्तश्चार्घूर्तवश्चैव सर्वस्ता व्यरेन्निसंस्थिताः ॥६८
एवंविधिमिदं व्योम सर्वव्योममयं स्मृतम् । सर्वदेवमयं चैव सर्वग्रहमयं तथा ॥६९
तस्माद्यो हृच्छयेद्व्योम तेन सर्वेऽर्चिताः सुरा : । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन शुभार्थी व्योम चर्चयेत् ॥७०
यस्त्वर्चते सदा व्योम भक्त्या अद्वासमन्वितः । वृषद्वज्रःदो राजन्स गच्छेनात्र संशयः ॥७१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे द्वाह्ये पर्वज्ञ सप्तमीकल्पे व्योम माहात्म्ये भुवनकोशवर्णनं
नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२५।

अथ षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्योममाहात्म्यवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

आकाशं खं दिशोव्योम अन्तरिक्षं नभोऽम्बरम् । पुष्करं गगनं मेरुर्विपुलं च बिलं तथा ॥१

सत करोड़ योजन की दूरी पर ध्रुव अवस्थित है । इस प्रकार वीस लाख योजन तीनों लोकों की ऊँचाई है । ६४। ध्रुव से सौ सहस्र (एकलाख) योजन की दुगुनी दूरी पर ऊपर लोकांतर (दूसरे लोक) स्थित है । ६५। देव, दानव, गन्धर्व यक्ष, राक्षस, पत्नग, भूत, एवं विनाधर ये आठ प्रकार की देवयोनियाँ हैं । ६६। जिस व्योम में ये भातों लोक, मरुत् एवं पितर लोग शवस्थित हैं उसी व्योम में अग्नि, गृह, आठों देव योनियाँ भी जिन्हें मैंने पहले बताया है एवं मूरत्, अमूरत् सभी कुछ अच्छे प्रकार से स्थित हैं । ६७-६८ इस प्रकार इस व्योम को सर्वव्योममय, सर्व देवमय, तथा सर्व ग्रहमय जानना चाहिए । ६९। इसलिए जो व्योम की पूजा करता है, यह निश्चय है कि उसने सभी देवताओं की पूजा की । अतः शुभेच्छुक प्राणी को प्रयत्न पूर्वक व्योम की पूजा करनी चाहिए । ७०। हे राजन् ! भक्ति एवं श्रद्धा से सम्पन्न होकर जो व्योम की पूजा सदैव करता है, उसे वृषद्वज्र के सदन की प्राप्ति अवश्य होती है । ७१।

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के व्योम माहात्म्य में भुवन कोश वर्णन नामक
एक सौ पञ्चीसबाँ अध्याय समाप्त । १२५।

अध्याय १२६

व्योम माहात्म्य वर्णन

सुमन्तु ने कहा—हे महीपते ! आकाश, ख, दिशा, व्योम, अन्तरिक्ष, नभ, अम्बर, पुष्कर, गगन, मेर,

आपोछिद्रं तथा शून्यं तमो वै रोदसी तथा । नामान्येतानि ते अोऽन्नः कोर्तितानि महीपते ॥२
 लवणक्षीरदध्यम्लघृतमधिक्षवस्तथा । स्वादूकश्च सप्तैते समुद्रात् परिकीर्तिताः ॥३
 हिमदान्हेमकूटश्च निषधो नील एव च । श्वेतश्च शृङ्गावांश्चैव षडेते वर्षपर्वताः ॥४
 मध्यसंस्थस्तर्थैतेऽन महाराजतपर्वतः । माहेन्द्री चाप्यथानेयो याम्या च नैऋती तथा ॥५
 वारणी चाथ वायव्या सौम्येशानी तथैव च । एताः पुर्यंतु देवानां तथोपारि रमाश्रिताः ॥६
 पृथिव्यां तु स्थितो वीर लोकालोकस्तु पर्दतः । ततश्चंडकपालं तु तस्मान्तपरतस्तु यः ॥७
 ततोऽग्निर्वायुराकाशं ततो भूतादिरुच्यते । ततो महानहइकारः प्रकृतिः पुरुषस्ततः ॥८
 पुरुषादीश्वरो श्रेय ईश्वरेणावृतं जगत् । ईश्वरो भगवन्भानुस्तेनदं प्रारंत जगत् ॥९
 सहस्रांशुर्महतेजाश्रुद्विर्महाबलः । ऊर्ध्वमप्यथ लोकास्तु प्राइम्या ये प्रकीर्तिताः ॥१०
 भूयस्तान्तस्म्प्रवक्ष्यामि अण्डावरणकारकान् । भूर्लोकस्तुभुवर्लोकस्तृतीयः परिकीर्तितः ॥११
 महजनस्तपः सत्यः सप्तलोकाः प्रकीर्तिताः । तत॑ स्तवंडकपालं तु तस्माच्च परस्तपः ॥१२
 ततोऽग्निर्वायुराकाशं ततो भूतादिरुच्यते । ततो महान्प्रधानश्च प्रकृतिपुरुषस्ततः ॥१३
 पुरुषादीश्वरो ज्ञेय ईश्वरेणावृतं जगत् । भूमेरधस्तान्तरैव लोकानामिमताजद्वृणु ॥१४
 तलं सुतलपाताले तलातलं तथतलम् । वितलं च कुरुश्रेष्ठ सप्तमं च रसातलम् ॥१५

विपुल, द्विल, आप, छिद्र, शून्य, तम, और रोदसी इतने नाम व्योम के बताये गये हैं । १-२। लवण, क्षीर, खट्टे दधि, धी, मधु, ईव के रस और मीठे जल ये सात समुद्र हैं । हिमवान् हेमकूट, निषध, नील, श्वेत, एवं भृंगवान ये छह वर्ष पर्वत हैं । ३-४। इन्हीं के मध्यभाग में अवस्थित महाराजा सुमेरु नामक पर्वत है उसके ऊपरी भाग में (दिव्याल) देवताओं की माहेन्द्री, अग्नेयी, याम्या, वैकृति, वारणी, वायव्या, सौम्या, तथा ऐशानी नाम की पुरियाँ स्थित हैं । ५-६। हे नीर ! पृथिवी में लोकालोक नाम पर्वत अवस्थित है उसके अनन्तर चण्ड कपाल में अग्नि, अग्नि के अनन्तर वायु, वायु के अनन्तर आकाश और आकाश के अनन्तर भूतादि है ऐसा कहा जाता है । उसके पश्चात् महत, अहंकार, प्रकृति, पुरुष एवं ईश्वर क्रमणः उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण अवस्थित हैं । इस प्रकार यह समस्त जगत् ईश्वर के आवृत (पिरा हुआ) है । भगवान् भास्कर ही ईश्वर शब्द से स्मरण कियेजाते हैं क्योंकि उन्हीं द्वारा इस जगत् की पूर्ति हुई है । ७-९। और उन महातेजस्वी एवं महाबली सूर्य की चार भुजाएँ हैं । इस भाँति ऊर्ध्व भाग में वे लोक अवस्थित हैं जिन्हें मैं पहले बता चुका हूँ । १०। मैं पुनः उन लोकों का वर्णन कर रहा हूँ जो ब्रह्माण्ड रूपी आवरण से आवृत (पिरे) हैं भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जन लोक, तप लोक, एवं सत्य लोक ये सात लोक (ऊर्ध्व भाग में) बताये गये हैं । उसके पश्चात् अण्ड कपाल अग्नि, वायु, आकाश, भूतादि, महान, प्रधान, प्रकृति, पुरुष, और ईश्वर का वर्णन किया गया है जिनमें पुरुष से ईश्वर की भाँति सभी की महत्ता उत्तरोत्तर अधिक है । इस भाँति ईश्वर से यह सारा जगत् धिरा हुआ है । इसके पश्चात् भूमि से नीचे अवस्थित अपने लोकों को सुनो ! ११-१४। तल, सुतल, पाताल, तलातल, अतल, वितल और

ततोऽन्निवायुराकाशं ततो भूतादिरच्यते । ततो महान्प्रधानश्च प्रकृतिः पुरुषस्ततः ॥१६
 पुरुषादोऽधरो ज्ञेय ईश्वरेणादृतं जगत् । एवं मेरोः प्रमाणं तु सर्वमेतत्प्रकीर्तितम् ॥१७
 चतुरस्त्रश्चतुः शृणुः स भेदः काङ्गनः शुभः । पृथिव्यां संस्थितो मध्ये सिद्धगन्धर्वसेवितः ॥१८
 चतुर्मिथः काङ्गनैः शृगैर्गिर्विद्विषिक्षेलिलसन् । देजनानां सहस्राणि चतुराशीतिरुच्छ्रुतः ॥१९
 प्रविष्टः जोड्साधस्तादप्यविश्वितिविलृतः । वित्तात्रस्त्रिगुणश्चाद्य परिणाहस्ततः स्मृतः ॥२०
 तस्य सौमनसं शाश्वतं शृगमेष्वं तु काङ्गनश्च । द्वितीयं चतुराशाम्बं ज्योतिष्वं नाम नामतः ॥२१
 ततुर्तीयं नामतश्चित्रं तर्दीवमयं शुभम् । चतुर्थं रजतं शुक्रं चन्द्रोजस्कलिति स्मृतम् ॥२२
 अत्तु सौमनसं नाम शृंतं भाइयेवनुच्यते । लदेव चोदयो नामा यत्रोद्धन्दृश्यते रशः ॥२३
 उत्तरेण परिकल्प्य जम्बूद्वीपं दिव्यकरः । दृश्यो भवति भूतानां शिखरं च समास्थितः ॥२४
 काङ्गनस्य च शैलस्य तेजसाकंत्य चाहते । उभे सन्ध्ये प्रकाशेते आत्मे पूर्वप्रियमे ॥२५
 शृंगे सौमनसे सूर्य उत्तिष्ठत्युत्तरायणे । ज्योतिरेदक्षिणे चापि विषुवे ग्राघ्यतस्तयोः ॥२६
 ईशन्द्रोद्विश्च ऐशान्द्यं तत्त्वादिः पूर्वदक्षिणे । नैऋतेऽपि ततो ज्ञेयो वायव्ये एहतस्तथा ॥२७
 भृघ्ये तु कंजजः साक्षाद्व्रह्मः ज्योतीषिं चैव हि । आदित्यस्तेन रूपेण तस्मिन्व्योऽन्नं प्रतिष्ठितः ॥२८

सातवाँ रसातल लोक है । १५। वहाँ भी पूर्व की भाँति अग्नि, वायु, आकाश, भूतादि, महान्, प्रधान, प्रकृति, पुरुष तथा ईश्वर की उत्तरोत्तर महत्ता अधिक बतायी गयी है और वह भी जगत् ईश्वर से आवृत है । इस प्रकार मेरे का समस्त प्रमाण बता दिया गया । १६-१७। चौकोर एवं चार शिखरों से युक्त होने के नाते मेरु पर्वत शुभ एवं काङ्गन मय होकर अवस्थित दिखायी देता है पृथिवी के मध्य भाग में उसकी स्थिति बतायी गई है, जो सर्वदा सिद्ध एवं गन्धर्वों द्वारा सेवित होता रहता है । १८। वह पर्वत जिसके सुवर्ण मय चारों शिखर आकाश में उभरे हुए रेखा के समान दिखाई पड़ते हैं चौरासी सहस्र योजन ऊँचा है । १९। और सोलह सहस्र योजन पृथिवी के भीतर प्रविष्ट हैं, एवं अटुआइस सहस्र योजन विस्तृत (चौड़ा) है इस प्रकार उसकी लम्बाई, चौड़ाई के तिगुने योजन की बतायी गयी है । २०। उसका पहला शिखर, सौमनस नामक सुवर्ण निर्मित है दूसरा ज्योतिष्क नामक शिखर पद्मराग मणि से विनिर्मित है । २१। तीसरा चित्रनामक शिखर शुभ एवं सर्वदेव मय है और चौथा चन्द्रोजस्क नामक शिखर चाँदी का बताया गया है । २२। सौमनस नामक शिखर जो सुवर्ण निर्मित बताया गया है, उसी पर उदय होते हुए सूर्य दिखाई पड़ते हैं । २३। इसीलिए उसका 'उदयाचल तथा गांगेय' नाम सर्व विदित है । उसके उत्तर की ओर से जम्बूद्वीप की परिक्रमा करके सूर्य जब उस शिखर पर स्थित होते हैं उसी समय प्राणी वर्ग उन्हें देखता है । २४। तथा (मेरु के) काङ्गनमय शिर पर सूर्य तेज के भासित होने पर पूर्व एवं पश्चिम दिशाओं की दोनों संध्याएँ सम्पूर्ण तांबे की भाँति (लालरङ्ग की) प्रकाशित होने लगती है । २५। उत्तरायण समय में सूर्य सौमनस नामक शिखर पर उदय होते हैं, दक्षिणायन काल में ज्योतिष्क नामक शिखर पर तथा विषुव समय में उन दोनों के मध्य भाग से उदय होते हैं । २६। उस पर्वत के ईशान कोण में ईश इन्द्र, आगेन्य में अग्नि, नैऋत्य कोण में पितर, वायव्य में मरुत् और मध्य भाग में स्वयं ब्रह्मा, ग्रह एवं नक्षत्र तारागण अवस्थित हैं । उसी को व्योम कहा गया है क्योंकि उसमें सूर्य अपने रूप से अवस्थित

इवं देवमयं व्योम तथा सोकमयं स्मृतम् । पूर्वकोणस्थिते भृंगे स्थितः शुक्रो महीपते ॥२९
 हेलिजश्रापरे शेयो धननाथस्तथापरे । सोमश्रापि चतुर्ये तु स्थितः भृंगे जनाधिप ॥३०
 मध्ये केशास्थितो राजन्दृष्टकारश्च पिनाकिनः । भृंगे पूर्वोत्तरे राजस्थितो देवो विषुक्षये^१ ॥३१
 ततः स्थितो महादेवो गोपतिसर्वकृजितः । पूर्वप्रियीस्थिते भृंगे स्थितो वै शार्णिलः सुतः ॥३२
 ततः स्थितो महातेजाः कीनाशो हेलिनन्दनः । स्थितो वै नैऋते भृंगे विरूपाक्षो महाबलः ॥३३
 तस्मादनन्तरो देवः स्थितो वै यादसां पतिः । ततः स्थितो महातेजा वीर मित्रो महाबलः ॥३४
 वायव्यं भृंगामाश्रित्य सर्वदेवनमस्कृतम् । ततः स्थितो दशादलो नरभारद्वा भारत ॥३५
 ब्रह्मा मध्ये स्थितो देवो द्यूनन्तश्राधा एव हि । उपेन्द्रशशकरौ देवौ ब्रह्मणोऽन्ते समास्थितौ ॥३६
 एव भेषस्तथा व्योम एव धर्मश्च पठथते । सर्वदेवमयश्राव्यं भेषव्योम इति स्मृतः ॥३७
 तथा वेदमयश्रापि पठथते नात्र संशयः । भृंगाणि वेदाश्रत्वारः पूर्वभृंगादयो विदुः ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मो पर्वणि सप्तमीकल्पे व्योममाहात्म्यवर्णनं
 नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२६।

है । २७-२८। यह व्योम इस प्रकार देवमय एवं लोकमय बताया गया है । हे महीपते ! पूरब कोण वाले शिखर पर स्थित शुक्र मुशीभित हैं । २९। उसी प्रकार दूसरे पर हेलिज तीसरे पर धननाथ (कुबेर) और चौथे शिखर पर सोम (चन्द्र) स्थित हैं । ३०। हे राजन् ! उसके मध्य भाग में ब्रह्मा, विष्णु एवं पिनाकी की हंकार (शिव) स्थित हैं । उस पर्वत के पूर्वोत्तर वाले शिखर पर देव विषुक्षय, महादेव, एवं लोक पूजनीय गोपति स्थित हैं । और पूर्व-दक्षिण (आग्नेय) वाले शिखर पर शार्णिल सुत की अवस्थिति है । ३१-३२। उसके अनन्तर महातेजा, सूर्य पुत्र कीनाश (यम) रहते हैं । नैऋत्य वाले शिखर पर महाबली विरूपाक्ष एवं उनके अनन्तर वरुण देव और उनके पश्चात् महातेजस्वी एवं महाबली मित्र अवस्थित हैं । ३३-३४। हे भारत ! समस्त देवों के वन्दनीय वायव्य वाले शिखर पर मनुष्य को वाहन बनाकर दशबल अवस्थित हैं । ३५। मध्यभाग में ब्रह्मा, अधो (नीचे) भाग में अनन्त तथा विष्णु, शंकर ब्रह्मा के अनन्तर अवस्थित हैं । ३६

इस भाँति यह भेद, व्योम, एवं धर्म के नाम से कहा जाता है तथा सर्व देवमय होने के नाते भी इसे व्योम के नाम से स्मरण किया जाता है । ३७। और यह निश्चित वेदमय भी है क्योंकि इसके चारों शिखर चारों वेद रूप बताये गये हैं । ३८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में व्योम माहात्म्य वर्णन नामक
 एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त । १२६।

१. विषुक्षयः ।

१. तुला और मेषसंक्रान्ति के समय

अथ सप्तर्विशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रूर्यप्रसादवर्णनम्

शतानीक उवाच

कथमाराधितः सूर्यः साम्बेनामिततेजसा । विमुक्तस्तु कथं रोगैर्बूहि मां द्विजसत्तम ॥१

सुमन्तुरुवाच

साधु पृष्ठोऽस्मि राजेन्द्र भृणु साम्बकथां पुरा । विस्ताराद्वच्चित्ते सर्वां कथां पापविमोचनीम् ॥२
 पुरा संश्रुत्य माहात्म्यं भास्करस्य स नारदात् । विनयादुपसङ्गम्य वचः पितरमब्लवीत् ॥३
 कश्मलेनाभिमूतोऽस्मि मलेन व्याधिनाच्युत । वैद्यरोषधिभिश्चापि न शान्तिर्मम विद्यते ॥४
 वनं गच्छामि भगवद्वन्नुजां दातुमर्हसि । शिवेन पुण्डरीकाक्ष ध्याय मां पुरुषोत्तम ॥५
 अनुज्ञातः स कृष्णेन सिन्धोरुत्तरकूलतः । गत्वा सन्त्तारयामास चन्द्रभागां महानदीम् ॥६
 ततो मित्रवनं गत्वा तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् । उपवासपरः साम्बं शुष्को धमनिसन्ततः ॥७
 आराधनार्थं सूर्यस्य गुह्यं स्तोत्रं^१ जजाप ह । वैदैश्वर्तुभिः समितं पुराणाश्रयबृहितम् ॥८
 यदेतन्मण्डलं शुक्लं दिव्यं हृजरमव्ययम् । युक्तं मनोजवैरधैर्हरीतर्बहुवादिभिः^२ ॥९

अध्याय १२७

सूर्यप्रसाद का वर्णन

शतानीक बोले—हे द्विजसत्तम ! उस अमित तेजवाले साम्ब ने सूर्य की कैसे आराधना की और वह रोग से मुक्त कैसे हुआ, मुझे बताने की कृपा कीजिए ।

सुमन्तु बोले—हे राजेन्द्र ! आप ने यह अति उत्तम प्रश्न किया है । अतः इस साम्ब की कथा को बता रहा हूँ सुनो ! मैं इस पापमोचनी को विस्तार प्रवर्क तुम्हें बताऊँगा । २। पहले उसने नारद के मुख से भास्कर के माहात्म्य को श्रवण करके सविनय अपने पिता के समीप जाकर उनसे कहा—हे अच्युत ! इस मल वाले (कुछ) रोग से पीड़ित होने के कारण मैं विवश हो रहा हूँ क्योंकि वैद्यों द्वारा दी गई औषधियों से भी मुझे शांति प्राप्त नहीं है । ३-४। हे भगवन् ! अतः मुझे आज्ञा दें मैं अब वन जाने की तैयारी कर रहा हूँ । हे पुण्डरीकाक्ष, हे पुरुषोत्तम ! भेरे कल्याण के लिए आप इस मेरी प्रार्थना पर विशेष ध्यान दें । ५। पश्चात् कृष्ण के द्वारा आज्ञा देने पर उसके सिन्धनदी के उत्तरी तट पर जाकर उस चंद्रभागा नामक महा नदी को पार किया । ६। पश्चात् वहाँ से तीनों लोकों में स्वाति प्राप्त उस मित्रवन नामक तीर्थ स्थान में जाकर उस साम्ब ने जिसकी धमनी आदि नाड़ियाँ उपवास रहने के कारण सूख गई थीं सूर्य की आराधना गुह्य स्तोत्र द्वारा करना आरम्भ किया, जो चारों वेदों से सम्बद्ध एवं पुराणों द्वारा संवर्द्धित है । ७-८। शुक्ल, दिव्य अजर, एवं अव्यय रूप यह मण्डल जो दिखाई दे रहा है, जिसमें मन की भाँति वेग वाले अश्व जुते हुए हैं

आदिरेष^१ हि भूतानामादित्य इति संज्ञितः । त्रैलोक्यचक्षुरेवात्र परमात्मा प्रजापतिः ॥१०
 एष वै मण्डले हृस्मिन्त्युरुणो दीप्यते महान् । एष विष्णुरादित्यात्मा ब्रह्मा चैष पितामहः ॥११
 रुद्रा महेन्द्रो वरुण आकाशं पृथिवी जलम् । वायुः शशाङ्कः पर्जन्यो धनाध्यक्षो विभावसुः ॥१२
 यष एष मण्डले हृस्मिन्त् पुरुषो दीप्यते महान् । एकः साक्षान्महादेवो दृत्रमण्डनिभः सदा ॥१३
 कालो ह्रेष महाबाहुनिबोधोत्पत्तिलक्षणः । य एष मण्डले हृषिकास्तेजोभिः पूरयन्महीम् ॥१४
 भ्रामते हृष्यवच्छिन्नो वातेगोऽमृतलक्षणः । नातः परतरं किञ्चिच्चतेजसा विद्यते क्वचित् ॥१५
 पुष्णाति सर्वभूतानि एष एव सुधाश्रुतैः । अन्तस्थास्त्वेच्छजातीयांस्तिर्यःयोनिंगतानपि ॥१६
 कारण्यात्सर्वभूतानि पासि त्वं च विभावसो । चित्रकूष्ठं ग्रथबद्धिरात्यंगृंश्चापि तथा विभो ॥१७
 प्रपञ्चवत्सलो देव कुरुते नीरुजो भवान् । चक्रमण्डलमग्रांश्र निर्धनात्यायुषस्तथा ॥१८
 प्रत्यक्षदर्शी त्वं देव समुद्धरासि लीलया । का मे शक्तिः स्तवैः स्तोत्रमातर्तङ्गं रोगदीडितः ॥१९
 स्तूप्यसे त्वं सदा देवैर्न्द्रहृष्णशिवादिभिः । महेन्द्रिद्वग्रन्थवैरप्सरोगिः सगुह्यकैः ॥२०
 स्तुतिभिः किं पवित्रैर्वा तव देव समीरितैः । यस्य ते ऋग्यजुः साम्रां त्रितयं मण्डलस्थितम् ॥२१

और हारीत (पक्षी) एवं ब्रह्मवादी ब्राह्मणों से सुसेवित हो रहा है, वही प्राणियों में सर्वप्रथम आनि है अतः आदित्य नाम से स्मरण किया जाता है । और यही तीनों लोकों का नेत्र परमात्मा तथा प्रजापति है । १-१०। इस प्रकार इस मंडल में देवीप्यापान यह महान् पुरुष जो दिखाई देता है, वही अचितनीय विष्णु, पितामह ब्रह्मा, रुद्र, महेन्द्र, वरुण, आकाश, पृथिवी, जल, वायु, चन्द्रमा, पर्जन्य (मेघ), कुबेर, एवं विभावसु है । १-११। इस मण्डल में जो एक प्रदीप्त तथा महान् पुरुष दिखाई दे रहा है, वह साक्षात् महादेव ही है और वह सदैव अज्ञे की भाँति ही धिरा रहता है । १३। इस प्रकार इसी महाबाहु को जगत् के उत्पत्ति लक्षण याला काल जानना चाहिए एवं इस मण्डल में अवस्थित होकर यह जो समस्त पृथिवी को अपने तेज से आच्छादित किये हैं, तथा जो अमृतमय है और वायु द्वारा वे रोक टोक भ्रमण कर रहा है, उसके तेज से पृथक् कहीं कुछ भी नहीं, यही अपनी सुधामय किरणों द्वारा समस्त प्राणियों का पोषण करता है तथा (ब्रह्माण्ड के मध्य) में अवस्थित अन्तस्थ म्लेच्छों एवं तिर्यक् (पक्षी) योनियों की भी । १४-१६। हे विभावशो ! जिस भाँति दयालुता के कारण आप (ॐ नीच) सभी प्राणियों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार श्वेत कुष्टी, अंधे, बहिरे, तथा लंगड़े की भी (आप) रक्षा करते हैं । १७। हे देव ! आप शरणाणगतवत्सल हैं, इसीलिए इन्हें (उपरोक्त को) सभी प्रकार के जीवों को आप नीरोग करते हैं । हे देव ! चक्रमण्डल में निमग्न, निर्धन एवं अल्पायु वालों का उद्धार प्रत्यक्षदर्शी होने के नाते आप सहज ही में कर देते हैं । इसलिए स्तोत्र द्वारा स्तुति करने की मुझमें शक्ति कहाँ है क्योंकि मैं तो दुखी एवं रोग पीड़ित हूँ । १८-१९। जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिवादि देव तो आपकी सदैव स्तुति करते हैं उसी प्रकार महेन्द्र, गंधर्व, अप्सराएँ एवं गुहाकों द्वारा आप की सदैव स्तुति होती रहती है । हे देव ! पवित्रता पूर्ण स्तुतियों द्वारा भी क्या आपकी स्तुति की जा सकती है ? जब कि क्रक्ष, यजु, एवं साम, ये तीनों आप के

ध्यानिनां त्वं परं ध्यानं मोक्षद्वारं च मोक्षिणाम् । अनन्ततेजसाक्षोभ्यो हृष्टचत्याव्यक्तनिष्कलः ॥२२
यदयं व्याहृतः किञ्चत्तोत्तेऽस्मिन्जग्नः पातः । आति भक्तिं च विज्ञाय तत्सर्वं ज्ञातुर्महसि ॥२३
तमुवाच ततः सूर्यः प्रीत्या जान्मवतीमुत्तम् । प्रीतोऽस्मि तपसा बत्से ब्रूहि तन्मां यदिच्छति ॥२४

साम्ब उवाच

यदि प्रसन्नो भगवानेष एव वरो मम । भक्तिर्भवतु नेत्यर्थं त्वयि देव सनातनः ॥२५

श्रीसूर्य उवाच

शूयस्तुष्टोऽस्मि भद्रं ते वरं वरय सुव्रतः । स दितीयं वरं वदे तदैव वरदं विभुम् ॥२६
मलः शरीरसंस्थो मे त्वत्प्रसादात्प्रणश्यतु । येन मे शुद्धमहितं अपुर्भवतु गोणते ॥२७

सुमन्तुरवाच

त तथास्त्वति तेनोक्तो भास्करेण महत्मना । तां मुनोच रुजं साम्बो देहात्वचमिवोरणः ॥२८
ततो रूपेण दिव्येन रूपतानभवत्युनः । प्रणम्य शिरसा देवं पुरतोऽवस्थितोऽश्वत् ॥२९

श्रीसूर्य उवाच

शूयश्च शृणु मे साम्बं तुष्टोऽहं यद्ब्रवीमि ते । अद्य प्रभूति त्वश्नाम्ना मम स्थानानि सुन्नत ॥
क्षितौ ये स्थापयिष्यन्ति तेषां लोकाः सनातनाः ॥ १३०

मंडल में ही अवस्थित हैं । २०-२१ हे देव ! तुम ध्यान करने वालों के लिए उत्तम ध्यान, मोक्षार्थियों के लिए मोक्ष द्वार, अनन्ततेज होने के नाते अक्षोभ्य, अचित्य, अव्यक्त, एवं निष्कल हो । २२ आप जगत् के पति हैं इस प्रकार इस स्तोत्र में जो कुछ थोड़ा वहृत कहा गया है, मेरी इस दीनावस्था एवं भक्ति को देखते हुए आप उन सभी बातों को समझ सकते हैं । २३। तदनन्तर सूर्य ने प्रसन्नतापूर्वक जाम्बवती मुत्त (साम्ब) से कहा हे वत्स ! मैं तुम्हारी आराधना से प्रसन्न हूँ, अपनी अभिलाषा मुझसे कहो । २४

साम्ब ने कहा—हे देव, सनातन ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यही वरदान चाहिए कि मुझे प्रायः अधिकाधिक आप की भक्ति प्राप्त हो । २५

श्रीसूर्य बोले—हे सुव्रत ! तुम्हारा कल्याण हो ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ अतः और भी कोई वर मांगो ! अनन्तर उस विभु एवं वरद सूर्य से साम्ब ने उसी समय दूसरे वरदान की इच्छा प्रकट की । २६। हे गोपते ! मेरे शरीर में स्थित यह मल (रोग) आप के प्रसाद से नष्ट हो जाय ! जिससे मेरी शरीर सर्वाङ्ग शुद्धि पूर्वक निर्मल हो जाय । २७

सुमन्तु ने कहा—भगवान् भास्कर ने उसके लिए 'तथास्तु' ज्यों ही कहा उसी समय साम्बने देह में अवस्थित केनुल के परित्याग करने वाले सांप की भाँति अपने रोग का त्याग किया ॥२८। पश्चात् दिव्य रूप की प्राप्ति कर वह सूर्य देव को प्रणाम कर उनके सामने स्थित हुआ । २९

श्रीसूर्य बोले—हे साम्ब ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, इसदिन तुमसे जो कुछ कहूँ उसे सुनो ! हे सुव्रत ! आज से जो कोई मनुष्य तुम्हारे नाम से मेरे स्थान को पृथ्वी में बनायेंगे, एवं स्थापित

स्थापयस्त्वैव मार्मस्मश्न्दभागातटे शुभे । तब नाम्ना च साम्बेदं परां स्थार्ति गमिष्यति ॥३१
कीर्तिस्तवाक्षया लोके स्थार्ति यात्यति सुव्रत । सूयश्च ते प्रदात्यामि प्रत्यहं स्वप्रदर्शनम् ॥३२

सुमन्तुरुखाच

एवं दत्त्वा वरं तस्मै वृष्णिर्सिंहाय चापरम् । प्रत्यक्षदर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधाद्विः ॥३३
य इदं पठते स्तोत्रं त्रिकालं भक्तिमान्नरः । त्रिसप्तशतमावर्त्य होमं वा सप्तरात्रकम् ॥३४
राज्यकामो लभेद्वाज्यं धनकामो लभेद्वनम् । रोगातों मुच्यते रोगाद्यथा साम्बस्तथैव सः ॥३५
सूर्यलोकं वज्रेच्चापि भक्त्या पूज्य दिवाकरम् । रमते च तथा तस्मन्देवैश्च परिवारितः ॥३६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मणे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने सूर्यप्रसादवर्णनं
नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२७।

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः साम्बस्तववर्णनम्

सुमन्तुरुखाच

अस्तावीच्च ततः साम्बः कृशो धमनिसन्ततः । राजश्नामसहन्त्रेण सहस्रांशुं दिवाकरम् ॥१
खिद्यमानं ततो दृष्ट्वा सूर्यः कृष्णात्मजं तदा । स्वप्नेऽस्मै दर्शनं दत्त्वा पुनर्वचनमबीत् ॥२

करेंगे, उनके लिए लोक अचल रहेंगे । ३०। अतः हे साम्ब चन्द्रभागा नदी के उस शुभ तट पर मुझे स्थापित करो । तुम्हारे नाम से उसे विशेष स्थाति प्राप्त होगी । ३१। हे सुव्रत ! लोक में तुम्हारी अक्षय कीर्ति विशेष स्थाति प्राप्त करेंगी और फिर भी प्रतिदिन मैं तुम्हें स्वप्न में दर्शन दिया करेंगा । ३२

सुमन्तु ने कहा—इस प्रकार उस यदुकुल सिंह के लिए वरदान तथा प्रत्यक्ष दर्शन देकर सूर्य उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये । ३३। इसलिए भक्तिपूर्वक जो पुरुष तीनों काल में इस स्तोत्र का पाठ अथवा एक सौ इक्कीस बार इसके पाठ पूर्वक हृष्णन सात रात तक करता रहता है, उसे राज्य की इच्छा हो तो राज्य, धन की इच्छा हो तो धन और यदि रोगी हो, तो साम्ब की भाँति ही रोग की मुक्ति प्राप्त होती है । ३४-३५। क्योंकि भक्तिपूर्वक सूर्य की पूजा करने से सूर्य लोक भी प्राप्त होता है जिसमें देवताओं के साथ परिवार की भाँति वह क्रीड़ा करता रहता है । ३६

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मण पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में सूर्य प्रसाद वर्णन नामक एक सौ सत्ताइसवाँ अध्याय समाप्त । १२७।

अध्याय १२८ साम्बस्तववर्णन

सुमन्तु ने कहा—हे राजन् ! उस साम्ब ने जो इतना दुर्बल हो गया था कि उसकी देह में केवल नाड़ियाँ (नसे) ही शेष रह गई थीं, उनके सहस्र नाम द्वारा सहस्रांशु सूर्य की आराधना करना आरम्भ किया था । १। तदुपरात सूर्य ने उस कृष्ण-पुत्र को विनश्चित देखकर स्वप्न में उसे दर्शन देकर यह कहा । २

श्रीसूर्य उवाच

साम्ब साम्ब महाबाहो शृणु जाम्बवतीसुत । अलं नामसहक्षेण पठ चेमं शुभं स्तवद् ॥३
 यानि गुह्यानि नामानि पवित्राणि शुभानि च । तानि ते कीर्तयिष्यामि प्रयत्नादवधारय ॥४
 वैकर्तनो विवस्त्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः । लोकप्रकाशकः श्रीमांलोकचक्षुग्रहेश्वरः ॥५
 लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिष्महा । तपनस्तापनश्रैव शुचिः सप्ताभ्यवाहनः ॥६
 गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनमस्कृतः । एकविशतिरित्येष स्तव इष्टस्सदा मम ॥७
 शरीरारोग्यदश्चैव धनवृद्धियशस्करः । स्तवराज इति स्यातस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥८
 य एतेन महाबाहो द्वे सन्ध्येऽस्तमनोदये । स्तौति मां प्रणतो भूत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥९
 मानसं वाचिकं वापि कायिकं यच्च दुष्कृतम् । एकजाप्येन तत्सर्वं प्रणश्यति ममाग्रतः ॥१०
 एष जप्यश्च होमश्च सन्ध्योपासनमेव च । बलिमन्त्रोऽर्घ्यमन्त्रोऽथ धूपमन्त्रस्तथैव च ॥११
 अन्नप्रदाने स्नाने च प्रणिपाते प्रदक्षिणे । पूजितोऽयं महामन्त्रः सर्वपापहरः शुभः ॥१२
 एवमुक्त्वा स भगवान्भास्करो जगतां पतिः । आमन्त्र्य कृष्णतनयं तत्रैवान्तहितोऽभवत् ॥१३
 साम्बोऽपि स्तवराजेन स्तुत्वा सप्ताभ्यवाहनम् । प्रीतात्मा नीरुजः श्रीमांस्तस्मादोगाद्विमुक्तवान् ॥१४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मणे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बस्तववर्णनं

नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२८।

श्रीसूर्य बोले—साम्ब, साम्ब ! महाबाहो, हे जाम्बवती सुत ! मेरी बात सुनो ! तुम सहस्र नाम का पाठ बन्द करके इस शुभ स्तोत्र का पाठ करो । ३। एवं मेरे गुप्त, पवित्र, एवं शुभ, जितने नाम हैं मैं उन्हें बता रहा हूँ, प्रयत्न पूर्वक उसे भी धारण करो । ४। वैकर्तन, विवस्वान, मार्तण्ड, भास्कर, रवि, लोकप्रकाशक, श्रीमान्, लोकचक्षु, ग्रहेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, कर्ता, हर्ता तमिष्महा, तपन, तापन, शुचि, सप्ताभ्यवाहन, गभस्तिहस्त, ब्रह्मा, एवं सर्वदेव नमस्कृत इन इक्कीस नामों वाली स्तुति मुझे सदैव प्रिय है । ५-७। यह शरीर के आरोग्य धन की वृद्धि एवं यश फैलाने वाला है क्योंकि 'स्तवराज' के नाम से इसकी तीनों लोकों में स्थाति है । ८। हे महाबाहो ! (सूर्य के उदय एवं अस्त होने के पूर्व) दोनों संध्याओं में इस स्तोत्र द्वारा जो विनम्र होकर मेरी स्तुति करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । ९। मानसिक, कायिक, एवं वाचिक जो कुछ दुष्कृत हों वे सब मेरे सामने इसके एक बार पाठ करने से नष्ट हो जाते हैं । १०। इसलिए इसी का जप एवं हवन करना चाहिए । यह संध्योपासन की भाँति ही नित्य कर्म है और बलि देने का मंत्र, अर्घ्य' मंत्र, एवं धूप का मंत्र भी यही होता है । ११। अन्नदान, स्नान, एवं भक्ति पूर्वक प्रदक्षिण करते समय भी इस महामन्त्र की पूजा करनी चाहिए । वर्योंकि यह शुभ तथा समस्त पाप नाशक बताया गया है । १२। इस प्रकार जगत् के पति भगवान् भास्कर कृष्ण के पुत्र (साम्ब) से विदा हो कर उसी स्थान पर अन्तहित हो गये और साम्ब भी इस स्तवराज द्वारा सात घोड़ों के वाहन वाले (सूर्य) की आराधना करके प्रसन्नचित्त, आरोग्य, एवं और भी सम्पन्न होकर रोग मुक्त हो गया । १३-१४

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बस्तव वर्णन नामक

एक सौ अट्ठाइसवाँ अध्याय समाप्त । १२८।

अथैकोनंत्रशदधिकशततमोऽध्यायः
साम्बकृतादित्यमूर्तिस्थापनवर्णनम्
सुमन्तुरुद्वादृ

अथ लक्ष्यवरः साम्बो वरं प्राप्य पुरातनम् । मन्यभानस्तदाश्रयं प्रहृष्टेनान्तरात्मनः ॥१
 पूर्वान्यासेन तनैद सार्थमन्यैस्तदस्त्विभिः । स्नापनर्त्य नातिद्वूरं चन्द्रभागां नदीं ययौ ॥२
 कृत्वात्ममण्डलाकारं शद्धात्मो हिनेदिने । स्नानौ सञ्ज्ञन्तरामास किं रूपं स्थापयाम्यहम् ॥३
 स त्वतः सहस्रावाय प्रणम्य^१ तु प्रभावतीम् । उद्यामानां जप्तौथेन प्रतिमां सम्मुखीं रवे ॥४
 तां दृष्ट्वा तस्य दीरस्य समुत्पन्नमिदं यथा । देवेन यत्तदाज्ञपतं तदिदं नात्र संशयः ॥५
 स तामुत्तर्यां सलिलादानीय च महीपते । तस्मिन्मित्रदत्तोहेषे स्थापयामास तां तदा ॥६
 निधाय प्रतिमांल्लोके साम्बस्तस्य महात्मनः । मित्रं मित्रवने रन्ये स्थापयित्वा विधात्तः ॥७
 तत्स्तामेव पप्रच्छ प्रणम्य प्रतिमां रवे । केनेवं निर्मिता नाथ भवतो ह्याकृतिः शुभा ॥८
 प्रतिमा तमुवाचाय शृणु साम्ब द्वुवे स्वयम् । निर्मिता येन चाप्येषा मदीया पुरुषाकृतिः ॥९
 भमातितेजसाविष्टं रूपमासीत्पुरातनम् । असहृं सर्वभूतानां ततोऽस्म्यभ्यर्चितः सुरैः ॥

अध्याय १२९
साम्बकृतादित्यमूर्तिस्थापन का वर्णन

सुमन्तु बोले—इसके पश्चात आने पुरातन वर की प्राप्ति करके (अपने सौन्दर्य पर) हर्षातिरेक ने द्रुक्त एवं विस्मित होता हुआ वह साम्ब अन्य तपास्वयों के साथ उसी नित्य के मार्ग से थोड़ी दूर पर रहने वाली चन्द्र भागा नदी में स्नान करने के लिए गया । १-२। वहाँ शद्धालु हो कर प्रतिदिन अपने को मण्डलाकार बनाकर स्नान करने लगा और चिंता भी करने लगा कि—यहाँ किस रूप को स्थापित कहूँ । ३। तदुपरात (एक दिन) उसने ज्यों ही स्नान किया सहसा निकली हुई प्रभापूर्ण एक मूर्ति को देखा जो सूर्य की ओर मुख किये नदी की लहरों से टकराती चली आ रही थी, और प्रणाम किया । ४। उसे देखते ही उस वीर की ऐसी धारणा हुई कि सूर्य देव ने जो आज्ञा प्रदान की थी, यह वही है । इसमें कोई संशय नहीं है । ५। हे महीपते ! पश्चात उसे जल से निकाल कर उसने उसी समय उस मित्र वन में उसकी स्थापना की । ६। साम्ब ने उस महात्मा (सूर्य) की प्रतिमा को वहाँ रखकर उस रमणीक मित्रवन में विधान पूर्वक उसकी स्थापना करायी और उस मूर्तिका नाम मित्र रखा । ७। तदनन्तर उसने उस प्रतिमा में प्रणाम पूर्वक पूछा कि— हे नाथ ! इस आपकी शुभ आकृति का दिमाण करने वाला कौन है ? । ८

प्रतिमा ने स्वयं उससे कहा—हे साम्ब ! सुनो ! मैं उसे कह रही हूँ जिसने इस मेरे पुरुष आकृति की रचना की है । ९। मेरा प्राचीन रूप अत्यन्त तेज से आच्छन्न था प्राणियों के लिए मेरे उस तेज के असहृ-

सहं भवतु ते रूपं सर्वप्राणभृताभिति

॥१०

ततो मया समादिष्टो विश्वकर्मा शहातप्तः । तेजसां शातनं कुर्वन् रूपं निर्वर्तयस्त्वं मे ॥११
ततस्तु मत्समादेशाते नैव निपुणं ज्ञाता । शाकद्वीपे भ्रमिं छत्वा रूपं निर्वर्तितं सम ॥१२
प्रीत्या तेषां प्रपञ्चोदयं स मया कारितः पुनः । तेनेयं कल्पवृक्षानु निर्भितः विश्वकर्मणा ॥१३
छत्वा हिमवतः पृष्ठे पूरा सिद्धिपेविते । त्वदर्थे चन्द्रभागायां ततस्तेनावतारिता ॥१४
भवतस्तारणार्थं हि ततः त्यक्तमिदं शब्दम् । रुचिरं सर्वदा साम्ब साम्निव्यं भेदज्ञ यास्थति ॥१५
साम्निव्यं सम पूर्वाह्ले सुतीरे द्रश्यते जनैः । कालश्रिये च मध्याह्लेऽपराह्ले चात्र नित्यशः ॥१६
पूर्वाह्ले पूजयेद्यज्ञाम् यज्ञाह्ले चक्रधृत्यवयम् । शङ्करशङ्कराह्ले तु अं पूजयति सर्वदा ॥१७
इत्युत्तोऽसौ भगवता भास्करेण स यादवः । हर्षमाप महान्नाहो भास्करोऽन्तर्दृष्टे ततः ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाल्याने
साम्बकृतादित्यमूर्तिस्थापनं नामैकोऽन्त्रिशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९।

होने के कारण देवताओं ने मेरी आराधना की कि हे देव ! आप का तेज सभी प्राणियों के सहन करदे के योग्य जिस भाँति हो सके वैसा ही करने की कृपा करें । १०। पश्चात् मैंने महातपस्वी विश्वकर्मा को आज्ञा दिया कि मेरे तेज को काट छाँटकर मेरा (सौन्दर्यपूर्ण) रूप बनाओ । ११। इसके उपरांत मेरे आदेश देने पर उस निपुण विश्वकर्मा ने शाकदीप में खराद पर चढ़ा कर मेरे रूप को सौन्दर्य पूर्ण बनाया । १२। पुनः उन लोगों के प्रसन्नार्थ मैंने इस पूर्ति को भी बनवाया था । विश्वकर्मा ने कल्पवृक्ष के काष्ठ से ही इस मेरी प्रतिमा का निर्माण किया है । १३। पहले समय में उसने त्रिस्तवान् के सिद्ध निषेवित उस पीठ स्थान से तुम्हारे लिए ही इसी चन्द्रभाग नदी में युज्ञ प्रवाहित किया था । १४। तुम्हारे उद्धार के लिए ही यह स्थान मुझे शुभ एवं मुन्द्र लग रहा है अतः हे साम्ब ! मैं यहाँ रहूँगा । पूर्वार्द्धकाल में सुतीर लेत्र में मनुष्यों को दर्शन दूँगा, मध्याह्ल में कालप्रिया स्थान में रहकर तथा अपराह्ल (दूसरे समय) में यहाँ रहूँगा । १५-१६। क्योंकि पूर्वाह्लकाल में ब्रह्मा, मध्याह्ल में चक्रधारी (विष्णु), और अपराह्ल दूसरे समय में शंकर मेरी सदैव पूजा करते हैं । हे महाबाहो ! इस प्रकार उस यादव (साम्ब) से भगवान् भास्कर ने सभी बातों को विस्तारपूर्वक कहा था जिससे साम्ब अत्यन्त हर्षित हुआ था । पश्चात् भास्कर वही अन्तर्हित हो गये थे । १७-१८

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाल्यान में साम्बकृतादित्य
मूर्ति स्थापन नामक एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय समाप्त । १२९।

अथ त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

प्रसादलक्षणवर्णनम्

शतानीक उवाच

कथं साम्बेन विप्रेन्द्र प्रतिष्ठा कारिता रवेः । कस्य वा वचनात्तेन प्रासादः कारितो रवेः ॥१
 सुमन्तुरुवाच

अत्र ते वच्चिम राजेन्द्र यथा साम्बेन धीमता । प्रतिष्ठा कारिता भानोः प्रसादश्च महीपते ॥२
 मुलब्ध्वा प्रतिमां भानोश्चिन्तयामास नारदम् । स चापि चिन्तितश्चागाद्यत्र जाम्बवतीमुतः ॥३
 तमागतमभिप्रेक्ष्य नारदं मुनिसत्तमम् । सम्पूज्य विधिवत्सांबो नारदं दाक्ष्यमब्रवीत् ॥४
 प्रासादं कारयेद्यस्तु भास्करस्य नरो द्विज । किं फलं तस्य देवर्णे प्रतिष्ठां यश्च कारयेत् ॥५
 नारद उवाच

प्रासादं शोभने देशे यस्तु कारयते रवेः । स याति नरशार्दूल सूर्यलोकं न संशयः ॥६
 साम्ब उवाच

कथं कुर्यादायतनं कस्मिन्देशे द्विजोत्तम । कीदृक्छस्तं चायतनं देवदेवस्यै वै द्विज ॥७

अध्याय १३०

प्रसादलक्षण का वर्णन

शतानीक बोले—हे विप्रेन्द्र ! साम्ब ने सूर्य की प्रतिष्ठा कैसे करायी थी और किस के कहने से सूर्य के लिए प्रासाद (विशाल भवन) का निर्माण कराया था ।

सुमन्तु बोले—हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार बुद्धिमान् साम्ब ने सूर्य की प्रतिष्ठा एवं उनके लिए प्रासाद का निर्माण कराया है, मैं तुम्हें बता रहा हूँ मुझे ॥२॥ जाम्बवती पुत्र साम्ब ने सूर्य की उस प्रतिमा की प्राप्ति के अनन्तर नारद के लिए कुछ सोचना आरम्भ किया कि उसी समय नारद का भी आगमन वहाँ हुआ ॥३॥ अनन्तर मुनिश्रेष्ठ नारद को आये हुए वहाँ देख कर साम्ब ने विधान पूर्वक उनकी पूजा की और उनसे कहा—॥४॥ हे द्विज ! जो मनुष्य भास्कर के लिए प्रासाद का निर्माण एवं उनकी प्रतिष्ठा करता है, उसे कौन फल प्राप्त होता है ॥५॥

नारद बोले—हे नरशार्दूल ! जो उत्तम स्थान में सूर्य के लिए सूर्य प्रासाद (विशाल भवन) का निर्माण करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं ॥६॥

साम्ब ने कहा—हे द्विजोत्तम ! किस प्रदेश में किस ढंग के भवन का निर्माण होना चाहिए तथा हे द्विज ! देवाधिदेव (सूर्य) के लिए किस प्रकार का भवन प्रशस्त बताया गया है ॥७॥

१. कस्मिन्देशे द्विजोत्तमः ।

नारद उवाच

यत्र प्रभूतं सलिलमाणमे च विनाशने । देवतायतनं कुर्यादिशोधर्मविवृद्धये ॥८
 इष्टापूर्तेन लभते लोकांस्तांश्च विसूचितान् ! देवानामालयं कार्यं ह्यं यत्र च दृश्यते ॥९
 सलिलाद्यं च आरामः कृतेष्वायतनेषु च । स्थानेष्वेतेषु साश्रित्यमुपगच्छान्ति देवताः ॥१०
 सर्वम् नलिनीच्छश्चनिरस्तरविरश्मिषु । हंससंनिपत्कह्वारवीथीविमलवारिषु ॥११
 हंसकाञ्छयसौञ्चक्षकवाकविराविषु । पर्दन्तविमलच्छायाविश्रान्तजनचारिषु ॥१२
 कौञ्जकाञ्छसुलापात्रं कलहंसकलस्वनाः । नद्यस्तोदाशुका एत्र शफरीकृतमेलताः ॥१३
 पुत्तद्वमोत्तमावासाः सहगमश्चोणिमण्डलाः । पुलिनाद्युभ्यतोरस्का रसहासश्च निष्ठ्रगाः ॥१४
 बनोपान्तनदीसैलसंस्करोपान्तमूभिषु । रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च ॥१५
 मूर्मयो ब्राह्मणादीनां याः प्रीक्ता वास्तुकर्मणि । ता एवं तेषां शश्यन्ते देवतायतनेष्वपि ॥१६
 चतुषष्ठिपदं कुर्यादिवतायतनं सदा । द्वारं च मध्यमं तस्मिन्समदिकसम्प्रशस्यते ॥१७
 यो विस्तारो भवेत्स्य द्विगुणा तत्समुन्नतिः । उच्छ्रायस्तु तृतीयोऽथ तेन तुल्या कटिर्भवेत् ॥१८

नारद बोले—जर्पा कृतु के आगमन काल में एवं उसके निकल जाने के पश्चात् भी जहाँ अत्यन्त जल भरा रहता हो, उस जलाशय के तट पर अपने यश एवं धर्म की वृद्धि की कामनावश देव मन्दिर का निर्माण कराना चाहिए । १। क्योंकि यज एवं जलाशय के निर्माण कराने से सोनंदयं पूर्ण लोकों की प्राप्ति होती है । इसलिए देव गन्दिर का निर्माण ऐसे प्रदेश में होना चाहिए जो सुन्दर जलाशय एवं मनोहर बगीचे से सुशोभित हो । २। क्योंकि देव मन्दिर के समीप जलाशय एवं बगीचे के लगवाने से उन्हीं स्थानों में देवता लोग निवास करते हैं । ३। जिस जलाशय में कमलिनी से आच्छङ्ग होने के नाते सूर्य की क्रिरणें जल तक न पहुँचती हों, हसों द्वारा सफेद कमल की पंक्तियाँ संक्षिप्त हो गई हों, निर्मल जल हो, हंस, बत्तख, सारस तथा चक्रवाक के कलरवों से कूजित होते हुए उसके चारों ओर वृक्षों की निर्मल छाया हो जिसमें पथिक एवं टहलने घूमने वाले विश्राम लेते हों । ४-५। ऐसे तालाबों के समीप तरीं मधुर ध्वनि करती हुई सारस रूपी करधनी, पहिनने वाली सुन्दर हसों के कलरवों से कूजित, जल रूपी वस्त्र एवं शफरी मछली रूपी मेलता धारण करने वाली नदियों के समीप जिनके फूले हुए वृक्ष रूपी उत्तम आवास स्थान, संगम रूप श्रेणिमण्डल, पुलिन (किनारा) रूपी उन्नत छाती, तथा जलरूपी हास विलास हों उस भूगि में जो बने समीपवर्ती नदी एवं पर्वत की सन्त्रियि में हों, बगीचे समेत मन्दिर के निर्माण होने पर देवता लोग वहाँ नित्य रमण करते हैं । ६-७। तथा ब्राह्मण आदि के लिए गृहनिर्माण के विषय में जिस प्रकार की भूमि की चर्चा की गई है, वैसी ही भूमि देव मन्दिर के लिए भी प्रशंसत बतायी गई है । ८। अतः चौसठ पैर (पग) का लम्बा विशाल भवन देवता के लिए होना चाहिए और उसके मध्य भाग में दरवाजा बनाया जाना चाहिए । उनके लिए चौकोर दरवाजा भी उत्तम बताया गया है । विस्तार से दुगुनी कोठी की ऊँचाई होनी चाहिए और उसके तिहाई भाग के समान ऊँचा उसका कटि मध्य भाग रहे । ९-१०। इसी प्रकार

विस्ताराधों भवेद्गमो मिल्योन्याः समन्ततः । गर्भपादोनविस्तीर्ण द्वारं द्विगुणमुच्छृतम् ॥१९
 उच्छ्रयात्पादविस्तीर्ण शासा तद्वदुम्बरी । विस्तारात्पादप्रतिमाद्वाहुल्यं शेषयोः स्मृतम् ॥२०
 नृपं सप्तनवमिः शासाभिस्तत्प्रशस्यते । अथ शासाचतुष्पर्णे प्रतिहारौ निवेशयेत् ॥२१
 शैलमङ्गल्यविहगः श्रीवृक्षः स्वस्तिकर्घटैः । भागेन प्रतिमा स्यात्सुपिण्डिका ॥२२
 द्विभागा प्रतिमा तत्र तृतीयो भागपिण्डिका । पूर्वे भेषर्महाबाहो कैलानश्च तथापरे ॥२३
 भवन्ति चापरे वीर विमानच्छविन तथा । समुद्रपद्मगरुडनन्दिवर्द्धनकुञ्जराः ॥२४
 गृहराजो वृषो हंसः सर्वतोभद्रको घटः । सिंहो वृषश्चतुष्पर्णोऽपि षोडशाष्टाश्रयस्तथा ॥२५
 इत्येते विंशतिः प्रतेकाः प्रासादा यदुनन्दन । यथोक्तानुकमेणैव लक्षणानि वदामि^२ ते ॥२६
 नवत्रिंशद्विच्छ्रूतमेष्वद्विदशभौमो विविधकुहरश्च । द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्द्विर्गद्वस्तविस्तीर्णः ॥२७
 त्रिंशद्वस्तायामो दशभौमः सप्त मन्दरः । शिखरयुतः कैलासोऽपि शिखरवानष्टादिंशोल्लभौमश्च ॥२८
 जालगवाक्षेर्वुत्तो विमानसंज्ञस्त्रिसप्तकाश्यमः । नन्दन इति वै भौमो द्वार्त्रिशत्पोडशाद्गयुतः ॥२९
 वृतः समुद्रगनामा पश्चाकृतिरयं चाष्टौ । शृङ्गेणैकेन भवेदेकेन च भूमिका तस्य ॥३०

विस्तार के पहले अर्ध भाग में मन्दिर का गर्भ एवं दूसरे में चारों ओर की दीवाल होनी चाहिए । और गर्भ के चौथाई भाग के समान चौड़ा तथा उससे दुगुना ऊँचा दरवाजा बनाना चाहिए । १९। उसी भाँति विस्तार के चौथाई भाग के रक्षान उदुम्बरी गूलर आदि वृक्षों की शासा बनाये जो ऊँचाई के चौथाई भाग के समान चौड़ी हो । २०। मनुष्य के लिए पांच, सात, एवं नव शासा वाला दरवाजा प्रशस्त बताया गया है । पुनः शासा के चौथाई भाग में दो द्वारापालों की मूर्ति स्थापित करके शेष द्वार शासा के स्थान में शैल (पर्वत) मांगलिक पक्षी श्रीवृक्ष, एवं मांगलिक कलशों की रचना करनी चाहिए । शासा के आँठें भास के समान ऊँची चौकी समेत प्रतिमा का निर्माण होना चाहिए । २१-२२। उसमें दो भागों के रक्षान (ऊँची) प्रतिमा और (तीसरे) भाग के समान ऊँची पिण्डिका (मूर्ति के स्थित होने की नीचे की भूमि) होनी चाहिए । हे महाबाहो ! प्रथम में मेरु, कैलास, विमान, समुद्र, पदम्, गरुड, नन्दिवर्द्धन, कुंजर, गृहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट, सिंह, वृष, चतुष्पर्ण नामक ये सोलह एवं आठ मंजिला वाले भवन बताये गये हैं । २३-२५। इस भाँति बीस प्रकार के विशालभवन बनाये जाते हैं, मैं उन्हें क्रमशः बता चुका अब उनके लक्षण बता रहा हूँ मुझो । २६। उनतालीस हाथ का लम्बा मेरु नामक विशाल भवन होता है, उसमें बाहर भौम (कोठा) भाँति-भाँति के तहसाने एवं चार दरवाजे होते हैं और वह पच्चीस हांथ का चौड़ा होता है । २७। तीस हाथ का लम्बा दश कोठे एवं सात शिखर वाला नामक विशाल भवन होता है । अट्टाइस हाथ का विस्तृत एवं आठ कोठे वाला कैलास नामक भवन होता है । २८। जाल की भाँति गवाक्षों (झरोखों) से पूर्ण, तथा इक्कीस हाथ का विस्तृत विमान नामक भवन होता है । बत्तीस हांथ का विस्तृत छह कोठोंसे युक्त नन्दन नामक भवन होता है । २९। समुद्र नामक भवन वर्तुलाकार (गोल) होता है पथ के आकार के समान पथनामक भवन होता है जिसका आठ हाथ का विस्तार एक शिखर,

१. मिथुनद्वारमारब्दे भागेन स्यात्सुपिण्डिका । २. निबोध मे ।

गरुडाकृतिश्च गरुडो नन्दी वै षष्ठिविस्तीर्णः । कायश्च सप्तमो विमूर्खितोऽग्नेऽसप्तविशतिभिः ॥३१
 कुञ्जर हिति गजपृष्ठः बोउशहस्तोच्छ्रुतो भव्ये । गृहराजः बोउशक्तिविचक्षशाला भवेहृतमी ॥३२
 वृष एवं सूमिभृश्लो द्वादशहस्तः समुभ्रतो वृत्तः । हंसो हंसाकारो घटोऽष्टसहस्रकलशरूपः ॥३३
 द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्बहुशिखरे भवति सर्वतोभद्रः । बहुरचिरचन्द्रशालः षट्विंशद्वाग्मूर्मिश्च ॥३४
 तिः सिंहाकारोऽद्वादशकोणोऽष्टहस्तश्च ॥३५
 सहस्रश्चित्यं चैव कथितं विश्वकर्मणा । ब्राह्मः स्थापयतश्चात्र भवत्सेवं विषयश्चितः ॥३६
 कपोतपालिनीयुक्तमतो गच्छति तुल्यताम् ॥३७

साम्ब उवाच

य एते कथिता विप्र प्रासादा विशतिस्तद्या । तेषां सूर्यस्य कः कार्यः प्रासादो भास्करस्य तु ॥३८
 स्थानानि यानि चोक्तानि प्रासादस्य द्विजोत्तम । तेषां त्वयोऽन्तः हि पुरं व्ययदिद्विर्युतम् ॥३९
 तस्मिन्प्रदेशे वै कार्यं भानोर्मन्दिरमुक्तमम् । इतां भाने च कतमे बूहि शेषं द्विजोत्तम ॥४०

एक ही भूमि (मंजिला) होती है । ३०। गरुड़ के समान गरुड़ नामक भवन होता है । साठ हाथ दो विस्तृत नन्दिवर्द्धन नामक भवन होता है जिसमें सात कोठे होते हैं वह सत्ताइस अंगों से सुशोभित होता है । ३१। सोलह हाथ ऊँचा, मध्यमभाग में हाथी की पीठ के समान आकार वाला कुंजर नामक भवन बनाया जाता है । सोलह हाथ का विस्तृत तीन चन्द्रशालाओं से युक्त गृहराज नामक भवन होता है । ३२। बारह हाथ का विस्तृत एक भूमि (मंजिला) एक शिखर एवं गोलाकार वृष नामक भवन होता है । हंस के समान आकार वाला हंस नामक भवन होता है । आठ सहस्र कलश के समान रूप वाला घट नामक प्रासाद (महल) होता है । ३३। चार दरवाजे, अनेक शिखर, रुचिर चन्द्र शालाओं से पूर्ण, एवं छब्बीस हाथ का विस्तृत सर्वतोभद्र नामक प्रासाद (महल) होता है । एवं बारह कोने वाला और आठ हाथ का विस्तृत तथा सिंह के समान आकार वाला सिंह नामक प्रासाद (महल) होता है । ३४-३५। इस प्रकार पण्डितों ने एक मत होकर इसकी अत्यन्त पुष्टि की है कि विश्वकर्मा ने इसके गृह के तीन सहस्र भेद बताये हैं । गृह के ऊपरी भाग कुछ न्यून रहने पर उसके ऊपर कपोतपालिक (कबूतरों के रहने के स्थान) बना देने से उसकी पूर्ति हो जाती है । ३६-३७

साम्ब ने कहा—हे विप्र ! आप ने बीस प्रकार के प्रासाद (विशाल भवन) बनाने के विधान बताये हैं उनमें कौन-सा प्रासाद (महल) सूर्य के लिए प्रशस्त होता है । ३८। हे द्विजोत्तम ! प्रसाद (महल) के लिए जिन स्थानों को आपने बताया है उनमें तो यह बतला ही चुके हैं कि धार्मिक व्यय करने वाले मनुष्योंको अपने नगर के समीप वाले प्रदेश में सूर्य का उत्तम मन्दिर बनवाना चाहिए । पर हे द्विजोत्तम ! यह बताने की कृपा कीजिए कि दिशा के किस भाग में उस मन्दिर का निर्माण होना चाहिए । ३९-४०

१. सिंहाक्रान्तः ।

नारद उवाच

पुरमध्यं सनाश्चित्य कुर्यादायतनं रथे । दिशां भागेऽय चा पूर्वं पूर्वद्वारसमीपतः ॥४१
 सूर्मि परीक्ष्य पूर्वं तु कुर्यादायतनं ततः^१ । इष्टगन्धरसोदेता निश्चारै सूर्मि: प्रशस्यते ॥४२
 शर्करातुषकेशः स्थिक्षाराङ्गारविवर्जितः । भेघदुन्दुभिनिर्घोषा सर्वबीजप्ररोहिणी ॥४३
 शुक्ला रक्ता तथा धीता छृष्णा च कथिता क्षितिः । द्विराज्ञवैद्यानां शूदणां च दयालम् ॥४४
 परीक्षितायां तस्यां तु मध्ये तस्याः प्रमाणतः । उपतिष्ठत् चतुरस्तं चतुरस्तं सनन्ततः ॥४५
 हस्तमात्रमध्यः कृत्वा मध्ये तस्या दशाङ्गुलम् । गंतमुत्कीर्य तेनैव पांसुना प्रतिपूरयेत् ॥४६
 समे समगुणः ज्ञेया हीने हीनगुणा भवेत् । वर्धमाने तु कै पांसो भवेद्विकारी क्षितिः ॥४७
 नित्यं सम्मुखमर्कस्य कदाचित्प्रश्निमानुलम् । स्थापनीयं गृहं सम्यक्ष्वासुस्थानकल्पनात् ॥४८
 भवनादक्षिणे पार्श्वे रथे । ज्ञानगृहं भवेत् । अग्निहोत्रं गृहं कार्यं रवेहत्तरतः शुभम्^२ ॥
 उद्दनुखं भद्रेच्छम्भोमत्तृणां गृहमेव च ॥४९
 ब्रह्मा पश्चिमतः स्थाप्यो विष्णुस्तरतस्तथा । निम्बस्तु^३ दक्षिणे पार्श्वे चामे राजो प्रकीर्तिता ॥५०
 पिंगलो पक्षिणे ^४भानोर्वामितो दण्डनायकः । श्रीमहाश्वेतयोः स्थानं पुरतस्त्वंशुमालिनः ॥५१

नारद बोले—नगर के मध्य भाग में या दिशा के पूर्वभाग अथवा पूरब वाले दरवाजे के समीप भूमि की परीक्षा करके सूर्य मन्दिर का निर्माण कराना चाहिए क्योंकि (मन्दिर के लिए) सुगन्ध रस युक्त एवं निम्न भूमि प्रशस्त बतायी गई है । ४१-४२। उसी भाँति रेह वाली भूमि, तुष (भूसी), केश, अस्थि, खार, एवं कोयले वाली भूमि गृह निर्माण के लिए वर्जित की गई है । जहाँ मेघ या नगाडे की भाँति शब्द सुनाई पड़े, और सभी प्रकार के बीज जहाँ अंकुरित हो सके, वही भूमि मन्दिर निर्माण के लिए प्रशस्त होती है । ४३। इस प्रकार गृह निर्माण के विधान में शुक्र, रक्त, पीत, एवं काली पृथिवी क्रमणः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्रो के लिए बतायी गयी है । ४४। सर्वप्रथम भूमि की परीक्षा करने के उपरान्त उसके मध्य भाग में चार हाथ लम्बी एवं चौकोर भूमि गोबर से लीप कर उसमें एक हाथ का लम्बा और दश अंगुल का गहरा गढ़ा खोद कर पुनः उसी मिट्टी से उस गढ़े को भर दे । यदि उस खोदी गई मिट्टी द्वारा वह गढ़ा भर जाय तो समान फल, और कुछ कम हो जाय तो वह भूमि निकृष्ट होती है एवं यदि गढ़े भरने के उपरान्त कुछ मिट्टी ही शेष रह जाय, तो वह भूमि वृद्धि करने वाली होती है । ४५-४७। घर का दरवाजा पूरब दिशा की ओर करना चाहिए, यदि उस ओर कारण वश सम्भव न हो सके, तो पश्चिमाभिमुख भी कर लेना चाहिए परन्तु अधिकतर प्रयत्न पूर्वाभिमुख होने के लिए ही करना चाहिए । ४८। सूर्य-मन्दिर के दाहिने पार्श्व बगल, में स्नान गृह, उत्तर की ओर अनि होत्र गृह होना चाहिए उसी प्रकार शम्भु एवं माताओं का गृह उत्तराभिमुख होना चाहिए । ४९। सूर्य के पश्चिम की ओर बह्या, उत्तर की ओर विष्णु की स्थापना करे । सूर्य के दाहिने बगल निम्ब (निष्ठा) एवं बायें बगल राजी की स्थिति होनी चाहिए । ५०। दाहिने ओर पिंगल और बायें की ओर दण्डनायक तथा श्री

१. महत् । २. त्रिधा । ३. हस्तमात्रम् । ४. परिपूरयेत् । ५. तथा । ६. निम्बं श्रीपर्णवृक्षश्च वामे राजः प्रवर्तिता । ७. पार्श्वे ।

ततस्थाप्याभिनोः स्थानं पूर्वदेवग्रहाद्विः । द्वितीयाणां तु कक्षायां राजास्त्रौषौप्यवस्थितौ ॥५२
 त्रितीयाणां तु कक्षायां स्थितौ कल्माषपक्षिणौ । जण्डकामचरौ^१ स्थाप्यौ दक्षिणां दिशमाश्रितौ ॥५३
 उदीच्यां स्थापनीयस्तु कुर्वे लोकपूजितः । उत्तरेण ततस्तस्य रेवतः सविनायकः ॥५४
 यत्र वा विद्यते स्थानं दक्षु सर्वा गुहादयः । द्वे मण्डलेऽप्यनानार्थं कार्यं स्थापसव्यतः ॥५५
 दद्यादुद्युक्तेनायामर्थं सूर्यग्रं दक्षिणे । उत्तरे मण्डले दद्यादर्थग्रस्तमने रवेः ॥५६
 चक्षाङ्कुतां तपान्त्यस्मिन्देवस्य प्रतिमां रवेः । स्थापयेद्विधिवद्वीरं चतुर्भिः क्लृग्नैः गुभैः^२ ॥५७
 नानात्पूर्याभिनादेश्वरैश्च शूलस्त्रवैश्च पुष्कलैः । तृतीये मण्डले हृष्टे^३ पूजनीयो दिवाकरः ॥५८
 चतुरसं चतुःशृङ्गं व्योमं देवग्रहाप्रतः । प्रतिमायात्तु सूक्ष्मेण कार्यं मध्येऽस्य मण्डलम् ॥५९
 दिण्डी स्थाप्यः पुरस्तस्मादादित्याभिमुखः स्थितः । यदेतत्कथितं व्योमं सर्वदेवमयं भया ॥६०
 मध्याह्ने तस्य दातव्यमर्थ्यमन्त्रं यद्वृत्तम् । अथ वा मण्डलं चान्यतृतीयं चक्रसम्मतम्^४ ॥६१
 स्थापयित्वा तु इदेशं दातव्योऽर्थं सुणिष्ठतैः । देवस्य पुरतः कार्यं व्योमस्थानं समीपतः ॥
 पुस्तकवाचनस्थानमयं वा यत्र रोचते ॥६२

महाश्रेष्ठता का स्थान सूर्य के सामने होना चाहिए ॥५१। मन्दिर के बाहर अश्विनी कुमार की स्थापना दूसरी कक्षा (खंड) के राजा स्त्रौद की स्थिति एवं तीसरी कक्षा में कल्माष तथा पक्षी की स्थिति होनी चाहिए । दक्षिण दिशा में जड एवं कामचर उत्तर की ओर लोक वन्दनीय कुबेर की स्थिति होनी चाहिए । उनके उत्तर विनायक समेत रैवत की स्थिति होनी चाहिए ॥५२-५४ । दिशाओं में कहीं भी स्थान दिखाई दे तो वहाँ गुह (स्कन्द) सभी आदि देवताओं की स्थिति करे । इसी प्रकार दक्षिण और उत्तर की ओर (दाहिने बायें) अर्ध देने के लिए दो मण्डल बनाये जाते हैं ॥५५। उदय काल में सूर्य के लिए दक्षिण वाले मण्डल में अर्ध देना चाहिए और अस्त के समय उत्तर के मण्डल में ॥५६। हे वीर ! मन्दिर के भीतर सूर्य की चक्राकार की भाँति वह प्रतिमा चार शुभ कलशों के साथ किसी पीठ पर स्थापित करे ॥५७। जो भाँति-भाँति के तुरही आदि वादों एवं शंखों की ध्वनि कोलाहल में स्थापित की जाती है इसी प्रकार तीसरे मण्डल में सूर्य की पूजा करें ॥५८। देव-मन्दिर के अग्रभाग में चार शिखर एवं चौकोर का व्योम बनाना चाहिए । जिसके मध्य में सूर्य द्वारा उनके मण्डल बनाया जाता है ॥५९। आदित्य के अभिमुख दिण्डी की स्थापना होनी चाहिए । यही सर्व देवमय व्योम है, जिसे मैं पहले ही बता चुका हूँ ॥६०। हे यद्वृत्तम् ! इस भाँति मध्याह्न काल में सूर्य के लिए इसी स्थान पर अर्ध प्रदान करना चाहिए, अथवा चक्राकार बने हुए एक अन्य मण्डल में भी ॥६१। इस प्रकार देवेश (सूर्य) को स्थापित करके पण्डितों को चाहिए कि उन्हें नित्य अर्ध प्रदान करे । देव के सामने उनके समीप ही व्योम स्थान होना चाहिए और उसी स्थान पर अथवा जहाँ रुचे पुस्तक वाचन का (कथा) स्थान बनाये ॥६२। इस प्रकार क्रमशः

१. जानुकामाचरी । २. सह । ३. गीतशब्दः । ४. अत्र । ५. चक्रसंस्थितम् ।

एष स्थानदिधिः प्रोक्तो देवतानां यथाकमम् । गृहराजोऽथ रुदस्तु द्वावेतौ भास्करप्रियौ ॥६३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपास्याने
प्रासादलक्षणवर्णनं नामं त्रिशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०।

अथैकर्त्रिशदधिकशततमोऽध्यायः

दारुपरीक्षावर्णनम्

नारद उवाच

अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि प्रतिमाविधिविस्तरम् । सर्वेषामेव देवानामादित्यस्य विशेषतः ॥१
अर्चा^१ सप्तविधा प्रोक्ता भक्तानां शुभवृद्धये । काञ्चनी राजती ताम्री पार्थिवी शैलजा स्मृता ॥२
वार्षी चालेष्यका चेति सूर्तस्थानानि सप्त वै । वार्षीविधानं ते वीर वर्णविष्याम्यशोषतः ॥३
कर्त्रनुकूले दिवसे संचरविशेषिते । शुभैर्नामित्तैः शकुनैः प्रस्थानैश्च वनं विशेत ॥४
क्षीरिणो वर्जिताः सर्व दुर्बलास्ते स्वभावतः । चतुष्पर्थेषु न चाहा ये च पुत्रकवृक्षकाः^२ ॥५
देवतायतनस्था ये तथा दल्मीकसम्भवाः । उत्कीर्ण देवता येषु चेत्यवृक्षाश्च ये स्मृताः ॥६
श्मशानमूर्मिजा ये च पक्षणां निलयाश्र्व ये । सकोटराश्र्व ये वृक्षाः शुक्काग्रा ये च पादपाः ॥७

देवताओं की यह स्थान-विधि बता दी गई । जिनमें गृह राज एवं सर्वतोभद्र नामक प्रासाद (महल) भास्कर के लिए अत्यन्त प्रिय कहे गये हैं ॥६३

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपास्यान में
प्रासादलक्षण वर्णन नामक एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१३०।

अध्याय १३१

दारुपरीक्षा का वर्णन

नारद बोले—इसके पश्चात् सभी देवताओं की विशेष कर सूर्य की प्रतिमा का विधान, विस्तार पूर्वक तुम्हें बता रहा हूँ मुझो ! ॥१। यद्यपि भक्तों की कल्याण वृद्धि के लिए सात प्रकार की प्रतिमाएँ बतायी गई हैं । सुवर्ण, चाँदी, ताँबे, मिट्टी, पत्थर, काष्ठ एवं चित्र ये सात प्रकार की प्रतिमाएँ (पूजन के लिए) बतायी गई हैं । हे वीर ! किन्तु मैं सर्वप्रथम काष्ठ की प्रतिमा का विधान बता रहा हूँ ॥२-३

अपने अनुकूल दिन के पचांग शुद्ध मूहर्त में शुभ शकुनों के समय बन जाने के लिए प्रस्थान करे ॥४। वहाँ पहुँच कर जिस प्रकार इन दूध वाले, स्वभाव से पतले, चौराहे वाले, नवीन, देवालय में स्थित, बल्मीकी से उत्पन्न, देव का आवास रूप, चैत्र (आश्रम) वृक्ष, श्मशान पक्षियों के निलय वाले, सोखला वृक्ष, जिसका अग्रभाग सूख गया हो, किसी शस्त्र द्वारा कटा हुआ, हाथियों के भन्य, सामादि रोगी, नीचे फैलने

१. प्रतिमा सप्तधा प्रोक्ता । २. पुत्रकवृक्षकाः—नवविरुद्धाः—बालवृक्षा इत्यर्थः ।

शस्त्रेण निहता ये च कुञ्जराशास्त्या कृताः । सामाद्याः सर्लोऽपश्च व्याधिनश्च तथैव च ॥८
अकाले पुष्पिता ये च काले ते च विर्वजिताः । शीर्णपर्णाश्च तरवो रक्षोष्वांकनिर्वेषिताः ॥
एकशाखातिशाखाश्च त्रिशाखाश्च तथाधमाः ॥९

मधूको देवदाहश्च वृक्षराजश्च चन्दनः । बिल्वश्चान्नातकश्चैव लविरोयाऽज्जनस्तथा ॥१०
निस्वः श्रीर्णवृक्षश्च पनतः सरलोऽर्जुनः । रक्तचन्दनसर्पत्ता: श्लेष्ठाः स्मृतिप्राद्माः ॥११
वर्णानाः सानुपूर्वेण हौं द्वौ वृक्षौ प्रकीर्तितौ । निस्वाद्या सर्ववर्णानां वृक्षा साधारणा: स्मृताः ॥१२
कव्यमानान्विशेषेण शृणु वीर तथापरान् । सुरदारः शमी चैव मधूकश्चन्दनस्तथा ॥
एते यै तरवस्तात ब्राह्मणानां शुभाः स्मृताः ॥१३

कक्षत्य च तथारिष्टः लविरस्तिन्दुकस्तथा । अभ्यत्यश्च तथा साम्ब द्रुमः करकतः शुभः ॥१४
वैश्यानां तद्वदेव स्मृतिः लविरश्चन्दनस्तथा । पुष्याश्च तरवश्चेते शुभदास्तु तथैव च ॥१५
केसरः सर्जकश्चान्नः शालवृक्षस्तथेतरः । एते यै तरवः पुण्याः शूद्राणां शुभदायकाः ॥१६
लिङ्गं च प्रतिमां चैक्षस्वत्याप्य यथाविधि ! वृक्षं चासिष्टं गत्वा पूजयेद्वलिपुष्पकः ॥१७
शुचौ देशे विविते च केशांगारविवर्जिते । प्राणुदप्तूचके देशे लोककष्टविवर्जिते ॥१८
विस्तीर्णस्कन्धविटपः पद्मानृजुवृद्धिगः । आतङ्कहीनो विवशः सत्त्वकर्पणः शुभस्तथा ॥१९
स्वेनैव पतिता ये च हस्तिभिः प्रातितास्तथा । शुष्काश्च वह्निदग्धाश्च पक्षिभिर्नापि वर्जिताः ॥२०

वाले, असमय में फूलने वाले, समय में पुष्प हीन रहने वाले, छिन्न-भिन्न पतेवाले, राक्षस एवं कौवों से सुसेवित, एक शाखा, तथा तीन शाखा वाले वृक्षों का (मूर्ति के लिए) त्याग करना चाहिए । ५-१। उसी भाँति महुवा, देवदार, वृक्षराज, चन्दन, बेल, आंवले, हीर, अञ्जन, नीम, श्री पर्ण, कटहल, सरलार्जुन, एवं रक्तचन्दन के वृक्ष (प्रतिमा के लिए) ग्रहण करना चाहिए क्योंकि उसके लिए ये अत्यन्त श्रेष्ठ बताये गये हैं । १०-१। महुआ आदि दो-दो वृक्ष क्रमशः चारों वर्णों के लिए बताये गये हैं और उसी निमित्त सभी वर्णों के लिए नीम आदि वृक्ष साधारण बताये गये हैं । १२। हे वीर ! विशेषकर अन्य वृक्ष भी बता रहा हैं सुनो ! देवदार, शमी, महुआ, चन्दन, इतमेव वृक्ष, ब्राह्मणों के लिए शुभ बताये गये हैं । १३। हे साम्ब ! जिस भाँति नीम, हीर, तेंदू, पीपल, तथा अनार के वृक्ष क्षत्रियों के लिए शुभ कहे गये हैं । १४। उसी भाँति हीर चन्दन के वृक्ष वैश्यों के लिए पुण्य एवं शुभदायक बताये गये हैं । १५। और केसर, सर्जक, आम, तथा शाल ये वृक्ष शूद्रों के हितार्थ बताये गये हैं । १६

इस प्रकार काष्ठ की प्रतिमा बनाकर विधान पूर्वक उसकी स्थापना करनी चाहिए । (प्रथम) उस मनचाहे वृक्ष के समीप जाकर बलि एवं पुष्प द्वारा उसका पूजन करे । १७। जो पवित्र एवं मैदान में स्थित हो और जिसमें केश या अञ्जार (कोयला) और (कट्टे) न हो, पूरब तथा उत्तर की ओर ढालू भूमि में उत्पन्न हों एवं जहाँ लोगों को कष्ट का अनुभव न होता हो, चौड़ी शाखाएँ पत्तों से पूर्ण सीधा-लम्बा, आतंक हीन एवं उसकी छाल और पते सुन्दर हों, (प्रतिमा निर्माण के लिए ऐसे ही वृक्ष प्रशस्त होते हैं) । १८-१९। उसी भाँति जो अपने से गिर गया हो, या इन्द्रियों ने गिराया हो, सूखा, जला तथा पक्षी-रहित, ऐसे वृक्षों का त्याग करके शुभ वृक्ष ग्रहण करना चाहिए—चिकने, पत्र, पुष्प, एवं फल

तत्त्वो दर्जनीयात्र ग्रहीतव्याः शुभः दुमाः । स्निग्धरूपाः सपर्णश्च सपुष्याः सफलास्तथा ॥२१
 तेषां तु ग्रहण चाब्दमासेषु कार्तिकादिषु । भूत्वा शुभदिने चैव सोपवासोऽधिवासयेत् ॥२२
 समन्तादुपसिप्याथ तस्याधस्ताद्बुद्धराम् । गायत्र्या परिपूतेन परितः प्रोक्ष्य वारिणा ॥२३
 शुक्ले च परिधूते च परिधाय च' वाससी । पूजयेदग्न्यमालैश्च सपूष्पबलिकर्मभिः ॥२४
 ततः कुशैः परिस्तीर्णे दुत्वाग्नौ तस्य चान्तिके । देवदारसमिद्विश्च मन्त्रेणानेन तत्त्वात् ॥२५

ॐ सूर्युवः सुवरिति ततो दृशं च पूजनेत् ।

ॐ प्रजापन्ये सत्यसदाय नित्यं श्रेष्ठतरात्मन्त्सचराचरात्मन् ॥

सन्निध्यमस्मन्कुरु देव वृक्षे सूर्यावृतं मण्डलभाविशेषं नमः ॥२६

नाइ उदाच्र

एवं सम्पूजयित्वः तु वाक्यैतत्परं परिसान्देशन् । वृक्षलोकस्य शान्त्यर्थं गच्छ देशालयं शुभम् ॥२७
 देव त्वं स्थाप्यसे तत्र च्छेददात्रविवर्जितः । काले धूपप्रदानेन सपुष्यर्बलिकर्मभिः ॥२८
 लोकात्त्वां पूजयिष्यति ततो यास्तसि निर्वृनिम् । वृक्षमूले कुठारं तु धूपनाम्बैः प्रपूज्य च ॥२९
 पूर्वतस्तु शिरः कृत्वा स्थापनीयः प्रयत्नतः । परनाम्नमोदकौदिनपलपूष्यिकादिभिर्भक्ष्यैः ॥३०
 मद्यैः कुमुमैर्धूपैर्गन्धैश्च तहं समन्ब्यर्च्य । सुरपितृपिशाच्चराक्षसभुजञ्जसुरगणविनायकाद्यानाम् ॥३१
 कृत्वा पूजां रात्रौ वृक्षं संस्पृश्य च शूयात् ॥३२

पूर्ण रहने वाले वृक्ष शुभ बताये गये हैं । २०-२१। इस प्रकार कार्तिक आदि आठ मास तक ही उन वृक्ष के ग्रहण करने का विद्यान है । किसी शुभ दिन में उपवास पूर्वक वहाँ अधिवास करते हुए उस वृक्ष के चारों ओर की भूमि को गोबर से लीप कर गायत्री द्वारा पवित्र किये गये जल से उसका सेवन तथा शुक्ल एवं नवीन पद्धारे हुए दो वस्त्रों को धारण कर गन्ध, माला, धूप, एवं बलि द्वारा उसको पूजा करें । २२-२४। पश्चात् चारों ओर कुश बिछाकर उसके समीप में ही देवदार की लकड़ी की अग्नि प्रज्वलित करे और 'ओं भूर्भवः सुवरिति' मंत्र द्वारा हवन सम्पन्न कर वृक्ष की पूजा समाप्त करे । अनन्तर हाथ जोड़ कर इस भाँति कहे हैं प्रजापति के सत्य गृह के लिए है श्रेष्ठान्तरात्मन्, एवं सचराचरात्मन् !, आप के लिए नमस्कार है । हे देव इस वृक्ष में प्रवेश करो तथा सूर्य का मण्डल भी इसमें प्रविष्ट हो । २५-२६

नाइ ने कहा—इस प्रकार वृक्ष की पूजा करके उसे वाक्षो द्वारा शांति भी प्रदान करे—हे वृक्ष !
 लोक की शांति के लिए सुन्दर देवमन्दिर में चलो । २७। हे देव ! वहाँ तुम्हें इस शस्त्र के आघात जनित दाह न होगा, अपितु समय-समय पर लोग धूप, बलि, एवं पुष्यों, द्वारा तुम्हारा पूजन करेंगे । २८। जिससे तुम्हें परम निर्वृति (शांति) प्राप्ति होगी । पश्चात् वृक्ष के मूल भाग में कुल्हाड़े को रख उसकी धूप एवं मालाओं से पूजा कर पूरब की ओर शिर कर उसे सप्रयत्न वहाँ रख दे । पुनः उत्तम अन्न, मोदक, भात आमिष, मालपूरा आदि भक्ष्य पदार्थ, आसव, पुष्य, धूप, तथा गन्धों द्वारा वृक्ष के पूजन पूर्वक देव, पितर, पिशाच, राक्षस, सांप सुरगण, और विनायक आदि की पूजा करे और रात में वृक्ष स्पर्श करते हुए ऐसा

अर्चासु देवदेव त्वं देवैश्च परिकल्पितः । नमस्ते वृक्षं पूजेयं विधिवत्परिगृह्णताम् ॥३३
 यानीहू भूतानि वसन्त तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् ।
 अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु ते चाद्य नमोऽस्तु तेर्थः ॥३४
 प्रभातास्यां तु शर्वर्या पुनः सम्पूज्य तं नमम् । ब्राह्मणेभ्यस्ततो इत्ता ज्ञोजकेभ्यश्च दर्शणाम् ॥
 छिन्द्याद्वनस्पतींस्तज्ज्वरेत्ततः कृतस्वस्तिवाचने ॥३५
 पूर्वस्यां दिशि पातोऽत्य एशान्यां चापि यो भवेत् । अथवा उत्तरस्यां हुतशा छिन्द्यात्सु^१ नान्यथा ॥३६
 ऐन्द्रचैशान्योरुदीच्यां च पातस्तिसृष्टु शस्यते । नैऋत्याग्रेययाम्यासु दिक्षु पातो न शोभनः ॥
 वायव्यां चैव वारुण्यां तस्य पातस्तु मध्यमः ॥३७
 यस्य दाहास्तिथा शाखा दिक्षु नष्टा चतस्रूषु । वास्तुपूर्वं ततः स्थित्वा ततः पश्चादवस्थिता ॥३८
 अविलग्नमशब्दं तु पतनं तु प्रशस्यते । उत्पद्येद्विद्वलं पर्य द्रावश्र मधुरो भवेत् ॥३९
 सर्पिस्तैलं क्षरेद्यस्य पाहणं तं विवर्जयेत् । शुभदं यदुशार्दूलं शृणु त्वं कथये शुचि ॥४०
 वृक्षं प्रभाते सलिलैर्निषिक्तं पूर्वोत्तरस्यां दिशि सन्निकृत्य ।
 मध्वाज्यदिग्धेन बुठारकेण प्रदक्षिणां शोषमभप्रहृष्यात् ॥४१
 पूर्वोत्तरेऽप्युत्तरदिग्बिभागे पाते यदा वृद्धिकरस्तदा स्यात् ।

कहे । २९-३२ हे देवाधिदेव ! पूजन के लिए ही देवों ने आपकी कल्पना (सृष्टि) की है, अतः आप के लिए नमस्कार है । हे वृक्ष इस मेरी विधान पूर्वक पूजा को आप स्वीकार करो तथा इस (वृक्ष) में जितने (जीव) भूत, आदि रहते हों, विधान पूर्वक दी. गई इस बलि को ग्रहण करते हुए कहीं अन्यत्र अपना आवास स्थान बनावें और मुझे क्षमा प्रदान करें मैं उन्हें नमस्कार कर रहा हूँ ॥३३-३४। प्रातः मैं पुनः वृक्ष की पूजा तथा ब्राह्मणों एवं भोजकों को दक्षिणा प्रदान कर स्वास्तिक वाचन पूर्वक उस वृक्ष को किसी चतुर बढ़ड़ द्वारा कटायें । ३५। पूर्व ईशानकोण या उत्तर की ओर उसका पतन हो ऐसा समझ कर उसे काटना चाहिए अन्यथा न होने पाये । ३६। क्योंकि पूरब ईशान कोण अथवा उत्तर की ओर उसका गिरना प्रशस्त बताया गया है । उसी भाँति तैकृत्य, आग्नेय, एवं दक्षिण की ओर वृक्ष का गिरना शुभ दायक नहीं होता है । एवं वायव्य और पश्चिम की ओर गिरना मध्यम बताया गया है । ३७। इस प्रकार जिस वृक्ष की शाखा घर के चारों ओर फैल कर नष्ट हो गयी हो और घर के सर्मीप वाला वृक्ष भी जो घर के पहले से लगा हो, प्रतिमा बनाने हेतु वह भी त्याग देना चाहिए । ३८। किसी के सम्पर्क से रहित एवं शब्द-हीन (वृक्ष का) गिरना श्येयस्कर बताया गया है । जो गिरते ही दो-टुकड़े हो जायें, शहद की भाँति रस निकले धी एवं तेल, जिसमें से निकले, ऐसे वृक्ष भी वर्जित किये गये हैं । हे यदुशार्दूल ! मैं अब पवित्र एवं शुभदायक वृक्षों को बता रहा हूँ सुनो ! । ३९-४०। प्रातःकाल मैं वृक्ष को जल से सीच कर शहद तथा धी लगाये गर्य कुठार द्वारा उसके पूर्वोत्तर (ईशानकोण) में ऊपर वृक्ष प्रदक्षिणा पूर्वक सुखाने योग्य प्रहार करें । क्योंकि ईशान, एवं उत्तर दिशा की ओर यदि वह गिरता है तो बुद्धिकारक होता है और आग्नेय कोण

आशेयनेगङ्गमसोऽग्निदाह उपोपरोगा: सुधनसयश्च ॥४२

गारडे दिशि पाषाणं कपोतो गृहगोधिका । सितवर्णं जलं नेयमद्युष्ठाभं भवेत्कृमिः ॥
दोषेरेतैविनिर्मुक्तं युजा कालं समुद्धरेत् ॥४३

इति श्रीभविष्ये भगवान्महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे दारुपरीक्षावर्णनं
नामेकांश्चावधिकशततमोऽध्यादः ॥१३१॥

अथ द्वार्त्तिशादधिकशततमोऽध्यायः

श्रीसूर्यप्रतिमालक्षणवर्णनम्

नारद उवाच

हन्त ते सर्वदिवानां प्रतिमालक्षणं परम् । वच्चित्ते ते यदुशार्दूल आदित्यस्य विशेषतः ॥१
एकहस्ता द्विहस्ता वा त्रिहस्ता वा प्रमाणतः । तथा सार्द्धत्रिहस्ता च सवितुः प्रतिमा युभः ॥२
प्रसादाद्वारातो दापि प्रमाणं च प्रकल्पितम् । तद्विष्याणं कर्तव्यं सततं शुभमिच्छता ॥३
एकहस्ता भवेत्सौन्या द्विहस्ता धनधान्यदा । त्रिहस्ता प्रतिमा भानोः सर्वकामप्रदा स्मृता ॥४
सार्धत्रिहस्ता प्रतिमा सुभिक्षेमकारिणी । अपे मध्ये च मूले च प्रतिमा सर्वतः समा ॥
गान्धर्वीं सा तु विजेया धनधान्यवहा स्मृता ॥५

आदि दिशाओं में गिरे तो, क्रमशः उप्र, एवं उग्रतर रोग, किसी अच्छे धन का विनाश होता है । ४१-४२।
इसीं प्रकार गरुड़ की दिशा में गिरने से उस वृक्ष में पत्थर कपोत (कबूतर) छिपकली दिखाई देती है और
सफेद जल निकले तो अगूठे के समान कीड़े निकलते हैं इसलिए इन दोषों से मुक्त वृक्ष का (प्रतिमा के
लिए) शुभ समय में सहर्ष ग्रहण करना चाहिए । ४३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में दारुपरीक्षा वर्णन नामक

एक सौ इकतीसवर्ण अध्याय समाप्त ॥१३१॥

अध्याय १३२

श्रीसूर्यप्रतिमालक्षणवर्णन

नारद बोले—हे यदुशार्दूल ! मैं सभी देवताओं एवं चिशेषकर सूर्य की प्रतिष्ठा का उत्तम लक्षण
तुम्हें बता रहा हूँ सुनो ! ॥१॥ सूर्य की प्रतिमा एक, दो, तीन, अथवा साढ़ेतीन हाथ की लम्बी होने से शुभ
बतायी गई है ॥२॥ अतः प्रासाद या दरवाजे के प्रमाण के अनुसार प्रतिमा का भी प्रमाण शुभेच्छुकों को
निरन्तर रखना चाहिए ॥३॥ क्योंकि एक हाथ की प्रतिमा, सौम्य, दो हाथ की प्रतिमा धन-धान्य प्रदान
करने वाली होती है और तीन हाथ की सूर्य की प्रतिमा समस्त कामनाएँ प्रदान करने वाली, तथा साढ़े तीन
हाथ की प्रतिमा सुभिक्ष एवं कल्पाण प्रदान करने वाली कहीं गयी है । उसी भाँति अग्रभाग, मध्य एवं मूलभाग
में चारों ओर से सम रहने वाली प्रतिमा गांधर्वी कही जाती है, जो धन-धान्य की वृद्धि करती है ॥४-५॥

देवागारस्य यद्वारं तत्पादष्टांशुभूद्यता । त्रिभागे: पिण्डिकाः कार्या द्वौ भग्नौ प्रतिमा भवेत् ॥६
 अङ्गुलैश्च तथा सूतिश्रुतुरसीतिसमितेः । विस्तारायामतः कार्या वदनं द्वादशाङ्गुलम् ॥७
 मुखात्तिरभागैश्चिबुकं ललाटं नासिका तथा । कर्णौ नासिकया तुल्यौ पादौ चानिदौ तदेः ॥८
 नयने द्वंशुगुलं स्थातां त्रिभागा तारका भवेत् । तृतीयतारकाभागात्कुर्याद्वृष्टिं विचक्षणः ॥९
 ललाटसस्तकोत्सेष्ठं कुर्यात्तस्तमेव च । परिणाहस्तु शिरसो भवेद्वाविंशदुङ्गुलः ॥१०
 पुल्या नासिकद्वा ग्रीवा मुखेन हृदयांतरम् । मुखनात्रा ज्वेनाभिरत्तो मेद्भनन्तरम् ॥
 मुखविस्तारणमुखस्तोऽप्त्वा तु कटिः स्मृता ॥११
 बाहूप्रवाहुङ्ग्यौ तु ऊरु जड्ये च तत्समे । गुल्फाधस्तातु पादः स्यादुच्छ्रुतश्चतुरङ्गुलः ॥१२
 षडङ्गुलमुखिस्तारस्तस्यःङ्गुष्ठाङ्गुलत्रयम् । प्रदेशिनी च तत्तुल्या हीना शेषा नर्व्युर्ताः ॥१३
 चतुर्दशाङ्गुलः पाद आयामात्परिकीर्ततः । एवं लक्षणसंयुक्ता प्रतिमाचर्च्या भवेत्सदा ॥१४
 अंसौ हरेस्तथैवोरु ललाटं च त्तनासिकम् । नियते नदने गण्डौ मूर्तेः कुर्यात्समुभृते ॥१५
 विशालधबलावामपक्षभलायतलोचने । सन्त्तिताननपव्यस्य चारदिव्याद्वरस्तथा ॥१६
 रत्नप्रोद्भासिमुकुटकटाङ्गदहारवान् । अव्यङ्गपदमध्यादिसमायोज्ञोऽपि शोभितः ॥१७

इसलिए देव-मन्दिर के दरवाजे के विस्तार के थाठें भाग के समान ऊँची प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए । उसमें तीसरे भाग के समान ऊँची पिण्डिका (पूर्तिस्थापन के लिए चौकी या चबूतरा) और दो भाग के समान प्रतिमा की ऊँचाई बनाये । ६। इस भाँति अपने अंगुल से चौरासी, अंगुल की प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए जिसमें बारह अंगुल का लम्बा-चौड़ा उत्तरका मुख रहता है । ७। एवं मुख के तिहाई भाग के समान उसकी चिबुकः (ठोड़ी), और शेष के समान ललाट एवं नासिका की रचना करे । उसी प्रकार नासिका के समान दोनों कान तथा अनियत दोनों चरण और दो-दो अंगुल के नेत्र, एवं उसके तिहाई भाग के समान (आँख की) तारा और उसके तिहाई भाग में बुद्धिमत्त को दृष्टि की रचना करनी चाहिए । ८-९। यद्यपि ललाट और मस्तक की ऊँचाई समान ही होती है किन्तु शिर का घेरा बाईस अंगुल का होना चाहिए । १०। क्योंकि नासिका के समान ही ग्रीवा होती है और मुख के समान हृदय का मध्य भाग निर्मित होता है । मुख के तुल्य नाभि होती है और उसके अनन्तर मेद् (शिश्न) बनाया जाता है । तथा मुख-विस्तार के समान उत्तरस्थल (छाती) एवं उसके अर्ध भाग के समान कटि (कमर) बनती है । ११। इस भाँते लम्बे बाहू ऊरु, एवं जंधाएं समान होती हैं । गुल्फ की ऊँची चार अंगुल के ऊँचे चरण बनाये जाते हैं । १२। जो छह अंगुल के चौड़े होते हैं । चरण के अंगूठे तीन-तीन अंगुल के होते हैं । अंगूठे के समान ही तर्जनी अंगुली होती है । शेष अंगुलियाँ क्रमशः छोटी एवं सभी नख पूर्ण होती हैं । १३। और चरण की लम्बाई चौदह अंगुल की होती है । इस प्रकार लक्षणों से युक्त प्रतिमा सदैव पूर्जनीय होती है । १४। कथ्ये, ऊरु, ललाट, नासिका, नेत्र एवं गण्डस्थल प्रतिमा के ये अंग अवश्य उन्नत होने चाहिए । १५। (प्रतिमा) के विशालधबल, सुन्दर, पक्षम (बरौनी) युक्त बड़े-बड़े नेत्र हों और विकसित कमल की भाँति मुख हो जिसमें मन्द मुस्कान होती है एवं सुन्दर बिम्ब की भाँति अधर होने चाहिए । १६। रलों से अत्यन्त भासित मुकुट कड़े केपूर, विजयगढ़ और हार आदि भूषणों से भूषित उस प्रतिमा का इस भाँति निर्माण होना चाहिए जिसके मध्य भाग आदि अंग सुन्दर एवं सुडौल हों जिससे वह सौन्दर्य पूर्ण दिखायी

सुप्रभो मण्डलश्चार्द्धचित्रमणिकुण्डलः । कराभ्यां काञ्चनों मालां प्रोद्धहन्ससरोरुहाम् ॥१८
 एवं लक्षणसंयुक्तां कारयेदीहितप्रदाम् । प्रजाभ्यश्च सदा भानुः शिवारोग्याभधप्रदः ॥१९
 अल्पाइग्नायां नृपभयं हीनाइग्नायामकल्पता । खातोदर्या च क्षुत्पीडा कृशायां तु दरिद्रता ॥२०
 सक्षतायां भयं शस्त्रात्स्फुटिता मृत्युकारिणी । दक्षिणावनतायां तु शशदायुक्षये भद्रेन् ॥२१
 उत्तरायनतायां तु वियोगे भवति ध्रुवम् । नालोद्या नाप्यनालोक्या रक्ष्यामूर्तिः प्रशस्यते ॥२२
 तस्माद्वास्त्रक्षमतेन लोकदृष्टिहतैषिणा । तन्मूर्तेश्वादरः कर्यस्तदधीनास्तु सन्पदः ॥२३
 शिरोरुग्णेऽवदनैः सर्वाइग्नायवैस्तथा । एवं लक्षणसंपूर्णा प्रतिमा धृते शुभा ॥२४
 नासाललाटजड्योरुदण्डवक्षोभिर्विता । कुर्यादादित्यवेषं तु गूढपादोदरं तथा ॥२५
 कमलोदरकान्तिनिभः कञ्चुकगुप्तः प्रसन्नमुखः । रक्तोत्तलप्रभामण्डलश्च कर्तुः शुभं करोत्यकः ॥२६
 कुण्डलभूषितवदनः प्रलम्बहारोऽपि गृहदृतः । नृपतिभः व्यडग्नायां हीनाइग्नायामकल्पना कर्तुः ॥२७
 खातोदर्यां क्षद्र्यमर्थविनाशः कृशाइग्नायाम् । मरणं तु सक्षतायां शस्त्रनिपातेन निर्दिशेत्कर्तुः ॥२८
 वासोन्नता तु पत्नीं दक्षिणावनताः हिनस्त्यायुः । अन्धत्वमूर्द्वदृष्टिः करोति चिन्तामधोमुखो दृष्टिः ॥२९
 सर्वप्रतिमास्त्वेवं शुभाशुभं भास्करेणोक्तम् । लह्वा कमण्डलुकरश्चतुर्मुखः पद्मकजस्थश्च ॥३०

दे । १७। उसका चारु मण्डल सुन्दर प्रभा पूर्ण हो और विचित्र मणि कुण्डल को धारण किये, हाथों में सुर्वा की माला तथा कमल को लिए अभीष्ट प्रदान करने वाली दखायी रेती हो । ऐसी प्रजाओं के लिए सूर्य सदैव कल्याण एवं आरोग्य प्रदान करते हैं । १८-१९। उसी प्रकार प्रतिमा के अल्पांग होने पर नृप-भय, हीनांग होने पर रोग, उदर बड़ा हो तो भूख की पीड़ा, दुर्बल होने पर दरिद्रता, किसी अंग में क्षत होने पर शास्त्र से भय और फूटी-टूटी प्रतिमा मृत्यु कारक होती है दक्षिण की ओर जुकी रहने से निरंतर आयु क्षय तथा उत्तर की ओर जुकी रहने से निश्चित वियोग होता है । अन्यत्र प्रकाश पूर्ण अथवा प्रकाश हीन मूर्ति प्रणस्त नहीं होती । २०-२१। अतः मध्यवर्ग की मूर्ति रक्षा करने वाली एवं प्रणस्त कहीं गई है । इसलिए लोक द्वय के हितार्थ सूर्य गत्तों को चाहिए कि सूर्य की उस प्रतिमा का विगेष आदर-सत्कार करें क्योंकि (सुख-सामग्री) की निखिल सम्पत्तियाँ उसी (मूर्ति) के ही अधीन रहती हैं । २३। इसलिए शिर, ऊरु, गण्डस्थल, मुख एवं समस्त अंगों में युक्त तथा शुभ लक्षणों वाली प्रतिमा आप के लिए शुभ दायक होगी । २४। एवं नासिका, भाल, जाँघे, ऊरु तथा वक्षः स्थल से युक्त उस मूर्ति के चरण एवं उदर गुप्त हो ऐसा ही वेष आदित्य का बनाना चाहिए । २५। क्योंकि कमल के समान कान्ति पूर्ण उदर, कंचुकी पहिने, प्रसन्न मुख और रक्त कमल के समान प्रभा मण्डल वाली सूर्य की प्रतिमा कर्ता के लिए अन्यन्त शुभ दायक होती है । २६। जो गोलाकार मन्दिर में स्थित कुण्डल से भूषित तथा लम्बे हार से सुशोभित रहती है क्योंकि व्यंग मूर्ति से राजभय, हीनांग से रोग, गढ़े वाले उदर के निर्माण होने पर भूख से व्याकुलता, कृशांग होने से अर्थनाश, (किसी अंग में) शस्त्राधात से क्षत होने पर मरण फल, कर्ता को निश्चित प्राप्त होते हैं । २७-२८। उसी प्रकार बाईं ओर उन्नत होने से पन्नी वियोग, दाहिनी ओर उन्नत होने से आयु-नाश, ऊपर की ओर दृष्टि होने से अन्धा नीचे ओर दृष्टि होने से सदैव चित्तित होता है । २९। इस प्रकार इन समस्त प्रतिमाओं के इस शुभ एवं अशुभ कारक फलों को सूर्य ने ही स्वयं बताया है । कमल पर स्थित, एवं कमण्डलु लिए चारमुख समेत उस लह्वा की प्रतिमा का भी इसी भाँति निर्माण होना चाहिए । ३०। तथा

स्कन्दः कुमाररूपः शक्तिधरो इर्हिकेतुत्रः । शुक्लश्रुतुदिवाणो द्विषो महेन्द्रस्य बज्रपाणित्वम् ॥३१
तिर्थगूर्ध्वलत्ताटसंस्यं तृतीयमणि लोचनं चिह्नम् ॥३२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने
श्रीसूर्यप्रतिमालक्षणदर्शनं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १३२।

अथ त्रयोऽस्त्रशदधिकशततमोऽध्यायः

दिश्वरूपवर्णनम्

नारद उवाच

ततोऽधिवासनं कुर्याद्विधिदृष्टेन कर्मणा । ऐशान्यां दिशि है कुर्याद्धिवासनमण्डपम् ॥१
चतुर्स्तोरणमस्यन्नं सर्वाभरणसंयुतम् । दिशासु विदिशास्त्रेव पताकाभिस्तु भूषितम् ॥२
आग्रेयां दिशि रक्तः स्युः कृष्णः स्युर्याम्यनैर्श्रुते । श्वेता दिशपरस्यां तु कायद्यामेव पाण्डुरा ॥३
चित्रा चोत्तर पार्वते तु पीता पूर्वोत्तरे तथा । श्रियमायुर्जयं चैव बलं यशो यद्गृह्णतम् ॥४
ददाति सा वीर कृता सम्पदर्थं न संशयः । हिताय सर्वलोकानां मृष्टमयी प्रतिभा भवेत् ॥५

कुमार रूप, शक्ति के लिए और मयूर आसन एवं ध्वजा से सुशोभित ऐसी प्रतिमा स्कन्द की होनी चाहिए। इसी प्रकार शुक्र वर्ण, एवं चार दाँत वाले हाथी पर बैठे, हाथ में बज्र लिए महेन्द्र की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए । ३१। और शिव की प्रतिमा में भाल के ऊर्ध्व भाग में तीसरी तिर्छी आँख का चिह्न होना आवश्यक होता है । ३२।

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में
श्री सूर्य प्रतिमा लक्षण वर्णन नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त । १३२।

अध्याय १३३

विश्व रूप वर्णन

नारद बोले—इसके पश्चात् विधान पूर्वक अधिवासन कर्म करना बताया जाता है। अधिवासन के लिए मण्डप का निर्माण ईशानकोण में होना चाहिए । १। पुनः उसे चार तोरणों से सुसज्जित एवं समस्त आभूषणों से अलंकृत करके उसकी समस्त दिशाओं तथा विदिशाओं (कोने) को पताकाओं से विभूषित करना चाहिए । २। क्योंकि आग्नेय दिशा में रक्तवर्ण, दक्षिण एवं नैऋत्य में काले रंग, पश्चिम में श्वेत वर्ण, वायव्य में पांडुर वर्ण, उत्तर की ओर चित्र-विचित्र, ईशान एवं पूर्व की ओर पीले रंग की पताकाओं से विभूषित करना बताया गया है। हे यमदूत ! हे वीर ! लक्ष्मी प्राप्ति की कामनावश प्रतिमा के निर्माण कराने से वह भी आयु, जप, बल, एवं कीर्ति प्रदान करती है इसमें संशय नहीं। अतः समस्त लोकों के हित के लिए मिट्टी की मूर्ति होनी चाहिए । ३-५। इस प्रकार निर्माण की गई प्रतिमा नित्य सुभिक्ष

सुभिक्षेमदा नित्यं सर्वा भणिमयीकृता । गाड्गोय^१ पुष्टिदा रौप्या स्याद्वै कीर्तिप्रवर्तिनी ॥६
प्रजावृद्धिं ताम्रमयों कुर्यान्नित्यमसंशयः । भूगोलमि तु विपुलं कुर्यादशमयी सदा ॥७
प्रधानपुरुषं हन्ति चापुलोहमयी सदा । सर्वदेवमयस्यैवमर्चा कुर्यात्प्रयत्नतः ॥८

साम्ब उवाच

सर्वदेवमयत्वं हि लूहि मे भास्करस्य तु । सर्वदेवमयो ह्येष कर्यं नारद कथ्यते ॥९

नारद उवाच

साम्ब महाबाहो भृगु मे दरमं कचः । तु धूमोमौ स्मृतौ नेत्रे ललाटे चश्वरः स्थितः ॥१०
सुरज्येष्ठ शिरस्तस्य कपालेऽस्य बृहस्पतिः । एकादशं तथा रुद्रा कण्ठमस्य^२ समाश्रिताः ॥११
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव दशनेषु समाश्रिताः । धर्माधर्मौ च देवस्य ओङ्गतसम्पुटके स्थितौ ॥१२
सर्वशास्त्रमयी देवीं जिह्वायां च सरस्वती । दिशश्च विदिशश्चैव सर्वाः श्रेष्ठैः समिताः ॥१३
अहोन्नदौ तालुदेशे तु स्थितौ देवैश्च पूजितौ । अदित्या द्वादशा विभोध्वर्वार्मध्ये समाश्रिताः ॥१४
ऋग्यो रोमकूपेषु समुद्रा जन्मे स्थिताः । यक्षकिञ्चरगन्धर्वाः पिशाचा दानवात्तथा ॥१५
राक्षसाश्रव गणाः सर्वे हृदये स्युः स्थिताः रवे । नद्यो बाहुगताश्चैव नगाः कक्षान्तरे स्थिताः ॥१६
पृष्ठमध्ये स्थितो मेरः स्तनयोरन्तरे कुञ्जः । तस्य पुत्रो धर्मराजः स्थितो वै नाभिमण्डले ॥१७
कटिदेशे पृथिव्याद्या लिङ्गे सृष्टिः समाश्रिता । जानुनी चाविनीदेवावूरु तस्याचला स्मृताः ॥१८

एवं क्षेम (कल्याण) प्रदान करती है। और सुवर्ण की प्रतिमा पुष्टि, चाँदी की प्रतिमा कीर्ति, तांदि की प्रतिमा सन्तान वृद्धि, पत्थर की प्रतिमा, सदैव अत्यन्त भूमि लाभ, एवं शीशे तथा लोहे की सूर्ति प्रधान पुरुष का नाश किया करती है। इसलिए देवगण (सूर्य) की अर्चना प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए। ६-८

साम्ब ने कहा—हे नारद ! ‘भास्कर सर्वदेवमय हैं’ इसे तथा सूर्य का सर्वदेव-मय होना भी आप मुझे बतायें। ९

नारद बोले—हे महाबाहो ! साम्ब ! मेरे उत्तम वचनों को सुनो ! (सूर्य के) बुध, एवं सोम नेत्र हैं ईश्वर (शिव) मस्तक में स्थित हैं। १०। उसी प्रकार शिव में ब्रह्मा, कपाल भाग में बृहस्पति, कण्ठ में एकादश रुद्र, दाँतों में नक्षत्र एवं ग्रह, ओङ्ग पुट में धर्म-अधर्म, एवं जिह्वां पर सर्वशास्त्रमयी सरस्वती का निवास है। एवं कानों में सभी दिशाएँ, एवं उपदिशाएँ (कोने) स्थित हैं। ११-१३। तालु प्रदेश में देवों द्वारा पूजित ब्रह्मा तथा इन्द्र सुशोभित हैं, उन विभुं सूर्य के भौहों के मध्य भाग में बारह आदित्य स्थित हैं। १४। रोम कूपों में ऋषिगण, जठर में समुद्र, तथा हृदय में यक्ष, किञ्चर, गन्धर्व, पिशाच, दानव, एवं समस्त राक्षस गण स्थित हैं। एवं बाहुओं में नदियाँ, कक्ष (कौरव) में पर्वत, पीठ के मध्य भाग में मेर, स्तनों के मध्य भाग में मंगल, नाभि-मण्डल में उनके पुत्र धर्मराज स्थित हैं। १५-१७। कटि प्रदेश में पृथिवी आदि, लिंग में सृष्टि, जानु (घुटने) में अश्विनी कुमार, तथा ऊँ प्रदेश में पर्वतों की स्थिति

सप्त पाताललोकास्तु नखमध्ये समाश्रिताः । सप्तागरबना पृथ्वी पादमध्येऽस्य वर्तते ॥१९
देवः कालाप्तिरुद्गो यो दन्ताल्लेषु समाश्रितः ॥ सर्वदेवमयो भानुः सर्वदेवात्मकस्तथा ॥२०
व्यगेषु वायवश्चैव लोकालोकं चराचरम् । व्याप्तं कर्मशारीरेण वायुना तस्य वै विभेदः ॥२१
स एष भगवानर्कों भूतानुग्रहणे स्थितः । एतते परमं ज्ञानमेतत्ते परमं पदम् ॥२२
तस्य स्थानविभागेन प्रतिमास्थापनं यथा । तते सर्वं प्रवक्ष्यामि यथोक्तं ब्रह्मणा पुरा ॥२३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्म पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपास्याने प्रतिमाप्रतिष्ठाकल्पे
विच्छृङ्खपर्वणं नाम अयस्त्रिशदधिकशततमोऽध्यायः । १३३।

अथ चतुर्स्त्रशदधिकशततमोऽध्यायः

मण्डलविधिवर्णनम्

नारद उवाच

प्रतिपञ्च द्वितीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा । दशमी अशोदशी चैव वौर्णमासी च कीर्तिता ॥१
सोमे बृहस्पतिश्च शुक्रश्चैव बुधस्तथा । एतं सौम्या ग्रहाः प्रोक्ताः प्रतिष्ठायज्ञकर्मणि ॥२
त्रिषूतरासु रेवत्यामधिन्यां ब्राह्मणे तथा । पुनर्वस्वोस्तथा हस्ते दासवे' श्रवणेऽयत्वा ॥

बतायी गई है । १८। इस भाँति नख के मध्य में पाताल आदि सात लोक स्थित हैं । इनके चरण के मध्य भाग में सागरों एवं जंगलों समेत पृथ्वी रहती है । १९। और दाँतों के अन्त में कालान्नि रुद्र देव वर्तमान हैं । इस प्रकार सर्वदेवमय भानु सर्वदेवात्मक कहे जाते हैं । २०। प्रकाशित अप्रकाशित चर-अचर स्थानों में व्याप्त वायु की भाँति सूर्य कर्म शारीर रूपी वायु द्वारा समस्त लोकों में व्याप्त हैं । इति भाँति वायु भी उन्हीं के अंग का निवासी है । २१। इस प्रकार भगवान् सूर्य जीवों के ऊपर, अनुग्रह करने के लिए ही स्थित हैं और यही तुम्हारे लिए परम ज्ञान एवं परम रूप हैं । २२। स्थान विभाग द्वारा जिस प्रकार उनकी प्रतिमा की स्थापना (प्रतिष्ठा) की जाती है, उसे ब्रह्माने पहले समय में जैसे बताया था, मैं उसे उसी ढंग से तुम्हें बताऊंगा । २३

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपास्यान के प्रतिमा प्रतिष्ठा कल्प में
विश्व रूप वर्णन नामक एक सौ तैतीसवाँ अध्याय समाप्त । १३३।

अध्याय १३४

मण्डल विधि वर्णन

नारद बोले—प्रतिपदा, द्वितीया, चतुर्थी, पञ्चमी, दशमी, अशोदशी, तथा पूर्णिमा तिथियाँ (प्रतिष्ठा के लिए) शुभ बतायी गई हैं । १। सोम, बृहस्पति, शुक्र, तथा बुध दिन प्रतिष्ठा रूपी यज्ञ में सौम्य ग्रह कहे गये हैं । २। इसी प्रकार तीनों उत्तरा, रेवती, अश्विनी, रोहिणी, पुनर्वसु, हस्त, पुष्य,

१. पुष्येण ।

भरण्या चैव नक्षत्रे भानोः^१ स्थापनमुत्तमम्
 शोधयित्वा तु वै भूमि तुष्केशन्दिवाजताम् । वालुकाङ्गारपाषाणास्थिविहीनां विशेष्य तु ॥४
 च्छुहस्तसमायुक्ता वेदी विस्तरतो रवे:^२ ॥५

मण्डपस्तु प्रमःगेन दशहस्तः उभंततः । मण्डलं वृक्षशाखाभिः कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥६
 नदीसङ्गमतीरोत्था गृहितकां^३ च समानयेत् । उपलिप्य ततो भूमिं कारयेत्कुण्डमुत्तमम् ॥७
 चतुरव्यं श्रिया युलं पूर्वं कुण्डं दु कारयत् । दक्षिणे वार्धचन्द्रं स्याद्वाहण्डं दिशं वर्तुलम् ॥८
 अद्याकारं तु वै कुर्यादुत्तरे^४ च विचक्षणः । तेऽरणानि ततः कुर्यात्पञ्चहस्तानि सुव्रत ॥९
 अग्रोधो दुन्द्वरौ चैव बिल्वपालशमेव च । अध्यथव्यं शमी चैव चन्द्रनश्चेति कीर्तिः ॥१०
 शुक्लवस्त्रसमायुलश्चिप्रपट्टसमन्वितः । जपमालान्वितः कुर्यात्तीरणानि विचक्षणः ॥११
 अशिमीठेति मन्त्रेण यजेद्वै पूर्वतोरणम् । इषेत्वोर्जेति मन्त्रेण यजेद्विक्षिणतोरणम् ॥१२
 अप्य आयाहीति मन्त्रेण पश्चिमं तु समर्चयेत् । शं नो देवीति मन्त्रेण यजेदुत्तरतोरणम् ॥१३
 कलशास्तु समादाय हेमगर्भसमन्वितान् । श्वेतचन्दनपङ्केन कण्ठत्वस्तिकभूषणान् ॥१४
 घवशालिशराद्वन्नवस्त्रालङ्कारविग्रहान् । अजिद्रेति च मन्त्रेण कलशास्तु निवेशयेत् ॥१५
 दुकौलश्चित्रपट्टैश्च वेष्टयेत्तत्त्वशमालिकाम्^५ । ध्वजादर्शपताकाभिश्चान्मरैस्तु वितानकैः ॥१६
 शङ्खघण्टानिनादैश्च गेयमङ्गलवाचनैः । तूर्यभेरीनिनादैश्च वेदध्वनिसमन्वितैः ॥१७

श्वरण, और भरणी नक्षत्रों में सूर्य की प्रतिष्ठा उत्तम बतायी गयी है । ३। ऐसी भूमि का, जिसमें तुष (भूसी), केश, बालू, कोयला, पत्थर, एवं हङ्गिड़ीयाँ न हों, संशोधन करके उसमें चार हाथ की विस्तृत वेदी बनाये । ४-५। मण्डप का प्रमाण दश हाथ का बताया गया है । उसमें विद्यान् पूर्वक वृक्ष की शाखाओं का मण्डल भी बनाना चाहिए । ६। नदी के संगम के तीर के पास की मिट्टी लाकर, भूमि को (गोबर से) लीप कर उसमें उत्तम कुण्ड बनाये । ७। पूरब की ओर चौकोर, एवं सुन्दर कुण्ड की रचना करके, दक्षिण में अर्धचन्द्र, पश्चिम में वर्तुल (गोलाकार) और बुद्धिमान् को चाहिए कि उत्तर में कमल के समान आकार के कुण्ड बनायें । हे सुव्रत ! उस मण्डल में पाँच हाथ का तोरण होना चाहिए । ८-९। बरगद, गूलर, बेल पलाश, पीपल, शमी, एवं चन्दन वृक्ष तोरण के लिए प्रशस्त बताये गये हैं । १०। शुत्र वस्त्र, चित्र (विचित्र) पट्टों से विभूषित, एवं जपमाला समेत तोरण पण्डितों को बनाना चाहिए । ११। ‘अग्नि मीठे’ इस मंत्र द्वारा पूर्व वाले तोरण की पूजा करके, ‘इषेत्वोर्जेति’ मंत्र से दक्षिण वाले ‘अग्न आयाहि’ इस मंत्र से पश्चिम वाले तथा ‘शं नो देवी’ ति मंत्र द्वारा उत्तर वाले तोरण की पूजा करनी चाहिए । १२-१३। एवं उनके भीतर रखे गये सुवर्ण समेत कलशों का जिनके कंठ श्वेत चन्दन द्वारा रचित स्वस्तिका से अलंकृत हों और जवा, या चावल भरे शराबों (कसोरों) एवं अन्न-वस्त्रों तथा अलंकारों से सम्पूर्ण शरीर सुसज्जित हों ‘अजिद्रेति’ मंत्र द्वारा स्थापन करना बताया गया है । १४-१५। पुनः चित्र-विचित्र वस्त्रों से मण्डप के स्तम्भों को आवेष्टित करने के उपरान्त ध्वजा, दर्पण, पताका, चामर, एवं (चाँदनी) से मण्डप सुशोभित करते हुए शंख, धंटा, मांगलिक पाठ, तुरही, दुन्दुभी, आदि वाद्यों की ध्वनियों से निनादित, तथा पुण्यवेद

१. रवे । २. भवेत् । ३. वालुकां च । ४. उत्तरेण । ५. तान्सुमयगलम् ।

पुण्यैश्च जयशब्दैश्च कारयेत महोत्सवम् । पताकभिविचित्राभिः पूजामाल्योपशेभितम् ॥१८
 विचित्रस्त्रगिवतानाद्यं प्रकीर्णकुमुनाद्यकुरम् : तन्मध्ये तु कुशास्तीर्णे देवाचार्च स्थापयेद्बुधः ॥१९
 पताकां पीतवर्णां तु पूर्वे शक्राय दापयेत् । आपेयां रक्तवर्णाभां^३ यमोपमाम्^३ ॥२०
 नीलाञ्जनसमप्रस्था नैश्चित्यां च प्रदापयेत् । वाहृष्यां सितवर्णां च कृष्णां दायव्योगेचरे ॥२१
 हरितां दक्षराजाय ऐशान्यां रववर्णाकाम् । श्वेतरक्तकृष्णेन पद्मालेखयेत्तः ॥२२
 वैद्या वेदीति मन्त्रेण वैद्या आलभनं भवेत् । पूर्वग्रानुनराग्रांश्च कुशानास्तीर्णे यत्लतः ॥२३
 योगेयोगेति मन्त्रेण कुशैश्चास्तरणं भवेत् । इव्या तत्रैव कर्तव्या दिव्यास्तरणसंलग्ना ॥२४
 गडुदे द्वे विचित्रे तु तन्मध्ये स्थापयेद्बुधः । निचित्रदीपमालाभिर्भक्ष्यभोज्यान्नपानकैः ॥२५
 पूषपकान्सुदिचित्रान्वै मोदकांश्च प्रदापयेत् । पायसं कृशरं चैव दध्योदनसमन्वितम् ॥२६
 दधि चन्द्रसमप्रस्थं शुभ्यच्छत्रं च विन्यसेत् ॥२७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे दाह्ये पर्वीण सप्तमीकल्पे साम्बोपास्याने सूर्यप्रतिष्ठायां
 मण्डलविधिन्वनं नाम चतुर्स्त्रशदधिकशततमोऽध्यायः । १३४।

ध्वनि द्वारा मुखरित उस महोत्सव को जय जय (कार) शब्दों के महान् कोलाहल समेत सुसम्पन्न करना चाहिए इसी प्रकार विचित्र पताकाओं से भूषित, पूजा की मालाओं से मुणोभित एवं अन्य मालाओंसे अलंकृत उस लम्बी चौड़ी चाँदीना (चैदोवा) में बिसरे हुए कोमल कली वाले पुष्पों से सुसज्जित उस मण्डल के मध्य में कुणा का स्तरण बिछौना बना कर उसको पुष्पों से आच्छादित करके प्रतिमा पण्डितों को स्थापित करनी चाहिए । १६-१९। तथा पीले रंग की पताका पूरब की ओर इन्द्र के लिए, लाल रंग की पताका आग्नेय में, यम की भाँति काले रंग की पताका दक्षिण की ओर, नील-कृष्ण रंग की पताका नैऋत्य में, उज्ज्वल वर्ण की पताका पश्चिम में कालेरंग की पताका वायव्य में हरे रंग की पताका कुबेर के लिए उत्तर की ओर, और समस्त रंगों की पताका ईशान में रखनी चाहिए । अनन्तर श्वेत एवं रक्त (रंग) के चूर्ण द्वारा कमल की रचना 'वैद्या वेदी' इस मंत्र द्वारा वेदी का आलंभन करे । पश्चात् उस वेदी पर पूरब एवं उत्तर की ओर अग्रभाग करके प्रयत्न पूर्वक कुशा बिछायें जिसमें कुश का स्तरण (बिछौना) बनाते समय 'योग योग' इस मंत्र का उच्चारण कहा गया है । अतः दिव्य बिछौने से सुसज्जित वहाँ एक शश्या स्थापित करके, उसके मध्य भाग में पंडित को चाहिए कि दो तकियां भी रखें । तुपुरांत विचित्र दीप माला, भक्ष्य-भोज्य, अन्नपान, मालपूआ, उत्तम मोदक के साथ खीर, कृशर (खिचड़ी), दही, भात, तथा दही और चन्द्रमा की भाँति शुभ छत्र भी वहाँ उपस्थापित करें । २०-२७

श्रीभविष्य महापुराण में दाह्य पर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपास्यान के सूर्य प्रतिष्ठा में
 मण्डलविधि वर्णन नामक एक सौ चाँतीसवाँ अध्याय समाप्त । १३४।

१. अग्नये इत्यर्थः । २. याम्यायां यमसंनिभाम् । ३. यमोपमां कृष्णाम् । यमायेति शेषः ।

अथ पञ्चांत्रशद्धिकशततमोऽध्यायः प्रतिष्ठास्नानविधिवर्णनम्

नारद उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्नानकर्मविधिं तव । रनापकल्तु महाप्राज्ञो ब्राह्मणो वेदपारगः ॥१
 अभिज्ञः सौरशास्त्राणामरुणो यदुसत्तम् । भोजको भोजकेश्वर्यैर्ब्रह्मणैश्च तथा वृतः ॥२
 दिशाभागे भञ्ज्डतस्य ईशाने वै यथाक्रमम् । हस्तमात्रप्रमाणं तु भद्रपीठं दु विन्यसेत् ॥३
 हस्तिना शकटेनपि शक्त्या ब्रह्मरथेन च । मंगलैर्भ्रह्मणोर्खैश्च देवं प्रापादमानयेत् ॥४
 भद्रपीठं समादाय भद्रं कर्णेति मन्त्रतः । सूक्तधारस्तथा प्रोक्ताः सुक्लान्वरधरः शुचिः ॥५
 रनापयेत्कलशं गृह्ण देवदेवं विभावसुम् । सामुद्रं तेयमाहृत्य जात्रवं यामुनं तथा ॥६
 सारस्वतं जलं पुण्यं चान्द्रभागं समन्धवम् । पुष्करस्य जलं श्रेष्ठं गिरिप्रस्त्रवणोदकम् ॥७
 अन्यद्वपि शुचि तोयं नदीनदत्तजागजम् । यथाशदत्या उपाहृत्य कलशैः काञ्चनादिभिः ॥८
 भोजकाश्राष्ट्रभिः सूर्यं कलशैः लापयन्ति वै । ततस्तु मणिरत्नानि सर्वबीजौषधीस्तथा ॥९
 सुगन्धीनि च माल्यानि स्थलजान्यम्बुजानि च ! चन्दनानि च मुख्यानि गन्धाश्च विविधास्तथा ॥१०

अध्याय १३५ प्रतिष्ठा स्नानविधि का वर्णन

नारद बोले—इसके उपरान्त सूर्य स्नान-विधानकं मैं तुम्हें बताऊँगा सुनो ! । १। जो महानुद्धिनान्, ब्राह्मण, वेदनिष्णात, एवं सौर (सूर्यसम्बन्धी) शास्त्रों का भली भाँति जाता हो ऐसे किसी भोजक को भोजक या अन्य ब्राह्मण लोग सूर्य के स्नान कराने के लिए नियुक्त करें । २। पुनः मंडल के ईशान कोण में एक हाथ के प्रमाण का भद्रपीठ (सुन्दरआसन) रख कर उसी पर बैठाकर स्नान कराने के हेतु, हाथी गाढ़ी अथवा ब्रह्मरथ (ब्राह्मण के द्वारा ले जाये जाने वाले) द्वारा सूर्य की वह प्रतिमा मांगलिक ब्रह्मघोष पूर्वक वहाँ (स्नान गृह में) ले जायें और 'भद्रं कर्णे' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उस पीठासन पर पूर्ति स्थित कर सूत्र एवं पवित्र शुभ्र वस्त्र धारण कराकर उन देवाधिदेव सूर्य का स्नान कलश के जल द्वारा सुसम्पन्न करायें जो पवित्र समुद्र गंगा एवं पुण्य जल यमुना, सरस्वती चन्द्रभागा, सिंधु, पुष्कर तथा पर्वतों के झारनों और अन्य भी नदी, नद, एवं तालाबों से यथाशक्ति सुवर्ण आदि के कलशों में लाकर रखे गये हों । ३-८। भोजक लोगों को उन आठ कलशों के जल से सूर्य का स्नान कराना बताया गया है उन जल पूर्णकलशों में मणि, रत्न, सर्व बीज, सर्व औषधियाँ सुगन्धित मालाएँ, स्थल कमल मुख्य चन्दन और भाँति-भाँति के गंध, ब्राह्मी, सुवर्चला (सोंचर नामक नमक), मुस्ता (मोथा), विषुक्रान्ता (अपराजिता), शतावरी, दूर्वा, शिवी पुष्पी (गुल्मानामक औषध), प्रियंगु, रजनी (पर्षटी नाम

आही सुखर्चला मुस्ता विष्णुकान्ता गतावरी । द्रूर्वा च शिबिपुष्पी च प्रियहृग् रजनी वचा ॥११
 सम्भृत्यतांनु सम्भारः न्नानकर्मविभः गविद् । बलाश्वत्थशिरीषाणां पल्लवैः कुशसंयुतैः ॥१२
 कलशोऽपि विन्यस्य द्यावद्यर्थं रवेः तदा । काञ्चनै राजतैस्ताञ्छ्रूष्टमयैः कलशैस्तथा ॥१३
 साक्षतैः सहिरप्येत्र सर्वोषधिसमन्वितैः । गायत्र्या परिपूतैस्तु षोडशैः आपयेद्रविन् ॥१४
 कुशोत्तरां ततः कृत्वा वैदेष्वेष्टकानयीम् । तस्यां वेद्यां सनातोप्य परिधाप्य च वाससी ॥१५
 प्रतिमामभिषिञ्चेच्च शोणवासः प्रयत्नतः । मूर्धन्स सर्वोषधीः कृत्वा तथैदामलकानि च ॥१६
 मन्त्रेण सृत्किंचं चापि मन्त्रतश्च जलं ल्यथ । त्वं देवी इन्दिता देवैः स्तकलैर्देव्यदानवैः ॥१७
 तेन संस्थापिता भूर्निं मदा देवस्य शुद्धये । आदिस्त्वं सर्वशूतानां देवतानां च सर्वशा ॥१८
 रसानां पतये तुम्यमाह्वानं च कृतं मया । इत्यं पौराणिकैर्मैत्रैविदिकैश्च विशेषतः ॥१९
 कार्यं हि वारुणं स्नानं देवस्य यदुन्दनं । इत्थमुच्चारयेद्वाचु कुरुत्क्षानं विचक्षणः ॥२०
 देवास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मवेणुशिवादयः । व्योमगङ्गा च पूर्णं द्वितीयकलशेन तु ॥२१
 सारस्वतस्य पूर्णं कलशेन सुरोत्तमं । शङ्कादयोभिषिञ्चन्तु लोकपळाः सुरोत्तमाः ॥२२
 सागरोदककूर्णेन चतुर्थकलशो न तु । ब्राह्मणा परिपूर्णेन पश्चपत्रमुगन्धिना ॥२३

वाली, वच, ये वस्तुएँ पहले अवश्य डाल देनी चाहिए ।, क्योंकि स्नान विधान के ज्ञाता को ऐसा करना आवश्यक बताया गया है । और बरगद, पीपल, एवं शिरीष के कोमल पल्लव तथा कुश, इन्हें कलश के ऊपर रखकर सूर्य के लिए सदैव अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । इस प्रकार मुवर्ण, चाँदी, ताँबी, या मिट्टी के कलशों में अक्षत, मुवर्ण, तथा सर्व औषधियाँ डाल कर गायत्री मंत्र से पवित्र किये गये उन सोलहों कलशों के जल से सूर्य का स्नान कराना चाहिए । १-१४। पश्चात पक्की ईटों से निर्मित वेदी पर कुण्ठ बिछाकर दो दस्त्रों को धारण कर उस प्रतिमा को स्थापित करें । १५। और उपवास रहते हुए स्वयं उत्त मूर्ति का अभिषेक करे । अभिषेक विधान में सर्वप्रथम सर्व औषधियों तथा आमले को शिर पर रखने के उपरान्त मिट्टी एवं जल को इन मंत्रों के उच्चारण द्वारा पवित्र करें—हे देवि ! समस्त देव तथा दानवों की तुम वन्दनीया हो । १६-१७। इसीलिए सूर्य प्रतिमा की शुद्धि के लिए मैंने पहले इसे शिर पर ही स्थापित किया है, समस्त भूत (प्राणी) एवं देवताओं की तुम आदि हो और रसों की स्वामी हो इसीलिए तुम्हें मैंने यहाँ आवाहित किया है । हे यदुनन्दन ! इस प्रकार पौराणिक एवं विशेषकर वैदिक मंत्रों द्वारा उनका वारुण (जल) स्नान कराये और अपने स्नान करते समय भी इसी प्रकार उच्चारण करते रहना चाहिए । १८-२०। हे सुरोत्तम ! अभिषेक के समय पुनः प्रार्थना करें, ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव तथा आकाश गंगा आदि देवता तुम्हारा अभिषेक करे, ऐसा कहते हुए दूसरे कलश के जल से स्नान कराये । २१। सारस्वत- जल से पूर्ण तीसरे कलश द्वारा देवश्रेष्ठ इन्द्र आदि लोकपाल तुम्हारा अभिषेक करें । २२। सागर से भरे जल चौथे कलश के जल से सुगन्धित कमल-पत्र एवं पूर्ण पाँचवें कलश के जल से नाग लोक तुम्हारा अभिषेक करे ऐसा कह कर चौथे पाँचवें कलश के जल से स्नान कराये एवं हेमकूट

१. चतुरस्त्राम् ।

पञ्चमेनाभिषिञ्चन्तु नागाश्च कलशेन तु । हिमवद्धेमकूटाद्याश्चाभिषिञ्चन्तु वारिणा ॥२४
 नैऋतोदकपूर्णेन षष्ठेन कलशेन तु ! सर्वतीर्थम्बुपूर्णेन पवरेणुसुवासिना ॥२५
 सप्तमेनाभिषिञ्चन्तु क्रष्णः सप्त ये वराः । वसवश्राभिषिञ्चन्तु कलशेनाष्टमेन वै ॥२६
 अष्टमङ्गलयुक्तेन देवदेव नमोऽस्तु ते । ततो वै कलशैदिव्यैः स्नानकर्म समारभेत् ॥२७
 समुद्रं गच्छ यः प्रोक्तो मन्त्रमेतमुद्दीरयेत् । हिरण्यगङ्गेति च यो मन्त्रस्तं समुदीरयेत् ॥२८
 समुद्रज्जेठोर्तं मन्त्रेण क्षालयेन्नृत्तिकार्नवतम् । सिनीवालीति मन्त्रेण दद्याद्वल्मीकमृतिकम् ॥२९
 शम्भुदुम्बरमश्व त्यं न्यग्रोधं च पलाशकम् । यज्ञं यज्ञेति मन्त्रेण दद्यात्पञ्चकषायिकम् ॥३०
 पञ्चगव्यं पवित्रं च आहरेत्ताप्रभाजने । गायत्र्या चैव गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम् ॥३१
 आप्यावस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्येति वै दधि । तेजोऽसीति वृतं तद्वदेवस्य त्वा कुशोदकम् ॥३२
 एवमादिविधियुतं पञ्चगव्यं प्रकीर्तितम् । यः^१ ओषधीति मन्त्रेण स्नानमोषधिभिः क्रभात् ॥३३
 द्वुपदाभिः पुनस्तस्य कुर्याच्चोद्वर्तनं बुधः । शिरः स्नानं ततो दद्यान्मानस्तोकाभिमन्त्रितम् ॥३४
 विष्णोरराटरत्रेण दद्याद्वगन्धोदकं शुभम् । ततो नद्युद्धवेनैव क्षालयेच्छुद्धवारिणा ॥३५

हिमवान् नैर्न्दत्य दिशा में रखे गये छठवें कलशों से तुम्हारा अभिषेक करें ऐसा कहते हुए छठे कलश जल में स्नान करायें । और सभी तीर्थों के जल से पूर्ण, एवं कमल-पराग में दासित उस सातवें कलश के जल से सातों क्रृषि गण दुम्हें अभिषिक्त करें । ऐसा कहकर सातवें कलश के जल से तथा आठमंगलों से युक्त उस आठवें कलश जल द्वारा आप का अभिषेक करें अतः देवाधिदेव ! आप के लिए नमस्कार है । इस भाँति की विनम्र प्रार्थना के उपरांत उन आठों दिव्य कलशों के जल से क्रमशः स्नान कराये । २३-२७। ‘समुद्रं गच्छें’ वि ‘हिरण्य गर्भं’ ति, तथा ‘समुद्र ज्येष्ठे’ ति, इन मंत्रों के उच्चारण पूर्वक उस मूर्ति के शरीर में लगायी गई मिट्टी का प्रक्षालन (स्नान) करना बताया गया है । इसलिए ‘सिनी वाली’ ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक मूर्ति के अंगों में बल्मीकि की मिट्टी लगानी चाहिए । २८-२९। इस प्रकार ‘यज्ञ यज्ञे’ ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक शमी, गूलर, पीपल, बरगद, एवं पलाश, इन पांचों का कषाय (काढा) बनाकर उसे मूर्ति के शिर पर सर्वप्रथम डालने को कहा गया है । ३०। पञ्चात् पवित्र गव्य को ताँबे के पात्र में रखे और उससे स्नान कराये जिससे क्रमशः गायत्री पंत्र के उच्चारण पूर्वक प्रथम गोमूत्र, ‘गंध द्वारे’ ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक गोमय (गोबर), ‘आप्यास्वे’ ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक दूध दधिकाण्येति के उच्चारण पूर्वक दधि, ‘तेजोऽसी’ ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक धी, और उसी प्रकार ‘देवस्य त्वे’ ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक गुशोदक रखा गया हो । ३१-३२। इसे ही पंत्रगव्य बताया गया है । तदनन्तर ‘या ओषधी’ ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक क्रम प्राप्त ओषधि से स्नान कराये । ३३। और ‘द्वुपदाभिरिति’ मंत्र के उच्चारण पूर्वक पंडित को चाहिए कि उस (मूर्ति) का उद्वर्तन (अंगों को मलें) करें । पञ्चात् ‘मानस्तोके’ इस मंत्र से अभिमंत्रित जल से उस (मूर्ति) का शिरः स्नान करावें । ३४। और उसके अनन्तर ‘विष्णो राट’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक गन्धोदक से, पुनः नदियों के शुद्ध जल से, और ‘जात वेदसम्’ इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक वस्त्र-पूत (कपड़े

१. आपो हिष्टेति क्रृचा ।

जातवेदसमुच्चार्य वस्त्रपुतेन वारिणा । तत अचाहयेदेवं रक्तमाल्याम्बरं शुभम् ॥३६
 एहेहि भगवन्भानो लोकानुग्रहकारक । यज्ञभागं गृहाणार्थमर्कदेव नमोऽस्तु ते ॥३७
 हिरण्येन तु पात्रेण देवायार्थं प्रदापयेत् । इदं विष्णुविचक्रमे मन्त्रेणार्थं समर्पयेत् ॥३८
 पार्थिवैः प्रथमं कलशैः स्नापयेद्भूम्बरैर्वीरं राजतैस्तदनन्तरम् ॥३९
 ततस्तु काञ्चनदर्वकं स्नापयेद्युदुनन्दनः । सर्वतीर्यजलैर्युक्तं स्वर्वषधिसमन्वितम् ॥४०
 शङ्खमादाय^१ देवस्य ततो मूर्धनि शङ्खकर । दन्त्वा पुष्पाणि देवस्य मूर्धन यत्नादेवक्तणः ॥४१
 तोयमुत्किष्य यत्नेन ततः ऋषनमाचरेत् । प्रथमं स्नापयेदेवं वारिणा युदुनन्दन ॥४२
 ततस्तु पयसः राजन्याथसेन ततस्तु वै । धृतेन मधुना वापि तथा इक्षुरसेन च ॥४३
 अग्निष्ठोमस्य यज्ञस्य गोमेधस्य^२ च सुव्रत । ज्योतिष्ठोमस्य राजेन्द्र वाजपेयस्य वै विभो ॥४४
 राजसूयाध्वमेधार्थां धृताद्यैर्भते फलम् । यस्तु कारयते स्नानं यस्तु भक्त्या प्रपश्यति^३ ॥४५

य एते कथिता यज्ञा एतेषां क्रमशः फलम् । अर्चां च कुरुशार्दूल दृष्ट्वा वै लभते फलम् ॥४६
 स्नानं तु यत्नतः कार्यं देवदेवस्य सुव्रत । यथा न लङ्घयेत्कश्चिद्देवस्य स्नपनं यिभोः ॥४७
 न प्राशनन्ति यथा काकस्तीर्थं लोकनिर्गहिताः । ज्ञानोदकं तु देवस्य अथवा गय एव हि ॥४८

से छाने गये) जल से क्रमशः स्नान कराये । (इस भाँति सविधि स्नान कराने के उपरांत) लाल रंग के वस्त्र एवं उसी रंग की माला से सुमन्जित कर उसमें प्रति देवता का आवाहन करे । ३५-३६। हे भगवन् ! आइए, आइए ! (इस मूर्ति में अपनी स्थिति कीजिए) लोक के अनुग्रह करने वाले हे देव यज्ञ-भाग रूप अर्थं को ग्रहण कीजिए । ३७। हे सूर्य देव ! आप के लिए नमस्कार है । इस प्रकार कहते हुए सुवर्ण के पात्र में सूर्य देव के लिए अर्थं पदान करे । और अर्थं देते समय 'इदं विष्णुर्मिचक्रमे' इस मंत्र का उच्चारण करता रहे । ३८। सर्व प्रथम मिट्ठी के कलशों के जल से पंडितों को चाहिए उनका अभिषेक करें । हे वीर ! हे युदुनन्दन ! पश्चात् चाँदी, एवं सुवर्ण के कलश-जलों से क्रमशः उनका अभिषेक करें । हे शंकर ! तदनंतर उस शंख के जल से, जिसमें समस्त तीर्थों के जल एवं समस्त ओषधियाँ पड़ी हों, उस मूर्ति के शिर का स्नान करायें और स्नान के समय बृद्ध-जन को चाहिए कि उस प्रतिमा के शिर पर पुष्प रख कर जल को ऊपर उठाये हुए (वारिधारा से) भ्नान करायें । ३९-४१। ये युदुनन्दन ! इसी प्रकार सर्वप्रथम उस मूर्ति का जल से स्नान, पश्चात् धृथ, दही, धी, शहद और ऊख के रस से क्रमशः स्नान करायें । ४३। हे सुव्रत, हे राजेन्द्र ! अग्निष्ठोम, गोमेध, ज्योतिष्ठोम, बाजपेय राजसूय तथा अश्वमेध, इन यज्ञों से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे समस्त फल, इस प्रकार धृतादि द्वारा (देव के) स्नान कराने से प्राप्त होते हैं । ४४-४५। हे कुरुशार्दूल ! उस पूजा-विधान के देखने पर भी वे फल प्राप्त होते हैं । ४६। हे सुव्रत ! देवाधिदेव (सूर्य) का इस भाँति प्रयत्न पूर्वक अभिषेक कराना चाहिए, जिससे कोई भी उस विभु (व्यापक) देव के स्नान कराये गये जलादि का उल्लंघन न करे । ४७। उसी भाँति लोक निन्दित करें कुत्ते भी देव के

मूर्खो गतं यथा चैव प्राइनाति यदुनंदन । रोगं प्राप्नोति कर्ता वै दुःखं कारयिता तथा ॥४९
 तस्माद्यतेन कर्तव्यं देवस्य स्नपनं विभोः ॥५०

स्नापयित्वा क्रमेणेत्यं स्नानकर्म विधानवित् । ततो वर्धनिकां गृह्य शारिधारां समुत्सृजेत् ॥५१
 त्रिवारारात्युरतोऽर्कस्य आचमस्त्वेति च ब्रुवन् । देवोत्तीति च मन्त्रेण उपशीतं प्रदापयेत् ॥५२
 बृहस्पतेति मन्त्रेण वस्त्रयुग्मं प्रदापयेत् । यत्लक्ष्मं प्रकुर्वणः पुष्ट्यमालां प्रदापयेत् ॥५३
 पूरसीति च मन्त्रेण धूपं दद्यात्सगुगमलद्^३ । समिदोऽजनमन्त्रेण अञ्जनं तु प्रदापयेत् ॥५४
 युञ्जनानीति च मन्त्रेण रोचनां तस्य दापयेत् । आरार्तिकं च वै कुर्याद्विर्धायुष्ट्यदाय वर्चसे ॥५५
 स्नानकर्म त्विदं प्रोक्तं भास्करस्य महात्मनः । भोजका ब्राह्मणाश्चैव क्रियां कुर्वुः प्रयत्नतः ॥५६
 बहूद्योऽर्थवर्णश्चैव छन्दोगोऽध्वर्युर्वेदं च । स्नापकस्य च चिह्नानि ये च सूतिधरात्मतथा ॥५७
 तेषां प्रवक्ष्यामि विभो शृणु चैकमताः किल ! सम्पूर्णगात्रो मतिमाङ्गास्त्रज्ञः प्रियदर्शनः ॥५८
 कुलीनः श्रद्धानश्च आर्यदेशस्मुद्भूवः । न स्थूलो न कृशो दीर्घः स्तैरशास्त्रविशारदः ॥५९
 यश्च प्रुतो जितात्मा च गुरुभक्तो जितेन्द्रियः । अच्चानशनितस्त्वज्ञः स्थापकः समुदाहृतः ॥६०
 वर्जनीयांश्च वक्ष्यामि धैर्यतु कर्म न कारयेत् । होनाङ्गश्चाधिकाङ्गश्च वामनो विकटस्तथा ॥६१
 नातिगौरो न कृष्णांश्च स्नापनाय प्रयोजयेत् । चार्वाको याजकश्चैव नित्यं गोमुखदम्भकः ॥६२

स्नान कराये गये दूध या जल का पान न कर सके । ४८। हे यदुनंदन ! क्योंकि भूमि में गिरे हुए उस दूध आदि का पान यदि कोई (निन्दित जीव) करता है, तो कर्ता रोगी हो जाता है और उसके कराने वाले को दुःख की प्राप्ति होती है । ४९। इसलिए विभु सूर्य को स्नान प्रयत्न पूर्वक (गुप्त स्थान में) कराना चाहिए । ५०। इस प्रकार क्रमः स्नान कराने के उपरात विधानवेता 'वर्धनिका' (अर्घपात्र) द्वारा वारिधारा समर्पित करके 'आत्मस्व' ऐसा कह कर तीनबार देवता के सामने जल गिराये । पश्चात् 'नैदोऽसी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक यज्ञोपवीत, 'बृहस्पते' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक दो वस्त्रों को धारण कराना चाहिए । तदुपरांत पुष्ट्यमाला, 'धूरसी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक गुग्गुल की धूप, 'समिदोऽज्जल' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक अंजन, 'युञ्जनी' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक रोचना (तिलक) 'दीर्घायुष्ट्याय वर्चसे' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक आरती करनी चाहिए । ५१-५५। महात्मा सूर्य का स्नान कर्म इसी प्रकार सुसम्पन्न करना बताया गया है । अतः भोजक और ब्राह्मणों को प्रयत्न पूर्वक इस क्रिया की समर्पित करनी चाहिए । ५६। हे विभो ! स्नापक (स्नान कराने वाले) के लक्षण अब मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! बहवृच (ऋग्वेद), अर्यवेद, छन्दोग (सामवेद) अध्वर्यु यजुर्वेद, इनके ज्ञाता, समस्त अंगों से युक्त, बुद्धिमान् शास्त्र-कुशल, सुन्दर, कुलीन, श्रद्धालु, आयावर्त देश में उत्पन्न, न स्थूल (मोटा), न दुर्बल न लम्बा, सौर शास्त्रों का ज्ञाता, अध्यात्मशील, संयमी, गुह्यक्त, जितेन्द्रिय तथा पञ्चीस तत्वों (सांख्यशास्त्र) का पूर्ण पंडित, एवं गुण सम्पन्न स्थापक होना चाहिए । ५७-६०। मैं उन्हें भी बता रहा हूँ जिहें यज्ञ कर्म न करना चाहिए सुनो ! जो अंगहीन, अधिक अंग वाला, वामन (मोटा), विकट (भयंकर), अति गौर वर्ण, अथवा अन्यन्त काले वर्ण का हो, ऐसे लोगों को स्नापक न बनाना चाहिए ।

अशुचिक्षतसंयुक्तः श्यामदन्तोऽथ मत्सरी । कोपनो^२ दुष्टशीलश्च युवा वा बृद्ध एव च ॥६३
क्रिवत्री कुष्ठी च रोगी च काणे दुर्भितिरेव च । संकीर्णो जातिहीनश्च तथा न वृषलीपतिः ॥६४
कुञ्जश्रांघस्तथा व्यंगः खत्वाटो विकलेन्द्रियः । अविनीतो दुरात्मा च चिकलः पङ्गुरेव च ॥६५
तिथिनक्षत्रयोगानां वाराणां च तथा विभो । सूचको जीविकार्थे^३ हि यश्च भूल्येन पाठ्येत् ॥६६
ईदृशास्त्रापकान्सर्वज्ञदेवत प्रयत्नतः । तत्मात्सर्वप्रयत्नेन परोक्ष्याः स्नापका बुधैः ॥६७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वति सप्तमीकल्ये सांबोपाल्याने
सूर्यप्रतिष्ठास्तान्-विधिवर्णनं नामं षट्क्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १३५।

अथ षट्क्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यप्रतिष्ठावर्णनम्

नारद उदाच

अतः परं प्रबक्ष्यामि अधिवासनमुत्तमम् । सहस्रशीर्षा पुरुषो मण्डप घतनतो विशेषत् ॥१
ततोऽन्ये च शुचौ देशे असंस्पृष्टोपलेपने । मण्डलं पञ्चवर्णस्तु आलिखेच्छदुरक्षकम् ॥२
पताकातोरणच्छत्रध्वजमाल्याद्यलंकृतम् । विचित्रसुवितानादध्यं प्रकीर्णकुसुमोत्करैः ॥३

चाराक (नास्तिक) माचक, गौ के समान मुख वाला, दम्भी, अपवित्रतापूर्ण, काले दाँतों वाला, मत्सरी, क्रोधी । कुशील, युवा, बृद्ध, सफेद कुष्ठ, रोगी, काना, दुर्बुद्धि, संकीर्ण जाति, जातिहीन, शूद्र जाति की स्त्री का पति, कुबड़ा, अंधा, व्यंग, खत्वाट, विकलेन्द्रिय, शठ, दुरात्मा, विकल, पंगु, (लंगड़ा) तथा हे विभो ! तिथि, नक्षत्र, योग एवं दिनों की सूचना देकर अपनी जीविका करने वाला, और मूल्य ग्रहण कर पाठ करने वाला इस प्रकार के सभी व्यक्तियों को स्नापक होने के लिए निषेध किया गया है । इसलिए विद्वानों को चाहिए कि समस्त प्रयत्नों से उनकी परीक्षा करके उस कार्य के लिए नियुक्त करें । ६-६७

श्री भविष्यमहापुराण में वाहूपर्व के सप्तमीकल्ये के शास्त्रोपाल्यान में
सूर्यप्रतिष्ठास्तान-विधि वर्णन नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त । १३५ ।

अध्याय १३६

सूर्यप्रतिष्ठा का वर्णन

नारद बोले—इसके उपरान्त मैं तुम्हें उत्तम अधिवासन का विधान बता रहा हूँ । मुनो ! ‘सहस्रशीर्षपुरुषः’ इस मन्त्र के उच्चारणपूर्वक मण्डप में प्रवेश कर उस पवित्रस्थान में लेपन करके पाँच रंगों द्वारा चौकोर मण्डल की रचना करे । १-२ । पुनः पताका, तोरण, छत्र, ध्वजा एवं मालाओं से उसे अलंकृत करके चित्र-चित्रवस्त्र के सुन्दर विंतान (उपर की चाँदनी) से भूषित करे जो बिल्ले हुए अधिखिले दिव्य, न अधिक उज्ज्वल, एवं न अधिक रक्त वर्ण के शुभ उस केंचुल को सूर्य ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए अपने मध्य भाग में बौध लिया । नागराज के अंग (शरीर) से उत्पन्न उसे सूर्य के धारण करने के नाते (सूर्य) के भक्त भी

तस्य मध्ये कुशास्तीर्णं मूर्तिः स्थाप्या विवस्तः । तत्रास्यावाहनं कृत्वा दद्यादर्थं विवस्तते ॥४
 सुवर्णमधुपर्कादि कृत्वा^१ तत्र विधानतः । देवस्य^२ दर्शयेदग्नं च सवत्सां रोहिणीं शुभाम् ॥५
 नमो गोपतये तुम्यं सहवाङ्गे प्रसीद मे । एवमर्घ्येण भम्पूज्य परिधाय च बाससी ॥६
 यज्ञोपवीतमातिथ्यं तथाभ्यङ्गं तथैव च । बत्सरे बत्सरे तस्य नदमव्यङ्गमाहरेत् ॥७
 श्वावणे मासि राजेन्द्र पवित्रं तस्य तांद्रे वै । लाहूगान्भेजयित्वः तु वर्षेवर्षे प्रयोजयेत् ॥८
 अंव्यङ्गं यदुशार्दूलं श्वावणे मासे शस्त्ररम् । र्वगन्धे: सस्तत्स्य चन्दनागुरुकुद्धकुम्भः ॥९
 अलड्कारैरलड्कत्य कुटुम्बेशं सुगन्धिभिः । मालाभिश्च विचित्राभिरावद्वाभिरनेकशः ॥१०
 ततो धूपं निवेद्याशु प्रतिमाप्ने प्रथत्वतः । सहस्रशीर्षा पुरुषो मण्डपं च प्रवेशयेत् ॥११
 नमः शम्भवेति मन्त्रेण शव्यायां विनिवेशयेत् । विश्वतश्चकुरित्येव कुर्यात्कमलनिष्कलम् ॥१२
 पुनरेव च वद्यतामि मङ्गलीकरणं शुभम् । स्नाप्येन तु यथाकार्यः स्वेदेहे न्यासं उत्तमः ॥१३
 प्रतिमायां तथा कार्यो यथा चालम्भनं बुधः । ॐ हुं खषोल्काय नमो नूलमन्त्रः प्रकीर्तिः ॥१४
 आदित्योदयं स्वयं देवो हृक्षरेणोपबृहितः । ॐकारं विन्यसेन्मूर्धिन हुकारं नासिकोपरि ॥१५
 खकारं च ललाटे तु खकारं वदने न्यसेत् । लकारं चैव कंठे तु ककारं हृदये न्यसेत् ॥१६

पृष्ठों से सुगोचित किया गया है । ३। उपरात उसके मध्य भाग में कुश का स्तरण (विछौना) बनाकर सूर्य की मूर्ति उस पर स्थापित करे और आवाहन पूर्वक उहें अर्थं प्रदान करे । ४। तदनन्तर सुवर्ण तथा मधुपर्क आदि विधान पूर्वक प्रदान कर बछड़े समेत शुभ एवं कल्याण मूर्ति गाय का दर्शन उन्हें कराये । ५। तुम्हें गोपति को नमस्कार है, हे सहस्राशो ! मेरे ऊपर आप प्रसन्न हो—यह कहते हए अर्थं द्वारा उनकी पूजा करें उन्हें दो वस्त्र धारण कराये । ६। पञ्चात् यज्ञोपवीत, अःयग, एवं आतिथ्य सक्तार से उन्हें रात्कृत करना चाहिए । इस प्रकार प्रत्येक वर्ष में उन्हें नया-नया अस्त्रं प्रदान करना चाहिए । ७। हे राजेन्द्र ! वह अस्त्रं उन्हें श्वावण मास में समर्पित करना बताया गया है क्योंकि उनके लिए वह पवित्रता की वस्तु कही गयी है । इस भाँति प्रति वर्ष ब्राह्मण भोजन पूर्वक उसे सादर समर्पित करना चाहिए ऐसा कहा गया है । ८। हे यदुशार्दूल ! इस भाँति श्वावण मास में सूर्य के लिए वह अस्त्रं जिसमें समस्त गंध, चन्दन, अगुरु, एवं कुकुम पड़ा हो, समर्पित कर सुगन्धित पृष्ठों एवं चित्र-विचित्र मालाओं से उन्हें आबद्ध करते हुए उस (प्रतिमा) के सामने सप्रयत्नं धूप समर्पित करना चाहिए । पुनः ‘सहस्रशीर्षा पुरुषः’ मंत्र का उच्चारण करते हुए उस प्रतिमा को मंडप में प्रविष्ट कराये । ९-११। और ‘नमः शंभवे’ ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक उसे शश्या पर स्थापित करे । ‘विश्वतश्चकुरि’ ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक कमलासन पर रखकर शुभ संकलीकरण (न्यास) करे । उसे मैं बता रहा हूँ । सुगो ! स्नान के समय अपनी देह में जिस भाँति-न्यास किया जाता है, वैसे ही उस मूर्ति के अंगों का न्यास करते हुए आलम्भन भी उसी भाँति करें । उसके लिए ‘ओ हुं खषोल्काय’ यही मूल मंत्र बताया गया है । १२-१४। उसे अनश्वर सूर्य देव के ओकार से शिर, हुकार से नासिका के अग्रभाग, खकार से ललाट, खकार से मुख, लकार से कण्ठ, ककार से हृदय, यकार से बाईं भुजा, नकार से दाहिनी भुजा, मकार से बाईं कुक्षि, एवं विसर्ग से दाहिनी कुक्षि के

यकारं तु भजे वाने नकारं दक्षिणे भुजे । मकारं वामकुक्षौ च दिसर्गं दक्षिणे त्यसेत् ॥१७
 अंकारं तु सदा ध्यायेज्ज्वालामालासमाकुलम् । हुङ्कारं शुद्धवर्णाभं प्रसुवन्तमलं शुभम् ॥१८
 खकारं चिन्तयेत्प्राज्ञो भिन्नाज्ज्वनसमप्रभम् । तरुणादित्यवर्णाभं खकारं चिन्तयेद्बुधः ॥१९
 षोकारं तु महाबाहो हेमवर्णं विचित्येत् । शुक्लपद्मिभालःरस्कारं चिन्तयेद्बुधः ॥२०
 जातीयक्षुभसकाशं ह्रीकारं सर्ववर्णकम् । क्षीरवर्णं सकारं तु चिन्तयेत्सततं बुधः ॥२१
 नकारं हिम्कुन्दाभं मकारमभृताक्षरम् । ह्रीकारं विद्युत्संकाशं ह्रीकारं सर्ववर्णकम् ॥२२
 क्षीरवर्णं सकारं तु चिन्तयेत्सततं बुधः । नकारं स्वर्णवर्णाभं षकारं कनकप्रभम् ॥२३
 ततो देवं महात्मानं सहस्रकिरणं रविम् । प्रसादाभिमुखं देवं शयनीये निवेशयेत् ॥२४
 अग्निकार्यं ततः कुयुरन्निकुण्डेषु वै द्विजाः । ततोऽरज्यां समुत्थाय अग्निं लौकिकमेव वा ॥२५
 प्रज्ज्वाल्याग्निं विधानेन कुर्याद्दोमं दिवक्षणः । बहवृचः पूर्वकाण्डेषु याम्यां सध्यनिदनस्तथा ॥२६
 पश्चिमे चैव छन्दोग उत्तरेऽर्थवर्णो मतः । मध्ये च भोजकः कुर्याद्दोमं यज्ञे यदुत्तम् ॥२७
 शर्मीपालाशोदुम्बराणि ह्यप्रभास्त्यैव च । द्वादशा तु सहस्राणि अष्टौ चत्वारि एव च ॥२८
 द्वे त्रीणि च सहस्राणि अथ वा एकमेव हि । अग्निर्घृतं मन्त्रेण कुण्डस्यालम्भन भवेत् ॥२९
 उल्लस्याम्युक्ष्य तेनैव अग्निं द्रूतमिति स्मृताः । सम्बूध्यस्वाग्ने मन्त्रेण गर्भाधानं तु करयेत् ॥३०

न्यास (स्पर्श) करना चाहिए । १५-१७ उपरात्त ज्वाला रूपी माला से आच्छन (अत्यन्त प्रदीप्त)
 रूप ओकार का सदा ध्यान करे और शुद्ध वर्ण के समान प्रभापूर्ण, अत्यन्त शुभा वह हुङ्कार का एवं अंजन
 (काले) वर्ण के टुकड़े के समान कांति पूर्ण इस खकार का चित्तन प्राज्ञ को करन्त चाहिए । जो तरुण सूर्य
 की प्रभा के समान तेज युक्त है । १८-१९। हे महाबाहो ! सुवर्ण के समान कांति वाले षोकार तथा श्वेत
 कमल की भाँति अकार का भी ध्यान करना बताया गया है । २०। तथा चमेली के पुष्प की भाँति
 सर्ववर्णक ह्रीकार, क्षीर के समान वर्ण वाले सकार हिम एवं कुंड की भाँति नकार, अमृत की भाँति मकार,
 विद्युत तथा सभी वर्णों के समान ह्रीकार, क्षीर वर्ण के समान सकार, एवं सुवर्ण के समान नकार और
 मकार का भी ध्यान करना चाहिए । २१-२३। इसके उपरात्त सहस्र किरण वाले उन प्रसन्नतोन्मुख
 महात्मा सूर्य देव को उस हाथ पर शयन कराकर ब्राह्मण दृढ़ों द्वारा अग्निकुण्ड में अग्नि कार्य सुसम्पन्न
 करना चाहिए जिसमें अरणि द्वारा अग्नि उत्पन्न कर अथवा लौकिक अग्नि को प्रज्वलित करके विधान
 पूर्वक विद्वानों को हवन संपन्न करना बताया गया है । २४-२५। उनमें ऋग्वेदी को पूर्व के कुण्ड में,
 माध्यान्दिन वाले को दक्षिण कुंड में सामवेदी को पश्चिम के कुण्ड में, और अर्थवेदी को उत्तर वाले कुण्ड
 में हवन करना चाहिए । और हे यमद्रूतम ! मध्यस्थायी कुंड में भोजको को हवन करना चाहिए
 । २६-२७। हवन के लिए अग्नि में शर्मी, पलाश, गूलर, और चिचिड़ा की लकड़ी को प्रज्वलित कर उसमें
 बारह, आठ, या चार सहस्र अथवा दो तीन या एक ही सहस्र आहुति डालनी चाहिए । ऐसा बताया गया
 है । सर्वप्रथम 'अग्निं मृष्टं' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक कुण्ड का आलम्भन करके उल्लेखन तथा अम्युक्षण
 (सिचन) भी 'अग्निं द्रूतं' मिति मंत्र के द्वारा सम्पन्न करना चाहिए । एवं 'संबूध्यस्वाग्ने' इस मंत्र के
 उच्चारणपूर्वक गर्भाधान कराना चाहिए । २८-३०। पुनः 'सीमन्तेति' इस महामंत्र के द्वारा हवन सम्पन्न

सीमन्तेति पुनस्तत्र महामन्त्रेण होमयेत् । जातकर्म तथा प्रोक्तं प्राणायत्मं दिवुर्बुधाः ॥३१
 नमः स्वाहेति मन्त्रेण नामकरणमेव च । अन्नप्राशनमन्त्रेण अन्नप्राशनमादिशेत् ॥३२
 ज्येष्ठमग्रेति मन्त्रेण तेन चूडोपकर्मणि । व्रतबन्धस्य मन्त्रेण व्रतबन्धं समादिशेत् ॥३३
 तमावर्तनमित्येव आकृष्णेति च होमयेत् । पल्लीसंयोजनं चैव स्वदनेव प्रकल्पयेत् ॥३४
 अग्निहोत्रादिकं कर्म यज्ञकर्माणि याति च । महाव्याहृतिमन्त्रेण होतव्यानि समन्ततः ॥३५
 मातृ॒गां यज्ञभूतानां बलिकर्म प्रदापयेत् । सर्वकामस्तमृद्धयर्थं कारयेदधिवासनम् ॥३६
 त्रिरात्रं पञ्चरात्रं च अहोरात्रमथापि वा । ततः स्वलङ्घृता स्नातां भणिरत्नैर्विभूयिताम् ॥३७
 कृतरक्षां प्रयत्नेन प्रतिमामधिवासगेत् । देवागारादथैशादेऽदिशागे दिव्यमन्दिरम् ॥३८
 कृत्वा कुशपरिस्तीर्णं वरास्तरणसंदृते । पूर्वशीर्षा तथा शाय्यां शुक्लां शुक्लान्बरोत्तराम् ॥३९
 तस्यामावेशयेतस्म्यङ्गम्हाष्टेतमुपाहरेत् । निष्कृशः^१ दक्षिणे पार्श्वे वामे राज्ञी च कीर्तिता ॥४०
 दण्डपिङ्गालकौ चास्य स्थितौ पादप्रवेशितौ । तस्यां संवेशितायां तु शर्वद्या प्रतिमां रवेः ॥४१
 वसेतां रजनीं तत्र स्तूयमानश्रवुर्दिवश्चापि गीतज्ञैश्चारणैततथा ॥४२
 कुर्याज्जागरणं तत्र सूर्यभक्तिसमन्वितेः । प्रभातायां तु शर्वद्या बोधयेद्विविधानतः ॥४३

करे पश्चात् उसी भाँति जातकर्म और प्राणायाम के करने को विद्वानों ने बताया है । ३१। फिर 'नमः स्वाहे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनका नामकरण, अन्नप्राशन-मंत्र का उच्चारण करते हुए अन्नप्राशन 'ज्येष्ठ मग्रे' ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक चूडाकरण एवं व्रत-वंधके मत्रों से व्रतबंध (यज्ञोपवीत) करके 'आकृष्णे' ति मंत्र के उच्चारणपूर्वक हृवन कर्म जो समावर्तन कर्म कहा गया है सुसम्पन्न करे । तदुपरांत पल्ली संयोजन (विवाह) विधान स्वयं संग्रह करना चाहिए । ३२-३४। इस प्रकार अग्नि होमादि कर्म एवं यज्ञ कर्म बताये गये हैं उन सभी स्थानों में 'महाव्याहृति' मंत्र द्वारा हृवन संपन्न करना चाहिए । ३५। तदनन्तर मातृकाओं और यज्ञ-भूतों के लिए बलि प्रदान करके समस्त कामनाओं के सुसमृद्ध होने के लिए प्रतिमा का अधिवासन कर्म करना आवश्यक होता है । ३६। इस भाँति तीन, पाँच अथवा एक ही दिन रात तक स्नान पूर्वक मणि-रत्नों से विभूषित एवं संप्रयत्न रक्षित उस प्रतिमा का अधिवासन कर्म सुसम्पन्न करना चाहिए । देवमन्दिर के ईशान भाग में एक दिव्यस्थान की रचना करके उस पर कुश विछाकर एक गुक्रवर्ण की शय्या रखे जिसका शिरोभाग पूरब की ओर हो, एवं शुद्ध वस्त्रों तथा उत्तम स्तरणों से वह सुसज्जित हो । ३७-३९। उसी पर उस सूर्य की प्रतिमा का शयन कराये जिसमें प्रतिमा की दाहिनी ओर निश्चुभा और बाई ओर राज्ञी के स्थित करने का विधान बताया गया है । ४०। उसी प्रकार उस (मूर्ति) के चरण के समीप में दंड, तथा पिंगल को स्थित करे । प्रतिमा के उस शय्या पर शयन करने के समय से प्रारम्भ कर शयन की समस्त रात चारों ओर से स्तुति करते हुए व्यतीत करे क्योंकि ब्राह्मण, बंदी, एवं गीत जानने वाले चारण लोगों को सूर्य की भक्ति पूर्वक गुण-गान द्वारा जागरण करते हुए उस रात का अवसान करना बताया गया है । पुनः प्रातःकाल क्रग्वेद के विधान द्वारा उन्हें जागृत करना

हविष्यं भोक्तुकामांस्तु ब्राह्मणान्मोजकांस्तथा ! दक्षिणाभिश्च सम्पूज्य हैः कृतस्वस्तिवाचनः ॥४४
 ततो गर्भगृहस्याय मध्ये कृत्वा तु पिण्डिकाम् । विधिवत्तद्र सौवर्णं न्यसेत्सप्तहयं रथम् ॥४५
 सर्वबीजौषधैश्चैव तत्र धृत्वा विधानवित् । दत्त्वार्थं स्थापयेत्तत्र यजमानः सहायवान् ॥४६
 शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैजैलधारासहास्तैः । कृत्वा पुष्पाहशब्दं तु आलयस्य प्रदक्षिणाम् ॥४७
 मुभलग्ने दिने श्वसे पूर्वाह्लि भानदे क्षणे । मुहूर्ते च शुभे भानोः प्रतिमां स्थापयेद्बुधः ॥४८
 नाधोमुखीं नोर्ध्वमुखीं न पश्चावनतां तथा । समामभिमुखीं चेमां प्रतिमां तु लिङ्गेशयेत् ॥४९
 पत्यौ चास्य ततः सम्प्रस्पाशर्योर्विनवेशयेत् । निष्ठभा दक्षिणे पाशर्वं रथे राजी तु बास्तः ॥५०
 ततस्तदुपहारार्थं सम्भारः प्राक्ससद्गृहतः । भोदकायूषिकापूरपशङ्कुलीःभूतशीर्षकैः ॥५१
 कृशरैः पायसोन्मिश्रैः सर्वदिक्षु क्षिपेद्वलिम् । इन्द्रय देवपतये बलिने वच्छपाणये ॥५२
 शतयज्ञाधिपतये तत्सै इन्द्राय ते नमः । त्रातारःमिन्दमन्त्रेण इन्द्रस्यावाहनं भवेत् ॥५३
 अग्नये रक्तनेत्राय ज्वालामालर्दिताय दै । शक्तिहस्ताय तीठाय तथा चैवाजवाहिने ॥
 अत्प्रेय्यामग्रिमन्त्रेण वह्नेरावाहनं सूतम् ॥५४
 दण्डहस्ताय कृष्णाय महिशोत्तमवाहिने । सूर्यपुत्राय देवाय धर्मराजाय वै नमः ॥५५
 यमाय त्विति मन्त्रेण मुद्रास्तस्यैव कीर्तिताः । नैर्कृते लङ्घहस्ताय नीललोहितकाय च ॥५६

चाहिए । ४१-४३। इस भाँति हविष्य भोजन के इच्छुक उन ब्राह्मणों एवं भोजकों की दक्षिणा समेत पूजा करके उनके द्वारा स्वस्ति वाचन कराये । ४४। और गर्भ गृह के मध्य में पिण्डिका (वेदी या चौकी) रख कर उस पर सुवर्ण के सात धोड़े समेत उस सुवर्ण निर्मित रथ की स्थापना करे । ४५। और सविधान समस्त बीज एवं औषधियां रख कर वहाँ पली समेत यजमान को सूर्य के लिए अर्घ्य प्रदान करना चाहिए । ४६। तदुपरांत शांख एवं नगाड़े की गम्भीर ध्वनियों एवं अक्षत समेत जल धारा के प्रदान पूर्वक मांगलिक शब्द के उच्चारण करते हुए मन्दिर की प्रदक्षिणा करे । ४७। विद्वान् को चाहिए कि शुभलग्न, नक्षत्र एवं दिन के पूर्वद्विंश समय किसी शुभ मुहूर्त में सूर्य की प्रतिमा की स्थापना करें । ४८। प्रतिमा का मुख नीचे, ऊपर न हो तथा किसी पाशर्व भाग में वह झुकी न हो । इस प्रकार समान तथा संमुखी प्रतिमा स्थापित करनी चाहिए । ४९। पश्चात् उस मूर्ति के दोनों पाशर्व भाग में उनकी दोनों पत्तियों का सन्निवेष स्थापित करे जिसमें सूर्य के दाहिने पाश्र्व में निकुञ्जा और बायां पाश्र्व में राजी की स्थिति हो । ५०। उसके अनन्तर उनके उपहार के लिए एकत्र किये गये सामग्री संभार में से मोदक रसदार बने भोज्य मालपूआ, शङ्कुली (प्रूरी) भूत शीर्षक एवं कृशराज, इन्हें स्त्रीर समेत सभी दिशाओं में देवों के उद्देश्य से बलिरूप में रखे । उसमें विधानानुसार देवपति, बली, वज्रपाणि एवं सौ यज्ञों के अधिपति उस इन्द्र के लिए नमस्कार है, यह कहकर इन्द्र के लिए बलि प्रदान करें और ‘त्रातारमि’ ति इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक इन्द्र का आवाहन भी किया जाय । ५१-५३। रक्तनेत्र, ज्वालाओं की माला से पूर्ण, हाथ में शक्ति लिए, तीव्र, अज (छाग) वाहन वाले उस अग्नि के लिए नमस्कार है, इसके उच्चारण पूर्वक अग्नि के लिए बलि तथा ‘आग्नेय्यामि’ ति अग्नि के मंत्र द्वारा उनका आवाहन करे । ५४। हाथ में दंड लिए, कृष्ण वर्ण, विशाल महिष वाहन वाले, सूर्य पुत्र, एवं देव धर्मराज के लिए नमस्कार है, ऐसा कहते हुए धर्मराज के लिए बलि प्रदान करने एवं ‘यमायत्वि’ ति मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनका आवाहन तथा उन्हें मुद्रा प्रदर्शित करे । हाथ

सर्वदाह्याधिपतये विरूपस्थाय वै नमः । आयं गौरिति मन्त्रेण नैऋत्यां दु प्रकल्पयेत् ॥५७
 दाह्यां पाशहस्ताय वरुणायेति कल्पयेत् । मन्त्रेणावाहनं विद्यात्सञ्चनद्यः सरस्वतीम् ॥५८
 प्राणाभ्यकाय धूपाय अव्यङ्गायानिलाय च । ध्वजहस्ताय भीमाय नमो गन्धवहय च ॥५९
 तस्यावाहनं विद्याद्येकाटवेडम् । गदाहस्ताय सोमाय शुभ्मिणे नृशताय च ॥६०
 गदाधृष्टहस्ताय सोमरजाय वै नमः । इशावास्य द्व गुहा वै सोऽस्मन्त्रः प्रकीर्तिः ॥६१
 चतुर्द्वाय देवाद् रद्मासनगताय च । कृष्णाजिननिषण्णाय नमो लक्ष्मोहराय च ॥६२
 गणाधिपतये देव नीलकण्ठाय शूलिने । विहृताक्षाय रुद्राय त्रेतोक्षाधिपते नमः ॥
 अभिरुद्धा शूर नो मन्त्र ईशानाय प्रकल्पयेत् ॥६३
 सर्वनाराधिराजाय श्वेतवर्णाय भेगिने । सहस्रणिने नित्यमनन्ताय नमेनम् ॥६४
 नमोऽरुद्धु सर्पेभ्य इति मन्त्रश्चैव प्रकीर्तिः । पञ्चरात्रादिभिन्नासो हृंगन्यासः प्रधुञ्जते ॥६५
 तथोऽक्षीरपानेश्च स्तुतिस्तोत्रैश्च भास्तरम् । विप्रेभ्यो भोज्ञेभ्यश्च ततो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥६६
 सूर्यकृतुं महापुण्यं नैव कृद्यादक्षिणाम् । स्थाप्यतेऽनेन विधिना तद्वक्तः प्रतिमा च या ॥६७
 सा तु वृद्धिकरा नित्यं सानिन्द्याच्च सदा ल्पवेत् । सप्तजन्ममुतेषां तु न रोगः सम्भवन्ति हि ॥६८
 उपास्तं विरात्रं दे भानोद्यत्राभिवासने । गन्धमाल्योपहारेत्तु ते यान्ति भुद्वनं रथे ॥६९

में खंड़ लिए नील, एवं लोहित (रक्त) वर्ण वाले, समस्त बाहा के अभिनायक उस विरूप के लिए नमस्कार है, यह कहते हुए उन्हें बल प्रदान करे और 'आयं गौरी' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनका आवाहन करके नैऋत्य दिशा में उन्हें स्थापित करे । ५५-५७। उसी भाँति पाश हाय में लिए उनके लिए पश्चिम दिशा में बलि प्रदान करते हुए 'पं चनद्यः सरस्वतीम्' इस मंत्र से उनका भी आवाहन करना चाहिए । ५८। प्राणात्मक, धूप, अस्यांग, हाथ में ध्वजा लिये गन्धवह वायु के लिए नमस्कार है, इसके उच्चारण पूर्वक वायु के लिए बलि प्रदान एवं, 'यद्देवादेवज्ञे इनमि' ति मंत्र द्वारा उनका आवाहन करे । गदा हाथ में लिए तोम तेजस्वी लूप तथा गदापटि ट्शा धारण किये उस सोमराज को नमस्कार है, ऐसा कहकर सोमराज को बलि प्रदान करे । 'ईशावास्य च गुहा' यह उनके आवाहन का मंत्र है । ५९-६१। चारमुख कमलासन पर स्थित तथा काले मृगचर्म पर बैठे उस लम्बोदर देव को नमस्कार है, ऐसा कहकर लम्बोदर के लिए बलि प्रदान करके पुनः गाँड़ों के अधिनायक, नीलकंठ, शूल अस्त्र, विरूपाक्ष, तीनों लोकों के अधिपति, उस रुद्र देव के लिए नमस्कार है, यह कहकर उन्हें बलि प्रदान करे । और 'अभित्वा शूर नो' यह उनके आवाहन करने का मंत्र है । ६२-६३। समस्त नागों के अधीश्वर, इवेत वर्ण वाले, भोगी, सहस्रकण वाले, उस अनंत देव को नित्य नमस्कार है । ऐसा कहकर अनंत के लिए बलि प्रदान पूर्वक, 'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः' इस मंत्र से उनका आवाहन करे । इस प्रकार पाँच रात तक उनके अधिवासन समय में अंगन्यास करते रहना चाहिए । ६४-६५। तथा सूर्य के लिए क्षीरका पान समर्पित करते हुए स्तोत्रों द्वारा उनकी स्तुति करते रहें । पश्चात् बाह्यणों एवं भोजकों को दक्षिणा प्रदान करें । ६६। इस प्रकार सूर्य का यह यज्ञ महान् पुण्य दायक बताया गया है अतः उसे कभी भी दक्षिणा हीन सम्पन्न नहीं करना चाहिए । क्योंकि जो सूर्य भक्त इस विद्यान द्वारा सूर्य की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करता है तो वह प्रतिमा नित्य वृद्धि कारक-होती है, और उस मूर्ति के सान्निध्य में सूर्य देव सदैव वर्तमान रहते हैं तथा उसके सुसम्पन्न करने वाले को सात जन्म तक रोगाभिन्न नहीं होना पड़ता है । ६७-६८। और जो तीन रात तक उनके अधिवासन में गंधमाला रूप उपहार पूर्वक उनकी उपासना करता है उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । ६९।

आत्मीयं परकीयं वा प्रतिमास्थापनं रद्देः । यः पश्यति पुमान्भक्त्या स स्वर्लोकमवाप्नुयात् ॥७०
दशानामश्मेधानां वाजपेयशतस्य च । कल्तं प्राप्नोति पुरुषः प्रतिष्ठाप्य दिवाकरम् ॥७१
यावत्कीर्तिः पुण्यकृता भानोः स्थाने निवेशिते । तावत्स तु यदुश्रेष्ठं सूर्यलोके महीयते ॥७२
स्थापते चास्य वै मन्त्रः प्रोक्तो लोकेषु पूजितः । ध्रुवा धौश्रू ध्रुवा पृथ्वी ध्रुवं विद्मिदं जगत् ॥
श्रेयसे यजभानस्य तथा त्वं ध्रुवतां ध्रज् ॥७३

स्थापयित्वा र्त्वं भक्त्या विधिवृष्टेन कर्मणा । भासे भासे ऋतुफलं लभन्ते नात्र संशयः ॥७४
एकाहेनापि यद्गानोः पूजया प्राप्यते फलम् । न तु क्रतुशतैर्वीरं प्राप्यते मानवैर्भुवि ॥७५
कृत्यापि सुमहत्यापं यः पश्चात्सेवते इविम् । इति याति सूर्यलोकं तु नरो विगतकल्पसः ॥७६
न भवेदिष्टकानां च द्रवणं भूमिर्सीमति । स्वर्णं नहीयते तावत्कारको देववेशमनः ॥७७
खण्डस्फुटितसंस्कारं कृत्वा यत्कल्पमाप्यते । न तु क्रतुसहस्रैस्तु प्राप्यते फलमुत्तमम् ॥७८
सिक्तायामपि गृहं यस्तु कुर्याद्विभावसोः । गोपतेः स प्रियसः ग्राच्छेदं गोपतेर्वरम् ॥७९

हन्त्येवं सुरवरस्य तस्य भानोर्भूतानां स्थितिनिलज्यप्रसूतिहेतोः ।

श्रीभागी भवति नरो तिकेतकारी कल्पानां वसति शतं स सूर्यलोके ॥८०

इति श्रीभविष्य महापुराणे ब्राह्मणे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाल्याने सूर्यप्रतिष्ठावर्णनं
नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १३६।

इस भाँति अपने द्वारा अथवा कहीं किसी दूसरे के द्वारा किये गये सूर्य की प्रतिमा के स्थापन-विधान को भक्ति पूर्वक जो देखता है, उसे स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है । ७०। क्योंकि दश अश्मेध एवं सौ वाजपेय यज्ञों के फल, सूर्य (मूर्ति) की प्रतिष्ठा करने वाले पुरुष को प्राप्त होते हैं । ७१। हे यदुश्रेष्ठ ! सूर्य की प्रतिमा को उत्तम स्थान में स्थापित करने से उस पुण्य कीर्ति की जब तक स्थिति रहती है, तब तक वह प्राणी सूर्य लोक में पूजित होता रहता है । ७२। सूर्य के प्रतिमा स्थापन में लोक पूजित यही मंत्र कहना चाहिए 'आकाश, पृथिवी, तथा यह समस्त विश्व, ध्रुव (अटल) है, अतः यजमान के कल्पाण के लिए आप भी ध्रुव होकर रहें । ७३। इस प्रकार भक्ति से आप्लावित होकर विधान पूर्वक सूर्य की प्रतिष्ठा करने से उस प्राणी को प्रत्येक मास में यज्ञफल की निश्चित प्राप्ति होती रहती है । ७४। हे वीर ! क्योंकि सूर्य के एक दिन की पूजा करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उन्हें मनुष्य इस भूतल में सैकड़ों यज्ञों द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता है । ७५। इसीलिए अत्यन्त महान् पाप करने के पश्चात् भी जो सूर्य की सेवा करता है, वह मनुष्य निष्पाप होकर सूर्य लोक में अवश्य जाता है । ७६। इस भाँति मन्दिर की ईंटे जब तक चूर-चूर होकर नष्ट नहीं हो जाती है उतने दिनों तक उसका कर्त्ता स्वर्ण में सम्मानित होता है । ७७। इसीलिए टूटी, फूटी मूर्तियों के विधान पूर्वक उद्घार करने से जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे फल, अन्य सहस्र यज्ञों द्वारा नहीं प्राप्त किये जा सकते । ७८। इस प्रकार बालुका का भी गृह सूर्य के लिए जिसने बनाया है या कोई बनाता है, उस पर भी सूर्य मुग्ध हुए हैं और होते रहते हैं तथा उसके बनाने वाले को उनके उत्तम लोक की प्राप्ति हुई है और होती रहेगी । इस भाँति उस भानु के लिए जो सुर तथा उत्पत्ति एवं विनाश के मूल कारण हैं, जो मंदिर का निर्माण करता है वह पुरुष श्री का भागी होता है और सूर्य लोक में सौ कल्पों तक निवास भी करता है । ७९-८०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मणवं के सप्तमी कल्प में साम्बोपाल्यान में सूर्य प्रतिष्ठा वर्णन नामक

एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त । १३६।

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः प्रतिष्ठापनविधिवर्णनम्

नारद उवाच

यः प्रासादं रचयति पुमान्देवतानां प्रयत्नलक्ष्मत्र प्रीत्या सपदि कुरुते स्थापना भानुभक्तः ।
दिव्यान्भोगान्त्लभक्ति च सदा कामतश्चाप्रमेयस्तान्भुक्त्वासौ पुनरपि भवेच्चक्षवर्तीं पृथिव्याम् ॥१

ये भानवात्त्विदशमूर्तिनिकेतनानि कुर्वन्ति साधुजनदृष्टिमनोहरणि !

तेषां मृतेऽप्यपरमर्थमये शरीरे लोके परिभ्रमति कीर्तिस्यं शरीरम् ॥२

इति ते कथितमिदं देवपूज्यस्य सवितुः स्थापनमिवाधानम् ।

साधारणं विधानं शृणु देवानां प्रतिष्ठापने वीर ॥३

स्नातो भुक्तो वस्त्वान्डृकृतकुमुर्तिर्थैः प्रतिमाया आस्तीर्णयां शय्यायां स्थापनं कुर्यात् ।

सुप्तायां तु स नृत्यगीतैर्जागरणैः सन्यगेवाधिवास्य देवज्ञेन प्रतिदिन्टकाले संस्थापनं कुर्यात् ।

अन्यचर्चा कुमुरगङ्गाधानुलेपनैः शड्खतूर्यनिर्घोर्दैः प्रादक्षिण्येन नयेदायतनस्य प्रयत्नेन कृत्वा इति

अध्याय १३७

प्रतिष्ठापन विधि का वर्णन

नारद बोले—जो सूर्य भक्त पूर्वक विशाल देव मन्दिर का निर्माण करके उसमें श्रीघ्रातिशीघ्र प्रेमपूर्वक सूर्य देव को प्रतिमा का स्थापन करता है, उसे दिव्य उपभोगों एवं सदैव अप्रमेय कामनाओं की सफलता प्राप्त होती है और पुनः जन्म लेने पर इस भूतल में उसे चक्रवर्तीं पद की प्राप्ति होती है ।१। इसलिए जिन मनुष्यों ने देवताओं की मूर्तियों के स्थापनार्थ इस भाँति के उत्तम देवालयों की रचना की है जिनके सौन्दर्य को देखकर साधु प्राणियों की आँखें विकसित हो जाती हैं रचना की है, उन लोगों के मरणोपरान्त भी इस परमार्थ हीन लोक रूप शरीर में उनकी कीर्तिमयी शरीर नित्य भ्रमण करती रहती है ।२। हे वीर ! इस प्रकार मैंने देव शक्ति सूर्य के स्थापन का विशाल विधान बता दिया । अब देवताओं की प्रतिष्ठा के लिए साधारण विधान बता रहा हूँ सुनो । ३। सर्वप्रथम प्रतिमा को स्नान, भोजन एवं वस्त्रों से अलंकृत करके पुनः सुगन्ध एवं पुष्पों से उसे सुसज्जित करें कुशास्तारण के ऊपर सजायी गर्भशय्या पर स्थापित करके शयन कराये । उसके अनन्तर नृत्य, गायन द्वारा जागरण करते हुए दैवज्ञ (ज्येतिषी) द्वारा बताये गये किसी शुभ मूर्ह्य में उसकी स्थापना करे उस समय पुष्प एवं गन्धों का लेपन करके उस प्रतिमा को शंख तुर्ही आदि वाचों के कोलाहल में प्रदक्षिणा करते हुए प्रयत्न पूर्वक उस मन्दिर में जायें और वहाँ उनकी पूजा एवं (देवों के लिए) बलि, माधुओं तथा ब्राह्मणों को भोजन एवं दक्षिणा देकर विधानपूर्वक उस मन्दिर में पिंडिका स्थापित करने के लिए बेदी या चौकी के अत्यन्त

प्रतिमास्त्वर्थ्यच्च ब्राह्मणांश्च साधून्दत्वाद् हिरण्यकलंशं विधिना निश्चिन्तिष्ठिकामष्ट्ये सुश्रभ्रे
स्थापकदैवज्ञाद्विजान्सम्भविशेषतोऽम्बव्यक्तिलान्तं भोगी भवतीह परत्र मुखी ॥४
विष्णोर्भाग्यता भताश्च सवितुः गङ्गामोः सम्भविजामातृगामयि मातुमप्डलविदो विप्रा विदुर्भाह्यणाः ।
सर्वे यस्य विमुक्तशुल्वसना बुद्धस्य रक्तम्बरा ये यं देवमुपाश्रिताः मुविधिना तैस्तस्य कार्या क्रिया ॥५
सामान्यमिदं देवानामधिवासनं भवति मया कथितम् । किं यनाम्मिदं दृष्ट्वा देवानां पतिष्ठापनम् ॥
नरो भक्त्या इह कामानवाप्य त्वर्गमाजनं भवति ॥६

इदं ते कथितं राजनश्चित्प्राप्तमादितः । यत्कृत्वा सवितुः ग्रन्थं नरो याति भनोगमित् ॥७
इत्यं कुर्यान्निरो भक्त्या सवितुः स्थापनं बुधः । कारयेत्पुरतो भक्त्या सवितुः स्थापनं बुधः ॥८
इतिहासपुराणस्य श्रवणं एषपनाशनम् । ताम्यां हि श्रवणाद्विर सान्निध्यं याति भास्करः ॥९
कृते त्वाप्ततने तस्मिन्ये चान्ये चात्पि देवताः । तस्मात्पार्यं बुधैर्नित्यं धर्मश्रवणमादितः ॥१०
वाचकं पूजयित्वा तु ब्राह्मणानुपूज्य च । कारयेद्वाचनं वीर उक्तकस्याप्तो रवेः ॥११
सर्वस्वं स्थापके दद्याद्यक्तिच्छद्गृहमागतम् । गोदानमयदा दद्यातस्य चित्तं प्रसादयेत् ॥१२

स्वच्छ मष्ट्य भाग में प्रतिष्ठित करे । क्योंकि ऐसे समय ज्योतिषी, एवं ब्राह्मणों की भली भाँति अर्चना करने वाला पुरुष, कल्प की समाप्ति पर्यंत सुखों का उपभोग यहाँ वहाँ (लोक परलोक में) सदैव करता रहता है । ४। इस प्रकार विष्णु के भागवत (वैष्णव), सूर्य के भग (भोजक) शिव के भस्म भूषित ब्राह्मण, मातृकाओं (देवियों) के मातृमण्डल के विद्वान् और बुद्ध के शुक्ल वस्त्ररहित एवं रक्ताम्बरधारी, उपासक होते हैं, अतः उन्हें चाहिए कि जो जिस देव के उपासक हों, वे उस देव की प्रतिष्ठा करायें । ५। इस प्रकार देवताओं के इस सामान्य अधिवासन विधान को मैने तुम्हें बता दिया । देवताओं के इस प्रतिष्ठा विधान को भक्तिपूर्वक देखने वाला मनुष्य भी इस लोक की समस्त कामनाएँ सफल कर पश्चात् त्वर्ग की प्राप्ति करता है । ६। हे राजन् ! इस भाँति तुम्हें मैने आदि से अंत तक सभी देवों की प्रतिष्ठा के उस विधान को भी बता दिया, जिसमें सूर्य के केवल स्नान कराने मात्र से मनुष्य के मनोरथ सफल होते हैं ऐसा बताया गया है । इसलिए विधान समेत उनकी पूजा समाप्ति करने वाले का कहना ही क्या है । इसलिए मनुष्य को भक्तिपूर्वक सूर्य की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । ७-८। हे वीर ! इस भाँति इतिहास एवं पुराणों का सुनना पापनाशक बताया गया है, क्योंकि उसके श्रवण करने के ब्याज से ही सूर्य वहाँ (मूर्ति में) सदैव वर्तमान रहते हैं । ९। और उस मंदिर में कथा के होने के नाते वहाँ के अन्य देव भी प्रसन्न होते हैं, इसलिए विद्वान् को वहाँ प्रारम्भ से ही ही कथा श्रवण करना चाहिए । १०। हे वीर ! इस भाँति वाचक तथा ब्राह्मणों की पूजा करके ही सूर्य के सामने पुस्तक वाचन (कथा पारायण) करना चाहिए । ११। और प्रतिष्ठा करने वाले (यजमान) को वहाँ अपने सर्वस्व का दान कर देना चाहिए, पुनः घर आने पर भी कुछ थोड़ा सा गोदान आदि जो अवशिष्ट हो, उसकी पूर्ति कर उसे (वाचक को)

इत्येष कथितो द्वीर प्रतिष्ठाकल्प आदितः । कृत्वा दृष्ट्वा च श्रुत्वा च च नरोऽर्कमवाप्नुयत् ॥१३

इति श्रीशविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाल्याने
प्रतिष्ठापनविधिवर्णनम् नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १३७।

अथाष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ध्वजारोपणविधिवर्णनम्

नारद उवाच

हन्त ते कथयिष्यतमि ध्वजारोपणमुत्तमम् । यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वमृजभाधिपते पुरः ॥१
पुरा देवासुरे युद्धे यानि देवैर्येष्पुभिः । कृतान्युपरि चित्रानि वाहनानि ध्वजानि तु ॥२
लक्ष्मिद्वितृष्णवं केतुरिति पर्यायनामभिः । दीर्तिः स च तस्ये ह प्रमाणं गदतः शून् ॥३
ध्वजो वंशस्य कर्तव्यस्त्वाविद्व ऋजुरवणः । प्रासादव्यास तुल्यस्य ध्वजवंशप्रमाणतः ॥४
देवागारस्य ये प्रोक्ता मञ्जगीकलशादयः । अथ वा तत्प्रमाणस्तु ध्वजदण्डः प्रकोर्तिः ॥५
अन्तर्गृहस्य या वेदी भूत्रतः परिकल्पिता । तस्या व्यासो भवेद्विशः प्रसादस्य यदुत्तम ॥६
अथ वा मूलसूत्रेण यो व्यासोऽन्तर्गृहस्य तु । प्रासादव्यास इति ते प्रोक्तश्चेह न संशयः ॥७

प्रसन्न करना चाहिए । १२। हे वीर ! इस प्रकार प्रतिष्ठा विधान प्रारम्भ से अन्त तक मैंने तुम्हें सुना दिया, जिसे करने या देखने से मनुष्य सूर्य लोक की प्राप्ति करता है । १३

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्ब के सप्तमी कल्प के साम्बोपाल्यान में
प्रतिष्ठापन विधि वर्णन नामक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त । १३७।

अध्याय १३८

ध्वजारोपण विधि वर्णन

नारद बोले—तुम्हारे लिए मैं उत्तम ध्वजारोपण का विधान कह रहा हूँ, जिसे पहले समय में ब्रह्मा ने कृपभाधिपति से कहा था । १। प्राचीन समय में देवों एवं असुरों के उस धोर संग्राम में विजय के ढच्छुक देवों ने अपने-अपने रथों के ऊपर जिस प्रकार चित्र बनाये थे वे ही भाग के नाम से कहे जाते हैं और जो वाहन के रूप में थे वे ही सदैव के लिए वाहन हो गये हैं । २। इस प्रकार लक्षण, चित्र, ध्वज एवं केतु, इतने नाम ध्वजा के हैं उसका प्रमाण भी मैं बता रहा हूँ सुनो ! । ३। ध्वजा के लिए सर्वप्रथम सीधा तथा छिद्र रहित और नीरोग बाँस होना चाहिए । पुनः भवन के व्यास के समान ध्वजा के लम्बे होने का प्रमाण बताया गया है । ४। अथवा देव-मन्दिरों में जो मञ्जरी या कलश आदि रहता है, उसके प्रमाण का लम्बा रहे । ५। हे यदूतम ! इसी प्रकार गृह गर्भ के भीतर की भूत्र से नापी गई वेदी तथा प्रसाद के व्यास के समान बाँस का व्यास (लम्बाई) होना उत्तम बताया गया है । ६। या मूलसूत्र के समान हो, क्योंकि गृह गर्भ का व्यास ही प्रसाद का व्यास बताया गया है, इसमें संशय नहीं । ७। इसलिए उत्तम बाँस का

केतुर्भवेद्वरो वंशो न निम्नो न ऋजुस्तथा । परं ध्वजे युगं चैद नलिकापुरुषस्तथा ॥८
 चतुर्हस्ता भवन्त्येते प्रशस्ताः कृष्णनन्दन । अष्टहस्तप्रभाणस्तु विशार्धस्य^१ प्रभाणतः ॥९
 सामान्यो ध्वजदण्डस्तु सर्वसाधारणो मतः । दण्डाः प्रियध्वजो यस्तु स्मृतः षोडशहस्तवान् ॥१०
 विशदस्तात्परे दण्डो न कार्यः सर्वथा^२ रवे । युग्महस्तस्तु कर्तव्यो ध्वजदण्डो स्त्रीविधिः ॥११
 चतुरझगुलविम्नीर्जः युवृत्तो द्वयद्वगुलोपरि । नातिसूक्ष्मो न च स्थूलो न कार्यो न तत्पर्वकः ॥१२
 सम्पर्वातु कर्तव्यः सुदृढः सूक्ष्म एव हि । वकः पुत्रविनाशाय तत्रणोऽर्थविनाशनः ॥१३
 रोगदो युग्महस्तस्तु भिन्नो दुखमनन्तकम् । फरोति हानिं धर्मस्यहीनो यस्तु प्रभाणतः ॥१४
 वैष्ण्यमसमर्पवा दद्यात्कृच्छ्रभद्रोपतः । जये जयन्तो जैत्रेयः^३ शशुहन्ता जयावहः ॥१५
 नन्दोपनन्दनौ चैवेन्द्रोपेन्द्रौ गदितौ तथा । दशेति कीर्तिता भेदा ध्वजस्यानन्दसम्मितः ॥१६
 द्विजहस्तस्तु जयो दण्डो जयन्तो द्विगुणो मतः । द्वादशहस्तस्तु जैत्रेयः शशुहन्ता कलान्वितः ॥१७
 जयावहस्तु विंशधीर्णो नन्द आदित्यसम्भिः । चतुर्दशोपनन्दस्तु इन्द्रः षोडश उच्यते ॥१८
 उपेन्द्रोऽष्टादशः^४ प्रोक्तस्तथेन्द्रो विशतिः स्मृतः । भिन्नो वक्त्रोऽसाधितश्च न कार्यो दण्ड एव हि ॥१९
 मूलमन्त्रेण कर्तव्यो व्यासतोऽन्तर्गृहतय तु । ध्वजदण्डो भावाबो अथ वा वास्तुमानतः ॥२०

ध्वजदण्ड होना चाहिए, जो न नीचा हो, और न टेढ़ा । ध्वज में चार पत्र लगने चाहिए तथा नलिका पुरुष भी । १। हे कृष्णनन्दन ! यद्यपि चार हाथ का (लम्बा) ध्वज दण्ड प्रशस्त बताया गया है । और आठ हाथ (लम्बे) प्रभाण का एवं दश हाथ के (लम्बे) प्रभाण दा भी ध्वज-दण्ड होता है, पर ये सभी सामान्य ध्वज-दण्ड हैं, ऐसी सर्व साधारणों की सम्मति है । दण्डपाणि ध्वज, जिसे कहा जाता है, वह सोलह हाथ का (लम्बा) बताया गया है । सूर्य के लिए ध्वज-दण्ड (किसी भी दशा में) बीस हाथ से अधिक लम्बा कदापि न करना चाहिए । विद्वानों को चाहिए कि दो हाथ का ध्वज-दण्ड बनाये । ९-११। चार अंगुल का मोटा, तथा दो अंगुल के ऊपर से सुन्दर गोलाकार होना चाहिए, जो अत्यन्त पतला, अधिक-मोटा, एवं क्षुकी हुई जिसकी गाठें न हों । १२। इस प्रकार समान चार गाठ वाले, अत्यन्त दुढ़, तथा पतले बाँस का ही ध्वज दण्ड बनाना चाहिए । क्योंकि उसे टेढ़े होने से पुत्र नाश, ब्रण (रोग) युक्त होने से अर्ध (धन) नाश, दो हाथ लम्बे होने से रोग, फटे रहने से अनंत दुःख तथा प्रभाण से छोटा होने पर धर्म की हानि होती है । १३-१४; उसी भाँति विषम हाथ के लम्बे, असमान पोर (गाठें) एवं नीचे की ओर उत्तर (ऊपर) होने से दुःख की प्राप्ति होती है । इस प्रकार जय, जयंत, जैत्रेय, शशुहन्ता, जयावह, नंद, उपनंद, इन्द्र एवं उपेन्द्र, आनन्द, ये दश भेद ध्वज दण्ड के बताये गये हैं । १५-१६। जिसमें दो दाय के ध्वज दण्ड की जय, उसे दुगुने (चार हाथ) लम्बे ध्वज दण्ड की जयंत, बारह हाथ लम्बे ध्वज दण्ड की जैत्रेय, सोलह हाथ वाले की शशुहन्ता, दश हाथ वाले की जयावह, बारह हाथ वाले की नन्द, चौदह हाथ वाले की उपनन्द, सोलह हाथ वाले की इन्द्र, अठारह हाथ वाले की उपेन्द्र, एवं बीस हाथ वाले ध्वज-दण्ड की इन्द्र (आनन्द) संज्ञा है । इसलिए फटे, टेढ़े तथा प्रभाण हीन बाँस के ध्वज दण्ड नहीं बनाने चाहिए । १७-१९। घर के भीतरी व्यास के समान जो मूल सूत्र से (माप) निश्चित रहते हैं, ध्वज दण्ड होने चाहिए,

१. दण्डं कृत्वा तु यत्नतः । २. इन्द्रकेतुनः । ३. रौद्रः । ४. राजेन्द्रः । ५. अष्टाधिकदशहस्त इत्यर्थः ।

मङ्गरीमानतो बायि तदर्थनाथवा विभो । पताका वै शुभा कर्ता ध्वजवंशादलम्बिनी ॥२१
 देवागारस्य शिल्पात्तिभागपरिमार्जनी । सा प्रोक्ता दशाधा वीर मानतेमानतस्तथा ॥२२
 अङ्कुरः पल्लवश्चैव स्कन्धः शाला तथैव च । पताका कदली दीर केतुर्लक्ष्म जयस्तथा ॥२३
 ध्वजश्च दशमः प्रोक्तः सर्वदेवमयोव्ययः । अङ्कुरो द्वयंगुलः प्रोक्तः पल्लवश्चतुरङ्गुलः ॥२४
 रक्तन्धः षडङ्गुलः प्रोक्तः शाला चाष्टङ्गुलो मता । एकादशपताका तु कदली च उतुर्दश ॥२५
 केतुस्तु षोडशः प्रोक्तो लक्ष्माष्टादशमुच्यते । जया विंशति दै प्रोक्ता एतावन्दङ्गुलानि तु ॥२६
 देवागारस्य कुम्भस्य प्रसला सा प्रसर्जनी । अङ्कुरेति पताका सा विजेया यदुनन्दन ॥२७
 पल्लवेति द्वितीयस्य मार्जनी परिकीर्तिता । त्रिभाष्मार्जनोस्कन्धः शाला वै पञ्चमस्य तु ॥२८
 षष्ठ्यस्योक्ता पताका तु कदली सप्तमस्य तु । अष्टमस्य तथा केतुर्लक्ष्म च नवमस्य तु ॥२९
 ततस्तु दशमः प्रोक्तो जप्त्नो यदुनन्दन । वृष्टस्थानदध्मार्गां तु ध्वजस्तु परिकीर्तितः ॥३०
 गजो मेषोऽथ महिषः कवन्धस्तु वृष्टस्तथा । हरिणोऽथ नरश्चैद नरश्च नरसत्तम ॥३१
 स्थानान्येतानि भूदेव्यँ प्रयुक्तस्य ध्वजस्य तु । दिशभागे तु पूर्वाहु क्रमेण परिकल्पयेत् ॥३२
 एवं दशविधा प्रोक्ता पताकः तत्त्वदर्शिभिः । कर्तव्या सा पथापूर्वं तच्छृणु त्वं नराधिप ॥३३

अथवा वास्तु (गृह) मान के समान । २०। हे विभो ! इस भाँति मंजरी, या उसके अर्ध भाग के समान भी ध्वज दण्ड बनाया जा सकता है । ध्वज दण्ड में लटकने वाली पताका को भी कल्याण मूर्ति ही बनाना चाहिए । २१। हे वीर ! देव मंदिर के शिखर के ऊपर तीन भाग को शुद्ध करने के लिए स्थित वह पताका मान अमान (नपी तथा विना नपी हुई) के भेद से दश प्रकार की होती है । २२। हे वीर ! अंकुर, पल्लव, स्कन्ध, शाला, पताका, कंदली, केतु, लक्ष्म जय एवं ध्वज, यही दश भेद उसके बताये गये हैं । इस प्रकार वह सर्वदेवमयी तथा अविनाशी होती है । उस विवरण में दो अंगुल की पताका, अंकुर, चार अंगुल वाली पल्लव, छः अंगुल वाली, स्कन्ध, आठ अंगुल वाली शाला, ग्यारह अंगुल वाली, पताका, चौदह अंगुल वाली कदली, सोलह अंगुल वाली केतु, अठारह अंगुल वाली लक्ष्म, एवं बीस अंगुल वाली जया, तथा इतने ही अंगुल वाली (ध्वज) के नाम से बतायी गई है । २३-२६। हे यदुनन्दन ! इस प्रकार देवमंदिर के प्रथम कलश (शिखर) की प्रसन्नता पूर्ण (निरंतर फहराती हुई) शुद्धि करने वाली पताका अंकुरा के नाम से व्यवहृत होती है । २७। उसी भाँति द्वितीय कलश की शुद्धि करने वाली पल्लवा, मंदिर के तृतीय भाग तक की शुद्धि करने वाली स्कन्ध, पाँचवे भाग की शुद्धि करने वाली शाखा । २८। छठे भाग की शुद्धि करने वाली पताका, सातवें भाग की शुद्धि करने वाली कदली, आठवें भाग की शुद्धि करने वाली केतु, नवें भाग की शुद्धि करने वाली लक्ष्म, उसके अनन्तर भाग की शुद्धि करने वाली जयत (जया) और वृषस्थान की शुद्धि करने वाली (पताका) ध्वज के नाम से कही जाती है । २९-३०। अतः गज, मेष महिष, कवन्ध, वृष, हरिण, वृक, एवं नग, इन आठों स्थानों में ध्वज लगाना चाहिए । इस प्रकार पूरब की ओर से आरम्भ कर सभी दिशाओं में क्रमशः ध्वजा स्थापित करने का विधान कहा गया है । ३१-३२। इस भाँति तत्त्व द्रष्टाओं ने दश प्रकार की पताकाओं का निर्माण करना बताया है । हे नराधिप ! उसका निर्माण

शुक्लवस्त्रमयी चित्रा सघटा सुमनोहरा । नानाचामरसम्पश्च किंडिकणीजातमण्डिता ॥३४
 ध्वजाग्रे चैव कर्तव्यो देवतालिङ्गसूचकः । काञ्चनो वाथ रोप्यो दा मणिरत्नस्थोऽपि वा ॥३५
 रङ्गकैस्तिस्यते वापि तद्वाहनमाकृतिः । ध्वजदण्डोऽत्र विन्यस्तः कर्तव्यो यदुनन्दन ॥३६
 गरुसात्नांस्तु ध्वजो विष्णोरीश्वरस्य ध्वजो वृषः । ब्रह्मणः पङ्कजं कार्यं रवेर्धमः स्मृतो ध्वजः ॥३७
 हंसे^१ जलाधिपस्योत्तेः सोपस्य तु नरो ध्वजः । बलदेवस्य कालस्तु कामस्य मकरध्वजः ॥३८
 सिंहो ध्वजस्तु दुर्गायाः कीर्तितो यदुनन्दन । गोधा चापि उभादेव्या रैवतस्य हयः स्मृतः ॥३९
 क्लृत्पौ वरुणस्योत्तो वातस्य हरिणो मतः । पावकस्य तथा मेष आरुर्गजपतेर्मतः ॥४०
 ब्रह्मर्णीणां कुशः प्रत्नेत इत्तैषां ध्वजं कल्पनः । यस्य यद्वाहनं प्रोक्तं तत्स्य ध्वजं उच्यते !!४१
 विष्णोर्घर्षजे तु सौवर्णं दण्डं कुर्याद्विदक्षणः । पताका चापि पीता स्याद् गृहस्य समीपगा ॥४२
 ईश्वरस्य ध्वजे दण्डो राजतो यदुनन्दनः । पताका चापि शुक्ला स्याद् द्वृष्टभस्य समीपगा !!४३
 पितामहध्वजे दण्डः स्मृतस्तान्नयो ब्रूधैः । पदवर्जा पताका स्यात्पङ्कजस्य समीपगा ॥४४
 आदित्यस्य च सौवर्णो ध्वजे दण्डः प्रकीर्तितः । पञ्चवर्णा पताका स्याद्भर्मस्याधोगता नृप ॥४५

किस प्रकार होना चाहिए, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ॥३३। सफेद वस्त्र की बनी हुई चित्र-चित्र, धंटा समेत, अत्यन्त मनोरम, भाँति-भाँति के चामरों से सुशोभित एवं छोटी-छोटी घंटियों के समूहों से विभूषित पताका! होनी चाहिए ॥३४। और ध्वजा के अग्रभाग में देवता-सूचक (जिसे देवता के लिए बताया गया हो उसे सूचित करने वाला) चिह्न बना देना चाहिए। उसी भाँति सुवर्ण, चाँदी, मणि, एवं रत्नों में किसी के द्वारा अथवा रंग के द्वारा उस (देवता) के बाहर के समान आकृति निर्माण (चिह्न) भी बनाये। हे यदुनन्दन ! इसलिए ध्वज दण्ड, पूर्व की भाँति बताये गये के अनुसार ही रखना चाहिए ॥३५-३६। जिस प्रकार विष्णु की ध्वजा में गृहड़, शिव की ध्वजा में वृष, ब्रह्मा की ध्वजा में कमल, सूर्य की ध्वजा में धर्म, जलाधिप की ध्वजा में हंस, सूमी की ध्वजा में नर, बलदेव की ध्वजा में काल, काय की ध्वजा में मकर, और दुर्गा की ध्वजा में सिंह के आकार बनाये जाते हैं, उसी प्रकार उमा देवी के लिए गोधा (रेह) रैवत के लिए अश्व, वरुण के लिए कच्छप, वायु का हरिण, अनिन का मेष, गणपति का चूहा एवं ब्रह्मर्णीयों के लिए कुश का चिह्न निर्माण करना बताया गया है। इसी प्रकार की ध्वजा की कल्पना भी होनी चाहिए। क्योंकि जिस देवता का जो वाहन है, वही उसकी ध्वजा भी है ॥३७-४१। इसलिए बुद्धिमान् को चाहिए कि विष्णु की ध्वजा में इस भाँति का सुवर्ण दण्ड लगाये जिसमें गृहड़की 'मूर्ति'-चिह्न के समेत पीत वर्ण की पताका भी भूषित हो ॥४२। हे यदुनन्दन ! उसी भाँति शिव का ध्वज दण्ड चाँदी का होना चाहिए तथा श्वेत वस्त्र की पताका भी उनके वृष (बैल) के समीप स्थित करे ॥४३। विदानों ने पितामह की ध्वजा में तांचे का दण्ड होना चाहिए यह बताया है जिसमें कमल वर्ण की पताका पंकज के समीप स्थित की जाती है ॥४४। आदित्य की ध्वजा में सुवर्ण-दण्ड का विधान बताया गया है, हे नृप ! उनकी पाँच रंग की पताका धर्म के नीचे स्थापित होनी चाहिए ॥४५। जो छोटी-छोटी घंटियों के समूहों

१. सिंहो जलाधिपस्य ।

लिङ्गिकणीजालसम्भवा नानदुद्बुदसन्निभाः । पुष्यनालोपसम्पन्ना नानावादिभिरावृताः ॥४६
 दण्ड इन्द्रध्वजस्योत्तः काञ्चनो यदुनन्दनः । पताका द्वहर्णा स्यात्कुञ्जरस्य समीपगा ॥४७
 आगसत्यापि दण्डोत्तो यमचिह्नं विचक्षणैः । पताका वर्णतः कृष्णा महिषस्य समीपगा ॥४८
 जलाधिषध्वजो दण्डो राजतः परिकीर्तिं । पताका सर्वतः श्वेता विचित्रा सा च कथ्यते ॥४९
 ध्वजे चार्पि कुबेरस्य दण्डो मणिमयः स्मृताः । पताका चार्पि रक्ता स्यान्नरपादसमीपगा ॥५०
 बलदेवध्वजे दण्डो राजतो यदुनन्दन । पताका वर्णतः शुक्ला तालस्याधेगता स्मृता ॥५१
 कामध्वजे त्रिलोहः स्यादण्डो यदुकुलोद्धृ । पताका रोहिणी तत्र भक्तरस्य समीपगा ॥५२
 मायूरं कार्त्तिकेयस्य चिह्नं लोकेषु शीयते । त्रिलोहदण्डमारुदं बहुरलविभूषितम् ॥५३
 बहुवर्णकचित्रा तु पताका कथिता बृद्धैः । हस्तिदन्तभवं दण्डं कुर्यादिगणपतंरूपं ॥५४
 तान्नदण्डं समारुदं संशुद्धं स्मृतिप्रिठितम् । युक्ता पताका कर्तव्या सुप्रमाणा समीपते ॥५५
 मातृणां नापि कर्तव्यो नैकस्यो ध्वजो बृद्धैः । पताकाभिरन्तेकाभिर्वृत्ताभिरन्वितः ॥५६
 रेवतस्यापि कर्तव्यो ध्वजो वाजी नराधिप । रक्ता पताका तत्रापि कर्तव्या यदुनन्दनः ॥५७
 चामुण्डामन्दिरे कार्यः शिरोमालाकुलो ध्वजः । नीला पताका कर्तव्या दण्डो लोहमयस्तथा ॥५८
 रतीमयश्च मातृणां रेवतस्य च कारयेत् । गौर्या ध्वजस्ताम्रमयः पताका गोपसन्निभा ॥५९

में सुमध्यन, अनेकों फेन की भाँति सौन्दर्यपूर्ण, पुष्यों तथा मालाओं से आच्छन्न एवं अनेक बाजों को बजाने वाले अनेक मनुष्यों की मूरतियों से आवृत हों । ४६। हे यदुनन्दन ! इन्द्र का ध्वज दण्ड सुवर्ण का बनाये, उनकी अनेकों रंग की पताका हाथी के समीप स्थित करे । ४७। बुद्धिमानों ने लोहे का दण्ड होना यम के चिह्न में बताया है । उनकी काले रंग की पताका महिष के समीप स्थापित होनी चाहिए । ४८। जलाधिष के लिए चाँदी का ध्वज दण्ड बताया गया है, उनकी सफेद वर्ण की एवं चित्र विचित्र पताका होनी चाहिए । ४९। कुबेर का ध्वज दण्ड मणिमय बताया गया है, उनकी लाल रंग की पताका नर के चरण के समीप स्थापित होनी चाहिए । ५०। हे यदुनन्दन ! बलदेव की ध्वजा में चाँदी का दण्ड बनाये, उनकी शुक्ल वर्ण की पताका ताल के नीचे स्थापित करे । ५१। हे यदुकुलश्रेष्ठ ! काम की ध्वजा में त्रिलोह का दण्ड होना चाहिए उनकी रोहिणी (लाल रंग की) पताका भक्त के समीप में स्थापित होनी चाहिए । ५२। लोकों में कार्तिकेय का मयूर (मोर) का चिह्न विस्तृत है, उनकी ध्वजा में त्रिलोह का दण्ड तथा उस चिह्न को अनेकों भाँति के रूपों में विभूषित होना चाहिए । ५३। विद्वानों ने उनकी भाँति-भाँति के रंगों की चित्र-विचित्र पताका बतायी है । हे नृप ! गणपति का ध्वज-दण्ड हाथी के दाँत का होना चाहिए । ५४। उसमें विशुद्ध तांबे का संमिश्रण रहे अथवा केवल तांबे का ही दण्ड बनाया जा सकता है । हे महीपते ! प्रमाण पूर्ण उनकी शुक्ल वर्ण की पताका होनी चाहिए । ५५। विद्वानों को चाहिए कि मातृगणों के लिए अनेकों भाँति ध्वजाएँ बनाये, और अनेकों रूपों से मुसम्पन्न भाँति-भाँति की पताकाएँ भी । ५६। हे नराधिप ! रैवत की ध्वजा में अश्व का चिह्न होना चाहिए, और हे यदुनन्दन ! उनकी लाल रंग की पताका भी होनी चाहिए । ५७। चामुण्डा देवी के मंदिर में मुण्ड-माला चिह्न से अंकित ध्वजा बनाये, उसका नील वर्ण एवं उसमें लोहे का दण्ड हो । ५८। मातृगणों एवं रैवत का ध्वज दण्ड पीतल का होना चाहिए । गौरी का ध्वज-दण्ड तांबे का बनाये तथा इन्द्रगोप की भाँति (अत्यन्त लाल रंग की)

स्वर्णदण्डस्तु वीरस्य ध्वजे नेषसमन्वितः । पताका बहुरत्नादच्छेऽ कर्तव्या यदुनन्दन ॥६०
 अश्मसारमयो दण्डो ध्वजो वत्स्य उच्यते । पताका कृष्णवर्णा तु हरिणस्य रमीस्ता ॥६१
 भगवत्या ध्वजो दण्डः सर्वरत्नभ्यः स्मृतः । पताका तु त्रिवर्णा स्यार्तिस्त्वस्याधोगता नृप ॥६२
 एवंविधिमिश्रं कृत्वा ध्वजं लक्षणलक्षितम् । अधिवाराय ततो राजस्तत आरोपयेद्बुधः ॥६३
 ततः सदैर्बधीभिश्च स्नापयित्वा प्रथन्तः । समालभ्य च बद्धीयान्मये प्रतिसरान्तृपृ ॥६४
 कल्पयित्वा शुभां वेदि कलशैह्यशोभिताम् । तस्यां वेद्यां समारोप्य तां रात्रिमधिवासयेत् ॥६५
 नानाकुमुमचित्रां च ऋजं तस्यानुलम्बयेत् । समभ्यर्थं प्रथनेन धूमस्य निवेदयेत् ॥६६
 बलिकर्म ततः कृत्वा कुशरापूपकादिभिः । पलालपूपिकनिश्च दधिराप्यससूरकैः ॥६७
 उद्दिश्य लोकपालेभ्यो बतिं दद्याच्च वायसैः । ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्याथ कृत्वा पुण्याहमद्गलम् ॥६८
 वादित्रकृतनिधोर्षं जलं^३ संस्कारसंयुतम् । नागाबुद्बुदसंपन्नं वेष्टितं नववाससः ॥६९
 शुभे लग्ने दिने ऋक्षे धर्जं चारोपयेद्बुधः । विन्यस्य स्वर्णकलशं श्वभ्रराजं ध्वजस्य तु ॥७०
 एवमारोपयेच्छस्तु धर्जं देवालयोपरि । स श्रिया वधीते नित्यं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥७१
 असुरा वासमिच्छति ध्वजहीने सुरालये । तस्मादेवालयं प्राज्ञो ध्वजहीनं न कारयेत् ॥७२

पताका बनाये । ५९। अग्नि का ध्वज दण्ड सुवर्ण निर्मित एवं मेष युक्त होना चाहिए, और हे यदुनन्दन ! अनेकों रत्नों या रंगों से सुशोभित उनकी पताका बनाये । ६०। वायु का ध्वजदण्ड लोहे का बताया गया है, उनकी काले रंग की पताका हरिण के समीप स्थापित होनी चाहिए । ६१। भगवती का ध्वजदण्ड समस्त रत्नों से निर्मित होना चाहिए, तथा हे नृप ! तीन रंग की उनकी पताका सिंह के नीचे स्थापित करे । ६२। हे राजन ! इस प्रकार के लक्षणों से ध्वजाओं को विभूषित करके उसके पश्चात् राजन् ! अधिवासन पूर्वक विद्वानों को उसका आरोपण करना चाहिए । ६३। हे नृप ! तदुपरांत समस्तमिश्रित औषधियों द्वारा प्रयत्न पूर्वक स्नान कराकर मध्य भाग में आलम्भन पूर्वक बाँधकर सैन्य के पिछले भाग में स्थापित करे । ६४। कल्पाणप्रद वेदी की रचना कर उसे कलशों से सुशोभित करके उसमें ध्वजः का आरोपण (खड़ा) कर उस रात उसका अधिवासन करना चाहिए । ६५। भाँति-भाँति के पुष्टों की मालाएँ लटकाने के पश्चात् प्रयत्नपूर्वक उसकी भली भाँति पूजा करके धूप प्रदान करे । ६६। और बलिकर्म करने के उपरांत कृशराज (मिश्रित अन्न) मालपूआ, दही, सीर, दाल, आदि पदार्थों को लोक पालों एवं कौवे के उद्देश्य से बलि रूप में अप्तित करे । उपरांत ब्राह्मण द्वारा स्वस्ति वाचन कराकर पुण्य एवं मांगलिक वाद्यों की ध्वनियों से पूर्ण, संस्कार सम्पन्न, अनेक भाँति की विधियों से सुशोभित तथा नये वस्त्र से परिवेष्टित उस ध्वजा का किसी शुभ लग्न, दिन एवं नक्षत्र में विद्वानों को आरोपण करना चाहिए । सुवर्ण के कलशों से उसका लगाव रखते हुए ध्वजा की अत्यन्त प्रदीप्त रेखाएँ होनी चाहिए । ६९-७०। देवमन्त्र के ऊपर इस प्रकार की ध्वजा का आरोहण जो (पुरुष) करता है, उसकी नित्य वृद्धि होती है । और उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है । ७१। ध्वजा हीन देवालयों में असुरों का निवास हो जाता है, इसलिए

१. बहुर्णा च । २. दधिपायसपूर्वकैः । ३. जनफूत्कारसंकुलम् ।

मन्त्रश्च स्थापने प्रोक्तो विधानज्ञेष्वर्जस्य तु । एहोहि भगवन्दे च देववाहन वै खग ॥७३
 श्रीकरः श्रीनिवासश्च जय जैत्रोपशोभित । व्योमरूप महारूप धर्मात्मस्त्वं च वै गते ॥७४
 सान्निध्यं कुरु दण्डेऽस्मिन्नाक्षी च श्रुततां ब्रज । कुरु वृद्धिं सदा कर्तुः प्रासादस्यार्कवल्लभ ॥७५
 अ॒ एहोहि भगवन्नीभ्वरविनिर्मित उपरिचरवायुप्राणानुसारिङ्गीनिवास रिपुध्वंस
 यक्षनितय सर्वदेवप्रियं कुरु स्तम्भित्यं शान्तिं स्वस्त्ययनं च मे भयं सर्वविद्वा अपत्तरन्तु ॥७६
 मन्त्रेणानेन राजेन्द्र इदभ्ये इष्टे निवेशयेत् । पताकां पूर्वमन्त्रेण स्थित्वा पूर्वनुज्ञे नृप ॥७७
 सिपेदूर्ध्वमन्तराक्षां प्रासादशिलराढ्बिभोः । यजमानस्ततः पश्येत्तताकां यदुनन्दन ॥७८
 प्रासादपुरतोदापि पताकां एतत्येद्यदि । इन्द्रलोकं तदा कर्ता विशेष्टौ यदुनन्दन ॥७९
 आग्रेष्यामप्तिलोकं तु याम्यां यमसदो भजेत् । नैऋत्यां नैऋतं लोकं वारुणः वारुणं द्रजेत् ॥८०
 यस्य देवस्य यद्येषम् हृतं यद्युकुलोद्धाह । तस्य लोकमवाप्नोति वृषस्यानगतो यदि ॥८१
 वायव्ये वायुमाप्नोति सौम्यायां सोममाप्नुयात् । ऐशान्यामीशमाप्नोति कर्ता वै देवदेशमनः ॥८२
 य एवं कारयेद्बूक्त्यः ध्वजस्त्वारोपणं रवे । स हि भुज्ञत्वः परान्भोगान्सूर्यलोके महीयते ॥८३

बुद्धिमान् को चाहिए कि देवालय कभी ध्वजा शून्य न हो । ७२। विधान के विद्वानों ने ध्वजा स्थापन के लिए यह मन्त्र बताये हैं—हे भगवन्, हे देव, हे देववाहन, हे आकाश में गमन करने वाले ! आप श्री उत्पन्न करने वाले तथा श्री के निवास रूप हैं । हे जप एवं जेत्र से सुशोभित, हे व्योमरूप, हे महारूप, हे धर्मात्मन् ! तुम्हीं गति रूप हो ! इस दंड में साक्षी के रूप में प्रविष्ट होकर आप अटल हो जाइये । हे अर्कवल्लभ ! उसके कर्ता एवं प्रासाद की सदैव दृढ़ि कीजिए । ७३-७५। हे भगवन् ! हे ईश्वर विनिर्मित ऊपरी भाग में विचरण करने वाले वायु के मार्ग का अनुगमन करने वाले ! हे श्रीनिवास, हे शत्रु का नाश करने वाले, हे यक्षों के आवासस्थान रूप इस (ध्वजदण्ड) में सर्वदेव प्रवेश करके मुझे शान्ति, कल्याण, एवं अभय प्रदान कीजिए जिससे मेरे सभी विघ्न नष्ट हो जाय । ७६। ओंकार पूर्वक इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए तथा हे नृप ! पूर्वाभिमुख स्थित होकर पूर्व बताये गये मन्त्र के उच्चारण पूर्वक पताका उस शुभ्र (ध्वजदण्ड) में लगाना चाहिए । ७७। पश्चात् हे यदुनन्दन ! उस विभु (नायक) देव के प्रसाद शिखर से ऊपर आकाश में उस पताका का देव के प्रासाद शिखर से ऊपर आकाश में फहराते हुए यजमान को उसका निरीक्षण करना चाहिए । ७८। हे वीर ! उस प्रासाद (विशाल भवन) के सामने यदि पताका लटके, तो हे यदुनन्दन ! उसके कर्ता को इन्द्र लोक की प्राप्ति होती है । आग्नेय दिशा में लटकने से अग्नि लोक, दक्षिण में यमपुरी, नैऋत्य में नैऋत्य लोक एवं पश्चिम में (लटकने से) वरुण लोक की प्राप्ति होती है । ७९-८०। हे यदुकुलश्रेष्ठ ! जिस देवता के लिए वह निवास स्थान (मंदिर) बनाया गया है, वृष स्थान में लटकने से उसे उसी देवलोक की प्राप्ति होती है । ८१। एवं वायव्य में वायुलोक, उत्तर में सोमलोक, तथा ऐशान्य में ईश्वर (शिव) लोक की प्राप्ति होती है । ८२। जो भक्तिपूर्वक सूर्य के लिए इस प्रकार की ध्वजा का आरोपण करता है, अम्बुज के समान तेज एवं कांति, द्विजाति (विप्र) के समान प्रभा पूर्ण और

तेजसाम्बुजसंकाशः कान्त्या चाम्बुजसंश्रिभः । द्विजातितुल्यः प्रभया विकर्मेण च गोप्तेः ॥८४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाख्याने
ध्वजारोपणविधिवर्णनं नामाष्टविंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८।

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकानयनवर्णनम्

साम्बु उवाच

त्वत्प्रसादन्मया प्राप्तं रूपमेतत्पुरातनम् । प्रत्यक्षदर्शनं चापि भास्करस्य महात्मनः ॥१
सर्वमेतत् सम्प्राप्य पुनश्चिन्नाकुलं मनः । देवस्य परिचर्यायाः पालनं कः क्रिष्यति ॥२
गुणयुक्तं द्विजं किञ्चित्समर्थं परिपालने । भूमैवानुग्रहाद्बहान्दिजं व्याख्यातुर्महिति ॥३
एवमुक्तस्तु साम्बेन नारदः प्रत्युवाच तम् । न द्विजाः परिगृह्णन्ति देवस्य स्वीकृतं धनम् ॥४
विद्यते हि धनं ह्यत्र गुणश्चायां प्रतिग्रहः । देवचर्यागतैर्द्रव्यैः क्रियाः ब्राह्मी न विद्यते ॥५
अवज्ञया च कुर्वन्ति ये क्रिया लोभमोहिताः । अपाइक्तेया भवन्तीह ते वै देवलका द्विजाः ॥६
देवस्वं ब्राह्मणस्वं च यो लोभादुपजीवति । स पापात्मा नरो तोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥

सूर्य के समान पराक्रम की प्राप्ति पूर्वक वह उत्तम भोगों का उपभोग करके सूर्य लोक में पूजित होता है । १३-८४

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मणवर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाख्यान में ध्वजारोपण विधि वर्णन नामक एक सौ अड्डतीसवाँ अध्याय समाप्त । १३८।

अध्याय १३९

भोजकानयन की विधि का वर्णन

साम्बु ने कहा—आप की कृपा वश मैंने अपना पुराना रूप एवं महात्मा भास्कर का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त किया है । १। इस सब कुछ की प्राप्ति हो जाने पर भी मेरे मन में किरचिता हो रही है कि सूर्य देव की सेवा (पूजा) कौन करेगा । २। हे ब्रह्मन् ! मुझ पर अनुग्रह करके आप गुणी एवं सेवा करने के लिए उपयुक्त किसी ब्राह्मण को बतायें । ३। इस प्रकार साम्बु के कहने पर नारद ने कहा—देवता के लिए स्वीकृत धन को कोई ब्राह्मण नहीं अपना सकता है क्योंकि यह धन यहाँ प्रतिग्रह (दान) के रूप में स्थित है । देवता की पूजा करने के द्वारा प्राप्त द्रव्य को अपनाने से ब्राह्मण की ब्राह्मी (ब्रह्म संबंधी योग आदि) क्रिया नष्ट हो जाती है । ४-५। लोभवश कोई ब्राह्मण यदि उस क्रिया का अनादर करता है, वह अपाइक्तेय (ब्राह्मण मण्डली में स्थानच्युत) हो जाता है, क्योंकि उस प्रकार के धन को अपनाने वाले ब्राह्मण 'देवलक' कहे जाते हैं । ६। जो लोभवश देव धन या ब्राह्मण धन से अपनी जीविका निर्वाह करता है, वह मनुष्य लोक में पापी एवं गीधों का उच्छिष्ट (जूठा किये गये) स्ताकर जीवित रहता है । इसलिए

ततो न ज्ञाह्यणः कश्चिद्देवचर्या करिष्यति

॥७

विष्णुं ज्ञानवन्तं च परिचयर्थम् तथा । देव एव तमाख्यातुं तस्मात् शरणं मज्जः ॥८
अथवा यदुशार्दूल उप्रसेनपुरोहितम् । गत्वा^१ गौरमुखं चृच्छ स ते कामं विधास्यति ॥९
नारदेनैवनुलक्ष्टुं साम्बो जन्म्बदतीमुतः । मुखासीनं गृहे वीर उप्रसेनपुरोहितम् ॥१०
कृतपूर्वाल्लिङ्कं वीर विप्रं गौरमुखं नृप । दिन्येनोपसङ्घगम्य साम्बो वाक्यमथाक्षवीत् ॥११
मया भानोः प्रसादेन कारितं विपुलं गृहम् । सपलीकं ससैन्यं च वृष्यव्यां सारदत्तिथतम् ॥१२
सर्वं तस्मिन्मया इत्तुं कृतं भूत्यभ्य भज्जलम् । तस्मादिष्ट्वा विसिष्टेभ्यो देयं दानं भनोगतम् ॥१३
तत्सर्वं भम सङ्ग्रीत्या शूहाग त्वं नहामुने । साम्बवाद्यमिदं शुत्वा प्रत्युवादं महामुनिः ॥१४

गौरमुख उदाच्च

इवोम्यहमशेषेण यज्ञावदनुपूर्वशः । अहं विप्रो भवान्नराजा स च देवर्थिप्रहः ॥१५
अपरस्परमेवं तु ग्रहणं मे विहृथ्यते
ब्रह्मविद्याप्रणीतानि स्वकर्माणि द्विजातयः । क्रुर्वाणा न प्रहीणन्ते अन्यथा भिन्नवृत्तयः ॥१६
क्षान्तिरध्यापनं^२ जापः सत्यं च यदुनन्दन । एतानि विप्रकर्माणि न देवार्थपरिप्रहः^३ ॥१७

कोई ब्राह्मण देव-मंदिर जी पूजा स्वीकार नहीं कर सकता है । ७। विधान का जाता, जानी, सेवा करने के योग्य, ऐसे पुरुष को सूर्य देव ही बना सकेंगे, अतः इसके लिए उन्हीं की शरण जाओ । ८। अथवा हे यदुशार्दूल ! उप्रसेन के पुरोहित गौरमुख से इस बात की चर्चा करो । तो तुम्हारा कार्य अवश्य कर देंगे । ९। हे वीर ! नारद के इस प्रकार कहने पर जाम्बवती पुत्र साम्ब घर में सुख पूर्वक बैठे हुए उप्रसेन पुरोहित के समीप पहुँचे । १०। हे वीर ! हे नृप ! पूर्वात्म काल के धार्मिक कृतयों को समाप्त कर बैठे हुए गौर मुख ब्राह्मण के सभीप पहुँच कर साम्ब ने सवितय प्रार्थना की । ११। मैंने सूर्य की कृपावश उनके लिए एक विशाल भवन का निर्माण कराया है, उसमें उन्हें पल्ली एवं सेना समेत स्थापित किया है, जो पृथिवी में सार के रूप में स्थित (सर्वथेष्ठं) है । उस मन्दिर के निमित्त मैंने सभी कुछ दे दिया है, मूर्ति मण्डल की रचना कर उस यज्ञ में दैनें अपनी अभिलपित वस्तुएँ प्रदान की हैं । १२-१३। मैं चाहता हूँ कि वह सब किसी विशिष्ट (व्यक्ति) को दे दी जायें । हे महामुने इस मेरे ऊपर प्रसन्न होकर प्राप्त उन सब को ग्रहण करें । साम्ब की ऐसी बातें सुन कर उन महामुनि ने कहा । १४

गौरमुख बोले—मैं निखिल बातों को जो जेसी है क्रमशः बता रहा है मैं ब्राह्मण हूँ, आप राजा हैं और वह सब धन जो देवता के लिए स्वीकृत है प्रतिग्रह के रूप में है । उससे कोई मेरा पारस्परिक संबंध नहीं है, अतः ऐसी वस्तुओं का अपनाना मेरे विरुद्ध है । १५। (ब्रह्मविद्या) वेद के बताये हुए अपने कर्मों द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले ब्राह्मण कभी च्युत नहीं होते, उससे भिन्न कर्मों द्वारा जीविका निर्वाह करने वाले (विप्र) च्युत हो जाते हैं । १६। हे यदुनन्दन ! क्षान्ति, अध्यापन, जप करना, सत्यबोलना, यही ब्राह्मणों के कर्म हैं न कि देवता के लिए स्वीकृत धन को प्रतिग्रह रूप में ग्रहण करना । १७। क्योंकि देवता

१. अथाहो यद्यसौ कुरुतेऽनघ । ततः स गत्वा साम्बस्तु प्रणिपत्य महामुनिम् । २. अध्ययनम् ।
३. देवान्नपरिप्रहः ।

यदि देवार्थदानं^१ स्यात्तो देवलक्ष्मि द्विजः । देवद्रव्याभिलाप्तश्च ब्राह्मणं तु विमुच्चति ॥१८
देवद्वारे च यद्वान् ब्रह्मणाय प्रयच्छति । द्वावेतौ पापकर्तारावात्मदोषेण मानदै ॥१९
देवार्थदानं^२ वार्ण्यं यद्यगृहीत्वा च यो द्विजः । श्राद्धे वा यदि वा सत्रे तज्जुहोति ददाति वा ॥
निन्न वृत्तो द्विजः पापो राक्षसः सोऽभिजायते ॥२०

द्विजो देवलक्ष्मि यत्र पञ्चत्यां भूइन्ने भर्तोपते । अन्नायुपस्त्रैरेत्तीवा सा पद्मिकः प्रापमात्मरेत् ॥२१
द्विजो देवलक्ष्मि यस्य संस्कारं तस्मयच्छति : सोऽप्येषु मुखान्मितृन् सर्वानाकम्य विनिशालयेत् ॥२२
आत्मानं पात्रवेद्यस्तु सोन्यानुद्धरते कथम् उद्धरिष्यति चात्मानमित्येवा कल्पनाधमा ॥२३
यो हठाच्च^३ भयाच्चैव कुरुते रविदेशमनः । वृत्तिं विधत्ते विज्ञत्वात्पतितस्स तु जायते ॥२४
तप्रतिग्रहमन्देण द्विजोऽनाति परिग्रहम् । देवप्रतिग्रहार्थं पु वेदवाक्यं न विद्यते ॥२५
तस्माद्वाजा न देवार्थं विप्रे दद्यात्कथञ्चन । ब्रह्मसूत्रमहं छित्त्वा गमिष्यामीति गम्यताम् ॥२६

साम्ब उवाच

अग्राह्यं देविजातिभ्यः कस्मै देयमिदं मया । श्रुतं वा दृष्टपूर्वं वा तस्मै व्याख्यातुमर्हस्मि ॥२७
गौरमुख उवाच

मगाय सम्प्रयच्छ त्वं पुरमेतच्छुभं विभो । तस्याधिकारो देवान्ने देवतानां च पूजने ॥२८

के लिए दिये गये धन को स्वीकार करने वाले द्विजों को देवलक्ष्मि कहा जाता है । देव धन की अभिलाप्ता करने वाला ब्राह्मण ब्राह्मणत्वं हीन हो जाता है । १८। देव मन्दिर में ब्राह्मण के लिए जो दान देता है, ये दोनों देने सेने वाले मनुष्य अपने दोष के नाते पापी हो जाते हैं । १९। हे वृष्णि कुलोत्तम ! जो ब्राह्मण देवधन को लेकर उससे श्राद्ध अथवा यज्ञ में हवन करता है या अन्य को देता है, वह अपने धर्म से भिन्न वृत्ति अपनाने वाला ब्राह्मण पापी एवं राक्षस हो जाता है । २०। हे महीपते ! देवलक्ष्मि यज्ञ पंक्ति में बैठकर भोजन करता है, अथवा भक्ष्य अन्नों का स्पर्श करता है, वह पंक्ति नीच (अधम), पाप कारिणी समझी जाती है । २१। देवलक्ष्मि द्विज यज्ञसंस्कार करता है वह अपने सभी पितरों पर आङ्ग्रेमण कर उन्हें अधोमुख करके पतन कराता है । २२। इसीलिए जो अपना पतन करता है, वह दूसरे का उद्धार कैसे कर सकता है ? 'अपना उद्धार कर नेगा' यह तो निम्नकोटि की कल्पना मात्र है । २३। जो कोई ब्राह्मण होकर हठ, लोभ, एवं भयवश सूर्य मन्दिर की (सेवा) वृत्ति स्वीकार कर लेते हैं, वे ब्राह्मण पतित हो जाते हैं । २४। यद्यपि मन्त्र पूर्वक प्रतिग्रह का ग्रहण कर ब्राह्मण उसका उपभोग करता है, पर, देवधन का प्रतिग्रह (दान) लेने के कोई वैदिक वाक्य नहीं हैं । २५। इसीलिए राजा उस देवधन को किसी ब्राह्मण को कभी न दे । ब्रह्म सूत्र (यज्ञोपवीत) तोड़कर ही मैं ऐसा कर सकूंगा, यदि ऐसा कहकर कोई करने को तैयार है तो वह भले ही करे । २६

साम्ब ने कहा—यदि इसे द्विजाति लोग नहीं स्वीकार करेंगे, तो मैं यह किसे दूँ, आप इसके विषय में कुछ सुने हों या देखे हों तो मुझे बताने की कृपा करें । २७

गौरमुख बोले—हे विभो ! तुम उस नगर को मग, के लिए प्रदान कर दो क्योंकि देवताओं के अन्न ग्रहण एवं पूजन करने का एकमात्र उन्हें ही अधिकार है । २८

साम्ब उदाच

कोऽयं मगेति ते प्रोक्ताः क्व वासौ वसते विभेते । कस्य पुत्रो द्विजश्रेष्ठ किमाचारः किमाकृतिः ॥२९

गौरमुख उदाच

योऽयं मगेति वै प्रोक्तो मगो दिव्यो द्विजोक्तमः । निक्षुभायां^१ सुतो वीर आदित्यात्मज उच्यते ॥३०

साम्ब उदाच

कथं स निक्षुभायुत्रः लक्ष्मी वीरसुतस्तथा । कथं चादित्यतनयो भगोऽत्तावच्यतेनऽघ ॥३१

गौरमुख उदाच

मानुषत्वं गता देवी निक्षुभा किल यादव । गता शतपमवाप्येह भास्कराल्लोकपूजिता ॥३२
गोत्रं भिरमित्वाहृत्तस्मै ब्राह्मण्यमुत्तमम् । सुजिह्वा नाम धर्मात्मा ऋषिपुत्रः पुरानघ ॥३३
तस्यात्मजा समुत्पत्रा निक्षुभा सा वराइनना । रूपेणाप्रतिमा लोके हारलीला मता दु सा ॥३४
पितुर्नियोगात्मा कन्या विहरेज्जातवेदसि ॥३५

विहरल्ली यथान्यायं समिद्ध पावके तथा । अथ तां देवदेवेशो हृण्युमाली दर्शन ह ॥३६
रूपयौवनसम्पन्नां ततः कामवशं गतः । चिन्तयामास देवेशः कथं तां वै भजाम्यहम् ॥३७
अनयावहृतो योऽयं पावको देवपूजितः । वनस्पतिश्च तन्वद्गर्णी भजेयं लोकपूजिताम् ॥३८

साम्ब ने कहा—हे विभो ! ये मग कौन हैं, कहाँ इनका निवास स्थान है, किसके पुत्र हैं, एवं हे द्विजश्रेष्ठ ! इनके आचार तथा आकृति कैसी होती है ॥२९

गौरमुख बोले—जिस मग को मैंने तुम्हें बताया है, वे दिव्य एवं उत्तम द्विज होते हैं, निक्षुभा से उत्पन्न ये वीर सूर्य के पुत्र कहे जाते हैं ॥३०

साम्ब ने कहा—हे अनघ ! ये मग निक्षुभा के पुत्र कैसे हुए, वीर सुत एवं आदित्य के तनय कैसे कहे जाते हैं ॥३१

गौरमुख बोले—हे यादव ! लोकपूजित निक्षुभा देवी भास्कर के शाप देने के कारण मनुष्य रूप में उत्पन्न हुई थीं ॥३२। पहले समय में मिहिर गोत्र में जिसमें उत्तम ब्राह्मणत्व का होना बताया गया है, हे अनघ ! सुजिह्वा नाम के धर्मात्मा ऋषिपुत्र उत्पन्न हुए ॥३३। उनकी पुत्री होकर निक्षुभा उत्पन्न हुई, जो सुन्दर अंगों वाली एवं अनुपम सौन्दर्य पूर्ण थी उस समय लोक में वह हार लीला (उत्तम आभूषण) के समान विख्यात थी ॥३४। पिता की आज्ञा प्राप्त कर वह अग्नि में एक साथ खेला करती थी ॥३५। इस प्रकार प्रज्वलित अग्नि के साथ विहार करती हुई उसे एक बार देवाधिदेव सूर्य ने देखा ॥३६। उस रूप यौवन संपन्न कुमारी को देखकर सूर्य कामपीड़ित हुए और सोचने लगे कि इसका उपभोग हमें कैसे प्राप्त होगा ॥३७। उन्होंने सोचा कि इसने देव पूजित अग्नि को अपने वश में कर लिया है, इसलिए इस कृष्णाङ्गी एवं लोक की उत्तम रमणी को बन में ले जाकर मैं रमण करूँगा ॥३८। हे वीर ! ऐसा निश्चय

१. निक्षुभाग्निसुतः ।

इति सञ्चिन्त्य देवेशः सहस्रांशुर्दिवस्थतिः । विदेश पावकं वीरं तत्प्रश्नाभवन्तवा ॥३९
 ततो विलासलावप्यरूपयौवनशालिनी । समिद्धं लङ्घयित्वाग्निं जग्मायतलोचना ॥४०
 कुद्धः स्वरूपमास्थाय दृष्ट्वा कन्यां स पीडितः । करं करेण सङ्गृह्य ततस्तां हृव्यवाहनः ॥४१
 उवाच यदुशार्दूलं नोदितो भास्करेण तु । वेदोक्तं विधिमुत्सृज्य यथाहं लंघितस्त्वदा ॥४२
 तस्मान्मतः समुत्पन्नो न च पुत्रो भविष्यति । जरशब्दं इति ल्पातो बंशकीर्तिविदर्धनः ॥४३
 अप्निजात्या मगः प्रोक्ताः सोमज्ञात्या द्विजात्यः । भोजकादित्यजात्या हि दिव्यास्ते पारकीर्तिताः ॥४४
 तामेवमुक्त्वा भगवानादित्याऽन्तरतस्तदा । अथोत्पन्नां प्रजां ज्ञात्वा ध्यानयोगेन वै कृषिः ॥४५
 पतिः स्यान्महातेजा ऋग्जिह्वः सुमहामतिः । शापमुद्यम्य तेजस्त्वी ऋग्जिह्वो वाक्यमब्रवीत् ॥४६
 आत्मापराधात्कामिन्या यथा गर्भे नज्जावृतः । सम्भूतस्ते महाभागे अपूज्योऽयं भविष्यति ॥४७
 पुत्रशोकाभिसन्तप्ता बाला पर्याकुलेक्षणा । चिन्तप्रसांस दुःखात्ता तमेकं ज्वलनाङ्गुतिष्ठ ॥४८
 ततो देववरिष्ठस्य मम योनिसमुद्भवः । अयं दत्तो महाशापः पूज्यतां कर्तुमर्हसि ॥४९
 भवेत्पूज्यो हि मे पुत्रो देवेश्वरं तथा कुरु । एवं चित्यमनास्तु भगवानर्थना किल ॥५०
 आश्रेयं रूपमाश्रित्य चेदं वचनमब्रवीत् । स्त्वाधो गम्भीरनिर्देषः शान्तो ज्वरविवर्जितः ॥५१

कर देवेश सहस्र किरण वाले सूर्य ने अग्नि में प्रवेश किया । और इसी लिए उससे पुत्र उत्पन्न हुआ । ३१
 एकबार उस विलास सुन्दरी एवं विशाल नेत्रवती रूप यौवन के मद से मत्त होकर प्रज्वलित अग्नि को
 लाँघकर चली गई । ४०। उस समय कामपीडित अग्नि प्रविष्ट सूर्य ने कुद्ध होकर अपने हाथ से उसका
 हांथ पकड़ कर कहा । हे यदुशार्दूल ! उस समय भास्कर उदय नहीं हुए थे । उन्होंने कहा वेद विधान का
 त्याग कर तूने मेरा उल्लंघन किया है इसलिए तुम्हारा पुत्र मेरे द्वारा उत्पन्न होने पर भी पुत्र न
 कहलायेगा प्रत्युत जर शब्द के नाम से उसकी स्थाति होगी । ४१-४३। इस प्रकार वह अपनी वंश कीर्ति
 को बढ़ायेगा अग्नि जाति वाले मग, सोम जाति वाले द्विजाति, आदित्य जाति वाले भोजक के नाम से (वे
 उत्पन्न होने वाले) दिव्य ल्पाति प्राप्ति करेंगे । ४४। उससे इस प्रकार कहकर सूर्य देव अन्तर्हित हो
 गये । उस समय ऋषि ने भी अपने ध्यान थोग द्वारा उन उत्पन्न हुई सन्तानों के विषय में ज्ञान प्राप्त
 किया । ४५। उससे महाबुद्धिमान् एवं महातेजस्वी वे ऋग्जिह्वा नामक ऋषि मूर्छित से हो गये ।
 इसीलिए उस तेजस्वी ऋग्जिह्वा ने उसे शाप दिया कि तुमने स्वर्यं कामवश होकर अपने दोष से गर्भ को
 धारण किया है, अतः हे महाभाग ! तुमसे उत्पन्न यह पुत्र अपूज्य होगा । ४६-४७। (उनके ऐसा कहने
 पर) पुत्र शोक से संतप्त एवं आँखों में आँसू भरे उस स्त्री ने दुःखी होकर उसी एक प्रज्वलित आङ्गुति वाले
 (अग्नि) का ध्यान किया । ४८। कि शेष देवद्वारा मेरे (गर्भ) से उत्पन्न इस सन्तान को उन्होंने अपूज्य
 होने का शाप दिया है, अतः इन्हें पूज्य बनाने की कृपा करें । ४९। हे देवेश्वर ! मेरे पुत्र जिस उपाय से
 पूज्य हो सके आप वैसा ही करने की कृपा करें । इस प्रकार उसे चिन्तित देख कर भगवान् सूर्य ने अग्नि
 का रूप धारण कर उससे कहा—हे सुव्रत ! प्रिय ! गंभीर वाणी वाले शांत, क्रोधहीन एवं महातेजस्वी वे

ऋगिज्ञः समुहतेजा धर्म चरति सुद्रत । तेनोत्सृष्टं महाशापं नान्यथा कर्तुमुत्सहे ॥५२
 किं तु कार्यगरीयस्त्वादात्मनो योग्यमुत्तम् । तब पुत्रं विधास्यामि चापूज्यं वेदपारगम् ॥५३
 वंशश्रवं सुमहांस्तस्य निवसिष्यति भूतले । ममाङ्गानि महात्मानो दाशिष्ठा ब्रह्मवादिनः ॥५४
 मदशायतः गद्यजना मद्भूत्ता मत्परायणाः । मम शुश्रूपकारचैव मम च ब्रतचारिणः ॥५५
 त्वां च मां च यथान्यायं वेदं तत्त्वार्थदर्शनः । पूजयिष्यन्ति निरताः सदा भद्रावशावितः ॥५६
 मत्कर्मणां नदङ्गानां मद्भूत्वविनिदेशनात् । विरजा मत्प्रसादेन मामेवैष्यल्यसंशयम् ॥५७
 जटाशमश्रुधरा नित्यं सदा शदि परायणाः । दञ्चकालविधानज्ञा वीरकालस्य यज्ज्विनः ॥५८
 पूर्णेकदक्षिणे पाणौ वर्म दामेन धारयन् । पतिदानेन वदनं प्रच्छाद्य नियतः शुचिः ॥५९
 प्राणं हि महतां कृत्वा ततो भुञ्जीत वाग्यतः । अयमाच्चाप्रसादाच्च व्याकुलेन्द्रियचेतसा ॥६०
 विधिहीनं मन्त्रहीनं दे वै यथ्यन्ति मामतः । तेऽपि स्त्वर्गच्छ्रुताः क्लान्त्ता रमल्ले सूर्यसन्निधौ ॥६१
 एवंविधास्तवं सुता भविष्यन्ति महीतले । मशवंशे महात्मानो वेदवेदाङ्गपाराणः ॥६२
 एवमाश्वास्य तां देवीं भास्करो वास्तिस्करः । अन्तदर्थं महातेजाः सा च हर्षमवाप ह ॥६३
 एवमेते समुत्पन्ना भोजकाः कृष्णनन्दनः । दिष्णुभास्ते तथादित्या उत्पन्ना लोकपूजिताः ॥६४
 तेषामेतत्पुरं देहि पर्याप्तास्ते प्रतिग्रहे । त्वदीयस्यास्य मे वीरं तथा भास्करपूजने ॥६५

ऋगिज्ञ धर्म का आचरण कर रहे हैं, अतः उनके द्वारा दिये गये उस महाशाप की प्रतिक्रिया मैं करने में असमर्थ हूँ । ५०-५२। परन्तु उत्तम कार्य करने के नाते मैं तुम्हारे योग्य पुत्रों को उत्तम, योग्य, एवं वेद का पारगामी विद्वान् बनाऊँगा । ५३। इस भूतल पर उनकी महान वंश परम्परा निवास करेगी । वै सब मेरे अंग, महात्मा, विष्णुगोत्री, ब्रह्मवादी, मेरे ही गान, पूजन, भक्ति, परायण में मेरी सेवा एवं मेरे व्रत-विधानों का पालन करने वाले होंगे । ५४-५५। वेद-तत्व के निष्णात विद्वान् मेरे भावानुरक्त एवं तत्कालीन होकर मेरी और तुम्हारी अर्चना करेंगे । ५६। मेरे लिए कर्म करने के नाते मेरे अंग कहे जायेंगे तथा मेरे भावानुरक्त एवं मेरी प्रसन्नता से विरक्त होकर वे मुझे निश्चित प्राप्त करेंगे । ५७। जटा एवं दाढ़ीको धारण कर सदैव मत्परायण होते हुए वे पाँचों कालविधान के ज्ञाता, तथा वीरकाल की नित्य पूजा करेंगे । ५८। दाहिने हाथ को पूर्ण रख और बाँय हाथ में वर्म रूप (केंचुल कवच) धारण कर पति दान द्वारा मुख दाँक कर संयमी एवं पवित्र होते हुए महान लोगों की भाँति प्राप्त वायु के संयमपूर्वक ही भोजन करेंगे संयमहीनं, अकृष्ण, एवं आकुल मन से विधान तथा मंत्र से हीन मेरे पूजन यज्ञ आदि भी करेंगे । ५९-६०। तो भी स्वर्ग की प्राप्ति तो न कर उससे दुःखी हो सकेंगे पर सूर्य के समीप प्रसन्नतापूर्वक आनन्द का अनुभव करेंगे । ६१। इस प्रकार के तुम्हारे पुत्र इस पृथ्वी तल पर मग वंश में उत्पन्न होकर महात्मा वेदवेदाङ्ग के पारगामी विद्वान् होंगे । ६२। जल के तस्कर तथा महातेजस्वी भास्कर इस प्रकार उस देवी को आश्रामन प्रदान कर अन्तहित हो गये और वह देवी भी अन्यन्त हर्षित हुई । ६३। हे कृष्णनन्दन ! इस भाँति वे भोजक अग्नि एवं सूर्य द्वारा उत्पन्न होकर विष्णु और सूर्य के समान तेजस्वी हो जाकर लोक मेरूपूजित हुए । ६४। उन्हीं लोगों को इस नगर का दानकर इसका अधिकारी बनाओ क्योंकि वे ही इम प्रतिग्रह के लेने में समर्थ हैं । ६५। उन गौरमुख की ऐसी वातें गृहकर जाम्बवनी के पुत्र साम्ब यादव ने

तस्य गौरमुखस्येदं वाक्यं क्षुत्वा स यादवः । ताम्बो जाम्बवतीपुत्रः प्रणस्य शिरसोल्लवान् ॥६६
क्य वसन्ते महात्मान एते भास्करपुत्रकाः । भोजका द्विजशार्दूल येन तानानयस्यहम् ॥६७

गौरमुख उवाच

नाहं जाने महाबाहो वसन्ते यत्र वै मगाः । जानीते तान्नरविदीर तस्मातं शरणं व्रज ॥६८
ज्ञाहृणेनैदमुल्लस्तु प्रणस्य शिरसः रथिम् । जगद्भास्करं साम्बः कस्ते पूजां करिष्यति ॥६९
दिनपत्सत्त्वेव साम्बेत प्रतिमा तमुवाच ह । न योग्याः परिचर्यायां जम्बूद्वीपे भूमनष्ट ॥७०
मम पूजाकरं गत्वा शाकटीपदिहानगः । लवणोदात्परे पारे क्षीरेदेन समावृतः ॥७१
जम्बूद्वीपात्परो यस्मान्छाकद्वीप इति स्मृतः । तत्र पुण्णा जनपदाश्रतुर्वर्णसमन्विताः ॥७२
मगाश्च भगगाश्चैव गानगाः मन्दगास्तथा । मगा ज्ञाहृणभूयिष्ठा मगाः क्षत्रियाः स्मृताः ॥७३
वैश्यास्तु गानगा ज्ञेया शूद्रास्तेषां तु मन्दगाः । न तेषां सङ्करः कश्चिद्गमश्चयकृते क्वचित् ॥७४
धर्मस्यास्य विचारो वा होकतः सुखिनः प्रजाः । तेजतस्ते मदीयस्य निर्मिता विश्वकर्मणा ॥ ॥७५
तेभ्यो वेदास्तु चत्वारः सरहस्या मयोदिताः । वेदोक्तैविविद्यैः स्तोत्रैः परैर्मुहूर्मया कृतैः ॥७६
ते च ध्यायन्ति मामेव यजन्ते मां च नित्यशः । मन्मानसा नद्यजना मदूक्ता मत्परायणाः !!७७
मम शुश्रूषकाश्चैव मम च वत्तचारिणः । अव्यङ्गाधारिणश्चैव विधिद्वेष्टन कर्मणा ॥७८

उन्हें पुनः शिर से प्रणाम कर कहा—हे द्विजोनम ! ये भास्कर के पुत्र महात्मा भोजक लोग कहाँ रहते हैं, (आप बतायें) जिसमें मैं उन्हें यहाँ ला सकूँ ॥६६-६७

गौरमुख बोले—हे महाबाहो ! वे मग जहाँ रहते हैं, मुझे मालूम नहीं है ! हे वीर ! सूर्य ही इसे जानते हैं, अतः उन्हीं की शरण जाओ ॥६८। ब्राह्मण के ऐसा कहने पर साम्ब ने न त मस्तक हो सूर्य को प्रणाम किया और उनसे कहा कि—‘आप की पूजा कौन करेगा ॥६९। साम्ब के इस प्रकार सूनित करने पर उस (सूर्य की) प्रतिमा ने कहा—हे अनघ ! इस जम्बूद्वीप में मेरी पूजा करने के योग्य कोई नहीं है ॥७०। (अतः) मेरी पूजा करने के लिए शाकद्वीप से (किसी को) लाओ । धार (बार) समुद्र के उम पार के प्रदेश को जो जम्बूद्वीप से भी दूर हैं और क्षीर सागर से घिरा है वह शाकद्वीप कहा जाता है वहाँ पुण्यात्मक चारों वर्ण के मनुष्य रहते हैं—मग, मगग, गानग एवं मंदग उनके भेद हैं । श्रेष्ठ ब्राह्मण मग, अक्षिय मगग, वैश्य गानग, तथा शूद्र मंदग के नाम से वहाँ स्थायत हैं । उस धार्मिक नगर में कोई (वर्ण) संकर (जारज) नहीं है ॥७१-७४। वहाँ सभी लोग धार्मिक चर्चा करते हैं, इसीलिए वहाँ की प्रजाएँ नित्य सुखानुभव करती हैं विश्वकर्मा ने मेरे ही तेज द्वारा उनका निर्माण किया है ॥७५। उन लोगों के लिए मैंने सरहस्य चारों वेदों का प्रतिपादन किया है, और भाँति-भाँति के वेदोक्त एवं गुह्य स्तोत्रों का निर्माण भी ॥७६। वे सब मेरा ही नित्य ध्यान तथा पूजन करते हैं, वे मेरे मानस पुत्र होकर, मेरे भक्त, मेरे भक्त, मेरे लिए अनुरक्त होकर मेरी ही शुश्रूषा एवं मेरे ही व्रतों का पालन करते हैं और विधान पूर्वक अव्यंग्य भी धारण करते

कुर्वन्ति ते सदा भद्रां मम पूजां ममानुगाः । तथा देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्रम सह चारणः ॥
 विहरन्ते रमन्ते च दृश्यमानश्च तैः सह ॥१७९
 जम्बूद्वीपे त्वहं विष्णुवेदवेदाङ्गप्रूपितः । शकोऽहं शाल्मलीद्वीपे क्रौञ्चद्वीपे हाहं भद्रः ॥८०
 प्लकष्ट्रीप त्वहं भानुः शाकद्वीपे दिवाकरः । पुष्करे च स्मृतो ऋग्या ततश्चाहं भद्रेश्वरः ॥८१
 तान्मगान्मम पूजार्थं शाकद्वीपादिहानय । आरुह्य दर्शनं साम्ब शीघ्रं गत्याविचारणम् ॥८२
 तर्थेति गृह्य तामाजां रवेन्द्राम्बद्धतीसुतः । पुनर्द्वारवतों गत्वा कान्त्यतीव सन्निवितः ॥८३
 खास्यात्प्रवाचन्त्यितुः सर्वं स्वकीयं देवदर्शनम् । तस्माच्च दर्शनं लब्ध्या यथौ साम्बोऽधिरूपं तम् ॥८४
 शाकद्वीपमनुप्राप्य सन्प्रहृष्टतनूरुहः । तव्रापश्यद्यथोऽद्विष्टान्साम्बस्तेजस्विनो नगान् ॥८५
 विवस्वन्तं पूजयन्ते धूपदीपादिभिः शुभैः । सोऽनिवाद्य च तान्मूर्द्धं कृत्वाण्येषां प्रदक्षिणाम् ॥८६
 वृष्ट्वा बानामयं तेषां प्रशासासामपूर्वकम् । यद्यं हि पुण्यकर्षणो द्रष्टव्यार्थं चुभार्यनः ॥
 रता येऽर्कस्य पूजायां येषां चैव वरप्रदः ॥८७
 तनयं वित्त मां विष्णोः साम्बं नाम्ना च विश्वृतम् । चन्द्रभागातटे चापि मया सूर्यो निवेशितः ॥८८
 तेनाहं प्रेषितश्चात्र उत्तेष्ठध्वं वज्रं पहे । ते तमूचुस्ततः साम्बसेवमेतत्प्र संशयः ॥८९
 अत्माकमपि देवेन व्याख्यातां पूर्वमेव हि । अष्टादश कुलानीह मगानां वेदवादिनाम् ॥

हैं । ७७-७८। वे मेरे अनुयायी होकर सदैव मेरी उत्तम पूजा करते हैं, तथा देव, गन्धर्व, सिद्ध एवं चारणों के साथ विहार, रमण सभी मुहूर्त करते हुए देखे जाते हैं । ७९। जम्बूद्वीप में मैं वेद एवं वेदाङ्ग द्वारा पूजित विष्णु, शाल्मली द्वीप में शक (इन्द्र) क्रौञ्च द्वीप में शिव, लक्ष्मीद्वीप में भानु, शाकद्वीप में दिवाकर, पुष्कर में ब्रह्मा, एवं (कुशद्वीप) में महेश्वर के रूप में स्थित हूँ । ८०-८१। अतः मेरी पूजा के लिए उन मणों को शाकद्वीप से यहाँ लाओ हे साम्ब ! गरुड पर बैठकर शीघ्र प्रस्थान करो, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है । ८२। जाम्बवती पुत्र साम्ब 'तथा' कहकर सूर्य की आज्ञा शिरोधार्य कर मनोरम सौन्दर्य पूर्ण हो गुणः द्वारवती (द्वारिका) के लिए अवस्थित हुआ । ८३। वहाँ अपने पिता से सूर्य दर्शन आदि सभी वृत्तान्त कह मुनाया पश्चात् उनसे गरुड लेकर उसी पर बैठकर साम्ब ने शाकद्वीप के लिए प्रस्थान किया । ८४। वहाँ पहुँचने पर जैसा कि सूर्य ने बताया था, जो धूप द्वीप द्वारा सूर्य की पूजा करते थे, तेजस्वी मणों को देखकर उसे इतनी प्रसन्नता हुई कि उसे रोमांच हो गया । ८५। उसने पहले उन लोगों की प्रदक्षिणा की पश्चात् उनका अभिवादन किया । ८६। शांति पूर्वक उनके (अनामय) कुशल पूछने के उपरांत उनकी प्रशंसा करने लगा कि आप लोग पुण्य कर्म एवं दृष्ट पदार्थों में श्रम कामना करने वाले हैं । जो सूर्य की पूजा में विशेष अनुरक्त रहता है, उसके लिए सूर्य वर प्रदान करते हैं । ८७। मैं विष्णु का पुत्र हूँ, मेरा नाम साम्ब है, चन्द्रभागा नदी के टट पर मैंने (एक विशाल भवन में) सूर्य की प्रतिष्ठा करायी है । ८८। उन्होंने ही मुझे यहाँ भेजा है इसलिए आप लोग उठें और मेरे साथ चलने की कृपा करे । उसके इस प्रकार कहने पर साम्ब से उन लोगों ने भी कहा यह (बात) ऐसी ही है, इसमें कोई संशय नहीं । ८९। क्योंकि हम लोगों को सूर्य देव ने पहले ही इसे सूचित किया, इसलिए उनके कथनानुसार वेदवादी मण के

यस्यन्ति ये त्वया सार्थं यथा देवेन भाषितम् ॥१९०

ततस्तत्त्वं दशष्टौ च कुलानीह समन्ततः । आरोप्य गहडे साम्बस्त्वरितः पुनरभ्यगत् ॥११

सोऽल्पेनैव तु कालेन प्राप्तो मित्रवनं ततः । कृत्वाज्ञां तु रवेः पास्तः कृत्स्नं त्वेवं न्यवेदयत् ॥१२

रविः शोभनमित्युक्त्वा प्रसन्नः साम्बमब्दीत् । मम पूजाकरा हृते प्रजानां शान्तिकारकः ॥१३

मम पूजां करिष्यन्ति विद्यानोक्ता यदृत्तः । तत्कृते न पुनश्चिन्ना तत्र काचिद्गूर्विल्पति ॥१४

इति श्रीभविष्ये नहापुराणे ब्राह्मणे पर्वणि सप्ततीकल्पे साम्बोपाल्याने भोजकानयनं

नामैकोनचत्वारिंशदधिकशतमोऽध्यायः ॥१३१।

अथ चत्वारिंशदधिकशतमोऽध्यायः

भोजकोत्पत्तिवर्णनम्

सुमन्तुरुचाच

एवं स आनयित्वा तु भगान्साम्बो महीपते । स महात्मा पुरा जाम्बवन्दभागासरितटे ॥१

पुरं निवेशयामास स्यापयित्वा दिवाकरम् । कृत्वा धनसमृद्धं तु भोजकानां समर्पयत् ॥२

तत्पुरं सवितुः पुर्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । सांबेन कारितं यस्मात्समात्साम्बपुरं स्मृतम् ॥३

तस्मिन्प्रतिष्ठितो देवः पुरमध्ये दिवाकरः । सत्कृत्य स्थापिताः सर्वे आत्मनामाङ्गिकते पुरे ॥४

जो अठारह कुल हैं, वे सभी तुम्हारे साथं प्रस्थान करेंगे । १०। उसके पश्चात् साम्ब उनके अठारहों कुलों को उसी गहड़ पर बैठा कर पुनः शोध्य वापस आया । ११। योङे ही समय में वह सूर्य की आज्ञा का पालन कर उस मित्र वन में गया और सूर्य से सभी बातें कह मुनाया । सूर्य भी 'अति सुन्दर हुआ' कह कर प्रसन्न चित्त हो सांब से बोले—ये लोग मेरी पूजा एवं शांति करने वाले हैं । १२-१३। हे यदुश्रेष्ठ ! ये विद्यान् पूर्वक मेरी पूजा करेंगे, उसके लिए तुम्हें फिर कभी चित्तित होना नहीं पड़ेगा । १४

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाल्यान में भोजकानयन वर्णन नामक

एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय समाप्त । १३१।

अध्याय १४०

भोजकोत्पत्ति वर्णन

सुमन्तु बोले—हे महीपते ! इस प्रकार उस भगान्सा साम्ब ने मगों को लाकर चन्द्रभाग नदी के तट पर स्थित अपने बासाये ऐसे उस समृद्ध नगर को जिसमें सूर्य की स्थापना हुई थी भोजकों के लिए समर्पित कर दिया । १-२। सूर्य का वह पवित्र नगर तीनों लोकों में विष्ण्यात है, जो साम्ब के द्वारा निर्माण कराये जाने के नाते साम्बपुर कहा जाता है । ३। उस नगर के मध्य भाग में सूर्य देव प्रतिष्ठित हैं और उसी अपने नाम वाले नगर में उसने उन लोगों को भी स्थित किया । ४। मगों का सदाचार, कुलाचार, एवं

मगानां तु सदाचारो दृष्टिचारकुलोचितः । देवशुश्रूषणं गीतं वेदप्रोक्तेन कर्मणा ॥५
 कृतकृत्यस्तदा साम्बो वरं लक्ष्या पुनर्युवा । आदिदेवं सुरज्ज्येष्ठसादित्यं प्रणिपत्य सः ॥६
 अनन्तरं मगान्सर्वान्श्चिणिपत्याभिकाद्य च । प्रस्तितो निर्मलः साम्बः पुरीं द्वारवतीं तदा ॥७
 मगानां कारणार्थेन प्रार्थिता भोजवंशजाः । बसुदेवस्य पौत्रेण गोत्रजेन बहात्मना ॥८
 कल्यादानं कृतं तेषां मगानां भोजकोत्तमैः । सर्वास्ताः सहिताः कृत्याः प्रवालमणिभूषिताः ॥९
 अर्चयित्वा तु ताःसर्वाः प्रेषिताः सवितुर्गृहम् । पुनर्गत्वा तु सांबेन पृष्ठो देवो दिवाकरः ॥१०
 मगानां ज्ञानमाल्याहि॑ वेदानव्यझ्ञामेव च । साम्बस्य इच्छनं श्रुत्वा जाम्बरो वाक्यनद्वीत् ॥११
 पृच्छ त्वं नारदं गत्वा स ते सर्वे वदिष्यति । एवमुक्तोऽयं वै साम्बो गतदाम्बारदं प्रति ॥१२
 गत्वा कृत्यमिदं सर्वं तत्स्मै तेन निवेदितम् । स चाप्याह ततः साम्बं न जाने ज्ञानमुत्तमम् ॥१३
 भोजकानां यदुशेष्ठ ज्ञानं व्यासो महामुनिः । तं गत्वा परिपृच्छ त्वं प्रणन्य शिरसा दुनिम् ॥१४
 कृष्णानुरोधते सर्वं स वृक्षते न संशयः । नारदेनैवमुक्तस्तु साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥१५
 व्यासश्चमस गत्वा तु प्रणन्य शिरसा मुनिम् । कृताङ्गजिलिपुटो शूत्वा इदं वचनमध्यवीत् ॥१६
 शाकद्वीपं भया गत्वा आनीता मगापुड्गवाः । बाला यौवनसम्पन्नाः सन्निविष्टा मगोत्तमाः ॥१७
 सङ्कृत्य पूजयित्वा तु पुरं तेषां समर्पितम् । सम्प्राप्य तु पुरं ते वै ज्येष्ठमध्यकनीयसः ॥१८
 भोजवंशसमुत्पन्नाः कन्यकाः समलङ्घृताः । वरयित्वा कृतं तेषां विप्रप्रणयनं शुभम् ॥१९

वेद-विधान पूर्वक उनके द्वारा की गई सूर्य की परिचर्या को देखकर साम्ब कृतकृत्य हो गया । पुनः अपने युवा होने का वरदान प्राप्त करके वह साम्ब देव श्रेष्ठ, एवं देवों के आदि सूर्य को प्रणाम एवं सभी मगों को नन्नतापूर्वक अभिवादन किया और विशुद्ध होकर पुनः द्वारका पुरी को लौट आया ।५-७। वसुदेव के पौत्र (नाती) उस महात्मा साम्ब ने मगों के (विवाह) के लिए भोज वंशजों से प्रार्थना की ।८। भोजको ने भी सहर्ष मगों के लिए कन्यादान किया सभी कन्यायों को प्रवाल एवं मणियों से अलंकृत एवं पूजित करके उन्हें सूर्य के मन्दिर में भेज दिया ।९-१०। (एक समय) साम्ब ने (कभी) उस मंदिर में जाकर सूर्य से पूछा कि मगों का ज्ञान एवं उनकी देवों की अनव्यञ्जता (वैदिक ज्ञान की पूर्णता) आप बदाने की कृपा करें । साम्ब की बातें सुन कर सूर्य ने कहा— ।१। नारद के पास जाकर उनसे पूछो, वे तुम्हें सब कुछ बतायेंगे इस प्रकार कहने पर साम्ब नारद के पास गया ।१२। वहाँ जाकर उसने उनसे उपरोक्त सभी बातें पूछी । नारद ने कहा—हे साम्ब ! मैं भोजकों का ज्ञान नहीं जानता ।१३। हे यदुशेष्ठ ! इसे महामुनि व्यास जानते हैं, इसलिए वहाँ जाकर न तमस्तक प्रणाम पूर्वक उनसे पूछो ।१४। कृष्ण के अनुरोध से वे सभी कुछ बतायेंगे, इसमें संशय नहीं । नारद के इस प्रकार कहने पर जाम्बवती पुत्र साम्ब ने व्यास के आश्रम में पहुँच कर न तमस्तक प्रणाम पूर्वक हाथं जोड़कर कहा ।१५-१६। शाकद्वीप जाकर मैंने बाल एवं युवावस्था वाले उन उत्तम मगों को यहाँ लाकर सन्कार पूर्वक पूजन करके उस नगर को मैंने अपित कर दिया है । हे विष्र ! उस नगर के निवासी होकर वे सभी जो बड़े मध्यम, एवं छोटे हैं, भोजवंश की समलंकृत कन्याओं द्वारा वरण कर दिवाहित हो चुके हैं ।१७-१९। आश्चर्य है कि सूर्य की

अहो समाध्या: श्लाघ्याश्च हृतपुष्प्याश्च ते सदा । पूजायां ये रता भानोर्येषां चैद दरब्रदः ॥२०
 पर्याप्तं सर्वभेतेषामिह चामुम्बिकं फलम् । अनित्ये सति मानुष्ये देवपूजारता हि ये ॥२१
 किन्तु चिन्तयतः सूर्यं चिन्तयित्वा तु भोजकान् । ज्ञानं प्रति तथा चैषां हृदये संशयो मनः ॥२२
 कदं पूजाकरा होते के मगाः के च भोजकाः । ज्ञानं कि परमं तेषां ज्ञेयस्तेषां क एव तु ॥२३
 दिव्येति ते कथं प्रोन्ताः किमर्थं कूर्चधारणम् । मौख्यतं किमर्थं तु वाचकात्स्ते कथं स्मृताः ॥२४
 किमर्थं तेजसा वेदान्नायन्त्रं व ते कथम् । अथाहिकञ्चुकस्याइंगं कि प्रमाणं च कस्य वै ॥२५
 कस्य वै का समाख्याता यदुत्पङ्गं कथं स्मृतम् । कथं देवांश्च गायन्ति यजं द्वुर्विल्लितं ते कथम् ॥२६
 अग्निहोत्रं च र्हितेषां पञ्च देताश्रम का: स्मृताः । एतत्सर्वसमाख्याहि भोजकानां दिवेष्टितम् ॥२७
 साम्बस्य वचनं शुद्धाः कृष्णद्वैपायनो मुनिः । कालीमुतो नहतेजा उवाच परनं वचः ॥२८
 साधुसःधु यदुथ्रेष्ठ साधु पृष्ठोऽस्मि सुवृत : दुर्जयचेष्टितं किञ्चिद्द्वोजकानां न संशयः ॥२९
 भास्तरस्य प्रसादेन समापि स्मृतिमागतम् । यथाख्यातं वशिष्ठेन तथा ते वच्चिम कृत्क्षणः ॥३०
 म्मानां चरितं श्रेष्ठं शृणु त्वं कृष्णनन्दन । ज्ञानवेदिन एवैते कर्मयोरं समाप्तितः ॥३१
 श्रूपन्ते ऋषयः सर्वे मौनेन निष्पमस्थिताः । भुञ्जते चापि मौनेन सर्वे वै परमर्थयः ॥३२
 मुनिचर्याकृतस्तेऽपि शाकद्वीपनिवासिनः । तस्मान्मौनेन भोक्तव्यमगुणत्वमनिञ्छता ॥३३

पूजा में मग्न रहने के नाते वे सदैव भाग्यवान्, श्लाघ्य एवं पुष्प्यकर्मा हैं क्योंकि जिनके लिए सूर्य सभी प्रकार से वरदायक रहते हैं । २०। मनुष्य के शरीर आदि सभी अनित्य (नाशवान) हैं, ऐसा समझ कर ये लोग सदैव सूर्य देव को आराधना करते हैं । इसीलिए इन्हें लोक परलोक के पर्याप्त उत्तम फल प्राप्त हैं । २१। सूर्य के विषय की चित्ता करते हुए मुझे अधिक भोजकों के विषय की चित्ता हो रही है कि इनकी उत्पत्ति आदि का ज्ञान किस प्रकार किया जाये । २२। मुझे यह महान् संशय हो रहा है कि ये पूजा करने वाले मग एवं भोजक कौन हैं, क्या हैं, इनका उत्तम ज्ञान (ज्ञानकारी) तथा इनका ज्ञेय (ज्ञानेन योग्य) क्या है । २३। वे 'दिव्य' क्यों कहे जाते हैं, दाढ़ी क्यों रखते हैं, सूर्य का ही व्रत क्यों करते हैं, और वे वाचक कैसे कहे जाते हैं । २४। अपने तेज से देवों का जापन क्यों करते हैं, सूर्य का कवच क्यों धारण करते हैं, इनका क्या प्रमाण है । २५। वे किससे उत्पन्न हैं इनकी जननी किसकी पुत्री हैं इन्हें यदु कुलोत्पन्न कैसे कहा जाता है, देवगायन एवं ज्योतों को किस प्रकार सुमन्पन्न करते हैं । २६। इनका अग्निहोत्र क्या है, तथा इनके पाँचों काल (समय) कौन-कौन हैं ? कृपया भोजकों की इन सभी बातें को बताइये । २७। इस प्रकार साम्ब की बातें सुनकर महातेजस्वी, काली पुत्र, मुनि कृष्णद्वैयायन (व्यास) ने उत्तम वाणी से कहा । २८। हे यदुथ्रेष्ठ ! तुम साधु हो एवं महान् साधु हो, हे सुव्रत ! तुमने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है भोजकों की ये सभी बातें अवश्य कठिनाई से जानी जा सकती हैं, इसमें सदैह नहीं । २९। सूर्य की कृपा द्वारा मुझे भी स्मरण हो गया, वशिष्ठ ने जिस प्रकार बताया है, मैं उन सभी बातों को तुमसे बता रहा हूँ । ३०। हे कृष्णनन्दन ! मगों के उत्तम चरित जानने योग्य हैं मुझे ! ये जानी कर्मयोगी मौन होकर नियम पालन करते हैं तथा ये परमऋषि मौन होकर भोजन भी करते हैं । ३१-३२। शाकद्वीप में रहते हुए भी ये मुनियों की भाँति आचरण करते हैं । और इसीलिए मौन होकर भोजन करना चाहिए यह इनका सिद्धांत है,

वचः सूर्यसमाख्यातं कारणं च वरं तथा । अर्थायां ते च ते नित्यमर्धयन्तश्च ते स्मृताः ॥३४
 भोजकन्यासु जातत्वाद्बोजकास्तेन ते स्मृताः । ब्राह्मणानां यथा प्रोत्तो वेदाश्रत्वार एव तु ॥३५
 ऋगदेवोऽय यजुर्देवः सामवेदस्त्वर्यर्थणः । ब्रह्मणोत्तमस्त्वा वेदा मगानामपि सुद्रष्ट ॥३६
 त एव विपरीतास्तु तेषां वेदाः ब्रकीर्तिताः । वेदो विश्वमदभैऽविद्वद्वित्तिरस्तथा ॥३७
 वेदा ह्येते मगानां तु पुरोत्तम द्वजापतिः । मगा देवमधीयन्ते वेदाइग्नास्तेन ते स्मृताः ॥३८
 शेषो च हि महाव्याप्तिः सर्वसत्त्वसुखाद्दृष्टः । ससूर्यरथमासाद्य रथितिः सह वर्षति ॥३९
 प्रस्तस्य तु पुनर्मोक्षं स रथेहि—महानकः । शूचितव्यो शाशानां तु अस्त्रमन्त्रेण नित्यशः ॥४०
 यथा ऋजो द्विजानां तु पूजांकाले प्रमोयते । सर्वसंज्ञारथग्रेषु यथा दर्शा द्विजातिषु ॥४१
 पंदित्राः कीर्तितास्तेषां तथा धर्मो मगास्य तु । एभिर्जयन्ति सूर्यिष्ठं तस्मिन्द्वये भगाधिनाः ॥४२
 विद्वावन्तः कुलशेष्ठाः सादाचारत्वमन्तिताः । यज्ञावत्तत्त्वां नक्ताश्च जपन्तो भन्नमादितः ॥४३
 प्रियास्तु यदुशार्दूलं भोजका यदुनन्दनः । अस्त्रमिदं वै मन्त्रो वेदस्य परिपठते ॥४४
 सर्वेषां ब्राह्मणानां तु सावित्री परिकल्पते । अस्माकं तु यदुशेष्ठं महाव्याहृतिपूर्वतिका ॥४५
 अमोहकेनाथ विभासुञ्जी भोनेन चैवापि यथा हि युक्तम् ।
 न चापि किञ्चित्स्मृतिकं स्मृतेच्च तच्चापि नाईव च संस्पृशेद्दि ॥४६॥

गुणहीन नियम का पालन नहीं करते हैं । ३३। सूर्य की बतायी हुई बातें एवं वरदान ग्रहण किये हैं, इनके मूलकारण सूर्य हैं, ये सूर्य की ही नित्य पूजा करते हैं अतः इन्हें पूजक (देवलक) कहा जाता है । ३४। भोजक की कन्दा में उत्पन्न होने के नाते ये भोजक कहे जाते हैं । ब्राह्मणों के लिए जिस प्रकार चारों वेदों (ऋग्यजु साम और अथर्व) की व्याख्या की गई है, उसी प्रकार हे सुद्रष्ट ! मगों के लिए भी ब्रह्म द्वारा वेदों का प्रतिपादन किया गया है । ३५-३६। उनसे भिन्न रीति द्वारा मगों के लिए वे ही वेद बताये गये हैं —वेद विश्वमद, विद्वद् एवं वह्निरस (अंगिरस), यही वेद हैं ऐसा मगों के लिए प्रजापति ने बताया है । ३७। मग लोग वेदाध्ययन करते हैं इसीलिए उन्हें वेदाङ्ग होना भी उन्होंने बताया है । ३८। भाग्यशाली शेष सभी के लिए मूल प्रदान करते हैं, सूर्य के साथ रथ में बैठकर उनके किरणों के साथ वर्षा करते हैं । ३९। उनकी केंचुल सूर्य के लिए महानक (कवच) है, जो अस्त्र मंत्र द्वारा मगों के लिए नित्य बदनीय है । ४०। जिस भाँति द्विजों की पूजा के समय मालाएँ द्विजातियों के तथा सभी संस्कार रूपी यज्ञों में कुश पवित्र बताया गया है । ४१। उसी प्रकार मगों के लिए धर्म प्रतिपादित है । उस द्वीप में इसी धर्म द्वारा मगाधिनाथ विजयी होते हैं । ४२। वे सर्वैव विद्वान्, उत्तम कुलोत्पन्न पवित्र सदाचारी, यज्ञ करने में आसक्त एवं भक्त, होते हुए आदित्य मंत्र का जप करते हैं । ४३। हे यदुशार्दूल ! भोजक इसीलिए (सूर्य को) प्रिय हैं, हे यदुनन्दन ! अस्त्र की भाँति इनके लिए वेदमंत्र है । ४४। इनका कहना है कि सभी ब्राह्मणों के लिए जिस तरह सावित्री की कल्पना की जाती है, उसी भाँति हम लोगों के लिए महाव्याहृतिपूर्वक सूर्य मंत्र है । अमोहक (केंचुल की कवच) को साथ लिए मौन होकर भोजन करना (उनके लिए) नियम है किसी मृतक आदि अशुद्ध का स्पर्श इनसे न हो और ये लोग भी उसका स्पर्श स्वयं न करें । ४५-४६। जिस

श्वसन्त्यनिच्छांस्तु परिक्रिनेतु स्वामीष्टसूर्यं तु नमेत्सवैष ।

यथा यज्ञं हि मन्त्रेण वेदप्रोक्तेन कर्मणा ॥४७

तत्त्वमन्यन्मगानान्तु विधिमन्त्रपुरस्कृतम् । हविः सम्पद्यते यस्मातेन हे यज्ज्वनः सूताः ॥४८

यद्यपिहोत्रं प्रथितं द्विजानां तथाष्वहोत्रं विहितं सगानाम् ।

अच्छं च ज्ञानेति तदध्वरस्य मुनेर्वचो नाम विचारणास्ति ॥४९

पञ्चधूपाः प्रदातव्याः सिद्धिरस्ये ह तर्वदा । दण्डनायकवेसे हे त्रिसन्ध्यं भास्करस्य तु ॥५०

इति श्रीभविष्ये बहापुराने ऋष्ये पर्वति भूतसीकर्णे स्तोषाख्याने भोजकोत्पत्तिवर्णनं

नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १४०।

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकजातिवर्णनम्

साम्ब उवाच

भोजकानां यत्त्वयोक्तमव्यङ्गे देहशोधकः । ग्रात्मन्धस्त्वसौ प्रोक्तस्तेषां जातिश्र का सूता ॥१

व्यास उवाच

ते पृष्ठा भवता सर्वे भोजकानां कुमारकाः । किमाख्यातां ततस्तैस्तु तदेवाचक्ष्य कृत्वा ॥२

प्रकार श्वास अनिच्छा पूर्वक शीतर बाहर आती जाती रहती है, उसी भाँति नित्य निरन्तर अपने इष्ट देव सूर्य का स्तौर नमस्कार करते रहें । वेदोक्त विधान एवं मंत्र पूर्वक जिस प्रकार यज्ञ सुसम्पन्न किया जाता है, उसी भाँति मगों को प्रधान सूर्य मंत्र द्वारा विधान पूर्वक यज्ञों के लिए निष्पन्न करने को बताया गया है । इन्हीं कारणों से ये याज्ञिक कहे जाते हैं । ४७-४८। ब्राह्मणों के लिए जिस प्रकार अग्निहोत्र प्रसिद्ध है, उसी भाँति मगों के लिए अष्वहोत्र बताया गया है । उनके यज्ञ का 'अच्छ' नाम मुनि ने बताया है, अतः उनकी बातों में विचार करने की आवश्यकता नहीं है । ४९। पाँच बार धूप समर्पित करना सूर्य के लिए बताया गया है, इस प्रकार नियम करने वाले की सिद्धि सदैव उसके हस्तगत रहती है । दण्डनायक के समय दोबार धूप देनी चाहिए । तथा तीनों संध्याओं में तीन बार । ५०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्य के साम्बोपाख्यान में भोजकोत्पत्ति वर्णन

नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय समाप्त । १४०।

अध्याय १४१

भोजकजाति का वर्णन

साम्ब ने कहा—आप भोजकों के लिए शरीर शुद्ध करने के हेतु अव्यंग एवं व्रतबन्ध (यज्ञोपवीत) धारण करना बता चुके हैं, अब, इनकी जाति क्या है, बताने की कृपा करें । १

व्यास बोले—तुम्हारे पूँछने पर उन भोजक के कुमारों ने क्या कहा था, उन सभी बातों को बताओ । २

साम्ब उवाच

सन्निवेषा मया प्रोक्ता भोजकानां समततः । समेव बूत तत्त्वं तद्वर्णः कोऽत्र कथं स्थितः ॥३
 ततस्तु भगवान्पाह वाक्यं वाक्यविशारदः । ये त्वयोक्ता श्रुताः सङ्ग भोजकानां कुमारकाः ॥४
 मनैवैते मगा ज्ञेया अष्टौ शूद्रा मदहृगजाः । एतद्बुद्ध्वा तु वचनं प्रणम्य शिरसा रविम् ॥५
 दत्ता भोजकुलोत्पश्चा वशम्यो दशकन्यकाः । ततस्तु मन्दकेष्योऽपि दत्ताश्राष्टौ हि कन्यकाः ॥६
 ततो निदेशितं तेषां मया साम्ब पुरं स्मर । दासकन्यात्सु याश्राष्टौ भोजकन्याश्च या दश ॥७
 एतास्तेषां हुमाराणां ज्ञेयास्ता दश चाष्ट च । तत्र ते भोजकन्यासु द्विजैरुत्पादिताः श्रुताः ॥८
 भोजकास्तानाणान्प्रादुर्बाह्यशान्दिव्यसंज्ञितान् । दासकन्यात्सु ये ज्ञता मन्दगैरन्त्यसंज्ञितैः ॥९
 मदहृगा नाम ते ज्ञेयाः सवितुः परिचारकाः । ते च दिप्रपुरे तस्मिन्युत्रदारशुभैर्वृताः ॥१०
 त्वधर्मर्घष्टुमारधैः शकद्वीपेऽर्चितो रविः । नानाविधैर्वैदिकस्तु मन्त्रैर्मुनिवरोत्तमाः ॥११
 अव्यङ्ग्यारिणो अत्यर्थः पूजयन्ते दिव्यत्पतिम् । दृष्ट्वा व्यङ्गं तु दै तेषां कौतूहलसमन्वितः ॥१२
 साम्बः प्राह नमस्कृत्य भूयः सत्यवतीमुत्तम् । कथं वरोऽप्यमव्यङ्गः कृथितो मुनिसत्तम् ॥१३
 कुत एष समुत्पन्नः कस्माच्च स शुचिः स्मृतः । बन्धनीयः कदा चायं किमर्थं चैव धार्यते ॥
 किं प्रमाणं च भगवन्व्यङ्गश्चायं किमुच्यते ॥१४

साम्ब ने कहा—वहाँ भोजक कुमारों को प्रविष्ट कर उनसे मैने कहा—मुझे बताइये कि किसकी कौन जाति एवं कहाँ स्थिति है । ३। उसके पश्चात् वाक्य निपुण भगवान् सूर्य बोले ! हे साम्ब ! जिन भोजक कुमारों को तुमने बताया है, उनमें मेरे अंग के दश भाग और आठ मेरे ही अंग से उत्पन्न शूद्र हैं । इसे जानकर मैंने नतमस्तक प्रणाम पूर्वक सूर्य से कहा—दश के लिए भोजककुल की उत्पन्न दश कन्याएँ, तथा उन मंदकों (शूद्रों) के लिए भी आठ कन्याएँ प्रदान की गई हैं । ४-६। इसके पश्चात् जिस नगर में उन्हें मैंने रहने के लिए स्थान दिया है, वह साम्ब पुर (नगर) के नाम से प्रख्यात है । आठ दास कन्याएँ और दश भोजक कन्याएँ मिल कर अठारह की संख्या में उन कुमारों को स्त्री के रूप में प्रदान की गई है । वहाँ रहकर द्विजों ने उन भोजक कन्याओं के द्वारा पुत्रों की उत्पत्ति की । जिन्हें दिव्य (देव) संज्ञक भोजक ब्राह्मण कहा जाता है और उसी भाँति दास कन्याओं से उत्पन्न पुत्रों को अन्त्य (शूद्र) संज्ञक मंदग कहते हैं । ७-९। सूर्य की सेवा करने वाले परिचारक (सेवक) मंदग कहे जाते हैं । हे विष्र ! वे लोग भी कल्याण मूर्ति पुत्रों तथा स्त्रियों समेत उस शकद्वीप के नगर में रहकर अपने अपने धर्मानुसार प्रारम्भ किये गये यज्ञों द्वारा सूर्य की अर्चना करते हैं । उसी भाँति मुनिवर्य लोग भाँति-भाँति के विधान द्वारा वैदिक मंत्रों के उच्चारण करते हुए सूर्य की पूजा करते हैं । १०-१। वहाँ अव्यंग धारण कर के ही मनुष्य लोग सूर्य की पूजा करते हैं, इसलिए यहाँ उन लोगों के अव्यंग को देख कर साम्ब को महान् कुतूहल हुआ था । वही बात साम्ब ने फिर सत्यवती पुत्र (व्यास) से नमस्कार पूर्वक पूछा—हे मुनिसत्तम ! यह अव्यंग उत्तम क्यों माना जाता है, यह कहाँ से उत्पन्न हुआ है, कैसे यह पवित्र कहा गया है, किस समय इसे बाधिना चाहिए, क्योंकि इसे लोग धारण करते हैं (पहनते हैं), और हे भगवन् ! इस अव्यंग का प्रमाण (लम्बाई-चौड़ाई) क्या है ? १२-१४

सुभन्तु उचाच

क्नुत्वं च चनं व्यासो जाम्बवत्याः सुतस्य च
उचाच कुरुशार्द्धल साम्भां कालीमुतः स तु

व्यास उचाच

एतच्च ने यथोक्तस्त्वं जातिरेषां न संशयः ॥१६
अब्यङ्गस्यापि ते वज्रिं लक्षणं गदतः शृणु ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मण पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाल्याने भोजकजातिवर्णनं
नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १४१।

अथ द्वित्त्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

व्यङ्गोत्पत्तिनामदर्गनम्

व्यास उचाच

देवता ऋषयो नागा धन्धर्वाप्सरसां गणाः । यक्षरक्षांसि वै भानौ निवसन्ति ऋतुक्रमात् ॥१
तत्र तु वासुकिर्हृष्टसुद्धर्ष्यर्थं जवात् । स्वस्थानमाजगामाशु नमस्कृत्य दिवाकरम् ॥२
अब्यङ्गमेव सूर्याय श्रीत्वर्थं वै समर्पयत् । गाढ्नेयभूषितं दिव्यं नातिरक्तसितं शुभम् ॥३
बबन्धं तं च तत्प्रीतौ मध्यभागे तमात्मनः । नागराजाङ्गसम्भूतो धृतो यस्माच्च भानुना ॥४

सुभन्तु बोले—जाम्बवती पुत्र (साम्ब) की ऐसी बातें सुनकर काली सुत व्यास ने उससे कहा ।

व्यास ने कहा—हे कुरुशार्द्धल ! इन लोगों की जाति तुम्हें मैंने भली भाँति बता दी है, अब अब्यंग का लक्षण भी बता रहा हूँ सुनो । १५-१७

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपाल्यान में भोजक जाति वर्णन नामक एक सौ एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त । १४१।

अध्याय १४२

व्यङ्गोत्पत्ति विधि का वर्णन

व्यास ने कहा—ऋतुओं के क्रम से देवता, कृषि, नाग, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष, एवं राक्षस ये सभी सूर्य के साथ निवास करते हैं । १ उनमें वासुकि भी हैं सूर्य का रथ वेग से चलते हुए वर्ष की समाप्ति कर रहा था कि उसी समय वासुकि ने सूर्य को नमस्कार कर अतिशीघ्र अपने स्थान पर आकर एक अव्यंग (केंचुल) उनके प्रसन्नार्थ समर्पित किया । उसे ही अब्यंग कहते हैं, स्वर्ण भूषित, दिव्य, न अधिक उज्ज्वल, एवं न अधिक रक्त वर्ण के शुभ उस केंचुल को सूर्य ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए अपने मध्य भाग में बाँध लिया । नागराज के अंग (शरीर) से उत्पन्न उसे सूर्य के धारण करने के नाते (सूर्य) के भक्त भी

ततस्माद्गार्थते सूर्यप्रीत्यै तद्भक्तिमिच्छता । विधानेन च तत्त्वेन शुचिर्भवति भोजकः ॥५
नित्यं च धारणात्स्य भवेत्प्रीतो दिवाकरः । न धारयन्ति दे त्वेवं भोजकाः पूजकाः रवेः ॥६
सौरहीना न ते दाज्या उच्छिष्टा नात्र संशयः । स्मृत्याचारे ते हि भग्ना रविं नार्हन्ति पूजितुम् ॥७
पूजयन्तो रविं ते हि नरङ्गं यान्ति रौरवम् । न वै हसेन्न उत्तिष्ठेद्यावदर्चा लभन्ति ते ॥८
इत्थं ज्ञात्वा न सन्देहो हृष्यद्विगेन विना रविः । नागराजस्य संसृष्टे हृष्णसुस्तेन तस्मृतः ॥९
एकदर्शः स कर्तव्यः कार्यसिद्धिकरस्तथा : प्रभाणेनाइगुलानां तु शताद्वि शतमुत्तरम् ॥१०
उत्कृष्टोऽयं प्रभाणेन मध्यमो विंशद्वुत्तरः । शतमस्तोतरं हृत्स्वो न तु हृत्स्वतरस्ततः ॥११
तनाकृतिः कृतश्चैष निर्मितो विश्वकर्मणः । मध्यमे भोजकानां तु परः इति उदाहृतः ॥१२
संस्कृतोऽपि दिना तेन शुचिर्नैव भवत्युत् । तेनास्य धारणाद्वारा शुचिरेव तदा भवेत् ॥१३
हविर्हेमादिकाः लर्वा भवन्त्यस्य क्रिया: युभाः । अव्यडम्: पतिताङ्गश्च अव्यडगोऽय महीपते ॥१४
एष सारश्च सा रम्या वै ज्ञेया जयनामभिः । अहेरङ्गात्समुत्पन्नो हृष्यद्विगस्तु ततः स्मृतः ॥१५
यस्मादिस्मादहेरङ्गमव्यडगस्तेन चोच्यते । अर्हेति पूजायां भातोः पत्यग्नो षुल्ततः स्मृतः ॥१६
पूजितश्च पवित्रश्च यस्मात्तेनार्हकः स्मृतः । सारसारः स्मृतं रुपं प्रधानं सार उच्यते ॥१७

सूर्य की प्रसन्नता के लिए धारण करते हैं । विधान पूर्वक उसे धारण करने से भोजक पवित्र होते हैं । २-५। एवं उसे नित्य धारण करने से सूर्य भी प्रसन्न होते हैं । सूर्य की पूजा करने वाला भोजक विधान पूर्वक उसे धारण नहीं करता है, तो वह आदिन्य भक्ति एवं उनके सभी ज्ञायों से वंचित होता है, तथा उच्छिष्ट होने के नाते पूजा के योग्य नहीं रहता है । वह सदाचारा से ब्रह्म हो जाता है अतः सूर्य की पूजा नहीं कर सकता है । ६-७। यदि वह सूर्य का पूजन करता ही है, तो उसे रौरव नामक नरक की प्राप्ति होती है । उसके पूजन काल में सूर्य का प्रसन्न होना तो दूर रहा, वे (अपने स्थान से) उठते (चलते) तक नहीं । ८। इस प्रकार जान बूझकर विना अव्यंग धारण किये सूर्य की पूजा न करनी चाहिए । वासुकि के उस केंचुल की भाँति जिसे अव्यंग कहा जाता है, एक रंग का बनाना चाहिए, उससे कार्य की सफलता प्राप्त होती है, वह अंगुल के प्रमाण से दो सौ अंगुल का होता है । ९-१०। यह सर्वोत्तम प्रमाण बताया गया है । एक सौ बीस अंगुल का मध्यम, और एक सौ आठ अंगुल का छोटा बनाया जाता है । इससे छोटा किसी भी दशा में होना चाहिए । ११। उसकी आकृति वैसी ही होनी चाहिए जैसा कि विश्वकर्मा ने प्रथम निर्माण के समय किया था । भोजकों के लिए सौ अंगुल का भी मध्यम अव्यंग बताया गया है । १२

भोजकों के संस्कार किये जाने पर भी विना उसे धारण किये वे पवित्र नहीं होते हैं । हे वीर ! इसलिए पवित्र होने के लिए उन्हें उसे अवश्य धारण करना चाहिए । १३। हवि, हवन आदि सभी क्रियाएँ इसके धारण करने पर ही शुभ होती हैं ।

हे महीपते ! अव्यंग, पतितांग, अर्हक और सार यही जय करने वाले इस अव्यंग के नाम हैं । साँप के अंग से उत्पन्न एवं उनके अंग में लिपटे होने के नाते अव्यंग एवं पूजार्थक अर्ह धातु से णवल् प्रत्यय के संयुक्त होने पूजित एवं पवित्र होने के कारण अर्हक, कहा गया है । इसी प्रकार सारसार (व्याकरण के) रूप से सार (प्रधान) शब्द निष्पन्न होता है । १४-१७

षण भक्तो स्पृतौ धातुस्तस्मात्सारसनः स्मृतः । यस्माद्वितमेवं तु सुवर्णमणिमौक्तिकैः ॥१८
 स ज्ञेयः पतिताङ्गस्तु नित्यज्ञेशप्रहृतः । इत्येते कथिता वीर अव्यङ्गा व्यङ्गभोजकाः ॥१९
 ऋद्धिवृद्धिकरो नित्यं कायशुद्धिकरस्तथा । सर्वदेवमयश्चायं सर्वदेवमयस्तथा ॥२०
 सर्वभूतभ्यः साम्ब त्तर्दलोकमयस्तथा । मध्येऽस्य संस्थितो ब्रह्मा शूले दिव्युर्महामते ॥२१
 शशाङ्कमौलिरन्त्ये तु संस्थितो यदुनन्दन । ऋग्वेदोऽस्य स्थितो मूले यजुर्वेदोऽस्य मध्यगः ॥२२
 अत्रे स्थितः सामवेदो ग्रन्थिराङ्गग्रसोन्नय । पृथ्वी मूलभूतश्चित्य स्थिता च यदुतत्तम ॥२३
 मूलशानास्त्वपः साम्ब मध्ये देवो विभाद्युः । तासामनन्तरं वात आकाशोऽप्रे समास्थितः ॥२४
 मूले स्थितहर्तु भूलोको भुवलोकस्तु मध्यगः । स्तदलोकश्चाप्रमाश्चित्य स्थितो व्यङ्गस्य यादता ॥२५
 एवं देवमयः सांब एवं लोकमयस्तथा । धारणीयो महान्भक्तया पूजकैः प्रीतये रवः ॥२६
 पूजयन्ति र्द्वि ये वै विनानेत्र यदुत्तम । पूजाफलं न तेषां स्यान्नरकं च वजन्ति हि ॥२७
 तथा तेषां भवेत्प्रियमव्यङ्गे भोजकः सदा । अन्यकाले यदुश्रेष्ठ इत्येतत्कथितं तव ॥२८
 बन्धने कारणं वीर भूषणाति च सुव्रत ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मोपर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपाल्याने व्यङ्गोत्पत्तिर्नाम

द्वित्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १४२।

भक्ति अर्थ में प्रयुक्त षण धातु से सारसन (सार) शब्द की निष्पत्ति होती है । सुवर्ण, मणि, एवं मोतियों द्वारा पूजित (विभूषित) और नित्य ज्ञों द्वारा अपनाने के नाते उसे पतिताङ्ग कहा जाता है । हे वीर ! व्यंग (उससे शून्य) भोजकों के लिए यही अव्यंग बताया गया है । १८-१९। यह ऋद्धि, वृद्धि एवं शरीर शुद्धि करने वाला, सर्वदेवमय तथा सर्वदेवमय है । २०। और हे साम्ब ! इसे सर्वभूतमय एवं सर्वलोक भी जानना चाहिए । हे महामते ! इसके मध्य भाग में ब्रह्मा, मूल में विष्णु और हे यदुनन्दन अन्त में भालचन्द्र (शिव) स्थित हैं । इसके मूल भाग में 'क्रावेद' मध्य भाग में यजुर्वेद, अग्रभाग में सामवेद, तथा हे अनंथ ! ग्रन्थियों (गाठों) में अर्थवेद स्थित है । और हे यदुतत्तम ! पृथ्वी इसके मूल भाग में स्थित है । २१-२३। हे साम्ब ! सूर्यदेव ने उसके मध्य भाग में जल की स्थिति की है, तथा उनलोगों के अनन्तर वायु एवं अग्रभाग में आकाश स्थित है । २४। मूलभाग में भू-लोक, मध्यभाग में भुवर्लोक और अव्यंग के अग्र भाग में स्वर्ग लोक स्थित है । २५। हे साम्ब ! इसी प्रकार यह देवमय एवं लोकमय कहा जाता है । इसीलिए सूर्य के प्रसन्नार्थ पूजा करने वाले उनके भक्तों को उसे धारण करने के लिए महान प्रयत्नशील रहना चाहिए । २६। हे यदुश्रेष्ठ ! इसे धारण किये बिना जो लोग सूर्य की उपासना करते हैं, उन्हें पूजा फल की प्राप्ति तो होती नहीं प्रत्युत नरक होता है । २७। इस प्रकार भोजकों को नित्य अव्यंग धारण करना चाहिए, केवल अशौच में नहीं । हे यदुश्रेष्ठ ! यह (अव्यंग माहात्म्य आदि) इस प्रकार तुम्हें बता दिया गया । हे वीर ! जिस प्रकार अंगों के बाँधने में भूषण कारण होता है, हे सुव्रत ! उसी प्रकार यह भी कारण है । (अर्थात् शरीर के अंगों में आभूषण की भाँति यह भी धारण किया जाता है) । २८-२९

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मोपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाल्यान में अव्यंगोत्पत्ति वर्णन नामक
 एक सौ ब्राह्मीसर्वां अध्याय समाप्त । १४२।

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः धूपादिविविधविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुचाच

श्रुत्वैवमेव साम्बेन व्यासात्सत्यवतीसुतात् । अव्यङ्गस्य च उत्पत्तिं पुनरत्गात्महामतिः ॥१
 अथागत्य महातेजाः साम्बो भृत्याश्रमं पुनः ॥
 नारदस्य महाबाहोरारदं वाक्यमधलदीत् । कथमुत्क्षम्य वै धूपं भोजकैः सविदुर्मुने ॥३
 स्नानमाचमनं चैवनर्घदानं महात्मने । साम्बस्य वचनं श्रुत्वा नारदो मुनिस्ततमः ॥४
 उवाच कुरुशार्दूलं साम्बं जाम्बवतीसुतम् । हन्त ते कथयिष्यामि रवेधूपविधिकम् ॥५
 स्नानमाचमनं चैव स्वर्णदानं तथैव च । आचान्तरिक्षस्ततः स्नात्वा वात्सः निर्मले मुमे ॥६
 अनाद्रें संवसीतैव पवित्रे परिधाय च । उद्इमुखः प्राइमुखो वाप्याचामेच्च प्रयत्नतः ॥७
 जले जलन्यो नाचामेज्जलादुतीर्य यत्ततः । अप्सु^१ सूर्यस्तथाग्निश्च मत्ता ददी सरस्वती ॥८
 तस्मादुतीर्य चाचामेशाचामेतु जलाशये । उपविश्य शुचौ देशे प्रयतः प्रागुद्दमुखः ॥९
 पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ च अन्तर्जानुस्तथादमेत् । प्रसश्नातस्त्रिः पिबेत्वापः प्रयतः मुसमाहितः ॥१०
 सम्मार्जनं तु द्विः कुर्यात्त्रिभिरभ्युक्षणं पुनः । मूर्धनिं खानि चात्मानमुपस्थृश्यानु पूर्वशः ॥११

अध्याय १४३ धूपादि विविध विधियों का वर्णन

सुमन्तु बोले—इस प्रकार सत्यवती पुत्र व्यास के द्वारा अव्यंग की उत्पत्ति आदि सुनकर महाबुद्धिमान् साम्ब वहाँ से लौट आया । १। तदुपरांत महातेजस्वी साम्ब ने पुनः महाबाहु वाले नारद के आश्रम में जाकर उनसे कहा—हे मुने ! भोजकों द्वारा सूर्य के लिए धूप, स्नान, आचमन, एवं उन महात्मा के लिए अर्धदान कैसे समर्पित करना चाहिए । मुनिश्रेष्ठ नारद साम्ब की बातें सुनकर उस जाम्बवती पुत्र से बोले—हे कुरुशार्दूल ! सूर्य के लिए धूप विधान का क्रम, स्नान, आचमन और स्वर्णदान मैं तुम्हें बता रहा हूँ मुनो ! । प्रथम तीन बार आचमन कर निर्मल जल से स्नान करके सूखे वस्त्रों तथा हाथों में पवित्र धारण करे और उत्तराभिमुख या पूर्वाभिमुख होकर सप्तयल आचमन करे । २-७। जल में स्थित रहकर जल में आचमन न करना चाहिए । क्योंकि जल में सूर्य, अग्नि, एवं माता देवी सरस्वती सदैव सन्तिहित रहती है । ८। इसलिए जलाशय के पार (उसके) बाहर ही आचमन करना चाहिए न कि किसी जलाशय के मध्य में । किसी पवित्र स्थान में पूर्व या उत्तराभिमुख बैठकर जिसमें हाथ, पैर, तथा घटने का प्रक्षालन किया गया हो, प्रसन्ननित्त हो नियम ध्यान पूर्वक तीन बार आचमन करे । ९-१०। दो बार संमार्जन, अतः तीन बार अभ्युक्षण (सेवन), तथा शिर, कान, नाक, और अपनी शरीर आदि का क्रमशः स्पर्श

१. जलमध्ये आचमननिषेधे हेतुमाह - 'अप्सु' इत्यादि ।

आचान्तोऽज्ञं नमस्कृत्य शौचेषु शुचितामियात् । क्रियां यः कुरुते मोहाद्वनाच्चम्येह नास्तिकः ॥१२
 भवन्तीह क्रियाः सर्वा वृथा तस्य न संशयः । शुचिकामा हि वै देवा वेदरेवमुदाहृतः ॥१३
 इनोपासाकृतश्रेव सर्वे देवाः प्रयत्नतः । शौचमेव प्रशंसन्ति शौचाङ्गैर्ह विधीयते ॥१४
 आचान्ते भौनमास्थाय देवागारं ततो व्रजेत् । भात्तरोधनितिं तु प्राणमाञ्छाद्य वाससा ॥१५
 शिरः प्रावृत्य यन्तेन केशेदकनिवृत्ये । ततः पूजां रवे: कुर्याद्यज्ञेनाविधैः शुभैः ॥१६
 नायकीं सशिरस्कां च गजमानः प्रयत्नतः । धूपं ततोऽप्येद दधात्प्रथमं गुगुलाहुतम् ॥१७
 पुष्याङ्गलिं ततो गृह्य तच्छ्लायां प्रयत्नतः । रवेमूर्धनिं तं दद्यादेवस्त्रमुदाहरन् ॥१८
 ॐ नृतेन यद्व्रतिनो वर्जयन्ति देवाः मनुष्याः पितरश्च सर्वे । तस्यादित्यं प्रसरं च मनामहे यस्तेजसां
 प्रथमं नाविभाति ॥१९

धूपबेलः स्मृताः पञ्च धूपेष्वेव तु पञ्चमु । हवनाद्याः क्रियाः पञ्च रक्षिष्येऽह तथा पुनः ॥२०
 दण्डनायकवेला तु प्रत्यक्षे ऋक्षदर्शनात् । नाज्ञावेला प्रशोषस्तु तत्त्वकार्यं विजानता ॥२१
 द्विकालं तु रद्यः पूजा कर्तव्या सूर्यदर्शनात् । अर्द्धोदितस्तु पूर्वाह्ले ततोऽद्वस्तु रविविभुः ॥२२
 हेतयेति च पूर्वाह्ले मध्याह्ले ज्वलनाय च । तथेव मण्डले देवं नीचाह्ले ज्वलनाय च ॥२३
 चन्दनोदकमिश्रणि गन्धोदकयुतानि च । पश्चानि करवीराणि तथा रक्तोत्पलानि च ॥२४

करे ॥१। पवित्र देश में आचमन के उपरांत सूर्य को नमस्कार करने से पवित्रता प्राप्त होती है । जो बिना आचमन क्रिये इस क्रिया की (आरम्भ एवं समाप्ति) करता है वह नास्तिक कहा जाता है ॥१२। एवं उसकी सभी क्रिया व्यर्थ हो जाती है, इसमें संशय नहीं । क्योंकि वेद में बताया गया है कि देवता पवित्रता के ही इच्छुक होते हैं ॥१३। सूर्य की उपासना करने वाले सभी देव प्रयत्न पूर्वक शौच (पवित्रता) की ही प्रशंसा करते हैं और अपने अंगों को पवित्र करके ही क्रियाविधान प्रारम्भ करते हैं ॥१४। आचमन के उपरांत भौन हो देवालयों में प्रवेश करें, वहाँ जाकर श्वास रोकने के लिए वस्त्र से आच्छान्न कर तथा केश के जल को रोकने के लिए शिर को भी वस्त्र से बाँधकर सुगन्धित, एवं भाँति-भाँति के पुष्यों द्वारा सूर्य की पूजा प्रारम्भ करें ॥१५-१६। गायत्री मंत्र के उच्चारण पूर्वक शिखा बाँधकर यजमान प्रयत्न पूर्वक प्रथम धूप देने के लिए अग्नि में गुगुल की आहृति डाले ॥१७। पञ्चात् पुष्यांजलि लेकर सूर्य के 'ओ ब्रतेन' इस मंत्र के उच्चारण पूर्वक उनके शिर की शिखा पर छोड़ दे । पुनः यह कहता भी रहे—ब्रत रहने वाले देव, मनुष्य तथा सभी पितर लोग जहाँ नहीं जा सकते, वहाँ वह प्रकाशित सूर्य विस्तृत रूप में रहते हैं, ऐसा मैं मानता हूँ, जो पहले, अत्यन्त तेज होने के नाते (स्पष्ट रूप से) दिखायी नहीं पड़ते ॥१८-१९। पाँच प्रकार के धूप प्रदान करने के लिए पाँच समय बताये गये हैं, उसे तथा हवन आदि पाँचों क्रियाएँ भी मैं सुक्षित रखूँगा ॥२०। दण्डनायक वेला तथा सूर्य के रहते तीनों संघ्याएँ यही (धूप देने के लिए) पाँचों समय बताया गया है । तत्त्व के जानने वाले विद्वानों को बताया गया है कि प्रदोष समय में धूप देने की आज्ञा नहीं है ॥२१। सूर्य के दर्शन होते तीनों काल में पूजन करना चाहिए । अद्वैदय होने पर पूर्वाङ्ग काल में 'हैलि' नाम का उच्चारण कर, मध्याह्ल में ज्वलन, उसी प्रकार सायंकाल में (अस्त के पहले) उसी ज्वलन नाम के उच्चारण पूर्वक अर्द्ध प्रदान करें ॥२२-२३। चन्दनोदक मिश्रित गन्ध, कमल, करवीर, रक्तकमल, कुसुमोदक मिश्रित कुरुण्टक पुष्प, एवं उत्तम

कुमुमोदकमिश्राणि कुरुंटकुमुमं तथा । गन्धादीनि च दिव्यानि कृत्वा वै तास्प्रसाजने ॥२५
 धूपं दत्त्वाप्नये वीर प्रयत्नाद्वगुणुलाहृतिम् । अर्थपात्रं तदा गृह्य कुर्यादिवाहनं रवेः ॥२६
 एहि सूर्यं सहस्रांशो तेजोराशो जगत्पते । अनुकम्पय मां देव गृहणार्थं दिवाकर ॥२७
 अनेनावाहनं कृत्वा जानुस्यास्त्रवनीं गतः । रवेनवेदयेवर्धमादित्यहृदये गतः ॥२८
 ॐ नमोभगवते^१ आदित्याय विश्वाय खेशाय ब्रह्मणे लोककर्तृणे । ईशानाय पुराणाय सहस्राक्षाय ते नमः ॥२९
 सोमाय ऋग्यजुरथर्वाय । ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ भद्रः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ब्रह्मणे मुख्ये मध्ये पुरतः ॥
 आदित्याय नमः ॥ ३०

नारद उवाच

सावित्र्याश्र चरे तन्त्रे त्रैलोक्यप्राणकारिणे । परितः परिगृह्याय धूपभाजनमुत्सिधेत् ॥३१
 निवेदयेत्ततो धूपं वाचमेतामुदीरयेत् । त्वमेष एव रुद्राणां वसुनां च पुरातनः ॥३२
 देवानां गीर्मिरभितः संस्तुतः शास्त्रो दिवि । पूर्वाह्ने च तथा तेन मध्याह्ने चापरेण तु ॥३३
 ॐ नमो भगवते ज्ञानात्मने त्वां च । विष्णोस्तत्परमं पदं सदा पश्यति सूरयः ॥३४
 दिवाकरस्तु सायाह्ने मन्त्रेजार्थं निवेदयेत् । ॐ नमो ब्रह्माय शम्भवे ॥३५

ॐ आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयप्रमृतं मर्त्यं च ।

हिरण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ॥३६

गन्धादि ताँबें के पात्र में रख कर हे वीर ! प्रथम गुग्गुल की धूप अग्नि को अपित करे पश्चात् अर्थपात्र हाथ में लेकर सूर्य का आवाहन करें । २४-२६। हे सूर्य हे सहस्रांशो ! हे तेजोराशिवाले, एवं हे जगत्पते ! यहाँ आचमन करने की कृपा करते हुए हे दिवाकर ! इस अर्थ को ग्रहण कर मुझे अनुगृहीत करें । २७। इस मंत्र से आवाहन करने के पश्चात् धूटने के बल बैठकर हृदय में ध्यान करते हुए सूर्य को अर्थं प्रदान करना चाहिए । २८। पुनः ओं कार उच्चारणं पूर्वकं भगवान् आदित्यं विश्वरूपं आकाशस्थितं, लोक रचयिता ब्रह्मा, ईशानं, प्राचीनं, उस सहस्र आँख वाले को नमस्कार है । २९। सोम, ऋग, यजु, अर्थरूप, ओं, भूर्भुवः स्वः आदि ऐसा कहकर आदित्य के लिए नमस्कार है, ऐसा कहे । ३०

नारव ने कहा—सावित्री से परे (दूर) रहने वाले, त्रैलोक्य की रक्षा करने वाले, आप हैं—ऐसा कहते हुए धूप वाले पात्र को लेकर उसे चारों ओर घुमाते हुए धूप दान करे और यह कहता रहे कि आप रुद्रों में प्रधान, वसुओं में पुरातन (श्रेष्ठ) आकाश (स्वर्ण) में देवताओं द्वारा नित्य स्तुति किये जाने वाले हैं इस प्रकार पूर्वाह्न, मध्याह्न, एवं अपराह्न काल में उपरोक्त का कथन करते हुए अर्थं प्रदान करें । ३१-३३। पुनः सायं काल में इस मंत्र द्वारा अर्थं प्रदान करें । ओंकार के उच्चारणं पूर्वकं, भगवन्, ज्ञानात्मन, तुम्हें नमस्कार है, जिसे ज्ञानी लोग विष्णु के उस परम पद को सदैव देखा करते हैं । उसके लिए ‘दिवाकरस्तु सायाह्ने’ यही मन्त्र है । वरुण, एवं शंभु रूप सूर्य को नमस्कार है, ‘ओं आकृष्णेन रजसा’ इस

१. ॐ नमो भगवते आदित्याय विश्वाय खेशाय ब्रह्मणे लोककर्तृणे ईशानाय पुराणाय सहस्राक्षाय ते नमः ॐ सोमाय ऋग्यजुरथर्वाय ।

अनेन विधिना दत्त्वा धूं सूर्याय भोजकः। उत्क्षिप्तेच्चैव धूपेन विशेद्गर्भगृहं ततः ॥३७
ततः प्रविश्य धूं तु प्रतिमादै निवेदयेत् । मन्त्रेण मिहिरायेति निषुभासेति नित्यशः ॥३८
ततो राज्ञे नमश्चेति निषुभासै ततो नमः । दण्डनायकसंज्ञाय पिङ्गलाय च वै नमः ॥३९
तथा राजाय लौषाय तथेशाय गहन्ते । ततः प्रदक्षिणं कुर्वन्दिगदेवेन्यो निवेदयेत् ॥४०
दिष्ठिने तु ततो दद्याद्देमन्ताय यदूत्तम् । महेश्वराय दद्यात् तथा व्येष्मय गादच ॥४१
(विश्वेन्यो देवेन्यो नमः । रुद्रेन्यो नमः) । ॐ ज्ञाहाणे मुण्डपतये आदित्याय पुरुषेश्वराय सूर्याय
नमोनमः ॥४२

ॐ अनेककःन्त्ये नत्वा शेषाय दासुकितक्षककर्त्तकाय पद्मशङ्खकुलिकेभ्यो नागराजेभ्यो नमः ॥४३
तलसुहलपातातलातलवित्तरसातलादिवासिन्यो दैत्यदानविपशाचेभ्यो नमः । ततः प्रदक्षिणं
कुर्यान्मातृकास्यो नमोनमः (ॐ ग्रहेभ्यो नमः ॥४४ ॐ दण्डनायकाय नमः । ॐ मार्तडाय नमः । ॐ
विनायकाय नमः ॥४५)

एवमुद्दिश्य नामानि धूं दत्त्वा वरानन् । उत्क्षिप्तो यत्र वै धूपो नुक्त्वा तत्रैव तं पुनः ॥४६
सूर्यगुनैरभिष्टूय एवं विजाय ते ततः । अचितस्त्वं यथा शक्त्या भया भक्त्या विभावसो ॥

ऐहिकामुष्मिकों नाथ कार्यसिद्धिं ददस्व मे ॥४७

एवं त्रिष्वयं लात्वां योऽर्चयेत्प्रणतो रविम् । विधिना तु यथोक्तेन सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥४८
यश्चैव कुरुते नित्यं यथोक्तं धूपविस्तरम् । स पुत्रवानरोगी च मृतःसंलीयते रवौ ॥४९
विधिना तु यथोक्तेन क्रियमाणानि यत्ततः । सर्वकार्याणि सिद्धयन्ति सफलानि भवन्ति च ॥५०

मंत्र के द्वारा सूर्य को धूप प्रदान कर भोजक मन्दिर के भीतर प्रविष्ट हो जाय वहाँ उस प्रतिमा के लिए इस
मंत्र द्वारा धूप अपित करे मिहिर, निषुभा एवं राज्ञी को नित्यशः नमस्कार है, पश्चात् दण्डनायक पिंगल,
राज्ञ, लौष, ईश, गरुड का उच्चारण करते हुए प्रदक्षिणा पूर्वक दिग्देवताओं को धूप अपित करें । ३४-४०।
हे यदूत्तम ! पश्चात्, दिंडी, हेमन्त, महेश्वर, व्योम, को क्रमशः धूप प्रदान करके विश्वदेव तथा रुद्र के
लिए नमस्कार है, ब्रह्म, मुण्डपति, आदित्य तथा पुरुषेश्वर, सूर्य के लिए नमस्कार है । ४१-४२। पुनः अनेक
भाँति की कांटि वाले को नमस्कार करके शेष, वासुकि, तक्षक, कर्त्तक, पश्च, संख, एवं कुलिक नागराजों
के लिए नमस्कार है । ४३। तल, सुतल, पाताल, अतल, वितल, रसातल, आदि लोकवासी दैत्य, दानव,
एवं पिशाचों को नमस्कार है । उपरात प्रदक्षिणा पूर्वक मातृकाओं को नमस्कार है, ग्रहों, दण्डनायक,
मार्तण्ड एवं विनायक को नमस्कार है । ४४-४५। जो उच्चमुख वाले हैं इस प्रकार कहते हुए सब लोगों को
धूप प्रदान करे पश्चात् जहाँ से उसे उठाया था, वहाँ वह धूप पात्र रख दे । तदनन्तर सूर्य की प्रार्थना करे
कि—हे विभावसो ! मैंने अपनी शक्तिं एवं भक्तिं पूर्वक आप की पूजा की है है नाथ ! अब मुझे लोक,
परलोक की कार्य सफलता आप प्रदान करें । ४६-४७। इस प्रकार जो शैकालिक स्नान करके विधान पूर्वक
विनष्ट हो सूर्य की पूजा करता है, उसे अश्वमेध फल की प्राप्ति होती है । ४८। जो उक्त विधान के अनुसार
विस्तारपूर्वक नित्य धूप प्रदान करता है, उसे पुनः एवं आरोग्य के सुखानुभव के उपरात सूर्य के सायुज्य
मोक्ष की प्राप्ति होती है । ४९। इस प्रकार उक्त विधान द्वारा यत्न पूर्वक पूजा करने पर सभी

पुष्पं श्रेष्ठं यदा न स्यात्पत्राणि समुपःहरेत् । पत्रं न स्यात्ततो धूपं धूपो न स्यात्ततो जलम् ॥५१
 सर्वं न स्याद्यदा चैव प्रणिषातेन पूजयेत् । अशक्तः प्रणिषातस्य मनसा पूजयेद्विष्ट् ॥५२
 असम्भवे तु द्रव्याणां विधिरेष प्रकीर्तिः । द्रव्याणां सम्भवे चैव सर्वमेवोपहारयेत् ॥५३
 मन्त्रैः कर्मयुतो यस्तु मित्रे धूपं निवेदयेत् । उच्चारणाच्च वै तेषां धूपप्रीतो भवेद्विः ॥५४
 तिरो नासामुखं चैव भृशमावृत्य यत्नतः । पूजयेद्ब्राह्मकरं वीर शिथिलं^१ तु न करयेत् ॥५५
 नलिनेन तु राजेन्द्र नरो याति दिवाकरम् । तस्नायुक्तं सदा कार्यं पूज्यते च दिवाकरः ॥५६
 तेऽन्तर्मेष्ट्यक्तं प्राप्य सूर्यतोकं वज्रन्ति हि । धूपेन पूज्यमानं तु नराः पश्यन्ति यादव ॥५७
 यान्ति ते परमं स्थानं दग्धं पश्यन्ति सूरयः । क्रियमाणं तथाईः च भक्त्या पश्यन्ति ये नराः ॥
 सर्वान्कामानिह प्राप्य ते यान्ति परमं पदम् ॥५८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे साम्बोपास्याने
 धूपादिविविधवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशतमोऽध्यायः । १४३।

कार्यों की सफलता प्राप्त होती है । ५०। यदि उत्तम पुष्पों का अभाव न हो तो यत्न द्वारा उसके अभाव में धूप और धूप के अभाव में केवल जल द्वारा पूजन करना चाहिए । ५१। सभी का अभाव हो तो, केवल विनम्र हों कर सूर्य की पूजा करे । अशक्त पुरुष नम्र होकर मन द्वारा (मानसिक) सूर्य की पूजा करे । ५२। द्रव्य न होने पर यह विधान बताया गया है, द्रव्य के रहते हुए सभी उपहारों समेत पूजन करने का विधान है । ५३। कर्म करने वाला जो कोई पुरुष मन्त्रोच्चारण पूर्वक सूर्य को धूप प्रदान करता है, उसके ऊपर सूर्य अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं । ५४। शिर, नाक, एवं मुख ढाँक कर सूर्य की पूजा करनी चाहिए । हे वीर ! इसमें शिथिलता कभी न करे । ५५। हे राजेन्द्र ! सूर्य के लिए कमलिनी पुष्प अवश्य प्रदान करे, क्योंकि उससे मनुष्य को सायुज्य मोक्ष प्राप्त होता है । इसलिए पूजन के समय उन्हें कमलिनी युक्त सदैव करना चाहिए । ५६। जो ऐसा करते हैं, उन्हें अश्वमेध का फल प्राप्त होता है । हे यादव ! जो सूर्य के लिए धूप प्रदान करते हैं, उन्हें उस परम पद की प्राप्ति होती है, जिसे अन्य कोई जानी देख नहीं सकता है । जो लोग भक्त्युर्वक (पूजनके) कार्योंद्वारा सूर्य का दर्शन करते हैं, उन्हें यहाँ समस्त कामनाएँ सफल होने के पश्चात् परम पद की प्राप्ति होती है । ५७-५८

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के साम्बोपास्यान में धूपादि विविध वर्णन
 नामक एक सी तैतालीसवाँ अध्याय समाप्त । १४३।

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकस्योत्पत्तिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अथाजगाम भगवान्व्यासो द्वारवतीं पुरीम् । द्रष्टुं नारायणं देखं शड्लचक्रगदाधरम् ॥१
तमागतमृणि दृष्ट्वा वासुदेवो विशांपते । अभ्युत्थाय महातेजाः पूजयत्माम् भारत ॥२
स्वयसेवासनं दत्त्वा पाद्यमर्प्य तथैव च । प्रच्छ प्रयतो भूत्वा व्यासं सत्यवतीमुतम् ॥३
य एते भोजका विप्रा आनीतः मत्सुतेन वै । शाकद्वीपमितो गत्वा ज्ञानिनो भोक्षणाभितः ॥४
तान्दृष्ट्वा रुप्तो विप्र प्रवेशात्कर्मतस्तथा । कौतूहलं समुत्पन्नं हर्षश्च परमो लम् ॥५
कथमेते क्षणमदि तिष्ठन्ते पृथिवीतत्त्वे । येषां रंदिः सदा पूज्यस्तेषां मुक्तिः सदा व्यसेत् ॥६
नागत्वा भोजकत्वं हि मोक्षमाप्नोति कश्चन । इदं मे शनसो ब्रह्मन्सदा सम्प्रतिभाति वै ॥७

व्यास उवाच

एवमेव यथात्थ त्वं शड्लचक्रगदाधर । धन्या एते महात्मानो भोजका नात्र संशयः ॥८
ये पूजयन्ति सततं भानुमन्तं दिवाकरम् । ज्ञानिनः कर्मनिष्ठाश्च सदा भोक्षणांति गताः ॥९
यजन्ते सततं भानुं बलिपुष्पफलैस्तथा । अन्नेनौषधिभिश्चैव अङ्ग्यहोमैश्च कृत्क्षशः ॥१०

अध्याय १४४

भोजक की उत्पत्ति का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—इसके उपरांत भगवान् व्यास का शंख, चक्र, गदा धारण करने वाले नारायण देव का दर्शन करने के लिए द्वारवती पुरी में आगमन हुआ । १। हे विशांपते ! हे भारत ! उन ऋषि को आये हुए देखकर महातेजस्वी कृष्ण ने उठ कर उनका स्वागत सत्कार किया । २। उन्हें स्वयं आसन पर बैठाकर पाद्य, एवं अर्ध्य-जल प्रदान करने के उपरांत सत्यवती पुत्र व्यास से उन्होंने पूछा । मेरे पुत्र (साम्ब) द्वारा शाकद्वीप से जो ये भोजक ब्राह्मण गण यहाँ लाये गये हैं, हे विप्र ! उन मोक्षगामी ज्ञानियों के रूप तथा इस नगर में रहने और उनके कर्मों को देखकर मुझे परम हर्ष एवं कौतूहल हो रहा है । ३-५। कि ये लोग क्षणमात्र भी इस पृथ्वी तल पर कैसे ठहरे हुए हैं, क्योंकि जिनके पूज्य सूर्य हैं, उनकी सदैव के लिए मुक्ति हो जाती है । हे ब्रह्मन् ! मेरे मन में इस समय यही धारणा हो रही है कि बिना भोजकों के धर्म अपनाये कोई भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है । ६-७

व्यास बोले— हे शंख, चक्र, एवं गदा को धारण करने वाले ! आप जो कह रहे हैं, वह वैसा ही है । ये महात्मा भोजक गण धन्य हैं, इसमें संशय नहीं है । ८। जो लोग निरन्तर तेजस्वी सूर्य की पूजा करते हैं, वे कर्मनिष्ठ ज्ञानी सदैव मुक्त रहते हैं । ९। ये (भोजक) बलि, पुण्यो, फलों, अम्र, औषधि तथा धी के हवन द्वारा निरन्तर सूर्य की पूजा करते हैं । १०। नित्य हवन के उपरांत होम भी करते हैं । क्योंकि पर

होमं च शश्वतं कृत्वा परं होमं ततः क्षिताः । परहोमस्य करणात्पूतत्मानो ह्यकल्मषाः ॥११
 विशन्ति परमां दिव्यां भास्करीं तैजसीं कलाम् । कर्मणः सत्यने चैका तत्र चाज्ञौ प्रतिष्ठिता ॥१२
 वायुमार्गस्थिता व्योन्निः द्वितीयान्तः प्रकाशिका । ततः परं वृतीया तु तत्स्मृतं सूर्यमण्डले ॥१३
 मण्डलं तच्च सवितुर्दिव्यं ह्यजरमव्ययम् । तस्याऽसौ पुरुषो मध्ये योऽतौ सदसदात्मकः ॥१४
 कराक्षरस्तु विजेयो महासूर्यस्तथैव च । निष्कलः सकलश्रापि द्वौ च तस्य प्रकल्पितौ ॥१५
 अक्षरः सकलश्रैव सर्वमूलव्यवस्थितः । सत्यः सकलः प्रोक्तस्तत्त्वहीनस्तु निष्कलः ॥१६
 तृणगुल्मलतावृक्षवृक्षर्किंहिजाधिषात् । सुरासिद्धमनुष्यतंश्च स्थलजञ्जलजरहरेत् ॥१७
 व्यवस्थितः स र्द्वन्द्वः सर्वेषामन्तरात्मनि । यदा कल्पात्मकश्चैव द्वितीयां तनुमाश्रितः ॥१८
 निष्कलस्तु सदा ज्ञेयः संस्थितत्त्वजसीं कलाम् । हिमं घर्मं च वर्षं च त्रैलोक्ये कुरुते सदा ॥१९
 द्वितीया या तनुस्तस्य अक्षरं तत्परं पदम् । देवयानं तु पन्थानं कर्मयोगेन संस्थिता ॥२०
 आदित्यसिद्धान्तगिता: साङ्गत्ययोग विदश्च गे । तेऽभिगच्छन्ति तत्स्थानं स मोक्षः परिकीर्तिः ॥२१
 निर्द्वन्द्वो निर्वामश्रैव तत्र गत्वा न शोचति । वेदेषु ब्रह्म वदन्ति ध्यायन्ते तत्त्ववेदिनः ॥२२
 अङ्कारं तत्त्वतश्चापि ध्यायन्ते पुरुषोत्तम । श्यक्षरं च तमोंकारं सार्थमात्रात्रये स्थितम् ॥२३
 वदन्ति चार्धमात्रस्य मकारं व्यञ्जनात्मकम् । ध्यायन्ति ये मकारीयं ज्ञानं ते हि सदात्मकम् ॥२४

होम के करने से ही पवित्र एवं पाप मुक्त होते हैं । ११। इसीलिए ये परम दिव्य सूर्य की तेजस्वी कला में प्रविष्ट (सायुज्य मुक्त) होते हैं । सूर्य की एक कला, कर्मों के साधन के लिए अग्नि में स्थित हैं । १२। इसी प्रकार दूसरी अन्तः प्रकाशिका कला आकाश में वायु-मार्ग में स्थित है, उसके पश्चात् तीसरी कला सूर्य मण्डल में स्थित है । १३। सूर्य का वह मण्डल दिव्य, अजर, एवं अव्यय (अविनाशी) है उसके मध्य भाग में जो यह सदसदात्मक, क्षर, अक्षर रूप दिखायी देता है, यही महा सूर्य है निष्कल और सकल भेद से उसकी दो भाँति की कल्पना की जाती है । १४-१५। वह अक्षर (अविनाशी) कलारहित, एवं सभी प्राणियों में व्यवस्थित है । तत्त्वविशिष्ट (सूर्य) कला सहित होने के नाते सकल और कला हीन होने से निष्कल कहे जाते हैं । १६। तृण, गुल्म, लता, वृक्ष, वृक्त (भोज्या), सिंह, द्विजाधि, सुर, सिद्ध, मनुष्य एवं स्थलों तथा जलों में उत्पन्न होने वाले सभी का ये अपहरण करते हैं । १७। इस प्रकार यह सभी के अन्तरामा में सदैव व्यवस्थित रहते हैं । जब ये दूसरी कला को अपनाते हैं, उस समय इन्हें कलात्मक कहा जाता है । १७-१८। अपनी तेजस्वी कला में स्थित रहने पर इन्हें सदैव निष्कल कहते हैं । शीत, धूप एवं वर्षा तीनों लोकों में सदा करते रहते हैं । १९। इनकी दूसरी कला अक्षर (नाश हीन), तथा परं पद रूप है, देवमार्ग से होकर कर्मयोगी लोग उसे प्राप्त करते हैं । २०। आदित्य सिद्धान्त वाले, एवं सांख्यवादी भी उस स्थान की प्राप्ति करते हैं क्योंकि वही मोक्ष रूप हैं ऐसा कहा गया है । २१। वहाँ पहुँच कर जीव निर्द्वन्द्व (शीतोष्ण दुःखादि में मुक्त) एवं निर्भय (जन्म मरण हीन) होकर चित्तिक भी नहीं होता है । उसे ही वेद में ब्रह्म, तथा तत्त्व ज्ञानी लोग उसी का ध्यान करते हैं । २२। हे पुरुषोत्तम ! तत्त्व ज्ञान पूर्वक ही ओंकार का ध्यान किया जाता है । ओम् शब्द में तीन अक्षर एवं साढ़े तीन मात्रा स्थित है । २३। व्यञ्जनात्मक मकार की अर्धमात्रा बतायी गई है । मकारीय (मकार जन्य) ज्ञान का जो ध्यान करता है, वह

मकारो भगवान्देवो भास्करः परिकीर्तिः । मकारध्यानयोगान्व मग्ना होते प्रकीर्तिः ॥२५
 धूपमात्सर्वतथापि उपहारस्तथैव च । भोजयन्ति सहवाङ्मुं तेन ते भोजकाः स्मृताः ॥२६
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मणे एवं सप्तमीकल्पे साम्बोपास्याने भोजकस्थोत्रतिवर्णं
 नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १४४।

अथ पञ्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

भोजकज्ञानवर्णनम्

वासुदेव उवाच

ज्ञानोपलब्धिं विप्रेन्द्र भोजकानां शहामुने । ब्रूहि तत्वं द्विजश्रेष्ठ कौतुकं परमं मम ॥१

व्यास उवाच

इमां ज्ञानोपलब्धिं तु निबोध गदतो मम । अस्तिस्थूलं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनम् ॥
 चर्मविनदं दुर्गंधिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥२

जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजस्त्वलमनित्यं च भूतावासमिनं त्यजेत् ॥३
 कपालं वृक्षमूलानि कुचैलमसहायता । समता सर्वमूत्रेषु एवं मुक्तस्य लक्षणम् ॥४

सदात्मक का ध्यान करता है । २४। क्योंकि मकार रूप भगवान भास्कर देव बताये गये हैं, मकार के ही ध्यान करने से वे लोग मग कहलाते हैं । २५। इस प्रकार धूप, माला, एवं उपहार प्रदान पूर्वक सूर्य को भोजन कराने के नाते वे भोजक कहे जाते हैं । २६

श्रीभविष्य पुराण में ब्राह्मण वर्ते के सप्तमी कल्प के साम्बोपास्यान में भोजक की उत्पत्ति वर्णन
 नामक एक सौ चौबालीसर्वां अध्याय समाप्त । १४४।

अध्याय १४५

भोजकज्ञान का वर्णन

वासुदेव ने कहा—हे विप्रेन्द्र, हे महामुने ! भोजकों की ज्ञानप्राप्ति कैसे हुई, उसको मार्मिक व्यास्या पूर्वक बताने की कृपा करें । हे द्विजश्रेष्ठ ! (उसके सुनने के लिए) मुझे महान् कौतूहल हो रहा है । १

व्यास बोले—मैं उनकी ज्ञान प्राप्ति बता रहा हूँ, (सावधान होकर) सुनिये ! यह शरीर, मोटी-मोटी अस्थियों (हड्डियों) से पूर्ण, स्नायु (वायुवाली नाड़ी) समेत, मांस और शोणित से लिप्त, चमड़े से बैंधा, मल, मूत्र आदि दुर्गन्ध से भरा है । २। इसमें जरा (बुदापा) और शोक का निश्चित स्थान है, अतः रोगमन्दिर, आतुर, रज से मरीन, अनित्य (नाशवान्) एवं प्राणी मात्र का आवास स्थान रूप इस शरीर का परित्याग कर देना चाहिए । ३। कपाल को भोजन पात्र बनाना वृक्ष के फूल फल भोजन करना, फटे-पुराने वस्त्र पहनना एवं किसी से सहायता न चाहना और सभी प्राणियों में समान दृष्टि

तिले तैलं शवि क्षीरं काष्ठे चावकसत्ततिः । उपायं चिन्तयेदस्य धिया धीरः समाहितः ॥५
 प्रमाणिय च प्रथलेन मनः संयम्य चञ्चलम् । बुद्धीन्द्रियाणि संयम्य शकुनानिव पञ्जरे ॥६
 इन्द्रियैर्नियतैर्देही धर्माभिरिव तृप्यते । सततममृतस्यैव जनार्दन महामते ॥७
 प्राणायामैर्देहैदोषान्धारणमित्रश्च^१ किल्बिषम् । प्रत्याहारेण संसारान्व्यानेनानीवरान्लुप्तात् ॥८
 ध्यायमान्त्य दद्यन्ते चान्ते दोषा यथाग्निना : तथेन्द्रियकृता दोषा दद्यन्ते प्राणान्तिप्रहात् ॥९
 चितं चित्तेन संशोध्य भावं भावेन शोध्येत् । भनस्तु भनसा शोध्यं बुद्धिं बुद्ध्या तु शोध्येत् ॥१०
 चित्तस्थान्तिसादेन भवति कर्म शुभाशुभम् । शुभाशुभविनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वे निष्परिग्रहः ॥
 निर्ममो निरहड्कारस्ततो याति परां गतिन् ॥११
 पर्वाह्लै लोहितं रूपं प्रथममृद्भमयं स्मृतम् । यद्भुर्मयं द्वितीयं तु श्वेतं माध्यात्मिकं स्मृतम् ॥१२
 कृष्णं तृतीयं साधारितं सान्निध्यं रूपं तु तत्स्मृतम् । प्रथमं राजसं देव द्वितीयं सात्त्विकं स्मृतम् ॥१३
 तृतीयं तामसं रूपं वैगुण्यं तस्य कल्पितम् । त्रयाणां व्यतिरेकेण चतुर्थं सूर्यमण्डलम् ॥१४
 ज्योतिः प्रकाशकं सूक्ष्मं प्रोक्तं देवनिरचनम् ; चतुर्थं तु देवदिवः सूर्यसिद्धान्तवेदिनः ॥१५
 उङ्काप्रणवैर्युक्ता ध्याननिर्धूतकल्पाणाः । स्थिताः पद्मासने दीरा नाभिसंन्यस्तपाण्यः ॥१६

खना, ये सब मुक्तहोने के लक्षण हैं । ४। तिल में तेल, गाय में क्षीर, एवं काष्ठ में अग्नि के अदृष्ट रहने की भाँति सभी पदार्थों में अदृष्ट परमात्मा की प्राप्ति रूप मोक्ष के लिए धीर समाधि निष्ठ पुरुष को सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए कि वह किस उपाय द्वारा प्राप्त होगा । ५। (प्रथम) प्रयत्न पूर्वकं मंथन करने वाले चंचल मन को अपने अधीन कर पिंजडे में पक्षियों की भाँति दुद्धि इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियों) को अपने अधिकार में रखकर हे जनार्दन, हे महामते ! अमृत धारा में प्राप्त होने की भाँति प्राणी वश में की हुई इन्द्रियों से प्राप्ति करता है । ६-७। प्राणायाम करने से सभी दोष, धारणा से पाप, प्रत्याहार (इन्द्रियों को विषयों से रोकने से) (विषयों के) संसर्ग (साथ) और ध्यान करने से संसारी गुणों की निवृत्ति होती है । ८। अग्नि द्वारा धातु जन्य दोष नाश होने की भाँति ध्यान करने वाले पुरुष के इन्द्रिय जन्य दोष प्राणायाम से नष्ट हो जाते हैं । ९। चित्त द्वारा चित्त भाव, मन से मन, बुद्धि से बुद्धि का संशोधन (शुद्ध) करना चाहिए । १०। चित्र के अत्यन्त निर्मल होने पर शुभाशुभ कर्म का ज्ञान उत्पन्न होता है । अनन्तर शुभाशुभ (कर्म) से मुक्त होने पर निर्द्वन्द्व (शीतोष्ण आदि सुख दुःख से रहित), निष्परिग्रह (संसारी वस्तुओं का त्याग), निर्मम (ममत्वं शून्यं), एवं निरहंकार (अभिमान रहित) होकर उत्तम गति प्राप्त करता है । ११। पूर्वाह्न काल में रक्त वर्ण रूप क्रृत्वेद मय सूर्य का प्रथम, मध्याह्न काल में यजुर्मय श्वेत रूप द्विसरा और सायंकाल में सामय कृष्ण वर्ण रूप (सूर्य का) तीसरा (रूप) बताया गया है । हे देव ! पहला राजस, द्विसरा सात्त्विक तथा तीसरा तामस रूप है इस प्रकार तीनों गुण वाला रूप उसका (सूर्य) बताया जाता है । इन तीनों से पृथक चौथा सूर्य मण्डल रूप है । १२-१४। ज्योतियों के प्रकाशक, सूक्ष्म, एवं निरजन, उस मण्डल को सूर्य सिद्धान्त एवं वेद के निष्पात विद्वानों ने चौथा रूप बताया है । १५। ओंकार रूप प्रणव से युक्त ध्यान द्वारा निष्पाप होकर पद्मासन पर स्थित हो और नाभि पर

सुषुप्तानानाडिकामर्गं कुम्भरेचकपूरके: । त्रिभिः संशोध्य तान्पञ्च मरुतो देहमध्यगान् ॥१७
 पदाङ्गुणान्वितः स्विन्नमूर्ध्वमुत्केयेत्कामात् । नाभिदेशे तु तं दृष्ट्वा देवमग्रिमनामयम् ॥१८
 सोम्यं च हृदये दृष्ट्वा भूर्धिन दायिणशिखां ततः । बातरश्चिभिरासाद्य तं भित्त्वा नण्डलं परम् ॥१९
 ततः परं तु यो गच्छेद्योगस्थः सूर्यमण्डलम् । यत्र गत्वा न शोचन्ति तत्सौरं परमं पदम् ॥२०
 दद्वाच्चनं महाबाहो कीर्तिः केशिसूदन । प्रथमं हृदयं स्थानं द्वितीयं चायिमाश्रितम् ॥२१
 तृतीयं नाशिसंस्थं च चतुर्थं सूर्यमण्डलम् ॥२२

स्थानं परं वै परमस्त्वंसंस्थं भानोः सुरेनस्य वदन्ति तज्ज्ञाः ।

ज्ञेयः स मोक्षश्च नृणां स एव संसारविच्छिन्नतिकरं पदं ततः ॥२३

इदमभृतसमं परस्य वेद्यं किरणासहस्रभृतो हितं जनानाम् ।

ऋषिचरितमदेवत्य तत्त्वसारं व्यपगतमोहधियः प्रयान्तिमोक्षम् ॥२४

इदं मगानां चरितं यथा ते प्रलयापितं यानवरेण युक्तम् ।

ज्ञात्वात्मिमं भोक्षविदो वदन्ति सिद्धाश्च तत्त्वानमवाप्नुवन्ति ॥२५

यन्मयोक्तमिदं ज्ञानं देयं श्रद्धादतां नृणाम् । नास्तिकानामबुद्धीनां न देयं भूतिमिच्छता ॥२६

सुमन्तुरुखाच

इत्युक्त्वा भगवान्व्यासो भोजकज्ञानमुत्तमम् । नारायणं महाबाहो जगामायतनं हरेः ॥२७

हाँथ रखे । १६। उपरान्त कुम्भक, रेचक, तथा पूरक रूप प्राणायाम द्वारा सुपुण्णा नाड़ी के मार्ग का संशोधन करते हुए पैर के अंगूठे से लेकर समस्त शरीर में चलने वाले उन पाँचों वायुओं को क्रमशः उपर की ओर सप्रयत्न ले जायें। नाभि प्रदेश में देव के अग्नि एवं अनामय रूप, हृदय स्थल में सोमरूप, शिर में अग्निशिखा रूप के दर्शन करके उसके पश्चात् वात एवं रश्मि द्वारा उसे पुनः ध्यानाकृष्ट कर के उत्तम मण्डल का भेदन करे । १७-१९। पश्चात् योग में स्थित होकर सूर्य मण्डल की प्राप्ति करता है, और जहाँ पहुँचकर किसी प्रकार का शोक नहीं होता है, उसे परम सौर पद कहते हैं । २०। हे महाबाहो ! इस प्रकार मैंने देवाचन बता दिया है। हे केशिसूदन ! प्रथम हृदय स्थान, दूसरे अग्नि स्थान, तीसरा नाभि स्थान चौथा सूर्य मण्डल स्थान (सूर्य के ध्यान के लिए) बताया जाता है । २१-२२। उस परम पद के विद्वान् उसी परम स्थान को जहाँ परमात्मा स्थित रहता है, देवेश भानु का परम स्थान कहते हैं। मनुष्यों के लिए वही ज्ञेय एवं मोक्षरूप है और वहीं स्थान उसके संसार का नाश करता है । २३। अमृत के समान यहीं स्थान, जो दूसरों के लिए जानने योग्य, महस्त किरण रूप तथा भक्त एवं मनुष्यों का सदैव हितेषी है। इसी को अपना कर ऋषियों ने मोक्ष प्राप्त किया है, अतः उनके चरित के ज्ञान पूर्वक तत्व सार की प्राप्ति द्वारा मोह नष्ट कर शुद्धि बुद्धि वाले पुरुष मोक्ष प्राप्त करते हैं । २४ मगों के इस चरित को मैंने तुम्हें बता दिया ; मोक्ष के ज्ञाता इसे ही मोक्ष कहते हैं, जों मुन्दर विमानों पर बैठ कर प्राप्त किया जाता है और इसे सिद्ध लोग भी उस स्थान पर की प्राप्ति करते रहते हैं । २५। इस मेरे बताये हुए ज्ञान को श्रद्धानु मनुष्यों को प्रदान करना चाहिए, अपना ऐश्वर्य चाहने वाला पुरुष कभी भी नास्तिक एवं मूर्ख पुरुष को इसे न प्रदान करे । २६

सुमन्तु बोले—इस प्रकार भगवान् व्यास ने नारायण को भोजकों का उत्तम ज्ञान बताकर हे

स्थातो यस्त्रिपु लोकेषु गंगया दरितोषितः । बदर्या मण्डितो वीर नरनारायणाश्रमः ॥२८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे दर्वणि सप्तमीकल्पे भोजकज्ञानवर्णनं
 नाम पञ्चचत्वारिंशदिकशत्तमोऽष्टायः ॥४५।

अथ षट्कृत्वार्द्धशदधिकशत्तमोऽध्यायः

भोजकवर्णनम्

शतानीक उच्चाच्छ

य एते भोजकाः प्रोक्षता देवदेवस्य पूजकाः । नान्यं भोज्यमयैतेषां द्वाहाणैश्च कदाचन ॥१
 भास्करस्य प्रिया हेते पूज्यत्वं च तथा गताः । दिव्याश्रेते स्मृता विश्वा आदित्याम्बःसमुद्देशः ॥२
 अभोज्यत्वं कथं याता भोजलास्तद्वद्वत्वं मे । किं कुरुणास्तथा कर्न भोज्यतां धान्ति मे वद ॥३

तुम्भन्तु रुद्वाच

इममर्थं पुरा पृष्ठो वासुदेवो भयीपते । कृतदर्भणा पुरा राजस्तथा साम्बो महाबलः ॥४
 गतौ साम्बपुरीं वीर तथा नारदवर्तौ । भुक्तवन्तो गृहे सर्वे भोजकस्य महात्माः ॥५
 आदित्यकर्मणो लोके देवाश्वल्पातिमागताः । तेन ते पूजिताः सर्वे भक्त्या भोज्यरनेकशः ॥६
 आगतास्ते पुरीं वीर पुष्यां द्वारवतीं विभोः । तावृषी दिव्यमास्तौ राजनारदपर्वती ॥७

हे महाबाहो ! हे वीर ! विष्णु के उस लोक को प्रस्थान किया जो तीनों लोकों में स्थाति प्राप्त गंगा एवं
 बदरी से भूषित तथा नरनारायणाश्रम के नाम से प्रसिद्ध है । २७-२८

श्रीभविष्य महापुराण के ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में भोजकज्ञन वर्णन
 नामक एक सौ पैतालसीवां अध्याय समाप्त । १४५।

अध्याय १४६

भोजक वर्णन

शतानीक ने कहा—देवाधिदेव सूर्य की उपासना करने वाले जिन भोजकों को आप ने बताया है,
 ब्राह्मणों को चाहिए कि उन्हें ही भोजन करायें अन्य को नहीं । १। क्योंकि ये लोग सूर्य प्रिय होने के नाते
 पूज्य हैं, ये ब्राह्मण दिव्य तथा आदित्य रूप जल द्वारा उत्पन्न हैं । २। अब मुझे यह जानने की इच्छा है कि
 भोजक लोग अभोज्य (भोजन न करने योग्य) कैसे होते हैं और किस कर्म से भोजक भोजन कराने के
 योग्य होते हैं, कृपा करके बतायें ! १-३

मुमन्तु बोले—महीपते ! पहले समय में कृतवर्मा ने भगवान् वासुदेव से यही प्रश्न किया था,
 राजन् ! उसी प्रकार महाबली साम्ब से भी पूछा गया था । ४। वीर ! एक बार नारद और पर्वत साम्ब
 पुरी में पहुँच कर महात्मा भोजकों के यहाँ और लोगों के साथ भोजन किये । आदित्य के पूजनादि करने
 के नाते उनके अन्न ‘देवान्न’ के नाम से लोक प्रसिद्ध थे, भक्ति पूर्वक भोजक ने उसी भाँति-भाँति के भोज्य
 पदार्थों द्वारा लोगों को तुप्त किया । वीर ! तदनंतर वे लोग पुष्य द्वारवती में पहुँच कर नारद तथा पर्वत

वासुदेवं नहतेजा हार्दिकयो दाव्यसप्रवीत् । य एते भोजका विप्र पूजना भास्करस्य तु ॥८
अभिमेषां कथं विष्णी भुक्तवन्ती जनार्दन । तावृषी दिव्यमाल्यातौ यौ तौ नारवर्षती ॥
अभोद्या: किल एते वे ब्राह्मणानां जनार्दन ॥१९

वासुदेव उवाच

न ते भोज्या महाबाहो भोज्या जोजाश्च सर्ददा । अभिवाशां प्रश्नलेन ध्यादित्यो भग्नामते ॥२०
आचरन्तश्च तत्कर्म भोज्यत्वं प्रवजन्ति ते । तच्छूद्धतां यदुश्रेष्ठ यत्कार्यं चापि हर्षिमः ॥
थर्तमानेमहाबाहो तर्हिैकम्भनाः शूषु ॥२१
वृषली यस्य वै भार्या यश्चाव्यड्गं न धारयेत् । अभोज्यः स तु विज्ञेयो जोजको नाश संशयः ॥२२
अन्नातः पूजयेद्यस्तु तथाम्यङ्गविवर्जितः । आदित्यं यदुशार्दूल तथा च विधिना विश्वोः ॥२३
सेवको भोजको यस्तु शूद्राश्च येन भुज्यते । कृषिं च कुरुते यस्तु देवार्दीमदि वर्जयेत् ॥२४
जातकर्मदयो गस्य न संस्काराः कृता दिभोः । आरणेदेव भन्त्वैश्च साविष्णी न च है पठेत् ॥
तत्त्वं गेहे द्विजो भुक्त्वा कृच्छ्रपादेन शुद्ध्यति ॥२५
पितृदेवमनुव्याणां भूतानां आस्करस्य तु । अकृत्वा विधिवत्यूजां यस्तु भुद्धते स धर्महा ॥२६
अम्यङ्गेन विहीनो यः शंखहीनस्तथैव च । शिरसा धारयेत्क्षान्त्स ज्येयो भोजकाधमः ॥२७
देवार्चनं तथा होमं ब्राह्मणं तर्पणमेव च । दानं ब्राह्मणपूजां च कुर्वतो भोजकस्य तु ॥
अम्यङ्गेन विहीनस्य सर्वं भवति निष्कलम् ॥२८

नामक दोनों महातेजस्वी ऋषि ने आकाश रिश्त होकर वासुदेव से प्रिय वाणी द्वारा पूछा—ये भोजक ब्राह्मण, सूर्य के पूजक हैं, अतः जनार्दन ! इनके अन्न का इन दोनों ब्राह्मणों ने कैसे भोजन किया जो नारद एवं पर्वत के नाम से दिव्यस्यातिप्राप्त एवं ऋषिकुल में उत्पन्न हैं । क्योंकि जनार्दन ! ब्राह्मणों के लिए ये भोजन कराने के योग्य नहीं होते हैं ।

वासुदेव ने कहा—महाबाहो ! भोजक ही भोजक कराने के योग्य होते हैं न कि अन्य ब्राह्मण महामते ! ये लोग प्रयत्न पूर्वक सूर्य के समान ही अभिवादन करने के योग्य हैं । ५-१०। सूर्य के लिए कर्मों का आचरण करने के नाते ये भोज्य हैं । विभो ! उनके कर्मों को जिसे प्रयत्नपूर्वक वे करते हैं महामते ! सावधान होकर सुनो ! वृषली अभोज्य है, इसमें संशय नहीं । ११-१२। यदुशार्दूल ! विना स्वयं स्नान किये, अम्यंग लगाये विधान पूर्वक सूर्य की पूजा करने वाला, भोजक से सेवा कराने वाला, शूद्राश्च भोजी, कृषि करने वाला, देव पूजन का त्यागी । विभो ! जिसके जातकर्म आदि संस्कार न हुए हों, सूर्य के मंत्रों द्वारा गायत्री मंत्र का उच्चारण न करने वाला, पुरुष निषिद्ध है ऐसे लोगों के यहाँ भोजन करने पर ब्राह्मण कृच्छ्रपाद नामक ब्रत करने से शुद्ध होता है । पितृ, देव एवं मनुष्यों एवं सूर्य की विधान पूर्वक पूजा विना किये भोजन करने वाला ‘धर्महा’ (धर्मधाती) कहा जाता है । १३-१६। अम्यंग एवं शंख हीन तथा शिर में केश रखने वाला भोजक अध्यय कोटि का होता है । १७। देवार्चन, हवन, स्नान, तर्पण, दान, एवं ब्राह्मण पूजा करने पर भी अम्यंग हीन होने से भोजक का वह सब निष्कल हो जाता है । १८। यदुशार्दूल !

सर्वदेवमयोः हृष्टं सर्वदेवमयस्तथा । अन्यहूणो यदुशार्दूलं पवित्रः परमः स्मृतः ॥१९
 भोजकानां यदुश्रेष्ठं तस्य मूले स्थितो हरिः । मध्ये ब्रह्मा भग्नातेजा अये गोश्रुतिसूचणः ॥२०
 श्वर्वेदो यस्य मूलस्त्वे लघ्ये सामानि छृत्स्तथः । यजुर्वेदस्तथः श्रेष्ठश्चार्थवैसहितः स्थितः ॥२१
 त्रयोऽप्यमयस्तथा राज्ञःश्चयो लोकाः स्थितः क्रमतः । एवमेव पवित्रस्तु अभ्यङ्गो भोजकस्य तु ॥२२
 यस्त्वनेन दिहीनस्तु भोजको भोजकाधमः । अशोज्यः स तु विवेयः भोजशुचिनाश्रि संशदः ॥२३
 निर्माल्यमय नैवेद्यं कुञ्जकुमं देवहेतिनाम् । ए प्रयच्छन्ति शूद्राणां विकीरणन्ति च भोजकाः ॥
 तेऽथमा भोजकः ज्ञेया ये च देवस्वहत्तरिः ॥२४

न पूजयन्ति देवेशं देवस्वं अपयन्ति च । न ते देव प्रियास्तात विज्ञेया भोजकाधमाः ॥२५
 यस्त्विन्न भुत्ते नैवेद्यं भोजकोऽनातिमानद । तदव्याप्तं युज्जातस्तस्य नरकाय न शान्तये ॥२६
 नैवेद्यं भोजयेत्स्माद्ब्राह्मकरस्य नरः सदा । प्रथम यदुशार्दूलं तच्च देहविशोधनम् ॥२७
 ब्राह्मणानां पुरोडाशो यथा कायविशोधनः । भोजकानां तथा वीर नैवेद्यं कायशोधनम् ॥२८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मो पर्वणि सप्तमीकल्ये साम्बोपाल्याने भोजकवर्णनं
 नाम षट्चत्वारिंशदधिकशतमोऽध्यायः । १४६।

सर्वदेवमय एवं सर्वदेवमय होने केनाते अभ्यंग अत्यन्त पवित्र बताया गया है । यदुश्रेष्ठ ! भोजकों के उस अभ्यंग के मूलभाग में विष्णु, मध्य भाग में महातेजस्वी ब्रह्मा, अग्रभाग में कान में किरण रूपी कुण्डल धारण करने वाले (सूर्य) स्थित रहते हैं । जिसके मूल भाग में ऋग्वेद, मध्य में समस्त सामवेद तथा अथर्व सहित यजुर्वेद स्थित है, उसी प्रकार राजन् । तीनों अग्निएँ एवं तीनों लोक क्रमशः (उसमें) स्थित हैं, इसी लिए भोजकों का यह अभ्यंग पवित्र माना जाता है । १९-२२ । इससे हीन भोजक भोजकाधम है, अशोज्य एवं अपवित्र उन्हें जानना चाहिए इसमें संशय नहीं । २३ । सूर्य के निर्माल्य, नैवेद्य, एवं कुञ्जकुम आदि जो भोजकों शूद्राणों के देने पर बेंचते हैं उन्हें अधम एवं देवधन का अपहरण करने वाला जानना चाहिए । जो देवेश (सूर्य), की पूजा नहीं करते हैं प्रत्युत यों ही समय व्यर्थ व्यतीत करते हैं, तात ! वे देवप्रिय नहीं हैं, उन्हें भोजकाधम जानना चाहिए । २४-२५ । मानद ! सूर्य के लिए नैवेद्य बिना समर्पित किये भोजक यदि उसे खा लेता है, तो उसे खाने से उसे नरक होगा न कि शांति प्राप्ति । २६ । अतः सूर्य के लिए प्रथम निवेदन कर ही उस नैवेद्य का सदेव प्रथम भोजन करना चाहिए, क्योंकि यदुशार्दूल ! उससे देह शुद्ध होती है । २७ । वीर ! जिस प्रकार ब्राह्मणों के शरीर शुद्धि के लिए पुरोडाश का भक्षण करना बताया गया है, उसी प्रकार भोजकों की शरीर शुद्धि के लिए नैवेद्य है । २८

श्रीभविष्य पुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्य में साम्बोपाल्यान में भोजक वर्णन
 नामक एक सौ छियालिसवाँ अध्याय समाप्त । १४६।

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततभोऽध्यायः

भोजकब्राह्मणवर्णनम्

दासुदेव उवाच

अश्च पृष्ठो यथा ईदो भास्त्वरो देवपूजितः । अरुणेन महाबाहो के प्रिया भोजकास्तथा ॥१
पूजायां तद के योग्याः के न योग्या भवन्ति च । इति पृष्ठः स भगवानरुणेन दिवाकरः ॥
यदुवाच महाबाहो तदिहैकमनाः शृणु ॥२

भास्त्वर उवाच

परबारात्परद्वयं ऐ न हिसन्ति भोजकाः । ते प्रिया मम दै नित्यं दे न निदन्ति दैवतान् ॥३
दण्डिण्यं कृषिसेवां तु वेदानां निन्दनं च ये । कुर्वन्ति भोजका ज्ञेयाः सर्वे ते मम वैरिणः ॥४
यथां भार्यासङ्ग्यहर्णं कर्षणं ये प्रकुर्वते । नृपसेवां खगश्रेष्ठ विज्ञेयाः पतितास्तु ते ॥
भुञ्जते ये च शूद्राश्च ज्ञेयास्ते शत्रयो ऽम् ॥५

पूजा कृता तु या तैस्तु तथार्थं च खगेत्तम् । पूजां तामथ चाप्यर्थं नाहं गृह्णामि लेचर ॥६
य एते कथिता वीर ऐ च शङ्खविवर्जिताः । निर्माल्यं ये मदीयं तु नैवेद्यं कुरुकुर्मं तथा ॥७
शूद्राय ये प्रयच्छन्ति विकीर्णन्ति च ये खग । यच्छन्ति ये च वैश्याय भोजका मे न ते प्रिया ॥८
यजन्ते ये च सावित्रीं महाश्वेतां च गोपते । ये न जानन्ति मे मुद्रां किङ्कराणां च नामतः ॥९

अध्याय १४७

भोजक ब्राह्मण वर्णन

बासुदेव ने कहा—महाबाहो ! अरुण ने जिस प्रकार देवपूजित सूर्य देव से पूँछा कि कौन भोजक आपके प्रिय हैं । तथा पूजा करने के लिए कौन योग्य कौन अयोग्य हैं, इस प्रकार अरुण के पूँछने पर भगवान् दिवाकर ने जो कुछ कहा है, महाबाहो, उसे मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो । १-२

भास्त्वर बोले—जो भोजक परस्त्री एवं परधन का अपहरण तथा देवों की निन्दा करते हों, वे भोजक मुझे सदैव प्रिय हैं । व्यापार, खेती, और बेदों की निन्दा करने वाले भोजक मेरे शत्रु के समान हैं । ३-४। आकाशचारियों में श्रेष्ठ जिसके कई स्त्रियाँ हों, खेती करने वाले, एवं राजा की सेवा करने वाले भोजक को पतित जानना चाहिए । शूद्र के अन्न का भक्षण करने वाले भोजक मेरे शत्रु के समान हैं । ५। उसके द्वारा की गई जो कुछ पूजा एवं जो अर्थ प्रदान होता है, आकाशगामिन् ! उसे मैं कभी स्वीकार नहीं करता हूँ । ६। वीर ! ये लोग, शंख हीन मेरे निर्माल्य, नैवेद्य एवं कुकुम शूद्र को देने वाले या बेंचने वाले हैं वे तथा आकाश चारिन् ! वैश्य को इन चीजों को देने वाले भोजक मुझे प्रिय नहीं होते हैं । ७-८। सावित्री तथा सूर्य की महाश्वेता का पूजन करने वाला, एवं किंकरों के नाम से मेरी मुद्रा न

य एते' कथिता वीर भोजकास्ते सया लग । नैते पूजयितुं शक्ता ये प्रिया मम भोजकाः ॥
 ताऽङ्गुण्यस्य खगश्चेष्ठ मूल्वा चकाप्रमानसः ॥१०
 देवद्विजमनुष्याणां पितृणां चार्षि पूजकाः । ते प्रिया मम वै नित्यं शक्ताः पूजयितुं रविम् ॥११
 येषां मुण्डं गिरो नित्यं ये चाम्बृद्गममन्विताः । वादयन्ति च ये शङ्खं दिव्यास्ते भोजकाः भक्ताः ॥१२
 त्रिकालं ये च मां नित्यं मुक्तातः क्रोधवर्जिताः । पूजयन्ति खगश्चेष्ठ ते प्रिया मम भोजकाः ॥१३
 द्वारे द्वयै तत्त्वं तु षष्ठ्यां ये च प्रकुर्वते । तत्तम्यामुपवासं तु तथा सङ्क्रमणे भम् ॥१४
 विष्यास्ते ब्राह्मणा ज्ञेया भोजकाः मम पूजकाः । पूजयन्ति च ये विभ्रान्मद्भक्ता भत्यरायणाः ॥
 ते प्रियाः शततं भव्यं लोजका गरुडाग्रज ॥१५
 ममि भक्तिं त्रुवर्वन्ति ब्राह्मणान्पूजयन्ति नो । न ते पूज्या न वन्धाश्च ये द्विष्यन्ति च मां सदा ॥१६
 ये कुर्वन्ति महायज्ञान्भोजका गरुडाग्रज । पितृदेवमनुष्याणां पूजार्थं सन्ततं लग ॥१७
 त्रियास्ते लततं वीर भोजकानां तथोत्तमाः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पञ्चयज्ञान्प्रबन्धयेत् ॥१८
 एकश्लेष्ये ये नित्यं वर्तन्ते कश्यपात्मज । भुज्जते न च ये रात्रौ भोजकास्ते प्रिया मम् ॥१९
 मम द्वारे च ये वीर तथा षष्ठ्यां च केशव । न रात्रौ भुज्जते प्राजा विष्यास्ते मगा: लग ॥२०
 प्रतिगंधत्वसरं ये तु भोजका गरुडाग्रज । न यच्छन्ति पितुर्मातृदिवसे तेन मे प्रियाः ॥२१
 इत्यं भूता भोजका या भाष्मासे च सप्तमी । पुष्पाणां करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् ॥२२

जानने वाला, वीर ! ये ममी भोजक मेरी पूजा करने में असमर्थ होते हैं । मेरे प्रिय भोजकों को खगश्चेष्ठ ! सावधान होकर सुनो । १-१०। देव, द्विज, एवं मनुष्यों की पूजा करने वाला भोजक मुझे सदैव प्रिय है, वे ही सूर्य की पूजा करने में समर्थ हैं । १। जिनके शिर सदैव मुण्डित, अभ्यंग युक्त शेषर होकर शंख की ध्वनि करते हैं, वे मेरे संमति से दिव्य भोजक हैं । १२। तीनों काल में स्नान पूर्वक क्रोधहीन हो जो मेरी नित्य पूजा करते हैं, खगश्चेष्ठ ! वे भोजक, मुझे प्रिय हैं । मेरे दिन षष्ठी में या संक्रान्ति के दिन नक्त व्रत तथा सप्तमी में उपवास करने वाले भोजक ब्राह्मणों को दिव्य एवं मेरा प्रिय समझना चाहिए । गरुडाग्रज ! जो मेरे भक्त, मत्परायण होकर ब्राह्मणों की पूजा करते हैं, वे मुझे नित्य प्रिय हैं । १३-१५। जो मुझ में भक्ति नहीं रखते ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते एवं मुझसे सदैव द्वेष रखते हैं वे पूजा करने के अयोग्य तथा अवंदनीय हैं । १६। गरुडाग्रज ! जो भोजक पितृ, देव, मनुष्यों की पूजा के लिए महान् यज्ञों का आरम्भ करते हैं, वीर वे मुझे सदैव प्रिय हैं, तथा वे उत्तम भोजक कहे जाते हैं । इसलिए पाँचों यज्ञों के आरम्भ के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । १७-१८। कश्यपात्मज ! एकाहारी, एवं रात में भोजन न करने वाला भोजक मुझे प्रिय है । १९। वीर ! केशव ! मेरे दिन, एवं षष्ठी में रात को भोजन न करने वाला मग, मुझे प्रिय है । २०। गरुडाग्रज ! जो भोजक प्रतिवर्ष, मातृ-पितृ के दिनों में उन्हें भक्ष्य आदि प्रदान नहीं करते हैं, वे मुझे प्रिय नहीं है । २१। इस भाँति के भोजक जो माघ मास की सप्तमी तिथि में करवीर के पुष्प, रक्तचन्दन, ब्राह्मण द्वारा कथा श्रवण, नैवेद्य मोदक, धी की आहुति, गुग्गुल की धूप, क्षीर

१. ये चाम्बृद्गमान्स्तु ये च सत्यविवर्जिताः ।

वाचको बाह्यनानां तु नैरेद्यं भोजकास्तथा । धृताकृत्यो गुगुलश्च शीरेण स्वयं लक्ष्य ॥२३
बाधानां श॒खशन्दश्च नृत्यं नाटयं यतं यथः । अङ्गवर्णा यताकास्तु श्वेतं छत्रं च से प्रियम् ॥२४
नृत्यवर्णः कृता पूजा तथा श्रीभासि मां खग । यथा कृता भोजके ज पूजा श्रीभासि मां लक्ष्य ॥
नाट्यदेवप्रतिष्ठा तु कर्त्तया भोजकेन तु ॥२५

वासुदेव उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्देवश्चालय पुरानघ । लक्षणं भोजकानां तु ततो भेदमशङ्कमत् ॥२६
एदं भोज्या भोजकास्तु न चाभोज्याः कदाचन । अनुष्ठानेकीर्तना ये न हैं भोज्यास्तु भोजकाः ॥२७
श्रीमात्मतु भास्यणा ये तु अनुष्ठानविर्वर्जिताः । तेऽप्यस्त्रज्या भवत्तीह विर्वर्जया विरोधतः ॥२८
नास्ति पूज्यतमं किञ्चन्नाइत्यत्यं पावनं लक्ष्य । चकुर्णीष्विह वर्णानां मुक्त्वा भोजकमुत्तमम् ॥
पूजिते भोजके वीर आदित्यः पूजितो भवेत् ॥२९
भुज्यते पर्य वै गेहे भोजका यदुनवन् । तस्य पूज्यते स्वयं भाद्रुर्जहा विष्णुस्तथा शिवः ॥३०
यथेह सर्वतस्त्वानां प्रधानतदे लितो रक्षिः । एतेह सर्वायुक्तानां भोजकः युज्य उक्तव्ये ॥३१
तीर्थानां तु कुरुक्षेत्रं दर्शनं सापरो यथा । तथा पूज्यतमो नृदः पूज्यानां भोजको विनो ॥३२
विशेषेण च सौराणां भोजकः पूज्य उक्षये । अर्ता पूज्यो यथा स्त्रीणां शिष्याणां च देखा गृहः ॥
भोजकस्तु तथा पूज्यः सौराणां हृदिकाशमज् ॥३३

का स्नान, वाद्यों तथा शंख की ध्वनि, नृत्य, गान पाँच रंग की पताका और आत्म प्रिय हैं श्वेत छत्र के प्रदान पूर्वक मेरी पूजा करने वाले हैं, मुझे अन्यन्त प्रिय है। आकाश गमन करने वाले! अन्य वर्ण के मनुष्यों द्वारा की गई पूजा से मुझे उत्तमी प्रसन्नता नहीं होती है, जितनी कि मैं शैव की गई श्रीअंबक की पूजा से। इसलिए भोजक को चाहिए कि किसी अन्य देव की प्रतिष्ठा न करें। २२-२५

वासुदेव ने कहा—अनघ ! भगवान् सूर्य देव इस प्रकार भोजकों के लक्षण अरुण से कहते हुए भेद पर पहुँच गये । २६। इसी प्रकार के भोजकों को भोज्य (भोजन करने वोग्य) जानना चाहिए, इन्हें कभी भी उससे वंचित न रखे । अनुष्ठान हीन भोजकों को भोज्य न समझना चाहिए । भूमि निवासी ब्राह्मण यदि अनुष्ठान अपने (नियमित धार्मिक कार्य) न करता रहे तो वह भी अभोज्य है, यदि अपने कर्म के त्याग कर द्युरे कर्म को करता है तो उसका विशेषकर त्याग करना चाहिए । २७-२८। चारों वर्णों के लिए एक मात्र उत्तम भोजन के अतिरिक्त अन्य कोई भी मांगलिक, पवित्र करने वाला एवं पूज्यतम (अत्यन्त पूजा करने के योग्य) किसी अंश में सम्भव नहीं है । वीर ! भोजक की पूजा करने पर सूर्य स्वयं पूजित हो जाते हैं । २९। यदुनन्दन ! जिसके धर में भोजक को भोजन कराया जाता है उसके यहाँ सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव स्वयं भोजन करते हैं । जिस प्रकार यहाँ सभी प्राणियों के प्रधान देव सूर्य हैं, उसी प्रकार यहाँ सभी जीवों के पूज्य भोजक बताये जाते हैं । ३०-३१। तीर्थों में कुरुक्षेत्र एवं जलाशयों में सागर जिस प्रकार पूज्य है उसी भाँति विश्वो ! पूज्य लोगों में भोजक को अत्यन्त पूज्य समझना चाहिए । ३२। विशेषकर सौर (सूर्य भक्त) के पूज्य भोजक कहे जाते हैं । जिस प्रकार स्त्रियों के पूज्य पति महादेव, और शिष्यों के गुरुवर्य पूज्य हैं उसी भाँति हृदिकाशमज ! सौर

यस्य नुश्कते भोजकस्तु गन्धपुष्पादिनार्चितः । तस्य भुश्कते स्वयं भानुः पितरो देवतास्तथा ॥३४
एवं पूज्यास्तथा नोज्या भोजक हृदिकात्मज । ये सौरा भोजकस्यान्म भुञ्जते निर्विकल्पतः ॥

ते सर्वे पापनिर्मुक्ता यान्ति सूर्यसलोकताम् ॥३५

कथितो यत्र यो भोज्यो यदा भोज्यः स वर्जितः । अथ कि बहुनोक्तेन श्रूयतां वचनं मम ॥३६
नास्ति वेदात्परं शास्त्रं नास्ति गड्गासमा सरित् । अद्यमेधसमं पुण्यं नास्ति पुत्रसमं सुखम् ॥३७

नास्ति भानुसमो देवो नास्ति भातृसदा गतिः । यथैतानि हस्तलानि उत्तमानि यदूत्तम ॥
तथोत्तमे भोजकस्तु सम्प्रोक्ते भास्करेण तु ॥३८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मणे पर्वणि सप्तनीकल्पे साम्बोद्धास्याने भोजकलज्ञणदर्शनं
नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः । १४७।

अथाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कालचक्रवर्णनम्

सुमन्तुरुदाच

अथ साम्बो भग्नतेजा दृष्ट्वा चक्रं पितुः करे । ज्वालामालाकरालं तु स्फुता तेजसान्वितम् ॥१
प्रपञ्च पितरं साम्बो भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । कुतस्तात त्वया प्राप्तं चक्रमादित्यसन्धिभम् ॥२

लोगों के पूज्य भोजक बताये गये हैं । जिसके यहाँ गन्ध एवं पुष्पादि से पूजित होकर भोजक भोजन करता है, उसके यहाँ सूर्य, पितृगण, एवं देवता लोग भोजन करते हैं । ३३-३४। हृदिकात्मज (प्रियपुत्र) इस प्रकार के भोजक पूज्य एवं भोज्य हैं जो सौर लोग भोजकों के अन्न का स्वच्छन्द होकर भोजन करते हैं, पाप मुक्त होकर सूर्य लोक को जाते हैं । इस प्रकार जो भोज्य हैं, और भोजन कराने में जिसका त्याग करना चाहिए, सभी कुछ बता दिया गया । इस विषय में अधिक क्या कहूँ । मेरी बात सुनो वेद से परे शास्त्र, मंत्र के समान नदी, अश्वमेध के समान पुण्यकार्य, पुत्र प्राप्ति के समान सुख, सूर्य के समान देव, माता के समान गति, अन्य कोई नहीं है । यदूत्तम ! जिस प्रकार ये समस्त उत्तम बताये गये हैं उसी प्रकार भास्कर ने भोजकों को उत्तम बताया है । ३५-३८

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मणपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोद्धास्यान में भोजक लक्षण वर्णन
नामक एक सौ सैंतालिसवाँ अध्याय समाप्त । १४७।

अध्याय १४८

कालचक्र का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—इसके उपरांत महातेजस्वी साम्ब ने अपने पिता के हांथ में प्रज्वलित ज्वाला की भाति किरणों से भीषण एवं अत्यन्त तेज से आच्छन्न उस चक्र को देखकर श्रद्धा भक्ति पूर्वक अपने पिता से पूँछा—हे तात ! सूर्य की भाँति इस चक्र को आपने कहाँ से प्राप्त किया है । १-२। हे देव ! दिव्य एवं ऐसे

किमर्दं वहते देव विष्णवायुधसुत्तमम् । एतदाख्याहि मे सर्वं श्रोतुकामस्य^१ श्रोतुकात् ॥३

वासुदेव उवाच

साधुसाधु^२ महाबाहो साधु पृष्ठोऽस्म्यहं त्वया । भृणुष्वैकमनाः पुत्रं चक्रस्य विधिनिर्णयम् ॥४
दिव्यं चर्वसहस्रं तु भानुमाराय्य अद्यथ । ग्रानं चक्रं भया तस्माद्वास्कराज्ञोकपूजितात् ॥५
नभोगः षड्द्वकाङ्गः स्थितः साक्षात्दिवाकरः । प्रहाः सोमादयो वस्य संस्थिता नाभिमण्डते ॥६
अविद्या द्वावश समा अरेषु क्षमशस्त्राय । प्रोत्तं पथिषु तन्वानि पृथिव्यादीनि यानि वै ॥७
एतेस्तत्त्वैः परिव्याप्तं चक्रं कालात्मकं परम् । संभेषाते भयाख्यातं दत्तं चक्रभिवापतम् ॥८

साम्ब उवाच

कथं कालमयं देव चक्रं कमलमुच्यते । इदं तावन्ममाचक्ष्य श्रातुमिच्छामि तत्त्वतः ॥९

वासुदेव उवाच

कमलं हृतुभिः षड्भिः षट्दलं चाक्षयाश्रितम् । पुरुषाधिष्ठितं तद्वित्रत्र साइगो रविः स्थितः ॥१०
यच्च कालत्रयं सोके तश्चाभित्रयमुच्यते । मासा अरा महाबाहो पक्षाश्च प्रधयः स्मृताः ॥११
नेमी चैव परे प्रोक्ते अयने दक्षिणोत्तरे : पथिनाभिषु योगे च योगाख्यास्तपनादिभिः ॥१२

उत्तम अस्त्र को आप क्यों धारण किये रहते हैं । इसे जानने के लिए मुझे महान् कौतूहल है, आप इन सभी बातों को बताने की कृपा करें । ३

वासुदेव बोले—महाबाहो ! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, जो तुमने इस प्रकार का उत्तम प्रश्न मुझसे किया, पुत्र ! मावधान होकर चक्र की प्राप्ति सुनो ! सहस्र दिव्य वर्ष सूर्य की आराधना करने के पश्चात् मैंने लोक पूजित सूर्य से इस चक्र की प्राप्ति की है । ४-५। आकाश में स्थित होने पर इस पाँच अंग दारे (चक्र) को देखने पर यही होता है कि साक्षात् दिवाकर ही स्थित हैं । इसके नाभिमण्डल (नाभि और नाभि के मध्य वाले भाग) में ग्रहगण, एवं लोम आदि स्थित हैं । ६। बारह आदित्य इसके अरो में क्रमशः स्थित हैं, पृथ्वी आदि (पाँचों) तत्त्व उसके मार्ग में स्थित हैं उन्हीं तत्त्वों से व्याप्ता, काल रूप यह उत्तम चक्र है, संक्षेप से मैंने तुम्हें इसे बता दिया, मैंने तुम्हें एक अन्य चक्र ही प्रदान किया, ऐसा समझो ।

साम्ब ने कहा—हे देव ! यह कमल चक्र काल मय क्यों कहा जाता है, इसे मुझे बताइये, मैं इस तत्त्व को (विधानपूर्वक) जानना चाहता हूँ । ७-९

वासुदेव बोले—छहों ऋतुओं द्वारा अक्षय (अविनाशी) षट्दल में कमल आश्रित है, उस (कमलत्व) में पुरुष प्रतिष्ठित है, वह साङ्घोपांङ्ग सूर्य ही है । १०। लोक प्रसिद्ध तीनों काल उसकी तीन नाभि हैं, महाबाहो ! बारह मास और (आरागज) (मास के) दोनों पक्ष प्रधि (पुत्रियां) बताई गई हैं । ११। दक्षिण एवं उत्तर दोनों अयन नेमि हैं । नक्षत्र, प्रह, सदैव इसमें स्थित रहते हैं, यह चक्र स्थूल,

१. श्रोतुकामश्च ते मुखात् । २. बत्स । ३. अयनादि तथैव हि ।

नलक्राणि प्रहार्त्रेद सरा चात्र स्थितः स्मृतः । एतेष्वान्तमिदं चक्रं स्थूलकूक्षप्रभेदतः ॥१३
अत्रोदिष्टेदु कालेषु ये नोदिष्टा मया तव । युक्तोदिकल्पपर्यन्तास्तेऽपि चात्र स्थितः क्रमात् ॥१४
यते कालात्मकं चक्रमिदं संक्षेपतो मया । कथितं तद्विनिष्ठानान्तं प्रदीप्तात्सूर्यमण्डलात् ॥१५
असुराणां वधायेदं मया लब्धं दिवाकरात् । आदाय चप्तसा सूर्यं पूजा कल्पे जगदगुरुम् ॥
अतः सम्पूज्यदयाम्येन प्रहेन्तर्बुतं रावा ॥१६

अर्कं भूतो हि चक्रस्थं यः पूजयति भर्तुमात् । नेजसा रघिसंकाशः पूजयेत्तरशुरं दग्धेत् ॥१७
तत्पात्रं मत्कुलानन्दं मित्रं सम्पूजयाम्यहम् । गृहैरात्मैर्द्वयं भद्रता स्वरूपैः स्वतं विशुष् ॥१८
सप्तम्यां चक्रमालिल्यं ये यज्ञिति दिवाकरश् । रक्तचक्रसम्पूर्णैः कुंकुमेण सुरांधिना ॥१९
पिष्टग्रन्थादिभिर्दापि रक्तवर्णकमिद्दकोः । रक्तैष्व अवृत्ते पुष्टे अर्द्धैर्देः पूजायिभिः ॥२०
जन्यंवै कुमुमैवन्यैः प्रत्यपैर्जन्त्यग्नितः । अग्नर्मुखितिनिष्ठादैः पुष्टवैद्यतेऽर्द्धैर्यि ॥२१
फलैः पञ्चौरोषधिभिस्तथा द्रवाइकुरं तुऽसौ । धूरीश्च विविधैर्मैत्राद्य वाहैर्ज्ञात्य सूक्ष्मैः ॥२२
मध्यैर्भौद्यैश्च पेयंश्च चोष्यैर्लैट्यैश्च भस्त्रिलः । विवाहैर्देवसारित्यैः वायाद्यैरुद्योगैर्मितैः ॥२३
छत्रचामरघण्टाभिर्मूषणैर्दर्पणादिभिः । नृत्यादिग्रन्थीतेष्व वेदैः पुष्टकादस्यनैः ॥२४
सर्वत्र जययोर्वैश्च सम्पूर्णं पूजयन्ति ये । सम्पूर्णान्विचिदधात्मासामिर्विद्राज्ञामुक्तिं ते ॥२५
स्वचक्रं चापि निविष्टं वृद्धिमायति भुज्ञत । हन्त्यते परचक्रं य वृद्धैर्वृद्ध्यते लक्ष्मत् ॥२६

एवं सूक्ष्म रूप से इनसे व्याप्त है । १३। इसमें जितने भाँति के काल बताये गये हैं, कुछ को मैंने तुम्हें नहीं बताया है, वे सभी पुण्यारम्भ से होकर कल्प पर्यन्त झभशः इसमें स्थित रहते हैं । १४। इस कालात्मक चक्र को जिसे मैंने तुम्हें संक्षेप में बताया था, प्रदीप्त सूर्य मण्डल से निकला हुआ है ऐसा मानो । १५। राक्षसों के वध करने के लिए मैंने दिवाकर से इसे प्राप्त किया है (इसके लिए) पहले कल्प में मैंने जगदगुरु सूर्य की आराधना की थी । यहों एवं तत्त्वों से घिरे हुए इस चक्र की इसीलिए मैं पूजा करता हूँ । १६। जो भूत चक्रस्थं सूर्य की आराधना करता है, वह रवि के समान तेजस्वी होकर पुष्पोत्तरपुर की प्राप्ति करता है । १७। अतः मेरे कुल के लिए आनन्द प्रदान करने वाले विभु मित्र (सूर्य) की, जो यह, एवं तत्त्वों से आवृत हैं, भूति पूर्वक अपने मंत्र द्वारा निरंतर पूजा करता हूँ । १८। सप्तमी तिथि में रक्तचन्दनं, कुंकुम से इस चक्र का लेखन निर्माण करके जो दिवाकर की पूजा करता है, एवं लाल रंग मिश्रित सुगम्भित पूर्ण, रक्त कमल, सूर्यांधित कनेर पुष्प, अथवा जंगली पुष्पों, लाल (लाह) को छोड़कर नवीन, ताजे, सौन्दर्य पूर्ण, शुभ दलों, के पके फलों, औषधियों, दुर्वाएँ, कुशों, भाँति-भाँति की धूपों, वस्त्रों, आभूषणों, भक्षण पदार्थों, पीने, एवं स्वादिष्ट कडुकी तथा तिक्त वस्तुओं, अपनी शक्ति के अनुसार उज्ज्वल शुभ वितान (चाँदनी), जो पलाशों से विभूषित हो, छत्र, चामर, घटा, भूषणों दर्पण, नृत्य, वाद्य, गायन, वेदव्याप्ति, पुष्य कथाओं, सर्वत्र जय जयकार के शब्दों से परिपूर्ण, इन सामग्रियों द्वारा जो उनकी पूजा करते हैं, वे अपनी समस्त कामनायें निर्विघ्न समाप्त करते हैं । १९-२५। सुव्रत ! अपने चक्र की भी निर्विघ्न वृद्धि होती है । इसकी एक बार पूजा करने से ही व्यक्ति दूसरे के चक्र का नाश कर सकता है । २६। साम्ब ! संक्रान्ति के दिन अथवा

सङ्कान्ती ग्रहणे चापि लित्वित्वा यो जपेदिदभ् । भवन्ति निगताः साम्बूत्स्य सानुग्रहा ग्रहाः ॥२७
 सर्वरेगविहीनस्तु सर्वदुखविवर्जितः । चिरं जीवति धर्मात्मा सर्वधर्यसमन्वितः ॥२८
 एष वै कथितो वत्स चक्रयोगो मया तव । अर्कस्य सर्वज्ञानां श्रेष्ठं सिद्धिप्रदो भृशम् ॥२९
 पुण्यो धर्मस्तथा पुष्ट्यः शत्रुघ्नविशेषतः । इवेतो रक्तोऽथ पीतश्च कृष्णत्रापि विभागशः ॥३०
 हृति श्रीभविष्ये महापुराणे खाहे पर्वति सप्तमीकल्पे साम्बोपाल्याने कालचक्रवर्णनं
 नामाष्टचत्वारिंशदीधिकशततमोऽध्यायः । १४८।

इष्टैकोनपच्चाशदीधिकशततमोऽध्यायः

भूर्यदीक्षावर्णनम्

साम्बूत्वाच

कि प्रमाणं लित्वेच्छां तत्र पदम् च कि भवेत् । नेमिप्रधारनाभीनां विभागः क्रियते कथम् ॥१
 वासुदेव उवाच

चतुषष्टाङ्गुलं चक्रं कृत्वा वृत्तं प्रमाणतः । अष्टाङ्गुला भवेत्रेवः सेयं विभवतः सदा ॥२
 नामिषोत्रं तथैव स्थापयं तत्त्वाङुणं भवेत् । अरक्षेत्रं च पश्चत्य कर्णिकाकेसराणि च ॥३
 केसरस्त्वा च पादेन शेषपश्चाणि कल्पयेत् । पत्रसन्धिश्च पादाङ्गम् कमातत्रापि भिद्यते ॥४

ग्रहण काल में इसे (यन्त्र रूप में) लिखकर जो पूजन करता है, उसके सभी ग्रह अनुकूल रहते हैं । २७।
 समस्त रेण से शून्य, एवं सभी दुःखों से हीन होकर वह धर्मात्मा समस्त ऐश्वर्यों समेत चिरकाल का जीवन
 आप्न करता है । २८। वत्स ! मैंने तुम्हें इस चक्र रूप योग की व्याख्या बता दीं सूर्य के सभी यज्ञों में श्रेष्ठ
 एवं अत्यन्त सिद्धिप्रद, पुण्य, धार्मिक, पुष्टि, विशेषकर शत्रुनाशक तथा श्वेत, रक्त, पीले एवं काले रंग का
 है । २९-३०

श्रीभविष्य महापुराण में वाहूपर्व के सप्तमी कल्प में साम्बोपाल्यान में कालचक्र वर्णन
 नामक एक सौ अड़तालिसवाँ अध्याय समाप्त । १४८।

अध्याय १४९

सूर्यदीक्षा का वर्णन

सांब ने कहा—कितने बड़े आकार का चक्र लिखना चाहिए, उसमें कमल कौन होगा, नेमि, प्रधि
 (अर (आरागज) और नाभि का विभाग कमशः कैसे किया जायगा । १

वासुदेव बोले—चौसठ अंगुल के गोलाकार सूर्य चक्र की जिसमें आठ अंगुल की नेमि सदैव स्थित
 रहती है, रचना करनी चाहिए उसी भाँति नाभि का स्थान बनाये, उससे तिगुने आकार का पद्म होता है,
 कमल की कर्णिका (दलों) के केसर का स्थान अर का क्षेत्र बताया जाया है, केसर के (पाद) द्वारा
 शेष पत्तों की रचना करे, पत्तों की संधियाँ, पादाङ्गम् कमशः पृथक् पृथक् करके नाभि द्वारा कमल को

उन्नतं कमलं ततु कुर्यान्तास्यां न संशयः । आकीर्णः संविभस्ताश्र उर्तस्यः प्रधयः क्रमात् ॥५
 अद्गुलस्थूलमूलं स्यादराघं त्रिगुणं ततः । श्रुमि: पीता वर्हिजेया कर्णिकाकेसराणि च ॥६
 सितं नाभिस्थलं तत्र द्वाराणि परिकल्पयेत् । हस्तमात्रं भवेत्स्य तन्मालं द्वारसन्निभम् ॥७
 शेषं रक्तं समुद्दिष्टं संहताः पञ्चसन्धयः । नाभिनेत्यन्तरे लेखाः सितान्नाइगुलभान्तः ॥८
 सितरक्तसिताभिश्च समन्तादुपरतोभितम् । कपोलं द्वारपर्यं च द्वारकोने प्रकल्पयेत् ॥९
 चतुर्द्वारं भवेदेवमैन्द्रद्वारं प्रकल्पयेत् । अपराह्नेऽथ पूर्वाह्ने वरणमावाह्नेत्सदा ॥१०
 द्वारान्तेतानि संवर्त्य यथोत्तरविधिना यजेत् । यथोत्ता देवताः सर्वाः स्वमन्त्रैरेव भक्तिः ॥११
 चक्रमेवं समुद्दिष्टं यजनार्थं मया तव । यजेनानेन सम्बद्धो दीक्षितवचर्कमण्डलं ॥
 इत्यं मे भानुना पूर्वमिदमुक्तं दरानन ॥१२

साम्ब उवाच

के भन्नाश्रक्यज्ञेऽस्मिन्देवतानां प्रकीर्तिताः । यज्ञक्रमश्च कः प्रोक्तो रूपं किं च पृथक्कृशक् ॥१३

वासुदेव उवाच

सपोलं हृदयाध्यक्षं पूर्वोत्ते कमले यजेत् । कर्णिकायां दलेष्वेवमङ्गानि हृदयादि च ॥१४
 नाममन्नाश्रतुर्यथात्सतेषां पूर्वोत्तकोटयः । नमस्कारश्च सर्वत्र एष एव विधिः ततृः ॥१५

उन्नत करे, पूनः उसमें क्रमशः प्रधियाँ (पट्टियाँ) लगाये, जो पृथक्-पृथक् चारों ओर से ऐर कर स्थित रहती हैं, अंगुल का स्थूल मूल भाग अर का क्षेत्र बताया गया है, जो उस तिगुने आकार का है, कर्णिका के केसर, उसकी पीले रंग की बाहरी भूमि है, श्वेत (कमल) नाभि स्थल है, वहाँ द्वार की बन्धना करनी चाहिए, एक हाथ का लम्बा चौड़ा द्वार बनदाना चाहिए, जो दरवाजे के तापान होता है, शेष रक्त (कमल) द्वारा पत्तों की संधियाँ बनानी चाहिए, नाभि और नेमि के अन्तर की रेखा श्वेत वर्ण की एक अंगुल की होनी चाहिए । वह भी श्वेत, रक्त एवं काले कमलों द्वारा जो उसे चारों ओर से सौन्दर्य पूर्ण करे । कपोल और द्वारकमल को द्वार कोने में कल्पित करे । १-९। इस प्रकार चार दरवाजे होते हैं, उसमें इन्द्र के दरवाजे की भी कल्पना करनी चाहिए । पूर्वाह्नि एवं अपराह्नि काल में सदैव वरण का आवाहन करे । १०। इतने दरवाजों की कल्पना करके विधान पूर्वक उसकी पूजा करे, उसमें जितने देव स्थित हैं, भक्ति पूर्वक उन्हीं के मंत्रों द्वारा (आवाहन पूजन) करे । मैंने तुम्हारे पूजन के लिए इस चक्र का निर्माण विधान बता दिया, जिससे इस यज्ञ द्वारा सूर्य मण्डल से तुम्हारा संबंध एवं तुम्हारी दीक्षा भी हो गई, वरानन ! इस प्रकार सूर्य ने मुझसे पहले (समय) में कहा था । ११-१२

साम्ब ने कहा—इस चक्र रूपी यज्ञ में देवताओं के कौन-कौन मंत्र, यज्ञ का क्रम और उनके पृथक् पृथक् रूप क्या है ? । १३

वासुदेव बोले—‘सपोलं हृदयाध्यक्षं’ आदि मंत्र द्वारा जो पहले बता दिया गया है, कमल तथा कर्णिका में स्थित दलों में, अंग एवं हृदय आदि की पूजा करे । उनके नाम मंत्र का भस्त्रत व्याकरण के अनुसार चतुर्यन्त का क्रमशः प्रयोग करे । नमस्कार के लिए भी यही विधान सर्वत्र बताया गया है । १४-१५।

स्वाहान्ता होनकाले च कर्मस्वदन्येषु ते पुनः । यथा कर्मवस्तनाभ्र प्रयोक्तव्याः समासतः ॥१६
 ३३ खण्डोल्काय विश्वहे दिवाकराय धीमहि । तत्रः सूर्यः प्रचोदयात् ॥१७
 सावधी च महाबाहो चतुर्विंशताक्षरा भता । सर्वतत्त्वमग्नयो पुण्या ब्रह्मगोत्रार्कवत्तभा ॥१८
 एवं मन्त्राः प्रयोक्तव्याः सर्वकर्मस्वतदिद्वितैः । अन्यथा विफलं कर्म भवेदिह परत्र च ॥१९
 तत्सात्सर्वप्रथत्तेन मन्त्राऽन्तत्वा विधि तथाः । यथावत्कर्म तत्कृत्वा साधयेदीप्तिं फलम् ॥२०

साम्ब उवाच

आदित्यमण्डले दीक्षा कस्य कार्या कथं च सा । कठा केन किमर्य च कथयेदं मनासितम् ॥२१

दासुदेव उवाच

ज्ञाहृणं क्षत्रियं वैश्यं कुलीनं शूद्रमेव च । पुरुषं दा स्त्रियं वापि दीक्षयेत्सूर्यमण्डले ॥२२
 स्वयं भक्त्योपपन्नश्च प्रणिपत्य गुरुं तथा । गुरुस्तं दीक्षयेद्विष्रः कल्पजः सत्यवाक्षुद्धिः ॥२३
 बल्लघायश्चिं स्माधाय पूर्वोल्लविधिना क्रमात् । सम्भूज्यार्कं तथा चहौ द्रुत्वा वै हविषा रविम् ॥२४
 शिष्यं स्नातमथाचान्तं खण्डोल्काकृतिविग्रहम् । स्वाङ्गौरात्मन्य चाङ्गेषु दर्भवद्विस्तथाक्षतैः ॥२५
 पुरुषैः सम्पूज्य चाङ्गानि देयः कार्यो वलिस्तथाः आदित्यो वरणोऽकोऽप्तिः साधितो हृदयेन च ॥२६
 भवेद् धृतगुडक्षीरैस्तन्दुलैश्च^३ प्रमाणतः । त्रिभिरञ्जलिभिर्हृत्वा देवायाप्नौ हुतं पुनः ॥२७

हवन के समय चतुर्थन्त नाम के अन्त में स्वाहा तथा अन्य कर्मों में स्वाहा छोड़कर वैसा ही प्रयोग करें । शीध कर्मों की समाप्ति के लिए सब के नाम को एक साथ उच्चारण कर अन्त में चतुर्थन्त उच्चारण करें । 'ओं खण्डोल्काय विश्वहे दिवाकराय धीमहि तत्रः सूर्यः प्रचोदयात्' यही मंत्र है । १६-१७ महाबाहो ! सावधी (गायत्री) चौबीस अक्षर की होती है, जो सर्वतत्त्वमय, पुण्यरूप, एवं ब्रह्म गोत्री सूर्य की अत्यन्त प्रिय है । १८। इर प्रकार सभी कर्मों में सावधान होकर मंत्रों का प्रदेश करना चाहिए, अन्यथा उसके लोक परलोक संबंधी सभी कर्म व्यर्थ हैं इसलिए प्रयत्न पूर्वक मंत्रों एवं विधानों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर यथोचित कर्म की समाप्ति करके अपनी अभिलाषा की पूर्ति करनी चाहिए ।

साम्ब ने कहा—सूर्य मण्डल में किसकी दीक्षा होनी चाहिए, और किस प्रकार, कब, किसके द्वारा तथा किस लिए ? मुझे इन सभी बातों को बताइये । १९-२१

वासुदेव बोले—सूर्य मण्डल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, एवं कुलीन शूद्र तथा स्त्रियाँ दीक्षित होती हैं । २२। स्वयं भक्तिपूर्वक वहाँ पहुँच कर गुह को नमस्कार करे, पश्चात् कल्प का ज्ञाता, सत्यवादी, पवित्र, वह ब्राह्मण गुरु उसे दीक्षा प्रदान करे । २३। ऐसी में अग्नि के स्यापन पूर्वक क्रमशः पूर्वोक्त विधान द्वारा सूर्य की पूजा करनेके उपरांत अग्नि में सूर्य के उद्देश्य से धी की आहृति डाले । २४। स्नान एवं आचमन शिष्य को कराकर जिसकी आकृति खण्डोल्क के समान रहती है, अंगालम्भन कर पुनः उसके उपरांत कुश अक्षत, एवं पुष्पों द्वारा अंगों की पूजा करके बलि प्रदान करे । आदित्य, वरुण, एवं सूर्यलूपी अग्नि को हृदय से साधन संपन्न करके धी, गुड, क्षीर, चावल, इन्हें प्रमाणानुसार एक में मिलाकर सूर्य के

१. दधिधृतक्षीरः ।

दत्त्वा शिष्टाय मुक्त्वैवं दत्त्वान्ते दत्तधावनम् । कीरं बृहोदूर्चं तत्मै द्वादशाइगुलसश्निभम् ॥२८
 दत्तश्निष्टेष्टनीते च तेन प्राच्यां किरेत्ततः । दत्तधावनमाच्यां च तदा दत्त्योषरि शिष्टेत् ॥२९
 मैत्रावारुणमीशानं बकं सौम्यसमाप्तितम् । प्रशस्तं दत्तकालस्य मुखमन्त्र निन्दितम् ॥३०
 यां विशं दत्तकाष्टस्य मुखं पश्यति तत्पतितम् । अर्चयेतेन शांतिः स्यादित्युक्तं भानुनां स्वयम् ॥३१
 पुनस्तद्वचनं शुत्वा अङ्गेरालस्य न क्षमात् । सम्पूर्ज्य लोचने तत्र सञ्ज्ञितय दरिजप्य च ॥३२
 कृदिष्टिर च सङ्कल्प्य तथा चेन्द्रिदसंयमम् । स्वापयेत इदयं चापि दरं शुत्वा समाहितः ॥३३
 आच्य कृतरक्षस्तु कृतद्व्याधिवासनः । हृदयेन नमेत्त्रातः ऋत्या हुत्वा हुताशनम् ॥३४
 स्वप्नं धृक्षेयथा दृष्टं शुभं संकाशयच्च तथ् । हृदयेनामुने दृष्टे शतहौर्मं समाचरेत् ॥३५
 स्वप्ने पश्यति हर्म्याणि देवतानां हुताशनम् । नदीयात्तानि रम्याणि उच्चानोपवनानि च ॥३६
 एवमुष्टदक्षादृशानि कमलानि च राजतम् । सम्पश्यति यदि स्वप्ने ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥३७
 राजानं शीर्यसम्पन्नं धनादर्थं क्षत्रियोत्तमम् । शुश्रूषणपरं शूद्रं यदि हत्यार्थमादिरोत् ॥३८
 प्रशस्तं प्राप्तवर्णं चैव यथासम्भवतो मतम् । एतैः स्पृशनमेत्यां श्रेष्ठमारोहणं ततः ॥३९
 वाहनानि प्रशस्तानि प्राप्तादं नावमेव च । पर्ति च समारुद्धा विपुला भार्गवैः भजेत् ॥४०
 पीत्वा सुरां समुद्रं च वध्याज्यं क्षीरसेव च । सोमं मांसं हर्विर्भुक्त्वा काइथपीं लभते नरः ॥४१
 स्त्रिया वस्त्राणि रत्नानि विविधाभरणानि च । वाहनानि महीं गाश्रं धान्योपकरणानि च ॥४२

उद्देश्य से तीन अंजलि पुनः अग्नि में डाले । २५-२७। शिष्ट को इस विधान के उपरात दंतधावन (दातून) करने के लिए मुक्त करे । उसे (दातून को) किमी क्षीर वाले वृक्ष की बारह अंगुल की होनी चाहिए । दौतों को साफ कर उसे पूर्व की ओर त्याग दे दातून एवं सभी मुख से निकले अशुद्ध पदार्थों का उसी स्थान पर त्याग करना चाहिए । २८-२९। मैत्रावरुण, ईशान-तथा सौम्य का चक्र (मुख) उत्तम बताया गया है, उसी दातून करने वाले का मुख प्रशस्त बताया गया है, उससे भिन्न वाले का मुख निंदित है । ३०। दंतधावन करने वाला जिस दिशा की ओर देखता है, तो उस दिशा के स्वामी पूजित होते हैं, उससे शांति प्राप्त होती है, इसे सूर्य ने स्वयं बताया है । ३१। पुनः गुरुवाणी सुनकर अंगों का आलम्भन करे, पश्चात् नेत्र की पूजा, एवं जप करके संकल्प पूर्दक इंद्रिय संयम के उपरात स्वयं ध्यान मग्न हो शयन करे । प्रातः काल उठकर आचमन, एवं आत्मरक्षा पूर्वक सामग्री संचित करके स्नान-हवन करने के उपरात हृदय से नमस्कार करे । ३२-३४। पूछने पर देखे हुए शुभ स्वप्न को बताये उसके संबंध में बात भी करे । यदि अशुभ स्वप्न देखे तो सी आहुति हवन करे । ३५। स्वप्न में गृह, अग्नि, देव, नदी, नौका, सुन्दर वाटिका जिसमें पते, पुष्प, एवं फूल भरे पड़े हों, सुशोभित कमल, स्वप्न में यदि वेद पारगामी विद्वान्, घूरता संपन्न राजा, जो धनी, एवं क्षत्रिय जाति का हो, सेवा करने वाले शूद्र को उपदेश करना, सुन्दर भाषण इनके स्वर्ण, इनके ऊपर आरोहण करना, प्रशस्त यान (सवारी), प्राप्ताद, नौका, अथवा पर्वत पर चढ़ना, मध्यपान, समुद्र-पान, दही धो, क्षीर, सोम, मांस अथवा हवि के भक्षण, इन्हें स्वप्न में देखने से विपुल पृथिवी की प्राप्ति होती है । ३६-४१। तथा वस्त्रों, रत्नों भार्ति-भाँति के आभूषणों अनेक वाहन, मही, गौ, अग्नि, की प्राप्तिपूर्वक समृद्धिशाली होता है । ऐसे स्वप्नों को देखना शुभ होता है इस प्रकार शुभ

समृद्धिमाभ्युयात्किञ्चित्स्वप्नतां नर्शनं शुभम् । शुभकर्मनुगो यच्च तत्सर्वं शुभमुच्यते ॥४३
 लस्यादन्वदनिष्टं स्थानस्माहुला प्रतिक्रिया : क्रमादालित्य सप्तम्यां तत्र सम्पूज्य भास्करम् ॥४४
 तर्पयित्वा द्विजान्निष्ठाप्तानामद्य पूषेष्टुगुरुम् । सृष्टिकरणं मृत्युर्य मुक्त्यर्थं नान्यथा भवेत् ॥४५
 दिक्षाकरं समालभ्य पुरुषेऽथ व्यथाकरम् । सर्वग्रहेषु तत्त्वेषु यथावत्तस्योज्येत् ॥४६
 विशुद्धेषु विशुद्धं तं प्रगत्वा । लादित्यवक्तव्याद् । व्याप्तिरेत्यव्याश्र ततः प्रभृति सर्वशः ॥४७
 लादित्यमण्डलं शुभं सर्वभुक्तं लिङ्गेज्येत् । एवं तु भवता व्याप्त्या जुहुयाच्चैव तं शतम् ॥४८
 तदैर्दीन्द्रियैः क्रमादेवं दीक्षा व्रीत्यर्थं व्यथाकरम् । क्रत्यैव पूष्यपातं तु नस्मिन्नादित्यमण्डले ॥४९
 व्युत्पत्त्यन्यज्ञाने पुरुषं कृत्वा वस्य च भृत्यतद् । क्षेपेत् तु लशुद्धर्थं नामार्थं च विशेषतः ॥५०
 यत्र तत्पतितं पुष्यं तत्थ तत्कुसामादिशेत् । नाम चादित्यसंयुक्तमित्युलं भानुना स्वयम् ॥५१
 सम्पूज्य श्रावयेत्तत्र समयान्वेष्यादित्याद् , प्रातः सार्वं शाश्वाते रवेरभिमुखः स्थितः ॥५२
 उपस्थानं सदा कुर्यादर्थं च रसाय व्याप्तिः । लशुद्धार्थं च ओक्तव्यं दिवा रात्रौ हुताशनम् ॥५३
 वृद्धाणां भोक्तव्यमकाश्यां च लोकाणां फलाधारं । त च एवां लृशेत्तद्रक्षासनं परिवर्जयेत् ॥५४
 न लक्ष्या प्रतिमाच्छाया च लक्ष्याप्रतिमः इति । लक्ष्याणि अहा योगा मासा मासाधिपाश्रये ॥५५
 अयने क्रत्यवः पक्षास्तथैव दिक्षादित्य च । कालः अन्तस्तरश्चापि यः कश्चित्कालं उच्यते ॥५६

कर्म दिक्षामें हों वे सभी शुभ स्त च लक्ष्य जाते हैं । ४२-४३। उससे अन्य स्वप्न अनिष्ट फलदायक होते हैं, उसकी प्रतिक्रिया करनी आवश्यक होती है, इस व्रीत्यकर क्रमशः उत्तमी में लिखकर सूर्य की पूजा करके शिष्ट वात्याणों की सृष्टि पूर्वक प्रत्येक की भाँति शुद्ध की प्रणाम करें : शुष्टि के क्रम से वह लूसरी भाँति भृत्य कार्य करने अथवा मुक्तत के योग्य नहीं हो सकता है । ४४-४५। शुष्टुप्ति दिनाकर की प्राप्ति करके उन्हें क्रमशः यहों एवं तत्त्वों में स्थापित करे । ४६। विशुद्धों में विशुद्ध शूर्य की भाँति ध्यान कर सभी को क्रमशः पृथिवी में नियुक्त करे, आदित्य मंडल शुद्ध स्वरूप है, उससे सभी को नियुक्त करना चाहिए पश्चात् मानसिक ध्यान पूर्वक सौ, आहुति हवन करे । सभी मंत्रों द्वारा इस उत्तम दीक्षा को मैने बता दिया, इस प्रकार (विधान पूर्वक) करके उस पुष्य को आदित्य मंडल में ऊपर डाल दे मुख बाँधकर अंजलि में पुष्य लेकर उसे अधिमंत्रित कर कुलशुद्धि के लिए विशेषकर नामोच्चारण पूर्वक छोड़ना चाहिए । ४७-५०। जहाँ वह पुष्य गिरे, उसे कुल वात्यों की आदेश दे कि आदित्य युक्त इसका नाम है । ऐसा स्वयं सूर्य ने कहा था । ५१। उसकी पूजा करके सूर्य के कथनामुसार सब लोगों को बताये कि प्रातःकाल, मध्याह्न तथा सायंकाल में सूर्य के सम्मुख स्थित होकर मनुष्य को भौदैव अर्चन एवं उपस्थापन करने चाहिए दिन में बिना सूर्य के दर्शन किये भोजन न करे, रात में अग्नि का दर्शन करके भोजन करना चाहिए । पर, रविवार में किसी भी दशा में भोजन न करे । उसी प्रकार शश्या का भी परित्याग करना चाहिए यहाँ तक कि पैर से भी उसका स्वर्ण न होने पाये । ५२-५४। प्रतिमा (सूर्ति) की छाया का उल्लंघन न करना चाहिए और उसी भाँति तिथियों का भी उल्लंघन निषिद्ध है, लक्ष्य, यह, योग, मास, मासाधिप, (दोनों) अयन, क्रतुर्ग, पक्ष, दिन काल (वर्तमान आदि), धर्ष, एवं यहाँ तक कि काल शब्द में जिसका बोध (ज्ञान) कराया जाए, ये सभी वंदनीय, भक्तिकार वर्तमान योग्य, लक्ष्य पूजनीय हैं । इसीलिए कालाधिप सूर्य स्वयं

अभिवद्यः स सर्वेऽपि नमस्यः पूज्य एव च । तस्मात्कालाधिपः सूर्यः स्वयं कालश्च पठथते ॥५७
 उपोतिर्गत्य सर्वस्य स्यावरस्यादरस्य च । चेतनाचेतत्स्यापि सर्वात्मा यः प्रकीर्तिः ॥५८
 स्तुत्यो वन्द्यः सदा पूज्यस्त्वयायं सर्वथा नृप । मनसा कर्मणा वाचा देवनिन्दां परित्यजेत् ॥५९
 प्रैषित्वा^१ च निर्मात्यं तदभैर्भ्यो निवेदयेत् । प्रक्षाल्य हृत्तौ पादौ च नमस्कुर्याद्विवाकरम् ॥६०
 इत्येषा परमा दीक्षा तव संक्षेपतो मग्नः । भुक्तिमुक्तिकरे चापि क्षयिता प्रविभागतः ॥६१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे आहो वर्षणि सप्तमीकल्पे साम्बोधास्याने सूर्यदीक्षादर्जनं
 नामेऽनपञ्चाशादधिकशततमोऽध्यायः । १४९।

अथ पञ्चाशादधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यपूजादिधिवर्णनम्

वासुदेव उवाच

अतः परं ग्रवक्ष्यामि यथा पूज्यो दिवाकरः । स्याण्डिलं यदुशार्दूलं निवौधेकाप्रमानमः ॥१
 मण्डलैरप्टभिः कार्यं चक्रं कालात्मकं शुभम् । मध्ये पद्माकृतं चक्रमरैद्विशभिर्युतम् ॥२
 तन्मध्ये कमलं प्रोत्तं पत्राष्टकसमन्वितम् । सर्वात्मा सकलो देदः खण्डोलः किरणोज्ज्वलः ॥३

काल (समय) रूप कहे जाते हैं । ५५-५७। ज्योतिर्गण, सभी स्यावर तथा उससे भिन्न सूर्यि वाले, चेतन, एवं अचेतन सभी के आत्मा सूर्य बताये गये हैं । ५८। सूर्य तुम्हारे लिए सर्वथा स्तुति, वंदन, एवं पूजा, करने के योग्य हैं । मन, वाणी, एवं कर्म द्वारा दूसरे की निन्दा करना छोड़ देना चाहिए ? उनके निर्मात्य को उनके अश्वों के लिए निवेदित करे : पञ्चात् हाथ, पैर जा प्रक्षालन पूर्वक सूर्य को नमरक्षार करे । मैंने संक्षेप में तुम्हारे लिए इस उत्तम दीक्षा की व्याख्या की है, जो विभाग द्वारा (सभी भाँति के) उपभोगों एवं गुक्ति को प्रदान करती है । ५९-६१

श्रीभविष्य पुराण में वाहो वर्ष के सप्तमी कल्प के साम्बोधास्यान में सूर्य दीक्षा वर्णन
 नामक एक सौ अङ्गालिसवर्ण अध्याय समाप्त । १४८।

अध्याय १५०

आदित्यपूजा विधि का वर्णन

वासुदेव ने कहा—यदुशार्दूल ! इसके उपरात स्यंडिल (भूमि) में सूर्य की पूजा किस भाँति करनी चाहिए, मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! । १। एक कलात्मक, शुभ, चक्र का निर्माण करना चाहिए जिसमें आठ मण्डल मध्य में कमल की आकृति, और बारह अर पहिये की धुरी और व्यास को मिलाने वाली तीली के समान लकड़िया (आरगज) हों । २। उसके मध्य भाग में बताये गये कमल में आठ पत्ते की रचना होनी चाहिए । महाबाहो ! उसके मध्यभाग में सर्वात्मा, समस्त देवमय, खण्डोल, उज्ज्वल किरण वाले, एवं

१. लंघयित्वा च निर्मात्यं तदात्मानं निवेदयेत् ।

पूजनीयः सदा चथ्ये सहस्रकिरणायुधः । प्रणवेत् महावाहो चतुर्दाहुसमन्वितः ॥४
 अरुणं^१ पूजयेत्प्राज्ञः सदा देवाग्रजं^२ शुभम् । दक्षिणे पूजयेदेवीं निष्ठुभां भास्करस्य तु ॥५
 रेवतं दक्षिणे पाठ्वं उत्तरे पिङ्गलं सदा । संज्ञां च यदुशार्दूलं श्रेयसे सततं बुधः ॥६
 आग्रेष्यां लेखकं वीरं नैऋत्यामृत्यनीभु । वायव्यां पूजयेदेवं मनुं वैवस्ततं दिश्मम् ॥७
 ऐशान्यां पूजयेदेवीं यमुनं लोकावाहनीभु । द्वितीयावरणे वीरं दूर्ततः पूजयेद्विष्ट ॥८
 दक्षिणे च ततो देवीं पश्चिमे गरुडं तथा । उत्तरे नागराजानं पुत्रदेवावतं शुभम् ॥९
 आग्रेष्यां पूजयेद्वेलिं प्रहेलिं नैऋते तथा । वायव्यामुर्वेशीं देवीशीशाने विनतां तथा ॥१०
 तृतीयावरणे पूर्वे पूजयेद्युग्मादरात् । पश्चिमे त्वर्कपुत्रं तु उत्तरे दिष्पं तथा ॥११
 ऐशाने राशिपुत्रं तु सोममात्रेयमण्डले । पूजयेद्विजिणे कोणे नैऋते राहुमादरात् ॥१२
 वायव्ये विकटं वीरं पूजयेत्सततं बुधः । चतुर्थादिवरणे देवं पूजयेल्लेखमादरात् ॥१३
 आग्रेष्ये शाण्डिलीपुत्रं दक्षिणे दक्षिणाधिष्पद् । विरूपाक्षं नैऋते देवं जलेशं पश्चिमे तथा ॥१४
 वायुपुत्रं च वायव्यां सततं पूजयेत्प्रभः । ईशाने देवमीशानं पूजयेत्सततं बुधः ॥१५
 उत्तरे यक्षराजानां कुबेरं पूजयेद्बुधः । पश्चिमे पूजयेद्वीरं सदा स्वावरणे द्विजाः ॥१६
 पूर्वतः परमां देवीं महावेतां महामतिः । श्रियनृदिं विभूतिं च धृतं चैवोन्नति तथा ॥१७

सहस्र किरण रूपी अस्त्र वाले उस सूर्य की, जिसके चार हाँय हों, प्रणव (ओकार) पूर्वक पूजा सुमम्पन्न करनी चाहिए। विद्वानों को चाहिए कि जो शुभ मूर्ति एवं सदा देवों के अग्रज हैं, उस अरुण (वरुण) की भी पूजा सुमम्पन्न करें सूर्य के दक्षिण की ओर स्थित निष्ठुभा देवी की पूजा करनी चाहिए। ३-५। यदुशार्दूल! दक्षिण पाश्वं भग्न में स्थित इवेत, उत्तर पाश्वं में स्थित पिंगल की तथा बुद्धिमानों को चाहिए कि कल्याणार्थं संज्ञा देवी की भी निरंतर पूजा करते रहें। ६। वीर! अग्नि कोण में स्थित लेखक, नैऋत्य में स्थित अश्विनी कुमार, वायव्य में विन्मु एवं वैवस्तत मनु देव और ऐशान्य में लोक को पावन करने वाली यमुना देवी की पूजा बताई गई है। ७-८। दक्षिण में देवी, पश्चिम में गरुड़, उत्तर में शुभ नागराज के पुत्र, ऐरावत, आग्नेय कोण में हेलि (सूर्य) नैऋत्य में प्रहेलि, वायव्य में उर्वशी और ईशान में विनता की पूजा होनी चाहिए। ९-१०। तीसरे कक्ष में पूरब में पूरब की पूजा पश्चिम में सूर्य पुत्र, उत्तर में दिष्पण (बृहस्पति), ईशान में चन्द्रपुत्र (बुध), आग्नेय में चन्द्र, नैऋत्य में सादर राहु, और वायव्य में वक्तव्य (केतु) की पूजा विद्वानों को करनी चाहिए। ११-१२। चौथे कक्ष में सादर लेख देव (विश्वकर्मा) आग्नेय में शाण्डिली पुत्र (अग्नि), दक्षिण में दक्षिणाधिष्पद (यम) नैऋत्य में विरूपाक्षदेव, पश्चिम में वरुण, वायव्य में वायुपुत्र तथा ईशान में ईशान (शिव) और उत्तर में यक्षराज कुबेर की पूजा पण्डितों को करनी चाहिए। वीर! पाँचवें कक्ष में ब्राह्मणों को चाहिए कि अपने आवरण रूप देवों की पूजा करें। बुद्धिमानों को पूरब की ओर से उत्तम महाश्वेता देवी, श्री, कृष्ण, विभूति, धृति, उन्नति, पृथिवी, एवं यदुशार्दूल!

१. वरुणम् । २. सदा वेदानुगं शुभम् । ३. वासुदेवम् ।

भविष्यपुराणम्—ब्राह्मणे

पृथिवीं यदुशार्दूलं महाकीर्ति तथैव च । इन्द्रं दिव्यं जार्यस्तं अग्नं पर्जन्यमेव च ॥१८
दिवस्थन्तं तथाकं च त्वष्टारं किरणोज्ज्यतम् । पूजयेदूरणं पाठे जैवसेतान्विवाकरान् ॥१९
शिरो नेत्रे तथा वर्षे अन्त्रं च यदुसत्तम् । अरुणं सरवं और सप्तमे पूजयेद्युक्तः ॥२०
तथाधान्यदुशार्दूलं सदा चावरणे बुधः । यशरकांसि गन्धर्वाक्षासान्यकानहानि तु ॥२१
संघत्सरं तथा पुच्छं हैतालं पूजयेद्युक्तः । च एवं पूजयेद्युक्तं भास्यते सहतं भरतः ॥
स गच्छेत्परमं स्वाम गत्वा तदा च शोचति ॥२२

(ॐ उद्घोतकाय नमः)

मूलम् श्रावणराजीह चाइणानि परिचयते । अनेन विधिना प्रसु पूजयेत्सततं रथिष् ॥२३
नित्यमुभयसप्तवर्षां स गच्छेत्परमं पथम् । इत्युक्त्वा भगवान्देवो जगाभासु गृहं रथः ॥२४
इति श्रीभविष्ये नहयुरारो ब्राह्मणं पर्वतीं सप्तमीकाये साम्बोधाख्याने आदित्यपूजाविधिवर्णनं
नाम पञ्चाशयविधिकशततमोऽध्यायः ॥१५०।

अथैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

सूत उद्धाच

अथ राजा अहतेजाः शतानको द्विजो तमम् । भ्रजम्य शिरसा अस्त्वा सुमन्तु चाक्षमवधीतु ॥१

महाकीर्ति, इन्द्र, विष्णु अर्यमा, भग्न, पर्जन्य, विष्वदान, उज्ज्वल किरण दाले सूर्य, और वरुण की पूजा करनी चाहिए । छठे कक्ष में भी इन्हीं दिवाकर रूप दवों की पूजा करके यदुसत्तम ! शिर, नेत्र, वर्ष (कवच), अस्त्र, और रथ समेत अरुण की पूजा वीर ! शतवें कक्ष में विद्वानों को करनी चाहिए । १३-२०। यदुशार्दूल ! पंडित को चाहिए कि कक्ष स्थित अश्वों की पूजा करें : पुच्छ यज्ञ, राक्षस, गन्धर्व, भास, पश, दिन, संवत्सर (वर्ष) इन सबको सर्वप्रथम पूजा होनी चाहिए । इस भौति जो भग्नुष्य निरक्तर सूर्य की पूजा करता है, उसे उस स्थान की प्राप्ति होती है, जहाँ पहुँचने पर किसी प्रकार का शोक उत्पन्न नहीं होता है 'ओं सर्वोत्काय नमः' यही मूल मन्त्र है । इन्हीं द्वारा अंगन्यास आदि करना चाहिए इस विधान द्वारा जो मास की दोनों सप्तमी तिथि में सूर्य की अनवरत पूजा करता है, उसे परम पद की प्राप्ति होती है, ऐसा कह कर भगवान् धूर्य देव अपने धर के लिए शीघ्र प्रस्तुत हुए । २१-२४

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मण पर्व के सप्तमी कल्य के साम्बोधाख्यान में आदित्य पूजा विधि वर्णन
नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥१५०।

अध्याय १५१

सौरधर्म कर्तवर्णन

सूत खोलै... इमते उपग्रह भग्नानेजरवी राजा शतानीके जे भक्तिपूर्वक शाहूण शेष मुमभू की

अहो देवस्य माहात्म्यं भास्करस्याभितीजसः । कीर्तिं भवता भवते सर्वपत्रपणाशनश् ॥२
 तस्मान्नार्कसमं देवं लोके पश्यामि सुव्रत । न चायस्य स्थिता विप्र गतिलोकेषु विद्यते ॥३
 प्रवर्तते जगद्विष्र सर्गकाले दिवाकररत । स्थितौ पालयते चापि कल्पन्ति संहरेत्यनः ॥४
 श्रुत्यैवं देवमाहात्म्यं भास्करस्याभितीजसः । कीर्तिं भवता भवते सर्वपत्रपणाशनश् ॥५
 कि तु ऐ संशयो भवन्तुभवन्ति वृद्धते । केवोपायेष विप्रेष्टु वृद्धते सर्वपार्णवात् ॥६
 दिवाकरप्रसादादै भुप्रशापाद्वृष्ट्यवजात् । कथं तु वृद्धसदा ऐवो धर्मण कतरेण तु ॥७
 श्रुतं ये वृद्धो धर्माः श्रुतिस्मृत्युदितात्मत्वाः । वैराग्याः रीढ्यर्थात्क तथा नैराग्याः तुराः ॥८
 श्रोतुकामो हाहं विप्र भौं धर्मणैप्यवृद्ध । मावन्तर्द्यध्यात्मस्ते भौरधर्मपरायनाः ॥९
 भूहि मे देवदेवस्य मानोर्दर्शकनीयमम् । शृण्वतो नास्ति ने तृप्तिरभृतस्यैवमेद च ॥१०
 अश्वमेधादयो यज्ञा वृद्धसम्भारित्यस्तरा । न याक्षास्ते यतः कर्तुंप्रत्यवित्ताद्वृजातिभिः ॥११
 मुखोपायमतो भूहि भूमिकामायासाधकम् । हिताय सर्वभृत्याकां सर्वपापभयप्रहृम् ॥१२
 सौरधर्मपरं पुण्यं पवित्रं प्रपानापादम् । श्रुत्वा तु वचनं राजो व्यासशिष्यो भवामुनिः ॥
 प्रणस्य शिरसा व्यासमिदं वचनसब्दवीत् ॥१३

शिर से नमस्कार करके उनसे कहा—अभित तेज वाले महात्म्या सूर्य देव का भावात्म्य जो समस्त यातों का नाशक है, आपने मुझे दत्ता दिया यह अत्यन्त ईर्ष्य की बात है । १-२। हे लुधत ! इसलिए सूर्य के लालन कोई देव मुझे दिखाई नहीं दे रहा है, और विप्र ! लोकों में इनकी गति कहीं स्थित दिखादी नहीं दे रही है । ३। हे विप्र ! वृष्टि काल में यह जगत् सूर्य से उत्पन्न होता है, तथा इसे आपने में स्थित करके इसका पालन तथा कल्पान्त में संहरण (नाश) भी करते रहते हैं । ४। इस प्रकार अभित तेज वाले महात्मा सूर्य देव का माहात्म्य आपने मुझे बताया और मैंने भल्लीभाँति मुना भी, जो सौ अश्वमेध यज्ञों से भी उत्तम फलदायक है । परंतु हे वहान् ! इसे सुनकर भी मेरे हृदय में महान् संशय उत्पन्न हो गया है कि विप्रेण ! इस जन्म-मरण रूप समुद्र से किस प्रकार बचाव किया जाय ? यदि दिवाकर की प्रसन्नता से ही (बचाव करना) निश्चित है जिसे प्रसन्नता पूर्ण करते हुए वृष (धर्म) ध्वज प्रदान किया गया हो तो (सूर्य) देव किस धर्म के अनुष्ठान से प्रसन्न होते हैं । ५-७। मैंने अनेकों—श्रुति, स्मृति में बताये गये, वैष्णव, शैव एवं ऐसे पौराणिक धर्मों को सुना है । विप्र ! अब मुझे अनुपम सौर (सूर्य के) धर्म सुनने की इच्छा हो रही है । भगवन् ! सौर धर्म के पारायण करने वाले वे सभी धन्य हैं । अतः देवाधिदेव (सूर्य) के अनुपम धर्म मुझे बताने की कृपा कीजिए ! उसे सुनते हुए मुझे अमृत की भाँति तृप्ति नहीं होती है । अश्वमेध आदि यज्ञ का बहुत बड़ा विस्तृत सम्भार करना पड़ता है, अतः उसे अत्यध धन वाले द्विजाति लोग नहीं कर सकते हैं, अतः धर्म, अर्थ, एवं काम की सफलता के उद्देश्य से किसी सुख साध्य उपाय को बताने की कृपा कीजिए । जो सभी भनुओं के लिए हितकर तथा भग्नस्त पाप एवं भय का अपहरण करने वाले हों । ८-१२। (मेरे मत में) सौर धर्म ही उत्तम, पुण्य, पवित्र, एवं पापनाशक है । इस प्रकार राजा की बात सुनकर व्यास के शिष्य महामुनि (सुभन्तु) ने व्यास को शिर से प्रणाम कर यह कहा— । १३

सुमन्तुरुवाच

श्रूयतामभिद्यत्याभि सुखोपायं भद्राकलम् । परमं सर्वधर्माणां सर्वधर्मभनौपमम् ॥१४
रविणः कथितं पूर्वभृणस्य विशंपते । कृष्णस्य ब्रह्मणो वीरं शङ्करस्य न विद्यते ॥१५
संसाराग्नेदवह्नां सर्वेषां प्राणिनामदम् । सौरधर्नतदः श्रीमन्हिताय जगतोदितः ॥१६
यैर्यं शान्तहृष्टये शूर्यभक्तेभिर्गच्छिभिः । संसेष्वते परो धर्मस्ते सौरा नाश्रं संरायः ॥१७
एककाले हिक्ततं धा विकालं नित्यमेव च । ये स्मरन्ति र्घुं अक्षया तक्षदेवापि भारत ॥

सर्वसारैदितुज्ञते हन्तजन्मकुतैरपि ॥१८

स्तुवन्ति दे सदा भनुन् त ते प्रकृतिमानुदाः । व्यर्गतोकात्परिग्रस्त्वा ज्ञेया भास्करः भूति ॥१९
नानर्कः स्तरतोऽर्कं वै नानकोऽर्कं समर्चयेत् । नानर्कः क्लीर्तयेदर्कं नानकोऽर्कमवाप्यात् ॥२०
तौरधर्मस्य साहोर्यं सूर्यभक्तिः मुनिश्चलत । शोडशाइग्ना च सा प्रोक्ता रविणेह् दिवौकमाम ॥२१
प्रातः स्नानं जप्ते होमस्तथा देवार्चनं तृप । हिजानां पूजनं भक्त्या पूजा गोचर्तथयोस्तथा ॥२२
इतिहास्तुरागेभ्यो भक्तिशङ्कापुरस्कृतम् । श्रदणं राजशार्दूलं देवाभ्यासस्तथैव च ॥२३
भद्रकल्पा जनवात्सत्यं पूजायां चानुमोदनम् । स्वयमस्यर्चयेद्भूक्षया भमाप्य वाचकं परम् ॥२४
पुस्तकस्य सदा श्रेष्ठं ममातीव प्रियं सुराः । भक्त्याश्रवणं नित्यं स्वरनेत्राङ्गविक्रिया ॥२५

सुमन्तु द्वेषे—आप सुनें ! मैं सुखसाध्य, महाफलदायक, समस्त धर्मों में उत्तम, तथा सब से अनुपम, एवं विशंपते ! सूर्य ने अरण के लिए जिसे पहले (समय में) कहा था; बता रहा हूँ । वीर ! जिस कर्त्ता के समान कृष्ण, ब्रह्मा, एवं शिव का धर्म नहीं हैं । क्योंकि इस संसार सागर में निमग्न सभी प्राणियों के हित के लिए श्रीमान् इस सौर धर्म का जगत् में उदय हुआ । १५-१६। जो शांत चित्त होकर सूर्य भक्त एक मात्र भग (सूर्य) के प्रसंग्रार्थ इस उत्तम धर्म की सेवा करते हैं, वे ही सौर हैं, इसमें संदेह नहीं है । १७। भारत ! एक दो या तीनों काल और प्रतिदिन जो भक्ति पूर्वक एकबार भी सूर्य का स्मरण करता है, वह सात जन्म के पापों से भी मुक्त हो जाता है । १८। जो मनुष्य सदैव सूर्य की उपासना करता है, उसे प्रकृति से उत्पन्न मनुष्य न जानना चाहिए, प्रत्युत उसे स्वर्गं से भ्रष्ट होकर इस भूतल में आया हुआ भास्कर ही जानना चाहिए । १९। सूर्य के आत्मीय दुए बिना उनका स्मरण, पूजन, तथा कीर्तन न करना चाहिए । क्योंकि उसे वैसे दशा में सूर्य की प्राप्ति न हो सकेगी । २०। यह सौर धर्म का निर्जर्ख है कि 'सूर्य की भक्ति भली भाँति निश्चल होनी चाहिए' जिसके सोलह अंग हैं । इसे स्वयं सूर्य ने देवताओं को बताया है । २१। प्रातः काल स्नान करके जप, हवन, तथा तृप ! देव की पूजा भक्ति पूर्वक ब्राह्मणों की पूजा और आम एवं पीपल वृक्ष की पूजा करके इतिहास पुराणों की कथा भक्त एवं श्रद्धालु होकर मुनना चाहिए । राज शार्दूल ! उसी प्रकार वेदागाठ भी करना बताया गया है । २२-२३। मेरी भक्ति करते हुए मनुष्यों में प्रेम, पूजा का अनुमोदन, एवं स्वयं मेरे सामने भक्ति पूर्वक उत्तम वाचक की पूजा करनी चाहिए । २४। उस उत्तम धुस्तक की पूजा करते हुए देखों की भी पूजा करना बताया गया है क्योंकि देवगण भी धुशी अत्यन्त प्रिय हैं । मेरी कथाओं को नित्य ध्वजा करते हुए उसमें यथावस्थर स्वर, नेत्र तथा अंगों के विकार भी होने चाहिए । कहीं करुणा आंत्रं पर काहिंक स्वर, आंसों में आंशु आदि आंते

ममानुस्मरणं नित्यं भक्त्या श्रद्धापुरस्कृतम् । बोडशाह्णा भक्तिरियं यस्मिन्स्तेच्छेऽपि वर्तते ॥

विप्रेन्द्रः स मुनिः श्रीमान्सजात्यः स च पण्डितः ॥२६॥

न मे पृथक्चतुर्वेदा भद्रभक्तः श्वपञ्चोऽपि यः । तस्मै देयं ततो प्राह्णं स च पूज्यो यथा ह्यहश् ॥२७॥

पत्रं पुष्टं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति । तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥२८॥

यो मां सर्वगतं पश्येत्तर्द च मयि संस्थितश्च । तस्याहमस्मित्यतो नित्यं स च नित्यं मयि स्थितः ॥२९॥

अष्टादशार्क्किलायाः पर चाष्टभिरुद्गवैः । रोद्यमित्वा महाबाहो तथा जानतरणा तु ॥३०॥

दुर्गापालं विजित्याशु भास्करार्थं तु दुर्जयम् । जित्वा च पुरराजानं महात्मजमनौपमम् ॥३१॥

मनसाच्चत्या भक्त्या यो भां ध्यायति मानवः । अहं तस्मै चित्तामि आत्मवत्सततं नरश् ॥३२॥

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मणे पवाणे सप्तमीकल्पे सौरधर्मवर्णनं

नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः । १५१।

अथ द्विपच्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सूरधर्मेषु प्रदत्तवर्णनम्

सुमन्तुरवाच

सूरे च दुर्लभा भक्तिदुर्लभं सूरपूजनम् । सूराय दुर्लभं दानं सूरहोमश्च दुर्लभः ॥१॥

चाहिए । २५। इस प्रकार भक्ति एवं श्रद्धा पूर्वक मेरा स्मारण प्रतिदिन करना बताया गया है । यही सोलह अंगों वाली भक्ति है । यदि किसी स्वेच्छा जाति का ग्रामी इसे अपनाये तो विप्रेन्द्र मुनि, श्रीमान्, जातिश्रेष्ठ, एवं पंडित भी वह हो सकता है । मुझमें पृथक् चारों वेद नहीं है, अतः मेरा भक्त कोई श्वपच्च (चांडाल) भी हो जाये, तो उसे भी वेद प्रदान करना चाहिए क्योंकि वह मेरे समान ही ग्राह्य एवं पूज्य है । २६-२७। जो भक्तिपूर्वक मुझे पत्र, पुष्ट, फल अथवा जल प्रदान करते हैं, उनके लिए मैं कभी नष्ट नहीं होता तथा वे भी मुझे प्राप्त कर कभी नष्ट नहीं होते हैं । २८। जो मुझे सर्वगत (सभी स्थानों में पाप), और समस्त जगत् को मुझमें स्थित देखता है, उनके लिए मेरी नित्य आस्था बनी रहती है, और वह मुझमें नित्य स्थित होता है । २९। नव कक्षा के महत्ता वाले दुर्गा को उत्पन्न आठों द्वारा रोक कर दुर्ग पाल को शीघ्र जीतकर नगराधिपति राजा को जिस प्रकार जीत लिया जाता है । उसी भाँति महाबाहो ! अपने उल्लम जान द्वारा दुर्जय भास्कर पर अपना आधिपत्य स्पायित कर भक्ति पूर्वक जो मनुष्य अचल भन द्वारा मेरा ध्यान करता है, अपनी संतानों की भाँति मैं उसकी सदैव चिन्ता किया करता हूँ । ३०-३२

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मणे पर्व के सप्तमी कल्प में सौर धर्म वर्णन नामक

एक सौ इक्ष्यावनवाँ अध्याय समाप्त । १५१।

अध्याय १५२

सूरधर्म वें प्रदत्त का वर्णन

सुमन्तु बोले—सूर्य की भक्ति अन्यत्ता दुर्लभ है, उनका पूजन भी दुर्लभ है तथा उनके लिए दान, एवं

सुदुर्लभं रवेज्ञनं तदम्यासेऽपि दुर्लभं । दुर्लभतरं ज्ञेयं स्वपोल्कज्ञानमुत्तमम् ॥२
सुदुर्लभतरं ज्ञानं सदा वै भास्करस्य तु : प्रदक्षिणां चक्रतुर्वै पादौ भक्त्याऽर्कमन्विरे ॥३
तौ करौ श्लाघ्यतां प्राप्तौ यौ पूजां चक्रतु रदेः । शैवैकरं रसनां धन्या स्तोत्रं या कुरुते रवेः ॥४
तत्त्वनः पुष्ट्यतां प्राप्तं यद्दित्वा विषयं नृप । निश्रला च रवेलीला निर्भीका ल्लोद्धर्जिता ॥५

शतानीक उच्चाच

सूर्यचिन्नविधिं कुर्यज्ञूतेतुविभक्तामि तरवतः । त्वत्प्रसादाविद्वज्ञेष्ठ कौतूहलमतीव मे ॥६
शत्युप्यं स्थापिते सूर्यं कृते सूर्यात्मये च यत् । रस्माऽग्नेऽन्त शत्युप्यं यत्युप्यमुपसेपने ॥७
स्थाने हृते च यत्युप्यं तथा नीराजने कृते । नीतोषधिप्रशापेऽनृत्यमहगलवाविर्तः ॥८
अर्धदानेन यत्युप्यं तोष्यानेन यद्यूथेत् । यज्ञामृतमद्याने दधिज्ञाने च यत्कलम् ॥९
द्वजान्यद्गृणे च यत्प्रोक्तं वज्रज्ञाने च यत्कलम् । मधुकाने पथःज्ञाने ज्ञान इष्टुरसस्य तु ॥१०
उद्वर्तनं शुचिस्थाने कुशापुष्पोदकेन तु । सुवर्णरत्नतोयैश्च गन्धचन्दनवारिमिः ॥११
लर्पूरमुखोदयेन स्वच्छतो गेत्रं यत्कलम् । विलेपनैश्च गन्धात्मैर्विलेपनफलं समेत् ॥१२
तालपत्रप्रदाने तु प्रदाने चामरस्य तु । रक्तपुष्पार्चिदं यज्ञं दामभिः पूजनेन च ॥१३
सुमालां शण्डये यज्ञं पुष्ट्यमालावलम्बनात् । पूजाभक्तिविशेषैश्च गृहमालावलम्बने ॥१४

हवन करना भी दुर्लभ है ॥१। सूर्य का ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है और उसका अम्यास करना भी । जिस प्रकार स्वपोल्क ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है, उसी भाँति सदैव सूर्य का भी ज्ञान । भक्तिपूर्वक सूर्य के मंदिर में प्रदक्षिणा करने वाले वे चरण, तथा सूर्य की एजां करने वाले वे हाथ, ये होनों प्रशस्त बताये गये हैं, वही एक रसना (जिह्वा) धन्य है, जिसके द्वारा सदैव सूर्य के स्तोत्र पाठ होते रहते हैं । नृप ! वही मन पुष्ट्यात्मक है, जिसने विषय वासना का त्याग कर निर्भीक एवं क्रोध के परित्याग पूर्वक सूर्य की निश्चल भक्ति अपना लिया है । २-५

शतानीक ने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो मैं रहस्य पूर्वक सूर्य की पूजा का विधान युनना चाहता हूँ, क्योंकि इसके लिए मुझे अत्यन्त कौतूहल है । सूर्य के स्थापित करने, उनके लिए मंदिर का निर्माण कराने, मंदिर की (सफाई) तथा गोबर से लीपने, सूर्य के स्थापन का स्थान करने, नीराजन करने मंदिर में नील औषधियों के लगाने, सूर्य के सम्मुख नृत्य करने मंगलवाद्यों के बजाने, अर्धदान तथा जल द्वारा स्नान कराने से जितने पुण्य की प्राप्ति होती हो उन्हें और पंचामृतस्नान, दधिज्ञान, चक्र के अभ्यंग करने वज्रस्नान, मधुस्नान, दूध स्नान, ईंट के रस द्वारा स्नान कराने से, और पवित्र स्थान में कुश के जल से उद्वर्तन (मूर्ति के लेपन) करने, जिसमें सुवर्ण तथा रत्न के जल और गन्ध चन्दन के जल मिशित हो कपूर, अगुर-त्तोय एवं स्वच्छ जल मिशित मुग्धित लेपन करने तालपत्र (व्यजन), चामर के प्रदान करने से जो पुण्य एवं फल प्राप्त होते हैं उसकी व्याप्त्या समेत रक्त पुष्पों एवं दामों द्वारा पूजन करने, मङ्गप में सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की माला लटकाने, पूजा भक्ति की विशेषता वश उस गृह में मालाएँ लटकाने,

पुण्डवानविशेषेण धूपदीपश्च यत्कलम् । वस्त्रालङ्घारदाने तु पुण्डश्चवणकीर्तने ॥१५
चहुश्चवस्थ दाने तु अव्यहृत्य च गोपते । मग्नवौ अत्रसादेव असिष्टादापूजने ॥१६
च्योमपूजाफलं चञ्च अरुषस्य च पूजनम् । सथन्यश्चिपि यत्प्रोक्तसत्त्वानाद्भास्मात्तम ॥१७
उत्सवे बृहि मे ब्रह्मन्महत्तानामनुकर्त्या ॥१८

इति श्रीभगवत्ये भगवान्पुराणे शाहो वर्वणि सूर्यर्थसु प्रदनवर्णतं नाम
दिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः । १५२।

अथ निष्ठाशदधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यतेजोवर्णनम्

सुमन्तुरुदाच

मुमतिश्च रवेभूतः पाण्डवेय महामते । अतस्ते निखिलं वच्चिस शृणु इत्यमता तृष्ण ॥१
कन्यादौ सृजतो वीर ब्रह्मणो विविधः प्रजाः । अहंकारो भृत्यामीन्नास्ति त्वये भ्रम्भाः ॥२
तथा पातलस्तो वीर केशदस्य धरणपते । तथा दंहरतो जडेऽहृकारस्यस्यवस्थ्य च ॥३
चिंतयन्तोय ते देवाः केशवश्च तराधिप । भिषत्ते स्वर्धया युक्ताः परत्यरवित्तेऽधितः ॥४
विद्वादस्तु महानार्त्तकञ्जाम्बुजामोक्ताम् । शरद्यरं शहावहो यज्ञसामित्य वेत्तम् ॥५

पुण्ड दान की विशेषता करने, धूप-दीप करने, वस्त्र एवं अलंकार प्रदान करने, पुण्ड ब्रह्म चीष के सुनने, कीर्तन करने ; सूर्य के लिए अव्यग्र प्रदान करने, मेरी प्रसाभता के लिए मर्यादा का अभिदादन एवं पूजा करने ल्योम तथा वरण की पूजा करने, और ब्रह्मणोत्तम ! अज्ञानवश ई जिसे नहीं कह दाता उसके समेत इन सब के मुसम्मन करने से जिस पुण्ड फल की प्राप्ति होती है, हे श्रव्य ! आह मुझे दत्तात्रे की कृपा करें । ६-१८

श्रीभविष्यगहापुराणे में ब्राह्मपर्व के सूर्यर्थ में प्रदन वर्णत व्यापक
एक सौ बावनवौं अध्याय समाप्त । १५२।

अध्याय १५३

सूर्यतेज का वर्णन

सुमन्तु बोले—हे महामते, पाण्डवेय ! तुम्हारी बुद्धि बहुत उत्तम है, तुम सूर्य के भक्त हो अतः नृप ! मैं तुम्हें इन सभी कुछ की व्याख्या समेत बताऊँगा, सावधान होकर सुनो ! । १। बीर ! कल्प के आदि में भाति-भाँति की प्रजाओं की सृष्टि करते हुए ब्रह्मा को अभिमान हुआ कि मेरे समान लोक में कोई नहीं है । २। धरापते ! उसी प्रकार पूजा पालन करते हुए विष्णु, तथा उसका संहार करते हुए शिव को महान अभिमान उत्पन्न हुआ । ३। नराधिप ! उस गर्व से मतवाले होकर तोनों देवों में आपस में ईर्ष्या वश महान विरोध उत्पन्न किया । ४। महाबाहो ! केवल अपने मन से ही गवोक्ति की कल्पना करते हुए उन ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश्वर का अपने आप में महान विवाद (अगड़ा) उत्पन्न हुआ । ५। उसकलह के समय

अहं कर्ता विकर्ताऽहं पालकोऽहं जगत्प्रभुः । इत्याह भगवान्ब्रह्मा कृष्णभीमौ समर्चितौ ॥६
 तदैत्य शंकरः कुद्धः कः शक्तो मदृते भुवि । सहृदुं जगदेतद्दि अस्तु पालयितुं तथा ॥७
 नारायणोऽयेवमेव मनाकृ क्रोधसमन्वितः । न वा शक्तो जगत्प्रबृं सहृदुं रक्षितुं तथा ॥८
 एवं तेदां प्रचदतां कुद्धानां च परस्परम् । समाविशत्तदाङ्गजानं तमो भोहात्नकं दिनो ॥९
 तेन क्रान्तपिण्डः सर्वे न पश्यन्ति परस्परम् । अत्यर्थं मोहसप्तश्च न जानन्तीह किञ्चन ॥१०
 अपश्यन्तो मिथस्ते तु निषण्णाः क्षमातले दिशो । अतरमन्ति हि ये चान्ये ते दिवदङ्गरमास्थितः ॥११
 तमसा नोहिता: सर्वे निद्रावत्काल्पनेतमः । मनारजानेन चाकाल्पाः किं कुर्यादेति मोहिताः ॥१२
 अथ भूताधिपो देवो तोशुताभ्रणोज्ज्वलः । चन्द्रार्धशृत्योभस्तु शीतलांशुविशोधितः ॥१३
 आर्तिमेत्य परां वीर मोहितस्तमसा विभो । अपश्यश्वर्वदीदेवं साधवं सूधरं हरिम् ॥१४

महादेव उत्तराच

कृष्ण कृष्ण महादाहो वृत गतस्त्वं महामते । ब्रह्मा च क्व ल्लो वीर लाहं पश्यामि खां क्लचित् ॥१५
 मोहेन महताहं वै तमसा च विमोहितः । किं करोमि क्व गच्छायि इच्चाहमधुना स्थितः ॥१६
 क्षमाद्यरं पृथिवीं दृक्षान्देवगन्धर्वदानवान् । विपुलं सागरं सिन्धूर्नाहं पश्यामि किञ्चन ॥१७

उत्तर कलह के समय में ही इस जगत् का कर्ता, विकर्ता, (ताशक), एवं पालक हूँ, भगवान् ब्रह्मा कहने लगे । वहाँ पहुँच कर शंकर भी कुद्ध होकर कहने लगे कि इस भूतल में जगत् के सर्जन, पालन एवं नाश करने के लिए मेरे अतिरिक्त कौन समर्थ हो सकता है, इसी प्रकार नारायण भी क्रोध कर कहने लगे कि जगत् की सृष्टि, पालन एवं नाश करने के लिए मेरे अतिरिक्त कोई अन्य समर्थ नहीं है विभो ! इस प्रकार कुद्ध होकर उन लोगों के इस आप्तस के विवाद करते समय मोहात्मक अज्ञान रूपी अंधकार उनमें प्रविष्ट हो गया उससे उनकी वृद्धि नष्ट हो गई । अभिव्यक्ति मोह में आसक्त होने के कारण वे लोग आपस में किसी को देख नहीं सकते थे और न कुछ जानते ही थे ।६-१। विभो ! उस महान्धकार में वे लोग एक दूसरे को न देख सकने के कारण पृथिवी तल में बैठ गये और सोचने लगे कि देखो ! ये अन्य लोग सूर्य के आश्रित होकर किस प्रकार का प्रसन्न जीवन व्यतीत कर रहे हैं एक हम सब हैं जो निद्रा की भाँति मोह से लिप्त हो कर सोये पड़े हैं । केवल थोड़ा सा ज्ञान शेष रह गया है, इससे अब क्या कहूँ क्या न कहूँ ।१०-१२। इस प्रवाह में बहते हुए भूतों के नायक, कानों में उज्ज्वल कुण्डल धारण करने वाले एवं उस चन्द्रार्ध से सुशोभित जिसकी स्वच्छ तथा शीतल किरणें हैं शिव ने अज्ञान मुग्ध तथा दुखी होकर वीर ! इस पृथिवी को धारण करने वाले उन कृष्ण को न देखकर इस भाँति कहना आरम्भ किया ।१३-१४

महादेव ने कहा—महामते ! कृष्ण, कृष्ण, तुम कहाँ चले गये ? और ब्रह्मा कहाँ चले गये ? वीर तुम दोनों को कही नहीं देख पा रहा हूँ । हाय ! इस समय महान् मोहरूपी, अंधकार से मैं लिप्त हूँ कहाँ जाऊँ, क्या करूँ इस समय मैं कहाँ स्थित हूँ । पर्वत, पृथिवी, वृक्षों, देव, गन्धर्व, दानवों, विपुल सागर तथा सिन्धु को कुछ भी नहीं देख पा रहा हूँ ।१५-१७। देवशार्दूल ! स्थावर एवं जंगम रूपी जगत् को मैं किस

केनोपायेन पश्येयं जगत्स्थावरजडगमम् । ब्रूहि मे देवशार्दूल व्रीडः मेष्टीव जायते ॥१८
शङ्करस्य वचः श्रुत्वा हरिवंचनमवीत् । शोकगद्गदया वाचा तमसा मोहितो नृप ॥१९

विष्णुरुवाच

भीम भीम न जानेऽहं क्व ल्लवान्वर्ततेऽधुना । समापि मोहितं चेतस्तमसातीव शङ्कर ॥२०
क्व गच्छामि क्व तिष्ठामि कथं तत्स्वस्थतां द्रजेत् । तमसा पूरितं सर्वं जगद्द्वि परजेऽवर ॥२१
यद्यसौ दृश्यते देवः पुरज्येष्ठोऽभ्युजोद्भूवः । पृच्छावस्तं महात्मानं यदि ते रोचते हर ॥२२
हित्वा दर्पमहृकारं सममास्याय केदलम् । पदाननं पश्यदेविनं पश्यपत्रनिभेदजगमम् ॥२३
इत्येवं गदतो वाक्यं विष्णुरेभिततेजसः ! श्रुत्वोवाच त्रिभुवर्हृष्टा गद्गाधरभृहीधरै ॥२४
कृष्ण कृष्ण महाबाहो भीम भीम महामते । क्व भृन्तहं ब्रूत किं च किं युवामूर्त्युमिथः ॥२५
ममतीव भन्तेबुद्धी तमसा वशमापाते । न शृणोमि न पश्यामि निद्रालोद्दर्शनं गतः ॥२६
अहो बत जगत्सर्वं सदेवामुरमानुषम् । तमसा छाष्टतं देवौ न जाने क्व गतं स्तुः ॥२७
अथ तेषां प्रवदतां ब्रह्मादीनां विद्यौकसाम् । दर्पक्षोधधयार्तानां तमसाकःत्तचेतसाम् ॥२८
तेषां वर्षपिहाराय प्रबोधार्थं च गोपते । तेजोरूपं समुद्भूतमष्टभृद्गमनौपमम् ॥२९
अलक्ष्यं पापतमसा महद्व्योम नराधिप । ज्वालामालावृतं वीर बहुरूपं च भासते ॥३०

उपर्य से देख सकूंगा, बताइये ! मुझे अलगत लज्जा हो रही है ॥१८। नृप ! इस प्रकार शंकर की बातें सुनकर अजान से मोहित होकर विष्णु शोक प्रकट करते हुए गद्गद वाणी से बोले ॥१९

विष्णु बोले—भीम, भीम ! मुझे नहीं मालूम हो रहा है कि इस समय आप कहाँ हैं ! शंकर ! मेरों भी चित्त अत्यन्त अन्धकार से आवृत हो गया है ! कहाँ जाँ, कहाँ रहूँ, मेरा मन किस प्रकार से स्वस्य (मोहमुक्त) हो सकेगा । परमेश्वर ! यह समस्त जगत् अन्धकार से ढैंक गया है ॥२०-२१। हर ! यदि तुम्हारी भी संमति हो और कहाँ देव श्रेष्ठ एवं कमलयोनि, व्रीडा दिल्लाई पड़े तो उन्हीं भगवान् से जो कमल के समान मुख, कमल से उत्पन्न, एवं कमल पत्र के समान नेत्रवाले हैं हम दोनों दर्प पूर्ण अंहकार का यदि त्याग कर केवल समस्मान भाव से पूछें इस प्रकार कहते हुए उस अभित तेजवाले विष्णु की बातें सुनकर विभु, ब्रह्म, शिव एवं विष्णु से बोले— ॥२२-२४

भ्राह्मा बोले—कृष्ण, कृष्ण ! शिव, शिव ! महाबाहो ! महामते ! आप लोग कहाँ से बोल रहे हैं और आपस में कौन सी बातें कर रहे हैं ॥२५ मेरा मन एवं बुद्धि ये दोनों अन्धकार से लिप्त है क्योंकि निद्रा द्वारा मोहित हो जाने की भाँति मैं न कुछ सुन रहा हूँ और न कुछ देख रहा हूँ ॥२६। महान् आश्चर्य एवं दुःख की बात है देव, राक्षस एवं मनुष्यों समेत यह समस्त जगत् अन्धकार से धिर गया है, कृष्ण एवं शिव ये दोनों देव नहीं जानता कहाँ चले गये हैं ॥२७। इसके पश्चात् अभिमान, क्रोध तथा भय से व्याकुल, मोहअन्धकार से ढैंके चित्त वाले उन ब्रह्मा आदि देवताओं के इस प्रकार कहने पर उनके अभिमान के नाश करने एवं उन्हें सूर्य का ज्ञान कराने के लिए तेजोमय, आठ सींगो वाला, अनुपम, पाप रूप अन्धकार के लिए अनिरीक्ष्य तथा प्रज्वलित ज्वालाओं की माला से घिरा, नराधिप ! इस प्रकार एक महान् व्योमतेज दिल्लाई पड़ा । वीर ! वह इस भाँति दिल्लाई दे रहा था जैसे उसके अनेकों रूप

शतयोजनविस्तीर्ज गतमूर्धं भ्रमतथा । गोमव्यतो महाराज कणिकेवाम्बुजस्य तु ॥३१
 प्रकाशं तेजसा तस्य जगत्सर्वमिदं नृप । पुरेष्वन्तर्यथा वीर अम्बुजस्याच्चिभिः सदा ॥३२
 दृष्ट्वा परस्परं सर्वे हुङ्कारादिविकारिणः । तेजसा मोहितास्तस्य जगत्सर्वमिदं नृप ॥३३
 तेजसा मोहितं तस्य महद्व्योमं नराधिप । ततो विस्मयमासीनः दृष्टगोपतयो नृप ॥३४
 पश्यमाना महो व्योग्नि मिथो वचनमबृन् : अहो तेजः सङ्गद्भूतमस्माकं श्रेयते नृप ॥३५
 प्रकाशः च लोकानां सर्वे पश्यामङ्कं न्विदम् : ज्ञानायोर्व्यं गतो ब्रह्म चाधस्तत्त्वपुरात्तकः ॥३६
 तिर्ज्जग्याम देवेशश्रकाम्बुजगदाधरः । अलब्धव तस्य ते तर्वे प्रमाणं गैरिकधिष्ठाः ॥३७
 विस्मयोत्कुलनयनाः सन्नाम्य परस्परम् । सर्वे कञ्जादिका देशा इदं वदनमबृन् ॥३८
 कोऽयं किमत्मकश्चायं किमिदं तेजसां निधिः ! अहोऽस्म दर्शनात्सर्वे सञ्ज्ञातः ज्ञानिनो वयम् ॥३९
 तस्मात्सर्वे प्रणम्येनं स्तुवीमोऽभूतदर्शनम् । कृतञ्जलिपुटा सर्वे चास्तुवस्त्रिदिवौक्षसः ॥४०
 स्तुवतामप्यथेषां सहत्वकरणो रविः । आत्मानं दर्शयामास कृपया परया वृतः ॥४१
 ज्ञात्वा भक्तिं महाबाहो ब्रह्मादीनां महोपशाम् । अथ ते व्योग्नि देवेश ददृशुः परमेश्वरम् ॥४२
 खण्डोल्कलोकनाभेशं सहत्वदिरणोज्ज्वलम् । कृतिकः भिरसंस्पृष्टं यद्वा तत्कातिकास्थितम् ॥४३

हों । २८-३०। महराज ! वह सौ योजन में विस्तृत होकर गृथी के मध्य उगर आकाश में कमल की कणिका की भाँति धूम रहा था । ३१। राजन् ! उसके तेज से सम्पूर्ण जगत् वीर ! बिजली द्वारा सङ्केत प्रकाशित नगर के भीतरी भाग की भाँति सहस्रा प्रकाशित हो गया । नृप ! उसके तेज से मोहित हुए उन लोगों ने जो अहंकार आदि विकार को अपनाये हुए थे आपस में एक दूसरे को देखते हुए देखा कि समस्त जगत् उसके तेज से आवृत है । नराधिप ! पश्यात् उस महान् व्योम तेज को देखकर वे देवगण, आश्चर्य चकित हो उस (तेजोमय) को देखते हुए आपस में कहने लगे कि नृप ! हमीं लोगों के हित के लिए यह तेजोराशि उदित हुई है । अथवा जब सभी लोगों के प्रकाशनार्थ यह आविभूत हुआ है, तब हमीं लोग इसे क्यों न देखें । (इस प्रकार) कहकर उसकी जानकारी के लिए उसके ऊर्ध्वं भाग की ओर ब्रह्मा, नीति की ओर त्रिपुरातक (शिव) और पात्रं भाग की ओर श्राव-गदाधारी देवेश विष्णु ने प्रस्थान किया । उस (तेजोमय) का प्रमाण (लम्बाई चौडाई आदि) न जानकर वे देवगण पुनः लौटकर इतने आश्चर्य चकित हुए कि उनकी आंखें कमल की भाँति विकसित हो गई अनन्तर वे ब्रह्मादि देव इस प्रकार कहने लगे कि 'यह क्या है कुछ समझ में नहीं आता है इसका आकार कैसा है, यह तेजोमय विधान है या वस्तु । महान् आश्चर्य की बात है कि इसे देखते ही हम लोगों को ज्ञान उत्पन्न हो गया । ३२-३१। इसलिए हमें चाहिए कि हम लोग प्रणाम पूर्वक इस अद्भुत दर्शन की स्तुति करें । ऐसा कहकर वे देवगण हाथ जोड़कर उसकी स्तुति करने लगे । इनके उपरांत उन लोगों के स्तुति करने पर सहस्र किरण वाले सूर्य ने अत्यन्त दयालु होकर उन्हें दर्शन दिया । महाबाहो ! जो उन ब्रह्मादि देवों की उस भक्ति द्वारा प्रसन्न हो गये थे तदनन्तर उन लोगों ने आकाश में स्थित परमेश्वर, एवं देवेश सूर्य को देखा जो स्वोल्करूप, लोकनाश, ईश, सहस्र किरणों से समुज्ज्वल, कृतिकाओं से संस्पृष्ट हो, उस कार्तिक में स्थित थे । ४०-४३

द्रुञ्जयं कृतिकानां तु तथैकेन विवर्जितम् । तथा हस्तविहीनं च सप्तर्षिरहितं तथा ॥४४
 वर्षाब्दिरहितं देवं सप्तस्वरविवर्जितम् । सकलं निष्कलं चैव सदैकाकारस्मिन्दिग्यम् ॥४५
 तद्दृष्ट्वानेकशिरसमनेकचरणं तथा । अनेकोदरब्लास्त्रं समनेकाभरणान्वितम् ॥४६
 अनेकाननमस्त्रीबं सहस्राक्षमनौपमम् । अनेकदर्गल्पं च अनेकमुकुटोऽज्ज्वलम् ॥४७
 दृष्ट्वैवं देवदेवस्य रूपं भानोर्महात्मनः । विस्पयोत्कुलनयनास्तुष्टवुत्ते दिवाकरस् ॥४८
 कृताञ्जलिपुटो भूत्वा ब्रह्मा स्तोतुं प्रचक्रमे । प्रणम्य शिरसा भानुभिंदं वज्रनमवीत् ॥४९

ब्रह्मोवाच

नमस्ते देददेवेश सहस्रकिरणोऽज्ज्वल । लोकदीप नमस्तेऽत्तु नमस्ते कोऽज्ज्वल्लभ ॥५०
 भास्त्रराय नम नित्यं खण्डोल्काय नमोनमः । विष्णवे कालचक्राय सोमायास्तितेजसे ॥५१
 नमस्ते पञ्चकालाय इन्द्राय वसुरेतसे । खण्डाय लोकनाथाय एकचक्ररथाय च ॥५२
 जगद्धिताय देवाय शिवायामिततेजसे । तमोन्नाय सुरूपाय तेजसां निधये नमः ॥५३
 अर्थाय कामरूपाय धर्मायामिततेजसे । नोक्षाय मोक्षरूपाय सूर्याय च नमोनमः ॥५४
 क्रीथलोभविहीनाय लोकानां स्थितिहंतवे । शुभाय शुभरूपाय शुभदाय शुभात्मने ॥५५
 शान्ताय शान्तरूपाय शान्तयेऽस्मासु वै नमः । नमस्ते ब्रह्मरूपाय ब्राह्मणाय नमोनमः ॥५६
 ब्रह्मदेवाय ब्रह्मरूपाय ब्रह्मणे परमात्मने । ब्रह्मणे च प्रसादं वै कुरु देव जगत्पते ॥५७
 एवं स्तुत्वा र्त्वा ब्रह्मा श्रद्धया परया विभो । तूष्णीमासीन्यहाभाग ब्रह्मष्टेनान्तरात्मना ॥५८

कृतिकाओं के लिए अजेय, एक से शून्य, हस्त एवं सप्तर्षि से हीन, वर्ष, अब्द रहित, सप्तस्वर हीन, कला समेत, कलाहीन, सदैव एक रूप धारण करने वाले, अनेक शिर, चरण, उदर, भुजाएँ एवं स्कन्धों में भाँति-भाँति के आभूषण से मुश्केलियत, अनेक कांति पूर्ण मुख, सहस्र आँखें, अनुपमेय, अनेक वर्ण एवं रूप वाले तथा अनेक उज्ज्वल मुकुटों से विभूषित थे । ४४-४७। देवाधिदेव, एवं महात्मा सूर्य देव के इस प्रकार के रूप को देखकर आश्चर्य से चकित होने पर उनकी आँखें खिल उठीं । तदुपरांत वे सूर्य की स्तुति करने लगे । हाथ जोड़ कर ब्रह्मा ने शिर से प्रणाम कर सूर्य की इस प्रकार स्तुति की । ४८-४९

ब्रह्मा बोले—हे देवाधिदेव ! सहस्र किरणों से समुज्ज्वल होने वाले आप को नमस्कार है । लोक के दीपक ! आप को नमस्कार है कोण (त्रिशूल) प्रिय ! आप को नमस्कार है, भास्कर को नमस्कार है, खण्डोल्क को नित्य नमस्कार है, विष्णु रूप, कालचक्र, सोम, एवं अमित तेज वाले को नमस्कार है, पाँचों काल, इन्द्र, वसुरेतस, आकाशचारी, लोकनाथ एक चक्रके रथ वाले, जगत् के हितैषी देव, शिव, अमित तेजवाले, तमके नाशक, सौन्दर्यपूर्ण, एवं तेजो निधान आप को नमस्कार है । ५०-५३ धर्म, अर्थ एवं काम रूप अनुपम तेजस्वी, मोक्ष तथा मोक्षरूप, सूर्य को नमस्कार है, क्रोध तथा लोभीन, लोक की स्थिति के कारण, शुभ रूप, शुभदायक एवं कलात्मक, शांत तथा हम लोगों की शांति के लिए शांत रूप, तुम्हें नमस्कार है, ब्रह्मरूप, तुम्हारे लिए नमस्कार है, ब्राह्मण को नमस्कार है, ब्रह्मदेव, ब्रह्मरूप, ब्रह्म तथा परमात्मा को नमस्कार है । हे जगत्पते, देव ! ब्रह्मा के लिए कृपा कीजिए । विभो ! इस प्रकार अत्यन्त श्रद्धालु होकर ब्रह्मा सूर्य की स्तुति करके हे महाभाग ! प्रसन्न अन्तःकरण पूर्ण हो मौन हो गये । ५४-५८

स्त्रोत्रं चक्षे विभावसोः । त्रिपुरारिर्महातेजाः प्रणम्य शिरसा रविम् ॥५९

महादेव उवाच

जय भाव जयजेय जय हंस दिवाकर । जय शम्भो महाबाहो लग गोचर सूधर ॥६०
 जय लोकप्रदीपेन जय भनो जगत्पते । जय काल जयनन्त संवत्सर शुभानन ॥६१
 जय देवादितेः पुत्र कश्यपानन्दवर्धन । तमोद्धर जय सप्तेश जय सप्ताश्वदाहृ ॥६२
 ग्रहेश जय कान्तीश जय कालेश शङ्कर । अर्थकामेश धर्मेश जय सोकेश शर्मद् ॥६३
 जय देवाङ्गरूपाय यहूल्पाय दै नमः । सत्याय सत्यरूपाय सुरूपाय शुभाय च ॥६४
 क्रोधलोभाविनाशाय कासनाशाय वै जय । कल्माषपश्चिरूपाय यतिरूपाय शम्भवे ॥६५
 विश्वाय विश्वरूपाय विश्वकर्माय वै जय । जयोङ्कार वषट्कार स्वाहाकार स्वधामय ॥६६
 जयाश्चमेधरूपाय चाग्निरूपायमय च । संसारार्णवमपीताय मोक्षद्वारप्रदाय च ॥६७
 संसारार्णवमप्नस्य मम देव जगत्पते । हस्तावलम्बनो देव भव त्वं गोपतेऽद्भुत ॥६८
 ईशोऽप्येवमहीनाङ्गं स्तुत्वा भानुं प्रयत्नतः । विरराम नहराज प्रणम्य शिरसा रविम् ॥६९
 अथविष्णुर्महातेजाः कृताञ्जलिपुटो रविम् । उवाच राजशार्दूल भक्त्या श्रद्धासमन्वितः ॥७०

विष्णुरुचाच

नमामि देवदेवेशं सूतभावनमव्ययम् । दिवाकरं रविं भानुं मार्तण्डं भास्करं भगम् ॥७१

ब्रह्मा के अनन्तर त्रिपुरारि एवं महातेजस्वी, रुद्र शंकर ने शिर से सूर्य को प्रणाम करके उन विभादमु (सूर्य) की स्तुति प्रारम्भ की ॥५९

महादेव बोले—भाव (सनातन) की जय हो, अजेय की जय हो, हंस एवं दिवाकर की जय हो, शम्भु, महाबाहु, आकाशगामी, प्रत्यक्ष रूप एवं भूधर की जय हो, लोक के प्रकाशक की जय हो, जगत्पति भानु की जय हो, काल रूप की जय हो, अनंत की जय हो, संवत्सर एवं शुभानन की जय हो, अदिति के पुत्र, कश्यप के आनंद वर्धक देव की जय हो, तमनश्चक की जय हो, सप्तेश तथा सात अश्व वाहन वाले की जय हो, ग्रहेश की जय हो, काति के ईश की जय हो, काल के ईश, शंकर, अर्थ, काम एवं धर्म के ईश, मोक्ष के ईश, लज्जा रखने वाले की जय हो, वेदांग रूप, ग्रह रूप, सत्यरूप, सुरूप, एवं शुभरूप को नमस्कार है । क्रोध, लोभ, एवं काम के नाशक की जय हो, कल्माषपश्चिरूप, पतिरूप, शम्भु, विश्व, विश्वरूप एवं विश्वकर्म वाले की जय हो, ओंकार, वषट्कार, स्वाहाकार एवं स्वधारूप की जय हो, अश्वमेध रूप, अग्नि रूप, अर्यमा, संसार सागर का पान करने वाले, तथा मोक्षद्वार प्रदान करने वाले की जय हो । हे जगत्पते ! देव ! संसार रूपी समुद्र में निमग्न मुझे देव, गोपते ! आप हस्तावलम्बन (अपने हाथ का सहारा) प्रदान करें । शंकर भी इस प्रकार अंग पूर्ण भानु की प्रयत्न पूर्वक स्तुति तथा महाराज सूर्य को शिर से प्रणाम करके चुप हो गये । ६०-६१। इसके पश्चात् राजशार्दूल ! महातेजस्वी विष्णु ने हाथ जोड़कर भक्ति एवं श्रद्धापूर्वक सूर्य से कहा— ॥७०

विष्णु बोले—देवाधिदेव, जीवों को उत्पन्न करने वाले, अनश्वर, दिवाकर, भानु, मार्तण्ड, भास्कर

इन्द्रं विष्णुं हरिं हंसमर्कं लोकगुरुं विभुम् । त्रिनेत्रं अक्षरं अहं त्रिमूर्ति त्रिगतिं शुभम् ॥७२
 षष्ठ्युखाय नमो नित्यं त्रिनेत्राय नमोनमः । चतुर्विशतिपादाय नमो द्वादशपाणये ॥७३
 नमस्ते शूतपतये लोकानां पतये नमः । देवानां पतये नित्यं वर्णनां पतये नमः ॥७४
 त्वं ब्रह्मा त्वं जगन्नाथो रुद्रस्त्वं च प्रजापतिः । त्वं सोमस्त्वं तथादित्यस्त्वमोकारक एव हि ॥७५
 ब्रह्मस्तिर्बुधस्त्वं हि त्वं शुक्रस्त्वं विभादम् । यमस्त्वं दृश्णस्त्वं हि नमस्ते कश्यपात्मजः ॥७६
 त्वया ततमिदं सर्वं जात्यावरज्जगमन् । त्वत् एव शमुत्पन्नं सदेवानुष्मम् ॥७७
 ब्रह्मा चाहं च रुद्रश्च शमुत्पन्ना जगत्पते । कल्पादौ तु पुरा देव विष्टये लग्नोऽनन्ध ॥७८
 नमस्ते पेदरूपाय अहोल्पाय दै नमः । नमस्ते ज्ञानरूपाय ज्ञाय च नमोनमः ॥७९
 प्रसीदास्मामु देवेरा शूतेश किरणोऽच्चल । संसारार्णवप्रगतानां प्रसादं कुरु गोपते ॥
 वेदान्ताय नमो नित्यं नमो यज्ञकलाय च ॥८०

सुमन्तुरस्वाच्छ

स्तुत्वैवं भास्करं भक्त्या दिष्ट्युभरतसत्तम । प्रदध्यौ नृपशार्दूल रविं तद्रत्मानसः ॥८१
 एवं ते नरशार्दूल देवा ब्रह्माद्योऽनन्ध । स्तुत्वन्ति तं नहात्मानं सहस्रकिरणं रविम् ॥८२
 इत्येवं स्तुततां तेषां रविं भक्त्या महात्मनाम् । अयं तुष्टो रविस्तेषां ब्रह्मदीनां जगत्पतिः ॥८३
 विज्ञाय भक्तिं परमां श्रद्धां च परमां विभुः । उवाच स महातेजाः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥८४

भग, एवं रवि को नमस्कार है । इन्द्र, विष्णु, हरि, हंस, अर्क, लोक के गुरु, विभु (व्यापक), तीन नेत्र वाले, तीन अक्षर (ओम) वाले, तीन अंग वाले, तीन मूर्ति वाले, तीन जाति (गढ़डे या छिद्र) वाले एवं छह मुख वाले को नमस्कार है, त्रिनेत्र को नित्य नमस्कार है, चौबीस चरण तत्व एवं बारह हाथ (मांस) वाले को नमस्कार है । ७१-७३। भूत पति को नमस्कार है, लोक के पति को नमस्कार है, देवों के पति एवं वर्णों के पति को नित्य नमस्कार है, तुम्हीं ब्रह्मा, जगन्नाथ, रुद्र, प्रजापति, सोम, आदित्य, तथा ओंकार हो । ब्रह्मस्ति, बृथ, शुक्र, विभादम्, यम, और वरण भी तुम्हीं हो । हे कश्यपात्मज ! तुम्हें नमस्कार है । स्थावर जंगम रूप इस जगत् को तुम्हीं ने विस्तृत, एवं देव, असुर और मनुष्य तुम्हारे द्वारा उत्पन्न हुए हैं । ७४-७७। हे जगत्पते ! ब्रह्मा, मैं तथा रुद्र भी तुम्हारे ही द्वारा कल्प के आदि काल में देव, अनन्ध ! जगत् की स्थिति आदि के लिए उत्पन्न हुए हैं । वेदरूप आपको नमस्कार है, दिन रूप आप को नमस्कार है, ज्ञान रूप एवं यज्ञरूप आप को बार-बार नमस्कार है । हे देव, भूतेश किरणों से समुज्ज्वल ! आप हम लोगों पर प्रसन्न हों, हे गोपते ! संसार-सागर में डूबते हुए हम लोगों पर आप कृपा प्रदान करें । वेदान्त तथा यज्ञ के कलारूप को नित्य नमस्कार है । ८८-८०

सुमन्तु बोले—भरत सत्तम ! इस प्रकार भक्ति पूर्वक विष्णु ने भास्कर की स्तुति करके नृपशार्दूल ! तन्मय होकर सूर्य का ध्यान किया । नरशार्दूल, अनन्ध ब्रह्मादिक देवताओं ने इस प्रकार सहस्र किरण वाले महात्मा सूर्य की स्तुति की । इस प्रकार भक्ति पूर्वक सूर्य की स्तुति करने वाले महात्मा ब्रह्मादि देवों पर जगत्पति सूर्य अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन लोगों की उत्तम भक्ति एवं अत्यन्त श्रद्धा पूर्ण भक्ति को देखकर अन्तः करण से प्रसन्न होकर महातेजस्वी सूर्य ने जो ग्रहेश, आकाश स्थित, अपने तेज से दिशाओं

श्रद्धेशो व्योम चाल्डस्तेजसा प्रज्ञतन्त्रिशः । ब्रह्मां विष्णुभीशानमामन्त्येतान्विशांपते ॥८५

दृष्ट्वा तान्वणतान्त्सर्वाङ्गिरोभिरथनि गतान् । तुष्टोऽस्मि ते सुरज्येष्ठ चतुर्मुख जगत्पते ॥

यरं वरय भद्रं ते मनसा त्वं यविच्छुसि ॥८६

श्रुत्वा तु वचनं भन्तोऽहम् लौकगुरुर्नपे । जगाम शिरसा मूभावुवाच स कृताञ्जलिः ॥८७

श्रुत्वोवाच

कृतकृत्योऽस्मि देवेश सूतश्चास्मि सागाधिषः । द्यन्योऽस्यनुगृहीतोऽस्मि गतोऽस्मि शरदां गतिम् ॥८८

श्रुत्वाक्लिर्गैर्यन्ते भवान्वर्तनश्चापातः ॥८९

अपश्यतश्च देवेश मूढमातीन्पत्ने भम । भगदन्तस्त्रसीद त्वं यमोषरि विभ्रावसो ॥९०

श्रव्यन्ते त्वं बलं भक्तिमात्मनो भम गोपते । गत्वा शिरोभिर्द्वनिश्छाङ्गः पतितस्य च ॥

अन्त्या विज्ञनिमाकार्यं प्रसादं कुरु गोपते ॥९१

ब्रह्मो वचनं श्रुत्वा पूषा देशो जगत्पतिः । तथेत्याह महाराज विरच्छ अश्यान्वितम् ॥९२

श्रुत्वागे च वरं दत्त्वा राजन्देवो दिवाकरः । उवाच अर्यम्बकं देवं शशाङ्ककृतरोखरम् ॥९३

वरं वरय मूत्रेश मूमृज्जादीयतानन्ध । यमिच्छति महादेव ददेहं तदशेषतः ॥९४

भास्करस्य वचः श्रुत्वा ईश्वरस्त्रिपुरान्तक । गत्वा तु शिरसा मूमौ इगम्योवाच भास्करम् ॥९५

महादेव उवाच

पुण्योऽहं पुण्यकर्माहं नास्ति धन्यतरो भम । गतोऽहं परमां सिद्धिं गतइच्च भरमां गतिम् ॥९६

को प्रकाशित किये हैं, ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव को बुलाकर विशांपते ! उन देवों को पृथ्वी में नतमस्तक हो प्रणाम करते टेल कर उनसे कहा—सूरज्येष्ठ, चतुर्मुख, एवं जगत्पते मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण है, अपनी अभिलाषानुसार वर की याचना करो । नृप सूर्य की ऐसी बातें सुनकर लोक के गुरु ब्रह्मा ने धतमस्तक हो प्रणाम पूर्वक हाथ जोड़कर कर कहा । ८१-८७

ब्रह्मा बोले—सहस्र किरणों समेत आपने मुझे दर्शन दिया है, अतः मैं कृतकृत्य हुआ तथा देवेश ! पवित्र हो गया । आकाशचारिन् ! धन्य तथा अनुग्रहीता होकर मुझे उत्तम गति प्राप्त हो गई । हे देवेश ! आपके दर्शन के बिना मेरा मन जड़ हो गया था, हे भगवन् ! हे विभावसो ! मेरे लिए आप प्रसन्न हों और गोपते ! मुझे अपनी भक्ति एवं बल प्रदान करें । अष्टाग ममेत शिर से पृथिवी में मैं नमस्कार कर रहा हूँ, हे गोपते ! भक्ति पूर्वक इस विज्ञप्ति को सुनकर मुझे कृपा प्रदान करें । महाराज ! ब्रह्मा की ऐसी बातें सुनकर जगत्पति सूर्य देव ने अपने आश्रित ब्रह्मा के लिए 'तथास्तु' शब्द का उच्चारण कर स्वीकृति प्रदान किया । ८८-९२ । हे राजन् ! सूर्य देव ने ब्रह्मा को वर प्रदान कर शशांक शेखर महादेव शिव मेरे कहा—भूतेश ! पार्वती प्रिय, अनधि ! अपने मनोनीत वर की याचना कीजिए महादेव ! आप की इच्छानुसार मैं सभी कुछ प्रदान करूँगा । भास्कर की बातें सुनकर त्रिपुरानाशक ईश्वर (शिव) ने भूमि परे शिर टेककर भास्कर को प्रणाम करके उनसे कहा— । ९३-९५

महादेव बोले—मैं पुण्य रूप हूँ, पुण्य कर्मा हूँ, एवं मेरे समान कोई धन्यतर नहीं है । आज मुझे

नाप्राप्यमस्ति देवेश नासाध्यं मम किञ्चन । यस्य मे भगवान्देवः प्रसादप्रदणः स्थितः ॥९७
त्वया तत्त्विदं सर्वं जगत्स्थावरजडगमम् । त्वत् एव समुत्पन्नं लयं च त्वयि यास्यति ॥९८
यदि तुष्टो मम किञ्चो अनुग्राहयोऽस्मि ते यदि । अदत्तां देहि मे भक्तिमहामनङ्गरणं नय ॥९९
व्योमदेशबचः श्रुत्वा पूजा देवो दिवाकरः । तथेत्याह हरं वीरं ततो हरिमुवाच ॥१००
नारायणं महाबाहो वरं दरय गोधर । परितुष्टोऽस्मि महाबल ॥१०१
श्रुत्वा तु भास्त्करवचः कीलालजनको हरिः । उवाच परया भक्त्या नत्वा च शिरसा रविम् ॥१०२

नारायण उवाच

जय देव जगन्नाथ जय देव गुरो रवे । प्रसीद मम देवेश भक्तिं दच्छात्मने रवे ॥१०३
येनाहं शर्वदेवानामुत्तमः स्यां जगत्पते । अजेयश्च तथः देव दैत्यदानवरक्षसाम् ॥१०४
त्वद्भूत्या बृहतिबलस्तेजसा महतान्वितः । ततो मम्या महत्कर्म कर्तव्यं तव शासनाद् ॥१०५
प्रजानां पालनं देव देवानां च प्रहारिधिप । वर्णनामाचामाणां च वर्णर्धमस्य वा किञ्चो ॥१०६
तुष्टदैत्यविनाशाय लोकानां पालनाय च । सृष्टोऽहं भवता पूर्वं कल्पादौ च दृश्टोऽनन्ध ॥१०७
यस्य रुष्टो भवान्स्याद्वै कण्ठित्पृष्ठस्य तु । व्याधिर्दुःखं मनोरोगं दारिद्र्यं सन्ततिक्षयः ॥१०८
तस्यैतानि भवन्तीह आधयो विविधास्तथा । तस्मात्वं च ततो देव संस्तव्यः सततं दुष्टः ॥१०९

उत्तम सिद्धि एवं उत्तम गति प्राप्ति हो गई । हे देवेश ! अब मेरे लिए कुछ भी ग्रेप्राप्य एवं असाध्य नहीं है क्योंकि प्रसन्नता पूर्णं भगवान् (सूर्य) देव (आप) मेरे सम्मुख स्थित हैं । स्थावरं जंगम रूप इस जगत् को आपने ही विस्तृत किया है, और आप से उत्पन्न भी हैं, एवं इसका लय भी आप में ही होगा ; किञ्चो ! यदि आप प्रसन्न हैं, और मेरे ऊपर अनुग्रह करना चाहते हैं, तो अपनी निश्चल भक्ति एवं अपने चरण की रोवा प्रदान कीजिए । उपरांत व्योम केश (शिव) की बातें सुन कर सूर्य ने हर के लिए 'तथा' कहकर स्वीकृति प्रदान की और उसके पश्चात् विष्णु से कहा—नारायण, महाबाहो ! धराधर ! अब अपने इच्छानुसार वर की याचना कीजिए । देव, महावल ! मैं बहुत प्रसन्न हूँ, भास्त्कर की ऐसी बातें सुनकर कीलाल जनक विष्णु ने अत्यन्त उत्तम भक्ति पूर्वक शिर से नमस्कार करते हुए रवि से कहा— । १६-१०२

नारायण बोले—देव, जगन्नाथ की जय हो, गुरुदेव सूर्य की जय हो, देवेश ! आप मेरे लिए प्रसन्न हों । रवे ! आप मुझे अपनी भक्ति प्रदान कीजिए । १०३। जगत्पते ! जिसके कारण मैं सभी देवों से श्रेष्ठ हो जाऊं तथा देव ! दैत्य, दानव, एवं राक्षसों का अजेय भी क्योंकि आपकी भक्ति द्वारा अपने बल को बढ़ाकर तथा महान् तेज सम्पन्न होकर मुझे आप की आज्ञानुसार महान कार्य करना है । देव ! ग्रहाधिप एवं विञ्चो ! प्रजाओं देवों, वर्ण, एवं आश्रमों का मुझे पालन करना है । हे अनन्ध ! दुष्टों एवं दैत्यों के विनाश, तथा लोकों के पालन करने के लिए ही आप ने कल्प के आटि में मेरी सृष्टि की है । आप जिस प्राणी पर रुष्ट हो जाते हैं, उसके व्याधि, दुःख रोग, दारिद्र्य, संतान-नाश, तथा भाँति-भाँति के मानसिक दुःखों की उत्पत्ति होती है । देव ! इसलिए विद्वान् को चाहिए कि निरंतर आप की स्तुति पूजन करता

ददं त्वं गोपते देवं भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । अहमर्च्छितुभिच्छारि तस्मान्तयि कृपां कुरु ॥११०
 इति श्रीभविष्ये ऋहपुराणे ब्राह्मे पर्यणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सूर्यतेजोवर्णनं
 नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततदमोऽप्यग्नः ॥१५३।

अथ चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽप्यायः त्रिदी-उपाख्यानवर्णनम्

सुमन्तु लक्ष्मी

श्रुत्वा तु वचनं भानुषिठ्ठरमित्वेजसः । उवाच कुरुशार्दूलं आदित्यः कृपयान्वतः ॥१

आदित्य उवाच

कृष्ण कृष्ण महाबाहो शृणु मे एवं च । यद्यन्यं प्रार्थितः कृष्ण तत्सर्वं ते भविष्यति ॥२
 देवदानदयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसात् । अजेयस्त्वं महाबाहो भविष्यति न संशयः ॥३
 जगत्यालयितुं तर्वं समर्थश्च भविष्यति । अचला तत्र भक्तिश्च भविष्यति ममोपरि ॥४
 अहमपि सततं शक्तो जगत्कर्ष्णं भविष्यति । संतुर्तुं शङ्करश्चापि मत्प्रसावाद्विष्यति ॥५
 भवन्तो मत्प्रसादेन ज्ञानिनामुत्तमं पदम् । गमिष्यन्ति न सन्देहो मत्यूजाप्रसादतः ॥६
 रवेर्दद्नमाकर्ण्य गोश्रुताभरणो विभो । उवाच गोपतिर्गोगो गोपति गोवृष्टवजः ॥७

रहे इस प्रकार गोपते, देव ! भक्ति एवं श्रद्धापूर्दक मैं आपकी पूजा करना चाहता हूँ, इसलिए मुझे कृपापात्र बनायें । १०४-११०

श्री भविष्य महापुराणमें ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सूर्य तेजोवर्णन नामक
एक सौ तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥१५३।

अध्याय १५४

त्रयीउपाख्यान का वर्णन

सुमन्तु बोले—कुरुशार्दूल ! अपने तेज वाले विष्णु की ऐसी बातें सुनकर सूर्य ने कृपा करते हुए
उनसे कहा— १

आदित्य बोले—कृष्ण, कृष्ण ! महाबाहो ! मेरी बातें सुनो, जिसके लिए मेरी प्रार्थना की है ।
 कृष्ण ! उन सब की सफलता प्राप्त होगी । २। महाबाहो ! देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व नाग, एवं राक्षसों के
 लिए तुम्हारे अजेय होने में संशय नहीं है । ३। समस्त जगत् के पालन करने के लिए समर्थ होते हुए तुम में
 मेरी अचला भक्ति उत्पन्न होगी । ४। मेरी प्रसन्नता वश बन्हा जगत् की सृष्टि करने तथा शक्त भी जगत्
 के संहार के लिए समर्थ होंगे । ५। मेरी पूजा करने से प्राप्त प्रसन्नता के कारण आप लोग सभी ज्ञानियों से
 उत्तम पद की प्राप्ति करेंगे इसमें संशय नहीं । ६। विभो ! इस प्रकार सूर्य की बातें सुनकर कुछल
 विभूषित कान वाले, पृथिवी पति एवं गाय, वृष की श्रूति संपन्न ध्वजा वाले विष्णु ने किरणयति

त्वामाराध्य भविष्यामो वयं स्वर्णं सुरोत्तमाः । कथमाराध्यामो हि भद्रन्तं श्रद्धयान्विताः ॥
श्रेयसे सततं देव ब्रूहि नस्तत्त्वमात्मनः ॥१८
भवतो हि न पश्यत्मो मूर्ति परमपूजितम् । पश्यामः केवलं तेजो हृष्टेत्तोयमिवोज्जितम् ॥१९
ज्यालामालात्माहुलं तर्वमनेकाङ्गति चाद्वृतम् । न चाकारविहीनं तु चेतसो लम्बनं भवेत् ॥२०
आलम्बनादृते देव न चित्तरमणं व्यवचित् । चेतसोरमणे भक्तिं युसां जायते स्वचित् ॥२१
भद्रितं भविना पूजयितुं न शक्यन्ते दिवौक्षसः । त्वत्पूजने हि प्राप्यन्ते देव धर्मादये नहैः ॥२२
तत्प्रादृश्यं तां मूर्तिमात्मनो या परा मता । येन त्वां पूजयित्वा तु वयं सिद्धा भवामहे ॥२३

सूर्य उवाच

साधु साधु महादेव साधु पृष्ठोऽस्मि मुव्रत । शृणु चैकमनाः कृत्स्नं गदतो नम भानव ॥१४
चतुर्भूर्तिरहं देव जगद्व्याप्य व्यवस्थितः । श्रेदते सर्वलोकानामादिमध्यान्तकृत्सदा ॥१५
एका मे राजसी मूर्तिर्बहुतेति परिकीर्तिता । सृष्टिं करोति सा नित्यं कल्पादौ जगतां विभो ॥१६
द्वितीया सत्त्विकी प्रेक्षता या परा परिकीर्तिता । जगत्सा पालयेत्प्रित्यं दुष्टदैत्यविनाशिनी ॥१७
तृतीया तामसी ज्ञेया ईशेति परिकीर्तिता । त्रैलोक्यं संहरेत्सा तु कल्पान्ते शूलपाणिनी ॥१८
चतुर्थी तु गुणीर्हना सत्यादिभिरनुत्तमा । सा चाशक्या क्वचिद्द्रष्टुं स्थिता सा चाभवत्सदा ॥१९

(सूर्य) से कहा—आप की आराधना करके हम लोग श्रेष्ठ देव हो जायेंगे, पर श्रद्धालु होकर हम लोग किस प्रकार आप की आराधना करें । हे देव ! निरन्तर हम लोगों के कल्पाणार्थ अपनी (पूजा आदि की) मार्मिक बातें बताने की कृपा कीजिए । ७-८। आपकी परम पूजनीय मूर्ति को हम लोग नहीं देख रहे हैं, समुद्र द्वारा त्यक्त जल की भाँति केवल आप के तेज का ही दर्शन कर रहे हैं । ९। ज्यालारूपी मालाओं से परिवेष्टित, सम्पूर्ण अनेक आङ्गति युक्त, एवं अद्भुत होते हुए भी वह आकार हीन होने के नाते चित्त की स्थिति में होने का स्थान नहीं हो सकती है । हे देव ! जब तक चिन्त का कोई आलम्बन नहीं होता है, तब तक वह अनुरक्त नहीं होता है, तथा अनुराग हीन पुरुषों में भक्ति उत्पन्न नहीं होती है, और भक्ति से शून्य होकर कोई भी (सूर्य) देव की पूजा नहीं कर सकता है । हे देव ! मनुष्य लोग आप को ही पूजा करके धर्म और अर्थ आदि की प्राप्ति करते हैं । अतः आप अपनी उस उत्तम मूर्ति का दर्शन प्रदान करने की कृपा करें, जिससे आप की पूजा करके हम लोग सिद्धि प्राप्त कर सकें । १०-१३

सूर्य बोले—साधु, साधु, महादेव ! आपने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है, मुव्रत ! सावधान होकर सुनो ! मानद ! मैं सब कुछ बता रहा हूँ । १४। देव ! चार प्रकार की मूर्ति धारण कर मैं समस्त लोकों के कल्पाणार्थ, एवं उसकी उत्पन्नि स्थिति तथा लय करने के लिए जगत् में व्याप्त होकर स्थित हूँ । १५। विभो ! एक मेरी राजसी रजोगुणमयी मूर्ति ब्रह्मा के नाम से विस्त्रयात है, वह कल्प के आरम्भ काल में समस्त जगत् की सृष्टि का कार्य करती है । १६। दूसरी मेरी सात्त्विकी सतोगुणमयी, मूर्ति जो परा सबसे (उन्कृष्ट) के नाम से स्वाति प्राप्त किये हैं, दुष्टों एवं दैत्यों का विनाश करने वाली वह मूर्ति नित्य जगत् का पालन करती है । १७। तीसरी तामसी, (तमोगुण मयी) मूर्ति ईश के नाम से प्रस्त्रयात है, वह कल्प के अंतकाल में शूल हाथ में लेकर तीनों लोकों का सहार करती है । १८। चौथी मेरी मूर्ति (सत्त्व आदि) गुणों में हीन, एवं सत्यादि में युक्त होकर सदैव स्थित रहती है, किन्तु, उसका दर्शन करने में सभी असमर्प

तथा तत्सिद्धं सर्वं अच्छोदगीयं तु भे गतिः । निष्कला सकलः सा तु मुख्या रूपवर्जिता ॥२०
 अन्तर्गतां च लोकानां न च कर्मफलं गता । तिष्ठमानाप्यलिप्ता सा पश्यपत्रमिवाम्भसा ॥२१
 अस्यष्टाच्च सत्त्वा दण्डिः सप्तातीत्य व्यवस्थिता । चतुस्त्वनाच सा वृद्ध्यस्तु रीयात्या मुप्तजिता ॥२२
 न सा स्त्रपृष्ठं तथा शक्या हरिणा ब्रह्मणा न च । मामनाराष्ट्रं भूतेश व्योमस्त्रं क्रदाचन ॥२३
 देवेतद्वाहां देव प्रबोधार्थमुपस्थितम् । अहंकारविमूढानां तमसा च त्रिलोचन ॥२४
 प्रकाशात्य च लोकानां ज्ञातालाभालासमाकुलम् । कणिनेव त्वितं देवमूपप्रस्यालिलस्य च ॥२५
 यस्य लन्धनादेव युयं सर्वं द्वयोधिताः । प्रकाशमभद्रादि जत्तर्वभयार्चिभिः ॥२६
 तस्मादाराधयस्यैनमस्युष्टं शमनोपमम् । मन्मूर्ति येन हां दिव्यां द्वयसि त्वं त्रिलोचन ॥२७
 यत्त्वाद्याहीडवरं जडं तद्व्योम परिकीर्तितम् । कल्पात्ते हृष्ट्र वै व्योमिन्न लीयन्ते सर्वदवताः ॥२८
 दक्षिणे लीयते धूशा वासे तस्य जटार्दनः । त्वं सदा कर्चदेशे तु लीयसे त्रिपुरान्तक ॥२९
 गायक्षो लीयते तस्य हृष्ट्रे लोकमातरः । लीयन्ते मूर्धिद्वये वै वेदः सषडङ्गपदक्रमः ॥३०
 जठरे लीयते जडं अग्नस्थानशरवृग्माम् । युनरुत्पद्यते हृस्माद्ब्रह्माद्यां सचराचरन् ॥३१
 आकाशं व्योम हत्याहुः पृथिवी निष्कुभा भता । भूतत्रेयोहृभाकाशो निष्कुभा दयिता मम ॥३२
 मध्या निष्कुभया सर्वं जलद्व्याप्तं त्रिलोचन । तस्मादाराधय व्योम त्वं ब्रह्मा केशवस्तथा ॥३३

हैं ॥१९॥ उसी द्वारा वह भग्नर्ण जगत् विस्तृत हुआ है और सामवेद में मेरी जाति की व्याख्या भी की गई है । वह कलाहीन, कलारामेत, सौन्दर्यं पूर्णं एवं रूपहीन भी है । २०। लोकों के अन्तः स्थल में स्थित रहते हुए भी वह कर्म फल की भागिनी नहीं होती है, एवं इन लोकों में जल में स्थित कमल पत्र की भाँति वह सदैव निर्लिप्त रहती है । इस प्रकार (ईर्ष्या आदि) इन छहों के स्पर्श से हीन तथा सातों (लोकों) को आक्रान्त कर वह स्थित है । इसके चार (वेद) स्तन हैं, छहों (शास्त्रों) से भली भाँति पूर्जित हैं, तथा 'तुरीय' (चौथी) के नाम से विश्वविल्यात हैं । २१-२२। तुम, ब्रह्मा एवं विष्णु कोई भी उसका स्पर्श तक नहीं कर सकते हो भूतेश ! जब तक कि मेरे व्योम रूप की पूजा नहीं करोगे । २३। देव ! अहंकार एवं अन्धकार से जड़ भाव प्राप्त आप लोगों के सम्मुख प्रबोधनार्थं (ज्ञानार्थं) जो यह उपस्थित है, तथा ज्ञाता हूपी मालाओं से घिरा, समस्त पृथिवी हूपी कमल की कणिका की भाँति लोकों के प्रकाशनार्थ स्थित, और जिसके केवल दर्शन मात्र से तुम्हें ज्ञान उत्पन्न हुआ, एवं उसकी किरणों द्वारा जगत् प्रकाशमय हो गया है, आकाश की भाँति (विस्तृत) एवं निर्लिप्त उस (तेजोमय) की आराधना करो, त्रिलोचन, जिससे मेरी उस दिव्य मूर्ति का दर्शन तुम्हें प्राप्त हो सके । २४-२७। यह जो प्रथम एवं ईश्वर भाव से उत्पन्न है, इसे व्योम कहते हैं, इसी व्योम में समस्त देवगण लीन होते हैं । २८। उसके दक्षिण में ब्रह्मा, वाम भाग में जनार्दन, एवं त्रिपुरांतक ! तुम सदैव कच (केश) स्थान में लीन होते हो । २९। गायत्री तथा लोकमाताएँ उसके हृदय स्थान में, षडङ्ग (छहों शास्त्रों) तथा एवं क्रम समेत वेद उसके शिर स्थान में, लीन होता है, और जठर (उदर) प्रदेश में स्थावर-जंगम रूप इस समस्त जगत् का लय होता है तथा पुनः ब्रह्मा आदि सचराचर (जगत्) की इसी द्वारा उत्पत्ति भी होती है । ३०-३१। व्योम, आकाश, तथा निष्कुभा पृथिवी रूप है, शाणियों के श्रेय (कल्पाण) के लिए मैं आकाश हूँ, एवं निष्कुभा मेरी त्रिया है । ३२। त्रिलोचन ! मैं तथा निष्कुभा मिलकर इस जगत् में व्याप्त हूँ । इसलिए तुम, ब्रह्मा एवं नारायण (तीनों)

तन्मे रूपं भहद्व्योमं पूजयित्वा त्रिलोचनं । दिव्यं वर्षसहस्रं हि गिरो त्वं गन्धमादने ॥
ततो यास्पसि संसिद्धं षडङ्गां परमां शुभाम् ॥३४॥

कलापग्राम्यमाश्रित्य शश्लक्षणगदाधरः । आराधयतु मां भहस्या व्योमरूपं जनार्दनः ॥३५
अन्तरिक्षगतं तीर्थं पुष्करं लोकपादनम् । तत्र गत्वा विरिज्ञो मे व्योमरूपं सदाचर्तु ॥३६
एवं मां सततं यूयं स्माराध्य जगत्पतिम् । स्वानां च सुदिव्यानां सहवत्रयमादरात् ॥३७
ततो दक्षय मे मूर्ति परमां यां विदुर्बुधाः । इदम्बगोलकाकानां रश्मिमाताकुलां पराम् ॥३८
अथ नारायणो देवः प्रणम्य शिरसा रदित् । इताञ्जलिपुटो भूत्वा इदं वचनमब्लवीत् ॥३९

विष्णुरुद्वाच

यदि ते परमं रूपं मतं व्योमहृत्यैषभम् । तत्पाराध्य वर्यं सर्वे यात्याशः सिद्धिमुन्तमाम् ॥४०
कीर्त्यव्योमं त्वं हृष्टाहरस्च त्रिपुरान्तकः । आराधयामहे देव भक्त्या श्रेयोर्धर्मात्मनः ॥४१
येन सिद्धिं गमिष्यामस्तमाराध्य दिवाकरम् । तस्मान्नो लक्षणं ब्रूहि व्योमः परमपूजित ॥४२

इति श्रीभविष्ये भहाषुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमोक्त्ये सौरर्घर्मे अव्युपाख्याने

चतु:पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः । १५४।

व्योम की आराधना करो । ३३। त्रिलोचन ! गंधमादन पर्वत दर मेरे महान् व्योम रूप की पूजा एक सहस्र दिव्य वर्ष तक करते हुए तुम लोग उत्तम एवं शुभ षडङ्ग समेत सिद्धि प्राप्त कर सकोगे । ३४। शख, चक्र, एवं यदा धारण करने वाले जनार्दन कलाप (काढ़ी) नगर में स्थित होकर भक्ति पूर्वक मेरे व्योम रूप की आराधना करें । ३५। उसी प्रकार ब्रह्मा अंतरिक्ष में स्थित एवं लोक को पवित्र करने वाले उस प्रकार तीर्थ में प्राप्त होकर मेरे व्योम रूप की सदा आराधना करें । इस प्रकार तुम लोग मुझ जगत्पति की आराधना तीन सहस्र दिव्य वर्ष तक करने के उच्चात् कदंब की भाँति गोलाकार वाली एवं किरण रूपी मालाओं से व्याप्त, उस मेरी उत्तम मूर्ति के दर्शन करोगे, जिससे विद्वद्गण परिचित हैं । ३६-३८। इसके उपरांत विष्णु देव ने शिर से प्रणाल कर हाथ जोड़े हुए सूर्य से यह कहा— । ३९

विष्णु बोले—यदि आपका व्योम रूप, परमोत्तम, एवं अनुपम हैं, और उसी की आराधना करके हम लोग उत्तम सिद्धि की प्राप्ति करेंगे, तो वह किस भाँति का है, अपने अपने कल्याणार्थ जिसकी आराधना मैं ब्रह्मा एवं त्रिपुरानाशक शिव करेंगे । हे परमपूजित ! जिसके द्वारा सूर्य की आराधना करके हम लोग सिद्ध हो जायेंगे, उस व्योम का लक्षण हमें बताने की कृपा करें । ४०-४२

श्री भविष्य भहाषुराण में भात्यर्घर्म के सप्तमोक्त्ये में त्रयी-उपाख्यान वर्णन
नामक एक सौ चौवनवाँ अध्याय समाप्त । १५४।

अथ यज्ञपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मनिरूपणम्

आदित्य उवाच

साधु साधु सुरभेष्ठ साधु पृष्ठोऽस्मि भूधर ! भृणु व्यक्तमना : कृष्ण गदतो निखिलं मम ॥१
 अत्यरथयत्वय देखो भम रूपमनोपमम् । चतुष्प्रोणं परं व्योम अद्भुतं जैरिकोज्ज्वलम् ॥२
 स्वामाराष्ट्रं च चक्राङ्कं शहकरो वृत्तमावरात् । शब्दादौ सततं ब्रह्म सगरादौ त्रिलोदतः ॥३
 गच्छाहे त्वं सदा देव भक्त्या भास्मर्चयस्व वै । यथेष्टवृद्धमः तर्जनं भक्त्या मां पूजदन्तु इ ॥४
 ततो ब्रह्मदयो देवाः श्रुत्वा दाष्टदं विभावत्सोः । प्रणम्य शिरसा तर्व इदं वचनमसुवन् ॥५
 धन्या देव दयं सर्वे कृतकृत्यस्तथैव च । अस्मामिर्भगवान्यज्ञस्तेजसा प्रज्वलन्ति च ॥६
 सम्भूता ज्ञानिनः सर्वे भवतो दर्शनाद्यम् । तमोमोहत्तथा तन्द्रा सर्वमेकपदं गतम् ॥७
 दयं त्वन्मूर्तयः सर्वे तेजसः तदं संवृताः । उत्पत्तिस्थितिनाशाय लोकानां तदं शासनात् ॥८
 स्थिताः सर्वे भूरज्येष्ठ लोकपालाश्च इत्तन्नशः । अथुना साध्यामेह व्योम्नः पूजां व्रजामहे ॥९
 इत्यं तेषां बदः श्रुत्वा भास्करो वारितस्करः । उवाच ब्रह्मविष्णवीशान्सामपूर्वमिदं दद्वः ॥१०

आदित्य उवाच

एवमेतत्र सन्देहो यदा ददय सुव्रताः । यूयं मन्त्रूर्तयः सर्वे युष्माकमहमेव हि ॥११

अध्याय १५५

सौरधर्मनिरूपण वर्णन

आदित्य बोले—सुरभेष्ठ ! साधु ! साधु ! भूधर ! (तुमने) अत्युत्तम प्रश्न किया है, कृष्ण ! मैं उन सभी दातों को दाता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ।१। चौकोर, उत्तम, अद्भुत एवं चांदी की भाँति समुज्ज्वल, उस मेरे देव रूप की आराधना करो ।२। देव ! भक्ति पूर्वक मध्याह्न में मेरी पूजा करो और सभी देवगण भी मेरी पूजा इच्छानुसार करें ।३। पश्चात् ब्रह्मादि देवगण सूर्य की ऐसी बात सुनकर शिर से उन्हें प्रणाम करते हुए यह कहने लगे कि देव ! गोलाकार (वृत्तरूप) आप की आदरपूर्वक आराधना करके सब कुछ निगल जाने वालों में (जहर तक पी जाने वालों में) कल्याणकारी शिव की तथा शब्द में ब्रह्म (ब्रह्मा) की आदि (प्रथम) स्थिति बनी । हम लोग धन्य हैं, तथा कृतकृत्य भी हो गये, क्योंकि हम लोगों ने आप से (सभी कुछ) प्रश्न किया, उसके परिणाम स्वरूप आप के दर्शन द्वारा तेज युक्त एवं ज्ञानी होते हुए हम लोगों का तम, तथा भोवृश उत्पन्न तंद्रा (आलस्य) आदि ये सभी (आपके द्वारा) एक शब्द के उच्चारण करते ही नष्ट हो गये ।४-९। हम लोग तेजोमय आप की मूर्ति के समान हो गये । हे सुरज्येष्ठ ! आपके शासनाधिकार में स्थित रहकर (जगत् की) उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश कार्य के नियम पालन के लिए दृढ़ होते हुए हम लोग अब भली भाँति लोक-पाल पद पर प्रतिष्ठित हो गये । अब इस समय व्योम की पूजा को साधन संपन्न करने के लिए हम लोग यहाँ से प्रस्थान कर रहे हैं ।८-९। इस प्रकार उडनकी ब्राते सुनकर जल चुराने वाले भास्कर ने ब्रह्मा, विष्णु एवं शंकर से शांतिपूर्वक यह कहा ।१०

आदित्य बोले—सुद्रत ! आप जैसा कह रहे हैं वैसा ही है । इसमें संदेह नहीं । आप लोग मेरी ही मूर्ति

यदेतदर्थनं देवः प्रमाणं च यदुत्तमम् । ज्वालामालाकुलं शुश्रे शांडिलेयमिदोऽन्यतम् ॥१२
 युष्माकं देवशार्दूलास्तश्चिवोधत कारणम् । अहृकारविष्टानां मिथः कलहिनां तथा ॥१३
 प्रबोधार्थं हि युष्माकं तमसो नाशनाय च । प्रवर्तनाय सर्वेषां कर्मणां च प्रवर्शितम् ॥१४
 तस्मादेवं निदित्वा तु नाहृकारः कदाचन । कर्तव्यो मूत्रिमिळ्डिद्विः सततं देवसत्तमाः ॥१५
 मानं दर्पस्तद्विकारं पूर्वं त्यक्त्वा सुदूरतः । आराधयत भाग्यक्त्वा सततं श्रद्धान्विताः ॥१६
 ततो द्रष्टव्यम् में रूपं सकलं निष्कलं द यत् । यस्य सन्दर्भनदेव सर्वं सिद्धिमवाप्यथ ॥१७
 एवमुक्त्वा महाराज सहवकिरणो विभुः । जगत्मादर्शनं तेषां पश्यतामेव भारत ॥१८
 अथ ते विस्मिताः सर्वे ज्ञातिष्ठुपिनाकिनः । तेजसा तस्य देवस्य भावकरस्य महीजसः ॥१९
 परस्परमयोचुस्ते विस्मयेन तदा नृप । अहो महात्माऽयं देवोऽवितिवुत्रो दिवस्ततिः ॥२०
 बृहद्वानुर्महातेजा लोकटीयो विभावभुः । येन सर्वे वयं ब्राता निष्पत्ता विपुलं तमः ॥२१
 आराधयादस्तं सर्वं ज्ञत्वा स्थानानि कृत्स्नशः । येन सर्वे इयं तस्य प्रसादात्सिद्धिमाप्नुमः ॥२२
 तदल्पोम पूर्जयित्वा तु परया श्रद्धया विभोः । आमंत्र्य ते मिथः सर्वे गताः पूजार्थमादरात् ॥२३
 जगाम पुङ्करं ब्रह्मा शालग्रामं जनार्दनः । वृषभध्वजो गतो वीरं पर्वतं गंधमादनम् ॥२४
 त्यक्त्वा मानमहृद्विकारं कुर्वतस्तप उत्तमम् । आराधयन्ति तं देवं भास्करं वारितस्करम् ॥२५

हो और मैं भी तुम लोगों का ही हूँ । तुम लोगों को इस उत्तम रूप का दर्शन हुआ जो ज्वाला रूपी मालाओं से व्याप्त है, शुश्रे (स्वच्छ) एवं पूर्वक् रखी गयी प्रदीप्त अग्नि की भाँति है । उस (दर्शन) में आप ही लोग प्रमाण (साक्षी) हैं । तुम लोगों को ऐसे रूप का दर्शन कैसे प्राप्त हुआ इसका कारण भी सुनिये ! ११-१२। अभिमानवश विशेष मूढता (जड़भाव) प्राप्त होने के नाते आपस में कलह करने वाले तुम लोगों के अन्धकार नाश पूर्वक प्रबोधन के लिए एवं समत्त कर्मों के प्रवर्तनार्थ तुम्हें इस रूप के दर्शन हुए हैं । १३-१४ इसलिए देवश्रेष्ठ तुम लोगों को चाहिए कि अपने ऐश्वर्य की इच्छा करते हुए तुम्हें कभी भी अहंकार न होने पाये । सर्वप्रथम दूर से ही मान, दर्प, अहंकार के त्याग करके भक्ति एवं ब्रह्मा पूर्वक मेरी आराधना करो, जिससे कला समेत, तथा कलाहीन उस मेरे रूप के दर्शन हो सकें और उसके दर्शन से तुम लोगों को सिद्धि प्राप्त हो जाये । महाराज ! भारत ! इस प्रकार सहस्र किरण वाले विभु (सूर्य) उन लोगों के देखते-देखते अन्तर्निलीन हो गये । १५-१८। इसके उपरांत वे सभी ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव देवगण महातेजस्वी भास्कर के उस तेज से अत्यन्त विस्मित हो गये । १९। नृप ! विस्मित होकर आपस में कहने भी लगे कि यह महात्मा, अदितिपुत्र, दिनपति, बड़ी किरण वाले, महातेजस्वी, लोक के दीपक एवं विभावसु (सूर्य) देव हैं जिन्होंने अत्यन्त तम के नाश पूर्वक हमारी रक्षा की है । २०-२१। हम लोग अपने निर्दिष्ट स्थानों पर पहुँच कर उनकी आराधना करें जिसमें हमें सिद्धि प्राप्त हो जाये । विभु सूर्य के उस व्योम रूप का अत्यन्त श्रद्धापूर्वक पूजन करके आपस में एक दूसरे को बुलाते हुए वे देवगण सादर पूजार्थ अपने निश्चित स्थानों को चले गये । २२-२३। ब्रह्मा पुङ्कर तीर्थ जनादन शालग्राम, और वीर ! शंकर ने गंधमादन पर्वत के लिए प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर मान एवं अहंकार के त्याग पूर्वक जल तस्कर उस उत्तम सूर्य देव की आराधना करने लगे । २४-२५। व्योम को चौकोर बनाकर ब्रह्मा, एवं

व्योमि कृत्वा चतुर्जोणं ब्रह्मः नित्यमपूजयत् । उक्ताद्विकं हरिनित्यं सम्यग्योम त्वपूजयत् ॥२६
 हरोऽपि सततं वीरं तेजसा वह्निसम्भिर्म् । अपूजयत्सदा वृत्तं व्योम भक्त्या समन्वितः ॥२७
 दिव्यवर्षसहस्रान्ते पूजयन्तो दिवाकरम् । गच्छमात्योपहारैस्तु नृत्यगीतप्रवादितः ॥२८
 अतोषयन्त्वहात्मानं कुर्वान्नास्तप उत्तमम् । भक्त्या ज्ञेन मनसा विवस्त्वत्सनुत्तमम् ॥२९
 अथ तेषां महाराज प्रसन्नो भूत्वानाधियः । दर्शयामात्त सोकात्मा युगपद्मौ विलाप्तुः ॥३०
 कृष्णात्मा च महातेजाश्रुर्दुर्घायोगतोऽनश्च । गत्वैनेन सुरश्चेष्ठं सोऽप्यवीत्पराणं वचः ॥३१
 अन्येन शङ्करं भन्ते अन्येन गणेश्वरम् । शा तत्त्वात् तत्त्वात्येन रथालङ्को विलं लक्ष्य ॥३२
 एवं योगबलाद्वानुः कृत्वान्महावद्भुतम् । उप्रे तथसि वर्तन्ते वृष्ट्यसा देनं कर्तुमुखम् ॥३३
 द्वादशतं महद्व्योमं भूगत्तर्मुखपद्मजैः । उदाच तं महाराजं प्राप्तकर्त्तव्यतुराननम् ॥३४
 यथ एवं नुरज्येष्ठ वरदं भासुपागतम् । भूत्वैवं वचनं आनोदेविभृत्यस्ताप्तैषत ॥३५
 दृष्ट्वा जगाम प्रणतो हावनिं मुखपद्मजैः । हर्षाद्वित्तुलत्तनयनः युद्धत्वाद्य भ्रात्करम् ॥
 उदाच तपरमं वाक्यं कृताञ्जलिपुर्वः स्थितः ॥३६

ब्रह्मोवाच

नमस्ते देवदेवेश नमस्ते तिभिरापह । नमस्ते भूतभव्येश भूतादे भूतभावन ॥३७
 प्रसादादं कुरु मे देव प्रसन्नोऽथ दिवाकरः । गतिरन्त्या न मे देव विद्यते त्वदृते विभो ॥३८

विष्णु ने भी चक्र से अंकित कर उस व्योम की पूजा करना आरम्भ किया और वीर ! शङ्कर ने भी अग्नि के समान प्रकाशमान वृत्तस्वरूप उस व्योम की भक्ति पूर्वक पूजा प्रारम्भ की । २६-२७। एक सहस्र दिव्य वर्ष गंध, माला आदि उपहार, नृत्य, नायन एवं कथा श्वरण द्वारा दिवाकर की पूजा करके भन्ति पूर्वक अपने निश्चय मन से किये गये उत्तम तपद्वारा उस अनुत्तम विवस्वत् महात्मा सूर्य को प्रसन्न किया । यहाराज ने प्रसन्न होकर भूवनेश्वर लोक के आत्मा सूर्य ! उन्हें एक साथ ही दर्शन दिया । अनथ ! महातेजस्वी एवं कृष्णात्मा सूर्य ने योग द्वारा चार रूप धारण कर एकरूप से सुरश्चेष्ठ ब्रह्मा से उत्तम वाणी कहा । इसी प्रकार शिव, एवं गणेश्वरज (विष्णु) के समीप अन्य अन्य रूप से वे प्राप्त हुए जो अपने चौथे रूप से रथ पर स्थित होकर आकाश में सदैव तप किया करते हैं । २८-३२। इस प्रकार अपने योगबल द्वारा सूर्य नहान् विस्मित करने वाले रूप को धारण किये । महाराज ब्रह्मा को उग्रतप करते देख कर जो अपने मुख रूपी कमलों को भूमि में स्पर्श कर उसके द्वारा उस महद्व्योम की पूजा कर रहे थे, सूर्य चर्तुमुख ब्रह्मा से बोले—सुरज्येष्ठ ! देखो, देखो ! दर प्रदान के लिए मैं आ गया हूँ । सूर्य की ऐसी बातें सुनकर ब्रह्मा ने उनकी ओर देखा । ३३-३५। देखते ही ब्रह्मा अपने मुख कमलों को पृथिवी में स्पर्श करने के द्वारा उन्हें प्रणाम करके पुनः हर्षातिरेक से विकसित नेत्र करते हुए एवं हाथ जोड़ कर उत्तम वाणी द्वारा सूर्य से बोले— । ३६

ब्रह्मा बोले—देवाधिदेव ! तुम्हें नमस्कार है । तमनाशक को नमस्कार है । प्राणियों के भव्य ईश एवं भूत भावन को नमस्कार है, हे देव ! कृपा कीजिए, दिवाकर प्रसन्न हों, आप देव, विभो ! आपके अतिरिक्त मेरी दूसरी गति (प्राप्ति) नहीं है । ३७-३८

आदित्य उदाच

एवमेव पथात्य त्वं नास्ति तत्र विचारणा । त्वं मे प्रथमजः पुत्रः सम्भूतः कारणात्युरा ॥३९
नरं दर्श भद्रं ते दरदोऽस्मि तत्वाप्रतः । यामिच्छसि सुरज्येष्ठः मा त्वं नाइकां कुरु प्रभो ॥४०

ब्रह्मोवाच

यदि मे भगवांस्तुष्टो ददाति वरभुत्तमम् । कर्तुं रक्तनोमि सृष्टिं च प्रसाहात्तव गोपते ॥
कृताकृता हि मे देव सृष्टिनैः प्रसिद्धति ॥४१

आदित्य उदाच

न पुत्रत्वमहं प्राप्तरत्व देव चर्तुर्मुख । तवात्त्वये दमिष्यामि पुत्रत्वं हि अरीक्षये ॥४२
ततो यस्याति ते सिंदु कृत्त्वा सृष्टिश्वर्तुर्मुख । भवितैव न सन्देहो भत्त्रलादाज्जगत्यते ॥४३
एवमुक्तो विरिच्छित्त्वा रविणा पृथिवीपते । तं दै व्योद्धं विवस्वन्तं लोकलाभं जगत्पतिष्ठ ॥४४
पुनराह सुरज्येष्ठः प्रणम्य शिरसा रविग् । क्व मे वासो जगत्ताथ भविष्यति दिवस्यते ॥४५

आदित्य उदाच

पन्मे रूपं महद्व्योम पृष्ठशुड्गमनुत्तमम् । तत्र देवकदन्वैस्तु भवाच्चित्यं निवृत्यति ॥४६
इद्वा पूर्वदिशो भागे आग्रेष्यां शान्डिलीमुतः । दक्षिणात्यां घमो नित्यं नैश्चित्याभ्यु निर्झृतिः ॥४७
पश्चिमायां तु वरुणो वायव्यां तु सदागतिः । उल्लरे तु दिशो भागे निर्देशद्वृत्तदस्ततः ॥४८

आदित्य बोले—जैसा तुम कह रहे हो, ठीक है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है । तुम ऐसे प्रथम पुत्र हो, कारणवश मैंने यहसे ही तुम्हें उत्पन्न किया था । सुरज्येष्ठ ! दरदान देने के लिए मैं तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ । इच्छानुसार कहो, इसमें शंका करने की आवश्यकता नहीं । ३९-४०

ब्रह्मा बोले—यदि भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न होकर उत्तम वरदान देना चाहते हैं तो गोपते ! आप की कृपा वश मैं सृष्टि कर मूँ । देव ! मैं जो कुछ सृष्टि करता हूँ उससे कोई स्वाति प्राप्त नहीं होती है । ४१

आदित्य बोले—देव चर्तुर्मुख ! मैं तुम्हारा अभिप्राय तमज गया किन्तु तुम्हारा पुत्र तो मैं नहीं हो सकता, हाँ, तुम्हारे कुल में मरीचिं के यहाँ मैं पुत्र रूप से उत्पन्न होगा । ४२। चर्तुर्मुख ! उस समय तुम्हारी सृष्टि को स्वाति प्राप्त हो सकेंगी । जगत्पते ! मेरी कृपा वश ऐसा ही होगा इसमें संदेह नहीं । ४३। पृथिवीपते ! इस प्रकार सूर्य के कहने पर ब्रह्मा ने विवस्वान् लोकनाथ, एवं जगत्पति सूर्य से न तपस्तक प्रणाम पूर्वक पुनः पूछा—हे जगत्ताथ ! दिवसाते ! मेरा निवास स्थान कहाँ होगा । ४४-४५

आदित्य बोले—गेरे महान् व्योम रूप के शिखर पर सभी देव गणों के साथ आप वहां निवास करना । पूरव दिशा में इन्द्र, आग्नेय में शांडिलीमुत (अग्नि), दक्षिण में यम, नैऋत्य में निर्झृति पश्चिम में वरुण, वायव्य में वायु, उत्तर की ओर कुबेर, ऐशान्य में शंकर, और मध्य भाग में विष्णु के साथ तुम्हारा निवास होगा । भानु की ऐसी ब्राते सुनकर प्रीतिपूर्वक ब्रह्मा ने कहा—नराधिप ! मैं अब अपने को कृतकृत्य मान रहा हूँ । इस प्रकार भास्कर के कथनानुसार उन्होंने समस्त कार्य संपन्न किया, वीर !

ऐतान्यां शंकरो देवो मध्ये त्वं विष्णुना सह । शुतैत्वं वचनं भानोर्वेधः प्रीत्या तमबवीत् ॥४९
 कृतकृत्यं तथात्मानं मन्यते च नराधिप । चकार च तथा सर्वं भास्करोत्तमशेषतः ॥५०
 स च सिद्धिं गंतो वीरं प्रसादाद्वास्करस्य तु । आदित्योऽपि वरं दत्त्वा ब्रह्मण्यो ब्रह्मणेऽनघः ॥५१
 जगाम सह देदेन वर्यतं गन्धमादन्तम् । ददर्श तत्र भूतेशं तपस्तीव्रं सभाश्रितम् ॥५२
 कपर्दिनं शूलधरं चन्द्रार्ककृतशेषलक्ष्म् । पूजयन्तं वरं व्योमं सुद्रवं तैजसान्वितम् ॥५३
 गन्धमाल्योऽहरैश्च नृत्यगांतप्रश्नादितैः । नुखवादीश्च बहुभिः प्रणवस्तोत्रगीतिभिः ॥
 सम्झूल्येवं महद्व्योमं जगाम शिरसा महीम्
 दृष्ट्वा वृजयन्तं च भास्करस्त्रिपुरान्तकम् । तुष्टोबोचम्भातेजा गोश्रुताभरणं हरस् ॥५५
 भीमं तुष्टोऽस्मि ते वत्स वरं मत्तोवृणुप्य वै । तवान्तिकमहं प्राप्तो वरदं भूष्ठदालय ॥५६
 शुतैवं वचनं भानोर्महादेवो महीपते । ददर्श लोकनाथं तं प्रज्वलन्तमनुत्तमम् ॥
 उवाच प्रणातो भूत्वा अष्टाइश्चैर्मूर्ततं गतः ॥५७
 नमो नमस्ते देवेशं प्रभाकरं दिवाकरं । शुभालयं शुभाधारं विकर्तनं शुभानन् ॥५८
 प्रसादं कुरु देवेशं प्रसन्नस्त्वं विकर्तनं । संसारार्णवमग्रस्य भवं पोतो जगत्तते ॥५९
 तवाङ्गसम्प्रवो देवं पुत्रो हं वल्लभस्तव । यत्करोति महादेवं पिता पुत्रस्य तत्कुरु ॥६०

आदित्य उवाच

एवमेतत्र सन्देहो यथा वदसि शङ्कर । ललाटात्वं समुत्पन्नः पुत्रः पुत्रवतां वर ॥६१

इसीलिए सूर्य की प्रसन्नता वश उन्हें सिद्धि प्राप्त हो गयी । अनध ! ब्रह्मण्य सूर्य भी ब्रह्मा को वर प्रदान कर देने के साथ गन्धमादन के लिए प्रसिद्ध हुए । वहाँ तीक्ष्ण तप करते हुए भूतेश, कपर्दी, शूलधारी एवं चन्द्रार्ध को अपने ललाट (भाग) में स्थापित करने वाले (शंकर) को उन्होने देखा, जो सुव्रत, एवं तेजस्ती व्योम की पूजा कर रहे थे । गन्ध एवं मालारूपी उपहार तथा नृत्य, गायन, कथा श्रवण वाचन मुखवाचके एवं प्रणव वृद्धक स्तोत्रों के गान द्वारा उस महान् व्योम की पूजा करते हुए तदनन्तर शिर से प्रणाम करते हुए शंकर को महातेजस्वी सूर्य ने देखकर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की और कान में कुण्डलों से विमूर्षित हर से उन्होने कहा—भीम मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ । वत्स ! मुझसे मनइच्छित वर की याचना करो, पर्वत निवासिन ! वर प्रदान के लिए मैं तुम्हारे समीप आया हूँ । महीपते ! भानु की ऐसी बातें सुनकर महादेव ने लोकनाथ, प्रदीप्त एवं अनुपम सूर्य के दर्शन करके अपने आठों अंगों से पृथ्वी में स्पर्श (साप्टांग दण्डवत्) द्वारा उन्हें प्रणाम करते हुए कहा । ५६-५७। देव ईश, प्रभा (प्रकाश) करने वाले, दिननायक, शुभ के विधान, आधार, विकर्तन एवं कल्याण मुख वाले आप को नमस्कार है, हे देवेश ! आप कृपा प्रदान करे । विकर्तन ! आप प्रसन्न हों, हे जगत्तते ! संसार सागर में निमग्न मेरे लिए आप पोत (जहाज) की भाँति सहायक हों । देव ! मैं आप के ही अंगों से उत्पन्न, एवं आप का प्रिय पुत्र हूँ । महादेव ! पुत्र के निमित्त पिता जो कुछ करता है, वही आप भी मेरे लिए करने का कष्ट करें । ५८-६०

आदित्य बोले—शंकर ! जैसा कह रहे हो, वैसा ही होगा, इसमें संदेह नहीं । पुत्रोंमें श्रेष्ठ ! मेरे भाल से उत्पन्न हुए हो । तुम्हारा कल्याण हो, अपनी अभिलाषानुसार वर की याचना करो, त्रिपुरान्तक

वरं परय भ्रहं ते जनसा नन्दं यमिष्वासि । कृत्यं चायि ते रात्मे विपुरात्मक मुन्दर ॥५३॥

महादेव उवाच

घवि तुष्टोऽसि मे देव अनुपाहोस्मि ते यदि । प्रथच्छ मे वरं भानो देहि भक्तिं ममाचलाम् ॥५४॥
देवदानवगंधर्वयक्षरङ्गोग्लास्तदा । निर्जित्वाह यथा देव युगान्ते संहरे प्रजाम् ॥५४॥
तथा प्रयच्छ मे देव स्थानं च परमं विभो । येनाहं हेतिसई च जरे देव ज्ञातप्रभो ॥५४॥

अद्वित्य उवाच

देवदानवगंधर्वयक्षरङ्गस्यद्यग्नान् । हरिष्यसि लग्नाच्यापि युगान्ते विपुरात्मक ॥५५॥
यदेवतत्यजिते नित्यं अद्यूपं व्योद बोत्तमस् । एतत्विशृणुं परमं तदं शस्त्रं अविव्यति ॥
ईशाने च तथा भागे न्योज्ञे दासोऽस्मिन्न भविष्यति ॥५५॥

महादेव उवाच

एवं अस्युम् ले लैत च इत्यावश्यकम् छृतः । छुट्टात्मोऽस्मिन् तैत्री च वै देवो वरप्रदः ॥५६॥

हति श्रीभविष्ये भहापुराणे वात्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मनिरूपणं
नाम एक्षपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥५५॥

मुन्दर ! कठिन से कठिन तस्तु भी भी तुम्हें प्रकान करूँगा ॥६१-६२॥

महादेव ले इस्तु—हे देव ! अदि आप युक्त पर प्रसरण हैं और मेरे ऊपर आपका अनुबह है, तो भानो ! अपनी अचल भक्ति मुझे प्रदान कीजिए ॥६३॥ हे देव ! दानव, गन्धर्व, यक्ष एवं राक्षसों, परं विजय प्राप्त कर युज के अन्त में प्रजा का संहार कर सकूँ ॥६४॥ हे देव, विभो ! मुझे उत्तम स्थान भी प्रदान कीजिए, जगत्थानो ! लिखसे मैं सप्तमी अस्त्रों पर विजय प्राप्त करूँ ॥६५॥

आदित्य लोके—विपुरात्मक ! युग के अन्तिम समय में देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस एवं नागों आदि समस्त जगत् का संहार करने में आप अवश्य समर्थ होगे क्योंकि मेरे उत्तम रूप व्योम की तुमने पूजा की है । इससे यह विशुद्ध दुम्हारा परम शस्त्र होगा और व्योम के ईशान भाग में तुम्हारे निवास भी होंगे ॥६६-६७॥

महादेव ने कहा—हे देव ! आप ने प्रसन्न होकर मेरे लिए जो कुछ वर (प्रसाद) रूप में प्रदान किया है, वह दैसा ही हो, देवेश ! मैं अब कृतकृत्य हो गया, क्योंकि आप ऐसे देव मेरे वरदायी हैं ॥६८॥

श्रीभविष्य महापुराण में आहुर पर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म निरूपण नामक
एक सौ पचपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५५॥

अथ षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रैसुद्देषाख्यानवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

इत्थं दत्त्वा वरं भानुरीभवाय विशास्यते । शालग्रामं जगामाशु वरं इतुं हरेन्द्रः ॥६
 ददर्श स हरिं तत्र तपत्तं परमं तत्रः । कृष्टजिनधरं शत्तं ब्रजलत्तं स्वतेजसः ॥७
 पूजयन्तं महद्व्योमं चक्राकारः नौपमम् । गन्धस्त्रालोपहारैऽभ्यं नृत्यगीतप्रवादितैः ॥८
 एवं सम्पूज्य तद्व्योमं भक्त्या श्रद्धासमन्वितः । जगाम शिरसा भूर्भुं हृदि ध्यायन्दिवाकरम् ॥९
 विष्णुं तं प्रणतं दृष्ट्वा तुच्छो देवो विभावसुः । उवाच विष्णुमामन्त्र्य पश्य मामागतं हरे ॥१०
 तद्वाक्यं केशवः श्रुत्वा शिरसा च महीं गतः । नमस्ते सर्वदेवेशं नमस्ते गगने चर ॥११
 जगत्पते नमस्तेऽस्तु ध्रहणां पतये नमः । दारिद्र्यव्याधिदुःखम् नमस्ते भवनाशन ॥१२
 आदित्यार्कं रवे भानो भग पूर्णं दिवाकर । नमस्ते सर्वतत्त्वं सर्वपापविद्यर्जित ॥१३
 प्रसीद मे जगन्नाथं हसान्तव्यं दिवस्यते । तंसारांवभग्नानां श्राहि देव बृष्टवज्ज ॥१४
 पुत्रोऽहं तव देवेशं द्वितीयो ब्राह्मणोऽनव्य । पितेव पुत्रस्य रवे देहि कामाञ्जगत्पते ॥१५
 विष्णोर्वचनमाकर्ष्य हर्षं प्राप्य दिवाकरः । उवाच कुरुशार्दूलं हर्षगदगदया गिरा ॥१६

अध्याय १५६

त्रैसुद्देषाख्यानवर्णनम्

सुमन्तु बोले—विशापते । शिव के लिए इस प्रकार वर प्रदान करने के उपरांत सूर्य ने विष्णु के लिए वर प्रदान के निमित्त शालग्राम को प्रस्थान किया । १। वहाँ परम तप करते हुए विष्णु को देखा, जो कालामृगं चर्म धारण कर, शान्त एवं अपने तेज द्वारा प्रदीप्त हो रहे थे । २। तथा जो नित्य गन्ध सालोपहार, नृत्य, गायन एवं कथाओं द्वारा चक्राकार, एवं अनुपम उस महान् व्योम की पूजा करते थे । इस प्रकार उस व्योम की पूजा भक्ति तथों श्रद्धा द्वारा सुसम्पन्न करके हृदय में सूर्य के ध्यान पूर्वक पृथिवी में नतमस्तक हो प्रणाम करते हुए विष्णु को सूर्य ने देखा । देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने विष्णु को बुलाकर कहा भी कि—हरे ! मुझे देखो, मैं आ गया हूँ । ३-५। उनकी बातें सुनकर केशव पृथिवी में मस्तक रख उन्हें प्रणाम करने लगे । समस्त देवों के ईशं को नमस्कार है, आकाशचारी को नमस्कार है, जगत्पति को नमस्कार है, यहों के पति को नमस्कार है, दारिद्र्य, रोग, एवं दुःख के नाश पूर्वक संसार (जन्म मरण दुःख) के नाश करने वाले को नमस्कार है, आदित्य, अर्क, रवि, भानु, भग, पूर्ण, एवं दिवाकर नाम वाले, समस्त तत्त्वों के जाता तथा समस्त पापों से मुक्त को नमस्कार है । ६-८। हे जगन्नाथ, हंस, अनघ, एवं हे दिवस्यते ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों, हे वृषद्वज देव ! संसार सागर में डूबते हुए मेरी रक्षा करो । ९। हे देवेश, अनघ ! मैं तुम्हारा दूसरा ब्राह्मण पुत्र हूँ, हे रवे, हे जगत्पते, पुत्र के लिए पिता की भाँति सभी (सफल) कामनाएँ प्रदान कीजिए । १०। कुरुशार्दूल ! इस भाँति विष्णु की बातें सुनकर सूर्य अत्यन्त हर्षित हुए, उन्होंने गदगद वाणीसे कहा—कृष्ण, महाबाहो ! तुम्हारा कथन साधु (ठीक) है,

साधु कुण्ड सहावाहो तुष्टोऽहं तब केशव । निशम्य ते परो भक्तं श्रद्धां च पुरुषोत्तम ॥१२
वरं वरय तस्मात्वं बत्त यं मनसेच्छसि । वरदोऽहमगुप्तान्तो अस्त्वाकान्तस्त्वानघ ॥१३

निशम्य वचनं भानोर्विष्णुर्भक्त्या समन्वितः । कृताञ्जलिस्तुषो भूत्वा इदं वचनमवीत् ॥१४
छृष्टद्वृत्योऽस्मि देवेश नास्ति धन्यतरो मथ । उस्य ले भगवंत्सुखो वरदस्त्वं गतः स्वयम् ॥१५

यदि तुष्टो मम विश्वर्भक्त्या क्रीतो मया यदि । प्रय उत्त्वत्वलाभक्तिं यथा गायुं करामवे ॥
तथा मम हरं देहि सर्वारति विनाशनम् ॥१६

जम स्थानं च परमं शर्वलोकनमस्कृतम् । लोकानां पालये पुरुत्तं बत्तं वीर्यं यशः मुखम् ॥१७
एवमुक्तौ रदिर्भक्त्या दिव्युना वाक्यमुत्तमम् । उवाच कुरुशार्दूल गजस्त्रादयश्चिव ॥१८

साधु साधु नहावाहो ब्रह्मणस्त्वं जगन्यजः । हरस्य अग्रजश्चापि सदवेदनमस्कृतः ॥१९
भक्तश्चापि ममात्यन्तं ब्रह्मणश्च सदानन्द । तस्मात्वाचला भक्तिर्भविष्यति समोदयि ॥२०

एतदेव महद्व्योम चक्रं ते प्रभविष्यति । सर्वायुधवरं वीरं सर्वारतित्रिनश्चानम् ॥
तथा स्थानं च मरमं शर्वलोकनमस्कृतम् ॥२१

इत्थं भानोर्बरं भ्रात्य हरिदेवो जगत्पतिः । महाप्रसादभित्युत्त्वा जगाम शिरसा महीम् ॥२२
भास्करोऽपि वरं वत्त्वा केशवायामितौजते । जगामाशु महाराज स्वपुरं विदुधाधिपः ॥२३
लोकानां पालने शक्तिं बत्तं वीर्यं यशः मुखम् । वत्त्वा कृष्णाय देवेशस्तथान्यदपि कांसितम् ॥२४

केशव ! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ । पुरुषोत्तम ! मैंने तुम्हारी श्रद्धापूर्ण उत्तम भक्तिं देख ली । ११-१२। वत्स ! जो तुष्टारी इच्छा हो, वर की याचना करो, अनंथ ! मैं तुम्हारी भक्तिं से आङ्गोत्त होकर वर नान देने लिए यहाँ आया हूँ । १३। सूर्य की ऐसी बातें मुनकर भक्ति पूर्वक विष्णु ने हाथ जोड़कर यह कहा—देवेश ! मैं कृतकृत्य हो गया, मेरे समान कोई धन्यतर नहीं है, क्योंकि भगवन् ! मेरे लिए वर प्रदान करने के निमित्त आप स्वयं उपस्थित हुए हैं । १४-१५। यदि आप विभु मुझसे प्रसन्न हैं तब मेरी भक्ति से क्रीत होने (खरीदने) के समान है, तो मुझे निश्चला भक्ति प्रदान कीजिए, जिससे मैं शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकूँ । हे समस्त शत्रु नाशक ! मुझे यही कहना चाहिए । १६। मेरे लिए समस्त लोक के बन्दनीय उत्तम स्थान तथा लोकों के पालन के लिए युक्ति, बल, पराक्रम, यश एवं सुख भी प्रदान कीजिए । १७। कुरुशार्दूल ! विष्णु के इस प्रकार कहने पर सूर्य ने अपनी गर्जना पूर्ण वाणी से जगत् को निनादित करते हुए कहा—महावाहो ! साधु, साधु ! तुम वहा से छोटे एवं शिव से सर्वदेव पूजित अग्रज (बड़े भ्राता) हो । अनंथ ! तुम मेरे महान एवं ब्रह्मण भक्त हो, इसलिए मेरी निश्चला भक्ति तुम्हें प्राप्त होगी । १८-२०। यही महान् व्योम रूप में चक्र तुम्हारा श्रेष्ठ शास्त्र होगा, वीर ! यही समस्त शत्रुओं का नाश करेगा और समस्तलोक बन्दनीय एवं उत्तम स्थान की प्राप्ति भी इसी से होगी । २१। जगत्पति नारायण देव ने इस प्रकार रूप्ये से वर की प्राप्ति कर उसे (वर को) ‘महाप्रसाद’ के रूप में स्वीकार कर के उन्हें नन्तर मस्तक प्रणाम पूर्वक प्रस्थान किया । महाराज ! देव नायक सूर्य भी अजेय तेज वाले विष्णु को वर प्रदान कर अपने नगर के लिए प्रस्थित हो गये । २२-२३। उन्होंने कृष्ण के लिए लोकों के पालन करने की शक्ति, बल, वीर्य, यश, एवं सुख के प्रदान पूर्वक उनके और मनोरथ की भी पूर्ति की । इस

यतं ब्रह्मादयो देवाः पुलस्त्वा द्विवाकरम् । शक्तिमन्तो ब्रह्मवुस्ते लग्नदीनां प्रवर्तने ॥२५
 हति ते कथितं पुण्यमाल्यानं पाण्णनाशनम् । त्रिदैवत्यमुपाल्यानं त्रैसुरं लोकपूजितम् ॥२६
 स्तौत्रत्रयसमायुक्तं धर्मकामार्थसाधनम् । धर्म्ये स्वर्ण्ये तथा पुण्यमारोग्यधनधान्यदम् ॥२७
 अ इदं शृणुयाश्नित्यं पठेत्तोत्रत्रयं च यः । सोऽप्नेयं यान्तसार्लोको याति भानोः परं पदम् ॥२८
 अयुगो लभते पुत्रमधनो धनमन्तनुते । विद्यार्थी लभते विद्यां प्रसादाद्वास्करम्य तु ॥२९
 अत्र राजितकाशः अभ्या पृथिव्यानाभ्यः । सोदते मुचिरं कालं सातिनामुत्तमो अवेदु ॥३०
 हति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्रह्मे वर्ण्यि सप्तमीकल्पे तौरथ्यै त्रैसुरोपाल्यानवर्णं

नाम छट्टपञ्चाशादधिकशततमोऽध्यायः ॥१५६॥

अथ सप्तपञ्चाशादधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यवितारकथाप्रस्ताववर्णनम्

शतानीक उत्ताप्ति

एतन्मे कौतुकं ब्रह्मन्दुरं ब्रह्मणे रविः । दन्तलांतव पुहत्वमवये कल्यपस्य ह ॥१११
 यस्यामि द्विजशार्दूलं प्रपश्निमिरापदः । एतन्मे नहदाश्रद्धं शंसं भूमि कथं लजेद् ॥११२
 लहानीलो ग्रामादा यो यो भुवि असदो विभुः । स कथं शूतलं व्योमं लजस्तद्वर्णं विशिष्यति ॥११३
 किमर्थं दिव्यसात्तानं जन्मने स निलोक्यति । यथाकृं र्वत्यत्येको ब्रह्मादीनां मनोरमम् ॥११४

एकार ब्रह्मादि देवता सूर्य की पूजा। वरके सृष्टि आदि कायों के लिए सुशक्ति संपन्न हुए। इस भाँति भैने नुहें इस पुण्य कथा को सुनाया जो पाप नाशक तीनों देव संबंधी कथाओं से युक्त तीनों देवों एवं लोकों द्वारा पूजित है। जो इस तीनों कथाओं समेत आल्याद को धर्म, अर्थ, एवं काम साधक, धर्मिक, स्वर्णी संबंधी, पुण्य, आरोग्य, धन एवं धान्य प्रदान करने दाता है, सुनता या पाठ करता है, वह अन्धने य विमाल पर बैठकर सूर्य के उत्तम लोक की प्राप्ति करता है। सूर्य के कुपावश पुत्रहीन को पुत्र, निर्धन को धन, तथा विद्यार्थी की प्राप्ति होती है। सूर्य के समान तेजस्वी एवं पृश्न (सूर्य) के समान प्रभासूर्ण, तथा शानियों में सर्वत्रेष्ठ होकर वह विरकाल तक आनन्दका अनुभव करता है ॥१४-३०

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में त्रैसुरोपाल्यान वर्णन

नामक एक सौ छप्पनवर्ँ अध्याय समाप्त ॥१५६।

अध्याय १५७

सूर्यवितारकथाप्रस्ताववर्णन

शतानीक बोले—हे ब्रह्मन् ! सूर्य ने ब्रह्मा के लिए वरदान दिया कि कश्यप के कुल में पुत्र रूप से उत्पन्न हूँगा। द्विजशार्दूल ! यही मुनकर मुझे आश्रव्य हो रहा है कि धोर अन्धकार नाशक सूर्य पृथिवी पर किस भाँति जायेगे ॥१-२। इस भूतल में जो देवों का प्रणेता तथा अन्यों का उत्पत्ति स्थान है वहीं विमुक्तीम् पृथिवी पर कैसे जन्म ग्रहण कर सकता है ॥३। वह ब्रह्मादिक देवों के एक मनोद्वरनक के रूप में शतानीक वर्तमान रहता है, अतः अपने दिव्य आत्मा को जन्म ग्रहण के लिए वह कैसे प्रेरित कर सकता है ॥५७

त जन्मनि कर्ते पुण्या बुद्धे चक्रे विदा दर । गौणायनं यत्कुरते जगतः सर्वलोकं भूय् । ४४
ज्ञानिःशास्त्रयते दृष्ट्याशास्त्रनो यः स्वयं राष्ट्रः । महाभूतानि भूतान्मा यद्यकार इथार एव भू
ज्ञानीः स कर्त्त गर्भभूदे धातते विद्युः । यन ज्ञानिः समाजान्मा विद्य लोकाभ्युदयः । ४५
त्यगप्रिता जगतो आर्यात्मिक्यवैष्णवान्मः । योऽन्तकाले जगत्योत्त्वा दृष्ट्या यद्यमध्ये द्वयुः
सर्वदेवयन्मये ज्ञाने दृष्ट्यते त्वय भूमये । ५६ चुराणे पुराणान्मा त्रिलोके खेत्यान् यत्त
द्वये सुरद्वये द्विज्ञेष्ठ यः सर्वो वसुधराम् । इत्यकार एव दुर्द यज्ञ ग्रैतोऽप्यमिद्यवैष्णवः
दद्वये दृष्ट्या द्वयुमतीं सुराणां सुरस्ततम् । ५७ यित्वा द्विलोके वीक्षा संकरतरात्मये एव । ५८
प्रतित्वांस्योऽर्थात् तत्त्वं अव्यतीत्यप्यत्यं त्रृष्णः

सहस्रशरत्तं देव सहस्रां भहस्रः । सहस्रचरणं भद्रान्यनादुर्वे तुमे पुण्ये । ५९
मुमायात्म्यं समुपन्नो वेद्यः तोक्षिपताम् । उरिष्ठ दक्षते इत्य लतादात्म्यं शहकरः । ६०
यन ते निहता दैत्या बदेहा नाम ज्ञानतः । बहुदीनां दुराधर्यो यः सदा विद्वनाशः ।
सर्वदेवयन्मये फुत्या सर्वभूद्यमर यषुः । एकक्रान्तार्थाल्लो यहुद्वाप्तारां एव
करन्ते यो जगत्तर्वं सह दानवद्वाप्तम् । ग्रक्षयत्तमगस्त्वं वर्ष्यद्य सदा द्विजः ।
पुण्यो विशं गतो नित्यमुदद्यन्वलमकम् । नाशयेदास्तु सततं तनो तोक्ष्य गान्तव्यः ।
भाशयित्वा तमो यस्तु क्रिया: सर्वाः प्रवत्येत् । दोक्ष्याणि वक्षिणादीक्ष्य मुसलोल्लसानि च । ६१

विद्वद्वार ! समस्त लोकों समेत जगत की रक्षा करते दाता तद्य अपनी पुण्य बुद्धि में इत्यनिमे के विद्या । ६२
कैसे स्फान दिया । ४-५। जिस सूर्य ने स्वयं व्यवही किए हैं द्वारा समस्त लोकों का प्राप्ति तथा भूत्यान्
होकर एव यह महाभूतों की उत्तरि एव उद्देश्यों धारण किया है । हे विद्य ! जो अपनी विद्यार्थीं द्वारा एव ६३
जीवहो लोकों को आकान्त किये हैं, वह अत्यहीन होकर उत्तर गर्ते द्विवृत्तीं आपना अपनी नैति
जो इत्य जगत के निमित्त तीन मार्ग एवं तीन व्रज्य क्रमान्वय क्रमान्वय क्रमान्वय क्रमान्वय क्रमान्वय
जपनी शरीर बनाकर अप्सरा भगवत् का पाल कर अपने कर्म से लोकों को एक सभुद्वये एवं द्विवृत्तीं एव
देखता रहता है, एवं पुराणों में पुराणात्मक तथा तेजस्वी रूप धारण कर स्वित है । द्विवृत्तीं । वार
भी—मुख्य द्वारा पृथिवी को उत्पन्न कर उस अविनाशी ने पहले इस द्वैलोक्य की रक्षा की है । इस पुण्य
को 'बहुभूती' (धनपूर्ण) बनाकर उस देव व्येष्ठ जे इसे देवों को प्रदान किया है, अग्नि का जिसके पाल कर
लिया है, जो संवत्सर (वर्ष) रूप है, यातान्त्रिकी संयुक्त का रूप, दद्य धारण में पद्मरूप हृषी है । ६३
जिसे प्रत्येक युगों में ऐसा देव बताया गया है जिसके सहस्र और्ज्ये, सहस्रों रूप एवं गुण हों । जिसके पुण्य
द्वारा लोक पितामह ब्रह्मा, यज्ञात्मक द्वारा विष्णु, और भाल द्वारा बनकर उत्पन्न हुए हैं । जिसके पद्मरूप
नामक राखसों का वध किया है, ब्रह्मादि देवों के लिए दुर्धर्ष एवं सर्वद विद्वनाशक है । ६४-६५। जो
सर्वदेवयन्मय शरीर बनाकर समस्त अस्त्रों को धारण किया, तथा एक अक्षेवाले एवं पर औरकर गरुदे के
ज्येष्ठ भ्राता अरुण को अपना सारणी बनाया है । सायंकाल में भी जिसकी शरीर अत्यन्त प्रकाशभूषिती
के नामे दानवों एवं 'राजसों' के लिए स्पर्शहीन ही सदैव रहती है । जो पूरब दिशा में रित्ये
उद्धारात्म पर नित्य पर्वत्त्व कर जोक भी शोति के लिए निरंतर तप का नाश करते रहते हैं जो अल्पाला

गार्हण्यत्येन विधिना तद्वार्येन कर्मणा । अग्निशाहवनीं चैव वैदि चैव कुशं सुचम् ॥
 प्रोक्षणीयवतं चैव अवभृयं तथेऽच
 ॥१९
 सर्वानिमांश्च यश्चके हृष्टभागप्रदानमुले । हृष्टादांश्च सुरान्यज्ञे कृष्टादांश्च वितृ नष्टि ॥२०
 धर्मार्थं मधुधनाय चके यो उपकर्मणि । पूषणं च सुतं सौमं परिव्रामर्जीमष्टि ॥२१
 शर्वज्ञानं च द्रव्याणि यज्ञास्त्रचार्यं सत्रहत्विजः । सदस्यान्यज्ञानांश्च विद्यार्थिनस्तथोत्समान् ॥२२
 विक्षमाजं पुरा सर्वं पार्श्वेऽनुभवं कर्मणा । पुरानुरूपो यः कृत्वा लोकान्वद्यरं कृष्टात् ॥२३
 उपान्वलंश्च फाष्ठाश्च कालर्थकल्पयेव च । सुहृत्तीस्तथयो भासाः पक्षाः संवत्सरास्तथा ॥२४
 शृतवः कालयोगाश्च प्रभार्ण शिविधं नृषु । आयुः क्षेत्राव्यव्ययोपच्छार्याश्च याउकरात् ॥२५
 चृष्टा लोकास्त्रयोजनता येन ज्ञानेन वर्त्मनः । सर्वभूतस्याः सृष्टाः सर्वभूतात्मना लदा ॥२६
 ग्रजाक्षयपूर्वं शैवेन रथते च यः । यो गतागतिशैतेन श्रातास्ति जगदीश्वरः ॥२७
 यो भूतिवृद्धयुपासानो जातियोऽस्य वक्ष्यन्तम् । चातुर्पर्वश्चभवत्यश्च विपुर्हात्रस्य रक्षिता ॥२८
 शत्रुघ्नेश्वर्य वीरं वेता चतुराश्रमसंशयः । दिग्म्बरानुशूतश्च वायुर्वायुदश्वायाः ॥२९
 अप्तीष्ठोमत्यक्षं उद्योगीष्ठोमीशः क्षणदान्तकः । यः परं धूयते ज्योतिर्निर्दः परं धूयते तपः ॥३०
 यं वर्ते वर्त्म ब्राह्मः परमात्मवायव्युत्पत्तः । स्तुतौ देवो यश्च हैत्यान्तकृष्टिः ॥३१
 पुण्यान्तेष्यन्तकौ धर्मं स्तु यश्च लोकसेतूनां भव्ये यो भ्रष्टकर्मणाय ॥३२

का नाश कर समस्त क्रियाओं को आरम्भ कराते हैं यज्ञ में इक्षिण की ओर स्थित रस्सी, औखली तथा भूसल के दर्शन पूर्वक गार्हण्यन्य विधान द्वारा (यज्ञ) में आहवनीय अग्नि बैदी, कुशाओं, सुच, प्रोक्षणीय वत, तथा अवभृय, इन पदार्थों के निर्माण करके सुख में हृष्ट भाग को धारण किया है। यज्ञ में हृष्ट भ्रश्ण करने के लिए देवताओं एवं (शाद) में कृष्ट भ्रश्ण के लिए पितरों का निर्माण किया है। भाग समेत भूपुत्रान के लिए यज्ञ में जिसने पूषा (सूर्य) सुत, सौम, परिव, अरणी, यज्ञीय द्रव्य, ऋत्विक समेत यज्ञ, सदस्य एवं उत्तम मेधावी यज्ञमान की सृष्टि की है। १५-२२। छत्वं कर्म द्वारा जिसमे सब का विभाग किया। युगों के अनुरूप छोटे बड़े लोकों का निर्माण, क्षण, कला, फाष्ठ (दिशाएँ) किल, मुहूर्त, तिथि, आस, पक्ष, संवत्सर (वर्ष), तथा अतुओं के निर्माण कर इस भाँति मनुष्यों के लिए भाँति-भाँति के काल एवं योगों की प्रमाण रूप में रचना की है। आयु और शरीर की रचना कर शरीर की वृद्धि एवं हास का निर्माण किया है। २३-२५। जिसने अपने ज्ञानयोग द्वारा अनंत बार तीनों लोकों की रचना की है और सर्व भूतान्मा होकर समस्त भूत (जीव) गणों की सृष्टि की है। जो तीन बार प्रणाम रूपी योग करने से प्रसन्न रहता है, तथा जो जगदीश्वर रूप होकर गतागत रूपी जहाज व्राण करता है। जो धार्मिकों एवं पापहीनों का गतिरूप है, तथा चारों वर्णों में प्रभाव उत्पन्न कर जिसकी शरीर (अग्नि) होत्र (यज्ञ) की रक्षा करती है। २६-२८। धातुओं एवं वैदों का वेना, चारों आश्रों में स्थित, दिग्म्बर, अनुभूतवायु, दायु संचालक, अग्निषोमात्मक, ज्योति, योगीश, रात्रिनाशक, परम ज्योति, उत्तम तप तथा परमात्मा एवं अच्युत कहा जाता है, चत्वार्दिवेव जिसकी स्तुति करते हैं, जो देव्यों का नाशक तथा विभु है, जो युग के अन्त में लृग्नि (नाशक), ऊपरी उत्तम लोक, लोक के मंतुओं में मंतु, अच्युत भाग में भृद्य कर्मों तथा वेद निष्णात किडानों

थेता यो वैदविदुलां प्रभुर्यः प्रभविष्णुनाम् । सौम्यभूतस्तु सौम्यानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् ॥३३
 मानुषःणां मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् । विनयो नयवृतीनां तेजस्तेजस्विनामपि ॥३४
 शिवहो विष्णुर्णां च गतिर्गतिमतामपि । आकाशप्रसवो दायुर्वायुः प्राणो हृताशनः ॥
 वैवाहुतिश्वरानोद्यतप्राणःप्रिस्तमनाशनः ॥३५
 रसाद्विशोणितं भवति शोणिताम्बासमुच्चर्यते । भोक्तान्मज्जावसोर्जन्म मज्जनोस्थीनि जन्मतः ॥३६
 अस्त्विश्वज्ञः समप्रवदत्तो वै शुक्रमादिशेत् । शुक्रादगर्भः समभवदस्मूलेन कर्मणा ॥
 तत्राप्यः प्रथमो भागः सौम्यो राशिरुच्यते ॥३७
 ततःऽस्तमस्त्वावौ ज्यो द्वितीयो राशिरुच्यते । शुक्रं सोमात्मकं विद्यादात्मरूपं यदात्मकम् ॥३८
 भवो रसात्मकस्तेषां दीर्घं च शशिपावकम् । कफवर्गं भजेच्छुक्रं पित्तवर्गं च शोणितम् ॥३९
 कफस्थं पृथिवी स्थानं पित्तं नाभीं प्रतिष्ठितम् । देवस्थं मध्यहृदयं स्थानं तु मनसः स्मृतम् ॥
 नाभिकोऽकान्तरस्थं तु तत्र देवो दिवाकरः ॥४०
 मनं प्रजापतिज्ञेय कफ सोम्यो दिनाव्यंते । पित्तमग्नि स्मृतो यस्मादनीषोमात्मकं जगत् ॥४१
 एवं प्रथतिते सर्वे वर्धिनेऽम्बुदसप्तिभे । वायुं प्रवेशं सञ्चके सङ्गतं परमात्मना ॥४२
 ततोऽश्वगानि विद्वजते विज्ञर्ति परिवर्तयन् । प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥४३
 प्राणोऽस्थं प्रथमं स्थानं वर्धयन्वरिवत्ते । अपानं पश्चिमे काय उदानोर्ध्वं शरीरगः ॥
 व्यालैऽउक्तं व्यापको देहे समानः सामिकर्तते ॥४४

का ज्ञाता, प्रभावशातियों के प्रभु, सौम्यों के सौम्य, अग्नि तेज में अग्नि, मनुष्यों में मनु, तपाग्नियों में तप विनीतवादियों में न अन्ता, तेजस्वियों में तेज, शरीरधारियों में शरीर, गतिमानों में गति, वायु के उत्पत्तिस्थान, आकाशं, प्राण, अग्नि, देवों के लिए आहुति प्रदान करने के लिए प्राणाग्नि एवं तमोनाशक है रस से शोणित, शोणित से मांस, मांस से मज्जा, मज्जा से अस्थियाँ, और उससे वीर्य की उत्पत्ति होती है। वीर्य से रसमूलात्मक कर्म द्वारा गर्भ होता है। उसमें प्रथम भाग जल होता है, जिसे सौम्य राशि कहा है। २५-३७। उससे कमा की उत्पत्ति होती है, जिसे दूसरी राशि कहते हैं; वीर्य, सोमात्मक कहा जाता है। वही अपना रूप है। वह वीर्य रसात्मक एवं शशि के समान धौत, पावक के समान तेज पूर्ण होता है। वही कफ वर्ग में शुक्र (वीर्य) और पित्त वर्ग में शोणित (रक्त) हो जाता है। कफ का स्थान पृथ्वी, पित्त का नाभिस्थान, मन (आत्मा) देव का मध्य हृदयस्थान बताया गया है। नाभि के बीच वाले कोष्ठ में सूर्य देव स्थित रहते हैं। ३८-४०। मन, प्रजापति (ब्रह्म), कफ सम, एवं पित्त अग्नि रूप है ऐसा अग्नीषोमात्मक जगत् की व्याख्या में बताया गया है। इस प्रकार बादल के समान बढ़े हुए गर्भ में परमात्मा से संगत होकर वायु प्रवेश करता है। पश्चात् अंगों की उत्पत्ति, पालन एवं परिवर्तन (वायुद्वारा) हुआ करता है। वह वायु प्राण, अपान, समान, उदान एवं व्यान रूपात्मक होता है। प्रथम स्थान की वृद्धि एवं परिवर्तन प्राण वायु, शरीर के पश्चिमी (पृष्ठ) भाग को अपानवायु, ऊपरी भाग में उदान वायु, शरीर में व्यान तथा समस्त देह में समान भाव से व्यापक समान वायु रहता है। जीव के प्रविष्ट होने पर उस शरीर में इन्द्रियाँ प्रकट होती हैं—पृथिवी, वायु, आकाश, जल तथा ज्योति तेज रूप

कूलार्द्धात्मतस्ततस्तरथ जायतान्तर्वदोऽवरा । शृण्यकी धायुरकाश आयो उत्तीतिश्च यज्ञवायः ॥४६
 तस्येन्द्रियाणि पिष्टाति स्वं स्वं योगं प्रक्रमयुः । पार्थिवं देवमात्सु ध्राम्यत्वानं च मात्सत्यम् ॥४७
 निद्रा ह्याकाशधीनेश्च जताभ्ये प्रश्नर्तते । ज्योतिश्रेष्ठाश्च तत्त्वम् तद्वात्स्तावतः स्मृतः ॥४८
 ध्रामाइच विषयाइवेष्य अस्य योगं प्रयोत्तत्य । एवं यः सृजते लोकान् देवामुरमानवान् ॥४९
 ५० लोक देवदेवेषो वर्त्तेद्यति काशुपात् । दगोदरमहित्यात् च स्वर्णं जायिशत्पुरा ॥४९
 एते ये संशयो ग्रह्यमेव ये विषयां गतात् । कर्त्तव्यर्थाद्यो गर्भदादेव द्विजवरीति ये ॥५०
 अत्यन्तव्यं चरमं पूर्वे त्वामहं श्रावकरम्य वे । भानोरत्यस्तमात्मार्थं हृषि ये परिवर्तते ॥५०
 एतदश्चर्यमात्यां कथयस्व महामुने । तमात्माहि बलं दीर्घं भानोरमितेजसः ॥५०

इति श्रीभिष्म्य महापुराण वाहौ पर्वाणि सप्तनीकल्पे सौरधर्मे सूर्यावतारकाप्रस्ताववर्णनं
 नाम सप्तपञ्चाशादधिकशततमोऽन्यायः ॥५१॥

अथात्प्रथमं व्रायादर्थादिकाशात्ममोऽन्यायः

सौरधर्मेण सूर्योत्पत्तिवर्णनम्

सुमन्तु लूकाच्च

श्रवनन्तरे यहांस्त्रात् स्वयोदयो द्विजवरीलिपि । यथाशक्ति तु धर्मवार्ता शूलात्मा आनन्दं यशः ॥१

मैं के दन्तियाँ अपना-आपना संबंध स्थापित करती हैं । देह के पार्थिव एवं वायु को प्राण कहते हैं । आकाश ये उत्पन्न निद्रा का जलाशय में वर्तमान रहना बताया गया है । ज्योति के कुछ अश को नेत्रों में रखा जाता है, जिसे तामस भी कहा गया है । सभस्त्र इन्द्रिय वर्ष एवं विषयों में जिसका धराक्रम व्याप्त है, और जिसने देव, अमुर एवं मनुष्य के ऐसे लोकों की रचना की है, वह देवाधिदेव अंगुमान (सूर्य) गर्भ में कैसे प्रविष्ट होगा, जिसे कि अदिति के गर्भ में वह पहले प्रविष्ट हुआ था । ब्रह्मन् ! यही गुडामें यहां विस्थय उत्पन्न कर रहा है कि सूर्य किस प्रकार गर्भ में प्रविष्ट होगे । मुझे सूर्य के बारे में महान् आशर्चय हो रहा है । इसीलिए आपसे पूछते हूँ कि सूर्य की उत्पत्ति मेरे हृदय में एक आशर्चय उत्पन्न किये हैं । हे भग्नमुने ! अजेय तेज वाले सूर्य का आशर्चयकरी यह आशयान तथा उनके बल, वीर्य का भी वर्णन कीजिए । ४१-५२
 श्रीभिष्मपुराण में व्रायापर्व के मानवी कल्प के भौरधर्म में सूर्यावतारकाश प्रस्ताव वर्णन
 नामक एक मौ सनावनवाँ अध्याय समाप्त । ५७।

अध्याय १५८

सौर धर्मो में सूर्योत्पत्ति का वर्णन

मुमन्तु बोले—तात ! तुमने तो किरणमाला वाले सूर्य के बारे में धर्मों को डाक्ती लगा दी, अस्तु, मैं यथाशक्ति भानु के यश का वर्णन कर रहा हूँ, मुनो ! । १

वानैः प्रभावस्थाने स्वयं मै लोकवर्त्यता । हत्या भानोः प्रकृत्य च भूतु दिव्यां भयोरताम् ॥१
 लहूलास्य सहस्राक्षं सहस्रितरं च यत् । सहस्रितरं देवं सहस्रकरमव्ययम् ॥२
 सहस्रितुं लोकनं सहस्रमुकुण्डं भूतु । सहस्रं तहसारं सहस्रमुजमव्ययम् ॥३
 लक्ष्म लक्ष्मं देवं तृष्णं हृतारमेव च । पात्रां तन्मतीतानं वैद्योक्तो च तु गुभूम् ॥४
 वौचिष्ठं शूर्यं लोकां लक्ष्मिन्दिव्यम् । अव्युत्तु सत्त्वं दिव्यं सहस्रं लक्ष्मं तथा ॥५
 शूर्यं शूर्यमुकुण्डं ददीं लुप्तोऽनुकूलानि च । आग्नेयं अव्ययते च हृतां लक्ष्मं च भूतु ॥६
 शूर्यस्त्रियं प्रभाजानि स्वाक्षराणि लक्ष्मां च । अतिष्ठितं दिव्यं सहस्रं च लक्ष्मिसानि शूर्यास्तथा ॥७
 शूर्यस्त्रियं वैकुण्ठारं भासितेष्य ॥ । शूर्यमुक्ता भौतिकां लक्ष्मं लक्ष्मिं लक्ष्मिं ॥८
 अप्युद्देविहो विज्ञा भूतां तत्त्वं लक्ष्मिं । तस्य भानोः तु रैतास्त्र वौर लक्ष्मिनास्ति ॥९
 लक्ष्मिं कल्पस्त्रियं समतीतान्यनेकाः । शूर्यस्त्रियं अव्ययति विज्ञायन्ति विद्येदिव्ये ॥१०
 शूर्यस्त्रियं भूतारामं पुण्यां दिव्यां कथो शूर्यम् । ददीं भावात्तमातुः कल्पस्त्रियं शूतोऽभवत् ॥११
 तामात् त्वं प्रदद्यताम् शूर्यं सद्यविष्टतः । इत्यार्थं सद्यविष्टतः सोकामा ग्रन्थस्य च ॥१२
 शूर्याः सर्वं शूर्यास्त्रा स्वयं अव्ययति । तथाः शूर्यस्त्रियः कल्पस्त्रियान्वितः शूर्याः ॥१३
 शूर्यो एत्या वरं वौर दिव्यस्त्रियं अहस्तनना । यं यं जलतो पुण्यविति कल्पस्त्रियोः ॥१४
 ए च याति विज्ञाशं वै लक्षणादेव भारत । शूर्यस्त्रियां कल्पस्त्रियां वित्ताऽदितिः ॥१५

सूर्य के प्रभाव को सुनने के लिए शुम्हारी बुद्धि अपश्चर हुई है। अतः सूर्य की दिव्य प्रमुखि (कथा) मैं कह रहा हूँ, सुनो ! ॥१॥ जिसके सहस्र भूय, सहस्रनेत्र, सहस्रकरणे, सहस्र लीश, सहस्र हाथ, अव्यय, सहस्र जिद्धु एवं देवीप्रभाज सहस्र मुकुट ई लक्ष्मा जो भूषा, सहस्रसु लेता, सहस्र भूतां अनेकानी, कल, वैज्ञ, इधर, होता, (थक) दात, देव वैदी, भूत दर, वौचिष्ठ, धूर, शूर्यस, श्रोकण, दक्षिणायिन्, धार्यर्तु, भास्त्रविक्ष, सदस्य, सदव, पूर्व (साम्ब), अग्निधर, शूरा, ददी, जीवाली श्रथम दश जय भूति, होता एवं चायन रूप हैं और रहस्य, अग्नां साता स्वाक्षर चर जिसमें दृहतापूर्वक इतिष्ठित हैं, शौर शूर्णि, कुज, पञ्च, यज, अग्नि, भार्या, अग्नेयोंजी, दीनों मैं प्रत्यापता हैं, अप्युद्देवों के जाता प्राहृष्णगण जिस विभु की निरन्तर पूजा करते हैं, वौर ! उस देवेश चन्द्रन लक्ष्मी सूर्य के अनेकों बार सहस्रों जन्म हो चुके हैं और फिर भी दिवं-अतिदिवं उत्तमं एवं नष्ट होते रहेंगे ॥१-१॥ महाराज ! जिस दिव्य एवं पुण्यकथा जी अर्चा आप कर रहे हैं, जिसमें अग्नाम् सूर्य कशयप के पुण्य हुए, उसी कथा को विसारपूर्वक कह रहा है, सुनो ! अनुष्ठों के कल्पाणार्थ एवं सोकां के उत्पन्नार्थ सर्वशूर्यास्त्रा सूर्यं जिस प्रकार स्वयं अनेकों बार अपेक्षण से उत्पन्न होते हैं, उसी भावि (सूर्य) कशयप द्वारा अदिति पुण्य भी हुए ॥१२-१४॥ वौर ! प्रशस्त्र न होकर सूर्य ने अहात्पा द्वारा लो पाही वर प्रदान किया था । भारत ! कशयप के संयोग से अदिति जिन युद्धों को उत्पन्न करती थीं, वे उभी समय नष्ट हो जाते थे । इस प्रकार पुण्यों को नष्ट होते देखकर पुण्य योक में दुखी अदिति में एक बार विसित एवं अर्थों में आद्य भरे कशयप की

जगाम कश्यपात्थादेः शोकव्याकुलितेक्षणः । सापश्यतं च भारीचं मुनिं दीप्तं तपोनिधिम् ॥१७
 अद्यं देवदुर्ल विप्रं दिव्यं त्रिवर्षणन्वाभिः । तेजसा वहिसकाशं सौरं वृक्षसमप्रभम् ॥१८
 न्यस्तद्विशिष्या युक्तं बद्धुष्णाजिनाम्बरम् । बल्कलाजिनसवौतं प्रदीप्तं ब्रह्मवर्चसम् ॥१९
 हुतारामवद दीव्यतं तपन्तमिष्य भास्करम् । अथादितिश्र दृष्ट्वैवं भतरममितौजसम् ॥२०
 शोकव्याकुलिता वाचा इवं दवनशब्दीत् । किमर्थं भगवान्देवो निर्द्योगस्तु तिष्ठति ॥२१
 जातो जातौ हि मैं पुत्रः सद्य एव विनश्यति । शुत्वा तु द्वचनं तस्यः कश्यपो मुनिसत्तमः ॥२२
 चकार गरुदे तुहि ब्रह्मलोकं प्रति प्रभेत् । ह तत्वा ब्रह्मभद्रं नानाभावसमन्वितम् ॥२३
 नहुक्षयुक्तं तं सर्वं द्युक्तं हस्य जययाः । कश्यपस्य वचः शुत्वा कञ्जले वास्यमववीत् ॥२४
 पुत्र गच्छाश लहवं भानोः परवदुर्लभम् । इत्पुक्ष्या यानमारह्य आग्रेयं पश्यतोचतः ॥२५
 वैष्णा यजाम अवधारित्यस्य भग्नतमः । अदितिः कश्यपो चहा जन्मुर्विपुलनाश्रितः ॥२६
 ते युद्धर्णे राम्यापादं पूर्वसोऽनं पुष्ट्येष्व । दिव्यकर्मणमैर्यनिर्याहं कुरुनन्दन ॥२७
 आदितिश्च दृष्ट्विष्णुस्ते तेजसां राशिमुस्तम् । अच्छन्तस्ते च विस्तीर्णगमित्यस्य परां सभाम् ॥२८
 षट्कर्णीदुर्लभीतिविद्या सामग्रैस्तु भग्नीरिताश् । श्रृतो बद्धुवृच्छुलाः प्रोक्ताः पुण्यवदक्षराः ॥२९
 मुख्युदु भुज्यत्थाण्डे वित्तेषु च कर्मसु । यज्ञसम्भौ वेदविदां पदक्रमविदां तथा ॥३०

कुटिया के लिए प्रस्थान किया, वहाँ पहुँचकर उसने कश्यप को देखा, जो मरीच के पुत्र, मुनि, दीप्त, तपोनिधिम, सख्यमें वशव, देवों के पुत्र, विप्र, दिव्य, जलद्वारा बैकालिक स्नान करने वाले, अग्नि के समान तेजस्वी, सौर, वृक्ष के लक्षण कान्तिभान, त्याग किये गये दण्डकी शी से सम्बन्ध, काले मृगचर्म पहने, बल्कल एवं (भूष) चर्ण धारण किये, देवीष्यमात्र, ब्रह्मतेज रंपन्न, अग्नि के समान दिव्य (मुशोभित) तथा भास्तकर जी भाँति तप रहे, ऐसे अमित तेज वाले अपने भर्ता को देखकर अदिति ने चिन्तित होने के नाते गदगद वाणी द्वारा उन्हें कहा—मेरे भगवान् वतिदेव (पुत्र के विषय में) उद्योगहीन होकर क्यों बैठे हैं । कथा आपको भालूय नहीं कि ऐसे पुत्र उत्पन्न होते ही मर जाते हैं । प्रभो ! मुनिश्रेष्ठ कश्यप ने अपनी पत्नी की वार्ते सुनकर ब्रह्मलोक जाने के लिए मन में निश्चय किया और गये भी । भाँति-भाँति की सृष्टि केता से युक्त उस ब्रह्मलोक में पहुँचकर उन्होंने अपनी स्त्री की सभी वातं ब्रह्मा से कह सुनायी । कश्यप की वातं सुनकर ब्रह्मा ने कहा—पुत्र ! मैं सूर्य के उस अन्यत जन दुर्लभ भवन को जा रहा हूँ, तुम भी जलो । इस प्रकार कहकर कमल नेत्र ब्रह्मा ने आग्नेय विभान पर बैठकर भग्नात्मा सूर्य के गृह को प्रस्थान किया । कश्यप और ब्रह्मा के साथ उस बड़े विभान पर अदिति भी बैठी थी । १५-२६। कुरुनन्दन ! इस प्रकार दिव्य एवं मन इच्छित चलने वाले, उस धोग्य विभान द्वारा वे सब क्षणमात्र में तेजपूर्ण सूर्य के लोक में पहुँच गये । २७। उनकी उस उत्तम सभा में पहुँच कर वे सब तेजोराशि एवं उत्तम सूर्य से अपनी दुःख कथा स्फुट की, जो सभा षट्कर्ण नामक छन्दों की ध्वनियों से निनादित एवं सामवेदी ब्राह्मणों द्वारा मुखरित हो रही थी । उसी सभा में स्थित पुण्य तथा अविनाशी क्रतु उस विस्तृत कर्मों में पुरुष व्याघ (भूष) की स्फुटि कर रहे थे, जो यज्ञ-सन्धि में पद-क्रम के वैदिक विद्वान् एवं वैष्णव ऋषियों द्वारा किये गये वेदपाठ की

घोरेण परभवीणां सर्वं तत्र निनादितम् । यज्ञसंस्तवधिद्विद्वय रिजाविद्वित्स्तया हिजैः ॥३१
 अष्टदशपुराणजे: सर्वविद्याविशारदैः । वीक्षात्सहेतुवादशैः सर्ववादधिशारदैः ॥३२
 लोकायतिकमुख्यैश्च तुष्टुः त्रृट्यमीरितश्च । तत्र तत्र च विश्वेन्द्रान् नियताञ्छंसितवत्तान् ॥३३
 जपहोमस्त्रान्योगान्वद्भुगुः कवद्यनाथः । हत्यां शमाद्यमास्ते स रत्नमाली विवक्तः ॥३४
 मुरामुरयुगुः श्रीमाड्हुगुये शीर भाष्यद्य । उपासते च तत्रैव प्रजानां पतिष्ठीश्वरम् ॥३५
 दक्षः प्रचेताः पुलहृ भर्त्रिविश्व द्विजोत्तमः । वृगुरविद्यतिष्ठश्च गौतमो नारदस्त्वा ॥३६
 दिव्या आत्मात्सरिण च भायुस्तेजोध्यं चर्णी । प्राच्यः इर्द्याः स्वरूपं च रक्षगल्मी तथैव च ॥३७
 शृणुतिश्च पिताराश्च वज्चाव्यत्कारणं भहृत् । काम्प्नोपाद्याश्च भृत्यातो देवा लोकपते तथा ॥३८
 सधाश्च भृत्यव्यवैष्व सदृक्षल्प्यप्रव्यास्तथा । एते खाच्ये च यद्युपो भानुमत्तमुपासते ॥३९
 अर्थो धर्मश्च कायश्च योक्तश्च सार्थिषेषतः । द्वैष्टे हृष्टेश्च योहृष्टे यस्तस्तौ ज्ञानं एव च ॥४०
 वृक्षो विष्णुसुतः युग्मः पुष्पो विष्णुपत्तस्तथा । भौत्यश्चरस्तस्या सैरो विष्णुर्यो विष्णुस्तस्याः ॥४१
 भाष्यतो विष्वकर्मा च अविवनवन्वचाहनीः । एवमुत्तः सुवचनैर्वर्णकुना भ्रष्टविष्णुनः ॥४२
 जगाय कवयो शीर सहावित्या स्वभावमम् । अवितिर्वेष्वभातः च तं गर्भं निदध्ये स्वयम् ॥४३
 शूतात्मानं महात्मानं दिव्यं वर्षसहृष्टे मु प्रद्युतो गर्भं उत्तमः ॥४४

ध्वनियों से सम्मिलित पाठ कर रहे थे । वहाँ यज्ञस्तुते करने वाले विद्वानों, जित्ता के पूर्णज्ञान वाले वाह्यणों, अटडारहों पुराणों के ज्ञाता, सर्वविद्या निष्णात, श्रीमासा, हेतुवाद के विद्वानों, समस्तवाद विशारदों तथा चारकि ग्रन्थ के प्रत्यर्तकगणों द्वारा इस भाँति सूर्य की स्तुति हो रही थी—इसे सूर्य ही उन अनेक रूपों से बोल रहे हों । कवयपादि आगल्तुकों ने वहाँ सभी स्थानों में नियम, संयम एवं श्रतपूर्वक जप-हठन करने वाले योग वाह्यणों का दर्शन किया । वीर ! उसी सभामण्डप में जहाँ किरणमाली सूर्य जो देव असुर के गुरु तथा शौभासम्पद्य थे, अपनी भाषा से मुखोचित हो रहे थे । उसी स्थान पर प्रजायों के पति एवं ईश्वर (सूर्य) की उपासना हो रही थी—दक्ष, प्रचेता, पुलहृ, द्विजश्रेष्ठ, भरीचि, भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, गौतम, नारद, दिव्य आत्मा, अंतरिक्ष, बायु, तेज, बल, सृथिवी, शब्द, स्वर्ण, स्वरूप, रस, गन्ध, प्रकृति, विकार, अल्प और भी जो महकारण हैं वे सांगौपांग ज्ञानो वेद, तथा लोकपते ! उसी भाँति लद, शृतुएँ एवं कल्प प्रणव ये सभी किरणमाली सूर्य की उपासना कर रहे थे । २८-३१। विशेषकर अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, द्वेष, हृष्ट, भोग, मत्सर, आन, वृक (अन्न), विष्णुसुत (प्रद्युम्न), कामदेव, वृहस्पति, महेश्वर तथा सूर्य के पुत्र, विष्ट, विक्ष, विक्ष, आरुत, विष्वकर्मा, अविवनी कुमार एवं अन्य वाहन भी उनकी उपासना कर रहे थे । तदनन्तर प्रभावशाली सूर्य ने कवयण की बातें सुनकर उन्हें मधुर वाणी द्वारा आश्वासनं प्रदान कर सन्तुष्ट किया । वीर । इसके अन्यतात् कवयण, अदिति को साथ लेकर अपने आश्रम लौट आये । कुछ काल के उपरांत देवमाता अदिति ने स्वयं उस गर्भ को धारण किया, जिसमें भूतात्मा एवं भहात्मा (सूर्य) एक सहृदय दिव्य वर्षीय तक स्थित थे । सहृदय वर्षी की पूर्णी सभापाद्य पर वहृ गर्भ, औ देवीयों का शरण भूत, और असुरों का विलाशक था, युत्तम हुआ । वराधिष्ठ ! गर्भ जैसे स्थित रहने पर ही उन्होंने लीनीं

मुराणा दरणे देशश्चामुराणो विनाशनः । मर्भस्तेन तु तेनैव परिव्रातः सुतस्तथा ॥४५
 आदिवामनकु तेजोस्य श्लोक्यस्य विवाधिष्ठ । तस्मिन्ज्ञाते तु देवेष्ट्रैलोक्यस्य सुलत्रहै ॥४६
 प्रहृत्य इत्यसङ्क्षयांश्च सुलाणां नावधीयै । अध्यत्परमानन्दः सर्वेषां तत्र तस्युषाम् ॥४७
 इति शोभाविष्ये भव्युपुराणे त्राणायर्थाणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु
 द्वौपूर्वतिर्त्यामानन्दविवाधिकानामाऽध्यायः ॥५८॥

अथैकोनप्रच्छृङ्खधिकशततभोऽध्यायः

भूर्योपतिररपर्णम्

सुभन्तुरवाच

वक्षः प्रजापतिश्च भवत्प्रारं ब्रकार ह । विद्योतमानो वपुषा सर्वाभरणमूर्वितः ॥१
 उपात्मान वैदेशो भवतु पर्वताणीः सह ततो गन्धर्वमुख्येषु प्रशदत्पु विहायति ॥
 वहुधिः सह गवद्यैः प्रायायत्पु महीपते ॥ ॥२
 एवं ते देवगन्धर्वा उपगायन्त भक्तिः । उत्सन्न द्वादशात्मानं धास्करं वारितस्करम् ॥३
 इन्द्रो विवस्वामूर्त्यु व त्वष्टा च सर्विता तथा । भर्गांशुमार्यमार्दः पृश्निमर्तिष्ठ ग्रव च च
 व्रत्येकाह्वा एवैते क्रान्तेष्व विष्णुलभ्यते ॥ ॥४
 एवं द्वादशधारा जात्येषुगत्वं भहाद्युतप् । स्तुवन्ति देवताः तर्वं गताश्च तरसा महीम् ॥५

जीवों के हेतु को भवत्पते हुए रहा की । उस देव नायक के उत्सन्न होने पर, जो तीनों लोकों को भुज्य प्रकाश करने वा, दैत्य सूर्यों के भासक, तथा देवताओं के हर्ष विनि को बढ़ाने वा थे, वहाँ स्थित रहने वा असी को परज आगम्य की प्राप्ति हुई ॥५०-५७

शोभाविष्युपुराण में शोभायर्थ के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में शूर्योत्पति वर्णन नामक
 एक सी अट्टावनका अध्याय समाप्त ॥५८॥

अध्यायः १५९

सूर्य अवतार का वर्णन

सुमन्तु द्वौले—उस समय सभी अलंकारों से अलंकृत एवं शरीर से शोभासम्पन्न दक्षप्रजापति ने उन्हें (सूर्य को) नमस्कार किया । और शृणिगण भी देवनायक सूर्य की उथापना करने लगे । महीपते ! प्रधान गन्धर्व ने असौ अनेक गन्धर्वों को काथ कर आकाश में गाने बजाने लगे । १-२। इस प्रकार देव गन्धर्व भक्तिपूर्वक अपनी कला द्वारा उन्हें प्रशस्त कर रहे थे, जो जल तस्कर सूर्य अपने बारह रूपों से उत्सन्न हुए थे । इह, विश्वामूर्त्यु, पूर्णा, त्वष्टा, सविता, भर्ग, वंशुमान, अर्द्धमा, अर्क, पृश्निं और भार्तुष्ठ, श्यारह (सूर्य) वताये गये हैं और और बारहवें सूर्य विष्णु कहे जाते हैं ॥५-७। इस प्रकार बारहों रूपों द्वारा महाम् आशर्य कारक सूर्य के उत्सन्न होने पर सभी देवगण शीघ्र वृथानी पर जाकर उनको सुर्जित

मृगव्याधश्च शर्वेभ्यं मृगाद्काल्पो महाबासा । अजेकपादहिर्वृष्ट्यः पीतः कालः पारल्पतः ॥६
दमनदच्छ्वरस्त्वेत ऋषासी इ विशांखते । रथागुरुषाश्च अग्नदान्तर्ष्णां वैतेवतस्तिष्ठते ॥७
भविवनौ वसददचाप्तौ गरुडश्च महाबलः । जिषेदेवज्ञ शास्त्रादेव लक्ष्मुः श्रावज्ञायो लृप ॥८
तद्वराजो महाराज वासुकिः प्राच्यविदिः स्थितः । अन्ये च वहूसो वासा द्वाशासनं विहूब्लासः ॥९
नार्थेश्वारिष्टनेतिवच गरुडश्च महाबलः । अश्वलभ्राताग्निवैव तत्र आऽज्ञताः स्थिताः ॥१०
पितामहश्च भगवान्स्वयम्भाग्न्य लोककूरु । पात्र लेवायुः शीताल्पूर्वः शीताल्पौर्णिषः ॥११
प्रस्मात्प्रेक्षयते सर्वं प्रभविष्णुः सनातनः । तस्मादल्लोकेश्वरः श्रीमान्मिश्रस्त्रियः पर्वतिनृत्यै ॥१२
देवदानदयक्षणां दन्धोरमरक्षसाम् । प्रस्मादयशादिदेवतस्तसादादिति एव हि ॥१३
एवमुत्त्वा तु भगवान्सार्थे देवर्षिभिः प्रभुः । तत्कृत्वा युसम्भूज्ञ यथौ दत्सदनं प्रति ॥१४
या गतिर्जनशीलानां या गतिः पुष्पकमिंदिनाद् । या गतिः तिद्वयाग्नानां या गतिश्च महाबलनाम् ॥१५
यस्याष्टगुणमध्ये सममदेवसत्तभ्यु । यं प्राप्त शाश्वतं विग्रा जागर्त्तन्ते अवाणिष्ठे ॥१६
दालखित्यादयो दे च सर्वाश्रमानिवासिनः । रेतादे यं लक्ष्मदान्तर्ष्णे इति वैतेवतस्तिष्ठते ॥१७
दोजन्त इव नागेषु यस्य ते लक्ष्मयोरिष्टः । लहूलभूर्णी रसायः तिष्ठतिरुद्रुतमैः ॥१८
यो यज्ञ इति विशेषैरन्वते मुरासीम्बुजिः । शर्वे च यं भवत्यत्या व्याशमिश्र विहूब्लिष्ट्याद् ॥१९
यं वेदविदो गायन्ति वेत्तारं वज्रहायिनम् । तं युक्तं द्वावशास्त्रानं लक्ष्यतः प्राप्तं सत्तमम् ॥२०

करते लगे ।५। मृगव्याघ, शर्व, महायशस्त्री, बन्द्रमा, अज, एकपाद, अहिर्वृष्ट्य, पीत, काल, परंतप, दमन, ईश्वर तथा विशांपते । कपाली (शिव), स्थापु, इग्न, भगवान् रुद्र, ऐ सभी वहाँ उपस्थित हुए ।६-७। नृप ! अविवनी कुमार, अनां वसु, महावली भरह, जिषेदेव भैरव शास्त्र भी वहाँ हाथ जोड़े लड़े थे ।८। महाराज ! नागराज वासुकी हाथ जोडे तथा अव अशी जात, विश्वामी राज्ञ, तार्क, लरिष्टनेमि, महाबली गरुड़, अरुण और उनके पुष्प राशी दूष जोडे लड़े थे ।९-१०। लोकरस्तिष्ठा भगवान् पितामह श्रीमान् देव युह (ब्रह्म) ने स्वयं सभी देवों एवं शुद्धिकों के लाभ यहाँ आकर यह कहा—अत्यन्त प्रशावशाली, तथा सनातन (सित्त) रूप, यह सभी देव रहा है अतः लोकेश्वर, श्रीमान् और विवस्वान् तथा देव, दानव, यज्ञ, गन्धर्व, नाग एवं राक्षसों के आदि देव होने के कारण इसका आदित्य, नाम होगा ।११-१३। इस प्रकार भगवान् प्रभु ब्रह्म देवर्षियों के साथ सभी-भावित उनकी पूजा एवं नमस्कार करके अपने घर च गये ।१४। जो यंज्ञ करने के लिए प्रयत्नपूर्वी रहनें वा , पुण्यकर्म मनुष्यों, सिद्धयोगियों एवं महात्माओं की गति (प्राप्ति) रूप है, जिस देव श्रेष्ठ के साथ ही ऐसवर्य समेत आठ गुण उत्पन्न हुए हैं । जिसकी निरंतर प्राप्ति करके द्वाहृष्टगण संसार सागर में नहीं पड़ते हैं, बालखिल्य आदि जितने आश्रम निवासी हैं, इन्द्रिय संकंपपूर्वक कठिन तत्त्व का पालन करते हुए जिसकी सेवा करते हैं । जो कामों में अनुत रूप है, जिसके लिए सभी योगधारण करते हैं तथा श्रेष्ठ आदि से भी उत्तम जिसके सहस्र शिर एवं रक्त नेत्र है, सुख इच्छुक ब्रह्मणगण, जिसे यज्ञ रूप मानकर पूजा करते हैं, सभी योगी जिसे ब्रह्म रूप मानकर ध्यान करते हैं, वेद के विद्वान् जिसका गान करते हैं, जो वेता एवं यज्ञदायक हैं, उसी बारहों रूपों को धारण करने वा (मूर्ख) को पुत्र के रूप में प्राप्त कर लियो ! कवयतश्च आदिति ने अत्यन्त

मुदं सेभे तहाऽदित्या मूलं च परमं विभोः । लोकश्च मुमुदे सर्वोः राक्षसा भयमास्तुवन् ॥२१
 मधुपिङ्गलो महाबाहुः कम्बुग्रीवो हतम्भिव । हृष्णुदीद्वद्मुकुटो दिग्ःः प्रज्वलयम्भिव ॥२२
 स उवाच महातेजाः कठयर्च चर्पित्तमम् । एषोऽहं तत्र पुत्रत्वं गतो गर्भस्य सिद्धये ॥२३
 वस्त्रा वरं चुरा विप्र विरचन्त्य महात्मनः । तस्मात्त्वमृणिशार्दूलं कुरु सृष्टिसनौपमाम् ॥२४
 एवमारात्रय देवेनां ब्रह्मा सृष्टिसमान्तवान् । आराध्य कडापञ्चापि भास्त्करं सुतमाप्तवान् ॥२५
 इति श्रीभविष्ये तहाऽपुराणे ब्रह्मे वर्णिग्नि सहात्मीकर्त्त्वे उत्पत्तमीमाहात्म्ये सूर्यावतारवर्णनं
 ननीकोनलक्ष्म्यधिकशततमोऽध्यायः । १५१।

अथ षष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यावतारवर्णनम्

शतानीक उवाच

अहो देवस्य चरितं भास्त्करत्य त्वयोदितम् । ब्रह्मादयोऽयि यं नित्यं पूज्ञन्ति विद्यन्तः ॥१
 ब्रह्मा विष्णुः सुरा यह्यांस्त्वारात्र्य दिवाक्षरम् । बद्यसुत्तम्य किं मूलं रूपं यत्नमहाद्भुतम् ॥२

आनन्द निभग्न होकर उत्तम सुख का अनुभव किया । सभी लोकों को प्रसन्नता हुई, परन्तु राक्षस गण भयशीत होने लगे । १५-२१। मधु की आंति पिंगल वर्ण, शंख के समान सीनदर्यपूर्ण ग्रीवा महाबाहु एवं महातेजस्वी (सूर्य) ने, जो मन्द-मन्द हास करने के समान तथा मुकुट में इंगुटी के लगाने से दिमाओं को प्रकाशित करने की आंति दिलाई दे रहे थे, सूर्यिशेषांक कशय ने कहा—गर्भ की सिद्धि (सफलता) के लिए मैं यह तुम्हारा पुत्र हुआ । विप्र ! मैंने वह ही महात्मा ब्रह्मा को वर प्रदान किया था । इसलिए हे ऋषिशार्दूल ! तुम अनुपम सृष्टि की रचना करो । २२-२४। इस प्रकार देवेशसूर्य की आराधना करके ब्रह्मा ने सृष्टि की सफलता प्राप्त की और उसी आंति भास्त्कर की आराधना कर कहशय ने पुत्र की प्राप्ति की । २५

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तश्ची कल्प के उक्त्यसप्तश्ची आहात्म्य में सूर्यावतार वर्णन नामक एक सौ उन्नस्ठायां अध्याय समाप्त । १५१।

अध्याय १६०

सूर्य अवतार का वर्णन

शतानीक ने कहा—सूर्यदेव का चरित, जिसका आपने वर्णन किया है, कितना आश्चर्यकारक है कि ब्रह्मादि देवता भी विधानपूर्वक उस (देव) की नित्य पूजा करते हैं । १। हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मा, विष्णु एवं देव गण उस सूर्य की आराधना करके उनके जिस रूप का दर्शन किया है, महान् अद्भुतकारक वह (रूप) किस प्रकार था । २

सुमन्तु देवाच्च

आराध्य देवमीरानं भास्करं सूक्ष्मिवाचर्कम् । कविष्णु कुरुशार्दूलं जग्मतुत्तौ हिशाश्लभ् ॥२
 गोप्तेरन्तिं वीर प्रहृष्टैः विभुद्वानि । कुलेन्द्रुपनिंशं कुञ्जं कलशाक्षाक्षुद्रश्च तौ ॥४
 ददृशतुर्महात्मानं चन्द्रार्घकृतशेषरम् । पूजयन्तं विष्णवत्तं भास्करं वीरशब्दम् ॥५
 भ्रव्योच्चतुर्महात्मानं कविष्णू तं ग्रितोज्जतम् । ओऽओ भीमा सुराश्वेतं विष्णवत्तं जग्मतौ ॥६
 श्रुत्योवाच तयोर्वाच्यं कन्जजस्याच्युतस्य च । अगम्य शिरसम् सूक्ष्मी कृष्णा पूजां विष्णवत्तः ॥७
 जवाच मधुरं वाद्यं विकाशरसमन्वितम् । हर्षणद्वयात् वाद्यं विष्णवत्तं कलशालभश्चिन्ह ॥८
 किमाराध्य रथं प्राप्तौ नर्वदेववरं विभुम् । कथ्यतां निरिलं देवौ एवं दौतुङ्गं ददृ ॥९
 वृष्टवन्ती परं कविच्चद्वयं देवस्य शङ्करम् । अश्यस्याप्यभेष्यस्य आद्योमिततोज्जासः ॥१०
 निरास्य वचनं वीर शङ्करस्य महात्मनः । उच्चतुर्स्तौ भहतस्यानीं कविष्णु शेषाद्वत्तरौ ॥११
 न तत्पश्यावहे रूपं यत्तप्तरमनद्भूतम् । आराध्यधितुभेदापि द्वागत्तौ हेतिकं च तत्त्वम् ॥१२
 तस्मादाराध्यामो हि एकीभूप्य विभावसुम् । गत्वोदयगिरिं पुष्यं नर्वतं कलशोऽम्बवसम् ॥१३
 श्रुत्वां तु वचनं वीर कन्जजाच्युतयोर्हरः । तथेत्याह महाबाहो हर्षाद्वाकुलत्वोचनः ॥१४
 अथ ते राजशार्दूल विविगोगतयो नृप । जग्मुस्तं पर्वतश्चेष्ठमुद्वाप्तस्तमाशु वै ॥१५

सुमन्तु बोले—कुरुशार्दूल ! ईशान एवं उत्पत्ति की व्याख्या कराने वा भास्कर देव की आराधना करके ब्रह्मा और विष्णु अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए त्रिभु (सूर्य) के दर्शनार्थ हिमालयके लिए प्रस्तित हुए, वीर ! जो सूर्य के समीप में ही स्थित था । नृप ! कुंड और इंदु की भाँति धर्वन्मूर्ति (सूर्य) के दर्शन के लिए ब्रह्मा एवं विष्णु वहाँ पहुँचकर नृप ! चन्द्रखण्ड को अपने लाल में रखने वा महात्मा शंकर को देखे जो वीर की भाँति बैठकर सूर्य की आराधना कर रहे थे । ३-५। उन महात्मा ब्रिलोचन (शिव) से उन दोनों ने कहा—भीम, भीम ! सुरज्योष्ठ ! देखो, हम लोग भी यहाँ आ गये हैं । ६। ब्रह्मा और विष्णु की ऐसी बातें सुनकर (घटने) भूमि में शिर रख नमस्कारपूर्वक उनकी पूजा (अतिथ्यसत्कार) करके शिक्षा देने की भाँति मधुर वाणी द्वारा हर्ष से गदगद होकर दिशाओं को मुखरित करते हुए शिव ने उन लोगों से कहा—समस्त देवों में श्वेष्ठ एवं विभु सूर्य की आराधना करके प्रसाद रूप में किस वस्तु की प्राप्ति हुई, मुझे इसकी जानकारी के लिए महान् कौतूहल है, आप लोग यह सभी बातें बताइये, और अजेय, अमेय एवं अमित तेजस्वी उस (सूर्य) देव के कल्याणकारी रूप का भी दर्शन हुआ । वीर ! महात्मा शंकर की ऐसी बातें सुनकर महात्मा एवं देवश्चेष्ठ ब्रह्मा और विष्णु ने कहा—उनके परम अद्भुत रूप का दर्शन हम लोगों को नहीं प्राप्त हुआ है । अतः दर्शनार्थ एवं उनकी आराधना के लिए ही हम आपके समीप आये हैं । ७-१२। पुष्य एवं कनक (धूत्रा के फूल) के समान उज्ज्वल, उस उदयाचल पर हम लोग (और आप) अब एक साथ ही सूर्य की आराधना करेंगे । १३। इस प्रकार ब्रह्मा और विष्णु की बातें सुनकर महाबाहो ! शिव ने ‘तथा’ कहकर उसे स्वीकार किया जिससे हर्षतिरेक से उनकी आँखें खिल गई थीं । १४। राजशार्दूल ! इसके बाद वे (ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) तीनों नृप ! पर्वतश्चेष्ठ ऊसं उदयाचल के लिए शीघ्र प्रस्तित

तमात्मा नगं पुणं शृङ्गैस्त्रिविरलङ्कृतम् । नानाधनुरिन्द्रियाङ्कं नानाधनुरिसूक्ष्मितम् ॥१६
आराधनाय विधिवदात्मं चकुर्विभावसोः । सूक्ष्मन्तस्ते लक्ष्मीलोऽश्रव्यवृत्त्य विष्णवद्विदुष् ॥१७
हित्यवर्द्धसहस्रान्ते तपतः संस्थितान् नये । एजासनगतो ब्रह्मा भगवत्मानो दिवाकरम् ॥१८
स्थाणवत्तंस्थितौ भूमाद्यर्थब्रह्माहृस्त्रिविरलेन । एज्ज्वाग्नि भजमात्रस्तु विष्णवद्विदुषः ॥१९
हृष्टं वर्षसहस्रान्ते तपतः कुरुते । आराधनानो विष्णवद्विदुषेणां भूक्त्वात्मितम् ॥२०
अथ ब्रह्मविष्णुनां भूरुत्तां तप उत्तमम् । त्रिवेष भगवान्मुखदानं च अहीपते ॥२१
द्वृष्ट्युभ्यो हरे द्वृत मनः किमिवांछिथ । त्रुट्योह भवती ब्रह्मविष्णुतातो वरं द्वयम् ॥२२

सुशत्त्वरुदाच

निशम्य एवतं आत्मो शान्तं हृष्टं मनोरमभ् । भगवत् शिरसा कैशा इव दक्षस्त्रुवन् ॥२३
हृतकृत्या इयं सर्वं प्रसादात्मव गोकरो । त्वचात्मात्मव पुरा हेष त्वतः प्राप्य दर्श तुम्हद् ॥२४
उत्पत्तिस्त्रिविष्णवाशानां इयं सर्वं विदाकर । भूम्भूयै वासर्वी ये त्वत्प्रसादात्म लंशयोः ॥२५
एते त्वयुक्ते रेत्वैवेशवा सर्वान्निष्ठान्तर्हृते गिरोः । यते परमकं इयं भूर्लभं दुर्दृशं तजा ॥२६
त्वचात्मात्मव गोकराय इयं वर्षीयं रेत्वैवेशव । सर्वैवेशवयं यते वरदयोर्तुम्हम् ॥२७
देवाणां ब्रह्मज्ञानं भूत्या ब्रह्मविष्णवीक्षणविवितम् । दर्शकान्नाम त्वचूप्रस्त्रद्वृत्तं लोक्यूषितम् ॥२८

हुए । उत्तम पर्वत पर एहुङ्कर जो पुण, दीन शिलों से अतंकृत, भाँति-भाँति की धातुओं द्वारा ढंगे हुए अंग तथा भाँति-भाँति की धातुओं से विभूषित था, ऐ लोग सूर्य ली आराधना के लिए विधातपूर्वक प्राप्तवशील हुए । सूर्य की सुविधि, पूजा एवं ध्यान करना आरंभ किया । इस प्रकार तप करते हुए उस पर्वत पर उन्हें दिव्य एवं सहस्र शर्णी दीप ज्योति । दिवाकर का व्याज एवं दस एवं विष्णवद्विदुष के देव ! भूमि ऐं त्वाणु की भाँति स्थित एवं ऊपर दोनों हाथ उठाकर झंकार, और नीचे शिर लटकाकर चंचानि तापते हुए किञ्चु ने शुगम्प्रक किया । पुरुष मण्डली (अनेक त्रुत वासि), एवं किरण्यस्ति सूर्य का हस्त झकार और लंघ करते हुए उन देवों का एक दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत हुआ । २५-२० महीनोते ! इसके उपरान्त शेष तप करने वाले उन ब्रह्मादि देवों के ऊपर भगवान् सूर्य अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—ब्रह्मन्, शंभो एवं हरे ! भूमि से दया चाहते हो, प्रसन्न होकर मैं तुम्हें वर प्रदान के लिए स्वयं अर्ही आगा हूँ । २६-२२

सुमन्तु बोले—सूर्य की ऐसी शांत, क्षिय एवं मनोहर वाणी सुनकर शिर से ब्रणाम करते उन लोगों ने कहा—हे गोपते ! आपकी कृपा से हम लोग कुतक्षत्य हो गये हैं क्योंकि देव ! एहुले ही आपली आराधना कर उत्तम वरों की प्राप्ति हम लोगों ने कर ली है । दिवाकर ! जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं नाश करने रूप कार्य के लिए अब आपकी कृपा से हम लोग समर्थ भी हो जायेंगे, इसमें सदैह नहीं । २३-२५। देवाधिदेव विभो ! किन्तु एक और वर की हर्णे इच्छा है, वही कि आपके परम दुर्लभ एवं दुर्दर्श तथा अच्युत रूप का दर्शन करना चाहते हैं, इसलिए जगन्नाथ ! आप अपने उसी सर्वदेवमय रूप को दिखाइये, अनंग ! जिसे आपने पहले दत्ताय था । २६-२७। ब्रह्मा, विष्णु और शिव की ऐसी वार्ते सुनकर (उन्होंने) अपने अद्भुत एवं लोकप्रभु रूप का दर्शन दिया । २८। उसमें अनेक मुख, शिर, अनेक अद्भुत

अनेकदक्षविशिरसमनेकावभुतदर्शनम् । सर्वदेवमयं दिव्यं सर्वलोकमयं तथा ॥२९
 मूः पादौ द्यौः शिरश्चापि तत्राप्नी लोचने मते । एवाह्युल्मः पिशत्त्वाश्च हस्ताह्युल्मश्च गुह्यकाः ॥३०
 विश्वे देवाः स्मृतास्तस्य जड्यासङ्घाः सुरोत्तमाः । यज्ञाः कुशितु संल्लीनः केशाश्चाप्तरसां गणाः ॥३१
 दृष्टिधृष्टश्च विपुलाः केशा वीरांशवः स्तृताः । तारका रोमरूपाणि रोमाणि च महर्षयः ॥३२
 जाह्यो विदिशस्तस्य दिशः ये नराधिपः । अग्निनौ अवर्णे चास्य नासा लागुर्धावलः ॥३३
 पसादश्च क्षमा चैन मनो धर्मस्तपैव च । सत्यमस्याशब्दाणी जिह्वा देवी सर्वत्प्रतः ॥३४
 श्रोवादितिर्महादेवै तत्त्वं रुद्रश्च वीर्यवान् । ह्यारं स्वामोस्य नाभिर्देव मित्रस्त्वष्टा पित्राङ्ककः ॥३५
 प्रुखं देवानरश्चात्य वृषणां च भगवत्तप्तः । हृदयं भगवान्नह्या हृदरं कश्यपो सुर्तिः ॥३६
 गृष्ठेऽत्य वसवो देवा मरुतः सर्वसन्धिषु । सर्वच्छुच्छांसि इशना ज्योतीषि विश्वला प्रभा ॥३७
 प्राणो लहो महादेवः कुक्षी चास्य महार्जवाः । उदरे ब्रह्म गन्धर्वा भुजङ्गाश्च महाबलाः ॥३८
 लक्ष्मीर्मधा धृतिः कान्तिः सर्वा विद्याश्च वै कटौ । ललाटस्य वरसं वद्यस्थान परात्पतः ॥३९
 सर्वज्ञोत्तात्तिः जानीहि तपश्चक्षत्र देवराट् । तज्जेतदादिवेशस्य तनौ ह्याहुर्महात्मनः ॥४०
 स्तनां कुक्षो च वैदेवाश्च तेऽष्टौ चास्य मखाः स्तृताः । यज्ञल्यपशुबन्धाश्च द्विजानां देविष्टानि च ॥४१
 सर्वदेवमयं दृष्ट्वा रूपर्मकस्य ते नृप । ब्रह्मा हरो हरिर्देवाः परं विस्मयमागताः ॥४२
 प्रणम्य शिरसा देवं वेपमाना धरां गताः । भगवद्गत्या वाचा इदं वचनमबुद्धन् ॥४३
 समीक्ष्य रूपं ते देव भीमं ज्वालासमाकुलम् । अनेकमुखबाहूरचरणं चकिता वयम् ॥४४

दर्शन, सर्वदेवमय, दिव्य, सर्वलोकमय, पुथिवी दोनों चरण, आकाशशिर, अग्नि दोनों नेत्र विशाल दैर की अंगुलियाँ गुह्य हाथ की अंगुलियाँ गुह्य, सुरश्रेष्ठ विश्वेदेव जांघों की सन्धियाँ, कुशि में यक्ष, केश में अमराएँ आँखों की धृष्टता एवं किरणें विपुलकेश, तारागण और महर्षिगण रोम, विदिशाएँ (क्षेत्र) बाहू, नराधिप ! दिशाएँ कान, अश्विनी कुमार श्वरण, महाबली वायु नासिका, प्रसन्नता एवं क्षमाशीलता मन धर्म, सत्यवाणी, देवी सरस्वती जिह्वा, महादेवी अदिति भीवा, पराक्रमी रुद्र तालु, सर्वा द्वारनन्दिभि, मित्र, त्वष्टा तथा पिचण्डक, वैश्वानर (अग्नि) मुख, भग दोनों वृषण (अण्डकोष), भगवान् ब्रह्म हृदय, करण्य मुति उदर, पीठ में वसुदेव, सभी संधियों में मरुत, समस्त छंद दशन (दाँत), ज्योतिर्गण निर्मलप्रभा, रुद्र महादेव प्राण, कुशि में महासागर, उदर में गन्धर्व, महाबली भुजंग, लक्ष्मी, मेधा धृति, कांति एवं समस्त विद्याएँकटि (कमर) में वर्तमान हैं और इस परमात्मा के ललाट में आयु, सभी ज्योतिर्गण, तथा चक्रतपरूप स्थित हैं, इस प्रकार इस देवराट की शरीर को जानना चाहिए । जिसकी उपरोक्त व्याख्या की गई है । इसी भाँति महात्माओं ने इस आदिदेव के शरीर की व्याख्या की है । २९-४० दोनों स्तन, कुशि तथा चारों वेद मिलकर उसके यक्षरूप हैं यही द्विजों के वेष्टन यज्ञ करने योग्य पशुबंधन है । नृप ! सूर्य के ऐसे सर्व देवमय रूप को देखकर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर अत्यन्त विस्मित हुए । उस देव को शिर से प्रणाम कर कांपते हुए भयभीत होने के नाते गदगद वाणी से उन लोगों ने यह कहा—हे देव ! भीम (भीषण), ज्वालाओं की भाँति प्रदीप्त, अनेकों मुख, भुजा, उरु एवं चरण वाले आपके इस रूप को देखकर हम लोग

दिग्जानं हृतमस्तकं तत्प्रसीद जगत्पते । उपसंहर विश्वात्मन्दृष्टुं शक्ता न ते वयम् ॥४५
इति तेषां वचः श्रुत्वा देवदेवो दिवाकरः । प्रसन्नो भगवानाहुं वनस्तान्प्रहसन्निदम् ॥४६

आदित्य उवाच

इति यदेतत्परमं पुष्पमद्भुतं लोकभावनम् । दृष्टं नवद्विद्वेष्ट्रा मम सर्वजगन्मयम् ॥४७
एतन्मया प्रसन्नेन तुष्माकं श्रेयसेऽनघाः । दर्शितं पूजितेनेह योगिनां यन्महालयम् ॥४८

ब्रह्मेशाच्युता ऊचुः

एवमेतन्न संदेहो यथात्थ त्वं दिवस्पते । योगिनानपि देवेश दर्शनं ह्यस्य दुर्लभम् ॥४९
त्वामारात्र्य जगन्नाथं नाश्राप्यमिह विद्धते । तस्मात्पूज्यतसो लोके नान्यो देवेषु दिद्धते ॥५०
एदपुक्त्वाऽदितेः पुत्रो जगामादर्शनं रविः । ब्रह्मादियोऽपि ते हृष्टं प्रापुद्वेवस्य दर्शनात् ॥५१
एवं ब्रह्मादयो देवाः पूजयित्वा दिवाकरम् । गतास्ते परमां सिद्धिं गन्धर्वा क्रष्णस्तथा ॥५२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेनु ब्रह्मादीनां
सूर्यरूपदर्शनवर्णनं नाम षष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः । १६०।

चकित हो रहे हैं । ४१-४४। जगत्पते ! हमें दिशाओं का ज्ञान नहीं हो रहा है, इसलिए आप प्रसन्न हो जायें और विश्वात्मन् ! आप अपने इस रूप को त्याग दें क्योंकि हम लोग इसके दर्शन करने में असमर्थ हो रहे हैं । ४५। उनकी ऐसी बातें सुनकर देवाधिदेव सूर्य ने प्रसन्न होकर हँसते हुए यह कहा— । ४६

आदित्य बोले—देवेश्वर ! परमपुष्पदायक, आश्चर्यकारी, लोकसत्तात्मक एवं सर्वजगन्मय मेरे इस रूप को आप लोगों ने देखा है । अनंद ! आप लोगों ने मेरी पूजा की है, अतः प्रसन्न होकर मैंने आप लोगों के कल्याण के लिए इस रूप को दिखाया है, जो योगियों के महान् मन्दिर के रूप में है । तदनन्तर ब्रह्मा, शिव एवं विष्णु ने कहा—हे दिवस्पते ! आप जैसा कह रहे हैं वह वैसा ही है इसमें संदेह नहीं । देवेश ! यह दर्शन योगियों के लिए भी दुर्लभ है । ४७-४९। आप जगन्नाथ की पूजा करने पर यहाँ हमें कुछ अप्राप्य (वस्तु) नहीं है, अतः देवों में आपके अतिरिक्त कोई अन्य आपकी भाँति पूज्यतम (अत्यन्त पूजनीय) नहीं है । ५०। अदिति-पुत्र, भगवान्, सूर्य अन्तर्हित हो गये और उनके उस रूप के दर्शन करने से ब्रह्मादि देवता भी अत्यन्त हर्षित हुए । ५१। इस भाँति ब्रह्मादि देवता, गन्धर्व एवं कृषियों ने भी भास्कर की आराधना करके परमसिद्धि प्राप्त की है । ५२

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में ब्रह्मादिकों का सूर्य रूप दर्शन वर्णन
नामक एक सौ साठवाँ अध्याय समाप्त । १६०।

अथैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजाफलप्रश्नवर्णनम्

शतानीक उवाच

एवमेतद्यथा त्वं भास्करो वैवतं परम् । नास्त्यादित्यसमो देवो नास्त्यादित्यसमा गतिः ॥१॥
 आदित्यसूलभिलिं श्रैलोक्यं नद्यं संशयः । भवत्यस्माज्जगत्सर्वं सदेवानुरप्तानुष्म ॥२॥
 हृदेन्द्रोपेन्द्रकेन्द्रणां विप्रेन्द्र श्रीद्वौकसाम् । युतिर्द्युतिमां कृत्स्ना तेजो यत्सार्वलौकिकर् ॥३॥
 सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः । सूर्य एव त्रिलोकस्य मूलं परमदेवतान् ॥४॥
 ततः सञ्ज्ञायते सर्वं रत्नेव प्रविलीयते । भावाभावौ हि लोकनानादित्यान्निःसृतौ पुरा ॥५॥
 जगज्ज्येष्ठो ग्रहो विष्णु प्रदीपतः प्रभवो रविः । तत्र गच्छन्ति निधनं जायन्ते च पुनः ॥६॥
 क्षणम् मुहूर्ता दिवसा रात्रिपक्षाश्च कृत्स्नशः । मासाः संवत्सराश्च ऋतवश्च युगानि च ॥७॥
 त एष कालश्चाप्तिश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः । प्रभासयति विप्रेन्द्र त्रैलोक्यं सच्चराचरम् ॥८॥
 तस्मादस्य द्विजश्रेष्ठं पूजने यत्कलं ज्वेत् । तन्मे ब्रूहि प्रथलेन प्रसादप्रवणो भव ॥९॥

इति श्रीभविष्ये नहापुराणे सप्तमीकले ब्राह्मे पर्वणि सौरधर्मे सूर्यपूजाफलप्रश्नवर्णनं

नामैकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः । १६१।

अध्याय १६१

सूर्यपूजा फल प्रश्न का वर्णन

शतानीक ने कहा—आपने जो बताया है कि सूर्य ही महादेव हैं, यह सर्वथा ठीक है। सूर्द के समान कोई देव नहीं है और उनके समान कोई गति (प्राप्ति) भी नहीं है । १। इसमें संदेह नहीं कि निखिल त्रैलोक्य के मूल कारण आदित्य ही है । इन्हीं द्वारा देव, मनुष्य एवं राक्षसों समेत समस्त जगत् उत्पन्न होता है । विप्रेन्द्र ! शिव, इन्द्र एवं उपेन्द्र (विष्णु) इन केन्द्रस्थलवर्ती एवं आकाशपूर्ण देवों के समस्त तेज रूप सूर्य हैं, जिससे समस्तलोक प्रकाशमय है । २-३। सर्वात्मा, समस्त लोकों के ईश, महादेव एवं प्रजापति सूर्य ही तीनों लोकों के (निर्माण में) प्रधान कारण है । ४। (समस्त लोक) उन्हीं द्वारा उत्पन्न होकर उन्हीं में लय हो जाता है, अतः सूर्य द्वारा लोकों की स्थिति और प्रलय पहले से ही निर्दित है । ५। विष्णु ! जगत् के श्रेष्ठ ग्रह, प्रज्वलित एवं (उसके) उत्पत्ति स्थान सूर्य हैं, उन्हीं में उसका लय होता है, और बार-बार जन्म भी । ६। क्षण, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, समस्तमास, वर्ष, ऋतुएँ, चारों युग, काल, आदि तथा बारह रूप धारण करने वाले प्रजापति यही हैं । विप्रेन्द्र ! चर एवं अचर रूप तीनों लोकों को इन्होंने प्रकाशपूर्ण बनाया है । ७-८। इसलिए द्विजश्रेष्ठ ! इस देव के पूजन करने के जितने फल प्राप्त होते हों मेरे ऊपर कृपा करते हुए आप प्रथलपूर्वक उन्हें बताइये । ९।

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्य के सौरगर्भ में सूर्य पूजा फलप्रश्न वर्णन
 नामक एक सौ एकसठवाँ अध्याय समाप्त । १६१।

अथ द्विषष्ट्यधिकशत्तमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

भानुं प्रतिष्ठाप्य नरः सद्वेवस्यं विभुम् । प्राप्नोत्यमरतां वीरं तेजसा रविसन्निभः ॥१
 यो भानुं द्वेष्टि रम्भोहात्सर्वदेवमस्तुतम् । नरो नरकगामी स्यात्तत्य सम्भाषणादपि ॥२
 भानुमिष्टं प्रतिष्ठाप्य सर्वयत्नंविधानतः । यत्पुण्यफलमाप्नोति तदेकाग्रमनाः शशु ॥३
 सर्वयत्नंदानानां विधेवेषु यत्फलम् । तत्कलं कोटिगुणितं स्थाप्य भानुं लभेत्वात् ॥४
 यो भानुं स्थापये द्वूकल्या विधिपूर्वं नराधिप । सर्वाङ्गमुदितं पुण्यं लभेत्वात् ॥५
 मातृजान्मित्रजांश्चैव यत्र चोद्दृहते स्त्रियम् । कुलत्रयं समुद्दृत्य शक्लोके भवीयते ॥६
 भुक्त्वा तु विपुलाद् भोगान्प्रलये समुपस्थिते । ज्ञानयोगं समासाद्य तत्रैव प्राविमुच्यते ॥७
 अथ वा राज्यमाकांक्षेज्जायते सम्भवान्तरे । सप्तहीपसमुद्रायाः क्षितेरधिपतिर्भवेत् ॥८
 यद्वृत्त्वा पार्थिवं व्योम्नि अर्चयेत्सर्वदेवकम् । समूलमखिलं तेन त्रैलोक्यं पूजितं भवेत् ॥९
 इहैव धनवाच्छ्रीमान्सोऽन्तेऽर्कत्वमाप्नुयात् । विसन्ध्यं कोर्तयेद्व्योम कृत्वा बिम्बेन पार्थिवम् ॥१०

अध्याय १६२

सौरधर्म का वर्णन

सुमन्तु बोले—वीर ! लर्वदेवमय एवं विभु सूर्य की प्रतिष्ठा करके मनुष्य सूर्य के समान तेजस्वी होकर अमरत्व प्राप्त करता है । १। अत्यधिक मोहवश जो समस्त देव के वन्दनीय सूर्य से द्वेष करता है, उससे भाषण (बात-बीत) करने वाला मनुष्य नरकगामी होता है । २। यत्नशील रहकर विधानपूर्वक अपने इष्टदेव सूर्य की प्रतिष्ठा करके मनुष्य जिस फल की प्राप्ति करता है, उसे सावधान होकर सुनो । ३। समस्त यज्ञ, तप, दान, तीर्थ एवं देवों के पूजन द्वारा जिस फल की प्राप्ति होती है, उसके कोटि करोड़, गुणे फल की प्राप्ति मनुष्य को सूर्य की स्थापना करने से होती है । ४। नराधिप ! जो विधानपूर्वक सूर्य की प्रतिष्ठा करता है, उसे उसके सर्वाङ्ग उदयकारक एवं कोटि गुणे पुण्य की प्राप्ति होती है । ५। यदि स्त्री प्रतिष्ठा करती है, तो मातृकुल, पितृकुल एवं पतिकुल, इन तीनों कुलों के उद्घारपूर्वक इन्द्रलोक में समानित होती है । ६। इस प्रकार (प्राणी) समस्त भोगों का उपभोग करके प्रलय के समय ज्ञानयोग द्वारा उन्हीं में लीन हो जाता है । राज्य की इच्छा होने पर वह जन्मान्तर में सातों द्वीपों वाले समुद्रों से घिरी समस्त पृथिवी का अधिनायक होता है । ७-८। जो व्योम (आकाश) में सर्वदेवमय एवं प्रधान कारणभूत (सूर्य) के पार्थिव रूप का पूजन करता है, उसने तीनों लोकों की पूजा की इसमें संदेह नहीं । ९। विम्ब द्वारा (सूर्य के) पार्थिव रूप को बनाकर पूजा एवं तीनों समय व्योम के कीर्तन करने से मनुष्य यहाँ ही धनवान् एवं श्रीमान् होकर पश्चात् अन्त (समय) में सूर्य के सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति करता है । १०। इस प्रकार एक

शतैकादशकं यावत्तस्य पुण्यफलं शृणु । अजेन मह देहेद भाजुः सन्तिष्ठते क्षितौ ॥११
 पापहा सर्वमत्यर्नां दर्शनात्पर्शनादपि । उद्धारयेच्च संस्थाप्य कुलानामेकविश्वातिस् ॥१२
 गीर्वाणः सहितो नित्यं मोदते दिवि सूरवत् । योऽपि पिष्टमयं व्योम सर्वान्धोपशोभितम् ॥१३
 कुमुमैः सुमुग्नन्धेश्च फलैश्च विश्विर्णुप् । भव्यलेहरसैश्चैव घृतदीपैरलडकृतैः ॥१४
 नानारत्नसमायुक्तं नानागन्धसमन्वितम् । तस्य दक्षिणपाश्वर्णे तु विन्यसेदगुरुं द्रुधः ॥१५
 दद्यादै पश्चिमे भागे श्रीखण्डं चन्दनं शुभम् । उत्तरे चन्दनं दद्याद्वत्तं दद्याद्वत्तं पूर्वतः ॥१६
 एवं लितानुभारेण कृत्वा विभवदिस्तरम् । कृष्णपथे त्रु सन्तस्यां भास्करस्य निवदयेत् ॥१७
 सकृदेव तु यः कुर्याद्व्योम भरतसत्तम् । दन्तलं हि भद्रेत्स्य तन्मे निगदतः शृणु ॥१८
 सर्वाणापविनिर्मुक्तः सर्वदुखविवर्जितः । निष्कलः सर्वगो भूत्वा प्रदिशेत्परमव्ययम् ॥
 तेजस्ता द्विसंकाशः प्रभयार्कसमग्राभः ॥१९
 पांसुना क्रीडमानोऽयः कुर्याद्व्योम द्वृकार्थतः । स राजन्भवते राजा पर्दतेजु समस्ततः ॥२०
 सर्वेषांसेव पात्राणां परं पात्रं विभावसुः । एतत्सन्तारयेद्यस्मादतीव नरकार्णवात् ॥२१
 तस्य पात्रस्य माहात्म्यं ध्रुवमक्षयमादिशेत् । तस्मात्तस्यै सदा देयमप्रभेयलक्षणिभिः ॥२२

सौ ग्यारह (उनके पर्याधि) रूपों के पूजन करने से जिस फल की प्राप्ति होती, उसे सुनो ! इसी शरीर से सूर्य पुथियों पर स्थित रहते हैं, उनके दर्शन एवं समर्थन करने से सभी मनुष्यों के पाप नाश होते हैं, और उनकी प्रतिष्ठा करके इक्कीस कुलों का उद्धार होता है । ११-१२। पश्चात अंत में वह व्यक्ति देवों के साथ सूर्य की भाँति स्वर्ग का आनन्दानुभव करता है । नूप ! पिष्ट (वूर्ण) मय तथा समस्त गंधों से सुशोभित व्योम की रचना करके सुगन्धित पूष्पों, भाँति-भाँति के फलों, भक्ष्य और स्वादिष्ट भोजन, धी के दीपकों से उसे अलंकृत कर विद्वानों को चाहिए कि उनके दाहिने पाश्व भाग में भाँति-भाँति के रत्नों एवं गन्धों समेत अगुरु स्थित करें । उनके पश्चिम भाग को शुभ श्रीखण्ड चन्दन (मलयगिरि), उत्तर की चन्दन और पूर्व की ओर रक्तचन्दन से सौन्दर्यपूर्ण करना चाहिए । १३-१६। इस प्रकार अपनी धनशक्ति के अनुसार उसे ऐश्वर्यपूर्ण कर कृष्ण पक्ष की सप्तमी में भास्कर के लिए समर्पित करना बताया गया है । भरतसत्तम ! इस प्रकार के व्योम की एक बार भी रचना करने से जो फल प्राप्त होते हैं, उन्हें मैं बता रहा हूँ, सुनो ! १७-१८। वह समस्त पापों एवं समस्त दुःखों से मुक्त कलाहीन तथा सर्वगमी होकर सूर्य के समान तेज और प्रभापूर्ण हो परम अविनाशी (सूर्य) में सायुज्य मोक्ष की प्राप्ति करता है । १९। राजन् ! जो धूलिकणों में खेलता हुआ बालक उसी धूलि द्वारा निष्प्रयोजन व्योम की रचना करता है, वह समस्त पर्वतों का राजा होता है । २०। सभी पात्रों में सूर्य उत्तम पात्र बताये गये हैं क्योंकि इन्हीं द्वारा (प्राणी) नरकसमुद्र से पार होता है । २१। उस पात्र का माहात्म्य ध्रुव एवं अक्षीण बताया गया है, इसलिए अतुल फल के इच्छुकों को चाहिए कि उनके लिए सदैव (यज्ञ रूप में) कुछ न कुछ देते ही रहें । २२। सूर्य के लिए

१. 'क्रीडोनुसम्परिम्यश्च' इति सूत्रे 'आडो दोऽनास्यावहरण' इत्याडोनुवर्तनादात्मनेपदम् ।

रवौ इतं हुतं जप्तं बलि पूजां निवेदयेत् । अनन्तफलसर्वदिष्टं कुर्यादिभुरस्तमैः ॥२३
 भक्त्या वित्तानुसारेण यः कुर्यादिलायं रवे: : सोऽप्नेयं यानमारुहा मोदते सह भावुन् ॥२४
 महाविभवसारोऽपि यः कुर्याद्बृक्तिवर्जितम् । अल्पे महति वा तुल्यं फलमात्थदरिद्रयोः ॥२५
 वित्तशाठयेन यः कुर्याद्वित्तवालपि मानवः । न स फलमवाप्नोति शलेभ्राक्षान्तसानसः ॥२६
 तस्मात्त्रिभागं दित्यस्य जीवनाय प्रकल्पयेत् । भागद्वयं च वर्मार्थं अग्नित्वं जीवाणां यतः ॥२७
 भक्त्या प्रचोदितं कुर्यादित्यवित्तोऽपि यो नरः । महाविभवसारोऽपि न कुर्याद्बृक्तिवर्जितः ॥२८
 सर्वस्वमणिं यो दद्यादर्कं भक्तिविवाजंतः । न तेन धर्मभासी स्याद्बृक्तिरदाव्र कारणम् ॥२९
 न तपेभिर्विभोल्प्रैर्च सर्वमैर्भास्तमैः । गच्छेदेकं पुरं दिव्यमर्कं भक्तियुतो नृप ॥३०
 हृष्विरं शुभमैलोत्यं कुर्याद्वस्तु रवेष्वहम् । त्रिसप्तकुलसंयुक्तः सूर्यसेकमवाभ्युथात् ॥३१
 शन्मया कोटिगुणितं कृतं स्यादिष्टकाम्यया । द्विपराधगुणं पुण्यं शैलजेष्यि द्विरुद्धाः ॥३२
 भृच्छैलेन समं ज्ञेयं शुण्यमात्थदरिद्रयोः । अश्व तत्र गतः कुर्याद्बृक्त्या पुण्यं भगवत्प्रथम् ॥३३
 शैलोत्थभिष्टकाभिर्द दृढं दाम्भयं शुभम् । स गच्छेत्यस्म स्थान श्रावोरपिततेजसः ॥
 जैरिकं यानमारुह्यं यः कुर्याद्वित्तमूष्यगः ॥३४

दिये गये दान, हवन, जप, बलि एवं पूजन करने से अनंत फलों की प्राप्ति होती है, इसे ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवों ने बताया है । २३। अपने धन के अनुसार जो सूर्य के लिए मन्दिर निर्माण कराता है, वह आनन्द विमान पर बैठकर सूर्य के साथ दिवाहार करता है । २४। महाधनवान होते हुए भी भक्तिहीन होकर जिसने छोटे या बड़े उस मन्दिर की रचना की है, उसे (गृह न बनाने वाले के तुल्य फल की प्राप्ति होगी अर्थात् उसके और द्विद्र भनुष्य में कोई भेद नहीं होता है) । २५। धनवान होने पर भी जो मनुष्य शरनावश अधिक धन (सूर्य के लिए) व्यय न कर सका, तो उस लोभी को पुण्य फल की प्राप्ति नहीं होती है । २६। इसलिए धन का तीसरा भाग अपने जीवन के लिए संचित कर दो भागों को धर्मार्थ में व्यय करना चाहिए। क्योंकि जीवन नश्वर है । २७। अल्प धन के होते हुए भी भक्ति में निर्माण होकर ही (यह कार्य) करना चाहिए इसलिए कि महाधनवान् होने पर भक्तिहीन होकर यह कार्य करना निषिद्ध बताया गया है । २८। भक्तिहीन होकर जिसने अपने सर्वस्व का दान सूर्य के लिए कर दिया है, वह धर्म भागी कभी नहीं कहा जायगा क्योंकि धार्मिक होने में भक्ति ही कारण बतायी गयी है । २९। विभु (सूर्य) के लोक की प्राप्ति उग्रतप एवं समस्त यज्ञों द्वारा भी नहीं हो सकती है, नृप ! उनके दिव्यलोक की प्राप्ति केवल भक्तिमान् ही कर सकता है । ३०। जो शुभ शिला द्वारा सौन्दर्य पूर्ण सूर्य का मन्दिर बनाता है, वह अपने इक्कीस कुल (पीढ़ी) के समेत सूर्यलोक की प्राप्ति करता है । ३१। जो मैंने बताया कि अपनी इष्ट कामनावश करने से कोटि गुणे फल की प्राप्ति होती है, उसी भाँति विद्वानों को यह भी जानना चाहिए कि पत्थर के मन्दिर निर्माण कराने से परार्थ के दुगुने पुण्य की प्राप्ति होती है । ३२। मिद्टी और पत्थर द्वारा मन्दिर के निर्माण कराने वाले धनवान् एवं दरिद्रों के पुण्य में कोई विशेषता नहीं होती है। इसलिए जहाँ कहीं भी हो सके भक्तिपूर्वक ही सूर्य के मन्दिर का निर्माण कराना चाहिए। इस प्रकार पत्थर, हीट अथवा काष्ठ द्वारा दृढ़ एवं शुभ मन्दिर की रचना अजेय तेज वाले सूर्य के लिए करानी चाहिए। जो ऐसा करता है उसे विमान

क्रीडमानोऽपि यः कुर्याद्वालभावेऽर्कमंदिरम् । सोऽर्कलोकमवाप्नेति विजानवरमास्तितः ॥३५
 पुष्पमालाकुलं दिव्यं धूपगन्धादिवासितम् । अप्सरोगणतंकीर्णं सर्वकामसुखप्रदम् ॥३६
 तत्र रुदो महाराज वत्सरं वृन्दमुत्तमम् । उपित्वा भास्करपुरे पूज्यमानस्तु दैवतैः ॥३७
 कलादगत्य लोकेऽस्तित्वराजा भवति धार्मिकः । धर्मर्थकाससम्पन्नो यज्ञसा च नराधिप ॥३८
 पश्यन्थरिहरङ्गजन्तुन्मार्जन्मा मृदुसूक्ष्मया । शनैः सम्मार्जनं कुर्याद्वान्द्रायणफलं भवेत् ॥३९
 पुत्रार्थं देवजीर्णाया वन्ध्यादश्च विशेषतः । रोगात्तनां च भूतानाभारोग्यार्थं प्रपूजयेत् ॥४०
 गृहीत्वा गोभयं स्वच्छं स्थाने च पतितं शुभे । उपर्युपरि सत्त्वज्य प्रथयं जन्तुविद्वितम् ॥४१
 वस्त्रपूतगामयेन यः कुर्यादुपलेपनम् । पश्येनु सुखिताऽङ्गजन्तुश्चान्द्रायणशतः^१ लभेत् ॥४२
 यः कुर्यात्सर्वकार्याणि वस्त्रपूतेन वारिणा । स मुनिः स महासाधुः स गच्छेत्परमां गतिम् ॥४३
 कर्तन्ति सर्वदानाति यज्ञहोमबलिक्षियाः । अक्षर तु महादानं सुखदं सर्वदेहिनाम् ॥४४
 नैरन्तर्येण यः कुर्यात्वकं सम्मार्जनार्चनम् । वर्षमेकं शतं दिव्यं सुरलोके महीयते ॥४५
 तस्यान्ते च चतुर्वेदमुरूपः प्रियदर्शनः । आदः सर्वगुणोपेतो राजा भवति धार्मिकः ॥४६
 सम्पर्केणापि यः कुर्याद्विरः कर्म भगालये । सोऽपि सौमनसं गत्वा पुरं क्रीडति नित्यशः ॥४७

द्वारा उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है । ३-३४ वाल्यावस्था में खेलते हुए भी जो सूर्य मन्दिर बनाकर खेलता है, वह भी उत्तम विमान पर बैठकर सूर्य की प्राप्ति करता है । ३५। महाराज ! पुष्पों की मालाओं से अलंकृत, दिव्य, धूप एवं गंधों से सुगन्धित, अप्सराओं से घिरे, समस्त कामनाएँ तदा सुख प्रदान करने वाले उस विमान द्वारा उस लोक में अनेकों वर्ष देवों से पूजित रहकर पुनः क्रम प्राप्त कर यहाँ आकर धार्मिक राजा होता है, नराधिप ! उसके धर्म, अर्थ, काम एवं यश सभी सुसम्पन्न होते रहते हैं । मन्दिर में जीवों को देखकर उनकी रक्षापूर्वक जो कोमल एवं सूक्ष्म मार्जनी (झाड़) द्वारा धीरे-धीरे सफाई करता है, उसे चान्द्रायण फल की प्राप्ति होती है । ३६-३९। जिस प्रकार बन्धायणों को बढ़ाती हो जाने पर भी पुत्रार्थ उनकी पूजी करनी चाहिए उसी भाँति रोगी प्राणियों को सदैव अपने आरोग्य के लिए भी । ४०। अच्छे स्थान से गोबर लाकर कपड़े से छानकर उनके मन्दिर के ऊपरी भाग को छोड़ केवल नीचे वाले भाग (भूमि) को जीवों (कीड़े-मकोड़े) को देखते हुए लीपने से सौ चान्द्रायण की पुण्य प्राप्ति होती है । ४१-४२। जो वस्त्रपूत जल द्वारा सभी कार्य करता है, वह मुनि, तथा महान् साधु है, उसे परमगति की प्राप्ति होती है । ४३। सभी प्रकार के दान, यज्ञ, हवन एवं बलि की क्रियाएँ नश्वर बतायी गयी हैं, किन्तु समस्त प्राणियों के लिए केवल अक्षर अनश्वर और सुखदायी (वह सूर्य का) महादान ही है । एक पक्ष तक निरन्तर सम्मार्जन (सफाई) और पूजन जो करता है, वह दिव्य सी वर्षतक सर्वलोक में सम्मानित होता है । ४४-४५। तत्पश्चात् चारों देव के स्वरूप (प्रक्षरविद्वान्) सर्वं प्रिय, प्रथम एवं समस्त गुणों समेत धार्मिक राजा होता है । ४६। जो किसी के साथ भी सूर्य के मन्दिर में कार्य करता है, वह भी देवलोक में जाकर प्रतिदिन

१. कृतशतवारचान्द्रायणं फलमित्यर्थः ।

तावद्भ्रमन्ति संसारे दुःखशोकपरिप्लुता । न भजन्ति रथं भक्त्या यावत्सर्वेऽपि देहिनः ॥४८
 समाप्तकृतं तथा चित्तं जन्मोर्धिषयगौचरे । यद्यकौं न भवदेवः को मुख्येव दन्धनाद् ॥४९
 यः कुर्यात्कुटिद्विभां भूमिं दर्शणोदरसन्निभास् । नानाकर्णविचित्रां च विचित्रकुमुमोज्ज्वलाम् ॥५०
 न्यचित्कलशविन्यस्तां पड़कजैरुपशोभताम् । इत्यां भनोर्तर्मां सौन्दर्यामर्कायतनसंसदि ॥५१
 यावद्युग्मा भद्रेभूमिः समन्तराच्च सुशोभता । तावद्युग्मसहस्राणि युरसोऽपि अहीयते ॥५२
 कारदेविचित्वशास्त्रजौष्ठव्रकर्मन्दिरे । विचित्रं यत्वमारह्य विविभनोगृहं द्वजेत् ॥५३
 यावत्स इवरुपाणि प्रहरुणाणि तेष्यत् । तावद्युग्मसहस्राणि स्वर्गलोके अहीयते ॥५४
 भद्रेभूमिः समन्तराच्च यः कुर्यादिवस्मन्दिरम् । आरायाक्षशादादानां लक्षदामूल्यकं गलम् ॥५५

इति श्रीभविष्ण्वे महापुराणे भावे पवाण यस्तसीकल्पे सौरधर्मवर्णं ताव-

द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६२॥

अथ त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मेभु युष्मपूजार्पणनम्

सुमन्तु तद्वाच

भास्करस्य भहाबाहो भानोरभित्तेजसः । लाभकालं प्रकुर्वात जयशब्दविष्णुगतम् ॥१

क्रीड़ा करता है । ४७। संसार में दुःख एक शोक में निमग्न होकर समस्त प्राणी तभी तक धूमरे रहते हैं, जब तक सूर्य की भक्तिपूर्वक आराधना नहीं करते । ४८। प्राणियों के चित्त प्रत्येक क्षण दिवयों में उन्हें देखकर आसक्त रहते हैं इसलिए ऐसी दशा में यदि सूर्य देव न हीं तो उन्हें बन्धन मुक्त कौन कर सकता है । ४९। जो दर्पण के समान चमकीला लक्ष (मन्दिर के भीतर भूमि का ऊपरी भाग) बनाता है, भाँति-भाँति के रंग एवं भाँति-भाँति के प्रूपों से सुशोभित करता है, तथा कहीं कमलों से सुसज्जित कलशों के रखने के द्वारा उसे सौन्दर्यपूर्ण करता है, इस प्रकार सूर्य के मन्दिर की भूमि रमणीक एवं मनोहर बनाने वाला वह मनुष्य जितने दंडों के प्रमाण वह चौकोर भूमि रहती है, उतने सहस्रयुग सूर्य लोक में पूर्जित होता है । ५०-५२। जो कुशल विचित्राकार सूर्य के मन्दिर में चित्र बनाता है वह विचित्र विमान पर बैठकर विचित्रगुप्त के लोक की प्राप्ति करता है । ५३। ग्रह रूप में उन देव की जितनी मूर्ति (चित्र) वह बनाता है, उतने सहस्र युग सूर्य लोक में सम्मानित होता है । सूर्य के मन्दिर में चारों ओर इस भाँति लम्बी-चौड़ी भूमि होनी चाहिए, जिसमें भलीभाँति बगीचा एवं रहने के स्थान बने हों ऐसा निर्माण कराने वाले उस पुरुष को अमूल्य फल की प्राप्ति होती है । ५४-५५

श्रीभविष्ण्व पुराण में ब्राह्मणवर्ग के सप्तमी कल्प में सौरधर्म वर्णन नामक
 एक सौ बासठवाँ अध्याय समाप्त । १६२।

अध्याय १६३

सौरधर्म में पुष्पपूजा का वर्णन

सुमन्तु बोले—महाबाहो ! अमित तेज एवं किरण युक्त सूर्य के स्नान के समय 'जप' आदि मांगलिक

पश्चस्वस्तिकराइलं तु श्रीघतं द्विजस्तम् । हेमरूषादिवावेषु कल्पितं गोमथादिभिः ॥२
 नानावर्णकसंयुक्तेरकरत्तिलतन्तुलः । स्वच्छेश्व वधिसम्मिश्रेयथाशोभं प्रपूरितः ॥३
 इव्यपोठप्रदीपाश्च मूत्राध्यत्यादिपल्लवः । औषधीमिश्र मेष्याभिः सर्वबीजैर्यतादिभिः ॥४
 सप्तस्त्यादिषु सर्वेषु षष्ठ्यादिषु विशेषतः । शृङ्खलभेर्यादिभिः कुर्याद्वाद्यथोषं मुहूर्भनम् ॥५
 त्रिस्तम्य वेदनिर्घोर्णु तुवेत फलमुत्तमम् । कुर्यात्तीराजनं चैव शृङ्खलादिक्षमहग्लैः ॥६
 यत्प्राराजनं कुर्यात्यवर्णि विधिवद्वाखौ । तावद्युःसहस्राणि द्वारलोके महीयते ॥७
 कपिला पञ्चगव्येन कुर्यात्तिरुदेन चै । स्तनायेन्मन्त्रपूतेन ब्रह्मस्नानं हि तत्सृतम् ॥८
 पंत्स्तेकदयि सर्वेष्व ब्रह्मस्नानं प्रयच्छति । स मुक्तः सर्वपापेत्तु सूर्यलोके महीयते ॥९
 कपिलापञ्चगव्येन देहशीर्युदेन च । स्तनानं दशगुणं ज्ञेयं भद्रत्पुण्यं नराधिप ॥१०
 ऋश्वो धीरुद्दिश्य देहशुद्धिं च शाश्वतीम् । कपिलामाहरेश्वित्यं भुनिदेवाश्रिनिर्मितात् ॥११
 कपिलं यः पिबेच्छूद्दोदेवकार्यार्थनिर्मितम् । स पच्यते महाघोरे सुचिरं नरकार्णवे ॥१२
 वर्षकोटिसहस्रेषु यत्वाप्यं समुपार्जितम् । मृत्युङ्गेन सूर्यस्य दहत्सर्वं न संशयः ॥१३
 कल्पकोटिसहस्रेत्तु यत्वाप्यं समुपार्जितम् । वज्रस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरेत्थनम् ॥१४
 रस्तम्यां च कृतस्नानो यजेत्सूर्यं सकृद्भरः । कुलान्त्युद्यत्य सप्तेह सूर्यलोके महीयते ॥

शब्दों का उच्चारण करना चाहिए । १। सुवर्ण और चाँदी के पात्रों में गोबर आदि द्वारा कभल, स्वास्तिक, शंख एवं श्रीवत्स रूपी अंकों को बनाये, पुनः भाँति-भाँति के मिश्रित अक्षत, तिल, चावल स्वच्छ दही आदि मिलाकर उसी द्वारा सौन्दर्यपूर्ण उत्तम आसन दीपक, पीपल आदि के पल्लव, औषधियों, जवा आदि समस्त दीजों के अंकुरों से सुसम्पन्न करके सभी सप्तमी या षष्ठी में शंख भेरी आदि वादों समेत मनमोहक वादों (बाजों को बजाये) । २-५। तीनों संध्यायों में वेदपान करना चाहिए, उससे (महान्) फल प्राप्त होते हैं, शंख आदि मांगलिक वादों समेत पर्वतियों में सूर्य का जितने बार नीराजन किया जाता है, उतने सहस्र युग वह सूर्य लोक में पूजित होता है । ६-७। कपिला गाय के पञ्च गव्य से कुश जल द्वारा मंत्र से पवित्र स्नान कराना चाहिए, क्योंकि यहीं 'ब्रह्म स्नान' बताया गया है । ८। जो प्रत्येक वर्ष में एक बार भी सूर्य का ब्रह्मस्नान कराता है, वह समस्त पातकों से मुक्त होकर सूर्यलोक में सम्मानित होता है । ९। नराधिप ! कपिलागाय के पञ्चगव्य अथवा अन्य गाय के दही, क्षीर मिश्रित जल से आन कराने से दशगुणे पुण्यकी प्राप्ति होती है । १०। देवोंको चाहिए कि सूर्य के उद्देश्य से अपनी शरीर शुद्धि के निर्मित मुनि, देव एवं अग्नि के लिए उत्पन्न की गई कपिला गाय का नित्य पालन करें । ११। देव-कार्य के लिए विनिर्मित कपिलागाय के दूध का पान जो शूद्र करता है, वह अत्यन्त दुःखदायी नरक सागर में पड़कर चिरकाल तक दुःखों का अनुभव करता रहता है । १२। सूर्य के लिए धी का अम्यग्र प्रदान करने से सहस्र कोटि (करोड़ों) वर्षों के अर्जित पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं । १३। वज्र स्नान कराने से अग्नि द्वारा ईंधन की भाँति सहस्र कोटिकल्पों के किये हुए समस्त पाप जल जाते हैं । १४। सप्तमी में स्नान करके एक बार भी सूर्य

वसुमेहादियुक्तं च क्षीरस्नानस्य तत्सम्भू

॥१५

सकृदादकेन यत्सा यो भानुं स्नापयेत्वः । राजतेन दिमानेन सोऽर्कलोके महीयते ॥१६
स्नाप्य दन्ता सकृद्ग्रानुं स त्रिलोके महीयते । मधुना स्नपित्वा तं शुक्लोके महीयते ॥१७
उद्दत्य शालिपिष्टेन वायुलोकेषु पूज्यते । स्नानमिकुर्सेनेह एः सूर्ये सकृदाद्वरेत् ॥
स गोपतिपुरं गच्छेत्सर्वाकामसमन्वितः ॥१८

फलोदकेन यो भानुं सकृत्स्नापयते नरः । उत्सृज्य पापकलिङ्गं पितॄलोके महीयते ॥१९
श्रीखण्डवारिणा स्नाप्य सकृद्ग्रानुं नरादिप । चन्द्रांशुनिर्मलः श्रीमांश्चरेदादेष्यनन्दिरे ॥२०
वस्त्रपूतेन तोयेन यद्यकं स्नापयेत्सकृद् । स सर्वज्ञस्तृत्स्नाना राकांधिपुरं वजेत् ॥२१
अप्यो द्विष्टेति जप्येन गड्गातोयेन भारत । गैतिकेण दिमानेन इहलोके महीयते ॥२२
कर्पूरामुखोयेन योजकं स्नापयते सकृद् । स्नाप्य भानुं सकृनन्त्रैः सन्तत्यां समुपोषितः ॥
स कुलानेकविंशतिमुत्तार्य रविभावजेत् ॥२३

पितॄनुहित्य यो भानुं स्नापयेच्छीतवारिणा । तृप्ताः स्वर्गं द्वजन्त्याशु पितरो नरादिपि ॥२४
भानुं शान्तःस्नुनास्नाप्य धारोण्यपयसा सह । स्नाप्य पश्चाद्वतेनेशमग्निलोके महीयते ॥२५
एतत्स्नानत्रयं कृत्वा पूज्यित्वा तु भारत । अन्धमेधसहस्रत्रयं फलं प्राप्नोति भानवः ॥२६

के पूजन करने से मनुष्य अपने सात पीढ़ियों के उद्धारपूर्वक सूर्य लोक में सम्मानित होता है । क्षीर से स्नान कराने वाला पुरुष रत्न एवं सुवर्णयुक्त होकर उसके समान ही फलभागी होता है । १५। एक सेर दूध द्वारा एक बार भी सूर्य को स्नान कराने वाला पुरुष बाँदी के विमान पर स्थित होकर सूर्य लोक में पूजित होता है । १६। दही द्वारा एक बार भी (सूर्य को) स्नान कराने वाला मनुष्य तीनों लोकों में सम्मानित होता है । शहद द्वारा स्नान कराने वाला शुक्लोक में पूजित होता है । १७। चावल के चूर्ण (आटे) द्वारा स्नान कराने से यह वायुलोक में पूजित होता है, इसके रस द्वारा जो एक बार भी सूर्य को स्नान कराता है, वह समस्त कामनाओं की सफलतापूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति करता है । १८। फल से रस द्वारा एक बार भी सूर्य को स्नान कराने वाला मनुष्य पाप समूह से मुक्त होकर पितॄलोक में पूजित होता है । १९। नरादिप ! श्रीखण्ड (चन्दन) के जल से भी एक बार सूर्य को स्नान कराने के चन्द्र किरण की भाँति निर्मल एवं श्रीसम्पत्र होकर वह चन्द्रलोक में दिव्यरण करता है यदि वस्त्रपूत (कपड़े से दानकर) जल द्वारा एक बार भी सूर्य का स्नान कराया जाय, तो समस्त कामनाओं की तृप्तिपूर्वक मनुलोक की प्राप्ति होती है । २०-२१। भारत ! गंगाजल द्वारा 'आपोहिष्टे' ति मंत्र से सूर्य के मार्जन-स्नान कराने से वह सुवर्ण मयविभान पर बैठकर बहु लोक में सम्मानित होता है । २२। जो मनुष्य सप्तमी में उपवास कर कपूर एवं अगुरु के जल द्वारा एक बार मंत्रपूर्वक सूर्य को स्नान कराता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियों के उद्धार करके सूर्यलोक की प्राप्ति करता है । २३। जो अपने पितरों के उद्देश्य से शीतल जल द्वारा सूर्य को स्नान कराता है, उसके पितरलोग नृप होकर नरक से शीघ्र स्वर्ग के लिए प्रस्थान कर देते हैं । २४। धारोण्य (तुरन्त के दुहेहुए) दूध के साथ शीतल जल द्वारा सूर्य को स्नान कराकर व्रत पालन करते, वह अग्निलोक में सम्मानित होता है । २५। भारत ! इस प्रकार तीन भाँति के स्नान एवं पूजन करके मनुष्य सहस्र अश्वमेध

मृत्कुम्भात्तत्रकुम्भैस्तु स्नानं शतगुणं मतम् । रोप्यैः पादोत्तरं पुण्यं दर्शनात्स्पर्शं परम् ॥
 स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं धृतस्नानमतः परम् ॥२७
 इहामुत्र कृतं पापं धृतस्नानेन नश्यति । सप्तजन्मकृतं पापं पुरणश्रवणेन तु ॥२८
 दशापराधांस्तेषेण कीरेण तु शतं क्षमेत् । सहलं क्षमते दध्ना धृतेनाप्ययुं क्षमेत् ॥२९
 नैरत्यर्थण यो शास्त्रे वृत्तस्नानं लघाचरेत् । दशैकद्वयं कुलानीहौ नवत्सूर्यस्त्वं मानेदरम् ॥३०
 स्नानं पत्तशतं ज्ञेयमन्यद्गः पञ्चविंशतिः । पत्तानां द्विसहस्रेण महास्नानमिति श्रुतिः ॥३१
 धृताम्बुद्गं धृतस्नानं भानोः कुर्याद्दिजोत्तम । यथा शोधूलवूर्णैस्तु कथायैर्भैर्संभितैः ॥३२
 दशधेनुसहस्राणि यद्वत्ता लभते फलम् । तत्कलं लभते स्वर्वमर्क्ष्योद्वर्तने कृते ॥३३
 अर्थं पुण्यफलोपेतं पस्त्वकर्याणि निवेदयेत् । स पूज्यः सर्वलोकेषु अर्कवन्मोदते दिवि ॥३४
 गन्धतोयेन समिश्रमुदकाद्वादशोत्तरम् । एवगव्यस्तमायुक्तमर्थं शतगुणं नृपः ॥३५
 योऽटाइगरभैर्मायुर्यं भानोर्मूर्धिने निवेदयेत् । दशावर्धसहस्राणि रमते द्वार्कमन्दिरे ॥३६
 आपः क्षीरं कुशाप्राणि धृतं दधि तथा मधु । रक्तानि करवीराणि तथा रक्तं च चन्दनम् ॥३७
 अष्टाङ्गा एव अर्धो वै ब्रह्माणा परिकीर्तेतः । सततं प्रीतिजननो भास्करस्य नराधिप ॥३८
 दातुर्वैणवपात्रेण इत्तेऽर्थे यत्कलं भवेत् । तस्माच्छतगुणं पुण्यं मृत्यात्रेण नराधिप ॥३९

के फल की प्राप्ति करता है । २६। भिट्टी के कलशों और ताँबे के घड़ों द्वारा स्नान कराने से सौ गुने एवं चाँदी के कलशों से चौथाई और अधिक प्राप्ति होती है । दर्शन से स्पर्श करना श्रेष्ठ होता है, स्पर्शन से पूजन श्रेष्ठ तथा उसमें भी धी द्वारा स्नान कराना परमोत्तम दत्ताया गया है । २७। लोक-परलोक के सभी पाप धी स्नान से नष्ट हो जाते हैं । उसी प्रकार सात जन्म का पाप पुराण श्रवण से नष्ट होता बताया गया है । २८। जल द्वारा स्नान कराने से दश अपराधों की क्षमा प्राप्त होती है, क्षीर द्वारा सौ अपराधों, दही से सहस्र अपराधों एवं धी द्वारा दश सहस्र अपराधों की क्षमा प्राप्त होती है । २९। एक मास तक निरंतर जो सूर्य को धृत स्नान कराता है, वह अपने इक्कीस पीढ़ी के पारंवारों को सूर्यलोक की प्राप्ति कराता है । ३०। सौ पल का स्नान विधान बताया गया है (अर्थात् स्नान की वस्तु सौपल के परिमाण से कम न हो) उसी प्रकार पच्चीस पल का अम्बांग, एवं दो सहस्र पल का महास्नान बताया गया है । ३१। अतः द्विजोत्तम ! सूर्य को धी का अम्बांग एवं स्नान कराना चाहिए । जो एक पीतमिश्रित वर्णवाले कुणों की भाँति गेहूँ के चूर्ण (आटे) द्वारा सूर्य का उद्वर्तन (मूर्ति की रूप सफाई) करता है, उसे दशसहस्र धेनु-दान के समान फल की प्राप्ति होती है । ३२-३३। पुण्य एवं फल समेत अर्थं जो सूर्य के लिए अर्पित करता है, वह समस्त लोकों का पूज्य होकर सूर्य के समान स्वर्ग में आनन्दानुभव प्राप्त करता है । ३४। नृप ! सुगन्धित जल मिश्रित जल द्वारा दिया गया अर्थं बारह गुने एवं पञ्चगव्य मिश्रित अर्थं प्रदान करने से सौ गुने फल की प्राप्ति होती है । ३५। जो अष्टांग समेत अर्थं सूर्य के शिर पर अर्पित करता है, सूर्य के मन्दिर में वह दशसहस्र वर्ष विहार करता है । ३६। जल, क्षीर, कुशाग्र भाग, धी, दही, शहद, रक्त करवीर (कनेर), और रक्तचन्दन, ब्रह्मा ने इसे ही अष्टांग अर्थं बताया है । नराधिप ! यह भास्कर के लिए निरन्तरप्रिय है । ३७-३८। बाँस के पात्र द्वारा अर्थं प्रदान करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, उससे सौगुना पुण्य

ताम्रार्थ्यपात्रदानेन पुण्यं शतगुणं मतम् । पालाशपद्मपत्राभ्यां ताम्रपात्रे फलं लभेत् ॥४०
 रौप्यपात्रेण विज्ञेयं लक्षार्थ्यं नात्र संशयः । सुवर्णपात्रविन्यस्तमर्थ्यं कोटिगुणं भवेत् ॥४१
 एवं स्नानार्थ्यनैवेद्यबलिधूपादिषु क्रमात् । पात्रान्तरविशेषेण तत्कलं तत्त्रोत्तरम् ॥४२
 रौप्यपात्रप्रदानेन यत्पुण्यं वेदपात्रे : ताम्रपात्रप्रदानेन तस्माच्छतगुणं रवौ ॥४३
 फलं कोटिसुवर्णस्य यो दधाह्वेदपात्रे । सूर्याङ्गं रूपपात्रे तु भवेत्पुण्यं ततोऽधिकम् ॥४४
 सुवर्णपात्रं यो ददाद्वृक्षकाराय महीपते । न शद्यं तस्य तद्वक्तुं पुण्यं पात्रविशेषतः ॥४५
 तुल्यमेव फलं प्रोक्तं सर्वसाड्यदिद्वयोः । तयोरभ्यधिकं तस्य यस्त्वर्के भावनाधिकः ॥४६
 निःस्त्रे सति यो मोहान् कुर्याद्विधिविस्तरम् । नैव तत्कलमाप्नोति प्रलोभाकान्तमानसः ॥४७
 तस्मान्मन्त्रैः फलस्त्तोयैश्वन्दनाद्यश्च यत्ततः । तदनन्तफलं ज्ञेयं भक्तिरेवात्र कारणम् ॥४८
 लर्षकेटिश्च दिव्यं सूर्यलोके गहीयते । गन्धानुलेपनं पुण्यं द्विगुणं चन्दनस्य तु ॥४९
 गन्धाच्चतुर्गुणं ज्ञेयं पुष्पमष्टगुणं नृप । कुण्डागुरु विशेषेण द्विगुणं फलमादेशेत् ॥
 नस्माच्छतगुणं पुण्यं कुइकुमस्य विधीयते ॥५०
 चन्दनागुरुकर्पूरैः क्षुधणपिष्ठैः सकुइकुमैः । भानुं पर्याप्तमालिप्य कल्पकोटिं वसेद्विदि ॥५१

मिट्टी के पात्र द्वारा प्रदान करने से होता है । ३१। ताँबे के पात्र द्वारा अर्थ्य प्रदान करने से सौ गुना पुण्य होता है, पलाश एवं कमल पत्र द्वारा ताँबे के पात्र के समान ही फल प्राप्त होता है । ४०। चाँदी के पात्र द्वारा अर्थ्य प्रदान करने से लक्ष गुने अधिक पुण्य होता है इसमें संदेह नहीं । सुवर्ण पात्र द्वारा दिया गया अर्थ्य कोटि गुने फल प्रदान करता है । ४१। इस प्रकार स्नान, अर्थ्य, नैवेद्य, बलि एवं धूप आदि प्रदान करने में पात्रों की विशेषता वश उत्तरोत्तर अधिक फल प्राप्त होता है । ४२। वेद पारगामी (सूर्य) के लिए चाँदी के पात्र द्वारा अर्थ्य प्रदान करने से जितने फल की प्राप्ति होती है, ताँबे के पात्र द्वारा अर्थ्य प्रदान से उससे सौ गुने फल की प्राप्ति होती है । ४३। वेदनिष्ठात (सूर्य) के लिए जो सुवर्ण पात्र द्वारा अर्थ्य प्रदान करता है, उसे कोटिफल की प्राप्ति होती है । चाँदी के पात्र द्वारा अर्थ्य प्रदान करने से उससे भी अधिक पुण्य प्राप्त होत है । ४४। महीपते ! सूर्य के लिए सुवर्जपात्र जो अर्पित करता है, पात्र विशेष होने के कारण उसका पुण्य-परिमाण इतना विस्तृत रहता है जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती । ४५। इस प्रकार धनवान् और दरिद्र पुरुषों के फल की समानता बतायी गई है । उन दोनों से भी अधिक पुण्य उसे प्राप्त होती है, जिसकी भावना (प्रेम) सूर्य के लिए उत्तरोत्तर अधिक होती रहती है । ४६। धन के रहते हुए जो मोहवश विस्तार रूप में विधान की समाप्ति नहीं करता है, उस लोभी पुरुष को उसका कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता है । ४७। इसलिए भक्तिपूर्वक ही मन्त्र, फल, जल एवं चन्दन आदि प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । उसका अनन्त फल होता है, क्योंकि आराधना में भक्ति ही एक मुख्य कारण बतायी गया है । उसे सुसम्पत्ति कलेवाला पुरुष सौ करोड़ वर्ष तक सूर्य लोक में पूजित होता है । गंध के उपलेपन से चन्दन के लेप करने में न दुगुना पुण्य, गंध से चौगुना पुण्य से आठगुना तथा नृप ! काले अगुरु से विशेषकर दुगुने फल की प्राप्ति होती है और उससे सौगुना पुण्य कुंकुम द्वारा प्राप्त होता है । ४८-५०। चन्दन, अगुरु तथा कपूर को भली-भाँति पीसकर उसमें कुंकुम डालकर सूर्य के शरीर में भली-भाँति लेपन

स दीव्येत्सुरवृन्देन पुष्पगन्थैः प्रलेपितः । दशवर्षसहस्राणि वीर मिश्रपुरे वसेत् ॥५२
 भक्त्या निवेद्य अर्कार्यं तालवृन्तं नराधिप । दशवर्षसहस्राणि वीरलोके महीयते ॥५३
 मायूरं व्यजनं दत्त्वा सूर्यायातीव शोभनम् । वर्षकोटिशतं पूर्णं प्रभञ्जनपुरे वसेत् ॥५४
 पुष्पैररण्यसम्भूतैः पत्रैर्वा गिरिसम्भवैः । अपर्मुषितनिषिद्धैः प्रोषितैर्जन्तुवर्दितैः ॥५५
 आत्मारामभवैश्चेद पुष्पैः सम्पूज्येद्वाचिम् । उष्णजातिविशेषेण भवेत्पुष्पं ततोऽधिकम् ॥५६
 तथःशीलगुणोपेत इतिहासविवाद द्विजे । दत्त्वा दश सुवर्णस्य निष्कान्यल्लभते फलम् ॥५७
 करवीरस्य कुशुमर्कारां विनिवेददेत् । लभते तत्कलं वीर यथाह भगवान्विः ॥
 एवं पुष्पविशेषेण कलं तदधिक भवेत् । ज्ञेयं पुष्पं रसज्ञेन यथा स्थात्तन्निबोधं से ॥५८
 सदा पुष्पसहस्रेभ्यः करवीर विशिष्यते । वित्त्वपत्रसहस्रेभ्यः पद्ममेकं नराधिप ॥५९
 पद्मपुष्पसहस्रेभ्यो बकपुष्पं विशिष्यते । बकपुष्पसहस्रेभ्यो मुदगरं परमुच्चते ॥६०
 कुशगुणसहस्रेभ्यः शमीपत्रं विशिष्यते । शमीगुणसहस्रेभ्यो नृपं नीलोत्पलं परम् ॥
 सर्वासां पुष्पजातीनां भ्रवरं नीलगुप्तलम् ॥६१
 रक्तोत्पलसहस्रेण नीलोत्पलशतेन च । रक्तश्च करवीरैश्च यन्तु प्रज्यते त्रिविन् ॥६२
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च । वसेदर्कपुरे श्रीमानसूर्यनुल्यपराक्रमः ॥६३
 शेषाणां पुष्पजातीनां यत्कलं परिकीर्तिम् । तत्स्फलस्यानुसारेण सूर्यलोके महीयते ॥६४

करे तो, कोटिकल्प तक स्वर्ग में निवास रहता है ।५१। वीर ! पुण्य मेघों के उपलेप करने से वह पुरुष देव समूहों के साथ क्रीड़ा करता है, पश्चात् सूर्य लोक में दश सहस्र वर्ष का निवास उसे प्राप्त होता है ।५२। नराधिप ! भक्तिपूर्वक ताड़फल के गुच्छे को सूर्य के लिए समर्पित करने से (मनुष्य) दश सहस्र वर्ष सूर्य लोक में प्रूजित होता है ।५३। मोरपुच्छ का व्यंजन (पंख) अत्यन्त सौन्दर्यरूपं बनाकर सूर्य के लिए समर्पित करने से सौ कोटिवर्ष सूर्यलोक में निवास प्राप्त होता है ।५४: पहाड़ी प्रदेश के जंगलों के पुष्पों एवं पत्तों द्वारा जो बासी एवं फटे-कटे आदि न हों, जन्तुहीन हों । अथवा अपने बरीचे के पुष्प हों, सूर्य की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि पुष्प-जाति की विशेषता दश पुण्य भी उत्तरोत्तर अधिक होता है ।५५-५६। तपस्त्री गुणयुक्त एवं इतिहासज्ज ब्राह्मण को दश निष्क सुवर्ण प्रदान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वीर ! सूर्य के लिए कनेर के पुष्प प्रदान करने से उसी फल की प्राप्ति होती है, भगवान् सूर्य ने बताया है । इस भाँति पुण्य की विशेषता वश उससे अधिक पुण्य प्राप्त होता है, जिसे रासायनिक लोग जानते हैं । उसे मैं तुम्हें बता रहा हूँ, मुनो ! अन्य एक सहस्र पुष्पों से अधिक कनेर के पुष्प की विशेषता रहती है, नराधिप ! सहस्र विलवपत्रों से कमल, सहस्र कमलों से बकपुष्प, एवं सहस्र वक पुष्प से मुदगर की विशेषता अधिक बतायी गयी है ।५७-६०। सहस्र कुश पुष्प से शमीपत्र की विशेषता अधिक है, नृप ! सहस्र शमीपत्र से अधिक लीलाकमल की विशेषता है, तथा पुष्पजातियों में नीलकमल उत्तम बताया गया है ।६१। सहस्र रक्तकमल, सौ नील कमल एवं रक्त कनेर के पुष्प द्वारा जो सूर्य की पूजा करता है, वह श्रीमान् सूर्य के समान पराक्रमशाली होकर सहस्र कोटि एवं सौ कोटि कल्प वर्ष की संख्या पर्वत सूर्य लोक में निवास करता है ।६२-६३। शेष पुष्पजातियों के जितने फल बताये गये हैं, उसी के अनुसार वह सूर्य लोक में प्रूजित :

शमीपुष्ट बृहत्याश्च कुदुमं तुल्यमुच्यते । करवीरसमा ज्ञेया जातीविजयपाटला ॥६५
 श्वेतमन्दारकुसुमं सितपुष्टं च तत्समस् । नागचम्पकपुश्नागमुद्गराणं समाः स्मृताः ॥६६
 गन्धवन्त्यपवित्राणि कुसुमानि विवर्जयेत् । गन्धहीनमपि प्राण्यं पवित्रं यत्कुशादिकम् ॥६७
 सात्त्विकं तद्वि कुसुममपवित्रं च तामस्तन् । मुद्गराणि कदम्बानि रात्री देयानि सूरये ॥६८
 दिवाशेषाणि पुष्टाणि त्यजेदुपहतानि च । मुकुलेनर्चियेद्भानुमपक्वं न निवेदयेत् ॥६९
 फलं श्ववितानिद्वं च यलात्पव्यमपि त्यजेत् । अलाभे बत पुष्टाणां पत्राण्यपि निवेदयेत् ॥७०
 पत्राणामप्यलाभे तु फलान्यपि निवेदयेत् । रुक्णानामप्यलाभेन दृणगुल्मोषधोरपि ॥७१
 औषधीनामभावे तु भक्त्या भजति पूजितः । प्रत्येकं मुस्तपुष्टेण दशरथैवर्णिकं फलम् ॥७२
 यः सुगन्धीर्मुक्तुष्ट्वैः सन्वर्गभानुं ग्रन्थजदेत् । माघासिंतंपि सुमनः तोऽनन्तफलमनुनुते ॥७३
 करवीरेर्खहाराज संयथो भानुमर्चयेत् । सर्वपापदिनर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ॥७४
 अगस्त्यकुमुमेर्भक्त्या दः सङ्कुद्भानुमर्चयेत् । गवां प्रयुतदानत्य फलं प्राप्य दिवं ऋजेत् ॥७५
 मल्लिकोत्पलपूष्टैश्च जातीपुश्नागचम्पकः । अशोकश्वेतमंदारकर्णिकारान्धुकैस्त्या ॥७६
 करवीरार्कक्लाहरात्मीतगरकेशरैः । अगस्त्तिबकुष्ट्वैस्तु शतपत्रैर्नराधिपः ॥७७
 पुष्ट्वैरेतैर्यथालाभं यो नरः पूजयेद्विष्मि । स तत्कलमवाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ॥७८

होता है । ६४। शमी पुष्ट और बृहती पुष्ट समान हैं और करवीर के समान चमेली, विजय एवं पाटल पुष्ट बताया गया है । ६५। श्वेतमंदार (मदार) के पुष्ट सितपुष्ट के समान हैं, नाग, चंपक, पुश्नाग एवं मुद्गर आपस में समान हैं । ६६। सुगन्धित होते हुए भी अपवित्र पुष्ट का सर्वथा त्याग करना चाहिए । गंधहीनों में केवल कुश और दिशाओं का ही ग्रहण किया जाता है । ६७। पवित्र पुष्ट सात्त्विक और अपवित्र पुष्ट तामस बताया गया है । मुद्गर एवं कदम्ब पुष्ट को रात में भी सूर्य के लिए समर्पित करना चाहिए । दिन के शेष सभी उपहत (कुहलाने आदि द्वारा नष्ट प्राय) पुष्ट का त्याग करना बताया गया है । मुकुल (अविकसित) सूर्य के लिए अर्पित न करनी चाहिए । उसी प्रकार बिना पके फल भी अर्पित करना निषिद्ध है । कथित फल तथा यन्त्र द्वारा पकाया गया फल निषिद्ध है । पुष्टों के अभाव में पत्र का अर्पण करना चाहिए । ६८-७०। पत्तों के अभाव में फल, फलों के अभाव में तृण गुल्म एवं औषधि और उसके अभाव में केवल भक्ति द्वारा ही पूजन करना श्रेयस्कर कहा गया है । अपने आप गिरे हुए प्रत्येक पुष्टों द्वारा (पूजन करने से) दश निष्क सुवर्ण प्रदान करने के समान फल प्राप्त होता है । ७१-७२। माघ मास के कृष्ण पक्ष में प्रसन्न चित्त होकर जो सुगन्धित एवं स्वयं पालित पुष्टों द्वारा सूर्य की भली भाँति पूजा करता है, उसे अनन्त फल की प्राप्ति होती है । ७३। महाराज ! संयमपूर्वक कनेर के पुष्टों से सूर्य की पूजा करने पर समस्त पापों से मुक्त होकर वह सूर्य लोक में सम्मानित होता है । ७४। जो भक्तिपूर्वक अगस्त्य पुष्ट द्वारा एक बार भी सूर्य की पूजा करता है, उसे दशसहस्र गोदान के फल की प्राप्ति होती है । ७५। मल्लिका, कमल, चमेली, पुश्नाग, चम्पा, अशोक, श्वेतमंदार, कर्णिकार, अन्धुक, कनेर, अर्कक्लाहर, शमी, तगर, केशर, अगस्त्य, बक एवं शतपत्र (कमंल) नराधिप ! इन पुष्टों द्वारा जो मन इच्छित सूर्य की पूजा करता है, उसे जिन फलों की प्राप्ति होती है, सावधान होकर सुनो ! कोटि सूर्य के समान प्रकाशपूर्ण तथा समस्त मनोरथ प्रदान करने वाले, विमानों पर बैठकर जो चारों ओर से पुष्टमाला से सुशोभित और गायन एवं

सूर्यकोटिप्रतीकारैर्विमानैः सर्वकामिभिः । पुष्टप्रातापरिक्षितैर्गीतदावित्रनादितैः ॥७९
 तन्मीमधुरवाणीश्च स्वच्छन्दगमनैर्नृप । सूर्यकन्दातमाकीर्णिदेवानां च सुदुर्लभैः ॥८०
 बोध्यमानश्वभरैः स्तूयमानः सुरासुरैः । गच्छेदर्कपुरैः दिव्यां तत्र सन्मूलितो भवेत् ॥८१
 यैतत्तेश्च वापि कुसुर्मर्जलजैः स्थलजैर्नृप । सम्पूज्य श्रद्धया भानुमर्कलोके महीयते ॥८२
 सूर्यस्तोपरि यः कुर्याच्छोन्नं पुष्टप्रण्डलम् । शोभितं पुष्टप्रण्डमैरपीठान्त प्रलम्बितैः ॥८३
 अत्याश्रयमहायानैर्दिव्यपूष्पोचरोऽभितैः । सर्वदामुषप्रिष्टाच्च व्येदर्कपुरे सुखी ॥८४
 अनेकरात् विन्यस्ते सुगन्धैः कुसुर्मर्गहस्त । यः कुर्यात्पर्वतालेद्यु विचित्रकुसुमोऽन्वलम् ॥८५
 स पुष्टकविमानेन पुष्टप्राताकुलेन तु । पुष्टेनपुरं दिव्यं श्रवते नात्र संशयः ॥८६
 अक्षयं शोबते कालमतिरस्कृतशासनः । सौरादिसर्वलोकेषु घत्रेष्वं तत्र याति सः ॥८७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मणे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु पुष्टपूजावर्णनं
 नाम त्रिवष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥८८३।

अथ चतुर्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यषष्ठीव्रतवर्णनम्

शतानीक उवाच

पुनस्त्वं देवदेवस्य भास्करस्य महौजसः । पूजने यत्कलं प्रोक्तं तन्मे ब्रूहि द्विजोत्तम ॥१

वाद्यों से निनादित हो रहे तंत्री, मधुर वाद्यों को बजाती हुई, स्वतंत्र विचरण करने वाली एवं देव-दुलेभ सूर्य की कन्याओं से धिरकर उनकी ध्वल चामरों की सेवा ग्रहणपूर्वक मुर एवं असुरों की स्तुतियों से पूजित होते हुए दिव्य सूर्यलोक की प्राप्ति करता है, और वहाँ पहुँचकर भली भाँति सम्मानित किया जाता है । ७६-८१ नृ॑ ! स्थल या जल में उत्पन्न किसी पुष्पों द्वारा सूर्य की पूजा श्रद्धापूर्वक सुसम्पन्न करने पर वह सूर्य लोक में पूजित होता है । ८२। मन्दिर में सूर्य के ऊपर जो मौन्दर्यपूर्ण पुष्ट-मण्डल की रचना करता है, जिसमें पुष्पों की मालाएँ रस्सियों द्वारा पीठासन तक लटकती हों । वह दिव्य पुष्पों से सुरोभित होकर आश्चर्यचकित करने वाले यान विमान पर बैठकर वह सभी के ऊपर सूर्यलोक में सुखपूर्वक निवास करता है । जो अनेक रंग के मुग्धित पुष्पों द्वारा (सूर्य के) मन्दिर को पर्व के समय में विचित्र एवं सौन्दर्यपूर्ण करता है, वह पुष्टमाला से विभूषित होकर पुष्टक विमान पर स्थित दिव्य पुष्टपुर का निवासी होता है, इसमें सदेह नहीं और शासनपूर्वक अक्षयकाल तक आनन्द का अनुभव तथा सूर्य आदि सभी लोकों में मनङ्गच्छित विचरण करता है । ८३-८७

श्रीभविष्य पुरुण में ब्राह्मणपर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म में पुष्टपूजा वर्णन नामक
 एक सौ तिरसठाँ अध्याय समाप्त । १६३।

अध्याय १६४

सूर्यषष्ठी व्रत का वर्णन

शतानीक ने कहा—द्विजोत्तम ! महातेजस्वी देवाधिदेव सूर्य के पूजन करने से प्राप्त होने वाले जिन फलों को आपने बताये हैं, उन्हें पुनः कहने की कृपा करें । १

सुमन्तुरुवाच

भृषु त्वं हि महाराज सर्वं लोकपूजितम् । ब्रह्मोपेन्द्रेवानां व्याणामयि भारत ॥२
सुलसीनं सुरज्येष्ठं मनोवत्यां चतुर्मुखम् । प्रणन्य शिरसः सूमौ विष्वीशौ दाम्भमृचतुः ॥३
य एव भगवान्देवः सहकरिणो रविः । अस्य यत्पूजने पुण्यं प्राप्यते तद्वदरथ तौ ॥४

ब्रह्मोदाच

साधु साधु जगन्नाथ साधु पृष्ठोऽस्मि बामिह । तस्माच्छृणुत्मेकायौ गदतो निलिलं लक्ष ॥५
स्वयमुत्साद्य पुण्याग्निः यः सूर्यं पूजयेत्स्वयम् । तस्मि ताक्षात्प्रधृणाति तद्वदरथा सततं रथिः ॥६
यस्तदरामं रवे: कुर्यादप्रबिल्वादिशोऽप्तितम् । जातीविजयराजकेरवीरैः सकुइकुमैः ॥७
पुश्चाम्नागबकुलैरसोकतिलचम्पकैः । अगस्तिकदलीखपृष्ठस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥८
यत्वद्विपत्रं कुमुकं बीजं सूतरक्षणि च । तावद्वर्षसहव्याग्नि भूरलोके भर्हीयते ॥९
सघृतं गुणगुलं दद्याद्राजन्वा कुन्दुरं तथा । चतुर्वेदिगृहे जन्म आप्नोति सततं सुखी ॥१०
कृष्णागुरुं च कर्पूरधूपं दद्याद्विवाकरे । नैरन्तर्यणं यस्तस्य राजन्युष्यफलं शृणु ॥११
कल्पकोटिसहव्याग्नि कल्पकोटिशतानि च । भुक्त्वा सूर्यपुरे भोगास्तस्यान्ते क्षमाधिषो भवेत् ॥१२
गुणगुलं धृतसंयुक्तं यक्षो गृह्णाति शब्दकृत् । यक्षाद्वयस्य दानेन तस्य लोके भर्हीयते ॥१३
कृष्णांशौ कृष्णं सप्तम्यां यः साज्यं गुणगुलं दहेत् । स चासौ सौरमासाद्य वर्षणां च दशार्दुरद्दम् ॥१४

सुमन्तु बोले—महाराज ! जब कुछ देने वाली, तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर और लोक से पूजित उस कथा को मैं कह रहा हूँ, सुनो ! २। भारत ! एक बार मनोवती तट पर सुखपूर्वक बैठे हुए देवत्रेष्ठ उद्द चतुर्मुख (ब्रह्मा) से भूमि में शिर स्पर्श प्रणामपूर्वक विष्णु तथा महेश्वर ने कहा—यह जो सहस्र किरण वाले भगवान् सूर्य दिवायां पड़ते हैं, इनके पूजन करने से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है, हमें बताइये । ३-४।

ब्रह्मा बोले—साधु, साधु ! जगन्नाथ ! तुम दोनों ने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है. मैं सब कह रहा हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो ।५। अपने द्वारा उत्पन्न किये गये पुष्पों से जो सूर्य की स्वयं पूजा करता है, उसकी भक्तिवश होकर सूर्य साक्षात् स्वयं उसे स्वीकार करते हैं । जो सूर्य के लिए इस प्रकार के उपवन (बगीचे) बनाता है, जिसमें आम, बेल आदि सुशोभित हों और चमेली, विजयराज, अर्क (मंदार), कनेर, कुंकुम, पुन्नाग, नाग, बकुल, अशोक, तिल, चम्पा, अगस्त्य एवं केले के वृक्षों से सौन्दर्य भरा पड़ा हो, उसके पुण्य फल को सुनो ।६-८। जितने दिन उसके पते, बीज, पुष्य तथा फलों की उत्पत्ति, आदि होती रहती है, उतने सहस्र वर्ष सूर्यलोक में वह पुरुष सम्भानित होता है ।९। राजन् ! धी समेत गुणगुल और कुन्दरु, जो उन्हें अर्पित करता है, उसका जन्म चतुर्वेदी के घर में होता है, तथा वह निरन्तर सुखी रहता है । काले अगुरु, कपूर एवं धूप को जो नित्य सूर्य के लिए अर्पित करता है, राजन् ! उसके पुण्य फल को सुनो ! सहस्रकोटि एवं सौ कोटि कल्प के समान दिन तक सूर्यलोक में भोगों का उपभोग कर अंत समय में वह पृथिवीपति होता है ।१०-१२। धी मिथित गुणगुल को समर्पित करने पर उसे ध्वनि करते हुए यक्षग्रहण करता है एवं इसके दान से उसके लोक में वह पूजित होता है ।१३। कृष्ण सप्तमी के दिन सूर्य के लिए धी समेत गुणगुल की धूप

देवदारुं नमेहं च श्रीवासं कुन्तुहं तथा । श्रीफलं चाज्यसंयुक्तं दग्धवाश्रयमवाप्नुयात् ॥१५
एवं सौगंधिकं रूपं षट्सहस्रगुणोत्तरम् । अगुरुं इत्तसहस्रं सधृतं द्विगुणं भवेत् ॥१६
अनन्तफलदं दैवं सदा कुन्वरकामुकम् । द्विसहस्रप्राणानां तु महिषाक्षस्य गुणुलोः ॥१७
दग्धवार्घ्यमविमिश्रस्य सूर्यतुल्यः प्रजायते । शोधयेत्प्राप्तसंयुक्तं पुरुषं नात्र संशयः ॥१८
कृष्णगुरुभवं धूपं तुष्टप्रियरिव काञ्चनम् । योन्तःपुरगृहे गन्धे: सुगन्धैः प्रविलेपयेत् ॥१९
कपाटद्वारकुड्यादितर्यगृहैः सवेदिकङ् । वासयेत्पुष्ट्यमालाभिर्भैश्चापि सुगन्धिभिः ॥२०
तस्य पुण्यं यथावत् युवयोर्वच्छिमि कृत्वशः । आपूरयन्दिः सर्वा नात्रान्धसमन्वितैः ॥२१
कल्पकोटिशतं दिव्यं तेजसा वह्निसम्भिः । शङ्कदत्प्रज्वलन्देवः सूर्यलोके महीयते ॥२२
तस्यान्ते धर्मशेषेण त्रैलोक्याभिपतिभवेत् । शतावृतं तु यः कुर्यादेवं गन्धीर्भगालयम् ॥२३
स सर्वशर्मसंयुक्तः सूर्यतुल्यपराक्रमः । सूर्यतोके वसेद्वेषो युवाम्यां सम्प्रपूजितः ॥२४
तदच्छुक्लैश्च संवीतं पट्टनूत्रैर्विनिर्मितम् । दत्त्वोपवीतं सूर्याय भवेद्वेदाङ्गपरगः ॥२५
घासांसि सुविचित्राणि सूरलोके महीयते । उटिसात्रं तु यो द्यादूर्णावस्त्रं सपद्वक्षमम् ॥२६
भास्करस्योत्तमाङ्गेषु तस्य पुण्यं ब्रह्मीम्यहम् । इन्द्रस्यार्घ्यसने तिष्ठेद्यावदिन्द्राश्वरुदर्श ॥२७
एवं वित्तानुसारेण सर्वं ज्ञेयं समाप्ततः । सर्वेषां हेमजात्राणां मुकुटानां च सर्वज्ञः ॥२८

जो अर्पित करता है वह सूर्यलोक में पहुँचकर दश अर्दुद वर्ष निवास करता है । १४। देवदारु, नमेह, श्रीवास, कुंदुरं, श्रीफल, उन्हें धी समेत जलाकर धूप देने से सूर्यलोक की प्राप्ति करता है । १५। इस प्रकार सामान्य सुगंधि से सहस्र अगुरु से दश सहस्र एवं धी मिश्रित होने से उससे दुगुने फल प्राप्त होते हैं । १६। और कुंदुरु प्रिय सूर्य उसे अनन्त फल प्रदान करते हैं, महिषाक्ष तथा गुग्गुल के दो सहस्र परिमाण को जलाने से सूर्य के समान वह सुरोभित होता है वह पापी पुरुषों का संशोधक है, इसमें सदेह नहीं । १७-१८। जो काले अगुरु की धूप द्वारा मन्दिर के भीतरी समस्त भाग को भूसी डाली गई अग्नि के समान गन्ध के धुएं से पूर्ण कर देता है, तथा किंवाढ़े, दरवाजे एवं कुण्डी आदि सभी ऊपर नीचे एवं वेदिसमेत सभी भाग को पुष्ट्यमालाओं एवं सुगन्धित धूपों से सुगन्धित करता है, उसके पुण्य को मैं तुम्हें विस्तारपूर्वक बता रहा हूँ । भाँति-भाँति के गंधों से दिशाओं को सुगन्धित करते हुए अग्नि के समान दिव्य तेज प्राप्त कर वह इन्द्र की भाँति सौन्दर्य सम्पन्न होकर सौ कोटि कल्प तक सूर्य लोक में पूजित होता है । १९-२२। उसके पश्चात् धर्म शेष रहने के नाते तीनों लोकों का अधिनायक होता है । इस प्रकार जो सौ बार सूर्य के मन्दिर को सुगन्धिपूर्ण करता है, समस्त कल्याण युक्त एवं सूर्य के समान पराक्रमी होकर सूर्यलोक में निवास करते हुए वह आप (विष्णु, शिव) दोनों से प्रजित होता है । २३-२४। उसी प्रकार शुक्र वर्ण के सूत्रों से निर्मित यजोपवीत सूर्य के लिए प्रदान करने से वेदनिष्ठात विद्वान् होता है । २५। और चित्र-विचित्र वस्त्र प्रदान करने से सूर्यलोक में समाप्त प्राप्त करता है । उनके वस्त्र चाहे वे फटे पुने भी हों, जो कमल के साथ उन्हें उनके अंगों में सादर समर्पित करता है, उसके पुण्य फल को बता रहा हूँ । जब तक चौदहों इन्द्र वर्तमान रहेंगे तब तक इन्द्र के आधे आसन का अधिकारी रहता है । २६-२७। इस प्रकार अपने धनानुसार सुवर्ण के पात्र एवं मुकुट प्रदान करना चाहिए । मदार के पते की दोनियों में चूर्ण, शहद, एवं पते समेत

अर्कपत्रपुटं चूर्णं भधुर्पर्णसमन्वितम् । यो निवेदेऽकार्य सोऽन्नमेधफलं लभेत् ॥२९
 शालितण्डुलप्रस्थस्य कुर्यादश्च सुसस्कृतम् । सूर्याय च चहं दत्त्वा सप्तम्यां तु विशेषतः ॥३०
 संयादं छृशं पूर्णं पायसं यावकं तथा । दध्योदनरसालाश्मोदकानुडपूषकान् ॥३१
 यावन्तस्तण्डुलस्तस्मैवेदे परिसङ्ग्यया । तावद्वृष्टसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥३२
 गुडखण्डकृतानां च भक्ष्याणां दिनवेदने । धृतेन प्लावितानां च फलं शतगुणं लभेत् ॥३३
 रसालखाद्यकात्यानां भक्ष्याणां फलमित्यते । तदधं सलिलस्यापि वासितस्य निवेदयेत् ॥३४
 यथाकालोपलब्धानि भक्ष्याणि विद्यधानि च । निवेदाकार्य परमं स्थानं प्राप्नोति पूजनात् ॥३५
 प्रज्वाल्य धृतदीपं तु भास्करस्यालये शुभम् । आग्रेदं यानमारुद्धा गच्छेत्तसौमनसं पुररः ॥३६
 यः कुर्यात्कार्तिके दीपसिं शोभनां दीपमालिकाम् । सप्तन्यामय षष्ठ्यां वामास्यायामश्चापि वा ॥३७
 भास्करयुतसंकाशस्तेजसा भासयन्दिशः । दिव्याभरणस्यत्रः कुलमुद्घृत्य सर्वशः ॥३८
 यावत्प्रदीपसङ्ग्यानं धृतेनापूर्य बोधितम् । तावद्वृष्टसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥३९
 दीपवृक्षमयोद्दोध्य पर्वत्स्वायतनेषु वै । पूर्वस्माद्विवगुणं पुण्यं लभते नाशं संशयः ॥४०
 दीपवृक्षं समुद्रोद्ध्य भास्करायतनेषु भोः। सर्वलोहमयं वीरं रविलोके महीयते ॥४१
 शिरसा धारयेद्दीपं भास्करस्याग्रतो निशि । ललाटे चैव हस्ताम्यां समुद्रुत्स्तयोरसि ॥४२

रखकर जो सूर्य के लिए निवेदित करता है, उसे अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है । २८-२९। एक सेर साठी चावल की स्वादिष्ट खीर बनाकर विशेषकर सप्तमी तिथि में सूर्य को अर्पित करना बताया गया है, लपसी, लुशर (खिचड़ी), मालपूआ, जौ की खीर, दही, भात, आम, लड्डू एवं गुड़ के मालपुए को भी उसी भाँति अर्पित करते से उत्तर नैवेद्य में जिहने चावल रहते हैं, उतने सहस्र वर्ष वह सूर्यलोक में सम्मानित होता है । ३०-३२। खाँड़ और धी के भली-भाँति बने हुए भक्ष्य पदार्थ को सूर्य के लिए अर्पित करने से सौ गुने फल की प्राप्ति होती है । ३३। आम के फल अर्पित करने से । भक्ष्य पदार्थों के समान ही फल प्राप्त होता है, और सुगन्धित जल प्रदान करने से उसके आधे फल की प्राप्ति होती है । ३४। समयानुसार भाँति-भाँति के भक्ष्य पदार्थ सूर्य के लिए समर्पित करने तथा पूजन करने से उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है । ३५। सूर्य के मन्दिर में शुद्ध धी के दीपक जलाने से आगेन्य विमान पर बैठकर देवलोक की प्राप्ति होती है । ३६। कार्तिक मास की सप्तमी, षष्ठी या अमावस्या के दिन जो सौन्दर्यपूर्ण दीपमालिका प्रदान करता है, वह सूर्य के समान तेज प्राप्त कर उसके द्वारा दिशाओं को प्रकाशपूर्ण करते हुए दिव्य आभूषणों से मुशोभित होकर वह अपने कुंल के उद्धारपूर्वक धी से पूर्ण भरे उन दीपकों की संख्या के समान उतने सहस्र वर्ष सूर्यलोक में पूजित होता है। पर्व तिथियों में मन्दिरों में दीपवृक्ष की (दीपों द्वारा) प्रकाशित करने पर उससे दुगुने पुण्य फल की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं । ३७-४०। वीर ! सूर्य के मन्दिर में वृक्ष के आकार-प्रकार-स्कन्ध, शाला, डाली, टहनी, एवं पत्तियों के समान लोहें के वृक्ष बनाकर उसके सभी स्थान में दीपक जलाने से सूर्य लोक में वह पूजित होता है । ४१। इसमें सूर्य के समान (उस दीपवृक्ष के) शिर, मूस्तक, हाथों एवं हृदय पर दीपक धारण करने से दशसहस्र भास्कर के समान तेजस्वी होकर सूर्य के

भास्करायुतसंकाशो विमानेरर्कसन्निभैः । कल्पायुतशतं चैव सूर्यलोके महीयते ॥४३
अन्नदाता तु यो वीर वीरलोके महीयते । भास्करस्याप्रतो दत्त्वा दर्पणं निर्मलं शुभम् ॥४४
पर्यङ्के शोभितं कृत्वा श्वेतमाल्यैः सचन्दनैः वृकार्कनिर्मलः श्रीमान्दिव्याभरणल्पधृक् ॥
कल्पायुतस्थलाणि सूर्यलोके महीयते ॥४५

कृत्वा प्रदक्षिणं भक्त्या श्रद्धानो रखेन्दः । अश्वनेदस्थलास्य सुखेन लभते फलम् ॥४६
कृत्वा प्रदक्षिणं यस्तु नमस्कारं प्रयोजयेत् । राजसुयाभ्वेदाभ्यां स्फक्तं विन्दते फलम् ॥४७
नमस्कारः स्मृतो यज्ञः सर्वद्यज्ञोत्तमोत्तमः । नमस्कृत्वा सहस्रांशुमध्येदधफलं तरेत् ॥४८
प्रणाम्य दण्डवटभूमौ नमस्कारेण दोऽर्चयेत् । स यां गतिमवाप्नोति उत्तां कृतुशतैरपि ॥४९
सर्वद्यज्ञोपवासेषु सर्वतीर्थेषु अत्कलम् । अभिज्ञाप्योपहारेण पूजया फलसञ्चुते ॥५०
श्वेतं महाध्वजं कृत्वा कृत्वा चापं च इडगकम् । किंडिकणीजालनिर्योषं मयूरच्छत्रभूषितम् ॥
यस्त्वर्यम्जे नरो दद्याच्छ्रुद्या परयान्वितः ॥५१

स शतेन विमानानां सर्वदेवनमस्कृतः । मन्वन्तरशतं देवं मोदते दिवि देववत् ॥५२
ध्वजमालाकुलं दुर्याद्यः प्रान्तेषु भगातयम् । महाध्वजाष्टकं चापि दिविदिक्षु निवेदयेत् ॥५३
स विमानसहस्रेण ध्वजमालाकुलेन तु । कल्पायुतशतं दिव्यं मोदते दिवि सूरदद् ॥५४
शतचन्द्रांशुविमलं मुक्तादामोपशोभितम् । मणिदण्डमयं छत्रं दद्याद्वा काञ्चनादिकम् ॥५५

समान प्रकाशमय विमानो पर बैठकर वह सौ सहस्र कल्प सूर्यलोक में सम्मानित होता है । ४२-४३। वीर !
अन्न दान करने वाला सूर्य लोक में प्रतिष्ठित होता है । सूर्य के सामने शुभ, निर्मल, दर्पण श्वेत वर्ण की
मालाओं एवं चन्दनों से सुशोभित शश्या (पलंग) रखकर उन्हें समर्पित करने से वृक्ष (अग्नि) तथा सूर्य
के समान निर्मल, श्रीमप्तन, दिव्याभूषणों से सुसज्जित होकर वह दश सहस्र वर्ष सूर्य के लोक में
सम्मानित होता है । ४४-४५। भक्ति एवं शद्गार्वक जो मनुष्य सूर्य की प्रदक्षिणा करता है, उसे सुखपूर्वक
महसू अवश्वेमध के फल प्राप्त होते हैं । ४६। प्रदक्षिणा करके जो उन्हें नमस्कार करता है, उसे राजसूय एवं
अवगोध के समस्त फल प्राप्त होते हैं । ४७। क्योंकि समस्त यज्ञों से उत्तम नमस्कार रूपी यज्ञ बताया गया
है, अतः सूर्य को नमस्कार करने से अश्वमेध के फल की प्राप्ति होनी बतायी गयी है । ४८। भूमि में दण्डे की
भाँति पड़ने (साक्षात् दण्डवत् करने) के द्वारा जो उनकी पूजा करता है, उसे उस गति की प्राप्ति होती है,
जिसे सौ यज्ञ करने वाले 'भी प्राप्त नहीं कर सकते । ४९। समस्त यज्ञ, उपवास, एवं समस्त तीर्थों द्वारा
जितने फलों की प्राप्ति होती है, सूर्य के विधानपूर्वक केवल पूजोपहार द्वारा उतने फल प्राप्त होते
है । ५०। जो मनुष्य अन्यन्त शदानु होकर सूर्य के लिए श्वेत महाध्वज और रक्तरञ्जित धनुष प्रदान
करता है, जिनमें छोटी-छोटी घंटियाँ जाल के समान लगी हुई ध्वनि करती हों तथा मोर पंख से विभूषित
हो, वह समस्त देवों का वन्दनीय होकर सैकड़ों विमानों समेत स्वर्ण में सौ मन्वन्तर के समान वर्षों तक
देवता की भाँति आनन्द का अनुभव करता है । ५१-५२। जो सूर्य के मन्दिर के कोने-कोने को अधिकमंस्या
में ध्वज एवं मालाओं से सुशोभित तथा दिशाओं एवं विदिशाओं को आठ महाध्वजाओं द्वारा शोभा सम्पन्न
करता है, वह ध्वज और मालाओं से पूर्ण महसू विमानों को अपने अधीन करते हुए दिव्य सौ सहस्र कल्प तक
स्वर्ण में सूर्य की भाँति आनन्द प्राप्त करता है । ५३-५४। सौ चन्द्रमा की भाँति निर्गत मोतियों से

स धार्यमाणच्छत्रेण हेमदण्डोपशोभिना । मोदते सूर्यलोके तु विमानदरमास्थितः ॥५६
 ततस्त्तमाच्छ्युतो लोकान्निःसगाद्भुवभागतः । भुद्गते समुद्रपर्यन्तामेकच्छत्रां वसुन्धराम् ॥५७
 यः शृङ्खलासमायुक्तां महाघट्टां महास्वनाम् । कांस्यलोहमर्यां वापि निबन्धीयाद्गुगलये ॥५८
 शोभनः स्यान्नरः श्रीमान्भगस्यात्तीव वल्लभः । नूर्यतुल्यबलो भूत्वा सूर्यलोके महीयते ॥५९
 भेरीमृदग्गपटहमर्षीर्मदलादिकम् । इंशकांस्यादिदादित्रं यो भगाय निवेदयेत् ॥६०
 स विमानैर्महाभागैर्दरदीणागुतस्त्वनैः । युगान्तकाशतं दिव्यं भगलोके महीयते ॥६१
 सुषुद्धीगीतकदनेन सवादेन विशेषतः । यथेष्ट भास्करे लोके मोदते कालस्क्षयद् ॥६२
 महामहास्वनं दत्त्वा शङ्खयुग्मं भगालये । युगकोटिशानं दिव्यं भगलोके महीयते ॥६३
 विमानं बद्धुवर्णानं मध्ये पद्मज्ञभूषितम् । विचित्रमेहवर्णं वासनवस्त्रोपकल्पितम् ॥६४
 किञ्चिकणीज्ञालसम्पन्नं वर्णकैश्चोपशोभितम् । पुष्पमालाप्रभं वापि घण्टाचामरभूषितम् ॥६५
 भगस्योपरि यो दद्यात्सर्वरत्नोपशोभितम् । दुकूलपट्टदेवाद्गर्वस्त्रैर्वा वर्णकान्वितैः ॥६६
 पट्टादिदत्तत्त्वत्त्वनां परिसङ्ख्या तु या भगेत् । तत्तद्युगसहन्ताणि सूरलोके महीयते ॥६७
 भगाहुत्या जगत्सर्वं सुष्टिद्वारेण धार्यते । अग्निवर्त्मा वचस्युक्तो ह्यग्रिस्यात्मजः सदा ॥६८

सुशोभित एवं मणि के दण्ड से विभूषित, अथवा सुवर्ण के दण्ड वाले उस छत्र को जो उन्हें प्रदान करता है, तो सूर्य के सुवर्ण दण्ड से विभूषित उस छत्र के धारण करने से वह उत्तम विमान पर स्थित होकर सूर्यलोक में सदैव प्रसन्नतापूर्वक रहता है । पश्चात् उस लोक से च्युत होने पर सृष्टि के क्रम से इस भूतल पर जन्म ग्रहण कर समुद्र पर्वत वृक्षी का एक छत्र उपभोग करने वाला राजा होता है । जो सूर्य मन्दिर में जंजीर लगे काँसि या नोहे का बड़ा घंटा बाँधता है, जिसकी अत्यन्त शम्भोर ध्वनि हो, वह मनुष्य सौन्दर्यपूर्ण, शीसम्पन्न, सूर्य का अति प्रिय एवं सूर्य के समान पराक्रमशाली होकर सूर्य लोक में सम्मानित होता है । ५५-५९ । जो सूर्य के लिए भेरी, मुदङ्ग, पट्ट, अर्करी (आङ्ग), मर्दल (मुदङ्ग की भाँति एक वाद्य) आदि काँसि के वाद्य अर्पित करता है, वह बाँस की बीणा ध्वनि से निनादित उस अत्यन्त भाग्यशाली (उत्तम) विमान पर बैठकर दिव्य सौ युगं पर्यंत भग (सूर्य) लोक में सम्मान प्राप्त करता है । ६०-६१ । विशेषकर वाद्य समेत उत्तम संगीत कराने वाला पुरुष भास्कर के लोक में अक्षय काल तक मन इच्छित आनन्द का अनुभव प्राप्त करता है । ६२ । सूर्य मन्दिर में अत्यन्त गम्भीर ध्वनिपूर्ण दो शंखों को उन्हें समर्पित करने से दिव्य सौ कोटि युग पर्यंत सूर्य लोक की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । ६३ । अनेक रंगों से सुशोभित मध्य भाग कमल से विभूषित, एक रंग के चित्र-विचित्र वस्त्रों से सुसज्जित आसन, जाल की भाँति छुद्ध घंटिकाओं से सुसज्जित, रंगरंजित, पुष्पमालाओं, घंटा और चामर से सुसम्पन्न एवं समस्त दलों से सुसज्जित तथा देवों के चित्र-विचित्र दुपट्टे आदि रंगीन वस्त्रों समेत ऐसे विमान को जो उन्हें अर्पित करता है, तो वह उस दुपट्टे आदि वस्त्रों के सूत की संख्या के समान उतने सहम युग पर्यंत सूर्य लोक में पूजित होता है । ६४-६७ । सूर्य में आहुति की भाँति नष्ट यह समस्त जगत् सुष्टिद्वारा पुनः उनसे उत्पन्न एवं स्थित होता है । उन्हें अग्नि वर्त्मा भी कहा गया है, क्योंकि अग्नि उनके सदैव आत्मज हैं । ६८ ।

यस्त्वप्लिकाय विधिवक्तुयोग्नित्यं भगालये । भगभुद्दिश्य राजेन्द्र स याति उरमां गतिम् ॥६९
सर्वाङ्गं यावकोपेतं दस्तु नित्यविधिं हरेत् । पुष्पधूपजलोपेतं काले काले विशेषतः ॥७०
महाश्वेतादिमातृणां त्रिकल्पानां च सर्वशः । यः कृत्वा सङ्खदप्येवं तर्तुदिक्षु दर्शिं हरेत् ॥
स नरश्च सहस्राणि शाहित्येषुरे वसेत् ॥७१

सौरसन्ध्याबलिं कृत्वा दिनान्ते सततं रथेः । वर्षायुतशतं ताप्रं भगलोके महायते ॥७२
दध्योहनप्येभिर्यः प्ररितं शत्रमावृतम् । पुष्पधूपार्चितं चैव वितानोपारं शोभितम् ॥७३
शिरसा धारयेत्पात्रं शतैर्गच्छेन्प्रदक्षिणम् : रव्यायतनपर्यन्ते शैरुद्वीषाश्चित्स्वनैः ॥७४
दर्पणैर्पूपमालाभिर्गण्यनृत्यादिशोभितम् : भानोर्हि स्तूतिशीलश्च तस्य पुण्यफलं शृणु ॥७५
दिव्यं वर्षसहस्रं तु दिव्यं वर्षशतं तथा । तपस्तप्तं महत्तेन भवेदेवं न संशयः ॥७६
भगभक्तिप्रत्यभात्मा यद्यपि स्थात्स पापकृत् । भगतोके वसेश्चित्यं भगानुचरतां गतः ॥७७
कृष्णां तु षष्ठीं नक्तेन यश्च कृष्णां च सप्तमीम् । इह भोगानवाप्नोति परत्र च शुभां गतिम् ॥७८
योऽद्वमेकं तु कुर्वीत नक्तं भगदिने नरः । ब्रह्मचारी जितक्रोधो भगार्चनपरो नरः ॥
अयाचितात्परं नक्तं तस्माप्रक्तेन वर्तयेत् ॥७९
देवैस्तु भुक्तं मध्याह्ने पूर्वाह्ने ऋषिभिस्तथा । अपराह्ने तु पितृभिः सन्ध्यायां गुह्यकादिभिः ॥८०

राजेन्द्र ! जो सूर्य मन्दिर में उनके उद्देश्य से विधानपूर्वक नित्य अग्नि स्थापन करते हैं, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है । ६९। नित्य विधान पूर्वक जो यावक (लप्ती) समेत समस्त अन्न के भक्ष्य एवं जलयुक्त पुष्प-धूप समय-समय पर महाश्वेता आदि मातृकाओं तथा त्रिकल्पों के लिए समर्पित करता रहता है, उसे इस भाँति एक बार के भी करने एवं समस्त दिशाओं में बलि प्रदान करने पर सहस्र वर्ष तक अग्निलोक का निवास प्राप्त होता है । ७०-७१। दिन के अन्तिम समय में सूर्य के लिए सौर संध्या एवं बलि प्रदान करने से सौ सहस्र वर्ष सूर्य लोक में उत्तम सम्मान प्राप्त होता है । ७२। दही, ज्ञावल एवं दूध के पात्र पूर्ण तथा ढैंककर पुष्प-धूप से उनकी पूजा करके वितान के ऊपर रख दे, पश्चात उसे शिर पर रख धीरे-धीरे सूर्य मन्दिर तक प्रदक्षिणा की भाँति जाये जिसमें शक्ति, वेणु आदि की ध्वनि होती हो तथा दर्पण, धूप, माला एवं गान, नृत्य आदि से सुसम्पन्न हो, और वह निरन्तर सूर्य का स्मरण करता रहे, तो उसके पुण्य फलों को सुनो ! उसके प्राप्त फलों के अनुसार दिव्य सहस्र वर्ष तथा दिव्य सौ वर्ष तक उसने महान् तप किया इसमें सदेह नहीं, ऐसा वह कहा जायगा । ७३-७६। क्योंकि पापी ही क्यों न हो, पर सूर्य की भक्ति से उसे अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हो, तो उस सूर्य सेवक का भी सूर्यलोक में नित्य निवास होता है । ७७। जो कृष्ण पक्ष की षष्ठी में नक्तब्रत तथा कृष्ण पक्ष की सप्तमी में पूजन करता है, उसे यहाँ भाँति-भाँति के उपयोग की प्राप्ति पूर्वक परलोक में शुभ फल की प्राप्ति होती है । ७८। इसलिए वर्ष पर्यन्त सूर्य के दिन ब्रह्मचारी एवं क्रोधहीन होकर नक्तब्रतपूर्वक सूर्य का पूजन सुसम्पन्न करना चाहिए । अयाचित अन्न से नक्तब्रत करना उत्तम बताया गया है, इसलिए नक्त ब्रत अवश्य करें । मध्याह्न में देवगण, पूर्वाह्न में ऋषि, अपराह्न में पितरलोग संध्या में गुह्यक आदि भोजन करते हैं । अतः इसके अतिरिक्त समय में सूर्य भक्तों को भोजन करना उत्तम बताया

सर्वा देशा द्युतिक्रम्य सीराणां भोजनं परम् । भृज्जानो नक्तकाले तु सूर्यभक्तिपरायणः ॥८१
 भगतोकमदाग्रोति मुमनाः मुमनोद्रतः । भुक्त्वा सौमनसाल्लोकान्नराजा भवति मूत्से ॥८२
 हविष्यभोजनं स्नानमाहारस्य च लाघवम् । अग्निकार्त्तमधशःशय्याः नक्तभोजी तमाचरेत् ॥८३·
 कृष्णवच्छधां प्रयत्नेन कृत्वः नक्तं विधानतः । नरो मार्गशिरे मासि अंशुमानिति पूजयेत् ॥८४
 विधिवत्प्राशद्य गोमूत्रमनाहारो निशि त्वयेत् । अतिरात्रस्य वज्रस्य फलमाप्रोति मानवः ॥८५
 पुष्टेऽप्येव सहनांशुं भानुमन्तमुशन्ति च । वाजपेयफलं प्राप्य शृतं प्राप्य लभेन्नरः ॥८६
 माये दिवाकरं^१ नाम कृष्णवच्छधां नरोत्तमः निशि पीत्वा तु गोक्षीरं गोमेधफलमाप्नुयात् ॥८७
 मार्त्तण्ड फाल्युने मासि पूजयित्वा गवां पद्यः । पिबेत्ततः सूर्यलोके मोदते मोऽप्नुयातुतम् ॥८८
 चैत्रे मासि विवस्वन्तं पूजयित्वा मुभक्तिमान् । हविष्याशी सूर्यलोकेऽप्सरोभिः सह मोदते ॥८९
 वैशाखे चण्डकिरणं पूजयेच्च पग्नेभ्रतः । वर्षाणामयुतं सायं मोदते सूर्यसन्निधौ ॥९०
 ज्येष्ठे दिवस्यति पूज्य गवां शृङ्गगोदकं पिबेत् । गवां कोटिप्रदानस्य निखिलं फलमाप्नुयात् ॥९१
 अषाढे त्वर्कनामानिष्ट्या प्राप्य च गोमयम् । प्रयात्यर्कस्तोकं तु वर्षाणां च शतं दत्तम् ॥९२
 आवणेऽर्यमनामानं पूजयित्वा पद्यः पिबेत् । वर्षाणामयुतं सायं मोदते भास्करात्मये ॥९३

गया है । जो सूर्य की भक्ति का पारायण करने वाला मनुष्य नक्त समय में भोजन करता है, देवता की भाँति वह देवत्रती हीकर सूर्य लोक में पढ़ृच्छता है । पश्चात् देवलोकों के विहार करने के उपरात इस भूतल में राजा होता है । ७९-८२। हविष्य भोजन, स्नान, अल्पाहार, अग्नि स्थापन एवं भूमिशयन नक्त भोजी के लिए आवश्यक बताया गया है । ८३। मार्गशीर्ष (अग्नहन) मास में कृष्ण पक्ष की षष्ठी के दिन प्रयत्नपूर्वक नक्त, विधान सुसम्भन्न कर मनुष्य को 'अंशुमान' नामक सूर्य की पूजा करनी चाहिए । ८४। उसमें विधान पूर्वक गोमूत्र का प्राशन करके रात में शयन करे, तो मनुष्य को अतिरात्र नामक यज्ञ का फल प्राप्त होता है । इसी प्रकार पृथ्य में 'सहनांशु' नामक सूर्य की पूजा करके घी का प्राशन करे तो मनुष्य को वाजपेय यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है । ८५-८६। नरोत्तम ! माघ मास में कृष्ण पक्ष षष्ठी के दिन 'दिवाकर' नामक सूर्य की पूजा करके रात में गो दुग्धपान (प्राशन) करने से गोमेध फल की प्राप्ति होती है । फाल्युन मास में 'मार्त्तण्ड' नामक सूर्य की पूजा करके जो दुग्ध का प्राशन करता है वह सूर्यलोक में दश अयुत वर्ष तक आनन्दान्वयन करता है । भक्तिमान पुरुष को चैत्रमास में 'विवस्वान' नामक सूर्य की पूजा और हविष्य का प्राशन करने से असराओं के साथ सूर्यलोक का विहार प्राप्त होता है । ८७-८९। वैशाख मास में 'चण्डकिरण' नामक सूर्य की पूजा एवं गो दुग्ध का प्राशन करने से सूर्य के समीप दशसहस्र वर्ष उत्तम आनन्द प्राप्त होता है । ९०। ज्येष्ठमास में 'दिवस्यति' नामक सूर्य की पूजा और शृङ्गगोदक (सीगद्वारापूत जल) का पान करने से कोटि गोदान का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है । ९१। आषाढ़ मास में 'अर्क' नामक सूर्य की पूजा तथा गोमय (गोबर) का प्राशन करने से दश सहस्र वर्ष तक निवास सूर्य लोक में प्राप्त होता है । ९२। सावनमास में 'अर्यमा' नामक सूर्य की पूजा एवं पयपान करने से सूर्यलोक में दश सहस्र वर्ष तक

१. पूजयित्वेति शेषः ।

मासि भाद्रपदे षष्ठ्यां भास्करं नाम पूजयेत् । भास्करं पञ्चगव्यस्य सर्वमेधफलं लभेत् ॥१५
 मासि चाश्वयुजे षष्ठ्यां भगार्थ्यं नाम पूजयेत् । पलगोमूत्रभुवचेव अश्वमेधफलं लभेत् ॥१६
 मासि तु कार्तिके षष्ठ्यां शकार्थ्यं नाम पूजयेत् । द्वार्दश्कुरं सकृतप्राश्य राजसूयफलं लभेत् ॥१७
 वर्षाते शोजयेद्विप्रान्दूर्धभक्तिपराणान् । पायसं मधुसंयुक्तं द्रजेण च परिप्लुतम् ॥१८
 शक्त्या हिरण्यवासांसि भक्त्या तेभ्यो निवेदयेत् । निवेदयेत्त्र सूर्याय कृष्णां गां च पास्त्वनीम् ॥१९
 वर्षमेंकं च हेत्वे वै नैरन्तर्देवं दो नयेत् । कृष्णषष्ठीदत्तं शक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ॥२०
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वकामसनन्वितः । चोदते सूर्यलोके तु स नरः शाश्वतीः समाः ॥२००
 पुण्डेष्वहःसु रवेषु विषुवद्ग्रहणादिषु । दानोपदासहोमाद्यैत्यर्थं खग जायते ॥२०१

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्यानुवारा भानुरर्घाय विशांपते । कृष्णषष्ठीदत्तं पुण्यं सर्वपापभयापहम् ॥१०२
 कृत्वेदं पुरुषो भक्त्या भास्करस्य नहात्मनः । प्रयाति वरमं स्थानं भानोरमिततेजसः ॥१०३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यषष्ठीदत्तवर्णनं
 नाम चतुःषष्ठ्याधिकशततमोऽध्यायः । १६४ः

आनन्दानुभव प्राप्त होता है । १३। भाद्रो मास में 'भास्कर' नामक सूर्य की पूजा करके पञ्चगव्य का प्राशन करने से सर्वमेध फल की प्राप्ति होती है । १४। आश्विन मास की पष्ठी में 'भग' नामक सूर्य की पूजा तथा गोमूत्र का प्राशन करे तो उसे अश्वमेध के फल प्राप्त हों । १५। कार्तिक मास की षष्ठी में 'शक्त' नामक सूर्य की पूजा और एक बार द्वार्दश के अंकुर का प्राशन करने से राजसूय के फल प्राप्त हों । १६। वर्ष की समाप्ति में सूर्य भक्त ब्राह्मणों को भोजन में स्वीर, शहद एवं वज्र तथा भक्तिपूर्वक अपनी इच्छानुसार सुवर्ण तथा वस्त्र उन्हें प्रदान करे और सूर्य के लिए एक दूध देने वाली कृष्ण गाय का दान भी । इस प्रकार जो पूर्ण वर्ष की समाप्ति तक सूर्य के लिए कृष्ण पष्ठी व्रत करता है, उसके पुण्य फल को सुनो । १७-१९। समस्त पापों से मुक्त होकर समस्त कामनाओं की सफलतापूर्वक वह मनुष्य सूर्यलोक में निरंतर अनेकों वर्ष का आनन्दानुभव प्राप्त करता है । २००। आकाशचरित् ! सभी पुण्य दिनों में विषुवत् ग्रहण आदि के समय दान, उपवास एवं हवन आदि के करने से अक्षय लोक की प्राप्ति होती है । २०१

सुमन्तु बोले—विशांपते ! इस प्रकार सूर्य ने पहले समय में अरुण से कहा था, समस्त पापनाशक इस कृष्ण षष्ठी व्रत की विधानपूर्वक समाप्ति करने से वह भक्त पुरुष अजेय तेजवाले महात्मा सूर्य अपरमस्थान की प्राप्ति करता है । २०२-२०३

श्रीभविष्युपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सूर्यषष्ठी व्रत वर्णन नामक एक सौ चौसठवाँ अध्याय समाप्त । १६४।

अथ पञ्चषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः

उभयसप्तमीवर्णनस्

सुमन्तुस्त्वाच्

अहं ते सम्प्रवक्ष्यामि सूर्यस्य व्रतमुत्तमम् । धर्मकामार्भभोक्षाणां प्रतिपादनमुत्तमम् ॥१
 पौषसासे त सम्प्राप्ने यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । जितेन्द्रियः सत्यवादी शतलिङ्गेधूमगोरसः ॥२
 पक्षयोः सप्तमीं यत्नादुपवासेन यापयेत् । त्रिस्तम्धर्मवेद्वानुं शाण्डिलेयं च सुव्रत ॥३
 अधःशायी भवेन्नित्यं सर्वेभोगविवर्जितः । माति शूर्णं तु सप्तम्यां घृतादिभिररन्दिम् ॥४
 कृत्वा स्नानं महापूजां सूर्यट्टेवस्य भारत । नैवेद्यं मोदकप्रस्थं क्षीरं सिद्धं निवेदयेत् ॥५
 भोजयेच्च द्विजानष्टौ भगार्च्छ शुभलक्षणाम् । गां च दत्या महाराज कण्ठिलां भास्त्वराय दु ॥६
 य एवं कुरुते पुण्यं सूर्यस्य ऋतमुत्तमन् । तस्य पुण्यफलं वच्चिम सर्वकामसमन्वितम् ॥७
 सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विद्यानैः सार्वकामिकैः । अप्सरोगणसङ्कीर्णर्नहाविभवसयुतैः ॥८
 सङ्गीतनृत्यवाद्यार्द्धार्द्धविर्गणशोभितैः । देवधूमानश्वमरैः स्तूयमानः सुरासुरैः ॥९
 सहवकिरणाभासः सौरैः सूर्यसमन्वितैः । स याति परमं स्थानं यत्रास्ते रविरशुमान् ॥१०
 रोमसङ्ख्या तु या तस्यास्तप्रसूतिः कुलेषु च । तावद्युगसहव्याणि सूरलोके महीयते ॥११

अध्याय १६५

उभयसप्तमी नामक वर्णन

सुमन्तु बोले—मैं तुम्हें सूर्य के उत्तम व्रत का विधान बता रहा हूँ जिसमें धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की भली भाँति व्याख्या की गयी है । १। सुव्रत ! पौष मास में जो इन्द्रिय संयमी सत्यवादी पुरुष साठी चावल, गेहूं और मट्ठे द्वारा नक्त भोजन करते हुए इसी प्रकार दोनों पक्ष की सप्तमी में उपवास रहकर तीनों काल में सूर्य एवं अग्नि का पूजन, भूमि में शयन और सभी भोगों के न्याय पूर्वक मास की समाप्ति वाली सप्तमी में स्नान करके सूर्य देव की महापूजा करता है, जिसमें भारत ! एक सेर मोदक का नैवेद्य तथा भली भाँति पका हुआ दूध उन्हें अर्पित किया गया हो तथा पश्चात् आठ ब्राह्मणों को भोजन कराकर सूर्य के लिए शुभ्रलक्षण संपन्न पूजनीय कपिला गाय का दूध भी दिया गया हो महाराज ! उसके इस प्रकार सूर्य के पुण्य एवं उत्तम व्रत के विधान द्वारा जिन फलों की प्राप्ति करती है, समस्त कामना प्रदायक उन पुण्यफलों को मैं कह रहा हूँ सूनो ! कोटि सूर्य के समान प्रकाश पूर्ण, मनोरथ सिद्ध करने वाले अप्सराओं से आच्छन्न तथा महासम्पत्तिशाली उस विमान पर बैठकर संगीत, नृत्य करते हुए गन्धर्व गणों से सुशोभित चामर डुलाते हुए देव एवं राक्षसों द्वारा की गयी स्तुति सम्पन्न तथा सहस्र किरण की भाँति तेजस्वी होकर वह सूर्य भक्तों को साथ ले अंशुमान सूर्य के उत्तम निजी स्थान की प्राप्ति करता है, उस गाय के रोग संख्या के समान उसके कुल की संतान वृद्धि तथा उतने महस्त युग तक सूर्य लोक की प्रतिष्ठा भी उसे प्राप्त होती है । २-११।

द्विःसप्तकुलजैः स्तर्य भोगानभुक्त्वा यथेप्सितान् । ज्ञानयोगं समाप्ताद्य पुनरेव प्रमुच्यते ॥१२
 योगाद्वात्मान्तमाप्नोति ज्ञानयोगं प्रवर्तते । सौरधर्माद्विज्ञानं सौरधर्मो भगार्चनात् ॥१३
 इत्येवं ते समाख्यातं भयार्चव्यपेहनम् । सौरमोक्षकमोपायं सूराश्रयनिवेषणम् ॥१४
 माघमासे तु सम्प्राप्ते यः कुर्यान्त्तमोजनम् । पिण्डाकं धृतसंयुक्तं भुञ्जनात् स जितेन्द्रियः ॥१५
 सोपावासश्च सप्तन्यां भवेद्बुध्यपक्षयोः । धृताभिष्ठेकमष्टम्यां कुर्याद्वात्मोर्नराधिप ॥
 गां च दद्यादिनेशाय तरुणीं नीलसन्निभान् ॥१६
 इन्द्रनीलप्रतीकाशैविमाने: गिरिसंयुतैः । गत्तादित्यपुरं रम्यं भोगानभुद्भक्ते यथेप्सितान् ॥१७
 रत्जेन्द्र फालुने मासि यः कुर्यान्त्तमोजनम् । यामालक्षीरनीदर्तैर्जितहोधो जितेन्द्रियः ॥१८
 षष्ठ्यां वाप्यव सप्तस्यामुपवासपरो नरः । अष्टम्यां तु महाव्यानं पञ्चगव्यधृतादिभिः ॥१९
 दस्मोक्जादिमृद्भूश्च गोमूत्रशङ्कदादिभिः । त्वंभिष्ठ क्षीरवृक्षाणां स्नापयित्वा प्रमार्जयेत् ॥२०
 सौरभेणीं ततो दद्यादक्ताभां रक्तमालिने । पुष्परागप्रतीकाशैविमानैर्हस्तिसंयुतैः ॥
 गत्तादित्यपुरं रम्यं मोदते शाश्वतीः समाः ॥२१
 मासि चैत्रे तु सम्प्राप्ते यः कुर्यान्त्तमोजनम् । शाल्यश्च पायसैर्युक्तं भुञ्जनश्च जितेन्द्रियः ॥
 भानवे पाटलां दद्याद्वैष्णवीं तरुणीं नृप ॥२२
 पुष्परागप्रभैर्यादैर्नानाहंसादियायिभिः । गच्छेत्सूर्यपुरं रम्यं मोदते शाश्वतीः समाः ॥२३

अपनी इक्कीस पीढ़ी के परिवारों के साथ मन इच्छित उपभोग करके ज्ञान भोग की प्राप्ति कर पुनः मुक्त हो जाता है । १२। इस प्रकार प्रथम योग द्वारा दुःखों का नाश होता है, पश्चात् ज्ञानयोग का उदय सौर धर्माचरण द्वारा ही ज्ञान उत्पन्न होता है और सूर्य के अर्चन द्वारा सौर धर्म की प्राप्ति । इस प्रकार मैंने उस व्रत की व्याख्या समाप्त की, जो भवसागर का नाश करती है, क्रमशः सौर मोक्ष का उपाय उनके आश्रित रहकर उनकी एकमात्र सेवा करना ही बताया गया है । १३-१४। नराधिप ! माघ मास में नक्त भोजन धी समेत पिण्डाक का प्राशन इन्द्रिय संयम पूर्वक दोनों पक्ष की सप्तमी में उपवास रहकर जो अष्टमी में धीका अभिषेक तथा सूर्य के लिए युवती नीलगाय, प्रदान करता है उसे इन्द्रनील की भाँति विमानों द्वारा जिसमें मयूर की रक्षा की गयी हो उत्तम सूर्य लोक में पहुँचने पर मन इच्छित भोगों का उपभोग प्राप्त होता है । १५-१७। राजेन्द्र ! फालुन मास में जो नक्त भोजन करता है कृष्णा गाय के दूध मिश्रित नीवार का भोजन क्रोधहीन एवं इन्द्रिय संयम पूर्वक षष्ठी और सप्तमी में उपवास रहकर अष्टमी में पञ्चगव्य तथा धी द्वारा सूर्य का महास्नान, जिसमें बलमीक की मिट्टी, गोमूत्र, तथा क्षीरवाले वृक्षों की ऊपरी छाल पड़ी हो और उसी से मार्जन भी करते हैं पश्चात् रक्तमाली (सूर्य) के लिए रक्तवर्ण वाली गाय का दान भी करे तो पुष्पराग मणि के समान विमानों द्वारा जो हांथी युक्त हों वह सूर्य के उत्तम लोक में जाकर अनन्त वर्ष आनन्दानुभव करता है । १८-२१। चैत्र मास में जो नक्त भोजन करता है—जितेन्द्रिय होकर साठी चावल की खीर खाकर पाटलवर्ण की युवती वैष्णवी गाय प्रदान करता है तो वह पुष्पराग मणि की भाँति प्रभापूर्ण विमानों द्वारा जिसमें अनेक हंस जुते हों, सूर्य लोक की प्राप्ति कर अनन्त वर्ष आनन्दमग्न रहता है । २२-२३। वीर ! वैशाख में जो नक्त भोजन संपन्न

दैशसे वीर मासि तु यः कुर्याशक्तभोजनम् । सूर्यं खण्डाज्य स्मित्रं सकृदद्याश्विदेवनम् ॥२४
 गां च द्यात्महारत्ज भास्कराय शुभानन् । सामान्यं च विधिं कुर्यात्प्रयुक्तो यो मया ततः ॥२५
 शुद्धस्फटिकसंकाशैर्थनैर्बहिर्हिंवाहनैः । अणिशादिगुणैर्युक्तः सूर्यवद्विचरेद्विति ॥२६
 सन्नाप्ते शावणे मासि यः कुर्यान्तकभोजनम् । दीरण्डिकभक्तेन सर्वसत्त्वहिते रतः ॥२७
 पीतवर्णा च गां द्याद्वास्कराय महात्मने । सामान्यमस्तिलं कुर्याद्विधिनं यत्प्रकौर्ततम् ॥२८
 स विचित्रैर्महादानैर्द्वसारसगानिधिः । गत्वादित्यपुरं श्रीमन्यूर्वोत्तं समते फलम् ॥२९
 दीर भ्रात्रपदे मासि यः कुर्याशक्तभोजनम् । हुतशेषहिव्याशारी दृक्षमुलमुपश्चितः ॥३०
 स्वप्न्यादयतने दात्रौ सर्वमूतानुकम्पकः । द्यावागां रोहिणीं श्रेष्ठां भास्कराय स्महात्मने ॥३१
 निशाकरकप्रस्त्वैर्वच्छ्रवैदूर्यसत्रिभैः । चक्रवाकसमायुक्तविमानैः सार्वकामिकैः ॥३२
 गत्वादित्यपुरं रम्यं सुरासुरुचुन्दितम् । मोदते स महोभागो यावदामूतसम्प्लवम् ॥३३
 श्रीमानाश्वयुजे मासि यः कुर्याशक्तभोजनम् । मिताशनं प्रभुञ्जनो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ॥३४
 द्यावागां पथवर्णाभां भानवेदमिततेजसे । दिव्याभरणसम्प्रब्रंहं तरुणीं च पर्यस्त्वनीम् ॥३५
 स्वस्तिभक्तिकसंकाशैरिन्द्रनीलोपशोभितैः । जीवो जोवकसयुक्तविमानैः सार्वकामिकैः ॥
 गच्छेद्वात्सलोकत्वं भृञ्जनः स जितेन्द्रियः ॥३६

करता है—सूर्य के लिए खांड धी मिलाकर निवेदन करने के उपरांत महाराज उन्हें गाय भी प्रदान करता है तो शुद्धस्फटिक के समान विमानों द्वारा जिनमें मयूर जुते हों, अणिशादि गुणों समेत सूर्यलोक में पहुँच कर वह स्वर्ग में सूर्य की भाँति विचरण करता है । इसमें सामान्य विधान का प्रयोग करना चाहिए जैसा कि मैंने तुम्हें बताया है । २४-२६ । साधन के मास में जो नक्त भोजन करता है क्षीर का पौष्टिक भोजन करके सभी प्राणियों के उपकार में मग्न होकर महात्मा सूर्य के लिए पीले रंग की गाय एवं बताये गये सामान्य विधान समस्त कार्य द्वारा समाप्त करता है, विचित्र विमानों द्वारा जिसमें सारस जुते हों उस विमान से सूर्य लोक में पहुँचने पर उसे पूर्वोक्त सभी फल प्राप्त होते हैं । २७-२९ । वीर ! भादों के मास में जो नक्त भोजन तथा हवन करने से गेष हवि का प्राशान करके वृक्ष के मूल (जड़) पर स्थित रहकर रात में मन्दिरमें शयन पूर्वक सभी प्राणियों पर दया करते हुए महात्मा भास्कर के लिए श्रेष्ठ रोहिणी (लाल रंग की) गाय प्रदान करता है तो वह चन्द्रमा, वज्र, एवं वैरूप्य मणि की भाँति ध्वल तथा समस्त कामना प्रदान करने वाले उन विमानों द्वारा जिसमें चक्रों जुते हों उत्तम सूर्य लोक में पहुँचकर देवों एवं राक्षसों से पूजित होता है तथा प्रलय होने तक आनन्द का अनुभव करता है । ३०-३२ । जो श्रीमान् आश्विन मास में नक्त भोजन करते हैं—अल्पाहार करके क्रोधहीन एवं इन्द्रिय संयम रखते हैं, तथा अजेय तेज वाले सूर्य के लिए कमल के समान सौन्दर्य पूर्ण ऐसी गाय प्रदान करते हैं जो दिव्य आभूषणों से सुसज्जित तरुणी, एवं निरन्तर दूध देती है । वे सोत्री एवं इन्द्रनील से सुशोभित तथा जीवक मुक्त विमानों द्वारा मन इच्छित आनन्द लेते हुए सूर्य लोक की प्राप्ति करते हैं । कांतिक मास में नक्त भोजन पूर्वोक्त विधान पूर्वक जितेन्द्रिय रहकर सम्पन्न कर प्रज्वलित सूर्य के समान गोदान उनके लिए प्रदान करे । इसमें पूर्वोक्त विधान द्वारा सभी सम्पन्न करना चाहिए ऐसा करने से सूर्य के तुल्य होता है । तथा काली अग्नि शिखा के

दिवाकराय गां दद्याज्ज्वलनार्कसमरभाम् । पूर्वोक्तं च दिर्धि कुर्यात्सूर्यतुल्यो भवेन्नरः ॥३७
 कालनलशिलप्रब्लैर्महायानैर्गोपयैः । महासिंहकृतारोपैः सूर्यवन्मोदते सुखी ॥३८
 मार्गशीर्षं शुभे मासि यः कुर्यान्नक्तभोजनम् । यज्ञान्नं यस्या युक्तं भुञ्जानः स जितेन्द्रियः ॥३९
 प्रयच्छेदगां तथा रक्तां नानालङ्कारभूषिताम् । सूर्याय कुरुशार्दूल विधिं चापि समाचरेत् ॥४०
 सितपद्मानभैर्यनैः इक्षताधरथसंयुतैः । दत्त्वा तत्र पुरे रम्ये प्रभदा पर्यान्वितः ॥४१
 अहिंसासत्यवचनमस्तेयं शान्तिराजवधुम् । त्रिष्णगांश्रिहवनं भूशय्या नक्तभोजनम् ॥४२
 यज्ञरोपस्थयोर्मार्ये तप्तम्यां कुरुन्नदनः । एतान्गुणानसमाश्रित्य कुरुण्णो व्रतमुत्तमम् ॥४३
 सप्तम्योभयविल्यातं सर्वपापभयापहम् । सर्वरोगप्रशमनं सर्वकामफलप्रदम् ॥४४
 हत्येवमादीश्वियमांश्चरेत्सूर्यव्रती सदा । य इच्छेद्विषुल स्थानं जानोरभिततेजसः ॥४५
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे उभयसप्तमीवर्णनं
 नाम षट्षष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥६५।

अथ षट्षष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः सौरधर्मे निक्षुभावतवर्णनम्

सुमन्तुरवत्त्वं

सूर्यभक्ता तु या नारी ध्रुवं सा पुरुषो भवेत् । स्त्री पुत्रमुत्तमं सा चेत्कांक्षते भृणु तद्वत्तम् ॥१

समान और पर्वतों की भाँति उन विधानों द्वारा जिसमें भीषण सिंह जुते हों, सूर्य के समीप पहुँचकर उनके समान सुखी एवं आनन्द का अनुभव करता है । ३४-३८। मार्गशीर्ष में जो नक्त भोजन सम्पन्न करता है—जितेन्द्रिय होकर खीर के भोजन तथा कुरुशार्दूल । सूर्य के लिए रक्तवर्ण और भाँति-भाँति के आभूयणों से सुशोभित गाय विधान पूर्वक प्रदान करता है तो वह व्येत कमल की भाँति सौन्दर्य पूर्ण विमाने द्वारा जिसमें व्येत वर्ण के अश्व एवं रथ हों सूर्य की उस उत्तम पूरी में पहुँचकर उत्तम कान्ति से सुशोभित होता है । ३९-४१। अहिंसा, सत्य, अस्त्रेय, धर्मा, सरलता तीनों काल स्नान, हवन, और भूमि शयन नक्त भोजन में आवश्यक बताये गये हैं । कुरुन्नदन । इस प्रकार मार्गशीर्ष की दोनों सप्तमियों में इन गुणों समेत उत्तम व्रत का विधान करना चाहिए । इस प्रकार समस्त पाप नाशिनी, समस्त रोग नाश करने वाली, तथा समस्त कामना प्रदान करने वाली दोनों सप्तमीकी व्याख्या बतायी गई है । अमित तेज वाले सूर्य के उस विपुल स्थान के इच्छुक जो सूर्य के व्रत करने वाले मनुष्य हैं इन्हीं नियमों द्वारा सदैव व्रत समाप्ति करें । ४२-४५

श्री भविष्य महापुराण में द्राह्यपर्व के सप्तमी कल्प के उभय सप्तमी वर्णन नामक

एक सौ पैसठवाँ अध्याय समाप्त । ६५।

अध्याय १६६ सौरधर्म में निक्षुभावत का वर्णन

सुमन्तु बोले—सूर्य की भक्ति करने वाली स्त्री (अगले जन्म में) निश्चित पुरुष होती है । यदि वह उत्तम पुत्र की ही कामना प्रकट करती है तो उसमें भी सफलता प्राप्त होती है मैं उसे बता रहा हूँ सुनो ! ।

निकुभार्काल्यमाल्यातं तदा प्रीतिविवर्धनम् । अवियोगकरं दीर धर्मकामार्थसाधकम् ॥२
 सप्तस्याज्ञ्य वस्तुधां वा सङ्कान्ती च रवेदिने । हृविष्या हृविर्होमं तु सोपवासः समाचरेत् ॥३
 निकुभां कांस्यनिष्पश्चां कृत्वा स्वर्णमयीं गुभाम् । राजतीं वाय वा वर्षं स्नापयेच्च धृतादिभिः ॥४
 गन्धशङ्खैरलड्कृत्य वस्त्रयुन्नेशं शोभनैः । भक्ष्यभोजैरसेवैश्च वितानच्चज्ञामरैः ॥५
 भोजगेत्सुर्यभक्तांशं शुद्धलवस्त्रावगुणितान् । कृत्वा यत्तत्त्वमर्थं तु प्रतिनामुपकल्पयेत् ॥६
 कृत्वा शिरसि तत्पत्रं वितानच्छशोभितम् । ध्वजशङ्खादिविभवैर्भगस्यायतनं नयेत् ॥७
 निकुभार्कदिनेशस्य व्रतमेतश्चिवेदयेत् । तत्पिण्डाणां स्थापयेत्पात्रमुपशेषासमन्वितम् ॥८
 प्रदक्षिणीकृत्य दौवं प्रणिपत्य क्षमापयेत् । समाप्तं तद्वतं पृथ्यं शृगुपत्कलमश्नुते ॥९
 द्वादशादित्यसंकांशैर्महायानैर्नोपमैः । यथेष्टं भानवे लोके सौरैः सार्थं प्रशोदते ॥१०
 वर्षकोटिसहस्राणि वर्षकोटिशतानि च । नन्दतेऽसौ महाभाग विष्णुलोके महीयते ॥११
 ततः कर्मविशेषेण सर्वकामसमन्वितम् । ब्रह्मलोकं समासाद्य परं सुखमवासुयात् ॥१२
 ब्रह्मलोकात्परिभ्रष्टः श्रीमान्मुरुमपूजितः । प्रजापतिश्चाप्नोति मुरुमुरनमरकृतः ॥१३
 लोकानिह चिरं भुक्त्वा सोमलोके महीयते । सोमादैवं पुनर्लोकमासाद्येन्द्रपर्तिर्भवेत् ॥१४
 इन्द्रलोकाच्च गन्धर्वलोकं प्राप्य स मोदते । ततस्तद्वर्षेषेण भवत्यादित्यभावितः ॥१५

‘वीर ! ‘निकुभार्क’ उस व्रत का नाम है, वह सदैव प्रीति वर्द्धक, वियोग नाशक और धर्म, तथा काम की सफलता प्रदान करता है । २। सप्तमी, षष्ठी, एवं संक्रान्ति वाले सूर्य के दिन उपवास रहकर धी का हवन करना चाहिए । काम्य, सुर्वा, अथवा चाँदी द्वारा शुभ-प्रतिमा (मूर्ति) निकुभा की बनावे पश्चात् धी आदि से स्नान कराकर दो वस्त्र, गंध एवं मालाओं से अलंकृत करके पुनः वितान (चाँदनी) ध्वज तथा चामर से सुसज्जित करने के उपरात भाँति-भाँति के भृत्य पदार्थों को उन्हें अपित करते हुए सूर्य भक्तों को भोजन कराये । पुनः मन्दिर के मध्य भाग में शुक्ल वस्त्रों में लिपटी उस प्रतिमा को स्थित करके वितान एवं छत्र से सुशोभित उस पात्र को सिर पर रख ध्वज, शंख आदि वस्त्रों समेत उसे सूर्य मन्दिर में ले जाये । ३-७। निकुभार्क नामक इस व्रत को उन्हें निवेदित करके सामग्रियों से सुशोभित उस पात्र को उनकी पिंडी पर स्थापित करते के पश्चात् सूर्य की प्रदक्षिणा करके नमस्कार पूर्वक (अपने अपराधों को) क्षमा कराये । इस प्रकार उस व्रत की समाप्ति करने से जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, सुनो ! बारहों सूर्यों के समान प्रकाश पूर्ण एवं पर्वत के समान विशाल काय वाले उन विमानों पर बैठकर सूर्य लोक में सूर्य के अनुयायियों के साथ उसे मनइच्छित आनन्दानुभव प्राप्त होता है । ८-१०। महाभाग ! सहस्र कोटि एवं सौ कोटि वर्ष विष्णु लोक में वह प्रजित होता है । ११। पश्चात् (उत्तम) कर्म की विशेषतावश समस्त कामनाओं को सम्पन्न कर ब्रह्मलोक में पहुँचकर उत्तम सुख की प्राप्ति करता है । १२। पुनः कदाचित् ब्रह्मलोक से च्युत होकर देव वन्दित वह श्रीमान् प्रजापति होता है, देव एवं असुरों से नमस्कृत होते हुए चिरकाल तक उस लोक के सुखानुभव प्राप्त करने के उपरात सोम लोक में पहुँचता है, और सोम लोक से फिर इन्द्र लोक में जाकर इन्द्रपति होता है । १३-१४। एवं इन्द्रलोक से गन्धर्व लोक पहुँचकर आनन्दानुभव करता है । इसके उपरात भी उस धर्म के शेष रहने के कारण सूर्य में सायुज्य मोक्ष

स्वकर्मभावनोद्योगात्पुनः प्रारम्भते गुणम् । शुभाच्च पुनरेत्येह स यात्यतिसहस्रशः ॥१६
यावज्ञाप्नोति मरणं तावद्भ्रमति कर्मणा । सुनिर्वेदात्मुदैराग्यं वैराग्याज्ञानसम्भवः ॥१७
ज्ञानात्प्रवर्तते योगो योगाद्खाल्तमाप्नुयात् ॥१८

इति श्रीशक्तिश्च महापुराणे ब्राह्मणे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे निष्कुभाव्रतवर्णनं
नाम षष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६॥

अथ सप्तषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः निष्कुभार्कव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुखाचं

षष्ठ्यां चाप्यथ सप्तम्यां नियता ब्रह्मचारिणी । वर्षमेकं न भुइक्ते यस नहाभागजिगीषया ॥१
वर्षते प्रतिमां कृत्वा निष्कुभाइकेति विश्रुताम् । स्नानाद्यं च विधिं कृत्वा पूर्वोक्तं लभते गुणम् ॥२
जान्म्बूनदमयैर्यानेश्चतुर्द्वारैरलङ्घते । गत्वादित्यपुरे रथ्ये अशेषं विन्दते फलम् ॥३
सौरादिसर्वलोकेषु भोगान्भुक्त्वा यथेष्टितान् । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्नराजानं पतिमानुपात् ॥४
या नार्युपवसेदेवं कृष्णामेकां तु सप्तमीम् । सा गच्छेत्परमं स्थानं भानोरमिततेजसः ॥५

प्राप्त करता है । १५। इस प्रकार अपने कर्म की भावना वश पुनः उसका शुभ (कर्म) प्रारम्भ होता है और उसी शुभ कर्म द्वारा इस लोक में अनेकों बार जन्म ग्रहण करता रहता है । १६। इस भाँति जब तक नरण धर्म प्राप्त नहीं होता तब तक कर्मवश भ्रमण करता है । इस प्रकार अत्यन्त दुःख होने से उत्तम वैराग्य उत्पन्न होता है, वैराग्य से ज्ञान, ज्ञान से योग, और योग द्वारा दुःख का अत्यन्त नाश बताया गया है । १७-१८

श्रीशक्तिश्च महापुराण में ब्राह्मणे पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में निष्कुभाव्रत वर्णन नामक
एक सौ छात्तर्वाँ अध्याय समाप्त । १६॥

अध्याय १६७ निष्कुभार्कव्रत का वर्णन

सुमन्तु बोले—पष्ठी और सप्तमी में संयमपूर्वक ब्रह्मचारिणी रहकर जो पुरुष (सूर्य) लोक की यात्रा करने की कामनावश पूरे एक वर्ष तक भोजन नहीं करती है, तथा वर्ष की समाप्ति में निष्कुभा की सौन्दर्यमयी प्रतिमा बनवाकर विधानपूर्वक स्नान आदि कर्म की समाप्ति करती है, तो उसे पूर्वोक्त सभी गुण प्राप्त होते हैं । १-२। सुवर्ण के विमान पर बैठकर सौन्दर्यपूर्ण चारों दरवाजे से सुशोभित उस उत्तम सूर्य लोक में पहुँचकर अशेष (सम्पूर्ण) फलों का उपभोग करती है । ३। सूर्य के सभी लोकों में मनङ्गच्छित भोगों का उपभोग करके क्रम प्राप्त इस लोक में राजा को पति रूप में वरण करती है अर्थात् (राजरानी) होती है । ४। इस प्रकार जो स्त्री एक ही कृष्ण पक्ष की सप्तमी में पूर्वोक्त नियमानुसार उपवास करती है, उसे अजय तेज वाले सूर्य के उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है । ५। वर्ष के अन्त में साठी चावल के चूर्ण

वद्धन्ते प्रतिमां कृत्वा शालिपिष्टमयीं शुभाम् । पीतानुसेपनैर्माल्यैः पीतवत्त्रैत्रं पूजयेत् ॥
 पूर्वोक्तमहिलं कृत्वा भास्कराय निवेदयेत् ॥६
 सप्तभीमैर्भायानैर्दितिचामीकरप्रभैः । वर्षकोटिशतं सापं सूर्यलोके महीयते ॥७
 सौरलोकादिलोकेषु भुक्त्वा भोगाद्धराधिष । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्यथष्टं विन्दते पतिम् ॥
 सर्वलक्षणसम्प्राप्तं धनधन्यसमन्वितम् ॥८
 कृष्णपक्षे तु सप्तम्यां या नारी तु दृढव्रता । वर्षमेकमुपवसेत्सर्वभोगविवर्जिता ॥९
 हर्षन्ते सर्वगन्धादयं निषुभार्क निवेदयेत् । मुवर्णमणिनुक्ताम्यां भोजयित्वा मगाद्गताम् ॥१०
 मुचित्रैर्भायानैर्दिव्यगन्धशोभितैः । सा वै युग्महत्याणि सूर्यलोके नरात्मय ॥११
 यथेष्टं आनवे लोके भोगान्मुक्त्वा तु कृत्यशः । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजतं विन्दते पतिम् ॥१२
 एवं या कुरुते राजन्त्रतं पापभयापहम् । निषुभार्कमिदं पुञ्यं सा याति परमं पदम् ॥१३
 वर्षमेकं महालाहो श्रद्धयः परयान्वितः । वर्षाते वै भोजयेद्वौर दाम्पत्यं भोजकेषु वै ॥१४
 भोजयित्वा तु दाम्पत्यं भोगकानां महावतैः । पूजयेद्गन्धमाल्यैस्तु आत्मोभिः कुरुनन्दन ॥१५
 कृत्वा तात्रमये पात्रे वज्रपूर्णेरलङ्घकृतम् । निषुभार्क तु सौवर्णं दत्त्वा ताम्यां तु शक्तितः ॥१६
 निषुभा भोजिका देया भोजकोर्जः प्रकीर्तिः । तस्मात्तौ पूजयेत्सौरीश्वरवच्छ्रद्धयान्वितः ॥१७
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु निषुभार्कवतं नाम
 सप्तषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः । १६७।

(आटे) की सौन्दर्य पूर्ण प्रतिमा बनाकर पीले अनुसेपन, मालाओं एवं पीत वस्त्रों से अलंकृत करके पूर्वोक्त सभी कर्मों की समाप्ति करती हुई उसे सूर्य के लिए अर्पित करती है तो विशाल कायवाले सात विमानों पर जो गजदत्त एवं सुवर्ण की भाँति प्रभापूर्ण हों, बैठकर सौ कोटि वर्ष सूर्य लोक के उत्तम स्थान में आनन्द का अनुभव प्राप्त करती है । ६-७। नराधिष ! सूर्य लोक आदि सांपी लोकों में भोग करने के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में जन्म ग्रहण कर समस्त लक्षण सम्पन्न एवं धन धान्य पूर्ण मनोनुकूल पति की प्राप्ति करती है । ८। जो स्त्री कृष्ण पक्ष की सप्तमी में दृढता पूर्वक व्रत रह उसी प्रकार समस्त भोगों के त्याग पूर्वक एक वर्ष का उपवास रहकर समय व्यतीत करती है, और वर्ष की समाप्ति में निषुभा की प्रतिमा को गन्ध आदि सुवर्ण मणि तथा मोतियों से अलंकृत करके मग की स्त्रियों को भोजन कराने के उपरांत उसे सूर्य को समर्पित करती है, तो वह चित्रविचित्र एवं दिव्य गंधव सुशोभित महाविमान पर बैठकर सूर्य लोक में जाती है और सहस्र युग पर्यन्त उन लोकों से सभी भोगों के उपभोग करने के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में उत्पन्न होकर राजरानी होती है । ९-१२। राजन् ! इस प्रकार जो सभी पापनाशक इस निषुभार्क नामक व्रत का विधान पालन करती है, उस परम पद की प्राप्ति होती है । १३। अतः महादाहो ! अत्यन्त श्रद्धासम्पन्न हो एक वर्ष तक उसका विधान पालन करे, और वीर ! वर्ष के अंत में दम्पति (स्त्री पुरुष) भोजक को भोजन करावे, पश्चात् कुरुनन्दन ! गन्ध, मालाओं, एवं वस्त्रों द्वारा अलंकृत करके ताब के पात्र में वज्र यमेत उस निषुभार्की प्रतिमा को रखकर उसे सूर्य को निवेदित कर दोनों को शक्त्यनुसार सुवर्ण दान करे । १४-१६। निषुभा भोजिका और सूर्य भोजक बताये गये हैं । इसलिए इन दोनों की पूजा ईश्वरकी भाँति अत्यन्त श्रद्धालु होकर करनी चाहिए । १७
 श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में निषुभार्क व्रत वर्णन
 नामक एक सौ सरसठवाँ अध्याय समाप्त । १६७।

अथाष्टषष्ठ्यधिकशततमोऽध्यायः कामप्रदस्त्रीव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

एकस्तेन या नारी कार्त्तकं क्षपयेन्नृप । क्षमार्हतादिनियमैः सयता ब्रह्मचारिणी ॥१
गुडाज्यमिश्रं शाल्दनं भास्कराय निवेदयेत् । पूजयोरुभयोस्तात् श्रद्धया परदन्विता ॥२
पुष्पाणां करबीराणां गुग्गुलं साज्जमादिशेत् । सप्तम्यां तात षष्ठ्यां वै उपवासरतिर्भवेत् ॥३
इन्द्रनात्प्रतीकशैविमानैः सार्दकमिकैः । वर्षायुतशतं साप्रं सूरलोके महीयते ॥४
तथा च सर्वलोकेषु श्रोगमासाद्य यत्नतः । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्द्यथेष्ट विन्दते पतिम् ॥५
इत्येवं सर्वयज्ञेषु दिधिस्तुल्यः प्रकीर्तिः । एकभक्तोपवासस्य फलं च तदृशं भवेत् ॥६
क्षमा तत्यं दया दानं शौचमिद्यनिध्रहः । लूर्यपूजाग्रहिवनं जन्तोषः स्तेयवर्जनम् ॥७
र्दर्वदत्तेज्ययं धर्मः सामान्यो दशाद्य स्मृतः । निःशेषमहं वक्ष्यमि मात्सान्मासवतं प्रति ॥८
मार्गशीर्षं शुभे मासि व्योमपृष्ठे विनिर्मितम् । गन्धमात्यैरलङ्घकृत्य शुभाननमन्तैपूमम् ॥९
ताम्रपात्रादिकैश्चैवाप्यप्सरोगणःसेवितैः । समेरो दशसाहने सूर्यलोके महीयते ॥१०
सर्वदेवकदम्बेषु सम्प्राप्य विमलां श्रियम् । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्नराजानं पतिमाभ्युयात् ॥११

अध्याय १६८

कामदासपत्नमी व्रत का वर्णन

सुमन्तु बोले—नृप कार्तिक मास में जो स्त्री क्षमा एवं अहिंसा आदि नियमों के पालन समेत संयम पूर्वक ब्रह्मचारिणी रहकर एकाहार से समय व्यतीत करती हुई, तथा तात ! उत्तम श्रद्धापूर्वक दोनों पक्षों में सूर्य के लिए गुड़, तथा धी गिथ्रित साठी चावल के भात, कनेर के पूज्य एवं धी समेत गुग्गुल प्रदान कर तात ! षष्ठ्यी और सप्तमी में उपवास करती है ? तो वह इन्द्रनील की भाँति विमानों पर बैठकर जो समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं, सूर्य लोक में जाकर सौ अयुत वर्ष उस लोक के उत्तम स्थान में सम्मानित होती रहती है । उसके उपरांत समस्त लोकों के उपभोगों के सुखानुभव करके क्रम प्राप्त इस लोक में पुनः जन्म ग्रहण कर मनोनीत पति प्राप्त करती है । १-५। समस्त यज्ञों में इसी प्रकार का समान विधान बताया गया है । और एकाहार एवं उपवास रहने के फल भी समान ही होते हैं । ६। यह भी बता दिया गया है क्षमा, सत्य, दया, दान, पवित्रता, इन्द्रियसंयम, सूर्य, पूजा, अग्निहवन, संतोष, और स्तेय (चोरी) के त्याग, यही दश प्रकार के सामान्य धर्म सभी व्रतों में बताये गये हैं । सभी मासों के समस्त धर्म क्रमशः में बता रहा है । ७-८। मार्गशीर्ष (अग्रहन) के शुभमास में व्योम के पीठ पर सौन्दर्यपूर्ण एवं अनुपम मुख-मूर्ति की रचना करके गन्ध-माला से सुशोभित कर तांबे आदि के पात्र में स्थापित करे तो उसे अप्सराओं के साथ सूर्यलोक में दशसहस्र वर्ष सम्मान पूर्वक आनन्द का उपभोग प्राप्त होता है । ९-१०। पुनः समस्त देव समूहों से उत्तम श्री सम्पन्न होकर क्रम प्राप्त इस लोक में जन्म ग्रहण करके राजरानी

पुष्टैररुभलङ्कृत्य भानवे विनिवेदयेत् ॥११
 गन्धमाल्दैरलङ्कृत्य शुभानमतीपमम् । तात्रपात्रादिकांस्यं वा कृत्वा तत्र निवेदयेत् ॥१२
 महापुष्यकपानेन दिव्यगन्धप्रवाहिना । सुमेरौ दशासाहूं सूर्यलोके महीयते ॥१३
 भुक्त्वा तु दिग्गुलान्मोगान्सर्वलोकेऽनु भारत । सम्प्राप्यैतं क्रमाल्लोकं यथेष्टं विन्दते पतिम् ॥१४
 भाद्रे रथमश्वयुजं दीपमाल्यविमूषितम् ! पिञ्जसातुसमायुक्तं कृत्वायतनमनयेत् ॥१५
 भहारथोपमैर्यनैः खेताभ्वरसंयुतैः । वर्षायुतशतं साप्रं सूर्यलोके महीयते ॥१६
 सर्वामराणां लोकेषु प्राप्य भोगान्वयेप्सितान् । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्यथेष्टं पतिमाम्बुद्यात् ॥१७
 प्रतिमां फाल्गुने ऋसि गन्धमाल्दैरलङ्कृत्य स्थापयेद्वास्करालदे ॥१८
 यज्ञेरप्रतिमैर्द्विर्गीतनादसमाकुतैः । सुमेरौ दशासाहूं सूर्यलोके महीयते ॥१९
 सर्वामिमतलोकेऽस्मिन्प्राप्य भोगान्वयेप्सिताद् । पुनरेत्य इमं लोकं यथेष्टं विन्दते पतिम् ॥२०
 कृत्वारुणं तथा चैत्रे गन्धमाल्योऽशोभितम् । स्वाप्य पात्रे यथेष्टे तु भास्कराय निवेदयेत् ॥२१
 शरदिन्दुप्रतीकाशैविमानैः सार्वकामिकैः । वर्षायुतशतं साप्रं सूर्यलोके महीयते ॥२२
 कर्मक्षयादिहागत्य पुत्रसैश्वरमन्वितम् । अभीष्टं पतिमासाद्य लोकोऽग्नान्मुदुर्लभान् ॥२३
 तण्डुलादकपिष्टेन कृत्वा वै मेरुपर्वतम् । निष्कुर्भाक्षमायुक्तं सर्वधातुविमूषितम् ॥२४
 नानालङ्कारसम्पन्नं नानामाल्यविमूषितम् । सर्वरत्नसमायुक्तं स्थापयेद्वास्करालये ॥२५

होती है । एवं पोष मास में जो स्त्री उस प्रतिमा को पुष्पों से सुशोभित करके सूर्य के लिए अर्पित कर उस सौन्दर्य पूर्ण मुख वाली सूर्ति को गन्ध मालाओं द्वारा अलंकृत करके कांसे आदि किसी पात्र में स्थापित करके उन्हें निवेदित करती है । १-१२। उसे दिव्य गंध से विभूषित महापुष्यक विमान द्वारा उस सुन्दर शिखर वाले सूर्य लोक में पहुँचने पर दश सहस्र वर्ष सम्मान तथा भारत ! इस प्रकार सभी लोकों के विपुल भोगों के उपभोग करने के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में आने पर मन इच्छित पति प्राप्त होता है । माघमास में अश्व समेत रथ की रचना कर जो दीपमाला से विभूषित हो तथा चूर्ण के शिखर जहाँ बनाये गये हों, सूर्य मन्दिर में लाये तो श्वेत दर्ण के अश्व जुते महारथ की प्राप्ति होती है वीर सभी देवों के मनइच्छित भोगों के उपभोग करके क्रम प्राप्त इस लोक में आने पर मनोनीत पति की भी प्राप्ति होती है । १३-१७। फाल्गुन मास में चूर्ण (आटे) की सूर्य की प्रतिमा बनाकर गंध एवं मालाओं द्वारा अलंकृत करके सूर्य मन्दिर में स्थापित करे तो दिव्य, एवं अनुपम विमान द्वारा गायनबाद्यों समेत उस उत्तम शिखर वाले सूर्य लोक में दशसहस्र वर्ष सम्मानित रहकर समस्त मनोनीत उपभोगों के सुखानुभव पूर्वक पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में जल गृहण करने पर मनोनुकूल पति की प्राप्ति होती है । १८-२०। चैत्रमास में रक्तवर्ण की प्रतिमा बनाकर गन्ध माला से सुशोभित करके उक्त पात्र में स्थापित कर सूर्य को अर्पित करे तो शरदकालीन चन्द्र की भाँति एवं समस्त कामनाप्रादायक विमानों द्वारा सूर्य लोक में पहुँच कर उसके उत्तम स्थान में सौ महसूर वर्ष आनन्द मग्न रह कर पश्चात् कर्मक्षीण होने के कारण यहाँ आने पर उसे मनोनीत पति, पुत्र तथा पौत्र की प्राप्ति पूर्वक समस्त दुर्लभ भोगों का उपभोग प्राप्त होता है । २१-२३। वैशाख मास में आधे पसेरी चूर्ण (आटे) के मेरुपर्वत समेत निष्कुर्भा की सूर्ति बनाकर समस्त धातुओं से विभूषित भाँति-भाँति के आभूषण, एवं भाँति-भाँति की मालाओं, तथा समस्त रत्नों से सुसम्पन्न करके सूर्य मन्दिर में स्थापित करे । २४-२५।

महदव्येषवतं हेतदैसाखे यः समाचरेत् । नानाविधैश्च यानैस्तु सूर्यलोके महीयते ॥२६
सौरादिसर्वलोकेषु भुक्त्वा भोगानशेषतः । क्रमादागत्यलोकेऽस्मिन्नराजानं पतिमाशुयात् ॥२७
द्वितीयं च तथा पश्यमाणाढे पिष्ठभुत्तमम् । सर्वबीजरसैः पूर्णं कृत्वा तु शुभ्लक्षणम् ॥
नानाकेशरगन्धादयं सर्वरत्नविभूषितम् ॥२८

एतैर्वा हैमभिर्नैः^१ सर्वभोगाच्चित्तैर्नैः । वर्षकोटिशतं साप्तं सूर्यलोके महीयते ॥२९
भुक्त्वा तु दिषुलान्भोगान्सर्वलोकेष्वनुक्रमात् । प्राप्ता^२ तु सर्वभोगादयं तत्त्वं विन्दते पतिम् ॥३०
सर्वधातुसमाकीर्णं विचित्रधजशोभितम् । निदेयेत् सूर्याय श्रावणे तिलपर्वतम् ॥३१
स्वच्छन्दान्मिश्यन्नैर्नावर्णविभूषितैः । वर्षकोटिशतं साप्तं सूर्यलोके महीयते ॥३२
सम्प्राप्य विविधान्भोगान्वह्वाश्रयसमन्वितान् । क्रमाल्लोकमिमं प्राप्य राजानं विन्दते पतिम् ॥३३
कृत्वा भाद्रपदे मासि व्योम शतिमयं नृप । वितानध्वजच्छत्रादयं नानाशालादिभूषितम् ॥३४
तरुणाकरप्रस्तौर्महायानैः सुशोभनैः । वर्षकोटिसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥३५
सम्प्राप्य विविधान्भोगान्सर्वान्निमिजसम्भवान् । क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन्नराजानं विन्दते पतिम् ॥३६
कृत्वा चाश्वयुजे मासि विपुलं धान्यपर्वतम् । सुवर्णदस्त्रगन्धादयं भ्रात्करतय निर्देयेत् ॥३७

इस प्रकार के महाव्योम वाले इस व्रत का विधान समाप्त करने से उसे अनेक भाँति की सवारियों द्वारा सूर्य लोक के सम्मान समेत सूर्य आदि समस्त लोकों के निखिल भोगों के सुखानुभव के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में आते पर राजा के रूप में पति प्राप्त होता है । २६-२७। आषाढ मास में चूर्ण (आटे) द्वारा द्वितीय (निषुभा) और पदा (सूर्य) कल्याण की मूर्ति बनाकर समस्त बीजों के रसों से पूर्ण कर भाँति-भाँति के केसर गंध एवं समस्त रलों से सुसज्जित करे तो, नृप ! सुवर्ण के विमानों पर बैठकर जिसमें समस्त उपभोग की सामग्रियाँ परिपूर्ण हों, सूर्य लोक में पहुँच कर उत्तम स्थान में सौ करोड़ वर्ष का सम्भान प्राप्त होता है और समस्त लोकों के विपुल भोगों के क्रमशः उपभोग करने के पश्चात् (इस लोक में) समस्त उपभोग की सामग्रियाँ समेत युवा पति भी प्राप्त होता है । २८-३०। सावन मास में समस्त धातु एवं नित्रविचित्र ध्वजों से सुशोभित तिल-पर्वत सूर्य के लिए समर्पित करना चाहिए । उससे उस स्त्री को भाँति-भाँति के वर्णों (रंगों) से सुसज्जित उस स्वच्छन्द गामी विमानों द्वारा सूर्य लोक के उत्तम स्थान में सौ कोटि वर्ष का सम्भान प्राप्त होता है । और इस प्रकार आश्चर्य जनक अनेक भोगों की प्राप्ति पूर्वक कभी क्रमशः इस लोक में आने पर भी वहं राजरानी होती है । नृप ! भादों के मास में साठी चावल के चूर्ण (आटे) का व्योम बनाकर उसे बितान, ध्वज, दल एवं भाँति-भाँति की मालाओं से सौन्दर्य पूर्ण करे तो तरुण सूर्य की किरणों के सम्मान प्रबाहर तेजस्वी महाविमान पर बैठकर जिसमें उत्तम भोग की व्यवस्था निश्चित है, सूर्य लोक में पहुँच कर सौ कोटि वर्ष का सम्भान प्राप्त होता है । ३१-३५। समस्त भोगों के उपभोग करके जो प्रत्येक क्षणों के लिए निश्चित हैं, क्रमशः इस लोक में आकर राजा रूप में पति प्राप्त होता है । ३६। आश्विन मास में विपुल धान्य के पर्वत बनाकर उसे सुवर्ण, वस्त्र एवं गन्धों से सुसज्जित

साधित्रैश्च महायानर्दभोगसमन्वितः । वर्षकोटिसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥३८
 सूर्यलोकादिलोकेषु भुज्यते भोगान्यथेष्टितान् । अस्मिन्लोके च सम्भ्राप्ता राजानं विन्दते चतिस् ॥
 चन्द्रगिरिभास्त्कराणां तु कान्तिसेजः प्रभान्वितम् ॥३९
 यं यं दामं समुद्दिश्य नरगारीनपुसंकाः । पूजयन्ति रविं भक्त्या तत्सर्वं प्राप्नुवन्ति हि ॥४०
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु कामप्रदस्त्रीवतवर्णनं
 नामाष्टचष्टशयिकशततमोऽध्यायः ॥१६८।

अथैकोनसप्ततत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यव्रतवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

शृण्मयं दारुजं शैलं पव्येष्टकमथपि दा । कृत्वा मठं गृहं वापि यथा विभवसम्भवात् ॥१
 सर्वोपकरणेष्टं सर्वधान्यसमन्वितम् । सूर्ययित्यं गृहं दद्यात्सर्वान्कामानदान्नयात् ॥२
 कृत्वैकमत्तं हेमन्ते माघमत्समतन्द्वितः । मासान्तेन रथं कुर्याच्छित्रवस्त्रोऽशोभितम् ॥३
 ष्वेतश्चतुर्भिः संयुक्तं तुरड्गैः समलङ्घृतम् । ष्वेतध्वजं ताकाभिश्छत्रचामरदर्पणैः ॥४
 तण्डुलाढकपिष्ठेन कृत्वा भानुं नराधिप । विद्यस्य तं रथोपस्थे संज्ञया सह भूपते ॥५

कर भास्त्कर के लिए समर्पित करे तो, उत्तम भोग साधन पूर्ण सूर्य के उस महाविमान, द्वारा उनके लोक में पहुँच कर सहस्र कोटि वर्ष का सम्मान प्राप्त होता है । पुनः सूर्य आदि लोकों के समस्त मनोनीत भोगों के उपभोग करने के उपरात इस लोक में इसी भाँति का राजा पति रूप में प्राप्त होता है, जो चंद्र के समान कांति अग्नि के समान तेज एवं सूर्य के समान प्रभा पूर्ण रहता है । इस प्रकार नर, नारी तथा नपुंसक जिन उद्देश्यों से सूर्य की भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं उन्हें वे अवश्य प्राप्त होते हैं । ३७-४०

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में कामप्रद स्त्री व्रत वर्णन

नामक एक सौ असरठवाँ अध्याय सगामः ॥१६८।

अध्याय १६९

सूर्यव्रत का वर्णन

सुमन्तु ने कहा—मिट्टी, काष्ठ, पत्थर अथवा पके ईंट का मठ या मन्दिर अपने शक्त्यनुसार निर्माण कराकर सभी साधन, धन-धान्य से पूर्ण कर उसे सूर्य के लिए समर्पित करने से समस्त कामनाएँ सफल होती हैं । १-२। हेमन्त (अगहन पौष) तथा माघ के मास में आलस्यहीन एवं एकाहारी होकर मास की समाप्ति में चित्रविचित्र वस्त्रों से सुशोभित ऐसे उत्तम स्थान का निर्माण कराये जिसमें श्वेत वर्ण के एवं सौन्दर्य पूर्ण आभूषणों से अलंकृत चार घोड़े जुते हों उसे श्वेत ध्वज, पताका, पत्र, चामर एवं दर्पणों से विभूषित करने के पश्चात् नराधिप ! आधेपसेरी चावल के साथ उस रथ पर प्रतिष्ठित करे ।

तं रात्रौ राजमार्गेण शङ्खभेद्यादिनिस्त्वैः भ्रमयित्वा शनैः पश्चात्सूर्यायितनमाविशेषं ॥६
 तत्र जागरपूजाभिः प्रदीपावलिशोभितैः । प्रेक्षणीयैः प्रदानैश्च क्षणयित्वा शनैः क्षणाम् ॥७
 प्रभाते स्नपनं कृत्वा प्रधुक्षीरथृतेन च । दीनान्धकृष्णेभ्योऽप्तं वथशक्त्या च दक्षिणाम् ॥८
 रथं संवाहन्ते पेतं भास्कराय निवेदयेत् । भुक्त्वा च बान्धवैः सर्थं लग्नाम्याकंगृहं द्रजेत् ॥९
 सर्वद्रष्टवानः प्रवरं मन्त्रधर्माच्चितः सदा । व्रतं सूर्यव्रतं नान् सर्वकालार्थसिद्धये ॥१०
 सर्ववतेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्कलाम् । स्वर्वं सूर्यरथेनेह तत्पुण्यं लभते नृप ॥११
 सूर्यायुतभ्रताकाशैविमानैः सर्वकामिकैः । त्रिसप्तकुलजैः सार्थं सूर्यलोके नहीयते ॥१२
 भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्तर्वलोकेष्वनुक्रमात् । कल्पायुतशतं साद्यं ततो राजा भवेत्वितौ ॥१३
 एच्चदत्तिसमान्युक्तं सृष्टुषड्वास्तुकल्पितम् । शर्वोपकरणोपेतं सूर्यं संज्ञां प्रकल्पयेत् ॥१४
 संज्ञादवीसमायुक्तं वैष्ट्रांशाद्यं निवेदयेत् । सौरज्ञानार्थतत्त्वज्ञसाचार्यमुदयान्वितम् ॥१५
 सम्पूज्य गन्धपुष्पादैर्वस्त्रालङ्कारचामरैः । भक्ष्यभोज्जैर्वेष्वश्च ततः शश्यां निवेदयेत् ॥१६
 तदूर्धातूलवस्त्राणां परिसङ्गत्या तु यावती । तदवद्वर्षसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥१७
 सुरादिसर्वलोकेषु भुक्त्वा भोगानशेषतः । कामादागत्य लोकेऽस्मिन्नराजा भवति धर्माच्चितः ॥१८
 दश गोभिः सह दृष्टं ता वृषैकादशाः स्मृताः । सूर्याय विनिवेदेह यत्कलं लभते शृणु ॥१९

भूपते ! पुनः रात्रि में राजमार्ग द्वारा शंख भेरी बजाते हुए धीरे-धीरे परिभ्रमण करते उन्हें सूर्य मन्दिर में पहुँचाये वहाँ उस रात में जागरण करके पूजा, सुंदर प्रदीपवाले, इरा प्रकार के दर्शनीय वस्तुएँ प्रदान करके रात अंतिम करें । ३-७। पुनः प्रातः काल शहद, क्षीर, एवं धी से स्नान कराकर यथाशक्ति दान, अंधे तथा कृपणों को अन्न दक्षिणा प्रदान पूर्वक घोड़ों समेत उस रथ को सूर्य के लिए समर्पित करें । पश्चात् बंधुओं के साथ भोजन करके सूर्य को प्रणाम कर धर जायें । सदा बतों में श्रेष्ठ एवं मंत्र-धर्म युक्त इस व्रत को सूर्य व्रत कहते हैं, यह समस्त कामनाओं को सफल करता है । नृप ! समस्त व्रत, तथा समस्त यज्ञ के करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, इस सूर्यव्रत द्वारा वे सभी पुण्य फल होते हैं । ८-११। पुनः दशसहस्र सूर्य के समान प्रकाशित तथा समस्त कामना वाले उस विमान पर बैठकर अपनी इक्कीस, पीढ़ी परिवार के समेत वह सूर्य लोक के प्रतिष्ठित होता है इस प्रकार सौ सहस्र कल्प सभी लोकों के क्रमशः समस्त विपुल लोगों के उपभोग करने के पश्चात् पृथिवी का राजा होता है । १२-१३। सूर्य और संज्ञा की सूर्ति निर्माण करके उन्हें पाँच बलि, छह गृह जो सभी साधनों से सम्पन्न हो प्रदान करे । संज्ञा के समेत पिष्ठ (आटे) से बने हुए उसको सूर्य को निवेदित करके सूर्य सम्बन्धी तत्त्व के ज्ञानार्थ आचार्य की पूजा करे गंध, पुष्प आदि वस्त्र चामर, आभूषण, तथा अधिक भश्य पदार्थों समेत शश्या उन्हें अर्पित करें तो ऊनी एवं सूर्ती वस्त्रों की सूत की संस्था के समान उतने सहस्र वर्ष सूर्य लोक की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है । १४-१७। देवलोकों के सुखानुभव के पश्चात् क्रम प्राप्त इस लोक में वह धार्मिक राजा होता है । दशगायों के साथ एकवृष के रखने एवं इन्हीं के दान करने से इसे वृषैकादश (ग्यारह) के नाम से बताया गया है । सूर्य को इस का निवेदन करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, उसे सुनो ! राजन् बारहों सूर्यों के समान तेजस्वी एवं अणिमादि

द्वादशादित्यतुल्यात्मा अणिमादिगुणैर्युतः । सर्वत्र मोदते राजन्सूर्यस्यानुचरो भवेत् ॥२०
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्म पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यव्रतवर्णनं
 नामैकोनसप्तत्यधिकशतमोऽध्यायः । १६९।

अथ सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोदानवर्णनश्च

सुमन्तुरुवाचं

सवृष्टं गोशतं दत्त्वा भास्कराय नराधिप । त्रिःसप्तकुलजैः सार्थं शृणु यत्कलमाप्नुयात् ॥१
 वरकोटिप्रतीकाशैः सर्वकामसमन्वितैः । महायानैरसङ्ख्यैर्मरासुरपूजितैः ॥२
 द्वादशादित्यसंकाशो दिवःकर इवापरः । गत्वादित्यपुरं रम्यं क्रीडते सूर्यमण्डपे ॥३
 भुक्त्वा तु विपुलान्भोगान्त्रलये सवर्देहिनाम् । मोहकञ्चुकमुत्सृज्य विशत्पादित्यमण्डते ॥४
 सर्वज्ञः सूरपरमः शुद्धः स्वात्मन्द्ववस्थितः । सर्वदाः परिपूर्णित्वात्सूर्यवद्वीप्तिमान्भवेत् ॥५
 यो दद्यादुभयमुखीं सौरभेयों दिवाकरे , सप्तद्वीदां महीं दत्त्वा यत्कलं तदवाप्न्यात् ॥
 पादद्वयं शिरोऽर्धं च सशैलवनकानना ॥ १६

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्म पर्वणि सप्तमीकल्पे
 गोदानवर्णनं नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः । १७०।

(क्रृद्धियों) गुणों से संयुक्त तथा सर्वत्र सूर्य का अनुचर होकर आनन्दानुभव करता रहता है । १८-२०
 श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमीकल्प में सूर्य व्रत वर्णन नामक
 एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । १६९।

अध्याय १७०

गोदान वर्णन

सुमन्तु बोले—नराधिप ! वृष समेत सौ गोदान सूर्य के लिए प्रदान करने से इक्कीस पीढ़ी समेत जिस पुण्य फल की प्राप्ति होती है, सुनो ! करोड़ों सूर्य के समान, समस्त कामना प्रदायक महाविमान पर बैठकर जिसकी पूजा अनेक देव एवं असुर गण करते हों, बाहरों सूर्यों के समान तेज प्राप्त करके द्वितीय (सूर्य) की भाँति उत्तम सूर्य लोक में पहुँच कर सूर्य मन्दिर में क्रीडा करता है तथा विपुल भोगों के उपभोग के पश्चात् प्राणियों के प्रलय के समय मोहरूपी आवरण के त्याग पूर्वक सूर्य मंडल में प्रविष्ट हो जाता है । १-४। एवं सर्वज्ञ, उत्तम सूर्य की भाँति शुद्ध, अध्यात्मज्ञानी, सर्वत्र गमन की शक्ति युक्त इस प्रकार परिपूर्ण होकर सूर्य के समान तेजस्वी होता है । जो सूर्य के लिए उभय मुख वाली सुरभी (गाय) प्रदान करता है, उसे दो पैर, आधा शीश, पर्वत एवं मण्डलों से युक्त पृथिवी के दान के समान (उसी रूप में) फल प्राप्त होता है । ५-६

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प का गोदान वर्णन नामक
 एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । १७०।

अथैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भोजकभोजनानुष्ठानवर्णनम्

शतानीक उदाच्र

मगानां बूहि मे धर्मं समाप्तव्यसयोगतः । फलं ज कि भवेद्ब्रह्मन्मर्गनिवेषणात् ॥१
सुभन्तुरुखाच

द एष धर्मः सूर्योति तत्त्वात्यातो मयानव । मगधमः द एवोक्तः सर्वपापभयापहः ॥२
 सर्वेषामेव वर्णानां सगार्थमनिषेषणम् । मगार्थमञ्च सम्प्रोक्त एतेषां भवमुक्तये ॥३
 ब्राह्मणा: क्षत्रिया वैश्या: स्त्री शूद्रो वा मगाश्रमी : यः पूजयति मातृं दं स याति परमां गतिम् ॥४
 त्रिसन्ध्यमर्चयेद्ब्रह्मानुप्रिकार्थं च शक्तिः । कुर्यान्कगो महाबाहो मुखमादृत्य गत्वतः ॥५
 त्रिसन्ध्यमेकालं वा पूजयेच्छुद्वया रविम् । असम्पूज्य रविं मोहान्न भुज्जीत कदाचन ॥६
 एष धर्मः परो ज्येः शेषो भवति मानवः । अपूजयित्वा भुज्जानो विष्टं भुइक्ते च दै मगः ॥७
 देवं समाप्तिः पूजा कर्तव्येण त्रिभिः सदा । मनसा पूजयेद्योगी पुष्पेश्वरभ्यसम्भवैः ॥८
 देवार्थपुष्पार्हसायां न भवेत्स्य हिंसकः । यद्यत्पर्मणि चात्मार्थं निहन्यार्द्धसक्तसदा ॥९
 मगाश्राप्निपरो नित्यं तद्बृक्तोऽतिथिपूजकः । मगी मैथुनवर्ज्यः स्याच्छ्रीमाननृहमगाश्रमी ॥१०

अध्याय १७१

भोजकभोजनानुष्ठानवर्णनम्

शतानीक बोले—हे ब्रह्मन् ! विस्तृत व्याख्या पूर्वक मगों के धर्म बताने की कृपा कीजिए । और यह भी मग के धर्मचरण करने से किस फल की प्राप्ति होती है । १

सुभन्तु बोले—अनन्द ! जिस सूर्य नामक धर्म को मैंने तुम्हें बताया है, समस्त पाप नाशक वही मग धर्म कहा जाता है । २। इसलिए सभी जाति वालों को मगधर्म का अनुसरण करना चाहिए । ३। अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री अथवा शूद्र कोई भी, मगधर्म अपनाकर सूर्य की पूजा करता है, उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है । ४। महाबाहो ! मगों को चाहिए कि प्रयत्नं पूर्वक मुखाच्छन्न कर शक्त्यवुसार तीनों संध्याओं में सूर्य की पूजा एवं अग्निकार्य सम्पन्न करते रहें । ५। कारण वश तीनों समय में न हो सके तो वह एक ही काल में श्रद्धालु होकर अवश्य सूर्य की पूजा करें और सूर्य की पूजा बिना किये मोहवश कभी भोजन न करें । ६। इसे ही उत्तम धर्म समझें, क्योंकि इसका आचरण करने वाला ‘मग’ और शेष धर्म का पालन करने वाला ‘मनुष्य’ बताया गया है । सूर्य की पूजा बिना किये ही भोजन करने वाले मग को ‘विष्टा भोजन’ करना बताया गया है । ७। अतः देव की यह पूजा तीनों काल में सदैव करनी चाहिए । योगी को चाहिए कि अत्यन्त मन लगाकर वन पुष्पों द्वारा उनकी पूजा करें । ८। देवता के लिए पुष्प संचय करने में वह उसका हिस्क नहीं कहा जा सकता है, यदि अपने लिए पुष्प के अंग को कुछ भी बिगड़े तो वह निश्चित हिस्क कहा जायेगा । ९। मग को नित्य अग्नि होत्र करना चाहिए और उसके भक्तों को अतिथि

देवाप्तिस्ततिथी भक्तं पचन्ते चात्मकारणात् । आत्मार्थं यः पदेन्मोहात्स मगो नरकं व्रजेत् ॥११
 देवार्थं पचनं येषां सन्तानार्थं तु मैथुनम् । अर्थो दानार्थं उद्दिष्टो नरकं हि विपर्ययात् ॥१२
 जीवत्रृतीयभागोऽपि न प्रकुर्वीत वार्चनम् । वित्तार्जने तदर्थेन यतो नित्यं हि जीवितम् ॥१३
 न्यायोपार्जितवित्तस्तु कुर्वन्नरकमाश्रयात् । अन्यायार्जितवित्तस्तु कुर्वन्नरकमाश्रयात् ॥१४
 वाचोऽर्थं ब्रह्मचारी यः सूर्यप्रज्ञाप्तितत्परः । भवेज्जितेन्द्रियः शान्तो नैषिको भौतिकोऽपि वा ॥१५
 सर्वगन्धिविनिर्मुक्तः कन्दमूलफलाशनः । अम वैशालीतो ज्ञेयः सूर्यपूजाप्रितत्परः ॥१६
 निवृत्तः सद्गमेभ्यस्तु सूर्यध्यानरतः सदा । ज्ञेयः औरयतीन्द्राय प्रजानिष्ठो जितेन्द्रियः ॥१७
 मुण्डोपनयनो व्यद्गो शुक्लवासः समन्वितः । ज्ञेयं तदर्चनस्थानमेदत्कार्यं प्रयत्नतः ॥१८
 अथव्यद्गो महाराज धारयेद्यस्तु भोजकः । अगम्य सर्वसत्त्वानां सूर्यलोकं स गच्छति ॥१९
 ध्वंसनं सर्वदुष्टानां सर्वपापभयापहम् । भावयुद्देन सततमर्वनीयो दिवाकरः ॥२०
 गन्धलेपविहीनोऽपि भावयुद्दो न दुष्टति । भावेषु च चरेच्छौचं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥२१
 दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं सत्यनूतं वचो वदेत् । मौरध्यानरताः शान्ताः सौरधर्मपरायणाः ॥२२
 सर्वं एवाश्रमा ज्ञेया भास्कराङ्गसमुद्भवाः । भोजकाष्टवतं धार्यं रविणोऽन्नमनौपमम् ॥२३

पूजा । मग धर्मी को मैथुन वर्जित किया गया है श्रीमान् मगाश्रमी गृहस्थ, देव, अग्नि एवं अन्यायगत के निमित्त पाक बनाते हैं । जो मग केवल अपने लिए ही पाक बनाये, उसे नरक जाना पड़ता है । १०-११।
 देवता के निमित्त पाक, संतानार्थ मैथुन औरदान करने के लिए जो अर्थसंचय करता है, उसी का कर्म प्रशस्त माना गया है । इसके विपरीत उक्त बातें करने से नरक गामी होना पड़ता है । १२। अपनी आय के तिहाई भाग से जीविका निर्वाह करना चाहिए न कि उसमें देवार्चन भी । धनोपार्जन के समय उसके आधे भाग से भी जीविका निर्वाह करना अनुचित नहीं होता है क्योंकि जीवन तो नित्य का ही रहता है । १३। न्यायोचित रीति से धनोपार्जन करना चाहिए तथा, अनुचित रीति का त्याग । क्योंकि अन्याय पूर्ण ढंग से धनोपार्जन करने पर नरक की प्राप्ति होती है । १४। विधान प्राप्ति के लिए जो ब्रह्मचारी रहकर सूर्य की पूजा एवं अग्नि होत्र करता है वह जितेन्द्रिय, शांत, नैषिक, भौतिक होते हुए उस समस्त गंधों का त्याग और कन्दमूल फल भोजन करे, तो उसे मेरा 'वैरवानास' समझना चाहिए । १५-१६। संगम में निवृत्ति पूर्वक सदैव सूर्य के ध्यान करने वाले को सूर्य पूजा निष्ठ एवं जितेन्द्रिय जानना चाहिए । १७। मुँडन कराकर यज्ञोपवीत व्यग, तथा शुक्लवस्त्र धारण करने वाला ही पूजा के योग्य होता है इसलिए उसे प्रयत्न पूर्वक उपर्युक्त आचरण करना चाहिए । १८। महाराज ! इसके पश्चात् जो भोजक अस्यं धारण करता है, वह सभी प्राणियों के लिए अगम्य उस सूर्य लोक की प्राप्ति करता है जो सभी दुष्टों एवं समस्त पापों का नाशक हैं । अतः शुद्ध भावना से निरन्तर सूर्य की पूजा करनी चाहिए । १९-२०। गंध तथा लेपन के न रहने पर भी शुद्ध भाव से की गई पूजा दूषित नहीं कही जा सकती है । क्योंकि यह बताया जाता है कि भाव की पवित्रता, वस्त्रपूत जल का पान, दृष्टिपूत (पवित्र दृष्टि) (आख से भली भौति देखकर) पैर रखना (चलना) और सत्य पूत वाणी बोलना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है । सूर्य का तन्मय ध्यान करते हुए शांत एवं सौर धर्म परायण होना चाहिए क्योंकि सभी आप्तम भास्कर के अंग से उत्पन्न हुए हैं, ऐसा निश्चित समझा जाता है भोजकों को 'अष्टव्रत' धारण करना चाहिए, इसलिये कि उस अनुपम धर्म को

सर्वव्रतानां परमं धर्मालयमनुत्तमम् । सौरभक्ते सदा कान्तिरहितः सर्वदा शमः ॥२४
 सन्तोषः सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं तथाष्टमम् । यथासम्भवपूजाहितः कर्मणा मनसा गिरा ॥२५
 सौरभक्तिः सदा कार्या भौदकेषु विशेषतः । स्वदेहान्शिर्विशेषं हि भोजकान्पालयेद्बुधः ॥२६
 नयदारिद्रियरोगेस्यस्तेवां कुर्यात्प्रियाणि वै । सूर्यस्य परिपूर्णस्य किं नाम क्रियते नरैः ॥२७
 यत्कृतं भोजकलनां वै तत्कृतं स्याद्वर्वर्नं । सुदूरमणि गन्तव्यं मग्नानां यत्र वै गणः ॥२८
 स च प्रवल्लाद्वद्विष्टव्यस्तत्र सन्निहितो रदिः । भोजकस्य तु भक्तस्य सूर्यधूजारतस्य च ॥२९
 आज्ञां कुत्वा यथान्यायमध्यमेधफलं लभेत् । देवाश्रमगतो भक्त्या देवत्वां पूजयेन्नपृ ॥३०
 स्वागतासनपादार्घ्यमधुपकाद्यनुकमात् । भोजयित्वा यथान्यायं सूर्यलोके महीयते ॥३१
 प्रतिश्रयप्रदानेन राजा भवति भारत । दत्त्वा स्थानं तथा शौचं वारणं लोकमाप्नुयात् ॥३२
 श्वेतबिन्दुपरीताइगं ध्यानश्रमविकाशितम् । संवीज्य तालवृन्तेन वायुलोके महीयते ॥३३
 क्षुत्पिपासातुरं श्रान्तं मलिनं रोगिणं तंथः । पालयित्वा यथा शक्त्या सर्वान्कामानदान्पुयात् ॥३४
 पतिताशस्तसङ्कीर्णचण्डालादीनां पक्षिणाम् । कारण्यात्सर्वभूतानां देयमन्नं स्वशक्तिः ॥३५
 अत्यत्प्रमणि कारुण्यादत्तं भवति चक्षयम् । तस्मात्सर्वेषु भूतेषु देव कारुण्यमुच्चते ॥३६

स्वयं सूर्य ने ही बताया है । २१-२३। यह (व्रत) सभी व्रतों से उत्तम, श्रेष्ठ तथा धर्मालयं बताया गया है । सूर्य भक्त को सदैव क्षमता, अहिंसा, शान्ति, सत्तोष, सत्य, असत्य, ब्रह्मचर्य आदि इन्हें अपनाते हुए मनसा, वाचा, तथा कर्मणा यथा शक्ति सूर्य की पूजा करनी चाहिए । २४-२५। सदैव सौर भक्ति करनी चाहिए, विशेषकर बुद्धिमानों को चाहिए कि अपनी शरीर के सगान ही भोजकों का पालन पोषण करे । २६। भयभीत, दर्दि, एवं रोगी होते हुए भी उनके प्रिय कार्यों को सम्पन्न करते रहे क्योंकि सूर्य तो सभी भाँति परिपूर्ण हैं और उनके लिए ननुष्य कर ही क्या सकता है । २७। नप् ! भोजक के लिए जो कुछ किया जाय उसे सूर्य के लिए ही किया गया समझना चाहिए यदि मगों का गण अत्यन्त दूरी पर रहता है तो भी वहाँ जाना चाहिए । २८। प्रयत्नं पूर्वक उनके दर्शन करना चाहिए क्योंकि वहाँ सूर्य सदैव सन्निहित रहते हैं ऐसा बताया गया है अतः भक्त एवं सूर्य पूजा में निमग्न भोजक की आज्ञा का पालन करने से अश्वमेध के फल प्राप्त होते हैं । इसलिए नप् देवता के आश्रम में जाकर भक्ति पूर्वक देव-पूजा करनी चाहिए । २९-३०। (भोजन के लिए) सुस्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, और मधुपर्क आदि क्रमशः प्रदान करते हुए भोजन कराये तो उसकी सूर्य लोक में प्रतिष्ठा होती है । ३१। भारत ! उन्हें आश्रय प्रदान करने वाला राजा होता है, तथा उसी भाँति पवित्र स्थान प्रदान करने से वरुण लोक की प्राप्ति भी होती है श्रम-पूर्वक ध्यान करने पर शरीर के समस्त अंगों से जल (पसीने) की दूँद झरने लगती है, उस समय ताड़ के व्यंजन (पंखे) झलने से वायुलोक का सम्मान प्राप्त होता है । ३२-३३। भूख-प्यास से आकुल, शांत, दीन-हीन, एवं रोगी का यथाशक्ति पालन करने से सभी मनोरथ सफल होते हैं । पतित, अधम, धन-हीन, एवं चांडाल आदि या पक्षी, कोई भी हो, करुण भाव से सभी प्राणियों को शक्त्यनुसार अन्न प्रदान करना चाहिए । ३४-३५। कारणिक होकर योड़ा भी प्रदान करना अक्षय होता है, इसलिए देव ! सभी प्राणियों के लिए अपने में दया का संचार करना आवश्यक होता है । ३६। उसके अभाव में सर्वथा तृण, भूमि, अन्न,

अभावे तृणभूम्यन्नं पत्रं धनकलानि च । दत्त्वाऽगताय प्रणतः स्वर्गं याति प्रियेण वा ॥३७
 न हीदृष्टस्वर्गयानाय यथा लोके प्रियं वचः । इहमुत्र सुखं तेषां वाग्येषां मधुरा भवेत् ॥३८
 अमृतस्यन्दिनीं वाचं चन्दनस्पर्शशीतलाण् । धर्माविरोधिनीमुक्त्वा सुखमध्यमाप्नुयात् ॥३९
 अलं दानेन राजेन्द्रं पूजयाध्यापनेन वा । इदंत्वार्थ्यं सोदानमचलं यत्प्रियं वचः ॥४०
 पूजाभिभाषणं दृष्टिः प्रत्येकं स्वर्गहेतवः । समृद्ध्येषागतं शक्त्या कुशलं प्रश्नभादरात् ॥४१
 गमने तस्य दक्षव्य पन्थानः सन्तु ते शिवाः । सुखं भवतु ते नित्यं सर्वकार्यकरं भृशम् ॥४२
 आशीर्वादभिस्त्रिं वाक्यं सर्वकालेषु सर्वदा । नमस्कारादिवाक्येषु स्वस्ति भृगलवादने ॥४३
 शिवं भवतु ते नित्यं त ज्ञ्यात्तर्वकर्मसु । एवमादि च वाचारगुणात् सदाश्रमी ॥४४
 अशेषपापनिर्मुक्तः सूर्यलोके महोयते । सूर्यभक्ते तु या भक्तिः सद्भक्तैः क्रियते नरैः ॥
 सूर्ये भक्तिसमा नित्यं भक्ते भक्तिरुचिता ॥४५
 अक्रूरे ताडिते वापि यो नाक्षोशेन्न ताडयेत् । वाक्यादभिकृतः स्वस्थः स दुःखाः परिमुच्यते ॥४६
 सर्वेषामेव तीर्थानां क्षान्तिः परमपूजिता । तस्मात्सूर्यं प्रयत्नेन क्षान्तिः कार्या क्रियासु तैः ॥४७
 ज्ञानयोगतपो यस्य यज्ञादानानि स्तकिया । क्रोधनस्य वृथा यस्मात्समाक्षोद्धं विवर्जयेत् ॥४८

पते, धन, और फलों को प्रदान करना चाहिए क्योंकि असहाय के लिए नम्रता पूर्वक इन वस्तुओं के प्रदान करने एवं मधुर बोलने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है । ३७ लोक में स्वर्ग यात्रा के लिए कोई ऐसी द्विसरी सवारी नहीं है जैसी कि मधुरवाणी । क्योंकि जिसकी वाणी मधुर होती है, उन्हें लोक परलोक के सभी स्थानों में सुख प्राप्त होता है । ३८। अमृत की बूँद झरने वाली एवं चन्दन स्पर्श की भाँति शीतल करने वाली उस धर्मानुकूल वाणी बोलने से अक्षय सुख की प्राप्ति होती है । ३९। अतः राजेन्द्र ! दान, पूजा एवं अध्यापन करना व्यर्थ है क्योंकि स्वर्ग गमन के लिए प्रिय वाणी बोलना ही निश्चल सोपान (सीढ़ी) है । पूजा में मधुर बोलना और मनमोहन देखना ये प्रत्येक स्वर्ग के हेतु बताये गये हैं अपने यहाँ (अतिथि आदि किसी के) आगमन पर भक्ति पूर्वक सादर कुशलं प्रश्न और (उसके) जाते समय तुम्हारा मार्ग कल्याण प्रद हो तुम्हें नित्य सुखानुभव होता रहे एवं सभी कार्यों की भली भाँति सफलता हो इस भाँति कहे इसी प्रकार सभी समय नमस्कार आदि करने पर आशीर्वाद देना चाहिए । मांगलिक कार्य में 'स्वस्ति' तथा सभी कार्यों में नित्य कल्याण प्राप्ति होती रहे, इस प्रकार की बातें अनुष्ठान करने वाले के लिए आश्रम वालों को सदैव कहनी चाहिए । ४०-४४। इससे वह निखिल पापों से मुक्त होकर सूर्य लोक में सम्मानित होता है । सद्भक्त पुरुषों को चाहिए कि सूर्य-भक्त की भक्ति करे क्योंकि भक्त में भक्ति भावना करने से वह सूर्य में भक्ति करने के समान माना जाता है । ४५। जो निन्दा करने पर निन्दा, और ताडना करने (मारने) पर नारता नहीं, है किन्तु (मधुर) वाणी द्वारा अपनी निर्भीकता प्रकट करता है, उसे किसी प्रकार का दुःख नहीं हो सकता है । ४६। सभी तीर्थों की क्षमता आदरणीय वस्तु है, इसलिए सभी क्रियाओं में क्षमता के लिए प्रयत्न शील रहना चाहिए । ज्ञान योग रूपी तप एवं यज्ञादान रूप स्तकिया करते हुए यदि वह कुछ होता है तो उसके ये सभी व्यर्थ हो जाते हैं । अतः क्रोध का त्याग करना अत्यन्त आवश्यक होता है । कठोर वाणी, मर्मस्थल, अस्थि, प्राण एवं हृदय में दाह उत्पन्न करती है,

मर्मस्थिप्राणहृदयं निर्देहेत्रियं वचः । न वचो हृषियं तस्माद्गोजकेषु विशेषतः ॥४९
क्षमा दानं त्विषः सत्यं क्षमार्हसार्कसन्मवाः । न शक्या विस्तराद्वत्तुमर्पि वर्षशतैरपि ॥५०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे आह्ये पर्वणि सप्तमीकल्ये सौरधर्मे भोजकभोजनानुष्ठानदर्शनं
नामैकसप्तत्यधिकशतमोऽध्यायः । १७१

अथ द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

पुनः शृणु महाराज धर्ममादित्यसम्मतम् । सौरं प्रियं सदा सौरं पवित्रं पापनाशनम् ॥१
क्वचिदगच्छन्यदा पश्येत्सूर्यार्चासिस्प्रपञ्जनम् । यत्र पूजा ततो गच्छन्स सूर्यो नात्र संशयः ॥२
स्नाननैवेद्यवस्त्रैश्च नानालङ्कारभूषणैः । यथाविभवमाश्रित्य नमस्कारादिसंस्तवैः ॥३
दृष्ट्वायातनमाकम्य नमस्कृत्य र्दिवं दग्जेत् । क्वचित्तथि नदीं शैलं गच्छमानं च भोजकरः ॥४
उपश्रुत्यादीनं गत्वा भोजकं पूजयेद्बुधः । रथाभ्यगजयानेभ्यो हावतीर्थं मायान्तृप ॥
मगानां भोजनं भक्त्या शक्त्या दानं प्रकल्पयेत् ॥५
दशपूर्वान्दशं परानात्मना सह भारत । समादाय दग्जेत्स्थानं रवेरमिततेजसः ॥६

इसलिए कठोर वाणी कभी न बोलना चाहिए विशेष कर भोजकों के सम्मान में । क्षमा, दान, कान्ति, सत्य एवं अहिंसा ये सभी सूर्य लोक से ही उत्पन्न हैं । बस ! यथाशक्ति इसकी व्याख्या कर चुका और इसका वर्णन मैं सैकड़ों वर्षों में भी नहीं कर सकता । ४९-५०

श्री भविष्य पुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में भोजक भोजनानुष्ठान वर्णन नामक
एक सौ इकहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । १७१।

अध्याय १७२

सौरधर्म वर्णन

सुमन्तु बोले—महाराज ! सूर्य सम्मत, सदैव सूर्य भक्तप्रिय, सौर, पवित्र, एवं पापनाशक उस धर्म को पुनः सुनो । यात्रा करते हुए कहीं सूर्य की पूजा हाती हुई दिलाई पड़े तो वहाँ अवश्य जाना चाहिए क्योंकि वह सूर्य रूप है इसमें सदेह नहीं । १-२। वहाँ मन्दिर में जाकर स्नान, नैवेद्य, वस्त्र, भाति-भृति के सौन्दर्यपूर्ण आभूषण, अपनी शक्ति के अनुसार इन सामग्रियों द्वारा उनकी पूजा, नमस्कार एवं स्तुति पाठ पूर्वक नमस्कार करके ही अन्यत्र आये । कहीं मार्ग में नदी, अथवा पर्वत की यात्रा करते हुए किसी भोजक को मुनकर बुद्धिमान् को चाहिए कि वहाँ जाकर दण्डवत् प्रणाम पूर्वक उसकी पूजा करें । नृप ! रथ, अश्व अथवा हांसी पर बैठकर मग्न द्रेशों में जाकर भक्ति पूर्वक शक्त्यनुसार वहाँ दान करता चाहिए । भारत ! ऐसा करने से दश पूर्व और दश पर की पीढ़ियों के साथ उहें अमित तेजवाले सूर्य के उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है । ३-६। दैवपर्व, उत्सव, श्राद्ध अथवा किसी भी पुण्य दिन में विधानपूर्वक भानु

दैवपर्वोत्सवे श्राद्धे पुण्येषु दिवसेषु च । भानुं सम्बूज्य विधिवद्वोजकान्भोजयेत्ततः ॥७
 पितरः सर्वदेवानां सूर्यमाश्रित्य संस्थिताः । प्रीते सूर्ये तु ते सर्वे प्रीताः स्युर्नात्र संशयः ॥८
 यदा च श्रद्धया पुक्तं प्रसक्तं रविपूजनम् । भोजयेद्वोजकं भक्त्या श्राद्धेषु विधिवृष्टप ॥९
 भोजकस्य महाराज दिवसेनापि यत्कलम् । न तच्छक्यमिदं तेन प्राप्तुं वर्षशतैरपि ॥१०
 यः पश्यति प्रत्नन्लात्मः यो न द्वेष्टि न कांपति । शब्दादीनां तु सम्भोगं स विज्ञयो जितेन्द्रियः ॥११
 ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः सूर्यभक्त्या समन्वितः । पाखण्डयोगमुक्तश्च स वै भोजक उच्यते ॥१२
 सूर्यधर्माद्वेज्जानानं ज्ञानाद्वैरराग्यसन्भवः । ज्ञानवैराग्ययुक्तस्य सूर्ययोगः प्रवर्तते ॥१३
 सूर्ययोगाच्च सर्वज्ञः परिपूर्णः सुनिर्वृतः । आत्मन्यवस्थितः शुद्धः सूर्यवदिवि संवैदते ॥१४
 सर्वेषामेव भूतानामुत्तमः पुरुषः स्मृतः । पुरुषेभ्यो द्विजः श्रेष्ठो द्विजेभ्यो गन्धपारागः ॥१५
 प्रनिव्यम्भो वेदविद्वांसस्तेभ्यस्त्वार्थचिन्तकाः । अर्थविद्वांश्च ज्ञानार्थप्रतिबुद्धो विशिष्यते ॥१६
 ज्ञानार्थकोटिकोटिभ्यो वरिष्ठा योगिनोऽमताः । योगिनां कोटिकोटिभ्यो भोजकश्रोतमो भवेत् ॥१७
 योगज्ञा योग्यनिष्ठाश्च पितरो योगसम्भवाः । भोजिते भोजके सर्वे प्रीताः स्युस्ते न संशयः ॥१८
 सर्वज्ञानतपोदानैः कृतैर्दत्तैश्च यत्कलम् । तत्कलं लभते सर्वं विधिवद्वोज्य भोजकम् ॥१९
 यश्च द्रव्यकलापात्मा दक्षिणा हविर्श्रृत्विजः । क्रृग्यजुः सामयोगैश्च देवयज्ञः प्रकीर्तिः ॥२०
 ब्रह्मचर्यं तपो मौनं शान्तिराहारलाघवम् । इत्येतत्पत्सां रूपं सुधीरं पञ्चलक्षणम् ॥२१

की पूजा करके पश्चात् भोजकों को भोजन कराये । क्योंकि पितृगण तथा समस्त देवगण सूर्य के ही आश्रित रहते हैं, अतः सूर्य के प्रसन्न होने पर वे सभी प्रसन्न होते हैं इसमें संदेह नहीं । ७-८। नृप ! श्रद्धालु होकर सूर्य पूजन में अनुरक्त भोजक को श्राद्ध में भक्ति पूर्वक भोजन कराये तो महाराज ! उस भोजक के भोजन करने से उसे उस दिन जितने फल की प्राप्ति होती है, वे फल अन्य द्वारा उसे सैकड़ों वर्षों में भी नहीं प्राप्त हो सकते । ९-१०। जो प्रसन्न रहकर देखता सुनता है, न द्वेष करता है और न विषयों की अभिलाषा ही करता है वही जितेन्द्रिय है । ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न होकर सूर्य भक्ति करने वाला यदि पांखड़ी न हो तो उसे भोजक कहा जाता है । ११-१२। सूर्य धर्मानुष्ठान करने से ज्ञान उत्पन्न होता है, ज्ञान से वैराग्य और ज्ञान वैराग्य से युक्त होने पर वह सूर्य योग (संयुक्त) कहा जाता है । पुनः सूर्य योग से सर्वज्ञ, परिपूर्ण, भलीभाँति निर्वृत एवं आनंद में अवस्थित होकर वह शुद्ध सूर्य की भाँति स्वर्ग में आनन्द का उपभोग करता है । १३-१४। सभी प्राणियों में पुरुष उत्तम बताये गये हैं, पुरुषों में द्विज श्रेष्ठ, द्विजों में शास्त्रनिष्ठात, शास्त्रियों में वेदविद् उनसे तत्त्व की चिंता करने वाले और उनसे उद्बोधक ज्ञानी विशिष्ट होते हैं । करोड़ों ज्ञानियों से योगी, और करोड़ों योगियों से भोजक उत्तम होते हैं । ऐसा कहा गया है । १५-१७। योग-ज्ञानी, तथा योगनिष्ठ पितर योग से ही उत्पन्न होते हैं और भोजक के भोजन कराने पर प्रसन्न होते हैं इसमें संदेह नहीं । १८। समस्त ज्ञान, एवं तप करने अथवा देने से जिस फल की प्राप्ति होती है, वह समस्त फल विधिवत् भोजक को भोजन कराने से प्राप्त होता है । १९। जिसमें यज्ञ, अनेक उपायों द्वारा द्रव्य, व्यय, दक्षिणा, हवि, क्रृत्विक, क्रृग, यजु एवं सामवेदों के संबंध स्थापित हों वह देवयज्ञ कहा जाता है । ब्रह्मचर्य, तप, मौन, शान्ति, अल्पाहार, तप का यहीं धीर गम्भीर पाँच लक्षण बताया गया

यन्त्र विष्टं विशिष्टं च न्यायप्राप्तं च यद्गुर्वेत् । तत्तद्गुणदते वेदमित्येतद्वानलक्षणम् ॥२२
 विवर्धनीं सहस्राणां सर्वसस्यप्ररोहिणीम् । दद्याद्भूमिं जलेषेत् मूर्मिदानं तदुच्यते ॥२३
 एकच्छद्रा॒ मही॑कृत्वा द्विजेभ्यः प्रतिपादयेत् । सम्पूर्णा॑ पर्वतारथ्य॒भूमिदानं तदुच्यते ॥२४
 कन्यामसदृकृतां दद्यादधनाय नराधिप । द्विजाय वेदविदुषे कन्यादानं तदुच्यते ॥२५
 मर्द्दोषविनिर्मुक्तां कुलयोग्यामलदृकृताम् । स्थ्यमोत्तमवस्त्राणां यो दद्यादहतानि च ॥२६
 एतत्समास्तो ज्ञेदं वस्त्रदानस्य लक्षणम् । ब्रह्मविष्णुसमाधिक्यकान्तिशीलपरायणः ॥
 अहोरात्रं न भुज्ज्ञीत ह्यपवासस्य लक्षणम् ॥२७
 चत्वारिंशतसमायुक्तं पिण्डानां हि शतदृष्ट्यम् । माते हृष्टाद्यथाकाममिदं चान्द्रायणं सूतम् ॥२८
 क्रृषिनिः सर्वास्त्रज्ञैस्तपोनिष्ठैर्जितेन्द्रियैः । देवैच्च सेवितं तोयं क्षितौ तत्तीर्थमुच्यते ॥२९
 सूर्यवान्तरस्थानानि पुण्यक्षेत्राणि निर्दिशेत् । मृतानां तेषु सूर्यत्वं सौरक्षेतेषु देहिनाम् ॥३०
 द्रानान्यावसर्थं कुर्यादुद्यानं देवतागृहम् । तीर्थेष्वेतानि यः कुर्यात्सोऽक्षयं लभते फलम् ॥३१
 शान्तिः स्युहा तथा सत्यं दानं शीलं तपः श्रुतम् । एतदष्टाङ्गमुद्दिष्टं परं पात्रस्य लक्षणम् ॥३२
 यज्ञोपवासदानानि तपस्तीर्थफलानि च । सम्पूर्णं लभते भक्त्या भोजयित्वा तु भोजकान् ॥३३
 सूरे भक्तिः क्षमा सत्यं दशेन्द्रियविनिग्रहः । सुखितेषु च झैत्री च सूर्यधर्मस्य लक्षणम् ॥३४
 सूर्यभक्तं द्विजं भक्त्या यः शाद्वेषु च भोजयेत् । कुलसप्तकमुद्दत्य सूर्यलोके महीयते ॥३५

है । २०-२१। जिसके लिए जो समय निश्चित हो, जिसका जो विशिष्ट ज्ञाता हो और जो समय न्याय प्राप्त हो, उसी समय उसी विद्वान् को वही वस्तु प्रदान करनी चाहिए, यही दान का लक्षण है । सहस्रों को भोजन द्वारा बढ़ाने वाली, सभी प्रकार अन्न ऐदा करने वाली और जलयुक्त भूमि का दान करना 'भूमिदान' कहलाता है । २२-२३। तथा पर्वत, जगल आदि समस्त पृथ्वी को एक छत्र करके द्विजों को प्रदान करना भूमि दान बताया गया है । नराधिप ! आभूषणों एवं वस्त्रों से अलंकृत हुई कन्या को वेदविद्वान् किसी निर्धन ब्राह्मण को देना चाहिए क्योंकि इसे ही कन्यादान बताया गया है । कन्या भी, सभी दोषों से मुक्त अपने कुरुते के योग्य और अलंकृत होनी चाहिए । किसी भाँति का मध्यम एवं उत्तम वस्त्र नवान होने से दान के योग्य होता है, यही दान वस्त्र दान कहा गया है । दिन-रात भोजन न करने पर भी बहा, तथा विष्णु से भी अधिक कांति पूर्ण रहे तो वही उपवास का लक्षण बताया गया है । २४-२७। दो सौ चालीस पिंड दान मास में इच्छानुसार भक्षण करे, इसे चान्द्रायण व्रत कहते हैं । समस्त शास्त्र ज्ञाता, तपोनिष्ठ, जितेन्द्रिय, इस प्रकार के क्रृषियों और देवों से संसेवित पृथिवी के जल को तीर्थ बताया गया है । २८-२९। सूर्य के अवान्तर स्थान को पुण्य क्षेत्र बताया गया है । उस सौर क्षेत्र में मरण प्राप्त होने से उसे सूर्य सायुज्य मुक्ति प्राप्त होती है । ३०। गृह बनाकर उसमें देव प्रतिष्ठा करके बगीचे भूमेत उस तीर्थ में जो दान देता है, उसे अक्षय फल की प्राप्ति होती है । ३१। शान्ति, स्पृष्टा (इच्छा), सत्य, दान, शील, तप, अध्ययन यही अष्टांग युक्त उत्तम पात्र होने का लक्षण है । यज्ञ, उपवास, दान, तप तथा तीर्थ के फल ये सभी फल भक्ति पूर्वक भोजक को भोजन कराने से प्राप्त होते हैं । ३२-३३। सूर्य भक्ति, क्षमा, सत्य, दशों इन्द्रियों का संयम, सुखी लोगों से मित्रता, यही सूर्य धर्म का लक्षण है । जो शाद्वेषों गति पूर्वक सूर्य भक्त को भोजन

बहुनाश्र किमुक्तेन सूर्यभक्तं तु भाजयेत् । सूर्यमत्तेन यद्भुक्तं मानुनानाश्रयं नृप ॥३६
 न वेदोविदुषां कोटथा लभ्यते चेह तत्कलम् । तत्स्फुं लभते राज्ञभोजं भाज्य विधानतः ॥३७
 तस्माच्छ्राद्धे विशेषेण पुण्येषु दिवसेषु च । सूर्यनुदिश्य विश्रेन्द्र भोज समोजयेष्टपृष्ठः ॥३८
 असंयतः संयतो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा । यश्चासौ रविभक्तः स्यात्सूर्यवत्पूज्य एव हि ॥३९
 संनर्गादिपि वा सोभाद्भोजकं यस्तु भोजयेत् । सोऽपि यां गतिशास्त्रेति न तां यज्ञशतैरपि ॥४०
 तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च रक्षणीयश्च सर्वदा । भोजकः कुरुशार्दूलं सौरेण गतिमिच्छतः ॥४१
 नाममात्रप्रयत्नेऽपि यदि स्थाद्भोजको रवे । सूर्यवत्स हि द्रष्टव्यः पूजनीदश्च भारत ॥४२
 गृहे श्राद्धस्य यत्पुण्यमरव्ये तच्छत्राधिकम् । सौराश्रमेषु विज्ञेयं तत्पुण्यमयुताधिकम् ॥४३
 दत्त्वा तु भोजके जौम्यं ह्यासत्वं सपरिच्छदम् । धातुदत्त्वमयं चापि राजा भवति भूतसे ॥४४
 विमले वाससी दत्त्वा भोजकाय महीपते । उद्गृह्य शतसाहूं सूर्यलोके महीयते ॥४५
 दत्त्वा तु लोमशां राजन्भोजकाय गुञ्जां वृहत् । रोम्णि रोम्णि सुवर्णस्य दत्तत्य फलमाप्नुयात् ॥४६
 शङ्खं ददाति यो भक्त्या तथा दिव्ये च पादुके । सूर्यलोकमवाप्नोति तेजसा रविसन्निभः ॥४७
 तिळापयति यो भक्त्या पुराणेन तु पुस्तकम् । युगकोटिशतं दिव्यं सूर्यलोके महीयते ॥४८
 भवेदिहागतः श्रीमान्मुखादयो वेदपारगः । यः करोति गृहं भानोस्तत्स्थानं चोत्तमं भवेत् ॥४९

कराते हैं, वे अपने सात पीढ़ी के परिवार समेत सूर्य लोक में सम्मान प्राप्त करते हैं । ३४-३५। नृप !
 अधिक क्या कहा जाय सूर्य भक्त जो कुछ भोजन करता है, वही सूर्य का आश्रय होता है । ३६। राजन् !
 करोड़ों पूज्य विदानों से उस फल की प्राप्ति नहीं होती है जिसकी प्राप्ति विधान पूर्वक भोजक को भोजन
 करने से होती है । ३७। दिवेन्द्र ! इसलिए श्राद्धों पर विशेष पुण्य दिनों में सूर्य के उद्देश्य से भोजक को
 भोजन कराना चाहिए । ३८। वह संयमी असंयमी किसी भी दशा में क्यों न हो, सूर्य भक्त होने से वह सूर्य
 के समान ही पूज्य है । ३९। संर्वा या लोभवश जो भोजक को भोजन कराता है, उसे जिस गति की प्राप्ति
 होती है, वह उसे सैकड़ों यज्ञों द्वारा दुर्लभ है । कुरुशार्दूल ! इस लिए उसके लिए मान्य, पूज्य, एवं सदैव
 रक्षणीय, भोजक हैं, जो सूर्य से अपने उत्तम गति प्राप्त करने का इच्छुक है । भारत ! नाम मात्र का
 प्रयत्न करने दाला भी यदि भोजक है तो वह सूर्य के समान आदरणीय एवं पूज्य हैं । घर में श्राद्ध करने से
 जितने फल की प्राप्ति होती है, उससे अधिक अरण्य में और सौर के आश्रमों में भक्ति करने से वे ही पुण्य
 दश सहस्र गुने अधिक हो जाता है । भोजक के लिए धातु या गजदन्त की शय्या सभी साधनों समेत देने से
 वह इस भूतल में राजा होता है । ४०-४४। महीपते ! उत्तम युगल वस्त्र भोजक को प्रदान करने से सौ
 सहस्र कुल के उद्धार पूर्वक वह सूर्य लोक की प्रतिष्ठा प्राप्त करता है । ४५। राजन् ! भोजक के लिए लम्बे
 चौड़े ऊनी (कम्बल आदि) वस्त्र प्रदान करने से उसके प्रत्येक लोम से सुवर्ण दान के फल प्राप्त होते
 हैं । ४६। जो उन्हें भक्ति पूर्वक ग्रंथ, तथा दिव्य पादुका प्रदान करता है, सूर्य के समान तेज पूर्ण होकर वह
 सूर्य लोक प्राप्त करता है । ४७। जो भक्तिपूर्वक पुराणों द्वारा पुस्तक लेखन कराता है, सौ करोड़ युग पर्यंत
 वह सूर्य लोक में सम्मानित होता है । ४८। जो सूर्य के लिए उत्तम स्थान (गृह) की कल्पना करता है, वह
 यहाँ आकर श्रीमान् मुखी और वेद निष्णात विद्वान् होता है । भोजक सूर्य है और सूर्य ही भोजक है,

तत्सूर्यो भोजकः सोऽत्र भोजकः सूर्य एव हि । तेन भोजकविशेषु दानमस्यमित्यपि ॥५०

यद्यद्यस्योपयुज्येत वेयं तत्स्य यत्ततः । उपयोगपरो नित्यं सूर्यस्तदुभयोरपि ॥५१

व्याख्याने सौरधर्मस्य कृत्वा आमलकं महत् । शोभितं पुष्पपत्रादैर्यक्षेत्रासने सुराः ॥५२

शोभित मात्यगन्धैत्तु सूर्यस्य साधनं महत् । पुरस्तात्स्य तत्स्याप्य आचार्यं पूजयेत्सदा ॥

सूर्यदत्तसौरधर्मं च तुल्यसेतद्दृश्यं वचः ॥५३

य एवं न्यायतो वक्ति सौरधर्मं शृणोति च । आयुर्विद्यां यशः कीर्तिसुपलम्ब्य रथिं जपेत् ॥

वदल्लयन्ये पिबन्त्यन्ते सर्वे ते फलमागानः ॥५४

तत्सादेवं दिथो धर्मो वाचकं दितुर्दुयाः । तस्यान्ते पूजयेद्ब्रह्म्या य इच्छेद्विप्रतं यशः ॥५५

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मण वर्षणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मं

त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः । १७२।

अथ त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

शतानीक उवाच

पुनर्म द्वौहि विश्रेन्द्र सौरं धर्ममनुतमम् । समाप्तात्कथितं ब्रह्मन्विस्तरेण प्रकीर्तय ॥१

इसलिए भोजक ब्राह्मण में दिया गया दान अक्षय होता है । ४९-५०। जिस-जिस की आवश्यकता होती है, उसे अवश्य देना चाहिए, क्योंकि सूर्य दोनों ओर नित्य सहायक रहते हैं । सौर धर्म की व्याख्या होते समय पुष्प एवं पत्रों से सुशोभित तथा सौन्दर्य पूर्व दर्पण उस आसन पर रखना चाहिए । ५१-५२। सूर्य के महान साधन रूप आचार्य को उनके सामने आसनासीन कर गंधमालाओं द्वारा उन्हें सुशोभित करते हुए सदैव उनकी पूजा करे । सूर्य के समान सौर धर्म में भी दोनों बातों का समान रूप से पालन करना चाहिए । ५३। इस प्रकार जो न्यायपूर्वक वाणी-व्यवहार से सौर धर्म का श्रवण करता है, उसे आयु, विद्या, यश, तथा (कीर्ति की प्राप्ति पूर्वक सूर्य की साक्षात् प्राप्ति होती है) । जो केवल सत्य का ही पालन करते हैं, अथवा सौर धर्म का अमृत पान ही करते हैं, उन सभी को वे फल प्राप्त होते हैं । अतः इस प्रकार के धर्म वाचकों द्वारा बुद्धिमानों को (ये सभी बातें) जान लेना परमावश्यक होता है । विपुल यश की कामना बाले को चाहिए कि उनकी पूजा के अन्त में आचार्य वाचक, की पूजा अवश्य करें । ५४-५५

श्रीभविष्य महापुराण में ब्राह्मणपूर्व के सप्तमी कल्प में सौर धर्म वर्णन नामक

एक सौ बहतरबाँ अध्याय समाप्त । १७२।

अध्याय १७३

सौरधर्म वर्णन

शतानीक बोले—विश्रेन्द्र ! आप पुनः उस सौर धर्म का वर्णन कीजिए, क्योंकि आप ने उसकी व्याख्या संक्षेप में की है, अतः मैं अब उसे विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ ।

सुमन्तुरुवाच

साधु साधु महाबाहो साधु पृष्ठोऽस्मि भारत । त्वत्समो नास्ति लोकेऽस्मिन्त्सौरः पार्थिवसत्तम ॥२
 कीर्तयाम्यद्य तं पुण्यं संवादं पापनाशनम् । गरुडाणयो राजन्युरावृतं नराधिप ॥३
 मुखसीतं पुरा राजन्नरुणं सूर्यसारविम् । उपगम्य महाबाहो गरुडो वाकःनन्दवीत् ॥४
 धर्माणामुत्तमं धर्मं सर्वपापप्रणाशनम् । सोरधर्मं खगश्रेष्ठं शूहि मे कृत्स्नशोऽनघ ॥५

अरुण उवाच

साधु वत्त महात्मासि धन्दर्त्तव्यं पापवर्जितः । श्रोतुकामोऽसि अत्युत्र सौरधर्मसनुहम्भम् ॥६
 शृणु त्वं कीर्तयाम्येष सुखोपायं प्रहृत्काम् । परमं सर्वधर्माणां सौरधर्मसनुहम्भम् ॥७
 अज्ञानार्णवमग्नानां सर्वेषां प्राणिनामयम् । सौरधर्मो हृयं श्रीमत्यरतीरप्रदो यतः ॥८
 ये स्मरन्ति रविं भक्त्या कीर्तयन्ति न ये खग । पूजयन्ति च ये नित्यं ते गताः परमं पदम् ॥९
 आत्मद्वाहः कृतस्तेन जातेनहे खगाधिप । नार्चितो येन देवेशः सहस्रकिरणो रविः ॥१०
 सुचिरं सम्भ्रमत्यस्मिन्दःखदे च भवार्जि । जराभूतमहाप्राहे तृणःवेलाःकुलापरे ॥११
 मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य येऽव्ययन्ति दिवाकरम् । तेषां हि सफलं जन्म कृतार्थस्ते नरोत्तमाः ॥१२
 सूर्यभक्तिपरा ये च ये च तद्गतमानसाः । ये स्मरन्ति सदा सूर्यं न ते दुःखस्य भागिनः ॥१३

सुमन्तु बोले—महाबाहो ! साधु, साधु ! भारत ! आपने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है, अतः पार्थिव सत्तम ! इस लोक में तुम्हारे समान कोई सूर्य भक्त नहीं है । १। राजन् ! प्राचीन काल में गरुड और अरुण के किये गये पुण्य एवं पाप नाशक संवाद को मैं बता रहा हूँ । नराधिप ! पहले समय में एक बार सूर्य के साथी अरुण सुख पूर्वक बैठे हुए थे, महाबाहो ! वहाँ आकर गरुड ने यह कहा है खगश्रेष्ठ, अनघ ! सभी धर्मों में उत्तम तथा समस्त पाप के नाश करने वाले उस सौर धर्म का विस्तार पूर्वक वर्णन (मुझसे) कीजिए । ३-१

अरुण बोले—वत्स, माधु (बहुत उत्तम) तू महात्मा है, धन्य है, तथा पाप मुक्त है । क्योंकि पुत्र ! उत्तम सौर धर्म के सुनने की तुम्हारी इच्छा है । ६। यह (सौर धर्म) सुख साध्य, एवं महान् फल दायक है अतः सभी धर्मों में परमोत्तम इस सौर धर्म को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! अज्ञान रूपी समुद्रों में डूबने वाले सभी प्राणियों को उस पार पहुँचाने वाला यही श्रीमान् सौर धर्म ही है । ७-८। खग ! भक्ति पूर्वक जो नित्य सूर्य का ध्यान पूजा एवं कीर्तन करते हैं, उन्हें परम पद की प्राप्ति होती है । ९। खगाधिप ! जिसने देवनायक, तथा सहस्र किरण वाले सूर्य का अर्चन नहीं किया, इस लोक में जन्म ग्रहण कर उसने मानों आपने आत्मा का हनन किया है । १०। जरा (बुद्धाई) रूप महाग्राह (मगर), तृष्णा एवं आकुलता रूप तट वाले इस दुःख दायी संसार सागर में चिरकाल से डूबते उत्तराते हुए इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर जो सूर्य की पूजा करते हैं, उन्हीं का जन्म सफल माना जाता है, क्योंकि वे ही श्रेष्ठ पुरुष कृतार्थ होते हैं । ११-१२। सूर्य की भक्ति में निमग्न होकर जो सदैव सूर्य का ध्यान एवं पूजा करते हैं वे कभी भी दुःख का अनुभव नहीं करते हैं । १३। अनेक भाँति के आभूषणों से अलंकृत जो भाँति-भाँति की मनमोहक रूप रंग

विविधानि मनोज्ञानि विविधाभरणा: स्त्रिदः । धनं वा दृष्टपर्यन्तं सूर्यपूजाविधेः फलम् ॥१४
ये वाऽछलन्ति महाभोगान्तरज्यं वा त्रिदशान्तये । सौभाग्यं कान्तिनतुलां भोगं त्यागं यशः
श्रियम् ॥१५

तौदर्यं जगतः स्थातिः कीर्तिर्धर्मदियः स्मृताः । फलान्पेतानि तै पुत्रं सूर्यभक्तिविधेर्बुधः ॥१६
तस्मात्सन्न्यजयेत्सूर्यं सर्वदेवगणार्चितम् । दुर्लभा भास्करे भक्तिर्दुर्लभं च तदर्चनम् ॥१७
दानं च दुर्लभं तस्मै नद्वोमश्च भुदुर्लभः । दुर्लभं तस्य विज्ञानं तदभ्यासोऽपि दुर्लभः ॥१८
सुदुर्लभतरं ज्ञेयं तद्वाराधनमुत्तमम् । लाभस्तेषां मनुष्याणां ये र्द्वि शरणं गताः ॥१९
येषामिहेऽप्ते भानौ नित्यं सूर्ये गतं मनः । ननस्कारादिसंयुक्तं रचिरित्यक्षरद्वयम् ॥२०
जिह्वाये इतर्ते यस्य सफलं तस्य जीवितम् । य एवं पूजयेद्वानुं श्रद्धया परयान्वितः ॥२१
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स नरो नात्र संशयः ॥२१

डाकिन्यो विविधाकारा राक्षसाः सपिशाचकाः । न तस्य पीडां कुर्वति तथान्याश्च दिभीषणाः ॥२२
शद्रवो नाशमायान्ति सङ्घामे जयमाप्नुयात् । न रोगैः पीडयते वीर आपदो न स्पृशन्ति तम् ॥२३
धनमायुर्यरो विद्या प्रभवोद्भवतुलं तथा । सुभेनोपचर्यं यान्ति नित्यं पूर्णमनोरथाः ॥२४

इति श्रीभविष्ये महापुराणे इहो पर्णिणि सप्तमी कल्पे गरुडसंवादे सौरधर्मवर्णनं

नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः । १७३।

वाली स्त्रियाँ और महत्वपूर्ण धन संसार में दिखायी देते हैं, ये सभी विधान पूर्वक की गई सूर्य पूजा के दृष्टफल हैं । १४। जो लोक देवलोक के महान् भोगों के उपभोग, राज्य, सौभाग्य, असाधारण शोभा, भोग, त्याग, यश, श्री, सांनर्द्य, विश्व की स्थाति कीर्ति, एवं धर्म आदि की अभिलाषा करते हैं, जानी पुत्र ये सभी विधान पूर्वक की हुई भक्ति के फल हैं । १५-१६। इसलिए समस्त देवगणों के पूज्य सूर्य की पूजा अदश्य करनी चाहिए क्योंकि सूर्य की भक्ति एवं उनकी पूजा अत्यन्त दुर्लभ है स्तु है । १७। उनके लिए दान करना भी दुर्लभ है, तथा उनके लिए हवन करना तो और भी दुर्लभ है और उनका विज्ञान एवं अस्यास भी दुर्लभ है । १८। उनकी उत्तम आराधना तो अत्यन्त दुर्लभ है जिसने मनुष्यों को सूर्य की शरण प्राप्त है, वही उन लोगों का लाभ है । १९। जिन लोगों के मन ननस्कारादि पूर्वक किरण वाले, उस ईश्वर सूर्य में लीन हैं, और जिह्वा के अग्रभाग पर सदैव रवि यह दो अक्षर वर्तमान रहत है, उन्हीं का जीवन सफल है । इस प्रकार जो अत्यन्त श्रद्धालु होकर सूर्य की पूजा करता है, वह मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । इसमें सदैह नहीं डाकिनी, भाँति-भाँति के आकार वाले राक्षस तथा पिशाच गण उसे पीड़ा नहीं पहुँचा सकते हैं । एवं अन्य भीषण शरीर वाले भी पीड़ा नहीं कर पाते संग्राम में शत्रुओं के नाश पूर्वक विजय प्राप्त होती है, वीर ! रोग की पीड़ा एवं आपत्तियाँ उसका स्पर्श तक नहीं कर सकती हैं । और धन, आयु, यश, विद्या, असाधारण प्रभाव ये सभी उस शुभ कर्म द्वारा प्राप्त होते हैं तथा नित्य मनोरथों की सफलता भी प्राप्त होती है । २०-२४

श्री भविष्य पुराण में इहो पर्णवे के सप्तमी कल्प के गरुडाण संवाद में सौर धर्म वर्णन
नामक एक सौ तिहतरवाँ अध्याय समाप्त । १७३।

अथ चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यस्तुतिवर्णनम्

अरुण उवाच

पूजयित्वा रविं भस्त्वा दृष्ट्वा ब्रह्मत्वमागतः । विष्णुतं चापि देवेशो विष्णुराप तदर्चनात् ॥१
 शङ्करोऽपि जनस्तमः पूजयित्वा दिवाकरम् । महादेवत्वमग्नस्तत्प्रसादात्मगालिपि ॥२
 लहूःजोऽपि देवेश इन्द्रो भानुं तस्मोऽपहम् । इन्द्रत्वमलःद्वेषं पूजयित्वा दिवाकरम् ॥३
 भास्त्रो देवस्तथाः पिशाचोरगाराक्षाः । पूजयित्ति सदा भानुशीशानं सुरनायकम् ॥४
 सर्वमेतज्जगश्चित्यं भानी देवे प्रतिष्ठितम् । तस्मात्समूजयेद्वानुं य इच्छेत्सर्वर्गमक्षयम् ॥५
 यो न पूजयते सूर्यं भास्त्रं तस्मसूदनम् । धर्मर्थ्यकामसोक्षाणां न नरो भाजनं भवेत् ॥६
 तस्मात्कार्यं हि तद्यथानं यावज्जीवं प्रतिज्ञया । अर्चेत तदा भानुमापश्चोऽपि सदा द्वग् ॥७
 गस्तु सन्तिष्ठते नित्यं दिना सूर्यस्य पूजनात् । वरं प्राणपरित्यागः शिरस्ते दाय च्छेदनम् ॥८
 सूर्यं सभूज्य भृजीत त्रिदशेषां दिवाकरम् । इत्थं निर्वहते यस्य दावज्जीवं तदर्चनम् ॥९
 न तुष्यद्वर्णेणा नदः स रविनात्रि संशयः ॥१०

अध्याय १७४

सूर्यस्तुति वर्णन

अरुण उवाच—सूर्य की पूजा करके दृष्ट्वा ब्रह्मत्व, तथा देव नायक विष्णु ने विष्णुत्व धर्म की प्राप्ति की है । १। स्वामी ! जगत् के स्वामी शंकर ने सूर्य कीही पूजा करके उनकी प्रसन्नता बहु महादेवत्व धर्म की प्राप्ति की है । २। तथा सहस्र आँख वाले देवेश इन्द्र ने भी अन्धकार के नाशक सूर्य की पूजा करके इन्द्रत्व की प्राप्ति की है । इस प्रकार मातृकाएँ, देव, गन्धर्व, पिशाच, नाग, एवं राक्षस लोग ईशान तथा सुराधिपति सूर्य की सदैव पूजा करते हैं । ३-४। यह समस्त विश्व सूर्य देव में नित्य स्थित हैं, अतः स्वर्ग के इच्छुकों को चाहिए की सूर्य की पूजा अवश्य करें । ५। जो तमनाशक भास्त्रं भास्त्र की पूजा नहीं करता है, वह पुरुष धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का अधिकारी कभी नहीं हो सकता । ६। खग ! इसलिए समस्त जीवन में प्रतिज्ञावद्व होकर उनका ध्यान करना चाहिए तथा आपत्तिकाल में भी सदैव उनकी पूजा करें । ७। जो सूर्य की पूजा बिना किये समय व्यतीत करता है शिर काटने के द्वारा अथवा यों ही प्राण त्याग करना उससे कहीं अच्छा है । ८। देवेण दिवाकर की पूजा करके जो भोजन करता है और इसी प्रकार उनकी पूजा में यदि समस्त जीवन निभाता है तो मनुष्य नहीं प्रत्युत मनुष्य के चमड़े से बंधा हुआ सूर्य है, इसमें संदेह नहीं । ९। सूर्य की पूजा करने के अतिरिक्त किसी भी द्वारा अधिक पुण्य प्राप्त नहीं हो सकता है, ऐसा समझकर सूर्य की पूजा अवश्य करो । नित्य सूर्य की पूजा करने वाले एवं संयमी सूर्य भक्त के आने पर धर्म सम्पन्न होते हैं । १०-११। सभी प्रकार के दृढ़ दुःखों का सहन करने वाले,

सूर्येशक्तागमाश्रेव सूर्याच्चनपरायणाः । संयता धर्षसम्पन्ना धर्मदीन्साधयन्ति ते ॥११
सर्वद्वृत्तसहा वीरा नीतिविद्युत्तचेतसः । परोपकारनिरता गुरुशुश्रूषणे रताः ॥१२
अमानिनो बुद्धिमत्तोऽव्यत्तस्पर्था गतस्पृहाः । शान्ता स्वान्तगतः भद्रा नित्यं स्वागतवादिनः ॥१३
स्वल्पवाचः सुमनसः सूरा: शास्त्रविशारदवाः । शौचाक्षारसुसम्पन्ना दयादाक्षिण्यगोवरा: ॥१४
दम्भमत्सरनिर्मुक्तस्तृष्णालोभविवर्जितः । संविभागपराः प्रोक्ता न शठाश्राप्यकुत्सिताः ॥१५
दिष्येष्वपि निर्लेपाः पद्मपत्रमिवाम्भसा । न हीना ज्ञानिनश्रेव न च रोगवशानुग्राः ॥१६
भवन्ति भावितात्मानः मुनिंधा: सामुसेविताः । न पाणिपाववाक्यः श्रोत्रशिव्वनोदरे रताः ॥१७
चपलानि न फुर्वन्ति सर्वव्यासद्वग्वाजिताः । सूर्यासनरताः शान्ताः षडक्षरमनोगताः ॥१८
इत्याच्चरसमयुक्ता भवन्ति भुवि भानवाः । एकान्तभृत्तिमास्थाय धर्मकामार्थसिद्धये ॥१९
धूजनीयो रविन्नित्यं नुैवेतेषु वतते । सर्वेषांस्व चात्राणामतिपात्रं दिवाकरः ॥
पतन्तं त्राणते यस्मादतीव नरकार्णवात् ॥२०

तस्य पात्रातिपात्रस्य माहात्म्यं ज्ञानमण्डपि । अनेन फलमादिष्वमिहूलोके परत्र च ॥२१
द्रव्येणापि हि यः कुर्यान्नरः कर्म तदालये । सोऽपि देहक्षये ज्ञानं प्राप्य शान्तिमवास्त्रयात् ॥२२
सर्वद्विजकदम्बेषु कश्चिज्ज्ञानमवास्त्रयात् । कश्चिद्वेतत्तु मे दिव्यं लब्ध्वा ज्ञानं विमुच्चति ॥२३
तावद्भ्रमन्ति संसारे दुःखशोकपरिप्लुताः । न भवन्ति रवेर्भक्ता यावत्सर्वेऽपि देहिनः ॥२४

वीर, नीतिविधान के अनुसरण करने वाले, परोपकारी, गुरु की सेवा करने वाले, मान हीन, बुद्धिमान् कोथ काम के अतिरिक्त किसी से भी स्पर्धा न करने वाले, शान्ति, आत्मा में रमण करने वाले, कल्पाण मूर्ति, नित्य सुस्वागत कहने वाले, सत्यवादी, शुद्धचित्तवाले, शूर शास्त्र कुशल, पवित्रता एवं प्रचार से सुसम्पन्न, दया, दाक्षिण्य (चातुर्य) पूर्ण, दंभ मत्सर हीन, तृष्णा लोभ के त्यागी, शठता हीन अनिन्दित, जल में कमल पत्र की भाँति विषयों से निर्लिप्त, दीन एवं मान रहित, और आरोग्य एवं साधुओं के संसर्ग में रहकर कोमल चित्त एवं उदार प्रकृति के वे हो जाते हैं । पुनः कभी भी हांथ, पैर, वाणी, आँखें, कानों, तथा शिशन एवं पेट के लिए अनुरक्त नहीं होते हैं । १२-१७ इतर सभी लोगों के संपर्क से दूर रहते हैं एवं चंचलता नहीं करते किन्तु सूर्य के आसन में अनुरक्त रहकर शांत तथा षडक्षर का जप किया करते हैं । १८ धर्म, अर्थ एवं काम की सफलता के लिए सूर्य की एकांत भक्ति करने वाले इस प्रकार के आचार सम्पन्न मनुष्य इस भूतल में होते रहते हैं । १९ पूज्य सूर्य में ये सभी गुण सदैव वर्तमान रहते हैं क्योंकि सभी पात्रों से सूर्य उत्तम पात्र बताये गये हैं । गिरे हुए नरक सागर से जो भली भाँति निकाल कर बचा ले वही अतिपात्र कहा जाता है । उस अतिपात्र सूर्य के माहात्म्य का दान लेश मात्र भी किया जाये तो उसी द्वारा ये समस्त फल लोक परलोक में प्राप्त होते रहते हैं । जो उनके मन्दिर में द्रव्य द्वारा कर्म करता रहता है, उसे मरणानन्तर ज्ञान एवं शांति प्राप्त होती है । २०-२१ सभी द्विज समूहों में किसी को ज्ञान की प्राप्ति होती है, और कोई मेरे दिव्य ज्ञान की प्राप्ति करके इस (संसार) का त्याग करता है । २३ सभी प्राणी जब तक सूर्य की भक्ति अपनाते नहीं तब तक इस संसार में दुःख शोक में लिप्त होकर धूमते रहते

सूर्यस्यालेपनं पुण्यं द्विगुणं चन्दनस्य तु : चन्दनादगुरौ ज्ञेयं पुष्टमष्टगुणोत्तरम् ॥२५
 कृष्णागुरौ विशेषेण द्विगुणं फलमिष्यते । तत्स्माच्छतगुणं पुण्यं कुद्कुमस्य विधीयते ॥२६
 सूर्ययज्ञोपकरणं कृत्वाल्पं यदि वा बहु । भावाद्वितानुसारेण सूर्यलोके महीयते ॥२७
 यदपोष्टमनिष्टं च न्यायेनोभयनागतम् । तत्सूर्याय निवेद्यं सदूक्त्यानन्तफलार्थिता ॥२८
 कर्मशाठधेन यः कुर्याद्वेनापि तदर्चनम् । सोऽपि द्विजो दिवं याति कर्मणा पापवर्जितः ॥२९
 तर्वर्मन्यत्परित्यज्य सूर्ये चैकमनाः सदा । सूर्यपूजाविर्धि कुर्यादि इच्छेच्छेय आत्मनः ॥३०
 त्वरितं जीवितं याति त्वरितं यौवनं तथा । त्वरितं व्याधिरप्येति तस्माक्षित्यं रविं व्रजेत् ॥३१
 यावश्नास्येति भरणं यावश्नाकमते जरा । यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावद्विचेहिवाकरम् ॥३२
 न सूर्याच्चनतुल्योऽपि न धर्मोऽन्यो जगत्त्रये । इत्यं विज्ञाय देवेशं पूजयस्व दिवारकम् ॥३३
 ये भक्त्या देवदेवेशं सूर्यं शान्तमजं प्रभुम् । इह लोके सुखं प्राप्य ते गतः परमं पदम् ॥३४
 गोपांतं पूजयित्वा तु प्रहस्तेनान्तरात्मना । कृताञ्जलिपुटो भूत्वा पुरा ब्रह्मा ज्वीदिदम् ॥३५

ब्रह्मोवाच

भगवन्तं भगकरं शान्तचित्तमनुत्तमम् । देवमार्गप्रणेतारं प्रणतोऽस्मि रविं सदा ॥३६

है । २४। सूर्य का लेपन करना पुण्यकारक होता है, चन्दन के लेप से उससे दुगुना पुण्य, और चन्दन से अगुरु द्वारा उससे आठ गुना पुण्य प्राप्त होता है । २५। विशेषकर काले अगुरु से दुगुने फल प्राप्त होते हैं, और उससे सौगुने फल कुद्कुम द्वारा प्राप्त होते हैं । २६। सूर्य-ज्ञ के लिए अपने भाव एवं धन के अनुसार विस्तृत अथवा अल्प ही संभार करने से सूर्य लोक में सम्मान प्राप्त होता है । २७। न्याय पूर्वक प्रिय क्षत्रिय ! जिस किसी (वस्तु) की प्राप्ति हो जाय, अनन्त फल के इच्छुकों चाहिए कि उसे सद्भक्ति पूर्वक सूर्य के लिए समर्पित करे । २८। कर्म की शठता वश यदि कोई दुःखी अवस्था में भी उनकी पूजा करता है, उसी कर्म द्वारा वह द्विज पापमुक्त होकर स्वर्ण की प्राप्ति करता है । २९। अपने हित की कामना वाले को सभी कुछ के परित्याग पूर्वक एकार्पचित्त होकर विधान द्वारा सूर्य की पूजा करनी चाहिए । ३०। यह मनुष्य जीवन शीघ्र समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार युवावस्था भी शीघ्र चली जाती है । व्याधि भी इसी शरीर में शीघ्र उत्पन्न हो जाते हैं, इसलिए अपने सूर्य सन्निधान के लिए नित्य तैयार रहना चाहिए । ३१। जब तक मरण धर्म बुढापे का आक्रमण एवं इन्द्रियों की विफलता न प्राप्त हो तब तक दिवाकर की पूजा करनी चाहिए । ३२। तीनों लोकों में सूर्य पूजा के समान कोई अन्य धर्म नहीं है, ऐसा समझकर देवनायक सूर्य की पूजा करो । ३३। जो देवाधिदेव, शांत, अजन्मा, एवं प्रभु सूर्य की पूजा करता है, उसे इस संसार के समस्त सुख की प्राप्ति पूर्वक उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है । ३४। प्राचीन समय में ब्रह्मा ने हर्षातिरिक प्राप्त कर सूर्य की पूजा समाप्ति के अनन्तर हाथ जोड़कर इसे स्तुति रूप में कहा था— । ३५

ब्रह्मा बोले—भग, शांत चित्त वाले सर्वश्रेष्ठ, एवं देवमार्ग के प्रणेता उस सूर्य को मैं सदैव नमस्कार

शाश्वत शोभनं शुद्धं चित्रभानुं दिवस्पतिश् । देवदेवेशमीरोषं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥३७
 सर्वदुःखहरं देवं सर्वदुःखहरं रविश् । वराननं घराङ्गं च वरस्थानं वरप्रदम् ॥३८
 वरेण्यं वरदं नित्यं प्रणतोऽस्मि विभावसुम् । अर्कमर्यमण्डं चेन्द्रं विष्णुसीशं दिवाकरम् ॥३९
 देवेशरं देवरतं प्रणतोऽस्मि विभावसुम् । य हं शृणुयाक्षित्यं ज्ञाणोक्तं स्तदं परम् ॥
 स हि कीति परतं प्राप्य पुनः सूर्यपुरं ब्रजेत् ॥४०

इति श्रीमविष्ण्वे महापुराणे ब्राह्मणं पर्वणि सप्तमीकल्पे गरुडागृहसंवादे सूर्यस्तुतिर्नाम
 ब्रह्मसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७४॥

अथ पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्याग्निकर्मवर्णनम्

गरुड उवाच

सर्वरोगहता ये तु आधिव्याधिसमन्विताः । ग्रहोपघार्त्तर्वदिवैरदिता ये च मानवाः ॥१
 अरिष्ठः पीडिता ये च विनायकहताश्र ये : कर्तव्यं कि भवतेषामात्मनः श्रेयसेऽनध ॥२

अरुण उवाच

नानारोगहतानां तु अर्दितानां तथारिष्ठः । आदित्याराधनं भुक्त्वा नान्यच्छ्रेयस्करं परम् ॥३

करता हूँ । शाश्वत, सौन्दर्यपूर्ण, शुद्ध, चित्रभानु, दिवस्पति, देवाधिदेव और ईश के ईश उस दिवाकर को
 मैं प्रणाम करता हूँ ॥३६-३७। समस्त दुःखनाशक, देव, सर्वदुःख का अपहरण करने वाले, सूर्य, सौन्दर्यपूर्ण
 मुख उत्तम अंग, उत्तम स्थान, वर प्राप्यायक, वरेण्य, तथा वरदानी, विभावसु को प्रणाम है । अर्क, अर्यमा,
 इन्द्र, विष्णु, ईश, दिवाकर, देवेशर एवं देवानुरक्त उस विभावसु को प्रणाम है । जो कोई ब्रह्मा द्वारा की
 गई इस प्रकार की उत्तम स्तुति का पाठ नित्य करता एवं सुनता है उसे उत्तम यश की प्राप्ति पूर्वक सूर्य
 लोक की प्राप्ति होती है ॥३८-४०

श्रीभविष्णुपुराण में ब्राह्मण पर्व के सप्तमी कल्प के गरुडागरुण संवाद में सूर्य स्तुति वर्णन
 नामक एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय समाप्त ॥१७४॥

अध्याय १७५

सूर्याग्निकर्म का वर्णन

गरुड बोले—हे अनध ! जो मनुष्य शारीरिक-मानसिक व्याधियों से ग्रस्त होने के नाते समस्त
 रोगों द्वारा नष्ट प्राय अरिष्ठ ग्रहों द्वारा भाँति-भाँति के उपधातों से पीडित, शत्रुओं से दुर्दशाग्रस्त, एवं
 विघ्नविनायक द्वारा मरणासन्न हो रहे हैं, उन्हें अपने कल्याणार्थ किस कर्तव्य का पालन करना चाहिए
 आप इसे बताने की कृपा करें ॥१-२

अरुण बोले—भाँति-भाँति के रोगों एवं शत्रुओं से पीडित मनुष्यों के लिए सूर्य की आराधना के

तस्मादाराधयेश्चित्यं सर्वरोगचिवनाशनम् । प्रहोपथातहन्तारं राजोपद्वचनाशनम् !!४

गरुड उवाच

सर्वपत्रविहीनं मे सर्वरोगचिवर्जितम् । शापेन ब्रह्मवादिन्याः पश्याइगं द्विजसत्तम ॥५
एवं भृत्य मे तात एकं कार्यमवशिष्यते । येनाहं कर्मणा कलशे भवेयं पत्रवान्पुनः ॥६
तन्मे शूहि खगश्रेष्ठं प्रपञ्चस्य खगाधिपं । यत्कृत्वा कल्पतां प्राप्य प्रजयामि दिवाकरम् ॥७

अरुण उवाच

पूजयस्व जगन्नाथं भास्करं तिमिरापहम् । सूर्याप्तिकार्यं सततं शुद्धचित्तः समचर ॥८
महाशान्तिकरं स्थातं सर्वोपद्वचनाशनम् । प्रहोपथतहन्तारं शुभकार्यकरं परम् ॥९

गरुड उवाच

नाहं शत्कोऽस्मि दै कर्तुं पूजां दिनकरस्य च । न चाप्तिकार्यं शस्त्रोमि कर्तुं विकलतां गतः ॥१०
तस्मान्मे कुरु शान्त्यर्थमप्तिकार्यं खगाधिपं । नहाशान्तिरिति स्थातं शान्तये मम मुहूर्त ॥११

अरुण उवाच

एवमेव यदात्य त्वं बैनतेय खगाधिपं । अकल्पस्त्वं न शस्त्रोषि महाव्याधिप्रपीडितः ॥१२
अहं करोमि ते पुत्रं शान्तये पावकार्चनम् । यत्कृतं मम चार्केंगं पुरा शान्तिदमादरात् ॥१३

अतिरिक्त अन्य कोई उपाय उत्तम कल्याणप्रद नहीं है । ३। इसलिए समस्त रोगों के नाशक, ग्रहों के उपचातों एवं राजा जनित उपद्रवों के विनाशक उस सूर्य की नित्य आराधना करनी चाहिए । ४।

गरुड ने कहा—हे द्विजसत्तम ! मेरे अंग को देखो ब्रह्मवादिनी के शाश्वत से मेरे सभी पत्र (पंख) नष्ट हो गये हैं, इसीलिए मैं सर्वरोगहीन भी हूँ । तात ! मुझ ऐसे मतवाले के लिए कुछ करना क्या अब भी अवशिष्ट है ? खगश्रेष्ठ ! कोई ऐसा उपाय बताने की छप्पा करें जिससे मैं पहले की शांति पुनः पांखों आदि से परिस्रूप हो जाऊँ और पूर्व की भाँति अंग सम्पन्न होकर दिवाकर की पूजा कर सकूँ । खगाधिप ! मैं आप की शरण आया हूँ । ५-७

अरुण बोले—जगन्नाथ, अन्धकार नाशक भास्कर की पूजा करो । शुद्धचित्त होकर सूर्य पूजन एवं अग्नि स्पायन आदि कार्य निरन्तर किया करो जो महाशान्तिकारक, स्थात, समस्त उपद्रवनाशक, ग्रहों के उपचातों के हन्ता, तथा उत्तम शुभकार्य करने वाले हैं । ८-९

गरुड ने कहा—मैं दिनकर की पूजा करने में असमर्थ हूँ, और विकल होने के नाते अग्नि कार्य भी सम्पन्न नहीं कर सकता । अतः खगाधिप ! मेरी शांति के लिए अग्नि कार्य एवं सुव्रत ! उस विस्थात महाशांति का अनुष्ठान भी आप सुसम्पन्न करें । १०-११

अरुण बोले—खगाधिप, बैनतेय ! तुम्हारा कहना सर्वथा उचित हैं क्योंकि अंगहीन एवं महान रोग ग्रस्त होने के कारण तुमसे उस कार्य का होना सर्वथा असम्भव है । १२। अतः पुत्र ! तुम्हारी शांति के निमित्त मैं ही वह अग्नि पूजन करने जा रहा हूँ, जिसे प्राचीन समय में सूर्य ने सादर मुझे बताया था, वह

सर्वगापहरं पुण्यं महाविघ्निनाशनम् : महोदयं शान्तिकरं लक्ष्मीहोमविद्यि^१ स्मृतम् ॥१४
 अपमृत्युहरं वीरं सर्वव्याधिहरं परम् । परचक्रम्भस्थर्न सदाचिजयवर्धन ॥१५
 त्रिपतिं सर्वदेवानां भास्करप्रियमुत्तमम् : आप्नेयां दिग्गि तिप्याय स्थिण्डलं गोमयेन तु ॥१६
 देवालयस्य विधिवत्कुर्यादप्रिप्रदोधनम् । महाव्याहृतिस्त्रिवीरं लक्ष्मीहोमं समाप्तरेत् ॥१७
 मूर्खवः स्वरितिस्वाहा इष्टदेवे न समन्वितम् : अरक्षवेद्यरूपाय रक्ताकाय महात्मने ॥१८
 धराधराद शान्ताय सहक्षात्किशिराय च ॥१९
 अधोमुखाय इष्टाय स्वाहा पूर्वाहृति शृजेत । चतुर्मुखाय शान्ताय पद्मासनगताय च ॥२०
 पद्मवर्णाय देवाद कमण्डलुधराय च । द्वितीयोर्व्यभुजायेह स्वाहाकाराहृति शृजेत ॥२१
 हेमवर्णाय देहाय ऐरावतगताय च । सहक्षात्काशरीराय पूर्वदिश्युन्मुखाय च ॥२२
 देवाधिपाय नेन्द्राय विहृताय शुभाय च । स्वाहाकारं चोत्सुजेदेव तृतीयवदनाय च ॥२३
 दीप्ताय व्यक्तदेहाय ज्वालाम्बलाकुलाय च । इन्द्रनीसामदेहाय सर्वारोग्यकराय च ॥२४
 यमाय धर्मराजाय दक्षिणाशामुखाय च । कृष्णाम्बरधरायेह स्वाहाहृतिमनुसृजेत् ॥२५
 नीलजीमूर्तवणाय रक्ताम्बरधराय च । मुक्ताक्षलशरीराय पिंगाक्षाय महात्मने ॥२६
 शुक्लवस्त्राय पीताय दिव्यपाशधराय च । स्वाहाकाराय च तथा पश्चिनाभिमुखाय च ॥२७

वही शांति प्रदायक, समस्त पापों का अपहरण करने वाला, पुण्य, महाविघ्निनाशक, महान् अम्बुदयकारक, तथा शांतकारी है, उस कार्य के निमित्त लक्ष आहुति डालने का विधान बताया गया है । वीर ! अपमृत्यु एवं समस्त व्याधियों का नाशक, शत्रु के चक्र का मन्यन करने वाला, सदैव विजय वर्धक सभी देवों के तृप्ति कारक वह भास्कर को अन्यन्त प्रिय है । मंदिर के आगेय दिशा में ऊँची देवी को गोबर से लीप कर उसमें विधान पूर्वक अग्नि स्थापन करके वीर ! महाव्याहृतियों द्वारा उसमें लक्ष आहुति डालनी चाहिए । १-३-१७: पूर्वाभिमुख होकर, 'ओं भू र्भवः स्वाहा' इस आहुति के पश्चात् सर्वाङ्ग रक्तवर्ण वाले, रक्तनेत्र, महात्मा, धराधर, शान्त, सहस्र आँख एवं शिर वाले, अष्टोमुख, एवं इतेव वर्ण के लिए यह आहुति है, चतुर्मुख, शांत, पपासन पर स्थित, कमल वर्ण, कमण्डलु धारण करने वाले एवं द्वितीय ऊर्ध्व मुख वाले बहावा के लिए यह आहुति है, कनक वर्ण, देह, ऐरावत पर स्थित, सहस्र आँख की शरीर वाले, पूर्व दिशा की ओर उन्मुख रहने वाले देवनायक, विहस्त तथा शुभ, ऐसे इन्द्र के लिए यह आहुति है । देव ! तृतीय मुख वाले, दीप्त, व्यक्त देह, ज्वालारूपी माला से घिरे, इन्द्रनील, के समान आभा पूर्ण देह वाले, सभी भाँति आरोग्य करने वाले, दक्षिण दिशा की ओर मुख वाले, एवं कृष्ण वस्त्र धारण किये यम तथा धर्मराज के लिए यह आहुति है, नील मेघ के समान रंग वाले, रक्ताम्बर धारी, मोती के समान शरीर वाले, पिंगाक्ष, महात्मा, शुक्ल वस्त्र, पीत, दिव्यास्त्र पाश धारण करने वाले एवं पश्चिमाभिमुख वाले के लिए यह आहुति है, कृष्ण एवं पिंगल नेत्र, वायाव्याभिमुख, नीलध्वज, वीर, इन्द्र, वेद तथा पवन के लिए

लक्षसंख्यापरिच्छन्नो होमविधिर्यत्र तत्पावकार्चनमहं करोमीति त्रयोदशचतुर्दशपञ्चदशषोडश-
 श्लोकानामेकत्रान्वयः ।

कृत्तिपिङ्गलनेत्राय वायव्यानिमुखाय च । नीलष्वजाय दीराय तथा चेन्नाय वेघसे ॥२८
 स्वाहेति पवनायेह आहुतिं द्वोत्सूजेद्बुधः । गदाहस्ताय सूर्याय चित्रव्लग्भूषणाय च ॥२९
 महोदराय शान्ताय द्वाहाधिष्ठयते तथा । उत्तराभिमुखायेह महादेवप्रियाय च ॥३०
 भेताय श्वेतवर्णाय चित्राक्षय महात्मने । शान्ताय शान्तरूपाय पिनाकवरधारिणे ॥३१
 ईशानाभिमुखायेह दद्यादीशाय चाहुत्तिम् । विषुजेत्तगार्ड्वैल चिधिवच्छ्रेयसेऽनन्ध ॥३२
 एवं देवं महात्मानं पावकं विधिवत्तग ! अहेविति तु यत्कार्यं तत्संरं लगासत्तम ॥३३
 स्लक्षहूमं च दिग्प्रिवकृत्वा शान्तिकमाचरेत् । भ्रूर्भुवःस्वरिति स्वाहा स्लक्षहूमविधिः त्वर्तः ॥३४
 नहाहोमे च वै सौर एष एद धिधिः परः । कृत्वेवमप्रिकार्थं तु भोजको भास्त्वराय वै ॥३५
 शान्त्यर्थं सर्वं लोकानां ततः शान्तिकमाचरेत् । सिन्दूरासनरक्तानः रक्तपश्चाभलोचनः ॥३६
 सहस्रकिरणो देवः सप्ताद्वरथवाहनः । यम्भस्तिमाली भगवान्सवेदवनमस्तुतः ॥३७
 करोतु ते महाशान्तिं प्रहयीडानिवारिणीम् । त्रिचक्रस्त्रमारुद अपां सारमदं तु यः ॥३८
 दशाभ्ववाहनो देव आत्रेयश्चाभृतस्त्रवः । शीतांशुरमृतत्तमा च स्पृष्टिद्विसमन्वितः ॥
 सोमः सौम्येन भावेन ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥३९
 पथरागनिमो भौमो मधुपिङ्गलतलोचनः । अङ्गारकोऽप्रिसदृशो ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥४०
 पुष्परागनिभेनेह देहेन परिपिङ्गलः । पीतमाल्याम्बरधरो बुधः पीडां व्यपोहतु ॥४१

यह, आहुति है, गदाहस्त, सूर्य, चित्रविचित्र की मालाओं से सुसज्जित शांत महोदर, स्वाहाधिष्ठि, उत्तराभिमुख, महादेव प्रिय, श्वेत, श्वेतवर्ण, चित्राक्ष, महात्मा, शांत, शांतरूप, उत्तम पिनाक धारी, और ईशानाभिमुख उस ईश के लिए यह आहुति है। इस प्रकार प्रत्येक नाम के अंत में 'स्वाहा' पद के उच्चारण पूर्वक आहुति डालता जाये। स्वगशार्ड्वैल ! विधानपूर्वक इन आहुतियों के त्यतग्ने से उसका कल्याण निश्चित होता है। १८-३२। अनंथ, लग, ! इस प्रकार महात्मा पावक देव का विधान पूर्वक किया गया अर्चना रूपी कार्य सौ कार्य कहलाता है, स्वगमत्तम ! विधानपूर्वक इस लक्ष आहुति वाले हवन को सुसम्पन्न करके शांति कार्य आरम्भ होना चाहिए। 'भ्रूर्भुवः स्वरिति स्वाहा' इसी से लक्ष आहुति वाले हवन का विधान सम्पन्न करना बताया गया है। ३३-३४। इस प्रकार के सौर महाहवन में यही विधान उत्तम कहा गया है। भोजक इस भाँति सूर्य के लिए अग्नि कार्य सुसम्पन्न करके समस्त लोकों के शांति की लिए शांति कर्म का आरम्भ करे—सिन्दूर के आसन की भाँति रक्त वर्ण की आभा, रक्तकमल के समान नेत्र, सहस्र किरण वाले, सात अश्व जुते हुए रथ, किरण रूपी माला धारी, एवं समस्त देवों द्वारा नमस्कृत। इस प्रकार के भगवान् (सूर्य) तुम्हें ग्रहपीड़ा से मुक्ति कर महाशांति प्रदान करें। तीन चक्रके वाले रथ पर स्थित, जल के तात्त्विक रूप, दश अश्व वाहने, देव आत्रेय, अमृतस्नान करने वाले, शीत किरण, अमृतमय, तथा अथ एवं वृद्धि युक्त, ऐसे सोम (चन्द्र) देव ! सौम्य भाव से तुम्हारी ग्रहपीड़ा निवारण करें। ३५-३९। पथरागमणि के समान वर्ण वाले, भीम, मधु की भाँति पिंगल नेत्र, अंगारक, अग्नि सदृश, ऐसे मंगल देव ग्रहपीड़ा का अपहरण करें। ४०। पुष्पराग के समान देह के कारण आपाद पिंगल, और पीत माला एवं पीत वस्त्र धारण करने वाले बुध तुम्हारी पीड़ा शांत करें। ४१।

तप्तगैरिकसंकःशः सर्वशास्त्रविशारदः । स्वदेवगुरुविप्रो द्वयवर्णवदो मुनिः ॥४२
बृहस्पतिरिति ख्यात अर्थशास्त्रपत्रश्च यः । शान्तेन चेतसा सोऽपि परेज मुसमाहितः ॥४३
ग्रहपीडां विनिर्जित्य करोतु तब शान्तिकम् । सूर्यार्चनपरो नित्यं प्रसादाद्भूत्करस्य तु ॥४४
हिमकुन्डेन्दुवर्णभो दैत्यदानवपूजितः । महेश्वरस्तो धीमान्महासौरो महामतिः ॥४५
सूर्यार्चनपरो नित्यं शुक्लः शुद्धलिङ्गभस्तदा । नीतिशास्त्रपरो नित्यं ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥४६
नात्नारूपघटोऽव्यक्त अविज्ञातगतिश्च यः । नोत्पत्तिर्जिपते यस्य नोदयनोडितरपि ॥४७
एकचूलो द्विचूलश्च त्रिशिलः पञ्चचूलकः । सहस्रशिररूपस्तु चन्द्रकेतुरिव स्थितः ॥४८
सूर्यपुत्रोऽपिपुत्रस्तु ब्रह्मविष्णुगिरात्मकः । अनेकशिल्हरः केतुः स ते पीडां अथोहतु ॥४९
एते ग्रहा ग्रहाःस्मानः सूर्यार्चनपराः सदा । शान्तिं कुर्वन्तु ते हृष्टाः सदाकालं हितेक्षणाः ॥५०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वतिः सप्तमीकल्पे सौरधर्मेणु

सूर्यापिकर्मणि पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः । १७५।

अथ षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

सुमन्तुरवाच

पश्चासनः पश्चवर्णः पश्चपत्रनिभेषणः । कमण्डुषुधरः श्रीमान्देवगन्धर्वपूजितः ॥१

तप्त सुवर्ण के समान वर्ण, समस्त शास्त्र कुशल, समस्त देवों के गुरु, ब्राह्मण, उत्तम अर्थवर्ण गोत्री, मुनि, बृहस्पति नाम से विल्ल्यात, अर्थशास्त्र निष्णात, ऐसे गुलदेव अति शांत चित्त एवं समाधिस्थ होकर नित्य सूर्य की पूजा करते हैं, अतः भास्कर की प्रसन्नता वश तुम्हारी ग्रह पीडा दूर कर शांति प्रदान करें । ४२-४४। बर्फ कुन्दपुष्प एवं चन्द्र की भाँति वर्ण, दैत्य तथा दानव द्वारा पूजित, महेश्वर, धीमान, महान् सूर्यभक्त, महाबुद्धिमान्, शुक्लवर्ण, नीतिशास्त्र कुशली, एवं नित्य सूर्य की पूजा करने वाले शुक्लदेव नित्यग्रहपीडा का अपहरण करें। भाँति-भाँति के रूप धारण करने वाले, व्यक्त, अविज्ञात गति वाले, उत्पलन कालीन पीडा से पीडित होने पर भी अनुत्पल्न ही रहने वाले, एक चूडा, दो चूडा, तीन शिखाएँ एवं पाँच चूडा वाले, सहस्रशिर रूप वाले, चन्द्र केतु की भाँति स्थित होने वाले, सूर्य तुव, अग्नि पुत्र, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव रूप वाले, एवं अनेक शिखर वाले, ऐसे केतु (देव) तुम्हारी पीडा दूर करें । ४५-४९। ये सभी ग्रह महान् आत्मा वाले सदेव सूर्य-पूजन करते रहते हैं अतः प्रसन्न होकर सर्वथा हित की कामना से कारणिक नेत्रों से देखते हुए सूर्य तुम्हें शांति प्रदान करें । ५०

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मवर्प के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में सूर्यपीडित कर्म (वर्णन)

नामक एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । १७५।

अध्याय १७६

सौरधर्म वर्णन

सुमन्तु बोले—कमल का आसन, कमल वर्ण, कमल पत्र के समान नेत्र, कमण्डलु धारी, श्रीसम्पन्न,

चतुर्मुखो देवपतिः सूर्यार्द्धनपरः सदा । मुरज्यैष्ठो महत्तेजाः सर्वलोकप्रजापतिः ॥
 ब्रह्मशब्देन दिव्येन ब्रह्मा शान्तिं करोतु ते ॥२
 पीताम्बरधरो देव आदेयीदयितः सदा । शङ्खचक्रगदापाणिर्माधवो मधुसूदनः ॥३
 यज्ञेहः क्रमो देव आदेयीदयितः सदा । शङ्खचक्रगदापाणिर्माधवो मधुसूदनः ॥४
 सूर्यभक्तनित्यो नित्यं विगतिं दगतश्चयः । सूर्यपृथग्ननपरो नित्यं विष्णुः शान्तिं करोतु ते ॥५
 शशिकुन्दन्तुसकाशो दिशुतामरणीरिह । चतुर्मुखो शहतेजाः पुत्त्वार्थद्वृत्तरोखरः ॥६
 चतुर्मुखो भस्मधरः उत्तरालनित्यः सदा । गोत्रार्थिवनिलयस्तदा य ऋतुदूषणः ॥७
 वर्ते इतेष्यो वरदो देवदेवो महेश्वरः । अवित्यवेहसंनुतः स ते शान्तिं करान्तु वै ॥८
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मणे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मर्घु

षट्काण्पत्त्वार्थिकशततमोऽध्यायः । १७६।

अथ सप्तसप्तत्वार्थिकशततमोऽध्यायः अग्निकार्यविधिवर्णनम्

अरुण उवाच

पश्चरागप्रभा देवी चतुर्वदनपश्चक्ष्मा । अङ्गमालार्पितकरा कमण्डलुधरा शुभा ॥१
 ब्रह्मणी सौम्यवदना आदित्याराघ्ने रता । शान्तिं करोतु मुप्रीता आशीर्वादिपरा त्वग ॥२

देवों एवं गन्धवौं द्वारा पूजित, चतुर्मुख, देवनायक, सदैव सूर्य पूजक, देवों में ज्येष्ठ, महातेजस्वी, समस्त लोकों के प्रजापति, एवं दिव्य ब्रह्म शब्द से विश्यात, ऐसे ब्रह्मा तुम्हें शांति प्रदान करें। पीताम्बर धारी, देव, आत्रेयी वल्लभ, शंख, चक्र एवं गदा धारण करने वाले, श्यामवर्ण, चतुर्मुख, यज्ञसूपी देह, क्रम रूप, सदैव आत्रेयी प्रिय, शंख, चक्र गदाधारी, माधव, मधुसूदन, सूर्यभक्त, गति हीन एवं तीनों से शून्य, इस प्रकार के सूर्य ध्यान परायण विष्णु तुम्हें नित्य शांति प्रदान करें । १-५। चन्द्र, कुन्द, एवं इन्दु के समान कान्ति, कर्ण कुण्डल विश्रृष्टित, चतुर्मुख, महातेजस्वी, पुष्पों से शिर के अर्ध भाग को अलङ्कृत करने वाले, चतुर्मुख, भस्मांगभूषित, इमशान रूप गृह में सदैव रहने वाले, पर्वत शङ्कु, विश्वनिलय, ऋतुदूषण, उत्तम, वरेष्य, वरद तथा आदित्य से उत्पन्न, ऐसे देवाधिदेव महेश्वर तुम्हें शांति प्रदान करें । ६-८

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मणे पर्व के सप्तमी कल्प में सौर धर्म वर्णन नामक

एक सी छिह्नतर्वा अध्याय समाप्त । १७६।

अध्याय १७७ अग्निकार्यविधि का वर्णन

अहम बोले—त्वग ! पश्चरागमणि की भाँति प्रभा पूर्ण, देवी, कमल की भाँति चार मुख वाली, हाथ में अशमाला लिए, कमण्डल धारिणी शुभात्मक, प्रसन्नचित होकर आदित्य की आराधना में निमग्न रहने वाली, अरवन्त प्रसन्न मूर्ति, एवं आशीर्वाद परायण ब्रह्माणी तुम्हें शांत करें । १-२ महाश्वेता नाम से स्वाति

महाश्वेतेति विल्पाता आदित्यदयिता सदा । हिमकुन्देन्दुसदृशा महावृषभवाहिनी ॥३
 त्रिशूलहस्तावरणा विश्रुताभरणा सती । चतुर्भुजा चतुर्वैक्षवा त्रिनेत्रा पापनाशिनी ॥
 वृषभवजार्चनरता रुद्राणी शान्तिदा भक्षेत् ॥४

मयूरवाहना देवी सिन्धुराहणविग्रहा । शत्लहस्ता महाकामा सर्वालङ्कारमूषिता ॥५
 भूर्यभत्ता भहादीर्या सूर्यर्चनरता सदा । कौमुदी वरदा देवी शान्तिमाशु करोतु ते ॥६
 गवाचक्षरथा इयामा पीताम्बरथरा उग । चतुर्भुजा हि जा देवी वैष्णवी मुरपूजिता ॥७
 सूर्यर्चनपरा नित्यं भूर्यकल्पनयनसा । शान्तिं करोतु ते नित्यं लक्ष्मिसुरविमर्दिनी ॥८
 ऐरावतगाजारुदा वज्रहस्ता महावला । सर्वप्रलोचना देवी दर्शतः कर्वुरारुणा ॥९
 सिद्धगन्धर्वनमिता सर्वालङ्कारमूषिता । इन्द्राणी ते सदा देवी शान्तिमाशु करोतु वै ॥१०
 वराहघोणा विकटा वराहम्बरवाहिनी । श्यामाभवाता या देवी शङ्खचक्रगदाधरा ॥११
 तेजयन्ती निमिषान्पूजदन्ति सदा इविम् । वाराही वरदा देवी तत्र शान्तिं करोतु वै ॥१२
 अर्धकोशा कटीकामा निर्मासः स्नायुद्यन्धनात् । करालथदना घोरा खड्गगद्योदगता ॥१३
 कपालमालिनी कूरा खट्टाइगवरथारिणी । आरक्षता पिङ्गनयना गजचर्मादिगुणिता ॥१४
 गोश्रुतानरणा देवी प्रेतस्थाननिवासिनी । शिवारुपेण घोरेण शिवरूपभयङ्करी ॥
 चामुण्डा चण्डरूपेण सदा शान्तिं करोतु ते ॥१५

प्राप्त, सदैव आदित्य की प्रिया, हिम, कुंद तथा इन्दु, के समान रूपरंग, महावृषभ वाहिनी, हाथों में त्रिशूल लिए, कान में कुण्डलों से विभूषित, चार भुजाएँ, चार मुख एवं तीन नेत्रों वाली, पापनाशिनी, महावृषभ-ध्वज के अर्चन करने में सदैव मग्न, इस प्रकार की रुद्राणी तुम्हें शांति प्रदान करे । ३-४। मयूर वाहन वाली देवी, सिद्धरूप की भाँति रक्त वर्ण वाली, हाथ में शक्ति लिए, विशाल देह, समस्त अलकारों से विभूषित, भूर्य भत्ता, महापराक्रम शालिनी, सदैव सूर्य पूजा में अनुरक्त, ऐसी वरदायिनी कौमारी (देवी), तुम्हें शीघ्र शांति प्रदान करें । ५-६। उग ! गदा एवं चक्र धारण करने वाली, इयामा, पीताम्बरधारिणी, चारभुजा वाली देवी वैष्णवी, जो देवपूजित सूर्य में ध्यान मग्न हो कर उनकी पूजा करने वाली। जो समस्त असुरों का मर्दन करती है, तुम्हें नित्य शांति प्रदान करें । ७-८। ऐरावत हाथी प्ररस्ति, हाथ में वज्र लिए, महाबलशालिनी, चारों आँख वाली, चित्र एवं रक्त वर्ण वाली, मिद्र, तथा गन्धर्वों से वन्दित, सर्वाभिरण भूषित, ऐसी इन्द्राणी देवी सदैव तुम्हें शीघ्र शांति प्रदान करती रहें । ९-१०। वराह की भाँति नासिका, भाषण, उत्तम वराह रूप वाहन वाली, शुद्ध इयाम वर्ण, शांख, चक्र एवं गदा धारण करने वाली, निमिषों को तेजस्वी करने वाली, सदैव सूर्य पूजा में अनुरक्त रहने वाली, एवं वरदायिनी ऐसी वाराही देवी तुम्हारी शांति करें । ११-१२। अर्ध कोश एवं क्षीण कटि वाली, केवल स्नायुम् से बंधे हुए के नाते मांसहीन, तलवारों को लिए, घोर, खड्ग तथा धंटा युक्त, कपाल की माला पहने, कूर, उत्तम खट्टवांग धारण करने वाली रक्त वर्ण, पिंगल नेत्र वाली, हाथी के चमड़े से अवगुणित, कर्ण कुण्डल भूषित, प्रेतस्थान की निवासिनी, तथा घोर शिवारूप और भयकर शिवरूप धारिणी, ऐसी चामुण्डा देवी चंड रूप होकर सदैव

चण्डमुण्डकरा देवी मुण्डदेहगता सती । कपालमासिनी कूरा खट्टाइगवरधारिणी ॥१६
 आकाशमातरो देव्यस्तथान्या लोकमातरः । भूतानां मातरः सर्वास्तथान्याः पितृमातरः ॥१७
 वृद्धिश्राद्धेषु पूज्यन्ते यास्तु देव्यो मनीषिणिः । मात्रे प्रमत्रे तम्भत्रे हति मातृमुखास्तथा ॥१८
 पितामही तु तन्माता वृद्धा या च पितामही । इत्पेतास्तु चितामहृः शान्तिं ते पितृमातरः ॥१९
 सर्वा मातृप्रहर्वद्यः स्त्रायुधाल्पयपाणयः । जगदुद्धर्य प्रतिष्ठन्तयो बलिकामा महोदयाः ॥२०
 शान्तिं कुर्वन्तु तां नित्यमादित्याराधने रताः । शान्तेन देवतां शान्त्यः शान्तये तवं शान्तिर्दा ॥२१
 सर्वादियशमुख्येन गत्रेण च सुमध्यमा : पीतश्यालः तिसौम्येन स्तिर्घवर्णेन शोभना ॥२२
 ललाटतिलकोपेता चन्द्ररेखार्धयारिणी । चित्तास्त्वरधरा देवी सर्वाभिरणमूर्चिता ॥२३
 ददा स्त्रीमयरूपाणां शोभा गुणसुसम्पदा । भावनामात्रसम्मुच्छा उमा देवी ददप्रदा ॥२४
 साक्षात्दात्य रूपेण शान्तेनामिततेजसा । शान्तिं करोतु ते प्रोता आदित्याराधने रता ॥२५
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ज्ञाहे पर्वणि सप्तसौकल्ये दशमुखे अग्निकर्त्तविधौ
 सप्तसप्तत्पद्धिः शततमोऽध्यायः । १७७।

अथाष्टसप्तत्पद्धिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

अरुण उवाच

अबलो बालरूपेण स्त्रिवाद्गर्शिलिवाहनः । पूर्वेण वदनः श्रीमांस्त्रिवाशः शक्तिसंयुतः ॥१

तुम्हें शांति प्रदान करें । १३-१५। जो चंड, मुण्ड को हाथ में लिए एवं मुण्ड के देह में व्याप्त हैं । आकाश मातृकाएँ अन्य लोक मातृकाएँ, भूतमातृकाएँ, पितृमातृकाएँ, वृद्धि श्राद्ध में मनीषियों द्वारा पूजित होने वाली माता, प्रमाता, एवं वृद्धप्रमाता रूप प्रधान मातृकाएँ, पितामही, प्रिपितामही, तथा वृद्धपितामही ये पितृ मातृकाएँ तुम्हें शांति प्रदान करें । १६-१९। समस्त मातृ महादेवियाँ हांथों से अपने तीक्षण अस्त्रों को लिए बलिग्रहण एवं महान् अभ्युदय करने के लिए जगत् में व्याप्त होकर प्रतिष्ठित हैं । २०। आदित्य की आराधना में अनुरत्त रहने वाली, एवं शांति स्वरूप वे देवियाँ शांत चित्त से तुम्हें शांतिदायक हों । २१। समस्त उत्तम अंगों एवं सौन्दर्य पूर्ण मध्यम भाग (कटि) वाले, पीत, श्यामल एवं अति सौम्य मनमोहन रूप रंग के कारण सौन्दर्य पूर्ण, भाल में तिलक एवं चन्द्रधर्ष की रेखा को धारण किये, चित्र विचित्र के वस्त्र तथा समस्त अनभ्रणों से सुशोभित, स्त्रियों में परम सुन्दरी, शोभासम्पन्न, गुणपूर्ण, भावनां मात्र से संतुष्ट होने वाली आदित्य की आराधना में रत ऐसी वरप्रदायिनी उमादेवी साक्षात् आकर अपने अजेय तेज एवं शांतिरूप से प्रसन्न होकर तुम्हें शांति प्रदान करें । २२-२५

श्रीभविष्यमहापुराण में द्राह्मणर्व के सप्तमी कल्प में दशमुख अग्नि कार्य विधान वर्णन
 नामक एक सौ सतहनरवाँ अध्याय समाप्त । १७७।

अध्याय १७८

सौरधर्म का वर्णन

अरुण बोले—बालरूप से बलहीन, खट्टवांग एवं मयूर वाहन वाले पूर्वाभिमुख, धीमान्, तीन शिखा

कृत्तिकायाश्च रुद्रस्य चाण्गोदृशूरः सुरार्चितः । कार्तिकेयो महातेजा अदित्यवरर्द्धितः ॥
 शान्तिं करोतु ते नित्यं बलं सौर्यं च तेजसा ॥२
 आत्रेयीबलवान्वेव आरोग्यं च खगाधिप । श्वेतवस्त्रपरीधानस्त्रयसः कनकसुप्रभः ॥३
 शूलहस्तो महाप्राज्ञो नन्दीशो रविभावितः । शान्तिं करोतु ते शान्तो धर्मे च मतिमुत्तमाम् ॥४
 धर्मतेरगवुभौ नित्यमह्लः सम्प्रयच्छुतु । महोदरो महाकायः स्त्रियाऽन्तर्मनःप्रभः ॥५
 एकदंष्ट्रोत्कटो देवो गजवक्षो महाबलः । नागयज्ञेष्वीतेन नानाभ्रणदूषितः ॥६
 सर्वार्थसम्पदोद्धारो गणाश्यको वरप्रशः । नीमस्य तनयो देवो नादकोऽय विनायकः ॥
 करोतु ते नहाशान्तिं भास्करार्चनतत्परः ॥७
 इन्द्रनीलनिभस्त्रयसो दीनशूलायुधोद्यतः । रक्षाम्बरधरः श्रीमान्कृष्णाङ्गो नागभूषणः ॥८
 पापापनोदमतुलमलक्ष्यो मलनाशनः । करोतु ते महाशान्तिं प्रीतः प्रीतेन चेत्सा ॥९
 वराम्बरधरा कन्या नानालङ्कारमूषिता । त्रिदशानां च जननी पुण्या सोकनमस्कृता ॥१०
 सर्वसिद्धिकरा देवी ग्रसादपरभास्यदा । शान्तिं करोतु ते माता भुवनस्य खगाधिप ॥११
 हिन्दूश्यामेन वर्णेन महामहिषमर्दनी । धनुश्क्रप्रहरणा लडगपट्टिशाधारिणी ॥१२
 आतर्जन्यायतकरा सर्वोपद्रवनाशिनी । शान्तिं करोतु ते दुर्गा भवानी च शिवा तथा ॥१३
 अतिसूक्ष्मो हृतिक्रोधस्त्रयसो भृद्विग्गरित्महान् । सूर्यात्मको महावीरः सूर्येकगतमानसः ॥

शक्ति सम्पन्न, कृत्तिकाओं और रुद्र द्वारा उत्पन्न, देव-चरित्र तथा आदित्य के वर प्रदान से मानपूर्ण, ऐसे महान्तेजस्वी कार्तिकेय अपनें तेज द्वारा नित्यं सौर्यं एवं बल प्रदान करते हुए तुम्हें शांति प्रदान करें । १-२। खगाधिप ! आत्रेयी (अत्रि के पुत्र), बलवान्, श्वेत वस्त्र धारण करने वाले, श्यम्बक, कनक की भाँति कांतिपूर्ण, हाथ में शूल लिए, महाप्राज्ञ, नन्दीश, तथा रविप्रिय, ऐसे शान्त स्वरूप शिव, उत्तम धार्मिक बुद्धि, आरोग्य, एवं शांति प्रदान करें । तथा धर्म के अतिरिक्त आरोग्य एवं शांति तो अचल होकर नित्य किया करें । महान उदर वाले, विशालकाय, मनोरम अंजन के समान कांतियुक्त, एक दाँत वाले, उत्कट, गजमुख, महाबली, नागयज्ञ के उपवीत (यज्ञोपवीत), एवं भाँति-भाँति के आभरणों से सुसज्जित, समस्त अर्थ संपत्तियों के उद्धारक, गणों के अध्यक्ष, वरदायक एवं शिव के पुत्र देवनायक विनायक देव भास्कर की पूजा में तत्पर रहते हुए तुम्हे महाशांति प्रदान करें । इन्द्रनील की भाँति प्रभापूर्ण, तीन नेत्र वाले, प्रदीप्त शूल अस्त्र लिए रक्ताम्बरधारी, श्रीमान्, कृष्णांग, नागभूषण भूषित, अतुलपापों के नाशक, अदृश्य, मलनाशक, ऐसे देव प्रसन्नता पूर्ण चित्त से तुम्हें महाशांति प्रदान करें । ३-९। सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित कन्या, भाँति-भाँति के अलंकारों से अलंकृत, देवों को उत्पन्न करने वाली, पुण्यस्वरूप, लोकों की वन्दनीया, सर्वसिद्धिदायिनी, लोकमाता, प्रसन्नतारूप उत्तमस्थान स्थित ऐसी देवी तुम्हें शांति प्रदान करें । १०-१। मनमोहक श्यामल वर्ण वाली, महामहिष का मर्दन करने वाली, धनुष, चक्र, लड्ग एवं पट्टिश अस्त्र धारण करने वाली तर्जनी तक हांथ फैलाकर समस्त उपद्रवों के नाश करने वाली दुर्गा एवं शिव भवानी तुम्हें शांति प्रदानकरें । १२-१३। अतिसूक्ष्म, अतिकृद, तीन नेत्र वाले, सूर्यात्मक, महावीर, सूर्य ध्याननिमग्न, सूर्य की भक्ति करने वाले

सूर्यमत्किकरो नित्यं शिवं ते सम्प्रयच्छतु	॥१४
प्रचण्डगणसैन्येशो महाघटाक्षधारकः । अक्षमालार्पितकरश्चाक्षचण्डेश्वरो ब्रह्म ॥१५	
चण्डपात्तहरो नित्यं ब्रह्महत्याविनाशनः । शान्तिं करोतु ते नित्यमादित्याराधने रतः ॥	
करोति च महायोगी कल्याणानां परम्पराम्	॥१६
आकाशमातारो दिव्यास्तथात्या देवमातरः । सूर्यदिव्यपरा देव्यो जगद्व्याप्त्य व्यदस्त्यिताः ॥	
शान्तिं कुर्वन्तु मे नित्यं मातरः नुरपूजिताः	॥१७
ये रुद्रा रौद्रकर्मणो रौद्रस्थानिवासिनः । मातरो रुद्ररूपाश्च गणानांमधिपाश्च ये ॥१८	
विघ्नभूतास्तथा चत्त्वे दिविदिक्षु समाश्रिताः । सर्वे ते प्रीतमनसः प्रातेनृहृष्टु मे बलिम् ॥	
सिद्धिं कुर्वन्तु ते नित्यं भयेष्यः पत्तु सर्वतः	॥१९
ऐन्द्रादयो गणा ये च बज्रहस्ता महाबलाः । हिमकुद्देन्दुसदृशा नीलकृष्णाङ्गलोहिताः ॥२०	
दिव्यान्तरिक्षा भौमश्च पातालतत्तवासिनः । ऐन्द्रः शान्तिं प्रकुर्वन्तु भद्राणि च पुनः पुनः ॥२१	
आग्रेष्यां ये भूताः सर्वे ध्रुवहत्यानुषड्हिगणः । द्युर्यानुरक्षता रक्ताभा जपामुमनिभास्तथा ॥२२	
दिक्तलोहिता दिव्या आग्रेष्यां भास्करादयः । आदित्याराधनपरा आदित्यगतमनसाः ॥२३	
शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं प्रयच्छन्तु च बलिं भम । भयाऽदित्यसमाः ^१ ये तु सततं दण्डपाणयः ॥	
आदित्याराधनपरः क प्रयच्छन्तु ते सदा	॥२४

ऐसे महान् देव नन्दिकेश्वर, तुम्हारा नित्य कल्याण करें। १४। प्रचण्ड गणों वाली सेनाओं के अधिनायक, महान् धंटा एवं अक्षमाला धारण करने वाले, हाथ में अक्षमाला लिए ऐसे अक्ष चण्डेश्वर जो प्रचण्ड पापों एवं ब्रह्म हत्या का नित्य विनाश करते हैं, सूर्य की आराधना करते हुए तुम्हें शान्ति एवं महायोगी कल्याणों की अनवरत परम्परा प्रदान करें। १५-१६। आकाश माताएँ, देवैमाताएँ, एवं सूर्य परायण ये देवियाँ जगत् में व्याप्त होकर स्थित हैं, इन्हें देवगण पूजते हैं। ये दयालु हों सुझे शांति प्रदान करें। १७। रुद्ररूप, भीषण कर्म करने वाले, भीषण स्थान के निवासी, एवं माताएँ, गणनायक, तथा विघ्नस्वरूप होकर जो दिशाओं एवं विदिशाओं में स्थित हैं, वे सभी प्रसन्न चित्त होकर इस मेरी बलि को स्वीकार करें और मुझे सिद्धि प्रदान करते हुए नित्य भय से मेरी रक्षा करें। १८-१९। हाथ में वज्र लिए महाबली इन्द्र के गण जो हिम, कुन्द, एवं इन्दु की भाँति कांति वाले, नील कृष्ण, एवं रक्तवर्ण, तथा दिव्य अंतरिक्ष, भूमि एवं पाताल तल में निवास करते हैं, शांतिं प्रदान करते हुए बार बार कल्याण प्रदान करें। आग्नेय दिशा के निवासी ध्रुव की आकस्मिक हत्या की चेष्टा करने वाले, सूर्य में सानुरक्त, रक्त वर्ण, प्रभापूर्ण, जपापुष्प एवं रक्त के समान वर्ण वाले लोहित वर्ण, दिव्य, आग्नेय दिशा में भास्करादि, आवित्य में लीन होकर उनकी पूजा करने वाले, ये सभी देव बलि प्रदान पूर्वक तुम्हें शांति प्रदान करें। आदित्य के समान प्रभापूर्ण एवं हाथ में दण्ड लेकर निरन्तर सूर्य की आराधना करते हुए सदैव तुम्हें सुख प्रदान करें। २०-२४।

१. प्रभयेत्यर्थः ।

ऐशान्यां संस्थिता ये तु प्रशान्ताः शूलपाण्यः । भ्रस्मोद्गुलितदेहाश्र नीलकण्ठा लोहितः ॥२५
दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्र पातालतस्वासिनः । सूर्यपूजाकरा नित्यं पूज्यस्त्वाणुसासिनम् ॥२६
ततः सुप्रीतमनसो लोकपालैः समन्वितः । शान्तिं कुर्वन्तु मे नित्यं कं प्रयच्छन्तु पूजिताः ॥२७
अमरावती पुरी नाम पूर्वभागे व्यवस्थितः । दिग्जाधरगणाकीर्णा तिद्वगन्धवर्सेदिता ॥२८
रत्नप्राकारारुचिरं महारत्नोपशोभिता । तत्र देवपतिः श्रीमान्वज्रपार्गिमहाबलः ॥
गोपतिगांसहस्रेण शोभमनेत शोभते ॥२९

ऐरावतगजारुद्धो गौरिकामो भ्रह्माद्युतिः । देवेन्द्रः सततं हृष्टं आदित्याराधने रतः ॥३०
सूर्यज्ञानैकपरनः सूर्यभक्तिसमन्वितः । सूर्यप्रणामः परद्यां शान्तिं तेऽयं प्रयच्छन्तु ॥३१
आश्वेष्यदिविभागे तु पुरी तेजस्वती घुमा । नानारेवगणाकीर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥३२
तत्र ज्वाला समाकीर्णो दीप्ताइङ्गरसमलुतिः । पुरुगो दहने देवो ज्वलनः पापनाशनः ॥३३
आदित्याराधनरत आदित्यगतमानसः । शान्तिं करोतु ते देवस्तथा पत्परिक्षयम् ॥३४
देवस्वती पुरी रम्या दक्षिणेन महात्मनः । सुरादुरशतकीर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥३५
तत्र कुन्देन्दुसंकाशो हरिप्तिश्चलत्तेजः । महामहिषमारुदः कृष्णक्रमवस्त्रभूषणः ॥३६
अन्तकोऽथ महातेजाः सूर्यधर्मपरायणः । आदित्याराधनपरः शेषारोग्ये ददातु ते ॥३७

ऐशान्य में स्थित होकर अत्यन्त शांत, हाथ में शूल लिए, भ्रस्म भूषित देह, नीलकण्ठ, लोहित वर्ण, दिव्य,
अंतरिक्ष, भ्रगि तथा पाताल तल वासी, सूर्य के पूजक, जो नित्यं सूर्य की पूजा करते हैं, लोकपालों के समेत
वे सभी देव पूजित होने पर शांतिं-सुखं प्रदान करे । २५-२७। पूर्व भाग में अमरावती नामक पुरी स्थित है
उसमें विद्याधरों के गण एवं सिद्ध तथा गन्धवर्णों के गण निवास करते हैं । उनके रत्नों से प्राकार भ्रुसज्जित
है एवं वह महारत्नों से सुशोभित है, वहाँ हाथ में वज्र लिये महाबली हृष्ट अपने सहजं किरणों समेत
देवनायक श्रीमान् सूर्य देव सुशोभित है । ऐरावत हांथी पर बैठ कर जिसकी मुदर्ण की भाँति कान्ति तथा
महान् प्रकाशं पूर्णं होकर देवेन्द्र, प्रसन्नतापूर्वक चित्तं से निरन्तर सूर्य की आराधना में अनुरक्त रहते हैं
उनका सूर्यं ज्ञान ही एक परमोत्तम ज्ञान है वे सूर्यं की भक्ति अपनाकर सूर्यं को प्रणाम करते हुए आज तुम्हें
शांति प्रदान करें । २८-३१। आनेय दिशा में शुभं तेजस्वती नामक पुरी वर्तमान है, उसमें भाँति-भाँति के
देव गणों का आवास स्थान है, एवं पुरी भी अनेक प्रकार के रत्नों से सुशोभित है । उस पुरी में ज्वालाओं से
आच्छन्न एवं प्रदीप्त अंगार के समान प्रभापूर्ण अग्नि देव अधिष्ठित हैं, जो ज्वलनात्मक, पापनाशक सूर्य
की आराधना में तन्मय आदित्य के ध्यान में निमग्न रहते हैं, वे देव शांति प्रदान करते हुए तुम्हारे समस्त
पापों का उन्मूलन करें । ३२-३४। दक्षिण दिशा में महात्मा (यम) की रमणीक वैवस्वती नामक पुरी है,
उसमें सैकड़ों देव-राक्षस निवास करते हैं, और वह स्वयं अनेक रत्नों से विभूषित हैं । उसमें कुंद एवं
इंदु के समान कांति बन्दरों की भाँति पिंगलनेत्र, महान् महिष वाहन पर स्थित, काले वस्त्र एवं
मालाओं से सुसज्जित । महातेजस्वी, सूर्य धर्म का पारायण करने वाले तथा उनकी पूजा में
निमग्न होने वाले अन्तक (यमराज) देव अधिष्ठित हैं, ये तुम्हारे लिए कुशल एवं आरोग्य प्रदान
करें । ३५-३७। नैऋत्य दिशा में कृष्णा नामक पुरी स्थित है, उसमें मोहात्मक राक्षसगण,

नैश्चते दिविभागे तु पुरी कृष्णेति विश्रुता । मोहरक्षेगणःशौचपिशाचप्रेतसङ्कुला ॥३८
 तत्र कुन्दनिसो देवो रक्तज्ञावस्त्रमूषणः । खडगपत्तिर्णमहतेजाः करालददनोज्ज्वलः ॥३९
 रक्षेन्द्रो वसते नित्यमावित्याराधने रतः । करोतु मे सदा शान्तिं धनं धन्यं प्रयच्छतु ॥४०
 पश्चिमे तु दिशे भागे पुरी शुद्धवती सदा । नानाभेगिसमाकीर्णा नानाकिञ्चरसेविता ॥४१
 तत्र कुन्देन्दुसंकाशो हरिपिण्डगलोचनः । शान्तिं करोतु मे प्रीतः शान्तः शान्तेन चेतसा ॥४२
 यशोवती पुरी रम्या ऐशानी दिविभागिता । नदनगणसमाकीर्णा नानकृतशुभालया ॥
 तेजःप्रकारपर्यन्ता अर्नीपम्या सद्वेज्ज्वला ॥४३
 तत्र कुन्देन्दुसंकाशश्वरम्भुजाक्षो विसूचितः । त्रिनेत्रः शान्तलृपत्त्वा अशमाला धराधरः ॥४४
 इशानः परमो देवः सदा शान्तिं प्रयच्छतु ॥४५
 श्वलोके तु मुखलोके निवशन्ति च ये सदा । देवादेवाः शुभायुक्तः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥४५
 महर्लोके जनोलोके परस्तोके गतश्च ये । ते सर्वे मुदिता देवाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥४६
 सरस्वती सूर्यभक्ता शान्तिवा विदधातु मे । चास्त्रामीकरस्था^१ या सरोजकरपत्त्वावा ॥
 सूर्यभक्त्याश्रिता देवी विसूचिते प्रयच्छतु ॥४७
 हरेण सुविद्वित्रेण भास्त्रवत्कनकमेष्वला । अपराजिता सूर्यभक्ता करोतु विजयं तव ॥४८
 इति ब्रीमधिव्ये महापुराणे ब्राह्मणे पर्वणि सप्तमी कल्पे सौरधर्मवर्णनं
 नामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः । १७८।

अशौच पिशाच एवं प्रेतों के समूह भरे पड़े हैं । उसके अधीश्वर रक्षेन्द्र देव वहाँ निवास करते हैं, जो कुन्द के समान प्रभा पूर्णा, रक्तवर्ण की माला एवं वस्त्रों से विभूषित, हाथ में खड्ग लिए, महातेजसम्पन्न, कराल (भीषण) मुख एवं उज्ज्वल वर्ण के हैं । वे नित्य आदित्याराधन में अनुरक्त रहते हैं, मुझे भी सदैव शांति, धन, एवं धान्य प्रदान करते कों द्वाया करें । ३८-४०। पश्चिम दिशा में शुद्धवती नामक पुरी सुशोभित है, उसमें सदैव अनेक प्रकार के भोगी (नाग) एवं अनेक किन्नर गण विहार करते हैं । उसके अधिनायक जो कुन्द एवं इन्दु के समान कांति, बन्दरों की भाँति पिंगल नेत्र वाले हैं, प्रसन्नतापूर्ण तथा शांतचित्त होकर मुझे शांति प्रदान करें । ४१-४२। ऐशान्य दिशा में सौन्दर्य पूर्ण यज्ञोपवीत नामक नामक पुरी स्थित है, जिसमें भाँति-भाँति के गण, अनेक प्रकार के शुभ गृह हैं तथा जो स्वयं तेजपूर्ण आकार-प्राकार, अनुपम, एवं सदैव उज्ज्वल वर्ण की है । उसमें अधिष्ठित परमोत्तम ईशान देव, जो कुन्द तथा इन्दु की भाँति कान्ति, कमल के समान नेत्र, सौन्दर्यपूर्ण, तीन नेत्र, शांतरूप, अक्ष (रुद्र या स्फटिक) की माला धारण किये हैं, सर्वदा शांति प्रदान करें । ४३-४४। भूलोक एवं भुवलोक में सदैव निवास करने वाले देव तथा उससे इतर लोग सदैव तुम्हें शांति प्रदान करें । ४५। महर्लोक, जनलोक एवं परलोक में स्थित वे देवगण प्रसन्नता पूर्ण तुम्हें सदैव शांति प्रदान करते रहें । ४६। सूर्य भक्त एवं शांतिदायिनी सरस्वती देवी मेरे लिए कल्याण प्रदान करें । और ऐश्वर्य भी । जो सौन्दर्यपूर्ण सुवर्ण के सिंहासन में आसीन, कमल की भाँति करपत्त्व (हाथ) से भूषित और सूर्य भक्ति के आश्रित हैं । ४७। वित्र विचित्र हार एवं प्रदीप्त सुवर्ण की मेघला (करधनी) पहने सूर्य भक्त अपराजिता नामक देवी तुम्हें विजय प्रदान करें । ४८

श्री भविष्य भगवान्पुराण में ब्राह्मण पर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म वर्णन नामक
 एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय समाप्त । १७८।

अथैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मवर्णनम्

अरुण उवाच

कृतिका । रमा देवी रोहिणी च वरानना । श्रीमन्मूर्गशिरो भद्रा आद्रा चाप्यपरोन्ज्वला ॥१
 पुनर्वसुस्तश्च पुष्य आस्लेषा च तथाधिष्ठितः । सूर्यचिनरता नित्यं सूर्यभावानुभाविताः ॥२
 अर्चयन्ति सदा दलमाहित्यं सुरते सदा । नक्षत्रसातरो हेतः प्रभामालादिसूचिताः ॥३
 मध्या सर्वगुणेषता पूर्वा चैव तु फाल्गुनी । स्वाती विशाखा वरदा दक्षिणां दिशमाश्रिताः ॥४
 अर्चयन्ति सदा देवमादित्यं सुरपूजितम् । तदापि शातिकं द्वोतं कुर्वन्तु गगनोदिताः ॥५
 अनुराधा तथा ज्येष्ठा मूलं सूर्यपुरस्तराः । पूर्वांशादा महाबीर्या आषाढा चोत्तरा तथा ॥६
 अभिजिन्नाम नक्षत्रं श्रवणं च बहुश्रुतम् । एताः पञ्चमतो दौप्ता राजन्ते चानुमूर्तयः ॥७
 भास्करं पूजयन्त्येताः सर्वकालं सुभाविताः । शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूतिं च महर्द्विकाम् ॥८
 घनिष्ठा शतभिषा तु पूर्वभाद्रपदा तथा ॥९
 उत्तरा भाद्ररेवत्यौ चाश्चिन्नी च भ्रामते । भरणी च भ्रादेवी नित्यमुत्तरतः स्थिताः ॥१०
 सूर्यचिनरता नित्यमादित्यगतमानसाः । शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूतिं च महर्द्विकाम् ॥११
 मेषो मृगाधिष्ठिताः सिंहो धनुर्द्विप्तिमां वरः । पूर्वेण भासयन्त्येते सूर्ययोगपरा: शुभाः ॥

अध्याय १७९

सौरधर्म का वर्णन

अरुण बोले—अधिष्ठित ! उत्तमकृतिका देवी, सौन्दर्य पूर्ण मुख वाली रोहिणी, श्रीमान्, मृगशिरा, भद्र आकृति वाली उज्ज्वल वर्ण को आद्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आस्लेषा, ये सभी नित्य सूर्यपूजा में अनुरक्त एवं सूर्य की ही भावना (प्रेम) में ओतप्रोत रहकर सदैव सूर्य की आराधना किया करते हैं तथा वे नक्षत्र मातृकाएँ भी प्रभा रूपी मालाओं से विभूषित हैं । समस्त गुणसम्पन्न मध्या, पूर्वा, फाल्गुनी, स्वाती, एवं वरदायिनी विशाखा दक्षिण दिशा में स्थित रहकर सुरपूज्य सूर्य देव की सदैव पूजा करते हैं । आकाश में उदय होने वाले ये सभी नक्षत्र-देव तुम्हें शांति सम्मेत प्रकाश पूर्ण करें । १-५ । अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, सूर्य प्रधान पूर्वांशादा तथा महापराक्रमशालिनी उत्तरांशादा, अभिजित् नामक नक्षत्र, एवं प्रस्थात श्रवण, ये सभी देव जो क्रमशः पञ्चम की ओर से प्रकाश पूर्ण तथा सुशोभित होकर उत्तम भावना रखते हुए सभी समय में सूर्य की पूजा करते रहते हैं, तुम्हारे लिए नित्य शांति एवं महान् ऐश्वर्य प्रदान करें । ६-८ । घनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद, उत्तरा भाद्रपद, अश्चिन्नी, तथा महामते ! भरणी महादेवी ये सभी जो नित्य उत्तर की ओर स्थित रहकर सूर्य की पूजा में तन्मय होकर रहती हैं तुम्हें नित्य शांति उत्तम बुद्धि सम्पन्न ऐश्वर्य प्रदान करें । ९-११ । मेष, मृगाधिनायक सिंह तथा तेजस्वियों का उत्तम धनु जो सूर्य के साथ योग करने के लिए तत्पर रहते हैं ये सभी जो पूरब की ओर प्रभापूर्ण भासित

शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं भक्त्या सूर्यपदान्वुजे

॥१२

दृशः कन्या च परमा मकरश्चापि बुद्धिमान् : एते दक्षिणभागे तु पूजयन्ति रथं सदा ॥

भक्त्या परमया नित्यं शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥ १३

मिथुनं च तुला कुम्भः पश्चिमे च व्यवस्थितः । जपन्त्येते सदाकालमादित्यं प्रह्नायकम् ॥१४

शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं खलोल्काज्ञानतप्तराः । रातपोदत्तुष्यां ये स्मृता सततं बृथैः ॥१५

श्वर्षयः सप्त विष्ण्याता ध्रुवान्त्ताः परमोज्ज्वलाः । भानुप्रसाततस्म्पन्नाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥१६

कश्यपे गालबो गार्ग्ये विश्वामित्रो भग्नशुनिः । शुनिर्दक्षो वशिष्ठश्च मार्कण्डः पुलहः क्रतुः ॥१७

नारदो भृगुरात्रेयो भारद्वाजश्च वै मुनिः । वाल्मीकि. कौशिको वात्स्यः शाकल्योऽय पुर्वसुः ॥१८

शःलङ्घकायन इत्येते श्वयोऽय महातपाः । सूर्यव्यानैकपरमा: शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥१९

मुनिकन्या महाभागा श्वशिकन्याः कुमारिकाः । सूर्यचिन्नरता नित्यं शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥२०

सिद्धाः समृद्धतपसो ये चान्ये वै भग्नशुनिः । विद्याधरा भग्नशुनिः गरुडश्च त्वया सह ॥२१

आदित्यपरमा होते आदित्याराधने रत्नाः । सिद्धिं ते सम्प्रथच्छन्तु आशीर्वादपरायणाः ॥२२

नमुचिदंत्यराजेन्द्रः शङ्कुकर्णो भग्नशुनिः । भग्नानाथोऽय विष्ण्यातो दैत्यः परमवीर्यवान् ॥२३

ग्रहाधीपस्य देवस्य नित्यं पूजापरायणाः । बलं वीर्यं च ते श्वद्विमारोग्यं च बुवन्तु ते ॥२४

महादध्यो यो हयग्रीवः प्रह्लादः प्रभयान्वितः । तानैकप्रिमुखो दैत्यः कालनेप्रिमहाबलः ॥२५

एते दैत्या महात्मानः सूर्यभावेन भाविताः । तुष्टिं बलं तथाऽर्जरोग्यं प्रयच्छन्तु मुरारयः ॥२६

होते हैं और नित्य सूर्य के चरण कमल की भक्ति अपनाते रहते हैं, तुम्हें शांति प्रदान करें । वृष, उत्तम कन्या, बुद्धिमान् मकर, ये सब दक्षिण की ओर स्थित रहकर उत्तमा भक्ति पूर्वक सदैव सूर्य की पूजा करते हैं, तुम्हें नित्य शांति प्रदान करें । १२-१३। मिथुन, तुला, और कुंभ परिचम की ओर स्थित होकर सदैव ग्रहाधीश्वर सूर्य की आराधना करते हैं, तुम्हें शांति प्रदान करें, खलोल्क ज्ञान के लिए तत्पर जिन्हें तप पूर्वक दिये गये दो पृथ्वीं द्वारा बुधजन स्मरण करते हैं । १४-१५। विष्ण्यात सातों ऋषि, जो ध्रुव के समीप अत्यन्त उज्ज्वल वर्ण होकर स्थित हैं तथा सूर्य की कृपावश सुसम्पन्न हैं, सदैव तुम्हें शांति प्रदान करें कश्यप, गालव, गार्ग्य, महामुनि विश्वामित्र, दक्ष मुनि, वशिष्ठ, मार्कण्डेय, पुलह, क्रतु, नारद, भृगु, आत्रेय, भारद्वाज मुनि, वाल्मीकि, कौशिक, वात्स्य, शाकल्य, पुर्वसु और शाकलायन, ये महातपस्वी ऋषिगण, परमोत्तम एक सूर्य का ही ध्यान करते रहते हैं ये सदैव तुम्हें शांति प्रदान करें । १६-११। पुष्प स्वरूप मुनि की कन्याएँ ऋषि की कन्याएँ, कुमारियाँ, नित्य सूर्य की उपासना में जो अनुरक्त रहती हैं, सदैव तुम्हें शांति प्रदान करें । २०। तप से समृद्ध सिद्ध, अन्य महातपस्वी, महात्मा विद्याधर, तुम्हारे साथ गरुड़ ये सर्पिण्य आदित्य की आराधना में सदा अनुरक्त एवं आशीर्वाद प्रदान करते हुए तुम्हें सिद्धि प्रदान करें । २१-२२। दैत्य राज नमुचि, महाबली शंकुर्ण, और महानाथ, से उत्तम पराक्रम संपन्न तथा स्वाति प्राप्त दैत्य हैं जो ग्रहाधीश्वर सूर्य देव की नित्यपूजा करते हैं, ये सभी, तुम्हें बल वीर्य, श्वद्विष्ठ एवं आरोग्य प्रदान करें । महान्, हयग्रीव, प्रभापूर्ण प्रह्लाद, अग्निमुख दैत्य, महाबली कालनेमि, ये सभी महात्मा दैत्य गण सूर्य की भावना से मुख रहते हैं, तुम्हें तुष्टि, बल, एवं आरोग्य प्रदान करें । २३-२६।

वेरोचनो हिरण्याकसंुर्वसुश्रु मुलोचनः । मुचकुन्दो मुकुन्दश्च दैत्यो रैवतकस्तथा ॥२७
 प्रावेण परमेण म यजने सततं रविम् । सततं च शुभात्मानः पुष्टि कुर्वन्तु ते सदा ॥२८
 दैत्यपत्न्यो महाभागा दैत्यानां कन्यकाः शुभाः । कुमारा ये च दैत्यानां शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥२९
 आरक्षेन शरीरेण रक्षान्ताप्तसोचनाः । महाभागाः कृताठोपाः शङ्खाद्याः कृतस्तस्माणाः ॥३०
 अनन्तो नागराजेन्द्र आवित्याराधने रतः । महापात्रविषं हत्वा शान्तिमागु करोतु ते ॥३१
 अतिपीतेन देहेन विस्फुरद्बूरोगस्मदा ! तेजसा चातिदीपेन हृतस्वरित्कलाऽऽद्यनः ॥३२
 नागरात् तक्षकः श्रीमाभासकोटिथा समर्त्वितः । करोतु ते महाशान्तिं सर्वदोषविषापहाम् ॥३३
 अतिकृष्णोत वर्णेन स्फुटाधिकटमस्तकः । कण्ठरेतात्रयोरेतो घोरदंष्ट्राधोदतः ॥३४
 कर्कोटके नहानागो विष दर्पबलान्वितः । दिषशस्त्राग्निसन्तापं हत्वा शान्तिं करोतु ते ॥३५
 पश्चवर्णः पश्चकान्तिः फुल्लपथायेत्क्षणः । स्वातः पश्चो महानागो नित्यं भास्करपूजकः ॥३६
 स ते शान्तिं शुभं श्रीघ्रभचलं सम्प्रयच्छतु । श्यामेन देहभारेण श्रीमत्कमलोचनः ॥३७
 विषदर्पद्वलोन्मत्तो ग्रीवायां रेखायन्वितः । शङ्खपालश्रिया दीप्तः सूर्यपादाब्जपूजकः ॥३८
 महाविषं गरमेळं हत्वा शान्तिं करोतु ते । अतिगौरेण देहेन चंद्राधृतशेखरः ॥३९
 दीपमागे हृताटेपशुभलश्चाणलक्षितः । कुलिको नाम नागेन्द्रो नित्यं सूर्यपरायणः ॥
 अपहृत्य विषं घोरं करोतु तव शान्तिकम् ॥४०

वेरोचन, हिरण्याक, कुर्वसु, मुलोचन, मुचकुन्द, मुकुन्द, दैत्य रैवतक, ये सभी अत्यन्त प्रेम पूर्ण हो कर निरन्तर सूर्य की पूजा करते हैं और स्वयं निरन्तर कल्याण सूर्ति भी हैं, सदैव तुम्हारी पुष्टि करते रहें । २७-२८। पुष्टि स्वरूपा दैत्य की पत्नियाँ, उनकी शोभा पूर्ण कन्याएँ एवं कुमारजन सदैव तुम्हें शान्ति प्रदान करते रहें । २९। रक्त वर्ण की समस्त शरीर, रक्तवर्ण के विशाल नेत्र, महान् पुण्यात्मा, शंख आदि लक्षण सम्पन्न नागराजेन्द्र अनन्त जो आदित्य की आराधना में तल्लीन रहते हैं, महापाप रूपी विष के त्याग पूर्वक तुम्हारी शान्ति करें । ३०-३१। जिसकी अत्यन्त पीत वर्ण की देह द्वारा भोग की सम्पत्ति स्फुरित होती रहती है, उस प्रदीप्त तेज से सम्पन्न मांगलिक अंकों से विभूषित सार्थक नाम वाले ऐसे श्रीमान् तक्षक नागराज, समस्त दोष वाले विष का अपहरण करने वाली महाशान्ति तुम्हें प्रदान करें । ३२-३३। अत्यन्त कृष्ण वर्ण के होने के नाते जिसकी कटि और मस्तक स्फुट (साफ) दिखायी नहीं देता है, कण्ठ में तीन रेखाओं से अलंकृत, घोर दंष्ट्रा (दाढ़ के दाँत) रूप आयुध सम्पन्न विष के अभिमान से मत इत प्रकार के महानाग कर्कोटक विषजनित अनि संताप के त्याग पूर्वक तुम्हारी शान्ति करे । ३४-३५। कमल वर्ण, कमल की कान्ति, खिले कमल की भाँति विशाल नेत्र, विल्यात, एवं भारकर के आराधन करने वाले महानाग पद्म तुम्हें शुभ एवं अचल संगीत शीघ्र प्रदान करें। श्यामल रंग की देह से सुशोभित, श्रीमान्, कमल लोचन, विषाभिमान से उन्मत्त रेखा युक्त ग्रीवा, सूर्य के कमल चरण के उपासक, ऐसे श्री सम्पन्न शंखपाल उस प्रक्षर महाविष के नाश पूर्वक तुम्हें शान्ति प्रदान करें। अत्यन्त गौरवर्ण की है, मस्तक में चन्द्राधर्म से शोभित, दीप भाग में विस्तृत शुभ लक्षणों से विभूषित, एवं नित्य सूर्य के पारायण करने वाले ऐसे कुलिक नामक नागेन्द्र घोर विष के अपहरण पूर्वक तुम्हारी शान्ति करें। जो अन्तरिक्ष में

अत्तरिक्षे च ये नागा ये नागा: स्वर्गसंस्थिताः । गिरिकन्द्रदुर्गेषु ये नागा भुवि संस्थिताः ॥४१
पाताले ये स्थिता नागा: सर्वे यत्र समाहिताः । सूर्यपादार्चनासक्ताः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥४२
नागिन्यो नागकन्याश्च तथा नागकुमारकाः । सूर्यभक्ताः सुमनसः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥४३
य इदं नामसंस्थानं कीर्तयेच्छृणुयात्तथा । न तं सर्पा विंहसन्ति न विषं क्रमते सदा ॥४४

इति श्रीभविष्ये नहपुराणे बाहो पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मवर्णनं
नामेकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः । १७९।

अथाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

शान्तिकर्वण्टम्

गङ्गा पुष्या महादेवी यमुना नर्मदा नदी । गौतमी चापि कावेरी वरुणा देविका तथा ॥१
सर्वप्रहर्पति देवं लोकेण लोकनायकम् । पूजयन्ति सदा नद्यः सूर्यसदूतवभाविताः ॥
शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं सूर्यवानैकमनसाः ॥२

निरञ्जना नाम नदी शोणश्रावि महाग्राः । मन्दाकिनी च परमा तथा सम्भ्रहिता शुभा ॥३
एताश्चान्याश्च बहवो भुवि दिव्यन्तरिक्षे । सूर्यार्चनरता नद्यः कुर्वन्तु तव शान्तिकम् ॥४
महावैश्रवणो देवो यक्षराजो महर्षिकः । यक्षकोटिपरीवारो यक्षसङ्ख्येयसंयुतः ॥५

रहने वाले, स्वर्ग में स्थित, पर्वतों के दुर्गम कंदराओं पृथिवी एवं पाताल में रहने वाले सभी नाग ध्यान मन्न होकर सूर्य की आराधना में अनुरक्त रहते हैं वे तुम्हें सदैव शांति प्रदान करते रहे । ३६-४२। नागपतियाँ, नागकन्याएँ एवं उनके कुमार गण शांतचित्त होकर वे सभी सूर्य के भक्त गण सदैव शांति प्रदान करते रहे । जो कोई इस नाम के आस्थान का कीर्तन या ऋषण करते रहते हैं सर्पगण उनकी हिंसा नहीं करते, और उनके विष का संक्रमण भी कभी नहीं होता है । ४३-४४

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में सौरधर्म वर्णन नामक
एक सौ उन्नासीवाँ अध्याय समाप्त । १८१।

अध्याय १८०

शांति का वर्णन

पुण्यरूपा गंगा, महादेवी, यमुना, नर्मदा, गौतमी, कावेरी, वरुणा, देविका ये सभी नदियाँ समस्त ग्रहों के अधीश्वर, देव, लोकपति, लोकनायक सूर्य की आराधना उनके प्रेम में मुख्य होकर करती रहती हैं और सदैव सूर्य के ध्यान में ही निमग्न रहती हैं वे शांति करें । १-२। निरंजना नामक नदी, महानदशोण, उत्तम मन्दाकिनी तथा शुभ एवं सम्भ्रहित रहने वाली अन्य और बहुत सी नदियाँ जो स्वर्ग और अंतरिक्ष में रहकर सूर्य की उपासना में अनुरक्त रहती हैं, तुम्हें शान्ति प्रदान करें । ३-४। यक्षराज महावैश्रवण (कुबेर) देव जो महर्षिपुत्र, यक्ष के कोटि परिवारों समेत, महान् ऐश्वर्यशाली, सूर्य के चरण की सेवा में

महाविभवसम्पन्नः सूर्यपादार्चने रतः । सूर्यध्यानेकपरमः सूर्यभावेन भावितः ॥६
शान्तिं करोतु ते श्रीतः पदपत्रायतक्षणः । मणिभद्रो महायक्षो मणिरत्नविमूषितः ॥७
मनोहरेण हरेण कण्ठलग्नेन राजते । यक्षिणीयक्षकन्याभिः परिवारितविघ्रः ॥
सूर्यार्चनसमाप्तकः करोतु तव शान्तिकम् ॥८

सुचिरो नाम यज्ञेन्द्रो मणिकुण्डलभूषितः । लक्षाटे हेमपटलप्रबद्धेन विराजते ॥९
बहुयक्षसमाकीर्णो यक्षेन्नित्याविघ्रः । सूर्यपूजापरो युक्तः करोतु तद शान्तिकम् ॥१०
दाङ्चिको नाम यज्ञेन्द्रः कण्ठाभरणभूषितः । कुरुकुटेन विचित्रेण द्वुरत्नान्वितेन तु ॥११
यक्षवृन्दसमाकीर्णो यक्षकोटिसमन्वितः । सूर्यार्चनकरः श्रीमान्करोतु तव शान्तिकम् ॥१२
धृतराष्ट्रो महातेजा नानायक्षाधियः खगः । दिव्यपटृः शुक्लच्छत्रो मणिकाञ्चनभूषितः ॥१३
सूर्यभक्तः सूर्यरतः सूर्यपूजापरायणः । सूर्यप्रसादसम्पन्नः करोतु तव शान्तिकम् ॥१४
विरूपाक्षश्च यज्ञेन्द्रः श्वेतवासा महाद्युतिः । नानाकाञ्चनमालाभिरूपशोभितकन्धरः ॥१५
सूर्यपूजापरो भक्तः कञ्जमश्चिभः । तेजसादित्यसंकाशः करोतु तव शान्तिकम् ॥१६
अन्तरिक्षगता यक्षा ये यक्षा त्वर्गामिनः । नानरूपधरा यक्षाः सूर्यभक्ता दृढवताः ॥१७
तद्रूपात्सत्तदगमनसः सूर्यपूजासमुत्सुकाः । शान्तिं कुर्वन्तु ते हृष्टाः शांताः शांतिपरायणाः ॥१८
यक्षिण्यो विविधाकारास्तथा यक्षकुमारकाः । यक्षकन्या महाभागाः सूर्याराधनतत्पराः ॥१९

अनुरक्त, एक सूर्य के उत्तम ध्यान में निमग्न एवं सूर्य की भावना में ओत-प्रोत हैं प्रसन्न होकर तुम्हें शांति प्रदान करें। कमल पत्र की भाँति विशाल नेत्र, मणिरत्नों से विभूषित महायक्ष मणिभद्र, जो कण्ठ में मनोहर हार से सुशोभित, तथा यक्ष की पत्नी, एवं कन्याओं रामेत पवित्र की भाँति उन्हें साथ लेकर सूर्य की पूजा में आसक्त हैं, तुम्हारी शान्ति करें । ५-८। जो मणि कुण्डलों से विभूषित, भाल में सुवर्ण पटल धारण किये अनेक यक्षों से घिरे, यक्षों द्वारा किये गये प्रणाम को स्वीकार करने के लिए न नत मस्तक एवं सूर्य की पूजा में दत्तचित्त हैं ऐसे सुचिर नामक यज्ञेन्द्र तुम्हें शांति प्रदान करें । ९-१०। कण्ठाभरण से अलंकृत जिसमें चिन्द्र विचित्र रत्नों द्वारा मुर्गे बनाये गये हों और स्वयं वह अनेक प्रकार के रत्नों से संयुक्त हो, करोड़ों यक्ष व्यूहों से आच्छब्र, एवं अनेकों यक्षों समेत सूर्य-पूजा में निमग्न रहते हैं, ऐसे श्रीमान् पांचिक नामक यज्ञेन्द्र तुम्हें शांति प्रदान करें । ११-१२। खग ! महातेजा, अनेक यक्षों के अधिनायक, दिव्य (वस्त्र) एवं मणि तथा सुवर्ण से विभूषित शुक्लछत्र को धारण करने वाले, सूर्य भक्त, सूर्य में अनुरक्त, सूर्य पूजा परायण, एवं सूर्य की कृपा के पात्र, ऐसे धृतराष्ट्र नामक यक्ष तुम्हें शांति प्रदान करें । १३-१४। विरूपाक्ष नामक यज्ञेन्द्र, जो इवेत वस्त्र, महान् प्रकाश पूर्ण, भाँति-भाँति की काञ्चन-मालाओं से अलंकृत। कन्ध प्रदेश, सूर्यपूजा परायण, भक्त, कमलनेत्र, कमल सीनदीपपूर्णी और आदित्य के समान तेजस्वी हैं, तुम्हें शान्ति प्रदान करें । १५-१६। अन्तरिक्ष में स्थित यक्ष, स्वर्गीयामी, अनेक रूप धारण करने वाले, सूर्य के भक्त, दृढ ब्रती, सूर्य में भक्ति पूर्वक एकाग्र चित्त वाले, और सूर्य की पूजा के लिए सदैव समुत्सुक रहने वाले, ये सभी यक्ष, हर्ष पूर्ण, शांत, एवं शान्ति परायण होकर तुम्हें शांति प्रदाने करें । १७-१८। अनेक प्रकार के आकार वाली उनकी पत्नियाँ, उनके कुमार, एवं उनकी पुण्य स्वरूप

शान्तिं स्वस्त्ययनं क्षेमं बलं कल्याणमुत्तमम् । सिद्धिं चाशु प्रयच्छन्तु नित्यं च मुसमाहिताः ॥२०
 पर्वतः सर्वतः सर्वे वृक्षाश्रेव महाद्विकाः । सूर्यभक्ताः सदा सर्वे शार्न्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥२१
 सागराः सर्वतः सर्वे गृहारण्यानि हृत्स्नागः । सूर्यस्याराधनपराः कुर्वन्तु तव शार्न्तिकम् ॥२२
 राजसाः सर्वतः सर्वे धोरण्या महाबलाः । स्थलजा राजक्षा ये तु अन्तरिक्षगताश्च ये ॥२३
 रातासे राजसा ये तु नित्यं सूर्यर्लिते रताः । शार्न्ति कुर्वन्तु ते सर्वे तेजसा नित्यदीपिताः ॥२४
 प्रेताः प्रेतगाणाः सर्वे ये प्रेताः सर्वतोमुखाः । अतिदीप्ताश्च ये प्रेता ये प्रेताः रुधिराशनाः ॥२५
 अन्तरिक्षे च ये प्रेतस्तथा ये स्वर्गाद्वासिनः । पाताले भूतले द्यायि ये प्रेताः कामरूपिणः ॥२६
 एकचक्रो रथो यस्य यस्तु देवो वृषभजः । तेजसा तस्य देवस्य शार्न्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥२७
 ये पिशाचा महावीर्या वृद्धिमन्तो महाबलाः । नानारूपधराः सर्वे सर्वे च गुणदत्तराः ॥२८
 अन्तरिक्षे पिशाचा ये स्तर्णे ये च महाबलाः पाताले भूतले ये च बहुरूपा मनोजवाः ॥२९
 यस्याहुं सारथिर्यार यस्य त्वं तुरुगः सदा । तेजसा तस्य देवस्य शार्न्ति कुर्वन्तु तेऽञ्जसा ॥३०
 अपस्नारहणः सर्वे सर्वे चापि ज्वरघणः । दे च स्वर्गस्थिताः सर्वे भूमिगा ये द्वाहोत्तमाः ॥३१
 पाताले तु ग्रहा ये च ये ग्रहाः सर्वतो गताः । दक्षिणे किरणे यस्य सूर्यस्य च स्थितो हरिः ॥३२
 हरो यस्य सदा दोषे ललाटे कञ्जजः स्थितः । तेजसा तस्य देवस्य शार्न्ति कुर्वन्तु ते सदा ॥३३
 इति देवादयः सर्वे सूर्ययनविधायिनः । कुर्वन्तु जगतः शार्न्ति सूर्यभक्तेषु सर्वदा ॥३४

कन्याएँ, जो सूर्य की आराधना में सदैव तत्पर रहती हैं, ध्यानावस्थित होकर, शांति, स्वस्त्ययन (मंगल), क्षेम, बल, उत्तम कल्याण, तथा आशु (शीघ्र) सिद्धि नित्य प्रदान किया करें। १९-२०। साङ्गोपाङ्ग पर्वत, एवं महान् कृद्वि संपन्न सभी वृक्ष, सूर्य भक्त होते हुए सदैव शांति प्रदान करें। सभी समुद्र, सग्गूर्ण गृह एवं अरण्य, सूर्य की आराधना में अनुरक्त होने के नाते तुम्हें शांति प्रदान करें। २१-२२। भीषण रूप एवं महान् बल शाली राजस गण, जो भ्रूमि, अन्तरिक्ष एवं पाताल के निवासी हैं, नित्य सूर्य की अर्चना में अनुरक्त रहने के नाते उनके तेज द्वारा प्रदीप्त रहते हैं तुम्हें शांति प्रदान करें। २३-२४। प्रेत एवं सभी प्रेतगण, जो सर्वतोमुख (चारों ओर मुख वाले), अति प्रदीप्त, रक्तभोजी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, भूतल तथा पाताल में निवास करते हैं, स्वेच्छा रूप धारण करते रहते हैं, एक चक्रके के रथ वाले और प्रधान वृषभज उस (सूर्य) देव की उपासना करते हैं, उस देव के तेज द्वारा तुम्हें शांति प्रदान करें। २५-२७। महापाराक्रमी, वृद्धिसम्पन्न, महाबली, भाँति-भाँति के रूप धारण करने वाले, उत्तम गुणों से युक्त अंतरिक्ष, स्वर्ग, पाताल एवं पृथिवी में अनेक रूप धारण करके मन की भाँति द्रुतगामी होने वाले ऐसे पिशाच गण उस देव के तेज द्वारा वीर ! मैं जिसका सारथी और तू तुरुग (धोड़े की भाँति वाहन) है, तुम्हें शीघ्र शांति प्रदान करें। २८-२९। अपस्मार (मृगी) के ग्रह, समस्त ज्वर के ग्रह, स्वर्ग और भ्रूमि में रहने वाले उत्तम ग्रह, पाताल स्थायी ग्रह, तथा सर्वत्र प्राप्त होने वाले ग्रह, ऐसे ग्रहणगण उस देव के तेज द्वारा, जिस सूर्य के दक्षिण किरण में हरि, बायं हर एवं ललाट में बहा स्थित हैं, सदैव तुम्हें शांति प्रदान करें। ३१-३३। इस प्रकार सूर्य-ज्ञ के विधान के आरम्भ करने वाले समस्त देव आदि गण, जगत् एवं सूर्य भक्तों की सदैव

ज्यःसूर्याय देवाय तमोहन्ते विवस्वते । जगप्रदाय सूर्याय भास्कराय नमोस्तु ते ॥३५
 पहोतस्य देवाय जयः कल्याणकारिणे । जयः पश्चिमाशाय बुधरूपाय ते नमः॥३६
 जयः दीप्तिदिधानाय जयः शान्तिविधायिने । तमोऽन्नाय जयायैव अजिताय नमोनमः ॥३७
 जयार्क जयदीप्तीश सहस्रकिरणोऽन्नत । जय निर्मितलोकस्त्वमजिताय नमोनमः ॥३८
 गायत्रीदेहरूपाय सावित्रीदयिताय च । धराधराय भूर्याय मार्तण्डाय नमोनमः ॥३९

सुभन्तुरुद्वाच

एवं हि कुर्वतः शान्तिमरणस्य महीपते । श्रेयसे वैलोमस्य गरुडस्य महात्मनः ॥४०
 एतसिश्वे काले दु सुर्पः पत्रदानश्चूत् । तेजता बुधसंकाशो बलेन हरिणः समः ॥४१
 सम्पूर्णायिवो राजन्यथापूर्वं तथाभवत् । प्रसादादेवदेवस्य भास्करस्य महात्मनः ॥४२
 एवमन्येऽपि राजेन्द्र मानवा ये च रेणिणः । अस्मिन्कृतेऽप्रिकार्ये तु विरुजास्ते भवन्ति हि ॥

तस्माद्यतेन कर्तव्यप्रिकार्यं विधानतः ॥४३

करणीयं च राजेन्द्र मानवैश्च प्ररोगिभिः । अस्मिन्कृते अप्रिकार्ये विरुजास्ते भवन्ति हि ॥४४
 ग्रहोपघाते दुर्भक्ष उत्पातेषु च कृत्प्रशः । अवर्षमाणे पर्जन्ये लक्ष्मोमसमन्वितः ॥४५
 पूजयित्वा प्रसूकं तु ध्यात्वा वीरं प्रयत्नतः । वाराणीश्च तथा सूक्तैर्होमं कुर्यादिचक्षणः ॥४६
 चेतसा सुप्रसन्नेन सपिष्ठा मधुना सह । तित्तर्यैश्च सहितैः पायसं मधुना तथा ॥४७
 इवं च शान्तिकं कुर्याद्विलं दद्यात्प्रयत्नतः । एवं कृते त्रियं देवा वर्षन्ते कामना नृणाम् ॥४८

शाति करें । ३४। तमनाशक, विवस्वान् सूर्य देव की जय हो, जय प्रदायक सूर्य भास्कर के लिए नमस्कार है । ३५। उत्तम गृह, कल्याण करने वाले (सूर्य) देव की जय हो, कमल को विकसित करने की जय हो, बुधरूप तुम्हें नमस्कार है। प्रकाश करने वाले की जय हो, शांति स्थापन करने वाले की जय हो, तमनाशक, जयरूप, एवं अजेय को नमस्कार है । ३६-३७। अर्क, प्रकाश के इश, तथा सहस्र किरणों द्वारा उज्ज्वल वर्ण वाले की जय हो, लोक निर्माता की जय हो, अजेय को बार बार नमस्कार है । ३८। गायत्री के शरीर रूप, सावित्री के प्रिय, पृथिवी को धारण करने वाले, सूर्य एवं मार्तण्ड को बार-बार नमस्कार है । ३९

सुभन्तु बोले—महीपते ! इस प्रकार विनतापुत्र महात्मा गरुड के कल्याणार्थ अरुण के शान्ति-अनुष्ठान करते हुए उसी समय गरुड के पंख निकल आये। उससे बुध के समान तेज और विष्णु के समान बल भी उन्हें प्राप्त हुए । ४०-४१। इस प्रकार राजन् उनकी शरीर के समस्त अंग देवाधिदेव महात्मा सूर्य की प्रसन्नतावश पूर्व की भाँति सुसम्पन्न हो गये । राजेन्द्र ! अन्ध रोगी मनुष्य भी इस भाँति अग्नि कार्य के सम्पन्न करने पर नीरोग हो जाते हैं । ४२-४३। अरिष्ट ग्रहों के उपधातों, दुर्भिक्ष, सम्पूर्ण उत्पातों के समय एवं मेघ के वृष्टि न करने पर लक्ष आहुति का विधान प्रारम्भ करना चाहिए । ४५। सूक्त द्वारा उन वीर (सूर्य) की पूजा, प्रयत्न पूर्वक ध्यान एवं वर्ण सूक्त द्वारा हवन बुद्धिमान् को करना चाहिए । प्रसन्न चित्त होकर धी, शहद, तिल, जवा एवं मधुमिथि सीर से हवन करना बताया गया है । इस प्रकार शांति कर्मानुष्ठान आरम्भ करके प्रयत्न पूर्वक बलि प्रदान करें । उसके सुसम्पन्न होने पर भी श्री की प्राप्ति, मेघों द्वारा वृष्टि, और मनुष्यों की कामनाएँ सफल होती हैं । ४५-४८। जो इस

इत्येवं शान्तिकाध्यायं यः पठेच्छृणुयादपि । विधिना सर्वतोकस्तु व्यायमानो दिवाकरम् ॥४९
स विजित्य रणे शत्रुं मरनं च परमं समेत् । अक्षयं भोवते कालमतिरस्तुतशासनः ॥५०
व्याधिभिर्भिर्भूयेत् पुत्रपौष्ट्रप्रतिष्ठितः । भवेदादित्यसवृशत्तेजसा प्रभया तद्द्वा ॥५१
यातुर्द्विष्य पठेद्वीरं बाचके भानदो भुवि । पौडश्ते न च हैं रोगवातिपित्तकफात्मकैः ॥५२
नाकाले मरणं तस्य न सर्वेश्वर्यापि दद्यते । न विषं क्रमते देहे न जडाङ्ग्यं न मृकता ॥५३
न चेत्पत्तिभयं तस्य नाभिचारकं भवेत् । ये रोगा ऐं महोत्पाता येऽहयश्च तद्विषयाः ॥

ते सर्वे प्रशमं यान्ति श्रवणादित्यं भारत ॥५४

यत्पुण्यं सर्वतीर्थानां गङ्गादीनां विशेषतः । तत्पुण्यं कोटिगुणितं प्रज्ञोति श्रवणादिमिः ॥५५
दशानां राजमूर्यानामन्येषां च विशेषतः । जीवेद्वर्षशतं सापं सर्वव्याधिविवजितः ॥५६
गोप्यस्त्रेव कृतमन्तः ब्रह्महा गुह्यत्प्यगः । शरणगतवीनार्तिमित्रविश्वमध्यातकः ॥५७
दुष्टः पायसमाचारः पितृहा मातृहा तथा । श्रवणादस्य पापेभ्यो मुच्यते नाशं संशयः ॥५८
इतिहासमिमं उण्यमप्निकार्यमनुत्तमम् । न दद्यात्कस्यचिद्वीरं मूर्खस्य कलुषात्मनः ॥५९
सूर्यनक्ते सदा देयं सूर्येण कथितं पुरा । अरुणस्य महाबाहो गरुडस्याशेन च ॥६०
गरुडेन पुरा प्रोक्तं भोजकानां महात्मनाम् । सूर्येशर्मसुखादीनां शाकद्वीपे भ्रमीपते ॥६१

शान्तिक अध्याय का पाठ या श्रवण अथवा विधिपूर्वक दिवाकर का ध्यान करते हैं वह रण स्थल में शत्रुपर विजय प्राप्ति पूर्वक अत्यल्प मान प्राप्त करता है, पुनः अलंघित शासन प्राप्त कर अक्षय काल तक आनन्दानुभव, व्याधिहीन, पुत्रों एवं पीत्रों समेत आदित्य के समान तेज तथा कांति पूर्ण होकर इतिष्ठित होता है । ४९-५१ वीर ! इस पृथ्वीतल में जिस उद्देश्य से मनुष्य इसका पाठ करता है, (वे निविष्ट सफल होते हैं) और वे बात, पित एवं कफात्मक किसी रोगों से पीड़ित नहीं होते हैं, अकाल में मरण नहीं होता, कोई साँप नहीं काटता, उसके शरीर में विष संक्रमण नहीं होता, न जड़ता रूपी अंधकार से आच्छन्न होता है, और न कभी मृक भाव (गूँगा) होता है । भारत ! इसके श्रवण करने से जन्म मरण भय, शस्त्राधात या अनुष्ठान (पुनश्चरण) द्वारा मरण का भय कभी नहीं होता है, समस्त रोग, महोत्पात, महाविषधर, सर्प, शांत हो जाते हैं । ५२-५४ समस्त तीर्थों विशेषकर गंगादि तीर्थों तथा दश राजसूय विशेषकर अन्य और यज्ञों द्वारा जो पुण्य होता है, उससे कोटि गुणे पुण्य इसके श्रवणादि करने से प्राप्त होते हैं । ५५। समस्त रोग मुक्त होकर सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है । जो हत्या करने वाला, कृतमन्ती, ब्रह्महत्या करने वाला, गुरु पत्नी गामी, शरण प्राप्त हीन-दुखी एवं मित्र के साथ विश्वास घात करने वाला, दुष्ट, पापी तथा माता-पिता का बध करने वाले, ये सभी इसके श्रवण करने से पापमुक्त हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं । ५६-५८। वीर ! किसी अज्ञानी मूर्ख के लिए उस उत्तम पुष्पोपाल्पन का उपदेश कभी न करें । सदैव सूर्य के भक्त को ही इसे प्रदान करना चाहिए, ऐसा सूर्य ने पहले ही अरुण को बताया गया था । महाबाहो ! अरुण ने गरुड को तथा महीपते ! शाकद्वीप में गरुड ने भोजकों को बताया गया था । ५९-६०। जो सूर्य के कल्प्याण एवं सुख रूप तथा महात्मा हैं, और उन्होने मुनि एवं पंडित व्यास जी से तथा व्यास ने भी

तैश्चापि कथितं पुण्यं मुनेव्यासस्य धीमतः । तेनापि कथितं पुण्यं सर्वपापभयपहन् ॥६२
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे गरुडारुणसंवादे शान्तिकवर्णनं
 नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः । १८०।

अथैकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

स्मृतिभेदवर्णनम्
 शतानीक उवाच

पञ्चप्रकारं धर्मं मे दद् स्मार्तं यथाक्रमस्म् । कौतुकं^१ पृच्छते ब्रह्मन्समाप्त्योगतः ॥१
 सुमन्तुरुखाच

पञ्चधा वर्णितं धर्मं शृणु राजन्समासतः । यथोक्तं भास्करेणहु अरुणस्य महात्मनः ॥२
 सहस्रकिरणां भानुमुदयस्थं दिवाकरम् । प्रणम्य शिरसा देवमुखाच गरुडाग्रजः ॥३
 भगवन्देवदेवेश सहस्रकिरणोज्ज्वल । स्मृतिधर्मान्वयथातत्त्वं दक्षुमर्हसि पृच्छतः ॥४
 एव पृष्ठस्तु भगवानरुणेन खगाधिपः^२ । उवाच परया प्रीत्या पूजयित्वा महीपते ॥५

समस्त पाप एवं भय नाशक इस पुण्योपाल्यान का वर्णन किया है । ६१-६२

श्री भविष्य महापुराण में ब्राह्मे पर्व के सप्तमीकल्पे के गरुडारुण संवाद में शान्तिक वर्णन
 नामक एक सौ अस्मीवाँ अध्याय समाप्त । १८०।

अध्याय १८१

स्मृतिभेद का वर्णन

शतानीक ने कहा—ब्रह्मन् ! स्मार्त धर्म का वर्णन, जिसकी पाँच प्रकार से व्याल्या की गई है, संक्षेप
 एवं विस्तार से संमिश्रण पूर्वक क्रमणः मुझे सुनाने की कृपा कीजिये, इसके सुनने के लिए मुझे महान्
 कौटूहल हो रहा है । १

सुमन्तु बोले—राजन् ! पाँच प्रकार से वर्णित उम स्मार्त धर्म का वर्णन महात्माअरुणके लिए सूर्य
 ने जिस प्रकार किया था, विस्तार पूर्वक मैं वही बता रहा हूँ, सुनो ! एक बार अरुण ने सहस्र किरण वाले
 उस दिवाकर सूर्य से उनके उदय होते समय प्रणाम करके यह कहा—भगवन्, देवाधिदेव, एवं सहस्र
 किरणोज्ज्वल ! मुझे स्मृति (स्मार्त) धर्म जानने की इच्छा है, आप उसके तत्त्व को यथोचित ढंग से
 बताने की कृपा करें । ! महीपते ! परम प्रसन्न अरुण द्वारा पूजित होने के उपरांत इस प्रकार पूँछने पर
 आकाशचारियों के अधिनायक सूर्य ने कहा । २-५

१. कौतुकं पृच्छते मह्यं संक्षेपविस्तारयोगात्कथयेत्यर्थः । पृच्छते इति चतुर्थोक्तवनान्तम् । २. ग्रहेशः
 इत्यर्थः ।

भास्कर उवाच

स्मृतिधर्मे देवमूलं नृण त्वं गण्डापज । पूर्वानुशृतं यद्यथानमय तत्स्मरणं स्मृतिः ॥६
धर्मः क्रियात्मा निर्विष्टः श्रेयोऽस्म्युदयलक्षणः । स च एव विद्यः प्रोक्तो वेदमूलः सनातनः ॥७
अस्य राष्ट्रस्यानुष्ठानात्सर्वगोऽस्मेव अश्रुं जायते । इह लोके सुनीर्ज्यमलं यच्च खगाधिप ॥८

अनूरुद्धराच

कथं दञ्चविद्यो ह्येत भ्रेत्तो धर्मः सनातनः । कस्य भवास्तु ते चञ्च इहि मे देवसत्तम ॥९

भास्कर उवाच

वेदधर्मः स्मृतस्त्रेक आश्रमाणां स तन्वतः । वर्णाश्रमस्तृतीयस्तु गुणनैमित्तिको यथा ॥१०
वर्णाश्रमस्त्रिश्रित्य अधिकारे प्रवर्तते । स वर्णाश्रमदण्डस्तु भिक्षा दण्डादिको यथा ॥११
वर्णाश्रमाश्रमत्वं च योऽधिकृत्य प्रवर्तते । स वर्णाश्रमधर्मस्तु दण्डया भेषजा यथा ॥१२
यो गुणेन प्रवर्तते स गुणे धर्मं उच्यते । यथा सूर्याश्रिष्टकस्य प्रजानां पालनं परम् ॥१३
निमित्तस्त्रेकमाश्रित्य यो धर्मः सम्प्रलृतते । नैमित्तिकः स विज्ञेयो जातिद्वयगुणाश्रयः ॥१४
एष तु द्विविधः प्रोक्तः समासादविशेषतः । नैमित्तिकः स विज्ञेयः प्रायश्चित्तविधिर्दया ॥१५

भास्कर बोले—गण्डापज ! वेदमूलक स्मृति धर्म को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! ध्यान में निमग्न होकर पहले जिसका अनुभव किया जाता है, पुनः उसी के स्मरण करने का नाम स्मृति है धर्म का स्वरूप क्रियात्मक है, श्रेय और अस्म्युदय उसके लक्षण हैं, वह पाँच प्रकार से बताया गया है तथा वह वेदमूलक है, और सनातन अविनाशी भी । खगाधिप ! इस धर्म के अनुष्ठान करने से स्वर्ग, मोक्ष, तथा इस लोक के समस्त सुख ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं ॥१६॥

अनूर (अरुण) ने कहा—हे देवत्रेष्ठ ! इस सनातन धर्म के पाँच भेद कैसे हुए और वे पाँच भेद कौन से हैं, मुझसे बताने की कृपा कीजिये ! ॥९॥

भास्कर बोले—एक ही वेदधर्म है, उसी का स्मरण किया गया है और चारों आश्रमों में कार्य रूप में वही परिणत किया गया है, जैसे वर्णाश्रम में तीसरे गुण नैमित्तिक धर्म का प्रविष्ट होना बताया गया है । उसमें जाति की कल्पना करके ही अधिकार में प्रवृत्त होना कहा गया है इसीलिए वर्णाश्रमों में आह्वान जाति से लेकर वैश्य वर्ण तक के उपनीत होते समय भिक्षा याचना एवं दण्डग्रहण का विधान समान ही बताया गया है वर्णाश्रम एवं आश्रमों के अधिकार वश जिस धर्म का प्रयोग (आचरण) किया जाता है, वही वर्णाश्रम धर्म है, जैसे दण्ड आदि और भेषजा का धारण ब्रह्मचरियों एवं सन्यासियों में समान होता है, गुण की प्रधानतावश जिस धर्म का प्रयोग किया जाये, वह गुण धर्म कहा जाता है, जैसे तिलकधारी राजाओं के लिए प्रजाओं का पालन ही उत्तम धर्म बताया जाता है ॥१०-१३॥ किसी निमित्त को अपनाकर जिस धर्म का प्रयोग होता है, उसे नैमित्तिक धर्म जानना चाहिए, वह सर्वत्र जाति, द्रव्य अथवा गुण को निमित्त मान कर प्रयुक्त होता है । इस भाँति दो प्रकार मूलधर्म से इसकी विस्तृत व्याख्या की

त चतुर्था निरूप्यस्तु स्वरूपसाधनैः । प्रमाणतस्तु प्रत्येकं समस्तैश्च यथाक्रमम् ॥१६
 अनुप्या सह विरोधे तु बाध्यते विषयं विना । व्यवस्थया विरोधेन कार्यो यतः परीक्ष्यते ॥१७
 स्मृत्या सह विरोधेन अर्थशास्त्रस्य साधनम् । परस्परविरोधे तु अर्थशास्त्रस्त साधनम् ॥१८
 अदृष्टार्थे विकल्पस्तु व्यवस्थासम्बद्धे सति । स्मृतिशास्त्रविकल्पस्तु आज्ञांकापूरणे सति ॥१९
 वेदमूले स्थितं त्वेतदनुष्ठानं क्रिया सत्ती । एवं शक्यविधानं तु न्यायो द्वैवं व्यवस्थितः ॥२०
 निषेधविधिरूपं तु हिता शास्त्रं खगाधिप । एकरूपं ददत्यन्ये बहुरूपमयात्परे ॥२१
 पञ्चप्रकाराः स्मृतय एवं शिष्यव्यवस्थितः । शिश्रा चतुर्था द्वेष्ठा दा एकथा बहुधा खग ॥२२
 वृष्टार्था तु स्मृतिः काचिद्वृष्टार्था तथापरा । अनुवादस्मृतिस्त्वन्या वृष्टावृष्टा तु पञ्चमी ॥
 सर्वा एता वेदमूलाः स्मृता वै शृणिभिः स्वदम् ॥२३

अरुण उवाच

या एता भवता प्रोक्ताः स्मृतयः पर्वगोपने । एतासां लक्षणं श्रूहि समासादेव सत्तम ॥२४
 वृष्टार्थका मता देव अवृष्टार्थं च का भवेत् । वृष्टादृष्टस्वरूपा का न्यायमूला च का भवेत् ॥
 अनुवादस्मृतिः का स्याद्वृष्टादृष्टा तु ज्ञा भवेत् ॥२५
 एवमुक्तो महातेजा भास्करो वारितस्करः । उवाच तं खं दीरं प्रणतं विनयान्वितम् ॥२६

गयी है, पर इन दोनों के विभिन्न होने में कोई महत्वपूर्ण विशेषता नहीं है। जैसे किसी भी प्रायशिचित धर्म का अनुष्ठान करना नैमित्तिक धर्म कहा जाता है। स्वरूप, फल एवं साधनों द्वारा वह (धर्म) चार प्रकार का बनताया गया है—उनमें से क्रमशः प्रत्येक धर्म का प्रमाण एवं स्वरूपादि द्वारा विस्तृत व्याख्यान किया गया है । १४-१६। श्रुति के साथ विरोध होने पर यह विना विषय के बाधित होता है। व्यवस्था एवं विरोध के द्वारा करणीय यत्न की परीक्षा होती है। स्मृति के साथ विरोध होने पर यह (धर्म) अर्थशास्त्र का साधन होता है। परस्पर विरोध में तो यह अर्थशास्त्र का साधन बनता ही है। व्यवस्था सम्भव होने पर कल्पित अर्थ में विकल्प होता है। स्मृतिशास्त्र विषयक विकल्प तो आकांक्षा की पूर्ति होने पर ही होता है। क्रियात्मक यह अनुष्ठान वेद के मूल में अधिष्ठित है। इसी प्रकार समस्त समर्थ विधान एवं न्याय व्यवस्थित है। हे पश्चिराज ! निषेध एवं विधिरूप दो प्रकार के शास्त्र होते हैं। कुछ लोग इसे एकरूप कहते हैं तथा कुछ लोग इसे अनेकरूप कहते हैं। हे खग ! एक प्रकार, दो प्रकार, तीन प्रकार, चार प्रकार एवं अनेक प्रकार के स्वरूपों वाली ये स्मृतियाँ इस तरह पांच प्रकार से शिष्यों के लिए व्यवस्थित हैं। कोई स्मृति अर्थ वाली तथा कोई अदृष्ट अर्थ वाली है। कोई अनुवाद स्मृति है तो कोई दृष्टादृष्ट उभय रूप है। ये समस्त स्मृतियाँ शृणियों द्वारा वेद मूलक कहीं गयी हैं। १७-२३

अरुण ने कहा—हे सत्तम ! पर्व (तिथियों) के रक्षार्थ इन स्मृतियों को आप ने बताया है, इनके लक्षणों को भी विस्तार पूर्वक मुझे बताने की कृपा कीजिये ! मैं इसे जानना चाहता हूँ, देव ! दृष्टार्थ प्रतिपादन करने वाली, अदृष्टार्थ प्रतिपादन करने वाली, दृष्टादृष्ट स्वरूप वाली, न्यायमूलक और अनुवाद मात्र प्रतिपादन करने वाली इन स्मृतियों को आप बताने की कृपा कीजिए। इस प्रकार (अरुण के) पूछने पर महातेजा तथा जलतस्कर भास्कर ने बीर, एवं नतमस्तक बैठे हुए नम्रतापूर्वक उस अरुण पक्षी से कहा २४-२६

आदित्य उवाच

षडगुणस्य स्वरूपं तु प्रयोगात्कार्यगौरवात् । समयानामुपायानां योगे व्याससमाप्तः ॥२७
 अध्यक्षाणां च निषेपः करणानां निरूपणम् । दृष्टार्थेऽस्मृतिः श्रेत्रा ऋषिभिर्गृहाप्यज ॥२८
 सन्ध्योपास्तिस्तथा कार्यं शुक्रो मांसं न नक्षयेत् । अदृष्टार्था स्मृतिः प्रेत्का भ्रनुना विनतात्मज ॥२९
 पालाशं धारयेद्दण्डमयार्थी विदुर्बुधाः । विरोधे तु विकल्पः स्याद्यन्ते होमस्ततो यथा ॥३०
 श्रुतौ दृष्टं यथा कार्यं स्मृते तत्त्वादृशं यदि । उक्तानुवादिनी सा तु पारिवास्यं तथा गृहात् ॥३१
 उक्ते धर्मश्च संक्षेपात्परिभाषा च तदगता । तत्साधनं च देशादि इत्यमित्यब्रह्मद्विद्विः ॥३२
 ब्रह्मादर्तः परो देश ऋषिशस्तस्त्वनल्लरः । मध्यदेशस्ततोऽप्यन्य आर्यावित्स्त्वनन्तरः ॥३३
 कृष्णसारस्तु विचरेन्मृगो यत्र स्वभावतः । यज्ञियः स तु देशः स्यान्त्लेञ्छेशस्ततः परः ॥३४
 ब्रह्मादीनां च देवानां ब्राह्मणादेस्तथैव च । मूत्रज्ञानस्य कृत्स्नस्य ब्रयं इत्क्षेत्रं लेचर ॥३५
 साधनत्वं मनुः प्राह वेदमूलं सनातनम् । प्रकाशयज्ञसंसिद्धौ यदशब्दस्य एव तु ॥३६
 उपनिषद् पथातत्त्वं स च दर्शितवानृषिः । सन्यकसंसाधनं धर्मः कर्तव्यस्त्वधिकारिणा ॥३७
 निष्कामेन सदा वीर काम्यं रूपान्वितेन च । आदारपुरुक्तः शद्भासुर्देवज्ञोऽध्यात्मचिन्तकः ॥
 कर्मणां फलमाप्नोति न्यायार्जितधनश्च यः ॥३८

आदित्य बोले—इस स्मार्त धर्म के स्वरूप, प्रयोग कार्य की गौरवता समय तथा उपायों के संक्षिप्त एवं विस्तृत योग द्वारा छः प्रकार के बताये गये हैं । २७। गृहडाग्रज ! अध्यक्षों के निषेप तथा करणों के निरूपण करने वाली स्मृति, दृष्टार्थं स्मृति बतायी गई है । २८। विनतात्मजो ! (तीनों काल) सद्या की उपासना करनी चाहिए और कुत्ते का मांस भक्षण कभी न करना चाहिए, इसे बतलाने वाली को मनु ने अदृष्टार्थ स्मृति बताया है । २९। पलाश का ही दण्ड धारण करना चाहिए, ऐसा कहने वाली को 'दृष्टादृष्टार्थं स्मृति' कहा जाता है, ऐसा विद्वानों ने बताया है । यदि किसी स्मृति द्वारा विरोध संभव हो तो, प्राप्त याग एवं हवन के त्याग का ग्रहण करने की भाँति विकल्प करना चाहिए । ३०। जो श्रुति में दृष्ट है, वही यदि स्मृति में भी आनुपूर्वी वर्णित है, तो उस श्रुति में दृष्ट विषय को स्मृति में बतलाना अनुवाद कहलाता है और ऐसा कहने वाली यह स्मृति अनुवाद मात्र स्मृति कही जाती है, जैसे घर से निकलकर संन्यास ले लेना । इस प्रकार संक्षेप में धर्म की व्याख्या बताई गई एवं उसकी अन्वर्थ परिभाषा भी बताई गयी । उसके साधन देश-काल हैं, ऐसा सूर्य ने कहा था । ३१-३२। ऋषियों का प्रशस्त देश 'उत्तम ब्रह्मावर्त देश है' उसके अनन्तर 'मध्यदेश' और उसके अनन्तर 'आर्यावर्त' नामक देश कहा जाता है । ३३। जिस प्रदेश में कृष्ण सार 'मृगं' स्वभावानुसार इधर उधर विचरण करते हैं, वह 'यज्ञिय' यज्ञ करने के लिए प्रशस्त प्रदेश कहलाता है, और उसके पश्चात् वाला स्तेच्छों का देश कहा गया है । ३४। आकाशगमिन् ! ब्रह्मादि देवता, ब्राह्मणादि वर्ण एवं समस्त जीव समूह इन तीनों का साधन वही (धर्म) है, और मनु ने उसे वेद मूलक तथा सनातन (अविनाशी) बताया है, जो ब्रह्म की वेदवाणी में प्रकाश रूप में यज्ञों की सिद्धि के लिए निहित हैं । ऋषि ने ध्यानयोग द्वारा उसके तत्त्व को भली भाँति जानकर लोक हितार्थ प्रकाशित किया है, अतः अधिकारी वर्ग को चाहिए कि उस धर्म का भलीभाँति साधन पूर्वक पालन करें । ३५-३७। वीर ! 'निष्काम और सकाम' उसके दो रूप बताये गये हैं । आचार समेत श्रद्धालु पुरुष जो वेद-मर्मज एवं अध्यात्मचितन करता है, कर्मों के फल को अवश्य प्राप्त करता है, तथा न्यायोचित रीति से धनोपार्जन करने वाला भी उसे प्राप्त करता है । ३८

अरुण उवाच

ब्रह्मादत्तदिदेशानां समस्तानां विभावसो । विभागं बूहि देवेन्द्र सम्मानय प्रहाधिष ॥३९

आदित्य उवाच

सरस्वतीदृष्टद्वयोर्देवनद्योर्यदन्तरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥४०

हिष्वदिन्द्यधरयोर्यदन्तरमुदाहृतम् । प्रत्यगेव प्रजागात्त्वं स्थदेशः प्रकीर्तिः ॥

आसमुदातु वै पूर्वादासमुदातु पश्चिनात् ॥४१

तयोरेत्यन्तरं गिर्यार्द्धवर्तं विदुव्याधः । एतात्मिजात लद्देशान्तर्येत प्रयत्नतः ॥४२

शूद्रस्तु यस्मिस्तरिमन्वा निवेदेत्तिकशितः । एष धर्मस्य है ज्योतिः समाःसाक्षिता तत्र ॥४३

इति श्रीभविष्ये महापुराणे बाह्ये पर्वजि सप्तमी कल्पे सौरधर्मेषु अरुणादित्यसंवादे

स्मृतिभेदवर्णनं नानेकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः । १८१।

अथ द्वयशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

विवाहविधिवर्जनम्

आदित्य उवाच

उक्तं धर्मस्य रूपं तु साधिकारं सनातनम् । अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्ममाश्रमिणां खग ॥१

अरुण ने कहा—हे विभावसो ! ब्रह्मावर्त आदि समस्त देशों के विभाग, मुझसे बतायें, हे देवेन्द्र, प्रहाधिनायक ! मेरी इस अर्चना को अवश्य स्वीकार करने की कृपा करें । ३९

आदित्य बोले—सरस्वती और दृष्टद्वयी इन दोनों नदियों के आन्तरिक प्रदेश को जिसका निर्माण देवताओं ने किया था, ब्रह्मावर्त कहते हैं । ४०। हिमालय और विन्ध्ये दर्वत के आन्तरिक प्रदेश को, जो प्रयाग से पश्चिम दिशा में है, 'मध्य देश' बताया गया है, एवं पूर्व समुद्री तट से लेकर पश्चिम समुद्र तट के मध्य भू भाग को विद्वानों ने 'आर्यवर्त' प्रदेश बताया है, ऐसा समझकर इस उत्तम देश के निवास करने के लिए सर्वथा प्रयत्न शील रहना चाहिए । क्योंकि शूद्र अपनी जीविकाके लिए जिस किसी देश में रह सकता है । इस प्रकार धर्म का पूर्ण प्रकाश तुम्हें दिखा दिया गया । ४१-४२

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपूर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में

अरुणादित्य संवाद रूप स्मृति भेद वर्णन नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त । १८१।

अध्याय १८२

विवाहविधि का वर्णन

आदित्य बोले—तुम्हें धर्म का अधिकार धूर्वक सनातन रूप बता दिया गया, खग ! अब मैं आश्रमों के धर्म बता रहा हूँ, सुनो ! । १। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ (वानप्रस्थ) तथा भिषु (सत्यासी) ये चार

द्रह्मचारी गृहस्थश्च वनस्थो भिसुरेव च । चत्वार आश्रमाः प्रोक्ताः एक एव चतुर्विधः ॥२
 गायत्री ब्रह्मचारी तु प्राजापत्यो द्वितीयकः । देवद्रतस्तृतीयस्तु नैष्ठिकस्तु चतुर्यकः ॥३
 चत्वार आश्रमाः प्रोक्ताः सवेदाः समर्थमकाः । अतःपरं प्रवक्ष्यामि संस्कारं धर्मसिद्धये ॥४
 गर्भाधानमृतौ कार्यं हृष्ट्योस्तु समन्वकम् । कार्यं पुंसवनं मातुस्तुतीये जाति संयुतैः ॥५
 तीमन्तः सप्तने गर्वे वष्टे वा सप्तमेष्टि वा । पापासंस्कारक इष्टा गर्भाधानादवस्थाः ॥६
 जातकर्मदिवः क्षर्वे संस्काराः पुरुषस्य तु । जातस्य प्राशनं यश्च स्वर्णदीनां समन्वकम् ॥७
 जातकर्मेति तत्प्रोक्तं गुणं नाम तदैव तु । प्रकाशो नाम कर्तव्यं दिने त्वेकादशोर्यवत् ॥८
 धर्मसास्त्रादित्युक्तं षष्ठेऽप्नप्राशनं खगः । प्रथमेऽप्ते दृतीये वा चूडाकर्म विर्द्धयते ॥९
 अष्टमे दशमे वापि ब्राह्मणस्योपनायनम् । पुरुषस्य तथा चान्यजातीयानां विशेषतः ॥१०
 एकादशे द्वादशे वा कार्यं क्षत्रियवैश्ययोः । देवसंस्कारक वच्चिर मन्यते त्वैपनायनम् ॥११
 पुरुषस्य तथा चात्य उभयोश्च छ्रवीम्यहम् । सावित्रं वैदिकं चैव महानाश्रीमहाव्रतम् ॥१२
 तथैपनिषदं चाब्दं गोदानं च सुवर्णकम् । व्रतानि ग्रहणार्थानि ऐदस्येति मनोर्मतम् ॥१३
 वेदैकदेशपाठस्य उक्तं गृह्ये प्रपञ्चकम् । उक्तः गुरोस्तु शुश्रूपा दृष्टादृष्टार्थसाधनम् ॥१४

आश्रमी बताये गये हैं, यह एक ही (आश्रम) चार प्रकार से स्थात हैं । २। मुख्य गायत्री का उपासक ब्रह्मचारी, प्राजापत्य धर्मानुष्ठान करने वाला द्वासरा (गृहस्थ), देव वती (तीसरा), और नैष्ठिक (निष्ठा पूर्वक उसका अनुष्ठान करने वाला) चौथा आश्रम कहा जाता है । वेदों समेत इन समान धर्म वाले द्वारो आश्रमों को बता दिया गया, इसके उपरांत धर्म-सिद्धि के लिए मैं संस्कारों को बता रहा हूँ (सुनो) ! स्त्री-पुरुष दोनों को प्रसन्न चित्त होकर ऋतु काल के पश्चात् मन्त्रं पूर्णं गर्भाधान करना चाहिए, तीन मास के गर्भ हो जाने पर माता का 'पुंसवन' (संस्कार) कार्यं सम्पन्न होना चाहिए । सततें मास में या छठें मास में 'सीमन्तोन्यन' संस्कार करे । इन तीनों गर्भाधानादि संस्कार के सुसम्पन्न होने से पात्र संस्कृत (शुद्ध) हो जाते हैं । इसीलिए ये सभी के लिए आवश्यक बताये गये हैं । जात कर्मादि सभी संस्कारं पुरुष (पुरुष रूप में उत्पन्न बालक) के होते हैं । मंत्रं पूर्वक सुवर्ण (शलाका) द्वारा उत्पन्न बालक का प्राशन करना 'जातकर्म' कहलाता है, उसमें उसका नाम (गुहा) रहता है । नाम का प्रकाश (नाम का उच्चारण) ग्यारहवें दिन करना चाहिए । ३-८। खग ! धर्मशास्त्रों के अनुसार छठें मास में उसका 'अन्नप्राशन' होना चाहिए । प्रथम अथवा तीसरे वर्ष में चूडां कर्म (मुंडन) का विधान बताया गया है । आठवें या दशवें वर्ष में ब्राह्मण का 'उपनयन' (यजोपवीत) संस्कार करना आवश्यक होता है, तथा विशेषकर अन्यजाति के पुरुष का भी । क्षत्रिय एवं वैश्यों के वैदिक उपनयन संस्कार ग्यारहवें या बारहवें वर्ष में सम्पन्न होने चाहिए । ऐसा लोगों का सम्मत है । ९-१। ब्राह्मण एवं अन्य जाति वाले पुरुषों के इन दोनों के सावित्र एवं वैदिक धर्म जो महानामी महाव्रत के नाम से स्थात हैं, बता रहा हूँ, (सुनो) ! उपनिषद् सम्बन्धी वार्षिक विद्यान, सुवर्ण के गोदान, ग्रहण करने योग्य व्रत, ये भी वैदिक धर्म हैं ऐसा मनुजी का सम्मत है । १२-१३। वेद का अंशिक पाठ, जिसकी गृहस्थूप्र में विस्तार पूर्वक व्याख्या की गयी है, गुरु की शूश्रूपा, ये दृष्टादृष्टार्थ के साधन हैं । गुरुद्वारा न्यायोचित ढंग से कहे गये वाक्यों का आनंदपूर्वी

उभयोर्वा तथा चान्यायथान्यायं यथाक्षुतम् । गुरोरप्येव तं विद्यात्दुश्यनं त्रिदिधं स्मृतम् ॥१५
तोषः परस्परस्येति एतावाधर्मसङ्ग्रहः । कृत्स्नो वेदोऽधिगत्त्व्यः स्वर्धमनुतिष्ठता ॥१६
ज्ञात्वा वेदं ब्रह्मचारी पन्थार्थान्यथादिधि । नैष्ठिकश्च विधानं तु यावत्कलीबं विधीयते ॥
दिघान्तेऽभीष्टदानं च अनुज्ञाहो गृही भवेत् ॥१७

निष्कासनं गुणगृहाद्गृहस्यस्य ग्रथाभवेत् : नैष्ठिकश्च तथा स्नानं कुर्यात्स्तन्यग्रथाविधि ॥१८
उद्धरेद्दै ततो शत्र्या सर्वाणि लक्षणान्विताम् । अविष्णुतङ्गद्वयर्चर्यश्राधिकारी लगोत्तम ॥१९
स्यतन्त्रमत्ये चेच्छन्ति द्वाधिकारं द्विजोत्तमाः । सप्तमीं पञ्चमीं चैव कन्यकां पितृमातृतः ॥२०
लद्धहेत द्विजो भार्यमिसमानार्थगोक्रजाम् । सङ्ख्याविधिविवाहेषु गोत्रार्थं विधेवर्जितम् ॥२१
दिकलयेनैव मन्तव्यमृद्यीणा विविधा श्रुतिः । अष्टौ विवाहा वर्णानां संस्कारात्म्या इति श्रुतिः ॥२२
यस्तु दोषवतीं कन्यामनात्म्याय प्रयच्छति । तस्य कुर्यान्त्यो दण्डं स्त्वयं षण्वर्तीत वणान् ॥२३
पितुग्नि तु या कन्या रजः पश्यत्यसंकृता । पतन्ति पितरस्तस्य कन्या च वृषली भवेत् ॥२४
यस्तु तां दरयेत्कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । अश्राद्वेयमपाइत्तेण तं विद्याद्वृषलीपतिम् ॥२५
सर्वदोषान्हि विद्याप्यस्त्रिया वा पुरुषस्य वा । उभयोरपि विद्याप्य ततः सम्बन्धमाचरेत् ॥२६

उच्चारण करना अत्यन्त आवश्यक होता है । अतः उसका ध्यान भी तीन प्रकार के होते हैं । आपस में
सन्तुष्ट रहना तो बहुत ही आवश्यक होता है प्रत्युत धर्म संग्रह करने का यही इतना फल बताया गया है ।
अपने धर्म का यथावत् पालन करते हुए समस्त वेद का अध्ययन करना चाहिए, ब्रह्मचारी को उचित है कि
विधान पूर्वक वेदाध्ययन के अनन्तर अन्यान्य ग्रंथों (शास्त्रों) के तत्त्व को भली भाँति जानने के लिए भी
प्रयत्नशील रहें । नैष्ठिक (संन्यस्त) विधान तो इन्द्रियों के शिथिल होने पर ही संभव होता है ।
विद्याध्ययन समाप्ति के उपरांत गुरु के लिए अभीष्ट दान देकर तथा उसकी आज्ञा प्राप्त कर गृहस्थ होना
चाहिए । १४-१७। गुरु के गृह से गृहस्थ होने के लिए पात्र का जिस प्रकार निष्कासन होता है, उसी भाँति
नैष्ठिक का विधान पूर्वक स्नान बताया गया है । १८। लगाधिप ! उस अलण्ड ब्रह्मचारी अधिकारी को
उसके पश्चात् धर आने पर सौन्दर्य पूर्ण एवं लक्षणों से भूषित कन्या का विग्रहण भार्या होने के लिए करना
चाहिए अन्य श्रेष्ठ द्विज भी स्वतंत्र अधिकार प्राप्त करते की चेष्टा करते रहते हैं अपने मातृ-पितृ कुल
सातवीं अयवा पांचवीं पीढ़ी की कन्या को जिसके ऋषि, एवं गोत्र समान न हों, द्विज को चाहिए कि भार्या
बनायें । संस्था वाले वैधानिक विवाहों में अपने गोत्रार्थ (विवाह) में विधान अपनाया नहीं जाता ।
श्रुतियाँ भाँति-भाँति की हैं, इससे ऋषियों में विकल्प भी होता है । श्रुतियों में बताया गया है कि सभी
वर्णों के आठ प्रकार के विवाह संस्कार सम्पन्न किये जाते हैं । १९-२१। जिस किसी ने अपनी दोषपूर्ण
कन्या का पाणिग्रहण बिना दोष बताये ही किसी के साथ सुसम्पन्न करा दिया है, तो राजा को चाहिए कि
उस दाता से दंड रूप में छानवे पण प्राप्त करे । पिता के धर में स्थित कन्या अविवाहित अवस्था में ही
रजस्त्वला हो जाती है, तो, उस पिता के पितर लोगों का (नरक में) पतन होता है, और वह कन्या वृषली
(शूद्रा) कहलाती है । २३-२४। जो ज्ञान दुर्बल (अल्पज्ञ) ब्राह्मण उसका पाणिग्रहण करता है, उसे
श्राद्ध कर्तव्यहीन, पंक्ति से पृथक् वृषली पति रूप में जानना चाहिए । २५। स्त्री हो या पुरुष दोनों के
दोषों को प्रकट करके ही दोनों का सम्बन्ध स्थापित करे । (कन्याओं में) गौरी कन्या प्रधान, कन्या

गौरी कन्या प्रधाना है मध्यमा कन्यका स्मृता । रोहिणी तत्समा ज्ञेया अधमा तु रजस्वला ॥२७

अनूरुहवाच

गौरे तु का दत्ता कन्या रोहिणी च जगत्पते । रजस्वला नप्रिका च देवकन्या च का भवेत् ॥२८

भास्कर उवाच

असम्प्राप्तरजा गौरे प्राप्ते रजसि रोहिणी । अव्यञ्जनयुता कन्या कुचीना च नप्रिका ॥२९

सप्तवर्षा भद्रेवौरी दशवर्षा तु नप्रिका । द्वादशे तु भवेत्कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥३०

व्यञ्जनेन सन्नोपेता सोमो भुज्ज्वले हि कन्यकाम् । पयोधरेषु गन्धर्वा रजस्याः प्रकीर्तिः ॥३१

हिनस्ति व्यञ्जनैः पुत्रान्कुलं हन्यात्पयोधरैः । मतिनिष्टां तथा सोकान्हन्यात् रजस्ता पितुः ॥३२

तस्मादव्यञ्जनोपेतामरजस्कपदोधराम् । नान्योपभुक्तां सोमार्द्धाद्याद्वितरं पिता ॥३३

अन्नं तस्य न भोक्तव्यं वृथा पाको हि स स्मृतः । वृथा पाकस्य भुज्ज्वलं प्रायश्चित्तं तमःत्ररेत् ॥३४

प्राणायामं त्रिरस्य धृतं प्राश्य विशुद्धपति । विवाहयेदेकगोत्रां समानप्रवर्तं लग ॥

कृत्वा तस्यां समुत्सर्गमतिकृच्छ्रो विशोधनम् ॥३५

उद्वाहयेत्सगोत्रां च तनयां मातुलस्य च । शृणिभिश्चेव तुल्यो यो द्विजश्रान्द्रायणं तरेत् ॥३६

नाम वाली मध्यम, रोहिणी उसी के समान और रजोवती कन्या अध्रम बतायी गयी है । २६-२७

अनूरुहने कहा—हे जगत्पते ! गौरी, कन्या नाम वाली, रोहिणी, रजस्वला, नप्रिका, एवं देव कन्या किसे कहते हैं ? २८

भास्कर बोले—ऋतुमती न होने वाली कन्या को गौरी, रजस्वला को रोहिणी व्यञ्जन (चिन्ह) हीन को कन्या, एवं कुल हीना को नप्रिका, कन्या बताया गया है । सात वर्ष वाली कन्या को गौरी, दशवर्ष वाली को ननिका, बारहवर्ष वाली को कन्या, तथा इससे अधिक आयु वालीको ऋतुमती बताया गया है । २९-३०। व्यञ्जन सुन्दर कन्या का उपभोग सोम, पयोधरों का उपभोग गन्धर्व करते हैं और रज में अग्नि की स्थित बतायी जाती है । ३१। अविवाहिता कन्या के व्यञ्जन (चिन्ह-मुखलोम आदि) दिखायी देने से उस पिता के पुत्र-नाश, पयोधरों से कुल-नाश, ऋतुमती होने पर उसे अभीष्ट गति एवं उत्तम लोक प्राप्ति से बंचित होना पड़ता है । ३२। इसलिए पिता को चाहिए कि व्यञ्जन, रज, एवं पयोधर के निकलने के पूर्व ऐसी कन्या को जो सोमादिकों से अनुपभुक्त रहती है, प्रदान करे । जिसकी कन्या उपरोक्त कथनामुसार न हो, उसके अन्न का भोजन न करना चाहिए क्योंकि उसके यहाँ का सिद्ध प्रक्वाश व्यर्थ बताया गया है और व्यर्थ अन्नभोजन करने से प्रायश्चित्त करने का भागी होना पड़ता है । ३३-३४। उसके भोजन करने से तीन बार प्राणायाम और धी का प्राशन रूप प्रायश्चित्त करे । लग ! यदि एक गोत्र, एवं समान प्रवर वाले की कन्या का प्राणिप्रहण करके उसमें वीर्य निकेप करे तो उस अशुद्ध शरीर के शोधनार्थ अति कृच्छ्र नामक व्रत विधान बताया गया है । ३५। सगोत्र की, एवं मातुल (मामा) की कन्या के साथ जिसके शृणि भी समान हों, विवाह करने पर उस द्विज को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए । ३६।

असपिण्डा तु या भास्तुरसनोत्रा च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥३७
अरुण उदाच

दारकर्म किमुक्तं वै यदुक्तं भवता इव न । सा प्रशस्ततः द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥३८
आदित्य उदाच

अग्निहोत्रः विद्यकर्म वैदिकं विनतात्मज । तदुक्तं दारकर्मेति द्वाम्यादं येगात्मु मैथुने ॥३९
नोद्वृहेत्कपिलां कन्यां नारीधकाइनां न रोगिणीम् । जालोमिकां नातिलोमां न चाकूटां न पिङ्गलाम् ॥४०
चक्रवृक्षनदीनाम्नी नान्यर्वतनामिकाम् । न यज्ञाहिप्रेष्यनान्नां नातिभीषणनामिकाम् ॥४१
यस्यास्तु न भवेद्भ्राता न विज्ञायेत वै पिता । नोपगच्छेद्विं तां प्राज्ञः पुत्रिकाशर्मशङ्कया ॥४२
हृंसस्वरानेकवर्णं भधुपिङ्गललोचनाम् । तादृशीं वरदेत्कन्यां गृहार्थी खण्डस्त्वम् ॥४३
दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योग्यज्ञे स्थिते । परिवेत्ता त्वं विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥४४
परिवित्तिः परिवेत्ता च यथा स परिविद्यते । सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥४५
. तीव्रे देशान्तरस्थे ता पतिते व्रजिते तथा । योगशास्त्रमियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥४६
खञ्जवामनकुञ्जेषु गद्गदेषु जडेषु च । जात्यन्थे बधिरे भूके न दोषः परिवेदने ॥४७

माता के सपिण्ड से पृथक् और पिता की असगोत्री कन्याएँ द्विजातियों के लिए विवाह तथा उपभोग के लिए प्रशस्त बतायी गई हैं ॥३७

अरुण ने कहा—आप ने द्विजातियों के लिए दार कर्म एवं मैथुन के लिए उसी कन्या को प्रशस्त बताया है, ठीक है, पर, वह दार-कर्म क्या वस्तु है ॥३८

आदित्य बोले—विनतात्मज ! वैदिक अग्निहोत्रादि कर्म ही दार-कर्म कहलाता है, इसके लिए पाणियहीत स्त्री का होत्रा अत्यन्त आवश्यक है, और मैथुन के लिए भी । क्योंकि दो व्यक्तिं (स्त्री पुरुष) के इन्द्रिय संयोग के कर्म को ही मैथुन कहते हैं ॥३९। कपिल वर्ण वाली, अधिकांशी, रोगिणी, लोमहीना, अधिक लोम वाली, कपट करने वाली, पिङ्गल वर्ण की तथा नक्षत्र, वृक्ष, नदी, पर्वत, यज्ञ, नाग, द्रूत, एवं अतिभीषण नाम वाली कन्याओं का पाणियहण न करना चाहिए । जिसके भ्राता न हों, और पिता निश्चित न हों, बुद्धिमान को चाहिए कि ऐसी कन्यां के साथ विवाह सम्बन्ध न स्थापित करें, क्योंकि कदाचित् अपने ही कुल की उसे पुत्री होने से धर्म के नाश होने की संभावना रहती है ॥४०-४१। स्वगृहिषि ! गृहस्थ होने के लिए, हंस के समान स्वर, समान रूप रंग, मधु एवं पिङ्गल वर्ण के समान नेत्र वाली कन्याओं के पाणियहण करने चाहिए ॥४२। अपने ज्येष्ठ भ्राता के पहले ही जो स्त्री-विवाह एवं अग्नि होत्र कर्म करता है, उसे परिवेत्ता कहा जाता है, और उसके पूर्वज को परिवित्ति । परिवित्ति, परिवेत्ता, उसकी स्त्री, कन्या पिता एवं यज्ञ (विवाह में हवन) करने वाले ब्राह्मण इन सभी को नरक की प्राप्ति होती है ॥४३-४५। यदि ज्येष्ठ भ्राता में कोई रोग हो—नपुंसक, विदेश का निवासी, पतित, संन्यासी एवं योगी हो गया हो—तो उसे (छोटे भाई को) अपनी स्त्री के साथ कर्म करने में दोष का भागी नहीं बनना पड़ता । बड़े भाई लंगड़, वामन, कूबड़े साक न बोलने वाले जड़, जन्मान्थ, बहिर, और गूंगे होने पर भी छोटे भ्राता को अपनी स्त्री के साथ रहन-सहन में कोई आपत्ति नहीं हो सकती है । जिस

न शादं तु कनिष्ठस्य विकुलाम् च कन्यका । वरश्च कुलशीलाम्यां न शुद्धयेत् कदाचन ॥
न मन्त्राः कारणं तत्र न च कन्या दृता भवेत् ॥४८
उद्घाहिता तु या कन्या न च प्राप्ता तु भैशुनम् । पुनरभ्येति भर्तरं यथा कन्या तथैव सा ॥४९
समाक्षिप्य मतां कन्यां पिता त्वक्तदोनिनाम् । कुलशीलवते दद्याश्च स्ताद्वोषः खगाधिप ॥५०

अनूरुखवाच्

एतेष्वौ प्रभवाः प्रोक्ता विवाहा ये जगत्पते । लक्षणं द्वृहि उत्तेषां समासात्तिमिरापह ॥५१

आदित्य उदाच

शुभां लक्षणसम्पन्नां कुलशीलगुणान्विताम् । अलङ्कृत्यार्हते दानं विवाहो द्वाह्य उच्यते ॥५२
सहधर्मकियाहेतोर्दानं समददन्धनात् । अलङ्कृत्यव कन्यादाः प्राजापत्यः स उच्यते ॥५३
प्रदानं यत्र कन्यादाः सहगेभिशुनेन तु । लवर्णादिः सगेत्रायास्त्तमार्षमृष्टयो विदुः ॥५४
अन्तर्वेद्यां समानीय कन्यां कनकनण्डिताम् । ऋत्विजे चैव यदानं विवाहो दैवसंज्ञकः ॥५५
एते विवाहाश्रत्वारो धर्मकामार्थदायकाः । अशुल्का अहृणा प्रोक्तास्तारयन्ति कुलद्वयम् ॥५६
ब्रुद्धेतेजु दत्तायामुत्पन्नो यः सुतः स्त्रियाम् । दातुः प्रतिग्रहीतुश्च पुनात्यासप्तमान्वितुन् ॥५७
विवित्ते स्वयमन्योऽन्यं स्त्रीपुंसोर्यः समागमः । प्रीतिहेतुः स गान्धर्वो विवाहः पञ्चमे भतः ॥५८

प्रकार कनिष्ठ (छोटे) का शाद नहीं होता है उसी प्रकार कुलहीन को कन्या प्रदान न करना चाहिए, क्योंकि कुल-शील-हीन होने पर उस वर की कभी शुद्धि नहीं हो सकती है । उसमें न मंत्र कारण होते हैं और न कन्या का वरण ही किया जाता है । ४६-४८। जिस कन्या का केवल विवाह संबंध हो चुका हो न कि मैंयुन भी, वह किसी दूसरे को अपना पति बना सकती है, क्योंकि दह कन्या के समान दी होती है । ४९। खगाधिप ! पिता को चाहिए अपनी उस अक्षता कन्या को अलंकृत करके किसी कुल-शील वाले दर को प्रदान करे, इससे उसे दोष भागी नहीं होना पड़ता । ५०

अनूरु ने कहा—हे जगत्पते ! आप ने इन आठ प्रकार के विवाह को बता दिया जो सुष्टि के लिए उपयुक्त होते हैं, हे अन्धकारनाशक ! उनके विस्तृत लक्षण भी बताने की कृपा करें । ५१

आदित्य बोले—शुभ, लक्षणों से युक्त, कुल-शील एवं गुण सम्पन्न कन्या को अलंकारों से अलंकृत करके किसी योग्य व्यक्ति को विवाह द्वारा देना ब्राह्म कहलाता है । ५२। धार्मिक क्रियाओं के सम्पन्न होने के लिए प्रतिज्ञावद दान आभरण भूषित कन्याओं का परिणय करना ‘प्राजापत्य’ विवाह कहा जाता है । ५३। जिस विवाह में दोगायों के साथ ऐसी कन्या का जो समान जाति एवं समान गोत्र की हो, दान किया जाता है, उसे ऋषिगण, ‘आर्ष’ (विवाह) कहते हैं । सुवर्णों से भूषित करके वेदी के मध्य में लाई गयी कन्या का ऋत्विज के लिए दान करना ‘दैव’ विवाह कहलाता है । ५४-५५। इन चार प्रकार के विवाहों द्वारा धर्म, अर्थ, एवं काम के सफलता पूर्वक दोनों कुलों का उद्धार होता है, और इसमें शुल्क के आदान प्रदान की व्यवस्था नहीं होती है, ऐसा बहुग ने बताया है । ५६। इन चारों विवाहों द्वारा स्त्री में उत्पन्न किये गये पुत्र, दाता, प्रतिग्रहीता एवं अपने सात पीढ़ी के परिवार का उद्धार करता है । ५७। जब स्वयं स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे की पूर्ण विवेचना कर प्रेमवश आपस में स्त्री पुरुष का संबंध स्थापित करते हैं, वह

हत्वा च्छित्त्वा च भित्त्वा च क्रोरन्तीं रुदतीं दृहात् । प्रसहा कन्याहरणं राक्षसोद्वाह उच्यते ॥५९
 शुल्कं प्रदाय कन्याया हरणं व्यसनादपि । प्रसादं हेतुरुक्तोयमासुरः सप्तमस्तथा ॥६०
 सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति । स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचश्चाष्टमोऽध्यमः ॥६१
 एहान्सशुल्कान्सामान्यान्विवाहांश्चतुरो विदुः । केवलं क्षत्रियस्यैव वीर्यं छित्त्वा हि राक्षसः ॥६२
 प्राप्ते पूर्वविवाहे तु विधिवर्वाहिकः शिदः । दर्तव्यस्तु व्रिभिर्वार्णः सम्येनाग्रिमासिकः ॥६३
 दोषवत्याः प्रदाने तु दातुः वर्णवर्तार्दमः । स्यात् शुल्कप्रदाने च कन्यायाश्चापवर्जने ॥६४
 भोजोपवर्तनं द्वेषः स्त्रीधनस्य निवर्तनस् । आकांक्षा तीर्थसंरोधस्त्वागाहेतुश्च वश्यते ॥६५
 परस्परस्य सम्बन्धान्मोजः स्त्रीपुंसयोः स्मृतः । न स्यादन्यतरः प्रीतो रोषात्साम्प्रतिकादपि ॥६६
 बाधते चेत्प्रतिर्भायां स तु द्वेष इति स्मृतः । वृत्तिगभरणं शुल्कं लाभत्रे स्त्रीधनं भवेत् ॥६७
 भोक्तुस्तु स्वयमेवेदं प्रतिज्ञाहननं भवेत् । वृथा मोक्षेण भोगेन स्त्रियै दद्यात्सुद्धिकम् ॥६८
 आपत्तिसमये जाते स्त्रीधनं भोक्तुमर्हति । आकांक्षेताष्टवर्षाणि भर्तपि प्रसवं स्त्रियाः ॥६९
 जायन्ते यदि नो पुत्रास्तस्या यत्ने महत्यायि । ततो विन्देत पुत्रार्थी धर्मतः झुलजां स्त्रियम् ॥७०

पाँचवा 'गान्धर्व' विवाह कहलाता है । ५८। मार-काट नचाकर रोती, बिलखती हुर्द कन्या का बलात् अपहरण करने को छठीं 'राक्षस' विवाह बताया गया है । ५९। व्यसनी होने के नाते अपने प्रसन्नार्थं शुल्क प्रदान कर किसी कन्या का हरण करना सातवाँ 'असुर' विवाह कहा गया है । ६०। अत्यन्त निद्रा में निमग्न मत्त एवं अधिक मदोन्मत्त कन्या का एकान्त में उपभोग करना यह पापी, आठवाँ 'पैशाच' विवाह के नाम से ख्यात है । ६१। ये चारों निवाह सशुल्क होने के कारण सामान्य विवाह बताये गये हैं, और राक्षस विवाह में केवल क्षत्रियों के पराक्रम के नाशपूर्वक उन्हीं की कन्याओं का अपहरण होना बताया गया है । प्रथम बताये गये चार प्रकार के विवाह का निधान कल्प्याणात्मक वहा गया है, अतः तीनों वर्णों को चाहिए कि विधानपूर्वक प्रतिज्ञा बद्ध अग्नि को साधी बनाकर उन्हीं विवाहों को सुसम्पन्न करें । ६२-६३। किसी दोषपूर्ण कन्या के प्रदान करने वाले से छानवे पण दंड के रूप में ले लेना चाहिए । शुल्क प्रदान करने एवं कन्या विवाह के रोकने वाले से भी इतना ही दंड के रूप में लेना चाहिए स्वयं मोक्ष की चेष्टा करना, द्वेष, स्त्री धन का व्यय करना, आकांक्षा, एवं तीर्थ-वास ये सभी आपस में एक दूसरे के त्याग के हेतु बताये गये हैं, मैं इन्हें क्रमशः विस्तृत रूप में बता रहा हूँ । स्त्री पुरुष के पारस्परिक संबंध स्वापित होने से मोक्ष होना निश्चित बताया गया है, और वही उपयुक्त भी है, न कि उनमें किसी एक का प्रसन्नता या तात्कालिक रोप वश उसका त्यागकर मोक्ष की चेष्टा करना । ६४-६६। पति स्त्री को कष्ट पहुँचा रहा हो, वही द्वेष लाभ होना, ये सभी स्त्री के धन बताये गये हैं । भोक्ता के स्वयं इसके उपभोग करने से उसकी प्रतिज्ञा का हनन हो जाता है । एकांकी मोक्ष के लिए चेष्टा करना व्यर्थ होने की भाँति स्वयं उसका उपभोग भी व्यर्थ है अतः अपनी वृद्धि के लिए उसे स्त्री को प्रदान करना ही श्रेयस्कर होता है । आपत्ति काल में स्त्री धन का उपभोग करना अनुचित नहीं होता है । पति को चाहिए कि प्रसव के लिए स्त्री की आठ वर्ष तक प्रतीक्षा करता रहे, यदि उस बीच में महान् प्रयत्नशील रहने पर भी उससे पुत्रोत्पन्न नहीं हुआ तो उसके पश्चात् पुत्र के लिए किसी प्रशस्त कुल की कन्या का पाणिग्रहण धार्मिक विधान पूर्वक सुसम्पन्न करे । क्योंकि इस लोक में प्रसवार्थियों के लिए पुत्र लाभ से उत्तम कोई अन्य वस्तु नहीं है । यदि शुल्क प्रदान कर किसी

पुत्रलतापात्परं सोके नास्ति हि प्रसवार्थिनः । एतां शुल्कस्य तां नुक्त्वा अन्यां लब्ध्युं यदीच्छति ॥
 समस्तात्मोषयित्वार्थः सूर्योदां परमां वरेत् ॥७१
 एका शूद्रस्य वैश्यस्य है तिथः क्षत्रियस्य तु । चतुर्व्वां ब्राह्मणस्य स्युभार्या राजो यथेष्टतः ॥७२
 अतीर्थगमनात्पुंसतीर्थे संग्रहनात्मित्रायाः । उभयोर्धर्षलोपः स्यात्स्वेष्वेव^१ तु विशेषतः ॥७३
 योगपदे तु तीर्थानां विवाहकमरो द्रजेत् । तत्साम्यं जीवपुत्रा दर्श ग्रहणकमसोऽपि वा ॥७४
 ब्राह्मादिभिर्विलाहैस्तु संस्कृती हौं संस्कृती हौं खगाधिप । अष्टौ विवाहा वर्णानां वैनतेय उत्थान्ति वै ॥७५
 ब्राह्मो दैदस्त्वर्यार्थं प्राजापत्यः खगाधिप । गान्धर्वश्वामुरो रक्षः पैशाचस्त्वष्टमोऽध्यमः ॥७६
 प्रशस्तः क्षिद्यादीनां विभादीनां तु मानताः । प्रतिष्ठादयो बद्धाः^२ विवाहा ब्राह्मणस्य तु ॥७७
 क्षत्रियस्यानि देवा तु प्रतिप्रहविर्वजिता । प्रवृत्ति केचिदिच्छन्ति दानमित्यपरे स्त्रियाः ॥
 पावनं पुरुषाणां तु विवाहं परिचक्षते ॥७८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे सप्तमीकल्पे ब्राह्मे पर्वणि सूर्यरूणसंवादे विवाहविधिवर्णनं नाम
 द्वृष्टशीत्यधिकशततमोऽध्यायः । १८२।

अन्य स्त्री को उपभोगार्थ रखना चाहता है, तो उस धन द्वारा सभी भाँति के संतोषार्थ किसी सूर्योदा स्त्री का वरण करे । क्योंकि शूद्र के लिए एक स्त्री वैश्य के लिए दो, क्षत्रिय के लिए तीन एवं श्रीसम्पन्न ब्राह्मण के लिए चार स्त्रियों के रखने का यथेच्छ नियम है । पुरुष के तीर्थ यात्रा न करने और स्त्री के तीर्थ सेवन करने से दोनों के धर्म का लोप होना बताया गया है, विशेषकर द्रव्य वाले के लिए । ६७-७३। स्त्री पुरुष दोनों तीर्थ यात्रा करना चाहते हैं तो विवाह का क्रम लेना चाहिए अर्थात् प्रथम विवाहिता रहते दूसरी आदि स्त्री के साथ यात्रा न करे । यदि किसी के पुत्र हो, तो उसे साथ जो जाने में क्रम की अपेक्षा नहीं की जाती है । क्योंकि खगाधिप ! ब्राह्म आदि विवाहों द्वारा वे दोनों दम्पति सुसंस्कृत हो जाते हैं । इस प्रकार वैनतेय ! जटिवालों के लिए आठ प्रकार के विवाह बताये गये हैं—ब्राह्म, दैव, आर्य, प्राजापत्य, गांधर्व, आमुर, राक्षस, एवं पैशाच ये ही आठ प्रकार के विवाह हैं । क्षत्रियों के लिए अन्नत्रिय, वैश्य, एवं शूद्र इन तीनों वर्णों के साथ, ब्राह्मणों के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों वाली कन्याओं के साथ मान पूर्वक विवाह करना प्रशस्त बताया गया है । मन्त्र पूर्वक प्रतिग्रह आदि के ग्रहण स्वरूप ब्राह्मणों के विवाह होने चाहिए । क्षत्रियों को प्रतिग्रह स्वरूप कन्यादान न लेना चाहिए । कुछ लोगों ने प्रवृत्ति द्वारा और कुछ लोगों के दान के रूप में स्त्रियों का ग्रहण करना बताया गया है । इस प्रकार पुरुषों के पावन विवाह की व्याख्या कर दी गई है । ७४-७८

श्रीभविष्यमहापुराण के ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सूर्यरूण संवाद में विवाह विधि वर्णन
 नामक एक सौ बयासीर्वाँ अध्याय समाप्त । १८२।

१. द्रव्येषु सत्स्वेवेत्यर्थः । २। मन्त्रबद्धा इत्यर्थः ।

अथ त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्राद्धविधिकथावर्णनम्

भास्कर उवाच

दुर्यात्पञ्चमहात्मानं धिक्कारो द्विजस्य सः । शूतपित्रमरणहासनुष्याणां दथाविष्टि ॥१
 सरा सदाननुत्पानां फलार्थमपरे रथताः । नित्यानित्यमिति प्राहुर्नुष्ठानकलं परे ॥२
 अतिथेः परितोषाय चर्त्त्वर्य विश्वीयते । अदृष्टनियमादृष्टमारोग्यमन्तं च दर्जनम् ॥३
 श्रिष्ठोष्टकात्तु कर्तव्या मध्यावता चतुर्थिङ्गा । शाकपायसपूर्येत्तु मांसेत् तु चतुर्थिका ॥४
 प्रतिपदि क्रियते यनु चतुर्षार्वणमुच्यते । स्त्वगृहोत्त्विधानेन ततु पक्षादि कीर्त्यते ॥५
 नित्यं नैमित्तिं काम्यं वृद्धिशाढं लपिण्डनम् । पार्वणं चैति विज्ञेयं गोङ्गशुद्धिर्यमुत्तमम् ॥
 कर्नागं नवमं प्रोक्तं वैदिकं दशमं स्मृतम् ॥६

अनूरुहदाच

यदेतद्भूवता प्रोक्तं शाढं द्वावश्या विभो । तस्य सर्वस्य मां श्रुहि लक्षणं वै पृथक्पृथक् ॥७
 नित्यं किमुच्यते श्राद्धं कि वा नैमित्तिं भवेत् । काम्यादि देवदेवेश एतेषां लक्षणं वद ॥८

अध्याय १८३

श्राद्धविधि कथा-वर्णन

भास्कर बोले—विधान पूर्वक, भूत, पितृ, देव, ब्रह्म एवं मनुष्यों के उद्देश्य से पाँच महायज्ञों का अनुष्ठान करना द्विजों के लिए आवश्यक होता, क्योंकि यह उसकी अधिकारपूर्ण चेष्टा है । १। किसी का सम्मत है कि धन समेत इन कृत्यों को फलार्थ करना चाहिए, कोई इस कर्म को नित्य और अनित्य बतलाते हैं और कोई इसे आनुषांगिक फलार्थ करने को कहते हैं । २। अतिथि के भली भाँति संतोष के लिए परिचर्या (सेवा) करनी आवश्यक होती है । अदृष्ट नियमों के पालन स्वस्य रहने पर ही संभव होता है, अतः अस्वस्य होने पर उसका त्याग करना अनुचित नहीं है । ३। शाक, सीर, एवं मालपूरण द्वारा तीन अदृष्ट (पितृदेव के उद्देश्य से क्रियाएँ) और मांस द्वारा मध्यवर्ती चतुर्थिका नामक क्रियाएँ सम्पन्न करना चाहिए । प्रतिपदा तिथि में जो क्रिया सुसम्पन्न होती है, उसे चतुर्षार्वण कहा जाता है । अपने गृह्यसूत्रोत्त विधान द्वारा सम्पन्न किये गये कर्म को 'पक्षादि' कहते हैं । ४-५। नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धिशाढ, सपिण्डन पार्वण, उत्तमगोष्ठ (गौवों के आवासस्थान) के शुद्धिनिमित्तक कर्माङ्ग तथा दशवर्ती वैदिक कर्म, 'इन्हें सुसम्पन्न करना मनुष्यों के लिए नितान्त आवश्यक हैं । ६

अनूरुह ने कहा—विभो ! आप ने इन बारह प्रकार के श्राद्ध कर्म करने के लिए आवश्यक बताये हैं । पर इनके लक्षणों को बिना जाने कैसे संभव हो सकता है, अतः इनके पृथक्, पृथक, लक्षण भी बताने की कृपा करें । ७। देवावधिदेव ! नित्य, नैमित्तिक, एवं काम्यादि श्राद्धों के लक्षण क्या हैं ? आप मुझे बताने की कृपा करें । ८

आदित्य उवाच

अहन्यहनि यच्छादं तप्नित्य खग कीर्तेतम् । वैश्वदेवविहीनं तु अशक्तावुदकेन तु ॥१९
 एकोद्दिष्टं तु यच्छादं तप्नेभित्तिकमुच्यते । तत्सैव प्रकर्तव्यमयुग्मान्भेजयेद्विजान् ॥२०
 कामयुक्तं हि तत्काम्यमभिप्रेतार्थसिद्धये । पार्वणेन विधानेन तदप्युक्तं खगाधिप ॥२१
 वृद्धौ यत्कियते श्राद्धं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते । सर्वं प्रदक्षिणं कार्यं पूर्वाह्ले तृप्तीतिना ॥२२
 गङ्घोदकतिलर्युक्तं कुर्यात्प्रश्चतुष्टयम् । अर्धार्थं पितृपात्रेत्रुं प्रेतलक्ष्मं प्रमोक्षयेत् ॥२३
 ये समाना इति द्वान्यामेतज्ज्ञेयं सपिण्डनम् । नित्येन तुल्यं शेषं स्त्यादेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥२४
 दर्शे वै क्रियते यत्तु तत्पर्णमुदाहृतम् । पर्वणि क्रियते यच्च तत्पार्थणमिति स्थितिः ॥२५
 गोन्यश्र क्रियते श्राद्धं तद्गोष्ठश्राद्धमुच्यते ॥२६
 बहनां विदुवां सम्पत्त्युक्तार्थं पितृपृष्ठये । क्रियते शुद्धये यद्दे ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥२७
 शुद्धयर्थमिति तत्प्रोक्तं वैनतेय मनीषिभिः ॥२८
 निषेककाले सोमे च सीमन्तोश्रयने तथा । ज्ञेयं पुंसवने श्राद्धं तच्च कर्माङ्गसेव च ॥२९
 क्रियते देवमुद्दिश्य सप्तम्यादिषु यत्लतः । गच्छेदेशान्तरे यस्तु श्राद्धं कुर्यात्तु सपिचा ॥३०
 तद्यत्नार्थमिति प्रोक्तं प्रदिशोच्च न संशयः ॥३१

आदित्य बोले—खग ! प्रतिदिन किये जाने वाले श्राद्ध को 'नित्य श्राद्ध' कहा जाता है । वलि वैश्वदेव कर्म अन्नादि द्वारा सुसम्पन्न करने में असमर्थ होने पर केवल उदक (जल) से ही सम्पन्न करना चाहिए । १। एकोद्दिष्ट श्राद्ध को 'नैमित्तिक श्राद्ध' कहते हैं, उसे सैदैव करते रहना चाहिए और उसमें विषमसंख्या वाले ब्राह्मणों का भोजन भी कराना चाहिए । २। कामना वश (किसी मनोरथ की सफलता के लिए) किये गये कर्म को 'काम्य' कहा जाता है, खगाधिप ! उसे पार्वण के विधान द्वारा समाप्त करना चाहिए । ३। वृद्धि के लिए किये गये श्राद्धों को 'वृद्धिश्राद्ध' बताया गया है । यज्ञोपवीतधारी को आवश्यक है कि इन बताये गये कर्मों को पूर्वाह्ला काल में प्रदक्षिणापूर्वक सुसम्पन्न करें । ४। गंध (चन्दन आदि) जल तथा तिल मिश्रित चार पात्रों की स्थापना अर्ध्य के निमित्त करके पितृ के पात्रों में प्रेत पात्र के अर्ध्य जल का संमिश्रण 'ये समाना' आदि मंत्र के उच्चारण पूर्वक करें इसी का नाम 'सपिण्डन कर्म' है । शेष कर्म नित्य कर्म की भाँति होते हैं, स्त्रियों के उद्देश्य से भी एकोद्दिष्ट श्राद्ध किया जाता है । अमावस्या के दिन किये गये श्राद्ध को भी पार्वण कहा जाता है और पर्व की तिथियों में किये जाने वाले को पार्वण कहते ही हैं । गौओंके उद्देश्य से किये जाने वाले को 'गोष्ठ श्राद्ध' कहा जाता है । पितरों की तृप्ति के लिए एवं इसी व्याज से विद्वान ब्राह्मणों की कुछ सेवा भी हो जायेगी, इस विचार से किये गये श्राद्ध कर्म को 'सम्पत्सुखार्थ' कहा जाता है और वैनतेय ! बुद्धि-शुद्धि के निमत्त जिस कर्म में ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है, उसे मनीषियों (विद्वानों) ने 'शुद्धयर्थ' बताया है । ५-६। गर्भाधान के समय चन्द्र शुद्धि में, सीमंतोन्नयन, तथा पुंसवन में किये जाने वाले श्राद्ध को 'कर्माङ्ग' कहते हैं । ७। देवताओं के उद्देश्य से विदेश यात्रा के समय सप्तमी आदि तिथियों में धी द्वारा जो श्राद्ध किया जाता है उसे 'यत्नर्थक' कहा जाता है और उसके सुसम्पन्न करने पर वह उस यात्रा में सफल होता है, इसमें सदेह नहीं । ८। शरीर के

शरीरोपचये श्राद्धमध्यवृद्धरथमेव च । उष्टुर्धर्थमेतद्विजेयमौपचारिकमुच्चते !!१९
सर्वेषामेव श्राद्धानां श्रेष्ठं सांबत्सरं स्तम् । क्रियते यत्खगश्रेष्ठं मृतेऽहनि ब्रुधैः सह !!२०
मृतेऽहनि पुनर्यस्तु न कुर्याच्छ्राद्धमादरात् । मातुश्र लगशार्दूल वत्सरात्ने मृतेऽहनि !!२१
नाहं तस्य लगश्रेष्ठं पूजां गृह्णामि नो हरिः । न ब्रह्मा न च वै रुद्रो न चान्ये देवतागणाः !!२२
तस्माद्यत्नेन कर्तव्यं वर्षं वर्षं मृतेऽहनि । नरेण लगशार्दूलं भोजकेन विशेषतः !!२३
भोजको यस्तु वै श्राद्धं न करोति लगाधिष्प । सतांपत्रुष्यां सततं वर्षेश्वरं मृतेऽहनि !!२४
स याति नरकं घोरं तासिङ्गं नाम नामतः । ततो भवति दुष्टात्मा नगरे सुकरं खन ॥२५

अनूरुद्धवाच

न जानाति दिनं यस्तु न मासं विबुधाधिष्प । मृतौ यत्र महाप्राज्ञं पितरौ स कथं नर ॥
श्राद्धं करोतु वै ताम्यां विधिवद्वत्सरात्मकम् ॥२६

आदित्य उवाच

न जानाति नरो यस्तु मृतात्मां विनतात्मज । मासं दिनं मृतानां तु पितृणां सगसत्तम ॥२७
यथा कुर्यात्खगश्रेष्ठं शृणु छत्त्वं समासतः । मृताहं यो न जानाति मानवो हिन्दतात्मज ॥२८
तेन कार्यममायां च श्राद्धं सांबत्सरं खग । मासे मार्गशिरे बीर आये वा विधिवत्खग ॥२९
विशेषतो भोजनेन यो मां पूजयते सदा । प्रीतये मम वै तेन सम्पूज्याः पितरः सदा ॥३०

अव्ययों के उपचारार्थ, अश्वों के वृद्धरथ, और पुष्टि के लिए किये गये श्राद्ध को 'औपचारिक' कहा जाता है । १९। खगश्रेष्ठ ! सभी श्राद्धों में 'वार्षिक श्राद्ध' श्रेष्ठ बताया जाता गया है जो (वर्ष के अंत में) मृत प्राणी के मरण मास-तिथि में विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा सुसम्पन्न किया जाता है । २०। खगशार्दूल ! मृतप्राणी के वार्षिक दिन में तथा माता के वर्ष की समाप्ति में मरण दिन पर जो सादर श्राद्ध नहीं करते, तो खगश्रेष्ठ उनके द्वारा को गई पूजा को मैं हरि (विष्णु), ब्रह्मा, रुद्र, एवं अन्य देवगण, कोई भी नहीं स्वीकार करता है । अतः खगशार्दूल ! मनुष्य को उचित है कि मृत प्राणी के प्रत्येक वर्ष की समाप्ति में श्राद्ध अवश्य करे, विशेषकर भोजकों के लिए । २१-२३। खगाधिष्प ! जो भोजक अपने माता-पिता के लिए उनके प्रत्येक वर्ष की समाप्ति में मरण दिन में निरन्तर श्राद्ध नहीं करता है, उसे 'तामिक्ष' नामक घोर नरक की प्राप्ति होती है, उसके अनन्तर खग ! वह दुष्टात्मा नागरिक भूकर होता है । २४-२५

अरुण ने कहा—हे विबुधाधिनायक ! जो अपने माता पिता के मरण दिन (तिथि) एवं मास नहीं जानता है, वह उनके निमित्त विधान पूर्वक वार्षिक श्राद्ध कैसे सुसम्पन्न करे ? । २६

आदित्य द्वोते—विनतात्मज ! खगसत्तम ! जो मृतप्राणी के तथा मृत अपने माता-पिता के मास एवं तिथि को नहीं जानता है, तो खगश्रेष्ठ ! जिस प्रकार उसे करना चाहिए, वह सब कुछ मैं बता रह हूँ, सुनो ! विनतात्मज ! जो मनुष्य मृत प्राणी के दिन को न जानता हो, तो अमावस्या के दिन उसे उस मृत प्राणी के निमित्त वार्षिक श्राद्ध करना चाहिए । खग ! मार्गशीर्ष (अगहन) अथवा माघ के मास में विशेषकर भोजन द्वारा जो मेरी प्रसन्नता के लिए सदैव मेरी पूजा करते हैं, उनके पितर गण भी

मर्मेष्टाः पितरो नित्यं गावो विश्राश्र मुद्रतः । तस्माच्च ते सदा पूज्यः मद्भक्तेन विशेषतः ॥३१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे श्राद्धविधिकथनं
नाम अ्यशीत्यधिकशततमोष्यायः । १८३।

अथ चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्राह्मणधर्मदिव्यर्णनम्

प्रस्तुते प्रत्यये नैव प्रज्ञपूर्वं प्रतिप्रहः । यजनेऽप्याज्ञाने वादे उद्दिष्टो वेदविक्रमः ॥१
वेदविफःयनिर्दिव्यं स्त्रिया चावर्जितं इनम् । न देयं पितृदेवेष्यो यच्च इस्तीवात्तदगाधिष्ठ ॥२
अनुयोगेन यो दद्याद्ब्राह्मणाय प्रतिप्रहन् । स पूर्वं नरकं याति ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ॥३
वेदाश्चरणि यावन्ति नियुज्यन्तेर्यकारणात् । नावत्यो भूणहत्या वै वेदविकल्पयमाप्नुयात् ॥४
वैश्वदेवेन यो हीन आदित्यस्य च कर्त्तणः । सर्वे ते वृषला ज्ञेयाः प्राप्तवेदाश्र ब्राह्मणाः ॥५
येषामध्ययनं नास्ति ये च केविदनप्रयः । कुलं दाऽन्नोत्रियं येषां सर्वे ते शूद्रधर्मिणः ॥६
अकृत्वा वैश्वदेवं तु यो भुज्ञते सोऽनुबुधः खग । वृथा तेनाभ्नपाकेन यमयोनि ब्रजेतु सः ॥७

सदैव पूजित होते हैं । मुद्रतः ! पितर, गायें, एवं ब्राह्मण लोग मुझे नित्य अत्यन्त प्रिय हैं, अतः मेरा भक्त विशेषकर इनकी पूजा सदैव करता रहे, क्योंकि ये उसके पूज्य हैं । २७-३१

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में श्राद्धविधिकथा वर्णन
नामक एक सौ तिरासीर्वाँ अध्याय समाप्त । १८३।

अध्याय १८४

ब्राह्मणधर्म का वर्णन

अपने को विस्थात करने, विश्वास पात्र बनने के लिए, परिचित लोगों के यहाँ आग्रह न करने पर भी प्रतिग्रह लेने, यज्ञ कराने, अध्यापन करने एवं वाद-विवाद (व्याख्यान) के द्वारा छः प्रकार से वेद का विक्रय होना बताया गया है । १। खगाधिष्ठ ! पितृ तथा देव के उद्देश्य से वेद-विक्रय द्वारा प्राप्त धन, एवं स्त्री धन का व्यय न करना चाहिए । क्योंकि ऐसा करने वाला पुरुष नपुंसक कहलाता है । २। जो कोई किसी ब्राह्मण को किसी अनुयोग द्वारा प्रतिग्रह प्रदान करता है, तो पहले देने वाला नरक गामी होता है और पश्चात् लेने वाला ब्राह्मण भी । ३। द्रव्योपार्जन के लिए जितने वेदाकारों को (प्रमाण रूप में) एकत्र किया जाता है, उस वेद के विक्रय द्वारा उतनी भूण हत्या का भागी वह होता है । ४। वेद ज्ञाता ब्राह्मण भी वैश्वदेव एवं सूर्य की उपासना से वंचित रहने पर 'वृषल' (शूद्र) कहलाते हैं । ५। जिनके कुल में अध्ययन, अग्नि कार्य (अग्नि होत्र), एवं वेदपाठ नहीं होता है, उन्हें शूद्र धर्म का समझना चाहिए । खग ! वैश्वदेव किये बिना जो भोजन करता है, वह अज्ञानी है एवं उसका पाक बनाना व्यर्थ है, क्योंकि उसे नरक गामी होना ही पड़ेगा । ६-७। वैश्वदेव के समय प्रिय, द्वेषी,

प्रियो वा यदि वा देष्ट्वो मूर्खः पण्डित एव च । दैश्वदेवे तु सम्प्राप्ने सोऽतिथिः स्वर्गसद्क्रमः ॥८
 नैकग्रामीणमतिथिं विप्रसहृदयतिकं तथा । अचिन्त्योऽभ्यागतो यस्मात्सादतिथिरूच्यते ॥९
 अचिन्त्यः स तु वै नाम्ना दैश्वदेव उपागतः । अतिथिं तं विजानीयात् पुनः पूर्वज्ञागतः ॥१०
 याऽच्च व्राण्युयावशं कृताशीः स्नातको ह्रिजः । तस्याभस्य चतुर्भागं हृतकारं विदुः खण ॥११
 प्रासमाश्रा भवेद्विक्षा चतुर्षालं चतुर्गुणम् । युक्तसानि च चत्वारि हृतकारो विधीयते ॥१२
 आरुद्वो नैष्ठिकं धर्मं यस्तु प्रच्यवते पुनः । चांद्रायणं चरेन्मासमिति विद्धि खगाधिप ॥१३
 आरुदपतितापत्या ब्राह्मणो वृषलेन च । द्वावेतौ विद्धि चांडालौ देविश्राद्यश्च जायते ॥१४
 ब्राह्मणी कुलटा नित्यं स्वकं त्यक्त्वा पर्ति खण । अन्यस्य विशते गेहे ब्राह्मणस्य खगाधिप ॥१५
 उत्पद्यते तु यस्तस्या ब्राह्मणेन महामते । स चांडालो महाप्रोक्तो महाचाण्डाल इत्युत ॥१६
 यस्तु प्रदर्जितो भूत्वा पुनः सेवति मैथुनम् । षष्ठ्यवर्षसहब्राणि विष्णायां जायते कृमिः ॥
 पञ्चवार्ष्येन शुद्धिः स्यावित्याह नम वेहकृत् ॥१७
 अभोज्यं ब्राह्मणस्याश्च वृषलेन निमन्त्रितम् । तथैव वृषलस्याश्च ब्राह्मणेन निमन्त्रितम् ॥१८
 ब्राह्मणाश्च वदच्छूद्धः शूद्राश्च ब्राह्मणो ददत् । उभावेतावभोज्यान्नौ भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१९

मूर्खं, अथवा पंडित कोई भी आ जाये वह 'अतिथि' कहलाता है, और उसकी सेवा से स्वर्ग की प्राप्ति संभव बतायी गयी है । ८। जो एक ही गाँव में न रहे, आने के लिए कोई तिथि निश्चित न हो ब्राह्मणों की भाँति सदाचारी हो, एवं जिसके विषय में कभी कोई कंत्प्या न की गई हो, इस प्रकार के आये हुए पुरुष को अतिथि कहा जाता है । ९। उस अकाल्यनिक पुरुष के आने पर समझना चाहिए कि उसी नाम एवं रूप द्वारा दैश्वदेव का समागम हुआ है । उसे ही अतिथि जाने, न कि पहले से उपस्थित को । १०। खण ! स्नातक ब्राह्मण भोजन के निमित्त प्राप्त अपने अन्न के चौथाई भाग को हृतकार (अतिथि के देने के लिए) समझे । ११। भिक्षा, जो एकग्रास मात्र की होती है, चतुर्षाल, चौगुने, एवं पुष्कल ये चार के हृतकार (अतिथि के लिए प्रदेय भोजन) होते हैं । १२। खगाधिप ! किसी नैष्ठिक धर्म का पालन करते हुए कभी उससे च्युत हो जाये, तो उसे एक मास का चांद्रायण द्रवत करना चाहिए । १३। किसी धर्मानुष्ठान में पतित होने वाले ब्राह्मण की संतान एवं वृषल ब्राह्मण, इन दोनों को ही चांडाल जानना चाहिए । १४। खण ! जो कुलटा (व्यभिचारिणी) ब्राह्मणी नित्य अपने पति का त्याग कर किसी अन्य ब्राह्मण के घर में जाती है, हे खगाधिप, महामते ! उसमें उस ब्राह्मण द्वारा जो सन्तान उत्पन्न होते हैं वे 'चांडाल' एवं 'महाचांडाल' बताये गये हैं । १५-१६। जो संन्यस्त होकर अपने पुनः मैथुन कर्म करता है, वह साठ सहस्र वर्षों तक विष्टा (मल) में कीड़ा होकर उत्पन्न होता रहता है । एकमात्र पंचवार्ष्य से ही उसकी शुद्धि संभव होती है, ऐसा मेरी शरीर के रचयिता (विश्वकर्मा) ने बताया है । १७। किसी वृषल ब्राह्मण द्वारा निमन्त्रित ब्राह्मण का अन्न अभोज्य हो जाता है, उसी प्रकार वृषल के अन्न ब्राह्मण द्वारा निमन्त्रित होने पर । कहीं भी किसी भोज में ब्राह्मण के यहाँ शूद्र भोजन देने वाला एवं शूद्रके यहाँ ब्राह्मण भोजन देने (परसने) वाला हो, तो उन दोनों के अन्न अभोज्य बताये गये हैं उनके अन्न भोजन कर लेने पर चान्द्रायण व्रत का विधान करना बताया गया है । १८-१९। यद्यपि किसी शूद्र के यहाँ उसके अन्न की सभी प्रकार की

उपनिषदेपयमेण शूद्राशं च पचेद्द्वजः । अभोज्यं तद्देवशं स च विप्रः पुरोहितः ॥२०
 शूद्राशं शूद्रसंपर्कं शूद्रेण सह वासनम् । शूद्राज्ञानागमः कश्चिज्ज्वलन्तमर्पि पातयेत् ॥२१
 शूद्राश्रोपहता विप्रा विद्वला रतिलालसाः । कुपिताः किं करिष्यन्ति निर्दिषा इव पश्चगाः ॥२२
 हस्तदत्तास्तु ये स्नेहाल्लवणव्यञ्जनादयः । दातारं नाधितिष्ठन्ति भोक्ता भुइक्ते तु किल्बिषम् ॥२३
 अथेसेन तु पात्रेण यदन्नमुपदीयते । भोक्ता विष्णाशनं भुइक्ते दाता तु नरकं ब्रजेत् ॥२४
 अझगुल्या दन्तकाष्ठां यत्प्रत्यक्षलवजं च यत् । मृत्तिकाभक्षणं चैव तुल्यं गोमांसभक्षणैः ॥२५
 नुखे पर्युषिते नित्यं नवाश्यप्रयतो द्विजः । तस्माच्छुद्धमर्याद्वा भक्षयेहन्तधावनम् ॥२६
 पुष्पालद्वाकारवस्त्राणि गन्धमात्यानुलेपनम् । उपवासे न हुष्ट्यन्ति दन्तधादनमञ्जनम् ॥२७
 गृहान्ते बसते मूर्खों द्वूरे चास्य गुणान्वितः । गुणान्विते च दातव्यं नास्ति मूर्खव्यतिक्रमः ॥२८
 ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे चेदविवर्जिते । ज्वलन्तमप्निमुत्सुज्य न हि भस्मनि हृयते ॥२९
 सप्तिकृष्टमधीयानां ब्राह्मणं यो व्यतिक्रमेत् । भोजनेनैव दानेन वहत्यासप्तमं कुलम् ॥३०

अनूरुहवाच

एवमेव जगन्नाथ देवदेव जगत्पते । किं तु यते पुरा देव श्रुतं वाक्यं महात्मनः ॥३१

मुखाका ब्राह्मण द्वारा ही सुसम्पन्न होती हो, और वही ब्राह्मण पाक भी बनाता हो, किन्तु फिर भी उसका अन्न अभोज्य ही होता है और वह ब्राह्मण उसका पुरोहित कहा जायेगा । २०। शूद्र के अश, शूद्र के साथ संपर्क रखना शूद्र के साथ निवास एवं शूद्र द्वारा ज्ञान की प्राप्ति करना ये सभी अग्नि के समान प्रज्वलित ब्राह्मण का भी अधः पतन करा देता है । २१। शूद्राश्र के भक्षण करने से हत तेज एवं रति करने के लिए आकुल, कोई ब्राह्मण, कुद्ध होने पर विषहीन सर्प की भाँति (किसी की प्रतिक्रिया के रूप में) कुष्ठ भी करने में असमर्थ रहता है । २२। स्नेह वश शूद्र ने यदि लवण एवं व्यंजन किती ब्राह्मण के हाथ में दे दिया तो देने वाले को किसी फल की प्राप्ति नहीं होती, प्रत्युत भोक्ता के लिए वह पापरूप हो जाता है । २३। लोहे के पात्र द्वारा अश्र प्रदान करने से भोक्ता के लिए वह अन्न विष्ठा (मल) स्वरूप होता है और उससे देने वाले को नरक की प्राप्ति होती है । २४। अङ्गुली से दंतधावन (दातून) करना, प्रत्यक्ष लवण का भोजन, एवं मिट्टी भक्षण करना, ये तीनों गोमांस भक्षण के समान हैं । २५। सबेरे प्रातः काल उठने पर मुख प्रतिदिन प्रर्युषित (वासी) हो जाता है, उससे ब्राह्मण किसी भी कर्म के करने में असमर्थ रहता है, इसलिए प्रथम मूर्खी या हरीं दातून से भली भाँति मुखशुद्धि करना आवश्यक होता है । २६। उपवास में पुष्प, अलंकार, वस्त्र, गंध, माला, उड्बन्त और दंतधावन एवं अंजन दूषित नहीं होते हैं । २७। मूर्ख घर में ही रह सकता है, और गुणी पुरुष उससे बहुत दूर, इसलिए जो कुछ प्रदेय वस्तु हो गुणी पुरुष को ही देन चाहिए, मूर्ख को कभी नहीं । वेदाध्ययन हीन ब्राह्मण का भी अतिक्रमण (त्याग) न होना चाहिए क्योंकि आहुति प्रज्वलित अग्नि में ही डाली जाती है, भस्म (राक्ष) के द्वेर में नहीं । जो अपने समीप रहने वाले विद्वान् ब्राह्मण की सेवा भोजनादि दान द्वारा नहीं करता है, अपितु अन्य दूर वालों की करता है, वह उससे अपने सातपीड़ियों का दहन करता है । २८-३०

अनूरुह ने कहा—हे जगन्नाथ, देवाधिदेव ! एवं जगत्पते ! आप ने जैसा कहा, सभी सत्य है, किन्तु

गदतो नारदस्यैव शृणु त्वं विद्युधाधिप । गदतो मे सुरथ्रेष्ठ धर्म्यमर्थं सुखावहम् ॥३२
 सत्यनिष्ठं द्विजं यस्तु शुक्लजार्ति प्रियं वदम् । मूर्खं पालण्डिनं वापि वृत्तिहीनमथापि वा ॥३३
 अतिक्रम्य नरो घोरं नरकं पातयेत्वग । सप्तं परान्सप्तं पूर्वान्युरुषानात्मना सह ॥३४
 तस्मान्नातिक्रमेद्वाजा ब्राह्मणं प्राप्तिवेशिकम् । सम्बन्धतस्तथासनं दौहित्रं विद्यते तथा ॥३५
 भागिनेयं विशेषणं तथा बन्धुं प्रहाधिप । नातिक्रमेन्नरस्त्वेतान्सुमूर्खानपि गोपते ॥
 अतिक्रम्य महद्वौद्रं रौरवं नरकं द्वजेत् ॥३६

आदित्य उलाच

एवमेतद्द सन्देहो यथा वदासि लेचर । ममात्यद्वगतं वीर ब्राह्मणं न परीक्षयेत् ॥३७
 सर्वदेवमयं विप्रं सर्वलोकमयं तथा । तस्मात्सम्पूजयेदेन न गुणास्तंस्य चिन्तयेत् ॥३८
 केवलं चिन्तयेज्जार्ति न गुणान्विनतात्मज । तस्मात्समन्वयेत्पूर्वमासनं ब्राह्मणं बुधः ॥३९
 यस्त्वासन्नमतिक्रम्य ब्राह्मणं पतितादृते । दूरस्थान्पूजयेन्सूढो गुणाद्यान्नरकं वजेत् ॥४०
 देवकर्मविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च । देवद्रव्यं द्विजान्नं च ब्रह्मस्वं ब्राह्मणार्जितम् ॥
 वियोन्यां क्षिपते यस्तु वियोनिमधिगच्छति ॥४१
 मा ददस्वेति यो ब्रूपाद्गवाप्निब्राह्मणेषु वै । तिर्यग्योनिशतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते ॥४२

विद्युधाधिप ! पहले समय में महात्मा नारद देव के मुख से इस विषय में मैने जो कुछ सुना है, सुरथ्रेष्ठ !
 धार्मिक एवं सुख प्रदान करने वाली उन बातों को मैं आपसे कह रहा हूँ, कृपया, सुन लें । समीप रहने वाले
 सत्यवादी, जाति (गौरवर्ण) शुक्ल प्रियंवद, मूर्ख, पालण्डी एवं वृत्तिहीन ब्राह्मण के त्यागपूर्वक किसी
 दूरस्थ ब्राह्मण को जो दान द्वारा सम्मानित करता है, वह अपने पूर्वी की सातपीढ़ी तथा होने वाली सात
 पीढ़ियों समेत नरक की प्राप्ति करता है । ३१-३४। अतः राजा को चाहिए कि अपने समीप वाले
 (पड़ोसी) ब्राह्मणों का त्याग कभी न करें । यदि उस पड़ोसी से दौहित्र (कन्या, पुत्र) भागिनेय
 (भाज्जा) अथवा बन्धु का संबंध हो तो प्रहाधिप ! वे कितने बड़े मूर्ख क्यों न हों, उनका त्याग कभी न
 करे । गोपते ! उनके त्याग करने पर उसे 'महारौरव' नामक नरक की प्राप्ति होती है । ३५-३६

आदित्य बोले—आकाशचारिन् ! तुम जैसा कह रहे हो, उसमें संदेह नहीं है । वीर ! मैंने भी यही
 निश्चय किया है यही जाना है कि ब्राह्मण की परीक्षा कभी न करनी चाहिए । ३७। ब्राह्मण, सर्वदेवमय
 एवं सर्वलोकमय रूप हैं इस लिए गुण की विना परीक्षा किये ही उनकी पूजा अवश्य करे । ३८।
 विनतात्मज ! केवल उनकी जाति का ज्ञान कर लेना चाहिए, न कि गुण का । इसलिए बुद्धिमानों को
 चाहिए कि समीप रहने वाले ब्राह्मण का सम्मान पहले करें । ३९। केवल पतित को छोड़कर अन्य पड़ोसी
 ब्राह्मणों को त्याग कर अन्य दूरस्थ ब्राह्मण विद्वान् का जो सम्मान करता है, उसे नरक की प्राप्ति होती
 है । ४०। देवताओं के उद्देश्य से किये जाने वाले कर्म के विनाश, ब्राह्मण धन का अपहरण, देव द्रव्य, एवं
 ब्राह्मण के अन्न का अपहरण, जिसे ब्राह्मण ने स्वयं उपार्जित किया है । नपुंसक स्त्री में वीर्य निषेप करने
 वाले एवं उसके साथ सम्भोग करने वाले, गो, अग्नि, एवं ब्राह्मण के निमित दान करने वाले को मना करने
 वाले ये सभी सैकड़ों बार पक्षी की योनि में उत्पन्न हो कर पश्चात् चांडाल के यहाँ उत्पन्न होते

यत्तु वाचा प्रतिज्ञातं कर्मणः नोपपादितम् । तदुणं प्रर्मसंयुक्तमिह लोके परत्र च ॥४३
 वेदविद्याव्रतस्नाते श्रोत्रिये गृहमागते । क्रीडन्त्योषधयः सर्वा यास्यामः परमां गतिम् ॥४४
 मधु मांसं सुरां सामं साक्षाद्यं लक्षणं त्वा । विक्रीयान्यतमं तेषां द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥४५
 गुडं तिलं तथा नीलं केशानोधूमकान्यवान् । विक्रीय ब्राह्मणो गां च कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥४६
 औष्ठमांवकदुग्धं च अन्नं मृतकसूतके । चौरत्यान्नं मृतशङ्खे भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥४७
 गदां भृङ्गोदके स्नातो नहनन्याश्च संगमे । समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुद्धिर्भवेत् ॥४८
 वेदविद्याव्रतस्नातः शुना दष्टो द्विजः खग । हिरण्योदकमिश्रं तु वृतं प्राशय विशुद्धयति ॥४९
 तिष्ठन्त्वान्यथ दद गच्छज्ञुना दष्टो द्विजः खग । इत्यन्नं प्राशय शुचिः स्यादौ यथाह भगदान्मनुः ॥५०
 व्रतिनश्चापि दष्टस्य त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम् । सधृतं च ततो भुक्त्वा ज्ञतशेषं समाचरेत् ॥५१
 ब्राह्मणी तु शुना दष्टा सोमे वृष्टं समाचरेत् । यदा न वृत्यते^१ सोमः प्रायश्चिन्नं कथं भवेत् ॥५२
 यां दिशं ब्रजते सोमस्नां दिशं चावलोकयेत् । सोममार्गण सा पूर्वा पञ्चपूतेन शुद्धयति ॥५३
 ब्राह्मणस्य ब्रह्मद्वारे पूर्यशोणितसम्भवे । क्रिमिभिर्दृश्यते यज्ञं निष्कृतिं लस्य वच्चित् ते ॥५४
 गदां तत्र पुरीशेण विकातं स्नानमाचरेत् । यदि श्रीरं घृतं पीत्वा कृमिदष्टो विशुद्धयति ॥५५

हैं ॥४१-४२। जो वाणी द्वारा कहकर उसे कार्यरूप में परिणत नहीं किया उसे लोक-परलोक में उस धार्मिक ऋण का भागी होना पड़ेगा ॥४३। वेदज्ञाता, व्रती, स्नातक, एवं श्रोत्रिय ब्राह्मण के आने परं घर की सभी औलधियाँ क्रीडा करने लशती हैं कि मुझे पहले उत्तम गति प्राप्त होगी ॥४४। मधु, मांस, सुरा, सोमरस, लाक्षा (लाह) आदि, तथा लवण इनमें किसी की बिक्री करने वाला ब्राह्मण चान्द्रायण करने पर शुद्ध होते हैं ॥४५। गुड, तिल, नील, केश, गेहूं या जवा के आटे एवं गत्ता, इनमें से किसी के विक्रय करने वाला ब्राह्मण 'सांतपन' नामक व्रत विधान से शुद्ध होता है ॥४६। उंटिनी तथा भेंडी के दूध, मरणाशौच के या सूतक के अश्र, चोरी के अन्त, और मृतकश्चाद्व (तेरही) में भोजन करने पर ब्राह्मण को चान्द्रायण भ्रत करना चाहिए ॥४७। कुत्ते के काट लेने पर गौओं के सींगों द्वारा पवित्र जल वाले जलाशय, तथा महानदियों के संगम में स्नान एवं समुद्र दर्शन से शुद्ध होना बताया गया है ॥४८। खग ! वेदविद्याव्यायी व्रती एवं स्नातक ब्राह्मण को कुत्ते के काटने पर सुवर्ण पात्र में जल मिश्रित धी के प्राशन से शुद्धि होती है ॥४९। खग ! बैठे रहने पर अथवा आते-जाते ब्राह्मण को कुत्ते के काटने पर वज्र के प्राशन से उसकी शुद्धि भ्रगवान् मनु ने बताया है ॥५०। किसी व्रती को काटने पर उसे तीन रात तक केवल धी का प्राशन करके उसके पश्चात् शेष व्रत विधान की समाप्ति करना चाहिए ॥५१। किसी ब्राह्मणी को कुत्ता के काट लेने पर चन्द्र दर्शन से उसकी शुद्धि हो जाती है । यदि चन्द्र दर्शन सम्भव न हो तो, जिस जिस दिशा में चन्द्र की यात्रा हो उस दिशा का दर्शन करे, चन्द्र मार्ग से उसकी शुद्धि निश्चित हो जाती है । किसी ब्राह्मण के घर ब्राह्मण के पूरा (पीव) और शोणित से उत्पन्न कीड़े किसी ब्राह्मण को काट लेते हैं तो उसकी जो निष्कृति (शुद्धि) होगी, मैं तुम्हें बता रहा हूँ । गौओंके पुरीष से उत्पन्न (गोबर) से स्नान, दही, दूध, एवं धी का

१. दर्शनमित्यर्थः, भ्रावे निष्ठाविधानात् । २. तथेति शेषः ।

अथ नाभ्या: प्रदष्टस्य आपादाद्विनतात्मज । एतद्विनिर्देशत्राज्ञः प्रायश्चितं सगाधिष्ठ ॥५६
 नाभिकण्ठात्तरे वीर यदा चोत्पदाते कृमिः । षड्गत्रं तदा प्रोक्तं प्रायश्चितं मनीषिभिः ॥५७
 यदा दशन्ति शिरसि कृमयो विनतात्मज । कृच्छ्रं तदा चरेत्प्राज्ञः सुद्धये कश्यपात्मज ॥५८
 मृतान्नं मधुं मांसं च यस्तु भुञ्जीत ब्राह्मणः । स श्रीपूर्णहन्युपवसेदकाहं चेदके वसेत् ॥५९
 होते श्रीभविष्ये महातुरागे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पेन्नूर्वादित्यसंवादे ब्राह्मणधर्मवर्णनं
 नामं चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८४।

अथ पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

मातृश्राद्विधिवर्णनम्

आदित्य उवाच

रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्तिता हि सा । सन्ध्योरुभयोर्वीरं सूर्यं चैव तिरोहिते ॥१
 अङ्गत्वा मातृयज्ञं तु दः श्राद्धं परिवेष्येत् । तातस्य क्रोधसंयुक्तो हिसामिच्छन्ति दारुणाम् ॥२

अन्तर्लक्ष्यवाच

मातृश्राद्धं कथं कार्यं काश्च ता मातरः स्मृताः । नान्दीमुखाश्च पितरः कथं पूजामवाप्नुयः ॥३

पान करने से उसकी शुद्धि बतायी गयी है । ५२-५५। विनतात्मज ! पैर से लेकर नाभि तक के स्थान में कहीं कीडे द्वारा काटने पर उपरोक्त प्रायश्चित को विद्वानों ने बताया है । ५६। वीर ! नाभि और कण्ठ के मध्यम में यदि कीडे उत्पन्न हो जायें तो मनीषियों ने उसका छह रात्रि तक प्रायश्चित करना बताया है । ५७। विनतात्मज ! यदि सिर में कीडे उत्पन्न हो कर काटें तो कश्यपात्मज ! उसे 'कृच्छ्र' नामक व्रत बताया गया है । मृतप्राणी के अन्न, मधु, एवं मांस का जो ब्राह्मण भक्षण करता है, उसे तीन दिन निर्जल और एकदिन सजल उपवास करना चाहिए । ५८-५९

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मणवर्त के सप्तमी कल्प के अनूर्वादित्य संवाद में ब्राह्मण धर्मवर्णन नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय समाप्त । १८४।

अध्याय १८५

मातृश्राद्विधि का वर्णन

आदित्य बोले—रात में श्राद्ध न करना चाहिए, क्योंकि वह रात राक्षसी बतायी गई है । तथा वीर ! दोनों संघ्याओं एवं सूर्य के अस्त समय में भी श्राद्ध नहीं करें । १। मातृ यज्ञ बिना किये जो पिता श्राद्ध का परिवेषण (सूर्य मण्डल में निषिप्त करना) करता है, वह क्रोधपूर्ण एवं दारुण हिसा करता है । २

अनूर ने कहा—मातृश्राद्ध किस भाँति सम्पन्न करना चाहिए, वे माताएँ कौन हैं और नान्दी मुख पितृगण, उस पूजा की प्राप्ति कैसे करते हैं । ३

आदित्य उदाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि मातृश्राद्विधिं खगः । शृणु त्वं खगशार्दूल गदतो मन इत्तत्रशः ॥४
 पूर्वाल्लिं भोजयेद्ब्राह्मणस्तौ सर्वनिप्रदक्षिणान् । तथान्यं नवमं विप्रं चतुरथ्रं खगाधिप ॥५
 शूजून्वै कुतपान्दत्त्वा सत्येन विधिवत्सग । कृत्वा यद्विस्तिलार्थं तु दधिमिश्रं क्रमेण च ॥६
 गन्धपुष्पादिकं सर्वं कुर्द्विप्रदक्षिणम् । ब्राह्मणेऽप्यस्ततो दद्यान्मधुरं भोजनं खग ॥७
 गुडमिश्रं खगश्रेष्ठं सवस्त्रमोइनं परम् । रसानां भोदकांश्चैव न च ज्ञान्कटकांस्तथा ॥८
 एवं भक्तेषु विप्रेषु दद्यात्यिङ्गान्त्समाहितः । दध्यक्षतविनिश्चांस्तु ददरथ्रं खगाधिप ॥९
 कृत्वा तु मण्डपं वीरं चतुरत्रं प्रदक्षिणम् । पूर्वायांथ्रं कुशान्दत्त्वा पुष्पाणां प्रकरं तथा ॥१०
 सव्येन पाणिना वीरं विधिवत्सगदत्तम् । मात्रे प्रभाते तन्मात्रे निविष्ट्युवतोमुखः ॥११
 पितुभित्रे तु तन्मात्रे निर्विद्विधिवत्सग । वृद्धादै प्रपितामहौ तथान्यं निर्विद्वितुधः ॥१२
 एवमुद्दिश्य वै मातृः एष पिण्डान्विष्टेत्सग । अङ्गाशयेद्विजान्वीरं मातृश्राद्वे खगाधिप ॥१३

नवमं सर्वदैदत्यं भेजदेविधिवत्सग ॥१३
 नान्वीकुशांस्तात्पुढिश्य पितृपञ्चव द्विजोत्तमान् । भोजयेद्विद्विधिवच्छाद्वे वृद्धिश्राद्वे प्रदक्षिणम् ॥१४
 इत्यं आदद्वयं कुर्याद्द्वौ कश्यपनन्दन । तथान्यमपि ते वृच्चिमं परं श्राद्विधिं तव ॥१५
 अयैवं भोजयेच्छाद्वे तत्पूर्वं तु प्रवर्तयेत् । अन्यथा तत्र सुम्पन्ति सदेवासुरमानुषाः ॥१६

आवित्य बोले—खग ! मैं तुम्हें मातृ श्राद्व के विधान बता रहा हूँ, खगशार्दूल ! मैं तिस्तार पूर्वक कह रहा हूँ मुनो ॥४। खगाधिप ! पूर्वाल्लिं के समय आठ ब्राह्मणों को प्रदक्षिणा पूर्वक भोजन कराये, तथा अन्य नवां ब्राह्मण का भी । खग ! कुतप (दिन के पन्द्रह मुहुर्त में आठवें मूर्हुत) के समय चार कृजु (कुशाओं) को रख कर उनमें से क्रमांशः प्रत्येक का यव, दधिमिश्रित तिल से आवाहन, गन्ध एवं पुष्पादि द्वारा पूजन प्रदक्षिणा पूर्वक सुसम्पन्न करके पश्चात् ब्राह्मणों के लिए मधुर भोजन प्रदान करें—भोजन में उत्तम गुडमिश्रित भ्रात, उत्तम रस वाले शोहक (लड्डू) देना चाहिए, जिसमें कडुवापन का लेश मात्र भी न हो, खगाधिप ! इस प्रकार ब्राह्मण भोजन के उपरांत सावधान होकर दही, अक्षत मिश्रित बैर के फलों द्वारा पिंड दान का कार्य सपन्न करे ॥५-९। वीर ! प्रथम चौकोर मण्डप का निर्माण करके उसके मध्य में बनी हुई बेदी पर पूर्व की ओर अग्रभाग कर कुशाओं को रखे । पुष्पों के समूहों से उन्हें भ्रूषित भी करे । खगसत्तम ! विवानपूर्वक इन कर्मों को सव्यं होकर दाहिने हाथ से करना चाहिए । उसके उपरांत खग ! माता, मातामही, पितामह, प्रपितामह, मातामह, प्रमातामह, एवं वृद्ध प्रमातामह के उद्देश्य से पिंडदान करे । खग ! इस प्रकार माताओं के उद्देश्य से छः पिण्ड प्रदान करना चाहिए और मातृश्राद्व में आठ ब्राह्मण का भोजन कराना चाहिए तथा एक और ब्राह्मण का भोजन कराना चाहिए । सर्व दैवत्य (विश्वदेव) के नाम परा नांदी मुख पितरों के उद्देश्य से पांच श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भोजन करायें । यही वृद्धि श्राद्व का भी नियम है । कश्यपनन्दन ! इस प्रकार वृद्ध श्राद्व में दो प्रकार से श्राद्व होते हैं । इसके अनन्तर तुम्हें अन्य श्राद्वों के विधान भी बता रहा हूँ ॥१०-१५। इसी प्रकार अन्य श्राद्वों में भी ब्राह्मण भोजन आवश्यक है, क्योंकि उनके भोजनान्तर श्राद्व विधान प्रारम्भ होता है । न करने से देव, असुर, एवं मनुष्य

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पण्णवेदोपपादयेत् । शो हृष्टिः स द्विजो बीनं^१ मन्त्रदर्शभिरुच्यते ॥१७
 पूर्वं पात्रे यदश्च च यच्चाश्मसुपकल्पितम् । तेनैव सह ज्ञोक्तव्यं पृथग्भावो न विद्यते ॥१८
 द्वौ दैवेऽर्थवणौ विप्रौ प्राइमुखाद्युपवेशयेत् । पित्र्ये श्रीनुदगास्यांश्च वृद्धौ चार्ष्वर्युसङ्गमान् ॥१९
 श्रीणि श्राद्धे पदित्राणि दौहित्रः कुतपास्तिलाः । श्रीणि चात्र प्रशंसन्ति शौचमङ्गोधमत्वरम् ॥२०
 दौहित्रं खण्डमित्युक्तं ललाटाय प्रजापते । तत्र शृङ्गस्य यत्पात्रं तदौहित्रमिति स्मृतम् ॥२१
 सव्यादामसात्परिभ्रष्टं नाभिदेशो व्यवस्थितम् । एकदस्त्रं तु तं विद्यादैवं पित्र्ये च दर्जयेत् ॥२२
 पितृदेवमनुव्याप्तां पुनर्न भोजनं तथा । नोत्तरीयं विना कार्यं कृतं स्यान्निष्ठकलं यतः ॥२३
 परिधन्नकृते स्कन्द्ये गृहस्थो योर्च्छेत्यित्यून् । न स तत्कलमाप्नोति यथा योगपटावृतः ॥२४
 वनस्थानां खगश्चेष्ट यतीनां च महापते । सिद्धये कर्त्तणां वीर योगपटक्षुच्यते ॥२५
 हस्तौ प्रक्षाल्य गण्डूषं यः पित्रेवविचक्षणः । स तु दैवं च पित्र्ये च आत्मनं चोपधातयेत् ॥२६
 भोजनेष्वेव त्रिष्ठलिं त्वस्ति त्रुर्बन्ति ये द्विजाः । आसुरं तदूभयेव्याघ्रं पितृणां ज्ञोपतिष्ठते ॥२७

निमित्तक किये गये कर्म लुप्त हो जाते हैं । १६। अग्नि के अभाव में ब्राह्मण के हाथ में प्रदान करना चाहिए मन्त्रविदों का कहना है कि अग्नि एवं ब्राह्मण भिन्न वस्तु नहीं है । पात्र में प्रथम जो अन्न रखा जाये अथवा जो प्राप्त हो सके, उसके साथ ही भोजन करना चाहिए न कि पृथक-पृथक् । १७-१८। देव कर्म में दो दैविक ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख, पितृ कार्य में तीन ब्राह्मणों को उत्तराभिमुख, एवं वृद्धि श्राद्ध में वेदपाठी ब्राह्मणों को (भोजनार्थ) बैठाना चाहिए । श्राद्धों में कन्यापुत्र, कुतप (दिन का आठवाँ मुहूर्त), और तिल ये तीन पवित्र माने गये हैं । शोच (यवित्रता), अक्रोध (शान्ति), तथा शीघ्रता न करना ये तीनों श्राद्ध में प्रशस्त बताये गये हैं । १९-२०। प्रजापते ! दौहित्र शिरोभूषण कहा जाता है; एवं भृंग के पात्र का नाम दौहित्र है । देव एवं पितृकर्मों में एक वस्त्र धारण करना निषिद्ध बताया गया है, इसलिए कि एक ही वस्त्र पहन कर उसका एक भाग कंधे पर रखने से गिर कर कटि प्रदेश में ही स्थित रह सकता है । पितृ, देव, एवं मनुष्यों के पूजन तथा भोजन में एक उत्तरीय वस्त्र का होना आवश्यक है क्योंकि उसके न रहने से किये गये कर्म निष्फल हो जाते हैं । पहिने हुए वस्त्र के दूसरे भाग को कंधे पर किसी प्रकार स्थित कर जो गृहस्थ पितृ कर्त्त करता है, उसे उस कर्म के फल नहीं प्राप्त होते हैं, जैसा कि योगियों को उनके पट्ट-सूत्र द्वारा । २१-२४। खगश्चेष्ट ! वनस्थ योगियों के कर्मसिद्धि के लिए यह वस्त्र धारण का विधान बताया गया है । २५। जो कोई हाथ धोकर शेष जल को गंडूष (कुल्ला करने) के द्वारा पान करता है, वह अज्ञानी देव, पितृ निमित्तक कर्म एवं स्वयं का नाश करता है । २६। जो ब्राह्मण भोजन के समय बैठकर 'त्वस्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं, वह श्राद्ध उसके द्वारा आसुर हो जाने के कारण पितृरों को उपलब्ध नहीं होता

१. पक्षिराजत्वं न केवलं गरुडस्त्वैव, अरणस्याप्यस्ति । अत एव 'एतद्विनिर्दिशेत्वाज्ञः प्रायश्चित्तं खगाद्यिष्ट, इति चतुरशीत्यधिकशतमेऽध्याये चतुष्पञ्चाशतमे श्लोक उक्तं संगच्छते । तेन गरुड एव पक्षिराज इति न भ्रमितव्यम् ।

दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ति रेव च । श्रद्धा च नो मा अगमद्वृते यं च नोऽस्त्वति ॥२८
 हितं श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्ये संरथने लक्षणावित्यसंवादे
 मातृश्राद्विधिवर्णनं नाम पचासीत्यधिकशततमोऽध्यायः । १८५।

अथ षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

शुद्धिप्रकरणवर्णनम्

भास्कर उवाच

श्रावणां तु बलिः कार्यः स्पर्णां मन्त्रपूर्वकः । शमनारोहणे चैद कार्या सुखमभीप्सता ॥१
 कार्या प्रत्यवरोहस्तु मार्गशील्यां त्रहंशयः । फलं विना त्वनुष्ठानं नित्यानामिष्यते स्फुटम् ॥२
 काम्यानां तफलार्थं तु दोषप्राप्त्यर्थमेव च । नैमित्तिकानां करणं त्रिविधं कर्मणां फलम् ॥३
 फलं केचिदुपात्तस्य दुरितस्य प्रचक्षते । अनुत्पत्तिं तथा चान्ये प्रत्येत्याभ्युपमन्त्य च ॥४

है । २७। प्रत्युत उन्हें ऐसा मेरे कुल में दाताओं की वृद्धि हो, वेदाध्ययन एवं वैदिक कर्मों के वृद्धि हो, भन्तानों की वृद्धि हो, हम में श्रद्धा की कमी न हो, और मेरे यहाँ दान के लिए अधिक सम्पत्तियाँ हो, कहना चाहिए । २८

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में अरुणादित्य संवाद में मातृश्राद्व विधि वर्णन नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय समाप्त । १८५।

अध्याय १८६

शुद्धिप्रकरण-वर्णन

भास्कर बोले—श्रावणी (श्रावण की पूर्णिमा के दिन) मंत्र पूर्वक सर्पों के लिए बलि प्रदान, एवं सुखेच्छुक को शयन तथा आरोहण ये दोनों कार्य भी सम्पन्न करना चाहिए । १। उसी भाँति मार्गशीर्ष (अग्रहन) की पूर्णिमा के दिन प्रत्यवरोह का कार्य निष्पत्त करना चाहिए । नित्य कर्मों के अनुष्ठान में फल की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए एवं कामनाओं की सिद्धि के लिए तथा उसके दोष की प्राप्ति के लिए भी काम्य कर्म का आरम्भ होता है । नैमित्तिक कर्म के करने में तीन प्रकार के फलों की अपेक्षा बतायी गई है किसी का सम्मत है कि प्राप्त पाप-फलों का नाश तथा कुछ लोगों ने (पाप) विघ्न बाधा के उपस्थित होने पर भी उसके नाश पूर्वक नित्य क्रिया के सम्पन्न हो जाने को फल बताया गया है । और किसी ने श्रुति के आधार पर आनुवंशिक (आकस्मिक) फल को भी । वैदिक (मंत्र पूर्वक) अर्गस्थापन, दर्श (अमावास्या) तथा पूर्णिमा के दिन यज्ञ-विधान, चार्तुमास्य व्रत विधान, अग्निहोत्र, पशुबंध एवं 'सीत्रामणी नामक यज्ञ, हवि द्वारा सुसम्पन्न करने के लिए श्रुतियों में बताया गया है । इस भाँति

१. इस यज्ञ में ब्राह्मणों के सुराधान का विधान बताया गया है ।

नित्यक्रियं तथा चाच्ये अनुष्टुप्गात्कलं त्रुतिः । अग्न्याधेयं तथा दर्श पौर्णमानं द्वितीयकम् ॥५
 चादुर्मात्यमप्तिहोत्रं पशुबन्धो निरुदका । सौत्रामणी च संस्थाः स्युर्विषः श्रुतिनेविताः ॥६
 अग्निष्टोमोज्यप्रिष्टोम उक्त्यः संषोडशी तथा । वाजपेयातिरात्रश्च आप्तोर्यामः श्रुतौ श्रुतः ॥७
 दया स्यात्सर्वभूतेषु अहसूयाय भृत्यगतम् । क्षान्तिर्ददा त्वलायासः शौचस्यृहता व्रतम् ॥८
 सम्पद्गुत्तास्तु संस्कारं क्रह्यप्राप्तिनिमित्ताः । अनन्तरं प्रदक्ष्यामि विश्वाणां वृत्तयः शुभाः ॥९
 ऋतामृते च विप्राणामृतं प्रमृतमेव च । प्रतिश्वविणिज्यादि श्रेयसी नोत्तरोत्तरा ॥१०
 आजीविकावृत्यस्तु इत्याद्यः सन्प्रदर्तिताः । तासां कवापि जोवेत् अनुतिष्ठेद्यथाश्चिद् ॥११
 नित्यं श्रुतिः सुगन्धश्च स्नानशीलः प्रियंवदः । पूज्यश्च पूजयेद्वान्कार्याणि स्वयमान्तरेत् ॥१२
 नेक्षेताकं न नग्नां स्त्रीं न च सपृष्टमैश्वनम् । नाप्नु मूत्रं पुरीवं वा नाशुची रात्रितारकाः ॥१३
 शास्त्रोत्तरा यन्दण्णा या तु नानुक्तानि ज्ञातानि च । स्वर्गार्थं साधयेत्तैश्च शक्तिसान्मनसा तथा ॥१४
 नित्यानि केचिदिच्छन्ति कर्म्यानि च तथापरे । कर्म्याप्रवृत्तौ सङ्गे च प्रायश्चित्तं दिधीयते ॥१५
 व्रतानि मनसा त्विष्टसङ्कल्पं इति मानसः । अन्तश्चानुफलं यन्त्रद्विष्वादाः प्रकीर्तितः ॥१६
 अनध्यायं स्वयं सम्पद्गवर्जयेत्कलसाधनम् । आत्माशुद्धस्तथा देवो हृसुहारः प्रजापदः ॥१७
 अशुभानि निमित्तानि उत्पातो विकृतं तथा । पर्वाणि मनसोऽशुद्धिरनध्याय इति स्मृतः ॥१८

अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्त्य षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्त एवं याम के विधान को श्रुतियों में बताया गया है। इन्हें सुसम्पन्न करते हुए मनुष्यों को सभी प्राणियों के प्रति दया, प्रशंसा तथा मंगल की कामना करनी चाहिए। स्वभावतः शान्ति, दया, पवित्रता एवं अस्पृहता (विराग) व्रत में आवश्यक होते हैं। १२-१। ब्रह्म प्राप्ति के उद्देश्य से इन सभी संस्कारों की व्याख्या की गयी है इसके उपरांत ब्राह्मणों को शुभ मूर्ति वृत्तियाँ (आजीविका) बता रहा हूँ। यद्यपि ऋत (उच्छवृत्ति-एक-एक दाने को खेतों से एकत्र करने) अमृत (आयाचित अन्न) प्रतिग्रह (दान) एवं वाणिज्यादि कर्म द्वारा ब्राह्मणों को जीवन निर्वाह करना बताया गया है पर इनमें प्रथम श्रेयस्कर और अन्य अप्रशस्त कहे गये हैं किन्तु (परिस्थिति के अनुसार) किसी भी जीविकां द्वारा जीवन-निर्वाह करते हुए विधान पूर्वक कर्मों के अनुष्ठान अवश्य करने चाहिए। अनुष्ठान करने वाले को नित्य पवित्रता, सुगन्धलेपन स्नान, एवं मधुर भाषण करने के द्वारा पूज्य होकर देवों की पूजा एवं कर्मों को स्वयं करना चाहिए। १९-१२। उन्हें चाहिए कि सूर्य (उदय और अस्त समय में) नग्न स्त्री, मैथुन, जल में मूर्ति एवं पुरीषोत्सर्ग, अपवित्रता, रात्रि में अस्तकालीन ताराएँ न देखें। शक्तिसान् पुरुष को शास्त्रोत्तर नियमों के पालनपूर्वक दृढ़ प्रतिज्ञ होकर व्रतों द्वारा स्वर्ग प्राप्ति की सफलता करनी चाहिए। १३-१४। कुछ लोग नित्य कर्मों के ही अनुष्ठान करते हैं तथा कुछ लोग काम्य कर्मों के भी। काम्य कर्मों के न करने अथवा उसी में असत्त रहने पर प्रायश्चित्त का विधान बताया गया है। १५। व्रतों के लिए मनद्वारा इष्ट संकल्प करना 'मानसिक' संकल्प और कर्म के मध्य में आकस्मिक फलानुसार मानसिक प्रतिज्ञा बढ़ होता 'ऋषिवाद' कहा जाता है। १६। सभी प्रकार के अनध्यायों का त्याग करना चाहिए स्वयं अशुद्ध एवं देश के अशुद्ध होने के समय जब कि राजा का प्राणोत्तर्ग हुआ हो अशुभ निमित्त, उत्पात, विकार, पर्वदिन, तथा मन की अशुद्धि ये सब अनध्याय बताये गये हैं। दृष्ट, एवं

अनन्धायात्र वृष्टार्था अवृष्टार्थस्तथापरे । वेदाध्ययनमेवेति क्रिया भद्रघानदर्शनम् ॥१९
 अभक्ष्यं सर्ववर्णानां शावाशीचं खलाधिप । द्विष्टशुद्धिस्तथैव स्यादन्यथा त्वसमञ्जसम् ॥२०
 जातिद्रुष्टं क्रियातुष्टं कालतुष्टं दिम्बवितम् । संसर्गश्रियद्रुष्टं च सहृत्सेलं स्वभावतः ॥२१
 लशुनं गृज्जनं चैव पतातुष्टं कवकानि च ॥ वाताकं नालिदेरं तु सूतकं जातिद्रुष्टकम् ॥२२
 नो भृज्जीत क्रियातुष्टं त्रुष्टं द पतितः पृथक् । कालतुष्टं तु विज्ञेयं हानिवं चिरसंस्तितम् ॥२३
 द्विष्टशुद्धिविकारतःश्च मधुवर्ज्यार्थस्तदिव्यते ॥२४
 सुरालग्नुसंस्पृष्टं देवूष्टःदिसमन्वितम् । संसर्गद्रुष्टनेतद्वि शुनोच्छिष्टं खगेश्वर ॥२५
 शूद्रसलं सण्डसलं लेयमाश्रयद्वितम् । विचिकित्ता तु हृष्टे भश्ये पस्मिन्दुजापते ॥२६
 सहृत्सेलं तु तज्ज्ञेयं पुरीषं तु स्वभावतः । रसद्रुष्टे विकारोऽपि रसस्त्येति प्रदर्शितः ॥२७
 पायहं क्षीरपाकादि तस्मिन्नेत्र दिवे तथा । यथाशास्त्रं लग्नश्रेष्ठं भक्ष्यामस्ये निरूप्येत् ॥२८
 प्राणात्मये प्रोक्षितं च श्राद्धे च द्विजकाम्यया ! पितृन्देवांश्चार्पयित्वा भुज्जन्मांसं न दोषभाक् ॥२९
 प्रेतशुद्धिः सपिण्डानां तस्मिन्नेव मृते सति । दशाहं द्वादशाहं द्वा पल्लं मातं त्व्युद्धता ॥३०
 दशाहाविद्विके भागे वर्णशो न भवन्ति हि । दशाहेन तु भोज्याः स्युः सूतकाशौचयोस्तथा ॥३१
 ऊर्ध्वं दशाहावेकाहश्रवणे सति जायते । संवत्सरे व्यतीते तु स्नानादेव विशुद्धतिः ॥३२

अदृष्ट अनन्धाय, और वेदाध्ययन, यह तीन प्रकार के मेरे ध्यान दर्शन कहे गये हैं । १७-१९। खण्डिधि !
 सभी वर्णों के लिए अभक्ष्य एवं शावाशीच (मरणाशीच) के विशेष ध्यान रखना आवश्यक है । क्योंकि
 पदार्थों की शुद्धि तभी संभव है अन्यथा नहीं । २०। जाति, क्रिया, काल, संसर्ग, एवं आश्रय द्रूष्टित तथा
 स्वभावतः सहस्रसेल का विशेष ध्यान होना चाहिए । लहसुन, गाजर, प्याज, कुकुरमुत्ता, भाँटा, एवं मूली
 ये जाति द्रूष्टित होने के नाते त्याज्य हैं । २१-२२। इसी भाँति क्रिया द्रूष्टित तथा पतितों द्वारा द्रूष्टित पदार्थ
 अभक्ष्य है, और विरकात तक रखे हुए पदार्थ काल द्रूष्टित होने के कारण अभक्ष्य बताये गये हैं क्योंकि
 उनसे विशेष हानियाँ सम्भव हैं जैसे दही द्वारा बने हुए भक्ष पदार्थ के विकृत होने से मधु (शहद) भी
 त्याज्य है । मदिरा और लहसुन मिश्रित पान करने की वस्तु संसर्ग द्रूष्टित होने के कारण त्याज्य होती
 है । तथा खगेश्वर ! उसी प्रकार कुत्तों के द्वारा उच्छिष्ट (द्रूष्टित) वस्तु भी । उण्डों में विभाजित जो
 शूद्रों से स्पृष्ट की गयी है, वह वस्तु आश्रय द्रूष्टित होने के नाते त्याज्य है जिस भक्ष्य के विषय में हृदय में
 जानकारी की विशेष भावना उत्पन्न हो, उसे सहृत्सेल, कहते हैं, जैसे स्वभावतः पुरीष (मन्त्र) कभी भी
 गृहीत नहीं होता है । इसके द्रूष्टित होने पर उससे बने विकृत पदार्थ भी द्रूष्टित होते हैं । २३-२७। जैसे
 क्षीर अथवा क्षीर पाकादि उसी दिन का अच्छा होता है । खण्डिधि ! इस प्रकार मैंने शास्त्रोक्त भक्ष्याभक्ष्य
 का निरूपण कर दिया । २८। भूख से व्याकुल होकर प्राण के निकलते समय, यज्ञनिमित्तक, और श्राद्ध में
 देव एवं पितृ-तर्पण के उपरात मास भोजन करना द्रूष्टित नहीं बताया गया है । २९। किसी के मरने पर
 उसके सपिण्ड के लोगों को मरणाशीच, दश, बारह, पन्द्रह और मास का वर्णों का क्रमशः होता है । दशाह
 का सभी वर्णों का अशीच नहीं रह जाता, अतः दशाह के उपरात जननाशीच और मरणाशीच दोनों
 प्रकार के अशीच ब्राह्मण भोजन होना चाहिए । दशाह के उपरात अशीच सुनने पर एक दिन अशीच
 होता है एवं वर्ष के बीत जाने पर सुनने से स्नान मात्र से शुद्धि बतायी गई है । ३०-३१। (कुल में) जल

समानोदकता प्रोक्ता जन्मनास्तोरप्येत् । सपिष्ठाः सप्तपुरुषाः श्रुतवेत्प्रिवर्णनम् ॥३३
 आदन्तजन्मनः सद्य आद्युपाप्नेष्ठिकी स्मृता । त्रिरात्रमात्रतादेशात्सपिष्ठेतु नृतेषु च ॥३४
 तेषान्तर्पि तदेकं स्पाद्योऽस्याप्यपेत्यते । समानोदकात्प्रात्रेण शुष्टेषु शृत्युजन्मनोः ॥३५
 गर्भसत्रे त्रिरात्रेण उद्दन्या शुष्ट्यते तथा । अनन्तजन्ममरणे तच्छेष्टः द्विशुष्ट्यति ॥३६
 द्विजानां त्वेवमेव स्यात्पित्रये मातुरेव वा । अप्तिहोऽप्तार्थं विज्ञेयं सद्यः शौचमिति स्थितिः ॥३७
 असपिष्ठे तु निर्हारात्प्रात्रमिति मानवः । तस्यैवानुगतौ ज्ञेयं सद्यः शौचं खगाधिप ॥३८
 शुष्टेविद्वज्जो दशाहेन जन्महानां द्विषेनिषु । षष्ठिभृत्यभिरहेतेन क्षत्रविद्युत्योनिषु ॥३९
 उत्तरोचं यथान्यायं शतीरं तत्त्वदर्शितः । द्व्युद्युदिविधानं तु यथावदमितीदते ॥४०
 तैजसी मातिकी वीर वारिशुद्धिः स्मृता तथा । निर्लेपकालने नैव स्पर्शे तु प्रोक्षेन दै ॥४१
 अशुद्धं नैव किञ्चिद्द्व द्व्यनस्तीति लेचर । वचनाच्छृद्धपश्चद्वी तु द्व्याणामिह लेचर ॥४२
 स्नानं शौचं च कर्त्तव्यं द्व्यशौचादनन्तरम् । प्रश्नः स्नानं तु नित्यं स्यादप्यहेण काम्यमेव च ॥४३
 नैमित्तिकं क्षुराशौचं तेन पापाद्विशुष्ट्यति । उक्तं तु शौचं विज्ञेयं दोषकायकरं खग ॥४४
 कर्मद्वाणं चेति विज्ञेयं षट्प्रकाराः समासतः । एवमाचमनं विद्याद्विशिष्टं तु द्विजन्मनाम् ॥४५
 तदा भृतानां तद्रत्यादन्येषां तु यथासुखम् । कन्यानिवृत्तिं पुत्रैस्तु यथान्यायं समाचरेत् ॥४६

और नाम दोनों से समानोदकता बतायी गयी है और सातवीं शीढ़ी तक सपिष्ठ कहा जाता है, ऐसा श्रुति (वेद) में बताया गया है । सपिष्ठ में दौत निकलने के पूर्व, मरणाशीच में स्नान से शुद्धि, तथा प्रथमवर्ष चूडाकर्म होने के उपरांत उपनयन के पूर्वतक तीन रात का अशीच प्राप्त होता है । समानोदक के जनन अथवा मरणाशीच में तीन रात का अशीच प्राप्त होता है । ३३-३५। गर्भ के स्राव में माँ को तीन रात के अशीच होने के उपरांत उदक (जल) द्वारा शुद्ध होती है कई व्यक्तियों के जन्म एवं मरण में (पूर्व पुरुष के अशीच के शेष दिन के साथ) वह भी शुद्ध हो जाता है । ३६। मातृ-पितृ निमित्तिक यह अशीच द्विजों के लिए बताया गया है । अग्नि होत्र वाले की उसी समय स्नान से शुद्धि हो जाती है । सपिष्ठ में किसी के मरण में तीन रात तक के अशीच के अनन्तर उसकी शीघ्र शुद्धि हो जाती है । ३७-३८। खगाधिप ! जननाशीच एवं मरणाशीच में ब्राह्मण दशवें दिन शुद्ध होता है, बारहवें दिन अत्रिय, पन्द्रहवें दिन वैश्य, मास में शूद्र की शुद्धि होती है । ३९। इस प्रकार तत्त्वदर्शियों ने न्यायपूर्ण शरीर सम्बन्धी पवित्रता का वर्णन किया है, पूर्व द्व्यु शुद्धि का विधान बताया जा रहा है । वीर ! तेजपूर्ण एवं मृत्तिका से बनी नूर्ति, जल द्वारा शुद्ध होती है, उसमें जल से धोना नहीं चाहिए प्रत्युत कुण्डादिक से सेचन करना आवश्यक होता है । आकाशचारिन् ! यो ही कोई द्व्यु (पदार्थ) अशुद्ध है ही नहीं, केवल वाक्य द्वारा द्व्यों की शुद्धि एवं अशुद्धि होती है । द्व्यु शुद्धि के उपरांत भी स्नान तथा पवित्रता आवश्यक होती है । काम्य आदि सभी कर्म में नित्य स्नान होना ही चाहिए । नैमित्तिक केवल क्षुराशीच होता है, खग ! इस प्रकार मैंने दोष नाशक शीच निर्णय देता दिया छः प्रकार के कमींग होते हैं, इसी प्रकार आचमन भी बताया गया है विशेषकर द्विजन्मों के लिए । मरण में वैसा ही करना होगा और अन्य कायों में यथेष्ट नियम हैं । पुत्रों को न्याय पूर्वक कन्याओं की निवृत्ति करनी चाहिए । स्त्रियों को कला, शिल्प आदि सभी कार्य सीखने

कलाशिल्पानि सर्वाणि गृहीयत्वरितुष्टये ॥४७
 दूष्योषेत् वर्ति भार्या परितौर्ण यथा वज्रेत् । गुरुणा परेरतोषश्च धर्मः स्त्रीणां सनातनः ॥४८
 वृद्धापुत्रा यदि मृता तदभावे नपस्य तु । मृतापत्याप्यगर्भा च वृद्धापत्या पतिव्रता ॥४९
 कुर्यादिनिवृतं भर्तुर्भिं लक्ष्मिहेऽपि दा । एतां धर्मतमां निष्ठां भर्तुलोकभवाभ्युत् ॥५०
 स्त्री धर्मचारिणी साध्वी मृता बाह्या तप्तिप्रियः । विपरीताद्बाह्या तु पुत्रद्वाराकैया तथा ॥५१
 स्त्रीणां नियोगे विहिते भरणाद्ब्रह्मचारकम् । ब्राप्तव्याद्वा यथाधर्मो दृष्टदृष्टफलप्रदः ॥५२
 तस्माद्युर्द सदा कुर्यात्कुर्वती इत्यगमानुयात् ॥५३

इति श्रीभिष्ण्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्यणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु शुद्धिकरणवर्णनं
 नाम षडशीत्यधिकशतमोऽध्यायः । १८६।

अथ सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मे धेनुमाहात्म्यवर्णनम्

अनूरुखवाच

कानि पुण्यानि कृत्वेह स्वर्गं गच्छन्ति मानवाः । मनुष्यलोके सम्मूताः स्वर्लोके गामिनः परम् ॥१
 कर्मयज्ञस्तपोयज्ञः स्वाध्यायो ध्याननिर्मितः । ज्ञानयज्ञश्च पञ्चते भ्रात्यज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥२

चाहिए तथा पति की इच्छानुसार उनकी शुश्रूषा अत्यन्त आवश्यक है । (स्त्रियों के लिए पति गुह रूप है) अतः गुरुओं को भली भाँति प्रसन्न रखना स्त्रियों का सनातन धर्म है । पुत्रहीन विधवा का मरण होजाये तो अच्छा है, अन्यथा उसे राजा की सेवा करनी चाहिए, उसीं प्रकार जिसके मृत बालक उत्पन्न होते हों, गर्भहीना हो, अथवा वृद्ध की भाँति संतान होते हों, ऐसी पतिव्रता स्त्री को चाहिए कि पति समीप रहे या न रहे, इन दोषों का निराकरण करे । क्योंकि धार्मिक निष्ठा (प्रेम) हीने से उसे पतिलोक प्राप्त होते हैं । धर्माचरण करने वाली सती स्त्री के मरण में अनिदाह करना चाहिए, किन्तु इसके विपरीत हो तो दाह अनावश्यक है । स्त्री के लिए मरने अथवा ब्रह्मचारी रहने से नियोग करना कहीं अच्छा है । क्योंकि उससे दृष्ट एवं अदृष्ट फल प्राप्त होते हैं, अतः स्त्री को सदैव धर्म करना चाहिए जिससे उसे स्वर्ग की प्राप्ति हो सके । ४०-५३

श्रीभिष्ण्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में शुद्धिकरण वर्णन नामक एक सौ छियासीवाँ अध्याय समाप्त । १८६।

अध्याय १८७

सौर धर्म में धेनुमाहात्म्य का वर्णन

अनूर ने कहा—इस मनुष्यलोक में उत्पन्न मनुष्य लोग, जो स्वर्गलोक के गामी हैं, किन पुण्यकर्मों द्वारा स्वर्गलोक की प्राप्ति करते हैं । कर्मयज्ञ, तपोयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ, ध्यानयज्ञ एवं ज्ञानयज्ञ—ये पाँच

एतेष्वेद यज्ञनामुत्तमः कतमः स्मृतः । एतद्यज्ञकलानां च किं फलं का सतिर्भवेत् ॥३
धर्माधर्मप्रभेदात्र कियन्तः परिकीर्तिः । तत्साधनानि कठिधा गतयश्च यथा वद ॥४
खग नारकिणां पुंसामान्तानां मुनः क्षितौ । कानि निह्वानि जायन्ते भुक्तशेषेण कर्मणा ॥५
महाभवार्णवादघोराद्गुर्माधर्मभिसङ्कुलात् । गर्भादिदुःखेनादशन्मुच्यन्ते देहिनः कथम् ॥६
इत्युक्ते भगवान्भानुः सर्वप्रश्नार्थमादरात् । प्रत्युदाच महतेजाः अमासत्व्यासयोगतः ॥७

आदित्य उद्घाच

स्वर्गापवर्गफलदं लक्ष्मार्णवादारणम् । धर्मं पापद्वयं पुण्यं शृणु शूरं प्रभाषतः ॥८
श्रद्धापूर्वः सदा धर्मः श्रद्धामव्यानन्तसहस्रितः । श्रद्धानिष्ठप्रतिष्ठश्च धर्मः श्रद्धा प्रकीर्तिना ॥९
श्रुतिमन्त्ररसाः सूक्ष्माः प्रधानपुरुषेऽवरः । श्रद्धामात्रेण गृह्णन्ते न परेण च चक्षुषा ॥१०
कायक्षेशैर्ण बुहुर्लिङ्म चैवार्थस्थ राशिभिः । धर्मः सम्प्राप्यते सूक्ष्मः श्रद्धाहीनः सुररपि ॥११
श्रद्धा धर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धा यज्ञाहुतं तपः । श्रद्धा मोक्षश्च स्वर्गश्च श्रद्धा सर्वभिं जगत् ॥१२
सर्दस्वं जीवतं वापि दद्यादश्रद्या च यः । नाम्नुयात्स फलं किञ्चित्तस्मांद्युद्धापरो भवेत् ॥१३
एवं श्रद्धामयाः सर्वे मम धर्माः प्रकीर्तिः । पूज्यस्तु श्रद्धया पुंसा ध्येयः पूज्यश्च श्रद्धया ॥१४

महायज्ञ के नाम से विस्थात हैं, इनमें कौन यज्ञ श्रेष्ठ बताया गया है और इनके द्वारा किस फल की एवं किस गति की प्राप्ति होती है ? तथा धर्माधर्म के कितने भेद बताये गये हैं कितने प्रकार के उनके साधन हैं एवं कितने प्रकार की गति प्राप्ति होती है, और खग ! नारकीय पुरुषों के, जो नरक की यातनाओं के अनुभव के पश्चात् पुनः इस पृथ्वी तल पर जन्म ग्रहण किये हैं उन्हें शेष भोग्य कर्मद्वारा किन तक्षणों की उपलब्धि होती है, एवं इस धोरं संसार महासागर से जिसमें धर्माधर्मसमूह से प्राप्त गर्भादिदुःख, फेनसंकुल के समान हैं, यह प्राणी कैसे मुक्त होता है ? इस प्रकार सादर विनम्रभाव से पूछने पर महा तेजशाली भगवान् भ्रास्त्कर ने संज्ञेप तथा विस्तृत के सम्मिश्रण द्वारा सभी प्रश्नों के उत्तर देने के लिए कहना आरम्भ किया । १-७

आदित्य बोले—शूर ! मैं उस धर्म की चर्चा कर रहा हूँ, जिसके द्वारा स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति, नरकसागर से उद्धार, पाप का नाश तथा पुण्य की प्राप्ति होती है, सुनो ! ८। धर्म के पूर्व, मध्य एवं अंत में श्रद्धा स्थित है, क्योंकि श्रद्धानिष्ठ एवं उसी में प्रतिष्ठित धर्म का नामान्तर (द्वितीया नाम) ही श्रद्धा है । ९। सूक्ष्म श्रुतियों के मंत्र-रस तथा प्रधान पुरुषेऽवर के बल श्रद्धामात्र से गृहीत होते हैं, न कि सूक्ष्म (अन्य) नेत्रों द्वारा । १०। श्रद्धाहीन देवगण भी शारीरिक कष्ट एवं अतुल धनराशि द्वारा सूक्ष्म धर्म की प्राप्ति कभी नहीं कर सकते । ११। श्रद्धा ही सूक्ष्म एवं उत्तम धर्म, यज्ञ में आहुति, तप, मोक्ष तथा स्वर्ग रूप है इस प्रकार जगत् श्रद्धामय है । श्रद्धाविहीन कोई भी अपना सर्वस्व अथवा जीवनदान ही क्यों न प्रदान करे उससे उसे कुछ भी फल प्राप्त नहीं हो सकता है, इसलिए सदैव श्रद्धासम्पन्न होने की चेष्टा करनी चाहिए । १२-१३। मेरे सभी धर्म श्रद्धामय बताये गये हैं, अतः पुरुष को श्रद्धायुक्त होकर धर्म की (मेरी) पूजा एवं ध्यान अवश्य करना चाहिए । १४। मेरी ये सभी बातें जो तुम्हें जग कहने की भाँति एवं संदिग्ध मालूम

अधिकारस्य प्राप्त्यर्थं महासारविमुक्तदन् । अज्ञातुकं सत्संदिग्धं वाक्यमेतन्ममाद्भूतम् ॥१५
 नानासिद्धिकरं दिव्यं स्तोत्रविस्तानुरञ्जनम् । मुनिश्चितर्यगन्मीरं वाक्यं मद्भनोरमम् ॥१६
 मन्मानसमुद्रो हि द्विपदोऽयं विवृद्धाः । स खण्डलेति विस्थातः सशिवं मण्डलं खगः ॥१७
 देवत्रयगुणातीतः सर्वज्ञः सर्वदित्प्रभुः । ओऽमित्येकाक्षरे मन्त्रे स्थितः स परमे मम ॥१८
 यथानन्दिप्रवृत्तोयं धोरः संसारसागरः । स्तोत्रलोकोऽपि तथशनदिः संसारार्णवशोधनः ॥१९
 व्याधीनो भेणजं यद्विप्रतिपदस्वभवतः । मरेक्षिणां मुक्तिहेतुश्रु दिद्वः सर्वार्थताधकः ॥२०
 ममाभिधानमन्द्रेऽयमभिधेयः सदा स्मृतः । अभिधानान्निधेयोऽहं मन्त्रतिद्वोऽस्मि खेचर ॥२१
 देवो मनोगमे चाद षड्जरमन्त्रस्थितः । यद्वा मुक्तोऽस्तरैकेन लोके पञ्चाक्षरः स्मृतः ॥२२
 किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः शास्त्रैर्वा बहुविस्तरैः । यस्यो नमः खण्डलेति मन्त्रोऽयं हृदि संस्थितः ॥२३
 तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्टितम् । येनो नमः खण्डलेति मद्भ वाक्यं षड्जरम् ॥२४
 विधिवस्त्रयमिदं सर्वं नार्थवादं बचो मम । एतते दक्ष्यतेऽशेषं मम वाक्यार्थमुक्तम् ॥
 पृच्छस्त्वमें प्रणम्याशु वैनतेय महामते ॥२५

सुमन्तुरुखान्त्र

श्रुत्वा तु बचनं भानोर्वन्तेयो महाबलः । सप्ताववतिलकं भक्त्या प्रणम्योदानं भारत ॥२६

होती हैं, अधिकार की प्राप्ति और महासार मोक्ष को प्रदान करने वाली हैं । १५। भाँति-भाँति की सफलता, दिव्य लोक के चित्त को मुक्त करने एवं निश्चित किन्तु अर्थगम्भीर वाले ये सुन्दर वाक्य मेरे हैं । १६। खग ! वह खण्डल नामक मेरा कल्याणात्मक मंडल, मेरे मानससमुद्र का (संतरण करने वाला) द्विपद देव रूप है, ऐसा विद्वानों का कहना है । १७। वह मेरा परमोत्तम देव, जो त्रिगुणरहित, सर्वज्ञ, सब कुछ जानने वाला एवं प्रभुरूप है, 'ओंम्' इस एकाक्षर वाले मंत्र में सदैव स्थित रहता है । १८। इस धोर संसारसागर के अनादिकाल से प्रवृत्त होने की भाँति संसारसागर के समुदारक खण्डल भी अनादि हैं । १९। यह रोगों की औषधि की भाँति प्रबल सक्रामक तथा मोक्षार्थियों के लिए मुक्तिप्रदायक, सिद्ध एवं समस्त कामनाओं का साधन भी है । २०। आकाशाचारिन् ! मेरे नाम का यह मन्त्र सभी के लिए सदैव ध्यान करने के योग्य है, तथा मैं ही नाम, ध्येय एवं मन्त्रसिद्धि हैं । २१। मन के द्वारा जानने योग्य इस षड्जर मंत्र में समस्त वेद स्थित है, इस लोक में मनुष्य एक ही अक्षर से मुक्त हो जाता है, इस मंत्र में तो पौच अक्षर 'ओं खण्डलं' हैं । २२। जिसके हृदय में भली भाँति 'ओं नमः खण्डलकाय' इस मंत्र की स्थिति दृढ़ हो गई है, उसे अनेक मंत्रों एवं अति विस्तृत शास्त्रों की आवश्यकता क्या है ? (अर्थात् कुछ नहीं) । २३। 'ओं नमः खण्डलं', इस षड्जर वाले मेरे वाक्य को जिसने अपना लिया है, उसी ने सब कुछ अद्ययन एवं सभी उत्तम कर्मों का अनुष्ठान सम्पन्न किया है । २४। वैनतेय, महामते ! यह मेरा कहना विधि वाक्य है, न कि अर्थवाद (प्रशंसा) रूप । तुम शीघ्र इनसे सादरप्रणामपूर्वक पूछो, ये मेरी सभी बातें तुम्हें बतायेंगे । २५

सुमन्तु बोले—भारत ! इस प्रकार भानु की बातें सुनकर महाबली वैनतेय (अरुण) ने सप्ताववतिलक से भक्ति एवं प्रणामपूर्वक पूछा— । २६

अनूरुद्धवाच्

बूहि मा देवशार्दूल यत्पृच्छामि महामते । क्षीरवास्यमिद भानोर्देनतेयो महादत्तः ॥२७
सप्ताश्वतिलक उवाच्

विमुक्ताशेषदोषेण सर्वज्ञेन भगेत यत् । प्रणीतममलं वाक्यं तत्प्रमाणं न संक्षयः ॥२८
यस्मान्मातेणनामातौ कथ्यते च मनीषिभिः । यथार्थं पुष्पमाप्नोति पतत्प्रद्युम्या त्वथः ॥२९
सौरवाक्यप्रवक्तारं नूरदृश्यजयेद्गुरुम् । संसारर्णदिनर्सप्तं यः समुद्धरते जनम् ॥३०
सौरधर्मम्बृहस्तेन कस्तेन सदृशो गुरुः । अज्ञानवह्निसन्तप्तं निर्वापयति यः रदैः ॥३१
ज्ञानाभृतेन वै भक्तान्कस्तं न प्रतिपूजयेत् ॥३१

नैव राज्येन महाता न चैवार्थस्य राशिभिः । प्राप्तमज्ञानशमनं परलोके सुखावहम् ॥३२
स्वर्गापवर्गसिद्धर्थं भाषितं यत्तु शोभनम् । वाक्यं ते देवदेवेन तद्विजेयं सुभाषितम् ॥३३
रागद्वेषाक्षमाक्रोधकामत्रष्णानुसारिणाम् । याक्यं निरयहेतुत्यात्तद्भाषितपुच्यते ॥३४
संस्कतेनापि किं तेन मृदुलालत्प्रसिद्धिगता । अविद्यारामवाक्येन संसारक्लेशहेतुना ॥३५
यच्छुद्वा जायते पुण्यं रागादीनां च संक्षयः । विरूपमणि तद्वाक्यं विज्ञेयमन्तिशोभनम् ॥३६
स्मृतयो भारतं वेदाः शास्त्राणि सुमहान्ति च । स्वायुषः क्षणपात्रैव धर्मोऽर्थस्तमप्राप्तिः ॥३७
युत्रदारादितंसारे नराणां मूढचेतसाम् । संसारविदुषां शास्त्रमनादिमुलनिर्गतम् ॥३८

अनूरुल ने कहा—हे देवशार्दूल, महामते ! मैं जो कुछ पूँछूँ, उसे आप बताने की कृपा करें हे प्रभो !
सूर्य के वे वाक्य कैसे हैं, उनके अर्थ बतायें ॥२७

सप्ताश्वतिलक बोले—समस्त दोषरहित एवं सर्वज्ञ सूर्य ने जिन वाक्यों के प्रयोग किये हैं, वे शुद्ध एवं प्रमाणरूप हैं, इसमें संदेह नहीं ॥२८। जिसके द्वारा श्वास सम्पन्न होकर मनीषी लोग मार्तण्ड नाम का उच्चारण करते हैं, उन्हें ही वास्तविक पुण्य की प्राप्ति होती है, और उसी भाँति श्रद्धात्मीन वालों का अध्ययन होता है ॥२९। सूर्य के वाक्यों के प्रयोग करने वाले गुरु की पूजा सूर्य की भाँति ही करनी चाहिए, क्योंकि संसारसागर में निमग्नप्राणी का उद्धार उन्हीं द्वारा सुलभ होना बताया गया है ॥३०। सौर धर्म रूपी जल के करस्य होने पर उसके समान अन्य कौन गुरु हो सकता है, जिसने धीरे-धीरे अज्ञान रूपी प्रज्ञलित अग्नि का और ज्ञान रूपी अमृतपान से भक्तों को तृप्त कर दिया है । अतः उसे सम्मानित कौन नहीं करेगा ? ॥३१। इस प्रकार महान् राज्यप्राप्ति अथवा असंख्य धनराशि द्वारा परलोक में सुखप्रदान करने वाले उस अज्ञान-नाशक की प्राप्ति नहीं हो सकती है ॥३२। देवाधिदेव (सूर्य) ने जिन सुन्दर वाक्यों के प्रयोग किये हैं, वे सौन्दर्यपूर्ण स्वर्ग और मुक्तिप्रदायक हैं ॥३३। अनुराग, द्वेष, अक्षमा, क्रोध, काम एवं तृष्णायुक्त प्राणियों के वाक्य नरक की प्राप्ति करते हैं, अतः वे दुर्भाषित कहे जाते हैं ॥३४। उस सुसंस्कृत वाणी के प्रयोग से, जो कोमल स्वरपूर्ण होते हुए भी अविद्या रूपी उपवन में विचरण करने वाली एवं संसार के क्लेशों की प्रदायिका हैं, क्या लाभ हो सकता है ॥३५। जिसके सुनने से पुण्य एवं रागाद दोषों के नाश होते हैं, उसे विरूप होते हुए भी उसी वाणी को अत्यन्त सुन्दर समझना चाहिए ॥३६। अतः स्मृतियाँ, महाभारत, वेद, तथा बड़े-बड़े दुरुह शास्त्र, ये सभी अर्थ की ग्रन्थियों द्वारा निबद्ध होकर धर्म के नाम पर आयु को केवल क्षीण करने के लिए ही हैं ॥३७। पुत्र-स्त्री रूप संसार में मूढ़ चित वाले मनुष्यों के, जो संसारी विद्वान् कहे जाते हैं, मुख से निकले हुए ये शास्त्र अनादि कहे जाते हैं यथापि यह श्रेष्ठ है, एवं यह तुम्हें

इदं श्रेष्ठमिदं ज्ञेयं सर्वं त्वं ज्ञातुमिच्छति । अथ वर्षसहन्नायुः शास्त्रान्तं नाथिगच्छति ॥३९
 विजायाकरतम्भात्रं जीवितं चार्तिवज्ज्वलम् । विहाय सर्वशास्त्राणि परलोकं तस्माचरेत ॥४०
 पण्डितेनापि किं तेन समर्थेन च देहिनाम् । यः पुण्यभारमुद्दोदुमशक्तः पारलौकिकम् ॥४१
 याण्डितोऽपि स मूर्खः स्यात्तक्तियुक्तोऽव्यशक्तिकः । यः सौरज्ञानसद्वादमालोचयित्रमुद्यतः ॥४२
 तरस्मात्स चण्डितः शक्तः स तपात्मी जितेन्द्रियः । यः सौरज्ञानसद्वादमालोचयित्रमुद्यतः ॥४३
 यः प्रदद्यान्नृपः कृत्वां क्षमां धनं काङ्क्षनं तथा । सर्वमन्यायतः पृच्छेश्वरं तस्योऽविशेषदगुरुः ॥४४
 यः शृणोति रवेर्धमं न्यायतः स च वक्ति च । ततो गच्छति सुस्थानं नरकं तद्विपर्यये ॥४५
 दत्तगोदोहसम्भूतः षडक्षरविधानतः । रविसम्पूजितः शोध्नं नराणां तुत्यता भृशम् ॥४६
 सुरासुरैर्मर्यमानात्मीरोदात्सागरात्मुरा । पञ्च गावः समुत्पन्नाः सर्वलोकस्य मातरः ॥४७
 नन्दा सुभद्रा सुरभी सुमना शोभनावती । गावः सूर्यसमा भासा उत्पन्नाः कृतिभागताः ॥४८
 सर्वलोकेष्वकारार्थं देवानां तर्पणाय च । मामतत्रित्य स्थिता गावः स्नानार्थं भृत्यकरस्य तु ॥४९
 तासामङ्गानि पुण्यानि षड्साः लगांदिषु च सर्वेषु स्त्यराणीत्युपधारय ॥५०
 गोमयं रोचनं मूत्रं क्षीरं दधि वृत्तं गवाम् । षडङ्गानि पवित्राणि सर्वसिद्धिकराणि च ॥५१
 गोमयादुत्थितः श्रीमान्बिल्ववृक्षोऽर्कवल्लभः । तत्रास्ते पश्चहस्ता श्रीर्वृक्षस्तेन च स स्मृतः ॥५२

जानना नितान्त आवश्यक है, ऐसा करते हुए सहस्रो वर्ष की आयु नष्ट हो जाती है, तथापि वह शास्त्र का निष्णात विद्वान् नहीं होता है ॥३८-३९। (शास्त्र को) केवल अक्षरमात्र उसके अध्ययन से व्यर्थ जीवन नष्ट करना है, ऐसा समझकर शास्त्रों के त्यागपूर्वक (किसी अन्य द्वारा) परलोक की प्राप्ति के लिए उद्योग करना चाहिए। उस पण्डित के द्वारा, जो समर्थ होते हुए प्राणियों के पारलौकिक पुण्यभार के वहन करने में अशक्त है, यथा लाभ हो सकता है ॥४०-४१। पण्डित होते हुए वह मूर्ख है, जो समर्थ होकर इस प्रकार की अपनी दुर्बलता प्रकट करता है—मैं सौरज्ञान के माहात्म्य के उच्चारण करने में असमर्थ हूँ ॥४२। इसलिए वही पण्डित, समर्थ, तपस्वी एवं जितेन्द्रिय है, जो सौरज्ञान की सद्भावनापूर्ण विवेचना करने को सदैव कठिबद्ध रहता है ॥४३। गुरु को भी चाहिए कि उस राजा को, जो अपनी समस्त पृथ्वी, धन एवं सुवर्ण के प्रदानपूर्वक अन्यायपूर्ण प्रश्न करे, उपदेश न प्रदान करे। जो सूर्य धर्म का श्रवण और न्यायपूर्ण वाणी का व्यवहार करता है, उसे ही अच्छे स्थान (स्वर्ग) की प्राप्ति होती है तथा उसके प्रतिकूल आचरण वाले को नरक की ॥४४-४५। षडक्षर के विधानपूर्वक दृढ़ द्वारा सूर्य की पूजा करने से वह मनुष्य भी सूर्य के समान हो जाता है ॥४६। पहले समय में देव और राक्षसों ने मिलकर क्षीर सागर का मंथन किया था, उसी से पाँच गायें, जो समस्त लोकों की माताएँ हैं, उत्पन्न हुई हैं ॥४७। नन्दा, सुभद्रा, सुरभी, सुमना तथा शोभनावती, इन नाम की पाँच गायों ने सूर्य के समान तेजस्वी रूप धारण किया ॥४८। समस्त लोकों के उपकारार्थ, एवं देवों की तृप्ति तथा भास्कर के स्नान करने के लिए ये गायें मेरे आश्रित स्थित हुईं ॥४९। लगांदितम् ! उनके अंगों एवं छः रसो, पक्षी आदि सभी प्राणी में स्थित हैं, ऐसा समझना चाहिए ॥५०। गोबर, गोरोचन, मूत्र, दूध, दही तथा घी गौओं के यही छहों अंग पवित्र एवं सर्वसिद्धिकारक हैं ॥५१। गोमय द्वारा विल्व वृक्ष का उत्थान हुआ है, जो श्रीसम्पन्न एवं सूर्यश्रिय है, उसी वृक्ष पर पश्चहस्ता

पद्मकान्युत्पलपथानि युनर्जातानि गोमयात् । गोरोदनं च माङ्गल्यं पदित्रं सर्वप्रभवम् ॥५३
 दोमुश्चाद्गुग्गुलुर्जनिः सुगन्धिः प्रियदर्शनः । आहारः सर्वदेवानां भास्त्करस्य विशेषतः ॥५४
 यद्वीजं जगतः किञ्च वित्तज्ज्वरं क्षीरसम्भवम् । बध्नः सर्वाणि जातानि नाङ्गल्यान्यर्थसिद्धये ॥५५
 शृतादशृतमुत्पलममराल्पमतिप्रियम् । तस्माहृयैतेन पयसा हठना यः स्नापयेद्विषम् ॥५६
 तदन्ते चोष्णतोदेन क्षयायेत्त्र निरुद्धेत् । स्नाप्य शीताम्बुना पश्चाद्बानुं रोचनशा लभेत् ॥५७
 पुरुजेद्वित्त्वपत्रैश्च दर्जनीलोत्पलसंतथा । अर्थं दद्यात्ततः पश्चात्तवज्ज्वरं गुणुलं खगः ॥५८
 यायसं दद्यिभूतं च वज्ज्वरं च नधुता सह । निर्देवेच्च सूक्ष्यत्या भृष्टः च विविधानि च ॥५९
 कृत्वा प्रददिणं रक्षात्प्रणिपत्त्य शशापयेत् । अनेन विधिना भानुं रुड्डेन दिवस्पतिम् ॥६०
 इह लोके परे चैव सर्वान्कामान्तरं गच्छति । उड़ज्ज्वविधिना तं चापूज्यैवं सुमना रदिम् ॥६१
 स्वर्गं नयेत्सधीमान्तु कुलानामेकविंशतिम् । स्वर्गे स्नाप्य स्वयं गच्छेज्ज्यौतिषं नाम तत्पदम् ॥६२
 अशेन भोजका वीर देवकार्यं नियोजिता । प्रयत्निं स्वामिना शार्थं श्रीमद्बानुं परं यहः ॥६३
 शुभलक्ष्मी भोगांस्तु विपुलान्भोजके भोगसंस्थितिः । कालात्मुनिरहायातः पृथिव्यामेकरात्मवेत् ॥६४
 पुष्पं वज्रं फलं तोयं यद्यगतं भास्त्करार्द्धने । सौरा गावश्च गच्छति सूर्यसोकं च संशयः ॥६५
 यः पिबेद्गोजते धेनोरदत्ताभानवे एयः । स गच्छेन्नरकं घोरमकुर्वस्तर्पणं रद्वः ॥६६

श्री, निवास करती है, इसीलिए उस वृक्ष का स्मरण किया जाता है ॥५२। पुनः उसी गोमय द्वारा पंक में उत्पन्न (नील कमल) तथा लाल कमल की उत्पत्ति हुई है, और मांगलिक, पवित्र एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाले गोरोचन की भी ॥५३। गो-मृत्र द्वारा गुग्गुल की भी उत्पत्ति हुई है, जो सुगंधित एवं मनमोहक होता है । तथा समस्त देवों एवं विशेषकर भास्त्कर का भक्ष्य पदार्थ है ॥५४। इस भूतल में जो कुछ बीज के रूप में है, वह क्षीर से उत्पन्न हुआ है । अर्थसिद्धि के लिए दही से सभी मांगलिक वस्तुओं की उत्पत्ति हुई है ॥५५। धी द्वारा अमृत की उत्पत्ति हुई है, जो देवों को अतिप्रिय है, इसलिए धी, दूध एवं दही से प्रथम सूर्य को स्नान कराकर पश्चात् गर्भ जल तथा कथायों द्वारा स्नान कराने के उपरान्त शीतजल से स्नान कराकर सूर्य के शरीर में गोरोचन का लेपन करना चाहिए ॥५६-५७। इसके उपरान्त विल्वपत्र, कमल, नीलकमल द्वारा उन्हें अर्थ्यं प्रदान कर वज्र समेत गुग्गुल प्रदान करे । खग ! इस प्रकार दूध एवं दही द्वारा बने हुए उत्तम भक्ष्यपदार्थ, जिसमें शहद मिलाया गया हो, भक्तिपूर्वक ऐसे विविध व्यंजनों को वज्र समेत उन्हें अपित करे ॥५८-५९। पश्चात् प्रदक्षिणा पूर्वक प्रणामं करके षड़ज्ज्व द्वारा विधानपूर्वक पूजित सूर्य से क्षमा प्रार्थना करे । इस भाँति करने वाले के लोक-परलोक की सभी कामनाएँ सफल होती हैं । प्रसन्नचित्त होकर षड़ज्ज्विधानपूर्वक सूर्य की पूजा करने से वह बुद्धमान् अपने इक्कीस पीढ़ी के लोगों को स्वर्ग पहुँचा कर स्वयं 'ज्यौतिष' नामक स्थान की प्राप्ति करता है ॥६०-६२। वीर ! इस प्रकार भोजक भी जो उनके अंशमात्र से समुत्पन्न तथा देवकार्य के लिए नियुक्त किये गये हैं, स्वामी के साथ उत्तम एवं पूजनीय लोक में विचरण करते हैं ॥६३। वहाँ भोजक विभिन्न भोगों के उपभोग करने के पश्चात् कालचक्रवरश इस भूतल में पुनः जन्म ग्रहण किया, तो पृथ्वी का एकच्छत्र राजा होता है ॥६४। सूर्य की पूजा में पुष्प, पत्र, फल जल एवं सौर गायें ये जो कुछ सहायता प्रदान करने के लिए उत्पन्न किये गये हैं, वे सभी निस्संदेह सूर्यसोक की प्राप्ति करते हैं ॥६५। जो सूर्य को बिना दिये हुए भोजन में दुग्ध-पान करता है, उसे

एककालं पित्रेत्सीरं धेनूनां भास्करस्य तु । अनेन स्नापयेदेवं ज्ञारेण खगसत्तम ॥६७
प्रत्युषे यद्वेत्सीरं धेनूनां भास्करस्य तु । स्नापयेतेन वै भानुं कृत्स्नेन गरुडाग्रज ॥६८
यस्तु लोको भजेत्सर्वं न देवाय निवेदयेत् । यावन्तो रेमकूपाश्र गवां देहे खगाधिप ॥
तावद्वर्षसहस्राणि नन्के पच्यते हण ॥६९

पूजितं पूज्यमानं वा यः कश्चिच्छृणुयाद्विष्ट । श्रुत्वानुमोदते यस्तु त यज्ञफलमञ्जुते ॥७०
भास्करं पूजितं दृष्ट्वा लर्वपरैः प्रमुच्यते । हर्षात्प्रणस्य वै भानुं तस्य लोके भृहीयते ॥७१
पूज्यमानं रविं भक्त्या यः पद्येन्मानवः हण । ज्ञेष्ठिं वज्रफलं कृत्स्नं प्राप्नुयाश्वाद्र संशयः ॥७२
श्रुत्वानुमोदते यस्तु पूज्यमानं दिवाकरम् । तत्सर्वं रूलसप्तर्णीति प्रसादद्वास्करस्य तु ॥७३
एकजन्मानुग दानं भक्त्या यज्ञं निवेदितम् । जपथज्ञादियुक्तेभ्यः सहस्रभविक्षं स्मृतम् ॥
आमृतसम्प्लवस्थादिप्रदानं जपजीविनाम् ॥७४

अत्यल्पमधि यद्यत्तं वाचकाय खगाधिप । तन्महाप्रलयं यावद्वातुभौंगाय कल्पते ॥७५
न वानमल्यं बहुधा किञ्चिद्वस्ति विजानताम् । देशकालविधिश्रद्धापाश्चयुक्तं तदल्पयम् ॥७६
पात्रे देशे च काले च विधिना श्रद्धया च यत् । दत्तं हुतं कृतं द्यैव तदनन्तफलं भवेत् ॥७७
तिलार्थमधि यद्योर दीयते श्रद्धया द्विज । सत्पात्रे विधिवद्वक्त्या तद्वेत्सर्वकामिकम् ॥७८

घोर नरक की प्राप्ति होती है, क्योंकि उससे सूर्य को उसने तृप्त नहीं किया । ६६। खगसत्तम ! उन सौर गायों के दूध का पान एक समय करना चाहिए और उसी दूध से (सूर्य) देव का स्नान भी कराना चाहिए । ६७। गरुडाग्रज ! प्रातःकाल उन सौर गायों के दूध से सूर्य को भली-भाँति स्नान कराकर उसका पान करे । ६८। जो उन्हें अर्पित किये बिना स्वयं पी जाता है, खगाधिप ! गाय के शरीर में जितने रोमकूप हैं, उतने सहस्र वर्ष के दिन उसे नरक में रहना पड़ता है । सूर्य की की गई पूजा अथवा की जाने वाली पूजा को सुनकर जो उसका अनुमोदन करता है, उसे यज्ञफल की प्राप्ति होती है । ६९-७०। पूजा के उपरान्त सूर्य के दर्शन करने से समस्त पाप से मुक्ति प्राप्ति होती है, एवं हर्षपूर्ण उन्हें प्रेणाम् करने पर वह उनके लोक में सम्मानित होता है । ७१। हण ! भक्तिपूर्वक सूर्य के दर्शन करने से भी समस्त यज्ञ-फल की प्राप्ति होती है—इसमें संदेह नहीं । ७२। जो पूज्यमान सूर्य को सुनकर उसका अनुमोदन करते हैं, उन्हें भी भास्कर की प्रसन्नतावश समस्त फलों की प्राप्ति होती है । ७३। भक्तिपूर्वक उन्हें दान प्रदान करने से एक जन्म में उसकी फल प्राप्ति होती रहती है, जो जप यज्ञ विहीन होकर भी भक्तिपूर्वक उसी काम को करते रहते हैं, उन्हें सहस्र जन्म तक तथा जप यज्ञ समेत प्रदान करने वाले को महाप्रलय तक उसके फल प्राप्त होते रहते हैं । ७४। खगाधिप ! वाचक के लिए दिया गया अत्य दान भी उस दाता के भोग के लिए महाप्रलय तक अक्षय रहता है । ७५। बुद्धिमानों के लिए अन्य याविविध प्रकार के दान नहीं बताये गये हैं, प्रत्युत देश, काल, विधान, श्रद्धा एवं पात्र द्वारा प्राप्त वह अत्यल्प दान भी उसके लिए अक्षय होता है यह कहा गया है । ७६। पात्र, देश और काल में विधान एवं श्रद्धापूर्वक दिया गया दान देने वाले के लिए अनन्त फल प्रदान करता है । ७७। वीर ! द्विज ! श्रद्धापूर्वक सत्पात्र में विधान एवं भक्ति द्वारा तिलार्थभाग के समान भी दिया गया दान

यत्स्नातं ज्ञानसलिले: शीलभस्मप्रमार्जितम् । तत्पात्रं सर्वपात्रेभ्य उत्तमं पद्धकीर्तितम् ॥७९
जपो दमो यमः पुंसा ब्राता संसारसागरात् । अज्ञानां दापनेब्राणां तत्पात्रं परमं स्मृतम् ॥८०
ज्ञानप्लदेन चोपेत शास्त्रं पापमहार्णवात् । अज्ञान्त्सन्तारयेन्नूनं किं शिला तारयेच्छक्ताम् ॥८१
द्विजानां वेदविदुषां कटिसम्प्रोगि यत्कल्प । हृत्कारप्रदानेन तत्कलं जपजीविने ॥८२
जीवो यस्यैत्य गृहे च मुख्ये तत्कृतिभृतः । कुलमुक्तारयेत्स्य नरकार्णवसंस्थितम् ॥८३
यज्ञस्मिहोमतीर्थेषु यत्कलं वरिकीर्तितम् । जयिनामश्रदानेन तत्सप्तदण्डं फलं समेत् ॥८४
भौजिने शान्तिवित्ताय परिष्ठानरताय च । श्रद्धयाम्न सङ्कृदस्या सर्वपापैः प्रमच्यते ॥८५
जपकाञ्छान्तिसंमुक्तानादित्यार्पितवेतहः । भोजित्वा सङ्कृदस्या सर्वाङ्गामानवास्यात् ॥८६
ध्यायमःनो रवेः सूक्तं भोजयेत्सततं च यः । ततः साक्षादनेनैद तद्मुक्तमरानं समेत् ॥८७
पितृनुदिश्य यः श्राद्धे भोजयेद्भोजकं नरः । स्थानं समवाप्नोति भानवीयमसंशयः ॥८८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे वर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे धेनुमाहात्म्यवर्णनं
नाम सप्ताशीत्यविकशततोऽध्यायः । १८७:

उसकी समस्त कामनाएँ सफल करता है । ७८। ज्ञानरूपी जल से स्नान तथा शीलरूपी भ्रस्म से मार्जन (शुद्धि) करने वाला सभी पात्रोंमें उत्तम बताया गया है । ७९। जप, दम (इन्द्रिय दमन) और संयम, यही संसारसागर से मनुष्यों की रक्षा करता है, अतः अज्ञानी एवं पापी नेत्र वाले के लिए वही (उपरोक्त नियमपालक ही) सत्पात्र बताया गया है । ८०। जाप रूपी नीका समेत शास्त्र ही अज्ञानियों को पाप महासागर से रक्षित रखने में सर्वथ होता है, न कि शिला द्वारा शिला का संतरण कहीं कभी संभव हुआ है । ८१। वैदिक विद्वान् के लिए परिधान वस्त्र (घोती) प्रदान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, जप यज्ञ करने वाले के लिए हृत्कार प्रदान करने से भी उसी फल की । ८२। प्राणी जिसके घर में पहुँचकर सम्मानपूर्वक भोजन करता है, तो वह गृहस्थ नरकसागर में निमग्न अपने सभी कुटुम्ब का उद्धार करता है । ८३। यज्ञ, अग्नि-हवन तीर्थों में जिन फलों की प्राप्ति होती है, वही समस्त फल केवल जप यज्ञ करने वाले को अन्न प्रदान द्वारा प्राप्त होता है । ८४। शांतिवित्त एवं ध्यान में निमग्न रहने वाले ऐसे भोजक को शदालु होकर एक बार भी अप्न प्रदान करने से समस्त पापों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है । ८५। शांत तथा आदित्य के लिए अर्पित चित्त वाले ऐसे जापक को एक बार भी भोजन दान करने से समस्त कामनाएँ सफल हो जाती हैं । ८६। सूक्तपूर्वक सूर्य के निरन्तर ध्यान मग्न रहने वाले को जो सदैव भोजन कराता है, उसके उस रूप में सूर्य ही भोजन करते हैं । ८७। जो अपने पितरों के उद्देश्य से श्राद्ध में भोजकों को भोजन कराता है, वह निःसन्देह सूर्य के उत्तम स्थान की प्राप्ति करता है । ८८

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में धेनुमाहात्म्य वर्णन
नामक एक सौ सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त । १८७।

अथाष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

भोजकसत्कारवर्णनम्

सप्ताश्व उवाच

भूर्याय सर्वपाकाशं निदेयास्मौ च होमयेत् । हृत्वाप्नो त्रक्षिपेद्वीर बलि दिनु सनन्ततः ॥१
 सूर्याग्निगुरुविप्राणां सर्वपाकाम्बमन्वहम् । लोऽनिवेदात्मना^१ भुइक्ते स चुइते किंत्वं नरः ॥२
 कृषिपात्ये च वाणिज्ये क्रोधतत्यक्षयादिभिः । पुंसां पापानि वर्धन्ते स्त्रादोषैश्च अन्यैश्चिभिः ॥३
 कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुंभः प्रमार्जनी । पञ्चद शूना गृहस्थस्य तेन स्वर्णं च गच्छति ॥४
 सूर्याग्निगुरुपूजाभिः पापैरेतर्न लिप्यते । अन्यैश्च पातकैर्योरस्तस्मात्सम्युजयेत्सदा ॥५
 सूर्याग्निगुरुनैवेद्यं वावत्प्रदन्नसत्त्वया । तावदृष्टसहन्नाणि दाता सूर्यपुरे वसेत् ॥६
 घृतपूपयुतैः सिङ्गैः पुण्यं दशगुणोत्तरम् । अवदंशगुणैर्युक्तं पुण्यं शतगुणं खन ॥७
 षष्ठ्यकौदनैवेद्यं सहस्रगुणितं फलम् । सुगन्ध्यशालिनैवेद्यं चिन्नेयमयुतोत्तरम् ॥८
 भक्ष्यान्नपानदानानि तत्कलानि तथा तथा । यद्वा तदा सदा देयं सूर्याग्निगुरुसाधुषु ॥
 भक्ष्यं निवेद्य पूर्वोक्तमक्षयं लभते फलम् ॥९

अध्याय १८८

भोजकों के सत्कार का वर्णन

सप्ताश्व देवे—वीर ! सनी भाँति के बने हुए पकवान प्रथम सूर्य को निवेदित कर, अग्नि में हवन करे, पश्चात् दिशाओं में दलि के रूप में रखे । १। सूर्य, अग्नि, गुरु एवं ब्राह्मणों के निवेदन किये बिना जो पकवान का भक्षण करता है, वह मनुष्य अन्न का नहीं प्रत्युत पाप का भोजन करता है । २। कृषि, वाणिज्य, क्रोध, असत् तथा पाँच प्रकार के हिंसा दोष के द्वारा मनुष्यों के पाप की वृद्धि होती है । ३। कण्डनी (ओखली में सूसल द्वारा धानादि की भूसी निकालने), पेषणी (जांता चक्की), चुल्ली (चूल्हा पोतने), उदकुंभ (जलघट रखने) एवं मार्जनी (आड़) द्वारा यही पाँच प्रकार के हिंसा दोष होते हैं, इसी से गृहस्थ स्वर्ग की प्राप्ति नहीं कर सकता है । ४। सूर्य, अग्नि एवं गुरु की पूजा करने से ये पाँचों दोषों तथा अन्य घेर पातकों से मुक्ति हो जाती है, अतः इनकी सदैव पूजा करनी चाहिए । ५। सूर्य, गुरु, एवं अग्नि को निवेदित किये गये अन्न की जितनी संख्या होती है, उतने सहस्र वर्ष वह प्रदाता सूर्य के लोक में निवास करता है । ६। घी एवं मालपूरे समेत भोजन द्वारा दश गुने अधिक एवं अवदंश (नशीली) वस्तु समेत प्रदान करने से सौ गुने पुण्य प्राप्त होता है, तथा खग ! साठी चावल के भात प्रदान करने से सहस्र गुने एवं उसे सुगंधपूर्ण प्रदान करने से उससे अधिक गुने पुण्य की प्राप्ति होती है । ७-८। सूर्य, अग्नि, गुरु एवं साधुओं को सदैव भक्ष्य अन्न-पान उन-उन फलों के निमित्त प्रदान करते रहना चाहिए । क्योंकि उसके निवेदन करने से

१. नञ्च्यूर्वकाल्ल्यवार्षः ।

एवं यः कुरुते अक्ति देवदेवे दिवाकरे । स पितॄन्तरपापेभ्यः समुद्रत्य दिवं नयेत् ॥१०
 गङ्गास्नानमिदं पुण्यं दर्शनात्माप्रयाद्वेदः । सर्वतीर्थभिवेकं च प्रणामाद्विन्दते खग ॥११
 मुच्यते सर्वपापेभ्यः प्रणम्य चिरसा रदिम् । गुश्रूषेत च सन्ध्यायां सूर्यलोके महीयते ॥१२
 युगपत्वूजितास्तेन ब्रह्मविष्णुभद्रेश्वराः । पितरः सर्वदेवाश्रम भवेत् । पूजिता रवौ ॥१३
 तुष्यन्ति पितरस्तस्य मुख्येनेकं कर्तुकाः । यः श्राद्धं भोजयेद्भूक्त्या ब्राह्मणं जपजीवनम् ॥१४
 अपि नः स कुले कञ्जितुद्वरेतिं खगेश्वरः । दः सम्भूत्य रविं श्राद्धं भोजयेजजपजीदिनम् ॥१५
 तृप्यन्ति पितरस्तस्य गायत्रिं च पितामहाः । अद्य नः स कुले प्राक्तो वाचकं भोजायव्यति ॥१६
 पुराणविद्वद्यायान्तं दृष्ट्यवं सह सत्स्थितः । कीडन्त्योषधूद्यः सर्वा यस्त्यामः स्वर्णाक्षयस् ॥१७
 अनुग्रहाय लोकानां श्रद्धायाश्रम परीक्षणे । चरंत्यतिलिपेण पितरो देवतास्तथा ॥१८
 तस्माइति शिमादान्तमध्ये गच्छेत्कुठात्मज्जलिः । स्वागतस्तपाद्यार्घ्यस्तनानाश्रयनार्दिभिः ॥१९
 रूपान्वितं विलयं वा भलिनं भलिनाम्बरम् । वेलायामतिरिं प्रादां पण्डितो न विचारयेत् ॥२०
 भोजकानां शरोरेषु नित्यं सञ्चिहितो रविः । ये भोजकास्त्यजन्त्यन्ये सर्वपापेभ्यविश्विताः ॥
 अधोमुखोद्दर्शपादस्ते पतन्ति नरकाग्निषु ॥२१

पूर्वोक्त अक्षय फल की प्राप्ति होती है । १। इस प्रकार की भक्ति जो देवाधिदेव की करता है, उसके समस्त-पाप की निवृत्ति एवं उसके पितरगण स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं । १०। खग ! सूर्य के दर्शन से गंगास्नान के फल एवं उनके प्रणाम करने से समस्त तीर्थों के अभिषेक के फल प्राप्त होते हैं । ११। सूर्य को शिर से प्रणाम करने से समस्त पाप-मुक्ति तथा संध्या समय उनकी सेवा करने से सूर्य लोक का सम्मान प्राप्त होता है । १२। सूर्य की स्तुति करने से युगपृथ (साथ ही साथ) ब्रह्मा, विष्णु, शिव, पितॄगण तथा समस्त देवगण पूजित होते हैं । १३। जो श्राद्ध में भक्तिपूर्वक जापक ब्राह्मण को भोजन प्रदान करता है, अच्छी जुताई द्वारा सस्य सम्पन्न भूमि की भाँति उसके पितॄगण प्रसन्न होते हैं । खगेश्वर ! जो श्राद्ध में सूर्य की पूजा के उपरान्त जापक ब्राह्मण को भोजन करता है, उसने क्या हमारे कुल में किसी का उद्धार नहीं किया ? (अर्थात् समस्त कुल का उद्धार कर दिया) । १४-१५। उसके पितर तृप्त हो जाते हैं और पितामह यह गायन करते हैं कि आज हमारे कुल में उत्तम वह बुद्धिमान् वाचक (ब्राह्मण) को भोजन करायेगा । १६। अपने घर किसी पौराणिक विद्वान् के आते ही समस्त औषधियां हर्षात्तिरेक से क्रीड़ा करने लगती हैं कि—अब मुझे अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होगी । १७। लोगों के ऊपर अनुग्रह (कृपा) करने एवं उसकी श्रद्धा की परीक्षा करने के लिए पितर तथा देवगण अतिथि के रूप में विचरण करते रहते हैं । १८। इसलिए किसी अतिथि को आते हुए देखकर उसके सामने हाथ जोड़ कर पहुँच जाये और सादर उसे घर लाकर आसन, पाद्य (पैर धोने के जल), अर्घ्य जल, स्नान, अन्न भोजन एवं शयन आदि की सुविधा प्रदान द्वारा उसका स्वागत करे । १९। मुरुप, विरुप, मलिन, दीन तथा मैले-कुचैले वस्त्र वाला, किसी प्रकार का अतिथि घर पर समयानुसार आ जाये तो पंडितों को उसके विषय में किसी प्रकार के विचार नहीं करना चाहिए । २०। भोजकों के शरीर में सूर्य सदैव सञ्चिहित रहते हैं, अतः जो कोई भोजकों को त्याग करते हैं, वे समस्त पाप कर्म के भागी होते हुए नरक की अग्नि में अधोमुख तथा ऊर्ध्वपाद होकर गिरते हैं । २१। कीड़े लोग उनकी

कृष्णिभिन्नवदनास्तप्यमानाभ्र बहिना । पीडधन्ते चायुधधोर्दविन्दाश्चतुर्दशः ॥२२
ये चापदादं शृण्वन्ति विमूढा ब्राह्मणेषु वै । ते विशेषणं पच्यन्ते नरकेषु भविच्छया ॥२३
सर्वेषामेव पात्रगां सत्पात्रं जापकः परः । तस्मात्सर्वप्रथलेन दूजयेत्सुसमाहितः ॥२४

इति श्रीभविष्ये नहापुराणे लाहो पर्वणि सत्पात्रे कल्पे सौरदर्भेषु भोजकसत्कारवर्णनं
नामावासीत्प्रधिकशततमोऽध्याय । १८८।

अथैकोननवत्यधिकशात्तमोऽध्यायः

सौरधर्मेषु सत्पात्रसंवादः

सप्ताश्वतिलक उवाच

आमपात्ररसः यद्ग्रन्थयते नश्यभाजने । जपोपेष्टे तथा दानं सह पात्रेण नश्यते ॥
सद्गोजमूषरे यद्वत्समुक्तं निष्फलं भवेत् ॥१
भस्मनीव हृतं हृष्यं यथा होतुश्च निष्फलम् । जपेन रहिते विप्रे तथो दानं निरर्थकम् ॥२
यथा स्फुटोऽफलः स्त्रीषु यदा गौर्गवि चाफला । ब्राह्मणस्य तथा जन्म जपहीनस्य निष्फलम् ॥३
सोहोऽपेन प्रतरश्मिमज्जयुदके यथा । दाता दाता ग्रहीता च पतत्पन्धे तमस्यथ ॥४

शरीर को विदीर्ण कर देते हैं, एवं उस अग्नि में संतप्त होते हुए वे धोर अस्त्रों द्वारा चौदहों इन्हों के वर्तमान समय तक पीड़ित होते रहते हैं । २२। जो मूढ़ ब्राह्मणों की निन्दाएँ सुनते हैं, वे विशेषकर मेरी इच्छा से नरक कुण्ड में सदैव पका करते हैं । २३। सभी पात्रों में जापक सत्पात्र बताया गया है । अतः विधानपूर्वक उसकी पूजा करने के लिए सदैव प्रयत्न शील रहना चाहिए । २४

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्मों में भोजक सत्कार वर्णन
नामक एक सी अद्वासीर्वा अध्याय समाप्त । १८८।

अध्याय १८९

सौरधर्म में सत्पात्रसंवाद

सप्ताश्वतिलक योले—किसी दूषितपात्र में कच्चे घड़े के रस को रखने से उसके नष्ट होने की भाँति जापक को त्याग कर अन्य पात्र में दिया गया दान उस पात्र के समेत नष्ट हो जाता है तथा ऊषर भूमि में बोये हुए अच्छे बीज की भाँति वह निष्फल भ्री । १। किसी होता द्वारा भस्म (रात) की ढेर में हवन करने की भाँति जपहीन ब्राह्मण को दान देना व्यर्थ है । २। स्त्रियों के लिए षष्ठ (नंपुसक) गौओं में नंपुसक बैल के निष्फल होने की भाँति जपहीन ब्राह्मण का जन्म व्यर्थ है । ३। लोहे के उड्डुप (घनई) द्वारा जल के संतरण करने एवं कराने वाले (दोनों) के डूब जाने की भाँति जपहीन ब्राह्मण को दान देने एवं लेने वाले (वे) दोनों धोर अंधकार में गिरते हैं । ४। खग ! श्रदालु होकर करुणावश सभी प्राणियों में जो कुछ दान

कारुण्यात्सर्वभूतेषु श्रद्धया यत्प्रदीयते । दानं तद्व खग ज्ञेयं सार्दकामिकमुत्तमम् ॥५
 दीनान्धकृपणानां च बालवृद्धातुरेषु च । यदीयते खगश्रेष्ठं तस्यानन्तरालं भवेत् ॥६
 न हि स्वार्थं समुद्दिश्य प्रतिगृह्णन्ति साधवः । दातुरेदोपकाराय जगृहुः श्रावणादयः ॥७
 दातुरेवोपकाराय बदलर्थीं ददस्व मे । दस्मादाता प्रयात्यूर्ध्वमधस्तिष्ठेतप्रतिग्रही ॥८
 देहीति सुवदशर्थीं धनं बोधयतीव सः । यन्मया कृतमर्थित्वं प्रगेऽबानफलं हि तत् ॥९
 बोधयन्ति न याचन्ते देहीति कृपणा जनाः । अवस्थेयमदानस्य यद्याचास्ते गृहेण्हुः ॥१०
 आयातर्थीं गृहं यत्तु कस्तं न प्रतिपूजयेत् । ज्ञोऽप्यमर्थीं न पूज्यः स्याद्याचमानो दिनेदिने ॥११
 यद्वादप्यनिच्छन्तं योजयन्ति नराश्रयन् । अहन्यहनि याचन्ते दातुस्ते दर्शयन्ति हि ॥१२
 एकस्तिष्ठति चाप्तस्तादन्यश्वोपरि तिष्ठति । दातृयाचकयोर्भेदः कराम्यामेव सूचितः ॥१३
 यः प्राप्ताधर्थिने दानं त्यक्त्वा पात्रनुदीक्षते । सर्वकर्मसु युक्तत्वान्न दाता गारमार्थिकः ॥१४
 यद्यर्थिनो नरा न स्युर्दानधर्मः कथं भवेत् । तदर्थिषु भवेहानं स्वागतं स्वागतं प्रियम् ॥१५
 पादोदकमनुव्रज्यात्स्वर्गसोपानसप्तकम् । चिन्ताचिन्तानुरूपेण कदा कस्य विनष्ट्यति ॥१६

दिया जाता है, वही दान श्रेष्ठ एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाला होता है ।५। खगश्रेष्ठ ! दीन, अंधे, कृपण, बाल, वृद्ध एवं आतुर आदि किसी में जो कुछ दान रूप में दिया जाता है, उससे अनन्त फल प्राप्त होते हैं ।६। साधुण अपने स्वार्थ के लिए किसी के द्वारा दी गई वस्तुओं को ग्रहण नहीं करते हैं, प्रत्युत देने वाले के उपकारार्थ उस (श्रावणी आदि) का ग्रहण करते हैं ।७। दाता के उपकार के लिए ही उनके घर पहुँच कर वे लोग कहते हैं कि—‘मुझे दीजिए’ इससे यह होता है कि दाता को स्वर्गादिलोक की प्राप्ति और प्रतिग्राही (उसके लेने वाले) का अधःपतन होता है ।८। अर्थीं (याचक) दरवाजे पर पहुँचकर ‘मुझे दीजिये’ इस प्रकार की मधुरवाणी द्वारा किसी वस्तु की याचना नहीं करते, प्रत्युत धन के प्रति स्मरण दिलाते हैं कि मैंने जन्मान्तर में दान नहीं किया था इसीलिए इस याचनावृत्ति को अपनाना पड़ा ।९। कृपण लोग ‘दीजिये’ इस शब्दोच्चारण के द्वारा याचना नहीं करते प्रत्युत स्मरण कराते हैं कि मेरी यह अवस्था—जो घर-घर माँगता फिरता हूँ—दान न देने के उपलक्ष में प्राप्त हुई है ।१०। घर-घर आये हुए अर्थीं (याचक) की पूजा कौन नहीं करता है, क्योंकि प्रतिदिन याचना करने वाले अर्थीं (याचक) किसके पूज्य नहीं हैं ।११। जो याचक किसी अनिच्छुक व्यक्ति को बलात् उस कर्म (देने) के लिए प्रेरित कर कुछ न कुछ ले ही लेते हैं, वे अपनी प्रतिदिन की याचना द्वारा उस दाता को दाता और याचक के भेद दिखा देते हैं ।१२। क्योंकि एक का हाथ नीचे रहता है और दूसरे का उसके ऊपर, इससे दाता और याचक के भेद से ही स्पष्ट सूचित हो जाता है ।१३। जो घर पर आये हुए अभ्यागत के लिए दान का त्याग कर पात्र के विचार में लीन हो जाते हैं, समस्त कर्म के सुसंपन्न करने पर भी उस दातां को परमार्थ के फल की प्राप्ति नहीं होती है ।१४। याचक यदि न हो तो दान धर्म कैसे सम्पन्न हो सकता है, क्योंकि याचकों को दिये गये दान का स्वागत उस अभ्यागत का प्रिय स्वागत करना है ।१५। अभ्यागत के पादोदक का सम्मान (शिरोधार्म) करना चाहिए क्योंकि वही स्वर्ग जाने के लिए सातों सीढ़ियाँ हैं और तो यों ही (संसार की) चिन्ताएँ थेरे ही रहती हैं, कभी कोई निश्चिन्त नहीं हुआ है ।१६। दाता को

धासादर्थमपि ग्रासं युक्तं दातुं सदार्थनाम् । दानं प्रियविनिर्मुक्तं नष्टमाहुर्भनीषिणः ॥१७
तस्मात्सत्कृत्य दातव्यमनन्तफलमिच्छता । प्रेत्याल्यानमपि श्रेयः प्रियानुनयपेशतम् ॥१८
न तद्वानशसत्कारपारुष्यमतिनीकृतम् । वरं न दत्तमर्थम्यः सङ्कुद्देनान्तरत्तमना ॥१९
न तदनं न च प्रीतिर्न धर्मः प्रियवर्जितः । दानप्रदाननियन्यजन्मध्यनं हुतं तपः ॥
यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधोऽप्य निष्फलं खग ॥२०

यः श्रद्धयाच्चितं दद्यात्प्रतिगृह्णाति चार्चितम् । तावुभौ गच्छतः स्वर्गे नरकं तद्विपर्ययात् ॥२१
औदार्प्यं स्वाद्यतं मैत्री हृनुकम्पा च भत्तरः । पञ्चभिर्तु गुरुौ दानं वायुदणि लहाफलम् ॥२२
बाराणसी कुरुक्षेत्रं प्रयागं पुष्कराणि च । गङ्गातटं समुद्रश्च नैमिषारण्यमेव च ॥२३
मूलस्थानं महापुष्यं पुण्डीरस्वामिकं तथा । कालप्रियं खगश्रेष्ठं क्षीरिकावासं एव च ॥२४
इत्येते कीर्तिता देशाः सुरसिद्धिनिषेविताः । सर्वे सूर्याश्रमाः पुण्याः सर्वा नद्याः सर्वर्तताः ॥
गतेसिद्धमुनिवासाश्र देशाः पुण्याः प्रकीर्तिताः ॥२५

सूर्यायितनसंस्थानां यद्यद्यत्यं तु दीयते । तदनन्तफलं ज्ञेयं दक्षः क्षेत्रं तु भावतः ॥२६
प्रहणं चन्द्रसूर्याभ्यामुत्तरायणमुत्तमम् । विषुवं सव्यतीपात षडशीतिमुखं तथा ॥२७
दिनच्छिद्राणि सङ्कान्तिः पुण्यं विषुपदं खग । इति कालः समाल्घतः पुंसां पुण्यविवर्धनः ॥२८

अपने ग्रासार्थ के अर्धभाग भी याचक के लिए सदैव देना उचित है, अन्यथा ऐसे प्रिय (याचक) को त्याग कर अन्य में दान करना मनीषियों ने व्यर्थ बताया है । १७। इसलिए अनन्तफल के इच्छुक को आवश्यक है कि उन्हें सत्कारपूर्वक दान दें । उनके लौप्य वैठकर बात-चीत भी करना श्रेयस्कर होता है, क्योंकि प्रियजन के अनुनय-विनय करना सभी भाँति से सुन्दर ही बताया गया है । १८। अविनय एवं आत्मकोष्ठ द्वारा दिया गया दान प्रशस्त नहीं होता है, क्योंकि कुद्दु होकर याचक के लिए दान न देना ही उत्तम बताया गया है । १९। वह धन, प्रीति एवं धर्म व्यर्थ हैं, जो अपने प्रिय (याचक) के लिए उपयुक्त न हो सके । खग ! दान-प्रदान, नियमपालन, यज्ञ, ध्यान, हवन एवं तप सभी प्रयत्नपूर्वक मुसम्पन्न करने पर भी क्रोध द्वारा निष्फल हो जाते हैं । २०। जो श्रद्धापूर्ण होकर उत्तम वस्तुओं (दान) का आदान-प्रदान करता है, उन दोनों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, और उससे प्रतिकूल आचरण वाले को नरक की । २१। उंदारता, स्वागत करना, मैत्री, अनुकम्पा एवं मत्सरहीनता, इन पाँचों गुणों द्वारा जो अन्यागत को दान प्रदान करता है, उसके दान का महान् फल बताया गया है । २२। खगश्रेष्ठ ! बनारस, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, पुष्कर, गंगातट, समुद्र, नैमिषारण्य, महापुष्य मूलस्थान, पुण्डीरस्वामिक, कालप्रिय तथा क्षीरसागर, इन प्रदेशों में देव एवं सिद्ध गण निवास करते हैं । सूर्य के सभी आश्रम, पर्वतों समेत सभी नदियाँ, तथा गौ, सिद्ध और मुनियों के आवास प्रदेशपुण्य रूप क्षताये गये हैं । २३-२५। सूर्य के मन्दिर में रहने वालों को यदि अत्य भी प्रदान किया जाये, तो उसका अनन्त फल बताया गया है, ऐसा सिद्ध पुरुषों का कथन है । खग ! सूर्य-चन्द्र के ग्रहण समय, सूर्य के उत्तरायण, विषुव, व्यतीपात, षडशीतिमुख (तुला, वृश्चिक संक्रान्ति एवं धन की संक्रान्ति के दिन), न्यूनदिन वाली संक्रान्ति, तथा विषुव यही मनुष्यों के पुण्यवर्धक समय बताये

भक्तिभावः परा प्रीतिर्थमो धर्मकभावनः । प्रतिवित्तिरिति ज्ञेयं श्रद्धापर्यायपञ्चकम् ॥२९
श्रद्धया विधिवत्पात्रे प्रतिपादितमुत्तमम् । तस्माच्छ्रद्धां समास्थाय देयमक्षयमिच्छता ॥३०
यद्वानं श्रद्धयां पात्रे विधिवत्रिपतिपादितम् । तद्वनन्तकल ज्ञेयमपि वा भारमाच्चकम् ॥३१

आर्तषु दीनेषु गुणान्वितेषु यः श्रद्धया स्वत्यमपि प्रदद्यात् ।

स रस्वकामात्मसुर्विति लोकाञ्छृद्देव दानं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥३२

श्रद्धा दानं परं ज्ञेयं श्रद्धा एव तपः परम् । श्रद्धां यज्ञमुख्तीह श्रद्धा चरमुपोषितम् ॥३३
अथाहिंसा क्षमा सत्यं ह्योः श्रद्धेन्द्रियसंयमः । दानमिष्टं तपो ध्यानं दशकं धर्मसाधनम् ॥३४
हत्त व्यस्तैः समस्तैर्वा सूर्यधर्मरनुष्ठितैः । सूर्योक्तां च सम्प्राप्तेर्गतिरेका प्रकीर्तिता ॥३५
यथा यः सर्वभूतानां शान्तेरतिशयः स्मृतः । कुर्यात्पुण्यं वहत्तम्पान्मम सोकेष्यथा सुधीः ॥३६
परस्त्रीद्वद्व्यसद्विकल्पं यः सापेक्षं करोति च । गुरुमार्तमगतं वा विदेशे प्रस्थितं तथा ॥

अरिभिः शरिभूतं च सन्त्यजेच्चैव पापकृत् ॥३७

तद्वार्यामित्रपुत्रेषु यश्चावज्ञां करोति च । इत्येतत्पात्रकं ज्ञेयं गुरुनिन्दासमं भवत् ॥३८
ब्रह्मचन्त्रं सुराणांश्च स्तेयी च गुरुत्पवणः । महापातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च षष्ठ्यमः ॥३९
क्रोधाद्वेषाद्वयात्मोभाद्ब्राह्मणस्य वदेत यः । प्राणान्तिकं महादोषं ब्रह्महा स उदाहृतः ॥४०

गये हैं । २६-२८। भक्तिभाव, उत्तमप्रीति, धर्म, धार्मिक भावना और प्रतिपत्ति (कर्तव्य ज्ञान) यही श्रद्धा के पाँच नामान्तर (द्वासरे नाम) कहे गये हैं । २९। श्रद्धालु होकर ही विधानपूर्वक सत्यात्र में दान देना उत्तम बताया गया है, इसलिए अक्षय फल के इच्छुकों को चाहिए कि श्रद्धा पूरी ही दान करें । ३०। श्रद्धा समेत विधानपूर्वक पात्र में दान देना इसलिए उत्तम बताया गया है कि उससे अनन्त फल की प्राप्ति होती है, तथा उसके अतिरिक्त भारस्वरूप होते हैं । ३१। दुःसी, दीन अयवा गुणी पुरुषों को जो श्रद्धापूर्वक अत्यल्प भी दान करता है, वही समस्त कामनाओं के सफलतापूर्ण लोकों की प्राप्ति करता है, क्योंकि दानविचक्षणों का कहना है कि श्रद्धा ही दानस्वरूप है । ३२। श्रद्धा ही, उत्तम दान, उत्तम तप, यज्ञ, तथा उत्तम उपवास वाला व्रत रूप है । ३३। अहिंसा, क्षमा, सत्य, (लज्जा), श्रद्धा, इन्द्रियसंयम, दान, यज्ञ, तप और ध्यान यही दश धर्म के साधन बताये गये हैं । ३४। इन समस्त के सोरेत या किसी एक ही को अपनाकर सूर्य धर्म के अनुष्ठान करने पर सूर्य के लोकों की प्राप्ति होती है, क्योंकि उनके लोकों की प्राप्ति के लिए यही एक प्रशस्त उपाय है । ३५। सभी प्राणियों की शांति के लिए जिस प्रकार पृथ्वी की प्रशंसा की गई है, उसी भाँति मेरे लोकों के इच्छुक विद्वानों को उचित है कि महान् पूण्य कार्य सम्पन्न करें । ३६। जो किसी पर स्त्री के देने के लिए संकल्पित द्रव्य को अपना लेता है, तथा उस गुरु का, जो, अति, अशक्त, विदेश के लिए प्रस्थित एवं श्रवांओं द्वारा अपमानित हो रहा है, त्याग करता है, वह पापी, कहा जाता है । ३७। उसकी स्त्री मित्र पुत्रों का अनादर करना, गुरुनिंदा के समान पातक बताया गया है । ३८। ब्रह्महत्या करने वाले, मरणान् करने वाले, चोर, गुरु स्त्री को उपभोग और इन चारों के साथ सभी प्रकार के व्यवहार रखने वाले, ये पाँचों महापातकी कहे गये हैं । ३९। क्रोध, द्वेष, भय एवं लोभवश जो ब्राह्मण के लिए प्राण निकलने के समान दुःखदायी वाणी का प्रयोग करता है, वही महादोष करने वाला 'ब्रह्माशती' कहा गया

ब्राह्मणं च समाहृय याचमानमकिञ्चनम् । यज्ञास्तीति च यो द्वूयात्स चाण्डाल उदाहृतः ॥४१
 देवद्विजगदः भूमि पूर्वदत्तां हरेत यः । प्रनष्टामपि^१ काले तु तमाहृष्म्ब्रह्माधातकम् ॥४२
 अधीत्य यो रवेर्जानं परित्यजति मन्दधीः । मुरापेन समं ज्ञेयं तस्य पापं च सुवत ॥४३
 अग्रिहोत्रपरित्यागः पञ्चयज्ञियकर्मणाम्^२ । मातापितृपरित्यागः कूटसाक्षं सुहृद्धधः ॥४४
 अप्रियं सूर्यभक्तानामभक्ष्यस्य च भक्षणम् । एवं निरपराधानं प्राणिनां च प्रभाटणम् ॥४५
 सर्वाधिकात्प्रयत्नेतेषां नास्ति देवपुरोत्तमे । आत्मलोकाधिपत्यं तु यच्छेत्सर्वजन्मत्यहिः ॥४६
 केचिदनेव दुर्घट्यते ज्ञानयोगपरा नराः । आवर्तन्ते तु नश्चान्ये संसारे भोगतत्पराः ॥४७
 तस्माद्विमोक्षमन्विच्छन्भोगात्तत्त्वं विवर्जयेत् । विरक्तः शान्तचित्तात्सा सौरलोकमवानुयात् ॥४८
 यच्चाप्यसक्तहृदये जपनीयं प्रसङ्गतः । तेषामपि वदत्येकः स्वानुभावानुरूपतः ॥४९
 तप्त्वार्थयन्ति ये भानुं सङ्कुदुच्छिष्ठदेहिनः । तेषां पिशाचलोके तु भोगान्धानुः प्रयच्छति ॥५०
 द्विर्जपन्ति च ये भानुं कूरा: सङ्कुदुलोचनाः । रक्षोलोके रविस्तेषां महाभागं प्रयच्छति ॥५१
 त्रिरच्यथन्ति ये भानुं मद्यमान्तरता नराः । ऋदितोके रविस्तेषां भोगान्विद्वान्प्रयच्छति ॥५२
 ये नृत्यगीतं कुर्वन्ति त्रिश्वरुद्धर्थं यदृच्छया । सूर्यस्याप्ते तु ते यान्ति गन्धवेष्वनं खग ॥५३

है । ४०। याचना करने वाले किसी अकिञ्चन ब्राह्मण को बुलाकर जो 'नहीं है' कह देता है, उसे चाण्डाल कहते हैं । ४१। देव, ब्राह्मण एवं गाय के लिए प्रदत्त भूमि का अपहरण जो करता है, चाहे वह कितनी खराब क्यों न हो, उसे ब्रह्माधाती बताया गया है । ४२। सुवत ! जो कोई सूर्य के ज्ञान की प्राप्ति कर पुनः उसका त्याग कर देता है, वही मूर्ख एवं उसका पाप मद्यपान करने वाले के समान कहा गया है । ४३। अग्निहोत्र के त्याग, पांचों यज्ञकर्मों के त्याग, माता-पिता के त्याग, कपटपूर्ण मासी (गवाही) देना, मित्रवध, सूर्यभर्तों के लिए अप्रिय (कठोर) वापी बोलना, अभद्र्य के भक्षण और निरपराध प्राणियों के वध करने वाले प्राणी कभी देवलोक के सर्वाधिपत्य प्राप्त नहीं कर सकते हैं, किन्तु समस्त जगत् के नायक (सूर्य) (कभी प्रसन्न होने) अपने लोक का आधिपत्य उसे प्रदान कर सकते हैं । ४४-४६। इस संसार में कोई मनुष्य ज्ञान योग द्वारा भूक्त हो रहा है, और कोई भोगों के उपभोगार्थ यहाँ आकर जन्म ग्रहण कर रहा है । ४७। अतः मुक्ति के इच्छुक को चाहिए कि उपभोग की आसक्ति (अधिकता) का त्याग करे, क्योंकि विरक्त तथा शांतं पूरुष को ही सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । ४८। भोगों में जिनकी अनुरक्ति नहीं है, और प्रसंगवश सूर्य नाम का ही जप करते हैं, ऐसे लोगों के लिए भी उनके स्वभावानुरूप एक सूर्य ही आधार हैं । ४९। अतः मनुष्य शरीर प्राप्त करं एक बार भी जो सूर्य की आराधना नहीं करते हैं, उन्हें सूर्य पिशाचलोक के भोग प्रदान करते हैं । ५०। राक्षस लोक में रहते हुए भी जो कूर एवं कुद्ध होकर रक्त नेत्र करने वाले प्राणी दो बार भी सूर्य के नाम का जप करते हैं, उन्हें भानु महाभाग्यशाली बना देते हैं । ५१। मद्य-मास में अनुरक्त रहने वाले जो प्राणी तीन बार सूर्य की पूजा करते हैं, उन्हें सूर्य ऋषिलोक के दिव्य भोग प्रदान करते हैं । ५२। खग ! सूर्य के सामने जो मनइच्छित तीन या चार प्रकार से नृत्य एवं गायन

'नशेषान्तस्य' इति जन्तवनिषेधः । २. 'यज्ञत्विर्गम्यां धखब्रौ' इति घः ।

लोकाः स्थाति समुद्दिश्य पूजयन्ति च गोपतिम् । तेषां शक्रालये भानुः कामान्सर्वान्प्रयच्छति ॥५४
 कामासत्तेन चित्तेन यः षड्चर्यते रविम् ; प्राजापत्ये रविस्तस्य लोके भोगान्प्रयच्छति ॥५५
 नंबकृत्तोच्चयेद्यस्तु चित्रभानुं स्थाधिष्ठ । स याति विष्णुसालोक्यं द्विष्णुना सह मोदते ॥५६
 तस्मादपि वरं स्थानं दद्भूतानां मनोहरम् । अप्रमेयगुणं दिव्यैविमानैः सार्वकामिदैः ॥५७
 असंख्यैवस्तुभिर्व्याप्तिं गैरकै रक्तचित्रकैः । नानाहृसमाकीर्णः सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥५८
 तत्स्थानं ते प्रगच्छन्ति अर्चयन्ति च ये द्विजान् । तत्र लोके खगश्रेष्ठ वसन्ति विहरन्ति च ॥
 तस्मादपि परं स्थानं ज्योतिष्कं तौरमुच्यते ॥५९
 एवं सूर्यनुभावेन निकृष्टेनापि कर्मणा । नरैः स्थानान्यवाप्त्वे श्रद्धाभावानुरूपतः ॥६०
 'इति श्रीभविष्ण्वे महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तनीलक्ष्म्ये सौरधर्मेषु सप्ताश्वानूरुसंवादो नाम
 एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः । १८९।

अथ नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सौरधर्मेषु सूर्यनूरुसंवादवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

तारारूपविमानानामिमाः सन्ति च कोटयः । यः कुर्यात् नमस्कारं तस्यैव च फलं भवेत् ॥१

करता है, उसे गन्धर्व भवन की प्राप्ति होती है ।५३। जो अपनी स्थाति के लिए सूर्य की उपासना करते हैं, भानु उर्हे इन्द्रलोक की समस्त कामनाएँ प्रदान करते हैं ।५४। काम में अनासक्त रहकर जो छः बार सूर्य की प्रजा करता है, सूर्य उसे प्राजापत्य लोक के भोग प्रदान करते हैं ।५५। खगाधिष्ठ ! जो नव बार चित्रभानु नामक सूर्य की उपासना करता है, वह विष्णु के स्वर्गलोक मोक्ष की प्राप्तिपूर्वक उनके साथ आनन्दानुभव प्राप्त करता है ।५६। उससे भी उत्तम स्थान, जो प्राणियों के लिए मनोरम तथा कोटिसूर्य के समान प्रभापूर्ण है, एवं अप्रेमय गुणों समेत दिव्य विमानों द्वारा, जो समस्त कामनाएँ प्रदान करने वाली, असंख्य वस्तुओं से पूर्ण एवं सुवर्ण के चित्र-विचित्र भाँति-भाँति के घरों में व्याप्त हैं, वे प्राणी प्राप्त करते हैं जो द्विजों की पूजा करते हैं । खगश्रेष्ठ ! वे उस लोक में रहते और विहार करते हैं । उससे भी उत्तम 'ज्योतिष्क' नामक सूर्य का स्थान है । इस प्रकार मनुष्य लोग सूर्य में अनुरक्त रहने के कारण छोटे-छोटे कर्मों द्वारा भी अपनी श्रद्धा के अनुकूल लोकों की प्राप्ति किया करते हैं ।५७-६०

श्रीभविष्ण्वपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्य के सौरधर्म में सप्ताश्वानूरुसम्बाद नामक एक सौ नवासीर्वां अध्याय समाप्त । १८९।

अध्याय १९०

सौर धर्म में सूर्यनूरुसंवाद वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—करोड़ों की संख्या में वर्तमान ये तारा रूप विमान, उसे ही प्राप्त होते हैं,

इत्येता गतयः प्रोक्ता सहस्रः सौरधर्मिणाम् । तस्मात्सौरः सदा धर्मः कर्तव्यः भुखिष्ठता ॥२
 इदानीं पापनिवार्याः स्थूला नरकहेतवः । ते समासेन कथन्ते भनोवाप्नायसाधनैः ॥३
 जवां मार्गे बने चाङ्गे: पुरे शामे समरणम् । इत्येतानीह पापनि सुरापानसमानि च ॥४
 बने सर्वस्य हरणं नरम्ब्रीगजवाजिनाम् । गोभूसमीपजातनामोषधितां च लेचर ॥५
 चन्दनागुरुरुपूरकस्तूरीपट्टवाससाम् । इत्सन्यासाप्तहरणं चम्पस्तेयसमं स्मृतम् ॥६
 कन्यानां वरयोग्यानामाकर्षणमस्मृताः । उत्त्रमिश्रकलत्रेषु गमनं भगिनीषु च ॥७
 कुन्तरीत्ताहसं घोरमन्त्यजस्त्रीनिवेषणम् । लदर्जायाश्र शशनं गुश्लत्समं स्मृतम् ॥८
 महापातक्तुल्यानि पापान्युक्तानि यानि हु । तप्तनि शातकरसक्षानि कूसहे छोपधातकम् ॥९
 द्विजायार्थं परिश्रुत्य न ब्रह्मचर्ति यो द्विज^१ । सद्गुर्याणां च संत्वानः साधुबन्धुतपस्मिन्नम् ॥१०
 गोभूहिरव्यवस्त्राणामपहारः प्रयत्नतः । ईर्षरार्पितवृद्धीनां पीडनं सुमहत्कृतम् ॥११
 यः पीडामाश्रमं स्थान अऽवरेदत्पिकाभिः । तद्भूत्युपरिभूतस्य पशुधान्यधनस्य च ॥१२
 कूपद्वान्यपशुस्तेयर्याज्यानां च यज्ञनम् । यज्ञारामतडागानां दात्पत्यस्य विक्रयः ॥१३
 तीर्थयात्रोपवासानां द्रते च जपकर्मणि । स्त्रीघृणान्युपकर्त्तिं ये जनाः पापर्मणा ॥१४
 अरक्षणं च नारीणां मद्यपस्त्रीनिवेषणम् । ऋषीणामप्रवानं च धान्यवृद्धपुपसेवनम् ॥१५

जो सूर्य को नमस्कार करता है । १। सौर धर्म के अपनाने बाले के लिए यही गतिरूप है, अतः सुखेच्छुक को सदैव सौरधर्म का पालन करना चाहिए । २। इस समय मैं तुम्हें वे स्थूल पाप समूह, जो नरक के कारण हैं, तथा मन, वाणी एवं शारीर द्वारा उसे लोग उत्पन्न करते हैं, विस्तारपूर्वक बता रहा हूँ । ३। गौओं के पथ, जंगल, नगर एवं गाँव को अग्नि द्वारा प्रज्वलित कर नष्ट करना, ये सब पाप मद्यपान के समान बताये गये हैं । ४। जंगल में मनुष्य, स्त्री, हाथी एवं घोड़े के रहने वहने स्थान, गाय के समीप उत्पन्न औषधि के अपहरण तथा आकाशगार्मित् ! चन्दन, अगुह, कपूर, कस्तूरी, पद वस्त्र (दुपट्टा), और हाथ की दी हुई धरोहर, इनके अपहरण करना ये सब सुर्वण की चोरी करने के समान हैं । ५-६। वर के योग्य कन्या का अनायास अपहरण, पुत्र अथवा भित्र की पत्नी के तथा भागिनी के साथ उपभोग करने, कुमारी के साथ बलात्कार, किसी घोर शूद्र स्त्री के भोग तथा अपनी जाति की स्त्री के साथ गमन, ये गुरु पत्नी गमन के समान दोष हैं । ७-८। ये सभी पातक, जो बताये गये हैं, महापातक के समान हैं । अब तुम्हें उपपातक बता रहा हूँ । ९। द्विज ! जो ब्राह्मण के लिए किसी वस्तु की प्रतिज्ञा कर पूरी नहीं करते हैं और सती स्त्री का त्याग, साधु, बन्धु, एवं तपस्मियों के गाढ, भूमि, सुवर्ण तथा वस्त्रों के प्रयत्नपूर्वक अपहरण, ईश्वर में अनुराग करने वाले को पीड़ित करके, आश्रमों में किसी प्रकार के अत्यं भी कष्ट देने, उसके ऐश्वर्य-पशु, धन-धान्य, कुर्म, धान्य एवं पशुओं की चोरी करने, यज्ञ के अयोग्य को यज्ञ कराने, यज्ञ के बगीचे, तालाब एवं स्त्री पुत्र के विक्रय करने, तीर्थयात्रा, उपवास के द्रव्यों में जप करते हुए जनों के, सभी धनके अपहरण करने, स्त्री की रक्षा न करने, मद्यपान करने वाली स्त्री के भोग, ऋषियों को कुछ न देकर स्वयं उस धान्यवृद्धि के

१. हेखगेत्यर्थः । २. पष्ठचर्यं द्वितीया, माण्डलिंकनृपाणामित्यर्थः ।

देवाप्निसाधुसाध्वीनां निन्दा गोब्राह्मगस्य च । प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा राजमाण्डलिकानपि^१ ॥१६
उत्सन्धितुदेवाश्र त्वर्कमत्यागिनश्च ये । दुःखीला नास्तिकाः पापाः सदसच्छून्यददिनः ॥१७
एवं कामे प्रवृत्ते तु वियोनौ पशुयोनिषु । रजस्वलास्वयोनौ^२ तु मैथुनं यः समाचरेत् ॥१८
स्त्रीपुत्रमित्रसम्मीतेरारामोच्छेदकाश्र ये । जनस्याप्रियवक्तारो जनाभिप्रायभेदिनः ॥१९
भेता तजागवप्राणां सङ्खमाणां रसस्य च । एकपश्चित्स्थितानां च पद्मिलभेदं करोति यः ॥२०
इत्येतम्नु नराः पापैरुपपत्तिक्षिनः स्मृताः ॥२१

इति श्रीभविष्ये नहापुराणे शाह्दे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु सूर्यानूरुसंवादे
नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९०।

अथैकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्ताश्वतिलकाशृणसंवादम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

ये गोब्राह्मणस्यानां साधूनां तु तपस्विनाम् । दूषकाश्रव वर्तन्ते नरा नरकगामिनः ॥१
परिश्रमेण तप्यन्ते द्वे तस्य सूचकाः । परदाररतानां च कन्याया दूषकाश्र ये ॥२

सेवन, देव, अग्नि, सज्जन, सती, गो, व्राह्मण एवं परोक्ष या प्रत्यक्ष राजाओं की निन्दा करने, पितृण, देवों के त्याग, अपने कर्म के त्याग, दुःखील, नास्तिक, पापी, सत् असत् अथवा शून्यवादी कामुक होकर नपुंसक नारी, या पशुओं के संभोग करने, अथवा रजस्वला के साथ मैथुन, स्त्री, मित्र एवं पुत्र की प्रीति के नाश एवं बर्गीचे का नाश करने वाले, सभी से कठोर भाषण करने, किसी के अभिप्राय को दूररे से दत्ताने, तालाब, बावली, एवं संक्रामक रस के नाश करने, और एक पंक्ति में बैठे हुए लोगों में भेद उत्पन्न करने वाले, ये सभी उपपातकी बताये गये हैं । १०-२१

श्रीभविष्यपुराण में व्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में सूर्यानूरुसंवाद वर्णन
नामक एक सौ नव्वेवाँ अध्याय समाप्त । १९०।

अध्याय १९१

सप्ताश्वतिलक एवं अरुण का संवाद

सप्ताश्व बोले—गौ, व्राह्मण, सत्य (धान्य), एवं तपस्वी साधुओं को कष्ट प्रदान करने वाले ऐसे नारकीय मनुष्यों की इस भूतल में कमी नहीं है, उसी भाँति परिश्रमपूर्ण किसी के तप करने की सूचना अन्य को देने वाले की भी । परस्त्रीगामी, एवं कन्या निन्दक, गोशाला, अग्निस्थान, जलाशय, पर्वतों के

१. षष्ठ्यर्थे द्वितीया, माण्डलिकनृपाणामत्यर्थः । ३. स्वेतरस्यां वा योनीतरदेशे वा पुरुषसमागमाक्षमयोनौ ।

गोष्ठापिजलरम्यासु तसच्छायानगेषु च । त्यजन्ति ये पुरीषणि आरामायतनेषु च ॥३
 मद्यपानरता नित्यं गीतवाद्यरता नराः । कामकोशमदाविष्टा रन्धान्वेषणतत्पराः ॥४
 पाख्यमतसंयुक्ता बृथा संतापकौतुकाः । ये मार्गानुपरुद्धन्ति परसीमां हरन्ति च ॥५
 कूटशासनकर्त्तरः कूटकर्मकृतो नराः । धनुषः शिल्पिशस्त्राणां यः कर्ता यश्च विक्रीय ॥६
 निर्दयोऽस्त्रीवस्त्रूप्तेषु पशुनां दमकश्च यः । मिथ्या प्रवदतो दाचमाकर्णयति यः शनैः ॥
 स्वालिनिश्चागुह्योही मायावी चपलः शठः ॥७

ये भार्यापुत्रनित्राणि बालचूढकृष्णातुरान् । छृत्यन्तिथिबन्धूश्च त्यजन्ति च बुद्धुक्षितान् ॥८
 यः स्वयं पद्मवन्नाति विष्णयाङ्गं न यच्छति । बृथा पाकः स निजेयै बहुनवादिषु गर्हतः ॥९
 नियमं स्वयमादाय ये त्यजन्त्यजितेन्द्रियाः । प्रवज्यावसिता ये च रहस्यानां तु भेदकाः ॥१०
 ये ताण्ड्रन्ति गां मूहास्त्रासयन्ति सुठुर्वृहः । दुर्वलं न च पुण्यन्ति प्रनष्टान्नान्विष्टि च ॥११
 पीड्यन्त्यतिभारेण अल्पयं वाहयन्ति च । वृष्णाणां वृषणानन्ये पापिष्ठा गालयन्ति हि ॥
 वाहयन्ति च गां इन्द्र्यां ते पापिष्ठा नराधमाः ॥१२

अपर्युदिकलं हीने दलचूढकृष्णानुगम् । नानुकम्पन्ति ये भूडास्ते यान्ति नरकं नराः ॥१३
 अजाविका माहिषिकाः सविवीवृष्टलीपतिः । क्षत्रविद्युद्वृद्धाश्र त्वधर्मदिहताः सदा ॥१४
 शिल्पिनः कारका वेश्याः क्षेमकारनृपृष्ठवजाः । नर्तक्यो ज्योतिषि हताः सर्वे नरकगामिनः ॥१५

वृक्षों की छाया, बगीचे एवं (जीर्ण-शीर्ण) मन्दिरों में या उसके निकट पुरीषोत्सर्ग (पालाना-पेशाव) करने वाले, नित्य मदयापान करने वाले, गाने-जाने वाले, कामी, कूद, मदांध, रन्धान्वेषी, पालंडी, व्यर्थ की बातें करके प्रसन्न होने वाले, पथ को काँटे आदि से अवरुद्ध करने वाले, दूसरे की सीमा का अपहरण करने वाले, कूटनीतिपूर्ण शासन करने वाले, कूटनीति करने वाले, धनुष एवं जस्तों के निर्माता, तथा उनके विक्रय करने वाले, सेवकों के लिए निर्दयी होने वाले, पशुओं के दमन करने वाले, किसी की मिथ्या बातों को धीरे-धीरे सुनने वाले, तथा स्वामी, मित्र, एवं गुरु के द्वाही, मायावी, चंचल, शठ, भ्रू-प्यास से दुखी स्त्री, पुत्र, मित्र, बाल, वृद्ध, रोगी, सेवक, अतिथि एवं बन्धुवाण, के त्याग करने वाले, ये सभी पातकी कहे गये हैं । १-८। जो स्वयं पक्वान्न को ब्राह्मण को बिना दिये भक्षण करता है, उसका पाक व्यर्थ है एवं ब्रह्मवादियों में वह निन्दित पुरुष समझा जाता है । ९। इसी प्रकार नियमों का यथावत् पालन न करने वाले, असंयमी, संन्यासी होकर पुनः गृहस्थ होने वाले, रहस्यों को प्रकट करने वाले, गौओं एवं दुर्बलों को बार-बार पीड़ित करने वाले, अन्नों को नष्ट करने वाले, दैलों को अत्यन्त भार से पीड़ित कर निरन्तर बोआ ढोने वाले और उनके अण्डकोषों के मर्दन कर उन्हें पुस्त्वहीन करने वाले, तथा बंध्या गायों द्वारा बोझा का बहन करने वाले ये सभी पापी तथा नराधम कहे गये हैं । १०-१२। धनहीन, व्याकुलेन्द्रिय, हीन, बाल, वृद्ध एवं रोगी, के लिए कृपा न करने वाले भूद मनुष्य नरक गामी होते हैं । १३। भेद-बकरी एवं भैसे पालने वाले, सावित्री तथा वृषली पति (शूद्र) सीर स्वधर्महीन क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वृद्धा, शिल्पी (दीवाल पर चित्र बनाने वाले), राजगीर, वेश्याएँ, क्षेमकार नृपृष्ठवज नर्तकियाँ, अग्नि एवं विद्युत द्वारा प्राण त्याग करने वाले ये सभी नरकगामी होते हैं । १४-१५। धी, तैल, अथवा इनके पक्वान्न, शहद, मांस, रस,

प्रततेजानुपानानि मधुमांसरसासवम् । गुडेक्षीरसाकान्हि दधिमूलफलानि च ॥१६
 त्रृणानि काष्ठं पुष्पाणि बीजोषधिमनुत्तमाम् । उपानच्छत्रशकटमासनं शयनं सृदः ॥१७
 ताञ्च सीसं त्र्युं कस्त्वं शङ्खाद्यं च जलोद्भवम् । वार्ण दा वैणवं वास्ति गृहोपकरणाति च ॥१८
 और्जकार्पसित्कौशेयभङ्गपट्टेद्भवानि च । स्थूलसूद्धमाणि सम्भूदा ये च लोका हरन्ति वै ॥१९
 एवमादीनि चान्यानि द्विव्याणि विविधानि च : नरकेषु द्वुं गच्छेद्यो हरेत पुरातनात् ॥२०
 यदा तदा तु पारोक्षमपि सर्वप्रभावकन् ! अपहृत्य नरो वाति नरकं न त्र तंशयः ॥२१
 एवमादीनरः पापैरक्तान्ते : समनन्तरम् । शरीरयात्मार्थं तत्प्रब्रह्ममयःमुग्धात् ॥२२
 यमलोके द्वजदेवं शरीरेण यमाजया । यमहृतैर्हृष्टोर्नीद्यमानः भुदुःखतः ॥२३
 देवमानुषजीवानामधर्मस्त्विनिरतात्मनाम् । धर्मराजः स्मृतः शास्त्रा भुघोर्विविधैर्धैः ॥२४
 विनयाभावयुक्तानां प्रसादात्त्वलितात्मनाम् । प्रायश्चित्तैर्बहुविधैः पातकं नष्टतामियात् ॥२५
 पारदारिकचोराणामन्याव्यवहारिणाम् । शास्त्रा क्षितिनिः प्रोक्तः प्रच्छश्नानां च धर्मरात् ॥२६
 तस्मात्कृतस्य पापस्य प्रायश्चितं समाचरेत् । नाभुक्तस्यान्यथा नाशः कल्पकोटिशतैरपि ॥२७
 यः करोति शुभं कर्म कारयेदनुमोदयेत् । कायेन मनसा वाचा स विन्देतोत्तमं सुखम् ॥२८

आमव, गुड़, ऊख, क्षीर, शाक, दही, मूलकन्द आदि फल तृण, काष्ठ, पुष्प, बीज, औषधि, उपानह (जूते), छत्र (छाता), गाड़ी (बैलगाड़ी आदि), आसन, शयन (पलंग बिछौने आदि), मिट्टी, ताँबा, शीशा, रंगा, कांसा, जल से उत्पन्न शंख आदि, ब्रेंडे, दांस के फल, घर बनाने के सामान, (ऊनी, सूती एवं रेशमी वस्त्र, भांग, पत्थर की मोटी-पतली चक्कियाँ आदि के अपहरण करने वाले मूर्ख लोग, एवं इसो प्रकार भाँति-भाँति के अन्य द्रव्यों के अपहर्ता मनुष्य बलात् नरकों में डाले जाते हैं । १६-२०। किसी की किसी प्रकार की कोई भी वस्तु, चाहे वह राई के बराबर की क्यों न हो, परोक्ष में ले लेने से वह पुरुष नरकगामी होगा इसमें संदेह नहीं । २१। ऐसे अनेक पायों द्वारा मनुष्य प्राण त्याग करने के साथ ही शारीरिक यातनाएँ भोगने के लिए पूर्व की भाँति ही शरीर प्राप्त करता है । २२। और उसी शरीर से दुःखों का अनुभव करता हुआ वह यमलोक में वहाँ भीषण एवं घोर रूप वाले यमदूतों द्वारा ले जाया जाता है । २३। अधर्म करने वाले देव एवं मनुष्य जीवों के भाँति-भाँति के भयानक बध करने के द्वारा धर्मराज अपनी पुरी में उन जीवों पर अपना शासन करते हैं । २४। नम्रताहीन, प्रमादी एवं स्वलित आत्मा वालों के पातक अनेक प्रकार के प्रायश्चित्तों द्वारा नष्ट होते हैं । २५। क्योंकि परस्ती के चोर एवं अन्याय पूर्ण व्यवहार करने वाले मनुष्यों के ऊपर शासक (नियंत्रण करने वाला) राजा होता है, और प्रच्छन्न (गुप्त) पापियों के ऊपर नियंत्रण करने वाले धर्मराज होते हैं । अतः किये हुए पाप का प्रायश्चित्त करना आवश्यक है, क्योंकि अन्यथा सैकड़ों करोड़ कल्प प्रयत्न करने पर भी बिना भोगे उस पाप का नाश सम्भव नहीं होता है । २६-२७। जो मन, वाणी एवं कर्म द्वारा शुभ कर्म करता-कराता या अनुमोदन करता है, उसे उत्तम सुख की

इति संक्षेपतः प्रेत्का पत्प्रभेदात्तिरधा गतिः । तथान्या गतयश्चित्राः कथ्यन्ते कर्मभेदतः ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे आह्ये पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे सप्ताश्वतिलकारुणसंवाद-
नासैकन्वत्यधिकशततमोऽध्यायः । १९।१।

अथ द्विनदत्यधिकशततमोऽध्यायः

सप्ताश्वतिलकानूरुसंवादवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

सन्त्रासजननं घोरं पापानां पापकारिणाम् । गर्भस्थ्यर्जयमानैश्च बस्तैस्तरुणमध्यमैः ॥१

स्त्रीपुंसपुंसकैर्वृद्धैर्गन्तव्यं सर्वजनुषु । शुभाशुभफलं तत्र भोक्तव्यं देहिभिस्तथा ॥२

चित्रगुप्तादिभिः सर्वेऽर्थस्थैः सत्यवादिभिः । प्रोक्तं वै धर्मराजस्य निकटे यद्दुभाशुभम् ॥

अवश्यं हि कृतं कर्त भोक्तव्यं तद्विचारितम् ॥३

तत्र ये शुभकर्माणः सौम्यचित्ता दयान्विताः । ते नरा यान्ति सोन्मेन यथा यन्मनिकेतनम् ॥४

यः प्रदद्याद्द्विजेन्द्राणामुपानत्काष्ठछश्रकम् । स च धर्मेण महता सुखं याति यमातयम् ॥५

सोपानत्को नरो यस्तु देवायतनमाविशेत् । विशेषतो गर्भगृहं स सन्त्रासमुपादनुते ॥६

जो मन वाणी एवं कर्म द्वारा शुभ कर्म करता कराता या अनुमोदित करता है उसे उस सुख की प्राप्ति होती है ॥२८। इस प्रकार संक्षेप में पाप भेद की तीन गति बतायी गई है और उत्तरकी आश्चर्यकारी गतियाँ जो कर्मभेद वश प्राप्त होती हैं, कह रहा हूँ ॥२९

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्मों में सप्ताश्वतिलकारुण संवाद वर्णन
नामक एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय समाप्त । १९।१।

अध्याय १३२

सप्ताश्वतिलाकानूरुसंवाद का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—पापी प्राणियों को अपने पापों के परिणामस्वरूप घोर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं, चाहे वे बाल, तरुण, मध्यम, स्त्री, पुरुष, नपुंसक एवं वृद्ध क्यों न हों । उन्हें गर्भस्थ्य या उत्पन्न होकर सभी छोटे-बड़े शरीर धारण करके उसी शरीर द्वारा अपने किये कर्मों के शुभ-अशुभ फल भोगने पड़ते हैं । १-२। चित्रगुप्त आदि सभी धार्मिक एवं सत्यवादियों द्वारा, जो धर्मराज के निकट सम्पर्क में स्थित रहते हैं, जो कुछ शुभ-अशुभ कर्मों के निर्णय हो जाते हैं, उन्हें अवश्य प्राणियों को भोगने पड़ते हैं । ३। उनमें जो शुभ-कर्म करने वाले प्राणी हैं, जो सौम्य चित्त एवं दयालु होते हैं, वे जिस प्रकार सुखपूर्वक यमपुरी को प्रस्थान करते हैं (बता रहा हूँ) । जो ब्राह्मणों को उपानह (जूते आदि), काठ के दंडे वाले छत्ते दान रूप में प्रदान करता है, वह धार्मिक होने के कारण अत्यन्त सुखपूर्वक यमराज के यहाँ पहुँचता है । ४-५। पादत्राण पहने हुए जो कोई देवालयों में विशेषकर मंदिर के भीतर प्रवेश करता है, उसे दंडरूप में यातना

तोपानतकानि दानानि तथान्नं तु विशेषतः । एवं दानविशेषेण धर्मराजपुरं नरः ॥
दत्त्वाद्याति सुलेनैव तत्स्माद्ग्रुमं समाचरेत् ॥१७
ये पुनः कूरकमणी नराः पापरताः लग ! ते घोरेण तथा दान्ति इक्षिणेन यमालयम् ॥८
षडशीतिसहनाणि यजेनानामशीति च । वैवस्वतपुरं ज्ञेयं नानारूपमिति स्मित्तम् ॥९
स्मशीपस्यमिवादाद्याति नराणां गुभवारिणाम् । पापानामतिदूरस्थं तथा रौद्रेण गच्छताम् ॥१०
तीर्णकट्टक्षुकेन राक्षरानिचितेन च । क्षुरधारतिनिस्त्रिशः पाषाणैविचन्तितेन च ॥११
स्वचित्कर्णेण महता दुरन्तैश्चेव लातकैः । सोहस्राङ्कुभिराच्छिङ्गास्तथा हङ्गैः समन्विताः ॥१२
ततः पत्निर्विमलैः पर्वतैर्वक्षत्कुलैः । प्रेतश्राकारयुक्तेन यान्ति मार्गेण दुःखितः ॥१३
स्वचिद्विश्वमगर्ताभिः स्वचिल्लोळेः सपिच्छलैः । सुतप्तवालुकाभिश्च तदा तीक्ष्णैश्च शङ्कुभिः ॥१४
अनेकशासारचित्व्यादैर्वैश्वनैः स्वचित् । कष्टेन तमसः मार्ग अनालम्बे सुदारणि ॥१५
अथ भृश्णाटकेव्यप्तिः स्वचिद्वावाप्निना पुनः । स्वचित्पशिलाभिश्च स्वचिद्व्यानं हिमेन तु ॥१६
स्वचिद्वालुकण्या व्याप्तमाकण्ठात्तं ऋवेशयेत् । स्वचिददृष्टाम्बुद्धं व्याप्तं स्वचिद्व्यं करिषा गिना ॥१७
क्वचिचित्तिहैः स्वचिद्व्यादैर्वैशः कीटैश्च दारुणैः । स्वचिन्महाजलौकाभिः स्वचिद्वाजगरैः पुनः ॥१८

का अनुभव करना पड़ता है । ६। पादत्राण समेत दान एवं विशेषकर अप्रद दान करने वाला पुरुष उसी दान विशेष द्वारा पुनः सुखपूर्वक धर्मराज के नगर को प्रस्थान करता है, अतः धर्माचिरण करना सभी के लिए आवश्यक है । ७। लग ! जो मनुष्य कूर कर्म करने वाले एवं पाप में आसक्त रहने वाले हैं, वे उस दक्षिण के दुर्गम पथ द्वारा यम की पुरी में प्रविष्ट कराये जाते हैं । ८। छियासी सहज योजन की दूरी पर यमराज के वे भाँति-भाँति के नगर स्थित हैं । ९। वे नगर शुभ कर्म करने वाले के लिए अत्यन्त सम्मिकट की भाँति प्रतीत होते हैं, और पापियों के लिए, जिनकी अत्यन्त दूरस्थ दुःखपूर्ण यात्रा होती है । १०। (पापियों के मार्ग) तीर्ण काँटे एवं पत्थर की कंकड़ियों द्वारा सकीर्णता प्राप्त, भुरा (नाई के छुरे) की धार की भाँति तीर्ण बड़े-बड़े पत्थरों से व्याप्त होते हैं । ११। कहीं सूर्य द्वारा भीषण गर्भी के अनुभव, अगाध खाइयाँ, लोह के कीलों से आच्छान्न एवं लड्डों से युक्त, सधन वृक्ष समूहों वाले पर्वतीय प्रदेशों में गिरते-पड़ते गमन करना, इस प्रकार उसे दुःखी होकर प्रेत मार्ग से जाना पड़ता है । १२-१३। कहीं विषम (ऊँचे-नीचे) गड्ढे को पार करना, कहीं दल-दल एवं फिसलने वाली भूमि झड़ी का अनुसरण करना, अत्यन्त तप्त बालुकाओं, तीर्ण कीलों एवं अनेक शासा वाले बाँस के दुर्गम जंगलों के भीषण मार्ग को धोर अन्धकार में निःसहाय होकर पार करना पड़ता है । १४-१५। कहीं मार्ग काँटेदार वृक्षों से अवरुद्ध है, कहीं दावाग्नि लगी है । कहीं अत्यन्त जलती हुई पत्थर की शिलाएँ पड़ती हैं, पुनः कहीं वर्ष के देर लगे हैं । १६। कहीं इतनी बालुकाएँ पड़ी हैं, जहाँ पहुँचने पर कण्ठ तक समस्त शरीर उसमें धस जाता है । कहीं द्रौषित जल भरा पड़ा है, कहीं उपलों की भीषण अग्नि व्याप्त है, कहीं सिंह, कहीं बाघ, कहीं मञ्चर, कहीं भयानक कीड़े, कहीं भीषण आकार कीं जोके, कहीं अजगर वृन्द, रक्षशोषक मसिल्याँ, कहीं भीषण विषैले सांप, कहीं अत्यन्त बलवान एवं

१. ईकारहस्त आर्षः ।

मक्षिकाभिश्च रौद्राभिः क्वचित्सर्वीर्विषेत्वाणः । महागजेन्द्रमूनैश्च बलोन्मत्तः प्रसादिभिः ॥१९
 पन्थाननुत्तिलर्णद्विश्च तीक्ष्णभृशौर्महावृष्टेः । महापृशौर्महिष्वर्ष्मत्तेभावातुरैः ॥२०
 डाकिनीभिश्च रौद्राभिर्विकरालैश्च राक्षसैः । व्याधिभिश्च महाघोरैः पीडधमाना वज्रन्ति हि ॥२१
 महापाशविमिश्रेण महाचण्डेन दायुना । महापाषाणवर्षेण हन्यमाना निराश्रयाः ॥२२
 अचिद्विद्युत्प्रपत्तेन शीर्यमाणा वज्रन्ति हि । पतिद्विवर्ज्यस्थातेल्लकापालैश्च दारूणीः ॥२३
 प्रदीप्ताङ्गारवर्षेण दह्यमाना वज्रन्ति हि । महान्धकाशशुक्रेण पीडधमाना वज्रन्ति हि ॥२४
 महामेघरवैर्यैर्विव्रास्यन्ते मुहुर्मुहुः । तीक्ष्णपाषाणयुक्तेन पूर्यनाणाः समन्ततः ॥२५
 महाक्षुराम्बुधाराभिः सेव्यमाना वज्रन्ति हि । महामेघरवैर्यैर्विव्रास्यन्ते मुहुर्मुहुः ॥२६
 भृशं शीतेन तीक्ष्णेन इक्षेण मारुतेन च । इत्थं भार्गेण रौद्रेण पथेयरहितेन च ॥२७
 निरालस्तेन दुर्गेण निर्जनेन समन्ततः । अविश्वामिण महता विगतापायदुर्धरैः ॥२८
 नीयन्ते देहिनः सर्वे ये मूढाः पापकारिणः । इति ज्ञात्वा नरः कुर्यात्पुर्यं पापं च वज्रयेत् ॥
 पुण्येन याति देवत्वं पापेन नरकं द्रजेत् ॥२९
 यैर्मनागपि देवेशो भनसा पूजिते रावः । ते कदापि न पश्यन्ति रमस्य वदनं खग ॥३०
 किन्तु पापैर्महाघोरैः किंचिच्कालं तवाज्ञया । भवन्ति प्रेतराजानस्ततो यान्ति रवेः पुरम् ॥३१
 ये पुनः सर्वभावेन भजन्ते भुवि भास्करम् । न ते लिम्पन्ति पापेन पश्यपत्रमिवाम्बसा ॥३२

मदोन्मत्ता होने के कारण बलात् मंथन करने वाले विशालकाय गजेन्द्र, कहीं तीक्ष्ण सींग वाले बड़े-बड़े बैल एवं महान् सींग वाले भैसे मार्ग को सीमा द्वारा उश्ल पुरुथल मचाकर अवरुद्ध किये हैं, कहीं मदान्ध ऊँटों के बृन्द भरे पड़े हैं, कहीं भीषण डाकिनियाँ, एवं विकराल राक्षसों के दल खड़े हैं ; इस प्रकार अत्यन्त धोर पापियों से पीडित होते हुए दक्षी दुर्गम मार्गों से यमलोक जाना पड़ता है । १७-२१। महान् पाशों में बैंधकर प्रचण्ड वायु के झोके एवं बड़े-बड़े पत्थर खंडों की वर्षा के आधातों को सहन करते हुए अकेले उस मार्ग से, जहाँ कहीं-कहीं बिजलियों के गिरने से शहर विदीर्ण हो जाता है, जान पड़ता है । २२-२४। (कहीं मार्ग में) मेघाण अपने भीषण गड़गड़ाहंट द्वारा बार-बार त्रास दिखा रहे हैं, कहीं चारों ओर तीक्ष्ण पत्थर भरे पड़े हैं, कहीं क्षुर के धार के समान तीक्ष्ण जलधाराएँ गिर रही हैं। इस भाँति जहाँ भी मेघ अपने भयानक शब्दों द्वारा बार-बार त्रस्त करने की चेष्टा करते रहते हैं, उन्हीं मार्गों द्वारा जाना पड़ता है । २५-२६। कहीं अत्यन्त ठंडी है, कहीं तीक्ष्ण एवं रुद्धे दायु के झोके हैं, ऐसे भयानक मार्ग से जो दुर्गम एवं निर्जन पाथेय (सम्बल) रहित होकर निराधार, अविश्वाम गति से जिसमें कहीं भी रुकावट, विघ्नबाधा के द्वारा होती ही नहीं, सभी पाप करने वाले मूर्ख प्राणी ले जाये जाते हैं। ऐसा समझकर मनुष्य को पुण्य करना चाहिए न कि पाप । क्योंकि पुण्य कर्म करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और पाप द्वारा नरक की प्राप्ति होती है । २७-२९। खग ! जो चित्त लगाकर कभी देवेश (सूर्य) का थोड़ा भी पूजन किया है, उसे कदापि नहीं यमराज का मुख देखना पड़ता है । ३०। किन्तु महाघोर पापियों को भी (आपके पूजन करने पर) आपके आदेशानुसार कुछ दिन प्रेम के अधिनायकत्व को स्वीकार करके पश्चात् सूर्यलोक की प्राप्ति हो जाती है । ३१। जो फिर समस्त भावनाओं द्वारा उस भूतल में भास्कर की उपासना करता है, जल में स्थित

तत्मात्प्रकुर्याद्वृत्तिं वै भास्करे सततं नरः । शद्या पूजयेद्वानुं य इच्छेद्विपुलं धनश् ॥३३
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ग्राहे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे तप्ताश्वतिलकानूरसंवादे
 द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः । १९२।

अथ त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

दन्तकाष्ठविधिवर्जनम्

सप्ताश्वतिलक उदाच

अयने विषुवे दारे सद्कान्तौ ग्रहणे तथा यूजयेत्तततं भानुं सप्तम्यां तु विशेषतः ॥१
 वैनतेय निर्बोध त्वं विधानं सप्तमीवते । एतद्वि परमं गुह्यं रवेराराधनं परम् ॥२
 सिद्धार्थकैस्तु प्रथमा द्वितीया चार्कसम्मुद्देः । वृतीया भर्त्वैः कार्या चतुर्थीं तिलसप्तमी ॥३
 सप्तमी 'चौदन्तैर्मार सप्तमी एरकीर्तिता । इत्येताः सप्त सप्तम्यां कर्तव्या भूतिभिन्नता ॥४
 तथा चानुकमे तासां लक्षणं कथयाम्यहम् । वाचे वा मार्गशीषे वा कार्या शुक्ला तु सप्तमी ॥५
 आर्तस्य तु न नियमः पक्षमासकृतो भवेत् । अर्धप्रहरसेष्ये तु कुर्याद्व दन्तधावनम् ॥६

कमलपत्र की भाँति पाप उसका स्वर्ण तक नहीं करता है । ३२। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि भगवान् भास्कर की निरन्तर पूजा करें और विषुव धन के इच्छुक भी श्रद्धालु होकर भानु की आराधना करें । ३३

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सप्ताश्वतिलकानूरसंवाद वर्णन दामक एक सौ बानबेवाँ अध्याय समाप्त । १९२।

अध्याय १९३

दन्तकाष्ठविधि का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—अयन (दक्षिणायन एवं उत्तरायण) विषुव दिन, संक्रान्ति, ग्रहण और विशेषकर सप्तमी के दिन भानु की निरन्तर पूजा करनी चाहिए । १। वैनतेय ! सप्तमीवत के विधान को, जो परमगुप्त एवं जिसमें सूर्य की उत्तम आराधना बतायी गयी है, (बता रहा हूँ) सुनो ! २। वीर ! पहली सप्तमी का व्रत श्वेत राई, दूसरी में अर्क सम्पूट तीसरी में भर्त्व, चौथी में तिल एवं सातवी में भात के पारण द्वारा व्रत की समाप्ति होती है, इस प्रकार ऐश्वर्य इच्छुक को सातों सप्तमी की समाप्ति करनी चाहिए । ३-४। क्रमशः उन व्रतों के विधान-लक्षण भी बता रहा हूँ । मात्र अथवा मार्गशीर्ष (अगहन) की शुक्ल सप्तमी में उसे करना चाहिए । आर्त प्राणी के लिए पक्ष एवं मास का कोई नियम नहीं है । अतः प्रहरार्ध भाग दिन के अवशिष्ट रहने पर दंत धावन करना कहा गया है । पंचमी में कामना सफल करने

१. अत्रन्यः पाठः पञ्चमीष्ठयोः सप्तम्योः पारणानुकेनुटित इति प्रतिभाति ।

एतम्यदं सत्र दे बृजा: कार्मितास्तान्वदाम्यहम् । सधूके पुत्रलाभः स्याद् खहा नार्कवो भवेत् ॥७
 इदर्या च वृहत्पा च जिप्रं रोगात्प्रमुच्यते । ऐश्वर्यं च भवेद्विलवैः खदिरेण च सञ्चयः ॥८
 रात्रुक्षयः कदम्बेषु अर्थलाभोतिभुक्तके । गुजतां याति सर्वत्र आटरूषकसम्भवैः ॥९
 शातिग्रथानतां याति अश्वत्यो यच्छते यथः । करवीररत्नरिक्कानमचलं स्यान्न संशयः १०
 शियं प्राप्नोति विपुलां शिरीषस्य निशेषने । प्रियश्चन्तु सेव्यमानस्य सौभाग्यं परसं भवेत् ॥११
 अभाप्सितार्थसिद्धैऽर्थं मुखासीनोऽथ वाग्यतः । कामं यथेष्टं हुइये कृत्वा सप्तशिष्यन्त्य च ॥
 भन्देणानेन मतिदानशनीयादन्तप्रावनम् ॥१२

वरं दत्त्वाभिजानासि कामदं च वनस्पते । सिद्धिं प्रयच्छ मे नित्यं दन्तकाष्ठं नभोऽस्तु ते ॥१३
 नीन्यारान्दरिजपैवं भक्षयेदन्तधावनम् । पश्चात्प्रक्षात्य काष्ठं तु शुचो देशे विनिक्षिपेत् ॥१४
 ऊर्ध्वं निपतिते सिद्धिस्तथा चाभिमुखस्थिते । अतोऽन्यथा तु यतिते आनीय पुनरूपजेत् ॥१५
 पराङ्मुखं यदि भवेत्नीन्यारान्दन्तधावनम् । असिद्धां तु विजानीयाश्च प्राह्वा सा तु सप्तमी ॥१६
 वृहचारीं तु तां रात्रिं स्वप्नाम्बृहल्लसेवया । विभ्रासोनुप्रहतं शुचिरचारसंचुतः ॥१७
 तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां प्रातरूपत्याद् वै लग । प्रक्षालयेन्मुखं धीमानशनीयादन्तधावनम् ॥१८
 उपविश्य शुचिर्भूत्वा प्रणन्न शिरसा रविम् । यजं यथेष्टं कृत्वा तु जुहुयाच्च हुताशने ॥१९
 ततोऽपराह्णसमये भ्रात्वा मृद्गोमयाम्बुद्धिः । विधिविश्यमं कृत्वा मौनो शुक्लाम्बरः शुचिः ॥२०

वाले उन वृक्षों को बता रहा हैं । महूवे के सेवन करने से पुत्र लाभ, भृङ्गराज (भंगीरया) से दुःखनाश, बेर और वृहती से शीघ्र रोगमुक्ति, बेल से ऐश्वर्य, खदिर (सैर) से धनसंचय, कदम्ब से शत्रु-क्षय, अतिमुक्तक (तेंदू एवं ताल) के वृक्ष से अर्थ लाभ, आटरूषकोत्पन्न वृक्ष से सर्वत्र गुरुता, पीपल से जाति प्राधान्य एवं यथा की प्राप्ति, करवीर (कनेर) से निश्चल एवं विस्तृत ज्ञान होता है, इसमें संदेह नहीं । शिरीष के सेवन से विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति और प्रियंगु के सेवन से उत्तम सौभाग्य की प्राप्ति होती है १५-११। अपने मनोरथ सिद्धिर्थं सुखपूर्वक बैठकर वाक्षयमपूर्वक अपने हुदय में अपनी कामना का स्मरण करते हुए उस कष्ठ के दंतधावन को इस मंत्र द्वारा—हे वनस्पते ! मेरे मनोरथ को आप जानते हैं, अतः उसकी पूर्ति के लिए वर प्रदान कीजिए, हे दंतकाष्ठ ! मुझे सिद्धि प्रदान कीजिए, आप को नित्य नमस्कार है । इस प्रकार तीन बार उसे अभिमंत्रित कर पश्चात् दाँतों को साफ़ करे । तदनंतर उसे धोकर पवित्र स्थान पर फेंक दे । उर्ध्वं मुख या अधोमुख होकर उसके गिरने से सिद्धि प्राप्त होती है, अतः अन्यथा गिरने पर पुनः उसे उठाकर फेंक दे । यदि पहले की भाँति तीन बार तक वह दंतधावन पराइमुखी होती जाये तो उस सप्तमी का त्यागकर अन्य सप्तमी से ब्रत प्रारम्भ करे । वृहचारी को तो मंगल के लिए उस रात्रि उत्तम नवीन वस्त्र धारण कर आचार्य संयमपूर्वक शयन करना चाहिए । खग ! उस रात के व्यतीत हो जाने पर प्रातःकाल उठकर हाथ मुख धोकर दंत धावन करे । पुनः पवित्र होकर शिर से सूर्य को प्रणाम पूर्वक यथेष्ट जप करके हृष्ण करे, पश्चात्, अपराह्ण समय में मिट्टी एवं गोबर से स्नान कर जल से शुद्ध हो शुक्लाम्बर

पूजयित्वा विर्धि भक्त्या देवदेवं दिवाकरम् । स्वप्यादेशस्य पुरतो गायत्रीजपतत्परः ॥२१

इति श्रीभविष्ण्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे दत्तकाष्ठविधिवर्णनं
नाम विनवद्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

अथ चतुर्वद्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यरूणसंबादे स्वप्नवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि यैर्यैर्यत्कलनश्नुते । स्वप्ने वृष्टे तु सप्तम्यां पुरुषो नियतवतः ॥१

समाप्य विधिवत्सर्वां जपहोमादिकां क्रियाम् । शूमौ शव्यां समास्थाय देवदेवं विचिन्तयेत् ॥२

हन्त सुप्तो यदि ननः पश्येत्प्रे दिवाकरम् । शक्वध्वजं वा चन्द्रं वा तस्य सर्वाः समृद्धयः ॥३

भृङ्गारचमरादर्शकनकाभरणानि च । रुद्धिरस्य सुतिः केशपात ऐश्वर्यकारकः ॥

स्वप्ने वृक्षाधिरोहे तु क्षिप्रमैश्वर्यमहवे ॥४

दोहनं महिषीसिंहीगोधेनूनां करे स्वके । बन्धश्चासां राज्यलाभो नामः स्पर्शे तु दुर्मतिः ॥५

अथ इत्या स्वयं खार्वेत्सहमम्बुजमेव च । स्वाइगमस्थि हुताशं च सुरापानं खगाधिप ॥६॥

को धारण करे और देवाधिदेव सूर्य की विधानपूर्वक पूजा के उपरान्त गायत्री जप करते हुए उनके सामने शयन कर जाये ॥१-२-१

श्रीभविष्णुपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में दत्तकाष्ठविधिवर्णन नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय सनाप्त ॥१९३॥

अध्याय १९४

सूर्यरूणसंबाद का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—इसके उपरान्त संयमपूर्वक सप्तमीव्रत का पालन करने वाला ब्रह्मचारी पुरुष स्वप्न को देखकर जिन-जिन फलों को प्राप्त करता है, मैं उहें बता रहा हूँ ॥१। जप होम आदि सभी क्रियाओं को विधानपूर्वक सुसम्पन्न करके भूमि में शयनासन पर बैठकर देवाधिदेव (सूर्य) का चिन्तन करे ॥२। उस समय स्वप्न में मनुष्य यदि सूर्य, इन्द्र की घजा अथवा चन्द्र दर्शन करता है, तो उसे समस्त समृद्धियाँ प्राप्त होती हैं ॥३। भृङ्गर (आरी), चामर, दर्पण, सुवर्ण के आभूषण, रक्तपात एवं केशों का पतन देखने से ऐश्वर्य और वृक्षारोहण करने से शुद्ध स्थल में शीघ्र ऐश्वर्य, प्राप्ति होती है ॥४। भेस, सिंहनी, गौ एवं धेनु के दृध अपने हाथ में दोहन करने अथवा इन्हें बांधने से राज्यलाभ, तथा उनके नाभि स्पर्श करने से कुष्टबुद्धि होती है ॥५। खगाधिप ! भेड़ अथवा सिंह का शिकार कर स्वयं भक्षण करे उसी प्रकार अम्बुज, अपने अंग, हड्डियाँ एवं अग्नि के भक्षण,

हैमे वा राजते वासि यो मुक्ते पायसे नरः । पात्रे तु पश्यत्रे वा तस्यैश्वर्यं समं भदेत् ॥७
 शूते च वाथवा युद्धे विजयो हि मुखावहः । गात्रस्य स्वस्य ज्वलनं शिरोबन्धश्च मूतये ॥८
 'माल्यांवराणां शुक्लानां हयानां पशुपक्षिणाम् । सदा लाभं प्रशंसंति विष्ठानां चानुलेपनम् ॥९
 हययाने भवेत्क्षिप्रं रथयाने प्रजागमः । नानाशिरोबाहुता च गृहस्थां कुरुते त्रियम् १०
 अगम्यागमनं धन्यं वेदाध्ययनमुत्तमम् । देन्ट्रिजश्रेष्ठवीरगुरुवृद्धतपस्तिनः ॥११
 यद्विन्त नर स्वप्ने सत्यमेवेति तद्विदुः । प्रशस्तं दर्शनं चैवाभाषीर्वादः स्वगाधिप ॥१२
 राज्यं स्यात्स्वशिरश्चेदे धनं उद्धवथे भवेत् । हृदिते भ्रष्यसप्ताप्ती राज्यं निगड्बन्धने ॥१३
 पर्वतं तुरुणं सिह वृशभं गजमेव हि । शहदैश्वर्यमाप्नोति यो विक्रम्याधिरोहति ॥१४
 आगृह्णानो च्छांस्तत्तदा मरीचि परिवर्तयन् । उन्मूलयत्ति र्दर्शतांश्च राजा भवति मूतले ॥१५
 देहान्निष्क्रान्तिरन्वाणां सर्वेषां च स्वगाधिप । पानं समुद्दसरितःमैन्दर्यलुल्लाकम् ॥१६
 बलं चाम्बुर्निधि वापि तीर्थपारं प्रगतिः यः । तस्यापत्यं भवेद्वीर अचलं च स्वगाधिप ॥१७
 भवत्यर्थाणमः शीर्षं कृतिर्वा यदि नजायेत् । अंगानां च सुरुपाणां लाभे इर्शनमंव च ॥
 संयोगश्चैव माङ्गल्यैरारोग्यं धनमेव च ॥१८
 ऐश्वर्यं राज्यलाभश्च यस्मिन्स्वप्न उदाहृतः । सप्त स्यान्नात्र संदेहश्रुतुर्भिः भृत उत्तमः ॥१९

मद्यपान करने सुवर्ण या चाँदी के पात्र अथवा कमल पत्र के पात्र में खीर खाने से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । १-७। द्यूत कीडा (जू़ा) या युद्ध में विजय प्राप्त होने से अत्यन्त मुख, अपने शरीर के जलने अथवा शिरोबन्धन से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । ८। शुक्लवर्ण के वस्त्र एवं मालाओं से सुसज्जित अश्व के दर्शन, अथवा पाण्डु-पक्षियों के मल के अनुलेपन करने से सदैव लाभ होना बताया गया है । ९। अश्ववाहन पर बैठने से श्रीघ्र एवं रथारोहण करने से संतानोत्पत्ति होती है, और भाँति-भाँति के शिर एवं भुजाओं के होने से श्री (लक्ष्मी) प्राप्त होती है । १०। अगम्या के उपभोग करने से प्रतिष्ठा तथा वेदाध्ययन से उत्तम फल की प्राप्ति होती है । वीर ! देव, द्विज, गुरु, वृद्ध एवं तपस्वी इनमें से कोई भी स्वप्न में मनुष्य के लिए जो कुछ कहते हैं, उसे सत्य जानना चाहिए । स्वगाधिप ! इनके दर्शन तथा आशीर्वाद प्रशस्त बताये गये हैं । ११-१२। अपना शिरच्छेदन करने से राज्य लाभ और अनेक प्रकार से छेदन करने से धन की प्राप्ति, रुदन करने से भ्रष्य पदार्थ की प्राप्ति, शृंखला (वेणी) बन्धन से राज्य, पर्वत, अश्व, सिंह, वृषभ, तथा गजराज पर तीव्रता से आरोहण करने से महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । १३-१४। ग्रहों एवं ताराओं के ग्रहण करने, मरीचि महर्षि के परिवर्तन करने तथा पर्वतों के उन्मूलन करने से इस भूतल में राजा होता है । १५। स्वगाधिप ! देह से सभी अंतङ्गियों के निकलने तथा समुद्र-सरिताओं के पान करने से ऐश्वर्य-सुख की प्राप्ति होती है । १६। स्वगाधिप ! जो सेनाओं, एवं समुद्र का अवगाहन तथा तीर्थ-पार की यात्रा करता है, उसे वीर तथा निश्चल सन्तान की प्राप्ति होती है । १७। यदि कीडे काटें, तो श्रीघ्र धनागम, सौन्दर्यपूर्ण अंगों के दर्शन से लाभ, मांगलिक दर्शन से उत्तम संयोग, आरोग्य एवं धन की प्राप्ति होती है । १८। जिस स्वप्न में ऐश्वर्य एवं राज्य लाभ बताया गया है, उसमें सात अवश्य है, इसमें संदेह नहीं । चार से उत्तम श्रवण,

पञ्चमि: 'पुञ्चबाहूल्यं षड्मिरायुः सुतान्धनम् । सप्तमिर्विधान्कामानष्टभिर्विधिं यशः ॥२०

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मणे पर्वणि सप्तमीकल्पे सूर्यारुणसंवादे स्वप्नवर्णनं
नाम चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः । १९४।

अथ पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यारुणसंवादे स्वप्नवर्णनम्

अनूरुद्रदाच

भगवञ्चोतुभिञ्चामि सप्तमीनां परं विद्धिम् । सर्वासामनुरूपाणां कथयस्व महामुने ॥१

सप्ताभ्यतिलक उचाच

मृणु वीर खगश्रेष्ठ सप्तमीनां परं विद्धिम् । कीर्त्तिविष्यामि ते सर्वं यथावत्परिपृच्छते ॥२
तुल्यं किं खगश्रेष्ठ यथास्यातं दिवस्तता । शुक्लपक्षे रविदिने प्रवृते चोत्तरायणे ॥३
पुञ्चबारधनक्षेत्रे गृहीयत्सप्तमीवतम् । इष्टिभिर्जानलम्पक्षः सर्वकामफलप्रदैः ॥४
सप्तम्यः सप्त आत्मातास्तासां नामानि मे भृणुः अर्कसम्पुटकैरेका द्वितीया मरिचैस्तथा ॥५

पाँच से पुनर की अधिकता छः से आयु, पुत्रों एवं धन की प्राप्ति, सात से भाँति-भाँति की कामनाओं की सफलता और आठ से अनेक प्रकार के यश की प्राप्ति होती है । १९-२०

श्री भविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमीकल्प के सूर्यारुणसंवाद में स्वप्न वर्णन नामक
एक सौ चौरानदेवां अध्याय समाप्त । १९४।

अध्याय १९५

सूर्यारुण संवाद में स्वप्न वर्णन

अनूरु ने कहा—हे भगवन्, महामुने ! सभी सप्तमियों के उत्तम विधान जानने की इच्छा है, आप उसे क्रमशः सुनाने की कृपा करें । १

सप्ताभ्यतिलक बोले—वीर, खगश्रेष्ठ ! तुम्हारे पूँछने पर सभी सप्तमियों के उत्तम विधान का यथावत् वर्णन कर रहा हूँ, सुनो । २। खगश्रेष्ठ ! यह वर्णन वैसा ही होगा, जैसा कि सूर्य ने पहले बताया था । सूर्य के उत्तरायण होने पर शुक्ल पक्ष के रविवार के दिन जो पुत्र, स्त्री अथवा धन के क्षेत्र (राशि) के दिन भी हो, सप्तमी व्रत का अनुष्ठान आरम्भ करना चाहिए । ज्ञान सम्बन्ध एवं समस्त कामनाओं को सफल करने वाले ऋषियों ने सात सप्तमियों का वर्णन किया है, उनके नामों को सुनो ! अर्क संपुटक वाली पहली, मरिचवाली दूसरी, निंबपत्र वाली तीसरी, चौथी फल सप्तमी और सातवीं कामिका नामक

१. लभेतेति शेषः, एवमायुरादीनि कर्मणि लाभक्रियायामन्वितानीत्यपि बो

तृतीयः निम्बपञ्चश्र चतुर्थी फलसप्तमी । सप्तमी कानिका नामा विधिमासां निबोध मे ॥६
 पञ्चम्यामेकभक्तं तु कुर्यान्नियतमानसः ! अल्पाहारं न कुर्वीत मैथुनं द्वृतस्त्वयजेत् ॥७
 वर्जयेन्मधु मांसं च अत्यम्लं च खगाधिप । प्रभाते चैव वष्ण्यां तु एकैकपर्णसम्पुटे ॥८
 धृतशाल्योदनं कृत्वा भक्षयेत्तु विधानतः । अन्यदभ्यमुञ्जानः सप्तम्यां भोजनं भवेत् ॥९
 एकैकवृद्धाभियुक्तैर्यो वसेत्तु खगेभर । अन्यत्र मरिचं भक्षेन्निम्बपञ्चाण्यतः परम् ॥१०
 एवं लघफलानीह पक्षयोरुभयोरपि । अन्नादै रहितो यत्नादनोदन इति स्तृतः ॥११
 आचरेद्विधिवद्वृक्त्या धूजयित्वा विभावमुम् । अहोरात्रं वायुभदः कुर्याद्विजयसप्तमीम् ॥१२
 एकैकं सप्त सप्तमीत्रत्रैव विधिद्वच्चरेत् । प्रालेख्यं तातां नामानि पत्रकेषु पृथक्पृथक् ॥१३
 ताति सर्वाणि नामानि विलेख्यं सुसंमाहितः । श्वेतचन्दनदिग्धाङ्गे भात्यदामोपशोभिते ॥१४
 सप्तधान्यहिरण्यादये शशिकुन्नेन्द्रुसप्तिभे । अभ्यत्था शोकपत्राठये दध्योदनसमिन्वते ॥१५
 तदर्द्यं पूजयेद्वृक्त्या तेस्तर्द्वृष्टिर्द्वं संशयः । दृष्ट्वा तु शोभनं स्वप्नं न भूयः शयनं स्वपेत् ॥१६
 प्रातश्र कीर्तयेत्त्वं यथावृष्टं खंगाधिप । प्राज्ञभोजकविश्रेष्ठ्यः सुदृढपश्च खगाधिप ॥१७
 ततो मध्याह्नसमये स्नातः प्रयतमन्नसः । तं चैव देवं विधिवत्पूजयित्वा दिवाकरम् ॥१८

सप्तमी बतायी गई है। इनके विधानों को मैं बता रहा हूँ, सुनो। संयमपूर्वक एकाग्रचित्त होकर पञ्चमी में एक भक्त करे उसमें अल्पाहार होना चाहिए और मैथुन का तो दूर से ही त्याग करना बताया गया है। खगाधिप ! शहद, मांस, अत्यन्त दुखी वस्तु का सर्वया त्याग करना चाहिए। प्रातःकाल घण्ठी में एक-एक पते की दोनियाँ बनाकर उसमें प्रत्येक में धी मिश्रित साठी चावल के भात रखकर विधान समेत भक्षण करे, अन्य किसी अन्न का नहीं, पश्चात् सप्तमी में भोजन-विधान बताया गया है। ३-९: खगेश्वर ! एक-एक की वृद्धि पूर्वक उसे सम्पन्न करना चाहिए। इस प्रकार दूसरी को मरिच, (मिर्च), तथा तीसरी में निबपत्र का पारण बताया गया है। इस प्रकार दोनों पक्षों के सप्तमी-न्रतानुष्ठान से फलों की प्राप्ति बतायी गयी है। चौथी सप्तमी को फल ढारा सुसम्पन्न करना चाहिए, इसीलिए अन्नादि रहित होने के नाते उसे 'अनोदन' भी कहा जाता है। १०-११। विजयासप्तमी में विधानपूर्वक सूर्य की आराधना करते हुए दिन रात वायु भक्षण करके ही व्रत की समाप्ति होनी चाहिए। प्रत्येक सप्तमी के ब्रतानुष्ठान को विधानपूर्वक सुसम्पन्न होना आवश्यक बताया गया है। पर्वों में उनके नामों को पृथक्-पृथक् लिखकर उस (सूर्य) सूर्ति की सन्निधि में, जिसके अंग श्वेतचन्दन से चर्चित, मालाओं से विभूषित, सप्तधान्य एवं हिरण्य में स्थित, चन्द्र, कुन्द, इन्दु के समान वर्ण, पीपल तथा अशोक के पत्तों की डेरियों समेत और दही मिश्रित भात युक्त सुशोभित हो, स्थापित कर भक्तिपूर्वक तदर्थं पूजन करने से वे (स्वप्न में) अवश्य दिलायी पड़ते हैं, इसमें सदेह नहीं। सुन्दर स्वप्न देखकर पुनः निहित शयन न करना (सोना नहीं चाहिए) चाहिए। खगाधिप ! प्रातःकाल उठकर देखने के अनुसार स्वप्न का वर्णन करें, खगाधिप ! विदान् भोजक, ब्राह्मण अथवा मित्रों के ही सामने उसकी चर्चा करनी चाहिए। १२-१३। पश्चात् मध्याह्नकाल में संयमपूर्वक स्नानकर विधानपूर्वक सूर्य देव की पूजा करे। १४। मौन धारण कर भली-भाँति जपपूर्वक मनुष्य को हवन

सम्यक्कुतजपो मौनी नरो हुतहुताशनः । निष्क्रम्य देवायतनाद्वोजकाय निवेदयेत् ॥१९
भवेदलाभो यदि भोजकानां विप्रात्तमर्हन्ति पुराणदिजाः ।

ये मन्त्रवेदावयवेषु निश्चिता विभुं समम्यचर्य दिवं व्रजेयुः ॥२०

ऋत्यैवं तत्त्वमीः सप्त नरो भक्तिस्त्वन्वितः । श्रद्धानोऽपि सूर्यस्य स कथं नामुद्यात्कलम् ॥२१

इशानामध्येष्ठानां हृतानां यत्कलं भवेत् । तत्कलं सप्तमी सप्त हृत्वा भक्त्या लगेत ना ॥२२

दुष्पापं नास्ति तद्वार सप्तम्यां यश्च दद्यते । न च रोगोऽस्त्वासी लोके य एताभिनं शास्यति ॥२३

कुष्ठानि यानि रोद्राणि उरथेद्यानि सिष्टजनः । नीयन्ते तानि सर्वाणि गरुडेनेव पश्चगाः ॥२४

सकलविबुधमान्यं स्वप्रकाशं जनानामभिमतफलदाने दीक्षितं तं सुपूज्यम् ।

सुतधनकुलभोगैः सौख्यपूर्णैरुपेतो व्रजति च सुतनुं का शाश्वतां तिग्नरक्षमः ॥२५

इति श्रीभविष्ये नहापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मं सूर्यारुणसंवादं स्वप्तवर्णं
नान पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः । १९५।

कर्म समाप्त करना चाहिए, पश्चात् देवालय से निकल कर किसी भोजक से उसका निवेदन करे । भोजक अप्राप्य होने पर किसी पुराणवेत्ता ब्राह्मण से जो मंत्र एवं वेद के प्रत्येक अंग का निश्चित मर्मज्ञ हों, तथा सूर्य की उपासना में रत रहकर स्वर्ण प्राप्ति के इच्छुक हों, उनसे उस स्वप्न की चर्चा करें । इस प्रकार मनुष्य भक्ति एवं श्रद्धा सम्पन्न होकर सातों सप्तमी के अनुष्ठान को सुसम्पन्न करे, तो उसे वे फल प्राप्त कर्म नहीं होंगे ? दश अश्वमेध यज्ञ के सुसम्पन्न जरने पर जिन फलों की प्राप्ति बतायी गयी है, वे फल भक्तिपूर्वक सातों सप्तमी के सम्पन्न करने पर मनुष्य को प्राप्त होते हैं । वीर ! कोई भी इस प्रकार का दुष्पाप नहीं है, जो सप्तमी में दग्ध न हो जाये, कोई रोग ऐसे नहीं, जिनका यामन इन सप्तमियों द्वारा न हो सके । श्रीषण कुष्ठ के रोग जितने बताये गये हैं, जो वैद्यों द्वारा दुर्भय हैं, वे सभी गरुड़ द्वारा साँप की भाँति इस अनुष्ठान के प्रारम्भ करने से विलीन हो जाते हैं । समस्त देवों के सर्वमान्य, स्वप्रकाशित, मनुष्यों के अभीष्ट फल-प्रदायक उस दीक्षित सूर्य की विघानपूर्वक आराधना सुसम्पन्न करने से पुत्र, धन, उत्तम कुल के उपभोगपूर्वक पुण्ययुक्त सौख्यों की प्राप्ति होती है, और पश्चात् उनके शरीर की प्राप्ति कर उत्तम लोक की प्राप्ति भी । १९-२५

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म के सूर्यारुण संवाद में स्वप्न वर्णन
नामक एक सौ पंचानबेवाँ अध्याय समाप्त । १९५।

अथ षष्ठिवत्यधिकशततमोऽध्यायः

नामपूजाविधिवर्णनम्

सप्ताश्वतिलक उवाच

अतीत्य भुक्तं पुरुषः सप्तम्यां गरुडाग्रज । मैत्रीं विद्यत्पत्तर्वत्र जीवहिसां विनर्जयेत् ॥१
सप्तम्यां न स्मृतेर्त्तेलं लोलं वस्त्रं न धारयेत् । न शयीत स्त्रिया सार्थं न सेवेत दुरोदरम् ॥२
न रुद्धादश्रुपातेत न वा ध्यायेत्पिशाचकान् । नाकुर्वेच्छिरस्तो युक्ता न वृथावादमाचरेत् ॥३
परस्यानिष्टकथनमतिदादं च वर्जयेत् ॥४

न कञ्जित्ताडयेज्जन्तु न विशेषं रुदाचन । ब्रह्महत्यामदाप्नोति विशमानो रवेर्गृहम् ॥४
इत्येते समयाः प्रोत्ताः सौराणां गरुडाग्रज । भोजकानां दिशेषेण पुरा मे भानुनानघ ॥५
भोजकः सगशार्दूलं यो लोभादद्रव्यमुत्सृजेत् । दृढर्थं तु सततं वीर स गच्छेश्वरक ध्रुवम् ॥६
विशेषे चाल्पकशते कामयाने लगाधिप । न्रयुज्यमानो भोजकस्तु पञ्चकेन शतेन वै ॥७
प्रायश्चित्ती भवेद्वीर न चाहः पूजने रदे । कृत्वा सात्पतनं कृच्छ्रं ततः सम्पूजयेद्विम् ॥८
नान्यदेवप्रतिष्ठा तु कर्तव्या भोजकेन तु । कृत्वा तु तां सगश्रेष्ठं प्रायश्चित्तीयते नरः ॥९

अध्याय १९६

नामपूजा विधि का वर्णन

सप्ताश्वतिलक बोले—गरुडाग्रज ! पुरुष को सप्तमी में भोजन करके सर्वत्र मैत्री स्थापन पूर्वक जीव हिसा का त्याग करना चाहिए । १। सप्तमी में तेल का स्पर्श नील वस्त्र का धारण, स्त्री के साथ शयन, दुष्ट का साथ, अश्रुपात समेत रुदन, पिशाचों के ध्यान, सिर से लोचकर जूये निकालना, और निरर्थक वाद ये सभी कर्म वर्जित हैं उसी प्रकार दूसरे का अनिष्ट कहने एवं अत्यन्त वाद-विवाद का भी परित्याग करना आवश्यक है । २-३। इस समय किसी भी जीव को आधात न पहुँचाये और सूर्य मन्दिर में कदापि न प्रवेश करे, क्योंकि सूर्य गृह में प्रविष्ट होने पर उसे ब्रह्महत्या का पातक प्राप्त होता है । ४। गरुडाग्रज ! सूर्य भक्तों के लिए इन प्रतिज्ञाओं के पालन करने आवश्यक हैं । विशेषकर भोजकों को अनध ! इसे सूर्य ने मुझे पहले ही बताया था । सगशार्दूल ! जो भोजक लोभवश वृद्धि (व्याज) के लिए धन को बाँटता है, वीर ! उसे निश्चिन नरक की प्राप्ति होती है । ५-६। सगाधिप ! जो भोजक शताधिक या उससे अत्य व्याज की इच्छा से पांच सौ तक द्रव्य के देन-लेन करता है, वह जिना प्रायश्चित्त के सूर्य-पूजा के योग्य नहीं होता है, उसे 'सांतपन नामक कृच्छ्र' व्रत सम्पन्न करने के उपरांत सूर्य पूजन करना बताया गया है । ७-८। सगश्रेष्ठ ! भोजक को कभी किसी अन्य देवता की प्रतिष्ठा न करनी चाहिए क्योंकि उसे वैसा करने पर प्रायश्चित्त करना आवश्यक हो जाता है । ९। सगसत्तम ! इसलिए भोजक को चाहिए कि

१. रवेर्गृहमिति शेषः अत एवाग्रिमे—‘ब्रह्महत्यामवाप्नोति’ इत्याद्युक्तं संगच्छते ।

तस्मात् तां न कुर्यादौ भोजकः सगततम् । मुक्तदा तु भास्तरं देवं नान्यं देनं निवेदयेत् ॥१०
 कृत्वाधिवेशं देवानां दद्यादीनां लगाधिषः । भोजको न स्तृगेद्वानुं कुर्यात्कृच्छ्रं च गुदये ॥११
 कृत्वा तु कृच्छ्रं विधिवच्छुद्देहेतु लगाधिष । ततः पूजयितुं आनुभविकारी भवेन्नरः ॥१२
 तदिगतं प्रदातव्यं न ल्लानं न च द्वौषितव्यं । न च पर्युषितं मात्वं दातव्यमृद्धिमिच्छता ॥१३
 देवमुल्लोचयेदस्तु स लक्षणः । पुर्वतोभवतः । पुर्वाणि च सुगंधीनि भोजके नेतराणि च ॥१४
 ब्रह्महत्याभजाप्तेति भोजको लोभमोहितः । महारौरवमासाद्य पच्यते शत्रुताः समाः ॥१५
 हन्त से कीर्तयिष्यामि धूपदानविर्धं परम् । प्रवाने देवदेवस्य येन धूपेन यत्कलम् ॥१६
 तदा चन्द्रधूपेन सार्वान्नयं कुरुते रात्रिः । प्रद्यान्मानसे चैव पूजाविच्छिति भानवः ॥१७
 तथेवागुरुशूपेत वरं दद्यादभीप्तितम् । आरोग्यं दा स्त्रियं प्रेम्पुर्नित्यदा गुगुलं दहेत् ॥१८
 भद्रगतं धूपदानेन सदा यच्छ्रुति भानुमान् । आरोग्यं च स्त्रियं दद्यात्सौत्तर्यं च परमं भवेत् ॥१९
 सदा कुरुकुमधूपेन सौभाग्यं लभते नरः । श्रीवास्कस्य धूपेन वाणिज्यं सफलं भवेत् ॥२०
 रसं सर्वरसोक्तं ददतोऽर्थाग्निं धूवम् । दद्यदारं च दहतो भवत्यद्यत्थाभ्यम् ॥२१
 विसेपतं कुरुकुरेत रस्वर्धकाभकलप्रदव्यम् । इह लोके सुखी भूत्वा दाता स्वर्गमवाप्याद् ॥२२
 चन्दनस्य प्रवानेन श्रियमाप्युश्च विन्वति । रक्तचन्दनदानेन सर्वं दद्यादिवाकरः ॥२३

भास्तर देव के अतिरिक्त किसी देवता ने कभी निवेदन न करे । १०। सगाधिष ! भोजक ब्रह्मादि देवताओं के पूजन करके सूर्य स्पर्श का अधिकारी नहीं रह जाता है, प्रत्युत आत्मशुद्धि के लिए उसे 'कृच्छ्र'-व्रत करना आवश्यक हो जाता है । ११। सगाधिष ! आत्मशुद्धि के लिए विधानपूर्वक कृच्छ्र व्रत की समाप्ति के अनन्तर वह पुरुष सूर्य-पूजन का अधिकारी होता है । १२। सग्द्धि के इच्छुक को चाहिए कि अनिष्टित, म्लान, द्रवित, एवं पर्युषित (वासी) माला सूर्य के लिए अर्पित न करें । १३। पुष्ट के लोभवश जो सूर्य देव का वितान बना लेता है, उसे दुष्ट समझना चाहिए । भोजकों को सुगन्धित पुष्टों के वितान बनाने चाहिए, अन्य के नहीं । अन्यथा लोभ-मुग्ध भोजक को ब्रह्महत्या का भागी होना पड़ता है, जिसके परिणाम स्वरूप महारौरव नामक नरक में अनेकों वर्ष रह कर 'पक्तन' आवश्यक होता है । १४-१५। अब मैं तुम्हें धूप-दान का उत्तम विधान जिसमें देवाधिदेव (सूर्य) को किस प्रकार की धूप देने से किस फल की प्राप्ति होती है, (विवेचन पूर्वक) कथित है, बता रहा हूँ । १६। चंदन की धूप प्रदान करने से सूर्य उस मनुष्य के मानसिक कामनाओं की पूर्ति सदैव करते रहते हैं । १७। उसी भाँति अगुह की धूप देने से अभीतित वस्तु की प्राप्ति, गुगुल की धूप प्रदान करने से आरोग्य और प्रेयसी की प्राप्ति होती है इस भाँति धूपदान से सदैव सूर्य कल्याण करते रहते हैं, तथा आरोग्य, स्त्री, एवं उत्तम सौख्य की भी प्राप्ति होती है । १८-१९। कुंकुम की धूप से सौभाग्य श्री वास्क धूप द्वारा वाणिज्य (व्यापार) की सफलता, समस्त रसों समेत रस प्रदान करने से निश्चित धनागम, एवं देवदार की धूप प्रदान करने से अक्षय अश्र की प्राप्ति होती है । २०-२१। कुंकुम का लेप समस्त कामनाओं को सफल करने वाला बताया गया है इससे इस लोक में सुखानुभव के पश्चात् स्वर्ग की प्राप्ति होती है । २२। चन्दन के लेप प्रदान करने से भी, और आयु तथा रक्त चन्दन के लेप से सूर्य सभी कुछ प्रदान करते हैं । २३। एवं सैकड़ों रोगों से ग्रस्त होने पर भी

अपि रोगशतीर्पस्ते: किंप्रारोग्यमवाःमुयात् । दत्तिगन्धेश्च तौगन्धयं चरमं विन्वते नरः ॥२४
 कस्त्रूरिकालेपनकैर्भर्यमतुलं जन्मेत् । कृदूरसंयुतैर्गच्छैः क्षमाधिष्ठापितभवेत् ॥२५
 चतुः समेन गन्धेन किं तुल्यं प्राप्नुयान्नरः । देवानारं तु तन्मन्ये भक्त्या य उपलेपयेत् ॥२६
 म रोगान्मुच्यते किंप्रं पुरुषो भोगवान्मवेत् । अष्टादशोह कुष्ठानि ये ज्ञान्ये व्याधयो नुङ्गाम् ॥
 द्रलयं यान्ति ते सर्वे मृदा यद्युपलेपयेत् ॥२७
 प्रलेपनानां सर्वेषां रक्तचन्दनमुत्तमम् । नरतः परतरं किञ्चिद्भूत्तोस्तुष्टिकरं परम् ॥२८
 किं तस्य न स्मेलेतोके यो हृनेन प्रलेपयेत् । सर्वकामसमृद्धोऽसौ सूर्यलोके भृत्यते ॥२९
 उपलिप्य च्वर्गेहं कुर्द्धै मण्डलं पुनः । एकनाथ समाप्नेति भाग्यमारोग्यमुत्तमम् ॥३०
 त्रिभिः सप्तमिरच्छिक्षा जालो ज्ञान्योऽपि यो नरः । तेन प्रदादयेद्वान्कुरुयर्तान्न निवारयेत् ॥
 अनेन विधिना कुर्वद्यावतीः सप्त सप्तमीः ॥३१
 एता वै सप्त सप्तम्यो यथाप्रोक्ता विवस्त्वाः । कुर्वीत यो नरो भक्त्या सर्वपत्तयः प्रमुच्यते ॥३२
 अर्कसम्पुटकैर्वितं मरिचैः पियसद्गमम् । निम्बपत्रैः रोगनाशं फलैः पुत्रान्यथेष्टितान् ॥
 धनं धान्यं मुवर्णं च ततो दद्याद्विवस्त्वते ॥३३
 जयं प्राप्नोति विषुलं कृत्या सर्वत्र लेघर । सर्वान्कामान्कामिकस्तु प्राप्नुयान्नाङ्गं संशयः ॥३४

(वह पुरुष) शीघ्र आरोग्य हो जाता है । बत्ती के गंध प्रदान करने से मनुष्य को उत्तम सुगन्धि की प्राप्ति होती है । २४। कस्त्रूरी के लेप से असाधारण ऐश्वर्य की प्राप्ति कप्रभित्रि मुगंध के लेप से वह 'महाराजा' (राजाओं के राजा) होता है । २५। चारों गंधों के लेप करने से मनुष्य को जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे असाधारण हैं (अर्थात् उनकी उपमा नहीं की जा सकती) किन्तु वह देवलोक के रूप में है, भक्तिपूर्वक जो मनुष्य उसका लेप करता है, मानो वह एक देवालय की रचना कर सूर्य को प्रदान करता है । २६। उससे वह पुरुष शीघ्र रोगनुक्त होकर भोगों के उपभोग प्राप्त करता है । मनुष्यों के अट्टारह भाँति के कुछ और अन्यव्याधियाँ भी शान्ति हो जाती हैं, यदि वह मिट्टी के उपलेपन प्रदान करता है । २७। सभी उपलेपों में रक्त चन्दन का उपलेप अत्यन्त प्रशस्त बताया गया है, यहाँ तक कि सूर्य को प्रसन्न करने के लिए इसके समान दूसरा कोई लेप है ही नहीं । २८। इसके उपलेप प्रदान करने वाले पुरुष के यहाँ किस वस्तु की प्राप्ति नहीं होती ? अर्थात् सभी वस्तुएँ सदैव वर्तमान रहती हैं, इस लोक में समस्त कामनाओं को सफल कर वह सूर्य लोक में सम्मानित होता है । २९। उसी एक ही वस्तु से सूर्य के गृह के लेप तथा उनके लिए मण्डल बनाने से भाग्य और उत्तम आरोग्य, दोनों की प्राप्ति होती है । ३०। उपरोक्त सभी धूपों अथवा किसी एक ही धूप का प्रदान कोई बालक या अन्य पुरुष करे तो करने से इस प्रकार इस विधान द्वारा सातों सप्तमी का व्रत समाप्त करना चाहिए । सूर्य की बतायी हुई इन सातों सप्तमियों का व्रत विधान द्वारा जो मनुष्य भक्ति पूर्वक समाप्त करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । ३१-३२। अर्क संपुट वाली (सप्तमी) से धन, मरिचवाली से प्रिय का साथ, निम्बपत्र वाली से रोगनाश, और फूल वाली सप्तमी के व्रत से मनोनुकूल पुत्रों की प्राप्ति होती है । इसके पश्चात् यथा शक्ति धन धान्य, एवं सुवर्ण सूर्य के लिए प्रदान करना चाहिए । ३३। आकाशगामिन् ! इस भाँति उसे सुसंस्पन्न करने से सर्वत्र जय की प्राप्ति तथा उस कामना वाले की समस्त कामना सफल होती है, इसमें

नरो वा यदि वा नारी यथोक्तं सप्तमीकृतम् । यः करोति हुगश्चेष्ट स याति परमं पदम् ॥३५
 न तेषां श्रियु सोकेषु किञ्चिद्वस्तीति दुर्लभम् । ये भक्त्या लोकनायस्य ब्रतिनः संयतेन्द्रियाः ॥३६
 सर्वयज्ञाप्तं तेषां यथा वेदोवितं भवेत् । ब्रह्मेन्द्रियज्ञावस्तेन पूजिता नात्र संशयः ॥३७
 नान्थो न कुष्ठी न लसीबो न अद्यन्गो न च निरुणः । कदापि च भवेत्प्रश्निद्याश्चरेत्सप्तमीकृतम् ॥३८
 कुद्रार्थी श्रुतिसम्पाल्सभेत्युद्धिरायुषः । न तेषां श्रियु सोकेषु किञ्चिद्वस्तीति दुर्लभम् ॥३९
 मोगार्थी सभते गोगान्वेतननेन सुव्रत ॥४०
 क्रोधात्प्रभावादल्सोभाव्य व्रतभृत्यः यदा भवेत् । प्रादश्चित्तमिवं कृत्या पुनरेव कृती भवेत् ॥४०
 सप्तवै यादत्सन्नय्य सम्प्राप्तं गुरुणा लग । तातु भास्त्ररम्भच्यं नात्यद्युपादिभिर्निरः ॥
 भोजयित्वा द्विजाञ्छक्षया प्राप्यत्स्वर्गमक्षयन् ॥४१
 सप्तम्यां दिप्प्रसुल्यम्यो योद्यं वृद्धात्स्वरेश्वर । तदक्षयं भवेत्तस्य स च सूर्यगृहं वज्रेत् ॥४२
 इति ते कीर्तिं दीर सप्तमीकृतमुत्तमम् । मूय एवाभिधात्यामि शृणु मे वदतोऽनघ ॥४३
 येन व्रतप्रभावेण कामिकं फलमश्नुते । सप्तमीं खण्डशार्दूलं शुक्लां द्वादशनामिकाम् ॥४४
 गोमूत्रगोमयाहारः षड्वृताहार एव च । अथ वा यावकाहारः शीर्णपणशिङोऽपि वा ॥४५
 क्षीराशी चैव भक्तं वा सिक्षयाहरोऽयत्वा पुनः । जलाहारोयं वा विद्वान्मूजयेत दिवाकरम् ॥४६

सन्देह नहीं । खगश्चेष्ट ! इस प्रकार विधान पूर्वक सप्तमी व्रत की समाप्ति पुरुषस्त्री कोई भी करे तो उसे परम पद की प्राप्ति होती है । ३४-३५। और लोकनाय (सूर्य) की भक्ति एवं संयम पूर्वक व्रतानुष्ठान करने वालों के लिए तीनों लोकों में कोई वस्तु अप्राप्य भी नहीं रहती है । ३६। समस्त यज्ञों के फल जो वेदों में दत्ताये गये हैं इससे उसे सभी फल प्राप्त होते हैं और ब्रह्मा, इन्द्र, एवं विष्णु सभी उससे पूजित हो जाते हैं, इसमें सटेह नहीं । ३७। सप्तमी व्रतानुष्ठान करने वाला कोई भी हो वह अंथा, कुष्ठी, नपुंसक, व्यंग तथा निर्धन कभी भी नहीं होता है । ३८। पुरु की कामना वाले प्राणी वैदिक विद्वान्, एवं चिरायु पुत्रों की प्राप्ति करते हैं । उन्हें भी तीनों लोकों में कोई अप्राप्य वस्तु नहीं रहती है । सुव्रत ! इस व्रत के प्रभाव से भोगी सभी उपभोगों को प्राप्त करते हैं । ३९। क्रोध, प्रमाद, अथवा लोभ वश कभी व्रत भंग हो जाने पर प्रायश्चित्त करके पुनः व्रती होना चाहिए । ४०। खण्ड ! गुरुओं द्वारा बतायी गयी सातों सप्तमी के उपस्थित होने पर मनुष्य को आला धूप आदि द्वारा भास्त्रक की अर्चना करने के उपरांत यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए उससे उसे अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है । ४१। खगेश्वर ! सप्तमी में प्रधान ब्राह्मणों को अप्न प्रदान करने से वह उसके लिए अक्षय होता है, और पश्चात् उसे सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । ४२। बीर ! इस प्रकार मैंने सातों सप्तमी का व्रत विधान तुम्हें बता दिया । अनध ! मैं पुनः उसी बात को बता रहा हूँ सुनो ! ४३। खण्डशार्दूल ! जिस व्रत के प्रभाव से सकाम पुरुषों की कामनाएँ सफल होती हैं, उन द्वादश नाम वाली शुक्ल सप्तमी को भी बता रहा हूँ । ४४। गोमूत्र, गोबर, षड्वृत, यावक (लप्सी), विशीर्ण (फटे पुराने सूखे पत्ते), कीर, भात, सिक्षय (मधुमक्खियों से अवशिष्ट शहद), एवं जल, इन्हीं वस्तुओं के आहार करके भास्त्रक की उपासना करनी चाहिए । ४५-४६। द्विजश्चेष्ट ! भाँति

पुष्टोपहारैविधेः पप्तसीगन्दिकोत्पत्तेः । नानाप्रकारैर्गन्धीश्च धूरैगुणसुखन्वन्तः ॥४७
 कृशर्वः पायसामैर्वा विविधैश्च चिमूलणीः । अर्चसिद्धा हृजश्चेष्ठ अश्यवस्त्रादिमूलणीः ॥४८
 सर्वपक्षफलं प्राप्त्य सूर्यलोकं ततो द्वजेत् । तपसोऽन्ते ततो वीरं हुसे महति जायने ॥४९
 यथा! कस्म ग्रहत्वेन नामानि परिकीर्तयेत् । माघे च फल्लुने भासि चैत्रे च गदडाप्रज्ञ ॥५०
 द्वैशत्से त्वय च्येष्ठे तु आपादे श्रावणे तथा । भासि भासापदे वीरं तत्त्वा चाष्टपुजे खग ॥५१
 नार्गरीरीर्वं तथा पौत्रे पूजयेत्सततं उविष्म् । विष्णवसुं विष्णवन्तं भास्करं अशिष्टसत्तम् ॥५२
 विकर्तनं पतझं च सहस्राणुं छगाधिष्ठ । एतानि देवनामानि भास्त्वेतेषु खेचर ॥५३
 पूजयेद्देवेशो देवान्नामपि दुर्लभम् । एवं क्रमेण तीक्ष्णाणांशुं नानमिः परिपूजयेत् ॥५४
 इत्येवं से समाध्यातं मयः गुह्यमिवं खग । अभक्ताय न वातव्यं नाशेष्याय कथञ्चन ॥५५
 न च पत्त्वृते वीरं वातव्यं दिनतात्मज । व्याधेस्तु नाशनार्थय खेयं विप्राय सुखत ॥५६
 वत्वा स्वर्गमवाप्नेति श्रुत्वा च विधिवत्सग ॥५७

इति श्रीभविष्ये भगवान्महापुराणे ब्राह्मण पर्वतिं गीतारध्यें सप्तमीं शतलये नामपूजाविधिवर्णनं
 नाम षण्वात्यधिकशततशोऽन्यायः । १९६।

भाँति के पुष्टोपहार, रक्तकमल, नीलकमल, अनेक प्रकार की गङ्ध, धूप, गुणगुल, चन्दन, कृशरान्न (खिचड़ी), सीर, अनेक भाँति के आमूलण, अश्य एवं वस्त्रादि वस्तुओं द्वारा सूर्य की पूजा करने पर समस्त पक्ष के फलों की प्राप्ति पूर्वक सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । वीर ! पश्चाद् वह प्रतिष्ठित कुल में उत्पन्न होता है । ४७-४९। क्रमशः उनके नाम भी बता रहा हैं । गहडाप्रज ! माघ, फाल्युन, चैत्र, दैशास, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन (कार्तिक) मार्गिनीर्ष और पौष इन मासों में निरन्तर सूर्य की पूजा करनी चाहिए । पेणिसत्तम ! विभावसु, विवस्वान, भास्कर, विकर्तन, पतंग, एवं सहस्राणु, इन मासों में सूर्य के इन्हीं नामों की पूजा होती है । ५०-५३। आकाशगामिन ! देवाधिदेव (सूर्य) के तीक्ष्णाणांशु आदि नाम से क्रमशः उनकी पूजा जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है, करनी चाहिए । ५४। खग ! इस प्रकार तुम्हें इन बातों को बता दिया गया, इसे अभक्त तथा अशिष्य को कभी न प्रदान करना चाहिए । ५५। वीर, विनतात्मज, किसी पापी को भी इसे न देना चाहिए । सुव्रत ! रोग-मुक्त होने के लिए ब्राह्मण को बता देना अनुचित नहीं है । खग ! इसके प्रदान या विधान पूर्वक श्रवण करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है । ५६-५७

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्मणर्थ के सौर धर्म के सप्तमी कल्प में नाम पूजाविधि वर्णन
 नामक एक सौ छियानबेंवां अध्याय समाप्त । १९६।

अथ सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

वराटिकावर्णनम्

सप्ताभ्यतिलक उदाच

अतः परं ब्रवत्यामि पुष्पैष्ठैर्निकामिकम् । ऐन देन तु दानेन तत्त्वतत्त्वमवास्थात् ॥१
 मालतीकुमुखैः पूजा भवेत्सामिष्यगत्तारकतः । आरोग्यं करवीरैस्तु भवत्यर्थं शास्त्रतः ॥२
 ऐश्वर्यस्तुलं चैव लक्षणं विपुलं तथा । सल्लिङ्गायाश्च कुमुखैर्मावत्सम्मुखो भवेत् ॥३
 सौभाष्यं पुण्डरीकैस्तु परदेव्यमाप्नुयात् । कमलोत्पलकुन्दरतु यशो विद्या बलं भवेत् ॥४
 नानाविधैः मुकुमुखैः क्षिणं रोगात्प्रभुच्यते । भवत्यक्षयमन्नं च नित्यमर्चयतो रविम् ॥५
 अन्वारकुमुखैः पूजा सर्वकृष्णनिवारिणी । बिल्वस्य पत्रकुमुमैर्महतीं श्रियमास्यात् ॥६
 अर्कलज्जा भवत्यर्कः सर्वदा वरदः प्रभुः । प्रदद्याद्यपिणीं कन्यामर्चितो बकुललज्जा ॥७
 किंशुकैः पूजितो देवो न र्द्दिति भास्करः । अगस्त्यकुमुखैः सिद्धिं मानुकूलं प्रयच्छति ॥८
 स्वयं रूपवतीं द्वारात्प्रजितश्चम्पकलज्जा । निष्ठेदेव भवेत्त्रित्यं पूजितः पुष्पमालया ॥९
 अरोक्कुमुखैर्देवस्त्वयेष्टो दिवाकरम् । आग्रातकस्य कुमुमं निर्मात्यमिव दृश्यते ॥१०

अध्याय १९७

वराटिका का वर्णन

सप्ताभ्यतिलक बोले—इसके उपरात मैं कामना सफल करने वाले उन पुष्प एवं घूर्पों को जिसमें
 यह बताया गया है कि किसके प्रदात करने से किन फलों की प्राप्ति होती है बता रहा हूँ । १। मालती पुष्प
 से पूजा करने पर सूर्य का सामिष्य, करवीर (कनेर) द्वारा पूजा करने पर निरन्तर अर्थानि, असाधारण
 ऐश्वर्य, तथा विपुल यग की प्राप्ति होती है । मल्लिका (मालती) पुष्पों द्वारा अर्चना करने पर भगवान्
 सूर्य की विशेष कृपा, पुण्डरीक से सौभाग्य, उत्तम ऐश्वर्य, रक्तकमल, नीलकमल एवं कुंद पुष्पों द्वारा यश,
 विद्या, एवं बल की प्राप्ति होती है । २-४। अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्पों द्वारा शीघ्र रोग मुक्ति, सूर्य की
 नित्य उपासना करने से अक्षय अन्न, मंदार सुर्प्यों द्वारा सभी भाँति के कुछों के नाश, विल्पत्र एवं कुम्हमें
 द्वारा महान् श्री, प्राप्ति होती है । ५-६। मंदार की माला अर्पित करने से सूर्य सदैव वर प्रदान करते रहते
 हैं । वकुलपुष्पों की माला द्वारा उपासना करने पर सूर्य रूपसौन्दर्यपूर्ण कन्या प्रदान करते हैं । ७। किंशुक
 द्वारा पूजा करने पर (सूर्य) देव पीडित नहीं करते हैं, और अगस्त्य पुष्पों द्वारा पूजा करने पर मनोनुकूल
 सिद्धि प्रदान करते हैं । ८। चंपे की माला प्रदान करने से रूपवती कन्या, पुष्पमाला अर्पित करने से नित्य
 निष्ठेदेव (शांति) प्राप्त होता है । ९। अशोक पुष्प से भी पूजन करने वाला सुखी रहता है । आग्रातक
 (आमले) का पुष्प भी निर्मात्य की भाँति पवित्र बताया गया है । १०। किन्तु उसका भीतरी

अप्रत्यगं बहिर्यस्मात्स्वात्त्वरिवर्जयेत् । नवमित्त्वचलां कीर्ति दशमिः सुखमुत्तमम् ॥११
 भोगन्तेकादरोनेह प्राप्त्यान्नाश्र संशयः । द्वादशोनाचलं राज्यं द्वादशाल्यमवान्नुयात् ॥१२
 प्रथमं पूजयेद्ग्रक्ष्या भूरूपं प्रणमेत्सदा । भुवर्नमो द्वितीयं द तृतीयं स्वर्नमेष्टरः ॥१३
 न्नर्हन्मश्चतुर्थं तु पञ्चमं तु जनोनमः । तप्ते नमस्तया षष्ठं नमः सत्यं तु सप्तमम् ॥१४
 अष्टमं भूर्भुवश्रेति नवमं स्वेति सगसत्तम । दशमं अडतो वीर नमोल्काय तथा परम् ॥१५
 द्वादशं तु षष्ठोल्केति ॐ नमः पूजयेत्स्त्र । एवं मण्डलकारी तु क्षमादेवं फलं लज्जेत् ॥१६
 धृतदीपप्रदानेन दक्षुभ्याऽन्नायते नदः । कटुतलन्यं देयेन शत्रूणां संक्षयो भवेत् ॥
 भूधाकानां तु तैलेन सौभाग्यं परमं लभेत् ॥१७
 सम्पूज्य दिघिवदेवं पुञ्चधूपादिर्मिनरः । यथाशक्त्या ततः पश्चात्मवेद्यं तु प्रकल्पयेत् ॥१८
 पुष्पाणां प्रवरा जाती धूपानां चैव चन्दनम् । गन्धानकुकुइकुमं श्रेष्ठं नोदिकाश्र निवदने ॥१९
 एतैस्तुष्ट्यति देवेशः साम्निष्यं चाधिगच्छति । ददाति प्रवरानिष्टान्दातुश्र स्वर्गाति तथा ॥२०
 एवं सम्पूज्य दिघिवत्कृत्वा चापि प्रदक्षिणाम् । प्रणम्य शिरसा देवं भास्करं तिमिरापहम् ॥
 आरहा सुविमानं स याति भ्रानोः सलोकताम् ॥२१
 पुनः संपूज्य देवेशं जपं कुर्यादिधिवृष्टेन कर्षणा ॥
 एवमेककशः कार्या सप्तम्यः सप्त सर्वदा ॥२२

भाग वहिर्याग में स्थित होने की भाँति दिखायी देता है, इसीलिए वह त्याज्य है । नव (प्रकार) के पूष्यों द्वारा निहचल स्थानि, दश से उत्तम सुख, और एकादश (ग्यारह) से उपभोग प्राप्त होते हैं इसमें संदेह नहीं । बारह से अचल राज्य प्राप्त होता है, क्योंकि उसकी 'द्वादशाल्य' से प्रसिद्धि है । १-१२। प्रथम भूरूप (सूर्य) का सदैद-प्रणाम पूर्वक पूजन करे, दूसरे भुवरूप, तीसरे स्वरूप, चौथे महः रूप, पाँचवें जन रूप, छठे तप रूप, सातवें सत्यरूप, आठवें भ्रूरूप, नवें भुवरूप, दशवें भू से तप तक के रूप, ग्यारहवें उल्क और द्वारहवें खण्डोल्क की पूजा करनी चाहिए । इस प्रकार मंडल बनाकर क्रमशः पूजन करने जाला फलों की प्राप्ति करता है । १३-१६। धी के दीपक प्रदान करने वाले पुरुष चक्रुष्मान् होते हैं, कडवे तेल के दीपक द्वारा शतुराश एवं महुवे के तेल से परम सौभाग्य की प्राप्ति होती है । १७। इस भाँति विधान पूर्वक सूर्य की पूजा के अनन्तर मनुष्य उन्हें नैवेद्य अर्पित करें । १८। पूष्यों में श्रेष्ठ चमेली, धूपों में चन्दन, गंधों में कुकुम, एवं नैवेद्यों में भोजन उत्तम बताया गया है । १९। इन्हीं के अर्पण करने से देवेश सूर्य प्रसन्न होकर उसे अपना सानिध्य प्रदान करते हैं, तथा उसे मनोरथों की सफलता पूर्वक स्वर्ग भी प्राप्त होता है । २०। इस प्रकार विधान पूर्वक उनकी पूजा, प्रदक्षिणा एवं शिर से प्रणाम करने पर अन्धकार नाशक सूर्य देव, उसे सौन्दर्य पूर्ण विमान द्वारा अपने उत्तम लोक में निवास प्रदान करते हैं । २१। पूजा के उपरांत सूर्य देव का मन इच्छित जप भी करे, तथा विधान पूर्वक हवन भी । इस प्रकार सदैव एक-एक के क्रम से सातों सप्तमी के व्रतानुष्ठान करना चाहिए । आधी अंजसि जल का पान कर जिस सप्तमी के व्रत की समाप्ति की जाती है, वह सुख प्रदान करती है, तथा उसकी उदक सप्तमी के नाम से स्थानि है । २२। वह सुख

उदकप्रसूति पीत्वा द्विष्टते जा तु सप्तमी । सा जेया नुखदा वीर सौरदेवकसप्तमी ॥२३
 या कर्तिचत्सप्तमो नेत्रं ता ते वक्ष्यामि सर्वदा । वराटिका क्रमणाप्तं यत्किञ्चित्प्रतिभक्षयेत् ॥२४
 अनेत देयमूल्येन यत्लब्धं तत्प्रभक्षयेत् । अभक्ष्यं चापि भक्ष्यं वा नात्र कार्या विचारणा ॥२५
 इति श्रीभद्रिष्टे महापुराणे ग्राहो पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु वराटिकावर्णनं
 नम सत्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः । १९७।

अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

व्यासभीष्मसंचादवर्णनम्

शतानीक उवाच

किमेकं दैवतं सोके एक व्याप्तेकं पदार्थणम् । स्तुवन्तः कं कर्मचत्तः प्राप्नुपुर्मानवाः शुभम् ॥१
 को धर्मः सर्वधर्माणां शश्व पूज्यो भत्सत्त्व ! ब्रह्मादयः कर्मचन्ति कश्चादिस्त्रिदिवांकत्ताम् ॥२

सुमन्तुरुवाच

अत्राहं ते प्रवक्ष्यामि स्त्रशब्दं पापनाशनम् । भीमस्य नरशार्दूलं व्यासस्य च महात्मनः ॥३
 मुखासीनं महाव्यासं शङ्खाकूले द्विजोत्तम । तं वृष्टा सुभहतेजा ज्वलन्तमिव पावकम् ॥४
 साक्षात्तारायणं देवं तेजसादित्यसभिभ्रमम् । प्रणम्य शिरसा वीर सर्वशास्त्रालयं परम् ॥५

प्रदान करती है, तथा उसकी उदक सप्तमी के नाम से स्थानित है । २३। जिस किसी सप्तमी या उसके विद्यान को
 मैंने तुम्हें नहीं बताया है, उसे बता रहा हूँ । वराटिका (कौड़ी) के देने से जो कुछ मिल जाये उसी का भक्षण कर
 बढ़ की समाप्ति करे, उस मूल्य द्वारा जो कुछ प्राप्त हो सके वही भक्ष्य है, उसमें भक्ष्याभक्ष्य का विचार अनावश्यक
 है ऐसा बताया गया है । २४-२५

श्रीभविष्यमहापुराण में ग्राहपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में वराटिका वर्णन
 नामक एक सौ सत्तानवें अध्याय समाप्त । १९७।

अध्याय १९८

व्यासभीष्म संचाद-वर्णन

शतानीक ने कहा—इस लोक में सर्वश्रेष्ठ देवता एक कौन है, किस एक का पारायण किया जाता है,
 किस की स्तुति पूजन करते हुए मनुष्य कल्याण प्राप्त करते हैं, समस्त धर्मों में कौन उत्तम धर्म एवं तुम्हारे
 सम्मत में पूज्य कौन है, ब्रह्मादि देव किसकी उपासना करते हैं, तथा देवों में आदि (प्रथम) कौन हैं । १-२

सुमन्तु बोले—नरशार्दूल ! इस विषय में मैं तुम्हें भीष्म और महात्मा व्यास के पाप नाशक संचाद
 को बता रहा हूँ । ३। द्विजोत्तम ! एक समय गंगा के तट पर सुखपूर्वक बैठे हुए महाव्यास को, जो प्रज्वलित
 पावक, साक्षात्, नारायण देव, सूर्य के समान तेजस्वी तथा समस्त शास्त्रों के उत्तमासय की भाँति
 दिखायी दे रहे थे महाभारत के रचयिता, परमषि, एवं राजषियों के आचार्य, मेरे कुरुवंश के

महाभारतकर्तारं देवार्थनिकषं परम् । आचार्यं परमर्षीणां राजर्षीणां च भारत ॥६
कर्तारं कुरुवंशस्य देवतं परमं मम । पश्च इश्वरार्द्धलो हिजभक्त्या समन्वितः ॥७
देव देवस्य माहात्म्यं द्वित्तस्यं भास्करस्य तु । स महात्मा महातेजा भीष्मः पूर्वं मुनिं तथा ॥८

भीष्म उवाच

भगवन्निःशार्दूलं पाराशर्यं भहमते । यमास्थातं त्वया सर्वं वाऽमयं सचराचरम् ॥९
भास्करस्य मुनिश्चेष्ट संशयोऽजापि बतते । आवौ तस्य नमस्कारमन्येषां तदनन्तरम् ॥१०
चहारीनां तु रुद्राद्यैर्हि तत्त्वेन हेतुना । क एष भास्करो बहन् युतो जातः क उच्यते ॥११
दीर्त्यस्त्रं यशान्दासं कौतुकं हि परं मम । कुशलो हि भवांल्लोके तस्मात्म्यं चक्रुर्महसि ॥१२

व्यास उवाच

अहो तव भहत्कष्टं प्रमुदोऽसि न संशयः । भृत्यन्तश्च तमर्चाभिः सिद्धाः भृत्यादयः मुराः ॥१३
सर्वेषामेव देवानामादिरातित्य उच्यते । स हृति तिसिरं सर्वं दिविदिक्षु व्यवस्थितम् ॥१४
स धर्मः सर्वधर्माणां स च पूज्यतमो मतः । भृद्वादयस्त्वमर्दन्ति स चादित्वदिवोक्ताम् ॥१५
अवितिः कश्यपसती आदित्यसतेन चोच्यते । आदिकर्त्त्य वा यस्मात्समादादित्य उच्यते ॥१६
तस्मादेवतज्जगत्सर्वमादित्यात्सम्प्रवर्तते । सर्वेषामुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ॥१७
रुद्रोपेन्द्रो तथेन्द्रश्च ब्रह्मादक्षोऽयं कश्यपः । आदित्यदेवताः सर्वे तथान्ये देवदानवाः ॥१८

निर्माता तथा उत्तम देव दो ब्राह्मण भक्ति वश प्रणाम करके महात्मा, महातेजस्वी, भीष्म ने देवाधिदेव भास्कर के माहात्म्य को मन में स्थित कर उन पूर्व मुनि (व्यास) से पूछा— ४-८

भीष्म ने कहा—हे भगवन् ! द्विजशार्दूल, पाराशर्य, भहमते ! आप ने इस चराचर वाऽमय (शास्त्रों) को मुझे बता दिया है, किन्तु, इत भास्कर के विषय में मुझे आज भी संदेह हो रहा है कि मुनिश्चेष्ट ! प्रथम इन्हें नमस्कार करके पश्चात् अन्य देवताओं को नमस्कार किया जाता है—हे ब्रह्मन् ! किस तात्त्विक हेतु द्वारा सूर्य रुद्रादि देवों के पहले वन्दनीय है, ये भास्कर कौन हैं, और कहाँ उत्पन्न हुए हैं ? इन बातों के जानने के लिए मुझे महान् कौतुक हो रहा है, और आप भी इस लोक में एक ही कुशल वक्ता हैं, अतः न्यायोचित ढंग से मुझे बताने की कृपा करें । ९-१२

व्यास बोले—इन बातों में तुम्हें महान् कष्ट है, यह एक आश्चर्य की बात है इसलिए तुम्हारे मूढ़होने में संदेह नहीं बह्यादिक देव गण उन्हीं (सूर्य) की उपासना करके सिद्ध हुए हैं । सभी देवों में आदि (ज्येष्ठ) आदित्य हैं । दिशाओं-विदिशाओं में व्याप्त अन्धकार उन्हीं द्वारा नष्ट होता है । समस्त धर्मों में वहीं प्रधान धर्म है अतः भेरे सम्मत से पूज्यतम भी वहीं हैं । ब्रह्मादि देव उन की उपासना करते हैं, वही देवों के आदि हैं, कश्यप तथा उनकी सती स्त्री अदिति द्वारा जल ग्रहण करने तथा आदिकर्ता होने के नाते इन्हें ‘आदित्य’ कहा जाता है । १३-१६। इसी लिए आदित्य द्वारा इस समस्त जगत् की सृष्टि हुई है जिसमें देव, अमुर, राक्षस, गन्धर्व एवं यक्ष लोग हैं तथा रुद्र, उपेन्द्र, इन्द्र, ब्रह्मा, दक्ष, कश्यप, आदित्य देवता एवं अन्य देव-दानव भी । उनके मुख द्वारा ब्रह्मा वक्षस्थल द्वारा रुद्र, दाहिने हाथ

मुखाद्भूते विरच्छित्तु रहो वक्षस्थलास्ततः । उपेन्द्रो वक्षिणाद्वस्तादाता चामकरात्तथा ॥१९
वामपादतलाद्भूतो वक्षिणात्कर्त्यपस्तथा । इत्युत्पन्नास्तथा चान्ये देवासुरनराः स्वगाः ॥
तेनासौ देव आदित्यः स्वर्वेषु पूजितः ॥२०

भीष्म उवाच

शतीत्यं गीयते शोर दिग्विदिषु स भास्करः । यदि तस्य पश्चावेत्यं पारशर्ण्य लग्नतरोः ॥२१
स लिमर्यं त्रिसन्ध्यं तु रक्षते । परिधूर्यते । द्विजैः शंरक्ष्यते शूयश्चक्षवद्भासते पुनः ॥
राहुणां गृह्णते शाश्वततित्पर्यं द्विजोत्तम् ॥२२

व्यास उवाच

पिशाचोरगरक्षांसि डाकिनीदानवांस्तथा । वक्षिणामिर्वैक्षोद्यात्तमाकामति भास्करः ॥२३
त्रिसन्ध्यं तु त्रयो देवाः साम्निध्यं चविमष्ठले । मुहूर्तंस्य प्रभवोऽयमसाध्ये वृष्टके तथा ॥२४
तपेकमेवामुद्दिश्य लोके दर्शः प्रक्षतंते । नमस्कृते स्तुते तस्मिन्सर्वे देवाः नमस्कृताः ॥२५
त्रिसन्ध्यं वसुधादेवैर्भास्करस्त्रिः प्रणम्यते । राहुरादित्यविष्वस्य स्थितोऽथस्तान्न संशयः ॥२६
अमृतार्थी विवानस्थो यायत्संलब्धतेऽमृतम् । विमानन्तरितं विम्बशादिशेवृप्रहृणं ततः ॥२७

द्वारा उपेन्द्र (विष्णु) वायें हाथ द्वारा धाता, वायें पादतल द्वारा दक्ष, हाहिने पाद तत्व द्वारा कशयप तथा
अन्य देव, असुर मनुष्य एवं पक्षियों आदि की सृष्टि हुई है। इसीलिए आदित्य देव सभी देवों के पूज्य
हैं। १७-२०

भीष्म ने कहा—हे वीर ! यदि भास्कर का इस प्रकार दिशाओं तथा विदिशाओं में गुणगान गाया
जाता है, और हे पाराशर्ण ! उन्हीं जगदीश्वर का ही यह प्रभाव है, तो तीनों संघ्याओं में राक्षसों द्वारा
उनका पराभव क्यों होता रहता है, जिसमें द्विजों द्वारा उनकी रक्षा होती है, वे पुनः चक्र की भौति भ्रमण
किया करते हैं तथा हे द्विजोत्तम ! राहु उन्हें ग्रहण करने क्यों दौड़ता है । २१-२२

व्यास बोले—पिशाच, नाग, राक्षस, डाकिनी, एवं दानवों को विषिणामि दहन करता है, कुद्द
होकर भास्कर उस पर आक्रमण करते हैं । तीनों संघ्याओं में तीनों देव सूर्य मंडल के साम्निधि में स्थित
रहते हैं । यह मुहूर्त का प्रभाव है, तथा प्रत्यक्ष दीखते हुए भी असाध्य है, और उन्हीं एक सूर्य देव का ही
उद्देश्य मानकर समस्त लोक ब्रह्म में प्रवृत्त होता है, एवं उन्हें नमस्कार तथा स्तुति करने पर समस्त देव
गण नमस्कृत होते हैं । २३-२५। तीनों संघ्याओं में समस्त भू देव वृन्द भास्कर को तीन बार ग्राहाम करते
हैं । हाँ अमृत के लिए राहु भी उनके विष्व के नीचे अवश्य स्थित होता है इसमें संदेह नहीं है वह विमान
पर बैठकर जितने समय तक अमृत का नाब होता है उतने समय तक विमननांतरित होकर वह उनके
लिए विष्व का आलम्बन किये रहता है, वही ग्रहण के नाम से स्थात है । २६-२७। दहन करने के लिए

न कश्चिद्धर्षितुं शक्त आदित्यो वहते प्रुदम् । दिवाराग्निमुहूर्तानां ज्ञानायाक्रमते रविः ॥२८
 नादित्येन विना रात्रिने विनं न च तर्पणम् । नाथस्मै नाथवा धर्मस्तेन दृष्टं चराचरम् ॥२९
 आदित्यः पाति वै सर्वमादित्यः सृजते सदा ! एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्ठं भवता मम ॥३०
 इति श्रीभविष्ये महात्मुरागे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सारथ्यम्
 व्यासभीष्मसंवादेऽष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः । १९८।

अथ नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीष्मव्याससंवादवर्णनम्

श्रीष्म उदाच

स आदित्यो भवेद्येन अचिरातु वरप्रदः । तद्व ह श्रेतुमिच्छामि विप्र मां भूहि तत्त्वतः ॥१
व्यास उदाच

पूजया जपहोमेन प्र्यानधारण्या सह : सकल मण्डलं कृत्वा तदीकां समयं तथा ॥२
 लब्ध्याराधयते यस्तु भक्त्या तदगतमानसः । तस्य आनुभवेद्वीर अचिरातु वरप्रदः ॥३
 बलसिद्धिं महदीर्घं प्रतापं च स्वकायनम् । धनं धान्यं सुवर्णं च रूपं सौभाग्यसम्पदम् ॥४
 आरोग्यमायुः कीर्ति च यशः पुत्रांश्र मानद । इदते नात्र सन्देहो यस्य तुष्टो दिवाकरः ॥५

निश्चित शक्ति आदित्य में ही है, उन पर आक्रमण के लिए कोई भी समर्थ नहीं हो सकता है । दिन, रात एवं मूहतर्ते के ज्ञानार्थ सब के ऊपर सूर्य का आक्रमण (उदय) होता है । २८! बिना भास्कर के रात, दिन, तर्पण, धर्म, एवं अर्थम् की प्रगति चर चराचर किसी में भी सम्भव नहीं होती है ! समस्त जगत् का पालन, एवं सर्वज्ञ आदित्य ही करते हैं । जो आपने पूछा था, मैंने उन सभी बातों को बता दिया । २९-३०

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में व्यास श्रीष्म संवाद वर्णन नामक एक सौ अठानवेवौं अध्याय समाप्त । १९८।

अध्याय १९९

श्रीष्म संवाद-वर्णन

श्रीष्म ने कहा—हे विप्र ! वह आदित्य जिस प्रकार शीघ्र वर प्रदान करते हैं, उस विधान को मुझे जानने की इच्छा है, आप विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करें । १

व्यास बोले—वीर ! समस्त मण्डल की रक्षना कर दीक्षाप्रहण पूर्वकं नियम पालन करते हुए जो कोई पूजा, जप, हवन, एवं ध्यान-धारणा के साथ भक्ति पूर्वकं तन्मय होकर उनकी आराधना करता है, उसी के लिए सूर्य शीघ्र वर दायक होते हैं । २-३। बल की सिद्धि, महात् पराक्रम, प्रताप, निजी (गृह) धन, धान्य, सुवर्ण, रूपसौन्दर्य, सीभाग्य-सम्पत्ति, आरोग्य, कीर्ति, यश, एवं पुत्र, ये सभी वस्तुएँ जिस पर सूर्य प्रसन्न होते हैं, उसे प्रदान करते हैं, इसमें संदेह नहीं । प्रसन्न होने पर

धर्मसर्वं तथा कामं विद्यां मोक्षश्रियं तथा ! ददते भास्करस्तुष्टो नराणां नात्र संशयः ॥६
तौरेण विधिन तात पूजयित्वा दिवाकरम् । तवान्कामानवाप्नोति तथादित्यस्तयं नृप ॥७

भीष्म उवाच

सौरस्नानविधिं शूहि सरद्वयं महामते । ये न स्नातेऽमलो याति नरः पूजयितुं रविम् ॥८

व्यास उवाच

हन्त ते सम्ब्रवक्ष्यामि स्नानं पापप्रणाशनम् । शुचौ भनोरमे स्थाने लङ्घृद्वास्त्रेण मृत्तिकाम् ॥९
सान्धिसन्ध्यो हकारत्तु टरेफोकसमन्विते । अनेनास्त्रेण सङ्घृद्वा ततः स्नानं सम्माचरेत् ॥१०
मलस्नानं ततः पञ्चाच्छेषार्थेन तु कारयेत् । सग्रावयं तु सार्थं तु तृणपाषाणवर्जितम् ॥११
एकमस्त्रेण चालम्ब तथान्दं भास्करेण तु । अइं चैव तृतीयेन अभिमन्त्र्य सङ्कृतसङ्कृत ॥१२
जप्त्वास्त्रेण शिदेदिषु निर्विघ्नं तु जलं भवेत् । सूर्यतीर्थे द्वितीयेन अभिमन्त्र्य सङ्कृतसङ्कृत ॥१३
गुणयित्वा ततः स्नायादिति तीर्थेषु मानवः । त्रूप्यशङ्खनिनादेन व्यात्वा देवं दिवाकरम् ॥१४
स्नात्वा राजोपचारेण पुनराचम्य यत्ततः । स्नानं कृत्वा दत्तो भीष्म मन्त्रराजेन संयुतम् ॥१५
हरेकौ बिन्दुयुक्तश्च तथान्यो दीर्घया सह । माझया रेफसंयुक्तो हकारो बिन्दुना सह ॥१६
सकारः सविसर्गस्तु मन्त्रराजो यमुच्यते । ततस्तु तर्पयेन्मन्त्रान्सर्वास्तास्तु करायजैः ॥१७

भास्कर मनुष्यों को धर्म, अर्थ, काम, विद्या एवं मोक्ष भी अवश्य प्रदान करते हैं इसमें संदेह नहीं । नृप ! विधानपूर्वक सूर्य की उपासना करके समस्त कामनाओं की सफलता एवं आदित्य लोक की प्राप्ति होती है । ४-७

भीष्म ने कहा—हे महामते ! उह सौर स्नान के विधान को जिसके द्वारा स्नान कर मनुष्य स्वच्छ होकर सूर्य पूजन के योग्य होता है, रहस्य समेत बताने की कृपा करें । ८

व्यास बोले—मैं तुम्हें उस पाप नाशक स्नान-विधान को बता रहा हूँ (मुनो) किसी पवित्र एवं रमणीक स्थान की मिट्ठी मंत्र (मंत्रोच्चारण) पूर्वक ग्रहण करे । मन्त्राक्षर के ह, ट, र, फ, यही वर्ण हैं इसी अस्त्र द्वारा उस मृत्तिका का ग्रहण पञ्चात् स्नान करना चाहिए । ९-१०। उपरांत अवशिष्ट अर्ध भाग से मलस्नान करके पूर्व अर्धभाग में तीन भाग बनाये, उसमें तृण-कंकड़ आदि न रहे । एक का अस्त्र द्वारा और दूसरे का भास्कर के नामोच्चारण द्वारा ग्रहण करना चाहिए तीसरे भाग द्वारा प्रत्येक अंगों को एक-एक बार अभिमन्त्रित कर अस्त्र के जप पूर्वक उसे सभी दिशाओं में फेंक दे जिससे स्नान जल निर्विघ्न समाप्त हो जाये । दूसरे भाग द्वारा सूर्य तीर्थ को चारों ओर से (धेरे के रूप में) एक-एक बार अभिमन्त्रित कर पञ्चात् उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करे । स्नान के समय दिवाकर के ध्यान पूर्वक तुरुही एवं शाल की ध्वनि होनी चाहिए । भीष्म ! इस प्रकार राजोपचार पूर्वक स्नान करने के उपरांत पुनः आचमन करके मंत्रराज के उच्चारण पूर्वक स्नान करें । बिन्दु युक्त ह और र दीर्घमाला, बिन्दु के समेत, र और ह, तथा विसर्ग समेत स, यही द्वं ह्लां सः, मन्त्रराज के नाम से स्वात हैं । ११-१६। पश्चात् अंगुलियों द्वारा सभी मंत्रों के उच्चारण पूर्वक तर्पण करे । अंगुलियों के पर्व (गाँठ) के ऊपरी भाग द्वारा देवों के सब्द होकर

पर्वणाशूद्धर्वतो देवाः सन्वेन मुनयस्तथा । पितरश्चापसव्येन तद्वीजेन प्रतर्पयेत् ॥१८
 यद्गोतं प्रवरं लोके अक्षराणां मनीषिभिः । तद्विन्दुसहितं प्रोक्तं तद्बीजं नात्र संशयः ॥१९
 कृत्वा वाभकरे हस्ताहृत्वाऽप्नो विधानवित् । एवं स्नात्वा विद्वनेन सन्ध्यां बन्देद्विधानतः ॥२०
 ततो विद्वान्निषेपत्यश्चात्मास्करायोदकाऽञ्जलिम् । ज्ञेच्च अक्षरं सन्त्रं पृष्ठुलं का यदिच्छया ॥२१
 मन्त्राराजेति चः पूर्वं तवाख्यातो भाव नृप । पश्चात्तीर्थं तु मन्त्रांत्तु संहृत्य हृदयं न्यसेत् ॥२२
 मन्त्रैरात्मानमेकत्र कृत्वा हृष्ट्य प्रवापयेत् । रक्तचन्दनगन्धैस्तु शुचिस्नातो भावीतले ॥२३
 कृत्वा मध्यलकं वित्तमेकाद्वितो व्यवस्थितः । गृहीत्वा करवीराणि सख्याख्य ताद्वभाजने ॥२४
 तिलतण्डुलसंपुर्कं कुशगन्धोदकेन तु । रक्तचन्दनधूपेन युक्तमर्घ्यं प्रसाध्य तत् ॥२५
 कृत्वा शिरसि तत्त्वात्र ज्ञानुम्यामवर्णं गतः । पूर्वमन्त्रेण संयुक्तमर्घ्यं दद्यातु भानवे ॥२६
 मुच्यते सर्वपापेष्टु यो हैव विनिवेदयेत् । भद्रुगादिसहस्रेण व्यतीपातशतेन च ॥२७
 अयनानां तह्लेण चन्द्रस्य भ्रह्मे तथा । गवां शतसह्लेण अत्यन्तं ज्येष्ठपुष्करे ॥
 वत्ते कुरुकुलश्रेष्ठं तदवर्णेण फलं लभेत् ॥२८
 दीक्षामन्त्रविहीनोऽपि भ्रस्त्वा संबत्सरेण तु । फलमर्घ्येण वै नीरं लभते नात्र संशयः ॥२९
 यः पुनर्वीक्षितो विद्वान्निषिधिनार्थं निवेदयेत् । नासावुत्पद्यते मूमौ स लयं याति भास्करे ॥३०
 इह जन्मनि सौभाग्यमायुरारोग्यसम्पदाम् । अचिराद्वृते वीरं स भार्यामुखभाजनम् ॥३१

मुनिगण, और अपसव्य होकर पितरों के तर्पण करने का विधान बताया गया है। मनीषियों ने जिस वर्ण को, अक्षरों में श्रेष्ठ बताया है, तिंडु समेत वहीं वर्ण 'हृद्वीज' है। १७-१९। विधानयेता विदान् को चाहिए कि दाहिने हाथ द्वारा बाये हाथ में उसे स्थित कर विधान पूर्वक स्नान एवं संध्या-चन्दन करे। २०। उसके उपरांत भास्कर के लिए 'जलाऽञ्जलि' प्रदान करें। नृप! अक्षर या षड्क्षर के जपपूर्वक मंत्राराज का जप करें, जिसे मैंने तुम्हें बताया है। पश्चात् तीर्थ में मंत्रों के संहार पूर्वक हृदय में धारण कर भ्रंतमय होकर अर्थ्य प्रदान करें। इस भूतल में रक्त चन्दन अति पवित्र बताया गया है, उसके गंध द्वारा पवित्र स्नान पूर्वक सावधान हो मंडल बनाकर करवीर (करनेर) के पुण्य ताँबे के पात्र में रखे। तिल, तंडुल, कुश, गन्ध, एवं रक्तचन्दन की धूप समेत उस ताँबे के अर्थ्य पात्र में सभी वस्तुएँ रख कर धूत्ने के बल बैठकर उस पात्र को सिर से स्पर्श किये हुए पूर्वोक्त मंत्र द्वारा भानु के लिए अर्थ्य प्रदान करे। २१-२६। इस भाँति अर्थ्य प्रदान करने से समस्त पापों से मुक्ति प्राप्ति होती है। सहस्रयुगादि (कृतयुग), सौ व्यतीपात, सहस्र अयन, चन्द्र ग्रहण एवं सौ सहस्र गोदान श्रेष्ठ पुष्कर में प्रदान करने से जिस फल की प्राप्ति होती है, कुरुकुल श्रेष्ठ! वह समस्त फल ऐसे अर्थ्य प्रदान द्वारा प्राप्त होता है। २७-२८। वीर! दीक्षा, एवं मंत्र विहीन होने पर भी भक्ति पूर्वक पूर्ण वर्ष तक इस प्रकार अर्थ्य प्रदान करने से उस समस्त फल की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह नहीं। २९। और जो पुनः दीक्षित होकर कोई विद्वान् विधान पूर्वक अर्थ्य प्रदान करते हैं, उसे इस भूतल पर जलग्रहण नहीं करना पड़ता तथा भास्कर में उसका सायुज्य मोक्ष भी हो जाता है। इस जन्म में सौभाग्य, आयु, आरोग्य उसे शीघ्र प्राप्त होते हैं तथा वीर! वह स्त्रीमुख का एक मात्र पात्र

इव स्नानविधिः प्रोक्तो भदा संक्षेपतस्तव । हिताय मात्रवेन्द्राणां सर्वपापप्रणाशनः ॥३२
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वीणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु
 भीज्ञव्याससंवादो नाम नवनवत्यर्थिकशततमोऽध्यायः । १९९।

अथ द्विशततमोऽध्यायः

सौरधर्मे दर्शनम्

भीज्ञ उवाच

कवितस्ते स्नानविधिर्द्वयान्वै प्राग्वहारङ्गः । सम्यक्खूहार्चनविधिं पूजयिष्यामि येन वै ॥१

व्यास उवाच

हन्त ते सम्प्रवक्ष्यामि विधिम् विदित्यपूजने । विविक्ते विजयस्थाने सुप्रसन्ने सुशोभने ॥३
 पूजयद्वात्स्करं अन्त्री तरलीकृतविग्रहः । भद्रासनसमाख्यः प्राङ्मुखः साधकोत्तमः ॥३
 अस्त्रबीजेज्जन्मत्रेण नरः स्वाङ्गानि विच्छेत् । अङ्गुष्ठमादितः कृत्या कनिष्ठान्तं सुविन्यसेत् ॥४
 हृदयादीन्फलन्तास्तान्व्यवसेक्तमतः सदा । नेत्रपाणितले वीर त्यस्य अर्प्यादि मन्त्रवित् ॥५
 यदर्गे यच्चतुर्थं तु कर्णविन्युसस्तन्वितम् । नेत्रबीजमिति प्रोक्तं ज्योतीरूपं न संशयः ॥६

ही होता है। मैंने संक्षेप में तुम्हें इस स्नान विधान को बता दिया, जिसमें सभी मनुष्यों के समस्त पापनाश पूर्वक सभी प्रकार के हित निहित हैं। ३०-३२

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में भीज्ञ व्यास संवाद वर्णन नामक एक सौ नियानबेवां अध्याय समाप्त। १९९।

अध्याय २००

सौरधर्म का वर्णन

भीज्ञ ने कहा—हे ब्रह्म ! आप ने पापनाशक उस स्नान विधान को बता दिया, परन्तु मैं उनके अर्जन विधान को भी जानना चाहता हूँ, इसलिए कि मुझे उसके पूजन की इच्छा हो रही है, अतः आप उसे भी बतायें। १

चास बोले—मैं तुम्हें आदित्य पूजन का विधान बता रहा हूँ ! किसी सौन्दर्य सम्पन्न एवं प्रसन्नचित होने वाले विजय स्थान में मन्त्र द्वारा अपने शरीर को अभिमन्त्रित कर भद्रासन पर पूर्वाभिमुख स्थित हो साधक को भास्कर की पूजा करनी चाहिए। २-३। अस्त्रबीज के मंत्र से मनुष्य को प्रथम अंगन्यास करना चाहिए जिसमें हाँथ के अंगूठे से प्रारम्भ कर उसकी कनिष्ठिका अंगुली तक स्पर्श करना 'करन्यास' कहलाता है। उसी प्रकार हृदय आदि से प्रारम्भ कर 'अस्त्रायफट्' तक क्रमशः विन्यास करना चाहिए। वीर ! मंत्रवेत्ता नेत्र तथा हृथेली का न्यास करें। यदर्गे में चौथे अल्पर (य) पर बिंदु लगाने से (४) उसे ज्योतिरूप नेत्रबीज बताया गया है। ४-६। वीर ! पश्चात् सूर्य के कवच रूप तीनों अक्षरों के

पश्चात् अक्षरं सूर्यं कवचं विन्यसेद्गुधः। कथितं तन्मदे दीर मन्त्ररजिति पृच्छतः ॥१
 प्राणादप्तं ततः कुर्यात्प्रथमं बीजमुद्दिग्गरन् । रोषकमेण हृत्वायं विरजे भीष्मशक्तिः ॥८
 त्रिमिरेव ततो घोररात्मगुणिः कृता भवेत् । इति संशोध्य चात्मानं सूर्यं सर्वान्तिकं न्यसेत् ॥९
 हृदये हृदयं न्यस्य शिरः शिरसि विन्यसेत् । एकविंशतिग्रातुकाण्या असरं यत्प्रकीर्तितम् ॥१०
 हृदीजमिति विलम्बतं ग्रहस्त्यानमनौपमम् । शिरसार्कस्य पूजा तु सोकेऽर्कः प्रतिकव्यते ॥११
 शिखाण्या तु शिखा न्यस्यच्छरीरे कवचं न्यसेत् । नेत्रयोर्विन्यसेन्नेत्रं करयोरस्त्रमेव च ॥१२
 मृहल्याहृतयो राजंस्तथारञ्ज्वलिनी शिखा । हकारश्च इकात्र त्रुकारो विन्दुना सह ॥१३
 इतेषां स्तम्भयन्नेव कवचं परिकव्यते । नेत्रयोर्विन्यसेन्नेत्रं करयोरस्त्रमेव च ॥१४
 एवमृगान्ति विन्यस्य नासी केनापि बाणघेते । शत्रवो मित्रातां यान्ति अलाभे लाभमान्यात् ॥१५
 आत्मानं भास्करं ज्ञात्वा यथोक्तं तत्पर्दीर्थमिः । ततस्तु पूजयेद्ग्रान्तं स्थाप्णिले विधिवत्युतः ॥१६
 कृत्वा तु दक्षिणे पार्श्वे दिव्यपुष्पकरं उक्तम् । कृत्वा मुखोभिते वामे ताङ्ग्राण्डेन वारिणा ॥१७
 अस्त्रेण जालितां पूर्णं शेषं मन्त्रीर्जलस्तथा । अभिमन्त्र्य ततः स्याप्य कवचेनावगुणिताम् ॥१८
 स्थाप्णिले खेव द्व्याणि पूजार्थं कल्पितानि तु । सर्वाणि प्रोक्षयेद्विद्वन्नर्घ्यपात्रं जलेन तु ॥
 ततो मन्त्रं जपेत्प्रश्नावेकस्तितेन मन्त्रवित् ॥१९

भ्रीष्म उवाच

पुराणसहितमैत्रियोः विधिः कथितो गुह्यः

॥२०

न्यास करे, यही मंत्र का रहस्य है उसे मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ । ७। पुनः प्रथमबीज के उच्चारण पूर्वक प्राणःयाम करके हृवन करे । भ्रीष्म ! इस प्रकार इस भीष्मण के तीनबार उपक्रम करने से आत्म शुद्धि होती है । इस भांति शुद्ध होकर अपने को सूर्य के लिए अर्पित करे । हृदय में हृदय एवं शिर में शिर के न्यास पूर्वक, इस हृदीज का प्रयोग करे, जिसमें इक्कीस मातृकाओं के अधर को हृदीज बताया गया है, वही अनुपम ब्रह्मस्थान है । लोक में सूर्य का शिरसा पूजन सूर्य के ही लिए बताया गया है । शिखा में शिखा, शरीर में कवच, नेत्र में नेत्र, एवं हाथों में अस्त्र के न्यास का विधान बताया गया है । ८-११। राजन् ! र को ज्वाला वाली शिखा रूप बताया गया है, अतः हकार, रकार तथा त्रुकार विन्दु समेत महाब्याहृतियाँ हैं । इन्हीं के समय को कवच कहते हैं । कवच के धारण में नेत्र में नेत्र, हाथों में अस्त्र का न्यास कियाजाता है । इस प्रकार अंगों के न्यास करने से किसी गाकार की बाधा का सम्बन्ध नहीं होता है—शत्रु मित्र हो जाते हैं, अलाभ में लाभ की सम्भावना होती है—तत्त्वदर्थियों के कथनानुसार अपने को भास्कर सप्तमकर भूमि में विधान पूर्वक सूर्य की आराधना करे । १३-१६। दाहिनी और पुष्प करंडक (पुष्प रखने का वंश-पात्र) को और दायें और जल पूर्ण तांबे के अर्धपात्र में रख कर अस्त्र (मंत्र) द्वारा उसे भूमि की शुद्धि करके शेष मंत्र एवं जल से अभिमंत्रित किए कवच द्वारा एक रेखांकित वृत्त बनाकर उस भूमि में रखी हुई पूजन-सामग्री को उस अर्ध्य पात्र के जल से प्रशालन (शुद्ध) करके पश्चात् वह मंत्र वेत्ता तन्मय होकर जप प्रारम्भ करें । १७-१९

भ्रीष्म ने कहा—पुराण समेत मंत्रों द्वारा उस विधान को जिन विद्वानों ने बताया था, मैं ब्राह्मण

स मया दिवितः कृत्मः कथितो नैकशो द्विजः । वेदोर्लिंगिविधर्मन्त्रैर्यथा समूज्यते रावेः ॥२१
तथा मै बूहि सकल वैदिक विधिसत्तमम् ॥२२

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मणं पर्वणि सप्तमीकल्पे
सौरधर्मे द्विशततमोऽध्यायः ॥२००॥

अधैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यमण्डलदेवतार्चनविधिवर्णनम्

व्यास उवाच

अथ त्वां कथयिष्येऽहं संवादं धर्मवर्द्धनम् । सुरज्जेष्टस्य देवस्य केशवस्य च भारत ॥१
मनोदत्यां सुरज्जेष्टं सुखासीनं चतुर्मुखम् । प्रणम्य शिरसा विष्णुरिदं चचनमद्वीति ॥२

विष्णुरुहवाच

भगवन्वदेवदेवेश सुरज्येष्ट चतुर्मुख । आराधनविधिं बूहि भास्करस्य भहात्मनः ॥३
कमत्राधयेऽन्नानुं मण्डलस्थं दिवस्पतिम् । बूहि मेऽन्न गण देवं येनाहं पूजये विभुम् ॥४
साधु साधु महाबाहो साधु पृष्ठोऽस्मि भूधर । भृणु चक्नना देव भास्करारथने विधिम् ॥५
सप्तोल्कं निर्मलं देवं पूजयित्वा विभावसुम् । पूर्वं मध्ये तथाप्रेयां विरूपाके प्रभञ्जने ॥६

विद्वानों से उसे कई बार सुन चुका हूँ । अब वेदोक्त मन्त्रों द्वारा जिस प्रकार सूर्य की पूजा की जाती है उस वैदिक उत्तम विधान को मुझे बताने की कृपा करें । २०-२२

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मण के सप्तमी कल्प में सौर धर्म वर्णन
नामक दो सौर्वा अध्याय समाप्त । २००।

अध्याय २०१

सूर्यमण्डलदेवतार्चन विधि का वर्णन

व्यास बोले—भारत ! मैं तुहाँे (इस विषय का) एक धार्मिक संवाद, जिसे देवश्रेष्ट भगवान् केशव देव एवं ब्रह्मा के संबंध का बताया जाता है, सुना रहा हूँ । एक समय मनोवती में सुखासीन एवं देवश्रेष्ट ब्रह्मा से विष्णु ने शिर से प्रणाम करते हुए यह कहा— । १-२

विष्णु ने कहा—भगवान्, देवधिदेव, देवश्रेष्ट तथा चर्तुमुख ! (आप) महात्मा भास्कर के आराधन-विधान को बताने की कृपा करें । ३। मण्डल स्थायी एवं दिनाधिनाय सूर्य की आराधना किस भाँति की जाती है, तथा गणदेव का भी वर्णन कीजिए, क्योंकि मैं उस विभु की पूजा करना चाहता हूँ । ४। महाबाहो ! साधु-साधु ! धरणिधर ! आप ने बहुत उत्तम प्रश्न किया है । देव ! मैं भास्कर की आराधना का विधान बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो । ५। सप्तोल्क एवं निर्मल भास्कर देव की अर्चना के उपरांत पूर्व, मध्य, आग्नेय, पश्चिम, एवं वायव्य दिशाओं में क्रमशः ईशान तक तथा हृदय में बीज मंत्र का न्यास

क्रमेण यावदीशानों हृदि बीजेन विन्यसेत् । खण्डोल्कासनमेतत्तु विन्यस्तं मानवोत्तमैः ॥७
 ततस्तयोरपरिष्टात् हृदयेन तु कञ्चकम् । लक्ष्मायरणसंयुक्तनष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥८
 केसरालम्बदेवत्वं पञ्चवर्णं महादश्मम् । परीक्षामूर्मिविधिवच्छास्त्रोक्तविधिना हृतम् ॥९
 दीक्षादिपूर्वद्वारारम्भ यावदीशाशनगोचरम् । न्यौसच्छक्त्यष्टकं मन्त्री भव्यतः सर्वतोमुखीम् ॥१०
 दीक्षा सूक्ष्मा जया भवति विमूर्तिविमला तथा । अमोघा विद्युता चेद नवमीं सर्वतोमुखीम् ॥११
 तत अत्ताहयेद्भूतं स्थापयेत्कर्णिकोपरि । उपस्थानं तु वै कृत्वा दर्शणेन सुद्रवत् ॥१२
 उदुत्यं जातवेदसमिति मन्त्रः प्रकीर्तिः । अग्निं दूतेन मन्त्रेण अनेन विद्वद्भूत ॥१३
 आकृष्णेन रजना मन्त्रेणानेन चार्चयेत् । हंसः शुचिष्विदिति च मन्त्रेणार्कं प्रपूजयेत् ॥१४
 अतत्वे तारकं देवीं दीक्षादेन प्रपूजयेत् । अदृश्मस्यकेतवः सूक्ष्मां देवीं समर्चयेत् ॥१५
 तरणिर्विष्टदर्शेति अनेन सततं जयम् । प्रत्यइदवानां विशेति भद्रां देवीं समर्चयेत् ॥१६
 विमूर्तिमर्चयेत्तित्यं येनापावकचक्षसा । विद्युमेषीति मन्त्रेण हानेन विमलां सदा ॥१७
 अमोघां पूजयेत्त्रित्यं मन्त्रेणानेन सुद्रवत् । नवमीं पूजयेदेवीं सततं सर्वतोमुखीम् ॥१८
 मन्त्रानेन कृष्णस्य उद्वयन्तमितीह च । उद्यन्द्यमित्रहोमं प्रथममङ्गरं ऋजेत् ॥१९
 द्वितीयं पूजयेत्त्वाणं शुक्लेषु हरिमाहवे । उदगादयमादित्यो अनेनापि तृतीयकम् ॥२०
 तत्सवितुर्वरेष्येति चतुर्थं परिकीर्तितम् । महितोमहितोयेति पञ्चवृत्तं परिकीर्तयेत् ॥२१

करे । उत्तम मनुष्यों द्वारा किये गये विन्यस्त अंग खण्डोल्क देव (सूर्य) के आसन बताये गये हैं । ६-७।
 पञ्चात् उनके आसन पर सात आवरण समेत अष्टदल (कमल) जिसमें कर्णिका सांन्दर्यं पूर्ण बनी हो, शास्त्रोक्त विधान द्वारा परीक्षा की हुई भूमि में पाँच रंग के बने हुये उस महान् एवं अद्भुत स्थान पर स्थापित करके उसके केसर भाग में देव का अधिष्ठान बनाये । पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर ईशान पर्वत क्रमशः दीप्त आदि सूर्य शक्ति के नाम एवं रूपान्तर की स्थापना उस अष्टदल में करके उसके भव्य में उस मंत्रवेत्ता को चाहिए कि सर्वतोमुखी का स्थापन करे । दीक्षा, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा, विश्रुता एवं सर्वतोमुखी के आवाहन के उपरांत उस कर्णिका के ऊपर सूर्य का आवाहन एवं पूजन करके सुव्रत ! ‘उदुत्यं जातवेदसम्’ इस मंत्र से उनका उपस्थापन करें । विद्व सुव्रत ! ‘अग्नि’ दूतेन, और ‘आकृष्णेन रजस्’ इन मंत्रों से उनकी अर्चना तथा ‘हंस शुचिष्विदिति’ मंत्र से उनका पूजन करके ‘अतप्तं तारकं देवीं’ इस मंत्र से दीक्षा देवी, ‘अदृश्मस्य केतवः’ इस मंत्र से सूक्ष्मा देवी, ‘तरणिर्विश्व दर्शेति’ मंत्र से जया देवी, ‘प्रत्यइदवानां विशेति’ से भद्रा देवी, ‘सना पावक चक्षुसा’ इस मंत्र से विमूर्ति देवी, ‘विद्युमेषीति’ मंत्र द्वारा विमला देवी, तथा सुव्रत ! इसी मंत्र द्वारा अमोघा एवं नवीं सर्वतोमुखी देवी का आवाहन पूजन करे । ८-११। उपरांत कृष्णस्य उद्वयन्तमितीह च तथा ‘उद्यन्द्यमित्र होमं’ इस मंत्र द्वारा प्रथम आवरण, ‘कृष्णं शुक्लेषु हरिमाहवे’ इस मंत्र द्वारा दूसरे आवरण, ‘उदगादयमादित्यः’ इस मंत्र द्वारा तीसरे आवरण, ‘तत्सवितुर्वरेण्यं’ इस मंत्र द्वारा चौथे आवरण, ‘महितो महितोये’ ति इस मंत्र द्वारा पाँचवें आवरण, ‘हिरण्यगर्भः समर्वताग्रे’ इस मंत्र द्वारा छठे आवरण, एवं देवसत्तम ! ‘सविता

हिरण्यगर्भः समवर्तता षष्ठं द्वैजं ब्रह्मीर्तितम् । सविता नश्चात्पुरस्तात्सप्तमं देवसत्तम ॥२२
एवं श्रीजनि विन्यस्य आदित्यं स्थापयेद्द्विजः । आदित्यं स्थापयेद्द्वाने सर्वेणां पूजयेद्द्वयः ॥२३
ब्राह्मतो देवशार्दूल इन्द्रादीनां समन्ततः । रत्नवर्णी महातेजं सितपशोपरि स्थितम् ॥२४
सर्दलक्षणसंयुक्तं सर्वाभरणमूर्खितम् । द्विभुजं चैकचक्रं च सौम्यं पश्यद्गुरुकरम् ॥२५
वर्तुलं तेन द्विभेन मथ्यस्थमतितेजसम् । आदित्यस्य स्तिं रूपं सर्वलोकेषु पूजितम् ॥२६
प्रात्वा तम्भूजयेन्नित्यं स्थापिलं मण्डलाश्रितम् ॥२७

इति श्रीभविष्ये नश्चापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेण सूर्यमण्डलदेवतार्चनविधिवर्णने
नामैकाव्यिकद्विशततमोऽध्यायः । २०१।

अथ द्वृधिकद्विशततमोऽध्यायः

आदित्यपूजाविधिवर्णनम्

लिङ्गुरुवाच

मण्डलस्यं सुरश्वेष्ठ विधिना येन भास्करम् । पूजयेन्नमानदो भक्त्या स विधिः कथ्यतां भम ॥१
पूजयेद्द्विधिना येन भास्करं पद्मसम्भवम् । मूर्तिस्यं सर्वगं देवं पूजितं ससुरासुरैः ॥२

ब्रह्मोदाच

साधु कृष्ण भगवाहो साधु पृष्टोऽस्मि सुव्रत । शृणु चैकमना । पूर्वं मूर्तिस्यं येन पूजयेत ॥३

पश्चात्पुरस्तात्' मंत्र द्वारा सातवें आवरण की पूजा करें । इस भाँति बीज मंत्र के न्यास पूर्वक ब्राह्मण आदित्य की स्थापना करे । विद्वान् को चाहिए कि सभी देवताओं के ध्यान-पूजन में आदित्य का स्थापन पूजन अवश्य करें । १९-२३। देवशार्दूल । ब्राह्म भाग में चारों ओर इन्द्रादि देवताओं का आवाहन पूजन करना चाहिए । रत्न वर्णी, महातेजस्वी, उज्ज्वल कमल दर स्थित, समस्त लक्षणों समेत, एवं समस्त अलंकारों से अलंकृत उस आदित्य के रूप का, जिसमें दो शुजाएँ, एक चक्र हो तथा, सौम्याकृति, कमल-धनुष लिए, वर्तुलाकार (गोलाकार) बिम्ब के मध्य में स्थित हो, ध्यान एवं पूजन नित्य भूमि में मण्डल बनाकर करना चाहिए । क्योंकि भास्कर का यही रूप सर्व लोकों में पूजित होता है । २४-२७

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सूर्य मण्डल देवतार्चन विधि वर्णन नामक दो सौ एक अध्याय समाप्त । २०१।

अध्याय २०२

आदित्यपूजा की विधि का वर्णन

विष्णु बोले—हे सुरश्वेष्ठ ! भक्तिपूर्वक मण्डलस्थित भास्कर की पूजा जिस विधान द्वारा मनुष्य करते हैं, वह मुझे बताने की कृपा करें । १। और जिस विधान द्वारा कमलोद्भूत भास्कर की पूजा, जो मूर्ति में स्थित, एवं सर्वगमी देव हैं, सुंर असुर करते हैं, उसे भी बताने की कृपा करें । २

ब्रह्म बोले—कृष्ण, महाबाहो ! साधु, सुव्रत ! तुमने अत्युत्तम प्रश्न किया है, जिस विधान द्वारा

इवे त्वेति च मन्त्रेण उत्तमाइगं तदार्चयेत् । अग्निसीठेति मन्त्रेण पूजयेद्विक्षिणे करे ॥४
 अग्न आयाहि मन्त्रेण पादौ देवस्य पूजयेत् । आजिद्वेति च मन्त्रेण पूजयेत्युष्ममात्प्राणः ॥५
 योगयोगेति मन्त्रेण मुक्तपुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् । समुद्रं गच्छ यत्प्रोक्तमनेन स्नापयेद्विविष् ॥६
 इमं मे गड्गेति यद्गोक्तमनेनापि च भूधर । समुद्रज्येति मन्त्रेण कषायः परिरूपयेत् ॥७
 स्नापयेत्यदसा कृष्ण आप्यायस्वेति भन्नतः । वैधिकाग्नेति वै दूष्णा स्नापयेद्विवद्विविष् ॥८
 तेजोऽसि शुद्धमिति च धृतेन स्नापनं नरम् । या औषधीति भन्नेण स्नानमोद्धिक्षिभिः स्मृतम् ॥९
 उद्धतयेततो भानुं द्विपदाभिः सुराधिप । मानस्तेऽकेति भन्नेण पुण्यत्स्नानमाचरेत् ॥१०
 विष्णोरराटमन्त्रेण स्नापयेद्वायद्वारिङ्गा । सौवर्णेन तु मन्त्रेण अर्घ्यं दाद्य निवेदयेत् ॥११
 इवं विष्णुविचक्षने मन्त्रेणाद्यै प्रदापयेत् । वेदोऽसीति हि भन्नेण उपवीतं प्रदापयेत् ॥१२
 वृहस्पतेति भन्नेण दद्याद्वस्त्राणि भानवे । येन श्लिं प्रकुवाणां पुष्पमालां प्रयोजयेत् ॥१३
 धूरसीति च मन्त्रेण धूरं दद्यात्सगुणगुलम् । समिद्भूञ्जनयन्नन्त्रेण अञ्जनं तु प्रयच्छति ॥१४
 पुञ्जानीति च मन्त्रेण भानुं रोचनयाच्येत् । आरक्तकं च वै कुर्यादेधयुष्ट्वाय वै बुधः ॥१५
 सहस्रशीर्षा पुरुषो रविं सरसि पूजयेत् । सम्भावयेत्तिमन्त्रेण पद्मनेत्रे परामुरोत् ॥१६
 विष्वतश्वसुरित्येवं भानोर्देहं समालभेत् । श्रीश्रवं ते सहस्रीश्वेति भन्नेणानेन पूजयेत् ॥१७

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे वर्षणि सप्तमीकल्पे सौरधर्म
 आदित्यपूजाविधिवर्णनं नाम द्वधधिकद्विशततमोऽध्यायः । २०२।

मूर्तिस्थ (सूर्य) की पूजा होती है, मैं बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! 'इवे त्वे' ति मंत्र द्वारा (सूर्य) के उत्तमांगों की पूजा सदैव करें, उसी भाँति 'अग्नि सीठेति' मंत्र द्वारा दाहिने हाथ, एवं 'अग्रआयाहि' मंत्र द्वारा सूर्य के चरण जी पूजा करके 'आजिद्वेति' मंत्र द्वारा पुष्प माला अपित करे । ३-५। 'योग योगी ति' मंत्र द्वारा मुक्त पुष्पांजलि प्रदान पूर्वक 'समुद्रं गच्छ यत्प्रोक्तमिति' मंत्र द्वारा सूर्य के स्नान कराये तथा भूधर ! 'इमं मे गड्गे' इसे भी उच्चारण करते रहे । 'समुद्रज्ये' ति मंत्र द्वारा कषाय लेप करके पुनः कृष्ण ! 'आप्यायस्वेति' मंत्र द्वारा पयस्नान, 'दीर्घ क्राणे', ति मंत्र द्वारा दही, 'तेजोऽसि शुक्रमि ति' मंत्र द्वारा धी, तथा 'या औषधी' ति मंत्र द्वारा सूर्य को औषधि स्नान कराये । ६-९। सुराधिप ! 'द्विपदाभिः' इस मंत्र से सूर्य का उदर्तन (अंगों को मलना) करने के अनन्तर 'मानस्तोके' ति मंत्र द्वारा सर्वमिश्रित स्नान कराये । पश्चात् 'विष्णोरराटे' ति मंत्र द्वारा गन्ध मिश्रित जल से स्नान कराकर 'सौवर्णीते' ति मंत्र द्वारा उन्हें अर्घ्य पात्र निवेदित करे । १०-११। 'इदं विष्णुर्विचक्षमे' इस मंत्र द्वारा अर्घ्य प्रदान करने के उपरांत 'वेदोऽसी' ति मंत्र द्वारा यजोपवीत प्रदान पूर्वक 'वृहस्पते' ति मंत्र द्वारा उन्हें वस्त्र समर्पित करे । 'येनश्रियं' प्रकुवर्णे ति मंत्र मंत्र द्वारा पुष्प-माला, 'धूरसी' ति मंत्र द्वारा गुणगुल की धूप, 'समिद्भूञ्जन' ति मंत्र द्वारा अंजन, 'पुञ्जानी' ति मंत्र और रोचन द्वारा उनके तिलक लगाये । विद्वान् को चाहिए कि शिर से पैर तक उन्हें रक्तवर्णमय सौन्दर्यपूर्ण करें क्योंकि इसे दीर्घजीवन प्राप्त होता है । १२-१५। 'सहस्रशीर्षा पुरुषः' इस मंत्र द्वारा उनके शिर स्पर्श पूजन, 'संभावये' ति मंत्र द्वारा कमल नेत्र स्पर्श, तथा 'विष्वतश्वसुरि' ति मंत्र द्वारा भानु का देहालम्बन करके श्रीश्रवं तस्मीश्वे ति मंत्र द्वारा पूजन करें । १६-१७

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में आदित्य पूजा विधि वर्णन
 नामक दो सी दो अध्याय समाप्त । २०२।

अथ ऋद्धिकशततमोऽध्यायः

भास्कराराधनविधिवर्णनम्

विष्णुरुचाच

व्योमपूजाविधि शूहि समासाच्छुरानन् । अष्टभृहणं कर्त्य व्योम पूजयेद्ब्रास्करत्य तु ॥१
दहोवाच

व्योमपूजाविधिं कृष्ण निकेत्य गदते भद्र । अष्टभृहणं यथा व्योम पूजयन्ति मनोविष्णिः ॥२
स्त्रीदर्जी राजतं ताम्रं हृत्वा चाऽममयं तपतः । अष्टभृहणं महाबाहो अनेन विधिनार्चयेत् ॥३
प्रथमं पूजयेद्बृहानुं स्थ्ये मन्त्रेण सुन्नतः । महिवा दो महायेति तानापुष्यकदम्बकैः ॥४
आतारमिन्द्रं मन्त्रेण सर्वभृहणं सदार्चयेत् । उद्दीरतामवर इत्यथवानेन पूजयेत् ॥५
अरयं गौरिति मन्त्रेण नैकृतं शृण्गमर्चयेत् । रक्षोहणं वाजिनं वा पूजयेद्बुरान्तकम् ॥६
इन्द्रसोमान्तपतये हृथ वानेन पूजयेत् । अभित्वा शूर नो नुम ऐशानं शृण्गमर्चयेत् ॥७
एवं मानुं च परितः पूजयन्ति सदाच्युत । येनेवं भूतमिति वै अथवानेन प्रपूजयेत् ॥८
नमोऽस्तु सर्वपापेभ्यो व्योमपीठं सदार्चयेत् । ते नरा: सततं कामान्प्राप्नुवन्ति न संशयः ॥९
.त्वमेको रुद्राणां वसूनां पूर्वाह्नितेन पूजयेत् । तद्विष्णोः परमं पदं हंसः शुचिष्विति वै अपराह्ने सदार्चयेत् ॥१०

अध्याय २०३

सूर्यराधन विधि कर वर्णन

विष्णु ने कहा—हे चतुरानन ! भास्कर के अष्टभृंग वाले व्योम की पूजा किस विधान द्वारा होती है, उसे विस्तार पूर्वक बताने की कृपा करे । १

इहा बोले—कृष्ण ! मैं तुम्हें व्योम-पूजा विधान जिस विधान द्वारा मनोषी गण अष्टभृंग वाले व्योम की पूजा करते हैं, बता रहा हूँ, सुनो ! २। महाबाहो ! सुवर्ण, चांदी, तबि अथवा पत्थर के द्वारा अष्टभृंग वाले उस व्योम की रचना करके प्रथम उसके भाग में सूर्य की पूजा करे । परस्वात् 'महिवा दो महाय' एवं 'आतारमिन्द्र' इन मंत्रों द्वारा सब शृणों की सदैव अर्चना करे अथवा उस समय 'उदीरतामवर' इस मंत्र का उच्चारण करता रहे । पुनः 'आयंगार्हि' ति मंत्र द्वारा नैकृत्य वाले शृणं, 'रक्षोहणं वाजिनं' या इन्द्र सोमांत पतये इस मंत्र द्वारा असुरांतक की पूजा के उपरात 'अभित्वा शूर नो नुम' इस मंत्र द्वारा ऐशान शृण की पूजा करें । ३-७। अच्युत ! इस प्रकार चारों ओर से 'येनेवं भूतमिति' ति मंत्र द्वारा सूर्य की पूजा के अनन्तर 'नमोऽस्तु सर्वपापेभ्यः' मंत्र द्वारा व्योमपीठ की सदैव अर्चना करनी चाहिए क्योंकि इस भाँति करने वाले मनुष्यों की कामनाएँ निरन्तर सफल होती रहती हैं इसमें सर्वैः नहीं । ८-९। 'त्वमेको रुद्राणां वसूनां' इस मंत्र द्वारा पूर्वाह्नि और 'तद्विष्णोः परमं पदं हंसः शुचिष्विति' इस मंत्र द्वारा अपराह्ण में सदैव उनकी पूजा करे । १०। सदस्पते ! इस प्रकार ग्रहों के साथ सूर्य की पूजा करने वाले मनुष्यों ने

एवं भानुं ग्रहेः सार्थं पूजयन्ति तदस्तते । ते सर्वान्त्तिविधानकामान्त्रम् भूदन्ति न संशयः ॥११
विष्णुले बाससी दत्त्वा गुद्वे जपवित्रके । उपानहो तथा कृष्णं सौवर्णम् द्वयुलीयकम् ॥१२
गन्धपुष्पाणि चित्राणि भक्ष्यमोज्यान्यनेकशः । अनेन विधिना यस्तु सोपवासोर्चयेद्विम् ॥

बहुपुत्रो बहूधनः स द्वरो श्ववान्नभवेत् ॥१३

उत्तरे चापने यस्तु सोपवासोर्चयेद्विम् । सोऽभ्यमेषफलं दिन्द्याद्बहुपुत्रश्च जायते ॥१४
कृत्वोपवासं विषुवे यस्तु द्वजयते रविम् । बहुपुत्रो द्वृधनो लोतियांश्चापि जायते ॥१५
कृत्वोपवासं यहणे विद्विष्वच्छन्दसूर्यदेयोः । पूजयेद्वास्त्वरं भक्त्या द्वहूलोकं स गच्छति ॥१६
इति ते कथितो विष्णो भास्त्वरारात्मने विधिः । यं श्रुत्वा प्रख्यो भक्त्या द्वम् लोके भवीयते ॥१७
पुनरेत्य महीं कृष्णं राजा भवति भूतले । बहुपुत्रो बहूधनः सदरेष्वपराजितः ॥१८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे वर्णाणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मे भास्त्वराराधनदिधिवर्णनं

ताम् श्रवित्विद्विशततमोऽध्यायः । २०३।

अथ चन्द्रुरधिकहृशततमोऽध्यायः

व्योमार्चनविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि विधिं परमपूजितम् । रत्नव्योमप्रतिष्ठायां यथा भानुं प्रपूजयेत् ॥१

सभी कामनाएँ सफल होती हैं इसमें सदेह नहीं । ११। कृष्ण ! निर्मल एवं पवित्र दो वस्त्रों के प्रदान पूर्वक उन्हें उपानह (जूते) सुवर्ण की अंगूठी, गन्ध पुष्प एवं भौति-भौति के अनेक भक्ष्य पदार्थ प्रदान करने चाहिए । इस विधान द्वारा जो उपवास रह कर सूर्य की पूजा करता है, उसे बहुपुत्र एवं बहूधन की प्राप्ति पूर्वक सौभाग्य की प्राप्ति होती है । १२-१३। उत्तरायण सूर्य में उपवास रहकर जो इस विधान द्वारा उनकी पूजा करता है, उसे अश्वमेध के फल समेत अनके पुत्रों की प्राप्ति होती है । १४। विषुव काल में जो उपवास रह कर सूर्य की आराधना करता है, उसे बहुत पुत्र, अनके प्रकार के धन, एवं कीर्ति की प्राप्ति होती है । १५। चन्द्र-सूर्य के ग्रहण काल में उपवास रहकर भक्तिं तथा विधान पूर्वक पूजा करने वाला द्वहूलोक की प्राप्ति करता है । १६। कृष्ण ! मैंने इस प्रकार तुम्हें विष्णु के लिए बताये गये आराधना-विधान को बता दिया, जिसके भक्तिपूर्वक श्रवण करने से मनुष्य मेरे लोक की प्राप्ति करते हैं और पुनः कभी इस भूतल पर जन्म ग्रहण करने पर बहुत पुत्र, धन की प्राप्ति पूर्वक संग्राम में अजेय राजा होते हैं । १७-१८

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्पे के सौरधर्म में भास्त्वराराधन विधि वर्णन

नामक दो सौ तीन अध्याय समाप्त । २०३।

अध्याय २०४

व्योमार्चन विधि वर्णन

सुमन्तु बोले—इसके उपरांत मैं तुम्हें व्योम की प्रतिष्ठा में, जिस विधान द्वारा सूर्य की पूजा की

अर्चयित्वा तु प्रकृति गन्धपुष्पाक्षतैङ्गिभो । सहेदकेनाज्जलिना शहपुष्पाक्षतेन वा ॥२
 आवाहयेन्महादेवं खणोल्कं भास्करं विभुम् । मन्त्रेण कुरुशार्दूलं प्रत्यक्षकिरणाय वै ॥३
 ॐ खणोल्कमावाह्यामि ॐ शूर्यैः स्वरों आदित्यराघने मन्त्रः ॥४
 अभिमन्त्र्य शुभे मात्रं साविश्या च श्वचा विभो । आपो हिष्ठेति या प्रोक्ता पृथा सूर्यस्य ऋवदा ॥५
 यथान्यायं तु संक्षात्य पूरयेन्वान्यतो यथः । हिरण्यगर्भः समंवत्तेत्यनया लालयेद् बुधः ॥६
 सविता पश्चातात्सविता हृनया पूरणेद्बुधः । इन्वेवं पूरगित्वा तु वारिपुष्पाक्षतैङ्गिभः ॥७
 पात्रमोद्युम्बरं गृह्ण छत्रं सूर्यस्य दर्शयेत् । उदुत्यं जातदेवसमनया व्योम्नि निलिपेत् ॥८
 हसः शुचिवदिति पाद्यं दद्यःद्विवक्षणः । निर्दापयेच्च पयसाः खणोल्कं स्तापयेत्ततः ॥९
 अग्निस्तु सप्तमिर्बीरं कीर्तितास्ताश्च कृत्वशः । आपो हिष्ठेति च क्रमात्तिसृष्टिः कुरुनन्दनः ॥१०
 हिरण्यवर्णेति क्रमाच्चतुर्भिर्भवः नराधिष्ठ । अभिमन्त्रोदकभृगिमस्तिसृष्टिनिकिरेन्वृप ॥११
 भानोः प्रनिक्षणं कृत्वः कृष्णव्यपाज इत्यपि । इत्यमूषु वाजिनं गिरः प्रथमा परिकीर्तिता ॥१२
 पतिमिन्दस्तु शुद्धो न आगहि तृतीया परिकीर्तिता । पतिमिन्दस्तु शुद्धो न आगहि तृतीया परिकीर्तिता ॥१३
 सिद्धे वृत्राणि जिज्ञे शागर्थं र्भर्तुं प्रपूजयेत् । अस्य वामस्येत्यनया अक्षतैः पूजयेद्विम् ॥१४
 सप्त युञ्जन्ति रथमनया पूजयेद्विम् । पुर्ज्यर्भतशार्दूलं सततं तमनाशनम् ॥१५

जाती है, उस परम पूजित विधान को बता रहा हूँ । (मुनो) । १। विभो ! गंध, पुष्प और अक्षतों द्वारा प्रतिमा की पूजा करके पुष्पाक्षत समेत उदकांजलि प्रदान करें । २। कुरुशार्दूल ! पुनः उन्हें प्रत्यक्ष करने वाले के लिए मन्त्र द्वारा खणोल्क, विभु एवं महादेव भास्कर का आवाहन करें । ३। ओं खणोल्क मावाह्यामि ओं शुभ्रुः स्वरों, यही मन्त्र आदित्य की आराधना एवं आवाहन के लिए निश्चित है । ४। विभो ! सावित्री श्वचा द्वारा 'भू' तथा 'आपेहिष्ठेति' मन्त्र द्वारा सूर्य का सर्वदा आवाहन पूजन करना चाहिए । ५। यथोचित इनकी शुद्धि एवं पूर्ति करके 'हिरण्यगर्भः समर्दत्याये' इस मन्त्र द्वारा प्रक्षालन करें । ६। 'सविता पश्चातात्सविता' इस मन्त्र द्वारा पुष्प, अक्षत समेत औद्युम्बर (गूलर) के पात्र में जल रख करके सूर्य के सामने दर्शनार्थ रखें । ७। और पुनः 'उदुत्यं जात वेदसम्' इस मन्त्र द्वारा उस व्योम के ऊपर उस जल को डाल दे । 'हसः शुचिवदि' ति मन्त्र द्वारा पाद्य जल प्रदान करके पश्चात् खणोल्क को प्रथम दूध से तदनन्तर जल द्वारा स्तान कराये । ८-९। वीर ! 'अग्निस्तु सप्तभिः' तथा कुरुनन्दन ! 'आपेहिष्ठेति' ति मन्त्रों, एवं नराधिष्ठ ! 'हिरण्यवर्णेति' ति आदि चार मन्त्रों तथा तीनों श्वचाओं द्वारा उस जल को अभिमंत्रित कर पश्चात् उसे (व्योम पर) डाल देना चाहिए । १०-१। 'कृष्णव्यपाज' 'इत्यभूष वाजिनं गिरः इन मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक पहली प्रदक्षिणा 'पतिमिन्दस्तवाचाम, से हूसरी, 'प्रतिमिन्दस्तु शुद्धो न आगहि' से तीसरी प्रदक्षिणा संपन्न करे । १२-१३। 'सिद्धे वृत्राणि जिज्ञहने' इस से गंध, 'अस्यवामस्ये' ति मन्त्र द्वारा अक्षत सूर्य के लिए प्रदान करे । 'सप्त युञ्जन्ति रथम्' इससे उनका पूजन करना बताया गया है । भरतशार्दूल ! तमनाशक सूर्य की आराधना पुष्पों द्वारा करनी चाहिए

को बदरी प्रथमनवया धूपमादिरेत् । पाकः पृच्छाम्यनयः दन्वनं प्रतिपादयेत् ॥१६
 उद्दीप्यस्येत्यनया दीपं दद्याद्विभावसोः । अर्चित्वा कुशकुदं चैव शीर्षं क्षीरं तु मण्डलम् ॥१७
 दुक्ता मातासीत्यनया नैवेद्यं प्रतिपादयेत् । गौरीमिमायेति दद्यात्तया शुक्ले च वाससी ॥१८
 तस्याः समुद्रेत्यनया उपवीतं न्निवेदयेत् । इति सम्पूज्य देवेण ततः कुर्यात्तरां स्तुतिम् ॥१९
 ऋग्मिर्ण पञ्चमिस्तात् शृणु चैकमन्नदृतः । उक्षाणं पृश्निरिति च प्रथमा परिकीर्तिता ॥२०
 अत्यादि वाऽप्तिं भवेत्त्रितीया पारकीर्तिता । इन्द्रं नित्रं तृतीया तु वराधिक्ये प्रकोर्तिता ॥२१
 कृष्णं नियानं हि तथा चतुर्थीं परिकीर्तिता । यो रत्नवाहीत्यनया किरीटं योजयेद्वाचो ॥२२
 गतेहनामित्यनया अव्यर्थं भास्करं न्दसेत् । इयमददाङ्गं प्रसमृणच्युतमिति श्वगादितः ॥२३
 कृत्वा पूजा ततश्चाग्निरमरव्याभिरिति चाच्युत । देवस्य शक्त्योऽष्टौ च पूजयेद्विधिवत्कमात् ॥२४
 इत्येष ते स्यात्यातः प्रतिनाप्नुजने विधिः । युरोक्तो महाबाहो ब्रह्मणा विष्णवे तथा ॥२५
 अनेन विधित्वा यस्तु सततं पूजयेद्विष्म् । स प्राप्नोत्यखिलान्कामानिह सोके परत्र च ॥२६
 पुश्टर्थीं समर्पते पुत्रान्धनार्थीं समर्पते धनम् । कन्यार्थीं समर्पते कन्यां वेदार्थीं वेदविद्वत्तेत् ॥२७
 निष्कामः पूजयेदस्तु स स्नेहं प्राप्नुयाश्वरः । अनेन विधिनापूज्य गतः सिद्धिं स वैष्णवः ॥२८
 चत्वार्यात्तथा देवं पूजयित्वा विभावसुम् । अनेन विधिना पूज्य सन्तः सिद्धिं परां गताः ॥२९

इति श्रीभविष्ण्वे महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे व्योमार्चनविधिवर्णनं
 नाम स चतुरधिकद्विशतमोऽप्यत्यःः । २०४।

।१४-१५। 'को ददर्श प्रथमं इससे धूप, 'पाकः पृच्छामि' से चंदन, 'उद्दीप्यस्य, से दीप, सूर्य को प्रदान कर कुंकुम से उनके शिर को भूषित करके क्षीर का मण्डल करे । पुनः 'युक्ता मातासी' ति मंत्र द्वारा नैवेद्य, गौरी मि 'माये' ति मंत्र द्वारा दो शुञ्च वस्त्र 'तस्याः समुद्र' से यजोपवीत अधितकर उनकी उत्तम स्तुति करें । तात ! वह स्तुति पांच ऋचाओं द्वारा की जाती है—उक्षाणं पृश्निः' पहली, 'चत्वारिंशतिं, द्वूसरी, 'इदं मित्रं तीवरी, 'कृष्णनियां', चौथी, 'यो रत्न वाही' ति पांचवीं ऋचा के उच्चारण पूर्वक उन्हें किरीट से भूषित करे । १६-२१। 'गते हनामि इति मंत्र द्वारा उन्हें अव्यंग प्रदान करें । 'इयमददा द्वभसृणच्युतमि, ति आदि आठ ऋचाओं द्वारा सूर्य की आठों शक्तियों का क्रमशः विधान पूर्वक पूजन करना चाहिए । महाबाहो ! प्रतिमापूजन के विधान, जिसे ब्रह्मा ने विष्णु के लिए कहा था, तुम्हें बता दिया गया । इस विधान द्वारा जो निरंतर सूर्य की पूजा करता है, उसकी लोक-परलोक संबंधी सभी कामनाएँ सफल होती रहती हैं और पुत्रार्थी 'पुत्र, धनार्थी धन, कन्यार्थी कन्या, एवं ज्ञानार्थी, वेदज्ञान की प्राप्ति करते हैं । निष्काम पूजन करने वाले मनुष्य मोक्ष प्राप्ति करते हैं । इसी विधान द्वारा पूजन कर वैष्णव ने सिद्धि प्राप्त किया है तथा इसी विधान द्वारा ब्रह्मादि देवों ने भी सूर्य की पूजा कर उत्तम सिद्धि की प्राप्ति की है । २३-२९

श्रीभविष्ण्वपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में व्योमार्चन विधिवर्णन
 नामक दो सौ चौथा अध्याय समाप्त । २०४।

अथ पञ्चाधिकद्विशततनोऽध्यायः

महादेवार्चनविधिवर्णनम्

व्यास उवाच

पुनर्निर्बोद्धे भीष्म गदतः परमं विधिं । येन पूजयने नित्यं महानेवं दिवाकरम् ॥१
 प्रभूं निर्म तेज आराध्य उरमं सुलक्ष्म । पूर्णप्रस्त्रत्तथाप्रेयां देश्वत्यां पवनालये ॥२
 क्रमेण यादवीशानं हृषि बीजं च दिन्यसेत् । भास्करारासनमेतत्त च्यत्तव्यं तत्त्वदर्शिभिः ॥३
 उपरिष्टात्तत्तस्य हृष्येन तु पंकजम् । अष्टमं त्रयं केशारातं पंचवर्णं सकेशरम् ॥४
 दीप्तादिपूर्वमारम्भ आमहादेवगोचरम् । शक्त्यष्टकं च्यत्तेन्मन्त्रेरादितः सर्वतोमुखीम् ॥५
 अबीजे: देसराप्रेषु क्रमेणव च पूजयेत् । ततस्त्वाच्याहयेद्वानुं स्थापयेत्कर्णिकोन्दरि ॥६
 तस्योपहृत्यं तं चान्यं वेदितव्यं खपुत्तकरम् । तेनैवावाहनं चार्च्यं स्थापतं चार्धमेव च ॥७
 पाद्यमाचमनं स्थानं वस्त्रगन्धादिमूषणम् : विधिना वीरपृष्ठाणि नैवेद्यं धूपमेव च ॥८
 कर्तव्यं श्रद्धद्य भक्त्या एवं तुष्यति भास्करः । महापातकिनोऽप्यागु सभन्ते चिन्तितं फलम् ॥९
 आदित्यं पूजयित्वा तु पश्चादिंगानि पूजयेत् । हीनायां हृदयं न्यस्य भवान्यां शिरसो न्यसेत् ॥१०

अध्याय २०५

महादेव की पूजा विधि

व्यास बोले—भीष्म ! उस परनोत्तम विधान को जिसके द्वारा देवश्रेष्ठ भास्कर देव की पूजा होती है, मैं कह रहा हूँ, सुनो ! ॥१। उस प्रचण्ड एवं निर्मल तेजपुञ्ज की आराधना करने से अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है । पूर्व, आगेय, नैऋत्य और वायव्य इस भाँति क्रमशः इशान पर्यंत बीज मंत्र द्वारा हृदयन्यास करे । क्योंकि तत्त्वदर्शियों ने इसी न्यास को भास्कर का आसन बताया है ॥२-३। उसके ऊपर अष्टदल वाला कमल केशर समेत पाँच रंग की रेखाओं से सुशोभित भूमि प्रर स्थापित करके उसमें पूर्व की ओर से दीप्त आदि से आरम्भ कर सूर्य तक की सभी देव शक्तियों के आवाहन और पूजन करे । उसमें सर्वतोमुखी नामक देवी मध्य में प्रवाहित होती है । बीज मंत्र से पृथक् मंत्र द्वारा केशर कणिकाओं में क्रमशः इनके आवाहन पूजन के अनन्तर उसी कणिका के ऊपर सूर्य को स्थापित करे ॥४-६। उनके आवाहन, पूजन, एवं अर्घ्य प्रदान खण्डोलक मंत्र द्वारा करना बताया गया है । उसी प्रकार भक्तिपूर्वक पाद्य (पैर शुद्धि के जल), आदमन, स्नान, वस्त्र, गंध, भ्रूषण, पुष्प, नैवेद्य, धूप इहें विधान द्वारा श्रद्धालु होकर प्रदान करने से भास्कर प्रसन्न होते हैं, और इसके पूजन द्वारा महापातक करने वाले की भी सभी कामनाएँ शीघ्र सफल होती है ॥७-९। पहले सूर्य की पूजा करके पश्चात् उनके अगों की पूजा करे जिसमें दीप्ता आदि के लिए हृदयन्यास और भवानी के लिए शिरोन्यास करना चाहिए ॥१०। दिशाओं में अस्त्र

दिग्बिदिक्षु न्यसेदस्त्रमिन्द्रादि दिशोत्तरांतिकम् । कर्णिकायां न्यसेन्नेत्रं स्वबीजेन तु वार्चयेत् ॥११
 पुष्ट्यर्गन्धैश्च धूपैश्च हृदयानि क्रमेण तु । पूजयित्वा तु विधिवद्गर्भं पश्चात् मन्त्रवित् ॥१२
 बाह्यतः पूर्वतो मन्त्रं दक्षिणं बुधं तथा । विषाणां पश्चिमे पूज्य उत्तरेण तु भारगवम् ॥१३
 अप्सेष्यां च कुंजं पूज्य नैश्चत्यां भानुदेहजम् । वायव्यां पूजयेत्कृष्णमैशान्यां विकवं नृप ॥१४
 इन्द्रादिलोकपालांश्च ततोऽष्टौ पूजयेद्द्वृष्टः । सुगन्धैविविधैः पुष्ट्यधूपैश्चैव भनोरमैः ॥१५
 क्रमेण पूजयेद्द्वानुं लोकपालैर्गृहैः सह । मन्त्रैः कुरुकुलश्रेष्ठ ए इच्छेच्छेय आत्मनः ॥१६
 अनेन विधिना शत्रु देवः सम्पूज्यते रविः । न चौराप्तिभ्यं तत्र न चापि नरकाद्यम् ॥१७
 वर्षोपज्ञविषादिम्यो भयं तत्र न विद्यते । सुखमारोग्यमानन्दं सुभिक्षमचलां श्रियम् ॥१८
 तेजोबिम्बांतप्रधर्ष्य आवित्यः परमार्थतः । यष्टव्यः साधकैर्नित्यं न रथो न च वाजिनः ॥१९
 इत्येष विधिरात्मातो भयां भीष्मं तवालिलः । येन पूजयते नित्यं महादेवो दिवाकरम् ॥२०
 इत्यं पूज्य विवस्वन्तं हृदीजेन विसर्जयेत् । य एवं पूजयेद्द्वानुं स याति परमां गतिम् ॥२१

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे तौरथ्में भीष्मव्याससंवादे
 महादेवार्चनविधिवर्णनं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः । २०५।

एवं विदिशाओं में इन्द्रादि की स्थापना करके कर्णिका में बीजमंत्र द्वारा नेत्र की पूजा करे । ११। पश्चात्
 क्रमशः पुष्ट, गंध, एवं पुष्टों द्वारा हृदय की पूजा करे इस प्रकार मंत्रवेत्ता विधान पूर्वक गर्भस्त्यत देवों
 कीपूजा करते के उपरात बाहु भ्रोगों में स्थित देवों की पूजा करें—नृप ! धूरब की ओर शनि, दक्षिण की
 ओर बुध, पश्चिम में विषाण (गणेश), उत्तर में शुक्र, आग्नेय में आठों इन्द्रादि लोकपाल की पूजा
 विद्वानों को करनी चाहिए। कुरुकुलश्रेष्ठ ! अनेक प्रकार के सुगन्धित पुष्टों, एवं मनोरम धूपों द्वारा
 लोकपाल, एवं धूमों समेत सूर्य की पूजा अपने कल्याणार्थ अवश्य करनी चाहिए । १२-१६। जिस प्रदेश में
 इस विधान द्वारा सूर्य की पूजा होती है, वहाँ चोरी, अग्नि एवं नरक का भय नहीं रहता है, तथा उसी
 भाँति वर्षा, बर्फ, (पत्तर) और विष आदि के भय भी नहीं होते हैं । प्रत्युत सुख, आरोग्य, आनन्द,
 सुभिक्ष, एवं अचल श्री (लक्ष्मी) प्राप्त होती है । १७-१८। साधक को सदैव तेजबिम्ब के मध्य में आदित्य
 की ही परमार्थ के लिए नित्य पूजा करनी चाहिए, न रथ की ओर न धोड़े की । १९। भीष्म ! मैंने तुम्हें
 वह समस्त विधान, जिसके द्वारा महादेव दिवाकर की नित्य पूजा होती है, बता दिया । इस प्रकार
 विवस्वान् (भानु) की पूजा के उपरांत हृदीज द्वारा विसर्जन करे । इस भाँति भानु की आराधना करने
 वाले उत्तम गति प्राप्त करें । २०-२१

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौरथर्म में भीष्म व्यास संवाद में
 महादेवार्चनविधि वर्णन नामक दो सी पाँचवा अध्याय समाप्त । २०५।

अथ षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजामाहात्म्यवर्णनम्

भीष्म उवाच

मन्त्रोदारं परं ब्रूहि मुष्टाशक्तिसमन्वितम् । रूपवर्णसमं देवं पौराणिकमनुत्तमम् ॥१

व्यास उवाच

भगु भीष्म महाबाहो यथा वक्ष्यामि तेजन्थ । पौराणिकानां मन्त्राणामुदारं वैदिकादृते ॥२
 वर्णरेफसमायुक्तं विदु मेनैव सूषितम् । अन्तस्थानां हि अन्यं वै ब्रह्मदेवत्यमूच्यते ॥३
 बिन्दुरेफसमायुक्तं दीर्घया मात्रया तथा । दीक्षादरं समुद्दिष्टं द्वितीयं विष्णुदेवतम् ॥४
 तृतीयं तु तथा प्रोक्तं सुविसर्गं जनाधिप । स तृतीयो ब्रूधः प्रोक्तो रुद्रदेवत एव हि ॥५
 भास्त्वरोऽयं महान्साक्षान्मन्त्रमूर्तिस्त्रिरक्षरः । दुर्लभः परमो गुह्यस्त्रिदेवो देवपूजितः ॥६
 यस्त्विवं जपते भक्त्या स याति परमां जप्तिम् । ततश्च युद्धां वक्ष्यामि साम्राज्यकारणं परम् ॥७
 पशाकारौ करी कृत्वा मष्ये लिङ्गे तु मष्यमे । अइगुलिं शाररयेत्सम्मन्वयुद्वेति च सोच्यते ॥८
 अनया बद्या राजन्भास्त्वरस्य प्रियो भवेत् । महाभयेषु सर्देषु मातृवत्परिरक्षति ॥९
 हृदयं तस्य विज्ञेयं यदक्षरवरं स्मृतम् । विदुमोपरि सञ्चलनं हृदगतं तद्गतं सदा ॥१०

अध्याय २०६

सूर्यपूजामाहात्म्यवर्णन

भीष्म ने कहा—मुद्रा शक्ति समेत उत्तम पौराणिक मन्त्रों के उद्धार जो उनके रूप वर्ण के अनुसार बताया गया है, मुझे बताने की कृपा करें । १

व्यास बोले—महाबाहो, भीष्म ! मैं तुम्हें पौराणिक मन्त्रों के उद्धार उचित ढंग से बता रहा हूँ उसमें वैदिक का कोई सम्बन्ध नहीं है, सुनो ! ॥२॥ विदुम से विभूषित रेफ (र) वर्ण, अन्तस्थ (वर्णों) के सम्लिंकट रहने वाला ब्रह्म देव है, ऐसा बताया गया है ॥३॥ बिन्दु तथा दीर्घमात्रा के समेत (रां) वर्ण, यह दूसरा, विष्णु देव प्रधान दीक्षा का अक्षर कहा गया है । जनाधिप ! विसर्ग समेत (रः) तीसरा, जो रुद्रदेव प्रधान है विद्रानों द्वारा बताया गया है ॥४-५॥ इसी तीनि (र रां रः) अक्षर रूपी शरीर वाले महात्मा भास्त्वर, जो दुर्लभ, परम गुह्य, निदेव मय, एवं देवपूजित हैं, साक्षात् मंत्र मूर्ति है ॥६॥ जो भक्ति पूर्वक इस का जप करता है, उसे उत्तम गति की प्राप्ति होती है । अब तुम्हें सूर्य का साम्राज्य प्राप्त कराने वाली उत्तम मुद्राएँ बता रहा हूँ ॥७॥ कमल की भाँति दोनों हाँथ की अंगुलियों को एकत्र कर मष्य भाग में दोनों मष्यमा अंगुली को संयुक्त करने और अंगुलियों को उसमें पृथक्-पृथक् कर स्थित रखने, को विशिष्ट मुद्रा बताया गया है ॥८॥ राजन् ! इस मुद्रा से आबद्ध होने पर वह, सूर्य प्रिय हो जाता है, समस्त महाभय के उपस्थित होने पर वे माता की भाँति उसकी रक्षा करते हैं ॥९॥ उस श्रेष्ठ अक्षर को उनका हृदय जानना चाहिए । भारत ! विदुम के ऊपर सञ्चलन एवं उनके हृदयस्थल में स्थित उसे देवाधिदेव

शिरस्यकमिति प्रोत्सं देवदेवस्य भारत । महाब्याहृत्यस्तिद्वत्तचारज्यालिनी शिखा ॥१३
 अष्टादशरा तु विद्येयमादिश्यस्य महास्पनः । यः स्मरेत्ताधकस्त्वयेन नासी केनापि बाध्यते ॥१२
 अकारेण समायुक्तं बिन्दुरेफसमन्वितम् । हकारःप्रिदैवत्वं छड्चं भास्करप्रिवम् ॥१३
 एकाक्षरमिति ग्रोक्तमसेव्यं यः स्त्ररेविदम् । दुर्जनानां देवं विघ्नानां नाशनं नात्र संशयः ॥१४
 सविसर्गो रेक इति अलमेकाक्षरं स्मृतम् । नाशयेद्वृक्षकर्मणि साधकस्य न तंशदः ॥१५
 सम्नुसौ तों करो हृत्वा न्निष्ठौ तु प्रथिताइगुलौ । कनिष्ठानामिके योज्ये तर्जन्यौ मध्यमे तच्च ॥१६
 हृच्छिरः शिखा चर्द्दी सुर्यो योगमसंग्रिता । शुष्टिवक्षत्रच्छ्रुतं कुर्यात्स्वयहृत्यस्य तर्जनीप् ॥१७
 भूतशब्दहृतादिस्तु मुद्रा हृस्त्रस्य कीर्तिः । श्रासनी नम्न विस्थाता सर्वविश्वस्यहृकरी ॥१८
 कर्णविन्दुसमायुक्तं यं चतुर्थं महामते । भास्करस्य त्विदं नेत्रमप्रिदैवतमुच्यते ॥१९
 स्मरः स्यात्ताथकेनाणां दुर्न्तो नाशने ध्रुवस्त् । मध्यमा तर्जनी चैव सञ्चहृत्यस्य चोच्छ्रुतम् ॥२०
 कनिष्ठानामिके कुञ्ज्य अङ्गुलेन ततः रूपेत् । नेत्राभ्यां स्पर्शयेदेनां नेत्रमुद्रा प्रकीर्तिः ॥२१
 गोवृषा नाम विस्थाता दर्शयेद्विष्योचरम् । यां दीप्तिर्गृह्यतः सूक्ष्मार्तीं जया भीष्म उच्यते ॥२२
 उभाद्वाहं विसूतिश्च विमला रै प्रकीर्तिता । अघहा च महाबाहो विद्युता रौं प्रकीर्तिता ॥२३
 गोवृषा नाम रं सर्वदीरभद्रकरी तथा । इत्येता दीजरूपास्तु कथिताश्रेव शक्तयः ॥२४
 उत्तानौ तु करो हृत्वा सव्याकुञ्ज्य ततोऽगुलौः । कुर्यादुपरि चांगुष्ठौ चालयेत पुनः पुनः ॥२५

(सूर्य) का 'शिरस्य' बताया गया है उनकी ज्वालिनी शिखारूप 'र' आदि तीन महाब्याहृतियाँ एवं उन महात्मा आदित्य की 'अष्टाक्षरा' विद्या बतायी गयी है, जिसके स्मरण मात्र से साधक को किसी भाँति के कष्ट का अनुभव नहीं करना पड़ता है । १०-१२। अकार, बिंदु-युक्त रेफ समेत हकार के प्रधान देव अग्नि हैं, यही (हं) सूर्य के प्रिय कवच के नाम से स्थान है । १३। यह एकाक्षर सूर्य का अभेद्य कवच है, इसके स्मरण से दुष्टों एवं विद्वानों के नाश होते हैं, इसमें संदेह नहीं । १४। विसर्ग समेत रेफ (रः) यही एकाक्षर अस्त्र के नाम से बताया गया है, यह साधक के दुष्टकर्मों का नाश करता है, इसमें संदेह नहीं । १५। दोनों हाथों को अपने सम्मुख एक में संयुक्त कर उनकी अंगुलियों को जिसमें कनिष्ठा के साथ दोनों अनामिका, तर्जनी, मध्यमा मिली हों, आबद्ध करे, इस प्रकार शिरहीन, तथा शिखा समेत इस मुद्रा की व्योम संज्ञा प्रदान की गयी है । टेढ़ी मुट्ठी धूंधकर उसमें दाहिने हाथ की तर्जनी को उन्नत रखने से अस्त्र की मालमुद्रा बतायी गयी है और समंतं विद्वानों के नाश करने के कारण इसे श्रासनी भी कहते हैं । १६-१८। महामते ! कर्ण बिन्दु समेत वह सूर्य का चौथा नेत्र कहा गया है, उसके अग्नि प्रधान देव हैं । १९। जिस मुद्रा में यह दाहिने हाथ की तर्जनी एवं मध्यमा अंगुलियाँ उन्नत रहती हैं, उसे भी मुद्रा कहते हैं, जो साधकों के अरिष्ट नाश के लिए दुरोपगम है । जिसमें कनिष्ठा, अनामिका को आकुंचित कर केवल अंगुष्ठ मात्र से दोनों नेत्रों के स्पर्श किये जाते हैं, उसे 'नेत्र मुद्रा' बताया गया है । २०-२१। रं का नाम गोवृषा है, उसके द्वारा देव दर्शन प्राप्त होते हैं । भीष्म ! रां दीक्षा, रं सूक्ष्मा, री जया, रुं विभूति, रै विमला, तथा महाबाहो ! रौं अमोदा एवं विद्युता के रूप हैं । २२-२३। इस प्रकार इन दीजरूप शक्तियों को बता दिया गया । २४। दोनों हाथों को उत्तान कर दाहिने हाथ की अंगुलियों को आकुंचित कर पुनः ऊपर से दोनों अंगुष्ठों का

सर्वासां चैव शक्तीनानेता शुद्धाः प्रदर्शयेत् । नामा च विद्युता चैह नदनी सर्वतोमुखी ॥२६
 नामान्देतानि शक्तीनां समाप्तात्कथितानि तु । शक्तीजानि नहावाहो मया स्नेहेन भारत ॥२७
 प्रहणां शृणु बीजानि रूपं च गदतो मम । सर्वत्र भं तथा चं च कञ्जकूतहसोद्रुह ॥२८
 अङ्कारा दीपिताः सर्वे नमस्कारात्तयोजिताः । पूजाकाले प्रयोक्तव्या जपकाले तदैव च ॥२९
 होमकले तु स्वाहान्तं मन्त्रं षट्कारसंयुतम् । सर्वे बिन्दुव्युता भीष्म शिखा बिन्दुविमूषिताः ॥३०
 सोमाद्याः केनुपर्यन्ता ग्रहा द्वयं प्रकीर्तिताः । एता मुद्रा प्रबक्ष्याभि सर्वसिद्धिप्रदायिदः ॥३१
 मुमुखो तु करो कूटव्या शिष्टो चैव प्रसारितौ । इयं मुद्रा नमस्कारे ग्रहसाम्भिर्ध्यकरिका ॥३२
 सन्त्रोढ़रस्तदत्यातो रहस्यो द्वृष्टिभो नृप । शृणुष्व रूपं देवानां व्यानकाले ह्यपरिथते ॥३३
 जयावर्णं महातेजं श्वेतपश्चोपरिस्थितम् । सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वभरणमूषितम् ॥३४
 तथैकवक्त्रं द्विषुजं सोमपृष्ठकज्ञवरम् । मण्डलेन च रूपं तु मध्यस्थं रक्तदासम् ॥३५
 मार्तण्डस्य इवं रूपं शुचिः स्नातो जितेन्द्रियः । त्रिकालं यः स्मरेद्ग्रीष्म एकचित्तो व्यवस्थितः ॥३६
 सोऽचिरःद्वृष्टते लोके वित्तेन धनदोषपम । मुच्यते सर्वभोगीस्तु तेजस्वी बलवानभवेत् ॥३७
 हृदयं चोत्तमाङ्गं च शिखा दै वक्षमेव च । रक्तवर्णा इसे श्यामाः सर्वभरणमूषिताः ॥३८
 वरदामयहस्ताश्र व्यातव्याः साधकेन तु । तडित्युञ्जनिभं शस्त्रं रौद्रं चन्द्रकरालिनम् ॥३९

बार-बार संचालन करे यही मुद्रा समस्त शक्तियों के लिए प्रदर्शित करना चाहिए । भारत ! महाबाहो !
 इस प्रकार मैंने समस्त शक्तियों को, जिनके दीप्ता आदि नाम पहले कहे गये हैं बीजों समेत स्नेह पूर्वक
 तुम्हें बता दिया । २५-२७। अब ग्रहों के बीजों बता रहा हूँ सुनो ! ब्रह्मकूतहसोद्रुह ! ग्रहों के बीज में
 सर्वत्र भं, और चं को ओंकार पूर्वक उच्चारण कर अन्त में नमः शब्द का प्रयोग करता रहे, ताहे वह पूजा
 समय हो या जपकाल । हवन के समय में अंत में स्वाहा शब्द समेत मंत्रोच्चारण करे । भीष्म ! इस
 प्रकार चन्द्र आदि केनु पर्यंत रभी ग्रह, बिन्दु विभूषित शिखा वाले एवं बिन्दुयुक्त हैं । २८-३०। इनके
 वर्णन के उपरांत समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाली इनकी समस्त मुद्राओं को बता रहा हूँ । प्रथम
 दोनों हाथों की अंगुलियों द्वारा सुमुख मुद्रा बना कर पश्चात् वैसी मिली हुई अंगुलियों को विस्तृत करे, इस
 मुद्रा द्वारा ग्रहों का सान्निध्य प्राप्त होता है, तथा नमस्कार में भी इनका प्रयोग किया जाता
 है । ३१-३२। नृप ! इस प्रकार इस दुर्लभ मंत्रोदार को रहस्य समेत तुम्हें बता दिया, अब व्यान के समय
 उपस्थित देवताओं के रूपों को सुनो ! जपा पूष्य के समान वर्ण, महातेजस्वी, श्वेत कमल पर स्थित,
 समस्त लक्षणों समेत, सभी अलंकारों से अलंकृत, एक मुख, दो भुजाएँ, चन्द्र कमल की भाँति शीशा, मण्डल
 के मध्य में स्थित एवं रक्त वर्ण के वस्त्रों से सुसज्जित, ऐसा ही मार्तण्ड का शोभनरूप व्यान के समय देखना
 चाहिए । भीम ! संयम पूर्वक स्नान कर पवित्रता पूर्ण व्यवस्थित होकर तन्मयता से जो उनके इस रूप
 का व्यान करता है, वह शीघ्र इस लोक में कुबेर की भाँति धनवान् होकर समस्त कष्टों से मुक्त, तेजस्वी,
 एवं बलशाली होता है । ३३-३७। साधक को उनके हृदय, उत्तमांग (शिर), शिखा, मुख, रक्तवर्ण तथा
 समस्त आश्रूणों से विभूषित श्यामल वरद एवं अभय प्रदायक हाथों का व्यान करना चाहिए । उसी
 भाँति विद्युत-पूँज की भाँति रीढ़, तलवार आदि शस्त्र का भी । ३८-३९। इस स्वाभाविक तथा अपने

विदेषः कथितो हैद कामरूपः स्वभावतः । दीन्ता दीनशिलाकारा ध्यातव्या सम शक्तयः ॥४०
 शेतवर्णं स्वरेत्सेमं रक्तवर्णं कुञ्जं स्मरेत् । सौम्यमष्टापदान्तं च गुरुं च पीतिवर्णकम् ॥४१
 गण्डलक्षीरनिनं इवेतं काणं याऽजनसन्निभम् । रजावर्तनिमं राहुं धूम्रं च विकचं स्मरेत् ॥४२
 वामप्रहस्तो फटिन्यस्तो दक्षिणौ चामयप्रदैः । रक्तप्रेररक्तलेत्रास्य अर्धकायकृताङ्गालिः ॥४३
 इति भानुं ग्रहैः सार्थै ये व्यायन्ति नृपोत्तमः । स्मरन्ते ते महासिद्धिमचिराश्रात्रं संशयः ॥४४
 तवास्यातशिवं घकं घटाणां भीष्मं कृत्स्नशः । यच्छुद्वा सर्वपापेष्टो सुच्यन्ते भुवि मानवाः ॥४५
 अनेन विदिना भीष्मं सदा देवं दिवाकरम् । श्रिकालं पूजयेद्दूस्या दीर अद्वात्मन्वितः ॥४६
 इतरं पूजयमानस्तु सर्वदेवं दिवाकरम् । ब्रह्महत्पादिनिर्मुक्तो भ्रह्मदेवत्वस्यामुयात् ॥४७
 इति श्रीभविष्ये नहापुराणे द्वाहे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेषु शूर्यपूजामाहात्म्यवर्णनं
 नाम षडधिकद्विशत्तमोऽध्यायः । २०६।

अथ सप्ताधिकद्विशत्तमोऽध्यायः

आदित्यपूजादिधिवर्णनम्

भीष्म उवाच

अहो देवस्य माहात्म्यं भास्करस्य त्वयोदितम् : पूजयन्ति सदा होनं ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥१

काम रूप (इच्छारूप) का भी विशेषतया वर्णन कर दिया । प्रदीप्त शिक्षा के समान आकार वाली दीप्ता आदि भेरी शर्कियों का ध्यान सदैव करना चाहिए । ४०। इवेत वर्ण के चन्द्रमा, रक्तवर्ण के भयल, हरिदर्ण के बुध, पीले वर्ण के बृहस्पति, शंख एवं क्षीर की भाँति इवेत वर्ण के शुक्र, अंजन की भाँति काले वर्ण के शनि, रज की भाँति धूमिल वर्ण के राहु और धूरैं के समान केतु का रूप बताया गया है । नृपोत्तम ! इस प्रकार जो ग्रहों समेत सूर्य का ध्यान-पूजन करता है, जिसके बाये दोनों हाथ कटि में हो दाहिने दोनों हाथ अभय प्रदान करते हों, तथा रक्त नेत्र, रक्त भौंहें, मुल, एवं अंजली की भाँति अर्ध शरीर स्थित हो, उसे सीधे महासिद्धि की प्राप्ति होती है, इसमें संदेह नहीं । भीष्म ! मैंने तुहें समस्त ग्रहों के मुख का विस्तृत वर्णन बता दिया, जिसके सुनने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं । भीष्म ! इस प्रकार इस विधान द्वारा भास्कर देव की तीनों काल में भक्ति पूर्वक आराधना करनी चाहिए । इस भाँति समस्त देवमय सूर्य की आराधना करने वाले मनुष्य ब्रह्म हत्या से मुक्त होकर महादेवत्व की प्राप्ति करते हैं । ४१-४७
 श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के सौरधर्म में सूर्यपूजा-माहात्म्य वर्णन
 नामक दो सौ छठवाँ अध्याय समाप्त । २०६।

अध्याय २०७

आदित्यपूजा की विधि का वर्णन

भीष्म ने कहा—भास्कर देव का माहात्म्य, जिसे आप ने सविधि बता दिया है, कितना आश्चर्य-जनक है कि ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवादि देव उन्हीं की पूजा करते हैं । १

व्यास उवाच

एवसेतम् संदेहे यथा देवसि भारत । नास्ति सूर्यसमो देवो नास्ति सूर्यसमा गतिः ॥२
 नास्ति सूर्यसमं ब्रह्म नास्ति सूर्यसमं द्वितम् । नास्ति सूर्यसमो धर्मो नास्ति सूर्यसमं धनम् ॥३
 नास्ति सूर्यादृते कामो नास्ति सूर्यादृते पदम् । नास्ति सूर्यसमो बन्धुर्नास्ति सूर्यसमः मुहूर् ॥४
 नास्ति सूर्यसमा माता नास्ति सूर्यसमो गुरुः । नास्ति सूर्यसमं तीर्थं न यवित्रे ततः परम् ॥५
 तमेकं दैवतं विद्यालैवाप्यर्कपरायणम् । सोकानां देवतानां च पितृणां चाणि भारत ॥६
 तमर्चन्तः स्तुवन्तश्च प्रापुवन्ति परां गतिम् । ते प्रपश्नान्तु ये भक्त्या मुक्तास्ते श्वसाग्नरात् ॥७
 राजः चोरा च्छः सर्वा दारिद्र्य दुःखसम्पदः । नैते पीडितुं शक्ताः प्रसन्ने भास्करे सति ॥८

व्यास उवाच

एवं तात महाबाहो देवो भास्करतत्परः । स पूज्यः स नमस्कारः स हि ध्यातव्य एव च ॥९
 प्रत्यक्षदेवता होषा देदेवोऽयसादारात् । अथ किं बहुनोक्तेन यदृश्यामि निबोध मे ॥१०
 पूजयेत्तनयः पापी तथादित्यदिनैरपि । पूजयन्ति नरा ये वै ते यान्ति परमां गतिम् ॥११
 प्राप्ते सूर्यादिने भक्त्या भानुं सम्पूज्य श्रद्धया । नक्तं हरोति पुरुषः स यात्यमरलोकताम् ॥१२
 यस्तु पूर्वं रवेभक्त्या पञ्चरत्नसमन्वितम् । निवेदयति मन्त्रेण स यात्यमरलोकताम् ॥१३
 मार्तण्डप्रीतये यस्तु कुर्याच्छादं विधानतः । संक्रान्तावयने वीरं सूर्यलोकं स गच्छति ॥१४

व्यास बोले—भारत ! जैसा तुम कह रहे हो, वह वैसा ही है, इसमें संदेह नहीं । सूर्य के समान देव और सूर्य के समान कोई गति (प्राप्य) नहीं है । २। सूर्य के समान ब्रह्म, अग्नि, धर्म, एवं धन आदि कुछ भी नहीं है । ३। जिना सूर्य के कोई कामना या कोई पद है ही नहीं । सूर्य के समान कोई बन्धु तथा कोई मित्र नहीं है । ४। सूर्य के समान माता, गुरु, एवं यवित्रि तीर्थ कोई नहीं है । ५। भारत ! लोक, देवता तथा पितरों के प्रधान देव एकमात्र वहीं हैं तथा सूर्य-पारायण के समान किसी का पारायण नहीं है । ६। उनकी पूजा एवं स्तुति करने वाले उत्तम गति प्राप्त करते हैं, भक्ति पूर्वक उनकी शरण प्राप्त मनुष्य संसार सागर (जन्म मरण बन्धन) से मुक्त होते हैं । ७। सूर्य के प्रसन्न होने पर राजा, चोर, ग्रह, सर्प, दारिद्र्य, दुख के साधन ये कभी पीड़ित नहीं करते । ८

व्यास बोले—तात, महाबाहो ! भास्कर देव की आराधना में कटिबद्ध पुरुष देव, पूजन, नमस्कार, एवं ध्यान करने के योग्य होता है । ९। यही प्रत्यक्ष देवता, तथा आदरणीय देवाधिदेव हैं, और अधिक क्या कहूँ, बस, जो कुछ कह रहा हूँ, उसे सुनो । १०। रविवार के दिनों में सूर्य पूजन सभी के लिए परमावश्यक है, चाहे (पूजक) महान् पापी ही क्यों न हो, क्योंकि जो उनकी पूजा करता है, उन्हें परम गति प्राप्त होती है । ११। रविवार के दिन आने पर भक्ति एवं श्रद्धा समेत सूर्य की पूजा के उपरांत जो पुरुष नक्त व्रत करता है, उसे अमरलोक (स्पर्शी) की प्राप्ति होती है । १२। भक्तिपूर्वक जो सर्वप्रथम पञ्चरत्न (उपहार) मंत्र द्वारा उन्हें प्रदान करता है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है । १३। वीर ! संक्रान्ति अथवा अयन के दिन उनके प्रसन्नार्थ जो विधान पूर्वक श्राद्ध कर्म सुसम्पन्न करता है, उसे सूर्य लोक की प्राप्ति

कृत्वोपवासं दष्टचार्णा तु सप्तस्यां यत्तु मानदः । करोति विधिवच्छादुं भास्करः प्रीयतास्ति ॥१५
 सर्वोषदिनिर्मुक्तः सूर्यलोके भीष्यते । मानवो यस्तु सप्तस्यां योषिद्वापि दिवाकरम् ॥१६
 प्रपूज्य विधिवद्वानुं सर्वान्कामानवाप्रभुयात् । विशेषतस्तस्य दिवे प्रहणे च नराधिप ॥१७
 इति भीष्म विजानीहि न देवो भास्करातिप्रियः । जाग्रित्यमेकं परमं देवदेवेषु पूजितम् ॥१८
 रत्नपर्वतमारुद्धा यथा भुवि नराधिपाः । सत्त्वानुरूपं गच्छन्ति रत्नभासानगेषतः ॥१९
 तथा भानुं समाराघ्य प्राप्नुवन्ति नराः कलम् । धनार्थो प्राप्नुयादर्थं पुत्रार्थो प्राप्नुदात्मतम् ॥२०
 मोक्षार्थं मोक्षमाप्रोति चाश वाऽमरतां वजेत् । अयं कि बहुनोलेन शृणु त्वं बचनं मम ॥२१
 इहादयो देवगणा भानुमारोघ्य भारत । अनोहराणि विष्यानि विद्यि रत्नवायनापुनः ॥२२
 अचलतनि महाभागाः सर्वपापहरणि च ॥२३

सुमन्तुरुवाच

इत्युक्त्वा भगवान्व्यासस्तत्रैवान्तरधीयत । भीष्मोऽपि पूजयामास भक्त्या भनुं विधानतः ॥२४
 तथा त्वमपि राजेन्द्र पूजयेम दिवाकरम् । पूजयित्वा रवि भक्त्या स्थानं शास्यति शाश्वतम् ॥२५
 यथा गतः त भगवान्व्यासो भीष्माश्र मानद । सङ्कृतप्रपूज्य सप्तस्यां भक्त्या देवं दिवाकरम् ॥२६
 इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे व्यासभीष्मसंवादे आदित्यपूजाविधिवर्णनं
 नाम सप्ताधिकद्विशतमोऽध्यायः ॥२०७।

होती है । १४। एषी के दिन उपवास रहकर सप्तमी में विधान पूर्वक जो श्राद्ध करता है, उससे भास्कर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं । १५। और वह समस्त दोषों से मुक्त होकर सूर्य लोक का सम्मान प्राप्त करता है । नराधिप ! स्त्री अथवा पुरुष के सूर्य की विधान पूर्वक विशेषकर ग्रहण या उनके दिन उपासना करने पर उनकी समस्त कामनाएँ मफल होती हैं । १६-१७। भीष्म ! इतना ही जानें कि सूर्य से बढ़कर श्रिय कोई अन्य देव नहीं है, क्योंकि अधिनायक देवों द्वारा भी यही एक आदित्य ही पूजित होते हैं । १८। जिस प्रकार इस भूतल में राजा गण रत्नों के पहाड़ पर पहुँचकर अपने सत्त्वानुरूप शक्ति के अनुसार निखिल रत्नों की प्राप्ति करते हैं, उसी भाँति मनुष्य गण भास्कर की आराधना द्वारा समस्त फलों की प्राप्ति करते हैं । धनेच्छुक को धन, पुत्रेच्छुक को पुत्र, एवं मोक्षार्थी को मोक्ष तथा अमरत्व की प्राप्ति होती है । भारत ! मैं इनके विषय में अधिक क्या कहूँ, इतना ही जाने कि ब्रह्मा आदि देवगण सूर्य देव की आराधना करके ही स्वर्ग के दिव्य स्थानों की प्राप्ति किये हैं । जो अचल एवं समस्त पापों के अपहर्ता तथा स्वयं महान् सीमाग्य सम्पन्न हैं । १२-२३

सुमन्तु बोले—इतना कहकर भगवान् ! व्यास उसी स्थान पर अन्तर्हित हो गये और भीष्म ने भी भक्ति पूर्वक विधान द्वारा सूर्य की पूजा सुसम्पन्न किया । २४। राजेन्द्र ! उसी भाँति आप भी भक्ति पूर्वक दिवाकर की पूजा करके उस अविनाशी स्थान की प्राप्ति करेंगे । हे मानद ! जिस प्रकार भगवान् व्यास और भीष्म ने सप्तमी में भक्ति पूर्वक दिवाकर देव की एक ही बार पूजा कर के उसी स्थान की प्राप्ति की है । २५-२६

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प के व्यास भीष्म संवाद में आदित्य पूजा माहात्म्य वर्णन नामक दो सी सातवीं अध्याय समाप्त । २०७।

अथाष्टाधिकद्विशततस्तमोऽध्यायः

सप्तमीव्रतवर्णनम्

शतानीक उवाच

पुनर्म शूहि सप्तम्यं ग्रीतये नास्करस्य तु ! उपोषितो भवतीह नरो यस्तु द्विजोत्तम ॥१

सुमन्तुरव्याच

कथितः सप्त तप्तम्यः पुनरस्मिन्नहमते । बहुः कुरुशार्दूलं सूर्यस्त्वेताः शृणुष्ट ये ॥२
 स्वयं या: कर्त्तयाः पूर्वमार्चित्येन लगात्थिप । अशणस्य महाबाहो सप्तम्यः सप्तम्यूजिताः ॥३
 अर्कसम्पुटकैरेका द्वितीया मरिचैस्तथा । दृतीया निम्बपत्रैश्च चतुर्थीं फलसप्तमी ॥४
 अनोदना पञ्चमी स्यात्खण्डी दिजयसप्तमी । सप्तमी कामिका ज्ञेया विधिं तासां निरोधे से ॥५
 शुक्लपक्षे रविविने दक्षिणे चोत्तरायणे । ग्रहणे सूर्यनक्षत्रे गुल्मीयात्सप्तमीः ॥६
 स तां चुब्रहचारी स्याच्छौचपुलो जितेन्द्रियः । सूर्यार्चिनरतो इन्तरे जपहोमपरस्तथा ॥७
 पञ्चम्यमेव पुरुषः कुर्यात्प्रियमनात्मकम् । वर्षणां न भैयुन गच्छेन्मधुमासं च वर्जयेत् ॥८
 अर्कसम्पुटकैरेका तथान्यां मरिचैर्नयेत् । तथापरां निम्बपत्रैः फलात्ययो फलं चरेत् ॥९
 अनोदनामन्नरहित उपासीत यथाविधि । अहोरात्रं वायुभक्तः कुर्याद्विजयसप्तमीम् ॥१०

अध्याय २०८

सप्तमीव्रत विधि वर्णन

शतानीक ने कहा—हे द्विजोत्तम ! भास्कर के प्रसन्नार्थ उस सप्तमी व्रत विधान को, जिसमें मनुष्यों को उपवास करना पड़ता है, पुनः मुझे बताने की कृपा कीजिए ।

सुमन्तु बोले—महामते ! यद्यपि सातों सप्तमी के विधान को मैंने पहले बता दिया है, तथापि कुरुशार्दूल ! उनका वर्णन मैं पुनः कर रहा हूँ, खगादीश, महाबाहो ! जिन सातों सप्तमी विधान के वर्णन सूर्य ने अरुण से पहले किया था, मुनो । २-३। अर्क संयुक्त का विधान पहली सप्तमी में बताया गया है उसी प्रकार द्वासरी सप्तमी में मिर्च का पारण, तीसरी में निम्बका, चौथी में फल, पाँचवी में भात के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु, छठी विजयसप्तमी और कामिका नामक सातवां सप्तमी बतायी गई है, इनके विधानों को मैं बता रहा हूँ, शुक्ल पक्ष के रविवार के दिन, सूर्य के दक्षिणायन एवं उत्तरायण होने के दिन, ग्रहण और सूर्यनक्षत्र (संक्रान्ति) के दिनों में सातों सप्तमी के विधानारम्भ करने चाहिए । संयम- पूर्वक पवित्रतापूर्ण ब्रह्मचारी शुद्ध होकर सूर्य की अर्चना, जप, एवं हवन करे ४-७। पुरुष को चाहिए कि सर्वप्रथम पञ्चमी में अनात्मक करके छष्ठी में मैथुन, मधु एवं मांस का भी त्याग करे । इसके उपरांत प्रथम सप्तमी का अर्कसंयुक्त द्वारा द्वासरी को मिर्च द्वारा तीसरी को नीम के पत्तों द्वारा, चौथी को फल द्वारा, तथा अन्नरहित होकर अनादना (भातहीन) नामक पाँचवी सप्तमी और दिन रात वायु भक्षण कर छठी विजय सप्तमी को विधान पूर्वक सुसम्पन्न करे । ८-१०। इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष एक सप्तमी के व्रत विधान

तथैकां सप्तमीं कृत्वा प्रतिमासं विचक्षणः । कुर्याद्यथाविधि मुदा ततः कुर्वीत कामिकाम् ॥११
 असां सिलित्वा नामादिं पत्रकेषु पृथक्पृथक् । तानि सर्वाणि पत्राणि किंयेदभिनवे यदे ॥१२
 तदर्थं यो न जानताति सोकवाहोऽपि वा नरः । तेन हृद्वारयेदेकं न कुर्दञ्ज्व विचारणम् ॥१३
 तेनैव विधिना यस्तु प्रतिमासं च तत्पः । सप्तैद यत्वत्सप्तम्यो विजेया स्ता दु कामिका ॥१४
 इत्वेताः सप्तसप्तम्यः स्वयं शोक्ता विवस्त्वा । कुर्वीत यो नरो भक्त्या स यात्पर्कसबो नृप ॥१५
 अर्कसम्पुटकैवित्तमदलं सप्तपौज्यम् । मरिचैः सङ्गमः स्याद्व प्रियैः पुनादिभिः सदा ॥१६
 सर्वरोगः प्रणश्यन्ति निम्बपत्रैर्न संशयः । फलैस्तु पुत्रयीत्रश्च दौहित्रश्चादि पुष्कलः ॥१७
 अतो धनं धनं धान्यं सुर्दी रजतं तदा । तदा पशुर्गृहण्यं च आरोग्यं सततं नृप ॥१८
 उपोष्य दिजयां शत्रून्नराज्ञज्ञयति नित्यशः । साध्येत्कामदा कामान्विधिवत्समुपासिता ॥१९
 पुत्रकाम्भे समेत्युत्तमर्थकामोऽर्थमक्षयम् । विद्याकामो लभेद्विद्यां राज्यार्थं राज्यमामुयात् ॥
 कृत्स्नान्कामान्वदात्येषा कामदा कुरुन्नन्दन ॥२०

नरो वा यादि वा नारी यथोक्तं सप्तमीव्रतम् । करोति नियतात्मा वै स याति परमां गतिम् ॥२१
 न तेषां त्रिषु लोकेषु किञ्चिदस्तीति दुर्लभम् । ये भक्त्या लोकनायस्य व्रतिनः संशितव्रताः ॥२२
 व्रतस्तु किञ्चिदीर्वां तपोभिर्वा सुपुष्करैः । न तत्कलमवाप्नोति यज्ञेर्वा बहुदक्षिणैः ॥२३

को मुसम्पन्न करने के उपरात प्रसन्नतापूर्ण हो प्रतिमास की सप्तमी के व्रत-विधान की समाप्ति करे और पश्चात् कामिका नामक सातवीं सप्तमी के विधान को पूरा करे ॥११। पृथक्-पृथक् पत्रों पर इनके नाम लिख कर उसे नवीन कलश में रखें चाहिए ॥१२। उसके अर्थ को जो मनुष्य न जानता हो, चाहे वह चार्वाक मतावलम्बी कर्तों न हो वह एक ही का समुदार करे, उसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥१३। उसी प्रकार प्रतिमास की सप्तमी व्रत-विधान के समाप्ति के अनंतर सातवीं कामिका नामक तप्तमी की समाप्ति करे। इसी प्रकार सातों सप्तमी के व्रत विधान की समाप्ति के अनंतर सातवीं कामिका नामक तप्तमी की समाप्ति करे। इसी प्रकार सातों सप्तमी की विधान पूर्वक उपासना द्वारा समस्त रोगों के नाश होते हैं, इसमें संदेह नहीं। इसी प्रकार फलों (फलवाली सप्तमी) द्वारा पुत्र, पौत्र, एवं दौहित्र (पुत्री के पुत्र) की निरचित प्राप्ति होती है ॥१६-१७। नृप ! धन, धान्य, सुर्वण, चाँदी, पशु, हिरण्य, एवं निरन्तर आरोग्यता की भी प्राप्ति होती है ॥१८। राजन् ! उसी भाँति विजया सप्तमी (छठीं) की उपासना द्वारा शत्रुओं पर विजय तथा कामदा नामक सातवीं सप्तमी की विधान पूर्वक उपासना द्वारा सभी कामनाएँ सफल होती हैं ॥१९। पुत्रेच्छुक को पुत्र, धनेच्छुकों को अक्षय धन, विद्यार्थी को विद्या राज्य की कामना वाले को राज्य प्राप्त होता है तथा कुरुन्नन्दन ! कामदा नामक सातवीं सप्तमी समस्त कामनाएँ सफल करती हैं ॥२०। स्त्री पुरुष किसी के भी समयपूर्वक विधान द्वारा सप्तमी की समाप्ति करने से परम गति की प्राप्ति होती है ॥२१। लोकाधिनायक (सूर्य) के व्रतों के भक्तिपूर्वक नियमित पालन करने से उसके लिए तीनों लोकों में कोई अप्राप्य वस्तु नहीं रहती है ॥२२। वीर पार्थिव श्रेष्ठ ! अनेक भाँति के व्रतविधानों, अत्यन्त कठोर तप, बहु-

तीर्थीभिषेचनैवापि दानहोमार्चनैस्तथा । यत्कलं च पूजयितुं सप्तम्यां प्राप्य मोक्षदम् ॥
मोक्षार्थी पार्थिवश्रेष्ठ यथाह भगवान् रविः ॥२४
कृत्वादित्यदिने तत्त्वं भूत्या समूजयेऽविष् । अचलं स्थानमाप्नोति मानवः श्रद्धान्वितः ॥
सूर्यलोके च नियतं तस्य वासो न संतायः ॥२५
गत्वा पूजयते भक्त्या सप्तम्या भास्करं नवः । बहुन्दश्वलोकिषु तस्याप्रतिहता गतिः ॥२६
नात्यो न कुण्ठी न क्लीबो न व्यश्यो न च निर्धनः । तुले तस्य अवेद्वीर यश्चरेत्सप्तमीव्रतम् ॥२७
विद्यार्थी समते विद्या धनार्थी धनमाप्नुयात् । भार्यार्थी रूपसप्तम्यां स्त्रियं पुत्रांश्च भारत ॥२८
सोमसत्त्वसादान्मोहाङ्ग व्रतमङ्गो ददा भवेत् । तत्र त्रिरात्रं नाइनीयत्कुर्याद्वा करमुण्डनम् ॥२९
प्रायश्चित्तमिवं कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत् । सप्तैव यावत्सप्तम्यो भद्रनिति च लगेश्वर ॥३०
अस्त्वर्च्छ सूर्यसप्तम्यो माल्यधूपादिनिर्निरः । ज्ञेयित्वा दिजाङ्गकृत्या प्राप्नुयात्स्वर्गमस्यम् ॥३१
सप्तम्या विप्रमुख्येभ्ये हिरण्यं यः प्रयच्छति । स तदक्षयमाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति ॥३२
इतीवं कीर्तिं वीर सप्तमीद्वामुतेमम् । सूर्य एवमिधास्यामि शृणुष्वैकमना नृप ॥३३
इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मणे पर्वणि सप्तमीकल्ये सौरधर्मे सूर्यसंवादे सप्तसप्तमीव्रतवर्णिनं
नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०८।

दक्षिणा वाले यज्ञ, तीर्थों के अभिषेचन, दान, हवन, एवं उपासना द्वारा उस मोक्षदायक फल की प्राप्ति नहीं होती है जिसे भोक्षार्थी सप्तमी व्रत विधान द्वारा प्राप्त करता है। ऐसा सूर्य भगवान् ने बताया है । २३-२४। श्रद्धा-भक्ति पूर्वक नक्त व्रत करके रविवार के दिन जो सूर्य की आराधना करता है, उस मनुष्य को अदल स्वान की प्राप्ति एवं सूर्य लोक में नियतनिवास प्राप्त होता है । २५। भक्ति पूर्वक सप्तमी के दिन जो सूर्य की अर्चना करता है, ब्रह्मा, इन्द्र एवं रुद्र के लोकों में वह अप्रतिहत गति द्वारा पहुँचकर विचार करता है । २६। वीर ! जो पुरुष सप्तमी व्रत विधान का यथावत् पालन करता रहता है, उसके कुल में कोई व्यक्ति अंधा, कुण्ठी, नर्तुसक, व्यंग, एवं निर्धन नहीं होता है । २७। भारत ! विद्यार्थी विद्या, धनेच्छुक धन तथा स्त्री के अभिलार्ही रूप सौन्दर्य पूर्ण स्त्री और पुत्रों की प्राप्ति करता है । २८। लोभ, मोह, अथवा प्रमाद वश यदि व्रत अंग हो जाये तो तीन रात का अनशन या केश मुंडन रूप प्रायश्चित्त सुसम्पन्न करके पुनः दत्त के योग्य हो जाता है । लगेश्वर ! वह सातों सप्तमी के व्रत-विधान को सुसम्पन्न करने की योग्यता प्राप्त करता है । २९-३०। सप्तमी के दिन मनुष्य माला-धूपादि द्वारा सूर्य की अर्चना, एवं ब्राह्मण भोजन कराके अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति करता है । ३१। सप्तमी के दिन जो उत्तम ब्राह्मणों को हिरण्य दान देता है, उसे अक्षय सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । ३२। वीर ! इस प्रकार तुम्हें मैंने सप्तमी व्रत का विधान सुना दिया । नृप ! उसी विषय को मैं पुनः तुम्हें सुना रहा हूँ, सावधान होकर सुनो । ३३

श्रीभविष्यपुराण के सप्तमी कल्य के सौरधर्म में सूर्यार्णसंवाद में सप्तमी व्रत वर्णन
नामक दो सी आठवाँ अध्याय समाप्त । २०८।

अथ नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सप्तमीव्रतवर्णनम्

सुप्तमन्तरुदाच्च

यः किं पेद्वागेलयाहारः सुकृता द्वादश सप्तमीः । अथवा यानकाहारः शीर्षार्थात्तरोऽपि वा ॥१
 शीराशो देहभक्तो वा जिलाहारोऽपि वा तु । जलाहारोऽपि वा विद्वास्त्रांश्चत्वा विद्वास्त्रम् ॥२
 पुष्पोऽहारैविनिधिः पश्चात्तोगच्छिकोत्पत्तैः । जानाप्रकारैर्गच्छिन्नं धूष्पूर्मुलचन्दनैः ॥३
 कृष्णगत्प्रायसादैविनिधिः सुविष्णुषणैः । अर्चवित्ता द्विजःङ्गलैऽन्तिरध्यात्मादिस्तिरः ॥४
 म तत्कलभवाग्नेति क्रतुभिपूर्विदिस्तिः । एदेह तप्यते शीर श्राव्यते फेनलं रवेः ॥५
 विमानलक्ष्मारूपः सूर्यलोके भूरीभृते । ततः पुष्पक्षमयाजन्मुदो भूति जायते ॥६
 एवं भक्त्या विजस्त्वं प्रतिमात्रं समाहितः । पूजयेद्विधिवद्वृक्त्या वासानि धारिकीर्तिष्ठेत् ॥७
 चैत्रिके भासिं विष्णुभ्यं माधवं हृष्येति वै । शुक्रे विवस्वात्मासे तु शुक्रो मासे विद्वास्त्रः ॥८
 पर्जन्यः श्रवणे मासि नभस्ये वरणस्तथा । मार्त्षण्डेति च विज्ञेयः कर्त्तव्यं भार्याः पुनः ॥९
 मार्गशीर्षेऽपि मित्रस्तु कीर्तितः सततं तु थे । पूषा पौषे तु वै मासे पूजनीयः श्रवत्ततः ॥१०
 माघे भगेति विज्ञेयस्त्वष्टा चैवायं फलनुने । एवं क्रमेण नामानि कीर्तयेत्प्रीतये रवे ॥११
 धूपार्चनविधिमिमं सप्तम्यां सुसमाहितः । यः करोति नरो भक्त्या स यज्ञति परमां गतिम् ॥१२

अध्याय २०९

सप्तमीव्रत का वर्णन

सुप्तमन्तु खोले—बारहों मास के शुक्ल पक्ष की बारहों सप्तमी के द्रतानुष्ठान के पश्चात् गोमय (गोबर), यावक जीर्ण शीर्ण पते, झीर, एकभक्त, मिताहार, तथा जलाहार के पारायण का विधान बताया गया है । विदान् पुरुष को चाहिए कि भाँति भाँति के पुष्पोपहार, कमल, तील कमल, भाँति-भाँति के गंध, धूप, गुग्गुल एवं चन्दन, कृष्ण गंध, पायस आदि तथा अनेक प्रकार के आभृष्णों द्वारा भास्कर की उपासना सुसम्पन्न कर सुवर्ण और अन्न भक्ष्य-भ्रात्य द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणों की सेवा करे, तो उसे उन फलों की प्राप्ति होती है, जो अत्यन्त दक्षिणा दाले यज्ञों द्वारा प्राप्त किये जाते हैं । वीर ! जो केवल सूर्य के प्रसन्नार्थं तप करता है, वह विमान द्वारा सूर्य लोक में पहुँच कर सम्मानित होता है, और राजन् ! पुष्पक्षय होने के उपरांत वह किसी उत्तम कुल में जन्म-प्रहण करता है । १-६। इस प्रकार प्रतिमास में विवस्वान् (सूर्य) की भासि पूर्वक आराधना करनी चाहिए तथा उनके नामों का कीर्तन भी । चैत्र मास के विष्णु, वैशाख मास के अर्यमा, ज्येष्ठ के विवस्वान्, आषाढ़ मास के दिवाकर, श्रावण मास के पर्जन्य, भाद्रों मास के वरण, आश्विन मास के मार्त्षण्ड, कार्तिक मास के भार्यव, मार्गशीर्ष (अगहन) मास के मित्र पौष मास के पूषा, माघ मास के भग, और फलनुन मास के त्वष्टा नामक सूर्य की क्रमशः अर्चना एवं प्रीति पूर्वक कीर्तन करे । ७-१। इस प्रकार जो मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्य के धूपार्चन विधान को सुसम्पन्न करता

ततस्ते सर्वप्रस्थातं यथगुह्यतमं विभोः । वैद देयमशिष्याय नाभक्ताय कटाच्चन ॥१३
 न च पापकृते देयं न देयं नास्तिक्षाय चा । कृतघ्ने नास्तिके वीर न देयं कूरकर्मणि ॥१४
 य ह्वं भृणयान्नित्यं सप्तमीवतमुत्तमम् । पठेद्यशापि! नियतः अद्या परयन्वितः ॥१५
 इह लोके सुलं प्राप्य सूर्यलोके महीयते । पुर्यस्यादिहागत्वा राजा भवति भूतले ॥१६
 इति श्रीभविष्ये महापराणे आहोपर्वति सप्तमीकले सूर्यार्णितंवादे प्रतिक्षासप्तमीक्षत्वर्णनं
 नाम्न नदाधिकद्विशततमोऽध्यायः । २०९।

अथ दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यपूजावर्णनम्

सूर्यन्तुरुचाच

इत्येष सप्तमीकल्पः समासान्त्वितस्तत्वः । विस्तराते पुनर्वच्चि शृणु नैकमना विभो ॥१
 फाल्युनामलपक्षस्य षष्ठ्यां च समुपोषितः । पूजयेद्युपास्करं स्नात्वा गङ्गापूष्यविस्तवैः ॥२
 अर्कपुष्येर्महाबाहो गुग्गुलेन सुगंधिनः । श्वेतेन करबीरेण चन्दनेन विवाकरम् ॥३
 गुडोदकेन दैवद्यं निवेद्यं प्रीतये रवेः । एवं शूज्य दिवा भानुं रात्रौ तस्याप्तः स्वपेत् ॥
 जपन्नभौमं परं जायं विनिद्वः सतं बुधः ॥४

है, उसे उत्तम गति प्राप्त होती है । १२। इस भाँति मैंने तुम्हें विभु (सूर्य) के अत्यन्त गुह्य आख्यान सुना दिये जो किसी अशिष्य एवं भक्ति हीन को कभी नहीं दिया जा सकता है । १३। वीर ! किसी पापी, नास्तिक, कृतघ्न, एवं कूरकर्मा को कभी नहीं (सूर्योगस्यान का उपदेश) देना चाहिए । १४। जो इस सप्तमी व्रत-विधान का श्रवण अथवा अत्यन्त श्वदालु होकर पाठ करता है, उसे इस भूतल के समस्त सुलोकी प्राप्ति पूर्वक सूर्य-लोक के सम्मान प्राप्त होते हैं और पुष्प क्षय के पश्चात वह इस भूतल का राजा होता है । १५-१६
 श्री भविष्यमहापुराण में आहोपर्व के सप्तमी कल्प के सूर्यार्णितंवाद में सप्तमी व्रत वर्णन
 नामक दो सौ नौवाँ अध्याय समाप्त । २०९।

अध्याय २१०

सूर्यपूजा का वर्णन

सुमन्तु बोले—विभो ! मैंने तुम्हें इस सप्तगी कल्प को विवेचन पूर्वक सुना दिया, किन्तु पुनः उसी का विस्तृत रूप में वर्णन कर रहा हूँ, सावधान होकर सुनो ! । १। फाल्युन मास के शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि के दिन उपवास रहकर स्नान, गंध, पुष्प, एवं लेपो द्वारा भास्कर की आराधना करनी चाहिए । २। महाबाहो ! अर्क (मदार) के पुष्प, गुग्गुल की सुगंधित धूप, श्वेत कनेर के पुष्प, एवं चन्दन द्वारा दिवाकर की अर्चना करके प्रीति पूर्वक उन्हें गुड-जल द्वारा बनाये गये नैवेद्य को अपित करे । इस भाँति दिन में उनकी पूजा सुसम्पन्न करके रात में उन्हीं के सामने शयन कर विद्वानों को चाहिए कि जब तक निद्रित अवस्था न आये, उनके उत्तम भंत्र का जप करते रहें । ३-४

शतानीक उवाच

कि तत्परं भगवतः प्रियं जात्यमनुज्ञम्

॥५

जपत्थ्यो यत्परैर्भक्त्या मानुस्तस्यापतो नरेः । तन्मे ब्रूहि तथा मन्त्रान्धूपदीपान्विशेषतः ॥

येनाहं तं जपञ्जन्यं पूजयामि दिवाकरम्

॥६

सुभन्तुरुखाच

बच्छिं ते भरतश्चेष्ठ समासान्न तु विस्तराद्

॥७

षड्करेण मन्त्रेण कुरुत्स्वर्वं समाहितः । जपं होमं तथा पूजां शतजप्तेनसर्वदा ॥८

सावित्र्या च जपं त्रृवृं हृत्वा गतसहच्चराः । पश्चात्स्वर्वं प्रकुर्वीत जपादिकमनाकुलम् ॥९

अँ भौः सावित्रि भास्कराय सहस्ररिंशं धीमहि । तेन सूर्यः प्रचोदयात् ॥१०

जप एव परः प्रोक्तः सप्तम्यां मानुना स्वयम् । जप्त्वा सद्गूर्वेत्पूतो मानवो नात्र संशयः ॥११

प्रभासे स्वयं सप्तम्यां जपश्चियतमानसः । पूजयेद्गूर्वास्करं भक्त्या पूर्वोक्तविधिना नृप ॥१२

श्रद्धया भोजयेद्दत्त्वं ब्राह्मणाऽऽचलित्तो नृप । दिव्यान्मोगांश्च विधिवद्गूर्व्यभोजैरत्नेकः ॥१३

विज्ञशाठधं न कुर्वीत भोजकांश्च प्रभोजयेत् । न भोजयेत्तथाऽसौरान्सौरान्यलेन भोजयेत् ॥१४

शतानीक उवाच

के भोज्या के न वा भोज्या ब्राह्मणा ब्राह्मणित्वम् । केचु चित्तेषु सप्तम्यां देवदेवो दिवाकरः ॥१५

शतानीक बोले— भगवान् भास्कर को किस उत्तम मंत्र का जप प्रिय है, जिसे भक्ति पूर्वक मनुष्य उनके सामने शयन-काल में जपता रहे ! उनके मंत्र तथा विशेषकर धूप-दीप बताने की कृपा करें क्योंकि मैं दिवाकर की आराधना हथा उस मंत्र का जप करना चाहता हूँ ॥५-६

सुभन्तु बोले—भरत श्चेष्ठ ! मैं तुम्हें संक्षेप में उत्ते बता रहा हूँ, सुनो । क्योंकि विस्तृत वर्णन करने का समय नहीं है । ध्यान समाकर उनके षड्कर मंत्र का जप करना चाहिए तथा जप, हवन, एवं पूजन काल में सदैव उस मंत्र की एक सौ संख्या का जप करना आवश्यक रहता है ॥७-८। सर्वप्रथम सावित्री मंत्र की एक लक्ष संख्या का जप करके पश्चात् सावधान होकर इसका जप आदि प्रारम्भ करे ॥९। ‘ओ भौः सावित्रि भास्कराय सहस्ररिंशं धीमहि, तेन सूर्यः प्रचोदयात्, सप्तमी के दिन इसी उत्तम मंत्र का जप-विधान सुसम्पन्न करना बताया गया है क्योंकि इसे सूर्य ने स्वयं कहा है । इसके एक बार के जप करने से मानव अवश्य पवित्र हो जाता है इसमें सदैव नहीं ॥१०-११। नृप ! सप्तमी के दिन प्रातः काल पवित्र होकर संयम पूर्वक इस का जप करते हुए पूर्वोक्त विधान द्वारा भक्तिपूर्वक सूर्य की आराधना करनी चाहिए तथा श्रद्धा समेत अपनी इच्छानुसार दिव्यभोग एवं अनेक भाँति के भक्ष्य भोज्यों द्वारा ब्राह्मण भोजन सुसम्पन्न करे ॥१२-१३। उसमें अपने धन का मोह न कर भोजकों को भोजन कराये और (सूर्य-भक्तिहीन) ब्राह्मण के त्याग और प्रयत्न पूर्वक सौर (सूर्य-भक्त) ब्राह्मणों के भोजन पर विशेष ध्यान रखने चाहिए ॥१४

शतानीक ने कहा—हे ब्राह्मणित्वम् ! किस ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए, और किसे नहीं तथा देवाधिदेव दिवाकर सप्तमी के दिन किन ब्राह्मणों के चित्त में अधिष्ठित रहते हैं ॥१५

सुमन्तुरवाच

द्वीपोज्यो भवेद्विप्रः सप्तमीं कुष्ठे च यः । तौरमिष्वेष्वभोज्यो यो यश्च पुक्तो विवाकरे ॥१६
एते भोज्या द्विजा राजश्वादित्येन समाप्ततः । भ्रोक्ताः कुरुकुलश्रेष्ठ तथाऽभोज्याऽन्यृणुच्च वै ॥१७
समार्थः सप्तर्त्यस्तु कुष्ठरोगीहतश्च यः । यश्वान्येवतामक्षतस्तथा नक्षत्रस्तुवकः ॥१८
परामर्ददिनिरते यश्च देवतकस्तथा । एतेऽभोज्याः तदित्या तु स्वयं देवेत चित्तिताः ॥१९

शतानीक उवाच

ये भोज्या ब्राह्मणाः प्रोक्ताः से अभोज्या द्विजेत्याः । एतेषां लक्षणं शूहि लर्वेषां ते स्त्रावर्तिः ॥२०

सुमन्तुरवाच

साधु पृष्ठोऽस्मि राजेन्द्र कीर्तयःस्येष्व हृत्स्नशः । पठतां तु त्रयो विद्यां ब्राह्मणानां कवस्त्वकः ॥२१
घटेत्युत्ता तु सा राजत्वस्यं देवेन भानुना । सा घटा विद्यते यस्य स घटीत्युच्यते द्विजः ॥२२
ब्रह्मलत्रविशां वीर शूद्राणां च कवस्त्वकः । शृष्टतां विद्यित्युच्यं भृत्या पुस्तकवाचनम् ॥२३
इति भासे निबद्धस्य होमस्येति च भानुना । कथितं कुरुशार्दूल स्वयमाकाशगामिना ॥२४
यस्या कर्ता भवेद्यस्तु मम स्यात्करको नतः । स विप्रो राजशार्दूल सदेष्टो भास्करस्य तु ॥२५
जयोपजीवी व्यासश्च समः स्याज्जीवकस्तथा । यान्तेतानि पुराणानि सेतिहासानि भारत ॥

सुमन्तु बोले—सप्तमी व्रतानुष्ठान को सम्पन्न करने वाला ब्राह्मण बार-बार भोजन कराने योग्य होता है किन्तु वह जो दिवाकर की आराधना में किसी असौर (सूर्य भवित्वीन) के यहाँ भोजन न करने वाला, एवं दिवाकर की आराधना में भोजन करने वाला, ब्राह्मण सदैव क्षण-क्षण पर भोजन कराने योग्य होता है । राजन् ! इन्हीं ब्राह्मणों को सूर्य ने स्वयं भोज्य (भोजन करने के योग्य) बताया है । कुरुकुल श्रेष्ठ ! उन अभोज्य ब्राह्मणों को, जिन्हें कभी भोजन न कराना चाहिए, बता रहा हूँ, सुनो ! स्त्री के समेत रहने वाला, सेवक का कार्य करने वाला, कुष्ठी, रोगी! अन्य देवता के उपासक, नक्षत्र की सूचना देने वाले (ज्योतिषी), निंदक तथा देवतक, इन्हीं ब्राह्मणों को स्वयं सूर्य अभोज्य भोजन कराने के अयोग्य बताया है । १६-१९

शतानीक ने कहा—देव ! जो ब्राह्मण भोज्य हैं तथा जो अभोज्य हैं, उनके लक्षण दताने की कृपा करें । २०

सुमन्तु बोले—राजेन्द्र ! आप ने साधु प्रश्न किया है अतः मैं सम्पूर्ण लक्षण बता रहा हूँ सुनो ! वेदत्रयी (तीनों वेदों) के अध्ययन करने वाले ब्राह्मणों के समूह को 'घटा' कहा गया है, स्वयं सूर्य देव ने ऐसा बताया है । उसी 'घटा' वाले ब्राह्मण को 'घटी ब्राह्मण' कहा जाता है । २१-२२। वीर ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैद्य, एवं शूद्रों के समूह, भक्तिपूर्वक पुस्तक पारायण को मुनकर अधिक पुष्य प्राप्त करते हैं । इन्हीं उपरोक्त ब्राह्मणों को मास सप्तमी के दिन भोजन एवं उन्हीं द्वारा हवन सुसम्पन्न कराना चाहिए । कुरुशार्दूल ! इसे स्वयं आकाशचारी सूर्य ने बताया है । २३-२४। सप्तमी व्रत के अनुष्ठान को जो सुसम्पन्न करता है, वह मेरी सम्मति से 'करक' है, राजशार्दूल ! वह ब्राह्मण भास्कर को सदैव प्रिय है । उसी प्रकार उन्हें जयोपजीवी, व्यास, और जीवक भी कहा जाता है । भारत ! इतिहास (महाभारत)

जयेति कथितानीह स्वयं देवेन भास्त्वता

॥२६

एकं निवासयन्यस्तु ब्राह्मणं दूरजीवति : जयेपजीवी स भैयो वाचकश्च तथा नृप ॥२७
 आरुणेयादिशास्त्राणि सप्ताख्यतिलकं तथा । यद्यच जानाति सौराश्च विषः सौरस्स तत्त्ववित् ॥२८
 पूजयेत्सततं यस्तु भास्करं नृपसत्तम । भोजकांश्च लक्षणं राजन्यव्य देवं दिवाकरम् ॥२९
 स भैयो भास्करे भृत्यो भोजनायः प्रयत्नतः । भोज्यानां लक्षणं ह्रौतदभोज्यानां भृष्टद्वये ॥३०
 वृष्टली यस्य दै आर्या ब्राह्मणस्य विशेषतः । परमार्याधित्तरसौ ब्राह्मणां ब्राह्मणाध्यः ॥३१
 देवेन निहतः कुछी ब्राह्मणो ब्रह्मघातकः । भोजको विन्द्वते यस्तु च च तं पूजयेत्तथा ॥३२
 ज्ञेयोन्वेवभृतोऽसौ स दिवः कुरुनन्दन । आवित्यं भोजकं द्विद्वाननैर्वैहसमुद्गव्य ॥३३
 नावित्यं पूजयेद्यस्तु स भोज्यो न लक्षणतः । मुण्डो अद्वाधरो भौरः शङ्खपुष्पधरस्तथा ॥३४
 यस्य याति गृहे राजन्मोजको भानवस्य हु । तस्य पाति गृहे देवाः गितरो भास्करस्य तु ॥३५
 रक्षोभूतपिशाचाक्षं योगिन्योऽपि पत्तायिताः । सहृद्युदृहते गृहे यस्य भोजको गृहधर्मिणः ॥३६
 सप्तसंख्यत्वं यावत्तृप्तो भवति भास्करः । तत्प्रातान्मोजयैद्वृद्धं भोजकान्ततं छृणः ॥
 यस्तु तालिन्वते विषः स न भोज्यः कदाचन ॥३७
 निजं भर्तारमुत्सृज्य स्वैरं यान्यत्र गच्छति । स्वैरिणो ता तु दै प्रोक्ता पापिष्ठा कुलदूषिणो ॥३८

समेत समस्त पुराणों की 'जय' संज्ञा बतायी गयी है, इसे स्वयं सूर्य देव ने बताया है। उसके विशिष्ट विद्वान् किसी एक ब्राह्मण को अपने यहाँ रखकर उसके पालन पोषण करने वाले ब्राह्मण को जयोपजीविन् एवं वाचक कहते हैं। तथा नृप ! सूर्य के समस्त शास्त्र, एवं सप्ताख्य तिलक का परिज्ञाता ब्राह्मण, जो सौर (सूर्य) शास्त्र के तत्त्व को जानता है वह तत्त्ववित् बताया गया है । २५-२८। नृपसत्तम ! भास्कर देव की निरन्तर उपासना करने वाले तथा राजन् ! दिवाकर देव की भाँति भोजक ब्राह्मण के उपासक ब्राह्मणों को भास्कर के पूजन में भोजन करने के लिए सदैव प्रथमशील रहना चाहिए। भोज्यों ब्राह्मणों के लक्षण मैंने बता दिये हैं, अब अभोज्य ब्राह्मणों के लक्षण बता रहा हूँ सुनो ! जिस ब्राह्मण की स्त्री वृषली (कोई शुद्र जाति की स्त्री) हो, तथा वह दूसरे स्त्री का उपभोक्ता हो उसे ब्राह्मणाधम बताया गया है । २९-३१। दैव (भाग्य) द्वारा कुण्ठ का रोगी और ब्रह्मघाती ब्राह्मण, यदि भोजक हो तो उसे कभी भी पूज्य न बनाये । ३२। कुरुनन्दन ! अन्य देव के उपासक ब्राह्मण भी अभोज्य हैं। भोजक ब्राह्मण तो आदित्य का ही रूप है, क्योंकि वह उनके शरीर द्वारा उत्पन्न हुआ है । ३३। उसी प्रकार आदित्य की उपासना न करने वाला, मुण्डी, व्यंग धारण करने वाला गौर वर्ण, शंख एवं पुष्प धारण करने वाला ब्राह्मण सर्वदा अभोज्य है । ३४। राजन् ! जिस मनुष्य के घर भोजक पहुँच जाता है, उसके यहाँ भास्कर सम्बन्धी समस्त देव, पितर पहुँचते हैं । ३५। जिस गृहस्थ के घर भोजक को एक बार भी भोजन कराया जाये उसके गृह से राक्षस, भूत, पिशाच, एवं योगिनियाँ पलायन कर जाती है । ३६। दिव्य भोजकों को एक बार भोजन कराने से भगवान् भास्करसात वर्षतक तृप्त रहते हैं, अतः विद्वान् को चाहिए कि वह भोजकों को निरन्तर भोजन कराये। इनकी निंदा करने वाले ब्राह्मण को भी कभी भोजन न कराये । ३७। जो स्वेच्छा पूर्वक अपने पति को त्याग कर स्वतंत्रता से धूमती फिरती हैं अर्थात् (धुला व्यभिचार करती हैं),

प्रचुरं रोक्ते राजन्या नारी भवदेष्टः । ईदा सा स्वैरिणी राजन्युर्दे जबति वामिनो ॥४६

योऽथा रतो भवेत्प्रः स मेयः स्वैरिणीतः । रहगोपजीवी कथको यथा प्राचुर्लक्ष्मीः ॥४०

रहगोपजीवी राजेन्द्र तथा च बहुयाचकः । द्वे एते नामनी राजन्कवलस्य भूर्णीरतिः ॥

कृतेनामेन शादृश्व उदृतः कुरुनन्दन ॥४१

यस्तुर्ति गायते विषः श्रोत्स्वेत्यु द्वन्द्वसंविः । रंगोपजीवी प्रोक्तोऽथ द्विसीयः विरिणीरतिः ॥४२

सूचनं कथनं श्रोत्स रव्याशास्त्रैषु भारत । भूद्योजन्यु भूर्णापि स च श्रुत्यन्तः ॥४३

शतानीक उदाच

धौरो बन भृत्यक्षं भवतो धार्यैत्याश्राति । वेदाङ्गं ज्योतिः शास्त्रं तु वक्त्रं प्रोक्तं एव ॥४४

वहश्मो न भवेत्तेन रहितेन द्विजेन च । अभोज्ये षठनातस्य यद्वत्स्याद्वायुषां द्विद्य ॥४५

स्वेज्योऽस्त्वद्यं यथौ विभ्रोऽनर्थकेन त्वनर्थदद्य । विद्यैव कथयतो विष्वे अज्ञे भै संशयो भूर्णम् ॥४६

सुमन्तुश्वाच

सामु पृष्ठोऽस्मि भवता श्रूयतामन्त्र निर्णयः । यस्य जीव्यमिहं सैयमहनां विप्रस्त्रै वै भैरवै ॥४७

सांबत्वरेण ज्योतिषां भाननकाव्यसूचयः । न स योज्यो भवेत्प्राजन्यस्येवं जोरिक्ता भैरवै ॥४८

निष्कारणं पराणां च परोक्षं दोषकीर्तनम् । गुणानां च यथा गुणिः परिवाहररस्तु च ॥४९

उसी कुल कलंकिनी एवं पापिनी को 'स्वैरिणी' बताया गया है । ३८। राजन् ! जन्म-दीर्घ इक्ष प्रचुरम् व्यभिचार रूप पाप करने वाली स्त्री को भी 'स्वैरिणी' कहा गया है राजन् ! वह भी कुल का नाश करती है । ३९। ऐसी स्त्रियों के साथ रमण करने वाले ब्राह्मण, तथा रंगोपजीवी, कथक (वृत्य करने वाले पुरुष), जो प्राकृत (स्वभावतः) नर्तक हैं, (भोजन कराने के अयोग्य हैं) राजेन्द्र ! इत्यकों के, रंगोपजीवी, एवं बहुयाचक दो प्रकार के नाम बताये गये हैं । कुरुनन्दन ! जो ब्राह्मण किसी शाश्वा आदि जन समूहों में उच्च स्वर से गायत करता है, उसे 'रंगोपजीवी' कहते हैं । उसी प्रकार भारत ! जो नाशों की सूचना देते फिरते हैं, उन्हें 'नक्षत्र सूचक' कहा जाता है । (ये सभी अभोज्य हैं) । ४०-४३

शतानीक ने कहा—मुझे ब्राह्मणों के विषय में ऐसी बातें सुनकर महान् कष्ट हो रहा है, ज्योतिष विदानों ने ज्योतिषशास्त्रों को छाँ वेदांग बताया है । ४४। अतः बिना उसके अध्ययन किये ब्राह्मण 'षडंग पाठी' नहीं कहा जा सकता है किन्तु उसके अध्ययन करने वाले ब्राह्मण अभोज्य हैं (महान् दुःख की बात है) हे द्विष ! इस विषय में मुझे महान् संदेह उत्पन्न हो गया है, भोज्य बल्दंड हो, तथा ब्राह्मण अनर्थ की प्राप्ति न करे, इसलिए इस विषय को पुनः विवेचनपूर्ण कहने की कृपा कीजिए । ४५-४६

सुमन्तु बोले—आप ने बहुत उत्तम प्रश्न किया है, मैं इस विषय के निर्णय को कह रहा हूँ सुनो ! जिस ब्राह्मण का यह अंग (ज्योतिष शास्त्र) जीविका है, उसी के लिए निषेध किया गया है—राजन् ! जो ज्योतिषी ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करके जनता को नक्षत्र आदि की सूचना (जीविका के नाते) देते हैं, वहीं अभोज्य बताये गये हैं । ४७-४८। जो अकारण परोक्ष में किसी के दोष का वर्णन एवं गुण का लिपाव करते हैं, उन्हें 'निन्दक' कहा जाता है । राजेन्द्र ! जो ब्राह्मण जीविका के नाते देवालय में देवताओं के

ब्राह्मणो यस्तु राजेन्द्र वृत्त्या कर्म करेति है । देवतायतने देह देवानां पूजनं तथा ॥५०
 आधिपत्यं भक्षणं च नैवेद्यस्य परन्तर । इ ज्ञेयो देवतो राज्ञन्ब्राह्मणोः ब्राह्मणाधमः ॥५१
 नाधिकारस्तु विप्राणां भोमानां देवपूजने । वृत्त्या भरतशार्दूलं बाधिष्ठते दिशेषतः ॥५२
 यस्तु पूजयते देवीं ब्राह्मणो द्विष्टसोमतः । वृत्त्ये कुरुकुलश्रेष्ठं स याति नरकं प्रवृत्तम् ॥५३
 देवालयेषु सर्वेषु अप्रिकार्यं च तुव्रतः । यः कुर्याद्विष्टसोमेन दक्षोगतिमवास्त्रात् ॥५४
 देवालयेषु सर्वेषु दर्जदित्या शिवालयम् । देवानां पूजनं राजप्रपिकर्येषु वा विभो ॥५५
 अधिकारः सूर्यो राज्ञन्मोजकाना न संस्थाय । पूजयत्नन्तु ते देवान्नामुवन्ति परां गतिम् ॥५६
 नैवेद्यं भूज्जते यस्माद्दोजयन्ति च धात्करम् । पूजयन्ति च देवानां^१ विष्टतन्त्रेण हे गताः ॥५७
 पूजयित्वा तु है देवान्नेष्टेदं भक्ष्य च भ्रमोः । यान्ति ते परस्मं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥५८
 ब्राह्मणशर्णपि तं ब्रूयातोन्वे लति महामते । एवं करिष्ये श्रेयोऽर्थं नात्मनस्त्व वा विभो ॥५९
 इन्यामन्त्र्य ततो गच्छेत्त्वगृहं कुरुनन्दन । तथा परेऽहिं सम्मूज्य देवं सक्त्या दिवाकरम् ॥६०
 कृत्वा च पातकं राज्ञब्राह्मणान्मोजयेत्ततः । शाल्योदवनं तथा मुद्गां सुगां च नुद्गमेव हि ॥६१
 अपूपान्नुडपूपांश्च पयो दद्य तथा नृप । यत्स्तु तृष्णिमायाति भास्करो नरसत्तम ॥६२
 वर्ज्यान्ति भरतब्रेष्ठं भृणु त्वं गदतो मम । कुलत्यकान्मसूरांश्च निष्पावादींस्त्यैव च ॥६३

पूजन आदि कार्य करते हैं तथा वहाँ के अधिपत्य स्वीकार कर देवता के लिए समर्पित किये गये नैवेद्य के भक्षण भी करते हैं वे भी अधोज्य हैं । परंतप ! राजन् ! वे ब्राह्मणाधम 'देवलक ब्राह्मण' कहे जाते हैं । ४९-५१। भरतशार्दूल ! इस भूतल के ब्राह्मणों को सूर्य देव की सूर्ति पूजा करने का अधिकार नहीं है, विशेषकर उनके मंदिर के आधिपत्य स्वीकार करने वाले की । ५२। कुरुकुलश्रेष्ठ ! जो ब्राह्मण द्विष्ट के लोभवश देवी का पूजन करता है, उसे निश्चित नरक की प्राप्ति होती है । ५३। सुव्रत ! सभी मंदिरों में जो द्विष्ट के लोभवश हवन (यज्ञ) करता है, उसकी अधोगति होती है । ५४। एक शिवालय के अतिरिक्त और सभी मन्दिरों में देव पूजन एवं कर्म करने का अधिकार भोजकों को दिया जाया है इसमें सदेह नहीं । वे ही देवों की पूजा करते हुए उत्तम गति प्राप्त करते हैं । ५५-५६। भास्कर के भोजन कराने एवं उनके नैवेद्य के भक्षण करने और देवों की पूजा करने से दिव्यधिकार द्वारा उन्हें उत्तम लोक प्राप्त होते हैं । सूर्य की पूजा एवं उनके लिए अपित किये गये नैवेद्य के भक्षण करने से उसे देव के उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है । ५७-५८। महामते ! उनके (भोजक के) उप्र होने पर ब्राह्मण उनसे कहे कि 'विभो' मैं अपने अथवा आप के लिए नहीं प्रत्युत सर्वदा कल्याणार्थ यों ही करता आया हूँ, इसलिए ऐसा ही कर्हन्गा कुरुनन्दन ! इस प्रकार उसे आमंत्रित कर अपने घर को प्रस्थान करे । पश्चात् दूसरे दिन भक्ति पूर्वक सूर्य देव की आराधना करके हवन के उपरांत ब्राह्मण भोजन कराये । नृप ! साठी चावल के भात, सुगंधित मूँग, मालपूआ, गुडमिश्रित माल पूआ, दूध और नृपसत्तम ! इहाँ भक्ष्य पदार्थों द्वारा भास्कर देव अत्यन्त तृप्त होते हैं । ५९-६२। भरत श्रेष्ठ ! किन पदार्थों का त्याग करना चाहिए, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! कुलयी (मोरी), मसूर, निष्पाव आदि (मान्य

१. कर्मणः शेषत्वविवक्षया पष्ठी ।

सिसुकं च तथान्यच्च राजमाषांस्तथैव च । नैतानि भास्करे दद्याय इच्छेष्य आत्मनः ॥६४
 दुर्गम्य यच्च कटुष्मत्यन्यं भास्करस्य तु । विमिश्रांस्तंडुलांभाषिप न दद्याद्भास्करस्य र्थं ॥६५
 इत्यं भोज्य द्विं राजन्माशयेवर्कसम्पृष्टम् । प्रणम्य शिरसा देवमुदकेन समन्वितम् ॥६६
 गृहीत्वा केतनं प्रस्तु भजते न्यत्र लोकतः । नाइन्दक्षिणियतस्य न देवा न च मानवाः ॥६७
 निष्कम्य नगराद्वाजनात्वा पूर्वोत्तरां दिशम् । नात्युच्चे नातिनीदेच शुचौ देशेऽर्कमुत्सम् ॥६८
 जातं वृद्धं महाबाहो पूजित्यत्वा लगोत्तमः पूर्वोत्तरतात्रैव तस्य शास्त्र विशानृप ॥६९
 शास्त्राया अप्रतः पादे सुपूर्वमे पत्स्वविश्वे । मुत्प्रिष्ठे च पृथग्भूते सम्पृष्टं गृहभावजेत् ॥७०
 स्नातः दूज्य विवर्त्यन्तस्मर्कपृष्ठे लगोत्तम । ब्राह्मणान्मोजोत्यत्वा तु अर्को भे प्रीयतामिति ॥७१
 प्राशय मन्त्रेणार्कपुटं ततो भुञ्जीत वाग्यतः । देवस्य पुरतो दीर त्वस्पृशन्द्वानैः पुटम् ॥७२
 ॐ अर्कसम्पृष्टं भद्रं ते भद्रं तेऽर्कं सदास्तु वै । समापि कुरु भद्रं च प्रायश्चित्तप्रदो प्रभ ॥७३
 इमं भन्त्रं जपन्नराजन्स्मरभर्कं महामते । स्थित्वा पूर्वमुखो ब्रह्म वारिणा सहितं नृप ॥७४
 प्राशय द्वुद्दत्ते च यो राजन्स याति परमां गतिम् । दन्तैरत्पृश्य हे दीर तत्पुटं चार्कसंज्ञितम् ॥७५
 अनेन विधिनः भक्त्या कर्तव्या सप्तमी सदा । यावद्वर्षे महाबाहो प्रीतयेऽर्कस्द शद्या ॥७६
 यथेमां सप्तमीं कुर्याद्भास्करं प्रीययन्नः । तस्याक्षयं भवेद्वित्तमचलं साप्तमौरुषम् ॥७७

विशेष), सिसुक, और राजमाष कल्पाणेच्छुक को चाहिए कि ये सभी वस्तुएँ सूर्य के लिए समर्पित न करें । उसी प्रकार दुर्गाधावाली वस्तु, कडवी वस्तु, चाहे उसमें कडवापन अत्यन्त ही क्यों न हो, और मिथित चावल (सिचड़ी) सूर्य के लिए कभी समर्पण न करना चाहिए । ६३-६५। राजन् ! इस प्रकार ब्राह्मण भोजन के उपरांत अर्कसंपुट का प्राशन करे । सर्वप्रथम जल समेत सूर्य देव को शिर से प्रणाम करना चाहिए । जो लोगों से पृथक् होकर केवल उनके केतन (चिह्न), रूप को घण्ण कर उसकी पूजा आदि करते हैं, उनके घर पितर, देव, और मनुष्य कोई भी भोजन नहीं करते हैं । ६६-६७। राजन् ! नगर या गाँव से निकल कर पूर्व दिशा की ओर जाकर किसी पवित्र स्थान में उत्पन्न हुए उत्तमाक्षर के जो अत्यन्त ऊंचे या नीचे न हो, वृक्ष की पूजा सुसम्पन्न कर महाबाहो, लगोत्तम ! उसके उस शास्त्रा के जो पूर्व और उत्तर की ओर गयी हो, अथभाग में स्थित किसी पत्लव के किसी पत्ते की, जो उनमें मिला हो पृथक् न हो, पूजा कर अपने घर लौट आये । ६८-७०। लगोत्तम ! स्वयं स्नान कर अर्क पुष्पों द्वारा सूर्य की अर्चना एवं ब्राह्मण भोजन के उपरांत प्रार्थना करे 'सूर्य मेरे ऊपर प्रसन्न हों', इस प्रकार उसे (अर्कपुष्पों) से अभिमन्त्रित कर और मौन होकर सूर्य के सामने, दौतों से उस का स्पर्श न होने पाये, भक्तण करे । ७१-७२। राजन्, महामते ! जो अर्क संपुट, इत्यादि भंत्र के जप करके पूर्वाभिमुख स्थित हो, जो जल समेत अभिमन्त्रित कर उसके भक्तण करते हैं, पर, दीर ! उस अर्कपुट का दौतों से स्पर्श न होने पाये, तो उसे उत्तम गति प्राप्त होती है । ७३-७५। महाबाहो ! श्रद्धा समेत वर्ष की समाप्ति तक प्रत्येक शरदमी वर्ष इसी तत्त्विधान द्वारा समाप्त करना चाहिए इससे सूर्य प्रसन्न होते हैं । भास्कर के प्रसप्रार्थं जो पुरुष इस प्रकार सप्तमी व्रत के अनुष्ठान करते हैं, उसकी सात पीढ़ी तक अक्षय एवं निश्चल सम्पत्ति प्राप्त होती

कुर्वते रजतं ताङ्गं हिरण्यं च तथा लक्ष्यम् । हृषेनां सिद्धिमायातः कौशुमि: सहस्र गतः ॥७८
कुष्ठरोगाच्च वै मुक्तो जयस्तीमो नहेष्टतः । वृहद्वलव्यजः कौपि याज्ञवल्क्योऽय वृण्डः ॥७९
अर्कं चैव समाराष्य ततोऽगुस्तेऽर्कसम्बन्धताम् । इयं धन्यतमा पुण्या सप्तमी पापनाशिनी ॥८०
पठतो भृत्यात् राजन्कुर्वतां च लितेष्टः । तस्मादेषा तदा कार्या विधिवच्छेयसेऽनध ॥८१

शतानीक उत्तराच

जनकादयो यथा सिद्धिं गता भानुं प्रशुज्य च । श्रुतं यदा तु चहरो न श्रुतं कौशुमिर्यम् ॥८२
सिद्धिं गतोऽर्कसमाराष्य कुष्ठान्मुक्तश्च मुद्रत । लक्ष्मासौ कौशुमिर्विग्रः कथं कुष्ठमवाप्तशःन् ॥८३
कथमाराधयामास भानुं वेवपर्त द्विज । दत्तस्ये दिग्म लिखिलं कीर्तयन्वच लक्ष्माचतः ॥८४

इति श्रीभद्रिष्ये भवापुराणे ज्ञात्ये पर्वती सप्तमीकल्ये सौरधर्मेषु सूर्यपूजादिवर्णं

नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः । २१०।

अथैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

अर्कसम्मुटिकावर्त्तनम्

सुमन्तुत्तुत्तराच

साधु पृष्ठोऽस्मि राजेन्द्र भृगुष्य गदतो मम । आसीत्तुरा भवाविद्वान्त्राह्यणः स्थानगोत्तमः ॥१

है । ७६-७७। और स्वर्ण, चाँदी, ताँबा, एवं हिरण्य की अक्षय निधि प्राप्त होती है, इसी सप्तमी व्रतानुष्ठान द्वारा कौशुमि ने शीघ्र सिद्धि प्राप्ति की है । ७८। एवं इसी के आचरण द्वारा वे कुष्ठ रोग से मुक्त हुए हैं और उसी प्रकार जयस्तीम राजा वृहद्वलव्यज, कौपी, याज्ञवल्क्य तथा वृण्ड इस सप्तमी द्वारा सूर्य की उपासना करके सूर्य के समान हो गये हैं, इसलिए यह सातमी धन्यतम, पुण्य रूप, एवं पापनाशिनी है । ७९-८०। राजन् ! इसके पढ़ने, सुनने अथवा विशेष (सप्तमी व्रत का अनुष्ठान) करने से समस्त पापों के नाश होते हैं, अतः अनध ! कल्याणार्थ इसके अनुष्ठान, विधान पूर्वक सदैव सुसम्पन्न करना चाहिए । ८१-८४

शतानीक ने कहा—जनकादि ने जिस प्रकार सूर्य की आराधना द्वारा सिद्धि प्राप्ति की है, मैंने अनेकों बार सुना है, किन्तु, मुव्रत ! कौशुमि बाह्यण ने किस प्रकार सूर्य की आराधना करके सिद्धि प्राप्ति की और कुष्ठ रोग से मुक्त हुए हैं, मैंने कभी नहीं सुना, तथा द्विज ! यह कौशुमि नामक ब्राह्मण कौन है, कैसे कुष्ठ रोगप्रस्त हुआं और उसने देवपति सूर्य की आराधना कैसे की, हे विप्र ! ये सभी बातें बताने की कृपा कीजिए । ८२-८४

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्य के सौर धर्मों में सूर्य पूजादि वर्णन नामक दो सौ दशवर्षी अध्याय समाप्त । २१०।

अध्याय २११

अर्कसम्मुटिकावर्त्तन

सुमन्तु बोले—राजेन्द्र ! आप ने अत्युत्तम प्रश्न किया है, मैं उसका उत्तर दे रहा हू, सुनो ! पहले

स जतः पुत्रसहितो जनकस्याश्रमं द्विजः । तत्र वादोऽभवतेषां विप्रेरन्यर्वपीतम् ॥२
 क्रोधाविष्टेन वै तत्र हतः कौयुग्मिना द्विजः । ते दृष्ट्वा हतं विप्रं त्यक्तः पित्रा स कौयुग्मिः ॥३
 भ्रातृभिष्ठ महाबाहो तथा शिष्टैङ्गच्च कृत्स्नशः । प्रत्युक्तः स च सर्वस्तु शोकदुःखसमन्वितः ॥४
 तीर्थानि स जगत्स्थ विक्षयन्नायतनानि च । न च मुक्तस्त्वसौ विप्रः सहसा द्वाहृत्यदः ॥५
 अनुलेऽथ तथा विप्रे परो व्याधिरजायत । कर्णनासाविहीनस्तु पूर्यशोणितविश्वदः ॥६
 पूर्णिमी पर्यटन्तस्थी पुनरागात्पुर्युर्गृह्ण । दुःखोऽपहतचित्तस्तु पितरं लाक्ष्यब्रह्मीदृ ॥७
 पितर्गतस्तु तीर्थानि पूर्यन्यायतनानि च । भ्रुतोऽस्मि नानया तात नूरया द्वाहृत्यदः ॥८
 कृतेऽपि द्वि परे तात प्रायशिक्षिते दु भेडनम् । किं करोमि द्व्य गच्छामि तातातीव एजो जस ॥९
 कृतेन जर्मणा धेन अत्यायासेन मे विमो । जन्मेतु ब्रह्महत्येण व्याधिश्चायं परन्तप ॥१०
 कप्पतां भा चिरं तात कुरु निःश्रेयसं भम । हिरण्यनामो विष्टस्तु श्रुत्वा वाक्यं मुतस्य तु ॥
 शोकदुःखभिन्नतस्तु वाक्यं पुत्रमुवाच ह ॥११

हिरण्यनाम उवाच

शातः पुत्र तद्बक्तेनः प्राप्तो यस्त्वटता भ्रमीप् ॥१२
 तीर्थानि च त्वयः इत्य प्रायशिक्षानि कुर्वता । न चापि द्वाहृत्या त्वां मुञ्चते मत्कुलोद्धर ॥१३

समय में एक उत्तम ब्राह्मण था, महान् विद्वान् उसने अपने पुत्र की साथ लेकर राजा जनक के यहाँ प्रस्थान किया । वहाँ पहुँचकर जनक जी के प्रतिष्ठित विद्वानों के साथ उसके पुत्र से वाद-विवाद हो गया । १-२। नृपोत्तम ! क्रोध के आवेश में आकर उसके पुत्र कौयुग्मि ने किसी एक ब्राह्मण की हत्या कर डाली । ब्राह्मण की हत्या देखकर उसके पिता ने कौयुग्मि का त्याग कर दिया । महाबाहो ! उसी भाँति उसके भाई बन्धु एवं शिष्ट मण्डल आदि सभी के द्वारा त्याग किये जाने पर दुःखी एवं चितित होकर उसने तीर्थ यात्रा तथा दिव्य देवालयों में दर्शनार्थ आना-जाना आरम्भ किया । पर वह ब्राह्मण ब्रह्म हत्या से सहसा मुक्त न हो सका । ब्रह्म हत्या से बिना मुक्त हुए ही उसे एक दूसरी व्याधि (कुष्ठ) भी उत्पन्न हो गई । उसके द्वारा उसके नाक-कान गलित होकर गिर गये और प्रत्येक अंगों से (पीठ) तथा रक्तस्राव होने लगा । उसने समस्त पृथ्वी का भ्रमण करने पर भी किसी भाँति उससे अपने को मुक्त होते न देख पुनः घर आकर दुःखपूर्ण वाणी द्वारा अपने पिता से कहा—हे पिता ! मैंने समस्त पुण्यतीर्थों तथा देवालयों की यात्रा की, किन्तु इस कूर ब्रह्म हत्या से मुक्त न हो सका । तात ! मैंने इसके लिए उत्तम प्रायशिक्षित भी किये, पर, सफलता न मिली । हे अनंथ ! यह महान् रोग मुझे अत्यन्त कष्ट दे रहा है, मैं क्या कहूँ, और कहाँ जाऊँ । हे विभो ! कोई ऐसा छोटा उपाय बताने की कृपा कीजिए जिसके द्वारा थोड़े ही प्रयत्न करने पर इस ब्रह्म हत्या तथा रोग का शमन हो जाय, परंतप तात ! शोध बताइये, देर न कीजिए तात ! मेरा कल्याण आप से ही हो सकेगा । ब्राह्मण हिरण्यनाम ने अपने पुत्र की ऐसी बातें सुनकर चिंतित एवं दुःखी होकर उससे कहा—३-१

हिरण्यनाम बोले—पुत्र ! पृथिवी के भ्रमण करते हुए तुम्हें जिन कष्टों का सामना करना पड़ा है, मुझे अच्छी तरह मालूम है । बत्स ! तुमने तीर्थयात्रा तथा प्रायशिक्षित किये, पर इस ब्रह्म हत्या से मुक्त न

उपायनेकं दक्ष्यामि येन त्वं मोक्षमाप्स्यसि । अल्पायासेन वै पुत्र शृणुज्व गदतो मम ॥१४

कौथुमिश्वाच्च

आराधयानि कं देवं ब्रह्मादीनां कर्यं विभो । शरीरेण विहीनोऽस्मि हेतुना सर्वकर्मणःम् ॥१५

हिरण्यनाभ उवाच

सिद्धिसन्ततिपुकेन कर्मणा तुष्टिमाप्नुयुः । देवैरपि सुपूज्योऽयमुपलेपनमार्जनैः ॥१६
भानुरेको द्विजश्रेष्ठ ऊन्नुरेवं मनीषिणः । ब्रह्मा शिर्णुर्महादेवो जलेशो धनवस्तथा ॥१७
भानुराश्रित्य सर्वं ते सोदिते दिवि पुत्रक । तस्माद्ब्रान्तोः सर्वं देवं नाहं दक्ष्यामि कर्ज्ञन ॥१८
एवं भानुं सर्वनान्यमध्युनात्तिलकानदम् । पितरं मातरं तात नगणां नात्र संशयः ॥१९
तमाराधय वै भक्त्या जपन्मन्त्रसनुत्तमम् । इतिहासपुराणानि भृणु श्रद्धासनन्वितः ॥२०
आराधयनर्विं भक्त्या जपन्साम महामते । तुराणानि ततो लोके मोक्षं प्राप्स्यसि पुत्रक ॥२१

कौथुमिश्वाच्च

दिश भामानि वै तात प्रवराणि महामते । शङ्कारप्रवरोद्गीयं प्रस्थानं च चतुष्टयम् ॥२२
पञ्चमः परिहारोऽत्र षष्ठमाहृत्तमद्भूतम् । निधनं सप्तमं सात्त्वां साप्तविध्यमिति स्मृतम् ॥२३
साप्तविध्यमिति प्रोक्तं हिंकारप्रणदेवु च । अष्टमं च तव शाठयं नवमं वामदेविकम् ॥२४

हो सके ! मत्कुलकेमल ! एक उपाय जिसके द्वारा तुम्हें इस कष्ट से मुक्ति प्राप्त हो जायेगी, पुत्र ! वह अत्यं प्रथल साध्य है, मैं बता रहा हूँ सुनो ! । १२-१४

कौथुमि ने कहा—विभो ! किस देव की आराधना काहै, ब्रह्मा आदि देवों की आराधना इस शरीर से दैसे की जा सकती है, क्योंकि महान् रोगप्रस्त होने के नाते मैं अपने को शरीर हीन समझता हूँ और सभी कर्म शरीर द्वारा ही सुसम्पन्न किये जा सकते हैं । १५

हिरण्यनाभ बोले—(सूर्य) जिस कर्म द्वारा प्रसन्न होते हैं, उसके पण-पग में सिद्धियाँ निहित हैं, उपलेपन एवं मार्जन द्वारा समस्त देव उनकी पूजा करते हैं क्योंकि वे उनके पूज्य हैं । १। मनीषियों ने बताया भी था कि द्विजश्रेष्ठ ! 'एक सूर्य ही पूज्य है' ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, वरुण, और कुबेर ये सभी सूर्य देव के आश्रित रहकर स्वर्ग में आनन्दानुभव करते हैं, इसलिए पुत्र ! सूर्य के समान कोई अन्य देव दिखायी नहीं दे रहा है । १६-१८। तात ! सभी मनव्यों के सूर्य मात्र निश्चिल कामनाओं के सफल करने वाले, एवं माता पिताहैं, इसमें संदेह नहीं है ॥ १९ । अतः भक्ति पूर्वक उनके मंत्र के जप करते हुए उनकी आराधना और श्रद्धा समेत इतिहास पुराणों का श्रवण करो । २०। महामते ! भक्तिपूर्वक सूर्य की आराधना, शान्ति समेत (साम के) जप एवं पुराण श्रवण करने से तुम्हें इसी लोक में मोक्ष प्राप्त हो जायेगा । २१

कौथुमि ने कहा—तात ! महामते ! उस उत्तम साम तथा ओंकार प्रवरोद्गीय के जिसमें चार प्रस्थान बताये गये हैं, पाँचवाँ परिहार, छठाँ अङ्गूत, सातवाँ निधन, इस प्रकार साम के सात भेद हैं । २२-२३। इस प्रकार इस सात प्रकार के साम और हिंकार प्रणव वाले में भी सात विद्य हैं, आठवाँ शाठ्य, नवाँ वामदेविक (वामदेव वाला), दशवाँ ज्येष्ठसाम, जो ब्रह्मा को अत्यन्त प्रिय है, तात ! इन्हीं

ज्येष्ठं तु इशामं साम बेष्टसे प्रियमुत्तमम् । एतेषां तात सामाना वै कष्टे जाप्यं परं मतम् ॥
जपित्वा तु अहं शक्त्या गच्छामि परमं पदम् ॥२५

हिरण्यनाभ उवाच

साधु पुरं कुलं पूतं स्वत्पुत्रेण समेन च ॥२६
एवं गतस्यापि हि ते जाता पुत्र विधे: स्मृतिः । एवं ततः न सन्वेहः सः मान्देतानि पुत्रक ॥२७
प्रवराणि हि सामाना वै ग्रहणा कथितानि ह । एषामपि परं प्रोक्तं सः भद्रयमनुत्तमम् ॥
तस्मातेकं परं जाप्यं सर्वपापभयापह् ॥२८

कौथुमिलवाच

कथ्यतां तात सज्जीवं दत्तु सामदृयं पदम् । एतेषां तात सामाना तु नान्यज्ञायं च यद्गुर्वेत् ॥२९

हिरण्यनाभ उवाच

ज्येष्ठसामपरं पूर्वं द्वितीयं गदतः शृणु ॥३०
ततः आव्यं तु तीयं तु जपत्वं मुक्तिमेच्छता । ततश्च परमं प्रोक्तं स्वयं देवेन भानुना ॥३१
स्वयं दैवतमादिष्वं छन्दसामुत्तमं चत्तम् । प्रियं हिरण्यगर्भस्य प्रियं सूर्यस्य सर्वदा ॥३२
जपश्च विनियोगोऽपि लक्षणं च निबोध मे । सत्येन स्वरलीनस्तु शूकरादि स्मृतं बुधीः ॥३३
ऋतुभावस्तथा धर्मो विधर्मः सत्यकृत्या । धर्माधर्मो तथा कार्यो धर्मदेवनमेव च ॥३४
यदेभिर्गीर्यते शब्दे रुचिरं समयैर्द्विजैः । जाप्यं तत्परमं प्रोक्तं स्वयं देवेन भानुना ॥३५

सामों को कण्ठस्य जपकर, (क्योंकि यही (कण्ठस्य) जप उत्तम बताया गया है) में परम पद की प्राप्ति में समर्थ हो जाऊँगा । २४-२५

हिरण्यनाभ बोले—पुत्र ! अच्छा कहा । तुम्हारे ही समान पुत्रों से कुल पवित्र होता है, क्योंकि इस विप्रावस्था में भी तुम्हें विधान का स्मरण हो रहा है । पुत्र ! साम के इन सामान्य प्रवरों को स्वयं बह्या ने कहा है, इसमें सदैह नहीं । इनसे भी उत्तम दो साम बताये गये हैं और उनमें एक का जप अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि यह उत्तम और समस्त पाप नाशक हैं । २६-२८

कौथुमि ने कहा—तात ! उसे शीघ्र बताने की कृपा कीजिए, जिन देवों को आप उत्तम बता रहे हैं क्योंकि उसके सामने किसी अन्य का जप अनावश्यक होगा । २९

हिरण्यनाभ बोले—प्रथम ज्येष्ठ साम उत्तम बताया गया है, अब दूसरे को बता रहा हूँ सुनो ! । ३०। पश्चात् तीसरे को बताऊँगा, जो श्राव्य एवं मुक्ति के इच्छुकों के जप करने के अत्यन्त योग्य हैं, और जिसे सूर्य देव ने बताया है । ३१। वेद के इस व्रत विधान को देवों के हितार्थ स्वयं सूर्य ने बताया था, जो हिरण्य गर्भ (बह्या) तथा सूर्य को सदैव अत्यन्त प्रिय है । ३२। उनके जप, विनियोग, एवं लक्षणों को बता रहा हूँ, सुनो ! उसके स्वर विलीन होने पर पाठक को शूकरादि होना विद्वानों ने बताया है । ३३। ऋतु, भाव, धर्म, विधर्म, सत्यकृत, धर्म-अधर्म, तथा धर्म वेदन, इनके गायन रुचिर शब्दों द्वारा ब्राह्मणों को करना चाहिए । क्योंकि उत्तम, जप को स्वयं सूर्य देव ने बताया है । ३४-३५। इसका जप करने वाला

एतदै जपमानस्तु पुनरावत्ते न तु । सर्वरोगविनिर्मुक्ते मुच्यते ब्रह्महत्या ॥३६
 एतज्जाप्य तु सञ्जप्य आराधय दिवाकरम् । गायन्साम् तद्र ग्रात्मं शृणु पौराणिकं सुत ॥३७
 ज्येष्ठसाम्नोऽपि ते पुद्ध लक्षणं दधयात्मि हि । आद्यायादाज्यदोहेति ज्येष्ठसाम्नोऽपि लक्षणम् ॥३८
 तद्र आव्यं जपं पुत्रज्येष्ठगायै इवः सदा । समाराधय शृच्छन्दै पुत्राणांमिदं पुत्रक ॥
 एवमाराध्य देवेणं ततो द्विःखं प्रहास्यति ॥३९

सुसन्तुरुद्धाच्च

ततः श्रुत्वा पिर्दुवाक्यं साम्भवः कौशुभिस्तथः ॥४०
 आराधयनात रविं भृत्या श्रद्धासमान्वितः । ततः आव्यं जपन्तराजंरित्रकाले पुरतो रवे ॥४१
 शृष्टतस्तु पुराणानि ब्रह्महत्या गता सदा । व्याधिश्च कुरुणार्द्वलं कसमेतच्छ्रुतस्य थे ॥४२
 जपता यत्कलं तेन देवं पूजयता नृप । सोऽपि प्रात्मो रविं राजम्बृगुष्वीकमना नृप ॥४३
 स गतो भूतिमान्विषः प्रसादाद्वास्त्वरस्य तु । प्रविश्य लप्तुरत्म श्रान्तोः शब्दं यत्परमं विज्ञोः ॥४४
 आदत्ति न चाल्पयि गतोऽल्लो परमं पदम् । इति ते कथितं राजन्तरः तिद्विं चहात्मिजः ॥४५
 उपोष्येमां भजेद्वीर सप्तमीं याति भास्करम् । कौशुभिन्नरेशार्द्वस्त्र प्रसादाद्वास्त्वरस्य तु ॥४६
 जपमानस्तु वै सोऽपि पुराणश्रवणस्तथा । इत्येषा कथिता राजन्त्रयमा सप्तमी तथा ॥४७

पुनर्जन्मा नहीं होता है, समस्त रोगों की मुक्ति पूर्वक वह ब्रह्म हत्या से भी छुटकारा पा जाता है । ३६।
 इसी के जपपूर्वक तुम सूर्य की आराधना करो । तुम्हें इस प्रकार साम गायन का वर्णन बता दिया गया,
 तुम् ! पर्व दौराणिक का लक्षण बतादा जा रहा है, सुनो ! पुत्र ! ज्येष्ठ साम के लक्षण भी तुम्हें बता रहा
 हैं । 'आद्यायादाज्य दोहेति' यही ज्येष्ठ साम का लक्षण है, पुत्र ! यही तुम्हारे लिए श्राव्य है तथा इसी के
 गायन द्वारा सूर्य की आराधना करो । पुत्र इसी प्रकार सूर्य की आराधना करने पर तुम्हारे कष्ट के शमन
 होंगे । ३७-३९

सुमन्तु बोले—सामगायन करने वाले कौशुभि ने अपने पिता की ऐसी बातें सुनकर श्रद्धा-भक्ति
 समेत सूर्य की आराधना प्रारम्भ की । राजन् ! सूर्य के सामने तीनों संघ्याओं में वह उस का जप करने
 लगा । कुशशार्द्वलं ! इसी भाँति (सूर्य) पूजन एवं पुराणों के श्रवण करने से उसकी ब्रह्महत्या तथा (कुष्ठ
 -की) व्याधि नष्ट हो गई । यह उसके श्रवण का फल है । नृप ! जप करते हुए उसने सूर्य की आराधना,
 द्वारा जिस फल की प्राप्ति की है, राजन् ! सावधान होकर सुनो ! मैं बता रहा हूँ । नृप ! भास्कर की
 कृपावश उस ब्राह्मण ने भूतिमान् (शरीर धारण कर) होकर विशु सूर्य के मण्डल में प्रवेश करके उनके
 उत्तम पद की प्राप्ति की है । ४०-४१। उसने ऐसे उत्तम पद की प्राप्ति की है, जिसके कारण भाज भी उसे
 जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ा है । राजन् ! इस प्रकार तुम्हें इस उत्तम बाहुण की सिद्धि की कथा बता दी
 गयी । वीर उपवास रहकर सप्तमी के व्रतानुष्ठान द्वारा उस कौशुभि ने भास्कर में सायुज्य मोक्ष की
 प्राप्ति की है । यह भास्कर की कृपा है । राजन् ! इस प्रकार प्रथम सप्तमी तथा अर्क पुटवाली

अर्कस्य पुटिका पुण्या वित्तवा या प्रिया रदे:

॥४८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मणे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मेऽर्कसप्तमिष्टिकानामसप्तमीव्रतवर्णनं
नानेकद्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः । २१।

अथ द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सौरार्चनविधिवर्जनम्

सुमन्तुरवाच

इत्येषा कथिता और अर्कत्सप्तमिष्टिका तत्र ! द्वितीया मरित्सैर्वा तु शृणुष्व गदतो यम ॥१
शुक्लपदे तु चैत्रस्य वर्षदां सम्यगुपेषितः । पूजयेद्वात्स्करं भक्त्या सौरधर्मविधानतः ॥२

शतानीक उवाच

हूहि सर्वान्तम लहान्मन्त्रान्युष्यान्त्सेषतः । सूर्यादिद्वयं चापि शिरोन्यासयुतांस्तथा ॥३

सुमन्तुरवाच

अहं ते कथयिष्यामि रहस्यं परमं विभो । यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं भक्त्या भानोर्भात्मनः ॥४
सर्वपापक्षयार्थाय तच्छृणुष्व महामते । सर्वपापहरं पुण्यादित्यं लोकपूजितम् ॥५
शिखादामसमायुक्तं वकारामृतमुत्तमम् । अं वं फट् । अं एष सूर्यः स्वयं तात मन्त्रमूर्तिर्भाबलः ॥६

सप्तमी, जो पुण्य, एवं धन प्रदान करने वाली होती है, और सूर्य को अत्यन्त प्रिय है, बता दी गई । ४५-४८

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मणे पर्वे के सप्तमी कथ्य के सौरधर्म में अर्कसप्तमिष्टिका सप्तमी व्रत-वर्णन
नामक दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त । २१।

अध्याय २१२

सौरार्चन विधि वर्णन

सुमन्तु ने कहा—वीर ! अर्कसंपुट वाली प्रथम सप्तमी की व्याख्या तुम्हें बता दी गयी अब मिर्च
धारण वाली दूसरी सप्तमी की व्याख्या बता रहा हूँ, मुनो ! । १। चैत्रमास के शुक्ल पक्ष की पच्छी के दिन
उपवास करते हुए सौर धर्म के विधान द्वारा भक्ति पूर्वक सूर्य की पूजा करनी चाहिए । २

शतानीक बोले—हे ब्रह्मा ! सभी पुण्यस्वरूप वेद मंत्र तथा विशेषकर आदित्य हृदय, जिसमें
शिरोन्यास बताया गया है, ये सभी बातें मुझे बताने की कृपा कीजिए । ३

सुमन्तु बोले—विभो ! रहस्य समेत उस उत्तम विधान को, जिसे महात्मा सूर्य के विशेष भक्त होने
के कारण ब्रह्मा ने स्वयं कहा था बता रहा हूँ मुनो ! । ४। महामते ! उस विधान पूर्ण आराधना को करने
से समस्त पापों के नाश होते हैं । सभी पापों के अपहरण करने वाला, पुण्य, आदित्यरूप, एवं लोकपूजित
उस उत्तम वकार को जिसमें शिखा लगायी गयी हो (अं वं फट्) मंत्र रूप जाने । तात ! ओंसमेत

क्षम्यानुस्मरणान्मन्त्री नित्यं मधुरभोजनः । संवत्सरेण वेवेणं साक्षाद्ग्रानुं प्रपश्यति ॥७
 अग्निधिष्टव्योश्च निर्मुक्तः सूर्यलोके स गच्छति । सततं जपमानस्तु राजन्मन्त्रविदां वरः ॥८
 मनसा कर्मणा चाचा शापानुप्रहृतोऽपि वा । कीरताः मौनमाश्रित्य दिविक्ते नियतेन्दियः ॥९
 जपित्वा द्वादशलक्षं सगरीरो दिवं व्रजेत् । वैलोक्यं चरते राजिचन्तामणिरिवेच्छया ॥१०
 अथेवं परमं वत्तं सूर्यस्य हृदयं न्यूनु । स्मर्तव्यं शुचिना नित्यं सर्वापभापहृम् ॥११
 वियुक्तं चन्द्रसंपुत्तलृकारेण च भारतः । अङ्कारदोषितं चैव हृदयं परिकीर्तितम् ॥१२
 यकारविन्तुसंयुक्तं वैशालः कथितो बुधैः । यकारश्च वकारश्च मात्रा बिन्दुस्तथा नृप ॥१३
 इष्टं कवचस्तदिष्टमस्त्रं वस्थे निरोधे मे । प्रणवादिं दुकारं च सनुत्वारं कटस्तथा ॥१४
 इदमस्त्रं स्मृतं राजशमृतं च निरोधे मे । बिन्दुचन्द्रसमायुक्तं वकारमसृतं स्मृतम् ॥१५
 ॐ ब्रह्मस्त्रमसृतं गायत्री कष्टपि तेरतेरां धेनुर्देव परिकीर्तितम् । यकारश्च वकारश्च रिरोवेत्रमादिशेत् ॥१६
 अनेत्र एतान्यद्वानि सूर्यस्यामिततेजसः । आवित्यं सूर्यिन् विन्द्यस्य हृदये हृदयं न्यसेत् ॥१७
 सावित्री कण्ठदेवो तु अशोकं सूर्यिन् चिन्तयेत् । अर्कन्यासो मयदल्खातो विद्वान्ल्यासं प्रकल्पयेत् ॥१८
 एकाकारस्य सूर्यस्य शृष्टवर्चनविधिं परम् । त्रयमं किंकणीमुद्वां बद्धवा तु हृदये नृप ॥१९
 प्राणायामे च तथा परिवीरसमन्वितम् । एकाकारं समावेति आत्मशुद्धिर्घर्यमाददात् ॥२०

यह मन्त्र सूर्तरूप, महाबली, एवं स्वयं सूर्य रूप है, इसका अनुष्ठान करते बाला, इस मन्त्र के स्मरण मात्र से मधुर भोजन प्राप्त करता है। इस प्रकार एक वर्ष तक इसके अनुष्ठान करने से सूर्य के साक्षात् दर्शन भी प्राप्त होते हैं ॥५-७। राजन् ! वह मन्त्र वेत्ता निरन्तर जप करके व्याधि एवं भृत्य से मुक्त होकर सूर्य लोक जी प्राप्ति करता है। मन, वाणी, एवं शरीर द्वारा अनुष्ठान के पालन पूर्ण करते हुए कीर भोजी मौन, तथा विवेचन पूर्वक संयमी रहकर उस मन्त्र की बारह लक्ष संख्या के जप करने से वह पुरुष इस शरीर से स्वर्ग प्राप्त करता है, चाहे वह प्रथम शापित ही क्यों न रहा हो, तथा राजन् ! वह चिंतामणि (सूर्य) की भाँति तीनों लोकों में येषच्छ विचरण करता है ॥८-१०। इसके पश्चात् सूर्य का हृदय, जो पवित्रता पूर्ण स्मरण करने योग्य एवं समस्त पापों के नाश करता है, बता रहा हूँ, सुनो ! भारत ! चन्द्राकार (मात्रा) समेत ऋकार, ओंकार समेत होने पर वह उनका हृदय बताया गया है ॥११-१२। नृप ! बिंदु समेत यकार को विद्वानों ने 'वैशाल' बताया है, और मात्रा बिन्दु समेत यकार तथा वकार की हृष्ट 'कवच' बताया गया है अतः अस्त्र को मैं बता रहा हूँ सुनो ! प्रणव (ओं) समेत दुकार, अनुस्वार समेत कट को अस्त्र बताया गया है। राजन् ! इस अमृतास्त्र को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! चन्द्र बिन्दु समेत वकार (वं) को अमृतास्त्र कहा गया है ॥१३-१५। ब्रह्मन् ! ओं समेत इस अमृतास्त्र तथा 'तेरोरां धेनुः' गायत्री, यकार, वकार, रिरोवेत्र, एवं व्यनेत्र, अमित तेज वाले सूर्य के यहीं अंग बताये गये हैं ; शिर से आदित्य के न्यास पूर्वक हृदय में हृद के न्यास करें। कंठप्रदेश में गायत्री और सभी के न्यास शिर में होने चाहिए। इस प्रकार सूर्य के न्यास, जिसे विद्वानों ने बताया है, तुम्हें सुना दिया। अब एकाक्षरात्मक सूर्य के उत्तम अर्चन विघ्नान को सुनो ! बता रहा हूँ सुनो ! नृप ! प्रथम हृदय में किंकणी मुद्वा से बाँधकर आत्म शुद्धि के लिए उस एकाक्षर का स्मरण चिन्तन करे प्राणायाम में भी यह मुद्वा आवश्यक है ॥१६-२०। पुनः उसी वकार

पुनस्त्वामेव बध्यं तु लक्षणात्मना समेत् ॥२१
 एतत्कृत्वादित्यसमो भवतीति न संशयः । कृत्वा च मुद्रां प्रासादे अस्त्रं योज्य महीपते ॥२२
 प्रासादशोभनं स्थाप्तं हृत्वा तद्वरतर्पणं । कपचेनार्कवाञ्छनुं आलयेहृष्णनक्षियाम् ॥२३
 ततोऽर्थनामं पुष्टेभ्यं पूजयेद्विधिवद्वृत् । हृदि ना स्नापयेद्वेषं ततः पूजां समाचरेत् ॥२४
 पश्चमुद्रा पुष्टगर्भा हेवं शिरसि विज्ञेतद् । आदाहितो भवेदेवं देववेदो दिवाकरः ॥२५
 हृदयेनार्थसंपुक्ता पूजां बभीत भारतः । हृदयेन च नैवेद्यं बातव्यं शस्त्रितो विभोः ॥२६
 यथाशक्ति जपं कुर्यात्मुखती वाप्तसेन्द्रियः । अनेन विधिना राजन्सर्वकार्याणि साधयेत् ॥२७
 न स्वचित्प्रतियातः स्थाल्ल चापि दुरितं भवेत् । व्योममुद्रां परं बध्नना कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥२८
 देवं विसर्जयेत्पश्चाद्वृत्यन गहीपते ॥२९

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ज्ञाहे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरधर्मं सौरार्चनविधिवर्णनं
 नाम द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१॥

अथ त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः सौरार्चनविधिवर्णनम्

सुमन्तुरुखाद्

दृष्ट्वा तु पावकं देवं पावकस्यं दिवाकरम् । अव्यातु सपरीबारं घुकारं परिकीर्तयेत् ॥१

द्वारा आत्मालभ्नत करे । महीपते ! इस प्रकार प्रासाद पर मुद्रा की रचना कर एवं अस्त्र समेत उसे सुसम्पन्न करने पर वह सूर्य के समान हो जाता है, इसमें संदेह नहीं । भरतर्षभ ! ऐसा करने से प्रासाद सुशोभित होता है । कवच के धारण करने ते वह सूर्य के समान होकर वर्धन क्रिया द्वारा शत्रु का प्रक्षालन (सफाया) करता है । २१-२३ः नृप ! इसके उपरांत गुणों से अर्ध्यपात्र को अलक्षण कर उसी द्वारा हृदय में सूर्य के ध्यान करते हुए उन्हें स्नान कराना चाहिए । २४। पुष्ट गर्भित पश्च मुद्रा का न्यास सूर्य देव के शिर स्थान में करना चाहिए । इस भाँति देवाधिदेव दिवाकर का आवाहन बताया गया है । २५। भारत ! अर्ध्य समेत उनकी अर्चना सुसम्पन्न करके उहें हृदय से आबद्ध करे और उसी विभु (सूर्य) के लिए यथाशक्ति हृदय द्वारा ही (ध्यानमग्न) ही नैवेद्य समर्पित करना चाहिए । २६। इस व्रत के अनुष्ठापक का वाणी तथा इन्द्रियों के संयम पूर्वक यथाशक्ति जप करना चाहिए । राजन् ! इसी विधान द्वारा इस व्रत के सुसम्पन्न करने पर उसके सभी कार्यों की सिद्धि होती है । २७। कहीं पर भी उसके ऊपर आधात प्रतिथात एवं पाप-परिणाम दुःख के उदय नहीं होते हैं । महीपते ! उस उत्तम मुद्रा द्वारा आबद्ध एवं प्रदक्षिणा की पूर्ति करके ही हृदय द्वारा सूर्य देव की विसर्जन क्रिया सुसम्पन्न करनी चाहिए । २८-२९

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मणर्व के सप्तमी कल्प के सीर धर्म में सीरार्चन विधि वर्णन
 नामक दो सौ बाहदवाँ अध्याय समाप्त । २१॥

अध्याय २१३ सौरार्चनविधिवर्णन

सुमन्तु ने कहा—पावकस्य पावक रूप दिवाकर देव को देखकर उनके साङ्गोपांग घुकार रूप का

एवं हुते शोधनं स्यात्यावकस्य न संशयः । पश्चगर्भे ततो वाय हृदयत्रौ समाक्षिपेत् ॥२
आवाहितो भवेद्देवदेवः साक्षात्र संशयः । ओंकारेणाहुतिशतं नेत्राङ्गजनसमाधिना ॥३
पञ्चाहुतीस्ततो दद्यादृश्गानां प्रीतये नृप । विसर्जनं ततः कुर्याद्दृष्टेन विचक्षणः ॥४

इति श्रीभविष्यमहापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तमीकल्पे सौरार्चनलिपिवर्णनं
नाम ब्रयोदराग्निलिपिशततमोऽध्यायः । २१३।

अथ चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः मरिचसप्तमीवत्तवर्णनम्

सुमन्तुरवाच

पश्चिनी च तथान्या तु मध्यमानामनी तथा । अर्किणी ज्वालिनी चैव तेजनी च गभस्तिनी ॥१
शश्लभुद्वा च दशमी सूर्य बक्ता तथापरा । सहस्रकिरणा चैव मुदा हृदश कीर्तिता: ॥२
दद्यादृश्यं तु पश्चिन्या व्योम बद्वा जपेऽद्वुधः । उदयाश्रयः समाकर्णं मध्यमा व्याधिनाशिनी ॥३
आर्किण्या एव्यते सूर्य विधिस्थस्तु भवेद्यादि । ज्वालिनीमुपसङ्गान्तं बद्वा सूर्यमुखो जपेत् ॥४
सप्ताहाद्वीक्षते सूर्य सिद्ध्यते च ततः स्वयम् । अवतीर्ण पद्मलण्डं सूर्यादभिमुखो नरः ॥५

स्मरण करना चाहिए, जो सदैव रक्षक के रूप में रहता है । ऐसा करने से पावक का संशोधन हो जाता है, इसमें संदेह नहीं । पश्चगर्भित उस हृदय रूपी अग्नि में उस (प्रकार) का आक्षेप करना चाहिए । इसी भाँति देवाधिदेव सूर्य के आवाहन मुसम्पन्न होता है, इसमें संदेह नहीं । समाधिस्थ होकर ओंकार के झट्कारण पूर्वक का आहुति प्रदान करनी चाहिए । नृप ! इसके उपरांत बुद्धिमान् पुरुष को हृदय में ध्यान करते हुए उनका विसर्जन करना चाहिए । १-४

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प में सौरार्चन विधि वर्णन
नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त । २१३।

अध्याय २१४ मरिचसप्तमीवत्तविधिवर्णन

सुमन्तु ने कहा—पदिमनी, व्योम, मध्यमा, अर्किणी, ज्वालिनी, तेजनी, गभस्तिनी, शश्लभुद्वा, सहस्रकिरणा, आदि बारह मुद्राएँ बतायी गयी हैं । १-२। पश्चिनी मुदा द्वारा (सूर्य के लिए) अर्ध्य प्रदान तथा व्योम मुदा द्वारा जप करना विद्वानें ने बताया है । किसी के आकर्षण में उदयाश्रय मुद्रा, तथा व्याधियुक्त होने के लिए मध्यमा मुद्रा का प्रयोग करने चाहिए । ३। विधानपूर्वक इदि अर्किणी मुद्रा का प्रयोग किया जाये, तो सूर्य के साक्षात् दर्शन प्राप्त होते हैं । सूर्यादभिमुख होकर ज्वालिनी मुद्रा का प्रयोग करके जप करना चाहिए । ४। इस प्रकार जप करने से एक सप्ताह के भीतर सूर्य के दर्शन एवं सिद्धि प्राप्त हो जाती है । पद्मलण्ड में (कमलों के मध्य) पहुंचकर सौ सहस्र (एक लक्ष) संख्या के

जपञ्चक्तसहस्रं हि अक्षयं सहस्रे निधिः । गृह्णमुद्भादिपिरिमं सूर्यचक्रिधिं शृणु ॥६
अहोरात्रोपितो मूल्या बद्वा सूर्यमुखो नरः । इत्यतः पष्टः सते राज्ञजपभाव्यपृथुम् श्रवनम् ॥७
पश्यते सु द्व्यहात्सूर्यं भवेत्सिद्धिश्च मानसी । सहस्रकिरणं बद्वा नाभिमात्रजले स्थितः ॥८
जपेद्युतमादं तु भवेत्तद्वगतमानसः । सहस्रकिरणं देवं परं रक्षिभिरावृतम् ॥९
स एवदति परं धाम भवेत्सिद्धिश्च पुण्यला । शापानुप्रदक्षतसी सर्वेषां प्राणिनां भवेत् ॥१०
सर्वतः कञ्चुन्मुक्त्वा भवेद्वै विश्वाज्ञरः ॥११

परौ गुल्फौ करौ कृत्वा सुलग्नी च परस्परम् । घासनांशक्याकम्य दक्षिणां तु कनीयसीद् ॥१२
कामा उक्षिण्या चैव दक्षिणा बासना तथा । मुद्देषः हि महापुष्पा व्योममुद्धार प्रकीर्तिलः ॥१३
बद्धय चानया सद्यो हैयन्ते व्याधयो नृणाम् । नानया रहितः कश्चित्स्तिद्विं प्राप्नोति दाधकः ॥१४
सर्वत्रैवोत्तमः हैषा मन्त्रनुष्ठिरिति स्मृता । सूर्यस्य हृवयं सेयमर्क्युद्देति विश्रुतम् ॥१५
बद्धनीयात्तततं मन्त्रैरायुरारोच्यवृद्धये । सूर्यमण्डलं अस्यपे भन्ती सूर्योदये स्थितः ॥१६
स सूर्याभिमुखो भूत्वा जपेन्नन्वं तु साधकः । दिनत्रयेण वीक्षेत व्यानी जपपरायणः ॥१७
तं दृष्ट्वा नाशनुते मृत्युं दुःखी न च न संशयः । प्राप्नोति च परं स्थानं यत्र देवो विवाकरः ॥१८
उत्तानौ तु करौ कृत्वा वृक्षलग्नी परस्परम् । बद्वा त्वद्युलयः सर्वाः मुप्रकीर्णा न संशयः ॥१९
आकम्य चाङ्गुलीमूलमित्युष्ठाम्यां शथाकमम् । उदया नाम नुद्देषा बद्धनीयादुवद्देति रवेः ॥२०

जप करने से मनुष्य को अक्षय निधि की प्राप्ति होती है । अब शब्दमुद्भादि द्वारा किये जाने वाले उस उद्देन रात के विधान बता रहा हैं । सुनो ॥५-६। राजन् दिन रात के उपवास रह कर सूर्याभिमुख पद्यासन पर स्थित होकर दश सहस्र जप करने से मनुष्य को तीन दिन के भीतर सूर्य के दर्शन एवं मानसी सिद्धिं प्राप्त होती है । नाभि तक जल में स्थित होकर 'सहस्रकिरण' मुद्दा के प्रयोग कर व्यानमशावस्था में केवल दशसहस्र मंत्र के जप करने से महस्र किरण (सूर्य) देव के, जो किरणों से आच्छान्न, उत्तप्त देव, तथा उत्तम धाम स्वरूप हैं, दर्शन एवं आत्मनिक सिद्धिं प्राप्त होती हैं, और वही सभी प्राणिवृंहों के शापनशानुप्रह करने से समर्थ भी होती है ॥७-१०। सभी प्रकार के कञ्चुक के त्याग करने से ही शास्ति प्राप्त होती है ॥१। हाय एवं गुल्फ को परस्पर संलग्न करके बैये हाय की अनामिका को दाहिने हाय की कनिष्ठिका पर रखना तथा दाहिने हाय की अनामिका को बैये हाय की कनिष्ठिका पर रखना ही व्योम मुद्दा कही जाती है ॥२-१३। इस महापुष्प स्वरूप मुद्दा को व्योम मुद्दा बताया गया है, इसी से क्रमबद्ध होने पर मनुष्यों की व्याधिर्यां शीघ्र नष्ट हो जाती हैं, एवं कोई भी साधक इसके बिना सिद्धिं प्राप्त नहीं कर सकता है ॥१४। यही स्त्री में उत्तम एवं मन्त्र तुष्टि के नाम से विस्थात है, और सूर्य के हृदय स्वरूप इसी मुद्दा को अर्क मुद्दा बताया गया है ॥१५। इसी मंत्र के वेत्ता को चाहिए कि सूर्योदय समय में उनके मण्डल के सामने स्थित होकर आयु एवं आरोग्य वृद्धि के लिए मंत्र समेत उस मुद्दा द्वारा निरन्तर आबद्ध होवे ॥१६। उस साधक को चाहिए कि सूर्याभिमुख होकर मंत्र का जप करे क्योंकि उससे ध्यान एवं जप करने वाला पुरुष, तीन दिन के भीतर सूर्य का दर्शन प्राप्त करता है, और उसे देख कर मृत्यु उसका भक्षण नहीं करती है, न वह किसी भ्राती दुःखी रह सकता है, इसमें सदैह नहीं । इसके पश्चात् उसे उस स्थान की प्राप्ति होती है, जहाँ सूर्य देव स्वयं निवास करते हैं ॥१७-१८। दोनों हायों के पृष्ठ भाग को एक में मिलाकर अंगुलियों को एक इससे से आबद्ध करके दोनों अंगुठों से उन (अंगुलियों) के मूल भाग को क्रमशः पकड़े इसे उदय मुद्दा कहा गया है ॥१९-२०। इस मुद्दा के प्रयोग

द्वादशाहीकृते सूर्यं दिनात्स हि न संशयः । शर्वपापहर चैव शर्वपापविनाशिनी ॥२१
 उदया च विना कामं मध्यतन्त्रेव तं क्षिरेत् । मध्यमा नाम विल्याता नव्यसूर्यं दु चिन्तयेत् ॥२२
 मध्यमा विधिना तेन बद्वा नुदां तु साधकः । अङ्गुल्योः परमङ्गुष्ठो विधिना तावृभौ पथेत् ॥२३
 मुद्रा साम्ननी हृषा सर्वतन्त्रेभरी शुभा । सूर्यस्यस्तनने मुद्रां बद्वा जपतं समाप्तेत् ॥२४
 सहव्र हि शतं वापि गुद्रां बद्वा जपेद्वृद्धः । सर्वपातकसंमुक्तः भप्ताहावनुरोपेनम् ॥२५
 करोपरस्परं लग्नावङ्गुष्ठो नोर्वेस्तस्मितौ । उभौ चाङ्गुष्ठकौ चौर्वेऽसंलग्नौ भूर्भिर्संस्थितौ ॥२६
 भुद्रा न भालिनी चैव निर्वहेत्प्राप्त्यव्यञ्जरम् । ब्रह्महत्यादि यत्पापं योजिता सा तु भूर्धनि ॥२७
 विद्म्याङ्गुष्ठस्यः सर्वा इष्टमध्यस्तथाप्ततः । उर्वस्यितौ तथाङ्गुष्ठो भुद्वेयं तर्जनी स्मृता ॥२८
 सर्वव्याधिहरा देवी सर्वशत्रुयनशिनी । एतां बद्वा महाषुष्ठां सर्वान्स्तम्भयते रिष्वन् ॥२९
 उभौ प्रसार्त्वै हृस्तां मध्ये सार्थेन तस्मितौ । गोवानाम्या तत्प्रेव अङ्गुष्ठात्रं तथा क्रमात् ॥३०
 मुद्रा गमस्तिनी नामं सूर्यस्य हृदयं परम् । मृत्युं नाशयते हृषा बद्वा सूर्योदये शुभा ॥३१
 अर्घ्यकाले तु हन्तीदादचेयाङ्गि प्रपूजयेत् । जपकाले च बन्नीएःमन्दरणां नात्र संशयः ॥३२
 विवक्षिणकनिष्ठस्यां तर्जनीस्यां तथा अङ्गुष्ठो संलग्नौ तु परस्परम् ॥
 जपं यः कुरुते नित्यं त्रिभिर्मासैर्वयुद्धति ॥३३

करने से बारह दिन के भीतर सूर्य के दर्शन प्राप्त होते हैं, इसमें सदेह नहीं और यही समस्त पापोंके नाश करती है । २१। उदया मुद्रा किसी भी प्रकार की हीनता से रहित है । मध्यकाल से जिसे सूर्य के प्रति प्रयुक्त किया जाता है वह मध्यमा नाम से प्रसिद्ध है । सूर्य के मध्याह्न का लीन होने पर उसका चिन्तन करना चाहिए : विधिपूर्वक मध्यमा मुद्रा को धारण करके भाईक अपने दोनों अँगूठों को अंगुलियों के साथ गूंथे । ऐसी स्थिति में समस्त तन्त्रों में श्रेष्ठ कल्याणकारिणी वह अस्तमनी मुद्रा हो जाती है । सूर्य के अस्तमन में (अस्त होते समय) यह मुद्रा बाँधकर जप का आरम्भ करना चाहिए । इस मुद्रा को बाँधकर जो एक लाख बार सूर्य के मन्त्र का जप करता है, वह बुद्धिमान् प्राणी एक सप्ताह बाद ही समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । हाथ परस्पर मिले हुए हों तथा अँगूठे ऊपर की ओर स्थित हो, तथा सिर तक पहुँचे उसे मालिनी नामक मुद्रा कहते हैं, यह समस्त पाप के पिंजड़ों को जला डालती है । ब्रह्महत्या तक के पापों को नष्ट कर देती है । अंगुलियों को फैला कर थोड़ा मध्य भाग में तथा थोड़ा सामने की ओर ऊपर करके अँगूठों की ऊपर स्थापित करना तर्जनी नामक मुद्रा है । यह समस्त रोगों का नाश करने वाली तथा समस्त शत्रुओं की विनाशिनी है । इस महापुण्यमयी को बाँधकर समस्त शत्रुओं को स्तम्भित (वशीभूत) किया जा सकता है । दोनों हाथों को फैलाकर मध्य आधे भाग में स्थापित कर अँगूठों के अग्र भाग को चलाना सूर्य की परम हृदय गमस्तिनी नामक मुद्रा कही गयी है । सूर्य के उदय होते समय बाँधी गयी यह मुद्रा मृत्यु का भी नाश कर देती है । अर्घ्य देते समय इसके बाँधना चाहिए । और अग्नि की पूजा एवं अर्चना करनी चाहिए । इससे जप करने वाला व्यक्ति निःसन्देह मन्त्रों को बाँध लेता है । दाहिने हाथ की कनिष्ठिका पर दोनों हाथों की तर्जनियों को संलग्न करना तथा फिर अँगूठों को भी संलग्न करना, इस क्रिया के द्वारा जो जप करता है वह तीन महीने में शुद्ध हो जाता है । २२-३३।

करो तु सम्पुटो कृत्वा तर्जन्यै हे च कुञ्चयेत्	१३४
सहस्रकिरणा ह्येषा सर्वमुदेश्वरेभ्वरी । त्रितत्त्वमेतां बध्नेयात्साधको मन्त्रमूर्धनि ॥	
नाशयेत्सर्वपापानि तनोराशिमिदाशुमान्	१३५
मुद्रा मुद्रककुम्भेति बद्ध्वा दश्राच्च मन्त्रयेत् ! मासेन नाशयेत्कुष्ठं शिखिर्मसिर्वं संशयः ॥	
इति मुद्राइःसहितं सूर्यं पूजयते तु द.	१३६
अनेन विधिना राजन्नहा पूजयते रविम् । तस्मात्स्वभवि राजेन्द्र पूजयानेन भास्त्रम् ॥३७॥	
तदः सूर्यमदाव्येह सूर्यलोकं स गच्छति । अनेन विधिना यस्तु पूजयेत्सततं रविम् ॥३८	
म शति धरमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः । इत्यं पूज्य च देवेशमनेन विधिना नृप ॥३९	
भोजयित्वा यथाशर्क्तं ब्राह्मणांश्च विधानतः । सप्तम्यां याशयेद्वापि भरिचं मन्त्रतस्तथा ॥४०	
एकं गृहीत्वा मरिचमद्वन्दं च दृढं परम् । सजलं प्रसादेद्वाजन्मन्त्रेणानेन वा सृष्टम् ॥४१	
यथोक्तेन विधानेन पूजयित्वा दिवाकरम् । इति सप्तमाव्यं भरिचं ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥४२	
श्रियसद्गमवान्मोति तत्त्वाणादेव नान्यथा । इतीयं सप्तमी पुष्प्या प्रियसद्गमदायिनी ॥४३	
कुरु तस्मान्महाबाहो त्वमेव प्रियदायिनीम् । उपोष्य इन्द्रो विधिवत्सुरामरिचत्पत्तमीम् ॥४४	
संयोगं कृत्वान्वीर सह शब्द्या विधानतः । उपोष्यैनां नलश्रापि दमयन्त्या भावलः ॥४५	

दोनों हांयों के संपुटित करके दोनों तर्जनियों को आकुञ्चित (टेढ़ी) करने से 'सहस्र किरण' नामक मुद्रा होती है जो समस्त मुद्राओं में प्रधान मुद्रा बतायी जाती है तीनों संध्या समय उस मुद्रा के प्रयोग करने से साधक के समस्त पाप सूर्य द्वारा तमोराशि की भाँति नष्ट हो जाते हैं । ३४-३५। मुद्रककुंभा नामक मुद्रा के प्रयोग करने से तीन मास के भीतर कुष्ठ के रोग नष्ट हो जाते हैं, इसमें संदेह नहीं। इस प्रकार मुद्राओं समेत सूर्य की पूजा अवश्य करनी चाहिए । ३६। राजन् ! इसी विधान द्वारा ब्रह्मा सूर्य की पूजा करते हैं अतः तुम भी ऐसा ही करो जिससे सूर्य तथा उनके लोक की प्राप्ति हो जाये। इस विधान द्वारा सूर्य की आराधना करने वाले उस उत्तम स्थान की प्राप्ति करते हैं, जहाँ सूर्य देव स्वयं निवास करते हैं । नृप ! इम प्रकार इस विधान द्वारा देवेश (सूर्य) की अर्चा करके यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन सुसम्पन्न करे तथा रात्पत्ती के दिन मिर्च को अभिमित्रित करके उसका प्राशन (पारण) करे । ३७-४०। राजन् ! एक दृढ़ एवं ब्रणरहित मिर्च का प्राशन जल समेत इसी मंत्र के उच्चारण पूर्वक करना चाहिए । ४१। उत्तम विधान-पूर्वक दिवाकर देव की पूजा के उपरांत मिर्च के प्राशन और मौन होकर भोजन करे । ४२। इससे उसी क्षण उसे अपने प्रिय के संगम की उपलब्धि होगी। इसीलिए इस पुण्य स्वरूप सप्तमी को प्रियसंगम दायिनी बताया गया है । ४३। अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए कोई इसका अनुष्ठान पूर्ण वर्ष तक करे तो नरश्रेष्ठ ! उसे पुनः उसके पुत्रादि का साथ प्राप्त हो । ४४। महाबाहो ! इसलिए तुम भी उस व्रतविधान को अवश्य करो, क्योंकि उपवास पूर्वक इसी मिर्च वाली सप्तमी के अनुष्ठान द्वारा इन्द्र ने शब्दी का संयोग प्राप्त किया है। तथा महाबली नल ने उपवास रहकर इसी द्वारा दमयन्ती के संयोग और

रामोऽगात्सीतया सार्थमुपोष्यैनां दराधिप

॥४७॥

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्म पर्वदि सप्तमीकल्पे मरिचसप्तमीज्ञतव्यर्थं
नाम चतुर्दशाधिकत्रिशततमोऽध्यायः । २१४।

अथ पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूर्यमन्त्रोदारवर्णनम्

मुमन्त्रुदाच

तृतीयां सप्तमीं दीर शृणुत्त गदतो भम । निम्बक्षेत्रः स्मृता या तु उत्तमा रोगमशिनी ॥१
यथार्चनविधिर्द्वन्द्वी येन दूजस्ते रविस्तु । देवदेवः शार्ङ्गपाणिः शङ्खचक्रगदापात्रः ॥२
अथार्चनविधिं वच्चम भन्त्रोदारं जिग्नोध मे

॥३॥

ॐ स्वालोकाय नमः । नूजसन्त्रः । ॐ विटि २ शिरः । ॐ सहस्ररश्मये अम्बम् । ॐ सहस्रकिरणाय २००
ऊर्ध्वबन्धः । ॐ घनाय भूलभास्त्रिने नमः ह्रात्रं भूतहन्तः । ॐ ज्वल २ प्रज्वल २ आप्तप्रकर ॥४
ॐ आदित्याय विष्णुहे विभभागाय धीमहि । तप्तः सूर्यः प्रचोदयात् ॥५
॥ गायत्रीसङ्कलीकरणमिवम् ॥ ॐ धर्मात्मने नमः ऐशान्याम् । ॐ दक्षिणाय नमः आप्तेयाम् । ॐ
वज्रपाणयेऽनन्ताय नमः उत्तरतः । ॐ इयामपिङ्गलाय नमः ऐशान्याम् । ॐ अमृताय नमः
आन्नेयाम् । ॐ बुधाय सोमसुताय नमो दक्षिणतः । ॐ वारीश्वर सर्वविद्याधिपतये नैर्शत्याम् । ॐ शुक्राय

नराधिप ! राम ने भी इसी के उपवास आदि द्वारा सीता के साथ प्राप्त किये हैं । ४५-४७

श्रीभविष्यपुराण में ब्राह्म पर्व के सप्तमी कल्प में मरिचसप्तमी व्रत वर्णन

नामक दो सी चौदहवाँ अध्याय समाप्त । २१४।

अध्याय २१५

सूर्यमन्त्र के उद्धार का वर्णन

मुमन्त्र ने कहा—बीर ! मैं उस तीसरी सप्तमी के व्रत-विधान जिसमें नीम के पत्ते का पारण
बताया गया है, बता रहा हूँ, सुनो ! नीम के पत्ते वाली यह सप्तमी परम रोग के नाश करने वाली बतायी
गयी है । १। इस अर्चन-विधान जिराके द्वारा देवाधिदेव, शार्ङ्गपाणि, शंख चक्र गदा के धारण करने वाले
सूर्य की उपासना की जाती है, मैं बता रहा हूँ, सुनो ! । २-३। 'ओ स्वालोकाय नमः' यही मूलमन्त्र है । 'ओ
विटि' से दो बार शिर का स्पर्श करे, 'ओं सहस्र रश्मये' से अस्त्र 'ओं सहस्र किरणाय' से ऊर्ध्व बंधन 'ओं
घनाय' आदि से भूतबंधन, ओं ज्वल, इत्यादि से गायत्री द्वितीय उच्चारण करे । ईशान में धर्म के,
आन्नेय में दक्षिण के, उत्तर में वज्र पाणि के, ईशान में श्याम पिंगल के, आन्नेय में अमृत के, दक्षिण में
सोमसुत बुध के, उत्तर में समस्त विद्याधिपति वारीश्वर के, पश्चिम में महर्षि शुक्र के, वायव्य में सूर्यात्मा

महर्षे मूताय दश्चिमतः । ॐ ईश्वराय सूर्यात्मने वायव्याम् । ॐ कृतवते नमः उत्तरतः । ॐ राहुवे नमः ऐशान्याम् । ॐ अन्तराय सूर्यात्मने नमः पूर्वतः । ॐ ध्रुवाय नमः ऐशान्याम् । ॐ अन्तराय सूर्यात्मने नमः पूर्वतः । ॐ ध्रुवाय नमः ऐशान्याम् । ॐ भगवते पूषनम्!लिङ्गकलजगत्पते सप्ताभ्याहनं मूर्खुज परमसिद्धिशिरसि गतं गतं गृह्ण तेजोऽपरूपं अनंतज्ञः ॥२ ।

आवाहनमन्त्रः

ॐ नमो भगवते जादित्याय सहस्राकरणाय यथामुखं पुनरागमनाय इति ॥६
हति श्रीभद्रिष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तीमीकल्पे सौरधर्मे सूर्यमन्त्रोदारवर्णेन
नाम पञ्चदग्धाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥१२५ ।

अथ षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

पुराणभ्रवणविधिवर्णनम्

मुमन्त्रुरुदाच

शृणुव्यर्चिविधि राजन्मन्त्रपूतेन वारिणा ! प्रोक्षणीयं प्रयत्नेन किमर्थं सुसमाहितः ॥१
हृदयादिष्वयाइगेषु मन्त्रं विन्यस्य मन्त्रवित् । आत्मानं भास्करं ध्यात्वा परिचारसमन्वितः ॥२
कुर्यात्सम्मार्जनीं सुद्धां दिशां च प्रतिबोधनम् । पाताले सूर्योधनं चैव नभसश्च तथा भतम् ॥३
अर्चनस्य प्रकारोऽयं सर्वेषामीप्सितप्रदः । सर्वैरपि बुधैर्वीरं पद्यमेतत्प्रकीर्ततम् ॥४

ईश्वर, के उत्तर में कृतवान् के, ईशान में राहु के, पूर्व में अन्तरात्मा सूर्य के, ईशान में ध्रुव के, तथा ओं भगदात् आदित्य, सकल जगत् के पर्ति, सप्ताश्ववाहन वाले, नृप, उत्तम सिद्धि स्वरूप, तेजस्वी एव उपरूप, और अनंत ज्ञाला वाले यहाँ उत्तम स्थान में आकर इसे स्वीकार करो । तथा ओं नमः भगवन् । आदित्य, सहस्र किरण, यथामुख, पुनः यहाँ आगमन के लिए कृपा कीजिएगा । इस प्रकार सूर्य के आवाहन एवं विसर्जन करना चाहिए ॥४-६

श्रीभविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में सूर्यमन्त्रोदार वर्णन
नामक दो सौ पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥२१५ ।

अध्याय २१६

पुराण के श्रवणविधान का वर्णन

मुमन्त्रु ने कहा—राजन् ! उस अर्चन-विधान को, जिसमें सावधान होकर मंत्र पूत (अभिमंत्रित) जल से प्रोक्षण क्यों किया जाता है, बता रहा हूँ, सुनो ! मंत्रवेत्ता प्रथम हृदयादि अंगों में मंत्र के न्यास पूर्वक साङ्घोपाङ्घ भास्कर रूप में स्वयं का ध्यान करके सम्मार्जनी सुद्धा के प्रयोग, दिशाओं के प्रति बोधन (ज्ञान) एवं पाताल तथा आकाश तल के संशोधन करना, यही सभी कामनाओं के सफल करने वाले अर्चन का प्रकार बताया गया (स्वरूप) है । समस्त विद्वद्गण इसे ही 'पथ कहा करते हैं ॥१-४ । किमी

अष्टपत्रं लिखेत्पयं गुनौ देशे सर्कणिकम् । आवाहनों ततो बद्धा भुदानावाहयेद्विम् ॥५
 लघोल्कं स्नापयेत्तत्र स्वरूपं लोभदायकम् । स्थापयेत्स्नापयेच्चैव मन्त्रैमन्त्रशरीरिणम् ॥६
 आग्रेष्यां दिशि देवस्य हृदयं स्थापयेन्नः ! ऐशान्यां तु शिरः स्थाप्य नैऋत्यां विन्यसेच्छखाम् ॥७
 पौरन्दर्यां न्यसेन्नेत्रे एजाप्रहृदयस्तु सः । आवाहा चैकं कदच वाश्यानस्त्रमेद ॥८
 ऐशान्यां स्थापयेत्सोमं पौरन्दर्या तु लोहितम् । आग्रेष्यां सोमतपनं याम्यां चैव बृहस्पतिम् ॥९
 नैऋत्यां 'दानवं शुक्रं वारुणाऽन्नं शनैश्चरम् ! वायव्यां तथा केतुं कौबेर्यां राहुमेव च ॥१०
 द्वितीयायां तु कक्षायां देवतेजः समुद्दिवान् । स्थापयेद्वादशादित्यान्काशदयेयानुभावलान् ॥११
 भगः सूर्योर्यज्ञश्चैद भिन्नो यर्जु एव च । सविता चैव धाता च दिवस्वांश्च महाबलः ॥१२
 त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते । पूर्वे चेन्द्राय दक्षिणे यमाय पश्चिमे दरुणाय उत्तरे
 कुबेराय ऐशान्यामीश्वराय आग्रेष्याप्निदेवतायै नैऋत्यां पितृदेवेभ्यो वायव्यां वायव्ये ॥
 जया च विजया चैव लयन्ती चापराजिता । शेषश्च वासुकिश्चेद रेवती च विनायकः ॥

महाश्वेता! महादेवी! राजी चैव सुवर्द्धला ॥१३

तथान्यो वापि देवातां समूहस्तत्र तत्र ह । तथान्यो लोकविद्यातो योगः प्रोक्तश्च दक्षिणे ॥१४
 पुरस्ताद्वासुरस्याते स्थापनीया विजानता । सिद्धिर्वृद्धिः स्मृतिर्देवी श्रीश्रैवोत्पलनालिनी ॥१५
 स्थाप्या स्वदक्षिणे पाश्वे लोकपूज्या समन्ततः । प्रज्ञावती क्षुधा वीर हारीता ब्रुद्धिरेव च ॥१६

पवित्र प्रदेश में अष्टदल कमल की रचना करे जिसमें सौन्दर्य कर्णिका निर्मित की गई हो । पश्चात् उसमें आवाहनीय मुद्रा के प्रयोग द्वारा सूर्य का आवाहन करना चाहिए । सूर्य के लघोल्क स्वरूप का जिसमें अधिक लोभलाभ निहित है, मंत्र रूपी सम्पत्र शरीर का मंत्र पूर्वक स्थापन एवं स्नान सुसम्पन्न करे ।५-६। मनुष्य को एकाग्रचित्त होकर आग्नेय दिशा में सूर्य देव के हृदय ईशान में शिर, नैऋत्य में शिखा, पूर्व में नेत्र की कल्पना करके उनके आवाहन एवं पश्चिम दिशा में कवच तथा शस्त्र तथा अस्त्र की कल्पना करनी चाहिए ।७-८। इसी प्रकार ईशान में सौम, पूर्व में भौम, आग्नेय में बुध, दक्षिण में बृहस्पति, नैऋत्य में दानव शेष शुक्र, पश्चिम में शनैश्चर, वायव्य में केतु, उत्तर में राहु की स्थापना करनी चाहिए ।९-१०। दूसरी कक्षा में सूर्य देव के तेज द्वारा उत्पन्न एवं महाबली बारह आदित्यों की प्रतिष्ठा करनी चाहिए । भग, सूर्य, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान्, त्वष्टा, पूषा, चन्द्र, एव विष्णु यहीं बारह सूर्यों के नाम हैं । पूरब में इन्द्र, दक्षिण में यम, पश्चिम में वरुण, उत्तर में कुबेर, ईशान में ईश्वर (शिव), आग्रेय में अग्नि देवता, नैऋत्य में पितृ देव, वायव्य में वायु, एवं जया, विजया, जयंती, अपराजिता, शेष, वासुकि, रेवती, विनायक, महाश्वेता, महादेवी (सूर्य पत्नी) राजी देवों के अन्य समूह, तथा लोकविद्यात योग की प्रतिष्ठा दक्षिण दिशा में करनी चाहिए । भास्कर के सामने उत्तम स्थान में मिद्धि, वृद्धि, स्मृति एवं कमल की मालाओं से सुशोभित श्री की स्थापना होनी चाहिए, वीर! उनके दक्षिण पाश्व में लोक पूज्य, प्रज्ञावती, क्षुधा, हारीता, तथा ब्रुद्धि की प्रतिष्ठा भास्कर की श्री के इच्छुकों को

स्थाप्य बुद्धिमती नित्यं श्रोकार्मवा विवस्वतः । ऋद्धिद्वेव दिसुष्टिश्च सौर्णमासी विभावरी ॥
स्थाप्यात्र स्वोत्तरे पार्श्वे इत्येता देवशक्तयः ॥१७

दीपश्चान्नमलङ्कारो वासः पुष्पाणि मन्त्रतः । देयानि देवदेवाय सानुगाय समूर्तये ॥१८
विधिनानेन सततं सदा योऽर्चयति भास्करन् । सम्प्राप्य परमान्कासान्ततो भानुतदो व्रजेत् ॥१९
अनेन विधिना पस्तु शोजयेद्भास्करं नृप । त्वं निन्द्रकटुकात्मासि आदित्यनिलयस्तथा ॥

सर्वरोगहरः शान्तो भव मे प्राशनं सदा ॥२०

इत्थं प्राश्य जपेद्भूमी देवस्य पुरतो नृप । ब्राह्मणऽभोजयित्वा तु शक्त्या दत्त्वा तु दक्षिणाम् ॥२१
भूम्जीत वाग्यतः पश्चान्मयुरं क्षत्रर्वजितश्च । इत्येष वर्षपर्यन्तं कर्तव्या चैद सत्तमी ॥२२
कुर्वाणः सप्तमीमेतां सर्वरोगैः अमुच्यते । नर्वरोगविनिर्मुक्तः सूर्यलोकं स गच्छति ॥२३

सुमन्त्रुरुद्धाच

अथ माद्वपदे मासि सिते पक्षे महीपते । कृत्वोपदास सप्तम्यां दिधित्पूजयेद्विविम् ॥२४
माहेश्वरेण विधिना पूजयेदवत्र भास्करम् । अष्टम्यां तु पुनः स्नातः पूजयित्वा विवाकरम् ॥२५
द्व्यात्कलानि विश्रेण्यो मार्तण्डः श्रीयतामिति । उर्जूरं नारिकेलं च सातुलङ्घफलानि च ॥२६
देवस्य पुरतो वत्वा तथा चान्नफलानि च । इति ते कथितं राजन्सप्तमीफलमादितः ॥२७
महातपो महाश्रेष्ठं भास्करस्य विशाम्पते । यच्छ्रुत्वा मानवो राजमुच्यते ब्रह्महत्या ॥२८

नित्य करनी चाहिए । ऋद्धि, विसुष्टि, पौर्णमासी, विभावरी, इन देव शक्तियों की प्रतिष्ठा उनके उत्तर पार्श्व में करनी चाहिए । ११-१७। मन्त्रोच्चारण पूर्वक दीप, अन्न, आभूषण, वस्त्र, और पुष्पों को देवाभिदेव सूर्य तथा मूर्त रूप उनके नणों को प्रदान करना बताया गया है । १८। इस भाँति विधान पूर्वक जो भास्कर की अर्चा निरन्तर करता है, उसे सभी कामनाओं की सफलता पूर्वक भानु लोक की प्राप्ति होती है । १९। नृप ! इसी विधान द्वारा भास्कर को भोजन कराये—हे नीम तू कडवी होती हुई सूर्य का आवास स्थान (धर) रूप है, इसलिए 'मेरा यह प्राशन सर्व रोग नाशक एव शात' हो । नृप ! इस प्रकार सूर्य के सामने भूमि में इसके प्राशन पूर्वक जप करें । पुनः इसके उपरांत ब्राह्मणों को भोजन करकर शक्त्यनुसार दक्षिण उन्हें प्रदान कर मौन होकर आर (नामक) के त्याग पूर्वक मधुर भोजन करे इसी प्रकार पूर्ण वर्ष की सभी सप्तमी के ब्रानुष्ठान सुसम्पन्न करना चाहिए इसमें समस्त रोगों की शान्ति होती है, और सूर्य लोक की प्राप्ति होती है । २०-२३

सुमन्त्रु बोले—महीपते ! भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी के दिन उपवास कर माहेश्वर विधान समेत सूर्य की पूजा करनी चाहिए । २४। पुनः अष्टमी में स्नान करके सूर्य की पूजा सुसम्पन्न करने के उपरांत 'सूर्य प्रसन्न हों' ऐसी भावना रख खजूर, नारियल, एवं विजौरानीबू, इन फलों को ब्राह्मण के लिए प्रदान करे । सर्वप्रथम आम समेत इन फलों को सूर्य देव के सामने रख उन्हें निवेदित करे पश्चात ब्राह्मण को अर्पित करे । राजन् ! इस भाँति फल सप्तमी की व्याध्या तुम्हें मैंने सुना दी । विशाम्पते ! भास्कर का यह अत्युत्तम व्रत है, राजन् ! इसके श्रवण मात्र से मनुष्य ब्रह्म हत्या के दोष से मुक्त हो जाता है । २५-२८।

तदेवं परमं पर्वं कथितं ब्रह्मसंनितम् । यच्छुत्वा सर्दपापेय्यो मुच्यन्ते मानवा नृप ॥२९
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च । सर्वतीर्थाभिगम्यने वेदास्यसे च यत्कलम् ॥
यत्कलं पृथिवीदोने तत्सर्वं प्राप्नुयाश्वरः ॥३०

राजसूयसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च । सहस्रशतवानस्य फलं विद्वति मानवः ॥३१
लेखत्वं ब्राह्मणो गच्छेत्क्षत्रियो विप्रतां वज्रेत् । वैश्योऽपि क्षत्रियां याति शूद्रो वैश्यत्वमेव च ॥३२
सूतमागधबन्धाद्या ये चाच्ये सङ्करोद्भूवाः । तेऽपि यान्त्युत्तरं स्थानं पुराणश्रवणाद्विभोः ॥३३
इतिहासपुराणाम्यां नवव्यत्यावनं नृपान् । येषां शक्तामावेण मुच्यते सर्वकिञ्चित्वैः ॥३४
विधिना राजशार्दूल शृण्वतां यत्कलं किल । यशोक्तं नात्र सन्देहः पठन्तां च विशांपते ॥३५

शतानीक उवाच

भगवन्केन विधिना श्रोतव्यं भारतं नरः । चरितं रामभद्रस्य पुराणाति विशेषतः ॥३६
कृथं तु वैष्णवा धर्मः शिवधर्मः अरोषतः । सौराणां चापि विप्रेन्द्र उच्यतां श्रवणे विधिः ॥३७
वाचनीयं कथं चापि वाचको द्विजसत्तम । लक्षणं चास्य मे शूहि वाचकस्य महात्मनः ॥३८
स्वरूपं चैव मे शूहि लघोल्कस्य महात्मनः । फलं च पूजिते किं स्याद्वाचके विधिवद्विज ॥३९
पारणेगारणे पूज्यो वाचकः श्रावकः कथम् । समाप्ते भगवन्किंकि देयं पर्वणि वाचके ॥
त च किं कार्यसिद्धं यत्सिद्धं पर्वणि पर्वणि ॥४०

नृप ! इस प्रकार के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं । सहस्र अश्वमेध, सौ वाजपेय, समस्त तीर्थों की यात्रा, वैद्यनाथ, पृथिवी दान, सहस्र राजसूय, सौ वाजपेय, सौ सहस्र के दान, इनके समस्त फलों की प्राप्ति मनुष्य को पुराण श्रवण मात्र से होती है, तथा किभी ! उसके सुनने मात्र से ही ब्राह्मण देवत्व, क्षत्रिय ब्राह्मणत्व, वैश्य, क्षत्रियत्व, और शूद्र वैश्यत्व की प्राप्ति करते हैं, एवं सूत, मागध, बन्दी आदि अन्य सभी वर्ण संकर वाले उत्तम स्थान की प्राप्ति करते हैं ॥२९-३३। मनुष्यों के लिए इतिहास एवं पुराण से अन्य कोई पवित्रता की वस्तु नहीं है, क्योंकि जिसके श्रवणमात्र से ही समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ॥३४। राजशार्दूल ! विधान पूर्वक इसके श्रवण, एवं विशाम्पते ! पठनमात्र से भी जिन फलों की प्राप्ति बतायी गयी है, वे सत्य हैं इसमें संदेह नहीं ॥३५

शतानीक ने कहा—हे भगवन् ! मनुष्यों को किस विधान द्वारा महाभारत का श्रवण करना चाहिए तथा रामभद्र के चत्रित्र (रामायण) एवं विशेषकर पुराण, के भी कैसे श्रवण हों ॥३६। हे विप्रेन्द्र वैष्णवधर्म तथा सम्पूर्ण शिव धर्म और सूर्य धर्म के श्रवण विधान भी बताने की कृपा कीजिए ॥३७। द्विजसत्तम ! किस भाँति के वाचकों द्वारा पुराणों के पारायण कराना चाहिए, अतः वाचक महात्मा के लक्षण, एवं लघोल्क माहात्म्य के स्वरूप को बताने की कृपा कीजिए । द्विज ! वाचक की विधान पूर्वक पूजा करने से किस फल की प्राप्ति होती है, प्रत्येक पारण में श्रोताओं द्वारा वाचक की किस भाँति पूजा होनी चाहिए, तथा भगवन् ! पर्व की समाप्ति में वाचक के लिए क्या-क्या देना चाहिए, एवं प्रत्येक पर्व में जिस कार्य की सिद्धि होती है पृथक् उनकी सिद्धि संभव नहीं है क्या ३८-४० ?

सुमन्तुरुचाच

सम्प्रपृष्ठोऽस्मि राजेन्द्र इतिहासपुराणयोः ॥४१
 श्रवणे तु महाबाहो श्रूयतां यन्मया पुरा । पृष्ठो वोचन्महातेजः विरिच्छो भगवान्युरुः ॥४२
 हन्त ते कथयान्वये पुराणश्वये विधिम् । इतिहासपुराणानि श्रुत्वा नक्त्या विशेषतः ॥
 मुच्यते सर्वपापेष्यो छाहृहत्यादिविर्विभो ॥४३
 सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिमूल्यं शृणोति थः । तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्म तुष्यते शङ्करस्तथा ॥४४
 प्रत्यूषे भगवान्वह्या दिनान्ते तुल्यते हृतिः । महादेवस्तथा रात्रौ शृण्वतां तुष्यते विभुः ॥
 पात्रणां त्रिशःहेतु एके शुर्यनिति तानि भोः ॥४५
 भवेद्व राजशार्दूल शृणु तेषां च यत्काम । विधानं वाचकस्येह शृण्वतां च विशांपते ॥४६
 शुद्धवासा गृहदेवत्य स्थानं यत्तमदान्वितम् । प्रदक्षिणं ततो गत्वा यस्तस्मिन्देव एव हि ॥४७
 नात्युच्चं नर्तनीचं च ह्यासनं भजते ततः । आसनं तस्य वै राजन्वोधकस्य सदा भवेत् ॥४८
 वन्दनीयं प्रपूज्यं च श्रोतृभिः कुरुनन्दन । व्यासपीठं तु तत्रोक्तं गुरोरासनमादिशेत् ॥४९
 न स्येत् श्रावकैस्तस्माद्वाचकस्यासने नृप । राजासने यथा भृत्यैर्यथा पुत्रैः पितुरूपैः ॥५०
 यथा शिरुपुरोर्वार स तेषां हि गुरुर्मतः । देवार्चानग्रतः कृत्वा ब्राह्मणाचाँ विशेषतः ॥५१
 उपविश्य ततः पश्चाच्छ्रावकः शृणुयान्नृप । समस्तद्वागातान्दृत्वः ततः पुस्तकमादेत् ॥५२

सुमन्तु द्वौले—राजेन्द्र ! आप ने अत्युल्तम प्रश्न किया है, महाबाहो ! पहले सनद में इतिहास एवं पुराण के सुनने के विषय में दूँछने पर महातेजस्वी भगवान् गुरु ब्रह्मा ने जो कुछ बताया था, मैं उसी पुराण- श्रवण के विधान को बता रहा हूँ, (सुनो) ! विभो ! भक्ति पूर्वक इतिहास एवं पुराणों के श्रवण करने से ब्रह्म इत्या आदि सभी पापों के ताश होते हैं । ४१-४३। सायंकाल, प्रातः काल एवं रात्रि में पवित्रता पूर्ण होकर उसके श्रवण करने पर उस श्रोता के ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, एवं शिव अत्यन्त प्रराल होते हैं । ४४। प्रत्यूष (प्रातः) काल में सुनने पर भगवान् ब्रह्मा, सायंकाल में विष्णु, तथा रात्रि में विभु महादेव उस श्रोता के ऊपर अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं । उनके दश दिन का पारायण करने का विधान बताया गया है । ४५। राजशार्दूल ! उनके पारायण करने के फल, तथा विशांपते ! सुनने एवं सुनाने के विधान को बता रहा हूँ, सुनो ! शुद्ध वस्त्र धारण कर घर से उस स्थान पर जाय, जो पुराण पारायण कराने के लिए निश्चित किया गया हो । उसी (सूर्य) देव के मन्दिर में सर्वप्रथम प्रदक्षिणा करके वाचक के लिए लेसे आसन का निर्माण कराये, जो अव्यन्त ऊँचा या नीचा न हो । राजन ! वाचक का सदैव वैसा ही आसन होना चाहिए । ४६-४८। कुरुनन्दन ! श्रोताओं द्वारा उस वाचक की महत्व पूर्ण अर्चा होनी चाहिए । क्योंकि यह व्यास आसन एवं गुरु का आसन कहा जाता है । ४९। हे नृप ! उसी भाँति वाचक के आसन पर किसी श्रावक (श्रोता), को न बैठना चाहिए, जिस प्रकार राजा के आसन पर सेवकों को तथा पिता के आसन पर पुत्रों को न बैठने का नियम कहा गया है । ५०। बीर ! शिशुओं को गुरु (अध्यापक) के आसन पर न बैठना चाहिए, क्योंकि वह महान् पुरुष, उन बच्चों का गुरु है । नृप ! पहले देवता की अर्चा सुसम्पन्न कर विशेष कर ब्राह्मण की पूजा के उपरांत बैठकर श्रोता को उसका श्रवण करना चाहिए । विशांपते ! वाचक को चाहिए कि समस्त आगन्तुकों की ओर प्रसन्नतासूचक दृष्टिपात करके पश्चात् पुस्तक को ग्रहण करे । पुस्तक-ग्रहण में सर्व प्रथम उसे शिर से प्रणाम करने का विधान

प्रणम्य^१ शिरसा तथ्य पुस्तकस्य विशांपते ; प्रन्थिं च शिथिलां कुर्याद्ब्राचकः कुरुनन्दन !!
 पुनर्बाल्मीत तत्सूत्रं तन्मुक्त्वा वाचयेत्क्षचित् ॥५३
 त्रिदिवं पुस्तकं विद्यत्सूत्रं वासुकिरच्यते । पत्राणि भगवान्ब्रह्मा अक्षराणि जनार्दनः ॥५४
 शङ्करश्च तथा सूत्रं पद्मकायः सर्वदेवताः । पावकश्च तथा सूत्रे मध्ये भानुः समाप्तिः ॥५५
 अत्रे स्त्यता प्रहाः सर्वे दिगो वापि तथा जिमो । स्मृतः मेरुः सदा शङ्कुशिखद्वामाकाशमुच्चने ॥५६
 यंत्रद्वयं काळमामधोष्ट्र्यं यद्वाहृतम् ! द्वावायृष्टियोश्च शशलक्ष्मतया चन्द्र उदाहृतः ॥५७
 इत्यं देवमयं श्वेतत्पुस्तकं देवदूजितम् । नमस्यं पूजनीयञ्च गृहे स्थाप्य विश्रृतये ॥५८
 योश्च त्रूत्रं ब्रह्मत्वा प्रयच्छति नरोत्तमः । स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाहृतः ॥५९
 निरूप्य पात्रं राजेन्द्र कराम्यां गृह्य वान्मः । प्रणम्य शिरसा सर्वान्नह्यादीन्यासमेव च ॥
 बाल्मीकिं च तथा राजनिविंशिं विष्णुं शिवं रविम् ॥६०
 नमस्कारमयैषां तु पठित्वा कुरुनन्दन । ततोऽसौ व्याहरेद्विप्रान्वाचकः^२ ब्रह्मान्वितः ॥६१
 अलम्भितमतस्तव्यन्दूतं वीरपूजितम् । असंसक्ताक्षरपदं रसभावसमन्वितम् ॥६२
 सप्तस्त्वरसमायुक्तं कालाकाते दिगापते । प्रदर्शयन् तस्मान्सर्वान्वाचको व्याहरेन्नृप ॥६३

बताया गया है । तदुपरात कुरुनन्दन ! उसके बंधनों को शिथिल कर उसे बन्धन मुक्त कर शेष जिस अध्याय के आराधन उस दिन न करना हो, उन्हें उन्हीं बंधनों से बाँधकर सुप्रतिष्ठित कर दें, क्योंकि उसके पारायण उस दिन न होकर दूसरे दिन होंगे । ५१-५३। पुस्तकों का तीन प्रकार का स्वरूप बताया गया है बन्धन वासुकी, उसके पश्च (पश्चे) भगवान् ब्रह्मा, एवं अक्षराणग जनार्दन देव के रूप हैं—सूर्य शंकर, पंक्तियाँ समस्त देवता, सूत्र में पावक एवं मध्य में सूर्य प्रतिष्ठित हैं । ५४-५५। विभो ! (उनके) अप्रभाग में समस्त ग्रह, दिशाएँ, शंकु मेलपर्वत, काठ की दोनों पटरियों पर (रेहल), जो नीचे-ऊपर स्थित रहती है, आकाश एवं पृथिवी, एवं शंत चक्र देव के रूप में बताये गये हैं । ५६-५७। इस प्रकार देवमय देवपूजित उस पुस्तक को, जो नित्य नमस्कार करने एवं पूजन के योग्य हैं, अर्चना, कर ऐश्वर्य दृद्धि के लिए गृह में स्थापित करना चाहिए । ५८। जो पुस्तक बन्धनार्थ लम्बा-चौड़ा सूत्र प्रदान करता है, उस नंशेष्ठ को उस उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है, जहाँ दिवाकर देव स्वयं निवास करते हैं । ५९। राजेन्द्र ! वाचक को सर्वप्रथम कथाविषयक पात्रों के निरूपण करने के पश्चात् पुस्तक पश्चे को हाथों में लेकर राजन् ! ब्रह्मा आदि समस्त देवताओं, व्यास, बाल्मीकि, ब्रह्मा विष्णु, शिव, एवं रवि को जिर से नमस्कार करके पुस्तक-पारायण (कथा) प्रारम्भ करना चाहिए । कुरुनन्दन ! तदुपरात वाचक श्रद्धा सम्पन्न होकर ब्राह्मणों को उसे सुनाये । ६०-६१। विशांपते ! धीरे-धीरे शब्दों एवं अर्थों के पृथक्-पृथक् विवेचन करते हुए, सन्देह रहित, अद्भुत, वीर, तथा तेज पूर्ण उनके अक्षरों एवं वेदों को इस भाँति उच्चारण करे, जिसमें रस तथा भावों के संचार माधुर्य पूर्ण प्रवाहित होते रहें । समय-समय पर सातों स्वरों का प्रयोग भी करना चाहिए । नृप ! इस भाँति वाचक को समस्त रसों के प्रदर्शन पूर्वक उनके

१. शिरसा पुस्तकं प्रणम्य तदा पुस्तकमाद्यादित्यर्थः । इहेत्यं पदद्वयं पूर्वान्वयिः २. व्याड्पूर्वस्य हरतेरिहान्यत्र च वचनमेवार्थः, अत्र प्रमाणममर एव तथा ‘व्याहारउक्तिर्लिपिं भाषितं वचनं वचः’ इति ।

ईदृशाद्वाचकाद्विप्रसच्छुत्वा अद्वासमन्वितः । इतिहासपुराणः नि रामस्य चरितं तथा ॥६४
नियमस्थः सुचिः श्रोतः भृणुयात्कलमश्नुते । ब्राह्मणः क्षक्षियो दैश्यः सूदश्चापि विशेषतः ॥६५
अश्वमेधस्त्राप्नोति सर्वान्कामानवामुते । रोगैश्च मुच्यते सर्वैर्महत्युप्यं च विन्दति ॥

गच्छेद्वापि परं स्थानं देवस्यादभुतमुत्तमम् ॥६६

स्तार्तार्त्त्वाहं समग्नस्य श्रोतृभिन्नाचकस्य तु । प्रणस्य शिरसा विप्रं वाचकं श्रद्धया नृप ॥६७
आसनं च सप्तान्त्रित्वं स्थातव्यं^१ वाचकस्य तु । सम्मुखं राजशार्हूलं वाग्यतैः सुमुभाहितैः ॥६८

वाचकेन नमस्कारे कृते व्यासस्य सूपते । न वक्तव्यं महाबाहो श्रावकैः संशयादृते ॥६९
संशये सति प्रब्लव्यो वाचकः सम्प्रसाद्य तु । यतश्च स गुहस्तेषां धर्मतो बन्धुरुच्यते ॥७०

वाचकेनापि वक्तव्यं यत्यातेषां निषेधनम् । अनुप्रहाय सर्वेषां मशेषा गुरवो नृप ॥७१
नमस्कारादाद्यः श्राव्याः शिखप्रस्त्विति द्वोद्धतैः । वाग्यतैर्नृपशार्हूलं वर्जेः सर्वैर्महीपते ॥७२

शूद्राणां पुरतो वैश्या वैश्यानां ज्ञात्रिणस्तथा । मध्यस्थितोऽथ सर्वेषां वाचको व्याहरेन्तृप ॥

ये च सहकरजा राज्ञश्चरास्ते शुद्धपृष्ठतः ॥७३

ब्राह्मणं वाचकं विद्यान्वान्वर्णजमादरेत् । शुद्धान्वयवर्जजाद्वाचं वाचकान्वरकं वर्जेत् ॥७४
इत्यं हि भृष्टवतां तेषां वर्णनामनुपूर्वशः । मासि मासि भवेद्राजन्यारणं कुरुनन्दन ॥७५

पारायण या कथा कहनी चाहिए । ६२-६३। थदा सम्पन्न होकर ऐसे वाचक ब्राह्मणों द्वारा इतिहास, पुराण एवं रामचरित के श्रवण करने से उस पवित्रतापूर्ण एवं नियम पालक श्रोता को फल की प्राप्ति होती है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, दैश्य, विशेषकर शूद्र को अश्वमेध के फल, समस्त कामनाओं की सफलता, समस्त रोगों से मुक्ति एवं महान् पुण्य की प्राप्ति पूर्वक सूर्य देव के उस अद्भुत एवं उत्तम स्थान की प्राप्ति होती है । ६४-६६। नृप ! श्रोता को चाहिए कि घर में स्नान करके कथा में आकर ध्रद्वा समेत ब्राह्मण वाचक के सम्मुख आसन पर बैठे । भूपते ! महाबाहो, जिस समय वाचक, व्यास को नमस्कार कर स्थिर हो जाये, उस समय श्रोताओं को केवल सन्देह विषय के अतिरिक्त अन्य विषय की बातें न जरनी चाहिए । ६७-६९। यदि कहीं श्रोता को सन्देह उत्पन्न हो जाये, तो वाचक को प्रसन्न करके उसे पूँछना चाहिए, क्योंकि वाचक वर्हा के उपस्थित लोगों का गुह एवं धर्मतः बन्धुरूप बताया गया है । ७०। नृप ! वाचक को भी श्रोताओं के ऊपर कृपा कर इस प्रकार की सरल भाषा एवं प्रिय वाणी का उपयोग करना चाहिए, जिससे उन्हें निप्रान्त अर्थ का ज्ञान हों क्योंकि वह सब भौति उनके गुहरूप हैं । ७१। नृपशार्हूल ! शूद्र वर्ण के श्रोताओं के सामने वैश्य, तथा वैश्यों के सामने क्षत्रिय एवं सभी के मध्य में वाचक को बैठकर कथा सुननी चाहिए । राजन् ! वर्ण शंकर वालों को शूद्र के पीछे बैठना चाहिए । ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी अन्य वर्ण वाले को वाचक न बनाना चाहिए, क्योंकि अन्यवर्ण के वाचक द्वारा पुराणादि सुनने पर नरक की प्राप्ति होती है । ७२-७४। राजन् ! कुरुनन्दन ! इस प्रकार श्रोताओं को प्रत्येक मास में पुराणों की समस्त पंक्तियों के श्रवण विधान को सुसम्पन्न करके पारण करना बताया गया है । ७५। राजन् !

श्रेयोऽर्थमात्मनो राजन्पूजयेद्वाचकं बुधः । मासि पूर्णे द्विजश्रेष्ठे दातव्यं स्वर्णमालकम् ॥७६
 ब्राह्मणेन महाबाहो द्वे देये क्षत्रियस्य तु । वाचकाय द्विजश्रेष्ठ वैश्येनापि त्रयं तथा ॥७७
 शूद्रैर्जैव च चत्वारे दातव्याः स्वर्णमाषकाः । मासि मासि द्विजश्रेष्ठ श्रद्धया वाचकाय तु ॥७८
 प्रवर्मे पारणे राजन्वादकं पूज्य लक्षितः । अग्निष्टोमं गोसवं च ज्योतिष्टोमं तथा नृप ॥८०
 सौत्रामणिं वाजपेयं वैष्णवं च तथा विभो । मादेश्वरं तथा ब्राह्मं पुण्डरीकं अजेत यः ॥८१
 आदित्यज्ञस्य तथा राजसूयाद्वयेष्याः । फलं प्राप्नोति राजेन्द्र मासेद्वादशभिः क्रमात् ॥

इथं पञ्चफलं प्राप्य याति लोकांस्तथोत्तमान् ॥८२

वज्रदेविकसम्पन्नं मणिरत्नविश्रूषितम् । विमानमास्थितो राजन्मोदते राक्रमन्दिरे ॥८३
 ततत्रनन्दस्य भवने वारणे भवने ततः । शोचित्केङ्गृहे गत्वा गच्छेच्चैलविते गृहे ॥८४
 धिषणस्य गृहं गत्वा ततश्चित्रशिखण्डिनः । वृद्धश्रवसमासाद्य गच्छेत्कञ्जजमन्दिरे ॥
 एवमेव नृपश्रेष्ठं नात्र कार्या विचारण ॥८५

फलमेतत्समुद्दिष्टं शृण्वतां सततं नृणाम् । उत्तरकलं बत्सरेण नृणवतो विधितो नृप ॥८६
 एतानि शरिमाणानि बत्सरेण भवन्ति वै । शृण्वतां नृपशार्दूलं ददतां वाचकाय वै ॥८७

विद्वान् को चाहिए कि आत्म कल्याणार्थ वाचक की पूजा करें । और महाबाहो ! मास की समाप्ति में उस ब्राह्मण श्रेष्ठ (वाचक) को ब्राह्मणों द्वारा एक माशा, क्षत्रियों द्वारा दो, वैश्यों द्वारा तीन एवं द्विजश्रेष्ठ ! शूद्रों द्वारा चार मासे सुवर्ण प्राप्त होने चाहिए । द्विजश्रेष्ठ ! श्रद्धा सम्पन्न होकर प्रत्येक मास में चारों वर्णों को ऐसी ही दक्षिणा वाचक के लिए प्रदान करनी चाहिए ॥७६-७८। राजन् ! प्रथम पारण में वाचक का यामाशक्ति पूजन करने पर मनुष्य को अग्निष्टोम यज्ञ के फल प्राप्त होते हैं ॥७९। नृप ! कार्तिक मास से आरम्भ कर बारहों मासों में अग्निष्टोम, गोसव, ज्योतिष्टोम, सौत्रामणि, वाजपेय, वैष्णव, माहेश्वर, ब्राह्म, पुण्डरीक, आदित्य यज्ञ तथा राजेन्द्र ! राजसूय एवं अश्वमेध यज्ञ के फल क्रमशः बारहों मासों में सूर्य के बतानुष्ठान द्वारा प्राप्त होते हैं । इस प्रकार वह समस्त यज्ञ के फलों की प्राप्ति पूर्वक उत्तम लोक की प्राप्ति करता है ॥८०-८२। राजन् ! वज्र की वेदियों एवं मणिरत्नों से विश्रूषित विमान पर स्थित होकर वह इन्द्र के भवन में आनन्दानुभव प्राप्त करता है ॥८३। पुनः उसे चन्द्र-भवन, वरुण-भवन, अग्नि-भवन, एवं कुबेर के गृह, पहुँचकर ग्रहों के आनन्दानुभव के उपरांत चित्र शिखडी (अग्नि) इन्द्र तथा ब्रह्मा के मन्दिर की प्राप्ति होती है । नृपश्रेष्ठ ! इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं ॥८४-८५। नृप ! पुराण श्रवण करने वाले मनुष्यों को जो निरन्तर पूर्ण वर्ष तक विधान पूर्वक श्रवण करते रहते हैं, इन फलों की प्राप्ति होती है, ऐसा बताया गया है । नृप शार्दूल ! पूरे वर्ष भर कथा श्रवण करते हुए वाचक की सेवा में दक्षिणा प्रदान करने पर श्रोताओं को इन फलों की प्राप्ति होती है ॥८६-८७। विशांपते ! ब्राह्माण्डि वर्णों को क्रमशः वाचक के लिए एक दो, तीन, एवं चार मासे सुवर्ण

एकं च हे तथा श्रेणि चत्वारि च विशंपते । देयानि वाचकायेह मासि मासि नराधिप ॥८८
 ब्राह्मणादैनृपश्रेष्ठ सर्ववर्णविभागशः । समाप्ते पर्वणि तथा वाचकं पूजयेत्सुनः ॥८९
 वाचकं ब्राह्मणं चैव सर्वकामैः प्रपूजयेत् । गन्धमात्यादिभिर्दश्यवासोभिर्विधैरपि ॥९०
 वाचकाय प्रदत्त्वा तु ततो विप्रान्प्रपूजयेत् । हिरण्यं रजतं रुक्मं गदाच कास्योपदोहनाः ॥९१
 दत्त्वा च वाचकायेह श्रुतस्य प्राप्यते फलम् । यथा सदशिणं चान्नं श्राद्धकाले प्रकीर्तितम् ॥

तथा तु नृपश्रेष्ठा सदक्षिणमुदाहृतम् ॥९२

वाचकं पूजयेद्यस्मातश्चलेकपूजनम् । समाप्ते पर्वणि विभो विशेषणैव चार्चयेत् ॥९३
 वाचकः पूजितो येन पूजितास्तेन देवताः । वाचके परितुष्टे न मम भीतिरनुत्तमा ॥९४
 इति वेदाः सदा प्राह देवानां पुरतः पुरतः । तस्मिस्तुष्टे जगत्सर्वं तुष्टं भवति नित्यशः ॥९५
 तस्मात्प्रपूजयेद्विं वाचकं नृपसत्तम् । न तुल्यं वाचकेनेह पात्रं दानस्य विद्यते ॥९६
 तिष्ठति यस्य शस्त्राणि निह्राप्य पृथिवीपते । वृष्टश्च गोचरस्तात् कस्तेन सदृशो द्विजः ॥९७
 न तुल्यं विद्यते तेऽ भूदि पात्रं नरेषु वै । तस्मादत्रं सदा त्रूपं तस्मै वैयं विदुर्बुधाः ॥
 श्राद्धे यस्य द्विजो श्रुद्धेः वाचकः श्रद्धयान्वितः । भवति पितरस्तस्य त्रृप्ता वर्षशतं नृप ॥९८

प्रदान करने चाहिए । नराधिप ! प्रत्येक मास में वाचक के लिए श्रोताओं को ऐसा ही करने का विधान बताया गया है ॥८१। नृपश्रेष्ठ ! ब्राह्मणादि सभी वर्ण को क्रमशः पर्व की समाप्ति में भी पुनः उसी भाँति वाचक की पूजा करनी चाहिए ॥८१। समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिए दिव्य एवं गन्ध मालाओं आदि द्वारा अनेक भाँति से वाचक ब्राह्मण की पूर्व भाँति ही पूजा करना बताया गया है ॥९०। वाचक की पूजा एवं दक्षिणा दान के उपरांत ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए और सुवर्ण चाँदी, रक्म तथा कांसे की दाढ़ी पात्र समेत अलंकृत गायें वाचक को देनी चाहिए । इस प्रकार वाचकों को इन वस्तुओं के प्रदान पूर्वक उनसे (पुराण) श्रवण करने पर उपरोक्त फलों की प्राप्ति होती है । नृपश्रेष्ठ ! जिस प्रकार श्राद्ध के समय दक्षिणा समेत भोजन प्रदान करना बताया गया है, उसी भाँति दक्षिणा समेत श्रवण का विधान भी जानना चाहिए ॥९१-९२। विभो ! वाचक की अर्चा के उपरांत लेख की पूजा आवश्यक बतायी गयी है, विशेषकर पर्व की समाप्ति में ॥९३। जिसने वाचक की पूजा सुसम्पन्न किया, उसने समस्त देवों की पूजा की क्योंकि वाचक के भली भाँति प्रसन्न होने पर मेरा वह अनुपम प्रीति भाजन होता है ॥९४। इस प्रकार ब्रह्मा ने पहले समय में समस्त देवों के समक्ष भाषण किया था । वाचक के प्रसन्न होने पर उसके ऊपर समस्त जगत् (श्रोता के) नित्य प्रसन्न रहता है ॥९५। नृपसत्तम ! इसलिए ब्राह्मण वाचक की अत्युत्तम अर्चा करनी चाहिए । क्योंकि वाचक के समान अन्य कोई दान का पात्र नहीं होता है ॥९६। पृथिवीपते ! समस्त शास्त्र जिसके जिह्वाशब्दाग पर स्थित एवं दृष्टिगोचर रहता है, तात ! उसकी समानता कौन दूसरा ब्राह्मण कर सकता है ॥९७। इस भूतल पर मनुष्यों में उसके समान अन्य वाचक न होने के कारण विद्वानों ने सदैव सर्वप्रथम उन्हें अभ प्रदान करने के लिए बताया है । नृप ! जिसके यहाँ

१. पुष्पस्य भवने ततः । ३. ततो विष्णुगृहं द्रजेत् ।

यथेह सर्वदिवानां भास्करः प्रश्नः स्मृतः । विस्पष्टमद्भुतं शान्तं स्पष्टाक्षरपदं तथा ॥
कलस्वरसमायुक्तं रसभावसमन्वितम् ॥१९९

ब्रुध्यमानः सदात्पर्यं प्रन्थार्थं कृत्प्रशः नुप ! ब्राह्मणादिषु वर्णेषु प्रन्थार्थं दद्वयेष्टप् ॥१००
 एवं वाचयेद्वाजन्त विप्रो व्यास उच्चते । अतोऽन्यथा कथयिता ज्ञेयोऽसौ वक्तृनामङ्कः ॥१०१
 इत्थंभूतो वसेद्यस्मिन्वाचको व्याससन्निभः । देशेऽप्य पतने राजन्त देशः प्रवरः स्मृतः ॥१०२
 से धन्यास्ते सहात्मानात्ते कृतार्थं न संशयः । दसन्ति यत्नतो यस्मिन्त देशः प्रवरः स्मृतः ॥१०३
 न शोषते पुरं वीरं व्यासहीनं कवाचन । यथार्कहीनं हि दिनं चन्द्रहीनं यथा निरा ॥१०४
 न राजते तरो यद्वत्परिनी रहितं नुप । तथा ध्वासदिहीनं तु राजते न पुरं व्यवनित ॥१०५
 प्रणम्य वाचकं भक्तया यत्कलं प्राप्यते नरैः । न तत्कुत्सहक्षेण प्राप्यते कुरुनन्दन ॥१०६
 यथैकतो प्राहः सर्वे एकतस्तु दिवाकरः । तथैकतो द्विजाः सर्वे एकतस्तु स वाचकः ॥१०७
 यथा वेदसमो नास्ति आगमो भुवि कञ्चन । नया ध्वाससमो नास्ति ब्राह्मणो भुवि कञ्चन ॥१०८
 कुरुक्षेत्रसमं लीर्यं न द्वितीयं प्रज्ञस्ते । न तदी गङ्गया तुल्या न देवो भास्कराद्वरः ॥१०९
 नाववमेवसमं पुण्यं न पापं ब्रह्महृत्या । पुत्रजन्मसुखेत्स्तुल्यं त्र सुखं विद्धते यथा ॥११०

श्राद्ध के दिन श्रद्धालु होकर कोई वाचक ब्राह्मण भोजन करता है, उसी समय उसके पितर लोग सी वर्ष के लिए तृप्त हो जाते हैं । १८। जिस प्रकार समस्त देवताओं में भास्कर सर्वथेष्ठ बताये गये हैं, उसी भाँति ब्राह्मण वाचक जो अत्यन्त स्पष्ट, अद्भुत, शान्त, स्पष्ट अक्षर एवं कलस्वर का स्पष्ट उच्चारण करने वाले, मधुर स्वर तथा इस भावपूर्ण उस प्रथ के विशदं अर्थों को सदैव ही भली भाँति समझता है, सर्वप्रधान कहा गया है । नुप ! ब्राह्मण आदि सभी वर्जों को उस प्रथ के अर्थों को उससे मुनना चाहिए । १९-१०। राजन् ! जो इस प्रकार से ग्रन्थों के पारायण करता है, उसे 'व्यास' कहा जाता है, और इससे अन्य प्रकार के पारायण करने वाले को 'वक्ता' । १०। राजन् ! जिस देश या गांव में इस प्रकार व्यास के समान वाचक रहता है, वह देश-गांव सर्वथेष्ठ बताया गया है । १०। २। इसलिए वे (वाचक) धन्य हैं, महात्मा हैं, एवं कृतार्थ हैं अतः जिस देश में ऐसे वाचक-दल निवास करते हैं, वह देश सर्वथेष्ठ बताया गया है । १०। ३। वीर ! सूर्यहीन दिवस, एवं चन्द्रप्रभाहीन रात्रि की भाँति व्यासहीन ग्राम की कभी भी शोभा नहीं होती है । १०। ४। नुप ! कमलिनी विहीन तालाब जिस प्रकार सुशोभित नहीं होता है, उसी भाँति व्यास हीन गांव भी कभी सुशोभित नहीं होता है । १०। ५। कुरुनन्दन ! भक्ति पूर्वक वाचक को प्रणाम करके मनुष्य जिन फलों की प्राप्ति करता है, वे फल सहन यज्ञो द्वारा भी प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं । १०। ६। एक ओर सभी ग्रह और एक और सूर्य स्थापित करने पर भी जिस भाँति वे ग्रह समस्त सूर्य की तुलना नहीं कर सकते, उसी भाँति एक ओर समस्त द्विज एवं एक ओर वाचक के स्थित रहने पर समस्त द्विज उस वाचक की तुलना करने में असमर्थ हैं । १०। ७। पृथिवी में जिस प्रकार वेद के समान कोई आगम (शास्त्र) नहीं है, उसी प्रकार इस भूतल में व्यास के समान कोई दूसरा तीर्थ एवं गंगा के समान अन्य नदी नहीं है, उसी प्रकार भास्कर से श्रेष्ठ कोई अन्य देव नहीं है । १०। ८-१०। नुप ! जिस प्रकार अश्वमेध के समान पुण्य, ब्रह्म हृत्या के समान पाप, एवं पुत्र जन्म के समान सुख अन्य कोई नहीं है, उसी प्रकार व्यास के समान अन्य ब्राह्मण

तथा व्याससमो विप्रो न क्वचित्प्रव्यते नृप । दैवकर्मणि पित्र्ये च पादकः परमो नृग्राम् ॥ १११
नास्ति व्याससमः श्रेष्ठ इतीयं वैदिको श्रुतिः । अथ विभ्रसह्याणां विभोऽयं ग्रेलङ्घ इरितः ॥

उपविष्टो यदा भुद्दतो व्यासो वै विप्रमण्डले ॥ ११२

शाद्वे तात पवित्राणि कथितानि पुरा मम । ब्रह्मणा राजशार्दूल शृणु तरनि व्याख्याविधि ॥ ११३

मधु पायसं कालशाक्तिलाश्रुं कुतपस्तश्च । राजतं चापि पात्रेषु ब्राह्मणेष्वाल ब्राह्मकः ॥ ११४

देवकर्मणि पित्र्ये च स ज्ञेयः पद्मिक्तपावनः । बाचकबच यत्तिवैद्य तथा उद्देश षडंगवित् ॥ ११५

एते सर्वे नृष्टश्रेष्ठ विज्ञेयाः पद्मिक्तपावनाः । नामनो बाचकस्यैते शृणुव्याख्यमथैतयोः ॥ ११६

इतिहासपुराणानि जयेति विदितानि वै । उदजीवति व्यम्पादौ बाचकनो द्विजो नृप ॥

जयोपजीवो तेनासौ गतः स्थाप्ति तु वाचकः ॥ ११७

विस्पष्टमद्भुतं राजतं स्पष्टाक्षरमिदं तथां । कलस्वरसमायुक्तं रसलावदसमन्वितश्च ॥ ११८

बुध्यमानोथवात्यर्थं प्रन्थार्थं कृत्स्तनशो नृप । ब्राह्मणान्विषु वर्णेषु प्रन्थार्थं चार्यप्रथेत्यथा ॥ ११९

य एवं च वान्येद्वाजन्स विप्रो व्यास उच्यते । अतोऽन्यथा वाजयिता न गच्छेद्व्याससां क्षमित् ॥ १२०

त्रिविधं वाचकं विद्यात्सदा गुणाविभेदतः । श्रावकं च महाबाहो त्रिविधं गुणभेदतः ॥ १२१

द्वावेतौ कथ्यमानौ तु निबोष गदतो मम । अभिद्रुतं तथास्पष्टं विस्तरं स्वरवर्जितश्च ॥ १२२

अप्राप्य है ! देव तथा पितृकर्मों में उनके समान पवित्र अन्य कोई मनुष्य नहीं होता है, क्योंकि यह परम्परागत प्रसिद्धि एवं वैदिक जनश्रुति है कि व्यास के समान अन्य कोई मनुष्य श्रेष्ठ नहीं है । सहस्रों ब्राह्मणों में यह (न्यास) ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ बताया गया है । तात ! श्राद्ध के दिन ब्राह्मण या षडली के मध्य में बैठकर जिस समय वह व्यास (वाचक) भोजन करता है, उस समय सब कुछ पवित्र हो जाता है । राजशार्दूल ! पहले समय में ब्रह्मा ने ही उसे बताया था, मैं उसे विधान पूर्वक बता रहा हूँ, सुनो ! मधु (शहद). पायस, कालशाक (शादीय साग), तिल, एवं कुतप (मृगकर्म और दिन का आठवाँ भाग), की भाँति पात्रों में चाँदी के पात्र और ब्राह्मणों में वाचक उत्तम होते हैं । ११०-११४। देव तथा पितरों के कर्मों में उन्हें पवित्र श्रेणी के समक्षाना चाहिए । नृपश्रेष्ठ ! वाचक, संति, षडंगो का वेता, ये सभी पंक्तिपावन (उत्तम श्रेणी के) हैं । वाचक के वाचक और व्यास, ये दोनों नाम हैं, अतः इनके अर्थ बता रहा हूँ, सुनो ! नृप ! इतिहास एवं पुराणों के जिनके 'जय' यह नाम स्थाप्ति प्राप्त है, पारायण द्वारा जो ब्राह्मण अपनी जीविका निर्वाह करता है, उसका स्थाप्ति प्राप्त नाम जयोपजीवी वाचक होता है, और अत्यन्त स्पष्ट, अद्भुत, शांत, स्पष्ट अक्षर एवं पद मधुर स्वर, रस तथा भावपूर्ण उस ग्रन्थ के समस्त विशद ग्रन्थों के ज्ञान प्राप्त कर ब्राह्मण आदि वर्णों के मध्य बैठकर उसके श्रवण कराने वाले ब्राह्मण वाचकों को 'व्यास' कहा गया है । ११५-१२०। महाबाहो ! गुण के भेद होने से जिस प्रकार वाचक के तीन भेद बताये गये हैं, उसी प्रकार गुण के भेद से श्रोता भी तीन भाँति के होते हैं । १२१। शेष दोनों प्रकार के वाचकों को मैं बता रहा हूँ, सुनो ! क्षमाधिपेश्वर ! शीघ्रता से, स्पष्ट, विस्तृत, स्वरहीन,

पदच्छेदविहीनं च तथा भावविवर्जितम् ! अबुध्यमानो ग्रन्थार्थमसीष्टोत्साहृजितः ॥१२३
 ईशुं वाचयेदस्तु वाचकः क्षमाधिपेश्वर । कोऽनोऽप्रियवादी च अग्नानावृप्रन्थदूषकः ॥१२४
 बुद्धते न च कलाञ्च स ज्ञेयो वाचकाधमः । विस्पष्टमद्भुतं शांतं रसभावसमन्वितम् ॥१२५
 अबुध्यमानो ग्रन्थार्थं वाचयेदस्तु दाचकः । स ज्ञेयो राजसो राजसिद्वानीं सात्त्विकं शृणु !!१२६
 विस्पष्टमद्भुतं शांतं स्पष्टाक्षरपदं तथा । कलन्वरसमायुक्तं रसभादत्समन्वितम् ॥१२७
 अत्यर्थं बुध्यमानस्तु ग्रन्थार्थं कृत्वर्त्तः नृप । ब्राह्मणः दिष्टु वर्णेण आचार्यो विदिवन्नृपः ॥१२८
 य एवं वाचयेद्वालन्त ज्ञेयः सात्त्विको दुधः । श्रद्धाभक्तिविहीनो दो सोऽप्यष्टः कटुको यथा ॥१२९
 हेतुवादपरौ राजस्तथासूयासमन्वितः । नितानं नैमित्तिकां काम्यामाददक्षिणां दृप ॥१३०
 वाचको यो महाबाहो शृणुयादस्तु मानवः । स ज्ञेयस्तामसो राजञ्च्छावको मानवोऽपि सः ॥१३१
 न तस्य दुरतो वीर वाचयेत्प्राप्त एव हि । प्रसङ्गाच्छृणुयादस्तु श्रद्धाभक्तिविवर्जितः ॥१३२
 राजनौतुक वात्रं स ज्ञेयो राजसो भवेत् । संत्यज्य सर्वज्ञार्थाणि भक्त्या श्रद्धासमन्वितः ॥१३३
 सतं पूजयेदस्तु वाचकं श्रद्युया मुदा । तित्ये नैमित्तिके काम्ये गुरुन्वं देवतास्तथा ॥१३४
 य एवं शृणुयादीर स ज्ञेयः सात्त्विको दुधः । व्यासः पूज्यः श्रावकाणां यथा व्यासवचो नृप ॥१३५
 तस्मात्नृज्यतमो नान्यः श्रावकाणां नृपोत्तम । यतः स दै गुरुस्तेषां ज्ञानदाता सदा नृप ॥१३६

पदच्छेद तथा भावहीन उच्चारण करने वाला ग्रन्थ के अर्थों को भली भाँति न जानने वाला, एवं उत्साह हीन, पारायण करने वाले को 'वाचक' कहा गया है, तथा कुद्द स्वभाव, कठोर वाणी, अज्ञानता वश प्रथ को दूषित करने वाले एवं परिश्रमपूर्ण कष्ट के अनुभव करनेपर भी अर्थों को न जानने वाले को 'वाचकाधम' बताया गया है । राजन् ! स्पष्ट वाणी, आश्चर्य शांत, स्पष्ट अक्षर एवं पदों के उच्चारण, शाखुर्य पूर्ण स्वरं रस एवं भाव समेत समत्त ग्रन्थों के अर्थों का अज्ञानतावश विस्तृत व्याख्यान करने वाले को 'राजसु' बताया गया है, अब सात्त्विक की व्याख्या कह रहा हूँ सुनो ! अत्यन्त स्पष्ट, आश्चर्यजनक, शांत स्पष्ट, अक्षर एवं पदों के उच्चारण मधुर स्वर, रस एवं भावों समेत सम्पूर्ण ग्रन्थों के अर्थों की विशद व्याख्या करने में कुशल व्यक्ति को ब्राह्मण आदि वर्णों का आचार्य बताया गया है । राजन् ! इस प्रकार के पारायण करने वाले को विद्वानों ने 'सात्त्विक वाचक' कहा है, राजन् ! उग्मे भाँति श्रद्धा भक्तिहीन, लोभी, मदार वृक्ष की भाँति कडवा (कठोर) अकारण वाद विवाद करने वाला, निदित, नित्य नैमित्तिक क्रियाओं की पूर्ति के लिए नित्यित दक्षिणाओं के घट्ट करने वाले पुरुष, महाबाहो ! तामसं वाचक बताये गये हैं तथा राजन् ! उसके सभी श्रोतागण मनुष्य भी तामस कहे गये हैं । १३२-१३१ वीर ! ऐसे श्रोताओं के सामने विद्वान् वाचकों को पारायण न करना चाहिए । राजन् श्रद्धा भक्तिहीन पुरुष प्रसङ्ग वश यदि कथा का श्रवण करता है, उसे कौतुक (मनोरंजन) वात्र होने के नाते 'राजस श्रोता' बताया गया है । भक्ति पूर्वक जो श्रद्धालु पुरुष सभी कार्यों को त्याग कर अत्यन्त प्रसन्नता से निरन्तर वाचक की पूजा करता है, उसी प्रकार नित्य-नैमित्तिक एवं काम्य कर्मों से गुरुवर्यां तथा देवताओं की आराधना करता है, वीर ! इस प्रकार के श्रोता को विद्वानों ने 'सात्त्विक श्रोता' कहा है । नृप ! व्यास के वचनातुसार व्यास श्रोताओं के परम पूज्य हैं, इसलिए नृपोत्तम ! उनसे बढ़कर श्रोताओं के पूज्यतम अन्य कोई नहीं है, क्योंकि वह उनके सदैव ज्ञान प्रदान करने के नाते गुरु रूप है । १३२-१३६ नृपश्रेष्ठ ! वेद

चतुर्णामिह दर्शनां नान्यो बन्धुः प्रचक्षयते । व्यातादृते नृपश्रेष्ठ इतीर्थं वैदिको श्रुतिः ॥१३७
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नृजयेद्वाचकं सदा । स गुरुः स पिता माता स बन्धुः स मुहूर्तस्था ॥१३८
 वाचको नृपशार्दूलं विप्रादीनामरोषतः । इत्यं व्यातो गुरुर्जयः पूज्यो भग्न्यो द्विजातिभिः ॥१३९
 शृण्वन्ति ये नरा राजन्त तेषां मुखरच्यते । पूजार्थं तस्य समयः वाचकाणामुदाहृतः ॥१४०
 ये भृष्णवन्ति नृपश्रेष्ठं जासि जासि ददन्ति ते । स्वर्णमाणकस्त्रै वाचकाय पृथक्पृथक् ॥१४१
 द्वादशद्वा द्वामत्वन्यायामय दा रवि सङ्कल्पे । सा नित्या दक्षिणः तस्यां या च श्रेयोऽर्थमात्मनः ॥१४२
 अपने विषुवे चैव चन्द्रसूर्यप्रहे तथा । प्राप्ते वापरपक्षे च दत्तं तस्मै स्वशक्तिः ॥१४३
 देयं त्याच्छावक्षत्तात तं मुक्त्वा नान्यतो नृप । प्रथमं तस्य दत्तव्यं श्रेयोऽर्थं श्रावकैः सदा ॥१४४
 अदत्त्वा तस्य येन्यस्ते सम्प्रयच्छन्ति श्रावकाः । अदपानः कृतस्तस्तु वाचकस्य भवेन्नृप ॥१४५
 कृत्वायमानमण्डते । प्राप्ते यत्कलं नृप । ब्राह्मणादीः समस्तैर्वत्तच्छृणुष्य वरानन ॥१४६
 शूद्रत्वं ब्राह्मणो याति क्षत्रियो याति कलकाताम् । जायते च तथा वैश्यः शूद्रश्चाण्डालतां भजेत् ॥१४७
 तस्मात्पूज्यो नृपश्रेष्ठं प्रयत्नं वाचको दुर्धुः । आपत्काले च वृद्धो च यतश्चासौ गुरुः त्स्तुः ॥१४८
 वैशाल्यामयने वौर दृतीयायां च मुद्रत । कार्त्तिक्यामय भार्या च सम्पूज्यः प्रथमं भवेत् ॥१४९

की श्रुतियों का यह कहना है कि चारों वर्णों के व्यास का अतिरिक्त कोई बन्धु नहीं होता है । १३७।
 इसलिए सभी भाँति प्रयत्नशील रहकर वाचक की सैद्व पूजा करनी चाहिए, क्योंकि वहीं गुरु, पिता,
 माता, बंधु एवं मित्र है । १३८। नृपशार्दूलं ! निदिन ब्राह्मणों के लिए भी वाचक उसी भाँति पूज्य बताया
 गया है । पुनः इस प्रकार के व्यास को गुरु जानना चाहिए और द्विजातियों के लिए वहीं पूज्य एवं मान्य
 है । १३९। राजन् ! जितने लोग कथा श्रवण करते हैं, उन सभी के वह गुरु कहलाता है । उसकी पूजा
 करने के लिए श्रोताओं को समय बताया गया है । १४०। नृपश्रेष्ठ ! जो लोग प्रत्येक मास के
 कथापाराधण के श्रवण करते हैं वे सब पृथक्-पृथक् रूप से एक एक माशे सुवर्ण वाचक के लिए प्रदान करते
 हैं द्वादशी, अमावस्या एवं सूर्य संकान्ति के दिन भी कथा सुनने पर वाचक की वही नियत दक्षिणा होती
 है । क्योंकि देने वाला अपने कल्याणार्थ प्रदान करता है । १४१-१४२। दोनों अयन, विषुव, चन्द्र सूर्य के
 प्रहण के समय, अपनी भक्त्यनुसार उन्हें दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए । १४३। नृप ! तात ! उससे
 अतिरिक्त अन्य कोई भी वस्तु वाचक को श्रोता न प्रदान करे । अन्य वस्तु के प्रदान में अपने कल्याणार्थं
 प्रथम उसी (एक माशे सुवर्ण) को प्रदान कर पश्चात् अन्य वस्तुएँ दे । १४४। नृप ! सर्वं प्रथम बिना उसे
 प्रदान किये अन्य वस्तु के देने से श्रोताओं द्वारा किया गया वाचक का अपमान समझना चाहिए । १४५।
 नृप ! अपमान करने पर भी सभी वर्णों को जिन फलों की प्राप्ति होती है, वरानन ! मैं उसे बता रहा हूँ,
 सुनो ! । १४६। ब्राह्मण, शूद्रत्व की प्राप्ति करता है, क्षत्रिय कोवै होते हैं और इसी भाँति वैश्य एवं शूद्र
 चाण्डाल के यहाँ जन्म यहण करते हैं । १४७। अतः नृपश्रेष्ठ ! विद्वानों को चाहिए कि वाचक की
 सर्वप्रथम पूजा करें, क्योंकि आपत्तियों के समय वृद्धि काल में भी वह उनका गुरु दत्ताया गया है । १४८।
 वीर ! वैशाल्य मास की पूर्णिमा, अयन, दृतीया तथा मुद्रत ! उसी भाँति कार्तिक एवं माघशीर्ष की पूर्णिमा
 में सर्वप्रथम वाचक की पूजा होनी चाहिए । १४९। विभो ! उसी भाँति अन्य पर्व तिथियों में भी उनकी

पर्वतस्कन्धेषु च विभो सम्पूज्ये धर्मतः स्मृतः ! हिरण्यं च सुवर्णं च धनं धान्यं तथैव च ॥१५०
 अङ्गं चापि तथा पवर्णं मांसं च कुरुनन्दन । दातव्यं प्रथमं तस्मै श्रावकैर्नृपसत्तम ॥१५१
 वाचकस्तु यथा नित्यं सुखमास्ते नराधिप । न पीडयते यथा द्वन्द्वस्तथा कार्यं वरानन्दः ॥१५२
 हेमन्तो लोकशा देयाइछत्रं प्रावृष्टिं सत्तम् । उपासनौ कालयोग्ये काले चैवानुलोमगः ॥१५३
 हृष्ट्यं द्वन्द्वविनिर्मुक्तः स येषां वाचकं नृप । ते धन्याः श्रावकाः लोके ते गताः परमं पदम् ॥१५४
 आत्मना तु कथं दीर्घं सुखमिष्ठेदित्तक्षणः । विषमस्ये गुरौ राजन्यतश्च स गुरः स्मृतः ॥१५५
 वाचकशावकाणां च तस्माद्द्वन्द्वं विधातयेत् । यत्तः कार्यः श्रावकैश्च वाचकस्य जनाधिप ॥१५६
 हृष्ट्यं पूज्यः सदा व्यासः श्रेयोऽस्य प्रथमं नृप । भर्ता पूज्यो यथा स्त्रीणां सर्वासां च महीपते ॥१५७
 श्रावकाणां तथा राजन्याचकः पूज्य उच्यते । उपाध्यायस्तु शिष्याणां पथा भागवतो हरिः ॥१५८
 सौराणां च यथा भावुः शैवानां शाङ्करो यथा । वाचकस्तु तथा पूज्यः श्रावकाणां नराधिप ॥१५९
 लोकाणां ददतः नित्यं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता । पूर्वोक्तमाषकं तस्मै वाचकाय जनाधिप ॥१६०
 अहा हातुं न शक्नोति भाषकं काञ्चनस्य तुः रजतस्य तद्व देवं भाषकं श्रेयसे नृप ॥१६१
 तदभावे हिरण्यं च वित्तशाठधार्वार्तितः । मृतिकापि हि दातव्या प्राप्नोति सत्कलं शुभम् ॥१६२
 इत्येषा दक्षिणा नित्या भासि मासि भवेन्नृप । नैमित्तिका भवेद्राजन्द्रहणादिषु पर्वत्सु ॥१६३

धार्मिक पूजा के उपरात हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य एवं अन्न समेत कुरुनन्दन ! पके मांस भी श्रोताओं को चाहिए उन्हें प्रदान करें ॥१५०-१५१। नराधिप ! दाचक को जिस किसी उपाय द्वारा दुःख द्वन्द्व की मुक्ति पूर्वक नित्य सुख प्राप्ति हो, वही श्रोताओं को करना चाहिए ॥१५२। हेमन्त ऋतु के समय कम्बल वर्षा के समय छते, तथा शीत और गर्मी के समय पादत्राण (ज्ञते) प्रदान करने चाहिए ॥१५३। नृप ! इस प्रकार जिन श्रोताओं द्वारा वाचक दुःख द्वन्द्व की मुक्ति प्राप्त करता है, लोक में श्रोता लोग धन्य हैं, एवं उन्हें परम पद की प्राप्ति होती है ॥१५४। वीर ! गुरु की विषम परिस्थिर्ति देखकर कौन बुद्धिमान् अपने सुख को आकांक्षा करेगा, क्योंकि यह गुरु बताया गया है ॥१५५। जनाधिप ! इसलिए वाचक श्रोताओं के द्वन्द्व दुःख का हनत करे और श्रोता लोग वाचकों के ॥१५६। नृप ! इस प्रकार व्यास की सदैव सर्वप्रथम पूजा होनी चाहिए ; महीपते ! जिस प्रकार सभी स्त्रियों के पूज्य उनके पति होते हैं और राजन् ! जिस प्रकार शिष्यों के उपाध्याय एवं वैष्णवों के विष्णु पूज्य हैं, उसी भाँति वाचक श्रोताओं के पूज्य बताये गये हैं । नराधिप ! सौर (सूर्य भक्तो) के सूर्यं तथा शैवों के शिव, जिस प्रकार पूज्य है, उसी प्रकार श्रोताओं के पूज्य वाचक होते हैं ॥१५७-१५८। जनाधिप ! अपने ऐश्वर्य की कामना वश पूर्वकत कथानुसार एक माशे सुवर्ण की दक्षिणा नित्य प्रदान करते हुए नित्य कथा श्रवण करनी चाहिए ॥१६०। नृप ! यदि श्रोता एक माशे सुवर्ण की दक्षिणा को देने में असमर्थ हो तो कल्याणार्थ उतनी चाँदी की ही दक्षिणा प्रदान करे ॥१६१। देने में धन की शठता न करे प्रत्युत उसके अभाव में हिरण्य (सामान्यद्वय) ताँबे आदि ही प्रदान करे । उसका भी अभाव हो तो मृतिका (मिट्टी) ही प्रदान करनी चाहिए । उससे भी उत्तम फल की प्राप्ति होती है ॥१६२। नृप ! प्रत्येक मास तथा राजन् ! ग्रहण आदि की पर्वतियों को भी यही नियमित दक्षिणा वाचक को नित्य प्रदान करने के लिए बताया गया है ॥१६३। राजन् !

अमले वासनी राजन्गामाल्यविभूषणे । समाप्ते पर्वणि विभो दातव्ये भूतिमच्छता ॥१६४
ज्ञात्वा सर्वसमाप्तिं तु पूजयेच्छावको ध्रुवम् । आत्मानमपि विकीर्ण य इच्छेत्तरः श्रुतम् ॥१६५
नैमित्तिकां च नित्यं च दक्षिणामप्रदाय च । शृणोति च सदः यस्तु तस्य तप्तिष्ठलं श्रुतम् ॥१६६
यथा च दक्षिणाहीनःयज्ञाङ्ग फलमश्चनुते । तथा श्रुतं च राजेन्द्र दक्षिणारहितं स्मृतम् ॥१६७
न्तुरुणा भवेद्राजन्या नित्या दक्षिणा विभो । समाप्ते पर्वणि विभो इत्याह भगवतःच्छब्दः ॥१६८
इत्येष कथितो नज्ञन्युराणश्चवणे विधिः । यतश्च विधिहीनं तु न कर्मफलमुद्यते ॥१६९
स्नानं दानं जपो होमः पितृदेवाभिपूजनम् । दिग्पिपूर्वे स्मृतं ज्ञेयं यथेह कुरुनन्दन ॥१७०
फलदं नृपशार्दूलं पुराणश्चवणं तथा । यथार्थं कथितं तुम्यं विधिना श्वणं भया ॥१७१
यथोक्तं तु यथा जीवं यथोक्तं ब्रह्मवादिना । स ब्राह्मणो महाराज सर्वलोकेषु पूजितः ॥१७२
यथाश्रुतं महाबाहो तथेद कथितं तत्व । भास्करस्य तु माहात्म्यं माहात्म्यं धावकस्य तु ॥१७३
तथा च सप्तमीकल्पः सर्वपापभग्यपदः । अनेन विधिना यस्तु पूजयेत्सततं तरः ॥१७४
भगलोकं समाप्ताद्य त्रिषु लोकेषु गीयते । ततोऽर्कलोकमाप्ताद्य गच्छेच्चश्रशिखण्डनः ॥१७५
तस्मादपि भहाबाहो गच्छेल्लोकं दिवाकरम् । अर्कलोके ततो यातस्ततो गोलोकमश्चनुते ॥१७६

विभो ! पर्व की समाप्ति में अपने एश्वर्य प्राप्ति के लिए स्वच्छ दो वस्त्र, गंध, माल्य, एवं आभूषण प्रदान करने चाहिए । सब की समाप्ति में अपने कथा सुनने को सफल बनाने के लिए श्रोता को चाहिए कि अपने आप का विक्रय कर वानक की निश्चित पूजा करे । १६४-१६५। नैमित्तिक या नित्य के (पूजन विभान में) जो बिना दक्षिणा प्रदान किये ही कथा श्वण करता है, उसका सुनना निष्फल हो जाता है । १६६। राजेन्द्र ! जिस प्रकार दक्षिणा हीन यज्ञ के फल की प्राप्ति नहीं होती है, उसी भाँति कथा श्वण भी दक्षिणा हीन होने पर फलप्रदायक नहीं होता है । १६७। राजन् ! जो दक्षिणा नित्य प्रदान की जाती है, विभो ! पर्व की समाप्ति में वहीं चौगुनी हो जाती है । १६८। राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें पुराण श्वण के विधान बता दिया जिससे विधान हीन कर्म-फल के लिए उद्योग न किया जाये । १६९। कुरुनन्दन ! स्नान, दान, जप, होम, पितु तथा देव पूजन विधान पूर्वक करना चाहिए । १७०। नृपशार्दूल ! पुराण सुनने का यथार्थ विधान, जो फल दायक होता है, मैंने तुम्हें बता दिया । १७१। महाराज ! जिस प्रकार ब्रह्मवादियों ने जीव की व्याख्या की है, उसी भाँति समस्त लोकों में वह ब्राह्मण पूजनीय है । १७२। महाबाहो ! भास्कर एवं वाचक के माहात्म्य जिस प्रकार मैंने सुना था, तुम्हें सुना दिया । १७३। उसी भाँति समस्त पाप नाशक इस सप्तमी कल्प की व्याख्या भी कर दी । इस विधान द्वारा जो मनुष्य निरन्तर सूर्य की अर्चा करते हैं, भग लोक की प्राप्ति पूर्वक तीनों लोकों में उसके गुणगान किये जाते हैं । पश्चात् अर्क, चित्र शिखण्डी (अग्नि), तथा महाबाहो ! दिवाकर सूर्य के उपरात उसे गो लोक की प्राप्ति



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]

ऋतस्य च ततो गच्छेत्कञ्जजस्य ततः परम् । दशानां राजसूयानां मणिष्ठोमशतस्य च ॥१७७
श्वरणात्पलमाङ्गोति पितामहवदो यथा ॥१७८

इति श्रीभविष्ये महापुराणे ब्राह्मे पर्वणि सप्तश्रीकल्पे सौरधर्मे आदित्यमाहात्म्यवाचकमाहात्म्य-
पुराणश्वरणविधिर्वर्णनं नाम षोडशाधिकाद्विशततमोऽध्यायः १२१६।
पूर्वार्द्धः समाप्तोऽथम् ॥३५॥ ॥श्रीनारायणार्पणमस्तु ॥

इति श्रीभविष्ये महापुराणे प्रथमं ब्राह्मपर्वं समाप्तम् । १।

होती है। उपरांत सत्य एवं ब्रह्मा के लोक की प्राप्ति पूर्वक उसे दश राजसूय और सौ अग्निष्ठोम यज्ञ के फलों की प्राप्ति भी ब्रह्मा के वचनानुसार थवण करने से होती है। १७४-१७८

श्री भविष्यमहापुराण में ब्राह्मपर्व के सप्तमी कल्प के सौर धर्म में आदित्य माहात्म्य वाचक—
माहात्म्यपुराणश्वरणविधानवर्णनामक दो सौ सोलहवाँ अध्याय समाप्त । २१६।

॥ भविष्यमहापुराणान्तर्गतं प्रथम ब्राह्म-पर्वं समाप्तं ॥

